

भगवानुं ठेकाणुं :
श्री अ. बा. र्वे. स्थानकेवासी
नेन शास्त्रोद्धार समिति,
ठे. गरेडिया कुवा रोड, ग्रीन लॉन्
पासे, राणकोट, (सौराष्ट्र).

Published by :
Shri Akhil Bharat S. S.
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road, RAJKOT,
(Saurashtra), W. Ry, India.



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैप यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति यम कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

मूल्याः ३. २५=००

प्रथम आवृत्ति : प्रत १२००
वीर संवत् : २४८८
विश्व संवत् २०१६
ईसवीसन् १९९३

: मुद्रक :
अश्विदाल छागनदाल शाह
नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस,
धी कांटा रोड, अमदावाद.

दक्षिण भारत में जैन समाज के प्रखर नेता दानवीरशेठ
स्व० श्रीमान् ताराचंदजी साहेब गेलडाकी

जीवनझलक

दक्षिण भारत के प्रवास पर आये हुए किसी भी व्यक्ति के दिलमें, मद्रास जैसे शहर के जैन समाज की शिक्षण और-वैद्यकीय संस्थाओं का सुव्यवस्थित क्रम और प्रबंध देखकर आनंद हुए बिना नहीं रह सकता। और स्वतः ही जैन समाज की दान-दिशा को धृष्ट और ले जाने वाले व्यक्तिके रूपमें दानवीर शेठ स्व० श्रीमान् ताराचंदजी साहेब गेलडाका नाम व व्यक्तित्व नज़रमें आये बिना नहीं रहता।

मध्यम कदका इकहटा बदन, खादीकी धोती, खादीका कुरता और खादी की टोपी, पैरमें केन्वासके पादत्राण हाथमें छोटीसी लकड़ी-चमकती तेज आंखे और ७० वर्ष की अवस्थामें भी-जवानों की तेजी-ये आप के अभिन्न गुणों के सूचक थे। उनके यह सादगी अंत समय तक भी कायम रही थी।

सन १९३७ में आप राजकोट पधारे थे वहां अनेक शिक्षण संस्थाओंको देखकर आपने अपने मनमें तय किया कि मैं मद्रास जाकर शिक्षाकी ऐसीही संस्थाएँ बनाऊंगा। उनके विचारों की पुष्टि के रूपमें श्रीमान् विरदीचंदजी सा. मलेचाने ५०००० रुपया दान दिया और यहाँकी श्री एस.एस.जैन एज्युकेशन सोसायटी की स्थापना हुई। इस सोसायटी के विकास के लिये आपने अपने व्यापार से भी-निवृत्ति ले ली और-क्रमशः इसका विकास करते रहे। इस सोसायटी के तत्वावधानमें क्रमशः प्राथमरी स्कूल, बोर्डिंग होम; हाईस्कूल एवं कॉलेज भी-स्थापित हुए और आज भी सुचारु रूपसे चल रहे हैं। जब तक ये संस्थाएँ पूर्णरूपसे आत्म-निर्भर नहीं हुईं तबतक आप सोसायटी के प्रारंभ कालसे मंत्री बने रहे। इतनाही नहीं प्रत्येक संस्था के लिये आपने दान दिया था ही-किन्तु ताराचंद गेलडा जैन विद्यालयके लिये ३१००० रु.का भव्य दान दिया। इसके उपरांत भी २२००० रु. का और दान आपका होनेसे आप

सोसायटी के पेइन (संरक्षक) बने। सन १९५६ में अन्यों को भी-कार्य संचालन का अनुभव हो एतर्थ आप निवृत्त हुए, किन्तु अंत समय तक सोसायटी के प्रत्येक कार्य के लिये आप सलाह देते रहे और वह समाज का गौरव था कि आप जैसे कुशल एवं विचक्षण सलाहकार मिले।

दानके प्रवाह को शुभ मार्गमें बहाने का आप का प्रयास अत्यंत अनुकरणीय रहा। और मद्रास के जैन समाजने वैदकीय राहत क्षेत्रमें "जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी" स्थापित की-जिसके तत्त्वावधानमें कई डीस्पेंसरियां और एक प्रसूतिगृह चल रहा है। आप उसकी कार्य कारिणी के पदाधिकारी व सदस्य रहे।

इतनाही नहीं आपने अपने व्यापार क्षेत्रको नहीं भूला और सैदापेट (भूदान) में शुद्ध आयुर्वेदिक औषधालय-जिनेश्वर औषधालय खोला जिसके साथ आगे जा कर अपनी पत्नीके नामपर रामसुरजवाई गेलडा प्रसूतिगृह भी खोला। एतदर्थ आपने अपने द्वितीय पुत्र स्व. नेमीचंदजी की इच्छाके अनुसार अलग ट्रस्ट बना दिया है।

आपने अपनी जन्मभूमि कुचेरा के लिये भी कुल करने के विचार से वहां पर भी छात्रालय शुरू १९४२ में करवाया और उसके प्रारम्भकाल से आपकी ओर से २५० मासिक सहायता उसे दी जा रही है-जो अब भी चालू है।

तदुपरांत ताराचंद गेलडा ट्रस्ट भी आपने कायम किया जिससे कई उदीयमान जैन समाज के विद्यार्थियों की आशाओं को प्रोत्साहन दिया गया और दिया जा रहा है।

उनके अदम्य उत्साह और जोश के साथ उनके दृढ मनोबल का परिचय न दिया जावे तो उनका व्यक्तित्व अधूरा रहेगा। वे अपने आप आगे बढ़ने वाले थे। बहुत ही छोटी उम्र में उन्होंने ने व्यापार किया और ताराचंद गेलडा एन्ड सन्स, टी. वी. ज्वेलरीज एवं महेन्द्र स्टोर्स आदि व्यापारिक फर्म चले। सामान्य पूंजीसे लेकर वे लाखोपति बने। सामान्य शिक्षा ज्ञान के बाद भी चार भाषा की जानकारी और प्रबल व्यापारिक ज्ञान आपकी विशेषता थी।

आजीवन खादीव्रत, हाथघंटी का पीसा हुआ धान और गायका दूध-धी कठिन व्रत वे आजीवन निभाते रहे। समाज-सुधारणा भी आपने कई प्रकारसे की।

७८ वर्ष की आयुमें आपका पंडित-सरण हुआ जो आपके यशस्वी जीवन की यशकलगी के समान था । अर्थात् यशस्वी पुरुषों के शिरोमणि थे ।

आपके सुपुत्र श्रीमान् भागचंदजी सा. गेलडा भी कर्मठ कार्यकर्ता हैं । जैन एन्ड नेशनल सोसायटी के आप सदस्य एवं पदाधिकारी रह चुके हैं—वर्तमानमें आप सोसायटीके सभापति हैं । गोसेवा और पांजरापोल के कार्यके लिये आप घर २ जाकर चंदा करने में संकोच महसूस नहीं करते और विगत आठेक वर्षों से आप मद्रास पांजरापोलके मंत्री हैं और उसका बहुत ही विकास किया है । द्वितीय पुत्र श्री नेमचंदजी स्वर्गवासी हुए हैं किन्तु आप भी औषधालय निमित्त ट्रस्ट करके गये हैं । तृतीय पुत्र श्री खुशालचंदजी व्यापार-कुशल हैं और कार्य-भार सम्हाले हुए हैं ।

इस आगम प्रकाशन के लिये जब आपके पास डेप्यूटेशन पहुँचा तब इन सुपुत्रोंने उदारता से ५००१) रु. दिये हैं एतदर्थ धन्यवाद है । अन्य सज्जन भी उनका अनुकरण करें यही अभ्यर्थना है ।

सेक्रेट्री
शास्त्रोद्धार समिति

ज्ञानाधर्मकथाङ्गसूत्र तृतीय भा. की विषयानुक्रमिका

क्रमाङ्क	विषय	पेज
	चौदहवां अध्ययन	
१	तेतलीपुत्र प्रधानके चरित्रका वर्णन	१-१८
	पंद्रहवां अध्ययन	
२	नंदिफलके स्वरूपका निरूपण	११-१३१
	सोलहवां अध्ययन	
३	धर्मरुचि अनगारके चरित्र निरूपण	१३२-१८२
४	सुकुमारिका के चरित्रका वर्णन	१८३-२५१
५	द्रौपदी के चरित्रका निरूपण	२५२-२९६
६	द्रौपदी पूजा चर्चा	२९७-४२६
७	द्रौपदी के चरित्रका वर्णन	४२७-५८६
	सत्रहवां अध्ययन	
८	नावसे व्यापार करने वाले वणिजोंका वर्णन	५८६-५९०
९	नावके निर्यामक का दिङ्मूढ होनेका कथन	६९१-६९५
१०	कालिक द्वीपमें सुवर्ण आदिका वर्णन	५९५-६९६
११	कालिक द्वीपमें हिरण्य आदिसे पोतकाभरना	५९७-६००
१२	कालिक द्वीपमें रहे आकीर्णाश्वों का वर्णन	६०१-६१९
१३	आकीर्णाश्वोंके द्रष्टांतको दार्ष्टान्तिक के साथ योजना	६२०-६३७
	अठारहवां अध्ययन	
१४	सुंसमा दारिका के चरित्रका वर्णन	६३८-७०७
	उन्नीसवां अध्ययन	
१५	पुंडरीक-कंडरीक मुनिके चरित्रका वर्णन	७०८-७५२
	द्वितीय श्रुतस्कंध	
१६	द्वितीय श्रुतस्कंध का मङ्गलाचरण	७५३-७६०

१७ द्वितीय श्रुतस्कंधका उपक्रम प्रथम वर्ग-पहला अध्ययन	
१८ कालीदेवीका वर्णन दूसरा अध्ययन	७६१-८०५
१९ रात्रीदेवीका वर्णन तीसरा अध्ययन	८०६-८१०
२० रजनी दारिका के चरित्रका निरूपण दूसरा वर्ग	८११-८१४
२१ शंभानिशंभादि देवीयोंके चरित्रका वर्णन तीसरा वर्ग	८१५-८१९
२२ अम्बादि देवियोंके चरित्रका वर्णन चौथा वर्ग	८२०-८२५
२३ रूपादि देवियों के चरित्रका वर्णन पांचवा वर्ग	८२५-८२८
२४ कमलादि देवियों के चरित्रका वर्णन छठवा वर्ग	८२९-८२३
२५ उत्तरदिशाके इन्द्र महाकाल आदिकोंकी अग्रमठिपियों का वर्णन सातवां वर्ग	८३४-८३५
२६ सूरमभादि देवियों के चारित्रका वर्णन आठवां वर्ग	८३६-८३८
२७ चन्द्रमभादि देवियों के चरित्रका वर्णन नववा वर्ग	८३९-८४२
२८ पद्मादिदेवियों के चरित्रका वर्णन दशवां वर्ग	८४२-८४५
२९ कृष्णादि देवियोंके चरित्रका वर्णन	८४६-८५१
३० शास्त्र प्रशस्ति	८५२

તા. ૧૫-૭-૬૩ ના રોજ કલાસવાર

મેમ્બરોની સંખ્યા.

૨૭	આદ્ય સુરખીશ્રી, ૫૦૦૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
૩૨	સુરખીશ્રી, ૧૦૦૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
૧૩૩	સહાયક મેમ્બરો, ૫૦૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
૫૮૬	લાઇફ મેમ્બરો, ૨૫૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
૪૯	બીજા નંબરના બુના મેમ્બરો, ૧૫૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
<hr/> ૮૨૭	કુલ મેમ્બરો

રૂપિયા બસો પચાસ તથા રૂપિયા પાંચસો વાળા મેમ્બરો હેવાનું હવે બંધ છે. ફક્ત રૂ. ૧૦૦૧ થી સુરખીશ્રી માટે ૭૦ સીતેર જગ્યા ખાલી છે અને આદ્ય સુરખીશ્રી રૂ. ૫૦૦૧ થી દાખલ કરવામાં આવે છે.

મેમ્બરોની સંખ્યા પૂરતાં જ શાસ્ત્રો છપાય છે જેથી પાછળથી દાખલ થનારને સૂત્રો મળવાં સુરકેલ છે માટે જીરાસુ ભાઈઓ તથા બહેનોને અમારી વિનંતી છે કે તેઓ સુરખીશ્રી અથવા આદ્ય સુરખીશ્રીમાં પોતાનું નામ જલ્દી મોકલવી આપે.

રાજકોટ
તા. ૧૫-૭-૬૩

નમ્ર સેવક,
સાકેશ્વંદ ભાઈશ્વંદ શેઠ
મંત્રી.

आद्यमुरब्बीश्री



शेठ साहेबश्री ताराचंदजी साहेब. गेलडा
मद्रास

આદ્યમુરખીશ્રીઓ



(સ્વ.) શેઠશ્રી હરખચંદ કાલીદાસ વારિઆ
ભાણવડ.



કેઠારી હરગોવિંદ નેચંદલાલ
રાજકોટ.



શેઠશ્રી શાંતિલાલ મંગલદાસલાલ
અમદાવાદ



(સ્વ.) શેઠશ્રી ધારશીલાલ હવણલાલ
વ્યારસી.



(સ્વ.) શેઠશ્રી હગનલાલ શામગદાસ લાવસાર
અમદાવાદ.

આધુરુપ્પીશ્રીઓ



(સ્વ.) શેઠશ્રી શામળભાઈ વેલજભાઈ વીરાણી
રાજકોટ.



શેઠશ્રી રામજીભાઈ શામજીભાઈ વીરાણી
રાજકોટ.



(સ્વ.) વિનોદકુમાર વીરાણી
રાજકોટ.
(દીક્ષા લીધા પહેલાં શાસ્ત્રાભ્યાસ કરતા)



શેઠશ્રી મિશ્રીલાલજી લાલચંદજી સા. હુણિયા
તથા શેઠશ્રી નવંતરાજજી લાલચંદજી સા.

આવમુરખીશ્રીઓ



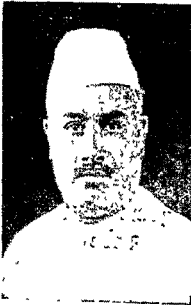
સ્વ. શ્રીયાન્ શ્રીશ્રી મુકુનથંદલ સા.
બાલિયા પાક્ષી મારવાડ.



(સ્વ.) શ્રી રંગલ્લાઈ મોહનલાલ શાહ
અમદાવાદ.



(સ્વ) શ્રી દિનશભાઈ કાંતિલાલ શાહ
અમદાવાદ.



શ્રીશ્રી કેશિંગભાઈ ચાવહાલભાઈ
અમદાવાદ.



સ્વ. શ્રીશ્રી આંતારામ ભાણુકલાલ
અમદાવાદ.

આદ્યમુરખીશ્રીઓ



શેઠ સાહેબ શ્રી કીશનચંદ્ર સાહેબ
જેહરી દિલ્હી



સ્વ. શેઠશ્રી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ
અલાહાબાદ



૧ વચ્ચે બેઠેલા મોટાભાઈ શ્રીમાન
મૂલચંદ્રજી જવાહરલાલજી અરાધ્યા
૨ બાબુમાં બેઠેલા મિશ્રીલાલજી
અરધિયા
૩ ઉભેલા સૌથી નાનાભાઈ પૂનમચંદ
અરધિયા



શ્રી વૃજલાલ દુર્લભજી પારેખ
રાજકોટ.

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीजैनाचार्य जैनधर्मदिव्याकर-पूज्यश्री-घासीलालत्रिविरत्रितया अनंगार-
धर्माभूतत्रिषिष्याख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

श्री-ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रम्

तृतीयो भागः

अथ चतुर्दशाध्ययनं प्रारभ्यते

अस्य व्याख्यायमानचतुर्दशाध्ययनस्य व्याख्यातेन त्रयोदशेनाध्ययनेन सहाय-
मभिसम्बन्धः-पूर्वस्मिन् अध्ययने सतां गुणानां गुणाभिवर्द्धकसद्गुरुरूपदेशरूप-
सामग्र्यभावे हानिरुक्ता, इह तु-तथाविधसामग्रीसद्भावे गुणसंपदुपजायते, इत्यभि-
धीयते, इत्येवं पूर्वेण सद्भाभिसंबद्धस्यास्येदमादिसूत्रम्-‘जड्गणं भते’ इत्यादि ।

मूलम्-जड्गणं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव
संपत्तेणं तेरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते, चोद्-
समस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महा-
वीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते? एवं खलु जंबू ! तेणं

चौदहवां अध्ययनं प्रारंभः-

इस चौदहवें अध्ययन का तेरहवें अध्ययन के साथ इस प्रकार का
संबन्ध है-तेरहवें अध्ययन में जो यह बात कही गई है कि आत्मा में
सम्यग्दर्शन आदि प्रकट भी हो गये; हों परन्तु यदि उनके बढाने वाली
सद्गुरु आदि की उपदेश रूप सामग्री का अभाव रहे तो उन गुणों की
हानि हो जाती है । इस अध्ययन में अब सूत्रकार यह स्पष्ट करेंगे कि
यदि जीव को तथाविध सामग्री प्राप्त होती रहती है तो गुण संपत्ति
भी बढनी रहती है:-‘जड्गणं भंते’ इत्यादि ।

श्रीदशु अध्ययन प्रारंभ-

श्रीदशु अध्ययनने तेरमा अध्ययननी साथे आ जातने संपत्ति छे के
तेरमा अध्ययनमां ने आ वाततुं स्पष्टीकरण करवामां आंशु छे के आत्मां-
सम्यग्दर्शन वगेरे प्रकट पण थछ गचां होय छतां ने सद्गुरु वगेरेनी उप-
देश रूप तेमत्तुं वर्धन करनार सामग्री होय नछि तो ते शृण्वानी हानि थछ
लाय छे. आ अध्ययनमां सूत्रकार हवे जे ज वात स्पष्ट करवा मागे छे के
एवने ने तथाविध सामग्री भणती रहे छे तो शृणु संपत्ति पण वर्धती रहे छे.
‘जड्गणं भंते’ इत्यादि-

कालेणं तेणं समएणं तेयलिपुरं नाम नगरं पमयवणे उज्जाणे कणगरहे राया । तस्स णं कणगरहस्स पउमावई देवी । तस्स णं कणगरहस्स तेयलिपुत्ते णामं अमच्चे सामदंड-दक्खे । तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे नामं मूसियारदारए होत्था अट्ठे जाव अपरिभूए । तस्स णं भद्दा नामं भारिया । तस्स णं कलायस्स मूसियारदारयस्स धूया, भद्दाए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया होत्था रूवेण य जोठ्वणेण य लाव-णणेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा । तएणं पोट्टिला दारिया अन्नया कयाइ णहाया सव्वालंकारविभूसिया चेडियाचक्क-वालसंपरिवुडा उप्पि पासायवरगया आगासतलगंसि कण-गमएणं तिंदूसएणं कीलमाणीर विहरइ ॥ सू० १ ॥

टीका—जम्बूस्वामी पृच्छति—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता महा-वीरेण यावत्संप्राप्तेन त्रयोदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः चतुर्दशस्य खलु भदन्त ! ज्ञाताध्ययनस्य श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्सम्प्राप्तेन कोऽर्थः

टीकार्थ—जम्बू स्वामी पूछते हैं कि (भंते—जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं) हे भदंत ! यदि श्रमण भगवान् महावीरने कि जिन्होंने सिद्धिगति नाम का स्थान प्राप्त कर लिया है (तेरसमस्स णाय-ज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते चोइसमस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरे णं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते) तेरहवें ज्ञाताध्ययन का पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्रज्ञप्त किया है—तो हे भदंत ! चौदहवें ज्ञाता-ध्ययन वा उन्हीं श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ निरूपित किया

टीकार्थ—जम्बू स्वामी पूछे थे कि (भंते ! जइणं समणेणं भगवया महा-वीरेणं जाव संपत्तेणं) हे भदंत ! जे श्रमणु भगवान् महावीरे—के जेअो सिद्ध गति स्थानने भेजवी शूकया छे.

(तेरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते, चोइसमस्स णं भंते ! णायज्झ-यणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते)

तेरभा ज्ञाताध्ययननेा पूर्वोक्त रूपे अर्थ निरूपित कथे छे तो हे भदंत ! ते श्रमणु भगवान् महावीरे जे आ चौदभा ज्ञाताध्ययननेा शेा अर्थ निरूपित कथे छे ?

प्रज्ञप्तः । सुधर्मा स्वामी कथयति-एवं खलु जम्बू ! । तस्मिन् काले तस्मिन् समये तैतलिपुरं नाम नगरम् आसीत् । तत्र प्रमदवनं नाम उद्यानमासीत् । तस्य नगरस्य कनकरथो नाम राजाऽसीत् । तस्य खलु कनकरथस्य राज्ञः पद्मावती नाम देवी । तस्य खलु कनकरथस्य राज्ञः तैतलिपुत्रो नाम अमात्यः ' सामदंडदक्खे ' साम-दण्डदक्षः=अत्र सामदण्डग्रहणाद् दानभेदयोरपि ग्रहणं तेन सामदानभेददण्डात्मक-चतुर्विधोपायनिपुण इत्यर्थः आसीत् ।

तत्र खलु तैतलिपुरे कलादो नाम ' मूसियारदारणं ' मूषीकारदारकः=सुवर्णकारदारकः, ' मूषी ' इति मूषापरीयः, गौरादित्वाद्ङीष यत्र सुवर्णादि है ? (एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं तेयलिपुरं नाम नगरं पमयवणे उज्जाणे कणगरहे राया, । तस्स णं कणगरहस्स पडमावई देवी) श्री सुधर्मा स्वामी अब श्री जंबू स्वामी के इस प्रश्न का उत्तर देने के अभिप्राय से कहते हैं-जंबू ! सुनो-तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार से है-उस काल और उस समय में तैतलिपुर नाम का नगर था । उस में प्रमदवन नाम का उद्यान था । उस नगर के राजा का नाम कनकरथ था । इस कनकरथ राजा की रानी का नाम पद्मावती देवी था । (तस्स णं कणगरहस्स तेयलिपुत्ते णामं अमच्चे सामदंडदक्खे । तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे नामं मुसियारदारणं होत्था अड्डे जाव अपरिभूए) उस कनकरथ राजा का अमात्य था जिस का नाम तैतलिपुत्र था । यह साम, दान, भेद और दंड इन चार प्रकार की राजनीति में विशेष पटु निपुण था । उसी तैतलिपुर में कलाद नाम का

(एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं तेयलिपुरं नाम नगरं पमयवणे उज्जाणे कणगरहे राया । तस्स णं कणगरहस्स पडमावई देवी)

श्री सुधर्मास्वामी ङवे श्री जंबू स्वामीने आ प्रश्नोना ज्वाण आपवाणी ध्विच्छ,थी डडे छे डे डे जंबू ! सांभणो तभारा प्रश्नोना ज्वाण आ प्रभाण्णे छे डे ते काणे अने ते समये तैतलिपुर नामे नगर હતું. તેમાં પ્રમદવન નામે ઉદ્યાન હતું. તે નગરના રાજાનું નામ કનકરથ હતું. તે કનકરથ રાજાની રાણીનું નામ પદ્માવતી હતું.

(तस्स णं कणगरहस्स तेयलिपुत्ते णामं अमच्चे सामदंडदक्खे । तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे नामं मूसियारदारणं होत्था अड्डे जाव अपरिभूए)

ते कनकरथ राजाने अेक अमात्य (मंत्री) હતો જેનું નામ તેતલિપુત્ર હતું. તે સામ, દાન, ભેદ અને દંડ એ ચારે પ્રકારની નીતિમાં સવિશેષ નિપુણ-કુશળ હતો. તે તેતલિપુરમાં કલાદ નામે મૂષીકાર દારક (સોનીનો પુત્ર)

गाल्यते सा, तां करोति=साधनसामग्रीत्वेन निष्पादयति, इतिव्युत्पत्त्या मूषीकार-
इति सुवर्णकारे योगारूढोऽयं शब्दः । ' होत्था ' आसीत् । यो हि आढ्यो यावद-
परिभूतः । तस्मै खलु कलादस्य मूषिकारदारकस्य दुहिता भद्राया आत्मजा
पोट्टिला नाम दारिका आसीत्, याहि रूपेण च=आकृत्या, यौवनेन च=तारुण्येन
च लोचण्येन च=शरीरोत्कृष्टकान्ति विशेषेण उत्कृष्टा अतएव उत्कृष्टशरीराऽसीत् ।
ततः खलु पोट्टिला दारिका अन्यदा कदाचित् स्नाता सर्वालङ्कारविभूषिता

मूषीकार दारक-सुवर्णकार का पुत्र-रहता था । मूषी शब्द का अर्थ
साँचा है । इस में सुवर्णादि द्रव्य पिघलाये जाते हैं । इस साँचे को जो
बनाता है उस का नाम मूषीकार है । इस व्युत्पत्ति के अनुसार यह
शब्द सुवर्णकार (सोनार) में योगारूढ हुआ है । यह मूषीकार दारक
आढ्य यावत् अपरिभूत था । (तस्मै णं भद्रा नामं भारिया, तस्मै णं
कलायस्त मूसियारदारयस्त धूया, भद्राए अत्तया पोट्टिला नामं दारि-
या होत्था, रूवेण य जोव्वणेण य लावण्येण य उक्किट्टा उक्किट्ट
सरीरा) इस मूषिकार दारक कलाद-सौनी की अत्यन्त प्रिय पोट्टिला
नाम की लड़की थी जो इस की पत्नी भद्रा की कुक्षि से उत्पन्न हुई
थी । यह आकृति से, यौवन से एवं लावण्य से-शारीरिक उत्कृष्ट कान्ति
से-बहुत ही अधिक मनोहर थी-अतः इस का शरीर बहुत अधिक
उत्तम था । (तएणं पोट्टिला दारिया अन्नया कयाइं ण्हाया सव्वलंकार-

रहेती इतो ' मूषी ' शब्दने अर्थ साँचे (भीष्णु) छे. तेमां सेतुं वगेरे
द्रव्ये आगाणवाभां आवे छे. आ साँचाने अनावनारतुं नाम मूषीकार छे. आ
व्युत्पत्तिने लधने आ शब्द सुवर्णकार (सोनी) माटे आगाइइ अर्थ गये छे.
ते मूषिकारदारक आढ्य (धनवान) यावत् अपरिभूत इतो.

(तस्मै णं भद्रा नामं भारिया तस्मै णं कलायस्त मूसियारदारयस्त धूया
भद्राए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया होत्था, रूवेण य जोव्वणेण य लावण्येणं
य उक्किट्टा उक्किट्टसरीरा)

ते मूषिकारदारक कलाद सोनीनी भूषण व वहाली पोट्टिला नामे पुत्री इती
ये तेनी पत्नी भद्राना गर्भेथी उत्पन्न थथ इती, ते आकृतिथी, यौवनथी,
लावण्यथी-शरीरनी उत्कृष्टकान्तिथी अहुं व मनोहर इती, अथी तेतुं शरीर
भूषण व उत्तम इतुं.

(तएणं पोट्टिलादारिया अन्नया कयाइं ण्हाया सव्वलंकारविभूषिया चेडिया-
चक्कंवालंसंपरिखुडा उप्पिं पासायवरगया आगासतलगंसि कणमएणं तिंदुस-
एणं कीलमाणी २ विहरइं)

‘चेडियाचक्रवालसंपरिवुडा’ वेटिकाचक्रवालसंपरिवृता=वेटिकाः=दास्यस्तांषां
 यच्चक्रवालं मण्डलं तेन संपरिवृता=सहिता दासीसमूहपरिवेष्टितेत्यर्थः, उपरिप्रासा-
 दंवरगता प्रासादोपरिस्थिता-आकाशतले=अनावृतप्रदेशे ‘छत्त’ इति प्रसिद्धे
 कनकमयेन=स्वर्णनिर्मितेन ‘तिंदूसएणं’ तिन्दूसकेन=कन्दुकेन क्रीडन्ती २
 विहरति ॥ सू० १ ॥

मूलम्—इमं च णं तेयलिपुत्ते अमञ्चे पहाए आसखंधवरगए
 महया भडचडगरवंदपरिक्खित्ते आसवाहणियाए णिज्जायमाणे
 कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीइव-
 यइ। तएणं से तेयलिपुत्ते मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं
 वीइवयमाणे २ पोट्टिलं दारियं उप्पिं पासायवरगयं आगासतलगंसि
 कणगतिंदूसएणं कीलमाणीं पासइ, पासित्ता पोट्टिलाए दारि-
 याए रूवे य जाव अज्झोववन्ने कोडुंबियपुरिसे सहावेइ,
 सहावित्ता। एवं वयासी - एसा णं देवाणुप्पिया ! कस्स
 दारिया ? किं नामधेज्जा ?। तएणं कोडुंबियपुरिसा तेयलिपुत्तं
 एवं वयासी-एसा णं सामी ! कलायस्स मूसियारदारगस्स
 धूया, भहाए अत्तयापोट्टिला नामं दारिया रूवेण य जाव उक्किट्ट-
 संरीरा। तएणं से तेयलिपुत्ते आसवाहणियाओ पडिनि यत्ते समाणे

विभूसिया चेडियाचक्रवालसंपरिवुडा उप्पिं पासायवरगया आगास
 तलगंसि कणगमएणं तिंदूसएणं कीलमाणी २ विहरइ) एक दिन
 की बात है कि यह स्नान कर के तथा समस्त आभरणों से विभूषित
 हो करके अपनी दासियोंके साथ प्रासाद के ऊपर छत पर सुवर्ण निर्मि-
 त कन्दुक (गेंद) से क्रीडा कर रही थी । सूत्र ॥ १ ॥

श्लोक द्विवसे ते स्नानं कथां ग्राह्यं योताना यथा अंगोने धरेषुअ्याथी
 शशुगारीने योतानी दासीअ्यानी साथे भडेइनी उपरनी अगाशीमां सोनाथी
 भनापवाभां आवेदी दडीथी रभी रही डेली ॥ सूत्र “ १ ” ॥

अर्बिभतरट्टाणिजे पुरिसे सदावेइ, सदावित्ता, एवं वयासी-
गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! कलादस्स मूसियारदारयस्स
धूर्यं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह ।
तएणं ते अब्भंतरट्टाणिज्जा पुरिसा तेतलिणा एवं बुत्ता समाणा
हट्टतुट्टा करयलपरिग्गाहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु
तहत्ति किच्चा जेणेव कलायस्स मूसियारस्स गिहे तेणेव उवा-
गया । तएणं से कलाए मूसियारदारए ते पुरिसे एज्जमाणे
पासइ, पासित्ता हट्टतुट्टे आसणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता सत्त-
ट्टपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता, आसणेणं उवणिमंतेइ उव-
णिमंतित्ता, आसत्थे वीसत्थे सुहासणवरगए एवं वयासी-
संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयणं ? तएणं ते
अर्बिभतरट्टाणिज्जा पुरिसा कलायं मूसियारदारयं एवं वयासी-
अम्हे णं देवाणुप्पिया ! तव धूर्यं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं
तेयलिपुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो, तं जइ णं जाणासि देवाणु-
प्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो संजोगो ता
दिज्जउणं पोट्टिला दारियातेयलिपुत्तस्स, तो भण देवाणुप्पिय !
किंदलामो सुक्कं ? तएणं कलाए मूसियारदारए ते अर्बिभत-
रट्टाणिजे पुरिसे एवं वयासी-एस चेव णं देवाणुप्पिया ! मम
सुक्के, जन्नं तेयलिपुत्ते मम दारिया निमित्तेणं अणुग्गहं करेइ ।
ते अर्बिभतरट्टाणिजे पुरिसे विपुलेणं असणपाणखाइमसाइ-
मेणं पुप्फवत्थ जाव मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्का-
रित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइं । तएणं ते कलायस्स मूसिया-

रदारयस्स गिहाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमिच्चा, जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिच्चा, तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स एयमट्ठं निवेदेति ॥ सू० २ ॥

टीका—‘इमं च णं’ इत्यादि । अस्मिंश्च खलु समये तेतलिपुत्रोऽमात्यः स्नातः ‘आसखंधवरगए’=अश्वस्कन्धवरगतः=अश्वारूढः ‘महया भटचडगरवंदपरिक्खित्ते’ महाभटचटकरवृन्दपरिक्षिप्तः महान्तो भटचटकराः=भटसमूहाः तेषां वृन्दैः=समूहैः परिक्षिप्तः=परिवृतः सन् ‘आसवाहणियाए’ अश्ववाहनिकायै=अश्ववाहनेन क्रीडनार्थं ‘णिज्जायमाणे’=निर्यान्=निर्गच्छन् कलादस्य मूषीकारदारकस्य गृहस्य अदूरसामन्तेन पार्श्वभागेन ‘वीइवयइ’=व्यतिव्रजति=गच्छति । ततः खलु स तेतलिपुत्रो मूषीकारदारकस्य गृहस्य अदूरसामन्तेन व्यतिव्रजन् पोड्डिलां दारिकाम्

‘इमं च णं तेयलि पुत्ते अमच्चे’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(इमं च णं) इसी समय (तेयलिपुत्ते अमच्चे पहाए आसखंधवरगए महया भटचडगरवंदपरिक्खित्ते आसवाहणियाए णिज्जायमाणे कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेण वीइवयइ) तेतलि पुत्र अमात्य स्नान से निबट कर घोड़े पर चढा हुआ बड़े २ भट समूहों के वृन्दों से घिरा होकर अश्वक्रीडा के लिये मूषीकारदारक कलादके (सोनार) मकानके पास से निकला । (तएणं से तेयलिपुत्ते मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेण वीइवयमाणे २ पोड्डिलं दारियं उप्पि पासायवरगयं आगासतलगंसि कणगतिदूसएणं कीलमाणी पासइ) मूषीकारदारक कलाद के मकान के पास से होकर जाते हुए

‘इमं च णं तेयलिपु अमच्चे’ इत्यादि—

टीकार्थ—(इमं च णं) ते वधते

(तेयलिपुत्ते अमच्चे पहाए आसखंधवरगए महया भटचडगरवंदपरिक्खित्ते आसवाहणियाए णिज्जायमाणे कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेण वीइवयइ)

तेतलिपुत्र अमात्य स्थानथी परवारीने घोडा ७५२ सवार तथा अने त्यारपछी विशाण सटो (घोडाओ) ना समूहोथी वीटणाधने अश्वक्रीडा भाटे मूषीकारदारक कलादना धरनी पासे थधने नीक्या.

(तएणं से तेयलिपुत्ते मूसियादारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेण वीइवयमाणे २ पोड्डिलं दारियं उप्पि पासायवरगयं आगासतलगंसि कणगतिदूसएणं कीलमाणी पासइ)

ઉપર પ્રાસાદવરગતામાકાશતલે કનકતિન્દુસકેન ક્રીડન્તીં પश्यति, દૃષ્ટ્વા, પોટ્ટિ-
લાયા દારિકાયા રૂપે ચ યૌવને ચલાવ્યે ચ 'જાવ અંજ્જોવવન્ને' યાવત્-પૂચ્છિતઃ,
ગૃહઃ, ગ્રથિતઃ, અધ્યુપપન્નઃ = અત્યન્તસક્તાઈત્યર્થઃ કૌટુમ્બિકપુરુષાન્ શબ્દયતિ,
શબ્દયિલા, એવમવદત્-એષા સ્વલુ દેવાનુપ્રિયાઃ ! કસ્ય દારિકા કિં નામધેયા ? ।
તતઃ સ્વલુ કૌટુમ્બિકપુરુષાઃ તેતલિપુત્રમ્ એવમવદન્-એષા સ્વલુ સ્વામિન્ ! કલાદસ્ય
મૂષ્ત્રીકારદારકસ્ય દુહિતા, મદ્રાયા આત્મજા પોટ્ટિલા નામ દારિકા રૂપેણ ચ
ઉસં તેતલિપુત્ર અમૌત્ય ને પ્રાસાદં કે ઉપર છત પર સુવર્ણ કી કન્દુક
(ગેંદ) સે ક્રીડા કરતી હુંદ્ર ઉસં પોટ્ટિલા દારિકાં કો દેલા । (પાસિત્તાં
પોટ્ટિલાએ દારિયાએ રૂવે ય જાવ અંજ્જોવવન્ને કોહુંચિયપુરિસે સદાવેઈ
સદાવિત્તાં એવં વયાસી-એસા ણં દેવાણુપ્પિયા કસ્સ દારિયા ? કિં નામ
ધેજ્જા ?) દેલ કર વેહ ઉસ પોટ્ટિલા દારિકાં કે રૂપે, યૌવનં એવં લાવણ્ય મેં
મૂચ્છિત, ગૃહ, ગ્રથિત ચનકર ઉસ પર અત્યન્ત આસક્તિ મે યુક્ત હો
ગયા । ઉસી સમય ઉસ ને કૌટુમ્બિકપુરુષોં કો બુલાયા-બુલાકર ઉન
સે હસ પ્રકાર કહા-હે દેવાનુપ્રિયો ! કહો યહ કન્યા કિસકી હૈ ઓર
હસકા નામ કયા હૈ ? (તણેણં કોહુંચિયપુરિસા તેયલિપુત્તં એવં
વયાસી-એસા ણં સામી ! કલાયસ્સ મૂસિયારદારગસ્સ ધૂયા મદ્દાએ
અચયા પોટ્ટિલા નામં દારિયા રૂવેણ ય જાવ ઉક્કિદ્ધસરીરા) ઉન કૌટુ-
મ્બિક પુરુષોં ને તેતલી પુત્ર સે એસા કહા-હે સ્વામિન્ ! યહ મૂષ્ત્રીકાર
દારક કલાદ કી પુત્રી હૈ જો મદ્રા માર્યાં કી કુક્ષિ સે ઉત્પન્ન હુઈ હૈ ।

મૂષ્ત્રીકારદારક કલાદના ધરની પાસે થઈને જતા તે તેતલિપુત્ર અમાત્યે
મહેલના ઉપરની અગાથી ઉપર સોનાની દરીથી રમતી તે પોટ્ટિલા દારિકાને બેઠઃ
(પાસિત્તા પોટ્ટિલાએ દારિયાએ રૂવે ય જાવ અંજ્જોવવન્ને કોહુંચિયપુરિસે સદા-
વેઈ સદાવિત્તા એવં વયાસી એસા ણં દેવાણુપ્પિયા કસ્સ દારિયા ? કિં નામધેજ્જા ?)
તે પોટ્ટિલા દારિકાને બેઠને તે તેના રૂપ, યૌવન અને લાવણ્યમાં મૂચ્છિત
ગૃહ, ગ્રથિત ધનને અત્યંત આસક્ત થઈ ગયો. તરત જ તેણે કૌટુમ્બિક
પુરુષોને બોલાવ્યા અને બોલાવીને તેણે તેઓને આ પ્રમાણે કહ્યું કે હે દેવા
પુત્રિયો ! બોલો, આ કન્યા કેની છે અને એનું શું નામ છે ?

(તણેણં કોહુંચિયપુરિસા તેયલિપુત્તં એવં વયાસી-એસા ણં સામી । કલાયસ્સ
મૂસિયારદારગસ્સ ધૂયા, મદ્દાએ અચયા પોટ્ટિલા નામં દારિયા રૂવેણ ય જાવ
ઉક્કિદ્ધ સરીરા)

તે કૌટુમ્બિક પુરુષોએ તેતલિપુત્રને આ પ્રમાણે કહ્યું કે હે સ્વામિન્ !
તે મૂષ્ત્રીકારદારક કલાદની પુત્રી છે અને ભદ્રાભાર્યાના ગર્ભથી તેનો જન્મ થયો

यावत्-उत्कृष्टशरीरा अस्ति । ततः खलु स तैत्तिलिपुत्र अश्ववाहनिकायाः प्रति-
निवृत्तः=प्रत्यागतः सन् ' अर्धभतरठाणिज्जे ' अभ्यन्तरस्थानीयान्=अन्तरङ्गमेष्य-
पुरुषा शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्-गच्छत खलु यूयं देवानुप्रियाः! कलादस्य
मूषीकारदारकस्य दुहितरं भद्राया आत्मजां पोट्टिलां दारिकां मम भार्यात्वेन
वृणुत । हे देवानुप्रियाः यूयं तथा प्रयतधाम्, यथा स मूषीकारदारकः स्वदुहितरं
सम भार्यात्वेन मह्यं दद्यादिति नावः । ततः खलु ते आभ्यन्तरस्थानीयाः पुरुषास्ते-
तलिना एवमुक्ताः सन्तो हृष्ट तुष्टाः करतलपरिग्रहीतं शिर आवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं
कृत्वा, ' तद्वत्ति ' तथैति तथा करिष्यामीति ' किञ्चा ' कृत्वा=स्वीकृत्य यत्रैव कला-

इस का नाम पोट्टिला है । रूप आदि से यह बहुत ही उत्कृष्ट शरीर
वाली है । (तएणं से तैयलिपुत्ते आसवाहणिएओ पडिनियत्ते समाणे
अर्धभतरठाणिज्जे पुरिसे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी, गच्छहणं
तुब्भे देवाणुप्पिया ! कलादस्स मूसियारदारयस्स धूयं भदाए अत्तयं
पोट्टिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह) इस के बाद वह तैत्तिलि पुत्र
अमात्य, अश्ववाहनिका से पीछे जब लौटा तो लौटते ही उसने अपने
अन्तरंग प्रेष्य पुरुषों को बुलाया-और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा-
हे देवानुप्रियों ? तुम लोग जाओ-और मूषीकार दारक कलाद की पुत्री
जिसका नाम पोट्टिला है, जो भद्रा की कुक्षि से उत्पन्न हुई है उसे मेरी
भार्यारूप से बरआओ । तात्पर्य इस का यह है कि तुमलोग वहां
जाकर ऐसा प्रयत्न करो कि जिस से वह मूषीकारदारक कलाद अपनी
पुत्री को पत्नी के रूप में मुझे दे दें । (तएणं ते अर्धभतरठाणिज्जा
पुरिसा तैतलिणा एवं बुत्ता समाणा हट्ट तुट्ठा करयल परिग्हियं सिरसा

छे. तेतुं नाम पोट्टिला छे ते इप वगेरेशी भूम ७ उत्कृष्ट शरीरवाणी छे.

(तएणं से तैयलिपुत्ते आसवाहणियाओ पडिनियत्ते समाणे अर्धभतरठाणिज्जे
पुरिसे सदावेह सदावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! कलादस्स
मूसियारदारयस्स धूयं भदाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह)

त्यारपथी ते तैतलिपुत्र अमात्य अश्ववाहनिकाथी वेर पाछे आये।
त्यारे आवतांनी साथे ७ तेहे पौताना-अन्तर ग प्रेष्य पुत्रोने गोलाव्या अने
गोलावीने तेभने आ प्रभाहे कहुं के हे देवानुप्रियो ! तमे अओ अने मूषी-
कारदारक कलादनी पुत्री छे-के नेतुं नाम पोट्टिला छे, अने वे भद्राना गर्भथी
उत्पन्न थर छे-तेने लार्या उपमां भने आपो. तात्पर्य आ प्रभाहे छे के तमे
लोकें त्यां ७रने अेवी केशिश करे के अेथी ते मूषीकारदारक कलाद पौतानी
पुत्रीने पत्नी इपमां भने आपी दे.

दस्य मूषीकारदारकस्य गृहं तत्रैव उपागताः । ततः खलु स कलादो मूषीकारदारकः
तान् अभ्यन्तरस्थानीयान् पुरुषानेजमानान् पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टोऽतिशयप्रमुदितः
आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय तान् सम्मानयितुं तेषामभिमुखं सप्ताष्टपदानि

वत्सं मत्थए अंजलिं कद्दु तहत्ति किञ्चा जेणेव कलायस्स मूसियारस्स
गिहे तेणेव उवागया) इस प्रकार तेतलि पुत्र के द्वारा कहे गये वे
अन्तरंग प्रेम्ण पुरुष हृष्ट तुष्ट होते हुए वहां से निकल कर मूषीकार
कलाद का जहां घर था वहां आये । आते समय उन्होंने तेतलि पुत्र
को दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे मस्तक पर रख कर नम-
स्कार किया-और हम आपने जैसा कहा है वैसा ही करेंगे इस बात
को उसे आश्वासन देकर स्वीकार किया था । (तएणं से कलाए मूसि-
यारदारए ते पुरिसे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हद्द तुट्ठे आसणाओ
अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता आसणे-
णं उवणिमंतेइ, उवणिमंतित्ता आसत्थे सुहासणवरगए एवं वयासी संदिसतु
णं देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयणं-तएणं ते अ-
भिन्तरठाणिज्जा पुरिसा कलायं मूसियदारयं एवं वयासी) जब उस
मूषीकार दारककलादने उन पुरुषों को आपने घर की ओर आते हुए
देखा-तो वह देखकर हृष्ट तुष्ट हो अपने आसन पर से उठ बैठा-उठ

(तएणं ते अब्भंतरठाणिज्जा पुरिसा तेतलिणा एवं बुत्ता समाणा हद्दुत्ठ्ठा
करयलपरिगमहिंयं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कद्दु तहत्ति किञ्चा जेणेव कलायस्स
मूसियारस्स गिहे तेणेव उवागया)

आ रीते तेतलिपुत्रे जेओने आदेश आये छे जेवा ते अंतरंग प्रेम्ण
पुरुष हृष्ट तुष्ट थतां त्याथी रवाना थधने मूषीकार कलादतुं न्यां घर छतुं त्यां
पक्षेओया. तेतलिपुत्रनी पासथी पाछां इरतां तेओओ भंने हाथेनी अंजलि
भनावीने अने तेने मस्तकें मूडीने नमस्कार कथां अने अमे आये जेम हुकम कथीं
छे तेने यथावत पालन करीशुं, आ रीते तेभनी आज्ञा तेओओ स्वीकारी.

(तएणं से कलाए मूसियारदारए ते पुरिसे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता
हद्दुत्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता
आसणेणं उवणिमंतेइ, उवणिमंतित्ता आसत्थे सुहासणवरगए एवं वयासी संदिसतु
णं देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयणं-तएणं ते अभिन्तरठाणिज्जा पुरिसा
कलायं मूसियदारयं एवं वयासी)

मूषीकारदारक कलादे न्यारे ते पुरुषेने पोताना घर तरइ आवता जेया
त्यारे ते जेधने हृष्ट तुष्ट थधने पोताना आसन उपरथी जेवा थर्ध गये अने

गत्वा तान्ने कृत्वा स्वयम् 'अणुगच्छइ' अनुगच्छति, तेषां पृष्ठवर्तीभूत्वा गच्छति, अनुगम्य, आसनेन उपनिमन्त्रयति=आसनदानेन तान् पुरुषानुपवेशयति, उपनिमन्त्र्य, आस्वस्थः, विस्वस्थः, एतेषाममात्यपुरुषाणां सत्कारो यथावज्जात इति हेतोः स्वस्थमनाः भूत्वा सुखासनचरगतः=स्वयमपि स्वकीयासने सुखोपविष्टः सन् एवमवदत्-संदिशन्तु खलु हे देवानुप्रियाः! भवतां किमागमनप्रयोजनम् ? ततः खलु ते आभ्यन्तरस्थानीयाः पुरुषाः कलादं मूषीकारदारकम् एवमवदन्-वयं खलु देवानुप्रिय ! तव दुहितरं भद्राया आत्मजां पोट्टिलां दारिकां तैतलिपुत्रस्य भार्यात्वेन वृणुमः, तद् यदि खलु त्वं 'जाणसि' जानासि=मन्यसे, हे देवानुप्रिय ! यद् अस्माकमेतच्चत्कन्याविषयकं याचनं 'जुत्तं वा' युक्तं वा=उचितम् 'पत्तं वा' प्राप्तं वा मनसिसंलग्नं वा 'सलाहणिज्जं वा' श्लाघनीयं वा=प्रशंसनीयं वा अपि च 'सरिसो वा संजोगो' सदृशो वा संयोगः तैतलिपुत्रेण सह तव कन्याया वैवाहिकः

कर फिर वह सात आठ डग प्रमाण आगे उन का सत्कार करने के लिये गया। वहां से उन्हें आगेकर के वह स्वयं उनके पीछे २ आया। आकर के फिर उसने उन्हें आसनों पर बैठाया-बैठा कर आश्वस्त विश्वस्त होकर बाद में वह स्वयं दूसरे अपने आसन पर शान्ति पूर्वक बैठ गया। बैठ जाने के बाद फिर उसने इस प्रकार कहा- हे देवानुप्रियो ! कहिये-किस कारण से आप यहां पधारे हैं-आपलोगों के आने का क्या प्रयोजन है-इस प्रकार उसके पूछने पर उन अभ्यन्तर स्थानीय पुरुषों ने उस खुवर्णकार के पुत्र कलाद से इस प्रकार कहा (अम्हे ण देवाणुप्पिया ! तव धूर्यं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं, तैयलिपुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो, तं जइणं जाणसि देवाणुप्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो ता दिज्ज उणं पोट्टिला दारिया तैयलि-

ॐलो थधने तेमना स्वागत माटे सात आठ पगदां साये गये। त्यांथी तेणे आपनाराओने आगण करीने ओटले के पोते तेओनी पाछण पाछण आदते। त्यां आंथे अने आवीने तेणे तेओने आसने। उपर मेसाउया। त्यारपछी आश्वस्त विश्वस्त थधने ते पोते जीण आसन उपर शान्तिपूर्वक भेसी गये। भेसीने तेणे तेओओे विनय पूर्वक कहुं के डे हेवानुप्रियो ! ओलो, तमे शा कारुथी अही आंथा छे ? तमे शा प्रयोजनथी आत्था छे ? आ रीते कलाद (सुवर्णकार) नी वात सांखजीने ते आब्यंतर स्थानीय पुत्रोओे तेने आ प्रभाणे कहुं के (अम्हेण देवाणुप्पिया ! तव धूर्यं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं तैयलि पुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो, तं जइणं जाणसि देवाणुप्पिय ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं

सम्बन्धो योग्यो भवतीति, यदि जानासि तदा दीयतां खलु पोष्टिला दारिका तैत-
लिपुत्राय 'तो' तर्हि भण=ब्रूहि, हे देवानुप्रिय ! किं दद्याः शुल्कम् सम्मानपुरस्कारं
भवते किं समर्थयामः । ततः खलु कलादो मूपीकदारकः अभ्यन्तरस्थानीयान्
पुरुषान् एवमवदत्-एतदेव खलु देवानुप्रियाः ! मम शुल्कम्, यत्खलु तैतलिपुत्रो
मम दारिकानिमित्तेन अनुग्रहं=दयां करोति । इत्युक्त्वाऽसौ तान् अभ्यन्तरस्थानी-

पुत्तस्य तो भण देवाणुप्पिया ! किं दलामो सुक्कं ? तएणं कलाए मूसि-
यार दारए ते अर्द्धिभतरठाणिज्जे पुरिसं एवं वयासी) हे देवानुप्रिय हम
लोग तुम्हारी पुत्री पोष्टिला दारिका को कि जो भद्राकी कुक्षि से उत्पन्न
हुई है तैतली पुत्र अमात्य की वह भार्या बने इस रूप से चरण करने
के लिये आये हुए हैं-तो यदि तुम हे देवानुप्रिय ! हमारी इस याचना
को उचित, प्राप्त, और श्लाघनीय-प्रशंसनीय मानते हो और यह सम-
झते हो कि यह तैतलिपुत्र के साथ तुम्हारी कन्या का वैवाहिक संबंध
योग्य है-तो पोष्टिला दारिका तैतलि पुत्र के लिये प्रदान कर दो-और
साथ में यह भी कह दो कि हम आपके लिये इस निमित्त क्यो सम्मान
पुरस्कार दें। इस प्रकार उन सब की ऐसी बातें सुनकर उस सुवर्ण
कार पुत्र कलादने उन आये हुए अभ्यन्तर स्थानीय पुरुषों से इस प्रकार
कहा-(एस चैव णं देवाणुप्पिया ! मम सुक्के जन्नं तेयलिपुत्ते-
मम दारिया निमित्तेणं अणुगगहं करेइ, ते अर्द्धिभतरठाणिज्जे पुरिसे

वा सरिसो वा संजोयो ता दिज्जउणं पोष्टिला दारिया तेयलिपुत्तस्य तो भण
देवाणुप्पिया ! किंदलामो सुक्कं तएणं कलाए मूसियारदारए ते अर्द्धिभतरठाणिज्जे
पुरिसं एवं वयासी)

हे देवानुप्रिय ! तमारी लदा लार्याता गर्लथी जन्म पामेदी तमारी
पोष्टिला दारिका अमात्य तैतलीपुत्रनी लार्या थाय आ जतनी मांगणी करवा
अमे तमारी पासै आव्या छीये. हे देवानुप्रिय ! तमे तैतलिपुत्रनी मांगणी
लखित, श्लाघनीय अने प्रशंसनीय मानता होय तेमज्जेम पणु तमने थतुं
होय के अमात्य तैतलिपुत्रनी साथेने आ लअ संबंध योग्य छे तो तमे
अमात्य तैतलिपुत्रने पोष्टिलादारिका आपी हो अने जेनी साथे तमे अमने
जेम पणु जणुणी हो के तमने अमे जेना पदल सम्मान पुरस्कारना इपमां
थुं आपीये ? आ रीते तेजे पधानी वात सांलणीने ते सुवर्णकारना पुत्र
कलादे आभ्यन्तर स्थानीय पुरुषेने आ प्रभाषे कहुं के—

(एस चैव णं देवाणुप्पिया ! मम सुक्के जन्नं तेयलिपुत्ते मम दारिया

यान् पुरुषान् त्रिपुलेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन पुष्पस्त्रगन्धमात्यालंकारेण च सत्करोति, सम्मानयति, सत्कृत्य सम्मान्य, प्रतिविसर्जयति । तत- खलु ते=आभ्यन्तर स्थानीयाः पुरुषाः कलादस्य मूर्षीकारदारकस्य गृहात् प्रतिनिष्क्राम्यन्ति, प्रतिष्क्राम्य यत्रैव तैतलिपुत्रोऽमात्यस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तैतलिपुत्राय अमात्याय ' एयमहं ' एतमर्थम्=विवाहस्य स्वीकृतिरूपमर्थं निवेदयन्ति ॥ सू०२ ॥

त्रिपुलेण असणपाणखाद्यमसाइमेण पुष्पवत्थ जाव मल्लालंकारेण सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता पडि विसज्जेइ । तएण ते कलायस्स मूसियारदारयस्स गिहाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स एयमहं निवेदंति) हे देवानुप्रियो ! मेरा सन्मान पुरस्कार यही है कि जो तैतलि पुत्र दारिका के निमित्त से मेरे ऊपर ऐसी दया कर रहे हैं—अर्थात् मेरी पुत्री को जो वे अपनी पत्नी बनाने की चाहना कर रहे हैं यही सब से बड़ा उन की ओर से मेरे लिये सन्मान पुरस्कार प्रदान किया जा रहा है । इस प्रकार कह कर उस कलाद ने उन अभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों का त्रिपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से एवं पुष्प, वस्त्र, गंध माला एवं अलंकारों से खूब सत्कार किया-सन्मान किया । सत्कार एवं सन्मान करने के बाद फिर उसने उन्हें विसर्जित कर दिया । वहाँ से विसर्जित होकर वे अभ्यन्तर स्थानीय

निमित्तेण अणुमहं करेइ, ते अर्द्धितरट्ठाणिज्जे पुरिसे विउलेण असणपाणखाद्यमसाइमेण पुष्पवत्थ जाव मल्लालंकारेण सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ । तएण ते कलायस्स मूसियारदारयस्स गिहाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स एयमहं निवेदंति)

हे देवानुप्रियो ! अमात्य तैतलिपुत्र भारी दारिकाने स्वीकारवा इय जे मारा ऊपर दया अतावी रह्या छे ते जे अरिअर मारा भाटे सन्मान अने पुरस्कारनी जे वस्तु छे. अट्ठे के तेअो भारी पुत्रीने पैतानी पत्नी पत्नी तरीके धर्या रह्या छे, जेअ तेमना तरइथी मारा भाटे सन्मान अने पुरस्कार इय छे. आ रीते कहीने ते कलाहे आर्यन्तर स्थानीय पुइधेने विपुल अशन, पान, भाद्य, स्वाद्यथी अने पुष्प, वस्त्र, गंध, भाणा अने अलंकारथी थूअ जे सरस रीते सत्कार कथी अने तेमनुं सन्मान कथुं. सत्कार अने सन्मान कथी पछी तेअे तेमने विदाय आथी. तयारपछी ते आर्यन्तर स्थानीय पुइधे ते सुवर्ण-

मूलम्—तएणं कलाए मूसियारदारए अन्नया कयाइं सोहणंसि तिहिनक्खत्तमुहुत्तंसि पोट्टिलं दारयं षहायं सव्वालंकारभूसियं सीयं दुरूहइ, दुरूहिता मित्तणाइसंपीरवुडे सातो गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सव्विड्डीए तेयलीपुरं मज्झं मज्झेणं जेणेव तेयलिससगिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ । तएणं तेयलिपुत्तं पोट्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीयं पासइ, पासित्ता पोट्टिलाए सद्धिं पट्ठयं दुरूहइ, दुरूहिता सियपीएहिं कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्गिहोमं करावेइ, करावित्ता पाणिग्गहणं करेइ, करित्ता पोट्टिलाए भारियाए मित्तणाइ जाव परिजणं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पुप्फ जाव पडिविसज्जेइ । तएणं से तेयलिपुत्ते पोट्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अविरत्ते उरालाइं जाव विहरेइ ॥सू०३॥

टीका—‘तएणं’ इत्यादि, ततः खलु कलादो भूषीकारदारकः अन्यदा कदाचित् ‘सोहणंसि’ शोभने=शुभावहे विवाहयोग्ये ‘ तिहिनक्खत्तमुहुत्तंसि ’ तिथिनक्षत्रमुहूर्त्तं

पुरुष उस सुवर्णकार पुत्र कलाद के घर से निकले और निकल कर जहाँ तेतलि पुत्र अमात्य था वहाँ आये—वहाँ आकर उन्होंने तेतलि पुत्र अमात्य को विवाह स्वीकृति रूप अर्थ की खबर दी । सूत्र ॥ २ ॥

“ तएणं कलाए मूसियारदारए ” इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इस के बाद (मूसियारदारए) भूषीकार दारक ने (अन्नया कयाइं) किसी एक समय (सोहणंसि तिहिनक्खत्तमुहुत्तंसि

कार पुत्र कलादना धरथी नीकल्या अने त्यांथी न्यां अमात्य तेतविपुत्र डतो त्यां पडोन्था. अमात्य तेतविपुत्रनी पासे जधने तेओओ रक्तसंभध स्वीका- र्था इप भयर आपी. ॥ सूत्र “ २ ” ॥

‘ तएणं कलाए मूसियारदारए ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपञ्जी (मूसियारदारए) भूषीकार दारक (अन्नया कयाइं) .के.के. ओक पणते

पोट्टिलां दारिकां स्नतां सर्वाङ्गारभूषितां 'सोयं' शिविकां दूरोहयति=आरोहयति, दूरोह=आरोह 'मित्तणाइ संपरिवुडे' मित्रज्ञाति संपरिवृतः=मित्रज्ञाति स्वजनसंबन्धिपरिवेष्टितः, सर्वान् वैवाहिकान् संसारान्=विवाहसंस्कारोचित सामग्रीन् गृहीत्वा स्वकाद् गृह्णात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य 'सन्विद्धीए' सर्वद्वया=सर्वप्रकारिकया ऋद्धया सह 'तेयलिपुरं' तैतलीपुरस्य मध्यमध्येन निर्गच्छन् यत्रैव तैतलेगृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पोट्टिलां दारिकां तैतलिपुत्राय स्वयमेव भार्यात्वेन ददाति । ततः खलु तैतलिपुत्रोऽमात्यः पोट्टिलां दारिकां स्वभार्यात्वेन 'उवणीयं' उपनी-
पोट्टिलं दारियं पहायं सन्वालंकारविभूसियं सीयं दुरुहइ) शुभ तिथि नक्षत्र, सुहृत्संभं पोट्टिला दारिका को स्नान करा कर समस्त अलंकारों से विभूषित किया और विभूषित कर के फिर उसे शिविका पर बैठा दिया-(दुरुहित्ता मित्तणाइ संपरिवुडे सातो गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सन्विद्धीए तेयली पुरं मज्झं मज्झे णं जेणेव तेयलिस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ) बैठा कर फिर वह मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबन्धी परिजनों से परिवेष्टित होकर एवं वैवाहिक समस्त सामग्री को लेकर अपने घर से निकला । निकल कर सर्व प्रकार की अपनी ऋद्धि के साथ २ तैतलि पुर के बीच से होता हुआ जहाँ तैतलि का घर था वहाँ पहुँचा । वहाँ पहुँच कर उसने अपनी पुत्री पोट्टिला दारिका को तैतलि पुत्र को अपने आप से भार्या रूप से प्रदान कर दी । (तएणं

(सोहणंसि तिहिनक्खत्तमुहुत्तंसि पोट्टिलं दारियं पहायं सन्वालंकार, भूसियं सीयं दुरुहइ)

शुभ तिथि नक्षत्र, सुहृत्संभं पोट्टिला दारिकाने स्नान करनीने षधी नतना अलंकारोथी शल्लुगारीने तेने पावणीभां जेसाडी दीधी.

(दुरुहित्ता मित्तणाइसंपरिवुडे सातो गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सन्विद्धीए तेयलीपुरं मज्झं मज्झेणं जेणेव तेयलिस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ)

जेसाडीने ते पोताना मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबन्धी अने परिजनोनी साथे लज्जनी षधी साधन सामग्री लधने धरथी नीकल्यो. नीकलीने ते सर्व प्रक्षरनी पोतानी ऋद्धिनी साथे तैतलिपुरनी वच्चे धधने न्यां तैतलिपुत्तुं धर हत्तुं त्यां पडोन्थो त्यां पडोन्थीने तेजे पोतानी पुत्री पोट्टिला दारिकाने तैतली पुत्रने तेनी भार्याना इयभां आपी दीधी.

ताम् उपनयनीकृतां पश्यति, दृष्ट्वा पोष्टिलाया साद्वं पट्टकं दूरोहति, दुरुह 'सेय-पीएहि' श्वेतपीतैः = रजतसुवर्णनिर्मितैः 'कलसेहि' कलशैः-घटैः आत्मानं 'मज्जावेइ' मज्जति=नपयति, मज्जयित्वा अग्निसाक्षिको विवाह इति हेतोः 'अग्निहोमं करावेइ' अग्निहोमं कारयति, कारयित्वा 'पाणिग्रहणं' पाणिग्रहणं=विवाहं करोति, कृत्वा पोष्टिलाया भार्यायाः 'मित्तगाइ जाव परिजणं' मित्र ज्ञातिस्वजनमन्थन्धिपरिजनम् त्रिपुलेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन चतुर्विधादारेण

तेयलिपुत्ते पोष्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीयं पासइ, पासित्तो पोष्टिलाए सद्धि पट्टयं दुरुहइ) तेतलिपुत्र अमात्य ने पोष्टिला दारिका को अपनी भार्या रूप से अपने लिये प्रदान की हुई देखा तो देख कर वह उस पोष्टिला दारिका के साथ पट्टक पर बैठ गया। (दुरुहिता सेयपीएहि कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्निहोमं करावेइ, करावित्ता पाणिग्रहणं करेइ करित्ता पोष्टिलाए भारियाए मित्तगाइ जाव परिजणं विउलेणं असणं पाणं खाइमं साइमेणं पुप्फ जाव पड्विसज्जेइ। तएणं से तेयलिपुत्ते पोष्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अविरत्ते उरालाई जाव विहरेइ) बैठ कर फिर उसने रजत एवं सुवर्ण से निर्मित कलशों द्वारा अपना अभिषेक करवाया। अभिषेक करावा कर "अग्नि साक्षिक विवाह होता है" इस खयाल से फिर उसने अग्नि में होम करवाया। करवा कर बाद में उसने उस पोष्टिला दारिका का पाणि ग्रहण कर लिया। विवाह हो चुकने के अनन्तर फिर उस तेतलि पुत्र अमात्य ने

(तएणं तेयलिपुत्ते पोष्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीयं पासइ, पासित्तो पोष्टिलाए सद्धि पट्टयं दुरुहइ)

तेतलिपुत्र अमात्ये पोष्टिला दारिकाने तेनी भार्या रूपमां आपेदी नेधने ते पोष्टिला दारिकानी साथे पट्टक उपर भेसी गये।

(दुरुहिता सेयपीएहि कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेइ, मज्जावित्ता- अग्निहोमं करावेइ, करावित्ता पोष्टिलाए भारियाए मित्तगाइ जाव परिजणं विउलेणं असणं पाणं खाइमं साइमेणं पुप्फ जाव पड्विसज्जेइ। तएणं से तेयलिपुत्ते पोष्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अविरत्ते उरालाई जाव विहरेइ)

भेसीने तेणे थंही अने सोनाना उणथे। वडे पोताने अलिषेक करावडाओथे। अलिषेक करावडावीने तेणे 'अग्नि साक्षिक लग्न थाय छे' आभ विचारीने तेणे अग्निमां डवन करावडाओथे। त्थारपथी तेणे पोष्टिला दारिकानुं पाण्डि अडणु कथुं' लग्ननी विधि पूरी थया आठ तेतलिपुत्र अमात्ये

वेमाणीए विहरित्तए च्चिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिन्ता तेयलि-
पुत्तं अमच्चं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी एवं खलु देवा-
णुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ, तं जइ णं
अहं देवाणुप्पियंया ! दारगं पयायामि । तएणं तुमं देवाणु-
प्पिया ! कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुठ्वेणं सारक्खे-
माणे संगोवेमाणे संवड्ढेहि । तएणं से दारए उम्मुक्कवाल-
भावे जोड्वणगमणुप्पत्ते तव य मम य भिक्खाभायणं
भविस्सइ । तएणं से तेयलिपुत्ते पउमावईए एयमट्ठं पडि-
सुणेइ, पडिसुणित्ता पडिगए ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि । ततः खलु स कनकरथो राजा राज्ये च=राष्ट्रे
च=देशे बले=सैन्ये च, वाहने=श्रवादिषु च कोशे=माण्डारे च धान्यादीनां
कोष्ठागारे च अन्तःपुरे च, ‘मुच्छिण्ण’ मूर्च्छितः=मोहं प्राप्तः, गृद्धः=आसक्तः
ग्रथितः=विशेषणासक्तः, अध्युपपन्नः=सर्वथा तत्परायणः, जाए २=जातान् २=
उत्पन्नान् २ पुत्रान् ‘वियंगेइ’ व्यङ्गयति=विगतानि अङ्गानि येषां तान् व्यङ्गान्

‘तएणं से कणगरहे राया’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कणगरहे राया रज्जे य रट्टे य बले य
वाहणे य कोसे य कोष्ठागारे य अंतरे य मुच्छिण्ण ४) वह कनकरथ
राजा राज्य में राष्ट्र में सैन्य में श्रवादि वाहन में, धान्यादिकों के
कोष्ठागार में एवं अन्तःपुर में मूर्च्छित, गृद्ध अत्यंत अनुरक्त एवं
अध्युपपन्न—सर्वथा तत्परायण बन गया । सो (जाए पुत्त वियंगेइ)

तएणं से कणगरहे राया इत्यादि—

(तएणं) त्याख्याह

टीकार्थ—(से कणगरहे राया रज्जेय रट्टे य बले य वाहणे य कोष्ठागारे य
अंतरे य मुच्छिण्ण ४)

ते कनकरथ राजन् राजन् राजन्भिः, राष्ट्रभिः, सैन्यभिः, अन्य वगेरे वाड-
नाभिः, धान्य वगेरेनी भाषतभिः, कोष्ठागारभिः अने रणुवासभिः मूर्च्छित, गृद्ध,
धरो ज आसक्त अने अध्युपपन्न संपूर्णपणु तत्पर थर्क गयो. ज्येथी (जाए
पुत्तं वियंगेइ) ते ज-भेक्षा पीताना पुत्राने अंगडीन जनायी हेतो डतो.

करोतीति व्यङ्ग्यति=अङ्गहीनान् करोति । 'विइंतेइ' इति पाठे विकर्तयति छिनत्ति इत्यर्थो बोध्यः । तत्प्रकारमाह-अप्येकेषां=केपांचिदुत्पन्नानां पुत्राणां हस्ताङ्गुली-
छिनत्ति, अप्येकेषां=केपांचित् बालानां हस्ताङ्गुलान् छिनत्ति । एवं पादाङ्गुलिकाः
पादाङ्गुलान् अपि, एवं 'कण्णसकुलीए वि' कर्णशङ्कुलीरपि=कर्णानपि तथा नासा-
पुटानि च 'फालेइ' पाटयति=छिनत्ति, इत्यर्थः । अनेन प्रकारेण एव कनकरथो
राजा बालानाम् 'अंगमंगाई' अङ्गानि अंगानि सर्वाण्यङ्गानि व्यङ्ग्यति=छिनत्ति ।
ततः खलु अनेन प्रकारेण समुत्पन्नानां पुत्राणां विनाशानन्तरम् 'तीसे' तस्याः
कनकरथस्य राज्ञ्याः पद्मावत्याः देव्या अन्यदा 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि'
पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=रात्रेः पश्चिमे भागे अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः=आत्मगतो

उत्पन्न ह्येव अपने पुत्रों को अंगहीन कर देता । (अप्पेगइयाणं हत्थं
गुलियाओ छिदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्टए, छिदइ, एवं पायंगुलि-
याओ पायंगुट्टए वि कन्नसक्कुलीए वि, नासापुडाइं फालेइ, अंग-
मंगाई विर्यंगेइ) कितनेक बालकों के वह हाथों की अंगुलियों
को छेद देता था, कितनेक बालकों के हाथों के अंगुठों को-
काट देता था, इसी तरह वह पैरों की अंगुलियों को पैरों के अंगुष्ठों को,
कानों को नासा पुटों को छेद देता था । इस तरह यह कनक रथ राजा
बालकों के अंगों का भंगकर देता था । (तएणं तीसे पाउमावईए देवीए
अन्नया पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अयमेयारूवे अज्जत्थिए ५ समु-
प्पज्जित्था) इस प्रकार समुत्पन्न पुत्रों के विनाश के बाद उस कनकरथ
राजा की रानी पद्मावती देवी के किसी एक समय रात्रि के पश्चिम
भाग में यह इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न

(अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिदइ अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्टए छिदइ, एवं पायंगु-
लियाओ पायंगुट्टए वि कन्नसक्कुल्लिए वि, नासापुडाइं फालेइ, अंगमंगाईविर्यंगेइ)

केटलाक भाणकेनी ते हाथेनी आंगणीओ कपावी नंभावतो हतो,
केटलाक भाणकेना हाथेना अंगुहाओ कपावी नंभावतो हतो, आ रीते ते
पणेनी आंगणीओने, पणेना अंगुहाओने, कानेने, नाकने कपावी नंभावतो
हतो. आम ते कनकरथ राब्ध भाणकेना अंगेनुं ते छेदन करायी नंभावतो हतो.

(तएणं तीसे पाउमावईए देवीए अन्नया पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि
अयमेयारूवे अज्जत्थिए ५ समुप्पज्जित्था)

आ प्रभाषे अन्नेदा पुत्रेना विनाश पथी ते कनकरथ राब्धनी राब्धि
पद्मावती देवीने केअं ओकं समये रात्रिना छेदना पडारभां आ नतने आध्या-
त्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न थये ई-

विचारो यावत् मनोगतः संकल्पः, 'समुपज्जित्था' समुदपद्यत । संकल्पप्रकार-
माह— 'एवं खलु' इत्यादि— एवं खलु कनकरथो राजा राज्ये च यावत् व्यङ्गयति ।
यावत् अज्ञानि अज्ञानि व्यङ्गयति अनेन प्रकारेण कुत्सितमारेण मारयति । तद्यदि
खलु अहं दारकं 'पयायामि' प्रजनयामि, सेयं खलु मम तं दारगं कणगरहस्स
रहस्सियं चैव सारक्खेमाणीए संगोवेमाणीए विहरित्तए' श्रेयः खलु मम तं दारकं
कनकरथस्य 'रहस्सियं चैव' रहस्सियकमेव=गुप्तमेव आपदः संरक्षन्त्या 'संरक्ख-
माणीए' संरक्षन्त्याः भूपट्टयादेः, 'संगोवेमाणीए' संगोपायन्त्या भूपकृतोप-
द्रवात् विहर्त्तुम्, 'त्तिकड्डु' इति कृत्वा=इति मनसि कृत्वा एवं संपेक्षते=एवं
विचारयति संपेक्ष्य=विचार्यं तेतल्लिपुत्रममात्यं प्रधानं शब्दयति, शब्दयित्वा
एवमवदत्—एवं खलु देवानुप्रिय । कनकरथो राजा 'रज्जेय जाव विचंगेइ'
राज्ये च यावद् व्यङ्गयति=राज्यादिषु च मूर्च्छितो जातान् पुत्रान् विकृताङ्गान्
क्रोति एवं तेषामङ्गोपाङ्गानि खण्डयति । अनया रीत्याः पुत्रान्मारयति, तद्यदि खलु
अहं देवानुप्रिय ! दारक प्रजनयामि । ततः खलु त्वं कनकरथस्य रहस्सियकमेव

हुआ— (एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते विचंगेइ, जाव अङ्ग
मंगाइं विचंगेइ) यद् कनकरथ राजा राज्य आदिभ्यं मूर्च्छितं गृह्य, अत्य-
न्त अनुरक्त एवं अध्युपपन्न अत्यन्त तत्पर बनकर पुत्रो को काटं देता
हैं—बुरी तरह से उन्हें मार डालता है (तं जइ अहं दारयं पायायामि,
सेयं खलु मम तं दारगं कणगरहस्स रहस्सियं चैव सारक्खेमाणीए
संगोवेमाणीए विहरित्तए त्ति कड्डु एवं संपेहेइ, संपेहिस्ता, तेयलिपुत्तं
अमच्चं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया । कण-
गरहे राया रज्जे य जाव विचंगेइ तं जइणं अहं देवाणुप्पिया । दारगं प-
यायामि, तएणं तुभं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुण्वे

(एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते विचंगेइ, जाव अंग मंगाइं विचंगेइ)

कनकरथ राजा राज्ये च यावत् व्यङ्गयति । अनेन प्रकारेण कुत्सितमारेण मारयति । तद्यदि
खलु अहं दारकं 'पयायामि' प्रजनयामि, सेयं खलु मम तं दारगं कणगरहस्स
रहस्सियं चैव सारक्खेमाणीए संगोवेमाणीए विहरित्तए त्ति कड्डु एवं संपेहेइ, संपेहिस्ता,
तेयलिपुत्तं अमच्चं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया । कण-
गरहे राया रज्जे य जाव विचंगेइ तं जइणं अहं देवाणुप्पिया । दारगं पया-
यामि, तएणं तुभं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुण्वेणं सारक्खे-

विचारो यावत् मनोगतः संकल्पः, 'समुपज्जित्था' समुदपद्यत । संकल्पप्रकार-
माह— 'एवं खलु' इत्यादि— एवं खलु कनकरथो राजा राज्ये च यावत् व्यङ्गयति ।
यावत् अज्ञानि अज्ञानि व्यङ्गयति अनेन प्रकारेण कुत्सितमारेण मारयति । तद्यदि
खलु अहं दारकं 'पयायामि' प्रजनयामि, सेयं खलु मम तं दारगं कणगरहस्स
रहस्सियं चैव सारक्खेमाणीए संगोवेमाणीए विहरित्तए' श्रेयः खलु मम तं दारकं
कनकरथस्य 'रहस्सियं चैव' रहस्सियकमेव=गुप्तमेव आपदः संरक्षन्त्या 'संरक्ख-
माणीए' संरक्षन्त्याः भूपट्टयादेः, 'संगोवेमाणीए' संगोपायन्त्या भूपकृतोप-
द्रवात् विहर्त्तुम्, 'त्तिकड्डु' इति कृत्वा=इति मनसि कृत्वा एवं संपेक्षते=एवं
विचारयति संपेक्ष्य=विचार्यं तेतल्लिपुत्रममात्यं प्रधानं शब्दयति, शब्दयित्वा
एवमवदत्—एवं खलु देवानुप्रिय । कनकरथो राजा 'रज्जेय जाव विचंगेइ'
राज्ये च यावद् व्यङ्गयति=राज्यादिषु च मूर्च्छितो जातान् पुत्रान् विकृताङ्गान्
क्रोति एवं तेषामङ्गोपाङ्गानि खण्डयति । अनया रीत्याः पुत्रान्मारयति, तद्यदि खलु
अहं देवानुप्रिय ! दारक प्रजनयामि । ततः खलु त्वं कनकरथस्य रहस्सियकमेव

‘अणुपुत्रवेण’ आनुपूर्व्येण=यथाक्रमम् संरक्षन् भूपददृयादितः संगोपायन् भूपकृतो-
पद्रवादत्तं दारकं ‘संवर्द्धे’ संवर्द्धय, तस्य बालस्य वृद्धिसुपनय । ततः खलु स
दारकः ‘उम्मुक्त्वाबालभावे’ उन्मुक्तबालभावः=उन्मुक्तः परित्यक्तो बालभावो
बालत्वं येन सः, ‘जोन्वणगमणुप्यत्ते’ यौवनक्रमनुप्राप्तः=प्राप्ततारुण्यः तव मम च

णं सारक्खेमाणे संगोवेमाणे संवर्द्धेहि । तएणं से दारए उम्मुक्त्वाबाल
भावे जोन्वणगमणुप्यत्ते तव य मम य भिक्खाभायणं भविस्सइ तएणं
से तेयलिपुत्ते पउमावइए एयमहं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता पडिगए)
तो यदि मेरे यहां पुत्र उत्पन्न होता है—मैं पुत्र को उत्पन्न करती हूँ—
तो सुझे यही योग्य है कि मैं राजा कनकरथ को खबर न पड़े इस रूप
से उसकी रक्षा करूँ—उनकी दृष्टि से—उसे बचाकर रखूँ—ऐसा उसने
मन से विचार किया । विचार कर फिर उसने अमात्य तैत्तिलिपुत्र को
बुलाया—बुलाकर उस से ऐसा कहा—हे देवानुप्रिय ! कनकरथ राजा
राज्य आदि में इतना अधिक सृष्टित गृह—अत्यंत अनुरक्त एवं अध्यु-
पपन्न बना हुआ है जो वह उत्पन्न हुए बालकों को अंग हीन कर देता
है—उनके हाथों की अंगुलियों आदि अङ्गों को काट देता है । तो हे देवा-
नुप्रिय ! यदि मैं पुत्र को उत्पन्न करती हूँ तो देवानुप्रिय तुम उसे राजा
को खबर न पड़े इस रूप से रक्षित करते हुए और उनकी दृष्टि से
बचाते हुए क्रमशः वृद्धिगत करो । जब वह बालक—क्रमशः संवर्द्धित
होता हुआ बाल्यावस्था से रहित होकर यौवनावस्था वाला बन जायगा

माणे संगोवेमाणे संवर्द्धेहि । तएणं से दारए उम्मुक्त्वाबालभावे जोन्वणगमणु-
प्यत्ते तव य मम य भिक्खाभायणं भविस्सइ तएणं से तेयलिपुत्ते पउमावइए
एयमहं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता पडिगए)

હવે મને પુત્ર ઉત્પન્ન થવાનો જ છે, તો મને એ જ યોગ્ય લાગે છે કે
કનકરથ રાબને ખબર પડે નહિ તે રીતે બાળકની રક્ષા કરું. તેમની કુદૃષ્ટિથી
તેને બચાવું. આ પ્રમાણે તેણે મનમાં વિચાર કર્યો વિચાર કરીને તેણે અમાત્ય
તૈત્તિલિપુત્રને બોલાવ્યો અને બોલાવીને તેને કહ્યું કે હે દેવાનુપ્રિય ! રાબ
કનકરથ રાબ્ય વગેરેના કામમાં આટલો બધો મૂલ્છિત, ગૃહ—પૂજાજ આસક્ત
અને અધ્યુપપન્ન થઈ પડ્યો છે કે તે જન્મેલા બાળકોના અંગો કપાવી નાખે
છે. તેમના હાથોની અંગુળીઓ વગેરે અંગોને કપાવી નાખે છે. બે હે દેવા-
નુપ્રિય ! હું પુત્રને જન્મ આપું તો દેવાનુપ્રિય તમે રાબને ખબર પડે નહીં
તેમ તેમની કુદૃષ્ટિથી બાળકની રક્ષા કરતા તેવું ભરણુ—પોષણુ કરજો, એ તે

‘भिक्षाभाषणं’ भिक्षाभाजनम्=भिक्षाया आधारभूतो भविष्यति । ततः खलु स तेतलिपुत्रः पद्मावत्याः एकमर्थं प्रतिश्रुणोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य पद्मावत्याः समीपात् प्रतिगतः स्वग्रहे गतवान् ॥श्रु०४॥

मूलम्—तएणं पउमावई य देवी पोड्डिला य अमच्छी सय-
मेव गब्भं गिणहइ, सयमेव परिवहइ । तएणं सा पउमावई
नवण्हं मासाणं जाव पियदंसणं सुरूवं दारगं पयाया, जं रयणिं
च णं पउमावई दारयं पयाया तं रयणिं च णं पोड्डिला वि
अमच्छी नवण्हं मासाणं विणिहायमावन्नं दारियं पयाया ।
तएणं सा पउमावई देवी अम्मधाईं सदावेइ सदावित्ता एवं
वयासी—गच्छह णं तुमे अम्मो ! तेतलिगिहे तेतलिपुत्तं अमच्चं
रहस्सियं चैव सदावेह । तएणं सा अम्मधाईं तहत्ति षडिसुणेइ,
षडिसुणित्ता अंतेउरस्स अवहारेणं गिग्गच्छइ, गिग्गच्छित्ता,
जेणेव तेतलिस्स गिहे जेणेव तेतलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया !
पउमावई देवी सदावेइ । तएणं तेतलिपुत्तं अम्मधाईं ए अंति ए
एयमट्ठं सोच्चा हट्टुत्तुट्ठे अम्मधाईं ए सच्चिं साओ गिहाओ
गिग्गच्छइ, गिग्गच्छित्ता अंतेउरस्स अवहारेणं रहस्सियं चैव
अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव

तो हमारे तुम्हारे दोनों के लिये भिक्षा पात्र-भिक्षा का आधार भूत-
बन जायगा इस-प्रकार पद्मावती के इस कथन रूप अर्थ को उस तेत
लिपुत्र अमात्यने स्वीकार कर लिया । और स्वीकार करके फिर वह
पद्मावती देवी के पास से अपने घर पर चला आया ॥ सू० ४ ॥

भाणक आधरे भोटो थर्थ जशे अने भयपणु वटावीने लुवान थर्थ जशे तो
भारा अने तभारा भनेने भाटे भिक्षापात्र भिक्षानो आधारभूत थर्थ जशे.
आ इति पद्मावतीना आ कथन इप अर्थने ते तेतलिपुत्र अमात्ये स्वीकार
करीने ते पद्मावती देवीनी पासेशी विहाय लधने पोताने घेर आवी जशे. सू. ४

उवागए करयलपरिगहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं
 कट्टु एवं वयासी-संदिसतु णं देवाणुप्पिया ! जं मए कायव्वं ?
 तएणं पउमावईं तेतलिपुत्तं एवं वयासी-एवं खलु कणगरहे
 राया जाव वियंगेइ, अहं च णं देवाणुप्पिया ! दारगं पयाया
 तं तुमं णं देवाणुप्पिया ! एयं दारगं गेणहाहि जाव तव मम
 य भिक्खाभायणे भविस्सइ च्चिकट्टु तेतलिपुत्तं दलयइ । तएणं
 तेतलिपुत्ते पउमावईंए हत्थाओ दारगं गेणहइ गिणहत्ता उत्त-
 रिज्जेणं पिहेइ, पिहित्ता अंतेउरस्स रहस्सियं अवहारेणं णिग्गच्छइ,
 णिग्गच्छित्ता, जेणेव सये गिहे जेणेव पोट्टिला भारिया, तेणेव
 उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं एवं वयासी-एवं खलु देवा-
 णुप्पिया ! कणगरहे राया रजे य जाव वियंगेइ, अयं च णं दारए
 कणगरहस्सपुत्ते पउमावईंए अत्तए, तं णं तुमं देवाणुप्पिया !
 इमं दारगं कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुव्वेणं सारक्खाहि
 य संगोवाहि य संवड्ढेहि य । तएणं एस दारए उमुक्कवालभावे
 तव य मम य पउमावईंए य आहारे भविस्सइ च्चि कट्टु पोट्टि-
 लाए पासे णिक्खिवइ, णिक्खिवित्ता, पोट्टिलाओ पासाओ विनि-
 हायमावन्नियं दारियं गेणहइ, गेणहत्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहित्ता
 अंतेउरस्स अवहारेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव पउ-
 मावईं देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमावईंए देवीए
 पासे ठावेइ, ठावित्ता जाव पडिणिग्गए । तएणं तीसे पउमा-
 वईंए अंगपरियारियाओ पउमावइं देविं विणिहायमात्रं च

दारियं पासंति, पासित्ता जेगेत्र कणगरहे राया तेणेव उवाग-
च्छंति उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं म-
त्थए अंजलिं कहु एवं वयासी एवं खलु सामी ! पउमावई
देवी मइल्लियं दारियं पयाया । तएणं कणगरहे राया तीसे
मइल्लियाए दारियाए नीहरणं करेइ, वहुणि लोइयाइं मयाकि-
च्चाइं करेइ. करित्ता कालेणं विगयसोए जाए । तएणं से तेत-
लिपुत्तेकोडुं बियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता, एवं वयासी—खिप्पा-
मेव चारगसोहणं जाव ठिइवडियं, जम्हाणं अम्हं एस दारए
कणगरहस्स रजे जाए, तं होउ णं दारए, नामेणं कणगज्झए
जाव भोगसमत्थे जाए ॥ सू० ५ ॥

टीका—‘ तएणं ’ इत्यादि । ततः खलु पद्मावती च देवी पोद्दिला च अमात्यी
सममेव गर्भं गृह्णाति, सममेव गर्भं परिवहति=धारयति । ततः खलु सा पद्मावती
‘ नवणं मासाणं जाव ’ नवानां मासानां नमसु मासेसु व्यतीतेषु यावत् सत्सु
‘ पियदंसणं ’ पियदर्शनम्=पियं चेनोहरं दर्शनमत्रलोकनं यस्य तं = दर्शकजन-
चेतोहाजनकं सुरुपं दारकं ‘ पयाया ’ प्रजाता=प्रजनितवती । यस्यां रजन्यां च

‘ तएणं पउमावई य देवी ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (पउमावई य देवी पोद्दिलाय अमच्छी
सयमेव गर्भं गिणहइ) पद्मावती देवी और पोद्दिला अमात्यी ने साथ ही
गर्भ धारण किया । (तएणं सा पउमावई नवणं मासाणं जाव पियदं-
सणं सुरुपं दारकं पयाया) पद्मावती देवी ने जब नौ मास अच्छी तरह
गर्भ के समाप्त हो चुके तब दर्शकजन चित्ताह्लादि जनक अच्छे रूप
शाली पुत्र को जन्म दिया। (जेज्जग्गिं ज्वग्गुं णं वंमिं ईं हाइयि पयमाइ

एषां पउमावई य देवी, इ इत्यादि। ततः खलु पद्मावती च देवी पोद्दिला च अमात्यी सममेव गर्भं गृह्णाति, सममेव गर्भं परिवहति=धारयति । ततः खलु सा पद्मावती ‘ नवणं मासाणं जाव ’ नवानां मासानां नमसु मासेसु व्यतीतेषु यावत् सत्सु ‘ पियदंसणं ’ पियदर्शनम्=पियं चेनोहरं दर्शनमत्रलोकनं यस्य तं = दर्शकजनचेतोहाजनकं सुरुपं दारकं ‘ पयाया ’ प्रजाता=प्रजनितवती । यस्यां रजन्यां च

खलु पद्मावती दारिकं प्रजाता तस्यां रजन्यां च खलु पोट्टिलापि अमात्यी ' नवण्हं-
मासाणं ' नवानां मासानाम्=नवसु मासेषु व्यतीतेषु ' विणिहायमावन्नं ' विनि-
घातमापन्नाम्=धृताम् दारिकां प्रजाता=जनितवती । ' तएणं ' ततः खलु पुत्रजन्मा-
नन्तरं सा पद्मावती देवी अम्बधात्रीं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदन्तं गच्छति
खलु यूयमम्भ । ' तैतलिगिहे ' तैतलिगृहे=तैतलेरमात्यस्य गृहे तैतलिपुत्रममात्य
रहस्सिकम्=अन्यैरपरिज्ञांतेमेव शब्दयत=आह्वयत । ततः खलु सा अम्बधात्री तथेति
प्रतिश्रुणोति,=अह्नीकरोति, प्रनिश्रुत्य अन्तः पुरस्य ' अवदारेणं ' अपद्वारेण=पृष्ठ-
द्वारेण निर्गच्छति; निर्गत्य, यत्रैव तैतलेगृहम्, यत्रैव तैतलिपुत्रस्तत्रैव उपा-
गच्छति, उपागत्य करतल यावद् अञ्जलिपुटं कृत्वा एवमवादीत्-एवं खलु हे

तं रयणिं च णं पोट्टिलावि अमची नवण्हं मासाणं विणिहायमावन्नं
दारियं पयाया) जिस रात्रि में पद्मावती देवी ने पुत्र को जन्म दिया था
उसी रात्रि में पोट्टिला अमात्यी ने भी नौ मास व्यतीत हो जाने पर
एक मरी हुई कन्या को जन्म दिया (तएणं सा पउमावई अम्मधायं
सहावेह; सहावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुमे अम्मो ! तैतलिगिहे
तैतलीपुत्तं अमच्चं रहस्सियं चैव सहावेह) इस के बाद उस पद्मावती
ने अम्बधात्री को बुलाया और बुलवाकर उससे ऐसा कहा हे अम्म !
तुम तैतलि अमात्य के घर पर जाओ । और किसी को पता न पड़े
इस रूप से तुम तैतलि पुत्र अमात्य को बुला लाओ । (तएणं सा अ-
म्मधार्ई तहत्ति पडिसुणेह. पडिसुणित्ता अंतेउरस्स अवदारेणं णिग्ग-
च्छह णिग्गच्छित्ता जेणेव तैतलिस्सगिहे जेणेव तैतलिपुत्ते तेणेव उपा-
गच्छह, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पियं

(जं रयणिं च णं पउमावई दारियं पयाया तं रयणिं च णं पोट्टिला-वि अमची
नवण्हं मासाणं विणिहायमावन्नं यारियं पयाया)

ये रात्रिमे पद्मावती देवीमे पुत्रने जन्म आप्थे ते ज रात्रिमे पोट्टिला
अमात्यीमे पणु नव मास पूरा थवाथी अेक भरेली कन्याने जन्म आप्थे

(तएणं सा पउमावई अम्मधायं सहावेह, सहावित्ता एवं वयासी गच्छह णं
तुमे अम्मो ! तैतलिगिहे तैतलिपुत्त अमच्च रहस्सियं चैव सहावेह)

त्यारपणी ते पद्मावतीमे अम्बधात्रीने जेलापी अने जेलापीने तेने
आ प्रभाणि कुणुं के डे अम्म ! तमे तैतलि अमात्यने घर आये अने डोडने
अपर पडे नडि तेम तैतलिपुत्र अमात्यने तमे अडी जेलापी लावे ।

(तएणं सा अम्मधार्ई तहत्ति पडिसुणेह; पडिसुणित्ता अंतेउरस्स अवदारेणं
णिग्गच्छह णिग्गच्छित्ता जेणेव तैतलिस्स गिहे जेणेव तैतलिपुत्ते तेणेव उक्ता-

देवानुप्रिय ! पद्मावती देवी भवन्तं शब्दयति । ततः खलु तेतलिपुत्रः ' अंबघाईए-
अंतिए ' अम्बधात्र्या अन्तिके=अम्बधात्र्याः सकाशात् एतमर्थं श्रुत्वा हृष्टतुष्टोऽम्ब-
धात्र्याः साद्धं स्वकाद् गृहाद् निर्गच्छति, निर्गत्य अन्तपुरस्य अपद्वारेण रहस्यिक-
मेव=प्रच्छन्नमेव अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य, यत्रैव पद्मावती देवी तत्रैव ' उवागए '
उवागतः=संप्राप्तः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तकेऽञ्जलि कृत्वा एवं=
वक्ष्यमाणप्रकारेण अवदत्-' संदिसतु ' संदिशतु=आज्ञापयतु खलु हे देवानुप्रिये !

पद्मावती देवी सदावेह । तएणं तेतलिपुत्ते अम्बघाईए अंतिए एयमद्धं
सोच्चा हट्ट तुष्टे अम्बघाईए सद्धिं साओ गिहाओ णिगगच्छह) पद्मा-
वती देवी के इस प्रकार वचन सुनकर उस अम्बधात्री ने तथेति
कह कर उसकी आज्ञा को स्वीकार कर लिया । स्वीकार कर के फिर
वह अंतः पुर के अपद्वार से-पीछे के दरवाजे से बाहिर निकली-निकल
कर जहाँ तेतलि का घर और उसमें भी जहाँ तेतलिपुत्र था वहाँ गई ।
वहाँ जाकर पहिले उसने तेतलिपुत्र अमात्य को दोनों हाथ जोड़ कर
नमस्कार किया-याद में बोली-हे देवानुप्रिय ! आपको पद्मावती देवी
बुला रही हैं । अम्बधात्री के मुख से इस प्रकार वचन सुन कर व
तेतलि पुत्र हर्षित एवं तुष्ट होता हुआ अम्बधात्री के साथ ही अपने
घर से निकला । (णिगगच्छिन्ता अंतेउरस्स अवहारेणं रहस्सियं चेव
अणुप्पविसिह, अणुप्पविसिन्ता जेणेव पडमावई देवी तेणेव उवागए
करयलपरिगगहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टहु एवं वयां-

गच्छह, उवागच्छिन्ता करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु देवानुप्पियया ! पडमावई
देवी संदावेह । तएणं तेतलिपुत्ते अम्बघाईए अंतिए एयमद्धं सोच्चा हट्टतुष्टे अम्ब-
घाईए सद्धिं साओ गिहाओ णिगगच्छह)

आ रीते पद्मावती देवीनी वात सांलणीने अंभधात्रीणे ' तथेति ' (साई)
आम कहीने तेमनी आशा स्वीकारी लीधी. स्वीकारीने ते रञ्जनासना पाछला
आरखेथी अहार नीकणी अने नीकणीने न्यां तेतलिपुत्रजुं घर अने तेमां पछ
न्यां तेतलिपुत्र अमात्य उता त्यां पडोची. त्यां पडोचीने तेखे सौ पडेदां
अने हाथ नेडीने तेतलिपुत्रने नमस्कार कर्या अने त्यारपछी तेखे कहुं के हे
देवानुप्रिय ! तमने पद्मावती देवी गोलावे छे. अंभधात्रीना सुभधी आ जतनी
वात सांलणीने तेतलिपुत्र हर्षित तेमज संतुष्ट थते। अंभधात्रीनी साथे
साथे ज ते घेताना घेरथी रञ्जनास तरङ्ग रवाना थथे.

(णिगगच्छिन्ता अंतेउरस्स अवहारेणं रहस्सियं चेव अणुप्पविसिह, अणुप्प-
विसिन्ता जेणेव पडमावई देवी तेणेव उवागए, करयलपरिगगहियं दसणहं सिर-

‘जं मए कायव्वं’ यन्मया कर्तव्यम्, ततः खलु पद्मावती देवी तैत्तलिपुत्रमेवमव-
दत् ‘एवं खलु कणगरहे राया वियंगेइ’ एवं खलु कनकरथो राजा व्यङ्ग्यार्त-
हे देवाणुप्रिय ! मया पूर्वमेवकथितं—यत्कनकरथ उत्पन्नान्पुत्रान् विकृताऽपान्
कृत्वा मारयति । अहं च खलु देवानुप्रिय ! दारकं प्रजाता=प्रजनितवती, ‘तं’
तस्मात् कारणात् त्वं खलु देवानुप्रिय । एतं दारकं गृह्णाण यावत् तत्र च ममं चं

सी संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जंमए कायव्वं ? तएणं पडमावई तैत्तलि
पुत्तं एवं वयासी—एवं खलु कणगरहे राया जाव वियंगेइ, अहं च णं
देवाणुप्पिया दारगं पयाया तं तुमं णं देवाणुप्पिया ! एयं दारगं गेणहाहि)
चलकर वह अंतः पुर के पृष्ठ भाग के द्वार से किसी को आने का पता
न लगे इस रूप से वहां प्रविष्ट हुआ । प्रविष्ट होकर जहां पद्मावती देवी
थी वहां गया । वहां जाकर उसने दोनों हाथ जिसमें जुड़े हुए हैं और
दशौंनख जिसमें हैं ऐसी-अंजलिको दक्षिण तरफ से घुमाकर बायें
तरफ लेजाकर और मस्तकपर अंजलि को रखकर कहा—अर्थात् नम-
स्कार कर पूजा हे देवानुप्रिये ! जो मुझे करने योग्य कार्य है उस के
करने की आप आज्ञा दीजिये । इस के बाद पद्मावती देवी ने तैत्तलिपुत्र
से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! मैंने तुमसे पहिले ही कह रक्खा है
कि कनकरथ उत्पन्न हुए पुत्रों को विकृत अंग बनाकर मार डालता है ।
और मैंने हे देवानुप्रिय ! पुत्र को उत्पन्न किया है । इसलिये तुम हे देवा-

सावत्तं मत्थए अंजलिं कडु एवं वयासी—सं दिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जंमए कर-
णिज्जं तएणं परमावीइ देवी वयासी—एवं खलु कणगरहे राया जार वियंगेइ अहं
च णं देवानुप्रिया । दारगं पयाया तं तुमं णं देवाणुप्पिया । एवं दारगं गेणहाहि)

त्यां पडोंथीने रणुवासना पाछला आरखेथी केअने ञमर पडे नडि तेम
रणुवासनां प्रविष्ट थरु गये. प्रविष्ट थरुने ते न्यां पद्मावती देवी छती. त्यां
पडोंथे. त्यां पडोंथीने तेणु दशे नणे नेमां छे जेवा णेने हाथ नेडीने
अंजलि ञनावीने तेने नमणी आलुथी ईरवीने डाणी आलु तररु लध नधने
मस्तक उपर अंजलि भूडीने आ प्रमाणे कहुं—अट्टे नमस्कार करीने पूछुं
के—हे देवानुप्रिये ! मारे लायक ने कंथ पथु काम डोय ते मने कडे। त्यार
पथी पद्मावती देवीअे तैत्तलिपुत्रने आ प्रमाणे कहुं के डे देवानुप्रिय !
तमने मे पडेथी कही राणुं छे के राल कनकरथ उत्पन्न थयेला पुत्रने.
अंजलीन करी नाणे छे. अने डे देवानुप्रिय ! मारे पुत्र थये छे, डे देवा-
नुप्रिय ! अे आणुकेने तमे लध नये।

भिक्षाभाजनमिव भिक्षाभाजनं, यथा भिक्षाभाजनं जीवनं निर्वाहयति, तथाऽयमपि जीवननिर्वाहको भविष्यति 'त्तिकट्टु' इति कृत्वाः इत्युक्त्वा 'तेतलिपुत्तं' तेतलिपुत्ताय प्राकृतत्वाद् द्वितीया ददाति=तेतलिपुत्रस्य हस्ते दारकमर्पयति। ततः खलु तेतलिपुत्रः पद्मावत्याः हस्ताभ्यां दारकं गृह्णाति, गृहीत्वा उत्तरीयेण=उत्तरीयवस्त्रेण तं 'पिहेइ' पिदधाति=आच्छादयति, 'पिहिन्ना' पिधाय अन्तः-पुरस्य 'रहस्सियं' रहस्सियं=पच्छन्नं यथा स्यात्तथा अपद्वारेण निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव पोट्टिला भार्या तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पोट्टिलामेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिये ! क्रनकरथो राजा राज्ये च यावद् व्यङ्गयति स्वपुत्रान् मारयति अयं च खलु मम हस्तस्थितो दारकः क्रनकरथस्य पुत्रः पद्मावत्या आत्मजो मया-ऽज्ञानीतः, 'तं' तस्मात् कारणात् खलु हे देवानुप्रिये ! इमं दारकं 'कणगरहस्स-

नुप्रिये ! इस बालक को लेलो (जाव तव मम य भिक्खाभायणे भविस्सइत्तिकट्टु तेतलिपुत्तं दलयइ) यावत् यह हमारे तुम्हारे लिये भिक्षा का भाजन हो जायगा जिस प्रकार भिक्षा भाजन जीवन निर्वाहक होता है-उसी तरह यह भी जीवन निर्वाहक होवेगा इस प्रकार कहकर उसने तेतलिपुत्र के हाथमें आपने पुत्र को दे दिया । (तएणं तेतलिपुत्ते पंडमावईए हत्थाओ दारगं गेण्हइ) तेतलिपुत्र ने भी पद्मावती देवीके हाथसे बालक को ले लिया । (गिण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहिन्ना अंते उरस्सं रहस्सियं अवद्वारेणं गिग्गच्छइ, गिग्गच्छित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव पोट्टिला भारिया-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता-पोट्टिलं एवं वयासी एवं खलु देवानुप्पिया । कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ, अयं

(जाव तव मम य भिक्खाभायणे भविस्सइत्तिकट्टु तेतलिपुत्तं दलयइ)

ये आरा अने तमारा माटे 'भिक्षाभाजनं' थरे अथेवे के नेम'भिक्षानु
यात्र लवनने टकावनार डोय छे तेमअ आ भाणकं पणु लवनं निर्वाहकं थरे.
आ-प्रभाषे उदीने तेणु तेतलिपुत्रना हाथमां पोताना नव अत्त-पुत्रने सोयी दीषा.
(तएणं तेतलिपुत्ते पंडमावईए हत्थाओ दारगं गेण्हइ)

तेतलिपुत्रे पणु पद्मावती देवीना हाथमांथी भाणकं लधं दीधुं.

(गिण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ पिहिन्ना अंते उरस्सं रहस्सियं अवद्वारेणं गिग्गच्छइ, गिग्गच्छित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव पोट्टिला भारिया-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, पोट्टिलं एवं वयासी, एवं खलु देवानुप्पिया । कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ, अयं च णं दारए कणगरहस्सपुत्ते पंडमावईए अत्तए

रहस्सियं चैव ' कनकरथस्य रहस्सिकमेव=कनकरथो यथा न जानीयात्तथैव । अणु-
पुञ्जैः । आनुपूर्व्येण=अनुक्रमेण तत्कृतोपद्रवतश्च 'सारस्वाहि य' संरक्ष्य-कनकरथ-
पदद्वयः संगोपाय च तत्कृतोपद्रवतः, तथा संवद्धेहिय ' संवर्धय च=स्तन्यपानादि-
नाऽस्य बालस्य वृद्धिमुपनय । ततः खलु एष दारकः उन्मुक्तबालभावः तव च मम
च-पद्मावत्याश्च 'आहारे' आधारः=आधारस्वरूपो भविष्यति ' तिकट्टु ? इतिकृत्वा

च णं दारए कणगरहस्स पुत्ते पउंमावईए अन्तए; तं णं तुमं दारगं
कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुञ्जैः सारस्वाहियं संगोवाहियं सं-
वद्धेहिय) लेकर फिर उसे अपने दुपट्टे से ढक लिया और ढककर
प्रच्छन्न गुप्तरूप से अंतः पुर के पीछे के दरवाजे से बाहर निकल गया ।
निकल कर जहां अपना घर और पोट्टिला भार्या थी वहां गया । अहां
जाकर उसने पोट्टिला भार्या से इस प्रकार कहा-देवानुप्रिये ! कनकरथ
राजा राज्य आदि में इतना अधिक मूर्च्छित हो रहा है कि वह दरपक
हुए अपने बालकों को अङ्ग विच्छेद कर मार डालता है । यह जो पुत्र
मेरे हाथ में है वह कनकरथ राजा का पुत्र है यह पद्मावती-देवी की
कुक्षि से उत्पन्न हुआ है । इसलिये हे देवानुप्रिये ! तुम इस पुत्र को
कनकरथ को खबर न पड़े इस तरह प्रच्छन्न रूप से क्रमशः रक्षित
करती रहो-पालती रहो उसकी दृष्टि से बचाती रहो और स्तन्य पान
आदि से बढ़ाती रहो । (तएणं एस दारए उन्मुक्तबालभावे तव च

तं णं तुमं देवानुप्पिया ! इमं दारगं कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुञ्जैः सार-
स्वाहियं संगोवाहियं संवद्धेहिय)

लडने तेले जेसमां ढांकी दीपु, अने ढांकीने-छुपी रीते रणुवासना पाछला
भारलेथी भडार नीकणी गथे. भडारनीऽणीने न्यां पोतातुं धर अने पोट्टिला
लायां ढती त्यां गथे. त्यां पडोंथीने तेले पोट्टिला लायाने जेभ कहुं डे-डे
देवानुप्रिये ! राज कनकरथ राज्य वजेरेनी भाधतमां अटलोऽभधे आसक्य थध
गथे छे के ते जन्म पासेला पोताना भाणकेना अंगोने कपावीने भारीनाजे
छे. भारा ढाथमां जे भाणक छे ते पणु कनकरथ राजानो ज पुत्र छे । पद्मावती
देवीनां गंभंभांथी आने जन्म थथे छे. जेथी डे देवानुप्रिये ! कनकरथ राजाने
जणु थाय नडि ते प्रभाले तमे छुपी रीते आ पुत्रनुं रक्षणु करतो रडे,
पेषणु करतो रडे, राजनी कुदंष्टिथी जेने इर राधता रडे अने स्तन्यपान
अटवे के दूध-वजेरे पीवडवीने जेने मोटी-करे.

कालेन समये व्यतीते 'विगयसोए.' विगतशोकः=शोकरहितो जातः । ततः खलु स तैतलिपुत्रः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति; शब्दयित्वा एवमवदत्- 'खिप्पामेव' क्षिप्पमेव 'चारगसोहणं' चारकशोधनं=बन्दीजनमोक्षणं यावन्मानोन्मानवर्द्धनम् पुत्रजन्मोत्सवनिमित्तकं राजकर्मचारिणां वेतनवृद्ध्यादिना सत्कारसम्मानवर्द्धनं कुरुत; इत्येवंरूपामाज्ञां दत्त्वा स्वयं; 'ठिइवडियं' स्थितिपतितां कुलमर्यादान्तर्गतां पुत्रजन्मनिदशदिवससप्तमद्योत्सवरूपां प्रक्रियां करोति । पुनश्चाशनादिना मित्र-ज्ञातिममृत्वान् सत्कृत्य सम्मान्य तत्पुरत एवं कथयति- 'जम्हाणं' यस्मात्खलु

कत्या का निर्हरण-इमशान में ले जाना-किया । निर्हरण कर के फिर अनेक लौकिक मृतकृत्य किये । मृत कृत्य कर चुकने के बाद धीरे-धीरे वे विगत शोक हो गये । (तएणंसे तैतलिपुत्ते कोडुंविगयपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव चारगसोहणं जाव ठिइवडियं जम्हाणं अम्हं एस दारए कणगरहस्सरज्जे जाए तं होउणं दारए नामेणं कणगज्झए जाव भोगसमत्थे जाए) इस के बाद तैतलिपुत्र अमात्यने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा- शोध ही तुम लोग चारक शोधन करो- बन्दीजनों को मुक्त करो यावत् मानोन्मान का वर्द्धन और पुत्र जन्मोत्सव के निमित्त को लेकर राज कर्म चारिय के वेतन की वृद्धि आदि करके उनके सम्मान का वर्द्धन करो- इस प्रकार आज्ञा देकर स्वयं उस तैतलिपुत्र अमात्यने अपनी कुल मर्यादा के अनुसार पुत्र का जन्म होने के कारण दश दिवस तक बड़ा

आ रीते तेभनां सुअथी आ वात सांखणीने कनकरथ राअणे ते भरेदी कत्याने श्मशानमां पडेआडी अने त्यारणाइ तेले भरणु पछीनी धणी क्रियाओ पुरी करी भरणु डियाओने पताओ पछी राअ कनकरथ धीमे धीमे शोक रहित थठ गया.

(तएणं से तैतलिपुत्ते कोडुंविगयपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव चारगसोहणं जाव ठिइवडियं, जम्हाणं अम्हं एस दारए कणगरहस्सरज्जे जाए तं होउणं दारए नामेणं कणगज्झए जाव भोगसमत्थे जाए)

त्यारणाइ तैतली पुत्र अमात्ये पाताना कौटुम्बिक पुरुषाने बोलाओ अने बोलापीने तेभने आ प्रभाळे कहुं के-तमे लोके सत्तरे चारक शोधन करे-ओटवे के लेलपानामांथी डेहीओने छोडी भूके यावत् मानोन्माननुं वर्द्धन तेभअ पुत्र जन्मोत्सव पहल राअकर्मचारीओना पणार वगेरेनी वृद्धि करीने तेभना सम्माननुं वर्द्धन करे आ रीते कौटुम्बिक पुरुषाने आज्ञा आपीने तैतलिपुत्रे अते पाताना कुल मर्यादा सुअथ पुत्र जन्म होवा पहल दश दिवस

अस्मार्कमेव दारकः कनकरथस्य राज्ये जातः, 'तं' तस्मात् भवतु खलु दारको नाम्ना 'कनकध्वजः' इति । अनन्तरमसौ दारकः क्रमेण वृद्धिं गच्छन् यावद् 'भोगसमर्थे जाए' भोगसमर्थो जातः=तादर्थ्यं प्राप्त इत्यर्थः ॥ सू० ५ ॥

मूलम्—तएणं सा पोट्टिला अन्नया कयाई तैतलिपुत्तस्स अणिट्टा ५ जाया यावि होत्था, नेच्छइ य तैतलिपुत्ते पोट्टि-
लाए नाम गोत्तमवि सवणयाए, किंपुणदरिसंणं वा परि-
भोगं वा ? । तएणं तीसे पोट्टिलाए अन्नया कयाई पुव्वर-
त्तावरत्तेकालंसमयंसि इमेयारुव्वे अज्झरिथिंए जाव संमुपज्जि-
त्था—एवं खलु अहं तैतलिस्स पुर्व्वि इट्टा ५ आसिं इयाणि
अणिट्टा ५ जाया, नेच्छइ य तैतलिपुत्ते मम नाम जाव
परिभोगं वा ओहयमणसंकप्पं जाव झियायंइ । तएणं तैत-
लिपुत्ते पोट्टिलं ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणिं पासंइ,
पासित्ता एवं वयासी—मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयम-
णसंकप्पा जाव झियाहि । तुमं च णं मम महाणसंसि विउल्लं
असणपाणंखाइमसाइमं उव्वखंडावेहि, उव्वखंडावित्तां बहूणं

भारी उत्सव किया । तथा भोजन आदि द्वारा मित्र ज्ञाति द्वारा प्रमुख
जनो का सत्कार सन्मान करके फिर उसने उनके समक्ष इस प्रकार
कहा—यह हमारा पुत्र कनक रथ राजा के राज्य में उत्पन्न हुआ है—इस
लिये यह "कनकध्वज" इस नामसे प्रसिद्ध होवे । इस के बाद यह
पुत्र क्रमशः वृद्धिमान हुआ यावत्—भोग समर्थ हो गया—अर्थात् जवान
युवा-बन गया ॥ सू० ५ ॥

सुधी बारे उत्सव उज्जये। तेमळ लोअन वगेरेथी मित्र ज्ञाति वगेरे प्रमुख
लोडोने सत्कार अर्ने सन्मान करीने तेणु तेअोनी समक्ष आ प्रमाणे कळुं. के
आ आभारे पुत्र राजा कनकरथना राज्यमां उत्सव थये छे अेथी. अे "कनकध्वज"
नामे प्रसिद्ध थाय. त्यार पछी ते कनकध्वज समथ पसारथतां धीमे धीमे मोटो
थतां थावत लोग सार्थ थरु गये अेटके के नुवान थरु गये। ॥ सू० ५ ॥

समणमाहण जाव वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहराहि। तएणं सा पोट्टिला तेतलिपुत्तेणं एवं वुत्तासमाणा हट्टतुट्ठा तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणित्ता, कल्लाकळिल्ल महाणसंसि विपूलं असण जाव दवावेमाणी विहरइ ॥सू०६॥

टीका— 'तएणं' इत्यादि। ततः खलु स पोट्टिला अन्यदा कदाचित् केनापि कारणेन तेतलिपुत्रस्य अनिष्टा, अकान्ता, अप्रिया, अमनोज्ञा, अमनोऽमा जाता चाप्यऽभवत्। नेच्छति च तेतलिपुत्रः पोट्टिलाया नाम गोत्रमपि 'सवणयाए' श्रवणतायै=श्रूयतेऽनेनेति श्रवणं कर्मः, तस्य कर्म श्रवणता तस्यै, श्रवणविषयीकर्तुम् इत्यर्थः किं पुनः तस्या 'दरिसणं वा' दर्शनं वा तथा सहपरिभोगं वा, वाञ्छेत्, अपितु न। ततः खलु तस्याः पोट्टिलाया अन्यदा कदाचित् पुञ्जवत्त्वाव-

तएणं सा पोट्टिला इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा पोट्टिला) वह प्रधानकी स्त्री पोट्टिला (अन्नया कयाइं) किसी समय—कोई निमित्त को लेकर—किसी भी कारण से—(तेतलिपुत्तस्स अणिट्ठा जाया यावि होत्था) तेतलिपुत्र के लिये अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनोम बन गई। (णेच्छइ तेतलिपुत्ते पोट्टिलाए नाम गोत्तमवि सवणयाए किं पुणदरिसणं वा परिभोगं वा) इस प्रकार वह तेतलिपुत्र उस पोट्टिला के नाम गोत्र तक को भी सुनना पसंद नहीं करता तो फिर उसके देखने और परिभोग पास जाने की तो बात ही क्या है। (तएणं तीसे पोट्टिलाए अन्न-

तएणं सा पोट्टिला इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्पार पडी (सा पोट्टिला) ते अमात्थनी पत्नी पोट्टिली (अन्नया कयाइं) डोई वथते गभेते डारणे (तेतलिपुत्तस्स अणिट्ठा ५ जाया यावि होत्था) तेतलि पुत्रने भाटे अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ अने अमनोम थई पडी.

(णेच्छइ तेतलिपुत्ते पोट्टिलाए नाम गोत्तमवि सवणयाए किं पुणदरिसणं वा परिभोगं वा)

अथी तेतलिपुत्र अमात्थने तेत्तुं नाम गोत्र सुद्धां सांभणत्तुं पथु पसंद पडुत्तुं न डुत्तुं त्यादे तेने जेवानी अने तेनी पासे जेवानी तो बात जे शी?

(तएणं तीसे पोट्टिलाए अन्नया कयाइं पुञ्जवत्त्वावकालसमयसि इमेयारूवे

त्तकालसमए' पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=रात्रेः पश्चिमे भागे ' इमेयाख्वे ' अय-
मेतद्रूपः=वक्ष्यमाणप्रकारः ' अज्जत्थिए जाव ' आध्यात्मिकी यावत् मनोगतः
संकल्पः ' समुप्पजित्था ' समुदपघत, संकल्पप्रकारमाह-एवं खलु अहं ' तैतलिस्स '
तैतलेः=तैतलिपुत्रस्यामात्यस्य पूर्वम् इष्टा, कान्ता, प्रिया, मनोज्ञा, मनोऽमा
' आसि '=आसम्, परन्तु ' इयाणि ' इदानीम् अनिष्टा यावद्-अमनोऽमा जाता ।
नेच्छति च तैतलिपुत्रः मम नाम यावत् परिभोगं वा=मम नाम गोत्रमपि श्रोतुं
नेच्छति किंपुन र्मम दर्शनं मया सह परिभोगं वा । इत्यमेवा पोष्टिला ' ओहय-
मणसंकप्पा ' अपहतममः संकल्पा=अपहतो=दुःखावेगवशाद् रुद्धो, मनः संकल्पो=
मानसिको विचरो यस्याः सा, ' जावझियायइ ' यावद् ध्यायति=यावदात्तध्यानं
करोति । ततः खलु तैतलिपुत्रः पोष्टिकापहतमनः संकल्पां ' जाव झियायमाणि '

या कथाइं पुष्पावरत्तकालसमयसि इमेयाख्वे अज्जत्थिए जाव समुप्प-
जित्था) जब पोष्टिलाने अपनी तरफ तैतलि पुत्र अमात्य की इतनी
अधिक उपेक्षा-अनादरता देखी तो एक दिन किसी समय उसे रात्रि
के मध्यभाग में इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प
उत्पन्न हुआ-(एवं खलु अहं तैतलिस्स पुन्नि इट्ठा ५ आसिं, इयाणि
अणिट्ठा ५ जाया नेच्छइ य तैतलिपुत्ते मम नाम जाव परिभोगं वा ओ-
हयमणसंकप्पा जाव झियायइ) में तैतलि पुत्र अमात्य के लिये पहिछे
इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोम थी, परन्तु इस समय मैं-उन्हे
अनिष्ट यावत् अमनोम बन रही हूँ । वे तैतलि पुत्र अमात्य देखने और
परिभोग करने की तो बात कौन कहे मेरे नामगोत्र तक को भी सुनना
पसंद नहीं करते हैं । इस तरह वह अपहतमनसंकल्प होकर यावत्

अज्जत्थिए जाव समुप्पजित्था)

न्यारे अमात्य तैतलिपुत्रने पोष्टिला अे पोताना प्रत्ये आटली अडी
उपेक्षा अने अनादरता जेई त्यारे कोई वधते अेक द्विक्स रात्रिना मध्यला-
गमां तेना मनमां आ नतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न येथा डे

(एवं खलु अहं तैतलिस्स पुन्नि इट्ठा ५ आसिं इयाणि अणिट्ठा ५ जाया
नेच्छइ य तैतलिपुत्ते मम नाम जाव झियायइ)

पडेलां हुं तैतलिपुत्र अमात्यने भाटे छे, कांत, प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम
हती. पणु डमणुं हुं तेमना भाटेअनिष्ट यावत् अमनोम थई पडी'छुं. तैतलि-
पुत्र अमात्य न्यारे भाडुं नाम गोत्र सुद्धां सांलगहुं छेअता नथी त्यारे भारी
साथे जेवानी अने भारी साथे परिभागेनी तो वात न शी करवी ? आ रीते
ते पोष्टिला अपहत मन संकल्प थईने यावत् आतध्यान करती जेडी हती.

यावद् ध्यायन्तीम्=यावद्दार्तध्यानं कुर्वन्ती पश्यति, दृष्ट्वा एवमवदत्-मा खलु त्वं हे देवानुमित्रे ! अपहृतमनः संकल्पा 'जाव द्वियाहिं' यावद्ध्याय=यावद्दार्तध्यानं माकुरु । हे देवि । त्वं च खलु मम 'महाणसंसि' महानसे=भोजनशालायाम् त्रिपुलम् 'असण जाव' अशन यावत्=अशनपान खादिस स्वादिस चतुर्विधमाहारम् 'उक्खड्डावेहि' उपस्कारय, 'उक्खड्डावित्ता' उपस्कार्य 'बहूणं समण माहणं ज्ञाव वणीमगाणं' बहुभ्यः श्रमणब्राह्मण यावद् वनीपकेभ्यः=याचकेभ्यः, स्वयं देयमाणी 'ददती च, अन्यैः 'दवावेमाणी' दापन्ती च विहर । ततः खलु सा

आर्तध्यान कर रही थी-(तएणं तेतलिपुत्ते पोट्टिलं ओहयमणसंकल्पं जाव द्वियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी माणं तुमं देवाणुप्पियां ओहयमणसंकल्पा जाव द्वियाहि, तुमं च णं ममं महाणसंसि विउलं असणपाणं खाइमं साइमं उक्खड्डावेहिं, उक्खड्डावित्ता बहूणं समण माहण जाव वणीपगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहराहि, तएणं सा पोट्टिला तेतलीपुत्तेणं एवं बुत्ता समाणा हट्ट तुट्टा तेयलिपुत्तस्स एयमट्टं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता कल्लाकार्लिल महाणसंसि विपुलं असण जाव दवावेमाणी विहरइ) इतने में तेतलिपुत्र ने उस अपहृतमनः संकल्प होकर आर्तध्यान करती हुई पोट्टिला को देखा-तो देखकर उसने उससे कहा-हे देवानुमित्रे तुम अपहृतमनः संकल्प होकर आर्तध्यान मत करो-तुम तो मेरी भोजनशाला में त्रिपुलमात्रा में अशन, पान, खादिस एवं स्वादिस इस तरह चतुर्विध अहार बनवाओ बनवाकर उसे अनेक श्रमण ब्राह्मण यावत् याचकजनों के लिये स्वयं दो और दूसरों

(तएणं तेतलिपुत्ते पोट्टिलं ओहयमणसंकल्पं जाव द्वियायमाणिं पासइ पासित्ता एवं वयासी माणं तुमं देवाणुप्पिया ओहयमणसंकल्पा जाव द्वियाहि, तुमं च णं ममं महाणसंसि विउलं असणपाणं खाइमं साइमं उक्खड्डावेहिं, उक्खड्डावित्ता बहूणं समणमाहण जाव वणीपगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहराहि तएणं सा पोट्टिला तेतलिपुत्तेणं एवं बुत्ता समाणा हट्टतुट्टा तेयतिपुत्तस्स एयमट्टं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता कल्लाकार्लिल महाणसंसि विपुलं असण जाव दवावेमाणी विहरइ)

आट्टलाभां अपडुत्तमन संकल्प थधने आर्तध्यान करती ते पोट्टिलाने अभ्याय तेतलिपुत्रे जेधं अने जेधने तेने आ प्रभाणु कथुं के-डे देवानुमित्रे ! तये अभ्युत्तमनसंकल्प थधने आर्तध्यान करे नहि-तये मारी जेअत्त शाणाभां जेधने पुक्कण प्रभाणुभां अशन, पान, खादिस अने स्वादिस आत्त आर जतना आडारे अनावडाये अने अनावडावीने तेने धणा श्रमणु ब्राह्मणु

पोड्डिका-तेतलिपुत्रेण 'एवं' पूर्वोक्तप्रकारेण उक्ता सती हृष्टतुष्टा तेतलिपुत्रम्
'एद्यमहुं' एतमर्थम्=अन्नदानरूपमभिप्रायं 'पडिसुमइ' प्रतिश्रुणोति=स्वीकरोति,
पडिसुणित्ता 'प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य, 'करलाकलिं' करवास्ति=प्रतिदिनम्, महा-
नसे विपुलम् 'असण जाव' अशन यावत्=अशनपानखाद्यस्वाद्यं चतुर्विधमाहार-
सुपस्कार्यं ददती च 'दवावेमाणी' दापयन्ती च विहरति ॥ ६ ॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं सुवयाओ नामं अज्जाओ
ईरिया समियाओ जाव गुत्तबंभयारिणीओ बहुस्सुयाओ बहुपरि-
वाराओ पुव्वाणुपुण्विं०चरमाणागामाणुगामं दुइज्जमाणा जेणामेव
तेतलिपुरे णयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, अहापडि-
रुवं उग्गहं उग्गिण्हंति, उग्गिण्हित्ता, संजमेणं तवसा अप्पाणं
भावेमाणिओ विहरंति । तएणं तासिं सुवयाणं अज्जाणं एगे संघा-
डए पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ जाव अडमाणे तेतलिसस
गिहं अणुपविट्ठे । तएणं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ
प्रासइ, पासित्ता, हट्टुट्टा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता, वंदइ,
णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता, विउलं असण जाव पडिलाभेइ, पडि-
लाभित्ता, एवं वयासी—एवं खलु अहं अज्जाओ तेतलिपुत्तस्स पुवं

से दिलवाओ । इस तरह तेतलिपुत्र अमात्यने जब उस पोड्डिला से
कहा—तो वह बहुत अधिक प्रसन्न एवं संतुष्ट हुई । और उमने तेतलि-
पुत्रकी इस बातको मान लिया । मान करके वह प्रतिदिन भोजन शाला
में चारों प्रकार का आहार बनवा कर उसे भ्रमण, माहण आदि जनौके
लिये स्वयं देने लगी और दूसरों से दिलवाने लगी ॥ सू० ६ ॥

यावत् याचकेने पोते आपो अने नीलओने हुकम करीने आपाये. तेतलि
पुत्र अमात्ये न्यारे आ प्रभाषे पोड्डिकाने कहुं त्यारे ते भूणञ्ज प्रसन्न तेभंञ्ज
संतुष्ट थछ गछ अने तेष्से तेतलिपुत्रनी आ वात स्वीकारी वीधी. अने ते
हरदेशे लोभन शाणामां यारे लतना आछारे जनावडावीने श्रमेषु धाद्वेषु
वगेरे ने पोते आछार आपवादागी अने नीलओ द्वारा आपाववा दागी सूई

इट्टा ५ आसि, इयाणि अणिट्टा ५ जाव दंसणं वा परिभोगं वा,
तं तुब्भेणं अज्जाओ सिक्खियाओ बहुनायाओ बहुपढियाओ
बहूणि गामागर जाव आहिंडह बहूणं राईसर जाव गिहाइं
अणुपविसह, तं अत्थि आइं भे अज्जाओ ! केइ कर्हिचि चुन्न-
जोए वा संतजोए वा कम्मणजोए वा हिय उड्ढावणे वा काउ-
डुवणे वा आभियोगिए वा वसीकरणे वा कोउयकम्मे वा
भूइकम्मे वा मूले कंदे छल्ली वल्ली, सिलिया वा गुलिया वा
ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धपुव्वे वा जेणाहं तेतलिपुत्तस्स
पुणरवि इट्टा ५ भवेज्जामि । तएणं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए
एवं वुत्ताओ समाणीओ दो वि हत्थे कन्ने ठवेति ठवित्ता,
पोट्टिलं एवं वयासी-अम्हे णं देवाणुप्पिया ! समणीओ निगं-
थियो जाव युत्तवंभयारिणीओ, नो खल्लु कप्पइ अम्हं एयप्प-
यारं कन्नेहि वि णिसामेत्तए, किमंग पुण उवदिसित्तए वा
आयरित्तए वा ? अम्हेणं तव देवाणुप्पिया ! विचित्तं केवलि-
पन्नत्तं धम्मं पडिकहिज्जामो । तएणं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ
एवं वयासी-इच्छामि णं अज्जाओ ! तुम्हं अंतिए केवलिपन्नत्तं
धम्मं निसामेत्तए, तएणं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए विचित्तं
धम्मं परिकहेति । तएणं सा पोट्टिला धम्मं सोच्चा निसम्म
हट्टुट्टा एवं वयासी-सद्दहामि णं अज्जाओ ! णिगंथं पावयणं
जाव से जहियं तुब्भे वयह, इच्छामि णं अहं तुब्भं अंतिए
पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं पडिवाज्जित्तए, अहासुहं, तएणं

सा पोष्टिला तार्सि अज्जाणं अंतिण् पंचाणुव्वइयं जाव गिहि-
धम्मं पडिवज्जइ, ताओ अज्जाओ वंदइ णमंसइ, वंदित्ता ण-
मंसित्ता पडिविसज्जेइ । तएणं सा पोष्टिला समणोवासिया
जाया जाव पडिलाभेमाणी विहरइ ॥ सू० ७ ॥

टीका—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये सुव्रतानाम
आर्या ईर्यासमिता यावद् गुप्तब्रह्मचारिण्यो बहुश्रुता बहुपरिवाराः ‘पुच्चाणुव्वि’
पूर्वानुपूर्व्यां=तीर्थङ्करपरम्परया विचरन्त्यः ‘जेणामेव’ यत्रैव तेतलिपुरं नगरं तत्रैवो-
पागच्छति, उपागत्य ‘अहापडिरूवं’ यथाप्रतिरूपम्=यथाकल्पम् ‘उग्गहं’
अवग्रहम्=त्रसत्यर्थमाज्ञाम् ‘उग्गिण्हंति’ अवगृह्णन्ति=याचन्ते, अवगृह्य ‘संजमेण’
संयमेन सप्तदशविधेन, ‘तवसा’ तपसा द्वादशविधेन आत्मानं भावयन्त्यो-

‘तेणं कालेणं तेणं समएणं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समयमें
(सुव्वयाओ नामं अज्जाओ ईरिया समियाओ जाव गुत्तवंभयारिणीओ
बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुच्चाणुपुव्वि० जेणामेव तेचलिपुरे णयरेतेणेव
उवागच्छइ) सुव्रता नामकी आर्या तीर्थंकर परंपरा के अनुसार विहार
करती हुई उस तेतलिपुर नगर में आई । ये ईर्यासमिति आदि पांच
समितियों की पालक थीं—गुप्त ब्रह्मचारिणी थीं । बहुश्रुत थी । अनेक
परिवार से युक्त थीं । (उवागच्छित्ता अहा पडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हंति,
उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरंति तएणं

तेणं कालेणं तेणं समएणं इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये
(सुव्वयाओ नामं अज्जाओ ईरिया समियाओ जाव गुत्तवंभयारिणीओ बहुस्सु-
याओ बहुपरिवाराओ पुच्चाणुपुव्वि० जेणामेव तेतलिपुरे णयरेतेणेव उवागच्छइ)
सुव्रता नामकी आर्या तीर्थंकर परंपरा सुव्रत (वहार करती तेतलिपुर
नगरमां आवी ते ईर्यासमिति वगेरे प (पांच) समितिओतुं पावनकरनारी
हती तेभए गुप्त ब्रह्मचारिणी हती, ते बहुश्रुत तेभए धर्मा परिवारे थी
वीटणायेही हती.

(उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हंति, उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा

विहरन्ति । ततः खलु तासां सुव्रतानामार्यागामेकः संघाटकः प्रथमार्या पौरुष्याम्
स्वाध्यायं=सूत्रमूलपठनरूपं करोति, 'जाव अडमाणे' यावदटन्त्याः, यावच्छब्दात्
'द्वितीयस्यां पौरुष्यां सूत्रार्थचिन्तनरूपं ध्यानं करोति, तृतीयस्यां पौरुष्यां
सुव्रतामार्यामापृच्छय उच्चनीचमध्यमकुलेषु गृहसामुदानिकमिक्षार्थमटन् इत्यर्थो
बोध्यः, तेतलेर्गृहमनुभविविष्टः । ततः खलु सा पोष्टिला ताः संघाटकस्था आर्या
एजमानाः पश्यति, दृष्ट्वा, हृष्टतुष्टा आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय वन्दते

तासि सुच्चायाणं अज्जाणं एगे संघाहए पढमाणे पोरिसीए सज्जायंकरेइ,
जाव अडमाणे तेतलिस्स गिहं अणुपविट्ठे) वहां आ करं उन्होंने यथाकल्प
ठहरने की आज्ञा मांगी-मांगकर फिर वे १७ सतरह प्रकारके संयमऔर
'१२ बारह प्रकार के तपसे अपने आपको वासित करती हुई ठहर गईं ।
इन सुव्रता आर्या का एक संघाटक था जो प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय
करता-द्वितीय पौरुषीमें सूत्रार्थका चिन्तनरूप ध्यान करता और तृतीय
पौरुषीमें सुव्रता आर्या की आज्ञासे ऊँच नीच एवं मध्यम कुलोंमें भिक्षा
के लिये अटन करता । इस तरह वह संघाटक (संघाडा)तृतीय पौरुषीमें
इन उच्चादि घरों में भिक्षार्थ अटन करता हुआ तेतलिपुत्र अमात्य के
घर पर आया (तएणं सा पोष्टिला ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पा-
सइ) इनने में उस पोष्टिलाने उन संघाटकस्थ आर्याओं को ज्यों ही
अपने घर पर आया हुआ देखा तो (पासित्ता हट्टतुट्ठा आसणाओ अ-

अप्पणं भावेमाणीओ विहरति तएणं तासि सुच्चायाणं अज्जाणं एगेसंघाहए
प्रहमाणे पोरिसीए सज्जायं करेइ जाव अडमाणे तेतलिस्स गिहं अणुपविट्ठे)
त्यां आर्यानि तेमल्ले यथाकल्प (साधुकल्प प्रमाणे) रडेवानी आज्ञा मांगी अने
त्यारपणी ते १७ नतना संयम अने १२ नतना तप वडे पोतानी नतने
वासित इस्तां ते त्यां शोकाथ. सुव्रता आर्यानि अथ संघाटक इतो वे प्रथम
पौरुषीमां स्वाध्याय इस्ता इतो, द्वितीय पौरुषीमां सूत्रार्थंनु चिन्तन इथ ध्यान
इस्ता अने तृतीय पौरुषीमां सुव्रता आर्यानी आज्ञा भेजवानी छांथा, नीत्था
अने मध्यम कुलोमां गोचरी भाटे जाता इता. आ प्रमाणे ते संघाटक तृतीय
पौरुषीमां उपरोक्त छांथा वगेरे कुलोना धरोमां गोचरी भाटे इस्तां इस्तां
तेतत्रिपुत्र अमात्यने त्यां आये. (तएणं सा पोष्टिला ताओ अज्जाओ एज्ज-
माणीओ पासइ) पोष्टिलाअे न्यारे संघाटकस्थ आर्याअेने पोताने घेर आवेदी
लेथ त्यारे ते (पासित्ता हट्ट तुट्ठा आसणाओ अन्नुददेइ) नेथने ते भूष अ
प्रसन्न थथ अने पोताना आसनथी छेली थथ.

नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा, विपुलमशनपानखाद्यस्वाद्यरूपं चतुर्विधमाहारं
'पडिलाभेइ' प्रतिलम्भयति=ददाति, प्रतिलम्भ्य, एवमवदत्-एवं खलु अहं हे
आर्याः ! तैत्तिलिपुत्रस्य पूर्वमिष्टा, कान्ता, प्रिया, मनोज्ञा, मनोऽमा, आसम्,
परन्तु 'इयार्णि' इदानीम् 'अणिट्वा' जाव दंसर्णं परिभोगं वा' अनिष्टा' यावत्
दर्शनं परिभोगं वा=साम्प्रतं तैत्तिलिपुत्रस्याऽहमनिष्टा अकान्ता, अप्रिया, अमनोज्ञा,
अमनोऽमा जाता, तस्मादेष तैत्तिलिपुत्रो मम नामगोत्रमपि श्रोतुं नेच्छति, किं
पुनर्हं आर्याः ! स मम दर्शनं मया सह परिभोगं वा कथं वाञ्छेत् ? । 'तं तुभ्येणं

व्भुट्टेइ) देखकर वह बहुत अधिक प्रसन्न हुई, और अपने स्थान से
उठी (अव्भुट्टित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता विउलं असण जाव
पडिलाभित्ता एवं वयासी) उठकर उसने उसको वंदना की-नमस्कार
किया । वन्दना नमस्कार करके फिर उसने उन्हें विपुल मात्रा में अशन
पान आदि चतुर्विध आहार दिया-और दे कर वह इस प्रकार कहने
लगी-(एवं खलु अहं अज्जाओ ! तैत्तिलिपुत्तस्स पुव्वं इट्ठा ५ आसि,
इयार्णि अणिट्वा ५ जाव दंसर्णं वा परिभोगं वा-तं तुभ्येणं अज्जाओ
सिक्खियाओ बहुनायाओ बहुपडियाओ बहूणि गामागार जाव अहिं-
डइ, बहूणं राईसरं जाव गिहाइ अणुपविसइ) हे आर्याओ ! पहिले मैं
तैत्तिलिपुत्र अमात्य के लिये बहुत ही इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ एवं
मनोम थी परन्तु अब इस समय मैं उनके लिये अनिष्ट, अकान्त,
अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनोम बन रही हूँ । वे मेरा नाम गोत्र तक
भी सुनना पसंद नहीं करते हैं तो फिर मेरे साथ परिभोग करने की

(अव्भुट्टित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता विउलं असण जाव पडिलाभेइ
पडिलाभित्ता एवं वयासी)

लक्ष्मी धरने तेषु तेभने नमन कर्था. वंदन अने नमन करीने तेषु तेभने
पुष्केण प्रभाषुमां अशन, पान वगेरे आर जतना आहारो आर्या अने
आपीने ते आ प्रभाषु कडेवा लागी इ-

(एवं खलु अहं अज्जाओ ! तैत्तिलिपुत्तस्स पुव्वं इट्ठा ५ आसि, इयार्णि ५
दंसर्णं वा परिभोगं वा तं तुभ्येणं अज्जाओ सिक्खियाओ बहुनायाओ बहुपडि-
याओ बहूणि गामागार जाव अहिंडइ, बहूणं राईसरं जाव गिहाइ अणुपविसइ)

हे आर्याओ ! हूँ पडिला तैत्तिलिपुत्र अमात्यना माटे पूण व धइ, कान्त,
प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम इती पणु डवे हूँ तेभना माटे अनिष्ट, अकान्त,
अप्रिय, अमनोज्ञ अने अमनोम थई पडी छुं. तेओ मारां नाम गोत्र सुद्धां
सांक्षणा धरुत्ता नथी त्थारे मादी सामे परिभोग करवानी अने भने जेवानी

अज्जाओ' इति, तत्=तस्मात् कारणात् यूयं खलु हे आर्याः ! 'सिखियाओ' शिक्षिताः=शिक्षां प्राप्ताः, 'बहुणायाओ' बहुज्ञाताः=अनेकशास्त्रज्ञाननिपुणाः 'बहूपट्टियाओ' बहुपठिताः=नानाविधविद्याकुशलाः स्थः पुनः 'बहूणि ग्रामागर जाव अट्टिह' बहूनि ग्रामाकर यावत् आदिण्ढथ=बहुषु ग्रामाकरनगरादिषु परिभ्रमणं कुरुथ । तथा च 'बहूणं राईसर जाव गिहाइं अणुपविसइ' बहूनां राजेश्वर यावद् गृहाणि अनुपविशथ=हे आर्याः ! यूयं बहूनां राजेश्वर तलवरश्रेष्ठि सेनापत्यादीनां गृहे भवेशं कुरुथ, 'तं' तत्=तस्मात् कारणात् 'अत्थि अइं भे अज्जाओ !' अस्ति अइं युष्माकमार्याः ! 'आइं' इति वाक्यालङ्कारे देशी शब्दः । हे आर्याः ! अस्ति 'केइ कहि चि' कोऽपि कुत्रचित्=युष्माकं ज्ञानविषये 'चुच्चजोए वा' चूर्णयोगो वा=चूर्णानां द्रव्यचूर्णानां योगः, रतम्भनादिकर्मकारी, 'मंतजोए वा' मन्त्रयोगो वा=मन्त्राणां योगो व्यापारो वा वशीकरणादि मन्त्रयोगः 'कम्मणजोए

और देखने की उनकी बात ही क्या कहूँ इस लिये हे आर्याओ ! आप सब तो शिक्षित हैं, बहुज्ञाता हैं—अनेक शास्त्रों के ज्ञानसे निपुण हैं—बहुपठित हैं—नाना प्रकार की विद्याओं में कुशल हैं—अनेक ग्राम, आकर आदि स्थानों में विहार करती रहती हैं, अनेक राजेश्वर आदिकों के घरों में आती जाती रहती हैं (तं अत्थिअइं भे अज्जाओ) तो हे आर्याओ ! (केइ कहि चि चुच्चजोएवा) कहीं कोई चूर्ण योग—द्रव्य चूर्णों का रतम्भनादि कर्मकारी योग (मंतजोए वा कम्मणजोए वा हिय उड्ढावणे वा, काउड्ढावणे वा अभिओगिए वा वसीकरणे वा, कोउयकम्मे वा, भूइकम्मे वा मूले कंदे छल्ली, बल्ली, सिलिया, वा, गुलिया वा, ओसहे वा, भेसज्जे वा, उवलद्वपुच्चे वा जेगाहं तेत्तलिपुत्तस्स पुणरवि इट्ठा ५ भवेज्जामि) मंत्र योग—वशीकरण आदि मंत्रों का

तो बात व कथा रही ? ऐसी ही आर्याओ तमे सी शिक्षिता थे, बहुज्ञाता थे—अनेक के धर्मा शास्त्रों का ज्ञान भी निपुण थे, बहुपठिता थे—अनेक ज्ञान की विद्याओं में कुशल थे, धर्मा गाँव, आकर स्थानों में विहार करतां रहे थे, अने धर्मा राजेश्वर वगैरे का भेटने में आवण करतां रहे थे। (तं अत्थिअइं भे अज्जाओ) तो—हे आर्याओ ! (केइ कहि चिचुच्चजोएवा) कथांके गमे ते चूर्ण योग—द्रव्य चूर्णों का रतम्भनादिकर्मकारी योग,

(मंतजोएवा कम्मणजोए वा हिय उड्ढावणे वा, काउड्ढावणे वा अभिओगिए वा वसीकरणे वा, कोउयकम्मे वा, भूइकम्मे वा मूले कंदे छल्ली बल्ली सिलिया, वा गुलिया वा, ओसहे वा, भेसज्जे वा उवलद्वपुच्चे वा जेगाहं तेत्तलिपुत्तस्स पुणरवि इट्ठा ५ भवेज्जामि)

'वा' कार्मणयोगो वा=उच्चाटनादिकर्मयोगो वा, 'हिय उड्वावणे वा' =हृदयो-
 ड्वायनं वा=चित्कार्पकवस्तुविशेषो वा 'काउड्वायने वा' कायोड्वायनं वा=शरीरा-
 र्पकवस्तुविशेषो वा 'आभियोगिण वा' आभियोगिको वा,=पराभवकरणयोगो
 वा, 'वशीकरणे वा' वशीकरणं वा=वशीकरणयोगो वा, 'कौतुक-
 कर्म वा=सौभाग्यवर्द्धकस्नानादि वा 'भूइकम्मे वा' भूतिकर्म वा=मन्त्राभिमन्त्रित-
 भस्मप्रक्षेपणं वा तथा-औषधीनां 'मूले' मूलम् 'कंदे' कन्दः 'छल्ली' त्वक्
 'बल्ली' लता 'सिलिया वा' शिलिका=तृणविशेषः, 'गुलिया' गुलिका=
 गुटिका 'ओसहे वा' मेसज्जे वा 'औषधं वा' भैषज्यं वा, इत्यादिकं वस्तुजातं
 शुष्माभिः 'उपलब्धपुत्रे' उपलब्धपूर्वम्=मासपूर्वम्, हे आर्याः ! भवत्य एषु किमपि
 उपलब्धपूर्वा अवश्यं भवेयुः, तस्त्रुपया मह्यमर्पय, 'जेणाहं' येनाहम् ; यत्सेवनादहं
 तेतलिपुत्रस्य पुनरपि इष्टा कान्ता प्रियामनोज्ञामनोऽप्या भवेयम् । ततः खलु ता
 आर्याः पोट्टिलाया एवमुक्ताः सत्यो द्वावपि हस्तौ कर्णे स्थापयन्ति, स्थापयित्वा

योग कार्मण योग-उच्चाटन आदि मंत्रो का योग हृदयोड्वायन-
 चित्कार्पक वस्तु विशेष का योग, कायोड्वायन-शरीरार्पक वस्तु
 विशेषका योग, आभियोगिक-पराभव करने का योग, वशीकरण-
 वशीकरण योग, कौतुक कर्म-सौभाग्यवर्द्धक स्नान आदि का योग,
 भूति कर्म-मंत्रादि से अभिमन्त्रित भस्म के प्रक्षेपण करने रूप योग तथा
 औषधियों के मूल, कंद त्वक-छाल तथा लता, शिलिका-तृण विशेष
 गोली, औषध-भैषज्य इत्यादि वस्तुओं का योग आरके देखने में अवश्य
 आया होगा-इस लिये कृपाकर इनमें से कोई न कोई योग आय हमें
 अवश्य-अवश्य प्रदान करें कि जिससे मैं-जिस के सेवन से मैं-तेत-
 लिपुत्र की पुनरपि इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोम बन जाऊँ (तर्पणं
 ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए एवं बुत्ताओ समानीओ दोवि हत्ये कन्ने ठवेति,

मंत्रयोग-वशीकरण वगेरे मंत्रोना योग-कार्पकयोग, उच्चारण वगेरे
 मंत्रोना योग, हृदयोड्वायन-चित्कार्पक वस्तु विशेषना योग, आभियोगिक-
 पराभव करवाना योग, वशीकरण-वशीकरण योग, कौतुककर्म-सौभाग्यवर्द्धक
 स्नान वगेरेना योग, भूतिकर्म-मंत्र वगेरेथी अभिमन्त्रित करीने भस्म
 (राणोडी) तु प्रक्षेपण रूप योग तेमन् औषधीओना भूग, कंद, त्वक (छाल)
 तेमन् लता, शिलिका-तृण विशेष गोणी, औषध, भैषज्य वगेरे वस्तुओना
 योग तनाश नेवामा याक्कस आओ न हसे. ओटला भाटे तमे कृपा करीने
 ओमांथी गमे ते योग मने याक्कस आओ के नेना सेवनथी हुं शरी तेतति-
 पुननी धि, कात, प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम थर्ध लीं.

पोट्टिलाय एवमवदन—वयं खलु हे देवानुप्रिये । श्रमण्यो निर्ग्रन्थयः, बाह्याभ्यन्तरग्रन्थि-
रहिताः, यावद् शुभ्रब्रह्मचारिण्यः, नो खलु कल्पतेऽस्माकम् ' एयप्पयारं ' एतत्प्र-
कारं=करणोरपि 'णिसामेत्तए' निशामयितुं=श्रोतुं न कल्पत इति पूर्वेण सम्बन्धः ।
' अङ्ग इति सम्बोधने ' हे पोट्टिले ! किं=कथं पुनः ' उवदिसित्तए वा ' उपदेशदुम्
वा, स्वयम् ' आयरित्तए वा ' आचरितुं वा कल्पते । न कल्पतइत्यर्थः, वयं खलु
तव हे देवानुप्रिये ! विचित्रं केवलपन्नत्तं धर्मं परिकथयामः । ततः खलु सां पोट्टिला

ठावित्ता पोट्टिलं एवं वयासी-अम्हेणं देवाणुप्पिया ! समणीओ निग्गंथीओ
जाव गुत्तवंभयारिणीओ, नो खलु कप्पइ अम्हं एयप्पयारकन्नेहि वि
निसामित्तए किमंग उवदिसित्तए वा, आयरित्तए वा । अम्हं णं तव
देवाणुप्पिया ! विचित्तं केवलपन्नत्तं धम्मं पडिकहिज्जामो) इस प्रकार
उस पोट्टिला के द्वारा कहीं गईं उन आर्याओं ने अपने दोनों कानोंपर
हाथ रख लिये—और रख कर पोट्टिला से इस प्रकार कहने लगीं—हे
देवानुप्रिये ! हम तो निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ हैं, नव कोटि से पूर्ण ब्रह्मचर्यको
हम पालती हैं । हमें तुम्हारी ऐसी बातें कानों से सुनना भी कल्पित
नहीं हैं तो फिर हे पुत्रि ! हम इनका उपदेश तुम्हें कैसे दे सकते हैं—
और स्वयं भी इनका आचरण कैसे कर सकता हैं । अर्थात् इन बातों
का उपदेश देना और स्वयं इनको अपने आचरण में लाना यह सब
हमारे कल्प के अनुसार निषिद्ध है । हम तो हे देवानुप्रिये ! तेरे हितके

(तएणं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए एवंवुत्ताओ समाणीओ दो वि हत्थे कन्ने
ठवेंति, ठावित्ता पोट्टिलं एवं वयासी अम्हेणं देवाणुप्पिया ! समणीओ निग्गंथीओ
जाव गुत्तवंभयारिणीओ, नो खलु कप्पइ अम्हं एयप्पयारकन्नेहि वि निसामित्तए
किमंग उवदिसित्तए वा, आयरित्तए वा । अम्हं णं तव देवाणुप्पिया ! विचित्तं
केवलपन्नत्तं धम्मं पडिकहिज्जामो)

आ प्रभाषे पोट्टिलाणी वात सांलणीने ते आर्याओओ चोत्ताना अने
धाने उपर हाथ भूझी दीधा अने भूझीने ओभ कडेवा लागी डे देवानुप्रिये !
अमे तो निर्ग्रन्थ श्रमण्योओ छीओ नववास सडित्त ग्रह्यचर्यनुं अमे पालन
करीओ छीओ । हे पुत्रि ! तभारी ओवी वाने अभारा माटे कानधी सांलग्गवी
पणु येओय लेभाय नडि त्यारे तेना विशेषे उपदेशनी वात तो साव अयोग्यण
छे. अमे आ विशेषे तमने कोध पणु नतने उपदेश पणु आपी शक्यीओ नही
तो पथी नते आनुं आचरणु केवी रीते करी शक्यीओ ? ओट्टे के आ भाष-
तने उपदेश आपवे तेमण चोते आनुं आचरणु करवुं ते अणुं अभारा कट्ट

ता आर्याः एववादीत्-इच्छामि खलु हे आर्याः ! युष्माकमन्तिके केवलप्रज्ञसं धर्मं निशामयितुम्=श्रोतुम् । ततः खलु सा पोट्टिला धर्मं श्रुत्वा ' निसम्म ' निशम्य=हृदयेनाधार्यं हृष्टतुष्टा एववादीत्-श्रद्धामि खलु हे आर्याः ! नैर्ग्रन्थयं प्रवचनं यावत् ' से ' तत् तथैव यथैतद् यूयं वदथ । हे आर्याः ! ' इच्छामिणं ' इच्छामि खलु अहं युष्माकमन्तिके ' पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं ' पञ्चाणुव्वतिकं यावत् गृहिधर्मं ' पडिवज्जित्तए ' प्रतिपत्तुं=स्वीकर्तुम् । अनन्तरं ता आर्या एववा-

लिये विचित्र केवल प्रज्ञप्त धर्मका उपदेश कहते हैं (सो तू सुन)- (तएणं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एवं वयासी इच्छामि णं अज्जाओ ! तुम्हें अंतिए केवलप्रज्ञत्ते धम्मं निसामेत्तए-तएणं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए विचित्तधम्मं परिकहेति) उनकी इस प्रकार बात सुन कर उस पोट्टिलाने उनसे कहा-हे आर्याओ ! मैं आप लोगों के मुख से केवल प्रज्ञप्त धर्म सुनना चाहती हूँ । पोट्टिला की ऐसी प्रार्थना सुन कर उन आर्याओं ने उस पोट्टिला के लिये विचित्र केवल प्रज्ञप्त धर्म सुनाया (तएणं सा पोट्टिला धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टतुट्टा एव वयासी) उन के मुखसे केवल प्रज्ञप्त धर्म सुन कर और उसे अपने हृदयमें अवधृत कर अत्यन्त हर्षित एवं संतुष्ट हुई उस पोट्टिलाने उनसे ऐसा कहा (सद्दहामि णं अज्जाओ ! णिग्गंथं पावयणं जाव से जहियं तुव्वे वयह, इच्छामि णं अहं तुव्वं अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए-अहासुहं, तएणं सा पोट्टिला तासि अज्जाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं

सुखं अथोअथ गणाय छे । हे देवानुप्रिये । अमे तो तारा छित माटे विचित्र केवलिप्रज्ञप्त धर्मना उपदेश आपीअे छीअे तेने तुं सांलण.

(तएणं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एवं वयासी इच्छामि णं अज्जाओ ! तुम्हें अंतिए केवलप्रज्ञत्ते धम्मं निसामेत्तए-तएणं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए विचित्त धम्मं परिकहेति)

तेमनी आ नतनी वात सांलणीने ते पोट्टिलाअे तेमने अेम कळुं के हे आधीअे ! तभारा सुअधी हुं केवणी प्रज्ञप्त धर्मने सांलणवा धअुं छुं । पोट्टिलानी अेवी विनंती सांलणीने ते आधीअेअे तेने विचित्र केवलि-प्रज्ञप्त धर्मने उपदेश आपीअे । (तएणं सा पोट्टिला धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ट-तुट्टा एव वयासी) तेमना सुअधी केवणी प्रज्ञप्त धर्मतुं श्रवणु करीने तेने हृदयभां धारणु करीने अण अे हर्षित अने संतुष्ट थती ते पोट्टिलाअे तेमने अेम कळुं के

(सद्दहामिणं अज्जाओ ! णिग्गंथं पावयणं जाव से जहियं तुव्वे वयह, इच्छामि णं अहं तुव्वं अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए-अहा-

दिषुः—‘अहासुहं’ यथा सुखं, हे देवानुप्रिये ।। ततः खलु सा पोष्टिला तासामार्याणामन्तिके पश्चाणुव्रतिकं यावद् गृह्णधर्मं प्रतिपद्यते, पुनस्ता आर्या वन्दते नमस्वति, वन्दित्वा नमस्वित्वा प्रतिविसर्जयति । ततः सा पोष्टिलाश्रमणोपासिका जाता, ‘जात्र पड्डिलाभेमाणि’ यावत् प्रतिलम्भयन्ती—निर्ग्रन्थेभ्यः श्रमणेभ्यः श्रमणीभ्यश्च चतुर्विधमाहारं ददती विहरति ॥ मु० ७ ॥

जात्र गिह्णधर्मं पड्डिवज्जेइ, ताओ अज्जाओ वंदइ, णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता पड्डिविसज्जेइ) हे आर्याओ ! मैं इस निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ यावत् ऐसा मानती हूँ कि यह निर्ग्रन्थ प्रवचन जैसा आप कहती है वैसा ही है । अतः हे आर्याओ ! अब मैं आपके पास पंचाणु व्रत सात शिक्षाव्रत आदि रूप १२ बारह प्रकार का गृहस्थ धर्म को धारण करना चाहती हूँ । इस तरह पोष्टिला की भावना जान कर उन आर्याओं ने उससे कहा—यथा सुखं देवानुप्रिये ! तुझे जिस तरह सुख हो वैसा तू कर—श्रयस्कर कार्यमें विलम्ब करना योग्य नहीं है—इस प्रकार उन आर्याजनोंकी आज्ञा प्राप्त कर उस पोष्टिलाने उन्हीं आर्याओं के पास से श्रावकधर्म पंच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रतोंको धारण कर लिया । इस प्रकार श्रमणोपासिका बनी हुई उस पोष्टिला ने उन आर्याओंको वन्दना एवं नमस्कार की—वन्दना नमस्कार करके फिर उन्हें विसर्जित कर दिया । (तएणं सा पोष्टिला समणोवासिया जाया जात्र पड्डि-

सुहं, तएणं सा पोष्टिला तस्मिं अज्जाणं अंतिए पंचाणुवज्जियं जात्र गिह्णधर्मं पड्डिवज्जेइ, ताओ अज्जाओ वंदइ, णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता पड्डिविसज्जेइ)

हे आर्याओ ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन उपर हुं श्रद्धा करूं छुं, यावत् आ निर्ग्रन्थ प्रवचन नेतुं नमे क्खो छे तेतुं न छे, अथी हे आर्याओ ! डवे हुं तमारी पासेथी पांच अणुव्रत वगेरेने गृहस्थ-धर्म धारण करवा धम्मं छुं, आ रीते पोष्टिलाना विचारे वाणीने ते आर्याओअे तेने क्खुं के ‘यथासुखम्’ अएवे के हे देवानुप्रिये ! तने नेमां सुण प्राप्त थाय तेम तुं कर सारः अभमां विदंण करवे नेधअे नडि, आ प्रभाणु ते आर्याओनी आज्ञा भेजवीने ते पोष्टिलाअे ते आर्याओनी पासेथी श्रावक-धर्म-पांच अणुव्रतोअे अने सात शिक्षाव्रतो—ने धारण करी लीधो, आ रीते श्रमणोपासिका अर्थ गयेथी ते पोष्टिलाअे ते आर्याओने वंदन तेनअे नमन कर्या अने वंदन तथा नमन करीने तेमने विदाय आपी (तएणं सा पोष्टिला समणोवासिया जाया जात्र पड्डिआभेमाणो विहरइ) आ रीते श्रमणोपासिका अर्थ गयेथी ते पोष्टिला

मूलम्—तएणं तीसे पोट्टिलाए अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावर-
त्तकालसमयंसि कुडुवजागरियं जागरमाणीए अयसेयारूवे
अज्झरिथए जाव समुप्पन्ने। एवं खलु अहं तेयलिपुत्तस्स पुठिव
इट्ठा ५ आसि, इयाणिं अणिट्ठा ५ जाव परिभोगं वा, तं सेयं
खलु मम सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए, एवं संपेहेइ,
संपेहित्ता, कल्लं जाव पाउप्पभायाए जेणैव तेयलिपुत्ते तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, करयलपरिग्गहियं दसनहं
सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी — एवं खलु
देवाणुप्पिया ! मए सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए धम्ममे णिसंते
जाव अब्भणुन्नाया पव्वइत्तए । तएणं तेयलिपुत्ते पोट्टिले एवं
वयासी—एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! मुंडा पव्वइया समाणी
कालमासे कालं किञ्चा अन्नतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उवव-
ज्जिहिसि, तं जइ णं तुमं देवाणुप्पिए ! ममं ताओ देवलो-
याओ आगम्म केवलि पन्नत्ते धम्ममे वोहेहि, तोहं विसज्जेमि,
अह णं तुमं ममं ण संबोहेसि, तो ते ण विसज्जेमि । तएणं
सा पोट्टिला तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ । ततः खलु तैत-
लिपुत्ते विपुलं असणं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता, मित्तगाइ
जाव आमंतेइ, आमंतित्ता, जाव सम्माणेइ, सम्माणित्ता, पो-
ट्टिलं णहायं जाव पुरिससहस्सवाहिणि सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता,

लाभेयणी विहरइ) इस प्रकार श्रमणोपासिका बनी हुई वह पोट्टिला
निर्ग्रन्थ श्रमणजनोंको एवं निर्ग्रन्थ श्रमणियों को दान-चारों प्रकार का
आहार देती हुई अपना समय व्यतीत करने लगी ॥ सू० ७ ॥

निर्ग्रन्थ श्रमणो अने निर्ग्रन्थ श्रमणीयोने दात-चारो जतना आहारो-आपती
पोतानो यथत पसार करवा लागी. ॥ सूत्र " ७ " ॥

मित्तणाइ जाव संपरिवुडे सविविडिए जाव रवेणं तेयलिपुरस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छइ । पोडिला सीयाओ पच्चोरुहइ । तेतलिपुत्ते पोट्टिलं पुरओ कहु जेणेव सुव्वया अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम पोडिला भारिया इट्ठा ४, एसणं संसारभउव्विगा जाव पव्वइत्तए, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणीभिकखं अहा-सुहं वा पडिबंधं करेहि । तएणं सा पोडिला सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवंबुत्ता समाणा हट्ठुट्ठा उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता, सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता, जेणेव सुव्वयाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता, एवं वयासी—आलित्ते णं भंते ! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ, बहूणि वासाणि सामन्नपरियाणं पाउणइ, पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं ज्ञोसेत्ता सडि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता, आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अणत्तरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववणणा ॥सू०८॥

टीका—‘तएणं तीसे’ इत्यादि । ततः खलु तस्याः पोडिलायाः ‘पुव्व-रत्तावरत्तकालसमयसि’ पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=रात्रेः पश्चिमेभागे ‘कुडुवं जाग-

तएणं—‘तीसे पोडिलाए’ इत्यादि ।

टीकार्थे (तएणं) इमके बाद (तीसे पोडिलाए) उस पोडिला के जय एक बह (अन्नया कयाइं) किमी एक दिन (पुव्वारत्तकालसमय-)

‘तएणं—तीसे पोडिलाए’ इत्यादि ॥

टीकार्थे—(तएणं) त्पार पछी (तीसे पोडिलाए) ते येट्टिदाने-के न्यारे ते (अन्नया कयाइं) केथ अेक दिवसे (पुव्वारत्तकालसमयसि) रात्रिना

रियं जागरमाणीए' कुडुम्बजागरिकां जाग्रत्या अयमेतद्रूप 'अञ्जलित्थिए जाव' आध्यात्मिको यावत्=आध्यात्मिकः=आत्मगतो यावन्मनोगतः संकल्पः समुत्पन्नः । संकल्पप्रकारमाह-एवं खलु अहं तैतलिपुत्रस्य पूर्वम् इष्टा कान्ता प्रिया मनोज्ञा मनोऽमा आसम्, इदानीमनिष्टा, अकान्ता, अप्रिया, अमनोज्ञा, अमनोऽमा यावत् परिभोगं वा । अस्याभिप्रायः-अहो मनुष्याणां मनोवृत्तेरस्थिरतो । पूर्वं यस्याहम् इष्टा कान्ता प्रियाऽदिकाऽसम्, सैवाहमस्यानिष्टाऽकान्ताऽप्रियादिका जाताऽस्मि । अयं तैतलिपुत्रो मम नाम गोत्रश्रवणमपि नेच्छति किं पुनर्ममदर्शनं मया सह परिभोगं वाञ्छेत् अपितु नेत्यर्थः । 'तं' तत्=तस्मात्कारणात् 'सेयं'

यंसि) रात्रि के पिछले भागमें (कुडुम्बजागरियं-जागरमाणीए अयमेया-रुवे अञ्जलित्थिए जाव समुत्पन्ने) कुडुम्ब की चिन्ता से जाग रहा थी इस प्रकार का आध्यात्मिक यावन्मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ-(एवं खलु अहं तैतलिपुत्रस्स पुर्व्वि इद्वा ५ आसि इयाणि अणिद्वा ५ जाव परिभोगं वा, तं सेयं खलु मम सुववयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए) में पहिले तैतलिपुत्र को बहुत ही अधिक इष्ट, कान्त प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोम थी-परन्तु अब मैं ऐसी नहीं रही हूँ-अनिष्ट आदि बन गई हूँ । और बातों की बात ही क्या है-वे तो अब मेरा सुख तक नहीं देखना चाहते हैं-देखो मनुष्यों की मनोवृत्ति कितनी अस्थिर है-पूर्व में जिसे इष्ट, कान्त, प्रिय, आदि रूप थी-अब वही मैं उसके लिये अनिष्ट अप्रिय आदि बन गई हूँ । यह तैतलिपुत्र तो मेरा नाम गोत्र तक भी सुनना नहीं चाहता है तो फिर मेरे साथ रहने की तो चाहना ही

आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उद्भव्ये ३

(एवं खलु अहं तैतलिपुत्रस्स पुर्व्वि इद्वा ५ आसि इयाणि अणिद्वा ५ जाव परिभोगं वा तं सेयं खलु मम सुववयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए)

पडेलों हुं तैतलिपुत्रने भूअण् छष्टांत, प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम डती पणु डवे हुं तेमना म.टे तेवी रही नथी अनीष्ट वगेरे थध पडी छुं. मारी साथे वातथीतणी वात तो दूर रही पणु तेज्जा भाई भों पणु जेवा भागता नथी मेरपर पुरुषोनी मनोवृत्ति डेटवी जधी यथण डोय छे ? जेने पडेलों जे हुं छण्ट, क्षात, प्रिय, वगेरेना इपम! डती, डवे तेने तेण हुं अनिष्ट अप्रिय वगेरे थध पडी छुं आ तैतलिपुत्र मारा नाभगेत्र सुद्धां सांलगवा भागता नथी त्यारे अने जेवानी अने मारी साथे रहेवानी तो तेमने पाछवा पडोरभां (कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारुवे अञ्जलित्थिए जाव समुत्पन्ने) धर-गृहस्थीना विचारधरती जग्गी रही डती त्यारे-आ जततो

भेयः=उचितं खलु मम सुव्रतानामार्याणामन्तिके प्रव्रजितुम्, एवं संप्रक्षते=विचार-
यति, संप्रेक्ष्य=विचार्य 'कल्लं जाव पाउप्पभायाए' कल्लं यावत् प्रादुब्भयाता-
याम्=मातः सूर्योदयसमये यत्रैव तेतलिपुत्रस्तत्रैव उपागच्छति उपागत्य 'करयल-
परि०' करतलपरीगृहीतं मन्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवदत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय !-
मया सुव्रतानामार्याणामन्तिके धर्मः 'णिसंते' निशान्तः=श्रुतः, 'जाव अब्भणु

उसे कैसे हो सकती है। इस लिये मुझे अब यही उचित है कि मैं
सुव्रता आर्यिका के पास प्रव्रजित हो जाऊँ। (एवं संपेहेइ, संपेहिताः
कल्लं जाव पाउप्पभायाए जेणेव तेयलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ) इस
प्रकार जब वह विचार कर चुकी तो विचार करके फिर जब प्रातःकाल
हुआ और सूर्य का उदय हो चुका तब जहाँ तेतलिपुत्र था वहाँ पहुँची
(उवागच्छिता करयल० एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए
सुव्वयारणं अज्जाणं अंति ए धम्मं णिसंते जाव अब्भणुत्ताया पव्वइत्ताए,
तएणं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी-एवं खलु-तुमं देवाणुप्पिए !
मुंडा पव्वइया समाणी कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु
देवत्ताए उववज्जिहिसि, तं जइ णं तुमं देवाणुप्पिए ! ममं ताओ देवलो-
याओ आगम्म, केवल्लिपन्नत्ते धम्मं वोहेहि तो हं विसज्जेमि) वहाँ जा
कर उसने दोनों हाथ जोड़ कर उस की नमस्कार किया-बाद में वह
इस प्रकार उससे कहने लगी है देवानुप्रिय ! बात ऐसी है कि मैंने

हरकार व शी डोय ? अथी भने डवे अए थोय्य दागे छे डे डुं सुमता
आर्यिकाओनी पासे प्रव्रजित थध नई.

(एवं संपेहेइ, संपेहिता कल्लं जाव पाउप्पभायाए जेणेव तेयलिपुत्ते तेणेव
उवागच्छइ)

आ शीते न्यारे तेहे थोक्कस विचार करी दीधी त्यारे ते सवारे सूर्योदय
थता न्यां तेतलिपुत्र अमात्य छतो, त्यां पडोंची

(उवागच्छिता करयल० एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए सुव्व-
यारणं अज्जाणं अंति ए धम्मं णिसंते जाव अब्भणुत्ताया पव्वइत्ताए, तएणं तेयलिपुत्ते
पोट्टिलं एवं वयासी-एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! मुंडा पव्वइया समाणीकालमासे
कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जिहिसि तं जइणं तुमं देवाणु-
प्पिए ! ममं ताओ देवलोयाओ आगम्म, केवल्लिपन्नत्ते धम्मं वोहेहि तो हं विसज्जेमि)

त्यां न्धने तेहे तेभने भने डाय न्धेदीने नभरकार कथां भने त्थारपथी
ते आ प्रभाणे कडेवा लागी डे डे देवानुप्रिय ! भे' सुमता आर्यांनी पासेथी

णाया पञ्चदशे' यावदभ्यनुज्ञाता प्रव्रजितुम्—स धर्मो मम मनसि रुचितः तस्माद् भवताऽभ्यनुज्ञातासती प्रव्रजितुमिच्छामीतिभावः । ततः खलु तैत्तलिपुत्रः पोट्टिला-
वेवमवदत्—एवं खलु त्वं देवानुप्रिये ! मुण्डा प्रव्रजिता सती कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया उपपत्स्यते । ' तं ' तदा यदि खलु त्वं देवानु-
प्रिये ! मां ततो देवलोकादागत्य केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं बोधयेः, ' तोहं ' तदाऽहं त्वां ' विसज्जेमि ' प्रव्रजितुमाज्ञापयामि । 'अहं णं' अथ खलु यदि खलु त्वं मां 'णं संबो-
हेसि' न संबोधयसि=केवलिप्ररूपितं धर्मं बोधयितुं प्रतिज्ञानं करोषि ' तो ' तदा ' ते ' त्वां न विसज्जामि=प्रव्रजितुं नाज्ञापयामि । ' तएणं ' ततः खलु=तैत्तलिपुत्रस्य ' एतद्वचनश्रवणानन्तम्, सा पोट्टिला तैत्तलिपुत्रस्य ' एयमट्ठं ' एतमर्थं=धर्मं प्रति बोधनरूपमर्थं ' पडिसुणेइ' प्रतिश्रृणोति=स्वीकरोति । ततः खलु तैत्तलिपुत्रो विपुलमशनपानखाद्यस्वाद्यं चतुर्विधमाहारम्, ' उवक्खडावेइ' उपस्कारयति= निष्पादयति, ' उवक्खडावित्ता' उपस्कार्यं ' मित्तणाइ जाव आमंतेइ' मित्रज्ञाति

सुव्रता आर्यिका के पास धर्म का उपदेश सुना है वह धर्म मुझे बहुत ही अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ है । इस लिये मैं आपसे आज्ञा लेकर दीक्षित होना चाहती हूँ । पोट्टिला की ऐसी बात सुन कर तैत्तलिपुत्रने उससे कहा—देवानुप्रिये ! बात ऐसी है कि तुम दीक्षित हो कर जब काल अबसर काल करोगी (यह निश्चित है) अन्यतर देवलोक में देवता की पर्याय से उत्पन्न होओगी—तब यदि देवानुप्रिय ! मुझे वहांसे आ कर तुम केवलिप्रज्ञप्त धर्म समझाओ—तो मैं तुम्हें प्रव्रजित होने के लिये आज्ञा दे सकना हूँ (अहं णं तुमं ममं णं संबोहेसिं तो ते ण विस-
ज्जेमि तएणं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, ततः खलु तेयलिपुत्ते विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ जाव

धर्मो उपदेश सांलण्ये छे अने ते भने गभी गये छे, अेट्ठा भाटे हुं' तभारी आज्ञा भेगवीने दीक्षा अडणु करवा धम्मं छुं' पोट्टिलानी आ नतनी बात सांलणीने तैत्तलिपुत्रे तेने कहुं छे छे देवानुप्रिये । तमे दीक्षित अधने न्यारे काणना समये काण करशे अने अन्यतर देवलोकमां देवताना पर्यायथी जन्म पाभशे। त्यारे ने तमे छे देवानुप्रिये । त्याथी आवीने भने केवणि प्रज्ञप्त धर्मं समज्जे तो हुं' तभने अत्यारे पुरीथी प्रवणत थवानी आज्ञा आयी शकुं तेम छुं' ।

(अहं णं तुमं ममं णं संबोहेसिं तो ते ण विसज्जेमि तएणं सा पोट्टिला तेयलि-
पुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, ततः खलु तैत्तलिपुत्ते विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ,
उवक्खडावित्ता, मित्तणाइ जाव आमंतेइ, आमंतेत्ता, मित्तणाइ सम्भाणित्ता पोट्टिलं

यावदामन्त्रयति, मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिपरिजनान् आमन्त्रयति, 'आमंत्रित्ता' आमन्त्र्य 'जाव संमाणेइ' यावत्-संमानयति=अशनपानादि चतुर्विधाहारेण संमान्य, 'पोट्टिलं पहायं जाव पुरिससहस्सवाहिणिं सीअं' पोट्टिलां स्नातां यावत् पुरुषसहस्रवाहिनीं शिविकाम्, 'दूरोहेइ' दूरोहयति=आरोहयति, 'दुरुहित्ता'

आमंतेइ आमंत्रित्ता जाव सम्माणेइ, सम्माणित्ता पोट्टिलं पहायं जाव पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता मित्तणाइ जाव संपडि-बुडे सत्विड्डीए जाव रवेणं तेयलिपुरस्स मज्झं मज्जेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छइ) यदि तुम मुझे संबोधित नहीं करोगी अर्थात् केवल प्रज्ञप्त धर्म को मुझे समझाने की प्रतिज्ञा नहीं करोगी तो मैं तुम्हें दीक्षित होने की आज्ञा नहीं दूंगा—इस प्रकार के तैतल्लिपुत्रके इस कथनको उस पोट्टिलाने स्वीकार कर लिया। अर्थात् मैं देवलोक में जाऊंगा तो वहां से आ कर आप को प्रतिबोध दूंगी इस प्रकार जब पोट्टिला ने स्वीकार कर लिया। इस के बाद तैतल्लिपुत्र ने विपुल मात्रा अनशनादि रूप चारों प्रकार का आहार निष्पन्न करवाया—करवा करके फिर उसने अपने मित्र, ज्ञाति, आदि जनो को आमंत्रित किया। मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबन्धी परिजनोंको आमंत्रित करके यावत् अशन पाना-दिरूप इस चतुर्विध आहार से उनका सन्मान करके उसने पोट्टिलाको स्नान करवा कर यावत् उसे पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका पर बैठाया,

पहायं जाव पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहइ दुरुहित्ता मित्तणाइ जाव संपडिबुडे सत्विड्डीए जाव रवेणं तेयलिपुरस्स मज्झं मज्जेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छइ)

जे तमे भने स'आधशो नडि अेटवे डे जे तमे भने डेवणि प्रज्ञप्त धर्म'ने समभववानी प्रतिज्ञा करशो नडि तो तमने हुं' काष्ठपणु स'नेगोमां पणु दीक्षा स्वीकारवानी आज्ञा आपीश नडि. आ रीते कडेवाथी पोट्टिलाअे तैतल्लिपुत्रना कथनने स्वीकारी लीधुं अेटवे डे पोट्टिलाअे तेभने आ प्रभाणु प्रतिज्ञाअर्थ थधने कहुं डे हुं' देवलोकमां न'धश अने त्यांथी आवीने तमने धर्म'ने गोध आपीश. आम न्यारे पोट्टिलाअे स्वीकारी लीधुं त्यारपणी तैतल्लिपुत्रे पुष्कण प्रभाणुमां अशन वगेरेना इपमां आर नतना आहादेशे अनावडाअ्या अने त्यारणाह तेणु पौताना मित्र, ज्ञाति, वगेरे ररअनेने आमंत्रणु आपीथुं. मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबन्धी परिअनेने आमंत्रणु आपीने यावत् अशन-पान वगेरे आर नतना आहादेशी तेमहुं सन्मान करीने तेणु पोट्टिलाने स्नान करावडाअुं अने यावत् तेने पुरुष सहस्रवाहिनी पालपीमां जेसाडी.

दूरोह=आरोह 'मिच्छणाह जाव संपरिखुडे' मित्रज्ञाति यावत् संपरिहृतः=मित्र-
ज्ञातिस्वजनसम्बन्धिपरिजनादिभिर्भुक्तः 'सन्निवृद्धीए' सर्वद्वर्था 'जाव रवेण'
यावद्रवेण=भेयीदिनिनादेन सह तैतलिपुरस्य मध्यमध्येन यत्रैव सुव्रतानामुपाश्रय-
स्तत्रैव उपागच्छति । सा पोट्टिला शिविकातः 'पचोरुहइ' प्रत्यवरोहति=अवतरति ।
ततः स तैतलिपुत्रः पोट्टिलां पुरतः कृत्वा यत्रैव सुव्रता आर्या तत्रैव उपागच्छति,
उपागत्य, वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवदत्-एवं खलु हे
देवानुप्रियाः मम पोट्टिलाभार्या इष्टा कान्ता प्रिया मनोज्ञा मनोऽमा, वर्तते,

बैठा कर मित्र, ज्ञाति स्वजन संबन्धी परिजनो से युक्त होकर अपनी
समस्त विभूति के अनुसार गाजे बाजेके साथ तैतलिपुर नगर के बीचों-
बीच चल कर वह जहाँ सुव्रता आर्यिका का उपाश्रय था वहाँ पहुँचा ।
(पोट्टिला सीयाओ पचोरुहइ, तैतलिपुत्रे पोट्टिलं पुरओ कट्टु जेणेव
सुव्वया अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, वंदइ नमंसइ वंदित्ता
नमंसित्ता एवं वयासी, एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम पोट्टिला भारिया इह्वा
५ एसणं संसारभउव्विग्गा जाव पव्वइत्तए पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया !
सिस्सिणीभिकखं अहासुहं मा पडिबंधं करेहि) पोट्टिला शिविका से
उतरी-तैतलिपुत्र पोट्टिलाको आगे करके जहाँ सुव्रता आर्यिका थी वहाँ
गया । जा कर उसने उनको वंदनाकी नमस्कार किया । वंदना नमस्कार
करके फिर इस प्रकार कहने लगा हे देवानुप्रिये ! यह मेरी पोट्टिला नाम
की पत्नी है । यह सुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोम है । इसने

पादणीमां भेक्षादीने मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबन्धी परिव्राने स.थे वधने
ते योतानी समस्त विभूति सुव्वया शाब्दवाब्दानी साथे तैतलिपुर नगरानी
पचोरुहइय थधने न्यां ते सुव्रता आर्यिकाने उपाश्रय हुतो त्यां पडोअथे.
(पोट्टिला सीयाओ पचोरुहइ, तैतलिपुत्रे पोट्टिलं पुरओ कट्टु जेणेव सुव्वया अज्जाओ
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी एवं
खलु देवाणुप्पिया ! मम पोट्टिला भारिया इह्वा ५ एसणं संसारभउव्विग्गा जाव
पव्वइत्तए पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणीभिकखं अहासुहं मा पडिबंधं करेहि)
पोट्टिला पादणीमांथी नीचे उतरी पडी, तैतलिपुत्र अभात्य पोट्टिलाने
आगण राणीने न्यां सुव्रता आर्यिका हुती त्यां गथे. त्यां नधने तेखे तेभने
वंदना तेभन्न नमस्कार कर्यां, वंदना अने नमस्कार करीने तेखे आ प्रभाखे
कथुं के डे देवानुप्रिये ! आ पोट्टिला नामे भारी पत्नी छे. भने अे छिट्ठांत,
प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम छे. अेखे तभारी पासैथी धर्मंतुं श्रवणु कथुं छे

एषा खलु भवतीनां समीपे धर्मं श्रुत्वा, धर्मश्रवणजनितवैराग्यवशात् संसारभयौ-
द्विग्ना ' जात्र पञ्चइत्तए ' यावत् प्रव्रजितुम् भीता जन्म मरणेभ्यो भवतीनामन्तिके
प्रव्रजयां ग्रीहीदुमिच्छति, तस्मात् ' पडिच्छंनु ' प्रतीच्छन्तु=स्वीकुर्वन्तु खलु देवानु-
प्रियाः । इमां शिष्याभिक्षाम्, सुव्रतार्यां प्राह-यथासुखम् मा प्रतिबन्धं कुरुष्व ।
ततः खलु सा पोट्टिला सुव्रताभिरार्याभिरेवमुक्ता सती हृष्टतुष्टा उत्तरपौरस्त्यं
दिग्भागम्=ईशानकोणम् अवक्राम्यति=गच्छति, अवक्रम्य स्वयमेव आभरणमालया-
लंकारमवमुञ्चति, अवमुच्य स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा यत्रैव सुव्रता
आर्यास्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमव-
दत्- ' आलिच्छेणं भंते ! लोए ' आदीप्तः खलु भदन्त ! लोकः-हे आर्ये ! एष
ल्लोको जन्म नरामरणादिभिर्दुःखैः प्रज्वलितः, ' एव ' अनेन प्रकारेण ' जहा देवाणंदा'
यथा देवानन्दा=देवानन्देव एषापि सुव्रतानामन्तिके प्रव्रजिता, यावत्-एकादश
अङ्गानि अधीते, बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा मासिक्था

आपक पास धर्म सुना है सो उसके प्रभाव से यह संसार भय से
उद्विग्न हो कर जन्म मरण से भीत, व्रस्त हो कर आपके पास दीक्षित
होना चाहतो है । इसलिये हे देवानुप्रिये ! आप मेरे द्वारा दी गई इस
शिष्य भिक्षाको अंगीकार कीजिये । तब सुव्रता आर्यिका ने कहा—
यथा सुखं मा प्रतिबन्धं कुरुष्व—(तएणं सा पोट्टिला-सुव्वयाहिं अज्जाहिं
एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्टा उत्तरपुरात्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्क-
मित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव, पंच-
मुट्टियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव सुव्वयाओ तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—अलित्तं णं
भंते । लोए एवं जहा देवाणंदा जाव एक्कारसअंगाइ अहिज्जइ, बहूणि

तेना प्रलावथी अे संसारलथथी व्याकुण थथने जन्म-मरणथी भीत अने वस्त
थथने तभारी पासेथी दीक्षा ग्रहण करवा धच्छे छे. ओट्टला भाटे छे देवानु-
प्रिये ! मारा वडे अपाती आ शिष्या इपी लिक्षानो स्वीकार करे. त्यादे
जवापभां सुव्रता आर्यिकाअे तेने कहुं छे ' यथासुखं मा प्रतिबन्धं कुरुष्व '

(तएणं सा पोट्टिला सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्टा उत्तर-
पुरात्थिमं दिसी भागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालंकारं
ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव, पंचमुट्टियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव सुव्वयाओ
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता. णमंसित्ता एवं वयासी—
अलित्तं णं भंते ! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव एक्कारसअंगाइ अहिज्जइ, बहूणि

संलेखनया आत्मानं जुष्टा पठिं भक्तानि अनशनेन छिन्वा, 'आलोइयपडिकंता' आलोचित प्रतिक्रान्ता 'समाहिपत्ता' समाधिप्राप्ता कालमासे कालं कृत्वा अन्य-तरेषु देवलोकेषु देवतया उपपन्ना । सू०८ ॥

वासणि सामन्त्रपरियागं पाउणइ, पाउणिन्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता सद्धिभत्ताइं अणसणाए छेदिन्ता आलोइयपडिकंता समाहिपत्ता, कालमासे कालं किच्चां अणतरेसु - देवलोएसु देवत्ताए उव्वणणा) इस प्रकार सुव्रता-आर्धिका के द्वारा कही गई वह-पोट्टिला बहुत अधिक हृष्टतुष्ट हुई। बाद में वह ईशान कोणमें गई। वहां जाकर उसने अपने हाथों से शरीर पर रहे हुए आभरण, माल्य एवं अलंकारों को उतार दिया। उतार कर अपने आप पंचमुष्टिक केशों का लुंचन किया-लुंचन कर फिर वह जहां सुव्रता आर्पा थीं वहां आई। आते ही उसने उन्हें वन्दना एवं नमस्कार करके फिर वह इस प्रकार बोली— हे भदन्त ! यह लोक जरा मरण आदि दुःखों से प्रज्वलित हो रहा है, इस प्रकार से देवानंदा की तरह यह सुव्रता-आर्पा के पास दीक्षित हो गई। याचत् उसने ११ अंगों का अध्ययन भी कर लिया। बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय को पालन किया। प्रीतिपूर्वक अन्न में एक मास की संलेखना धारण कर ६०, भक्तों का अनशन द्वारा छेद-

वासणि सामन्त्रपरियागं पाउणइ, पाउणिन्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता सद्धि भत्ताइं अणसणाए छेदिन्ता आलोइयपडिकंता समाहिपत्ता, कालमासे कालं किच्चा अणतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उव्वणणा)

आ रीते सुव्रता आर्धिका वडे आसा अणयेदी पोट्टिला भूण ७ हृष्ट-तुष्ट थर्ध गधं त्थारपणी ते धशानं के। षु तरक्ष गधं अने त्थां ७धने तेष्से पोतानां हाथथी ७ शरीर उपरना आ। अरख्खे। भाणाओ अने अन्नं। अरे ने उताथी अने उतारिने पोतानी भेणे ७ पांथ मुही केशीतुं लुंचन कथुं। लुंचन कथां पणी ते न्यां सुव्रता आर्पा छती त्थां आवती रळी त्थां आवीने तेष्से तेभने वंदन अने नमस्कार कथां, वंदना अने नमस्कार करीने ते आ प्रभाष्से विनंती करवा लागी के छे लदन्त ! आ सन्सार ७रा (धठपणु) भरखु वगेरे दुःपोथी सणगी रळी छे. आ रीते पोट्टिला देवानंदाणी जेम सुव्रता आर्पांनी पासो दीक्षित थर्ध गधं अने अणुक्खे तेष्से अणियार अणोतुं अद्ययन पणु करी वीधुं. तेष्से धणुं वर्षो सुधी श्रामण्य पर्यायतुं पलन कथुं छेवटे प्रीतिपूर्वक अन्न मासनी संलेखना धारण करीने अनशन वडे साठ लक्षोतुं छेदन कथुं

मूलम्-तएणं से कणगरहे राया अन्नया कयाइं कालधम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था । तएणं राईसर जाव णीहरणं करेति, करित्ता, अन्नमन्नं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगित्था, अम्हेणं देवाणुप्पिया ! रायाहीणा रायाहिट्ठिया रायाहीणकज्जा अयं च णं तेतली अमच्चे कणगरहस्स रत्तो सव्वट्टाणेषु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए दिन्नवियारे सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था, तं सेयं खलु अम्हं तेतलिपुत्तं अमच्चं कुमारं जाइत्तएत्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेत्ति, पडिसुणित्ता, जेणेव तेतलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिता, तेतलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य जाव वियंगेइ । अम्हे य णं रायाहीणा जाव रायाहीणकज्जा, तुमं च णं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रणो सव्वट्टाणेषु जाव रज्जधुराचिंतए, तं जइणं देवाणुप्पिया ! अरिथ केइ कुमारे रायलक्खणसंपन्ने अभिसेयारिहे, तण्णं तुमं अम्हं दलाहि । जाणं अम्हे महयाऱ रायाभिसेएणं अंभिसिंचामो । तएणं तेतलिपुत्ते तेसिं ईसर० एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता, कणगज्झयं कुमारं ण्हायं जाव सस्सिरीयं करेइ, करित्ता तेसिं ईसर

दिया । छेद कर आलोचित प्रतिक्रान्त बनी हुई यह समाधि प्राप्त हो गई और काल अवसर काल कर अन्यतर देवलोकमें देवता से पर्याय से उत्पन्न हो गई ॥ सू० ८ ॥

छेदन करीने आवेयित प्रतिक्रान्त बनेली ते समाधि प्राप्त थई गइ अने काण अवसर काण करीने अन्यतर देवलोकां देवताना पर्यायधी नन्म पायी. सू. '८'

जाव उवणेइ, उवणिचा, एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया ।
 कणगरहस्स रणो पुत्ते पउमावईए अत्तए कणगज्झए नामं
 कुमारे अभिसेयाहिहे रायलक्खणसंपन्ने मए कणगरहस्स रणो
 रहस्सियं संवड्ढिए, एयं णं तुब्भो महयाः रायाभिसेएणं अभि-
 सिंचह । सव्वं च से उट्ठाणपरियावणियं परिकेहेइ । तएणं ते
 ईसरं कणगज्झयं कुमारे महयाः रायाभिसेएणं अभिसिंचति ।
 तएणं से कणगज्झए कुमारे रायाजाए, महया हिमवंत मलयं
 वण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ । तएणं सा पउमा-
 वई देवी कणगज्झयं रायं सदावेइ, सदाविचा, एवं वयासी-
 एस णं पुत्ता ! तव रज्जे य जाव अंतोउरे यं तुमं च तैत्तलि-
 पुत्तस्स अमच्चस्स पहावेण, तं तुमं णं तेयलिपुत्तं अमच्चं
 आढाहि परिजाणाहि सक्कारोहि सम्माणेहि इंतं अब्भुट्ठेहि, ठियं
 पज्जुवासाहि, वयंतं पडिसंसाहेहि, अट्ठासणेणं उवणिसंतंतेहि
 भोगं च से अणुवड्ढेहि । तएणं से कणगज्झए राया पउमावईए
 देवीए तहत्ति पडिसुणेइ जाव भोगं च से अणुवड्ढेइ ॥सू० ९॥

टीका— 'तएणं से' इत्यादि । ततः खलु स कनकरथो राजा अत्यदा
 कदाचित् । 'कालभग्गुगा सज्जे' कालवर्षेण संयुक्तः= सुतथाप्यभवत् । ततः

'तएणं से कणगरहे राया' इत्यादि ।

टीकार्थ— (तएणं) इसके बाद (से कणगरहे राया अनया क्याइ)
 वह कनकरथ राजा किसी एक दिन काल क्वचित्त हो गया (तएणं

'तएणं से कणगरहे राया' इत्यादि

टीकार्थ— (तएणं) त्पारपथी (से कणगरहे राया अनया क्याइ) ते कनकरथ
 राजा क्वचित् दिवसे कालक्वचित् थुं गथो सुट्ठे के कृत्यु पारसे।

खलु 'राईसर० जाव' = राजेश्वर० यावत् = राजेश्वरतलवरमाडम्बिककौटुम्बिकादि-
सार्थवाहप्रभृतयः तस्य 'णीहरणं' निहरणं = मृतककृत्यं कुर्वन्ति. कृत्वा अन्यो-
ऽन्यमेवमवदन्-एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! कनकरथो राजा 'रज्जे य जाव पुत्ते'
राज्ये च यावत् पुत्रान् = राज्यादिषु मूर्च्छित उत्पन्नान् पुत्रान् 'वियंगित्था'
अव्यङ्गयत् = विकृताङ्गान् कृतवान् मारितवानित्यर्थः । 'अम्हेणं' वयं खलु देवानु-
प्रियाः ! 'रायाहीणा' राजाधीनाः = राजवशवर्तिनः, 'रायाहिट्टिया' राजाऽधि-
ष्ठिता = राजाभ्रिता इत्यर्थः, 'रायाहीणकज्जा' राजाधीनकार्याः, राज्ञामधीनं कार्यं

राईसर जाव णीहरणं करेत्ति, करित्ता अन्नमन्नं एवं वयासी-एवं खलु
देवानुप्पिए ! कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगित्था) राजेश्वर,
तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, सार्थवाह आदि व्यक्तियों ने मिल कर
उसका दाह संस्कार किया । दाह संस्काररूप मृतक कृत्य करने के बाद
फिर उन लोगों ने परस्पर में इस प्रकार का विचार किया । हे देवानु-
प्रियो ! देखो कनकरथ राजाने तो राज्य आदि में मूर्च्छित हो कर
उत्पन्न हुए समस्त पुत्रों को विकृत अंग करके मार डाला है (अम्हे णं
देवानुप्पिया । राया हीणा रायाहिट्टिया रायाहीणकज्जा अयं च णं तेत-
लीअमच्चे कणगरहस्स रत्तो सव्वहाणेसु-सव्वभूमियासु लद्धपच्चए,
दिन्नविचारे-सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था) अब इस समय कोई राजा
है नहीं अतः हमलोगों का क्या होगा क्यों कि 'हम' लोग तो हे देवा-
नुप्रियो ! राजा वशवर्ती है, राजा के आश्रित ही रहते आये हैं, हमारा

(तएणं राईसर जाव णीहरणं करेत्ति, करित्ता अन्नमन्नं एवं वयासी-एवं
खलु देवानुप्पिए ! कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगित्था)

राजेश्वर, तलवर, माडम्बिक कौटुम्बिक, सार्थवाह वगैरे ढोडोके भणाने
तेना अशि-संस्कार कथे। अशि-संस्कार आदि मृत्यु विधि पतावीने ते ढोडोके
परस्पर भणाने आ प्रभाण्णे विचार कथे के हे देवानुप्रियो ! बुद्धो, राजा
कनकरथे तो राज्य वगैरेनी भाणतमां ढोलुप तेमज्ज मोडित थधने उत्पन्न
थथेला पोताना अधा पुत्रेना अणो आपीने मारी नाप्पया छे.

(अम्हेणं देवानुप्पिया ! राया हीणा रायाहिट्टिया रायाहीणकज्जा, अयं च
णं तेतलीअमच्चे कणगरहस्स रत्तो सव्वहाणेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए, दिन्न-
विचारे सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था)

इसे अत्यारे डोड राजा छे व नडि तो अमारी शी दशा थथे ? हे
देवानुप्रियो ! अमे तो राजना वशवर्ती छीअे, राजने अधीन रहेवामां व

शेषां ते तथा, सर्वमस्माकं कृत्यं राजाधीनं वर्त्तते इति भावः । अयं च खलु तैत्तिलि-
रमात्यः कनकरथस्य राज्ञः 'सव्वट्टाणोसु' सर्वस्थानेषु=संधिविग्रहादिषु सर्वेषु
कार्येषु, 'सव्वभूमियासु' सर्वभूमिकासु = स्वाम्यमात्यरा' दूर्गकोषवलसुहृत्पौर-
श्रेणिरूपाष्टविधासु 'लट्टपत्तए' = लब्धप्रत्ययः-लब्धः=प्राप्तः प्रत्ययो विश्वासो
यस्य सः, सकलजनविश्वासपात्रमित्यर्थः, 'दिच्चविचारे' दत्तविचारः, दत्तः=
राज्ञं वितीर्णः, विचार=शोभनो विचारो येन सः, लोकोपकारि विचारदायक इति-
भावः, 'सव्वरुज्जवड्डावए' सर्वकार्यवर्द्धकः=राज्ये समस्तकार्यसम्पादकश्चापि
'होत्या' अस्ति । 'तं' तत्=तस्मात् कारणात् 'सेयं' श्रेयः=उचितं खलु अस्माकं
तैत्तिलिपुत्रममात्यं कुमारं 'जाइत्तए' याचितुम्, अयमभिप्रायः-यद्यममात्यो
राज्ञः सकलकार्यनिर्वाहकः, अतस्तत्समीपे गत्वा 'कोऽपि राजलक्षणसंपन्नः
कुमारो राजपदे स्थापनीयः' इति वार्तालापश्लोकक्रम्य, समागते प्रसङ्गे, तत्पुत्रो
राजपदे स्थापयितुं याचनीयः, 'त्तिकट्टु' इति कृत्वा=इति मनसि कृत्वा अन्यो-
ऽन्यस्य एतमर्थं 'पडिसुणंति' प्रतिशृण्वन्ति=स्त्रीकुर्वन्ति, 'पडिसुणित्ता' प्रति-
श्रुत्य, यत्रैव तैत्तिलिपुत्रोऽमात्यस्तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य, एवमवदन्-एवं खलु

जितना भी कार्य होता है वह सब राजाधीन ही होना आया है । इस
लिये तैत्तिलिपुत्र जो अमात्य है चलो उनके पास चले क्यों कि वे ही
कनकरथ राजाके लिये संधिविग्रह आदि समस्त कार्यों में एवं स्वामी,
अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग कोष, बल, सुहृत् और पौरश्रेणिरूप आठ भूमियों
में विश्वसनीय थे । राजा के लिये ये ही लोकोपकारी कार्यों में सलाह
दिया करते थे और ये ही राज्यमें समस्त कार्यों के संपादक हैं (तं सेयं
खलु अहं तैत्तिलिपुत्तं अमच्चं कुमारं जाइत्तए त्तिकट्टु अन्नमन्नस्स एय-
महं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता जेणेव तैत्तिलिपुत्ते अमच्चं तेणेव उवाग-
च्छंति, उवागच्छित्ता तैत्तिलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-एवं खलु देवाणु-

ट्टेवाध गयेवा छीये. अभासा षधा कामो रत्तधीन व डोय छे ज्येथी यादी
आपणु सी भणीने अभात्य तैत्तिलिपुत्रणी पासे जधये, डेभडे तेजो व रात्त
कनकरथना संधिविग्रह वगैरे षधा कामेभां अने स्वामी, अभात्य, राष्ट्र, दुर्ग,
डोशणण, सुहृत् अने पौर श्रेणिरूप आठ भूमिज्याभां ते विश्वसनीय छे. डोडोना
डित भाटे तैत्तिलिपुत्र अभात्य व सदाह आपता रहैता छेता तेभज रत्तयना
षधा कामेने पार पाडनारा यणु तेजो व छे.

(तंसेयं खलु अहं तैत्तिलिपुत्तं अमच्चं कुमारं जाइत्तए त्तिकट्टु अन्नमन्नस्स
एयमहं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता जेणेव तैत्तिलिपुत्ते अमच्चं तेणेव उवागच्छंति,
उवागच्छित्तं तैत्तिलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुपियाय ! कणगरहे

हे देवानुप्रिय ! कनकरथो राजा राज्ये च राष्ट्रे च यावत् व्यङ्ग्यति, वयं च खलु हे देवानुप्रिय ! राजाधीना यावद् राजाधीनकार्याः, त्वं च खलु हे देवानुप्रिय !

पिंपया ! कणगरहे राया रज्जे य रट्टे य जाव विंयोगेइ, अम्हे य णं राया हीणा जाव रायहीणकज्जा, तुमं च णं देवाणुप्पिया । कणगरहस्स रण्णो संव्वट्ठाणेसु जाव रज्जधुरा चित्तए—तं जहणं देवाणुप्पिया । अत्थि केइ कुमारे रायलक्खणंसंपन्ने अभिसेयारिहे, तएणं तुमं अम्हं दलाहि) हंसलिये हमको उचित है कि हम तैतलिपुत्र अमात्य से कुमार की याचना करें। तात्पर्य इस का यह है कि ये तैतलिपुत्र अमात्य राजा के सकल कार्य निवाहक हैं—इसलिये उनके पास चलकर “कोई राज लक्षण संपन्न कुमार राजपद में स्थापनीय है” इस बात की हम चर्चा करें। इस चर्चा के प्रसंग में उनसे यह भी निवेदन करेंगे कि आप अपने पुत्र की ही राज पद में स्थापित कर दीजिये। इस प्रकार का विचार उन्होंने किया। जब विचार स्थिर होचुका—तब सबने इस बात को एक मत से स्वीकार कर लिया। स्वीकार कर के फिर वे सबके सब जहां अमात्य तैतलिपुत्र थे वहां गये। वहां जाकर उन्होंने ऐसा कहा— हे देवानुप्रिय ! कनक रथ राजाने राज्य और राष्ट्र आदि में विशेष मूर्च्छित बनकर उत्पन्न हुए अपने समस्त पुत्रों को अंगभंग कर मार डाला

राया रज्जे य रट्टे य जाव विंयोगेइ, अम्हे य णं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रण्णो संव्वट्ठाणेसु जाव रज्जधुराचित्तए—तं जहणं देवाणुप्पिया । अत्थि केइ कुमारे रायलक्खणंसंपन्ने अभिसेयारिहे, तएणं तुमं अम्हं दलाहि)

ओथी अभने ओ उचित लागे छे, के अभे तैतलिपुत्र अमात्यनी पासे जधने राजकुमारनी याचना करीओ. कारणु के तैतलिपुत्र अमात्य राजाना अधा कारणेने सारी रीते पार पाडनास छे, ओटला भाटे तेमनी पासे जधने राज थवा राज्य राज—लक्षण युक्त केओ कुमार भणी शके तेम छे के केम ? ते निशे थर्या करीओ. आ नतनी विचारणां करतां करतां अभे अधा तेमने ओवी विनती पणु करीशुं के तमे पोताना पुत्रने ज राजगद्दीओ वेसादी हो. आभ ते होकेओ भणीने विचार कर्यो. आभ विचार पाके थप गयो त्यारे सौओ ओकमत थधने तेने स्वीकारी लीधा. स्वीकार करीने तेओ अधा त्थार्थी न्यां अमात्य तैतलिपुत्र हतो त्यां गया, त्यां जधने तेमणे तैतलिपुत्रने कहुं के छे देवानुप्रिय ! कनकरथ राजाओ राज्य अपने राष्ट्र वजेरेमां सविशेष मूर्च्छित ओटले के मोहवश थधने जन्म पायेता पोताना अधा ज पुत्रोना अंगो क्षपीने तेओने भारी

कनकरथस्य राज्ञः सर्वस्थानेषु यावत् 'रज्जयुग्राचित्' राज्यस्य धूः राज्ययुगा, तस्यथिन्तकः, राज्यभारनिर्वाहकवासि, तद् यदि खलु देवानुमिय। अस्ति कोऽपि कुमारो राजलक्षणसंपन्नः 'अभिसेयारिहे' अभिषेकाहो 'राज्याभिषेकयोग्यः, 'तं णं' तं खलु त्वमस्मभ्यं 'दलाहि' देहि 'जो' यस्मात् 'णं' 'तं' 'अम्हे' वयं महता २ 'रायाभिसेएण' राज्याभिषेकेण=राजयोग्येनाभिषेकेण अभि- पिञ्चामः राज्ये स्थापयाम इत्यर्थः। ततः खलु तैत्तिलिपुत्रः तेषाम् 'ईसरं' ईश्वरं= ईश्वरतल्लवराडाडम्बिकादि सार्थवैद्व्यभृतीनाम् एतमर्थं 'पडिसुणेइ' प्ररिश्चुणोति= स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्व=त्वाकृत्य, कनकवज्रं कुमारं 'पहायं सत्सिरीयं' स्नातं यावत् सश्रीकं, स्नातं=कृतस्नानम्, यावत् सश्रीकम्=सर्वालङ्कारविभूषितं शोभा- समन्वितं च करोति, कृत्वा तेषाम् 'ईसरं जाव' ईश्वरं यावत्=ईश्वरादीनां सम्मुखे 'उवणेइ' उपनयति, उपनीय एवमवादीत्-एष खलु हे देवानुमियाः!

है। अब इस समय राज पद में कोई नहीं है। हमलोग तो हे देवानुमिय। राजाधीन यावत् राजाधीन कार्य वाले हैं। और देवानुमिय। कनक रथ राजा के लिये संधि विग्रह आदि समस्त स्थानों में एव स्वामी अमा- त्य आदि आठ भूमियों में विभ्वसनीय रहें हैं। राजा के लिये लोकोप- कारी कार्यों में आप सलाह देते रहे हैं। और आप ही राज्य भार के निर्वाहक है। इसलिये हमारी आपसे यह प्रार्थना है कि हैं देवानुमिय। यदि राज्यलक्षण संपन्न कोई कुमार राज्य पद में अभिषेक करने के योग्य होवे तो उसे आप हमें देवें। (जो णं अम्हे मह्यार रायाभिसे एण अभिसिचामो। तएण तैत्तिलिपुत्ते तैसि ईसरएयमइ पडिसुणेइ, पडिसुगित्ता कणगज्झयं कुमारं पहायं जाव सत्सिरीयं करेइ, करित्ता तैसि ईसर जाव उवणेइ, उवणित्ता एव वयासी) कि जिससे हम उसे

नाम्या छे. छेवे अत्तारे राजपह भाटे केरुं रहुं नथी. छे देवानुमिय। अमे खेडे तो राजधीन रह्थिने न रह्थेता आन्था छीत्थे अने छे देवा- नुमिय। तमे राज कनकरथना संधिविग्रह वगेरे अथा कामेमां ज्येठवे के स्वाभी अमात्य, विग्रह विगेरे तमासः कामेमां छेथेसा विश्वासपात्र रथा छे, वैद्विकतनी भावतमां तमे राजने संवाह आपत्ता रथा छे, अने तमेन राज्येना अथा कामेने पार पाठता आन्था छे. ज्येथी अमे तमने ज्येवां विनति करीथे छीत्थे के छे देवानुमिय। राज-दक्षिणायो अने अलिपिकत थमने राजगदीत्थे जेसवा थेअय केरुं कुमारं छेयं तो तेने तमे अथने सोपिं। (जे णं अम्हे महया २ रायाभिसेएणं अभिसिचामो। तएणं तैत्तिलिपुत्तं तैसि ईसर एयमइ पडिसुणेइ, पडिसुणेवा कणगज्झयं कुमारं पहायं जाव सत्सिरीये करेइ, करित्ता तैसि ईसर जाव उवणेइ, उवणित्ता एव वयासी)

કનકરથસ્ય રાજ્ઞઃ પુત્રઃ પદ્માવત્યા દેવ્યા આત્મજઃ કનકધ્વજો નામ કુમારઃ અભિષેકાર્થો રાજલક્ષણસંપન્નો મયા કનકરથસ્ય રાજ્ઞો 'રહસ્તિયં' રહસ્તિકં=પ્રચ્છન્નં યથા સ્યાત્થા સંવદ્ધિતઃ, એતં સ્વલ્લુ યુયં મહતા ૨ રાજાભિષેકેણ અભિષિચ્ચત । પુનઃ સઃ સર્વે ચ 'સે' તસ્ય 'ઉદ્ઘાણપરિયાવણિયં' ઉત્યાનપરિયાપનિકમ્=

રાજ યોગ્ય અભિષેક દ્વારા અભિષિક્ત કર રાજ્ય મેં સ્થાપિત કરેં । હસ તરહ કે ડન ઈશ્વર, તલવર, માડમ્બિક આદિ સાર્થવાહ વગેરહ કે હસ કથન રૂપ અર્થ કો ડસ તેતલિપુત્ર અમાત્ય ને સ્વીકાર કર લિયા ઓર સ્વીકાર કરકે કનકધ્વજ કુમાર કો ડસને નહા ધુવાકર સર્વાલંકારોં સે વિમૂષિત ક્રિયા । વિમૂષિક કરકે ફિર વહ ડસે ડન ઈશ્વર તલવર આદિકોં કે સમક્ષ લે આયા । લાકર કે ડનસે ડસને ંસા કહા-(એસ ણં દેવાનુષ્પિયા ! કણગરહસ્સ રણ્ણો પુત્તે પડમાવર્દૈએ અત્તએ કણગજ્ઞએ ણામં કુમારે અભિસેયારિદ્દે રાયલક્ષણસંપન્ને મએ કણગરહસ્સ રણ્ણો રહસ્તિયં સંવદ્ધિએ એયં ણં તુભ્મે મહયા મહયા રાયાભિસેએણં અભિસિંચ્ચહ) હે દેવાનુષ્પ્રિયો ! યહ કનકરથ રાજા કા પુત્ર હૈ જો પદ્માવતી કી કુક્ષિ સે જન્મા હૈ । હસકા નામ કનકધ્વજ કુમાર હૈ । અભિષેક કે યોગ્ય હૈ ઓર રાજલક્ષણ સંપન્ન હૈ । મૈને હસકો કનકરથ રાજા સે છિપા કર પાલાપોષા હૈ ઓર વૃદ્ધિગત ક્રિયા હૈ । હસે આવલોગ વડે મારી રાજયોગ્ય અભિષેક કે સાથ રાજ્ય મેં સ્થાપિત કીજિયે । (સવ્વં ચ સે

કે બેથી અને તેનો રાજ્યાસને અભિષેક કરી શકીએ. આ રીને અમાત્ય તેતલિપુત્રે તે ઈશ્વર, તલવર, માંડબિક, સાર્થવાહ વગેરેના કથનને સ્વીકાર્યું અને સ્વીકારીને તેણે કનકધ્વજ કુમારને સ્નાન કરાવ્યું અને ત્યારપછી બધા અલંકારોથી તેને શણગાર્યા. ત્યારબાદ અમાત્ય તેતલિપુત્રે મુસબત થયેલા કુમારને ઈશ્વર, તલવર વગેરેની સામે લાવ્યો અને તેઓને કહ્યું કે—

(એસણં દેવાણુષ્પિયા ! કણગરહસ્સ રણ્ણો પુત્તે પડમાવર્દૈએ અત્તએ કણગજ્ઞએ ણામં કુમારે અભિસેયારિદ્દે રાયલક્ષણસંપન્ને મએ કણગરહસ્સ રણ્ણો રહસ્તિયં સંવદ્ધિએ એયં ણં તુભ્મે મહયા મહયા રાયાભિસેએણં અભિસિંચ્ચહ)

હે દેવાનુષ્પ્રિયો ! આ કનકરથ રાજાનો પુત્ર છે અને પદ્માવતી દેવીના ગર્ભથી અને જન્મ થયો છે. કનકધ્વજ કુમાર આનું નામ છે. આ કુમાર રાજ્યાસને બેસાડવા યોગ્ય તેમજ રાજલક્ષણોથી યુક્ત છે. રાજા કનકરથને આ યાગ્યતની બાંધુ નથી, મેં આનું પાલન તેમજ રક્ષણ છુપી રીતે કર્યું છે. પ્રમે ભારે મહોત્સવની સાથે આ કુમારને રાજગાદીએ બેસાડો.

उत्थानं=जन्म, परियापनिका=जन्मानन्तरमद्यावधिका संवर्द्धनादिपरिस्थितिः, उत्थानं च परियापनिका च=उत्थानपरियापनिकम्=जीवनचरितं परिकथयति । ततः खलु 'ईसर०' ईसरतलवरमांडम्बिकादयः कनकध्वजं कुमारं महताः २ राजाभिषेकेण अभिषिञ्चन्ति । ततः खलु स कनकध्वजः कुमारो राजा जातः, स च कनकध्वजो राजा 'महया हिमवत०' महाहिमवद्=महाहिमवन्महामलय मन्दरमहेन्द्रसारः '=महाहिमवन्महामलयमन्दरमहेन्द्राणां सार इव सारो यस्य सः,

उद्घाणपरियावणियं परिकहेह, तएणं ते ईसर० कणगज्जयं कुमारं महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचंति । तएणं से कणगज्जए कुमारे राया जाए, महया हिमवतं मलय० वण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरह, तएणं सा पउमावई देवी कणगज्जयं रायं सदावेइ, सदावित्ता एव वयासी) ऐसा कहकर फिर उन तैत्तिलिपुत्र अमात्य ने उस कनकध्वज कुमार का उत्थान-जन्म और परियापनी का-जन्म से लेकर अभी तक की समस्त पालन पोषण संवर्द्धन आदि परिस्थिति रूप-जीवन चरित्र उन्हें कह सुनाया-इस के बाद उन ईश्वर, तलवर, मांडमिक एव कौटुम्बिक आदिकोंने कनकध्वज कुमार का बड़े जोर शोर के साथ राज्याभिषेक किया । राज्य में अभिषिक्त होने के बाद वे कनकध्वज कुमार अब राजा बन गये । इसका सार-बल लोकमर्यादा कारी होने के कारण महा हिमवत् जैसा, यश और कीर्ति के फैलाव के कारण महामलय

इति (सर्वं च से उद्घाणपरियावणियं-परिकहेह, तएणं ते ईसर० कणगज्जयं कुमारं महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचंति । तएणं से कणगज्जए कुमारे राया जाए, महया हिमवता मलय० वण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरह, तएणं सा पउमावई देवी कणगज्जयं रायं सदावेइ, सदावित्ता एव वयासी)

आ प्रम ष्टे कहीने तैत्तिलिपुत्र अमात्ये ते कनकध्वज कुमारेणुं उत्थान-जन्म अने परियापनिका ओटके के जन्मथी आडीने अत्यार सुधीनी पे.पणु संवर्द्धन वगेरेनी एवन चरित्र संभधी. भधी विगत अथथी धृति सुधी कही संलग्णवी. त्यारभाद ते धश्वर, तलवर, मांडमिक अने कौटुम्बिक वगेरे लोकेशे कनकध्वज कुमारनेो भहु ज भोटा पाथा उपर उत्सव उज्जवीने राज्याभिषेक कथे। अलिषिकत थवा भाद कनकध्वज राजा थर्ष गया हता. तेभनुं भण लोक मर्यादाने रक्षनार होवा भदद महाहिमवतं जेवुं हतुं. तेभना यश अने कीर्ति येभेर प्रसरेवा हता तेथी ते महाभक्षयं जेवा हता तेभज तेओ हूठ प्रति-

लोकमर्यादाकारित्वेन महाहिमवत्सदृशः, मसूतपशः कीर्तिस्त्वेन महामलयतुल्यः, दृढप्रतिज्ञत्वेन कर्तव्यदिग्दर्शकत्वेन च मन्दरमहेन्द्रतुल्यः, 'वर्णभो' वर्णकः विशेषरूपेण अन्यतोऽवसेयः, 'जाव रज्जं पसासेमाणे' यावद्राज्यं प्रशासद् विहरति राज्यं कुर्वन्नास्ते । ततः खलु सा पद्मावतीदेवी कनकध्वजं राजानं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्—एतत् खलु हे पुत्र ! तव 'रज्जे य जाव अंतेउरे य०' राज्यं च यावदन्तः पुरं च एतत्सर्वं तेतलिपुत्रस्य प्रभावेन वर्त्तते 'तं' तत्=कारणात् त्व खलु तेतलिपुत्रममात्स्यं 'आढाहि' आद्रियस्व=आदरं कुरुष्व 'परिजाणाहि', परिजानोहि=अवेक्षस्व तदनुमत्या सर्वं कार्यं सम्पादयेत्यर्थः सत्कारय वस्त्रादिना, सम्मानय माल्यादिना, 'इतं' यन्तम्=भागच्छन्तमेतं तेतलिपुत्रम् 'अव्भुद्रेहि' अभ्युत्तिष्ठ=अभ्युत्थानादिना विनयं प्रदर्शयेत्यर्थः 'ठियं पञ्जुवासाहि' स्थितं पर्युपास्व=सेवस्व, 'वयंतं' व्रजन्तं=गच्छन्तम् 'पडिसंसाहेहि' प्रतिसंसाधय=अनुगमनादिना प्रसादय, तथा 'अद्दासणेणं उवणिमंतेहि' अर्धासनेन उपनिमन्त्रय=स्वस्यासने तद्गुणवेषय, भोगं=मुखसामग्रीरूपं च 'से' तस्य अनुवर्द्धय । ततः स कनकध्वजः 'पउमावईए देवीए' पद्मावत्या देव्याः वचनं 'तडत्ति'

के जैमा, दृढप्रतिज्ञा वाले एवं कर्तव्य का दिग्दर्शन कराने वाले होने के कारण मन्दर महेन्द्र-मेरु के जैसा था। और भी इन राजा के विषय का विशेष वर्णन दूसरों शास्त्रों से जान लेना चाहिये। यावत् इस तरह ये कनकध्वज कुमार अपने राज्य के शासन करने में तत्पर बन गये। इसके बाद उस राजमाता पद्मावतीदेवी ने उन कनकध्वज राजाको अपने पास बुलाया-और बुलाकर फिर उनसे उसने इस प्रकार कहा-(तएणं पुत्ता ! तव रज्जे य जाव अंतेउरेय० तुमं च तेतलिपुत्तस्स अमच्चस्स पहा वेणं, तं तुमं णं तेतलिपुत्तं अमच्चं आढाहि, परिजाणाहि, सक्कारेहि, सम्माणोहि, इतं अव्भुद्रेहि ठियं पञ्जुवासाहि, वयंतं पडिसंसाहेहि, अद्दासणेणं

ज्ञानाणा अने कर्तव्यने पतावनार होवा पहल मन्दर महेन्द्र-मेरु जेवा हुता. राजा कनकध्वज विशेष सविशेष वरुण भील शास्त्रोभां वरुण्युं छे, असामुज्याये त्यांथी नाली देवुं जेधये आ प्रभाणे ते कनकध्वज कुमार पोताना राखयना वहीवटने संभाजवा भाटे सावध थछ गया. त्पारपछी र.ज.भाता पत्र वतीदेवीजे कनकध्वज-राजने पोतानी पासे जोदाव्या अने जोदावीने तेमने आ प्र.भ.णे कहुं छे

(तएणं पुत्ता ! तव रज्जे य जाव अंतेउरेय० तुमं च तेतलिपुत्तस्स अमच्चस्स पहावेणं, तं तुमं णं तेतलिपुत्तं अमच्चं आढाहि, परिजाणाहि, सक्कारेहि, सम्मा-

तथेति= 'तथास्तु' इतिकृत्वा प्रतिश्रुणोति=स्वीकरोति 'प्रतिश्रुत्य' तथैव कुर्वाण
यावद् भोगं च तस्य अनुवर्द्धयति ॥ ९ ॥

उवगिम्सतेहि, भोगं च से अणुवद्धेहि । तएणं से कणगज्झए राया पडमाव-
ईए देवीए तहत्ति पडिसुणेइ, जाव भोगं च से अणुवद्धेइ) हे पुत्र । यह तुम्हारा
राज्य और अंतःपुर तथा तुम स्वयं यह जो कुछ है वह सब तैत्तिलिपुत्र
अमात्य के प्रभाव से ही है इसलिये तुम तैत्तिलिपुत्र अमात्य का आदर
करते रहो, उनकी अनुमति से काम किया करो उनका वस्त्रादि द्वारा
समय २ पर सत्कार करते रहो, अभ्युत्थानादि सन्मान करते रहो और
जब तैत्तिलिपुत्र तुम्हें आते हुए दिखलाई दे तों तुम उठकर इनके प्रति
अपना विनय प्रदर्शित किया करो । जब ये जावे-तब तुम बैठ
कर इनकी सेवावृत्ति किया करो, जब ये चलने लगे तो तुम इनके पीछे
२ थोड़ी दूर तक अपने महलों में पहुँचाने जाया करो, अपने बैठने के
आसन पर इन्हें अर्धभाग में बैठाया करो और जो भी सुख साधनकी
सामग्री है वह इनकी बढ़ा दो । इस प्रकार राजमाता पद्मावती देवी के
वचनों को " तथास्तु " कहकर कर्नकध्वज राजाने स्वीकार कर लिया ।

णेहि इंत अब्भुद्धेहि ठियं षज्जुवासादि वयं तं पडिसंसाहेहि, अद्दासणेणं उवगिम्सं
तेहि. भोगं च से अणुवद्धेहि । तएणं से कणगज्झए राया पडमावईए देवीए
तहत्ति पडिसुणेइ, जाव भोगं च से अणुवद्धेइ)

हे पुत्र ! आ तमाइं राज्यं रणुवासं तेमए तमे पोते आ अधुं वे कं धं
छे, ते सवे तैत्तिलिपुत्र अमात्यना प्रभावथी ज छे. ओथी तमे तैत्-
तिलिपुत्र अमात्यनो सदा आहर करता रहे, हरिक काम तेमनी आजाथी करता
रहे, वओ वजेरे आथीने यथा समय तेमनो सत्कार करता रहे, तेमनुं
सन्मान करता रहे अने अमात्य तैत्तिलिपुत्र तमने आवता हेभाय त्यारे तमे
उलाथधने तेमना प्रति विनय युक्त थधने व्यवहार करे। न्यारे तेओ ज वा
तैयार थाय त्यारे तमे ओसीने तेमनी सेवा करता रहे। अने न्यारे तेओ
यालवा भांटे त्यारे तमे तेमनी पाछण पाछण थोडे दूर सुधी पोताना भंडेल
भांज विदाय आपवा भांटे तेमनुं अनुसरणु करेता जओ। तमे तेमने पोताना
आसनना अर्धाभाग उपर ओसाडे अने तेमनी अधी सुभसगवडनी सामग्री
भां वधारे करी आपो. आ रीते राज्यभाता पद्मावती देवीमी आशाने उनक
धव राज्ये ' तथास्तु ' कहीने स्वीकारी वलीधी, स्वीकार्या-पछी तेआओ ते
हा ९

मूल्य-तएणं से पोट्टिले देवे तेतलिपुत्तं अभिक्खणं २
 केवल्लिपन्नत्ते धम्मं संबोहेइ, नो चेव णं से तेतलिपुत्ते संबु-
 ज्झइ । तएणं तस्स पोट्टिलदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५
 एवं खल्लु कणगज्झए राया तेतलिपुत्तं अढाइ जाव भोगं च से
 वड्ढेइ तएणं से तेतलीपुत्ते अभिक्खणं २ संबोहिज्जमाणे वि धम्मं
 नो संबुज्झइ, तं सेयं खल्लु मम कणगज्झयं रायं तेतलिपुत्ताओ
 विप्परिणामेत्तए तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिता, कणगज्झयं तेत-
 लिपुत्ताओ विप्परिणामेइ । तएणं तेतलिपुत्ते कल्लं पहाए जाव
 पायच्छित्ते आसखंधवरगए बहूहिं पुरिसेहिं संपरिबुडे साओ
 गिहाओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव
 पहारेत्थए गमणाए । तएणं० तेतलिपुत्तं अमच्चं जे जहा बहवे
 राईसरतलवर जाव पभियाओ पासंति, ते तहेव आढायंति,
 परिजाणंति, अब्भुट्ठेति, आढाइत्ता, परिजाणित्ता, अब्भुट्ठित्ता,
 अंजलिपरिग्गहं करेति, इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं आल-
 वेमाणा य संलवेमाणा य पिट्ठओ य पासओ य मग्गओ य
 समणुगच्छंति तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव कणगज्झए राया
 तेणेव उवागच्छइ । तएणं से कणगज्झए राया तेतलिपुत्तं
 एज्जमाणं पासइ, पासित्ता, नो अढाइ, नो परियाणाइ, नो

स्वीकार करके फिर उन्होंने वैसा ही सब कुछ करते हुए तेतलिपुत्र
 अमात्य की यावत् सुख साधन सामग्री बढ़ा दी ॥ सू० ९ ॥

प्रभाषे ७ अधुं कर्तां तेतलिपुत्र अमात्यनी सुभसगवड वणेदेनी सामथीमां
 वधाशे करी आप्थे ॥ सू० ९ ॥

अब्भुट्टेइ, अणाढायमाणे, अपरियाणमाणे, अणब्भुट्टायमाणे, परम्मुहे संचिट्टइ । तएणं तेतलिपुत्ते कणगज्झयस्स अंजलिं करेइ । तएणं से कणगज्झए राया अणाढायमाणे तुसिणीए परम्मुहे संचिट्टइ । तएणं तेतलिपुत्ते कणगज्झयं विप्परिणयं जाणित्ता भीए जाव संजायभए एवं वयासी-रुट्टेणं मम कणगज्झए राया हीणे णं ममं कणगज्झए राया, अवज्झाए णं ममं कणगज्झए, राया तं ण नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेण मारेहिइ त्ति कट्टु भीए तत्थेऽ जाव सणियं२ पच्चोसकइ, पच्चोसक्कित्ता, तमेव आसखंधं दुरूहेइ, दुरूहित्ता, तेतलिपुरं मज्झं-मज्झेणं जेणेव सए गिहे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए । तएणं तेतलिपुत्तं जे जहा ईसर जाव पासंति, ते तथा नो आढायंति नो परियाणंति नो अब्भुट्टेति नो अंजलिपरिगहं करेति, इडाहिं जाव णो संलवंति नो पुरओ य पिट्टुओ य पासओ य मंग्गओ य समणुगच्छंति । तएणं तेतलिपुत्ते जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता जावि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तं जहा—दासेइ वा पेसेइ वा भाइल्लएइ वा सावि य णं नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्टेइ, जावि य से अर्ब्भितरिया परिसा भवइ, तं जहा—पियाइ वा मायाइ वा जाव सुण्हाइ वा सावि य णं नो आढाइ, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्टेइ । तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव वासधरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सयणिज्जांसि णिसी-

यइ, णिसीइत्ता, एवं वयासी-एवं खलु अहं सयाओ गिहाओ णिग्गच्छामि, तं चेव जाव अब्भितरिया, पुरिसा-नो आढाइ-नो परिजाणाइ, नो अब्भुट्टेइ, तं सेयं खलु मम अप्पाणं जी-वीयाओ ववरोवित्तएत्तिकइ, एवं संपेहेइ, संपेहिता तालउडं विसं आसगंसि पक्खिवइ, से य विसे णो संकमइ । तएणं तेतलिपुत्ते नीलुप्पल जाव असि खंधंसि ओहरइ, तत्थ वि य से धारा ओपल्ला । तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पासगं गीवाए बंधइ, बंधित्ता अप्पाणं मुयइ, तत्थ वि य से रज्जू छिन्ना । तएणं से तेतलिपुत्ते महइ, महालयं सिलं गीवाए बंधइ, बंधित्ता अत्थाहमतारमपोरिसि-यंसि उदगंसि अप्पाणं मुयइ, तत्थ वि से थाहे जाए । तएणं से तेतलिपुत्ते सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवइ, पक्खि-वित्ता मुयइ, तत्थ वि से अगणिकाए-विज्जाए । तएणं से तेतलीपुत्ते एवं वयासी-सद्धेयं खलु भो समणा वयंति, सद्धेयं खलु भो माहणा वयंति, सद्धेयं खलु भो समणामाहणा वयंति, अहं एगो असद्धेयं वयामि, एवं खलु अहं सहपुत्तेहिं अपुत्ते को मेयं सद्विस्सेइ? सहमित्तेहिं अमित्ते, को मेयं सद्विस्सेइ, एवं अत्थेणं दारेणं दासेहिं परिजणेणं एवं खलु तेतलिपुत्तेणं अमच्चे कणगज्जाएणं रन्ना अवज्जाएणं समाणेणं तेतलिपुत्तेणं तालपुडगे विसे आसगंसि पक्खित्ते, से वि य णो कमइ को मेयं सद्विस्सेइ? तेतलिपुत्तेणं नीलुप्पल जाव खंधंसि, ओह-

रिए, तत्थ वि से धारा ओपछा को मेयं सदहिस्सइ । तेतलि-
पुत्तेणं पासगं गीवाए बंधेत्ता जाव रज्जू छिन्ना को मेयं सदहि-
स्सइ ? तेतलिपुत्तेणं महइमहालयं जाव बंधित्ता अत्थाहे जाव
उदग्गसि, अप्पासुक्के, तत्थ वि य णं थाहे जाए को मेयं सद-
हिस्सइ ? तेतलिपुत्तेणं, सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खि-
वित्ता अप्पासुक्को तत्थ वि से अगणिकाए विज्झाए, को मेयं
सदहिस्सइ ? ओहयमणसंकप्पे जाव झियाइ ॥ सू० १० ॥

टीका— 'तएणं से पोद्धिले' इत्यादि । ततः खलु स पोद्धिलोदेवस्तेतलि-
पुत्रम् 'अभिवक्खणं २' अभीक्षणम् २=पुनः पुनः केवल्लिपन्नत्ते धर्मे संबोधयति ।
परन्तु नो चैव खलु स-तेतलिपुत्रः- 'संबुज्झइ' सम्बुध्यते=प्रतिबोधं प्राप्नोति ।
ततः खलु तस्य पोद्धिलदेवस्य 'इमेयारूवे' अयमेतद्रूपः=पुरउच्यमानः 'अज्झ-
त्थिए' ५=आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपघत ।
संकल्पप्रकारमाह- 'एवं खलु' इत्यादि । एवं खलु कनकध्वजो राजा तेतलि-
पुत्रं आद्रियते यावत् भोगं च संबद्धयति, ततः खलु स तेतलिपुत्रोऽभीक्षणं २ मया

'तएणं से पोद्धिले' इत्यादि ॥

टीकार्थ- (तएणं) इसके बाद (से पोद्धिले देवे) वह पोद्धिलाका जीव देव
(तेतलिपुत्तं) अभिवक्खणं २ केवल्लिपन्नत्ते धर्मे संबोद्धेइ, नो चैव णं से
तेतलिपुत्ते संबुज्झइ) तेतलिपुत्र अमात्यको चार चार केवल्लिपन्नत्त धर्ममें
प्रतिबोधित करने लगा परन्तु तेतलिपुत्र प्रतिबोध को प्राप्त नहीं हुआ ।
(तएणं तस्स पद्धिलदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५-एवं खलु कणज्झए
राया तेतलिपुत्तं अहाइ, जाव भोगं च संबद्धेइ, तएणं से तेतलिपुत्ते अ-

तएणं से पोद्धिले इत्यादि ॥

टीकार्थ- (तएणं) त्थार ५४। (से पोद्धिले देवे) ते पोद्धिलाने एव देव
(तेतलिपुत्तं अभिवक्खणं २ केवल्लिपन्नत्ते धर्मे संबोद्धेइ नो चैव णं से तेतलि
पुत्ते संबुज्झइ)

तेतलिपुत्र अमात्यने चार चार देवणि प्रज्ञसधर्मभां प्रतिबोधित करवा
लाग्ये ५४- तेतलिपुत्रने प्रतिबोध प्राप्त थयो नडि,

(तएणं तस्स पोद्धिलदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५-एवं खलु कणज्झए
राया तेतलिपुत्तं अहाइ, जाव भोगं च संबद्धेइ, तएणं से तेतलिपुत्ते अभिवक्खणं

‘संबोहिज्जमाणेवि’ संबोध्यमानोऽपि धर्मो नो संबुद्धपते=प्रतिबोधं न प्राप्नोति ।
 ‘तं तत्=ऋमान कारणत् तथेयः खलु मम कनकध्वजं राजानं तेतलिपुत्राद् विपरि-
 णमयितुम्=नेतत्रिपुत्रत्रिपये कनकध्वजस्य मानसिको भावो यथा विपरिणतो भवे-
 त्तथा कर्तुमुचितम्, इतिकृत्वा=इति मनसि विचार्य एव संभेक्षते-विचारयति
 संप्रेक्ष्य कनकध्वजं तेतलिपुत्राद् विपरिणमयति=विपरीतं करोति । ततः खलु
 तेतलिपुत्रः ‘कल्लं’ कलये द्वितीयस्मिन् दिने प्रायः ‘पहाए जाव पायच्छित्ते’
 स्नानो यावत् प्रायश्चित्तः=स्नानः=कृतस्नानः यावत् पदेन कृतबलिकर्मा=काकादि
 निमित्तं कृतान्नभागः कृतकौतकमांगलयप्रायश्चित्तः=कृतानि कौतुकानि दुःस्वप्नादि-
 दोषनिवारणार्थं मपीयुण्डीदीनि-माङ्गल्यादीनि =मङ्गलकारकाणि दूर्वाक्षतादीनि
 =प्रायश्चित्तवद्द्रव्यं कर्तव्यानि येन सः, ‘आसखंधवरगए’ अश्वस्कंध-
 वरगतः=अश्वारूढः बहुभिः पुरुषैः संपरिवृतः स्वस्माद् गृहाद् निर्गच्छति, निर्गत्य

भिक्षुखणं २ संबोहिज्जमाणे वि धम्मे नो संबुद्धाह, तं सेयं खलु मम
 कणगज्झयं रायं तेतलिपुत्ताओ विपरिणमेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ)
 तत्र उस पांडुलि देवको ऐमा आध्यात्मिक यावत् मनोगत स्वरूप उत्पन्न
 हुआ कनकध्वज राजा तेतलिपुत्र अमात्यका आदर करते हैं यावत् वे
 उनके सुख साधनकी सामग्री बढ़ा दिया है-इसलिये मेरे द्वारा बार बार
 प्रतिबोधित करनं पर भी वे धर्म में प्रतिबुद्ध नहीं बन रहे हैं-प्रतिबोध
 को प्राप्त नहीं हो रहे हैं । इसलिये मुझे अब ऐसा करना चाहिये कि
 जिससे तेतलिपुत्र के विषय में कनकध्वज राजा का मानसिक विचार
 बदल जावे । इस प्रकार का विचार उस देवके मनमें जगा (सपेहिता
 कणगज्झयं तेतलिपुत्ताओ विपरिणामेइ, तएणं तेतलिपुत्ते कल्लं पहाए

२ संबोहिज्जमाणे वि धम्मे नो संबुद्धाह, तं सेयं खलु मम कणगज्झयं रायं
 तेतलिपुत्ताओ विपरिणामेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ)

य्वादे ते देवइय पांडुलिना एव देवने ज्येयो आध्यात्मिक यावत् मनो-
 गत संकल्प उःलभ्ये के राज कनकध्वज अमात्य तेतलिपुत्रने आदर करे छे
 यावत् तेज्ये तेमनी अधी जातनी सुभसगवडनी सामग्रीमां बढ़ावे पण
 करी आये छे, ज्येथी मारावडे बारंवार प्रतिबोधित करवा छतांजे
 तेज्ये धर्ममां प्रतिबुद्ध थर्ध जात नथी ज्येठले के तेमने बारंवार प्रेरणा
 आपवा छतां प्रतिबोध थये नथी. ज्येठला भाटे हुं डवे ज्ये प्रभाजे कंधंके
 करे के ज्येथी राज कनकध्वजना मानसिक विचार अमात्य तेतलिपुत्रने भाटे
 अतिक्रम थर्ध जात ते देवे मनमां आ जातने विचार करी.

(सपेहिता कणगज्झयं तेतलिपुत्ताओ विपरिणामेइ तएणं तेतलिपुत्ते कल्लं
 पहाए जाव पायच्छित्ते आसखंधवरगए, बहुहिं पुरिसेहिं संपरिवुडे, साओ गिहाओ,

यत्रैव कनकध्वजो राजा तत्रैव 'पहारेत्थ गमणाए' प्राधारयद् गमनाय-प्रस्थित-
वान् । ततः खलु तेतलिपुत्रममात्यं 'जेजहा' ये यथा=येन प्रकारेण बहवो 'राई-
सरतलवरजावपभियाओ' राजेश्वरतलवर यावत्पभृतयः, राजेश्वरतलवरादयः पश्यन्ति,
ते तथैव तममात्यमाद्रियन्ते नमस्कारादिना परिजानन्ति=शुभागमनमित्यनुमो-
दयन्ति, अभ्युत्तिष्ठन्ति=अभ्युत्थानं कुर्वन्ति, आदृत्य परिज्ञाय, अभ्युत्थाय अञ्जलि-
परिग्रहं कुर्वन्ति, तथा इष्टाभिः कान्ताभिः यावत्-प्रियाभिर्मनोज्ञाभिर्मनोऽमायिः'

जाव पायच्छित्ते आसखधवरगए, बहूहिं पुरिसेहिं सपरिबुडे, साओ
गिहाओ, णिग्गच्छह, णिग्गच्छित्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव
पहारेत्थ गमणाए, तएणं० तेतलिपुत्तं अमच्चं जे जहा यहवे राईसरत-
लवर जाव पभियाओ पासंति ते तहेव आदायंति परियाणंति, अब्भु-
ट्टेति) इस विचार के आते ही उस देवने कनकध्वज राजा को तेतलि
पुत्र अमात्य के प्रति विपरीत परिणमादिया । जब द्वितीय दिन प्रातः
काल स्नान कर घलिकर्म, कर-काकादि निमित्त अन्न का विभाग कर,
कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त कर-दुःस्वप्न आदि दोषों को निवारण करने
के लिये मषी पुण्ड्रादि और मंगल कारक दूर्वाक्षतादि तथा प्रायश्चित्तकी
तरह आवश्यक कृत्य समाप्त कर-बहू तेतलिपुत्र अमात्य घोड़े पर बैठ
कर जब अनेक पुरुषों के साथ साथ अपने घर से निकला तब निकल
कर वह ऊस ओर गया जहां कनकध्वज राजा थे । तेतलिपुत्र अमात्य
को ज्यों ही राजेश्वर आदि कों ने आता हुआ देखा तो उन्होंने पहिले
की तरह ही उसका आदर किया, उसके आगमन की सराहना की

णिग्गच्छइ णिग्गच्छित्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं०
तेतलिपुत्तं अमच्चं जे जहा यहवे राईसर तलवर जाव पभियाओ पासंति ते
तहेव आदायंति पभियाणंति, अब्भुट्टेति)

आ जतने। विचार उत्पन्न थतां त हे देवे अमात्य तेतत्रिपुत्र ने माटे
राज कनकध्वजने प्रतिक्षण अन्यावीक्षीया भील डिसे सवार थतां स्नान, आदि-
कर्म, (५ गडा वगेरे पक्षीओ माटे अन्नभाग अर्पणु) कौतुक, मंगल, प्राय-
श्चित्त-ओटले के दुःस्वप्न वगेरेना दोषाना उपशमन माटे मषी पुण्ड वगेरे
तेमन् मंगल कारक दुर्वा अक्षत (योभा) वगेरेथी प्रायश्चित्त-नी आवश्यक
विधिओ पतावीने घण्टा पुरुषोथी वी'टणधने अमात्य तेतत्रिपुत्र बोडा उपर
सवार थधने ज्यां कनकध्वज राज हुता त्यां गथे। अमात्य तेतत्रिपुत्रने आ-
वतां जेतानी साथे ज राजेश्वर वगेरे लोकोओ पडेतांनी जेम ज तेमने आदर
कथां, तेमना अगमननी सराहना करी अने अधाओ उलाथधने तेमनेवधावी क्षीधा

वाग्भिः आलपन्तः संलपन्तश्च=ओलापं=संभाषणं, संलापं=परस्परसंभाषणं
 कुर्वन्तश्च पुरतः=अग्रं च पृष्ठतः=पश्चाद्भागतश्च, पार्श्वतः=पार्श्वभागतश्च, मार्गतः=
 यस्मान्मार्गात् तेतलिपुत्रो निर्गच्छति, तन्मार्गतश्च 'समणुगच्छति' समणुग-
 च्छन्ति । ततः खलु स तेतलिपुत्रो यत्रैव कनकध्वजस्तत्र उपागच्छति । ततः
 खलु स कनकध्वजो राजा तेतलिपुत्रंमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा नो आद्रियते, नो परि-
 जानाति, नो अभ्युत्तिष्ठति । अनन्तरं 'अणाढायमाणे' अनाद्रियमाणः=तस्मादरं-

सबने लंठकर उसे लिया- (आढाइत्ता, परिजाणित्ता अब्भुद्वित्ता अंजलि
 परिगहं करेति, इट्ठाहिं कनाहिं जाव वग्गूहिं आलवेमाणा य संलवे
 माग य पुरओ य पिडुओ य पासओ य मग्गओ य समणुगच्छंति
 तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव कणगज्झए राया तेणेव उवागच्छइ, तएणं
 से कणगज्झए राया तेनलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाह
 नो परियाणाइ, नो अब्भुद्वेइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे अणब्भु
 द्वायमाणे परम्भुहे संचिद्वइ) आदर देकर शुभागमन की अनुमोदनाकर
 तथा उठकर उन सबने फिर दोनों हाथों की अंजलि जोड़कर उसे
 नमस्कार किया । बाद में इष्ट, कान्त यावत् प्रिय-मनोज्ञ-मनोम
 वाणियों से आलाप-संभाषण, संलाप परस्पर संभाषण-करते
 हुए वे सबआगे, पीछे आजू बाजू होकर जिस मार्ग से वह आरहा
 था उसी मार्ग से उसके साथ साथ चले आये । चलते २ तेतलिपुत्र
 अमात्य जहाँ कनकध्वज राजा बैठे थे वहाँ आया । कनकध्वज
 राजा ने उन्हें आता हुआ देखा-तौभी पहिले की तरह देग्वंकर न

(अडाइत्ता, परिजाणित्ता अब्भुद्वित्ता अंजलि परिगहं करेति, इट्ठाहिं, कनाहिं
 जाव वग्गूहिं आलवेमाणा य संलवेमाणा य पुरओ य, पिडुओ य, पासओ य,
 मग्गओ य, समणुगच्छंति तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव कणगज्झए राया तेणेव
 उवागच्छइ, तएणं से कणगज्झए राया तेतलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता
 नो आढाह, नो परियाणाइ, नो अब्भुद्वेइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे अणब्भु
 द्वायमाणे परम्भुहे संचिद्वइ)

तेमने आदर आपीने, शुभागमनने अनुमोदित करीने तेमो अधा उला
 थया अने त्थार पंधी अने डाथीनी अब्भणि अनावीने तेमने नमस्कार क्यो.
 त्थार आह छिष्ट, कान्त, यावत् प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम वातोथी आलाप-
 संलापणु. संलाप-परस्पर संलापणु करतां तेमो सर्वे आगण, पाछण अने
 तेमनी अने आलुओ धइने वे मार्गथी तेमो आवता छता ते मार्गथी व तेनी
 साथे साथे आलवा लाग्या तेतलिपुत्र अमात्य आलतां आलतां त्थयां राज कनकध्वज
 ओडा छता त्थां आओ पणु कनकध्वज राजओ तो तेमने जेया छतां पणुतेमने

मान्नुवन् 'अपरिजाणमाणे' अपरिजानन्, तदागमनमननुमोदयन् अनभ्युत्तिष्ठन्=अभ्युत्थानाद्यकुर्वन् 'परम्मुहे' पराङ्मुखः=विमुखः सन् संतिष्ठते। ततः खलु तैतलिपुत्रः कनकध्वजस्य राज्ञः संमुखे अञ्जलिं करोति। 'तएणं' ततः खलु=तैतलिपुत्रेण अञ्जलिकरणानन्तरमपि स कनकध्वजो राजा अनार्द्रियमाणः, अपरिजानन्, अनभ्युत्तिष्ठन् तूष्णीकः पराङ्मुखः संतिष्ठते। ततः खलु तैतलिपुत्रः कनकध्वजं विपरिणतं=विपरीतं ज्ञात्वा 'भीए जाव संजायभए' भीतो यावत् संजातभयः, एवमवदत्=मनस्यकथयत्-रुष्टः खलु मम=मम विषये कनकध्वजो राजा,

उसका कोई आदर किया-न उसके आनेकी कोई सराहना की और न उठकर उसे लिया ही। इस तरह अनादर अननुमोदन एवं अनभ्युत्थान करते हुए वे राजा प्रत्युत उस ओरसे अपना मुँह फेर कर बैठ गये। (तएणं तैतलिपुत्ते कणगज्झयरस अंजलिं करेइ) तैतलिपुत्र ने आते ही राजा कनकध्वज को नमस्कार किया-(तएणं से कणगज्झए राया अणाढायमाणे तुसिणीए परम्मुहे संचिद्धइ) तौ भी उन कनकध्वज राजा ने उस अंजलि करने का भी कोई आदर नहीं किया केवल चुप चाप ही विमुख बना हुआ बैठा रहा-(तएणं तैतलिपुत्ते कणगज्झयं विप्परिणयं जाणित्ता भीए संजायभए एवं वयासी) तब तैतलिपुत्र ने कनकध्वज राजा को विपरीत जानकर भीत (भय पाया हुआ) यावत् संजात भय होकर मनमें ऐसा विचार किया-(रुष्टे णं ममं कणगज्झए राया) कनकध्वज राजा मेरे ऊपर रुष्ट हो गये हैं। (हीणे णं ममं कण-

आदर न कर्था, तेभना आववानी सराहना न करी अने उला थधने तेभने सत्कार्या पञ्च नहि आ रीते अनादर, अननुमोदन अनभ्युत्थान करता ते राजा तेभना तरु थो भो इरेवीने भेथी गया। (तएणं तैतलिपुत्ते कणगज्झयरस अंजलिं करेइ) तैतलिपुत्रे आववतांनी साथे न राजा कनकध्वजने नमस्कार कर्था।

(तएणं से कणगज्झए राया अणाढायमाणे तुसिणीए परम्मुहे संचिद्धइ) छतांअने राजा कनकध्वजने तेभना नमस्कारने पञ्च उचित सत्कार कर्था नहि इत्त तेओ खुपथाप भोइरेवीने भेथी न रहा।

(तएणं तैतलिपुत्ते कणगज्झयं विप्परिणयं जाणित्ता भीए जाव संजायभए एवं वयासी)

त्यारे तैतलिपुत्र अभात्ये राजा कनकध्वजने प्रतिकूलवर्ध गयेका (नाराज थयेला) लक्ष्मीने लयधीत यावत् संजातभय वाणा थतां मनमां विचार कर्था, के (रुष्टेण ममं कणगज्झए राया) कनकध्वज राजा मेरा उपर नाराज

‘हीणे णं’ हीनः खलु=प्रीतिहीनः खलु समोपरि कनकध्वजो राजा ‘अवज्झाए’ अपघ्यातः=दुर्भावसम्पन्नो जातः खलु मम विषये कनकध्वजो राजा ‘तं’ तत्= तस्मात् ‘न नज्जइ’ न ज्ञायते खलु एष मां केन कीदृशेन कुमारेण=कुत्सितेन मारेण ‘मारेहिइ’ मारयिष्यति ‘त्तिकट्टु’ इति कृत्वा=इति विचिन्त्य भीतस्ततः यावत्- त्रसितः, उद्विग्नः, सञ्जातभयः सत् ‘सणियंर’ शनैः २ ‘पच्चोसक्केइ’ प्रत्यवस्वष्कते =प्रत्यवसर्पति=पश्चाद्गच्छति प्रत्यवस्वष्क्य, तमेव ‘आसखंधं’=अश्वरुन्धं दूरो- हति, दुरूह्य ‘तेतलिपुरं’ अत्र पण्यर्थे द्वितीया, तेतलिपुरस्येत्यर्थः, मध्यमध्येन यत्रैव स्वर्कं गृहं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय । ततः खलु तं तेतलिपुरं ‘जेजहा’

गज्झए राया) कनकध्वज राजा मेरे ऊपर प्रीति से रहित हो गये हैं । (अवज्झाए णं ममं कणगज्झए राया) कनकध्वज राजा मेरे विषय में संज्ञाव रहित बन गये हैं । (तं ण नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेणं मारे- हिइ त्ति कट्टु भीए तत्थे पूजावसणियं २ पच्चोसक्केइ) तो न मालूम यह मुझे किस कुत्सित भरण से मरवा डाले, ऐसा विचार कर वह भीत (भययुक्त) हो गया त्रस्त यावत् संजात भयवाला बन गया । और धीरे २ वहाँ से पीछाहट कर चला आया—(पच्चोसक्कित्ता तमेव आसखंधं दुरूहेइ, दुरूहित्ता तेतलिपुरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सएगिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए) आकर के वह अपने उसी घोड़े पर बैठकर तेतलिपुर के बीच से होता हुआ अपने घर की तरफ चल दिया (तएणं तेतलिपुत्त जे जहा ईसर जाव पासंति ते तहा नो आढायंति, नो परिया-

थर्ध गया छे. (हीणेणं ममं कणगज्झए राया) कनकध्वज राजाने छेवे मारा उपर प्रेम रह्यो नथी. (अवज्झाए णं ममं कणगज्झए राया) कनकध्वज राजा मारा प्रत्ये सहृदयवना रहित थर्ध गया छे.

(तं ण नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेणं मारेहिइ त्ति कट्टु भीए तत्थे जाव सणिय २ पच्चोसक्केइ)

तो डेाणु ळणुे थयारे तेज्जे भने कभोते मरावी नंभावे आरीते विचार करीने ते लयलीत थर्ध गथे, ते तस्त यावत संगत लयवाणे थर्ध गथे अने धीनिधीनि ल्यांथी पाछे करीने आवते। रह्यो.

(पच्चोसक्कित्ता तमेव आसखंधं दुरूहेइ, दुरूहित्ता तेतलिपुरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए)

त्यांथी आवीने ते पोताना घोडा उपर सवार थर्धने तेतलिपुरनी वच्चे थर्धने पोताना घर तरक्क रवाना थयो.

तएणं तेतलिपुत्तं जे जहा ईसर जाव पासंति ते तहा नो आढायंति, नो

ये यथा=ये यथास्थिताः ' ईसरजाव ' ईश्वर यावत्=ईश्वरतलवरमाडम्बिकादयः पश्यन्ति, ' ते तहेव ' ते तथा स्थिता एव सन्तो नो आद्रियन्ते, नो परिजानन्ति, नो अभ्युच्छिन्तन्ति, नो अञ्जलिपरिग्रहं कुर्वन्ति, इष्टाभिर्यावद्वाग्भिर्नो संलपन्ति, नो पुरतश्च पृष्ठतश्च पार्श्वतश्च मार्गतश्च समनुगच्छन्ति । ततः खलु तैत्तिलिपुत्रो यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागच्छति । यापि च ' से ' तस्य ' तत्थ ' तत्र भवने वाग्ना परिपद् भवति, तद् यथा—' दासाइ वा ' दासाइति वा,

णन्ति, नो अब्भुट्टेति) मार्ग में तैत्तिलिपुत्र को आते हुए जिन ईश्वर तलवर, माडम्बिक आदिको ने देखा तो उन्होंने अब पहिले की तरह न उसका आदर किया न उसके आगमन की अनुमोदना की और न उसे देखकर वे उठे ही (नो अंजलिपरिग्रहं करेति, इष्टाहिं जाव णो संलवन्ति नो पुरओ य पिट्ठओय पासओय मग्गओय समणुग०) और न उसे हाथ जोड़ कर नमस्कार ही किया । न इष्ट प्रिय वाणिषों से उससे आलाप, संलाप किया, और न आजू बाजू से होकर वे उसके साथ मार्ग में ही चले । (तएणं तैत्तिलिपुत्ते जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) इस तरह चलता हुआ वह तैत्तिलिपुत्र अमात्य अपने घर पर आ गया । उवागच्छित्ता जाविसे तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तंजहा दासेइ वा पेसेइ वा भाइलएइ वा सा वि य णं नो आढाइ, नो परिआणाइ, नो अब्भुट्टेइ) वहां पर भी जो दास घर के काम काज करने

परियाणन्ति, नो अब्भुट्टेति)

मार्गभां जतां तैत्तिलिपुत्रने एश्वर तलवर माडम्बिक वगेरे ढोकाओ जेथे पणु ढोअओ पडेलांनी जेम तेना आहर न कर्यो, तेना आगमननी अनुचोदना न करी अने तेने जेधने तेओ जेला न थया.

(नो अंजलि परिग्रहं करेति, इष्टाहिं जाव णो संलवन्ति नो पुरओ य पिट्ठओ य पासओ य मग्गओ य समणुग०)

अने तेओओ जे हाथ जेडीने तेने नमस्कार पणु न कर्या. इष्ट, प्रिय, वथनोथी तेओओ तेनी साथे आलाप न कर्यो, संलाप न कर्यो अने अने णालुओ जेधने तेओ मार्गभां तेनी साथे साथे आलाप पणु नहि. (तएणं तैत्तिलिपुत्ते जेणेव सएगिहे तेणेव उवागच्छइ) आ प्रमाओ आलतो आलतो तैत्तिलिपुत्र अमात्य पोताने घेर आवी गथे.

(उवागच्छित्ता जाविसे तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तं जहा दासेइ वा पासेइ वा भाइलएइ वा, सा वि य णं नो आढाइ नो परिआणाइ, न अब्भुट्टेइ) त्यां पणु जे दासा-धरमां काम करनारा नोकरे, प्रैथो-धरना काम माटे

दासाः=गृहकार्यकारिणोभृत्याः, 'पेसाह्वा' प्रैष्याइति वा, प्रैष्याः गृहकार्यं कर्तुमन्यत्र प्रेषणीया भृत्याः, 'भाइल्लएति वा' भाइल्लाइति वा, 'भाइल्ल' इति देशीशब्दः, हाल्लिकः भागिनश्चेति तदर्थः हाल्लिकाः=भूमिकर्षणार्थं नियुक्ता भृत्याः, भागिनः,=स्वव्ययेनाऽन्यस्य क्षेत्रे कृषिं कृत्वा उपजातान्नस्यार्धभागं ग्राहिनः, एतद्रूपा या परिषत् साऽपि च एतं नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अभ्युत्तिष्ठते । याऽपि च तस्य आभ्यन्तरिको परिषद् भवति, 'तं जहा' तद् यथा 'पियाइ वा' पिताइति वा, 'मायाइ वा' माता इति वा, 'जाव सुण्हाइ वा' यावत् स्तुपाइति वा, स्तुपाः=पुत्रवध्वः, तद्रूपापि च परिषद् एतं नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अभ्युत्तिष्ठति । ततः खलु स तेतलिपुत्रो यत्रैव वासगृहं यत्रैव स्वकं शयनीयं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य,

वाले नौकर प्रैष्य, घर के काम के लिये जिन्हे बाहर भेजा जाता है ऐसे भृत्य, तथा भाइल्ल-हाल्लिक-भूमि कर्षणार्थं नियुक्त भृत्य, अथवा भागीदार-अपने व्यय से अन्य के खेत में कृषिकरके उत्पन्न अन्न के अर्ध-भाग को लेने वाले वटियाजन इनरूप जो बाह्य परिषत् थी उसने भी उसका आदर नहीं किया, उसके आगमन की अनुमोदना नहीं की और न वह उसके आने पर अपने अधिष्ठित स्थान से उठे । (जावि य से अर्धितरिया परिसा भवइ-तंजहा-पियाइ वा मायाइ वा जाव सुण्हाइ वा सा वि य णं नो आहाइ, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्टेइ) इसी तरह जो उसकी अन्तरंग परिषद् थी जैसे पिता माता यावत् स्तुपा-पुत्रवधु आदि जन इन्होंने भी उसका आदर नहीं किया, आगमन का अनुमोदन नहीं किया और न ये कोई भी उसके आने पर अपने स्थानसे

नेआने अहार भोडवामां आवे छे ते वृत्थे, तथा लाधल-डाणिके अटले के जेइवा माटे नियुक्त करायेला वृत्थे अथवा ते लाणीदारे-के ने पोताना अर्थे न णीलाना जेतरेमां अना न वावे छे अने वणतरमां जेतरेना भाविक पासेथी अर्धाभाग जेणवे छे-जेवा ने भाह्य परिषत् स'ण'धी लोके डता तेज्ये जे पणु तेना आदर कर्यो नहि, तेना आगमनने अनुमोदन आ'भु' नहि अने न तेना आववा अदल पोताना स्थानेथी सट्ठार माटे तेज्ये जिला थया.

(जा वि य से अर्धितरिया परिसा भवइ-तं जहा-पियाइ वा मायाइ वा जाव सुण्हाइ वा सा वि य णं नो आहाइ, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्टेइ) अने आ प्रमाणे न तेनी अंतरंग परिषदना लोके जेम के पिता माता यावत् स्तुपा-पेटा वहु-वगेरे लोकेजे पणु तेना आदर कर्यो नहि, तेना आगमनने अनुमोदन आ'भु' नहि अने तेज्येमांथी डेअ पणु तेना आववा अदल पोताना स्थानेथी जिला थया नहि.

शयनीये निषीदति, निषद्य, एवमवदत्=मनस्यकथयत्-एवं खलु=यथा अद्य तथैवाग्न्यस्मिन्नपि दिवसे, अहं स्वकाद् गृहात् निर्गच्छामि, 'तं चेव जाव अग्नि-तरिया परिसा नो आढाइ, नो परियाणाइ नो अब्भुद्देइ' तदेव यावत् आभ्यन्तरिकी परिषद् नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अभ्युत्तिष्ठति, अस्यायमभिप्रायः-पूर्वस्मिन् दिवसे राक्षिप्रसन्ने मां दृष्ट्वा राजेश्वरादयः मर्वे आद्रियन्ते स्म, परिजानन्ति स्म अभ्युत्तिष्ठन्ति स्म, अद्याऽपि गृहनिर्गतं मां ते तथैव सत्कारयन्ति स्म । परन्तु राक्षि अकस्मात् अप्रसन्ने राजेश्वरतलवरमाडम्बिककौटुम्बिकप्रभृतयः तथा मदीय ब्राह्मण्यन्तरा च परिषदपि सर्वेऽपि च मां नाद्रियन्ते, नो परिजानन्ति, नो

उठे ! (तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ) इम तरह घर पर आकर वह तेतलिपुत्र अमात्य जहां अपना वासगृह और उसमें भी जहां अपनी शय्या थी वहां गया (उवागच्छिता सयणिज्जंति निसीयइ, णिसीइत्ता एवं वयासी) वहां जाकर वह उस पर बैठ गया-और मनही मन विचार करने लगा-(एवं खलु अहं सयाओ गिहाओ णिग्गच्छामि, तं चेव जाव अग्नितरिया पुरिसा नो आढाइ, नो परिजाणाइ नो अब्भुद्देइ-तं सेयं खलु मम अप्पाणं जीवियाओ ववरोविस्सएत्ति कट्टु एवं संपेहेइ) पहिले के दिनों में जब मैं अपने घर से निकलता था तो लोग-राजेश्वर आदि समस्त जन सुझ पर राजा की प्रसन्नता होने के कारण आता जाता हुआ देखकर मेरा आदर करते थे-मेरे आगमन आदि की अनुमोदन करते थे उठकर अपने विनय प्रदर्शित करते थे-तथा आज भी जब मैं घरसे निकल

(तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ)

आ रीते घेर आवीने तेतलिपुत्र अमात्य न्यां तेनी रडेवानी आरडी अने तेनां पणु न्यां पोतानी पथारी हती त्यां गये। (उवागच्छिता सयणिज्जंति निसीयइ, णिसीइत्ता एवं वयासी) त्यां अर्धने ते तेना उपर भेसी गये अने मनभां अ विचार करवा लाग्ये ।

(एवं खलु अहं सयाओ गिहाओ णिग्गच्छामि, तं चेव जाव अग्नितरिया पुरिसा नो आढाइ, नो परिजाणाइ, नो अब्भुद्देइ-तं सेयं खलु मम अप्पाणं जीवियाओ ववरोविस्सएत्ति कट्टु एवं संपेहेइ)

पडेवां न्यारे हुं घेरथी अहार नीकणतो हतो त्यारे लोको-राजेश्वर वगैरे अथा लोको-राज भारा उपर पुथ हता अटली-आपतां अतां बोधने भारे आहर करता हता, भारा आग्रमन्तु अनुमोदन करता हता तेमअ लोका अर्धने विनय प्रदर्शित करता हता अने आगे पणु हुं न्यारे घेरथी-नीकणोने

अभ्युत्तिष्ठन्ति । ' तं ' तत्=तस्मात् कारणात्, श्रेयः खलु मम आत्मानं जीवि-
ताद् व्यपरोपयितुम्, इति कृत्वा, एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य तालपुटं विषम् ' आस-
गंसि ' आस्ये=मुखे प्रक्षिपति, विषं नो संक्राम्यति=विषत्वेन नो परिणमति ।
ततः खलु स तेतलिपुत्रो ' नीलुप्पल जाव असिं ' नीलोत्पल यावदसिं=नीलोत्पल
गवलगुलिकसमप्रभं=नीलोत्पलं=नीलकमलम् गवलं=माहिषं शृङ्गम्, ' गुलिकं '
नीलरङ्गविशेषः, तैः समा प्रभातेतलि कान्तिर्यस्य स तं तादृशं यावदसिं=तीक्ष्ण-
खड्गं ' खंधे ' स्कन्धे=ऋण्ठमूले ' ओहरइ ' अवहरति=निपातयति । तत्रापि च

कर राजा के पास गया—तब भी इन सबलोगों ने पूर्ववत् मेरा आदर
आदि सब कुछ किया—परन्तु अकस्मान राजा के रुष्ट होने पर जब मैं
वहाँ से लौटकर वापिस अपने स्थान पर आने लगा—तो किसी ने भी
मेरा आदर आदि कुछ भी सत्कार नहीं किया । यहाँ तक कि जो मेरी
बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् है—भीतर बाहरके नौकर चाकर एवं माता
पिता आदि जन हैं—उसने भी आज इस समय आने पर मुझे कुछ
नहीं समझा—अतः मुझे अब ऐसी स्थिति से मरना ही उत्तम है । इस
प्रकार का उसने अपने मन में विचार किया—(संपेहिता तालउडं विसं
आसगंसि पक्खिवइ, सेय विसे णो संकमइ, तएणं से तेतलिपुत्ते नीलु-
प्पल जाव असिं खंधसि ओहरइ, तत्थ वि य से धारा ओपल्ला, तएणं से
तेतलिपुत्ते जेणेव असोगवणिया तेणेव उ०) विचार करके उसने ताल-
पुटविष को अपने मुख में डाला—परन्तु उसने अपना कुछ भी प्रभाव

राजनी पासे गथे त्यारे पणु अे अथांअे पडेलांनी जेमज भारे आदर
वगेरे अंधुं कथुं डंतुं पणु अेअिना राजने नाराज थर्धं जवा भदल न्यारे
हुं त्यांथी पाछे इरीने पोताने घेर आववा लाग्थे त्यारे डेअिअे पणु भारे
आदर के सत्कार कथे नडि भारी आछ अने आभ्यन्तर परिषद-अेटले के
अडारना नोकरे—आकरे अने माता पिता वगेरे—छे तेअेअे पणु आरे अत्यारे
भारा आववा भदल कंधं पणु किमत करी नडि. अेथी अेथी परिस्थितिमां
भाइं भरणु ज उत्तम उपाय छे

(संपेहिता तालउडं विसं आसगंसि पक्खिवइ, सेय विसे णो संकमइ, तएणं
से तेतलिपुत्ते नीलुप्पल जाव असिं खंधसि ओहरइ, तत्थवि य से धारा ओपल्ला,
तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव असोगवणिया तेणेवउ०)

... आ अतने विचार इरीने तेणे तालपुट विष (अेर) ने पोताना

‘से’ तस्य खङ्गस्य धारा ‘ओपल्ला’ कुण्ठिता, ‘ओपल्लं’ इति देशी शब्दः तलपुटेन त्रिषेण, कण्ठे निपातितेनासिनाऽपि च तदभिलपितं मरणं न जातम् । ततः खल्लु=तदनन्तरं स तैतलिपुत्रो यत्रैव अशोकवनिका=अशोकवाटिका तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पाशकं ग्रीवायां बध्नाति, बद्ध्वा ‘खल्लं’ वृक्षं ‘दुरुहद, दुरो हति=आरोहति, दूरुह्य, पाशं वृक्षे बध्नाति, बद्ध्वा आत्मानं ‘सुयद्’ मुञ्चति=अधः पातयति । ‘तत्थवि’ तत्राऽपि=एतस्मिन्मरणोपाये कृतेऽपि च ‘से’ तस्य रज्जुच्छिन्ना=मध्यत एव पाशकुटितः । ततः खल्लु स तैतलिपुत्रः ‘महइमहा-लयं’ महातिमहतीम्=अति विशालां शिलां ग्रीवायां बध्नाति, बद्ध्वा ‘अत्था-हमतारमपोसिर्यंसि’ अस्ताघातारापौरुषेये=नास्ति स्नायः यस्य तत् अस्ताघम्= नहीं दिखलाया-अर्थात् वह विष रूप से परिणत नहीं हुआ । इसके बाद उस तैतलिपुत्रने नीलोत्पल गवद, गुलिक की प्रभा जैसी प्रभावाली अत्यन्त नीलवर्ण वाली-ऐसी तलवार को कि जिसकी धार बहुत तीक्ष्ण थी-अपनी गर्दन पर रखा-अर्थात् उसे गर्दन पर चलाई-परन्तु उसने भी अपना काम नहीं किया-वह भी-कुटित हो गई-इस तरह जब इन दोनों वस्तुओ से अपना अभिलषित मरण साध्य नहीं हुआ-अब वह तैतलिपुत्र जहाँ अशोकवनिका-अशोक वाटिका-थी वहाँ गया (उवागच्छित्ता पासगगीवाए बंधइ) वहाँ जाकर उसने अपनी ग्रीवामें फंदा डाला-बांधा (बंधित्ता अप्पाणं सुयद्, तत्थ वि से रज्जू छिन्ना) बांध कर फिर वह वृक्ष पर चढ़ गया और वहाँ से अपने आपको नीचे लटका दिया परन्तु यहाँ पर भी उसकी रज्जू बीच में से टूट गई (तएणं से तैतलिपुत्ते

भुभमां नाभ्युं’ पणु तेणु कंथं अस्सर भतानी नडि अट्ठे के ते विष इभमां परिणुभ्युं नडि. त्थार पछी ते तैतलिपुत्रे, नीलोत्पल गवद, गुलिकना जेवी प्रभावाणी तेभञ्ज तीक्ष्ण धारवाणी तलवारने पोतानी डोक उपर भूमी अट्ठे के तेना वडे तेणु पोतानी डोक उपर धा कथों पणु तेनाथी पणु कंथं काम थयुं नडि अट्ठे के तस्वार पणु भूमी थर्थं गधं डती. ‘ओपल्ल’ आ कुण्ठित (भूमी) अर्थं माटे वपरथेडेा देशी शब्द छे. न्यारे आ रीते ते भने वस्तुओथी तेनी धन्धला पूरी थर्थं नडि अट्ठे के तेनुं मरण थर्थं शक्युं नडि त्थारे ते न्यां अशोक वनिका-अशोक वाटिका-डती त्यां गथे. (उवागच्छित्ता पासगं गोवाए बंधइ) त्यां जधने तेणु पोतानी डोकमां शंसो खेरवीने आंध्ये (बधित्ता अप्पाण सुयद् तत्थ वि से रज्जू छिन्ना) आंधीने ते वृक्ष उपर अडी गथे अने त्याथी पोतानी भेजे ज ते लटकी गथे परंतु अडी पणु शंसानुं देरडुं वन्धेथी तूटी गथुं डतुं.

अतलस्पर्शि, अतारम्=अतरणीयम्, अपौरुषेयम्=पुरुषः प्रमाणं यस्य तत् पौरुषेयम्= न पौरुषेयम्=अपौरुषेयम्=पुरुषप्रमाणरहितम्, एतेषां कर्मधारयः, तस्मिन् अतिगम्भीरे इत्यर्थः, उदके आत्मानं मुञ्चति । तत्रापि=तस्मिन्नुदकेऽपि च 'से' तस्य=तेतलिपुत्रस्य 'थाहे' स्ताधो जातः । ततः खलु स तेतलिपुत्रः शुष्के तृणकूटे=तृणपुञ्जे 'अगणिकायं' अग्निकायं प्रक्षिप्य, तत्र आत्मानं मुञ्चति । तत्रापि=शुष्के तृणेऽपि सो ऽग्निकायो 'विज्ज्ञाए' विध्यातः=उपशान्तः । 'तएणं' ततः खलु=एतस्य सर्वम्य असम्भाव्यस्य सम्भावनानन्तरम् स तेतलिपुत्र एवमवा-
महइमहालयं सीलं गीवाए-बंधइ बंधित्ता अत्थाह मतारमपोरिसिंयंसि उदगंसि अप्पाणं सुयह, तत्थ वि से थाहे जाए) इसके बाद उस तेतलिपुत्र ने एक बहुत विशालकाय शिला को अपने गले में बांधा-और बांध कर अपने आपको अथाह-अतार एवं अपुरुष प्रमाण जल में छोड़ दिया-परन्तु वह जल भी उसके लिए स्ताध थाह युक्त-वन गया-(तएणं से तेतलिपुत्ते सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवइ पक्खिवित्ता सुयह, तत्थ वि से अगणिकाए विज्ज्ञाए-तएणं से तेतलिपुत्ते एवं-वयासी-सद्धेयं खलु भो समणा वयंति सद्धेयं-खलु भो माहणा वयंति, सद्धेयं खलु भो समणमाहणा वयंति, अहं एगो असद्धेयं वयामि एवं खलु अहं सह पुत्तेहिं अपुत्ते को मेयं सद्विस्सइ ? सहमित्ते हिं अमित्ते को मेयं सद्विस्सइ) इसके बाद तेतलिपुत्रने शुष्क घासके ढेर में अग्नि लगाई-और उसमें अपने आपको डाल दिया-परन्तु वह भी

(तएणं से तेतलिपुत्ते महइ महालयं सिलं गीवाए बंधइ, बंधित्ता अत्थाहमतारमपोरिसिंयंसि उदगंसि अप्पाणं सुयह, तत्थ वि से थाहे जाए)

त्यार पछी ते तेतत्रिपुत्रे ओक षडु चोटी बारे शिला (पथरे) ने चोतानी नतने अथाह-अतार अने अपुरुष प्रमाणे पाष्ठीमां नाष्ठी दीधी परंतु ते ठांडु पाष्ठी पणु तेना भाटे थाह वाणुं अेटवे के छीछुं थर्ध गयु.

(तएणं से तेतलिपुत्तं सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता सुयह, तत्थवि से अगणिकाए विज्ज्ञाए-तएणं से तेतलिपुत्ते एवं वयासी सद्धेयं खलु भो समणा वयंति सद्धेयं-खलु भो माहणा वयंति, सद्धेयं खलु भो समणमाहणा वयंति, अहं एगो असद्धेयं वयामि एवं खलु अहं सह पुत्तेहिं अपुत्ते को मेयं सद्विस्सइ ? सह मित्तेहिं अमित्ते को मेयं सद्विस्सइ)

त्यार पछी तेतत्रिपुत्रे सूका धानना ढगदाभां अग्नि प्रगटांथे अने चोतानी नतने तेमां नाष्ठी दीधी परंतु ते पणु वन्नेधी व ओलवाध गध

दीप्त=चित्तं संबोध्य मनस्येवमकथयत्-भो चित्त ! श्रमणा यद् वदन्ति तत्खलु श्रद्धेयं=श्रद्धा योग्यं, श्रद्धेयं खलु भोः ब्राह्मणा वदन्ति, श्रद्धेयं खलु भोः ! श्रमण ब्राह्मणा वदन्ति । अयं भाव-आत्मपरलोकाद्यर्थं प्रतिबोधकं श्रमणादीनां वचनं श्रद्धेयं भवति, अतीन्द्रियस्याप्यात्म-परलोकादिस्वरूपस्यानुमानादि प्रमाणविषय-तया श्रद्धाविषयत्वात् । परन्तु अहमेको असहायः अश्रद्धेयम्-अविश्वसनीयं वदामि । यद्यपि मदीयं वचनं सर्वथा सत्यम्, तथापि असम्भाव्यतया जनैः प्रत्येतुमशक्यम् । तदेवाह- ' एवं खलु ' इत्यादिना ' एवं खलु ' मयि अश्रद्धेय-

बीच ही में बुझ गई । इस तरह इन समस्त असंभवनों की संभवना के बाद तेतलिपुत्रने अपने आपको संबोधित करते हुए मन में विचार किया-हे चित्त ! श्रमणजन जो कहते हैं वह श्रद्धेय हैं । ब्राह्मणजन जो कहते हैं वह श्रद्धेय हैं इसी प्रकार श्रमणमाहणजन जो कहते हैं वह श्रद्धेय हैं । इसका भाव यह है कि आत्मा, परलोक आदि पदार्थ जो कि अतीन्द्रिय हैं वे अनुमान आदि प्रमाण कि विषयभूत हो जाते हैं-इसलिये ये श्रद्धाके विषय बन जाते हैं-अतः इन अतीन्द्रिय आत्म, परलोक आदि पदार्थों को प्रतिपादित करने वाले श्रमण माहण आदिकों के वचन भी श्रद्धेय हो जाते हैं, परन्तु मैं जो कह रहा हूँ वह अश्रद्धेय कह रहा हूँ एक असहाय हूँ-इसलिये-मुझे इस विषयमें किसीको भी सहायता मिलने वाली नहीं है । उन श्रमण माहण आदिजनों के वचनों के सहायक तो अनुमान आदि प्रमाण हैं-परन्तु मेरा सहायक कोई प्रमाण ही नहीं होता है, यद्यपि मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ परन्तु वह मेरा वचन असंभवित असहाय-होने की वजह से मनुष्यों के लिये श्रद्धेय नहीं बन

आ रीते आ भधा असंभवनेानी संभावना आदते तद्विपुत्रे पोतानी जतनेन संबोधित करतां मनमां विचार कर्यो के डे चित्त ! श्रमणजने ने क'छ कहे छे ते श्रद्धेय छे, ब्राह्मणे ने क'छ कहे छे ते श्रद्धेय छे आ प्रमाणे श्रमण माहणजने ने क'छ कहे छे ते श्रद्धेय छे आने लपार्थ आ प्रमाणे छे के आत्मा परलोक वगेरे पदार्थो ने आ के अतीन्द्रिय छे-ते आ अनुमान वगेरे प्रमाणना विषयभूत थरुं जय छे. ओटका माटे ते पदार्थो श्रद्धाता विषय जनी जय छे ओथी आ भधा अतीन्द्रिय आत्म, परलोक वगेरे पदार्थोतुं प्रतिपादन करनार श्रमण माहण वगेरेना वचने पणु श्रद्धेय थरुं जय छे, पणु हुं ने क'छ कही रह्यो छे ते अश्रद्धेय कही रह्यो छुं. ओके असहाय छुं ओथी भने आ भावतमां डोएनी भइ पणु भणी शके तेम नथी. ते श्रमण माहण वगेरेना वचनेना सहायक तो अनुमान वगेरे प्रमाणे छे पणु नारा कथनतुं सहायभूत थय तेतुं डोए प्रमाणे न नथी. ओ के हुं ने क'छ पणु कही रह्यो छुं ते संपूर्ण रीत यथार्थ सत्य-कही रह्यो छु. पणु मारां ते वचने असंभवित असहाय डोवा भइ

वचने सती यदि अहमेवं=एवंभूतं सत्यमपि वदामि, यत्-अहं 'सहपुत्तेहिं अपुत्ते' सहपुत्रैरपि अपुत्रः=पुत्रेषु विद्यमानेष्वपि अहं पुत्ररहित एवास्मि तैरनादृतत्वात् कः 'मेयं' ममेदं=इदं मदीयं वचनं 'सहहिस्सइ' श्रद्धास्यति=प्रत्येष्यति, न कोऽपि, तथा अहं 'सहमित्तेहिंअमित्ते' सहमित्रैरमित्रः=मित्रेषु विद्यमानेष्वपि 'मित्ररहितोऽहं' को 'मेदं' ममेदं वचनं श्रद्धास्यति? एवम्=अनेन प्रकारेणैव अर्थेन दारैः दासैः परिजनेन च सहितोऽपि, तै रहितोऽस्मि, इदं मदीयं वचनं कः श्रद्धास्यति, अपितु न कोऽपि। 'एवं' अमुना प्रकारेण ख यद्यहं ब्रवीमि-यत् 'तेतलिपुत्रे' तेतलिपुत्र नामधेये ख मयि अमात्ये कनकध्वजेन राज्ञा 'अवज्ञाएणं समाएणं' अपध्यातेन=दुश्चिन्तकेन सता, अर्थात् कनकध्वजो राजा

सकना है जैसा मैं यह सत्य भी कहूँ कि मैं पुत्रों के विद्यमान होने पर भी अपुत्र पुत्र रहित-हूँ, तो कौन मेरी इस बात को श्रद्धा से देखेगा-इसी तरह मैं यह कहूँ कि मैं मित्रों के विद्यमान होने पर भी मित्र रहित हूँ-तो कौन मेरे इन वचनों पर विश्वास करेगा-(एवं अत्येणं दारेणं दासेहिं परिजणेणं एवं खलु तेतलिपुत्तेणं अमच्चे कणगज्झएणं रत्ताअवज्झाएणं समाणेणं तेतलिपुत्तेणं तालपुडगे विसे आसगंसि पक्खित्ते से वि य णो कमइ को मेयं सहहिस्सइ? तेतलिपुत्तेणं नीलुप्पल जाव खंधंसि ओहरिए तत्थ वि से धारा ओपला को मेयं सहहिस्सइ) इस तरह अर्थ, दारा, दास, परिजन, इन से युक्त होने पर भी मैं-इन से रहित हूँ, कौन मेरे इस वचन को मानेगा? अर्थात् कोई नहीं मानेगा इसी तरह यदि मैं ऐसा कहूँ कि मुझे तेतलिपुत्र अमात्य के ऊपर कनक

भाष्यसे भाटे श्रद्धेय थर्ध शके तेम नथी. जेम के हुं अत्यारे आ लतनी साथी वात पणु कहुं के पुत्रो डोवा छतांअे हुं पुत्र वगरनेा छुं तो डोणु भारी आ वातने श्रद्धानी दृष्टिअे जेशे? आ प्रभाणु ज हुं कहुं के मित्रो डोवा छतांअे हुं मित्र वगरनेा छुं तो डोणु भारी आ वात उपर श्रद्धा धरावशे?

(एवं अत्येणं दारेणं दासेहिं परिजणेणं एवं खलु तेतलिपुत्तेणं अमच्चे कणगज्झएणं रत्ता अवज्झाएणं समाणेणं तेतलिपुत्तेणं तालपुडगे विसे आसगंसि पक्खित्ते से वि य णो कमइ, को मेयं सहहिस्सइ? तेतलिपुत्तेणं नीलुप्पल जाव खंधंसि ओहरिए तत्थ वि से धारा ओपला को मेयं सहहिस्सइ)

आ रीते अर्थ (धन), दारा (पत्नी) दास, परिजन अे गधा डोवा छतां पणु हुं अेमना वगर छुं भारी आ वात उपर डोणु विश्वास भूडवा तैथार थशे? अेटवे के डोर्ध पणु विश्वास करशे ज नडि. आ रीते ज जे हुं आम कहुं के भारा उपर राज कनक ध्वज नाराज थर्ध गथा डता अेटवा भाटे

तैतलिपुत्रे दुश्चिन्तको जातः इतिहेतोः, तैतलिपुत्रेण तालपुटकं विषम् 'आसगंसिः' आस्ये=गुखे प्रक्षिप्तम्, 'से वि य' तदपि च विषं नो 'कमइ' न क्राम्यति=विषत्वेन न परिणमति को जनः 'मेदं' ममेदं सत्यमपि वचनं श्रद्धास्यति न कोऽपि, तथा 'तैतलिपुत्रेण' नीलुत्पल जाव खंधसि ओहरिए 'तैतलिपुत्रेण नीलोत्पल यावत् स्कन्धे अपहतः=तैतलिपुत्रेण नीलोत्पलगवलगुलिकयमप्रभाऽसिः 'स्कन्धे कण्ठमूले 'अवहतः' ग्रहतः 'तत्थवि' तत्रापि=तस्मिन् मरणोपाये कृतेऽपि च' तस्य=असे; धारा ओपल्ला=कुण्ठीभूता को 'मेदं' ममेदं श्रद्धास्यति । एवमेव यद्यहं ब्रूयाम् यन्मया 'तैतलिपुत्रेण पायगं गीवाए वंधेत्ता जाव रज्जुच्छिन्ना को मेयं सद्दहिस्सइ' तैतलिपुत्रेण पाशकं ग्रीवायां वद्ध्वा यावत् रज्जुच्छिन्ना, को ममेदं श्रद्धास्यति ? तैतलिपुत्रेण अतिविशालां शिलां यावद् वद्ध्वा अस्ताधयाव-

ध्वज राजा दुश्चिन्तक बन गये-इसलिये मैंने तालपुट विष सुख में डाल दिया परन्तु वह विषरूप से परिणामिन नहीं हुआ । मैंने विष खाया-पर मैं मरा नहीं-कौन मनुष्य मेरी इस सत्य बात को श्रद्धा की दृष्टी से देखेगा । तथा मैंने नीलोत्पल, गवल एवं गुलिका की प्रभा जैसी प्रभाव वाली तीक्ष्ण तलवार अपनी गर्दन पर मरने के लिये चलाई-परन्तु वह भोटी धारवाली बन गई-कुण्ठित हो गई-उमसे मेरी गर्दन नहीं कटी-कौन मेरी इस बात को मानने के लिये तैयार हो सकेगा (तैतलिपुत्रेण पासगं इत्यादि) इसी तरह यदि मैं यह कहूँ कि मुझ तैतलिपुत्रने अपने गले में पाशक डाला और वृक्षपर चढ़कर वहाँ से नीचे मैं लटक पड़ा और फंदा बीच में से टूट गया तो कौन इन वचनों पर विश्वास करेगा । (तैतलिपुत्रेण महइमहालयं जाव वंधित्ता अत्थाह जाव उदगंसि अप्पा

मे' तालपुटविष (उेर) णाधुं हंतुं पणु ते विपना इपमां परिणुत थयुं नथी अट्ठी के विष लक्षणे करवा छतांये हुं भरणु पायेथी नडि. आ वात उपर क्ये भाणुस विथास भूयवा तैयार थथे ? तेमअ नीलोत्पल, गवल अने गुलिकाना जेथी प्रभावाणी तीक्ष्ण धारवाणी तरवारनेा मे' भरवा भाटे भारी डोक उपर धा क्येथी पणु ते तरवार अ जूठी धारवाणी थथं गधं-कुण्ठित थथं गधं-तेनाथी भारी डोक कपाथं नडि. भारी आ वात उपर डोणु विथास करवा तैयार थथे ? (तैतलिपुत्रेण पासगं इत्यादि) आ रीते अ हुं आम कहुं के मे' तैतलिपुत्रे योताना गणामां क्षंसे नांण्ये अने वृक्ष उपर अढयो. वृक्ष उपर अग्निने त्यांथी नीचे लटकी पडयो पणु क्षंसे वर्येथी अ त्थी गये. तो डोणु भारी आ वात उपर विथास भूकथे ?

(तैतलिपुत्रेण महइमहालयं जाव वंधित्ता अत्थाह जाव उदगंसि अप्पा मुखे,

हुदके आत्मा मुक्तः, तत्रापि च खलु स्ताघो जातः, को ममेदं श्रद्धास्यति=मया स्वकण्ठे महाशिलां बद्ध्वा अगाधे उदके आत्मा मुक्तः, परन्तु तस्मिन्नुदकेऽपि मम तलस्पर्शो जातः, इति मम वचनं कः श्रद्धास्यति ? पुनश्च-तेतलिपुत्रेण मया शुष्के तणकूटे=तणपुञ्जेऽग्निकायं प्रक्षिप्य प्रज्वलिते तस्मिन् आत्मा मुक्तः, परन्तु सोऽग्निकायः ' विज्ञाए ' विध्यातः=उपशान्त, इत्येवंरूपमपि मदीयं वचनं कः श्रद्धास्यति ? न कोऽपि, इत्येवं स तेतलिपुत्रः ' ओहयमणसंकल्पे ' अपहृतमनः संकल्पः=भग्नोत्साहः सन् यावद् ध्यायति=आर्तध्यानं करोति ॥ सू० १० ॥

मुक्कौ, तत्थ वि णं थाहे जाए को मेयं सहहिस्सइ ? तेतलिपुत्तेण मुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवित्ता अप्पा मुक्को तत्थ वि से अगणिकाए विज्जाए को मेयं सहहिस्सइ ? ओहयमणसंकल्पे जाव झियायइ) मुञ्ज तेतलिपुत्रने एक बहुत बड़ी शिला का गलेमें बांधी और बाद में अथाह अतार अपुरुष प्रमाण जल में कूद पड़ा परन्तु वह जल कूदते ही थाह वाला बन गया अथाह नहीं रहा मेरी इस सत्य बात पर भी कौन श्रद्धा करेगा। इसी तरह मुञ्ज तेतलिपुत्रने एक बड़े भारी शुष्क घास के ढेर में अग्नि लगाई और उस में अपने आप को प्रक्षिप्त कर दिया-परन्तु वह अग्नि बुझ गई उसने मुझे भस्म नहीं किया मेरी इसबात को कौन श्रद्धा रूप से स्वीकार करेगा। इस प्रकार अपहृत मनः संकल्प वाला बन कर-उत्साह रहित होकर वह तेतलिपुत्र अमात्य आर्तध्यान में पड़ गया ॥ सू० १० ॥

तत्थ वि णं थाहे जाए को मेयं सहहिस्सइ ? तेतलिपुत्तेण मुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवित्ता अप्पा मुक्को तत्थ वि से अगणिकाए विज्जाए को मेयं सहहिस्सइ ? ओहयमणसंकल्पे जाव झियायइ)

मे तेतलिपुत्रे ऐकं भट्टु लारे मोटी शिला (पथरो) गणमा बांधी अने तयार पछी हुं अथाह (छिंडा) अतार अपुरुष प्रमाण नेटला पाणीमां इदी गयो पण इहतांनी साथे व पाणी थाहवाणुं (छिछरुं) थधं गयुं, अथाह (छिंडुं) रहं नहिं भारी आ वात उपर पणुं केषु विश्वास भुंथे ? आ प्रमाणे व मे तेतलिपुत्रे ऐकं भट्टु मोटी लारे सूका घासना ढगदांमां अग्नि भ्रगंतांथे अने तेमां मे पेतानी नतने अंपदावी दीधी. पणुं ते अग्नि ओलवाधं भयो. तेले मने भस्म इथे नहिं भारी आ वातने केषु श्रद्धेयं मानिने स्वीकारवा तैयार थथे ? आ रीते ते अपहृतमनः संकल्पवाणे (उदाथ) थधने निरुत्साही भनी गयो अने आर्तध्यानमां इथी भयो. ॥ " सू० १० " ॥

मूलम्—तएणं से पोट्टिले देवे पोट्टिलारूवं विउव्वइ, विउ-
 विवत्ता, तेतलिपुत्तस्स अदूरसामंते ठिच्चा एवं वयासी—हं
 भो ! तेतलिपुत्ता ! पुरओ पवाए पिट्टओ हत्थिभयं, दुंहओ
 अचक्खुफासे, मज्झे सराणि वरिसंति, गामे पलित्ते रत्ते
 झियांइ, रत्ते पलित्ते गामे झियांइ । आउसो तेतलिपुत्ता !
 कओ वयामो ?, तएणं से तेतलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी—
 भीयस्स खलु भो ! पव्वज्जा सरणं, उक्कंठियस्स सद्देसगमणं
 लुहियस्स अन्नं, तिसियस्स पाणं, आउरस्स भेसज्जं, मांइ-
 यस्स रहस्सं अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अच्चाणपरिसंतस्स
 वाहणगमणं, तरिउकामस्स पवहणाकिच्चं, परं अभिउंजिउ
 कामस्स सहायकिच्चं खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स एत्तो
 एगमवि णं भवइ । तएणं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं
 एवं वयासी—सुदट्ठु णं तुमं तेयलिपुत्ता ! एयमइं आयाणाहि
 त्तिकट्टु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं
 पाउव्वभूए, तामेव दिसं पडिगए ॥ सू० ११ ॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि । ‘तएणं’ ततः खलु तेतलिपुत्रे आर्तध्यान-
 रते सति स पोट्टिलोदेवः ‘पोट्टिलारूवं’ पोट्टिलारूपं विकुर्वति=वैक्रियशक्त्या-

‘तएणं से पोट्टिले देवे’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से पोट्टिले देवे) उस पोट्टिल देवने
 (पोट्टिला रूवं विउव्वइ) पोट्टिला के रूप की विकुर्वणा की—अर्थात् वैक्रिय
 शक्ति के प्रभाव से उसने पोट्टिला का रूप धारण किया (विउव्वित्ता

‘तएणं से पोट्टिले देवे’ इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्थार पथी (से पोट्टिले देवे) ते पोट्टिलदेवे (पोट्टिला रूवं
 विउव्वइ) पोट्टिलाना रूपनी विकुर्वणा करी अटवे के वैक्रिय शक्त्या प्रभावथी

ધારયતિ, વિકુર્વિત્વા તેતલિપુત્રસ્ય અદૂરસામન્તે=નાતિદૂરે નાતિનિક્રઠે સ્થિત્વા
 પૃથમવાદીત્-હંભો તેતલિપુત્ર ! ' હંભો ' इत्यामन्त्रणे, हे तेतलिपुत्र ! ' पुरओ
 पुरतः=अग्रतः ' ' पवाए ' प्रपातः=गर्तः, अतो निर्गमनमसम्भवि, पृष्ठतः हस्ति-
 भयम्, अतो प्रत्यावर्तनं चासंभवि, ' दुहओ ' उभयतः=उभयतः=उभयोः
 पार्श्वयोः ' अचक्खुफासे' अचक्खुस्पर्शः=अन्धकारः, ' मज्झे ' मध्ये=यत्र त्रयमास्महे
 तत्र ' सराणि' शराः=त्राणाः, ' वरिसंति ' वर्षन्ति=निपतन्ति । ' गामे पलित्ते '
 ग्रामे प्रदीप्ते=प्रज्वलिते सति रण्णे ' अरण्यं=त्रनं ' झियाइ ' ध्यायति=गन्तुं
 चिन्तयति, अरण्ये प्रदीप्ते ग्रामं ध्यायति=गन्तुं चिन्तयति, ' आउसो तेतलिपुत्ता '
 हे आयुष्मन् तेतलिपुत्र ! ' उभओपलित्ते ' उभयतः प्रदीप्ते=उभयस्मिन् प्रज्वलिते
 वयं ' कओ वयामो ' कुतो व्रजामः=ङ्गच्छामः । ततः खलु स तेतलिपुत्रः पोढ्दिला-

તેતલિપુત્તસહ અદૂરસામંતે ઠીચ્ચા એવં વચાસી) ધારણ કર કે વહ
 તેતલિપુત્ર કે સમીપ ગયી । વહાં જાકર ડસને ડસમે ડસ પ્રકાર
 કહા-(હં ભો તેતલિપુત્તા ! પુરઓ પવાए પિટ્ટઓ હસ્થિભયં) અરે ઓ
 તેતલિપુત્ર ! આગે પ્રપાન સહુ હૈ ઓર પીછે હાથી કા ભય હૈ । (દુહઓ
 અચક્ખુફાસે, મજ્ઝે સરાણિ વરિસંતિ) ડોનો ઓર અન્ધેરા હૈ ઓર
 જહાં હમલોગ ઠહરે હુए હૈં વહાં વાળોં કી વૃષ્ટિ હો રહી હૈ । (ગામે
 પલિત્તે રણ્ણો ઝિયાઈ, રઓ પલિત્તે ગામે ઝિયાઈ) ગ્રામ મેં આગલગને
 પર મનુષ્ય જંગલ મેં ચલે જાને કો સોચતા હૈ-ઓર જંગલ મેં આગ
 લગને પર ગ્રામ મેં ચલે આને કે લિયે વિચારતા હૈ । (આડસો તેતલિ-
 પુત્તા ! ડભઓ પલિત્તે કઓ વયામો) પરન્તુ જબ ડોનોં મેં આગ લગ
 જાવે તો હે આયુષ્મન તેતલિપુત્ર ! કહો ! હમ કહાં જાવે ? (તएणं સે

તેણે પોઢ્દિલાતું ૩૫ ધારણ કર્યું. (વિઢ્વિવિત્તા તેતલિપુત્તસહ અદૂરસામંતે ઠીચ્ચા
 એવં વચાસી) ધારણ કરીને તે તેતલિપુત્રની પાસે ગઈ. ત્યાં જઈને તેણે તેને
 આ પ્રમાણે કહ્યું કે (હં ભો તેતલિપુત્તા ! પુરઓ પવાए પિટ્ટઓ હસ્થિભયં) અરે,
 ઓ ! તેતલિપુત્ર ! તમારી સામે પ્રપાત-ધોધ છે અને તમારી પાછળ હાથીનો
 ભય છે. (દુહઓ અચક્ખુફાસે, મજ્ઝે સરાણિ વરિસંતિ) બંને તરફ અંધારું
 છે અને ત્યાં અમે ઊંભા છીએ ત્યાં તીગે વર્ષા રહ્યા છે (ગામે પલિત્તે રણ્ણો
 ઝિયાઈ રઓ પલિત્તે ગામે ઝિયાઈ) ગામમાં આગ લાગતાં માણસ જંગલમાં
 નાસી જવાનો વિચાર કરે છે અને જંગલમાં આગ લાગતાં ગામમાં આવતા
 રહેવાનો વિચાર કરે છે. (આડસો તેતલિપુત્તા ડભઓ પલિત્તે કઓ વયામો)
 પણ ત્યારે બંને તરફ આગ સળગી ઉઠે ત્યારે હે આયુષ્મન્ત તેતલિપુત્ર !
 યોલો, અમે ક્યાં જઈએ ?

मेवमवादीत् ' भो ' हे पोष्टिले ! भीतस्य खलु प्रव्रज्याशरणं भवति तत्र दृष्टान्तं
 माह—यथा—' उक्कंडियस्स ' उक्कण्ठितस्य=परदेशवर्तित्वाद्नुसुक्तस्य स्वदेशगमनं,
 ' छुहियस्स ' छुधितस्य अन्नम्, ' तिसियस्स ' तृपितस्य पानं, ' आउरस्स आतु-
 रस्य=रोगिणः ' भेसज्ज' भैषज्यं ' मायिस्स' मायिकस्य=मायादिनः रहस्यं=गोपनम्,
 ' अभिजुत्तस्स ' अभियुक्तस्य = दोषापवादयुक्तस्य ' पच्चयकरणं = प्रत्ययकरणं
 तन्निराकरणेन स्वत्रिपये निर्दोषताप्रतीत्युत्पादनम्, ' अद्धाणपरिसंतस्स' अध्वपरिश्रान-
 त्तस्य=मार्गगमनपरिखिन्नस्य ' वाहणगमणं' वाहनगमनं, शकटादिना गमनं ' तरि-
 तैतलिपुत्ते पोष्टिलं एवं वयासी—भीत्तस्म खलु भो पवज्जा—सरणं—उक्कं-
 डियस्स सदेसगमणं छुहियस्स अन्नं, तिसियस्स पाणं, आउरस्स भेस-
 ज्जं, माइयस्स रहस्सं, अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अद्धाण परिसंतस्स
 वाहणगमणं, तरिउकामस्स पववणकिच्चं, परं अभिउज्जिकामस्स
 सहायकिच्चं संतस्स दंतस्स जिइंदियस्स एत्तो एगमवि ण भवइ) इस
 प्रकार पोष्टिला की बात सुनकर तैतलिपुत्र अमात्य ने उससे ऐसा कहा
 हे पोष्टिले ! भो (भय युक्त) के लिये प्रव्रज्या शरण भूत होती है,
 जैसे—परदेश वर्ती उत्सुक व्यक्ति के लिये स्वदेश गमन शरण भूत
 होना है, भूखे के लिये अन्न शरण भूत होना है प्यासे के लिये पानी,
 आतुर रोगी के लिये भैषज्य, मायावी के लिये मायाचारी, अभियुक्त—
 दोषापवाद वाले के लिये दोषों के निराकरण से अपने विषय में निर्दो-
 षता की प्रतीति का उत्पादन, शरण भूत होना है । मार्ग श्रान्त के लिये
 वाहन से गमन, करना शरण भूत होता है, तैरने की इच्छा वाले के

(तएणं से तैतलिपुत्ते पोष्टिलं एवं वयासी—भीत्तस्स खलु भो पवज्जा सरणं
 उक्कंडियस्स सदेसगमणं छुहियस्स अन्नं निसियस्स पाणं, आउरस्स भेसज्जं,
 माइयस्स रहस्सं, अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अद्धाणपरिसंतस्स वाहणगमणं, तरिउ-
 कामस्स सहायकिच्चं संतस्स जिइंदियस्स एत्तो एगमवि ण भवइ)

आ रीते पोष्टिलानी वात सांभजीने तैतलिपुत्र अमात्ये तेने कहुं के हे
 पोष्टिले ! लयलीन थयेदाने माटे प्रव्रज्या शरणु भूत होय छे—येम—परदेशमां
 रहेती उत्सुक व्यक्तितने माटे पोताने देश पाछा करवुं शरणु भूत होय छे भूष्या
 ने माटे अन्न शरणु भूत होय छे. आ प्रभाणु ज तरस्याने माटे पाणु, आतुर-
 रोग—ने माटे भैषज्य—इवा, मायावीने माटे माया च री, अभियुक्त—दोषापवाद-
 पाणा—ने माटे दोषाना निराकरणुथी पोताना विषे निर्दोषतानी प्रतीतिउं उत्पादन
 शरणु भूत होय छे. मार्गमां श्रानतां थकी गयेदाने माटे वाहनने उपयोग
 शरणु भूत होय छे, तरवानी इच्छा धरावता भाणुसने माटे नाव वगेरे अवयान

उकामस्स ' तरीतुकामस्य ' प्रवहणक्किच्चं ' प्रवहणकृत्यम्-प्रवहणं=प्रतरणं कृत्यं यस्मिन् तत्, जलयात्रं-नौकादिकमित्यर्थः ' परं अभियोजितुकामस्स ' परमभियोजयितुकामस्य=समाक्रमितुमुद्यतस्य ' सहायक्किच्चं ' सहायकृत्यं=मित्रादीनां साहाय्यं शरणं भवति, परं प्रव्रज्यानन्तरं ' खंतस्स ' क्षान्तस्य=क्षमाशीलस्य, ' दंतस्स ' दान्तस्य इन्द्रियं नो इन्द्रियाणां दमनशीलस्य, ' जिइंदियस्स ' जितेन्द्रियस्य=वशीकृततेन्द्रियस्य ' एत्तो ' इतः=एषु पूर्वोक्तेषु मध्ये ' एगमन्नि न भवड् ' एकमपि न भवति । एकमपि शरणं तस्य प्रव्रजितस्योपादेयं न भवतीत्यर्थः । ततः खलु तेतलिपुत्रस्यैतद्वचनश्रवणानन्तरम् स पोद्दिलो देवः तेतलिपुत्रमामात्यमेवमवदत्-सुण्डु खलु त्वं हे तेतलिपुत्र ! एतमर्थम्=' भीतस्य प्रव्रज्या शरणम् ' इत्येवंरूपं भावम् ' आयाणाहि ' आजानीहि=अनुष्ठानद्वारेणावबुध्यस्व-प्रव्रज्यां गृह्णाणेत्यर्थः ' चि

लिये नौकादि यान शरणं भूतं होना है, और जो दूसरों पर आक्रमण करने के लिये उद्यत होता है उसके लिये मित्रादिकों की सहायता शरणं भूत होनी है । परन्तु जो क्षमाशील होता है, दान्त-इन्द्रियों को एवं मन को दमन करता है, जितेन्द्रिय होता है ऐसे प्रव्रजित को इन पूर्वोक्त शरणों में से एक भी शरण उपादेय नहीं होता है । (तएणं से पोद्दिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-सुद्धुणं तुमं तेयलिपुत्ता । एयमट्ठं आयाणाहिं चि कट्ठु, दोच्चंपि तच्चंपि एवं वड्ढा जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए) इस प्रकार तेतलिपुत्र के वचन सुनने के बाद उस पोद्दिल देवने तेतलिपुत्र अमात्य से ऐसा कहा है तेतलिपुत्र ! डरे हुए को प्रव्रज्या शरणं होनी है इस भावरूप अर्थ को तुम अनुष्ठान द्वारा अच्छी तरह जानो अर्थात् प्रव्रज्या ग्रहण करो । ऐसा

शरथु लून डोय छे अने ने नीलओ उपर हुमडो करवा तैयार डोय छे तेना भाटे चि वगेरेनी महड शरथु लून डोय छे पथु ने क्षमाशील डोय छे, दंत-इन्द्रियो अने मनने दमन करनार डेय छे-एट्ठे के जितेन्द्रिय डोय छे ओवा प्रव्रजितना भाटे ओ अधी उपर वलुवाभां आवेली शरथुभाथी ओडेय कामभां आवती नथी.

(तएणं से पोद्दिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-सुद्धुणं तुमं तेयलिपुत्ता । एयमट्ठं आयाणाहिं चि कट्ठु, दोच्चंपि तच्चंपि एवं वड्ढा जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए)

आ शीते तेतलिपुत्रनां वचनं सांलणीने ते पोद्दिल देवे तेतलिपुत्र अमात्यने कथं के छे तेतलिपुत्र ! लयलीत थयेदाने भाटे प्रव्रज्या शरणं लून डोय छे आ लावड्य अर्थने तमे अनुष्ठान द्वारा सारी शीते समझे. एट्ठे के तने

कट्टु' इति कृत्वा=इत्युक्त्वा 'दोच्चंपि' द्वितीयमपि=द्वितीयवारमपि एवं वदति, वदित्वा यस्या दिशः प्रादुर्भूतः, तस्यामेव दिशि प्रतिगतः ॥ सू० ११ ॥

मूलम्-तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स सुभेणं परिणामेणं जाइसरणे समुप्पन्ने । तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स अयमे-
मेयारूवे अज्झरिथए५ समुप्पजित्था-एवं खल्लु अहं इहेव
जंबूद्वीवे दीवे महाविदेहे वासे पोक्खलावई विजये पौंडरि
गिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था । तएणं
अहं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव चोइसपुव्वाइं०
बहुणि वासाणि सामन्नपरियायं० मासियाए संलेहणाए
महासुक्के कप्पे देवे । तएणं अहं ताओ देवलोयाओ आयु-
क्खएणं३ इहेव तेतलिपुरे तेतलिस्स भद्दाए भारियाए
दारगत्ताए पच्चायाए, तं सेयं खल्लु मम पुव्वदिट्ठाइं महव्व-
याइं सयमेव उवसंपजित्ताणं विहरित्तए, एवं संपेहेइ, संपे-
हित्ता सयमेव महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहित्ता, जेणेव पमय-
वणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, असोगवर-
पावयस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि सुहनिस्सन्नस्स अणुच्चिते
माणस्स पुव्वाहीयाइं सामाइयमाइयाइं चोइसपुव्वाइं सयमेव
अभिसमन्नागयाइं । तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स अणगारस्स
सुभेणं परिणामेणं जाव तयावरणिज्जाणं कम्मणं खयोव-

कहकर उसने इसी बात को उससे दुबारा तिवारा भी कहा और कह-
कर बादमें वह पोट्टिला रूप धारी देव जिस दिशा से प्रकट हुआ था
उसी दिशा तरफ चला गया ॥ सू० ११ ॥

प्रमथ्या स्त्रीकरी दो, आ प्रमाणे कहीने तेणे जी० अने त्री० वभत पथु
आ रीते ४ कहुं अने त्पार पथी ते पोट्टिला ३५ धारी देव जे दिशा तरफ
थी प्रकट थयो उतो ते तरफ पाछे जतो रथो. ॥ सूत्र " ११ " ॥

समेणं कम्मरयविकरणकरं अपुञ्जकरणं पविट्टस्स केवलवर-
णाणदंसणे समुप्पण्णे ॥ सू० १२ ॥

टीका— 'तएणं तस्स' इत्यादि । ततः खलु तस्य तेतलिपुत्रस्य शुभेन परिणामेण जातिस्मरणम्=पूर्वभवज्ञानं समुत्पन्नम् । ततः खलु तस्य तेतलिपुत्रस्य अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः प्रार्थितः चिन्तितः कल्पितो मनोगतः संकल्पः समुदपद्यत एवं खलु अहम् इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहेवर्षे पुष्कलावती विजये पुण्डरी-
किण्यां राजधान्यां महापद्मो नाम राजा आसम् । ततः खलु अहं स्थविराणामन्तिके-
सुण्डी भूत्वा यावत् 'चोदसपुञ्जाइं०' चतुर्दशपूर्वाणि०=चतुर्दशपूर्वाणि अधीत-
वान् ; वहूनि वर्षाणि 'सामन्नपरियायं०' श्रामण्यपर्यायं०=चारित्र्यपर्यायं पालित-

'तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तेतलिपुत्तस्स) तेतलिपुत्र को (सुमेणं परिणामेणं जाइ सरणे समुप्पन्ने) शुभपरिणाम से जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । (तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए ५ समु-
प्पज्जित्था—एवं खलु अहं इहेव जंबूद्वीपे दीपे महाविदेहे वासे पोक्खला-
वई विजए पौंडरिगिणीए राघहाणीए महापउमे नामं राया होत्था)
उसके प्रभाव से उसने अपने पूर्वभव को जान लिया—उसने जाना कि मैं इसी जंबूद्वीप नामके द्वीप में महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी नामकी राजधानी में महापद्म नाम का राजा था (तएणं अहं थेराणं अंतिए मुंढे भवित्ता जाव चोदसपुञ्जाइं० वहूणि

'तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स' इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्थारभाइ (तेतलिपुत्तस्स) तेतलिपुत्रे (सुमेणं परिणामेणं जाइ सरणे समुप्पन्ने) शुभ परिणामथी अति स्मरणं सान उत्पन्न थइ गधुं.

(तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए ५ समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इहेव जंबूद्वीपे दीपे महाविदेहे वासे पोक्खलावई विजए पौंडरिगिणीए राघहाणीए महापउमे नामं राया होत्था)

तेना प्रभावथी तेण्णे चोत्ताना पूर्व भवने ळणी वीधा. तेने आ अतत्तुं ज्ञान धयुं डे ते आ जम्बूद्वीप नामना द्वीपमां मडा विदेह क्षेत्रमां पुष्क लावती विन्ध्यमां पुंडरीकिणी नामनी राजधानीमां मडापक्ष नाणे सान छते.

(तएणं अहं थेराणं अंतिए मुंढे भवित्ता जाव चोदसपुञ्जाइं० वहूणि वासांणि

वान् । अनन्तरं मासिक्या संलेखनया कालमासे कालं कृत्वा 'महासुक्रे कल्पे' महाशुक्रे कल्पे=सप्तमे देवलोके 'देवे' देवः=देवत्वेनोत्पन्नः । ततः खलु अहं तस्माद् देवलोकात् 'आयुक्त्वएणं ३' आयुः क्षयेण ३=आयुर्मन्त्रस्थिति क्षयानन्तरम् इहेव तेतलिपुरे तेतलेरमात्यस्य भद्राया भार्याया 'दारगत्ताए' दारकत्वेन=पुत्रतया 'पच्चायाए' प्रत्यायातः=उत्पन्नः, तत्=तस्मात् श्रेयः खलु मम पूर्व-दृष्टानि=पूर्वमनपालितानि 'मह्व्वयाइं' महाव्रतानि=पञ्चमहाव्रतानि स्वयमेव उपसंपद्य विहर्तुम्, एवं संप्रेक्षते संप्रेक्ष्य स्वयमेव महाव्रतानि आरोहति=स्वीकरोति, आरुह्य, यत्रैव प्रमद्वनम्=उद्यानं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य 'असोगवप्राय-

वासार्णि सामन्नपरियायं० मासियाए संलेहणाए महासुक्रे कल्पे देवे-तएणं अहं ताओ देवलोयाओ आयुक्त्वएणं ३ इहेव तेतलिपुरे तेतलि-स्स अमच्चस्स भदाए भारियाए दारगत्ताए पच्चायाए) वहां मैंने स्थ-विरो के पाम मुंडित होकर दीक्षा धारण की थी और ग्यारह अंगों का अध्ययन कर विशिष्ट तपस्या की थी अन्त में अनेक वर्षों तक श्रामण्य पर्यायका पालन कर एक भासकी संलेखना धारण कर मैं काल अचसर काल कर सातवां महाशुक्रे कल्पमें देवकी पर्यायसे उत्पन्न हो गया । वहां की आयुष्य स्थिति भवस्थिति स्थितिके क्षयके अनन्तर मैं वहांसे चलकर इस तेतलिपुर में तेतलि अमात्य के यहां भद्रा भार्या की कुक्षि से पुत्र रूप में अवतरित हुआ । (तं सेयं खलु मम पुव्वदिद्वाइं महव्वयाइं सय-मेव उवसंपज्जिन्ताणं विहरित्ताए-एवं संपेहेइ, संपेहिन्ता सयमेव महव्व-याइं आरुहेइ, आरुहिन्ता जेणेव पमयवणे उज्जाणे तेणेव उवगच्छइ,

सामन्नपरियायं० मासियाए संलेहणाए महासुक्रे कल्पे देवे-तएणं अहं ताओ देवलोयाओ आयुक्त्वएणं ३ इहेव तेतलिपुरे तेतलिस्स अमच्चस्स भदाए भारि-याए दारगत्ताए पच्चायाए)

त्यां मे' मुंडित थधने स्थविरोनी पासेथी दीक्षा धारणु करी હતી અને અગિયાર અંગોનું અધ્યયન કરીને વિશિષ્ટ તપસ્યા કરી હતી. છેવટે ઘણાં વર્ષો સુધી શ્રામણ્ય પર્યાયનું પાલન કરીને એક મહિનાની સંલેખના ધારણુ કરી અને ત્યાર પછી કાળ અવસરે કાળ કરીને સાતવા મહા શુક્ર કલ્પમાં દેવના પર્યાયથી હું જન્મ પામ્યો. ત્યાંની ભવસ્થિતિ ૩ (ત્રણ) ના ક્ષય થવા બદલ હું ત્યાંથી આવીને આ તેતલિપુરમાં તેતલિ અમાત્યને ત્યાં ભદ્રા ભાર્યાના ગર્ભથી પુત્ર રૂપમાં જન્મ પામ્યો.

(તં સેયં ખલુ મમ પુવ્વદિદ્વાઈ મહવ્વયાઈ સયમેવ ઉવસંપજ્જિન્તાણં વિહરિ-ત્તાએ એવં સંપેહેઈ, સંપેહિન્તા સયમેવ મહવ્વયાઈ આરુહેઈ, આરુહિન્તા જેણેવ પમયવણે

वस्स 'अशोकवरपादपस्य=अशोकवृक्षस्य 'अहे' अधः परिणतशिलोपरि 'सुह-
निसन्नस्स' सुखनिपणस्य=सुखोपविष्टस्य 'अणुचिन्तेमाणस्स' अनुचिन्तयतः=
पूर्वभवे कृतमध्ययनादिकं स्मरतः 'पुब्बाहीयाइं' 'पूर्वाधीतानि=पूर्वभवे पठितानि
सामायिकादीनि चतुर्दशपूर्वाणि स्वयमेव 'अभिसमन्नागयाइं' अभिसमन्वागतानि=
ज्ञानविषयतया संजातानि । ततः खलु तस्य तैतलिपुत्रस्य अनगारस्य श्रुमेण परि-
णामेण 'जाव' यावत्-प्रशस्तैरध्यवसायैः, प्रशस्ताभिलेखाभिर्विशुद्धयमानाभिः
'तयावरणिज्जाणं' तदावरणीयानां=ज्ञानावरणीयादीनां कर्मणां 'खयोवसमेण'

उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि सुहनि-
सन्नस्स अणुचिन्तेमाणस्स पुब्बाहीयाइं सामाइयमाइयाइं चोदस्सपुब्बाइं
सयमेव अभिसमन्नागयाइं) इसलिये अब सुझे यही उचित है कि मैं
पूर्व भव में पालित किये पंच महाव्रतों को अपने आप धारण कर लूं।
ऐसा उसने विचार किया। विचार करके फिर उसने अपने आपही
महाव्रतों को धारण कर लिया। धारण करके फिर वह जहाँ प्रमदवन
नामका उद्यान था वहाँ चला गया। वहाँ जाकर वह अशोक वृक्ष के
नीचे रकखे हुए पृथिवी शिलापट्टक पर पटाकार से परिणत शिला के
ऊपर-आनन्द के साथ बैठ गया और पूर्व भव में कृत अध्ययन आदि
का बार-बार चिन्तन करने लगा। इस तरह विचार करते-उसके पूर्व भव
में पठित सामायिक आदि चौदह पूर्व ज्ञान के विषय भूत बन गये।
(तएणं तस्स तैतलिपुत्तस्स अणगारस्स सुभेणं परिणामेणं जाव तया-

उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिला
पट्टयंसि सुहनिसन्नस्स अणुचिन्तेमाणस्स पुब्बाहीयाइं सामाइयमाइयाइं चोदस्स
पुब्बाइं सयमेव अभिसमन्नागयाइं)

जेटदा माटे ढवे भने अण थोअथ :लागे छे के पूर्व लवभां ने
पांथ मडानतोने में धारणु करेलां तेने पोतानी भेणे न धारणु करी लई.
आ रीते तेबु विचार कर्यो. विचार कर्या आद तेबु पोतानी भेणे न पांथ
मडानतो धारणु करी लीधां धारणु कर्या पथी ते न्यां प्रमदवन नामे उद्यान
हुतुं त्यां नतो रह्यो. त्यां नधने ते अशोक वृक्षनी नीचे भूकथेला पृथिवी
शिला पट्टक उपर-पटाकार इपथी परिणुत शिला उपर-आनंद अनुलवतो जेसी
गयो अने पूर्व लवभां ने कंठ अध्ययन कर्युं हुतुं तेनुं वारवार चिंतन करवा
लाग्यो. आ रीते चिंतन करतां करतां पूर्वलवभां लखेला सामायिक वगेरे थोद
पूर्वज्ञान तेने विषयभूत थई गथां.

क्षोपशमेन=उदितानां कर्मणां क्षयेण अनुदितानां कर्मणामुपशमेन=निरुद्धोदयत्वेन
'कम्मरयविकरणकरं' कर्मरजो विकरणकरम् 'अपुञ्चकरणं' अपूर्वकरणम्=अष्टम-
गुणस्थानम् प्रविष्टस्य तस्य केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् ॥सू० १२॥

मूलम्—तएणं तैतलिपुरे नयरे अहा संनिहिण्हिं वाणमं-
तरेहिं देवेहि देवीहिय देवदुंदुभीओ समाहयाओ, दसद्धवन्ने
कुसुमे निवाडिए, दिव्वे देवगीयंगधठ्वनिनाए कए यावि
होत्था । तएणं से कणगज्झए राया इमीसे कहाए लद्धट्टे
समाणे एवं वयासी—एवं खल्लु तैतलिपुत्ते मए अवज्झाए
मुंडे भवित्ता पव्वइए, तं गच्छामि णं तैतलिपुत्तं अणगारं
वंदामि नमंसामि वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं विणएणं भुज्जो
२ खामेमि, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता पहाए० चाउरंगणीए

वरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं कम्मरयविहरणकरं अपुञ्चकरणं
पविट्टस्स केवलवरनाणदंसणे समुप्पणे) इस प्रकार शुभ परिणामों से
यावत् प्रसस्त अध्यवसायों से विशुद्धमान लेश्याओं से, उसके ज्ञाना-
वरणी आदि कर्मों का क्षयोपशम-उदित कर्मों का क्षय एवं अनुदित
कर्मों का उपशम-हो गया—सो इस के प्रभाव से वे कर्मरज को दूर
करने वाले अष्टम अपूर्व करण नामके गुणस्थान में प्राप्त हो गये ।
बाद में वाहरवे गुणस्थान के अंत में और तेरहवे गुणस्थान के प्रारंभ
में उन्हें केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया ॥सू० १२॥

(तएणं तस्स तैतलिपुत्तस्स अणगारस्स सुभेणं परिणामेणं जाव तयावरणि-
ज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं कम्मरयविकरणकरं अपुञ्चकरणं पविट्टस्स केवल-
वरनाणदंसणं समुप्पणे)

आ रीते शुभ परिणामोत्थी, यावत् प्रसस्त अध्यवसायोत्थी, विशुद्धमान-
लेश्याओत्थी तेना ज्ञानावरणीय वजरे कर्मोना क्षयोपशम-उदित कर्मोना क्षय
अने अनुदित कर्मोना उपशम थर्ध गयो. ओना प्रभावथी तेज्जे कर्मरज्जे
विकरञ्च करनारा अष्टम अपूर्व करणु नामना शुभस्थानमां प्राप्त थर्ध गया. त्वा
पथी प्रारम्भा शुभस्थानना अंतमां अने तेरमा शुभस्थानना प्रारंभमां तेमने
केवलज्ञान अने केवल दर्शन-उत्पन्न थर्ध गयां. ॥ सूत्र " १२ " ॥

सेणाए जेणेव पमयवणे उज्जाणे जेणेव तेतलिपुत्ते तेणेव
 उवागच्छइ उवागच्छित्ता तेतलिपुत्तेअणगारं वंदइ नमंसइ
 वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्टं विणएणं भुज्जो२ खामेइ, नच्चा-
 सन्ने जाव पज्जुवासइ । तएणंसे तेतलिपुत्ते अणगारे कण-
 गज्झयस्स रत्तो तीसे य महइ महालायाए० धम्मं परिकहेइ ।
 तएणं से कणगज्झए राया तेतलिपुत्तस्स केवलस्स अंतिए
 धम्मं सोच्चा णिसम्म, पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं सावंग-
 धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणोवासए जाए जाव
 अहिगय जीवाजीवे । तएणंतेतलिपुत्ते केवली बहूणि वासाइं
 केवलपरियागं पाउणित्ता जाव सिद्धे । एवं खलु जंबू !
 समणेणं भगवथा महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोदसमस्स
 णायज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते तिबेमि ॥ सू० १३ ॥

॥ चउदस अज्झयणं समत्तं ॥

टीका—‘ तएणं ’ इत्यादि । ततः खलु तेतलिपुरे नगरे ‘ अहासंनिहिएहिं ’
 यथा संनिहितैः=आसन्नैः ‘ वाणमंतरेहिं ’ वाणव्यनरैः देवैः देवीभिश्च देवदुन्दुभयः
 समाह्वना=आकाशे देवैः देवभिश्च देवदुन्दुभयो वारिता इत्यर्थः, ‘ दसद्ववणे
 कुसुमे निवाडिए’ दशार्द्धवर्णं कुसुमं निपातितम्, अत्र जाति विवक्षायामेकवचनम्,

‘ तएणं तेतलिपुरे नगरे ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं, इसके बाद (तेतलिपुरे नगरे तेतलिपुर नगरमें
 (अहासंनिहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिय देवदुन्दुभीओ समाह्वयाओ.
 दसद्ववन्ने कुसुमे निवाडिए, दिव्वे देवगीयगंधव्वनिनाए कए थावि

‘तएणं तेतलिपुरे नगरे’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थार ५५ (तेतलिपुरे नगरे) तेतलिपुर नगरमें
 (अहा संनिहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिय देवदुन्दुभीओ समाह्वयाओ,
 दसद्ववन्ने कुसुमे निवाडिए, दिव्वे देवगीयगंधव्वनिनाए कए थावि होत्था)

दशाद्वयवर्णानि=पञ्चवर्णाणि अचित्तपुष्पाणि निपातितानि=वर्णितानि, दिव्यः=मनो-
हरः गीतगन्धर्वं निनादः कृतश्चापि अभवत् । ततः खलु स कनकध्वजो राजा
'इमीसे कहाए लद्धडे समाणे ' यस्याः कथाया लब्धार्थः मया दृष्टचिन्ता विषयी-
कृतस्तेतलिपुत्रः अमात्यः प्रव्रज्य प्रमदवने केवलवाज्ञानदर्शनसम्पन्नो जात इति
वृत्तान्ताभिन्नः सन् एवमवादीत्-एवं खलु तेतलिपुत्रो मया ' अवज्ज्ञाए ' अप-
घ्यातः=दुष्टचिन्तानिषयीकृतः सन् सुण्डो भूत्वा मन्त्रजितः । ' तं ' तत्=तन्मात् कार-
णात् नमस्यित्वा ' एयमहं ' एतमर्थं=मया कृतमपमानरूपमर्थं विनयेन भूयो भूयः
' स्वामेमि ' क्षमयामि, एवं संप्रेक्षते. संप्रेक्ष्य ' ण्हाए ' स्नातः कृतस्नानः ' चाउ-
रंगिणीए सेणाए ' चतुर्गङ्गिण्या सेनया सार्द्धं यत्रैव प्रमदवनं उद्य नं यत्रैव तेनक्ति-

होत्था) यथा संनिहित आसन्न भूत हुए वाण, व्यन्त देवों ने और
देवियों ने आकाश में देवदुन्दुभियां बजाईं । पंचवर्ण के अचित्त कुसुमों
की वृष्टि की । मनोहर गीत गधर्व निदान भी किया । (तएणं से कण-
गज्ज्ञए राया इमीसे कहाए लद्धडे समाणे एवं वयामी) जब यह
समाचार कनकध्वज राजा को ज्ञान हुआ मेरो दुष्ट विचारणा के विषय
भूत बने हुए, तेतलिपुत्र अमात्य ने दीक्षित होकर प्रमदवन में केवल
ज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर लिया है-इस प्रकार का वृत्तान्त जब
उसे मालूम पड़ा-तब उसने अपने मन में विचार किया (एवं खलु तेन-
लि पुत्ते मए अवज्ज्ञाए सुंडे भवित्ता पव्वइए, तं गच्छामि णं तेनलिपुत्तं
अणगारं वंदामि नमंसांमि, वंदित्ता नमंसित्ता एयमहं विणणणं सुज्जो
स्वामेमि एव संपेहेइ-सपेहित्ता ण्हाए० चाउरंगिणीए सेणाए जेणेव पमय-
वणे उज्जाणे जेणेव तेनलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेनलि

यथा संनिहित आसन्नभूत थयेत्ता वाणु० तं देवेभ्ये अने देवीभ्ये भ्ये
आकाशमां देवदुन्दुभिभ्यो वगाडी, पांथ र गना अयित्त पुष्पेणी वर्या करी अ-
ननेअर गीत गधर्व निनाद (धरनि) पबु कथे। (तएणं से कणगज्ज्ञए राया
इमीसे कहाए लद्धडे समाणे एवं वयामी) न्यारे आ सभायारेणी वायु राजा
कनक ध्वजने थर्ध के भारी दुष्ट चिन्तयानुने दीधे तेतलिपुत्र अमात्ये दीक्षित
थर्धने प्रमदवनमां केवलज्ञान अने केवल दर्शन प्राप्त करी दीधा छे त्यारे
तेषु मनभा विचार कथे के

(एवं खलु तेनलिपुत्ते मए अवज्ज्ञाए सुंडे भवित्ता पव्वइए तं गच्छामि णं
तेनलिपुत्तं अणगारं वंदामि नमंसांमि, वंदित्ता नमंसित्ता एयमहं विणणणं सुज्जो र
स्वामेमि एवं संपेहेइ-सपेहित्ता ण्हाए० चाउरंगिणीए सेणाए जेणेव पमयवणे
उज्जाणे जेणेव तेतलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेतलिपुत्तं अणगारं

पुत्रोऽनगारस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तैतलिपुत्रमनगारं वन्दते नमस्यति, त्रिदितत्रा नमस्यत्या एतमर्थं=स्वकृताऽपराधलक्षणं विनयेनभूयो भूयः क्षमयति=क्षमां कारयति, तथा 'नच्चासन्ने०' नात्यासन्ने नातिदूरे यावत् पर्युपास्ते=सेवां करोति । ततः खलु स तैतलिपुत्रोऽनगारः कनकध्वजाय राज्ञे तस्यां च

पुत्रं अणगारं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एमयद्वं विणएणं भुज्जो २ खामेइ नच्चासन्ने जाव पज्जुवासइ) मैंने तैतलिपुत्र को अपनी दुष्ट चिन्ता का विषयभूत बनाया है—सो वह मुंडित होकर दीक्षित हो गया है । इसलिये मैं अब उमके पास जाऊँ और उन तैतलिपुत्र अनगार को वंदना करूँ—नमस्कार करूँ । वंदना नमस्कार कर मैं अपने द्वारा किये अपमान रूप अपराधकी बड़े विनय के साथ बार २ उनसे क्षमा मांगूँ—इस प्रकार ज्योही उसने विचार किया—कि उसी समय वह उठा और स्नान किया—बाद में अपनी चतुरंगीनी सेना के साथ जहाँ प्रमदवन था—उसमें जहाँ तैतलिपुत्र अनगार विराजमान थे वहाँ पहुँचा—वहाँ पहुँच कर उसने तैतलिपुत्र अनगार को वंदना की नमस्कार किया । वंदना नमस्कार करके फिर अपने द्वारा कृत अपमान रूप अपराध की बड़े विनय के साथ बार २ उनसे क्षमा कराई और समुचित स्थान पर बैठ कर उनकी सेवा सुश्रूषा की (तएणं से तैतलिपुत्ते अणगारे कणगज्झ-

वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एमयद्वं विणएणं भुज्जो २ खामेइ नच्चासन्ने जाव पज्जुवासइ)

तैतलिपुत्र अमात्यने मे' पोतानी दुष्ट चिताने विषयभूत (लक्ष्य) 'अनाये छे तेथी न ते मुंडित थपने दीक्षित थप गये छे. अटला भाटे हवे हुं' तेनी पासे जडि अने तैतलिपुत्र अनगारने वंदन कइ' नमस्कार कइ' वंदना अने नमस्कार करीने हुं' मारा वडे थप गयेला अपमान रूप अपराध भइल भइल न अत्रपले तेमनी पासेथी क्षमा याचना कइ'. आ रीते विचार थतांनी साथे तरत न ते छेसे थये अने स्नान कथुं' तयार पछी पोतानी अतुर'गिष्ठी सेनाने साथे न्यां प्रमदवन छतुं. अने तेमां पषु न्यां तैतलिपुत्र अनगार विराजमान छता त्या पडेअये त्यां पडेअीने तेखे तैतलिपुत्र अनगारने वंदना करी अने नमस्कार कयां. वंदना अने नमस्कार करीने तेखे तेना वडे थप गयेला अपमान रूप अपराधनी भइल न अत्रपले क्षमा भागी अने तयार पछी तेखे उचित स्थान उपर गेअीने तेमनी सेवा तेमन सुश्रूषा करी.

(तएणं से तैतलिपुत्ते अणगारे कणगज्झयस्स रण्णो तीसे य मदइ महाल-याए० धम्मं परिकहेइ)

‘महद्महालयाए०’ महातिमहत्यां परिपदि धर्मं ‘परिकहेइ’ परिकथयति= उपदिशति । ततः खलु स कनकध्वजो राजा तेतलिपुत्रस्य केवलिनोऽन्तिके धर्मं श्रुत्वा- निश्चय्य पञ्चाणुव्रतिकं सप्तशिक्षाव्रतिकं इत्येवं द्वादशविधं श्रावकधर्मं प्रतिपद्यते, प्रतिपद्य श्रमणोपासको जातः । कीदृशः ?-अभिगत जीवा-जीवः=परिज्ञात-

यस्स रणो तीसे य महद्महालयाए० धम्मं परिकहेइ) इसके बाद उन तेतलिपुत्र अनगार केवली ने कनकध्वजराजा को उपस्थितः परिषद् को विशाल धर्म का उपदेश दिया-(तएणं से कणज्झए राया तेतलिपुत्तस्स केवलिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं सावगधम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जिता समणोवासए जाए जाव अहिगयजीवाजीवे । तएणं तेतलिपुत्ते केवली वहुणि वासाइं केवलिपरियागं पाउणिता जाव सिद्धे । एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोदसमस्स णायज्झयणस्स अयमइडे पणत्ते त्तिवेमि) उपदेश सुनने के बाद कनकध्वज राजाने तेतलिपुत्र केवलि के समीपश्रुतचारित्ररूप धर्म के प्रभाव से प्रेरित होकर और उस श्रुत धर्म का अच्छी तरह हृदय से विचार कर पांच अणुव्रत एवं सात शिक्षा रूप श्रावक धर्म धारण कर लिया । धारण करके वे श्रमणोपासक बन गये-यावत् जीव और अजीव तत्त्व का क्या स्वरूप है इसके भी वे ज्ञाता हो गये । बाद में तेतलिपुत्र केवलीने अनेक वर्षों तक केवलि

त्यार पछी ते तेतलिपुत्र अनगार डेवणीअे कनकध्वज राअने तेमअ उपस्थित परिषदने अविस्तर धर्म विषे उपदेश आये।

(तएणं से कणज्झए राया तेतलिपुत्तस्स केवलिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं सावगधम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जिता समणोवासए जाए जाव अहिगयजीवाजीवे । तएणं तेतलिपुत्ते केवलि वहुणि वासाइं केवलिपरियागं पाउणिता जाव सिद्धे । एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोदसमस्स णायज्झयणस्स अयमइडे पणत्ते त्तिवेमि)

उपदेश सांभलीने कनकध्वज राअअे तेतलिपुत्र डेवणीअ श्रुतचारित्ररूप धर्मना प्रभावथी प्रेरणने ते श्रुतचारित्र रूप धर्म विषे मनमां सारी रीते विचारं करीने तेमनी प.सेथी पांच अणुव्रत अने सात शिक्षारूप श्रावकधर्म धारण करी लीधां. धारण करीने तेअो श्रमणोपासक थई गया अने यावत् एव तेमअ अणुव्रतत्वतुं स्वइप थुं छे ? तेतुं पछु तेअोने ज्ञान थई गथुं. त्यार पछी तेतलिपुत्र डेवणीअे धर्मां वर्षां सुधी डेवणी पर्यायतु पावन कथुं अने आभ तेअोअे यावत सिद्धपद

सकलजीवाजीवतत्त्वश्चाऽपि जातः । ततः खलु तेतलिपुत्रः केवली बहूनि वर्षाणि केवलपर्यायं पालयित्वा यावत् सिद्धः=मोक्षं गतः ।

सुधर्मास्वामी प्राह—एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण चतुर्दशस्य ज्ञाताध्ययनस्य 'अयमद्वे' अयमर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः, 'त्ति वेमि' इति ब्रवीमि=भगवत्समीपे यथा श्रुतं तथा त्वां प्रतिकथयामि । एतेन अध्ययनेन इदमायातं यत्-प्राणिनो यावद् दुःखं मानभ्रंशं च न प्राप्नुवन्ति तावद् बहुधाः प्रवोधिता अत्र धर्मं न स्वीकुर्वन्ति, यथा तेतलिपुत्रः ॥ सू० १३ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितकलितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानसर्देक-श्रीशाहच्छत्रपतिकोल्हापुरराजमदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री-घासीलाल-व्रतिविरचितायां 'ज्ञानाधर्मकथाङ्ग' सूत्रस्यानगारधर्मासृत्तवर्षिण्याख्यायां व्याख्यायां चतुर्दशमध्ययनं संपूर्णम् ॥१४॥

पर्याय का पालन कर यावत् सिद्ध पद प्राप्त कर लिया । सुधर्मास्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! श्रमणभगवान महावीर ने इस चौदहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्तरूप से भाव अर्थ प्ररूपित किया है । सो जैसा मैंने उन भगवान के समीप में सुना है यह वैसा ही तुमसे कहा है । इस अध्ययन से हमें यह ज्ञान हो जाना है कि सनार में तेतलिपुत्र की तरह ऐसे भी प्राणी हैं कि वे जब तक दुःख और अपमान को नहीं पालते हैं तब तक अनेक बार प्रतिवोशित करने पर भी-धर्म को स्वीकार नहीं करते हैं ॥ सू० १३ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलालजी महाराज कृत "ज्ञानाधर्मकथाङ्गसूत्र" की अनगारधर्मासृत्तवर्षिणी व्याख्याका चौदहवां अध्ययन समाप्त ॥ १४ ॥

मेणनी लीधुं. सुधर्मा स्वामी कडे छे डे डे जम्बू ! श्रमणु भगवान महावीरे आ चौदसा ज्ञाताध्ययने पूवोक्त रूपथी लाव-अर्थ निरूपित कर्यो छे. जेवो अर्थ मे तेजोश्री पासेथी स लये छे तेवो अ तमने कह्यो छे. आ अध्ययनथी अभने आ लतनुं ज्ञान थाय छे के स मारभां तेतलिपुत्रनी जेम जेवां पणु प्राणुं. ज्यो छे डे तेजो ज्यो सुधी दुष्ठी अने अपमानित थता नधी लां सुधी धणु. वषत प्रतिवोशित करे छे नां धर्मने स्वीकारता नथी ॥ सूत्र ' १३ ' ॥

श्री जैनाचार्य घासीलाल महाराज कृत ज्ञानासूत्रनी अनगारधर्मासृत्तवर्षिणी व्याख्याका चौदसुं अध्ययन समाप्त ॥ १४ ॥

॥ अथ पञ्चदशमध्ययनं प्रारभ्यते ॥

गतं चतुर्दशमध्ययनं सम्प्रति पञ्चदशमारभ्यते, पूर्वाध्ययनेऽपमानाद् विषय-
त्यागः प्रदर्शितः, अत्र तु स जिनोपदेशाद् भवतीति प्रतिपादयिष्यतेऽतस्तस्य
सद्भावार्थप्राप्तिः, असद्भावेत्वनर्थप्राप्तिर्भवतीत्येवं पूर्वेण सम्बन्धः तत्रोदमा-
दिसूत्रम्—'जङ्घं भंते' इत्यादि ।

मूलम्—जङ्घं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव
संपत्तेणं चोद्दसमस्स नायजङ्घणस्स अयमट्ठे पणत्ते पन्नरस-
मस्स णं भंते णायजङ्घयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं
जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?, एवं खल्लु जंबू ! तेणं कालेणं
तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, पुन्नभद्दे चेइए जियं-
सत्तू राया । तत्थ णं चंपाए नयरीए धण्णे णामं सत्थवाहे
होत्था अट्ठे जाव अपरिभूए । तीसे णं चंपाए नयरीए
उत्तरपुरत्थिमे दिस्सीभाए अहिच्छत्ता नामं नयरी होत्था.

—:नन्दिफल नामका पन्द्रहवां अध्यायन प्रारं :-

चौदहवां अध्यायन समाप्त हो चुका—अब पन्द्रहवां अध्यायन प्रारंभ
होता है। पूर्व अध्यायन में तेतलि प्रधान के आख्यान द्वारा अपमान से
भी विषयों का त्याग कर दिया जाता है यह बात समझाई गई है।
इस अध्यायन में यह विषय त्याग जिनके उपदेश से होता है यह कहा
जावेगा। इस लिये उसके सद्भाव में अर्थ प्राप्ति और असद्भाव में
अनर्थ प्राप्ति होती है इस तरह से पूर्व अध्यायन के साथ इसका संबन्ध
बन जाता है:—जङ्घं भंते ! समणेणं इत्यादि ॥

नदिङ्गल नामे पंदरमु' अध्यायन प्रारंल

चौदहमु' अध्यायन पुर्ण थयु' छे. ढवे पंदरमु अध्यायन शरु थाय छे.
पडेदाःना अध्यायनमां तेतदिप्रधानना आणधान वडे अे वात समलववामां
आनी छे डे अपमानथी पशु विषयेना त्याग करवामां आवे छे. आ अध्यायनमां
आ विषय त्याग नेमना उपदेशथी थाय छे ते निषे कडेवामां आवथे. अेटला
भाटे तेना सद्भावमां अर्थ प्राप्ति अने असद्भावमां अनर्थ प्राप्ति होय छे.
आ रीते पूर्व अध्यायननी साथे आना संबन्ध समल्ल शकय छे.

टीकार्थ—'जङ्घं भंते ! समणेणं' इत्यादि ।

रिद्धत्थिमियसमिद्धा वन्नओ । तत्थ णं अहिच्छत्ताए नय-
रीए कणगकेऊ नामं राया होत्था, महया वन्नओ । तस्स
धणणस्स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइं पुब्बरत्तावरत्तकालस-
मयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए कप्पिए मणो-
गए संक्रप्पे समुप्पज्जित्थासेयं खल्ल मम त्रिपुलं पणियभंड-
मायाए अहिच्छत्तं नगरिं वाणिज्जाए गमित्तए, एवं संपेहेइ
संपेहित्ता गणिमंच४ चउत्विहं भंडं गेणहइ, सगडीसागडं
सब्जेइ सज्जित्ता सगडीसागडं भरेति२ कोडुंविणपुरिसे
सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणु-
प्पिया ! चंपाए नगरीए सिंघाडग जाव पहेसु घोसणं
घोसेह ॥ सू० १ ॥

टीका—जम्बूस्वामी पूछते—यदि खल्ल भदन्त ! श्रमणेन भगवता महा-
वीरेण अमवत्-सिद्धिगतिमानयेयं स्थानं सम्प्राप्तेन चतुर्दशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अय-
मर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः तर्हि पञ्चदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य श्रमणेन भगवता महा-

टीकार्थ—जम्बूस्वामी पूछते हैं कि (जइणं भंते ! समणेणं भगवया महा-
वीरेणं जाव संपत्ते णं चोइसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणणत्ते पन्नर-
समस्स णं भंते णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्ते
णं के अट्ठे पणणत्ते) भदंत ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो
मोक्षप्राप्त कर चुके हैं चौदहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त रूप से अर्थ
प्रतिपादित किया है—तो हे भदंत ! मुक्ति प्राप्त हुए उन्हीं श्रमण भगवान

ॐ पू स्वामी पूछे छे के—

(जइणं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोइसमस्स नाय-
ज्झयणस्स अयमट्ठे पणणत्ते पन्नरसमस्स णं भंते णायज्झयणस्स समणेणं भगवया
महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणणत्ते)

हे भदंत ! जे श्रमणु भगवान भडावीरे-के जेआ मोक्ष प्राप्त करी चुक्या
छे-चौदमा ज्ञाताध्ययननो आ पूर्वोक्ता इपथी अर्थ प्रतिपादित कर्यो छे तो हे
भदंत ! मुक्ति प्राप्त करेला ते श्रमणु भगवान भडावीरे पंहरमा ज्ञाताध्ययननो
शो अर्थ निरूपित कर्यो छे.

बीरेण यावत्सम्मानेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः । सुधर्मस्वामी कथयति-एवं खलु हे जम्बूः । तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगर्यासीत् । तत्र पूर्णभद्र चैत्यं जितशत्रु राजा चाभवत् । तत्र खलु चम्पायां नगर्यां धन्यो नाम सार्थवाह आसीत् । स कीदृशः ? इत्याह-आद्यो यावद् अपरिभूतः प्रभूतशक्तिशालीत्यर्थः । तस्या खलु चम्पाया नगर्या उत्तरपूरस्त्ये दिग्भागे अहिच्छत्रा नाम नगर्यासीत् । सा कीदृशी ? इत्याह- 'रिद्धत्थिमियसमिद्धा' ऋद्धस्तिमितसमृद्धा, तत्र ऋद्धा=नमः स्पृशिवहु-भासादयुक्ता, 'स्तिमिता' = स्वपरचक्रभयरहिता, समृद्धा=धनधान्यादि परिपूर्णा, 'वण्णओ' वर्णकः=नगरी वर्णनपाठोऽत्रवाच्यः, स तु औपपत्तिकसूत्रादवसैयः । तत्र खलु अहिच्छत्रार्या नगर्यां कनककेतुर्नाम राजाऽऽसीत् । 'महया-वण्णओ'

4111

महावीर ने पन्द्रहवें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ निरूपित किया है । (एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं सम्पणं चंपानामं नयरी होत्था) इस प्रकार जंबू स्वामी के प्रश्न के समाधान निमित्त श्री सुधर्मा स्वामी उन से कहते हैं कि जंबू ! सुनो-तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है- उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी (पुनर्भदे वेइए जियसत्तू राया, तत्थ णं चंपाए नयरीए धण्णे नामे सत्थवाहे होत्था अहुं जाव अपरिभूए) पूर्णभद्र नाम का उसमें उद्यान था । जितशत्रु नामका राजा उसमें रहता था । उसी चंपा नगरी में धन्य नामका सार्थ-वाह भी रहता था । यह जन धन धान्यादि संपन्न था । एवं लोकमान्य भी था । (तीसे णं चंपाए नयरीए उत्तर पुरत्थिमे दिसीभाए अहिच्छत्ताए नामं नयरी होत्था, रिद्धत्थिमिय समिद्धा वण्णओ-तत्थणं अहिच्छत्ताए

(एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं सम्पणं चंपा नामं नयरी होत्था)

आ रीते ज'भू स्वामीना प्रश्नना समाधान भाटे श्री सुधर्मा स्वामी तेमने कडे छे के डे ज'भू ! सांभणो, तभारा प्रश्नना ज'वाभ आ प्रभाणु छे के ते काणे अने ते समथे चंपा नामे नगरी छती.

(पुनर्भदे वेइए जियसत्तू राया, तत्थ णं चंपाए नयरीए धण्णे नामे सत्थवाहे होत्था अहुं जाव अपरिभूए)

तेमां पूणं लद्र नामे उद्यान छतुं. तेमां जितशत्रु नामे राजा रहते। छते धन्य नामे अेक सार्थवाह पणु ते चंपा नगरीमां ज रहते। छते। ते जन, धन, धान्य, वगैरेथी संपन्न छते, तेमज लोक मान्य पणु छते।

(तीसेणं चंपाए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अहिच्छत्ता नामं नयरी होत्था, रिद्धत्थिमिय समिद्धा वण्णओ-तत्थणं अहिच्छत्ताए नयरीए कणगकेउ नामं राया होत्था महया वण्णओ)

महावर्णक=स च 'महयाहिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे' महाहिमवन्महाम-
 क्रयमन्दरमहेन्द्रसारः, इत्यादिरूपोऽत्र विज्ञेयः। तस्य धन्यस्य सार्धत्राहस्य अन्यदा
 कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=रात्रे पश्चिमे प्रहरे अयमेतद्रूप आध्यात्मिक-
 श्रित्तितः प्राथितः कल्पितो मनोगतः संकल्पः=विचारः समुदपद्यत-श्रेयः=उचितं
 खलु मम विपुलं=प्रचुरं 'पणियमंडं' प्रणितभाण्डं=गणिमादिक्रय विक्रयवस्तुभाण्डम्
 'आयाए' आदाय=गृहीत्वा अहिच्छत्रां नगरिं वाणिज्याय गन्तुम्, गणिमादि-
 पण्यवस्तुजातं गृहीत्वा व्यापारायाहिच्छत्रां नगर्यां मया गन्तव्यमिति भावः। एवं
 'संपेहेह' संप्रेक्षते=विचारयति, संप्रेक्ष्य गणिमं ४-गणिमं धरिमं मेयं परिच्छेद्यं
 चेत्येवंरूपं चतुर्विधं भाण्डं=पण्यवस्तुजातं गृह्णाति, गृहीत्वा 'सगडीसागडं' शकटी-
 नयरीए कणगकेऊ नामं राया होत्था, महया वन्नओ) उस चंपा नगरी
 के ईशान कोण में अहिच्छत्रा नामकी नगरी थी। यह नभस्तलस्पर्शी
 प्रासादों से युक्त स्वचक्र और परचक्र के भयसे रहित तथा धन धान्य
 आदि विभव से विशेष समृद्ध थी। नगरी के वर्णन का पाठ औपपा-
 तिक सूत्र में जैसा नगरी का वर्णन किया गया है वैसा ही यहां जनना
 चाहिये। उस अहिच्छत्रा नगरी में कनककेतु नामका राजा रहता था।
 इस राजा के वर्णन में "महया हिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे"
 इत्यादिरूप पाठ यहां लगा लेना चाहिये। (तस्स धन्नस्स सत्यवाहस्स
 अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चित्थिए
 पत्थिए, कप्पिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-सेयं खलु मम विउलं
 पणियमंडमायाए अहिच्छत्तं नयरीं वाणिज्जाए गमित्तए, एवं संपेहेह,
 संपेहिता गणिमं च ४ चउच्चिव्हं मंडे गेण्हइ, सगडी सागडं सज्जेइ. म-

ते चंपा नगरीना ईशान कोणमा अहिच्छत्रा नामे नगरी इती. आकाशने
 स्पर्शता येवा गिया प्रासादोथी आ नगरी युक्त इती तेमञ्च स्वयंक अने परयंक
 ना लयथी रडित तथा धन धान्य वगेरे वैभवथी आ नगरी सविशेष समृद्ध
 इती. औपपातिक सूत्रमां नगरीना विषे लेवुं वणुंन करवामां आण्युं छे तेवुं
 न अडी पणु वाणी लेवुं लेधये ते अहिच्छत्रा नगरीमां कनककेतु नामे राजा
 रहनेना इतो, आ राजना वणुंन भाटे (महया हिमवंत-महंत-मलय मंदर-
 महिंदसारे) वगेरे पाठ अडी समञ्जे लेधये.

(तस्स धन्नस्स सत्यवाहस्स अन्नया कयाइं, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे
 अज्झत्थिए चित्थिए, पत्थिए, कप्पिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-सेयं खलु
 मम विउलं पणियमंडमायाए अहिच्छत्तं नयरीं वाणिज्जाए गमित्तए एवं संपेहेह,
 संपेहिता गणिमं च ४ चउच्चिव्हं मंडे गेण्हइ, सगडीसागडं सज्जेइ, सज्जित्तं

शाकटं=लघुमहच्छकटसमूहं सज्जयति,=पगुणी करोति सज्जयित्वा शकटोशाकटं भरेति, भृत्वा कौटुम्बिकपुरवान् शब्दयति=आह्वयति, आहूय एवमवाकीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! चम्पाया नगर्याः 'सिंघाडगजावपहेसु' शृङ्गाटक-त्रिकचतुष्क चत्वरमहापथपथेषु घोषणाम्=घोषयत ॥ सू० १ ॥

जिज्जत्ता, सगडीसागडं भरेह भरित्ता कोडुं वियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छहणं तुम्भे देवाणुप्पिया ! चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु घोसणं घोसेह) एक दिन की बात है कि उस धन्यसार्थवाह को रात्रि के पश्चिम प्रहर में यह इस प्रकार का आधमत्मिक चिन्तित, प्रार्थित कल्पित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं गणिमादि रूप विपुल पण्य वस्तु को लेकर व्यापार के लिये जो अहिच्छन्ना नगरी में जाऊँ तो बहुत अच्छी बात है। इस प्रकार उसने विचार किया-ऐसा विचार कारके उसने गणिम, धारिम, मेय और परिच्छेद्य रूप चार प्रकार का भाण्ड लिया। भाण्ड लेकर फिर उसने गाड़ी और गाड़ों को तैयार करवाया-जब वे गाड़ी गाड़े तैयार हो चुके तब उसने उम पण्य (विक्रेय वस्तु) को उनमें भरा-भर कर फिर उसने अपने कौटुम्बिक पुहों को बुलाया बुलाकर उसने ऐसा कहा-हे देवानुप्रियों ! तुम लोग जाओ-और चंपा नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ इन सब मार्गों में घोषणा करो। क्या घोषणा करना-यह बात नीचे के सूत्र से सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं ॥ सू० १ ॥

सगडीसागडं भरेह, भरित्ता कोडुं वियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी गच्छहणं तुम्भे देवाणुप्पिया । चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु घोसणं घोसेह)

એક દિવસે તે ધન્ય સાર્થવાહને રાત્રિના છેલ્લા પહોરમાં આ ભતને આધ્યાત્મિક, ચિંતિત, પ્રાર્થિત, કલ્પિત, મનોગત સંકલ્પ ઉત્પન્ન થયો કે પુષ્કળ પ્રમાણમાં ગણિમ વગેરે વેચાણની વસ્તુઓ લઈને વેપાર ખેડવા માટે જો હું અહિંચન્ના નગરીમાં જઈ તો બહુ સારુ થાય. આ રીતે તેણે વિચાર કર્યો. આવો વિચાર કરીને તેણે ગણિમ, ધરિમ, મેય અને પરિચ્છેદ્ય રૂપ ચાર પ્રકારની વસ્તુઓ વાસણોમાં ભરી. આરે ભતની વસ્તુઓ વાસણોમાં ભરીને તેણે ગાડી તેમજ ગાડાંઓને તૈયાર કરાવ્યા. જ્યારે ગાડી અને ગાડાંઓ તૈયાર થઈ ચુક્યાં ત્યારે તેણે તે વેચાણની વસ્તુઓને ગાડી અને ગાડાંઓમાં મૂકી ત્યાર પછી તેણે પોતાના કૌટુંબિક પુરુષોને બોલાવ્યા અને બોલાવીને તેમને આ પ્રમાણે કહ્યું કે હે દેવાનુપ્રિયા ! તમે જાઓ, અને ચંપા નગરીના શૃંગાટક, ત્રિક, ચતુષ્ક, ચત્વર, મહાપથ આ બધા માર્ગોમાં ઘોષણા કરો. ઘોષણા કરતાં યુક્તેષુ તે નીચેના સૂત્ર વડે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે. ॥ સૂત્ર " ૧ " ॥

घोषणास्वरूपमाह—' एवं खलु ' इत्यादि ।:

मूलम्—एवं खलु देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे विउलं पणियं मायाए इच्छइ अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए तं जो णं देवाणुप्पिया ! चरण वा चीरिए वा चम्मखंडिए वा भिच्छुडे वा पंडुरंगे वा गोयमे गोव्वइए वा गिहिधम्म-चित्तए वा अविरुद्ध विरुद्धवुड्डुमावगरत्तपडनिगंथप्पभिइपा-संडत्थे वा गिहत्थे वा धण्णेणं सत्थवाहेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नगरिं गच्छइ तस्स णं धण्णे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलाइ अणुवाहणस्स उवाहणाओदलयइ अकुंडियस्स कुंडियं दलयइ अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ अपक्खेवगस्स पक्खेवं दलयइ अंतराऽविय से पडियस्स वा भग्गलुग्गस्स साहेज्जं दलयइ सुहंसुहेण य णं अहिगच्छत्तं संपावेइ तिकट्टु दोच्चपि-त्तच्चपिं घोसेह घोसित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चपिणह, तएणं ते कोडुंबिय पुरिसा जाव एवं वयासी-हंदिसुणं लु भवंतो चंपानगरीवत्थवा वहवे चरगा य जाव पच्चपिणंति ॥सू०२॥

टीका—एवं खलु हे देवानुप्रियाः । धन्यः सार्थवाहः विपुलान् पणित्तभाण्डान् 'आयाए' आदाय इच्छति अहिच्छत्रां नगरिं 'वाणिज्जाए' वाणिज्याय=

' एवं खलु देवाणुप्पिया ' इत्यादि ।

टीकार्थ—(एवं खलु देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे विउलं पणियं मायाए इच्छइ अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए) हे देवानुप्रियो !

एवं खलु देवाणुप्पिया इत्यादि ।

(एवं खलु देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे विउलं पणियं मायाए इच्छइ अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए)

हे देवानुप्रियो ! तमे दोडे श्रृंगाटक वगेरे भागेमां व्या नतनी घोषणु

व्यापाराय गन्तुं तत्त्व=तस्मात् यः खलु हे देवानुप्रिया ! कोऽपि धन्यैर्न सार्थवाहेन सार्द्धमहिच्छत्रां नगरीं 'गच्छती' त्युत्तरेण सम्बन्धः, कोऽसौ, यस्तेन सार्द्धं गच्छेदित्याह—'चरण' इत्यादिना 'चरण वा' चरकः=गृहस्थस्य गृहे निष्पन्नस्यौदनादे योऽग्रभागो दानार्थं पृथक्कृत्य स्थाप्यते तस्य भिक्षावृत्त्याग्राहकः, 'चीरिण वा' चीरिकमार्गोपतितशब्दितचीरपरिधारकः, 'चर्मखंडिण वा' चर्मखण्डिकः=चर्मधारकः, 'भिक्षुण्डे वा' भिक्षोण्डः=अन्यानीतभिक्षान्नभोजी, 'पंडुरंगे वा' पाण्डुराङ्गः=भस्मलिप्तशरीरः, 'गोयमे वा' गौतमः=वृषभमधिकृत्य कणभिक्षाग्राही, 'गोव्वहण वा' गोव्रतिकः=गोचर्यानुकारी यथा यथा गौः स्थानासनादिक्रियां करोति तथा तथा सोऽपि करोतीति भावः, 'गिहधम्मचितण वा' गृहधर्मचिन्तकः=गृहिणो=गृहस्थस्य धर्मो गृहधर्मस्तं चिन्तयतीति तथा, 'गृहस्थधर्मएव-श्रेयान् नान्यः' उक्तञ्च—

तुम लोग श्रृंगटक आदि मार्गों में खड़े होकर इस प्रकार की घोषणा करना—कि धन्य सार्थवाह विपुल मात्रा में पणित (विक्रय वस्तु) को लेकर अहिच्छत्रा नगरी में व्यापार के लिये जाना चाहता है (तं जो णं देवानुप्पिया ! चरण वा चीरिण वा चम्मखंडिण वा भिक्षुण्डे वा पंडुरंगे वा गोयमे गोव्वहण वा गिहधम्मचितण वा अविरुद्धविरुद्ध बुद्धु सावगरत्तपडनिग्गंथप्पभिइपासंडत्थे वा गिहत्थे वा धणणेणं सत्थवा-हेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नयरीं गच्छइ तस्स णं धणणे सत्थवाहे अच्छत्त-गस्स छत्तगं दलाइ) इसलिये हे देवानुप्रियो ! जो भी कोई धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी जाना चाहता हो—चाहे वह चरक हो चीरिक हो, चर्मखंडधारी हो, भिक्षोण्ड हो, पाण्डुरङ्ग हो, गौतम हो, गोव्रतिक हो, गृहस्थधर्म चिन्तक हो, अविरुद्ध हो, विरुद्ध हो, वृद्ध-

करो के धन्य सार्थवाह पुंश्र प्रमाणां पणित (देवानुणी वस्तुयो) लघने अहिच्छत्रा नामे नगरीमां वेपार जेडवा माटे ज्वा धिच्छे छे.

(तं जो णं देवानुप्पिया ! चरण वा चीरिण वा चम्मखंडिण वा भिक्षुण्डे वा पंडुरंगे वा गोव्वहण वा गिहधम्मचितण वा अविरुद्धविरुद्धबुद्धुसावगरत्तपडनिग्गंथप्पभिइ पासंडत्थे वा गिहत्थे वा धणणेणं सत्थवाहेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नयरीं गच्छइ तस्स णं धणणे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलाइ)

जेडवा माटे छे देवानुप्रियो ! धन्य सार्थवाहनी साथे जे डेई ज्वा धिच्छतो डोय—लवे ते अरक डोय, श्रीरिक्क डोय, अर्भ भंड धारी डोय, भिक्षोड डोय, पांडुरंग डोय, गौतम डोय, गोव्रतिक डोय, गृहस्थ धर्म चिंतक डोय,

“ गृहाश्रमसमो धर्मो, - न भूतो न भविष्यति ।

‘ पालयन्ति नराः शूराः, क्लीवा पापण्डमाश्रिताः ॥ १ ॥ ’

इत्यभिसन्धाय तथा चिन्तनशीलः, ‘ अविरुद्धविरुद्धबुद्धसावगरत्तपडनिर्गन्ध-
प्पभिइपासंडत्थे वा ’ अविरुद्धविरुद्धवृद्धश्रावकरत्तपटनिर्ग्रन्थप्रभृतिपापण्डस्यः तत्र-
‘ अविरुद्ध ’ अविरुद्धः विरुद्धः कस्मादपीत्यविरुद्धः=विनयवादी क्रीयावादीत्यर्थः,
परलोकाम्भ्युपगमात्, ‘ विरुद्ध ’ विरुद्धः विरुद्धः = विरुद्धवादोऽस्यास्तीति-अर्थ
आदिन्वादच्, विरुद्धवादी आक्रियावादीत्यर्थः परलोकान्भ्युपगमात्, ‘ बुद्धसावग’
वृद्धश्रावकः=ब्राह्मणः, वृद्धः=वृद्धकालिको यः श्रावकः सः, भरतादिकाले पूर्वं
श्रावकसत्त्वेन पश्चाद् ब्राह्मणत्वभावान्, ‘ रत्तपड ’ रत्तपट=गैरिकवस्त्रधारीपरि-
व्राजकः, ‘ निर्गन्धप्पभिइ ’ निर्ग्रन्थप्रभृतिः = साधुप्रभृतिरन्यः कोऽपिकपिलादिः
पापण्डस्थो वा गृहस्थो वा, इति यदि एषु यः कोऽपिगच्छेत् तस्मै खलु धन्यः
सार्थवाहः अच्छत्रकाय=छत्ररहिताय छत्रकं ददानि=दास्यतीति भावः, एवं सर्वत्र
विज्ञेयस् ‘ अणुवाहणस्स ’ अनुपानहे=पादत्राणरहिताय ‘ उवाहणाओ ’ उपानहौ
ददाति, अकुण्डिकाय=जलपात्ररहिताय कुण्डिकां=जलपात्रं ददाति । ‘ अपत्थय-
णस्स ’ अपत्थयदनाय शम्बलरहिताय ‘ पत्थयणं ’ पत्थयदनं = शम्बलं ददाति ।
‘ अपक्खेवगस्स ’ अपक्षेपकाय, प्रक्षेपकः = पूर्तिद्रव्यं, तद्रहिताय मध्यमार्गे न्यून
शम्बलाय प्रक्षेपकं=शम्बलपूरकं द्रव्यं ददाति । ‘ अंतराविय ’ अन्तराऽपि च=
मार्गान्नरालेऽपि च ‘ से ’ तस्मै पतिनाय = वाहनाद् पादादिस्खलनेन वा, वा=

श्रावक हो, गैरिकवस्त्रधारी परिव्राजक हो, निर्ग्रन्थ हो, पाखंडी हो,
चाहे गृहस्थ हो कोई भी क्यों न हो, उसके लिये धन्य सार्थवाह यदि
वह छत्ररहित है तो छत्र देगा (अणुवाहणस्स उवाहणाओ दलयइ अ-
कुंडियस्स कुंडियं दलयइ अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ अपक्खेवगस्स
पक्खेवं दलयइ अंतराऽविय से पडियस्स वा भगगलुग्गस्स साहेज्जं दलयइ,

अविरुद्ध होय, विरुद्ध होय, वृद्ध श्रावक होय, गैरिक वस्त्र धारी परिव्राजक होय,
निर्ग्रन्थ होय, पाखंडी होय अने गृहस्थ होय कोइ पणु केम न होय तेना
भाटे ने ते छत्र वगरने होय तेवाने धन्य सार्थवाह छत्र आपसे।

(अणुवाहणस्स उवाहणाओ दलयइ, अकुंडियस्स कुंडियं दलयइ अपत्थयणस्स
पत्थयणं दलयइ अपक्खेवगस्स पक्खेवं दलयइ अंतराऽविय से पडियस्स वा

अथवा ' भग्गालुगस्स ' भग्गरुग्णाय भग्गाय = त्रुटितइस्तपादाद्यवयवाय
 रुग्णाय = रोगाक्रान्ताय रोगग्रस्ताय वा ' साहेज्जं ' साहाय्यम् = औषधो-
 पचारादि करणरूपं ददाति, तथा - सुखं -- सुखेन = सुखपूर्वकं च तम्
 अहिच्छत्रां नगरीं ' संपावेइ ' संप्रापयति=संप्रापयिष्यतीत्यर्थः । ' तिकट्टु ' इति
 कृत्वा एवमुच्चार्य द्वितीयमपि तृतीयमपि वारं घोषयत, घोषयित्वा मम ' एय-
 माणत्तियं ' एतामाज्ञप्तिकाम्=एतद्रूपां ममाज्ञां ' पच्चप्पिणह ' प्रत्यर्पयत=मदुक्तां
 घोषणां कृत्वा पुनर्महं निवेदयतेत्यर्थः । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुपाः ' तथाऽस्तु-
 सुहंसुहेणं अहिच्छत्तं संपावेइ, त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसेह) पद-
 घ्राण (जूता) रहित है तो जूता (पदघ्राण) देगा जलपात्ररहित होगा उसे
 जलपात्र देगा, कलेवा (भोजन) रहित है तो कलेवा (भोजन) देगा, शम्भ
 लपाथेय पूरक द्रव्यसे रहित है तो उसे शम्बल पाथेय-भाता पूरक द्रव्य
 देगा, अर्थात् चलतेर बीच मार्गमें ही जिसका कलेवा (भोजन) समाप्त हो
 जावेगा उसे उसके योग्य द्रव्यप्रदान करेगा, मार्गके मध्यमें चलतेर यदि
 वह घोड़ेसे गिर गया होगा, अथवा पैदल चलतेर यदि वह पैर फिसल
 कर गिर गया होगा और इस तरह से उसके हाथ पैर आदि टूट गये
 होंगे तो उसकी सार संभाल करेगा-रोगी की दवाई करेगा, और बड़े
 आनन्द के साथ उसे अहिच्छत्रा नगरीमें पहुँचा देगा । इस प्रकार की
 इस घोषणा को तुम लोग दो तीन बार करना । और (घोसित्ता मम
 एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) करके फिर हमें पीछे इसकी खबर देना
 (तएणं ते कौटुंबियपुरिसा जाव एवं वयासी हंदि सुणंतु भवंतो चंपा

भग्गालुगस्स साहेज्जं दलयइ, सुहं सुहेणं अहिच्छत्तं संपावेइ, त्ति कट्टु दोच्चंपि
 तच्चंपि घोसेह)

जेडा वगरने इशे तेने जेडा आपशे, जभवानी सगवड इशे नडि तेने
 जभवानी सगवड करी आपशे. शंभन्न-पाथेय-पूरक द्रव्य वगरने इशे तेने
 शंभल-पाथेय-पूरक द्रव्य आपशे. अटले के मार्गमां अधवच्ये लातुं पलास
 थर् गयुं इशे तेने योग्य धन आपशे. मार्गमां अधवच्ये आलतां आलतां
 जे ते घोडा छपरथी पडी जशे अथवा पगे आलतां आलतां जे ते पग लपसवाथी
 पडी जशे अने तेथी तेना इथ पग वगेरे. लांगी गयां इशे तेने तेनी ते
 सुश्रूषा करशे-रोगनी दवा करशे अने सुजेथी तेने अहिच्छत्रा नगरीमां पहुँचा-
 इशे. आ रीते तमे जे त्रय वपत घोषणा करे अने (घोसित्ता मम एयमाण
 त्तियं पच्चप्पिणह) घोषणा करीने अभने भग्गरुग्णाय आपो.

(तएणं ते कौटुंबियपुरिसा जाव एवं वयासी हंदि सुणंतु भवंतो चंपानयरी-

इत्युक्त्वा चंपानगरीं शृंगोटकादिमहापथपथेषु समागत्य-एवमवादिषुः-‘हंदि’ इत्यामन्त्रणे तेन हे लोकाः ! शृण्वन्तु-भवन्तः-यत् चरपानगरी वास्तव्या बहवः ‘चरगाय जाव’ इति-चरकचीरिकादयो धन्येन सार्थवाहेन सार्द्धमहिच्छत्रां नगरीं गच्छन्ति तेभ्यो धन्यः सार्थवाहश्छत्रादिकं सर्वं दास्यति, मार्गं च स्वलितेभ्यो रोगादिग्रस्तेभ्यश्च औषधोपचारादिना साहाय्यं करिष्यति, सुखपूर्वकमहिच्छत्रां नगरीं प्रापयिष्यति च, इत्येवं घोषयित्वा धन्यसार्थवाहाय ‘पच्चप्पिणंति’ ग्रथ्यर्पयंति=निवेदयन्ति ॥ सू० २ ॥

नगरीवत्थञ्चा वहवे चरगा य जाव पच्चप्पिणंति) इस प्रकार धन्यसार्थवाह की बात को उन कौटुम्बिक पुरुषों ने “तथास्तु” कहकर स्वीकार लिया और चंपानगरी में शृंगोटक आदि महापथ पर्यंतके समस्त मार्गों में जाकर इस प्रकार की घोषणा की, हे लोको ! सुनो-जो कोई चंपा नगरी का निवासी चरक आदि जन धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी को जाना चाहता हो उसके लिये धन्यसार्थवाह छत्रादि सब देगा तथा जो मार्ग में पतित हो जावेंगे अथवा रोगाक्रान्त बन जावेंगे उनकी औषधि आदि द्वारा सहायता भी करेगा और इस तरह वह उनके लिये सकुशल अहिच्छत्रा नगरी में पहुँचा देगा-इस प्रकार की घोषणा करके उन लोगों ने इसकी खबर धन्य सार्थवाह के पास भेज दी। गृहस्थ के घर निष्पन्न हुए औदनादिक खाद्य वस्तुओं का जो सर्व प्रथम हिस्सा दानके लिये पृथक कर रख लिया जाता है, उस

वत्थञ्चा वहवे चरगा य जाव पच्चप्पिणंति)

आ रीते धन्य सार्थवाहनी आशाने ते कौटुम्बिक पुरुषाञ्चे स्वीकारी लीधी अने चंपा नगरीना शृंगोटक वगेरे महापथाभां जन्धने आ रीते तेजाञ्चे घोषणा करी के हे लोको ! सांभणो, चंपा नगरीमां रडेनार अरक वगेरे गमे ते भाषुस धन्य सार्थवाहनी साथे अहिच्छत्रा नगरीमां ज तेने धन्य सार्थवाह छत्र वगेरे भधुं आपसे, तेमज मार्गं मां डोर्ध पडी जशे अथवा तो मांढो थर्ध जशे तो धन्य सार्थवाहनी तेनी भरोबर भावजत करावीने तेनी सहाय करशे अने तेने सकुशल अहिच्छत्रा नगरीमां पडोंच्याउशे आ रीते घोषणा करीने ते लोकेञ्चे धन्य सार्थवाहने घोषणुं काम पुडं थर्ध जवानी अजर आपी. गृहस्थने घेर तैयार करायेला लात वगेरे भाध वस्तुजोना जे सौ पडेलो हात माटे जूढो करीने राणवामां आवे छे ते लागने जे लीथ मांगीने लर्ध लथ छे तेने अरिक्क कडे छे. मार्गंमां पडेलों शेटेलों वसो जे

હિસ્સે કો જો ભિક્ષા વૃત્તિ સે લે જાતે હૈં ઉનકા નામ ચરિક હૈ । માર્ગ મેં ગિરે હુપ ફટેચિટે વહ્ન કો લેકર જો પહિનતે હૈં ઉનકા નામ વીરિક હૈ । ચમદ્દે કો જો અપને પહિરને કે ઉપયોગ મેં લાતે હૈં વે ધર્મ લ્હિક હૈ । દુસરે કે દ્વારા લાધી ગઈ ભિક્ષા સે જો અપના નિર્વાહ કરતે હૈં વે ભિક્ષોણ્ડ હૈં । અપને શરીર પર જો ખસ્મ લપેટે રહતે હૈં વે પ્રાંદુરંગ હૈં । વૈલ કો લેકર જો દુસરોં કે ઘરોં સે અનાજ માંગતે હૈં વે ગૌતમ હૈ । દિલીપ રાજા કી તરહ જો ગાયકી સેવા કરને મેં લગે રહતે હૈં—જય વહ્ન બૈઠતી હૈ તબ વે બૈઠતે હૈં—વહ્ન લ્હી હોતી હૈ તો વે ખી લ્હે હો જાતે હૈં હ્ત્યાદિ રૂપ સે ગોચર્યાનુકારી જો જન હોતે હૈં વે ગોવ્રતિક હૈં । ગૃહસ્થ ધર્મ હી શ્રેષ્ઠ હૈ, હસ પ્રકાર માન કર જો હસમેં રહ રહતે હૈં વે ગૃહધર્મ ચિન્તક હૈ । જૈસે—ગૃહસ્થાશ્રમ કે સમાન ધર્મ ન હુઆ હૈ ઓર ન આગે હોગા હી । જો શૂરવીર મનુષ્ય હોતે હૈં વે હી હસે પાલતે હૈં । પાષંડ ધર્મ કો પાલને વાલે મનુષ્ય શૂરવીર નહીં હૈં કિન્તુ વે તો ક્લીબ—નપુસક હૈં । એસી હનકી માન્યતા હોતી હૈ । અવિરુદ્ધ શબ્દ કા અર્થ વિરુદ્ધ નહીં રહતે હૈં સવકા સમાનરૂપ સે વિનય કરતે હૈં । વિરુદ્ધ શબ્દ કા અર્થ અક્રિયાવાદી હૈ । યે અક્રિયા વાદી વર-

પહેરે છે તેનું નામ ચીરિક છે. આમડાને જે વહ્ન તરીકે પહેરવામાં કામમાં લે છે તે ચર્મ ખંડિત છે. ખીલઓ વડે લાવવામાં આવેલી ભિક્ષાથી જે પોતાનું ઉદર પોષણ કરે છે તે ભિક્ષોંડ છે. પોતાના શરીર ઉપર જે રાખ ચોળે છે તે પ્રાંદુરંગ છે. ખજાને સાથે લઈને જેઓ ખીલઓના ઘરોથી અનાજ માંગે છે તેઓ ગૌતમ કહેવાય છે. રાજા દિલીપની જેમ જેઓ ગાયની સેવા કરવામાં વ્યસ્ત રહે છે—જ્યારે ગાય ખેસે છે ત્યારે તેઓ ખેસે છે, જ્યારે ગાય જીભી થાય છે ત્યારે તેઓ પણ જીભા થઈ જાય છે વગેરે રૂપમાં જેઓ ગોચર્યાનુકારી જન હોય છે તેઓ ગોવ્રતિક કહેવાય છે. ગૃહસ્થ ધર્મ જ પરેખર ઉત્તમ ધર્મ છે આમ ચોક્કસ પણે માનીને તેમાં દત્ત ચિત્ત રહે છે તેઓ ગૃહધર્મ—ચિત્તક છે. જેમકે:—ગૃહસ્થાશ્રમ જેવો ધર્મ ધર્યો નથી અને આગળ ભવિષ્યમાં થવાની સંભાવના પણ નથી. જેઓ શૂરવીર માણસો હોય છે તેઓ જ આ ધર્મનું પાલન કરે છે. પાષંડ ધર્મને પાલન કરનારા માણસો શૂરવીરો નથી પણ તેઓ તો નપુસક છે. ગૃહસ્થીઓની આ ભતની માન્યતા હોય છે. અવિરુદ્ધ શબ્દનો અર્થ ક્રિયાવાદી છે. કેમ કે જેઓ કોઈ પણ માણસથી વિરુદ્ધ આવચરણ કરતા નથી તેઓ ખધાની સાથે સરખી રીતે વિનયપૂર્ણ વ્યવહાર કરે છે. વિરુદ્ધ શબ્દનો અર્થ અક્રિયાવાદી છે. અક્રિયાવાદી લોકો પરલોક જેવી વસ્તુમાં

मूलम्-तएणं तेसिं कौडुंविय पुरिसाणं अंतिए एयमहं
 सोच्चा णिसम्म चंपानयरी वत्थवावहवे चरगा य जाव गिहत्था
 य जेणेव धणणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति तएणं से धणणे
 सत्थवाहे तेसिं चरगाण य जाव गिहत्थाण य अच्छत्तगस्स
 छत्तं दलयइ जाव पत्थय णं दलाइ दलइत्ता एवं वयासी-
 गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! चंपाए नयरीए वहिया अग्गु-
 ज्जाणंसि मम पडिवालेमाणा चिट्ठह, तएणं ते चरगा य जाव
 गिहत्था य धणणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा जाव चिट्ठंति,
 तएणं धणणे सत्थवाहे सोहणंसि तिहिकरणनक्खत्तंसि विउलं
 असणं ४ उवक्खडावेइ उवक्खडावित्ता मित्तनाइ० आमंतेइ
 आमंतित्ता भोयणं भोयावेइ भोयावित्ता आपुच्छइ आपुच्छित्ता
 सगडीसागडं जोयावेइ जोयावित्ता चंपानगरीओ निग्गच्छइ
 निग्गच्छित्ता चरगा य जाव गिहत्था य सद्धिं घेत्तूण णाइवि-
 प्पइट्ठेहिं अद्धाणेहिं वसमाणेर सुहेहिं वसहिं पायरासेहिं अंगं

लोक नहीं मानते हैं। वृद्धश्रावक-ब्राह्मण-अर्थ का वाचक है। क्यों कि
 ये पहिले भरत चक्रवर्ती के समय में श्रावक थे-पश्चात् ब्राह्मण बन
 गये इसलिये “ वृद्धकालिको यः श्रावकः ” इस व्युत्पत्ति के अनुसार
 वृद्धश्रावक शब्द ब्राह्मण अर्थ का वाची बन जाता है। वाकी अवशिष्ट
 शब्दों का अर्थ स्पष्ट है ॥ सू० २ ॥

विश्वास करता व नथी वृद्ध श्रावक-ब्राह्मण अर्थने स्पष्ट करे छे केम के ओओ
 पडेवां भरत चक्रवर्तीना वधते श्रावक हुता त्थार पडी ओओ ब्राह्मण थर्ध
 गया ओट्ठा भाटे ‘ वृद्ध कालिको यः श्रावकः सः वृद्ध श्रावकः ’ आ व्युत्पत्ति
 भुज्ज वृद्ध श्रावक शब्द ब्राह्मण अर्थनो वाचक थर्ध लय छे. धीन शेष
 शब्दोना अर्थ तो स्पष्ट व छे ॥ सूत्र “ २ ” ॥

जणवयं मज्झं मज्झेणं जेणेव देसग्गं तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छित्ता सगडीसागडं मोयावेइ मोयावित्ता सत्थणिवेसं करेइ
करित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-तुब्भे णं
देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा
एवं वयह-एवं खलु देवाणुप्पिया ! इमीसं आगमियाए
छिन्नावायाए दीहमद्दाए अडवीए बहुमज्झदेसभाए बहवे
णंदिफला नामं रुक्खा पन्नत्ता किण्हा जाव पत्तिया पुप्फिया
फलिया हरियगरेरिज्जमाणा सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा
चिद्धंति मणुण्णा वन्नेणं४ जाव मणुन्ना फासेणं मणुन्ना छायाए,
तं जो णं देवाणुप्पिया ! तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा कंद०
तय० पत्त० पुप्फ० फल० बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ
छायाए वा वीसमइ तस्सुणं आवाए भद्दए भवइ तंओ पच्छां
परिणममाणा२ अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेत्ति, तं माणं
देवाणुप्पिया ! केइ तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा जाव छायाए
वा वीसमउ, मा णं सेऽवि अकाले चेव जीवियाओ ववरो-
विज्जिस्सइ, तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! अन्नेसि रुक्खाणं मूलाणि-
य जाव हरियाणि य आहारेह छायासु वीसमहत्ति घोसणं
घोसेह जाव पच्चप्पिणंति, तएणं से धणै सत्थवाहे सगडी-
सागडं जोएइ२ जेणेव नंदिफला रुक्खा तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थणिवेसं करेइ
करित्ता दोच्चंपि तच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता

एवं वयासी-तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! मम सत्थानिवसंति महया
 महया सदेणं उग्घोसेमाणार एवं वयह-एएणं देवाणुप्पिया !
 ते णंदिफला रुक्खा किण्हा जाव मणुन्ना छायाए तं जो णं
 देवाणुप्पिया ! एएसिं णंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंद०
 पुप्फ० तय० पत्त० फल० जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरो-
 वेइ, तं माणं तुब्भे जाव दूरे दूरेणं परिहरमाणा वीसमह, मा
 णं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविस्सइ, अन्नेसिं रुक्खाणं
 मूलाणि य जाव वीसमहत्तिकड्डु घोसणं जाव पच्चप्पिणंति, तत्थ
 णं अप्पेगइया पुरिसा धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सइहंति
 पत्तिरंति रोयंति एयमट्ठं सइहमाणा३ तेसिं नंदिफलाणं० दूरं
 दूरेण परिहरमाणा२ अन्नेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमंति
 तेसिं णं आवाए नो भइए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा२
 सुहरूवत्ताए भुज्जो२ परिणमंति, एवामेव समणाउसो ! जो
 अम्हं निग्गंथोनिग्गंथी वा जाव पंचसुकामगुणेषु नो सज्जेइ नो
 रज्जेइसे णं इहभवे चेव वहूणं समणाणं अच्चणिज्जे५ परलोए
 नो आगच्छइ जाव वीइवइस्सइ, जहा य ते पुरिसा तत्थ णं
 अप्पेगइया पुरिसा धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं नो सइहंति३
 धण्णस्स एयमट्ठं असइहमाणा३ जेणेव ते नंदिफला तेणेव
 उवागच्छंति उवागच्छत्ता तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि य जाव
 वीसमंति तेसिं णं आवाए भइए भवइ तओ पच्छा परिणममाणा
 जाव ववरोवेति, एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा

निगंथी वा जाव पठ्वइए पंचसु कामगुणेषु सज्जेइ सज्जिता
जाव अणुपरियद्विस्सइ जहा वा ते पुरिसा ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘तएणं तेसिं’ इत्यादि । ततः खलु तेषां कौटुम्बिकपुरुषाणा-
मन्तिके एतमर्थं=पूर्वोक्तमद्विच्छन्नानगरीगमनार्थघोषणारूपं मावं श्रुत्वा=कर्ण-
विषयोक्त्य, निश्चय्य=हृद्यवधार्य चम्पानगरी वास्तव्या अद्विच्छन्नानगरीगन्तुकामा
वहवश्रकाश्च यावद् गृहस्थाश्च यत्रैव धन्यः सार्थवाह-स्तत्रैवोपागच्छन्ति । ततः
खलु स धन्यः सार्थवाहस्तेषां चरकाणां च यावद् गृहस्थानां च मध्ये अच्छत्रकाय-
छत्रं ददाति यावत् पथ्यदनं=शस्त्रं ददाति, एवमवादीत्=कथयति गच्छत खलु
युयं हे देवानुप्रियाः ! चम्पाया नगर्यां बहिः ‘अगुज्जाणंसि’ अद्योद्याने मां
‘पडिवालेमाणा’ प्रतिपालयन्तः=प्रतीक्षमाणास्तिष्ठत । ततः खलु ते चरकाश्च=

—:नएणं तेसिं इत्यादि:—

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तेसिं कौटुम्बिकपुरिसाणं अंति ए एयमद्वं
सोच्चा गिसम्म चंपानगरी वत्थव्वा वहवे चरगाय जाव गिहत्था य जेजेव
धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति) उन कौटुम्बिक पुरुषों के मुख से
इस घोषणारूप अर्थ को सुनकर और उसे हृदय में धारणकर चंपा
नगरी निवासी अनेक चरक से लेकर गृहस्थ पर्यंत अनुष्य जहां धन्य
सार्थवाहक था वहां आये (तएणं से धण्णे सत्थवाहे तेसिं चरगाण य
जाव गिहत्थाण अच्छत्तागस्स छत्तं दलइ जाव पत्थयणं दलाइ दलइत्ता
एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया । चंपाए नगरीए बाहिया अ-
गुज्जाणंसि ममं पडिवाले माणा चिट्ठेह) इसके बाद धन्य सार्थवाह

‘तएणं तेसिं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थार पछी

(तेसिं कौटुम्बिक पुरिसाणं अंति ए एयमद्वं सोच्चा गिसम्म चंपानगरी वत्थव्वा
वहवे चरगाय जाव गिहत्था य जेजेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति.)

ते कौटुम्बिक पुरुषानां मुखे आ घोषणा इय अर्थने सांख्यीने अने
तेने हृदयमां धारण करीने चंपा नगरीना घोषा अर्थनी मांदिने गृहस्थ सुधीना
अथा माणसे न्यां धन्य सार्थवाह उता त्यां आया.

(तएणं से धण्णे सत्थवाहे तेसिं चरगाण य जाव गिहत्थाण अच्छत्तागस्स
छत्तं दलयइ, जाव पत्थयणं दलाइ, दलइत्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणु-
प्पिया ! चंपाए नगरीए बाहिया अगुज्जाणंसि ममं पडिवालेमाणा चिट्ठेह)

चरकादयो यावद् गृहस्था धन्येन सार्थवाहेन—एवमुक्ताः सन्तः 'जाव' यावत्-
धन्यं सार्थवाहं प्रतीक्षमाणास्तिष्ठन्ति । ततः खलु धन्यः सार्थवाहः शोभने तिथि-
करणनक्षत्रे=शुभदिवसे विपुलमशनादिकं चतुर्विधाहारम् उपस्कारयति=निष्पादयति
संपस्कार्य मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिपरिजनान् आमन्त्रयति, भोजनं भोजयति=कार-

ने उन चरक आदि से लेकर गृहस्थ पर्यन्त के मनुष्यों में जिसके पास
छत्ता आदि नहीं था उसे छत्ता दिया यावत् जिस के पास कलेवा नहीं
था उसको कलेवा-मार्ग भोजन-दिया । बाद में उसने उन सबसे कहा
हे देवानुप्रियो ! तुम यहां से चलो और मुख्य उद्यान में मेरी प्रतीक्षा
करते हुए ठहरे रहो—(तएणं ते चरगाय जाव गिहत्था य धण्णेणं सत्थ
वाहेणं एवं वुत्ता समाणा जाव चिह्वंति, तएणं धण्णे सत्थवाहे सोहणंसि
त्तिहिकरणनक्खत्तंसि विउलं असणं ४ उवक्खडवेइ, उवक्खडवित्ता
मित्तनाइ० आमंतेइ, आमंतित्ता भोयणं भोयावेइ, भोयावित्ता आपु-
च्छइ, आपुच्छित्ता सगडीसागडं जोयावेइ, जोयवित्ता चंपानगरीओ
निग्गच्छइ) इस प्रकार धन्यसार्थवाह के द्वारा कहे गये वे चरकादि
गृहस्थ पर्यन्त समस्तजन वहां से चलकर मुख्य उद्यान में गये—और
धन्यसार्थवाह की प्रतीक्षा करते हुए वहां ठहर गये । धन्यसार्थवाह ने
शुभ तिथि, करण, एवं नक्षत्र में विपुल मात्रा में अशन आदि रूप
चारों प्रकार का आहार निष्पन्न करवाया । जब आहार निष्पन्न हो

त्यार पछी धन्य सार्थव डे तेओ अरक वगेरेथी मांडीने गृहस्थ सुधीना
अथा भायुसोभांथी लेनी पासे छत्री वगेरे न डती तेने छत्री वगेरे अने
लेनी पासे मार्गं माटेनुं खोजन न डतुं तेने खोजन आप्थुं, त्यार पांड
तेओ अंधा ने इहुं डे डे देवानुप्रियो ! तमे अडीथी मुख्य उद्यानमां अओ
अने त्यां मारी प्रतीक्षा करे।

(तएणं ते चरगाय जाव गिहत्थाय धण्णेणं सत्थवाहे णं एव वुत्ता समाणा
जाव चिह्वंति, तएणं धण्णे सत्थवाहे सोहणंसि त्तिहिकरणनक्खत्तंसि विउलं
असणं ४ उवक्खडवेइ, उवक्खडवित्ता मित्तणाइ आमंतेइ, आमंतित्ता भोयणं
भोयावेइ, भोयावित्ता आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सगडीसगडं जोयावेइ, जोयावित्ता
चंपानगरीओ निग्गच्छइ)

आ रीते धन्य सार्थवाह वडे आज्ञापित धयेत्ता अरक गृहस्थ वगेरे
अथा भायुसो त्यांथी मुख्य उद्यानमां गया अने धन्य सार्थवाहनी राड लेता.
तेओ त्यां न रोकाया. धन्य सार्थवाह शुभ तिथि, करण, अने सारा नक्षत्रमां
पुष्कल प्रमायुमां अशन वगेरे इप तारे लतना आहारे तैयार कराव्या. अथेदे

यति, भोजयित्वा 'आपुच्छइ' आपुच्छति=विदेशगमनार्थमाज्ञां प्रार्थयति, आपु-
च्छइ=आज्ञां प्राप्य शकटीशाकटं योजयति, योजयित्वा चम्पा नगरीतो निर्ग-
च्छति=निस्सरति, निर्गत्य चरकान् यावत् गृहस्थांश्च सार्द्धं गृहीत्वा 'नाइविप्पगिट्टेहि'
नातिविपकृष्टेषु=नातिदूरेषु यथोचितेषु 'अद्धाणेहि' अध्वसु=मार्गेषु 'वसमाणे २'
वसन्न-वसन्न स्थाने स्थाने निवासं कुर्वन् 'सुहेहि' श्रुभैः=प्रशस्तैः 'वसहिपायरा-
सेहि' वसतिप्रातराशैः = निवासस्थाने प्रातःकालीनलघुभोजनैः सह अङ्गजन-
पदस्य=अङ्गदेशस्य मध्य-मध्येन यत्रैव 'देसगं' देशार्थं=अङ्गदेशसीमा वर्त्तते
तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य शकटीशाकटं मोचयति, मोचयित्वा 'सत्यनिवेसं'
सार्थनिवेशं करोति, कृत्वा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति=आह्वयति शब्दयित्वा=
आह्वय एवमवादीत्- " हे देवानुमियाः । यूयं खलु मम सार्थनिवेशे महता-महता
शब्देन=उच्चस्वरेण उद्घोषयन्तः=सन्तः एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण वदन्त=कथयन्त-

शुका-तथ उसने अपने मित्र, ज्ञानि आदि परिजनोको आमंत्रित किया ।
आमंत्रित करके फिर उन सबको उसने उस चतुर्विध आहारको भोजन
कराया भोजन कराके फिर उन सबसे परदेश गमन करने की उसने
आज्ञा मांगी । आज्ञाप्राप्त करके उसने गाडी और गाड़ों को जुतवाया
जुतवा कर फिर वह चंपा नगरी से बाहिर निकला । चरकादि गृहस्थ
पर्यन्त संमस्त जन को अपने साथ में ले लिया-(निग्गच्छित्ता चरगाय
जाव गिहत्थाय सद्धिं घेत्तुण णाइविप्पगिट्टेहि अद्धाणेणि वसमाणे २
सुहेहि वसहिपायरासेहि अंगं जणवयं मज्झं मज्झेणं जेणेव देसगं
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोयावेइ मोयावित्ता
सत्यणिवेसं करेइ करित्ता कोडुं वियपुरिसे सदावेइ सदवित्ता एवं
वयासी — तुभेणं देवाणुप्पिया ! मम सत्यनिवेसंसि महया २

आहारे तैयार थर्ड गथा त्यारे तेण्णे पोताना मित्र, ज्ञानि वगेरे परिजोने
आमंत्रित कथां. आमंत्रित करीने तेण्णे अधाने त्यारे जाना आहारे जमाडया.
त्यार पथी तेण्णे सीनी पासैथी परदेशे जवानी आज्ञा भागी आम तेण्णे
अधानी पासैथी आज्ञा भोजनीने गाडी तेमज्ज गाडांओ जेताराओयां अने त्यार
पथी ते चंपा नगरी थी अहार नीडओ. तेण्णे उवागन्तं राड जेतारा अथा
थरड गृहस्थ वगेरे भाणुसोने पथु साथे लर्थ वीधा डता.

(निग्गच्छित्ता चरगाय जाव गिहत्थाय य सद्धिं घेत्तुण णाइविप्पगिट्टेहि
अद्धाणेहि वसमाणे २ सुहेहि वसहिपायरासेहि अंगं जणवयं मज्झं मज्झेणं
जेणेव देसगं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोयावेइ,
मोयावित्ता सत्यनिवेसं करेइ, करित्ता कोडुं वियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता

भद्रकं=मुखं भवति, ततः पश्चात्=स्नोःकालानन्तरं ' परिणममाणार ' परिणमन्तः
 २ रसादिरूपेण परिणमनं प्राप्नुवन्तस्ते मूलकन्दादयस्तं पुरुषम् अकाले एव
 जीविताद् व्यपरोपयन्ति=प्राणनाशं कुर्वन्तीत्यर्थः, ' तं ' तत्=तस्मात्कारणात् मा
 खलु हे देवानुप्रियाः ! ' केह ' कोऽपि तेषां नन्दिफलवृक्षाणां मूलानि वा यावत्-
 कन्दादीनि आहारयतु, तेषां छायायां वा विश्राम्यतु तेषां फलानि मा आहारयतु,
 छायायांच मा विश्राम्यतु, इतिवाचः, सोऽपि च=यो नन्दिफलवृक्षाणां मूलादीनि-
 नाहारयिष्यति, नापि च तच्छायायां विश्राभिष्यति सः न खलु अकाल एव
 जीविताद् व्यपरोपिष्यते, स न मरिष्यतीत्यर्थः । यूयं खलु हे देवानुप्रियाः !

को, खावेगा अथवा उनकी छाया में विश्राम करेगा उसे उससमय तौ
 बड़ा अनन्द आवेगा-परन्तु उसके बाद में थोड़े ही समय में जैसे २
 रसादिरूप से उसका परिणमन होगा वैसे २ वे भक्षित मूलादिकंद इस
 पुरुष को अकालमें ही जीवन से रहित कर देंगे । (तं माणं देवाणुप्पिया
 केह तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा जाव छायाए वा वीसमउ, माणं से वि
 अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सइ, तुव्मेणं देवाणुप्पिया । अन्ने
 सिं रुक्खाणं मूलानि जाव हरियाणिय आहारेह, छायासु वीसमहत्ति
 घोसणं घोसेह, जाव पच्चप्पिणंति) इसलिये हे देवानुप्रियो ! तुम लोग
 में से कोई भी व्यक्ति उन नंदिफल वृक्षों के मूल आदिकों को न खावे
 और न कोई उन की छाया में ही विश्राम करे । जो उन नंदिफल वृक्षों
 के मूल आदिकों को नहीं खावेगा और न उनकी छाया में विश्राम ही
 करेगा वह अकाल में अपने जीवन से रहित नहीं बनेगा । वहां इनसे

तेभना छायासुमां विसामो वेशे त्थारे तो तेभने भूषणं आनह प्राप्त थये
 पणु त्थार पछी थोडा न समयमां जेम जेम तेभतुं रसादिरूप परिणमन थये तेभ
 तेभ तेभा पणुवेला भूषणं कद वगेरे ते भाषुसने अक्राणे न निर्णव जनावी वेशे.

(तं माणं देवाणुप्पिया ! केह तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा जाव छायाए
 वा वीसमउ, माणं से वि अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सइ, तुव्मेणं
 देवाणुप्पिया । अन्नेसिं रुक्खाणं मूलानि जाव हरियाणिय आहारेह, छायासु
 वीसमह त्तिवोसणं घोसेह जाव पच्चप्पिणंति)

ओधी हे देवानुप्रियो ! तभाराभांथी कोऽपणु भाषुस ते नंदिक्ख वृक्षोना
 भूषोने न पाय अने तेनी छायासां पणु विसामो वेवा जेसे नडि. जे भाषुसं
 नंदिक्ख वृक्षोना भूषणं वगेरेतुं लक्षणु करशे नडि तेभन तेभना छायासुमां पणु
 विसामो वेशे नडि तेतुं अक्राणे भरथु थये नडि. तमे वेवाको ते वनमां
 नंदिक्ख वृक्षोने पाह करतां पीअ जे वृक्षो छाया हे देवानुप्रियो ! तमे वेवाको
 तेभना भूषोने तेमन वीदी कृपणो वगेरेतुं लक्षणु करले अने तेभनी न छायासां
 विसामो वेशो. आ प्रभाषु तमे वेषणु करे. त्थार पछी ते वेवाकोअे आसा प्रभाषे

अन्येषाम्—तद्भिन्नानां वृक्षाणां मूलं नि च यावत् हरितानि च 'आहारैश्च' आहार-
यत्, छायासु विश्राम्यत च " इति—एतद्गूणां घोषणां घोषयत कुर्वत । 'जाव'
यावत्—ते च तथैव कृत्वा तदाज्ञां प्रत्यर्पयन्ति—तस्मै निवेदयन्तीत्यर्थः । ततः खलु
धन्यः सार्थवाहः शकटीशाकटं योजयति, योजयित्वा यत्रैव नन्दिफलावृक्षास्तत्रैवो-
पागच्छति, उपागत्य तेषां नन्दिफलानाम् अदूरसामन्ते सार्थनिवेशं करोति. कृत्वा
द्वितीयमपि तृतीयमपि वारं कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—

भिन्न जो और दूसरे वृक्ष हों हे देवानुप्रियों! तुमलोग उन्हीं के मूलों
को यावत् हरिताङ्गुओं को खाना उनकी ही छाया में विश्राम करना ।
इस प्रकारकी तुमलोग घोषणा करो । यावत् उन्होंने वैसा ही किया और
इस की खबर धन्य सार्थवाह को भी दे दी । (तएणं से घण्णे सत्थ वाहे
सगडीसगडं जोएइ २ जेणेव नंदिफलरुक्खा. तेणेव उवागच्छइ, उवाग-
च्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थणिविसे करेइ, करित्ता दोच्चंपि
तच्चंपि कोडुं वियपुरिसे सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी तुव्भे णं देवा-
णुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया २ सहेणं उग्घोसेमागार २ एवं वयह-
एएणं देवणुप्पिया ! ते णंदिफलाक्खवा, किण्हा जाव मणुन्ना छायाए) इस
के बाद उस धन्य सार्थवाहने अपनी गाड़ी और गाड़ोंको जुनवाया और
जुनवाकर जहाँ वे नंदि फलवृक्ष थे वहाँ गया । वहाँ जाकर उसने
उन नंदिफल वृक्षों के पास अपने सार्थ को ठहरा दिया—अर्थात् अपना
पठाव डाला ठहरने के बाद फिर उसने कौटुम्बिक पुरुषों को दोवार और

४ घोषणा करीने धन्य सार्थवाहने घोषणातुं काम थर्षं ज्वानी भयर आपी.

(तएणं से घण्णे सत्थवाहे सगडी सागडं जोएइ २ जेणेव नंदिफलरुक्खा,
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थणिविसे करेइ
करित्ता दोच्चंपि तच्चंपि कोडुं वियपुरिसे सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी तुव्भेणं
देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया २ सहेणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयह-
एएणं देवाणुप्पिया ! ते णंदिफलाक्खवा, किण्हा जाव मणुन्ना छायाए)

त्यार पछी ते धन्य सार्थवाहे गाडीओ अने गाडांओने नेतराव्यां अने
नेनरावीने तेओ ७ तरइ नंदिश्ण वृक्षो डतां ते तरइ रवाना थया. त्यां
पडेअीने तेबु नंदिश्ण वृक्षोनी पासै पोताना सार्थने शकथे अर्थात् विसामा
माटे त्यांअ पडाव नाअथे. पडाव नाअथा पाह तेबु ये त्रथु वभत कौटुम्बिक
पुरुषोने गोदाव्या अने गोदावीने तेमने आ प्रभाबु कळुं के डे देवानुप्रिये ।

भापाते=पूर्वमाहारसमये नो भद्रकं भवति=विशिष्टस्वादादिलाभो न भवति किन्तु ततः पश्चाद्=भक्षणविश्रामानन्तरं परिणम्यमानानि २ रसादिरूपेण परिणतानि मूलरन्दादीदि शुभरूपतया=भद्रकतया भूयो भूयः परिणमन्ति ।

अथोपनयं दर्शयन् सुधर्मस्वामी प्राह-‘ एवामेव ’ त्यादिना । ‘ एवामेव ’ एवमेव=अनेनैव पूर्वोक्तप्रकारेण हे आयुष्मन्तः श्रमणाः ? योऽस्माकं निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा ‘ जाव ’ यावत्-आचार्योपाध्यायानामन्तिके षुण्डो भूत्वा प्रव्रजितस्ते-पायुपदेशं श्रद्धानः सन् पञ्चसु कामगुणेषु=शब्दादिविषयेषु ‘ नो सज्जेइ ’ नो

कों को यावत् कंदों को खाया और उनकी छाया में विश्राम किया । (तेलिं णं आवाए णो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणयमाणां २ सुहं-रूवत्ताए भुज्जो २ परिणमंति, एवामेव समणाउसो जो अम्हं निर्गंथो वा निर्गंथी वा जाव पंचसु कामगुणेषु नो सज्जेइ, नो रज्जेइ, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिज्जे परलोए नो आगच्छइ; जाव वीईवयस्सइ, जहा वा ते पुरिसा) परन्तु इन पुरुषोंको उनके मूलों दिकों के खाने के समय विशिष्ट स्वादादि को प्राप्तिरूप भद्रक का लाभ तो नहीं हुआ-किन्तु उसके बाद जय खाये हुए उन मूलादिकों को रसादि रूप से परिणमन हुआ तब उन्हें बार २ शुभ रूप परिणमन होने से आनन्द आया और जीवन सुरक्षित रहा-अब सुधर्मस्वामी इसका उपनय (दृष्टान्त के अर्थ को प्रकृति में जोड़ना) दिखलाते हुए कहते हैं कि इसी तरह से हे आयुष्मन्त श्रमणो । जो हमारे निर्ग्रन्थ श्रमण एवं श्रमणियांजन हैं वे आचार्य उपाध्यायके पास मुंडित होकर दीक्षित हो जाते हैं और उनके उपदेश को श्रद्धा आदि का विषयभूत

(तेलिं णं आवाए णो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा २ सुहंरूवत्ताए भुज्जो २ परिणमंति, एवामेव समणाउसो जो अम्हं निर्गंथो वा निर्गंथी वा जाव पंचसु कामगुणेषु नो सज्जेइ, नो रज्जेइ; से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिज्जे परलोए नो आगच्छइ, जाव वीईवयस्सइ, जहा वा ते पुरिसा)

ते भाष्येनेन वृक्षेना भूय कंद वगेरे भाती वण्णते सविशेषे स्वाह वगेरेनी अतुलूति तो थयं शक्री नडि पणु भाधा पछी ते भूय कंद रस वगेरे इपमां परिषुत थयां त्यारे तेमने सुभ मळुं अने साथे साथे तेमनां एवम पणु सुरक्षित रथां. सुधर्मा स्वामी हरे अने वातने दृष्टान्तनां इपमां स्पष्ट करतां कडे छे के डे आयुष्मन्त श्रमणो ! आ प्रभाषेण ने अमारा निर्ग्रन्थ श्रमणो, आचार्य तेमण उपाध्यायनी पासे मुंडित थयने श्रद्धा वगेरेथी

स्वजते=आसक्तो भवति, 'नो रज्जेइ' नो रज्यते नो अनुरक्तो भवति स खलु इह भवएव बहूनां श्रमणानां श्रमणीनां बहूनां साधूनां साध्वीनां मध्ये-अर्चनीयः=माननीयः सन् परलोके=भवान्तरे नो आगच्छति=जन्म न प्राप्नोति किन्तु-यावत्-अस्मिन्नेव भवे चातुरन्तसंसारकान्तारं व्यतिव्रजिष्यति=उल्लङ्घयिष्यति, मोक्षं प्राप्स्यतीत्यर्थः 'जहा वा ते पुरिसा' यथा वाते पुरुषाः-यथा वा=येन प्रका-रेण धन्यसार्थवाहोपदेशश्रद्धया ते=नन्दिकलवृक्षमूलकन्दादि परिवर्जनेन तत्कथ-नानुसारसमाचरणशीलाः पुरुषाः=सार्थपुरुषाः सुखपूर्वकमहिच्छत्रां नगरीं प्राप्स्यन्ति तथेत्यर्थः । अथ श्रद्धा रहितान् वर्णयति-'तत्थ णं' इत्यादि । तत्र खलु सार्थे अप्ये-के=ये तेचित् पुरुषाः धन्यस्य सार्थवाहस्य एतमर्थं=नन्दिकलमक्षणादि निषेधरूपं

बनाते हुए पांच काम गुणों में-शब्दादि विषयों में आसक्त नहीं बनते हैं अनुरक्त नहीं बनते हैं वे इस भवमें ही अनेक साधु और साधिव्यों के बीचमें माननीय होते हुए परलोक में जन्म से रहित हो जाते हैं-अर्थात् पुनः उन्हें जन्म धारण नहीं करना पड़ना है । कारण वे इसी भव में चतुर्गति रूप इस संसार कान्तार को पार करने वाले बन जाते हैं-उन्हें मोक्ष प्राप्त हो जावेगा ऐसे वे तैयार हो जाते हैं । जिस प्रकार धन्य सार्थवाह के उपदेश पर श्रद्धा करने से ये सार्थ के कितनेक पुरुष नंदि वृक्षों के मूलकंदादिकों का परिहार-त्याग करते हुए और उसके कथनानुसार अपना आचरण बनाते हुए सकुशल अहिच्छत्रा नगरी को प्राप्त कर लेंगे ऐसे बन गये । अथ जिन्होंने धन्य सार्थवाहके वचनों पर श्रद्धा नहीं की-उनको क्या दशा हुई इस बात का वर्णन सूत्रकार करते हैं-(तत्थ णं अप्पेगइया पुरिसा धणस्स सत्थवाहस्स एग-

शुक्र शधने पांच काम शुष्णोमां शब्दादि विषयोमा-अनासक्त रहे छे अेटवे के अनुरक्त थता नथी, तेओ आ लवमां न धष्ठा साधुओ तेमन साध्वीओनी पन्थे सम्माननीय थता परलोकमां न-मरडित थर्थ लथ छे अेटवे के इरी तेओने। न-म थता नथी केमके तेओ आ लवमां न यतुर्गति इय आ संसार कंतारने पार करवा लायक सामर्थ्य मेणवी ले छे तेओ मोक्ष मेणववा येन्य थर्थ लथ छे, नेम धन्यसार्थवाहना उपदेश उपर श्रद्धा भूडीने सार्थना केटलाक पुइयोओ नदि वृक्षोना मूण कंठ वगेरेने त्यछने तेनी सूयना सुज्ज आथ-रक्ष करतां अहिच्छत्रा नगरीमां पडोथी शके तेवा थर्थ गया हुवे ने पुइयोओ धन्यसार्थवाहनी वात उपर श्रद्धा भूडी नडि तेओनी शी डालत थर्थ तेवं धष्ठा करतां सूत्रभार डडे छे-

(तत्थं अप्पेगइया पुरिसा, धणस्स सत्थवाहस्स एयमदं नो सहंति उ)

नो श्रद्धयति नो रोचयन्ति नो प्रतियति । ते धन्यस्य—एतस्यैष अश्रद्धवाना अरोच-
यन्तः, अपतियन्त यत्रैव नन्दिफला वृक्षास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तेषां नन्दि-
फलानां मूलानि च यावत्—कन्दादीनि आहारयन्ति, तेषां छायासु च विश्राम्यन्ति
तेषां खलु आपाते=पूर्वं फलभक्षणादिसमये भद्रकं भवति=शुभस्वादादिलाभो भवति
किन्तु 'तत्रो पच्छा' ततः पश्चात्=फलभक्षणाद्यनन्तरं परिणम्यमानाः=रसादिरूपेण

मदं नो सद्दहन्ति ३ धणस्स एयमदं असद्दहमाणा ३ जेणेव ते नन्दिफला
तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छत्ता तेसि नन्दिफलाणं मूलानि य जाव
वीसमन्ति, तेसि णं आवाए भद्दए भवद्द, तत्रो पच्छा परिणममाणा
जाव चवरोवेति एवामेव समणाउसो ! जो अमहं निग्गंथो वा निग्गंथी
वा जाव पव्वद्दए पंचसु कामगुणेषु सज्जेद्द, सज्जित्ता जाव अणुपरिय-
ट्टिस्सद्द जहा वा ते पुरिसा) वहां पर कितनेक पुरुषों ने धन्यसार्थवाह
के इस कथन को कि नन्दिफल वृक्षों के कंदमूलादि नहीं खाना चाहिये
और न उनकी छायामें ही विश्राम करना चाहिये श्रद्धाकी दृष्टिसे नहीं
देखा उस पर अपनी श्रद्धा नहीं जमाई, उसे अपनी रुचि का प्रतीति
का विषय नहीं धनाया—वे पुरुष— धन्यसार्थवाह के इस कथन को अश्र-
द्धेय आदि मानकर जहां पर नन्दिफल वृक्ष थे— वहां गये वहां जाकर
उन्होंने उनके मूल कन्दादि कों को खाया उनकी छाया में विश्राम किया
उस समय उन्हें बड़ा आनन्द आया— स्वाद जन्य कोई अपूर्व सुख मिला
—किन्तु जब उनका परिपाक काल आया जब वे खाये हुए मूलकन्दादि

धणस्स एयमदं असद्दहमाणा ३ जेणेव ते नन्दिफला तेणेव उवागच्छन्ति, उवा-
गच्छत्ता तेसि नन्दिफलाणं मूलानि य जाव वीसमन्ति, तेसि णं आवाए भद्दए,
भवद्द, तत्रो पच्छा परिणममाणा जाव चवरोवेति एवामेव समणाउसो । जो अमहं
निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव पव्वद्दए पंचसु कामगुणेषु सज्जेद्द, सज्जित्ता
जाव अणुपरियट्टिस्सद्द, जहा वा ते पुरिसा)

त्यां डेटलाक माणुसोअ्थे धन्यसार्थवाडना न'द्विष्ण वृक्षोना क'दंभूणो वगेरे
भावा नेधंअ्थे नडि तेमए ते वृक्षोनी छायासां पणु विसामो लेवो नडि आ
जतना कथन प्रत्ये श्रद्धावान थया नथी, तेना उपर विश्वास भूकथो नडि अने
प्रतीतिपूर्वकं तेसां चोतानी अलिइथी अतापी नडि. ते माणुसो धन्यसार्थवाडना
कथन अश्रद्धेय भानिने न्यां न'द्विष्ण वृक्षो डतां त्यां गया. त्यां एधने तेमणु
तेमना मूण क'द वगेरे आधां अने तेमना छांयडामां विसामो वीधो. ते सभये
तो तेमने भूण ए आन'द प्राप्त थयो, इणोना स्वादमां अपूर्व सुभ अणुइं,
पणु न्यारे तेजोनी पायन किया थया भांडी अेटले के आधेला मूणक'द. वगेरे

परिणामं प्राप्नुवन्तः सन्तः कन्दादयः यावत्-तान् जीविताद् व्यपरोपयन्ति ।
 'एवमेव' एवामेव=अनेनैव प्रकारेण हे आयुष्मन्तः श्रमणाः योऽस्माकं निर्ग्रन्थो
 वा निर्ग्रन्थी वा यावत् प्रव्रजितः सन् पञ्चसु कामगुणेषु=शब्दादिकामभोगेषु स्व-
 जते, रज्यते-कामभोगासक्तो भवति यावत्-स खलु इहभवे बहूनां श्रमण-श्रम-
 णीनां, बहूनां श्रावकश्राविकानां मध्ये हिलनीयो, निन्दनीयः, खिसनीयो भवति,
 परलोके=च भवान्तरे चातुरन्तसंसारकान्तारम् अनुपर्यटिष्यति चातुर्गतिकसंसार
 एव स्थास्यति न तु मोक्षं प्राप्स्यतीत्यर्थः । येन प्रकारेण ते=धन्योपदेशमश्रद्धानाः
 पुरुषाः=सार्थस्थिता जना नन्दिफलवृक्षमूलकन्दादिभक्षणोऽन तत्रैव क्रियन्ते नतु-
 अहिच्छत्रां नगरीं प्राप्नुवन्तीति भावः ॥ सू० ३ ॥

मूलम्—तएणं से धणणे सत्थवाहे सगडीसागडं जोयावेइ
 जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्तां नयरी तेणेव उवागच्छइ उवा-

रसादिरूप से पणिमने लगे-तब वे सब अपनेर जीवन से रहित हो गये
 -मर गये-। इसी तरह हे आयुष्मन्त श्रमणो । जो ह्यारा निर्ग्रन्थ व
 निर्ग्रन्थी साध्वीजन यावत् प्रव्रजित होकर पंचकाम गुणों में-पंचइन्द्रियों
 के शब्दादि विषयों में-आसक्त बन जाता है-अलुरक्त हो जाता है, वह
 इस भवमें अनेक श्रमण श्रमणियोंके बीच हीलनीय, निन्दनीय एवं खिस-
 नीय होता है एवं वह भवान्तर में भी इस चतुर्गति रूप संसार कान्तार
 में ही घूमता रहेगा-मोक्ष प्राप्त नहीं करेगा । जिस प्रकार धन्य सार्थवाह
 के उपदेश पर अज्ञा नहीं करने वाले सार्थ के ये कितनेक पुरुष नैदिफल
 वृक्षों के मूलादि के खाने से वहीं पर मर गये-अहिच्छत्र नगरी नहीं
 जा सके ॥ सू० ३ ॥

रस वगेरे रूपमां परिखुत थवा दाग्था त्यारे तेओो अथा निर्णव थर्ध गया,
 मृत्यु पाभ्या. आ प्रभाणुे व डे आयुष्मन्त श्रमणुे ! वे अमारा निर्ग्रन्थ
 साधुओे के निर्ग्रन्थ सधिनओे प्रव्रजित थर्धने पांथ काम गुणुेमां अर्धात्
 पांथे धन्द्रियोना शण्डादि विषयोमां आसकृत थर्ध पडे छे-ओेटवे के अनुरक्त
 थर्ध लथ छे, ते आ लवमां धणुा श्रमणुे। अने धणुी श्रमणुीओेनी वञ्चे
 हीलनीय, निन्दनीय, अने खिसनीय होथ छे अने धील लवमां पणु आ
 चतुर्गति रूप संसार-कान्तारमां व प्रमणु करतो रडेथे. तेने मोक्ष प्राप्त थथे
 नडि. धन्यसार्थवाडना उपदेशने श्रद्धेय न माननारा केटलाक भाणुसे ओम नडि
 देण वृक्षोना भूण वगेरे पाडने त्याने त्यां व भरणु पाभ्या, अहिच्छत्रा नग-
 रीमां पडोथी शक्या नडि, तेम व तेओेनी पणु स्थिति थाथ छे. ॥ सू. ३ ॥

गच्छिता अहिच्छत्ताए णयरीए वहिया अग्गुज्जाणे सत्थनिवेशं
करेइ करित्ता सगडीसागडं मोयावेइ, तएणं से धणणे सत्थवाहे
महत्थं३ रायरिहं पाहुडं गेणहइ गेण्हत्ता बहुहिं पुरिसेहिं सद्धिं
संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयरिं मज्झं मज्झेणं अणुप्पविसइ अणुप्प-
विसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता तं महत्थं३ पाहुडं उवणेइ,
तएणं से कणगकेऊ, राया हट्टुट्टुं धणणस्स सत्थवाहस्स तं
महत्थं३ जाव पडिच्छइ पडिच्छित्ता धणणं सत्थवाहं सक्कारेइ
सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता उस्सुक्कं वियरइ २ पडिविस-
ज्जेइ । तएणं से धणणे सत्थवाहे भंडविणिमयं करेइ करित्ता पडि-
भंडं गेणहइ गेण्हत्ता सुहंसुहेणं जेणेव चंपानयरी तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छित्ता मित्तनाइ० अभिसमन्नागए विउलाइं माणुस्सगाइं
कामभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरा-
गमणं धणणे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा जेट्टुपुत्ते कुडुंवे ठावेत्ता
पव्वइए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं वहुणि वासाणि
सामण्णपरियागं पाउणइ पाउणित्ता मासियाए सं० अन्नतरेसु
देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव
अंतं करेहिइ । एवं खल्ल जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेण
जाव संपत्तेणं पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्टे पण्णत्ते
त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

॥ पन्नरसमं नायज्झयणं समत्तं ॥

टीका— 'तएणं से' इत्यादि । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः शकटीशाकटं योजयति, योजयित्वा यत्रैवाहिच्छत्रा नगरी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अहिच्छे त्रायां नगर्यां वहिः अष्टयोधाने=पुरुषयोधाने सार्थनिवेशं करोति, कृत्वा शकटी- शाकटं मोचयति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः 'महत्थं' महार्थं=महाप्रयो जनकं, 'महग्धं' महार्घं=महामूल्यं, 'महरिहं' महार्हं=महतां योग्यं 'रायरिहं' राजार्हं=राजयोग्यं प्राप्नुतं गृह्णाति, गृहीत्वा बहुभिः पुरुषैः सार्द्धं संपरिवृतः अहिच्छत्रां नगरीं मध्यमध्येन अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव कनककेतू राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य 'करयल जाव वद्धावेड' करतल यावद् वर्धयति—कर-

'तएणं से धणणे सत्थवाहे' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से धणणे सत्थवाहे) उस धन्यसार्थवाहने (संगडी सागडं जोयावेड जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्ता णयरी तेणेव उवागच्छइ) वहां से अपने गाड़ी और गाड़ों को जुनवाया और जुतवा- कर जहां अहिच्छत्रा नगरी थी उस ओर चल दिया । (उवागच्छित्ता अहिच्छत्ताए नयरीए वहिया अगुज्जाणे सत्थनिवेशं करेइ) धीरे धीरे अहिच्छत्रा नगरी में वह पहुँच गया । वहां पहुँच कर उम्ने बाहर रहे हुए प्रधान बगीचे में अपने सार्थ को ठहरा दिया । (करित्ता सगडी सागडं मोयावेइ) और वहीं पर अपनी गाड़ी और गाड़ों को ढील दिया । (तएणं से धणणे सत्थवाहे महत्थं ३ रायरिहं पाहुडं गेणइ, गेणित्ता वहुहिं पुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयरीं मज्झं मज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवाग-

तएणं से धणणे सत्थवाहे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारभाइ (से धणणे सत्थवाहे) ते धन्यसार्थवाडे (संगडी सागडं जोयावेड जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्ता णयरी तेणेव उवागच्छइ त्यांथी पोतानी गाडीओ अने गाडांओने जेतरीणीने जे तरेइ अहिच्छत्रा नगरी डती ते दिशा तरेइ रवाना थयो. (उवागच्छित्ता अहिच्छत्ताए नयरीए वहिया अगुज्जाणे सत्थनिवेशं करेइ) अने धीमे धीमे अहिच्छत्रा नगरीमां पुडेांथी गयो. त्यां पडेांथीने तेण्णे नगरीनी भडार आवेदा प्रधान उधानमां पोताना सार्थना सुकाम नाथ्यो. (करित्ता सगडीसागडं मोयावेइ) अने त्यां जे पोतानी गाडीओ अने गाडाओने छोडावी नाथ्यां.

(तएणं से धणणे सत्थवाहे महत्थं ३ रायरिहं पाहुडं गेणइ, गेणित्ता वहुहिं पुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयरीं मज्झं मज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता

तल्लपरिगृहीतं शिरआवर्त्त दशनखं मस्तके ऽञ्जलिं कृत्वा राजानं जयविजयशब्देन वर्द्धयति, वर्द्धयित्वा तन्महार्थं महार्थं महार्हं प्राभृतम् उपनयति=नाज्ञः समीपे स्थापयति । ततः खल्लु स कनककेतु राजा हृष्टतुष्टहृदयो हर्षवशविसर्पद्दहृदयो धन्यस्य सार्थवाहस्य तन्महार्थं ३ यावत् प्राभृतं 'पडिच्छइ' प्रतीच्छति=स्वीकरोति, प्रतीष्य धन्य सार्थवाहं सत्कारयति सम्मानयति, सत्कृत्य सम्मान्य तस्मै 'उस्सुकं' उच्छुल्लं=शुल्काभावपत्रं 'केनापि राजपुरुषेणारमात्करो न ग्राह्यः' इत्येतद्रूपमाज्ञापत्रं वितरति=ददाति, वितीर्थं तं प्रतिविसर्जयति ।

च्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता तं महत्थं ३ पाहुडं उवणेइ) इस के बाद उस धन्य सार्थवाह ने महार्थ साधक, महामूल्य एवं महा पुरुषों के योग्य-प्राभृत-भेंट को साथ में लिया, और लेकर अनेक पुरुषों के साथ २ अहिच्छत्रा नगरी में वीच से होता हुआ प्रविष्ट हुआ । नगरी में प्रविष्ट होकर वह जहां कनक केतु राजा थे वहां गया वहां जाकर उसने राजा को दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया, और जय विजय शब्दों को उच्चारण करते हुए उन्हें बधाई दी । बधाई देकर उसने फिर राजा के समक्ष अपनी भेंट रख दी । (तएणं से कणगकेऊ राया हृष्ट तुष्टं धणस्स सत्थवाहस्स तं महत्थं ३ जाव पडिच्छइ पडिच्छित्ता धणं सत्थवाहं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता उस्सुकं विपरइ २ पडिविसज्जेइ) कनककेतु राजाने हर्षित एवं संतुष्ट होकर धन्यसार्थवाह की उस महार्थ साधक महामूल्य राज योग्य भेंट जेणेव कणगकेऊ राया तणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता तं महत्थं ३ पाहुडं उवणेइ)

त्यारपथी ते धन्यसार्थवाहे महार्थं साधकं अहुं किंमती अने महा पुं-धाने योग्य भेंट साथे लधने घण्णं भाणुसोनी साथे अहिच्छत्रा नगरीनी वच्चेना भागे (राजभार्ग) धधने नगरीभां प्रविष्ट थयो. नगरीभां प्रवेशीने ते न्यां कनककेतु रत्न लना त्यां गयो. त्यां लधने तेण्णे राजने धने हाथ जेडीने नमस्कार कयां अने न्य विजय शण्डे उच्चारण करतां तेभने वधाई आपी. वधाई आप्या पथी तेण्णे राजनी साथे पैतानी भेट भूडी दीधी.

(तएणं से कणगकेऊ राया हृष्ट तुष्टं धणस्स सत्थवाहस्स तं महत्थं ३ जाव पडिच्छइ पडिच्छित्ता धणं सत्थवाहं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता उस्सुकं विपरइ २ पडिविसज्जेइ)

कनककेतु राजने हर्षित तेभञ्च संतुष्ट धधने महार्थ साधक महामूल्य-वाणी अने राजजाने भाटे योग्य भेंट स्वीकारी दीधी. स्वीकार कयां भाइ .

ततः खलु सधन्यः सार्थवाहस्तत्र ' भंडविणिमयं ' भाण्डविनिमयं=भाण्डानां=
क्रयाणकवस्तूनां विनिमयम्=आदानप्रदानं करोति, कृत्वा ' पडिभंडं ' प्रतिभाण्डं=
विनिमयेन प्राप्तं वस्तुजातं गृह्णाति, गृहीत्वा शकटीशाकटे भरति भृत्वा शकटीशाकटं
योजयति, योजयित्वा सुखं=सुखेन=सुखपूर्वकं यत्रैव चम्पानगरी=स्वनिवासस्थानं
तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिं परिजनैः सह ' अभिसमन्नागए'
अभिसमन्नागतः=संमिलितो विपुलान् मानुष्यकान् कामभोगान् भुञ्जानो विहरति ।

को स्वीकार कर लिया । स्वीकार करके फिर उन्होंने ने धन्यसार्थवाह
का सत्कार एवं सन्मान किया । सत्कार सन्मान करके " किसी भी
राज पुरुष को इन से कर नहीं लेना चाहिये इस प्रकार का शुल्क भाष
विषयक आज्ञा पत्र " उसके लिये प्रदान किया और प्रदान करके बाद
में उसे वहाँ से विदा कर दिया । (तएणं से धण्णे सत्थवाहे भंडवि-
णिमयं करेइ, करित्ता पडिभंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुहं सुहेणं जेणेव
चंपा नयरी तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद धन्यसार्थवाह ने वहाँ रह
कर अपनी क्रयाणक वस्तुओं का विक्रय किया और उससे प्राप्त द्रव्य
से और दूसरी वस्तुओं को खरीदा । खरीद कर उसने उन्हें गाड़ी और
गाड़ों में भरा भरकर उन्हें जुतवाया और जुतवाकर फिर वह वहाँ से
चंपानगरी की ओर वापिस चल दिया । (उवागच्छित्ता मित्तनाइ० अ-
भिसमन्नागए विउलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणे विहरइ)

तेमहे धन्यसार्थवाहणे सत्कार तेमज्ज सन्मानं कथुं. सत्कारं अने सन्मानं
करीने राज्ञे ' केअपण्णं राजपुइयं तेमणीं पासेथीं राजकरं वे नहिं ' ते प्रमा-
हेणी व्यवस्थां कस्तां तेमने शुभं भाकीतुं आज्ञापत्रं लप्पीं आप्थुं. त्थारपथी
तेने त्थांथीं ज्वानीं आज्ञां आपी.

(तएणं से धण्णे सत्थवाहे भंडविणिमयं करेइ, करित्ता पडिभंडं गेण्हइ,
गेण्हित्ता सुहं सुहेणं जेणेव चंपानयरी तेणेव उवागच्छइ)

त्थारणाइ धन्यसार्थवाहे त्थां रळीने पौतानीं क्थाण्णकं वस्तुञ्चोने वेथी
अने तेनाथीं जे धनं मज्जुं तेनाथीं गीण्णं वस्तुञ्चो अरीदीं लीधी. वस्तुञ्चोनीं
अरीइ करीने तेहे अधीं वस्तुञ्चोनीं अरीदीं करीने तेहे अधीं वस्तुञ्चोने गाडी
तेमज्ज गाडाञ्चोमां अरी अने त्थारपथीं गाडी अने गाडाञ्चोने जेतरावीने
त्थांथीं चंपा नगरीं तरइ पाछे रवाना थयो.

(उवागच्छित्ता मित्तनाइ० अभिसमन्नागए विउलाइं माणुस्सगाइं काम
भोगाइं भुंजमाणे विहरइ)

तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्थविरागमनम् । धन्यः सार्थवाहो धर्मश्रुत्वा
 प्रतिबुद्धः सन् ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयित्वा प्रव्रजितः, सामायिकादीनि एकादशा-
 क्लान्तयिषीते । बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा मासिक्या संले-
 खनया ऽऽत्मानं जुष्टा षष्टि भक्तानि अनशनेन छित्त्वा कालमासे कालं कृत्वा-
 चंपानगरी में आकर वह अपने मित्र, ज्ञानि, स्वजन, संबन्धी परिजनों
 से मिला और विपुल मनुष्य भव संबन्धी काम भोगों को भोगने लगा
 (तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं, धण्णे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा जेट्ठं पुत्तं कुटुंबे ठवेत्ता पव्वइए, सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं बहूणि वासाणि सामणपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अन्नतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव अंतं करेहिइ । एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते त्तिवेमि) उसी काल और उसी समय में वहां पर स्थविरों का आगमन हुआ । धन्यसार्थवाह ने उनसे धर्म का व्याख्यान सुना सुनकर वह प्रतिबुद्ध हो गया और प्रतिबुद्ध हो करके फिर वह कुटुंब में अपने ज्येष्ठ पुत्र को रखकर दीक्षित होकरके उसने सामायिक आदि ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया । अनेक वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर १ मास की संलेखना से ६० भक्तों का अनशन द्वारा छेदन करके काल अवसर काल करके देव-

थपा नगरीमां आवानि ते पोताना मित्र, ज्ञानि, स्वजन, संबन्धी परिजनाने मत्थे अने विपुल मनुष्य लवना कामलोगे लोअवना लाग्थे।

(तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं धण्णे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा जेट्ठं पुत्तं कुटुंबे ठवेत्ता पव्वइए, सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं बहूणि वासाणि सामणपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अन्नतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव अंतं करेहिइ । एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पन्नरसमस्स अयमट्ठे पणत्ते त्तिवेमि)
 ते क्षणे अने ते समये ते नगरीमां स्थविरा पधार्था धन्यसार्थवाहे तेज्जाना सुभथी धर्मंतुं व्याख्यान सांलत्थुं अने सांलणीने तेने प्रतिपेधे थथे। प्रतिबुद्ध थधने तेखे पोताना कुटुंबना वडा तरीके पोताना मोठा पुत्रनीनीमल्लुक करीने दीक्षा अडल्लु करी दीक्षा अडल्लु कर्या पाट तेखे सामायिक वगेरे अगिथार अंगोतुं अध्ययन कथुं अने धलुं वर्षे सुधी श्रामण्य पर्यायितुं पालन करीने अेक मासनी संलेखनाधी ६० लक्षतोतुं अनशन वडे छेदन करीने क्षणता वधते

अन्यतरेषु देवलोकेषु 'देवताए' देवतया=देवत्वेन उपपन्नः। महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत्-सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति। एवं खलु हे जम्बूः। श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्-सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं सम्प्राप्तेन पञ्चदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अयमर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः 'त्तिषेमि' इति ब्रवीमि व्याख्या पूर्ववत्। सू० ४।

इति श्री विश्वविख्यात - जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलित-ललितकलापालापक -प्रविशुद्धेगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक श्रीगार्ह छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकरपुत्र्यश्री घासीलालत्रतित्रिरचितायां श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रस्यानगारधर्मासृतवर्षिण्याख्यायां व्याख्यायां पञ्चदशमध्ययनं समाप्तं ॥ १५ ॥

लोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हो गया। महाविदेह क्षेत्र से यह सिद्ध अवस्था को प्राप्त करेगा-यावत् समस्त दुःखों का अन्त करने वाला होगा इस प्रकार हे जंबू ! श्रमण भगवान महावीर ने कि जो सिद्धगति नाम के स्थान को प्राप्त करचुके हैं इस पंद्रहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त भाव प्रज्ञप्त किया है। ऐसा मैंने उनके मुख से सुना है सो यह वैसा तुमसे कहा है ॥ सू० ४ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर श्री घासीलालजी महाराजकृत "ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र"की अनगारधर्मासृतवर्षिणी व्याख्याका पंद्रहवां अध्ययन समाप्त ॥ १५ ॥

क्षण करीने देवलोकां देवता पर्यायथी जम्बू पाये। महाविदेह क्षेत्रथी ते सिद्ध अवस्था प्राप्त करथे यावत् अधा दुःखानो ते अन्त करनार थथे। आसीते हे जम्बू ! श्रमणु भगवान महावीरे के ज्ञेयान्ते सिद्धिगति नामना स्थानने भेगवी वीधु छे-आ पंद्रमा ज्ञाताध्ययननो आ पूर्वोक्त भाव निरूपित कर्यो छे। मे जे प्रमाणे तेजोश्रीना सुधथी सांख्य छे-ते-प्रमाणे-तमारी आगण श्चु कथुं छे ॥ सूत्र ४ ॥

जैनाचार्य श्री घासीलालजी महाराजकृत ज्ञाताध्ययन सूत्रकी अनगारधर्मासृतवर्षिणी व्याख्याका पंद्रहवां अध्ययन समाप्त ॥ १५ ॥

॥ अथ षोडशाध्ययनं प्रारभ्यते ॥

उक्तं पञ्चदशाध्ययनम्, तत्र विषयसङ्गोऽनर्थस्य कारणमित्युपदिष्टम् इह षोड-
शाध्ययने तु तद्विषयनिदानमनर्थस्य मूलं भवतीत्युच्यते, इत्येवं सम्बन्धेन प्रसङ्गतः
प्राप्तस्यास्याध्ययनस्य प्रथमं सूत्रमाह—‘ जङ्घं भंते ! ’ इत्यादि ।

मूलम्—जङ्घं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव
संपत्तेणं पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सोल-
समस्स णं भंते णायज्झयणस्स णं समणेणं भगवया महा-
वीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?, एवं खलु जंबू !
तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, तीसेणं
चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमेदिसिभाए सुभूमिभागे
उज्जाणे होत्था, तत्थ णं चंपा नयरीए तओ माहणा भायरो
परिवसंति, तं जहा—सोमे सोमदत्ते सोमभूर्द्धं, अड्ढा जाव
अपरिभूया रिउव्वेय जाव सुपरिनिट्ठिया, तेसि णं माहणाणं
तओ भारियाओ होत्था, तं जहा-नागसिरी भूयसिरी जक्खसिरी

सोलहवां अध्ययन प्रारंभ

पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त हो चुका—अब सोलहवां अध्ययन प्रारंभ
होता है । पन्द्रहवें अध्ययन में विषयसंग अनर्थ का कारण कहा गया
है—अब सोलहवें अध्ययन में विषय निदान अनर्थ का कारण होता है
यह स्पष्ट किया जायगा । इस संबन्ध से आया हुआ इस अध्ययन का
यह प्रथम सूत्र है ‘ जङ्घं भंते । ’ इत्यादि ।

सोणभुं अध्ययन प्रारंभ

पंद्रहवें अध्ययन पुर्ण थाय छे. डेवे सोणभुं अध्ययन प्रारंभ थाय छे.
पंद्रहवां अध्ययनमां विषयसंगने अनर्थंनुं कारखु अताववामां आभुं छे. डेवे
सोणभमा अध्ययनमां विषय-निदान अनर्थंनुं कारखु डेय छे, आ वात स्पष्ट
करवामां आवशे. आ विषयने लगतुं आ अध्ययननुं पडेत्तुं सूत्र आ छे—

जङ्घं भंते इत्यादि—

सुकुमाल जाव तेसि णं माहणाणं इट्ठाओ ५, विपुले माणु-
 स्सए जाव विहरंति । तएणं तेसिं माहणाणं अन्नया कयाई
 एगयओ समुवागयाणं जाव इमेयारूवे मिहो क्हासमुल्लवे
 संमुप्पजित्था, एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमे विउले
 धणे जाव सावतेज्जे अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ
 पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं तं सेयं खलु अम्हं
 देवाणुप्पिया ! अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विउलं असणं
 पाणं खाइमं साइमं उवक्खडाविउं उवक्खडावित्ता परिभुंज-
 माणाणं विहरित्तए, अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति परिसु-
 णित्ता कल्लाकल्लिं अन्नमन्नस्स गिहेसु विपुलं असणं उव-
 क्खडावेति, उवक्खडावित्ता परिभुंजमाणा विहरंति, तएणं
 तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया भोयणवारए जाए यावि
 होत्था, तएणं सा नागसिरी विपुलं असणं उवक्खडेति
 उवक्खडित्ता एगं महं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंजुत्तं
 णेहावगाढं उवक्खडेइ उवक्खडित्ता एगं बिंदुयं करयलंसि
 आसाएइ आसाइत्ता तं खारं कडुयं अक्खज्जं अभोज्जं
 विसब्भयं जाणित्ता एवं वयासी—धिरत्थु णं मम नागसिरीए
 अहन्नाए अपुन्नाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगणिंबोलियाए
 जीएणं मए सालइए बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उवक्ख-
 डिए, सुबहुदव्वक्खए, नेहक्खए य कए, तं जइणं ममं
 जाउयाओ जाणिस्संति तो णं मम खिंसिस्संति तं जाव
 ताव मम जाउयाओ ण जाणंति ताव मम सेयं एयं साल-

इयं तित्तालाउ य बहुसंभारणेहकयं एगंते गोवेत्तए अन्नं
 सालइयं महुरालाउयं जाव नेहावगाढं उवक्खडेत्तए, एवं
 संपेहेइ संपेहिता तं सालइयं जाव गोवेइ, अन्नं सालइयं
 महुरालाउयं उवक्खडेइ, तेसिं माहणाणं ण्हायाणं जाव
 सुहासणवरगयाणं तं विपुलं असणं४ परिवेसेइ, तएणं ते
 माहणा जिमियभुत्तुत्तरागया समाणा आयंता चोक्खा परम-
 सुइभूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था, तएणं ताओ
 माहणोओ ण्हायाओ जाव विभूसियाओ तं विपुलं असणं
 ४ आहारोति आहारित्ता जेणेव सयाइं२ गेहाइं तेणेव उवा-
 गच्छइ उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ताओ जायाओ ॥सू०१॥

टीका—श्रीजम्बूस्वामी श्रीसुधर्मस्वामिनं पृच्छति—यदि खलु हे भदन्त ! =
 हे भगवन् श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन
 पञ्चदशस्य अयम्=उक्तरूपः, अर्थः प्रज्ञप्तः, षोडशस्य खलु ज्ञाताध्ययनस्य श्रमणेन
 भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः १,

टीकार्थ—(जइणं भंते । समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं
 पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते सोलसमस्स णं भंते ? णाय-
 ज्झयणस्सणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ?
 एवं खलु जंबू ?) श्री जंबू स्वामी सुधर्मास्वामी से पूछते हैं कि भदन्त ।
 श्रमण भगवान् महावीरने जो कि सिद्धि गति नामक स्थानको प्राप्त हो
 चुके हैं पन्द्रहवें ज्ञानाध्ययनका यह पूर्वोक्तरूपसे अर्थ निरूपित किया है—तो

टीकार्थ—(जइणं भंते । समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पन्नरस-
 मस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते सोलसमस्स णं भंते ! णायज्झयणस ए
 समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जंबू !)

श्री जंबू स्वामी सुधर्मा स्वामीने पूछे छे के डे लदंत ! श्रमणु भग-
 वान महावीरे के-केओ सिद्धिगति नामक स्थानने भेणवी बुद्धया छे-पंडरमा
 ज्ञानाध्ययनने आ पूर्वोक्त रूपे अर्थ निरूपित कथो छे तो ते श्रमणु भगवान्

श्रीसुधर्मास्वामी कथयति—' एवं खलु जंबू ' इत्यादि । एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चंपा नाम-नगरी आसीत्, तस्याः खलु चम्पाया नगर्यां बहिरुत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे सुभूमिभागनामकमुद्यानमासीत्, तत्र खलु चम्पायां नगर्यां त्रयो ब्राह्मणा भ्रान्तः परिवसन्ति, तद् यथा—(१) सोमः, (२) सोमदत्तः, (३) सोमभूतिः, ते किं भूताः—आदृथाः—घनवन्तः, यावद्—अपरिभूताः, तथा—' रिउन्वेय जाव ' ऋग्वेद—यजुर्वेदसामवेदार्थर्ववेदेषु साज्ञोगङ्गेषु सुपरिनिष्ठिताः । तेषां खलु ब्राह्मणानां तिस्रोभार्या आसन्, तद् यथा—(१) नागश्रीः,

सोलहवें ज्ञानाध्ययन का ह-भदंत ? उन्हीं श्रमण भगवान महावीरने कि जो सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त हो चुके हैं क्या भाव अर्थ प्रतिपादित किया है ? इस प्रकार के जंबू स्वामी के प्रश्नका उत्तर देते हुए सुधर्मास्वामी उनसे कहते हैं कि जंबू ! (तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, तीसेणं चंपाए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सुभूमिभागे उज्जाणे, होत्था, तत्थ णं चंपाए नयरीए तओ माहणा भायरा परिवसंति) उस काल और उस समय में चंपा नामकी नगरी थी । उस चंपा के बाहिर ईशान कोण में सुभूमि भाग नाम का उद्यान था । उसी चंपा नगरी में तीन ब्राह्मण भाइ रहते थे (तं जहा) उनके नाम ये हैं—(सोमे सोमदत्ते सोमभूई) सोम, सोमदत्त, और सोमभूति (अड्डा जाव अपरिभूया) ये सब घन धान्यादि संपन्न एवं जन मान्य (रिउन्वेय, जाव सुपरिनिष्ठिया) ये सबके सब ऋग्वेद आदि चारो वेदों

महावीर—हे जम्बू सिद्धिगति भेगवी बुक्या छे—सोणमा ज्ञाताध्वनने शो अर्थ निष्पित कथी छे ? आ रीते जंभू स्वामीना प्रश्नने सांभणीने सुधर्मा स्वामी तेभने उत्तर आपतां कडे छे के छे जंभू !

(ते णं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, तीसेणं चंपाए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सुभूमिभागे उज्जाणे, होत्था, तत्थ णं नयरीए तओ माहणा भायरा परिवसंति)

ते काले अने ते समये चंपा नामे नगरी छती ते चंपा नगरीनी अडार धशान केणुयां सुभूमिभाग नामे उद्यान छत्तु ते चंपा नगरीमां त्रखु आधखु बाधयो रहिता छता. (तजहा) तेभनां नाम आ प्रभाणु छे—(सोमे सोमदत्ते सोमभूई) सोम, सोमदत्त, अने सोमभूति. (अड्डा जाव अपरिभूया) तेओ त्रखे धनधान्य वगेरेथी संपन्न तेभजे जनमान्य छता. (रिउन्वेय, जाव सुपरिनिष्ठिया) तेओ—त्रखे ऋग्वेद वगेरे चारो वेदोना साक्षात् ज्ञाता छता. (तेसि णं माहणा णं तओ भारियाओ होत्था तं जहा—नागसिरी, भूयसिरी

(२) भूतश्रीः, (३) यक्षश्रीश्च, ताः किं भूताः—सुकुमारपाणिपादाः, यावत्—सर्वाङ्ग-सुन्दर्यः, तेषां खलु ब्राह्मणानामिष्टाः—कमनीयाः, विपुलान् मनुष्यकान् यावत् कामभोगान् भुञ्जाना विहरन्ति ।

ततः खलु तेषां ब्राह्मणानामन्यदा कदाचिदेकतः समुपागतानां यावत् अय-
मेतद्रूपः=वक्ष्यमाणस्वरूपः, मिथः=परस्परं, कथासमुल्लापः=वार्तालापः समुदप-
द्यत—एवं खलु हे देवानुमियाः! अस्माकमिदं विपुलं धनं गणिमधरिममेयपरि-
च्छेद्य भेदाच्चतुर्विधं यावत् 'सावतेज्जे' स्वापतेयं—पत्न्यागादिरूपं वा, अथ
यावत्पदबोधयं—कनकसुवर्णरत्नादिकं तथा—मौक्तिकादिकं च विद्यते, किंभूतं तदि-
त्याह—'अलाहि' पर्याप्तं=परिपूर्णं—यावत्—आसप्तमात् कुलवंशात्=सप्तमवंशपर्यन्तं-

के अच्छे जानकार थे । (तैसिणं माहणाणं तओ भारियाओ होत्था—तं
जहा—नागसिरी, भूयसिरी, जक्खसिरी, सुकुमाल जाव तैसि णं
माहणाणं इट्ठाओ ५ विपुले मा० जाव विहरंति) इन तीनों ब्राह्मणों
की तीन स्त्रियां थीं । उनके नाम ये हैं ।—नाग श्री, भूत श्री, और यक्ष
श्री, ये सब सुकुमार करचरणवाली थी यावत् सर्वाङ्ग, सुन्दर थीं । ये
तीनों ब्राह्मण इनके साथ मनुष्यभवं संवन्धी काम भागों को भोगते
हुए आनंद से रहते थे । (तएणं तैसिं माहणाणं अज्जया कयाई एगय
ओ समुवागयाणं जाव इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था)
एक दिन की बात है कि जब ये तीनों भाई एक जगह बैठे हुए थे तब
इनका परस्पर में इस प्रकार का विचार चला—(एवं खलु देवानुप्पिया ।
अम्हं इमे विउले धणे जाव सावतेज्जे अलाहिजाव आसप्तमाओ कुल-

जक्खसिरी, सुकुमार जाव तैसि णं माहणाणं इट्ठाओ ५ विपुले मा० जाव विहरंति)
आ त्रणे ग्राहणेने त्रणे श्रीओ छती. तेमनां नामो आ प्रभाणे छे.
नागश्री, भूतश्री, अने यक्षश्री. तेओ त्रणे सुकेभण छथि अने पगवाणी छती
अने षधां अणे तेमनां सुदर छतां. त्रणे ग्राहणे तेमनी साथे मनुष्य लवना
क्षमबोणे लोभवतां सुपेथी रहेता छता.

(तएणं तैसिं माहणाणं अज्जया कयाई एगयो समुवागयाणं जाव इमेया-
रूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था)

એક દિવસની વત છે કે તેઓ ત્રણે ભાઈ એક સ્થાને બેઠા હતા ત્યારે
તેઓ પરસ્પર આ બંધનો વિચાર કરવા લાગ્યા કે—

(एवं खलु देवानुप्पिया ! अम्हं इमे विउले धणे जाव सावतेज्जे अज्जहि

प्रकामं दातुं, प्रकामं भोक्तुं प्रकामं परिभाजयितुम् ततः = तस्मात् श्रेयः = श्रेयस्करं खलु अस्माकं हे देवानुप्रियाः ! अन्योन्यस्य = परस्परस्य गृहेषु 'कल्लाकल्लिं' कल्याकर्यं प्रतिदिवसं विपुलं = बहुलम्, अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं 'उवक्खडाउं' उपस्कार्युपरिभुञ्जानानां विहर्त्तुम् । अन्योन्यस्य=परस्परस्य एतमर्थं ते त्रयो भ्रातरो ब्राह्मणाः मतिश्रृण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति प्रतिश्रुत्य 'कल्लाकल्लिं'

वंसाओ प्रकामं दाउं प्रकामं भोक्तुं प्रकामं परिभाएउं-तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया । अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडाविउं) हे देवानुप्रियो ! अपने पास विपुलमात्रा में, गणित, धरिम, मेय, एवं परिच्छेद्यरूप चारों प्रकार का धन है, यावत् पद्मराग आदिरूप स्वापत्य भी हैं, कनक, सुवर्ण, रत्न, मणिमौक्तिक आदि सब कुछ है-और वह इतना अधिक है कि सात पीढी तक भी यदि खूब दान दिया जावे, बैठ २ खूब खाया जावे-और उसका हिस्सा भाग भी कर दिया जावे-तौ भी वह समाप्त नहीं हो सकता है । इसलिये हम लोगों को उचित है कि हमें लोग प्रति दिन एक दूसरे के घर पर अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार विपुल मात्रा में बनवावे और (उवक्खडावित्ता परिभुंजमाणानां विहरित्तए) बनवा कर उस का भोजन करें । (अन्नमन्नस्स एयसहं पड्डिसुणेंति) इस प्रकार का आपस का विचार उन्होंने एक दूसरे का स्वीकार कर लिया ।

जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ प्रकायं दाउं प्रकामं भोक्तुं प्रकामं परिभाएउं तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडाविउं)

हे देवानुप्रियो ! आपसी पासे पुष्कण प्रमाद्युमां गच्छिम, धरिम, मेय, अने परिच्छेद्य इय आरे नततुं धन छे. यावत् पद्मराग वगेरे इय स्वापत्य पणु छे. कनकं सुवर्णं, रत्न, मणि, मोती, वगेरे अणु छे-अने अे इंधं छे ते अेहं अणुं छे के सात पीढी सुधी पणु ने पुष्कण प्रमाद्युमां दान करवाभां आवे छतां ते पृथे नडि. अेथी अमने अे योग्य लागे छे के अने अंधा दरैअे अेकेणीअने घेर अशन, पान, आद्य अने स्वाद्यइय आर नतना आडारे पुष्कण प्रमाद्युमां अनावडावीअे अने (उवक्खडावित्ता परिभुंजमाणानां विहरित्तए) अनावडावीने अेअे. (अन्नमन्नस्स एयसहं पड्डिसुणेंति) आ रीते अंधाअे अेकेभत अधने वात स्वीकारी लीधी.

कल्याकरत्यं=प्रतिदिवसम् अन्योन्यस्य गृहेषु विपुलमशनादिक्रम्युपस्कारयन्ति । उपस्कार्यं परिशुद्धानां विहरन्ति । ततः खलु तस्या नागश्रियो ब्राह्मण्या अन्यदा=कदाचिदन्यस्मिन् समये ' भोयणवारण ' भोजनवारकः=भोजयितुं नियमितो दिवसो भोजनवारकः जातः=समायातश्चाप्यभवत्, ततः खलु सा नागश्रीः विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्युपस्करोति=निष्पादयति, उपस्कृत्य एकं महत् ' सालङ्गं ' सारचितं=सारेण रसेन चितं युक्तं यद्वा-शारदिकं=शरदृतुभवं ' तित्तालाउअं ' तित्तालाबुकं=निम्बादिवत् तित्तरसयुक्ततुम्बीफलं, बहुसंभारसंयुक्तं=बहुभिः=अनेकविधैः संभारद्रव्यैः=शाकादौ स्वादसुगन्धविशेषार्थं हिङ्गुमेथिकाजीरकादीनि व्याघारकद्रव्याणि निक्षिप्यन्ते, तैर्मिश्रितं, 'गेहावगाढं' स्नेहावगाढं=घृतादिस्त्रावितम् (युक्तम्) ' उक्कलडैः ' उपस्करोति, उपस्कृत्यैकं विन्दुकं करतले समादाय

(पडिसुणित्ता कल्ला कर्लि अन्नमन्नस्स गिहेसु विउलं असणं ४ उक्कलडावेति) स्वीकार करके अब वे एक दूसरे के घर पर विपुल मात्रा में निष्पन्न हुए अशनादिरूप चतुर्विध आहार को खाने पीने लगे । (तएणं तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया भोयणवारणं जाए यावि होत्था) किसी एक दिन नागश्री ब्राह्मणी की भोजन बनाने की बारी आई (तएणं सा नागसिरी विउलं असणं ४ उक्कलडैति) सो उस दिन उसने विपुल मात्रा में चारों प्रकार का आहार बनाया (उक्कलडित्ता एगं महं सालङ्गं तित्तालाउअं बहुसंभारसंयुक्तं गेहावगाढं उक्कलडैः) आहार बनाकर फिर उसने शरदऋतु में उत्पन्न हुई अथवा रस से सरस बनी हुई तित्तरसतुंभी का शाक बनाया-और उसमें स्वाद एवं सुगंध के निमित्त हींग, मैथी, जीरे आदि का बंधार दिया । उसे खूब अधिक घृत में छोंका था-इसलिये घृत उसके ऊपर तैर रहा था ।

(पडिसुणित्ता कल्ला कर्लि अन्नमन्नस्स गिहेसु विउलं असणं ४ उक्कलडावेति)
स्वीकारिने तेअो अेकणीअने घेर पुष्कण प्रभाषुभां अशनपान वगेरे आर
नतना आहारिने भावा-पीवा लाग्था.

(तएणं तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया भोयणवारणं जाए यावि होत्था)
कोर अेक द्विसे नागश्री ब्राह्मणीने लोअन तैयार करवाने वारे आल्लो
(तएणं सा नागसिरी विउलं असणं ४ उक्कलडैति) तेअे ते द्विसे पुष्कण
प्रभाषुभां आरे नतना आहारिने बनाव्था.

(उक्कलडित्ता एगं महं सालङ्गं तित्तालाउअं बहुसंभारसंयुक्तं गेहावगाढं उक्कलडैः)
आहार बनावीने तेअे शरद् ऋतुभां उत्पन्न थयेली अथवाते रसथी
सरस थयेली तित्तरसवाणी तुणीतुं शाक बनाल्लु अने तेभां स्वाद अने
सुगंधीना भाटे हींग, मैथी, जीरे वगेरेने बंधार दीयो हुतो अेटले तेनी

आस्वादयति, अस्वाद्य तत् क्षारं कडुकमस्वाद्यमभोज्यं विषभूतं ज्ञात्वा एवमवादीत्-
धिगस्तु मां नागश्रियमधन्यामपुण्यां दुर्भगां 'दुभगसत्ताए' दुर्भगसत्त्वां दुर्भगं=निष्फलं
सत्त्वं=बलं यस्याः सा तां व्यर्थपरिश्रमाभित्यर्थः 'दुभगणिबोलिए' दुर्भगनिम्ब-
शुलिकानिम्बफलिका, तद्वद् दुर्भगा तां=जनैरनादरणीयामित्यर्थः, अत्र द्वितीयार्थे
पक्षी प्राकृतत्वात्, 'जीए' यथा खलु मया शारदिकं बहुसंभारद्रव्यसंभूतं स्नेहाव-

(उक्त्वखडिक्ता एगं विदुयं करयलंसि आसाएइ) जब वह तैयार शाक
हो चुका-तब उसने उसमें से एक विन्दु मात्र शाक अपनी हथेली पर
रखा और फिर उसे चखा-(आसाइत्ता तं खारं कडुयं अक्खज्जं अभोज्जं
विसम्भूयं जाणित्ता एवं वयासी-धिरत्थु णं मम नागसिरीए अहन्नाए,
अपुन्नाए दूरभगाए दुभगसत्ताए दुभगणिबोलियाए जीएणं मए सालइए
बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उक्त्वखडिए) चखकर उसे ज्ञात हुआ
कि यह शाक तो बहुत खारा है, बहुत अधिक कडुआ है। खाने के
योग्य नहीं है भोजन में लेने के लायक नहीं है, यह तो विष जैसा है
ऐसा जानकर उसने उन ही मन विचार किया उस विचार में उसने
कहा-मुझ नागश्री को धिक्कार है, मैं अधन्या और अपुण्या हूँ। जनों
के द्वारा आदर पाने योग्य नहीं हूँ। मेरे इस बल को बार २ धिक्कार
हो-मेरा यह बल बिलकुल निष्फल है मैंने जो इस शाक के बनाने में
इतना उद्यम किया है वह मेरा सर्वथा निष्फल गया। जिस प्रकार नीम

उपर धी तस्तुं उदुं (उक्त्वखडिक्ता एगं विदुयं करयलंसि आसाएइ) न्यारे
शाक तैयार थध गयुं त्यारे तेहे तेमांथी इत्त अक दीपा जेटहुं शाक पोतानी
इथेणी उपर लधने थाण्ठुं.

(आसाइत्ता तं खारं कडुयं अक्खज्जं अभोज्जं विसम्भूयं जाणित्ता एवं
वयासी-धिरत्थु णं मम नागसिरीए अहन्नाए, अपुन्नाए, दूरभगाए दुभगसत्ताए
दुभगणिबोलियाए जीएणं मए सालइए बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उक्त्वखडिए)

आणवाथी तेने लाय्ठुं के आ शाक तो भूष न थाई छे, भूष न कडवु
छे, भावालायक नथी, लोअनमां काम लागे तेवुं नथी, आ तो जेर जेवुं छे,
आम जण्ठिने तेहे पोतानी मनमां न विचार कर्यो अने विचार करतां तेहे
पोतानी लतने न आ प्रभाहे कहुं के-मने-नागश्रीने-धिक्कार छे, हुं भरेअर
अधन्या तेमअ अपुण्या छुं. हुं लोके द्वारा आदर भेणववा लायक नथी.
आरा आ अणने वारवार धिक्कार छे, भाई आ अण सांव नकायुं छे. शाक
तैयार करनामां जेटवी मे धम कर्यो छे ते अधी नकायो गयो. जेम सीम-

ગાઢમુપસ્કૃતં, તેન સુવહુદ્રવ્યક્ષયઃ-દિહ્નુજીરકાદિદ્રવ્યનાશઃ, સ્નેહક્ષયઃ=ઘૃતાદિ-ક્ષયશ્ચકૃતઃ, તત્=તસ્માત્ યદિ સ્વલ્લ મમ 'જાડયાઓ' યાતૃકાઃ, દેવરભાર્યાઃ જ્ઞાસ્યન્તિ, 'તોળં' તર્હિ સ્વલ્લ મમ 'લિસિસ્સંતિ' લિસિષ્યન્તિ-નિન્દાં કોપં ચ કરિષ્યન્તિ, તત્-તસ્માત્ યાવન્મમ યાતૃકા ન જાનન્તિ, તાવન્મમ શ્રેયઃ-ઉચિતં એતત્ શારદિકં તિત્કાલાલુકં વહુસંભારસ્નેહકૃતમ્ એકાન્તે 'ગોવેત્તણ' ગોપયિતુમ્, અન્યત્ શારદિકં મધુરાલાલુકં મધુરતુમ્બીફલં યાવત્ સ્નેહાવગાઢમુપસ્કૃતમ્ । एवं

કી નિવૌલી કિસી મનુષ્ય કી દૃષ્ટિ મેં આદર પાને યોગ્ય નહીં હોતી હૈ ડસી પ્રકાર મેં મી જનોં દ્વારા અનાદરણીય બની હૂં । જો મૈને શરદ કાલિક અથવા સરસ ઇસ તુંવી ફલ કા હિહ્ગુ, જીરકાદિ દ્રવ્યોં સે યુક્ત ઓર ઘૃતાદિ સે યુક્ત શાક બનાયા હૈ (સુવહુદ્રવ્યક્ષય, નેહક્ષય ય કણ) ઇસ કે બનાને મેં મૈને વ્યર્થ હી બહુન સે હિહ્ગુ જીરે મૈથી આદિ દ્રવ્ય કા ઓર ઘૃત કા બિનાશ કિયા હૈ । (તં જહ્ગં મમં જાડયાઓ જાણિસ્સંતિ, તો, ણં મમ લિસિસ્સંતિ) ઇસ વાત કો યદિ મેરી દેવરાની જાનેંગી તો વે મેરે ડપર ગુસ્લા હોગી ઓર મેરી નિંદા કરેંગી । (તં જાવ તાવ મમં જાડયાઓ ણ જાણંતિ તાવ મમં સેયં એયં સાલહ્યં તિત્કાલાડય વહુસંભારણેહ કયં એગંતે ગોવેત્તણ) ઇસલિયે છુએ અવ યહી ઉચિત હૈ કિ મેં ઇસ શારદિક તિત્કોલાલુ કે શાક કો જો વહુત સંભાર એવં ઘૃત ઢાલકર બનાયા હૂં કિસી એકાન્ત સ્થાન મેં છુપાકર રક્ષ દૂં ઓર

ડાની લીંગોળી માણુસોની સામે આદર મેળવવા યોગ્ય ગણાતી નથી તે પ્રમાણે હું પણ માણુસો દ્વારા આદર પ્રાપ્ત કરવા લાયક રહી નથી. એટલે કે હું લોકોની સામે અનાદરણીય થઈ ગઈ છું. મેં શરદ કાલિક અથવા સરસ તુંળીના ફળનું હીંગ, છૂં વગેરે દ્રવ્યોથી યુક્ત અને ઘી વગેરેથી યુક્ત શાક બનાવ્યું છે (સુવહુ દ્રવ્યક્ષય નેહક્ષય ય કણ) એને તૈયાર કરવામાં મેં વ્યર્થ હીંગ, છૂં, મેથી વગેરે તેમજ ઘી વગેરે વસ્તુઓનો દુર્વ્યર્થ કૃષોં છે (તં જહ્ગં મમં જાડયાઓ જાણિસ્સંતિ, તો ણં મમ લિસિસ્સંતિ) એ મારાં દેશીની આ વાતની બાજુ થશે તો તેઓ ચોક્કસ મારા ઉપર ગુસ્સે થશે અને મારી નિંદા કરશે.

(તં જાવ તાવ મમં જાડયાઓ ણ જાણંતિ તાવ મમં સેયં એયં સાલહ્યં તિત્કોલાડય વહુ સંભારણેહકયં એગંતે ગોવેત્તણ)

એથી અત્યારે મને એ જ યોગ્ય લાગે છે કે આ શારદિક તિક્તોલાલુ (કઠવી તુંબી) ના શાક ને-કે જે ખૂબ જ સરસ ઘી નાળીને વધારવામાં આવ્યું છે-એક તરફ છુપાવીને મૂકી દઉં અને તેની જગ્યાએ (અન્નં સાલહ્યં

संपेक्षते=विचारयति, संप्रेक्ष्य तत् शारदिकं यावद् तिकालावुक्तं गोपयति=कचित् समाच्छाद्य धरति अन्यत् शारदिकं मधुरालावुकमुपस्फुरोति=रन्धयति शेषवारादिभिः संस्फुरोति । तेषां ब्राह्मणानां यावत् सुखासनवरगतानां निजनिजासने-सुखोपविष्टानां तद् विपुलमशनपानं खाद्यं स्वाद्यं परिवेषयति=तेषां भोजनावसरे भोजनपात्रे ददातीत्यर्थः । ततः खलु ते ब्रह्मणाः 'जिमियमुत्तुरागया' जिमित-

उसके स्थानपर (अन्नं सालह्यं महुरालाउयं जाव नेहावगाढं उवक्ख-डेत्तए) दूसरी शारदिक मधुर तुंबडी का शाक हींग, जीरे और मैथी का बघार लगाकर घृत में तैरता हुआ बनालै (एवं संपेहेइ, संपेहिच्चा तं सालह य जाव गोपेइ अन्नं सालह्यं महुरालाउयं उवक्खडेइ तेसि महणाणं पहायाणं जाव सुहासनवरगयाणं तं विपुलं असणं ४ परिवेसेइ) ऐसा उसने विचार किया-विचार करके उस शारदिक कडवी तुंबडी के बहुत संभार एवं घृत युक्त शाक एकान्त में छुपाकर रख दिया-और दूसरी शारदिक मधुर तुंबडी - का शाक हींग जीरे और मैथी का बघार लगाकर घृत में तैरता हुआ बना लिया । इनने में वे तीनों ब्राह्मण स्नान आदि से निवृत्त कर भोजन शाला में आकर अपने २ आसन पर शांति के साथ बैठ गये । उनके बैठते ही उसने उन्हें अशन आदिरूप चारों प्रकार का आहार थालों में परोसा (तएणं ते माहणा जिमिय मुत्तुरागया समाणा आयंता चोक्खा परम सुइ-

महुरालाउयं जाव नेहावगाढं उवक्खडेत्तए) भील शारदिक भीडी तुंबडीतुं धी उपर तरी रहुं छे अवेवु शाक डींग, लइं अने मेथीमां वधारीने जनाउ.

(एवं संपेहेइ, संपेहिच्चा तं सालाह य जाव गोपेइ, अन्नं सालह्यं महुराला-उयं उवक्खडेइ, तेसि माहणाणं पहायाणं जाव सुहासनवरगयाणं तं विपुलं असणं ४ परिवेसेइ)

आ जतने तेहे विचार कथी, विचार करीने ते' शारदिक कडवी तुंब-डीना सरस धीमां वधारेदा शाकने अेक तरइ छुपावीने भूडी हीधुं अने भील शारदिक भीडी तुंबडी-इधी-तुं डींग, लइं अने मेथीमां वधार करीने उपर धी तरतुं शाक जनाउंथुं. अेटकांमां तो तेओ त्रहे प्प्राह्मणेा स्नान वगेरेथी परवारीने लोअनशाणांमां आवीने पोतपोताना आसन उपर शांतिथी अेस्ती गया. तेभने अेसतां ज तेहे तेओने अशन वगेरे इप थारे जतने आहार थाणीमां पीरस्थे.

भुक्तोत्तरगताः भोजनानन्तरं वहिरागताः सन्तः 'आयंता' आचान्ताः कृतचुलकाः 'चोक्खा' चोक्षाः=प्रक्षालितहस्तमृत्वाः परमशुचिभूताः 'सकम्मसंपउत्ता' स्वकर्मसंपयुक्ताः=स्वस्वकार्यसंलग्ना जाताश्चप्यभवत् । ततः खलु ताः ब्राह्मण्यः स्नाताः यावत् ब्रह्मालंकारविभूषितास्तद् विपुलमशन पानं खाद्यं स्वाद्यम् आहार-यन्ति=आहारं कुर्वन्ति भुञ्जते स्म । आहत्य, यत्रैव स्वकानि स्वकानि गृहाणि=आवासभवनानि तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य स्वकर्मसंपयुक्ता जाताः ॥ सू० १ ॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा नाम थेरा जाव बहुपरिवारा जेणेव चंपा नामं नयरी जेणेव सुभूमिभागे

भूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था) आहार जव परोसां जा चुका-तव उन सबने उसे खाया पीया-और खा पीकर जब वे निपट चुके तब उन्हींने कुछा आदि कर अपने मुँह का प्रक्षालन किया-और हाथों को साफकर वे अपने २ कार्य में लग गये। (तएणं ताओ माहणीओ ष्हायाओ जाव विभूसियाओ तं विपुलं असणं ४ आहारंति, आहारिस्ता जेणेव सयाइं २ गेहाइं तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता सकम्म संपउत्ताओ जायाओ) इसके बाद उन ब्रह्मणियोंने जो कि पहिले से ही स्नान कर चुकी थी और अपने २ शरीर को सुन्दर वैष-भूषा से सुसज्जित किये हुए थी, उस विपुल अशानादिरूप चतुर्विध आहार को खाया-और खाकर के फिर वे अपने २ वासभवनों में खली गईं-वहाँ जाकर अपने २ वे सब काममें लग गईं ॥ सूत्र १ ॥

(तएणं ते माहणा जिमिय भुज्जतरागया समाणा आयंता, चोक्खा परमसुइं भूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था)

आहार न्यारे पीरसाधं गथे त्यारे तेज्जे त्रजे न्भ्या अने न्भी पर-वारीने केगणा वगेरे करीने ६थ भेां साइं कथो अने ६थ भेां साइं करीने तेज्जे त्रजे पोतपोताना कामभां परेवाधं गथा.

(तएणं ताओ माहणीओ ष्हायाओ जाव विभूसियाओ तं विपुलं असणं ४ आहारिस्ता जेणेव सयाइं २ गेहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ताओ जायाओ)

त्यारभाडं ते प्राक्षणीज्जे-के जेज्जे पडेलां स्नानं करीने पोताना शरीरने सुंहर वस्त्रोथी शल्लुगार्थुं डत्तुं-ते पुष्कण प्रभाषुभां अनाववाभां आवेदी अशनं वगेरे ३थ गार वतनेो आहारं कथो आहारथी परवारीने तेज्जे पोतपोताना वासलवन्नां न्दी रही अने त्यां न्धने तेज्जे सबे पोतपोताना कामभां परेवाधं गथे. ॥सू०१॥

उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति २ अहापडिरुवं जाव विहरंति,
परिस्ता निग्गया, धम्मो कह्णिओ, परिस्ता पडिगया, तएणं-
तेसिं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी धम्मरुई नाम अणगारे
ओराले जाव तेउलेस्से मासं मासेणं खममाणे विहरइ,
तएणं से धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगंसि पढमाए
पोरिसिए सज्झायं करेइ बीयाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसा-
मी तहेव उग्गाहेइ उग्गाहित्ता तहेव धम्मघोसे थेरं आपुच्छइ
जाव चंपाए नयरीए उच्चनीयमज्झिमकुलाइं जाव अडमाणे
जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे, तएणं
सा नागसिरी माहणी धम्मरुईं एजमाणं पासइ पासित्ता
तस्स सालइयस्स बहुसंभारसंभियस्स णेहावगाढस्स तित्त-
कडुयस्स पट्टवणट्टयाए हट्टुतुट्ठा उट्टाए उट्टेइ उट्टित्ता जेणेव
भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्त-
कडुयं च बहुसंभारसंभियं णेहावगाढं धम्मरुइस्स अणगा-
रस्स पडिग्गहंसि सव्वमेव निसिरइ, तएणं से धम्मरुईं
अणगारे अहापज्जत्तमित्तिक्कट्टु णागसिरीए माहणीए गिहाओ
पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं
पडिनिक्खमइ जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवाग-
च्छइ, उवागच्छित्ता धम्मघोसस्स अदूरसामंते अन्नपाणं
पडिलेहेइ पडिलेहित्ता अन्नपाणं करयलंसि पडिदंसेइ, तएणं
ते धम्मघोसा थेरा सालइयस्स जाव नेहावगाढस्स गंधेणं

अभिभूया समाणा तथो सालइयाओ जाव नेहावगाढाओ
 एगं विंदुणं गहाय करयलंसि आसाएइ । तित्तणं खारं कडुयं
 अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरूइं अणगारं एवं
 वयासी-जइणं तुमं देवाणुप्पिया ! एवं सालइयं जाव
 नेहावगाढं आहारेसि तो णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ
 ववरोविज्जसि, तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं
 जाव आहारेहि, मा णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ वव-
 रोविज्जेहि, तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं
 एगंतमणावाए अच्चित्ते थंडिले परिट्टवेहि परिट्टवित्ता अन्नं
 फासुयं एसणिज्जं असणंपाणं खाइमं साइमं पडिगहित्ता
 आहारं आहारेहि ॥ सू० २ ॥

टीका—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये धर्मघोषा
 नाम स्थविरा यावत्-बहुपरिवाराः-बहुसाधुपरिवारेण सहिता यत्रैव चम्पा नाम
 नगरी, यत्रैव सुभूमिभागसुद्यानं तत्रोपागच्छन्ति, अत्र ‘धर्मघोषा’ इति बहु-
 वचनमादरार्थं प्रयुक्तम्, उपागत्य यथा प्रतिरूपं यावत्-अवग्रहमवगृह्य संयमेन

तेणं कालेणं तेणं समएणं इत्यदि ॥

टीकार्थं—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में
 (धम्मघोसा नाम थेरा जाव बहुपरिवारा जेणेव चंपा नाम नगरी जेणेव
 सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिखवं
 जाव विहरंति-परिसा निगया, धम्मो कहिओ परिसा पडिगया-तएणं
 तेसि धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी धम्मरूइं नाम अणगारे ओराले

(ते णं कालेणं तेणं समएणं) इत्यादि ।

टीकार्थं—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते क्षणे अने ते समये

(धम्मघोसा नाम थेरा जाव बहुपरिवारा जेणेव चंपा नाम नगरी जेणेव
 सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिखवं जाव विहरंति
 परिसा निगया, धम्मो कहिओ, परिसापडिगया, तएणं तेसि धम्मघोसाणं थेराणं

તપસાડ્ડત્માનં માત્ર્યન્તો વિહરતિ-આસતેસ્મ । પરિષદ્ નિર્ગતા ધર્મઃ કથિતઃ= ધર્મકથા કથિતા, પરિષદ્ પ્રતિગતા=ધર્મકથા શ્રવણાનન્તરં પ્રતિનિવૃત્તા । તતઃ સ્વલ્લ તેષાં ધર્મઘોષાણાં સ્થવિરાણામન્તેવાસી ધર્મરુચિર્નામાનગારઃ ઉદારઃ પ્રધાનો યાવત્ સંક્ષિપ્તવિપુલતેજોલેશ્યઃ=સંક્ષિપ્તા શરીરાન્તઃ સંકોચિતા, વિપુલા=અનેકયોજન-પ્રમિતક્ષેત્રસ્થિતવસ્તુદહનસમર્થા, તેજોલેશ્યા=વિશિષ્ટતપોજન્યલબ્ધિવિશેષો યેન સઃ

જાવ તેજલેસ્સે માસં માસેણં સ્વમમાણે વિહરદ્) ધર્મ ઘોષ નામકે સ્થવિર યાવત્ અનેક પરિવાર સે યુક્ત હોકર જહાં ચંપા નગરી, ઓર ઉસમે જહાં વહ સુભૂમિભાગ નામ કા ઉચ્ચાન થા વહાં આયે । વહાં આકર કે ઉન્હોં ને વહાં ઠહરને કે લિચે અપને કલ્પાનુસાર આજ્ઞા માંગી વાદ મે વે વહા સંયમ ઓર તપ સે આત્માકો અબિત કરતે હુપ ઠહર ગયે । ચંપાનગરી કે સમ્મહન જન ઉનકો વંદના ઇવં ધર્મકથા સુનાને કે લિચે વહાં આયે । ઉન્હોંને શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મકા ઉપદેશ દિયા । ઉપદેશ શ્રવણ કર પરિષદ અપને ૨ સ્થાન પર પીછે ગઈ । ઇસકે અનન્તર ઇન ધર્મઘોષ સ્થવિર કે અન્તેવાસી જિનકા નામ ધર્મરુચિ અનાંગાર થા વડે ઉદાર પ્રકૃતિ કે થે વિશિષ્ટ તપસ્યાઓં કો ક્રિયા કરતે થે-ઉસકે પ્રભાવ સે ઇન્હેં તેજોલેશ્યા કી પ્રાપ્તિ હો ગઈ થી ઓર વહ તેજોલેશ્યા ઇન્હોંને અપને શરીર કે ખીતર સંક્ષિપ્ત કર રક્ત્વી થી ઇસ તેજોલેશ્યા કા યહ સ્વભાવ હોતાં હૈં કિ જબ વહ શરીર સે બાહિર નિકલતી હૈં તો અનેક યોજન પ્રમિત ક્ષેત્ર મેં રહી હુદ્ વસ્તુઓં કો અસ્મકર દેતી હૈં । માસ ક્ષપણ કી ઉપવાસ રૂપ તપસ્યા

અંતેવાસી ધર્મરુઈ નામ અળદારે ઓરાલે જાવ તેજલેસ્સે માસં માસેણં સ્વમમાણં વિહરદ્

ધર્મઘોષ નામના સ્થવિર પોતાના ઘણા પરિવારોની સાથે જ્યાં ચંપા નગરી અને તેમાં પણ જ્યાં તે સુભૂમિભાગ નામે ઉદ્યાન હતું ત્યાં આવ્યા. ત્યાં આવીને તેમણે ત્યાં રોકાવાની પોતાના આચાર મુજબ આજ્ઞા માંગી. ત્યાર પછી તેઓ ત્યાં પોતાના આત્માને તપ અને સંયમથી ભાવિત કરતાં રહેતા હતા. ચંપા નગરીના બધા ઢોંકા તેમનાં વંદન તેમજ ધર્મકથા શ્રવણ માટે ત્યાં આવ્યા તેઓશ્રીએ શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો. ઉપદેશ સાંભળીને ઢોંકા પોતપોતાના નિવાસ સ્થાને જતા રહ્યા. ત્યારપછી ધર્મઘોષ સ્થવિરના અંતેવાસી-એમનું નામ ધર્મરુચિ અનગાર હતું, જેઓ પૂજા જ ઉદાર પ્રકૃતિના હતા, વિશિષ્ટ તપસ્યાઓ કરતા રહેતા હતા. જેના પ્રભાવથી એમણે તેજલેશ્યા મેળવી હતી અને તેજલેશ્યાને તેમણે પોતાના શરીરમાં જ સંકોચી રાખી હતી, આ તેજલેશ્યાનો પ્રભાવ આ બાતનો હોય છે કે જ્યારે તે શરીરની પ્રકૃતિ બહાર નીકળે છે ત્યારે ઘણા ચોખ્ખો સુધીના ક્ષેત્રમાં મૂકેલી વસ્તુઓને ભસ્મ કરી નાખે છે-માસક્ષપણની ઉપવાસ રૂપ તપસ્યાથી તેઓ

तथा, मास=त्रिंशत्तद्विंशत्कालं मासेन=मासक्षपणेन मासोपवासरूपतपः
 क्रमणा 'खममाणे' क्षपयन्=यापयन् विहरति । ततः खलु स धर्मरुचिरनगरो
 मासक्षपणपारणके प्रथमायां पौरुष्यां 'सज्ज्ञायं' स्वाध्यायं सूत्रपाठरूपं करोति,
 द्वितीयायां पौरुष्यां ध्यानम् सूत्रार्थचिन्तनरूपं ध्यायति-करोति, एवं यथा गौतम-
 स्वामी, तथैव गौतमस्वामीवत् तृतीयपौरुष्यां भाजनस्त्राणिप्रमार्जयति, प्रमार्ज्यं
 भाजनानि 'उग्गाहेह' अवगृह्णाति, अवगृह्य यत्रैव धर्मघोषस्थविरस्तत्रैवोपागच्छति,
 उपागत्य तथैव श्रीमहावीरस्वामीनं गौतमस्वामिवदेव धर्मघोषं स्थविरमापृच्छति,

से. ये अपने त्रिंशत् अहोरत्रात्मक काल को उस समय व्यतीत कर
 रहे थे । अर्थात् एक महीने की तपस्या इन्होंने उस समय कर रखे थे-
 (तएणं से धम्मरुइ अणगारे मासखमणपारणगंसि पढ्माए पोरिसीए
 सज्झायं करेइ, वीयाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसामी तहेव उग्गाहेइ,
 उग्गाहिन्ता तहेव धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ, जाव चंपाए नयरीए उच्च
 नीय मज्झिमकुलाई जाव अडमाणे जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे
 तेणेव अणुपविट्ठे, तएणं सा नागसिरी माहणी धम्मरुइं एज्जमाणं
 पासइ) ये धर्मरुचि अनगर मासक्षपण की पारणा के दिनप्रथम पौरुषी
 में सूत्रपाठ रूप स्वाध्याय, द्वितीय पौरुषी में सूत्रार्थ चिन्तन रूप ध्यान
 और तृतीय पौरुषी में गौतम स्वामी की तरह वस्त्रपात्रों का प्रमार्जन
 करते । इस तरह इन्होंने तृतीय पौरुषी में वस्त्र पात्रों का प्रमार्जन कर
 अपने पत्रों को उठाया और उठकर ये धर्मघोष स्थविर के पास गये ।

पोताना त्रिंशत् अहोरत्रात्मक कालने ते समये पसार करी रह्या उंता-येटवे
 ठे तेओ ते समये ओके मासनी तपस्था करी रह्या उंता.

(तएणं से धम्मरुइ अणगारे मासखमणपारणगंसि पढ्माए पोरिसीए स-
 ज्झायं करेइ, वीयाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसामी तहेव उग्गाहेइ, उग्गाहिन्ता
 तहेव धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ, जाव चंपाए नयरीए उच्चनीय मज्झिमकुलाई जाव
 अडमाणे जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे, तएणं सा नागसिरी
 माहणी धम्मरुइं एज्जमाणं पासइ)

धर्मरुचि अनगर गौतम स्वामीनी जेम प्रथम पौरुषीमां सूत्रपाठ इप
 स्वाध्याय, द्वितीय पौरुषीमां सूत्रार्थ चिन्तन इप ध्यान अने तृतीय पौरुषीमां
 वस्त्र अने पात्रोत्तुं प्रमार्जन करता उंता, मास क्षपणता पोताना पारट्टाना
 दिवसे पणु तेओओ तृतीय पौरुषीमां वस्त्र-पोतानुं प्रमार्जन करीने पोताना
 भात्रोने वीधा अने लधने तेओ धर्मघोष स्थविरनी पासे गया. जेम गौतम

धावत्-चंपायं नगरीं तु च नीचमध्यमकुलानि यावदटन् यत्रैव नामश्रिया ब्राह्मण्या
गृहं तत्रैवानुप्रविष्टः ।

ततः खलु सा नागश्री ब्राह्मणी धर्मरुचिमनंगारम् एजमानम्-आगच्छन्ते
पश्यति, दृष्ट्वा तस्य 'सालइयस्स' शारदिकस्य तित्तकडुकस्य=तित्तकडुकतुम्ब-
कस्य बहुसंभारसंभृतस्य स्नेहावगाढस्य 'पट्टवणट्टयाए' प्रस्थापनार्थं=परिष्ठा-
पनार्थं हृष्टतुष्टा 'उट्टाए' उत्थया=उत्थानक्रियया उत्तिष्ठति, उत्थाय यत्रैव भक्तगृहं
तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तद् शारदिकं तित्तकडुकतुम्बकं बहुसंभारसंभृतं
स्नेहावगाढं धर्मरुचेरनंगारस्य 'पडिग्गहंसि' पतदग्रहे-पात्रे, सर्वमेव 'निसिरइ'

जिस प्रकार गौतम स्वामी श्री महावीर स्वामी से प्रछकर आहार लेने
के लिये जाते थे उसी प्रकार इन्होंने धर्मघोष स्थविर से आहार लाने
के लिये आज्ञा मांगी । आज्ञा प्राप्तकर ये चंपानगरी में उच्च नीच एवं
मध्यमकुलो में भ्रमण करते हुए जहाँ नागश्री ब्राह्मणी का घर था वहाँ
गये । नागश्री ब्राह्मणी ने इन्हें ज्योंही आते हुए देखा (पासिस्ता तस्स
सालइयस्स बहु संभारसंभियस्स गेहावगाढस्स तित्तकडुयस्स पट्टवण-
ट्टयाए हट्ट तुट्टा उट्टाए उट्टेइ उट्टित्ता जेजेव भत्तघरे तेजेव उवागच्छइ)
त्योही यह बहुसंभार संभृत एवं स्नेहावगाढ उसकडवी तुंबडीका आहार
देने के लिये उत्थान क्रिया द्वारा-उठी-अर्थात् अपने में रही हुई उठने
की शक्ति से उठी और हृष्ट तुष्ट होती हुई जहाँ भोजन-गृह था वहाँ
गई । (उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्तकडुयं च बहुसंभारसंभियं गेहा-
वगाढं धर्मरुइयस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सत्थमेव निसिरइ) वहाँ

स्वामीने पूछीने आहार लाववा भाटे नीक्षणता हुता तेमन् तेओओ पधु
आहार लाववा भाटे धर्मघोष स्थविरनी पासे आज्ञा मांगी: आज्ञा मेणवीने
तेओ चंपा नगरीमां उच्चनीच अने मध्यम कुलोमां भ्रमणु करतां न्यां
नागश्री ब्राह्मणीनुं घर हुतुं त्यां गया. नागश्री ब्राह्मणीओ तेओने आवती केथो
(पासिस्ता तस्स सालइयस्स बहुसंभारसंभियस्स गेहावगाढस्स तित्तकडुयस्स
पट्टवणट्टयाए हट्टतुट्टा उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता जेजेव भत्तघरे तेजेव उवागच्छइ)
त्यारे तरतन् सरस वधारेवो धी तरतो कडवी तुम्बडीने आहार आपवा
भाटे उत्थान किया पडे जेवो थरं ओटले के पोतानामां रडेवी जेसा थवानी ताकतेथी
से जेवो थरं अने हृष्ट तेमन् तुष्ट थती न्यां बोधनशाणा हुती त्यां गई.
(उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्तकडुयं च बहुसंभारसंभियं गेहावगाढं ध-
र्मरुइयस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सत्थमेव निसिरइ)

निवृत्तजति=परिष्ठापयति । ततः खलु स धर्मरुचिरनगरः 'अहापज्जत्तं' यथा पर्याप्तम्-उदरपूर्तये पूर्णभेतद् इति कृत्वा=इति मनसि विभाव्य, नागश्रिया ब्राह्मण्या गृहात् प्रतिनिष्क्रामति-निर्गच्छति प्रतिनिष्क्रम्य चम्पाया नगरीं मध्यमध्येन प्रतिनिष्क्राम्यति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव सुभूमिभागमुद्यानं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य धर्मघोषस्य स्थविरस्य 'अदूरसामन्ते'=नातिदूरे नातिसमीपे, अन्नपानं 'पडिलेहेइ' प्रति लेखयति प्रतिलेख्य अन्नपानं करतले पात्रं कृत्वा प्रतिदर्शयति। ततः खलु ते धर्मघोषाः स्थविरास्तस्य शारदिकस्य तित्तकटुतुम्बकस्य यावत् स्नेहावगाढस्य गन्धेनाऽभिभूतासन्तस्तस्माच्छारदिकाद् यावद् स्नेहावगाढादेकं विन्दुकं गृहीत्वा करतले कृत्वा आस्वादयति । तित्तकं क्षारं कटुकम् अखाद्यमभोज्यं विषभूतं ज्ञात्वा धर्म-

जाकर उसने उस शारदिक कडवी तुंबडी का बहुत संभार संभृत एवं स्नेहावगाढ शाक धर्मरुचि अनगार के पात्र से सब का सब डाल दिया (तएणं सेधम्मरूइ अणगारे अहापज्जत्तमित्तिकट्टु णागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ) इसके बाद वे धर्मरुचि अनगार " यह उदर पूर्ति के लिये पर्याप्त है " ऐसा मन में समझ कर नागश्री ब्राह्मणी के घर से बाहर निकले पडिक्खमित्ता चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं पडिनिक्खमइ, जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे - तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मघोसस्स अदूरसामन्ते अन्नपाणं पडिलेहेइ, पडिलेहिच्चा अण्णपाणं करयलंसि पडिदंसेइ, तएणं से धम्मघोसा थेरा तस्स सालइस्स जाव नेहावगाढस्स गन्धेणं अभिभूया समाणा ताओ सालइयाओ जाव नेहावगाढाओ एगं विंदुगं गहाय करयलंसि आसाएइ)

त्यां अधने तेष्णे ते शारदिक कडवी तुंबडीतुं भूषणं सरस रीते पद्या-
'रेतुं तेभञ्ज धी तरतु' शाक लघु आषी अने त्यारपथी धर्मरुचि अनगारना-
पात्रभां भुं' नापी दीधु.

(तएणं धम्मरूइ अणगारे अहापज्जत्तमित्ति कट्टु णागसिरीए महिणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ)

त्यारपथी ते धर्मरुचि अनगार " आ उदर पोषणु भाटे पर्याप्त छे " ज्येवुं नाष्णीने नागश्री प्राहाष्णीना घेरथी भङ्गार नीकल्या.

(पडिनिक्खमित्ता चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं पडिनिक्खमइ, जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मघोसस्स अदूरसामन्ते अन्नपाणं पडिलेहेइ, पडिलेहिच्चा अण्णपाणं करयलंसि पडिदंसइ, तएणं से धम्मघोसाथेरा तस्स सालइस्स जाव नेहावगाढस्स गन्धेणं अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ जाव नेहावगाढाओ एगं विंदुगं गहाय करयलंसि आसाएइ)

रुचिमानगरमेवमवदन् यदि खलु त्वं हे देवानुप्रिय । एतद् शारदिकं यावत्-
तिक्तकटुकस्तुम्बकं यावत् स्नेहावगाढम् आहारयसि=आहारं करिष्यसि, तर्हि खलु
त्वमकाले एव जीविताद् व्यपरोषिष्यसे' एतदशनेन मरणमवश्यं प्राप्स्यसीत्यर्थः ।
तत्=तस्मात् मा खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! एतद् शारदिकं यावदाहारय, मा खलु

निकल कर चंपानगरी के बीचो बीचसे होकर चल दिये सो जहां सुभू-
सिभाग नाम का उद्यान था वहां आ गये । वहां आकर वे अपने आ-
चार्य धर्मघोष स्थविर के पास आये वहां आकर उन्होंने भिक्षामें प्राप्त
हुआ आहार बताया और बताने के बाद उस शारदिक कडवी तुंबडी
के यावत् स्नेहावगाढ शाक की गंध से अभिभूत होते हुए उन धर्मघोष
आचार्य ने उस शारदिक यावत् स्नेहावगाढ शाक में से एक बिन्दु मात्र
को अपने हाथ की हथेली पर रख कर चखा (तिक्तगं खारं कटुयं
अखज्जं अमोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरूइं अणगारं एवं वयासी-
इणं तुमं देवाणुप्पिया । एयं सालइयं जाव ने हावगाढं आहारेसि तो
पां तुमं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जसि) चखते ही " यह
तिक्त हैं क्षार से युक्त है कटुक है अखाद्य एवं अमोज्ज है तथा विषभूत
है " ऐसा जानर धर्मरुचि अनगर से उन्होंने ऐसा कहा हे देवानु
प्रिय । यदि तुम शारदिक कडवी तुंबडी के बहु संभार संभृत एवं
स्नेहावगाढ इस शाक का आहार करोगे-तो निश्चय से विना मृत्यु के

नीकणीने थं पा नगरीनी वच्चेना भागर्थी पसार थतां न्यां सुभूमिभाग
नामे उद्यान इतुं त्यां आव्या. त्यां आवीने तेज्जे पाताना आचार्यं धर्मघोष
स्थविरनी पासे आव्या अने त्यां आवीने तेमजे शिक्षामां प्राप्त थथेत्ता
आहारने भताव्थे अने भतावीने ते शारदिके कडवी तुंबडीना सरस वधारत्ता
धी तरता शाकनी सुवासथी अभिभूत थतां ते धर्मघोष आचार्ये ते शारदिके
सरस वधारत्ता धी तरता शाकने इथेणी उपर भूडीने आण्ठुं.

(तत्तगं खारं कटुयं अखज्जं अमोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरूइं अणगारं
एवं वयासी-इणं तुमं देवाणुप्पिया । एयं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारेसि
तो पां तुमं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जसि)

आभतां न " आ तिक्त छे, भाई छे, कडु छे, अखाद्य तेमज्ज अलोन्थ
छे तथा विषभूत छे " आवुं लब्धिने धर्मरुचि अनगारने तेज्जेजे आ प्रभाजे
कडुं के छे देवानुप्रिय ! जे तमे शारदिके कडवी तुंबडीना सरस वधा-
रत्ता धीतरता शाकने आहार करथे तो अकाले तमे कर्मोते मरी जथे।

स्वमकारणव जीविताद् व्यपरोप्यस्व=मा ध्रियस्व । तत्=तस्माद् गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय । इदं शारदिकं 'एगंतमणावाए' एकांन्तेऽनापाते=एकान्ते=निर्जनस्थाने, अनापाते-आपातः-द्वीन्द्रियादिप्राणिनां संयोगस्तद्वर्जिते, अचित्ते=जीवरहिते, स्थण्डिले=भूमौ 'परिट्वेहि' परिष्ठापय, परिष्ठाप्यान्वत् प्रासुकमेवणीयं=द्वाचस्वार्शिदोषरहितं, शुद्धम्-अशनपानखाद्यस्वाद्यम् प्रतिगृह्य आहारमाहारय ॥ सू० २ ॥

मूलम्-तएणं से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेणं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अंतियाओ पडिनिक्खमई, पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसामंते थंडिल्लं

मरजाभोगे-(तं मा णं तुमं देवानुप्पिया । इमं सालइयं जाव आहारेहि मा णं तुमं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जहि तं गच्छणं तुमं देवानुप्पिया । इमं सालइयं एगंतमणावाए अच्चित्ते थंडिले पडिट्वेहि, परिट्वित्ता अन्नं फासुयं एसणिज्जं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेहि) इसलिये हे देवानुप्रिय ! तुम शारदिक कडवी तुंबडी के शाक किसी एकान्त स्थानमें कि जहाँ द्वीन्द्रियादि प्राणियोंको संचरण नहीं—और जो अचित्त हो ऐसी भूमि पर परिष्ठापना कर आओ । और परिष्ठापना करके फिर प्रासुक एवणीय ४ ४२ दोषों से रहित शुद्ध अशन, पान खाद्य स्वाद्य रूप दूसरे आहार को लेकर भोजन कर लो ॥ सू० २ ॥

(तं माणं तुमं देवानुप्पिया ! इमं सालइयं जाव आहारेहि माणं तुमं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जहि तं गच्छणं तुमं देवानुप्पिया । इमं सालइयं एगंतमणावाए अचित्ते थंडिले पडिट्वेहि, परिट्वित्ता अन्नं फासुयं एसणिज्जं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेहि)

अथी डे देवानुप्रिय ! तमे आ शारदिक तुंबडीनां शाकने आशे नडि रोधी अकाणे तमाई मरषु पषु धरे नडि, माटे हैं देवानुप्रिय ! तमे आ आ शारदिक कडवी तुंबडीनां शाकनी केअपषु अकांत-निर्जन स्थानमां के तथां द्वीन्द्रियादि प्राणीओनु संचरषु डोय नडि अने ले अचित्त डोय अेवी भूमि उपर परिष्ठापना करी आवो अने परिष्ठापना कर्या जाई प्रासुक जेवणीय ४२ दोषोधी रहित शुद्ध अशन, पान, आद्य-स्वाद्य रूप अने आहार खावी ते आहार अहणु करी ॥ सू० " २ " ॥

पडिलेहेइ; पडिलेहिता तओ सालाइयाओ एगं विंदुगं गहेइ
 गहिता थंडिलंसि निसिरइ तो णं तस्स सालइयस्स तित्तकडु-
 यस्स बहुनेहावगाढस्सगंधेण बहूणि पिपीलिंगासहस्साणि पाउ-
 ञ्भूयाइं जा जहा य णं पिपीलिका आहारेइ सा तथा अकाले
 चेव जीवियाओ ववरोविज्जइ तएणं तस्स धम्मरुइस्स अणगा-
 रस्स इमेयारूवे अज्झरिथए ५ जाव ताव इमस्स सालइयस्स
 जाव एगंमि विंदुगंमि पक्खित्तंमि अणेगाइं पिपीलियासहस्साइं
 ववरोविज्जांति तं जइ णं अहं एयं सालइयं थंडिलंसि सव्वं
 निसिरामि तएणं बहूणं पाणाणं ४ बहकारणं भविस्सइ, तं
 सेयं खल्ल ममेयं सालइयं जावगाढं सयमेव आहारेत्तए, मम
 चेव एएणं सरीरेणं णिज्जाउत्तिकहु एवं संपेहेइ संपेहिता मुह-
 पोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहिता ससीसोवरियं कायं पमज्जेइ, तं
 सालइयं तित्तकडुयं बहुनेहावगाढं विलमिव पन्नगभूतंणं अ-
 प्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्टंसि पक्खिवइ, तएणं तस्स धम्मरुइस्स
 तं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तंतरेण
 परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउञ्भूया उज्जला जाव दुरहि-
 यासा, तएणं से धम्मरुची अणगारे अथामे अवले अवीरिए
 अपुरिसक्कारपरक्कमे आधारणिज्जमित्तिकहु आयारभंडगं एगंते
 ठवेइ ठवित्ता थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहिता दग्गसंथारगं
 संथारेइ संथारित्ता दग्गसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभि-
 मुहे संपलियं कनिस्सन्ने करयलपरिग्गहियं एवं वयासी-नसोऽत्थुं

णं अरहंताणं जाव संपत्ताणं, णमोऽत्थु णं धम्मघोसाणं थेराणं
 मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसगाणं, पुढ्विपि णं मए धम्म-
 घोसाणं थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावजीवाए
 जाव परिग्गहे, इयाणिपि णं अहं तेसिं चेव भगवंताणं अंतियं
 सव्वं पाणाइवाइं पच्चक्खामि जाव परिग्गहं पच्चक्खामि जाव-
 जीवाए, जहा खंदओ जाव चरिमेहिं उस्सामेहिं वोसिरामिति-
 कट्टु आलोइयपडिकंते समाहिपत्ते कालगए ॥ सू० ३ ॥

टीका—ततः खलु स धर्मरुचिरनगारो धर्मघोषेण स्थविरेणैवमुक्तः सन् धर्म-
 घोपस्य स्थविरस्यान्तिकत्वात्=समीपात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य सुभूमिभागो-
 धानाद् अदूरसामन्ते=नानिदूरे नातीसमीपे स्थण्डिलं प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य
 ततः=तस्माद् शरदिकात् तित्तरुडुकात् तुम्बकादेकं विन्दुकं गृह्णाति, गृहीत्वा
 स्थण्डिले=भूमौ 'निसिरइ' निस्तजति=परिष्ठापयति । ततः खलु तस्य शरदिकस्य

तएणं से धम्मरुई अणगारे इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसे णं
 थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अंनियाओ पडिनिकखमइ) वे
 धर्म रुचि अनगार धर्म घोष से इस प्रकार कहे जाने पर धर्मघोष के
 पास से चडे आये (पडिनिकखमित्ता सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ
 अदूर सामन्ते थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता तओ सालइयाओ एगं विंदुगं
 गहेइ, गहित्ता थंडलंसि निसिरइ, तो णं तस्स सालइयस्स तित्ता कडुप-

त एणं से धम्मरुई अणगारे इत्यादि

टीकार्थ—(त एणं) त्थारपथी

(से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेगं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स
 थेरस्स अंनियाओ पडिनिकखमइ)

ते धर्मरुचि अनगार धर्मघोषनी आ वात सांलणीने तेमनी पासेथी
 आपता रइया.

(पडिनिकखमित्ता सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसामन्ते थंडिलं पडिले-
 हेइ, पडिलेहित्ता तओ सालइयाओ एगं विंदुगं गहेइ, गहित्ता थंडलंसि निसिरइ,
 तो णं तस्स सालइयस्स तित्तरुडुयस्स बहुनेंहावगावस्स गंधेणं बहुणि.पि तीळिगा

तिक्तकटुकस्य तुम्बकस्य बहुसंभारसंश्रुतस्य स्नेहावगाढस्य गन्धेन बहूनि पिपीलिका-
सहस्राणि प्रादुर्भूतानि, या यथा च 'णं' तं=शारदिकस्य तिक्तकटुकं तुम्बकस्य
विन्दुकं पिपीलिका आहरति, सा तथा अकाले एव "जीवियाओ ववरोविज्जइ"
जीविताद् व्यपरोप्यते=प्राणिभ्यो वियुज्यते 'त्रियते' इत्यर्थः, ततः खल्ल=पिपी-
लिकाविराधनमवलोक्य धर्मरुचेरनगारस्यायमेतद्रूपः=वक्ष्यमाणस्वरूपः आध्या-
त्मिकः=५ आत्मगतः चिन्तितः=स्मरणरूपः, प्रायितः=अभिलाषरूपः, कल्पितः=
कल्पनारूपः, मनोगतः=अन्तः प्रकाशितः संकल्पो विचारः समुद्रपद्यत यदि तावदस्म-
शारदिकस्य यावत्-तिक्त तुम्बकस्य एकस्मिन् विन्दुके प्रसिन्ते सति, अनेकानि
पिपीलिकासहस्राणि 'ववरोविज्जति' व्यपरोप्यन्ते=प्राणिभ्यो वियुज्यते त्रियन्ते ।

स्स बहुनेहावडाढस्स गंधेणं बहूणि पिपीलिगासहस्साणि पाउब्भूयाइं
जा जहायणं पिपीलिका आहारेइ सा तथा अकाले चैव जीवियाओ ववरो
विज्जइ) और आकर के उन्होंने सुभूमिभाग उद्यान से न अतिदूर
और न अति समीप भूमि की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके फिर
उन्होंने उस शारदिक-तिक्तकटु-तुंबडी के शाक में से एक विन्दुमात्र
शाक लिया-और लेकर उसे भूमि पर डाल दिया। तो इतने में ही
शारदिक तिक्तकटुवी तुंबडी के उस बहुस्नेहावगाढ शाक की गंध से
वहाँ हजारों कीड़िया एकट्टी-एकत्रिल-हो गईं। उनमें से जिस कीड़िने
जिस समय उसे खाया वह कीड़ी उसी समय वहाँ मर गई। (तएणं
तस्स धम्मरुइयस्स अणगारस्स इमेयांरूवे अज्जत्थिए ५-जइ ताव इम-
स्स सालइयस्स जाव एगंमि विन्दुगंमि पक्खिचंमि अणेगाइं पिपीलिया

सहस्साणि पाउब्भूयाइं जा जहायणं पिपीलिका आहारेइ सा तथा अकाले चैव
जीवियाओ ववरोविज्जइ)

अने आवीने तेभल्ले सुभूमिभागे उद्यानथी वधारे इर पणु नडि अने
वधारे नञ्चक पणु नडि अथा स्थाने भूमिनी प्रतिलेखना करी, प्रतिलेखना
करीने तेअओ ते शारदिक-तिक्त कटुवी तुंबडीना शाकमांथी अेक टीपा अेटुं
शाक वीधुं अने लधने ते भूमिभागे उपरं नांथी दीधुं, नाथतांती अंथे अ
त्थां शारदिक तिक्त-कटुवी तुंबडीना धी तरला शाकनी सुवासथी उंढरे। डीडीओ
अेकडी अर्थ गछं, तेओमांथी अे अे डीडीअं ते शाकने अंधुं उंठुं ते ते तरल
त्थां भरी गछं.

तएणं तस्स धम्मरुइयस्स अणगारस्स इमेयांरूवे अज्जत्थिए ५ जइ ताव इम-
स्स सालइयस्स जाव एगंमि विन्दुगंमि पक्खिचंमि अणेगाइं पिपीलिया सहस्सां

तत्=तस्माद् यदि खल्वहमेतद् शारदिकं 'थंडलंसि' स्यण्डिले=भूमौ सर्वे
'निसिरामि' निवृजामि=परिष्ठापयामि, 'तोंण' तर्हि खलु बहूनां प्राणानां=
प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः=प्राणवन्तस्तेषां, तथाभूतानां जीवानां तत्=तस्माद्
भेयः=श्रेयस्करं खलु ममेदं शारदिकं तिक्तकटुकालाक्षुकं यावत्-स्नेहावगाढं स्वय-
मेव आहारयितुं=भोक्तुम्, ममैव 'एएण' एतेन=तिक्ततुम्बकाहारेण 'सरीरेण'
सरीरं खलु 'णिज्जाउ' निर्यातुं=निर्गच्छतु नश्यतु 'त्तिकडु' इति कृत्वा इति
मनसि निषाय एवम्=अनेन प्रकारेण संप्रेक्षते=पुनः पुनर्विचारेण शरीरनिर्याणं कर्तुं

सहस्राहं बवरोविज्जंति, तं जइणं अहं एयं सालइयं थंडलंसि सव्वं
निसिरामि तएणं बहुणं पाणाणं ४ वह कारणं भविस्सइ तं सेयं खलु
ममेयं सालइयं जाव गाढं सयमेव आहारेत्तए) इस तरह पिपीलिकाओ
को विराधना देखकर धर्मरुचि अनगार को इस प्रकार आध्यात्मिक
यावत् मनोगत संकल्प-विचार हुआ-यहां संकल्पके चिन्तित, प्रार्थित,
कल्पित इन तीन विशेषणों को ग्रहण कर ने के निमित्त सूत्र में ५ का
अंक दिया है। जब इस शारदिक तिक्त कडवी तुंबडी की शाक की
एक बिन्दु मात्र जमीन पर डालने पर अनेक पिपीलिका सहस्र प्राणों
से वियुक्त हो जाती हैं तो मैं जब इस शारदिक तिक्त कडवी तुंबी के
शाकको पूरुरूपमें जमीन पर परिष्ठापित कर दूंगा तो अनेक प्रणियों ४
के वह विराधना का कारण होगा इसलिये मुझे उचित है कि मैं ही
इस शारदिक तिक्त कडवी तुंबडी के इस बहुत मसालेदार एवं स्नेहा-
वगाढ बहुत घृतसे युक्त शाक को स्वयं आहार कर जाऊँ। (मम च्वेव
एएणं सरीरेणं णिज्जाउत्तिकडु एवं संपेहेइ संपेहिस्ता मुहपोत्तियं २

बवरोविज्जंति, तं जइणं अहं एयं सालइयं थंडलंसि सव्वं निसिरामि तएणं बहुणं
पाणाणं ४ वह कारणं भविस्सइ तं सेयं खलु ममेयं सालइयं जाव गाढं सयमेव आहारेत्तए

आ प्रमाळे ड्रीडीओनी विराधना जेधने धर्मरुचि अनगारने आ नतने।
आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प-विचार-उद्बलन्थे। अर्हो संकल्पना चिन्तित,
प्रार्थित, कल्पित आ त्रले विशेषणानां अहणु माटे सूत्रमां ५ ने। अंक आप
'बामां' आन्थे छे-के अ्यारे आ शारदिक तिक्त कडवी तूंबडीना शाकना इकत
अेक डीयाने पृथ्वी उपर नाभवाथी घली ड्रीडीओ उअरे प्राणोधी वियुक्त
थर्ध अय छे त्यारे हुं शारदिक कडवी तूंबडीना अथा शाकने पृथ्वी उपर
नाभीश त्यारे ते अनेक प्राणीओ ४ नी विराधनानुं कारण थरे। अथी मने
अेअ योअ्य लागे छे के हुं आ शारदिक तिक्त कडवी तूंबडीना आ सरस
भआआवाजा अने धी तरता शाकने योते अ आर्धं नठे।

निश्चिनुते । संप्रेक्ष्य- ' मुहपोत्तियं ' मुखपोत्तिकां=सदोरकमुखवस्त्रिकां रजोहरणं । प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य ' ससीसोवरियं ' सशीपौपरिकं=चरणतलाद् मस्तकोपरि-
भाग्यन्तं कायं=शरीरं, ' पमज्जेइ ' प्रमार्जयति, प्रमार्ज्यं तद् शारदिकं तिक्तकडुकं
बहुसंभारसंभृतं स्नेहावगाढं बिलमिव पन्नगभूतेन आत्मना सर्वं शरीरकोष्ठके=उदरे
प्रक्षिपति मुखस्य पार्श्वद्वयस्पर्शरहितमाहारयतीत्यर्थः । ततः खलु तस्य धर्मरूपेस्तद्

पडिलेहेइ, पडिलेहिता ससीसोवरियं कायं पमज्जेइ पमज्जिता तं सा-
लइयं तिक्तकडुयं बहुनेहावगाढं बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं
सरीरकोट्टंसि पक्खिवइ) मेरा ही शरीर इस तिक्त कडु तुंबडी के
आहार से नाश होवे । इस प्रकार उन्होंने अपने मनमें बार २ सोचा
सोचकर अपने शरीर के निर्माण करने का उन्होंने निश्चय कर लिया ।
निश्चय करने के अनन्तर सदोरक मुखवस्त्रिका एवं रजोहरण इनकी
उन्होंने प्रतिलेखना करके फिर वे चरण तल से लेकर मस्तकोपरिभाग
पर्यन्त तक के समस्त अपने शरीर की प्रमार्जना करके उन्होंने उच्च
शारदिक तिक्त कडुवो तुंबडी के बहुत मसाला से युक्त एवं स्नेहावगाढ
बहुत घी से युक्त समस्त शाक का आहार कर लिया-जिस प्रकार
सर्प जब बिल में प्रविष्ट होता है तब बिल के दोनों पार्श्वभागों को स्पर्श
नहीं करता हुआ उसमें सोचा प्रविष्ट हो जाता है-उसी तरह वह
शाक रूप सर्प भी मुख रूप बिल के दोनों पार्श्वभागों को स्पर्श नहीं
करता हुआ सीधा गले से होकर पेट में चला गया । (तएणं तरस

(मम चेव एएणं सरीरेणं णिज्जाउत्ति कट्टइ एवं संपेहेइ, संपेहिता मुहपो-
त्तियं २ पडिलेहेइ, पडिलेहिता ससिसोवरियं कायं पमज्जेइ पमज्जिता तं
सालइयं तिक्तकडुयं बहुनेहावगाढं बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं, सरीर
कोट्टंसि पक्खिवइ)

भाई शरीर ७ आ तिक्त कडुवी तुंबडीना आहारशी नष्ट थायं । आ रीते
तेण्णे पोताना भनभां वारंवार विचार करीं । विचारिनें पोताना शरीरने नष्ट
करवाने तेमण्णे भङ्गम विचार कयां भाइ तेण्णे सहारक सुभवस्त्रिका अने रजो-
हरणुनी तेमण्णे प्रतिक्षेपना करी । प्रतिक्षेपना करीने तेमण्णे पगना तणियाथी
भाडीने भस्तक सुधीना पोताना आभा शरीरनी प्रमाज्जना करी त्यारे तेमण्णे
ते शारदिक तिक्त कडुवी तुंबडीना सरस मसालावाणा अने उपर घी तरता
अधा शाकने आहार करी लीघा । जेवी रीते साय न्यारे इरभां प्रवेशे छे
त्यारे इरना अने पार्श्वलागने स्पर्श कयां वगर तेभां सीधा प्रविष्ट थर्ध
नथ छे-तेमण्णे ते शाक इपी साय पणु सुभ इपी इरना अने पार्श्वलागने
स्पर्शयां वगर सीधुं गजानां थर्धने पेटभां नर्दु रद्धुं ।

आहारिकं यावत्-स्नेहावगाढम् आहारितस्य=भुक्तवतः, सतो मुहुर्तान्तरेण परिण-
म्यमाने=आहारे परिणामं प्राप्ते सति शरीरे वेदना-प्रादुर्भूता, सा कीदृशी? त्याह-
उज्ज्वला=तीव्रा, यावद् 'दुरधियासा' दुरध्यासा=दुरधिसहा-असह्येत्यर्थः । ततः
खलु स धर्मरुचिरनगारोऽप्यामा, हीनपराक्रमः, अवलः=मनोबलरहितः अवीर्यः=
इतोत्साहः अपुरुषकारपराक्रमः,=पुरुषार्थहीनः, 'अधारणिज्जमितिकट्टु' अधार-
णीयमिति कृत्वा-धारयितुमशक्यमिदं शरीरमिति मनसि विचार्य 'आयारमंडगं'
आचारभाण्डकम्-आचाराय आचारपालनार्थं भाण्डकं=भाण्डोपकरणं वस्त्रपात्रादिक-

धम्मरुइस्स तं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तं
त्तरेणं परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जलं जाव दुर-
हियासा-तएणं से धम्मरुई अणगारे अथामे अवले अवीरिए अपुरिस-
क्कारपरकमे अधारणिज्जमिति कट्टु आयारमंडगं एगंते ठवेइ, ठवि-
त्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ, पडिलेहिता दम्भसंधारगं संधारेइ, संधारित्ता
दम्भसंधारगं, दुरुहह, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियं कनिसन्ने कर-
यल परिग्गहियं एवं वयासी) शाक उन धर्मरुचि अनगार के पेट में
पहुँचते ही एक मुहुर्त के बाद जब वह पचने लगा तब उनके शरीर
में उज्ज्वल यावत् दुरधियासा वेदना प्रकट हुई । इस से वे धर्मरुचि
अनगार पराक्रम से हीन, मनोबल से विहीन, इतोत्साह होकर पुरु-
षार्थ रहित बन गये । यह शरीर अब धारण करने से अशक्य हो रहा
है ऐसा जब उन्होंने प्रतीत होने लगा तब उन्होंने अपने आचारभाण्डक
प्रचविध आचार पालने के लिये जो - वस्त्र - पात्रादिक थे उनको
-एकान्त में रख दिया-रखकर फिर उन्होंने ने संस्तारकभूमि की

(तएणं तस्स धम्मरुइस्स तं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारियस्स समा-
णस्स मुहुत्तं तरेणं परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जलं जाव
दुरधियासा-तएणं से धम्मरुई अणगारे अथामे, अवले अवीरिए अपुरिसक्कारपर-
कमे अधारणिज्जमिति कट्टु आयारमंडगं एगंते ठवेइ, ठविता थंडिल्लं पडि-
लेहेइ, पडिलेहिता दम्भसंधारगं संधारेइ, संधारित्ता दम्भसंधारगं दुरुहह,
दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियं कनिसन्ने करयलपरिग्गहियं एवं वयासी)
शाक ते धर्मरुचिना पेटमां पडेयंतां न्ने एक मुहुर्तं पथी न्यादे तेजुं
पायन शइ थयुं त्यादे तेमना शरीरमां उज्जल यावत् दुरधियासा वेदना धवा
मांसी. तेथी ते धर्मरुचि अनगार पराक्रम वगार, मनोअण वगार इतोत्साहा
अधर्मा पुरुषार्थं वगार गनी गया. इवे आ शरीर टकं अशक्य थध पड्युं
ठे अवी न्यादे तेमाने प्रतीति थवा लागी त्यादे तेमने योताना आचार

मित्यर्थः, एकान्ते रथापयति, रथापयित्वा स्वच्छिन्नं=संस्तारकभूतिं प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्यं दर्भसंस्तारकं 'संधारेद्' संस्तृणाति=आस्तृत् करोति संस्तृय, दर्भसंस्तारकं दूरोदति=आरोहति, दूरुद्ध पौरस्त्यागिमुत्तः=पूर्वदिशिमुत्तः, 'संपलियं-कनित्तने' संपल्यङ्क निषण्णः=पद्मासनसंनिविष्टः, करतलपांशुर्हृत्=संयोजितहस्त-तलद्वयं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीह=स्वमनस्युक्तवान्,

“ नमोऽस्त्युणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं,—

—णमोऽस्त्युणं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्ममायरियाणं धम्मोवएसयाणं ” नमोऽस्तु खलु अरिहंथो भगवत्तुथो यावत् संनाप्तंभ्यः, नमोरेतु खलु धर्मघोषेभ्यः स्थविरेषु मम धर्माचार्येभ्यो धर्मोपदेशकेभ्यः, पूर्वदिशि दीपाग्रहणकालेऽपि खलु मया धर्मघोषाणां स्थविराणामन्तिके सर्वैः माणातिपातः प्रत्याख्यातो यावज्जीवं 'यावत् परिग्रहः' अत्र यावच्छब्देन-सर्वो वृषानादः सर्वमदत्तादानं सर्वं मैथुनं च प्रत्याख्यातम्, तथा-सर्वैः परिग्रहः प्रत्याख्यातः। इदानीमपि खलु अहं तेवामेव भगवतामन्तिके सर्वैः माणातिपातं प्रत्याख्यामि यावत् परिग्रहं प्रत्याख्यामि याव-

प्रतिलेखना की प्रतिलेखना करके फिर उसके ऊपर उन्होंने दर्णसंस्तारक को बिछाया-बिछाकर फिर वे उसपर बैठकर फिर पूर्वदिशा की ओर झुककर पर्यङ्कासन से उस पर विराजमान हो गये विराजमान होकर उन्होंने अपने दोनों हाथों को जोड़ा और मस्तक पर उसकी अंजलि रखकर इस प्रकार अपने मन ही मन वे कहने लगे— (नमोऽस्त्युणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं, णमोऽस्त्युणं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्ममायरियाणं धम्मोवएसयाणं पुर्वदिशि णं तए धम्मघोसाणं थेराणं अतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव जीवाए जाव परिग्गहे, इयाणि पि अहं तेस्सि चैव अगवंताणं अंतियं सव्वं पाणाइवाए पच्चक्खाणि जाव

सांकेतिके-नम्र पात्र वगैरेने ओकंतमां भूमी दीधां, भूया गाह तेज्येभ्ये संस्तारकं लुभित्वा प्रतिक्षेपना करी, प्रतिक्षेपना करीने तेनी उपर तेभले हलं संस्तारकं करी हलं संस्तारकं पाथरीने तेज्ये तेनी उपर जेस्तीने पूर्वदिशा तरहे मुण्ण करीने पथं'कासनर्थां तेनी उपर विराजमान थरं गथा, विराजमान थरने तेज्येभ्ये पोताना णने छायेने जेउया अने तेमनी अंजली णतापीने मस्तकं उपर भूमी अने पोताना मनमां जे उडेवा दाग्या.

(नमोऽस्त्यु णं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं णमोऽस्त्युणं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्ममायरियाणं धम्मोवएसयाणं पुर्वदिशि णं तए धम्मघोसाणं थेराणं अतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव जीवाए जाव परिग्गहे, इयाणि पि अहं तेस्सि चैव

ज्जीवं, यथा—स्कन्दकः=स्कन्दकवत् यावच्चरमै-रुच्छ्रासैः, 'वोसिरामितिकद्दु' व्युत्सृजामि=शरीरं परित्यजामि' इति कृत्वा 'आलोइय पडिकंते' आलोचितप्रति क्रान्तः=पूर्वकृतं यदतीचारजातं तदालोचितं, पुनरकरणप्रतिज्ञया प्रतिक्रान्तं येन स तथाभूतः समाधिप्राप्तः=आत्मसमाधियुक्तः कालगतः=मरणं प्राप्तः ॥सू०३॥

मूलम्—तएणं ते धम्मघोसा थेरा धम्मरुइं अणगारं चिरं
गयं जाणित्ता समणै निग्गंथे सद्दवेति सद्दवित्ता एवंवयासी

परिग्रहं पञ्चकखामि जाव जीवाए जहा खंदओ जाव चरिमेहिं उस्सा
सेहिं वोसिरामित्ति कद्दु आलोइय पडिकंते समाहिपत्ते कालगए)
यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए अरिहंन भगवंतो के लिये
मेरा नमस्कार हो—धर्मोपदेशक मेरे धर्माचार्य श्री धर्मघोषस्थविर के
लिये मेरी नमस्कार हो मैंने पहिले दीक्षा ग्रहण के समय उन धर्मघोष
स्थविर के समीप समस्त प्राणातिपात, समस्त मृषावाद, समस्त अद-
त्तादान, समस्त मैथुन तथा समस्त परिग्रह जीवन पर्यन्त प्रत्याख्यात
कर दिया है। अब भी मैं उन्हीं भगवंतो के समक्ष समस्त प्राणातिपात
यावत् समस्त परिग्रह का यावज्जीव प्रत्यख्यात करता हूँ। यावत्
अन्तिम श्वासोत्क स्कन्दककी तरह इस शरीरका परित्याग करता हूँ।
इस प्रकार मन ही मन कह कर वे धर्मरुचि अनागार आलोचित प्रति-
क्रान्त बनकर आत्मसमाधिमें तल्लीन होते हुए मरण प्राप्त हुवे ॥सू०३॥

भगवंताणं अंतियं सव्वं पाणाइवायं पञ्चकखामि जाव परिग्रहं पञ्चकखामि जाव
जीवाए जहा खंदओ जाव चरिमेहिं उस्सासेहिं वोसिरामित्ति कद्दु आलोइयपडि-
कंते समाहिपत्ते कालगए)

यावत् सिद्धिगति भेजवेदा अरिहंत लगवंतोना भाटे भाश नमस्कार छे.
धर्मोपदेशक भाश धर्मोपाय श्री धर्मघोष स्थविरना भाटे भाश नमस्कार छे.
पडेवां दीक्षा अहणु करती वभते मे ते धर्मघोष स्थविरनी पासि समस्त प्राण
तिपातो, समस्त मृषावादो, समस्त अदत्तादानो समस्त मैथुनो तथा समस्त
परिग्रहोतुं प्रत्याभ्यान कथुं हतुं. अत्यारे पणु ते ज लगवंतोनी साथे समस्त
प्राणातिपात यावत् समस्त परिग्रहोतुं यावज्जीव प्रत्याभ्यान कई छुं. एव-
नना छेक्का थ्यास सुधी स्कन्दकनी जेभ आ शरीरने त्याग कई छुं. आ रीते
पोताना मनमां ज कडीने ते धर्म-रुचि अनगार आलोचित प्रतिकंत थधने
आत्मसमाधिमां तद्वीन थतां मरण पाभ्या. ॥ सूत्र " ३ " ॥

—एवं खलु देवाणुप्पिया ! धम्मरुई अणगारे मासखमण-
 पारणगंसिं सालइयस्स जाव गाढस्सणिासरणट्टयाए बहिया
 निग्गए चिरगए तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! धम्म-
 रुइस्स अणगारस्स सच्चओ समंता मग्गणगवेसुणं करेह,
 तएणं ते समणा निग्गंथा जाव पडिसुणेति, पडिसुणिता
 धम्मघोसाणं थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनि-
 क्खमित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सच्चओ समंता मग्गण-
 गवेसुणं करेमाणा जेणेव थंडिल्लं तेणेव उवागच्छंति उवा-
 गच्छित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं
 जीवविप्पजडं पासंति पासित्ता हा हा अहोअकज्जमितिकट्टु
 धम्मरुइस्स अणगारस्स परिनिव्वाणवत्तिं काउस्सग्गं करेति
 करित्ता धम्मरुइस्स आचारभंडगं गेणहंति भेण्हित्ता जेणेव
 धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता गमणा-
 गमणं पडिक्कमंति पडिक्कमित्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्हे
 तुब्भं अंतियाओ पडिनिक्खमामो२ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स
 परिपेरंतेणं धम्मरुइस्स अणगारस्स सच्च जाव करेमाणे जेणेव
 थंडिल्ले तेणेव उवा०२ जाव इहं हव्वमागया, तं कालगए
 णं भंते ! धम्मरुई अणगारे इमे से आचारभंडए, तएणं
 ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छंति गच्छित्ता
 समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य सदावेति सदावित्ता एवं वयासी
 —एवं खलु अज्जो ! मम अंतेवासी धम्मरुची नाम अणगारे

पगइभइए जाव विणीए भासं मासेणं अणिविखत्तेणं तक्के-
 कम्मणेणं जाव नागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविट्ठे, तएणं
 सां नागसिरी माहणी जाव निक्षीरइ, तएणं से धम्मरुई
 अणगारे अहापज्जत्तितिकहु जाव कालं अणवकंखेमाणे वि-
 हरति, से णं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामन्नप-
 रियागं पाउणित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे
 कालं किच्चा उहुं सोहम्मजाव तव्वहसिंके महाविमाणे देव-
 त्ताए उव्वक्के, तत्थ णं अजहण्णसणुक्कोसेणं तेत्तीसं साग-
 रोवमाइं ठिई पक्कत्ता, तत्थ धम्मरुइस्सवि देवस्स तेत्तीसं
 सागरोवमाइं ठिई पणत्ता से णं धम्मरुई देवे ताओ
 देवलोमाओ जाव रुहादिदेहे वासे तिज्झिहिइ तं धिग्गथुणं
 अज्जो ! णागसिरीए माहणीए अधत्ताए अपुत्ताए जाव णि
 वोलियाए जाए णं तहारुवे साहू धम्मरुई अणगारे मास-
 खमणपारणंति सालइएणं जाव गाढेणं अकाले चेव जीवि-
 याओ ववरोविए ॥ सू० ४ ॥

टीका—' तएणं ते ' इत्यादि । ततः खलु=इतश्च ते धर्मघोषाः स्थविरा
 धर्मरुचिमतनगरं चिरं गतं बहुकालतो गतं ज्ञात्वा श्रमणान् निर्घन्थान् शब्दयति,

तएणं ते धम्मघोसा थेरा इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इत्येके वाद् (ते धम्मघोसा थेरा) उन-धर्मघोष
 स्थविरने(धम्मरुई अणगारे) धर्मरुचि मतनगरं को (चिरं गतं जाणित्ता)
 बहुत देर के गये हुए जानकार (स्रमणे निर्गन्थे सुदावेति, सदाविन्ता एवं

तएण ते धम्मघोसा थेरा इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्थात्थात् (ते धम्मघोसा थेरा) ते धर्मघोष स्थविर (धम्म-
 रुई अणगारे) धर्मरुचि मतनगरने (चिरं गतं जाणित्ता) बहु कालतधी गंडार
 गयेसा लक्ष्मीने

शब्दयित्वा, एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादिषुः=उक्तवन्तः, एवं खलु हे देवानु-
प्रियाः । धर्मरुचिरनगारो मासखमणपारणके शारदिकस्य तिक्तकटुकतुम्बकस्य
यावत्-स्नेहावगाढस्य ' गिसिरणट्टयाए ' निस्सजनाधं बहिर्निर्गतश्चिरगतः=तस्मिन्
गते सति बहुतरः कालो व्यतीत इत्यर्थः । तत्-तस्माद् गच्छत खलु यूयं हे देवानु-
प्रियाः । धर्मरुचेरनगारस्य सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेषणं=सम्यगन्वेषणं कुरुत ।
ततः खलु ते श्रमणा निर्ग्रन्था यावत् प्रतिचूषन्ति=तथा करिष्यामीत्युक्त्वा तामाज्ञां
स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य धर्मघोषाणां स्थविराणामन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनि

वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! धम्मरूई अणगारे मासखमणपारण-
गंसि सालइयस्स जाव गाढस्स गिसिरणट्टयाए बहिया निग्गए-चिरगए,
तं गच्छह णं तुम्भे देवाणुप्पिया ! धम्मरूइयस्स अणगास्स सव्वओ
समंता गवेसणं करेह) श्रमण निर्ग्रन्थो को बुलाया । बुलाकर उनोने
ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो ! धर्मरुचि अनगार आज मासखमण की
पारणा के दिन शारदिक तिक्त कटुवी तुम्बडी का बहुत संभार संश्रुत
शाक कि जिसके ऊपर छूत तैर रहा था लाये थे-मैंने उसे परिष्ठापन के
लिये उन्हें आज्ञा दिया सो वे उसे परिष्ठापन करने के लिये यहाँ
से बाहिर चले गये-गये उन्हें बहुत देर हो गई-वे अभीतक नहीं
आये इसलिये हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और धर्मरुचि
अनगार की सब तरफ चारों दिशाओं से मार्गणा एवं गवेषणा करो ।
(तएणं ते समणा निग्गंथा जाव पडिस्सुणेंति, पडिस्सुणित्ता धम्मघोसाणं

(समणे निग्गथे सद्धानेति सद्धानित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया !
धम्मरूई अणगारं मासखमणपारणगंसि सालइयस्स जाव गाढस्स गिसिरणट्टयाए
बहिया निग्गयाए-चिरगए, तं गच्छह णं तुम्भे देवाणुप्पिया ! धम्मरूइस्स अण-
गारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेह)

श्रमणु निर्ग्रन्थोने ओलाव्या. ओलावीने तेभने आ प्रभाणु इधुं-डे डे
देवानुप्रियो ! धर्मरुचि अनगार आने मास खमणुनी पारखाना द्विसे शार-
दिक तिक्त कटुवी तुम्बडीनु सरस वधादेणु उपर धी तरतु शाक आहार माटे
लाव्या डता. तेओने मे प्रतिष्ठापाननी आज्ञा आपी छे, तेओ परिष्ठापन
माटे अहीधी अहार गया छे. तेओने अहार गथाने अणु व वपत्त थयो छे,
डल तेओ आव्या नथी. ओथी डे देवानुप्रियो ! तमे डोडो ओओ अने
धर्मरुचि अनगारनी ओअरे मार्गणा तेभन गवेषणा करे.

(तएणं ते समणा निग्गंथा जाव पडिस्सुणेंति, पडिस्सुणित्ता धम्मघोसाणं
हा २१

काम्य धर्मरुचेरनगारस्य सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेषणं कुर्वन्तो यत्रैव स्थण्डिलं= स्थलं धर्मरुचेरनगारस्य कालकरणस्थानं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य धर्मरुचेरनगारस्य शरीरकं 'निष्पाणं' निष्पाणं=प्राणरहितं, 'निच्चेष्टं' निश्चेष्टं=वेष्टारहितं 'जवविप्पजदं' जीव विप्रत्यक्तं=जीवहीनं पश्यन्ति, दृष्ट्वा हा ! हा ! अहो ! इति खेदे, 'अकज्जं' अकार्यम्=अनिष्टं जातं यद् धर्मरुचिनगारी मृतः, 'तिकट्टु'

बेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमिन्ता धम्मरुहस्स-अणगाहस्स सन्वाओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिल्लं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिन्ता धम्मरुहस्स अणगारस्स सरीरगं निष्पाणं निच्चेष्टं जीवविप्पजदं पासंति, पासिन्ता हा हा अकज्जमिस्सि कट्टु धम्मरुहस्स अणगारस्स परि निव्वाणवत्तिथं काउस्सग्गं-करंति) उन निर्यन्थ अमणो ने अपने धर्माचार्य की इस आज्ञा को यावत् स्वीकार कर लिया । और स्वीकार करके फिर वे धर्मघोष स्थविर के पास से निकले निकल कर उन्होंने धर्मरुचि अनागार की चारों दिशाओंमें सब प्रकार से मार्गणा गवेषणा की । इस तरह मार्गण गवेषणा करते हुए जहाँ वह स्थण्डिल था-धर्मरुचि अनागार की मृत्यु होने का स्थान था-वहाँ आये वहाँ आकर के उन्होंने धर्मरुचि अनगार के शरीर को प्राणरहित, चेष्टो रहित और जीव रहित देखा । देखकर के सहसा उनके मुख से हाय हाय यह खेद सूचक शब्द निकल पड़ा वे कहने लगे यह बड़ा अनिष्ट हुआ-जो धर्मरुचि अनागार का देहावसान हो गया ।

बेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमिन्ता धम्मरुहस्स अणगारस्स सन्वाओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिल्लं तेणेव उवागच्छंति उवागच्छिन्ता धम्मरुहस्स अणगारस्स, सरीरगं निष्पाणं निच्चेष्टं जीव विप्पजदं पासंति, पासिन्ता हाहा अकज्जमिस्सि कट्टु धम्मरुहस्स अणगारस्स परिनिव्वाणवत्तिथं काउस्सग्गं करंति)

ते निर्यन्थ अमणो चोत्ताना धर्मोत्थर्यानी आज्ञाने स्वीकारी वीधी अने स्वीकारिने तेज्जो धर्मघोष स्थविरानी पासोथी नीकणीने धर्मरुचि अनगारणी अधी रीते चोत्तेर मार्गणा तेभञ्ज गवेषणा करवा लाग्या. आ रीते मार्गणु गवेषणु करतां न्यां ते स्थण्डिल इतुं-धर्मरुचि अनगारना मृत्युतुं स्थान इतुं त्यां आव्या. त्यां आवीने तेज्जोचो धर्मरुचि अनगारना शरीरने निष्पाणु निश्चेष्ट अने निर्लव जेथु. आ दस्य जेतानी साथे च तेज्जोना सुभथी डाय ! डाय ! ना जेद सुयके शण्डो नीकणी पड्या. तेज्जो कडेवा लाग्या डे आ अडु च जोट्टुं थयुं छे-धर्मरुचि अनगारतुं देहावसान थरं गथुं छे. आ

इतिकृत्वा—इतिखेदं कृत्वा धर्मरुचेरनगारस्य 'परिनिव्वाणवृत्तियं' परिनिर्वाण-
प्रत्ययिकं=परिनिर्वाणं मरणं तत्र यन्मृतशरीरस्य परिष्ठापनं तदपि परिनिर्वाणमेव
तदेव प्रत्ययोद्देश्यस्य स परिनिर्वाणप्रत्ययिकः तं तथा, मृतपरिष्ठापननिमित्तकमि-
त्यर्थः कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, कृत्वा धर्मरुचेरनगारस्याऽऽचारभाण्डकं=वस्त्रपात्रादिकं
गृह्णन्ति, गृहीत्वा यत्रैव धर्मघोषाः स्थविरास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य गमनागमनम्=
ईर्यापथिकीं प्रतिक्रामन्ति, प्रतिक्राम्येवमवादिषुः एवं खलु हे स्वामिन् । वयं युष्मा-
कमन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामामः=प्रतिनिर्गताः, प्रतिनिष्क्रम्य सुभूमिभागस्योद्यानस्य

इस प्रकार कहकर उन्होंने वहीं पर मृत शरीर को वोसराने रूप कायो-
त्सर्ग किया । (करिन्ता० उवागच्छ०) कायोत्सर्ग करके फिर उन्होंने
उन धर्मरुचि अनागार के आचार भांडको को वस्त्र पात्रादिकों को—उठा
लिया—उठाकर वे जहां धर्मघोष स्थविर थे—वहां आये (उवागच्छित्ता
गमणागमनं पडिक्कमंति, पडिक्कमिन्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्हे-
तुवमं अंतियाओ पडि निक्खमामो २ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स परिपे-
रंतेणं धम्मरुइस्स अगगारस्स सव्व जाव करेमाणे जेणेव थंडिल्ले तेणेव
उवा० २ जाव इहं हव्वमागया, तं कालगएणं भंते ! धम्मरुई अगगारे
इमे से आयारभंडए—तएणं ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं
गच्छति गच्छित्ता समणे निग्गंथे निग्गंथोओ य सदावेति—सदावित्ता
एवं वयासी) आकर के उन्होंने ईर्यापथिक प्रतिक्रमण किया ।
प्रतिक्रमण करके फिर इस प्रकार वे कहने लगे हे स्वामिन् ! हम लोग
आपके पास से यहां से गये—और जाकर सुभूमिभाग उद्यान की चारों

रीते कहीं तेमण्णु त्यांञ्च मृत शरीरने वोसरवा इय कायोत्सर्गं कथो.
(कारन्ता० उवागच्छ०) कायोत्सर्ग करीने तेओओ धर्मरुचि अनगारना आचार
भांडकाने तेमण्णु वओने लधंढीधा अने लधने नया धर्मघोष स्थविर हुता त्यां आओया.
(उवागच्छित्ता गमणागमनं पडिक्कमंति, पडिक्कमिन्ता एवं वयासी—एवं
खलु अम्हे तुवमं अंतियाओ पडिनिक्खमामो २ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स
परिपरंतेणं धम्मरुइस्स अगगारस्स सव्व जाव करेमाणे जेणेव थंडिल्ले
तेणेव उवा० जाव इहं हव्व-मागया तं कालगएणं भंते ! धम्मरुई अगगारे
इमे से आयारभंडए तएणं त धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छति
गच्छित्ता समणे निग्गंथे निग्गंथोओ य सदावेति—सदावित्ता एवं वयासी)
त्यां आओने तेमण्णु ईर्यापथिक प्रतिक्रमण्णु कथुं. प्रतिक्रमण्णु करीने तेओ
आ भ्रमाण्णु कडेवा लाओया के हे स्वामिन् ! अमे लोकं अड्डीथी आपनी
पासेथी गया अने अंधने सुभूमिभाग उद्याननी ओअर इरतां इरतां धर्मरुचि

‘परिपेरंतेण’ परिपर्यन्तेन=चतुर्दिक्षु परिभ्रमन्तो धर्मरुचेरनगारस्य ‘सञ्चजाव’ सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेपणं कुर्वन्तो यत्रैव स्यण्डिलं तत्रैवोपागच्छामः, उपागत्य यावद् इह हव्यमागताः स कालगतः खलु हे भदन्त ! धर्मरुचिरनगारः, इमानि ‘से’ तस्य, आचारभाण्डकानि । ततः खलु ते धर्मघोषाः स्थविराः ‘पुञ्जगए’ पूर्वगते=दृष्टिवादान्तर्गतश्रुताधिकारविशेषे उपयोगं गच्छन्ति=लग्नयन्ति यदा धर्मरुचिराहारमानेतुं नगर्यां गतस्तदा कस्य गृहे गतः ? केनेदमाहारं दत्तं’ मित्यादि ज्ञातुं स्वकीयोपयोगं नयन्तीत्यर्थः, गत्वा-स्वकीयोपयोगं लग्नयित्वा, श्रमणान् निर्ग्रन्थान् निर्ग्रन्थीश्च शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु हे आर्याः । ममान्तेवासी=शिष्यः, धर्मरुचिर्नामानगारः ‘पगइमदए’ प्रतिकभद्रकः=प्रकृत्या

दिशाओं में फिरते २ धर्मरुचि अनगार की सर्व प्रकार से मार्गण, गवे-पणा करने लगे । मार्गणा, गवेपणा करते हुए हम लोग फिर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ धर्मरुचि अनगार का शय पड़ा हुआ था वहाँ से अभी २ हम लोग आ रहे हैं । हे भदन्त ! वे धर्मरुचि अनगार कालगत हो गये हैं—ये उनके आचार भाण्डक बख्त पात्र हैं । इस के बाद उन धर्मघोष स्थविर ने दृष्टि बाद के अंतर्गत श्रुताधिकार विशेष में अपना उपयोग लगाया—तो उन्हें यह ज्ञात हो गया कि जब धर्मरुचि आहार लेने के लिये नगरी में गये तो वे किसके घर गये, किस ने यह आहार उन्हें दिया इत्यादि । अपने उपयोग से इस बात को जानकर उन्होंने निर्ग्रन्थ श्रमणों और निर्ग्रन्थ श्रमणियों को बुलाया और बुलाकर उनसे ऐसा कहा—(एवं खलु अज्जो मम अंतेवासी, धम्मरुई, णाम

अनगारानी णधी रीते मार्गण्ण गवेपण्ण करवा लाब्ध्या. मार्गण्ण तेमञ् गवे-पण्ण करतां असे वोडो ते ञ्ज्याञ्जे पडोन्था न्थां धर्मरुचि अनगारतुं मउडुं पउयुं उतुं. असे वोडो अत्यारे त्याथी ञ् आनी रह्हा छीञ्जे. डे लदंत ! ते धर्मरुचि अनगार भरखु पाभ्या छे. तेज्जोश्रीना आ आत्थार लांडके वस्त्रपात्रो छे. त्यारपंधी ते धर्मघोष स्थविरि दृष्टिवादाना अंतर्गत श्रुताधिकार विशेषमां पोतानो उपयोग लगाब्धो. तेमांथी तेज्जोने आ वातनी ञ्खु अथ डे न्त्यारे धर्मरुचि आहार लाववा साटे नगरीमां गया उता, त्यारे तेज्जो डेना घेर गया उता, आ आहार तेमने डोले आब्धो उतो वजेरे. पोताना उपयोगथी आ अधी विगत ञ्खुने तेमखे निरर्थ श्रमण्णो अने निरर्थ श्रमणीज्जोने पोतानी पासि पोदावी अने पोदावीने तेमने आ प्रमाखे कहुं डे—

(एवं खलु अज्जो मम अंतेवासी, धम्मरुई णाम अनगारे पगइमदए जाव

स्वभावेन भद्रकः-ज्ञान्तः, यावत्-यावत् करणादिदं द्रष्टव्यम्-पगइ उवसंते, पगइ-पयणु कोहमाणमायालोहे, मिउमहवसंपण्णे, आलीणे, भद्दए, इति । प्रकृष्यु-पशान्तः, प्रकृति प्रतनुक्रोधमानमाया लोभः, मृदु मार्दवसंपन्नः, आलीनः, भद्रकः, इति । विनीतः ' मासं मासेणं ' मासं व्याप्य मासेन=माससपणनामकेन, अनिक्षि-प्तेन=अंतरहितेन, अविश्रान्तेनेत्यर्थः तपः कर्मणा विचरन् पारणकदिने यावत्-नागश्रिया ब्राह्मण्यागृहमनुपविष्टः, ततस्तदनन्तरं सा नागश्री ब्राह्मणी यावत्-शारदिकं तिक्कालाबुक्कं ' निसिरइ ' निष्ठजति=पात्रे निक्षिपतिस्म । ततः धर्मरुचि-

अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए मासं मासेणं अणिक्विक्खत्तेणं तवोक्-म्मेणं जाव नागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविट्ठे तएणं सा नागसिरी माहणी जाव निसीरइ, तएणं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमिच्छि कट्टु जाव कालं अणवक्खेमाणे विहरइ, सेणं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पउणित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहि-पत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्डुं सोहम्म जाव सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववन्ने ठिई पणत्ता) आर्यो ! सुनो बात एंसी है मेरे अन्ते वासी दिग्घ्य-धर्मरुचि अनगार स्वभाव से ही भद्र परिणामी थे। यावत् शब्द से इस पाठ का यहाँ संग्रह हुआ है " पगइ उवसंते पगइ पगणुं कोहमाणमाया लोहे मिउमहवसंपण्णे आलीणे भद्दए "। ये अविश्रान्त अंतर रहित-मास मासखमण पारणा करते थे। आज उनके पारणा का दिन था-सो गोचरीके लिये भ्रमण करते हुए ये नागश्री ब्राह्मणीके घर

विणीए मासं मासेणं अणिक्विक्खत्तेणं तवो कम्मेणं जाव नागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविट्ठे तएणं सा नागसिरी माहणी जाव निसीरइ, तएणं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जमिच्छि कट्टु जाव कालं अणवक्खेमाणे विहरइ, सेणं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पउणित्ता अलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्डुं सोहम्म जाव सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववन्ने ठिई पणत्ता) आर्यो ! सांभयो, बात येवी छे के मारा अतेवासी शिष्य-धर्मरुचि अनगार स्वभावथी जे लद्द परिष्ठाभी छता. यावत् शब्दथी अह्दी आ पाठेने स'अहं थथे छे-" पगइ उवसंते " . (पगइपयणुकोहमाणमायालोहे मिउमहव संपण्णे आलिणे भद्दए) तेज्जे अविश्रान्त-अंतर रहित-(निसंतर) मास अभलु करता रहता छता. आणे तेभेना पारणाने दिवस छता, तेज्जे आहार भारे भभलु करता नागश्री ब्राह्मणीना घर गया छता. ब्राह्मणीजे शारदिक तिक्क

રનગારો યથાપર્યાપ્તમિતિકૃત્વા=શુધાનિવૃત્તયે પૂર્ણમિતિ મત્વા યાવત્-કાલમ્
 'અવળકંચેમાણે' અનવકાહ્નમાણઃ વિહરતિ, સ સ્વલ્લ ધર્મરુચિરનગારો વહુનિ
 વર્ષાણિ શ્રમણ્યપર્યાયં પાલયિત્વા, આલોચિત પ્રતિક્રાન્તઃ સમાધિગ્રાસઃ કાલમાસે
 કાલં કૃત્વા ઊર્ધ્વં 'સોહમ્ જાવ સન્વદ્ધસિદ્ધે' સૌધર્માદયો દ્વાદશદેવલોકાઃ, તંત
 ઉર્ધ્વં નવત્રૈવેયકાનિ તદુપરિ યાવત્ સર્વાર્થસિદ્ધે, મહાવિમાને દેવત્વેનોપપન્નઃ=દેવમર્મ
 પ્રાપ્તવાન્ । તન્ન-તસ્મિન્ સર્વાર્થસિદ્ધિવિમાને, સ્વલ્લ 'અજહ્વણમણુક્ષોસેળં' અજઘ-
 ન્યાનુત્કૃષ્ટેન=જઘન્યોત્કૃષ્ટવર્જિતેન તન્ન હિ સર્વેષાં દેવાનાં સ્થિતિઃ સમાનૈવ ભવતિ ન
 તુ ન્યૂનાઽધિક્રાકાલક્રયા ત્રિષમેતિભાવઃ । ત્રયલ્લિશત્ સાગરોપમાનિ સ્થિતિઃ પ્રજ્ઞપ્તા,
 તન્ન ધર્મરુચેરપિ દેવસ્ય ત્રયલ્લિશત્ સાગરોપમાનિ સ્થિતિઃ પ્રજ્ઞપ્તા, સ સ્વલ્લ ધર્મરુચિ-
 દેવસ્તસ્માદ્ દેવલોકાદ્=સર્વાર્થસિદ્ધિવિમાનાદ્ યાવદ્ વ્યુતઃ સન્ યાવદ્ મહાવિદેહે
 વર્ષે સિઙ્ગિહિહ' સેત્સ્યતિ, સિદ્ધિ પ્રાપ્સ્યતિ । તત્=તસ્માદ્ ત્રિગસ્તુ સ્વલ્લ હે

પહુંચે । યાવન્ ઉસને શારદિક તિક્ત કહવે તુંવે કી શારુ અનેકે
 પાત્ર મેં કોહરાયા ધર્મરુચિ અનગાર ને ઉસકો શુધાનિવૃત્તિ કે લિયે
 પર્યાપ્તિ માન કર લિયા । એ ધર્મરુચિ અનગારને અનેક વર્ષોં તક
 શ્રમણ્ય પર્યાય કા પાલન ક્રિયા ઓર પાલન કરકે આલોચિત
 પ્રતિક્રાન્ત હોકર વે સમાધિ મેં લીન હો ગયે । કાલ અવમર કાલ
 કરકે અવ વે સૌધર્મ આદિ ૧૨ દેવલોકો સે ઝાર નવત્રૈવેય
 કો સે સી આગે જો સર્વાર્થસિદ્ધિ નામ કા વિમાન હૈ કિ જિસમેં ૩૩
 સાગર કી સ્થિતિ હેં-ઓર યહ સ્થિતિ જહાં સવ દેવાં કી સનાન હેં ઉસમેં
 ૩૩ સાગર કો સ્થિતિવાલે દેવ હુર હેં । "અજહ્વણમણુક્ષોસેળં" જઘ-
 ન્ય ઓર ઉત્કૃષ્ટ તેઝીસ સાગરોપમ કી સ્થિતિ હૈ । (સે ણં ધમ્મરુદ્
 દેવે તાઓ દેવલોગાઓ જાવ મહાવિદેહે-વાસે સિઙ્ગિહિહ, તેં ચિરત્સુ

કહવી તૂંબડીનું શાક તેમના પાત્રમાં વહોરાવ્યું. ધર્મરુચિ અનગારે
 તેને શુધા નિવૃત્તિ માટે પર્યાપ્ત બાણીને તેને સ્વીકારી લીધું. તે ધર્મરુચિ
 અનગારે ઘણાં વર્ષોં સુધી શ્રામણ્ય પર્યાયનું પાલન કર્યું છે અને
 પાલન કરીને આલોચિત પ્રતિક્રાન્ત થઇને તેઓ સમાધિમાં લીન થઇ ગયા છે.
 કાળ સમયે કાળ કરીને હવે તેઓ સૌધર્મ વગેરે બાર દેવલોકોથી ઉપર નવ
 ત્રૈવેયકોથી પણ આગળ જે સર્વાર્થસિદ્ધિ નામે વિમાન છે કે જેમાં ૩૩ સાગરની
 સ્થિતિ છે અને આ સ્થિતિ ન્યા બધા દેવોની સરખી છે, તેઓ તેમા ૩૩
 સાગરની સ્થિતિવાળા દેવ થયા છે. "અજહ્વણમણુક્ષોસેળં" જઘન્ય અને
 ઉત્કૃષ્ટ ૩૩ સાગરોપમની સ્થિતિ છે.

૧. (સેળં ધમ્મરુદ્ દેવે તાઓ દેવલોગાઓ જાવ મહાવિદેહે-વાસે સિઙ્ગિહિહ,

आर्याः ! नागश्रियं ब्राह्मणीमधन्यामगुण्यां यावद् दुर्भग निम्बगुलिकाम्, यथा-
खलु नागश्रिया ब्राह्मण्यातथारूपः प्रकृतिभद्रत्वादिगुणयुक्तः साधुः धर्मरुचिरनगारो
मासखणपारणके शारदिकेन तिक्तालाञ्जुकेन यावत् स्नेहावगाढेनाऽकाल एव
जीविताद् व्यपरोपितः ॥सू०४॥

मूलम्-तएणं ते समणा निग्गंथा धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए
एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म चंपाए सिंघाडगतिग जाव बहुजणस्स
एवमाइक्खंति-धिरत्थु णं देवाणुप्पिया ! नागसिरीए माहणीए
जाव णिबोलियाए जाए णं तहारूवे साहू साहूरूवे सालइएणं
जीवियाओ ववरोवेइ, तए णं तेसिं समणाणं अंतिए एयमट्ठं
सोच्चा णिसम्म बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ

णं अज्जो ! नागसिरीए माहणीए अधन्नाए, अपुन्नाए, जाव णिबोलियाए
जाए णं तहारूवे साहू धम्मरूई अणगारे मासखमणपारणगंसि सालइए
णं जाव गाढेणं अकाले. चेव जीवियाओ ववरोविए) वे धर्मरुचि देव
इस देवलोक से चक्कर यावत् महाविदेह क्षेत्र से सिद्धिको प्राप्त करेंगे
आर्यो ! अधन्य, अपुण्य यावत् दुर्भग निम्बगुलिका जैसी अनादरणीय
उस नागश्री ब्राह्मणी को धिक्कार हो-कि जिसने तथारूप, प्रकृति भद्र-
त्वादि गुणों से संपन्न साधु धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणा
के दिन शारदिक तिक्त कडवी तुंभी का शाक यावत् स्नेहावगाढ बना-
कर दिया-कि जिससे वे अकाल में मरण को प्राप्त हुए ॥ सू० ४ ॥

तं धिरत्थुणं अज्जो ! नागसिरीए माहणीए अधन्नाए, अपुन्नाए, जाव णिबोलि-
याए जाए णं तहारूवे साहू धम्मरूई अणगारे मासखमणपारणगंसि सालइएणं
जाव गाढेणं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए)

ते धर्मरुचि देव ते देवलोकाधी यवीने यावत् महाविदेह क्षेत्रधी सिद्धिने
भेजवथे. हे आर्यो ! अधन्य, अपुण्य, यावत् दुर्भग निम्बगुलिका जैसी अना-
दरणीय ते नागश्री ब्राह्मणीने धिक्कार छे के जेहे तथाइए, प्रकृति भद्रत्व
वगेरे शुद्धिवाणा साधु धर्मरुचि अनगारने मास खमणना पारणांना द्विसे
शारदिक तिक्त कडवी तुंभीनुं शाक-के जे सरस वधारेलुं, जेनी उपर धी तरुं
हुं-वहोरांयुं, जेने दीधे अकाले जे तेओनुं मरण थयुं. ॥ सूत्र "४" ॥

धिरस्थु णं नागसिरीए माहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए,
 तएणं ते माहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमदं
 सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता जाव मिभिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी
 माहणी तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता णागसिरीं माहणीं
 एवं वयासी—हं भो ! नागसिरी ! अपत्थिय पत्थिय दुरंत पंत-
 लवखणे हीणपुण्णचाउदसे धिरस्थु णं तव अधन्नाए अपुन्नाए
 जाव णिवोलियाए जाव णं तुमं तहारूवे साहू साहूरूवे मास-
 खमणपारणांसि सालइएणं जाव ववरोविए, उच्चावयाहिं
 अक्कोत्तणाहिं अक्कोत्तेति उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसंतेति
 उच्चावयाहिं णिवत्थणाहिं णिवत्थंति उच्चावयाहिं णिच्छोड-
 णाहिं निच्छोडेंते तज्जेति तालेंति तज्जेत्ता तालेत्ता सयाओ
 गिहाओ निज्जुभंति, तएणं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ
 निच्छूढा समाणी चंपाए नगरीए सिंघाडगतियचउक्कचच्चर-
 चउरुमुह० बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिसिज्जमाणी निदिज्जमाणी
 गरहिज्जमाणी तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी
 थुक्कारिज्जमाणी कत्थइ ठाणं वा निलयं वाअलभमाणी२ दंडि-
 खंडनिवसणा खंडमल्लयखंडघडगहत्थगया फुट्टहडाहडसीसा
 मच्छियाचडगरेणं अन्नज्जमाणमग्गागेहं गेहेणं देहं वलियाए
 वित्ति कप्पेमाणी विहरइ, तएणं तीसे नागसिरीए माहणीए
 तवभवंति चेव सोलस रोचायंका पाउव्भूया, तं जहा—सासे
 कासे जोणीसूल जाव कोढे, तएणं सा नागसिरी माहणी

सोलसहिं रोयायंकेहिं अभिभूया समाणी अट्टदुहट्टवसट्टा काल-
मासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीससागरो-
वमट्टिइएसु नेरएसु नेरइयत्ताए उववन्ना ॥ सू० ५ ॥

टीका—‘तएणं ते’ इत्यादि । ततः खलु ते श्रमणाः निर्ग्रन्था धर्मघोषाणां स्थविराणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चय्य चंपायां शृङ्गाटक—यावन्महापथेषु बहु-
जनस्य एवमाख्यान्ति धिगस्तु खलु हे देवानुप्रियाः ! नागश्रियं ब्राह्मणीं यावद्-
दुर्भगनिम्बगुल्लिकाम्, यया खलु तथारूपः साधुः साधुरूपो धर्मरुचिरनगरः शार-
दिकेन यावत्तित्तालाबुकेन जीविताद् व्यपरोपितः। ततः खलु तेषां श्रमणानामन्तिके

‘तएणं ते समणा निग्गंथा’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते समणा निग्गंथा धम्मघोसा थेराणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म चंपाए सिंघाडगतिग जाव बहुजणस्स एव-
माइक्खंति—धिरत्थुणं देवाणुप्पिया ! नागसिरीए जाव णिंबोलियाए जाएणं
तहारूवे साहू साहूरूवे सालइएणं जीवियाओ ववरोवेइ) उन श्रमण
निर्ग्रन्थोने धर्मघोष स्थविर के मुख से इस समाचार को सुनकर और
उसका हृदय में विचार कर चंपानगरी में शृङ्गाटक यावत् महापथों में
बहुजनों से ऐसा कहा हे देवानुप्रियों ! ब्राह्मणी नागश्री को धिक्कार हे
यावत् निम्ब की निबोली जैसी अनादरणीय है कि जिसने तथा रूप
साधु—साधुरूप धर्मरुचि अनगर को शारदिक यावत् कडवे तुम्बे का
शाक देकर जीवन से रहित कर दिया है । (तएणं तेसिं समणाणं अं-

‘तएणं ते समणा निग्गंथा’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्यारणाद

(ते समणा निग्गंथा धम्मघोसा थेराणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म चंपाए
सिंघाडगतिग जाव बहुजणस्स एव माइक्खंति—धिरत्थुणं देवाणुप्पिया ! नाग-
सिरीए माहणीए जाव णिंबोलियाए जाए णं तहारूवे साहू साहूरूवे सालइएणं
जीवियाओ ववरोवेइ)

ते श्रमणु निर्ग्रन्थोने धर्मघोष स्थविरना मुभधी आ वात सांभणीने
अने तेने हृदयमां धाणु करीने अणानगरीमां शृङ्गाटक महापथो वगेरेमां धणु
माणुसोने आ प्रमाणु कहुं के छे देवानुप्रियो ! ब्राह्मणी नागश्रीने धिक्कार छे
अने ते लीभडानी लींघोपानी लेभ अनादरणीय छे केभके तेणु तथाइय साधु साधु-
इय धर्मरुचि अनगरने शारदिक कडवी तृणडीलुं शाक आपीने मारी नाण्थ्या छे.

एतमर्थं श्रुत्वा निगम्य बहुजनोऽन्योन्यस्य-परस्परस्य एवमाख्याति-एवं भाषते
एत्र महापयति, एवं प्ररूपयति धिगस्तु खलु नागश्रिया ब्राह्मण्याः, यया धर्मरुचि-
नगरः शारदिकेन यावद् जीविताद् व्यपरोपितः । ततः खलु ते ब्राह्मणा चंपायां
नगर्यां बहुजनस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निगम्य, आश्रुक्ताः-शीघ्रं क्रोधाविष्टाः
यावत् मिसमिसन्तः-क्रोधानलेन प्रज्वलन्तः, यत्रैव नागश्रीर्ब्राह्मणी, तत्रैवीपागच्छन्ति,

लिए एयमदृष्टं सोच्चा बहुजणे अन्नमन्नस्त एवमाहक्खइ, एवं भासइ
धिरत्थुणं नागसिरीए माहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए, तएणं ते
माहणं चंपाए नयरीए बहुजणस्त अंतिए एयमदृष्टं सोच्चा निसम्म आ-
सुरत्ता जाव मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवाग-
च्छंति) उन श्रमणजनों के मुख से इस समाचार को सुनकर और
उसे हृदय में धारण करके अनेक मनुष्य आपस में इस प्रकार कहने
लगे बोलने लगे प्रज्ञापना करने लगे प्ररूपणा करने लगे कि ब्राह्मणी
नागश्री को धिक्कार है जिसने धर्मरुचि अनगर को शारदिक-तिक्त
कडवे तुंबे के शाक से जीवन रहित करदिया है । इस प्रकार उन
ब्राह्मणों ने तथा सोम, सोमदत्त, सोमभूति आदि ने जब चंपानगरी में
अनेक मनुष्यों के मुख से इस बात को सुना-तो वे सुनकर और उसे
अपने २ हृदय में धारण कर इकदम क्रोध से तम तमा उठे और
यावत् क्रोधानल से जलते हुए जहां नागश्री ब्राह्मणी थी वहां आये-

(तएणं तेसिं समणाणं अंतिए एयमदृष्टं सोच्चा बहुजणे अन्नमन्नस्त एवमाह-
क्खइ, एवं भासइ धिरत्थुणं नागसिरीए माहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए,
तएणं ते माहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्त अंतिए एयमदृष्टं सोच्चा निसम्म आसु-
रत्ता जाव मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति)
ते श्रमण्यु लोकांना सुअथी आ सभाचार सांभणीने अने तेने हृदयमां
धारण्यु करीने धण्यु भाण्युसो अेकणीअनी साथे आ रीते वातथीत करवा लाग्या,
प्रज्ञापना करवा लाग्या, प्ररूपण्यु करवा लाग्या के प्राहण्यु नागश्रीने धिक्कार
छे. जेणे धर्मरुचि अनगरने शारदिक-तिक्त कडवी तुंबीना शाकथी भारी
नाअ्या. आ रीते ते प्राहण्युअे अेटले के सोम, सोमदत्त अने सोमभूतिअे
अ्यारे अंपा नगरीना अनेक भाण्युसोना सुअथी आ वात सांभणी त्यारे तेअो
सांभणीने अने तेने हृदयमां धारण्यु करीने अेकदम क्रोधाविष्ट थई ग्या अने
क्रोधरूपी अग्निमां अणगता अमां नागश्री प्राहण्यु करी त्यां आअ्या.

उपागत्य नागश्रियं ब्राह्मणीमेवमवादिषुः-उक्तवन्तः, हं भो ! नागश्रीः ! अप्राथित्यं प्रार्थिके ! मरणाभिलाषिणि ! दुरन्तमान्तलक्षणे ! हीनपुण्यचातुर्दशिके ! धिगस्तु खलु तव अधन्यायाः अपुण्यायाः यावद्-दुर्भगनिम्बगुलिकायाः, अत्र द्वितीयायै षष्ठी आर्षत्वात्, यया खलु त्वया तथारूपः साधुः साधुरूपो धर्मरुचिरनगरो मासक्षणपारणके शारदिकेन तिकालावुकेन यावद् व्यपरोपितः, ' उच्चावयाहि ' उच्चावचाभिः=उच्चनीचाभिः ' अक्रोसणाहि ' आक्रोशनाभिः=निन्दावचनैः नीचा-जसि त्वमित्यादिभिर्वचनैः ' अक्रोसति ' आक्रोशन्ति-फटकारयन्ति उच्चावचाभिः उद्धं संनाभिः दुष्कुलोत्पन्नाऽसित्यादिवचनैः, ' उद्धंसेति ' उद्धसयन्ति=कुलादि-

(उवागच्छित्ता णागसिरीं माहणीं एवं वयासी) हं भो ! नागसिरी ! अप्रतिथियं प्रतिथियं दुरंतपतलकखणे, हीनपुण्यचातुर्दशे धिरत्युणं तव अध-नाए अपुत्राए जीव गिबोलियाए जाए णं तुमे तहारूवे साहू साहूरूवे मास खमणपारणसि सालइएणं जाव ववरोविए उच्चावएयाहि अक्रोसणाहि अक्रोसति.....उद्धंसेति) वहाँ आकर न्होंने नागश्री ब्राह्मणीसे कहा अरीओ नागश्री ! अरी अप्राथित्यं प्रार्थिके ! हे दुरन्तमान्त लक्षण ! ओ हीन पुण्य चातुर्दशिके ! तुझ अपुण्य अधन्या को धिक्कार हो ! तू दुर्भग निम्बगुलिका जैसी अन्यादरणीय है जो तूने मासखमणके पारणा के दिन घरपर आहार लेने के निमित्त आये हुए तथा रूप साधुरूप धर्मरुचि अनगर को शारदिक तिक कडवे तुवे का शाक देकर जीवन से रहित कर दिया है । तू बड़ी नीच है इत्यादि रूप ऊँच, नीच आक्रोश निन्दा-वचनो से उन्होंने उसे फटकारा तू नीच खानदान की

(उवागच्छित्ता णागसिरीं माहणीं एवं वयासी-हं भो ! नागसिरी ! अप्रतिथियं प्रतिथियं दुरंतपतलकखणे, हीनपुण्यचातुर्दशे धिरत्युणं तव अधनाए अपुत्राए जाव गिबोलियाए जाए णं तुमे तहारूवे साहू साहूरूवे मासखमणपारणसि साल-इएणं जाव ववरोविए उच्चावएयाहि अक्रोसणाहि अक्रोसति...उद्धंसेति) त्यों आपोंने तेमझे नागश्री ब्राह्मणीने कहुं के-के सुधं ओ नागश्री ! अप्राथित्यं प्रार्थिके ! हे दुरंत मान्त लक्षणे ! ओ हीनपुण्य चातुर्दशिके ! तारा जेवी पापणी अधन्याने धिक्कार छे तुं दुर्भग निम्बगुलिका (दिव्याणी जेवी अन्यादरणीय छे. केभके तेजे मास-अभयुना पारणांना दिवसे घेरे आहार देवा भटे आवेदा तथाइय साधु साधुइय धर्मरुचि अनगारने शारदिक तिकत कक्षी तूबडीतुं शाक आपीने मारी नाभ्या-छे. तुं साव-नीच छे, आभू बंधु वचन-नीच आक्रोश-निन्दा-ना पयनाथी तेमोअ तेने ईटकारी. तुं नीच

गौरवात्पातयन्ति, उच्चावचाभिर्निर्भत्सनाभिः=परुषवचनैः 'णिभ्भत्यंति' निर्भत्सयन्ति, उच्चावचाभिः 'णिच्छोडणाहिं' निच्छोडनाभिः=अस्मद् गृहाब्दहिर्निस्सर इत्यादि वचनैः 'निच्छोडेंति' निच्छोडयन्ति = गृहादित्यागभयोत्पादनेन भीषयन्ति, 'तज्जेति' तज्जयन्ति 'ज्ञास्यसि पापे ।' इत्यादिवाक्यैरकुली प्रदर्शनपूर्वकं ताडनभयं प्रदर्शयन्ति, 'तालेंति' ताडयन्ति चपेटादिभिः, तर्जयित्वा ताडयित्वा, स्वकाद् गृहाद् 'निच्छुभंति' निक्षिपन्ति = बर्हिर्निः-सारयन्ति । ततस्तदनन्तरं सा नागश्रीः स्वकाद् गृहाद् 'निच्छूढा समाणा' निक्षिप्तासती=निःसरितासती, चम्पाया नगर्याः शृङ्गाटक त्रिकचतुष्कचत्वरचतुर्मुखमहापथपथेषु यत्र यत्र

है इस तरह की ऊँची नीची वाणियों से उसे भला बुरा कहा कुलादि के गौरव से उसे पतित कहा । (उच्चावयाहिं णिभ्भत्यणाहिं णिभ्भत्यंति उच्चावयाहिं णिच्छोडणाहिं निच्छोडेंति, तज्जेति, तालेंति, तज्जेत्ता तालेत्ता सयाओ गिहाओ निच्छुभंति) ऊँचे नीचे कठोर वचनों से उसका तिरस्कार किया । भले बुरे वचनों से उसे डरवाया-हमारे घर से तू बाहिर निकल जा इत्यादि भयोत्पादक शब्दों से उसे भय दिखलाया । ओ पापिनी ! तूजे मालूम पड जायगा, इत्यादि वाक्यों से भंगुली दिखा २ कर उसे मारने का भय दिखलाया और चपेटा-धप्पड आदि से उसे पीटा भी । और पीटपाट कर उसे उन्होंने फिर अपने घर से बाहिर निकाल दिया । (तएणं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ निच्छूढा समाणी चंपाए नगरीए सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुह०

आनदान्नी छे, आ नतनां उँचा नीचा वचनोथी तेछे जोठी भरी संलणावी. कृण वगेरेना गौरवथी तेछे पतिता कछुं.

(उच्चावयाहिं णिभ्भत्यणाहिं णिभ्भत्यंति, उच्चावयाहिं णिच्छोडणाहिं निच्छोडेंति, तज्जेति, तालेंति तज्जेत्ता तालेत्ता सयाओ गिहाओ निच्छुभंति)

उँचा नीचा वचनोथी तेना तिरस्कार कर्यो, जोटां भरां वचनोथी तेने भीषणवी. 'अभारा घरथी तु अडार नीकणी न' वगेरे लयेत्पाडक वचनोथी तेणीने थीक अतावी. 'अे पापणी ! तेने मज्ज अताववी दृष्टुं ?' वगेरे वचनोथी सागी आंगणी करीने तेने भारी नापवानी थीक अताववा लाग्था अने धप्पड लाक्ष वगेरेथी तेने भार पणु भार्यो, भारपीट करीने तेओअे तेने चोताना घेरथी अडार कादी भूझी.

(तएणं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ निच्छूढा समाणी चंपाए नगरीए सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुह० बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिसिज्जमाणी

गच्छति तत्र तत्र सर्वत्र बहुजनेन 'हीलिज्जमाणी' हील्यमाना-जात्याद्युद्धाटनेन, 'खिसिज्जमाणी' खिस्यमाना-परोक्षकुत्सनेन, 'निदिज्जमाणी' निन्द्यमाना-तत्परोक्षम् 'गरहिज्जमाणी' गर्ह्यमाना-तत्समक्षमेव, 'तज्जिज्जमाणी' तर्ज्यमाना-अङ्गुलीचालनेन भयमुत्पादयमाना 'पव्वहिज्जमाणी' पव्वथ्यमाना यष्ट्यादिताडनेन 'धिक्कारिज्जमाणी' धिक्रियमाणा 'थुक्कारिज्जमाणी' थुक्क्रियमाणा कुत्रापि

बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिसिज्जमाणी निदिज्जमाणी, गरहिज्जमाणी, तज्जिज्जमाणी, पव्वहिज्जमाणी, धिक्कारिज्जमाणी, थुक्कारिज्जमाणी, कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलभमाणी २ दंडि खंडा निवसणा खंड खंडमल्लय खंड खंड घउगहत्थगया फुडुहडाहडसीसा मच्छियाउगरेणं अब्भिज्जमाणमग्गा गेहं गेहेणं देहं वलियाए वित्तिक्कप्पेमाणी विहरइ) अपने घर से बाहिरनिकल कर वह नागश्री चंपानगरी के श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर चतुर्मुख महापथ आदि मार्गों पर जहां २ गई, वहां २ सर्वत्र अनेक जनों ने उसकी " यह नीचजाति की है " इत्यादिरूप से हीलना की। सब के सब उसपर बहुत क्रोधित हुए सबने उसकी परोक्ष में निंदा की। सामने सवने उसे भला बुरा कहा। अंगुली संचालन पूर्वक उसे मारने पीटने का भय दिखलाया। किन्हीं २ ने उसे लकड़ी आदिसे मारा पीटा भी। अनेकोंने उसे धिक्कारा। कितनेक जनों ने उसे देखकर उसपर थूंक भी दिया। इस तरह की परिस्थिति

निदिज्जमाणी, गरहिज्जमाणी, तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी, धिक्कारिज्जमाणी, थुक्कारिज्जमाणी, कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलभमाणी २ दंडिखंडा निवसणा खंडमल्लय खंड खंड घउगहत्थगया फुडुहडाहडसीसामच्छियाउगरेणं अब्भिज्जमाणमग्गा गेहं गेहेणं देहं वलियाए वित्तिक्कप्पेमाणी विहरइ)

चोताना घेरथी भंडार नीकणीने ते नागश्री यथा नगरीना श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ वगेरे मार्गों उपर ल्यां गधं ल्यां ल्यां भधे धषु। माणुसोअे तेनी " आ नीच जातनी छे " वगेरे वअेनेथी हीलना करी। अथा माणुसो तेनी उपर भूषण श्रुसे थया। तेनी गेर डाणरीभां डोकेअे तेनी भूष निहा करी, तेनी साभे तेने अथाअे अरी जोटी सलणावी, आंगणी थीथी थीधीने तेनी साथे मारपीट करवानी। अक भतापवा लाग्या। केअ केअअे तो तेने लाकडी वगेरेने इटके पणु भार्यो, धषुआअे तेने इटकारी, डेटलाक माणुसोअे तेने लोधने तेनी उपर थूकी कीधुं।

स्थानं वा निवासार्थं निलयं वा-अल्पकालविश्रामार्थंस्थानम्, अल्पमाना २=अर्था-
 न्नुवती २, 'दंडीखंडनिवमगा' दण्डिखण्डनिवसना=दण्डि-कृतसन्धानं जीर्णत्वम्,
 तस्य खण्डं, तदेव निवसनं-परिधानं यस्याः सा तथा, 'खंडमल्लयखंडघटगहस्थं-
 गीया' खण्डमल्लक-खण्डघटकहस्तगता=खण्डमल्लः=भिक्षार्थं शरावरखण्डं खण्डघट-
 कंथं पानार्थं घटखण्डं, तद् द्वयं हस्तगतं यस्याः सा तथा, 'फुट्टहडाहडसीसा'
 स्फुटितहडाहडशीर्षा-स्फुटितं स्फुटितकेशं 'हडाहडम्' अत्यर्थं शीर्षं शिरो यस्याः
 सा तथा, विक्रीणकेशवतीत्यर्थं 'मञ्जियाचडगरेणं अभिज्जमाणमग्गा' मक्षिका
 चटकरेण अन्त्रीयमानमार्गा मक्षिकासमूहेन अनुगम्यमानमार्गा शरीरवस्त्रादीनां-
 मलिनत्वान् मक्षिकास्तत्पृष्ठतो धावन्तीत्यर्थः 'गेहं गेहेणं देहं वलियाए' गृहं गृहेण
 देहवलिक्रिया=प्रतिगृहं देहनिर्वाहहेतोः उदरपूर्यर्थमेवेत्यर्थः-वृत्तिं 'कप्येमाणी'
 कल्प्यमाना=कुर्वाणा सती विहरति । ततस्तदनन्तरं खलु तस्या नागश्रिया ब्राह्मण्या
 स्तस्मिन् भवे एव पोडन रोगातङ्काः प्रादुर्भूताः, तद्यथा-(१) श्वासः, (२)
 कासः, (३) ज्वरः, 'जावकुट्टे' यावत्-कुण्ठम्, (४) दाहः, (५) कुक्षिशूलम्. (६)

का सामना करती हुई वह कहीं पर भी बैठने के लिये स्थान को, और
 ठहरनेके लिये-विश्राम करनेके लिये-जंगह भी को नहीं प्राप्त करती फटे
 हुए जीर्ण वस्त्र के टुकड़े को पहिरे हुए भिक्षा के लिये मिट्टी के खप्पर
 को और पानो के लिये फूटे घड़े के टुकड़े को हाथ में लिये हुए इधर
 उधर एक घर से दूसरे घर पर उदर पूर्ति के लिये फिरने लगी। इसके
 शिर के बाल इधर उधर बिखरे हुए रहते थे। शरीर और वस्त्रादिकों
 के मैले कुचैले होने के कारण मक्षिकाओं का समूह इसके पीछे पीछे २
 भागता रहता था। (तएणं तीसे नागसिरीए माहणीए तंभवसि चेंव
 सोलसरोयायंका पाउवभूया-तं जहां सासे कासे जोणिसूले, जाव

आवी परिस्थितिने। मुकाभवे। करती केअं पाणु स्थाने भेसवानी के दाकावानी
 के विश्राम करवानी वग्था ते भेणवी शकी नडि, अने छेवटे शकेला जूना
 वओना कडडाने वीटाणीने लिक्षाना भाटे माटीनुं जणपर अने पाछीना भाटे
 दूटी भाटलीना-कडडाने छाथभां लधने घेट लरवां भाटे आभतेम अेक घेरथी
 णीने घेर लभवा लागी. तेना भाथान्ता वाणे। आभं तेम अस्त व्थस्त रहेता
 हता, शरीर अने वओ वगेरे भेलां छेवाने दीधे भाणीओना टोणेटोणां तेनी
 पाछण पाछण लभतां रहेतां हतां.

(तएणं तीसे नागसिरीए माहणीए तंभवसि चेंव सोलसरोयायंका पाउ-
 वभूया-तं जहां सासे कासे जोणिसूले, जावकोठे तएणं सां नागसिरी माहिणी,

भगन्दरः, (७) अशः, (८) योनिशूलम्, (९) दृष्टिशूलम्, (१०) मूर्धशूलम्, (११) अरुचिः, (१२) अक्षिवेदना, (१३) कर्णवेदना, (१४) कण्डूः, (१५) जलोदरम्, (१६) कुष्ठम् । ततस्तदनन्तरं सा नागश्री ब्राह्मणी षोडशमी रोगातङ्कैरभिभूता-सती आर्तदुःखार्तवशात्—शारीरिकमानसिकदुःखयुक्ता कालमासे कालं कृत्वा षष्ठ्यां पृथिव्याम् 'उक्कोसेण' उत्कृष्टतः, द्वाविंशति सागरोपमस्थितिकेषु नर-केषु—नरकावासेषु नारकत्वेन उपपन्ना—उत्पन्ना ॥ सू० ५ ॥

मूलम्—सा णं ततोऽणंतरंसि उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववन्ना,
तत्थ णं सत्थन्नज्जा दाहवकंतीए कालमासे कालं किञ्चा
अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तेत्तीसं सागरोवमट्टिइएसु
नेरइएसु उववन्ना, सा णं ततोऽणंतरं उवट्टित्ता दोच्चंपि

कोठे तपणं सा नागसिरी माहिणी, सोलसहिं रोयायंकेहिं अभिभूया
समाणी अट्टदुहइवसट्टा कालमासे कालं किञ्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसे
णं वावीससागरोवमट्टिइएसु नरएसु नेरइयत्ताए उववन्ना) उस नागश्री
ब्राह्मणी को उसी भव में ये सोलह रोगातंक प्रकट हो गये—(१) श्वास
(२) कास (३) इवर (४) दाह (५) कुक्षिशूल (६) भगन्दर (७) अश
(८) योनिशूल (९) दृष्टिशूल (१०) मूर्धशूल (११) अरुचि (१२) अक्षि-
वेदना (१३) कर्णवेदना (१४) कण्डू (१५) जलोदर (१६) कुष्ठ । इन १६
सोलहरोगातंको से अत्यन्त दुःखित हुई—शारीरिक एवं मानसिक व्य-
थाओं से व्यथित हुई—वह नागश्री काल अवसर जाचकर छटी पृथिवी
में २२ सागर की उत्कृष्ट स्थितिवाले नरकावासों में नैऋतिक को पर्यायसेमें
उत्पन्न हुई ॥ सू० ५ ॥

सोलसहिं रोयायंकेहिं अभिभूया समाणी अट्ट दुहइवसट्टा कालमासे कालं किञ्चा
छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं वावीससागरोवमट्टिइएसु नेरइयत्ताए उववन्ना)

ते नागश्री प्राहाणीने तेज्ज भवमां आ सोणं रोगांतंके प्रकटं थवा.

(१) श्वास (२) कास (३) इवर (४) दाह (५) कुक्षिशूल (६) भगन्दर (७)
अश (८) योनिशूल (९) दृष्टिशूल (१०) मूर्धशूल (११) अरुचि (१२)
अक्षिवेदना (१३) कर्णवेदना (१४) कण्डू (१५) जलोदर (१६) कुष्ठ आ सोण
रोगांतंकेथी अतीव दुःखी थयेली शारीरिक तेमज्ज मानसिक व्यथाओथी व्यथित
सती ते नागश्री काल अवसरदे काल करीने छट्ठी पृथिवीमां वावीस सागरनी
उत्कृष्ट स्थितिवाणा नरकावासोमां नैऋतिकनी पर्यायथी तेमज्ज पावती ॥ सू० ५ ॥

मच्छेसु उववज्जइ, तत्थ वि य णं सत्थविज्झा दाहवक्कंतीए
 दोच्चंपि अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसं तेत्तीससागरोवम-
 ट्ठिइएसु नेरइएसु उववज्जइ, सा णं तओहिंतो जाव उव्व-
 ट्ठित्ता तच्चंपि मच्छेसु उववन्ना तत्थ वि य णं सत्थवज्झा
 जाव कालं किच्चा दोच्चंपि छट्ठीए पुढवीए उक्कोमेणं०
 तओऽणंतरं उव्वट्ठित्ता मच्छेसु उरएसु एवं जहा गोसाले
 तहानेयव्वं जाव रयणप्पभाओ सत्तसु उववन्ना तओ उव्व-
 ट्ठित्ता जाइं इमाइं खहयर विहाणाइं जाव अदुत्तरं च णं खर
 वायर-पुढविकाइ यत्ताते तेसु अणेगसतसहस्स खुत्तो ॥सू०६॥

टीका—‘ सा णं ’ इत्यादि। सा=नागश्री ब्राह्मणी खलु ततः=पृथया पृथिव्याः
 अनन्तरम्=आयुर्मवस्थितिक्षये सति ‘ उव्वट्ठित्ता ’ उद्वर्त्य-निस्सृत्य मत्स्येषूपभा,
 तत्र खलु मत्स्यमवे सा ‘ सत्थवज्झा ’ शस्त्रविद्धा ‘ दाहवक्कंतीए ’ दाहच्युत्क्रा-
 न्त्या-दाहोत्पत्त्या, कालमासे कालं कृत्वाऽथः सप्तम्यां पृथिव्योमुत्कृष्टतल्लयत्त्रिंश-
 त्सागरोपमस्थितिकेषु ‘ नेरइएसु ’ नैरयिकेषु उत्पन्ना । सा खलु ततः=सप्तम्याः
 पृथिव्याः अनन्तरमुद्वर्त्य द्वितीयवारमपि मत्स्येषूपद्यते । तत्रापि च खलु शस्त्र-

‘ सा णं तओ ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(सा) वह नागश्री (तओऽणंतरंसि) उस छट्टी नरककी भव-
 स्थिति समाप्त होने पर (उव्वट्ठित्ता) वहां से निकली-और निकलकर
 (मच्छेसु उववन्ना तत्थणं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं
 किच्चा अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तेत्तीसं सागरोवमट्ठिइएसु
 नेरइएसु उववन्ना, सा णं तओऽणंतरं उव्वट्ठित्ता दोच्चंपि मच्छेसु उवव-

‘ सा णं तओ ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(सा) ते नागश्री (त ओ ऽ णं त रं स ि) ते छट्टी नरकनी भवस्थिति
 पूरी थया ग्राह (उव्वट्ठित्ता) त्यांशी नीकणी अने नीकणीने

(मच्छेसु उववन्ना तत्थ णं सत्थवज्झा दाह वक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा
 अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तेत्तीसं सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु उववन्ना
 सा णं उववज्जइ)

विद्धा दाहव्युत्क्रान्त्या द्वितीयवारमपि अधः सप्तम्यां पृथिव्यामुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सा-
गरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूपपद्यते, सा खलु 'तओर्हिती' तस्याः=सप्तम्याः
पृथिव्याः, यावद् उद्वर्त्य 'तच्चंपि' तृतीयवारमपि मत्स्येषु उत्पन्ना। तत्रापि च
खलु शस्त्रविद्धा 'जाव कालं किच्चा' यावत् दाहव्युत्क्रान्त्या कालमासे कालं
कृत्वा द्वितीयवारमपि षष्ठ्यां पृथिव्यामुत्कृष्टतो द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिकेषु
नरकेपुत्पन्ना, सा खलु ततः=षष्ठ्याः पृथिव्या अनन्तरं 'उवद्वित्ता' उद्वर्त्य=
निस्सृत्य उरःपरिसर्पेपुत्पन्नाः, तत्र शस्त्रवध्या दाहव्युत्क्रान्त्यामुत्कृष्टतः सप्तदश-
सागरोपमस्थितिकेषूपपन्ना। एवं यथा गोशरलकस्तथा ज्ञातव्यम्=गोशालकवदस्याः

ज्जई) तिर्यञ्चगति में मच्छ की पर्याय से उत्पन्न हो गई। वहां वह
मत्स्य के भव में शस्त्र से विद्ध होकर दाह की उत्पत्ति से काल अवसर
काल कर भरी-सो नीचे सप्तम नरक में ३३ तेतीस सागर की उत्कृष्ट
स्थितिवाले नरकावास में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहां से
निकलकर फिर वह मत्स्य की पर्याय से उत्पन्न हुई। (तत्थ वि य णं
सत्थविज्झादाहवक्कंतीए दोच्चंपि अहे सत्तमीए पु०) वहां वह शस्त्र
से पुनः विद्ध होकर दाहकी व्युत्क्रान्ति से भरी और मरकर द्वितीयवार
भी सप्तम नरक में (उक्कोसं तेतीससागरोवमद्विइएसु नेरइए उवव-
ज्जइ) उत्कृष्ट-तेतीस सागर की स्थिति लेकर नैरयिक की पर्याय में
उत्पन्न हुई। (सा णं तओर्हिं तो जाव उववद्वित्ता तच्चंपि मच्छेसु उव-
वन्ना, तत्थ वि य णं सत्थवज्झा जाव कालं किच्चा दोच्चंपि छट्ठीए पुढ-
वीए उक्कोसे णं तओऽणंतरं उवद्वित्ता मच्छेसु उरएसु एवं जहा गोसाळे

तिर्यञ्च गतिमां मच्छथी पर्यायनी जन्म पायी. त्यां ते मत्स्यना लवमां
शस्त्र वडे बीधाधने दाहथी पीडाधने काण अवसरे काण करीने मरषु पायी अने
नीचे सातमा नरकमां उउ सागरनी उत्कृष्ट स्थितिवाणा नरकावासमां नैरयिकनी
पर्यायथी जन्म पायी. त्यांथी नीकणीने इरी ते मत्स्यना पर्यायथी जन्म पायी.
(तत्थ वि य णं सत्थविज्झा दाहवक्कंतीए दोच्चंपि अहे सत्तमीए पु०)
त्यां ते इरी शस्त्र वडे विद्ध थधने दाहथी पीडाधने भरी अने भरीने
भील वपत पषु सातमां नरकमां (उक्कोसं तेतीससागरोवमद्विइएसु नेरइए उव-
वज्जइ) उत्कृष्ट उउ सागरनी स्थिति वधने नैरयिकनी पर्यायमां जन्म पायी.
(सा णं तओर्हिं तो जाव उववद्वित्ता तच्चंपि मच्छेसु उववन्ना, तत्थ वि य णं
सत्थवज्झा जाव कालं किच्चा दोच्चंपि छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं तओऽणंतरं

वर्णनं बोध्यमित्यर्थः, 'यावरयणप्पभाए सत्तसु उववन्ना' यावद् रत्तमभायां संक्ष-
 म्पन्ना=अयं भावः-उरः परिसर्पमवतो निः सृत्य पञ्चम्यां धूमप्रभायां पृथिव्या-
 म्मुत्कृष्टतः सप्तदशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेवृत्पन्ना, ततो निः सृत्य द्वितीय-
 चारमुरःपरिसर्वेवृत्पद्यते, तत्रापि पूर्ववत् कालं कृत्वा द्वितीयचारमपि पञ्चम्यां पृथि-
 त्हा नेयव्वं जाव रयणप्पभाओ सत्तसु उववन्ना, तओ उव्वट्टित्ता जाइ
 ईमाइं खहायर विहाणाइं जाव अहुत्तरं च णं खरवायर पुढविकाइयत्ता ते तेसु
 अणेगसतसहस्स खुत्तो) वहां से भव स्थिति समाप्त होते ही
 वह निकली-निकल कर तीसरी चार भी मत्स्य की पर्याय में उत्पन्न
 हुई । वहां शस्त्र विद्ध होकर दाह की व्युत्क्रान्ति से मरी सो मर कर
 दुबारा भी छठी ही पृथिवी में २२ बावीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति ले
 कर उत्पन्न हुई । वहां की भवस्थिति समाप्त कर जब वह वहां से
 निकली तो उरः परिसर्प की पर्याय में उत्पन्न हुई । वहां पर भी वह
 शस्त्र विद्ध होकर दाह की व्युत्क्रान्ति से-उत्पत्ति से काल अवसर काल
 कर धूमप्रभा नाम की पंचम पृथिवी में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न
 हुई । वहां सत्तरह सागर की उत्कृष्ट-स्थिति इसकी हुई । गोशालक
 की तरह इसका वर्णन जानना चाहिये । तात्पर्य इसका इस प्रकार है-
 १७ सागर की उत्कृष्टस्थिति वाले पंचम नरक से निकल द्वितीय चार
 भी वह उरः परिसर्प की पर्याय से उत्पन्न हुई । वहां से पूर्व की तरह

उव्वट्टित्ता मच्छेसु उरएसु एवं जहा गोसाले तहा नेयव्वं जाव रयणप्प
 भाओ सत्तसु उववन्ना, तओ उव्वट्टित्ता जाइं इमाइं खहायरविहाणाइं जाव
 अहुत्तरं, च णं खरवायरपुढविकाइयत्ता ते तेसु अणेगसतसहस्सखुत्तो)
 त्यांनी भवस्थिति पूरी थतां ज ते त्यांथी नीकणी अने नीकणीने त्रील वार
 पणु माछलीना पर्यायभां जन्म पाभी. त्यां शस्त्रथी वी'धाधने तथा दाडथी
 पीडाधने मरणु पाभी अने ते वणते पणु छठी पृथिवीभां २२ सागरनी उत्कृष्ट
 स्थिति लधने उत्पन्न थध. त्यांनी भवस्थिति पूरी करीने न्यारे ते त्यांथी
 नीकणी त्यारे ते उरः परिसर्पना पर्यायभां जन्म पाभी. त्यां पणु ते शस्त्रथी
 वी'धाधने अने दाडथी पीडाधने काण अवसरें काण करीने धूमप्रभा नामनी
 पंचम पृथिवीभां नैरयिकना पर्यायथी जन्म पाभी. त्यां १७ सागरनी उत्कृष्ट
 स्थिति तेनी थध. गोशालकनी जेम आतुं वर्षेन ळणी देतुं जेधंजे. मतलभ
 आनी आ छे के १७ सागरनी उत्कृष्ट स्थितिवाणा पंचम नरकथी नीकणीने
 भील वणत पणु ते उरः परिसर्पना पर्यायथी जन्म पाभी. त्यांथी पणु पडे-
 लांनी जेमज काण अवसरें काण करीने भीलवार पणु आ पंचम पृथिवीभां

व्याप्तकृष्टतः सप्तदशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूप्यन्ना । ततो निःसृत्य तृतीयवारमपि उरः प्रतिसर्पेषूप्यद्यते, अत्र पूर्ववत् कालं कृत्वा चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्यामुत्कृष्टतो - दशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूप्यन्ना, ततो निःसृत्य सिंहेषूप्यद्यते, तत्रापि पूर्ववत् कालं कृत्वा द्वितीयवारमपि चतुर्थ्यां पृथिव्यामुत्कृष्टतो-दशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूप्यन्ना । ततश्चतुर्थ्याः पृथिव्याः निःसृत्य द्वितीयवारमपि सिंहेषूप्यद्यते, तत्र पूर्ववत् कालं कृत्वा तृतीयायां बाहुप्रभायां पृथिव्यामुत्कृष्टतः सप्तसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूप्यन्ना, ततो निःसृत्य पक्षिषूप्यद्यते, तत्र पूर्ववत् कालं कृत्वा द्वितीयवारमपि तृतीयायां पृथिव्यामुत्कृष्टतः

काल कर द्वितीयवार भी यह पंचम पृथिवी में १७ सागर की उत्कृष्ट स्थितिवाले नरकों में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहाँ की स्थिति समाप्त कर जब यह वहाँ से निकली-तो तीसरी बार भी यह उरः परिसर्पों में उत्पन्न हुई। वहाँ से पूर्व की तरह काल कर चौथी पंक्त प्रभा पृथिवी में कि जहाँ १० सागर की नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति है वहाँ नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर यह सिंह की पर्याय में उत्पन्न हुई। पहिले की तरह वहाँ से भी मर कर द्वितीय बार भी यह चतुर्थ नरक में दश सागर की स्थिति वाले नरक में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई। चतुर्थ नरक से निकल कर यह दुवारा भी सिंह की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहाँ से अपने समय पर मर कर फिर यह बालुका प्रभा नाम की तीसरी पृथिवी में सात सागर की उत्कृष्ट स्थिति लेकर नैरयिक की पर्याय में उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर फिर यह पक्षियों के कुल में उत्पन्न हुई। यहाँ से मर कर

१७ सागरनी उत्कृष्ट स्थितिवाला नरकमां नैरयिकना पर्यायथी जन्म पासी. त्यांनी स्थिति पूरी करीने न्यारे ते त्यांथी नीकणी ते त्रील वार पणु ते उरः परिसर्पमां उत्पन्न थध. त्यांथी पडेलांनी जेम काण करीने चौथी पंक्त-प्रभा पृथिवीमां-के न्यां दशसागरनी नैरयिकोंनी उत्कृष्ट स्थिति छे, त्यां नैर-यिकनी पर्यायथी उत्पन्न थध, त्यांथी नीकणीने ते सिंहेना पर्यायथी जन्म पासी. पडेलांनी जेम त्यांथी पणु भरणु पासीने भीलवार पणु चतुर्थ नरकमां दश सागरनी स्थितिवाला नरकमां नैरयिकना पर्यायथी जन्म पासी. चतुर्थ नरकथी नीकणीने ते करी सिंहेना पर्यायथी उत्पन्न थध. त्यांथी भरणु पासीने करी ते बाहुप्रभा नामनी त्रील पृथिवीमां सात सागरनी उत्कृष्ट स्थिति लधने नैर-यिकनी पर्यायमां जन्म पासी. त्यांथी नीकणीने ते करी ते पक्षीज्जाणा कुलमां

सृत्य द्वितीयवारमपि प्रथमायां पृथिव्यां पत्योपमस्याऽसंख्येयभागस्थितिकेषु नैरयिकेषु नैरयिकतयोत्पन्ना ' इति ।

' तत्रो उवट्टिता ' तत उद्वर्त्य=रत्नप्रभातो निः सृत्य यानि इमानि ' खर-यरविहाणाइ ' खरविधानानि चर्मपक्ष्यादीनि भवन्ति तेषु, यावत् अथोत्तरं च खलु यानीमानि खरवादरपृथिवी कायिकविधानानि तेषु खरवादरपृथिवीकायिक-तयाऽनेकवातसहस्रकृत्वः सद्युत्पन्ना ॥ सू०६ ॥

मूलम्—सा णं तत्रोऽणंतरं उवट्टिता इहेव जंबूद्वीवे दीवे भारहेवासे चंपाए नयरीए सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स भहाए भारियाए कुच्छिसि दारियत्ताए पच्चायाया तएणं सा भहा सत्थवाही णवणहं मासाणं० दारियं पयाया सुकुमालकोमलियं गयतालुयसमाणं, तीसे दारियाए निव्वत्तवारसाहियाए अम्मा-पियरो इमं एयारुवं गोन्नं गुणानिप्फन्नं नामधेज्जं करेति—जम्हा णं अम्हं एसा दारिया सुकुमाला गयतालुयसमाणा तं होउणं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जे सुकुमालिया, तएणं तीसे दारियाए अम्मापियरो नामधेज्जं करेति सूमालियत्ति, तएणं सा सूमालिया दारिया पंचधाई परिग्गहिया तं जहा—खीरधाईए

से भी मर कर असंज्ञी जीवों में और फिर वहां से मर कर फिर दुबारा भी प्रथम पृथिवी में १ एक पत्य के असंख्यात वे भाग प्रमाण स्थितिवाले नरकावासों में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई । उस रत्न प्रभा पृथिवी से निकल कर फिर यह जितने ये पक्षिभेद हैं—चर्म पक्षी आदि हैं—उनमें और उनके बाद जो ये खर—बादर—पृथिवीकायादि भेद हैं उनमें खरबादर पृथिवीकायिकरूपसे लाखों बार उत्पन्न हुई ॥सू०६॥

अने इरी लांथी भरलु पाभीने णीएवार पलु पडेली पृथिविमां १ ओक पत्थना असंख्यातमां लाग प्रभाए स्थितिवाणा नरकावासोमां नैरयिकना पर्यायथी नरम पाभी. ते रत्नप्रभा पृथिविथी नीकणीने इरी ते ओटला पक्षी ओहा छे—अमं पक्षी वगेरे छे—तेओमां अने त्थारपछी भर—आहर पृथिवीकाय वगेरे ओह छे तेओमां भर—आहर पृथिवीकायिकना इयमां लापो वार नरम पाभी. सू. ६

जाव गिरिकंदरमालीणा इव चंपकलया निव्वाए निव्वाघायंसि
जाव परिवड्डइ, तएणं सा सूमालियादारिया उम्मुक्कवालभावा
जाव रूवेण य जोव्वणेण य लावणणेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठ
सरीरा जाया यावि होत्था ॥ सू० ७ ॥

टीका—‘सा णं तओ’ इत्यादि । सा खलु नागश्रीः ततोऽनन्तरम् उद्वृत्य
जम्बूद्वीपे दीपे भारते वर्षे चम्पायां नगर्यां सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य भद्राया भार्यायाः
कुक्षौ ‘पञ्चायाया’ प्रत्यायाता गर्भसमागता । ततः खलु सा भद्रा सार्थवाही
नवसु मासेषु बहुप्रतिपूणेषु अर्द्धाष्टमेषु रात्रिन्दिवेषु व्यतिक्रान्तेषु सत्सु दारिकां

‘सा णं तओऽणंतरं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(सा णं तओऽणंतरं उवट्टित्ता) इसके बाद वह नागश्री खर
पृथ्वी कायिका से निकल कर (इहेव जंबूद्वीपे दीपे भारहे वासे चंपाए
नयरीए सागरदत्तसस सत्थवाहसस भद्राए भारियाए कुच्छिसिदारियत्ताए
पञ्चायाया) इसी जंबूद्वीप नाम के द्वीप में स्थित भारतवर्ष नामके क्षेत्र
में वर्तमान चंपानगरी में सागरदत्त सेठ की धर्मपत्नी-भद्रा की कुक्षि में
पुत्रीरूप से अवतरी (तएणं सा भद्रा सत्थवाही नवण्हं मासाणं दारियं
पयासा सुकुमालकोमलियं गयतालुयसमाणं तीसे दारियाए निव्वत्त
वारिसाहियाए अम्मापियरो इमं एयारुवं गोन्नं शुणनिप्फन्नं नाम
धेज्जं करेत्ति, जम्हाणं अम्हं एसा दारिया सुकुमाला गयतालुय समाणा
तं होउणं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जे सुकुमालिया) भद्रा सार्थ

‘सा णं तओऽणंतरं’ उवट्टित्ता’ इत्यादि—

टीकार्थ—(सा णं तओऽणंतरं उवट्टित्ता) त्थारपथी ते नागश्री भर पृथिव्या
यिकथी नीकणीने (इहेव जंबूद्वीपे दीपे भारहे वासे चंपाए नयरीए सागरद-
त्तसस सत्थवाहसस भद्राए भारियाए कुच्छिसि दारियत्ताए पञ्चायाया)
ओ ७ ७ जंबूद्वीप नामना द्वीपमां आवेला भारतवर्ष नामना क्षेत्रमां विधमान
चंपानगरीमां सागरदत्त सेठनी धर्मपत्नी भद्राना उदरमां पुत्री रूपमां अवतरी.
(तएणं सा भद्रा सत्थवाही नवण्हं मासाणं० दारियं पयाया सुकुमालकोम-
लियं गयतालुयसमाणं तीसे दारियाए निव्वत्तवारिसाहियाए अम्मापियरो इमं
एयारुवं गोन्नं शुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेत्ति, जम्हाणं अम्हं एसा दारिया सुकु-
माला गयतालुयसमाणा तं होउणं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जे सुकुमालिया)

‘पयाया’ प्रजाता=प्रजनितवती, किं भूतां दारिकामित्याह—‘सुकुमालकोम-
लियं’ सुकुमारकोमलाम्—अतिमृदुलाम् गजतालुकसमानां अङ्गस्यादिकोमलतया
गजतालुन्ययामित्यर्थः । तस्या दारिकाया ‘निव्वत्तचारसाहियाए’ निर्द्वैतद्वादशा-
हिकायाः सम्प्राप्तद्वादशदिवसायाः अम्बापितरौ=मातापितरौ इदमेतद्दूषं ‘गौणं’ गौणं
=गुणेभ्य आगतं=प्राप्तं गुणनिष्पन्नं=गुणबोधकं नामधेयं कुरुतः कर्तुर्विचारयतः
तथाहि यस्मात् खलु अस्माकमेया दारिका सुकुमारा गजतालुकसमाना जाता,
तद्=तस्मात् भवतु खलु अस्माकमस्या दारिकाया नामधेयं ‘सुकुमारिका’
इति । ततः विचारकरणानन्तरं खलु तस्या दारिकाया अम्बापितरौ नामधेयं कुरुतः
‘सुकुमारिका’ इति । ततः खलु सा सुकुमारिका दारिका पञ्चधात्रीपरिशुद्धीता-
पञ्चसंख्यकाभिर्धात्रीभिः=उपमातृभिः सुरक्षिता जाता, तद् यथा=तासां पञ्चानां
धात्रीणां नामानि दर्शयति ‘खीरधार्ण जाव गिरकंदर’ इति । क्षीरधान्या=स्तन्य-

वाहिके गर्भे के नौ मास तथा साढे सात दिन रात पूर्णरूप से व्यतीत
हो चुके तब उसने पुत्रीको जन्म दिया । यह पुत्री अत्यन्त कोमल अंग-
वाली थी इसी लिये गजका तालु भाग जिस प्रकार मृदुल होता है यह
वैसी ही कोमल थी । जब यह १२ बारह दिन की हो चुकी—तब इस के
मातापिताने इसका ‘यथा नाम तथा गुण’ इस कहावतके अनुसार गुणों
को लेकर नाम संस्कार करने का विचार किया । विचार करने के बाद
उन्होंने इस खवाल से कि यह हमारी पुत्री अत्यन्त सुकुमार और गज
तालु का के जैसी मृदुल है अतः इसका नाम सुकुमारिका रहे (तएणं
तीसे दारियाए अम्मा पियरो नामधेज्जं करेति सूमालियत्ति) उस
कन्या का नाम सुकुमारिका रख दिया (तएणं सा सुकुमारियदारिया

लद्धा सार्धवाहीना गर्भना नव मास अने साढा सात दिवस रात पूरा
थई अक्या त्थारे तेणे पुत्रीने जन्म आये. आ पुत्री अतीव कोमलांगी
हती. हाथीना ताणवाने लागेवे सुकोमण छाय छे, ते तेवीअ कोमण
हती. अन्धारे ते आर दिवसनी थई गई त्थारे तेना मातापिताअे वेतुं नाम
तेवा शुष्णवाणी अे कडेवत सुअ्ण शुष्णेना आधारे तेना नाम संस्कार करवाने।
विचार कर्ये. विचार कर्या आइ तेअेअे पोतानी पुत्रीनी सुकोमण दृष्टि समक्ष
राअीने अेटवे के तेअेअे आ अमाअे विचारिने के आ भारी पुत्री हाथीना
ताणवा वेवी सुकोमण छे माटे अेतुं नाम सुकुमारी राअीअे.

(तएणं तीसे दारियाए अम्मावियरो नामधेज्जं करेति सूमालियत्ति)
ते कन्यातुं नाम सुकुमारी राअु.

दायिन्या, यावत्करणादेवं बोध्यम्—‘ मंडणघाईए ’ मज्जनघाईए कीलावणघाईए अंकघाईए’ इति । मण्डनधात्र्या=रत्नमालयाङ्कालरपरिधापिकया, मज्जनधात्र्यस्=स्नानकारिकया, क्रीडनधात्र्या=या क्रीडां=खेलनं कारयंति तथा, तथा अङ्कधात्र्या=उत्सङ्गे स्थापिकया च पाल्यमाना, उपलाल्यमाना आलिङ्ग्यमाना स्तूयमाना प्रसु-
म्ब्यमाना, गिरिकन्दरमालीना चम्पकलतेव निर्वाते महावातरहिते निर्व्याघाते=

पंचघाई परिगहिया तं जहा—खीरघाईए जाव गिरिकंदरमालिणा इव चंपकलया निव्वाए निव्वाघायंसि जाव परिवड्ढुह—तएणं सा सुमालिया दारिया उम्मुक्कवालभावा जाव रूवेणं य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था) इसकी रक्षा के लिये माता पिताने ५ घायमाताए—उपमाताएँ—रख दी—उनकी देखरेखमें यह सुरक्षित रहने लगी उनके नाम ये हैं—क्षीरधात्री दुग्ध पान करानेवाली धाय, मंडनधात्री—वस्त्र माला अलंकार आदि पहिरानेवाली धाय, मज्जन धत्री—स्नान करनेवाली घाय, क्रीडन धात्री—खेल कुंद करनेवाली धाय, अंक धात्री—अपनी गोद में बैठानेवाली धाय, इस तरह इन ५ घाय माताओं द्वारा पालित होती हुई, उपलालित होती हुई, आलिङ्ग्य मान होती हुई, स्तूयमान होती हुई और प्रसुम्ब्यमान होती हुई यह सुक-
मारिका कन्या, गिरिकन्दरा में उत्पन्न हुई चम्पकलता जैसे महावातसे वर्जित एवं उपद्रवों से रहित स्थान में आनन्द के साथ बढ़ता है—उसी प्रकार घटने लगी । धीरे २ बाल्यावस्था से जब यह रहित हो गई—तब

(तएणं सा सुकुमारिया दारिया पंचघाई परिगहिया तं जहा—खीरघाईए जाव गिरिकंदरमालिणा इव चंपकलया निव्वाए निव्वाघायंसि जाव परिवड्ढुह—
तएणं सा सुमालिया दारिया उम्मुक्कवालभाव जाव रूवेणं य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठ सरीरा जाया यावि होत्था)

तेना रक्षण्णु माटे माता-पितान्णे ५ धाय-माताञ्जेण उपमाताञ्जेणी नीम-
लुं क डरी, तेमनां नामो नीचे लप्या मुज्ज छे—क्षीरधात्री—दूध पीवडावनारं
धाय, मंडनधात्री-वस्त्र, भाणा, अलंकारे वगेरे पहिरावनारी धाय, मज्जन-
धात्री-स्नान करावनारी धाय—क्रीडनधात्री रमाडनार धाय, अंकधात्री—पोताना
पोतानां मेसाडनारी धाय, आ रीते आ ५ धाय माताञ्जे वडे पालित थती-
उपपालित थती, आदिग्यमान थती, स्तूयमान थती अने प्रसुम्ब्यमान थती ते
सुकमारिका कन्या गिरिकंदराञ्जेमां उत्पन्न थथेत्थी चंपकलतानी नेम महावातधी
रक्षित तेमज्ज पीज्ज उपद्रवोथी रक्षित स्थानमां सुपेथी वधे छे. तेमज्ज भेटी

उपद्रववर्जिते स्थाने यांश्चतुर्मुखं मुखेन परिवर्धते स्म । ततः खलु सा कुमारिका दारिका
उन्मुक्तवालाभावाः=व्यतीतवाल्यावस्था, यौवनमनुप्राप्ता यावद् रूपेण=आकृत्या च,
यौवनेन=तारुण्यवयसा च, लावण्येन=यौवनवयोजनितकान्तिविशेषेण च, उत्कृष्टा
=विशेषशोभासम्पन्ना, उत्कृष्टशरीरा=सर्वाङ्गसुन्दरी जाता चाप्यभवत् ॥ सू० ७ ॥

मूलम्—तत्थ णं चंपाए नयरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे
अड्डे० तस्स णं जिणदत्तस्स भद्दा भारिया सूमाला इट्ठा जावं
माणुस्सए कामभोए पच्चणुलभवमाणा विहरइ, तस्स णं जिण-
दत्तस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सागरए नाम दारए
सुकुमाले जाव सुरूवे, तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया
कयाई साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमिच्चा सागर-
दत्तस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीइवयइ इमं च णं सूमालियां
दारिया णहाया चेडियासंघपरिवुडा उप्पि आगासतलगंसि
कणगतेइसएणं कीलमाणी२ विहरइ, तएणं से जिणदत्ते सत्थ-
वाहे सूमालियं दारियं पासइ पासिच्चा सूमालियाए दारियाए
रूवे यइ जायविम्हए कोडुंविणपुरिसे सहावेइ सहाविच्चा एवं
वयासी—एस णं देवाणुप्पिया ! कस्स दारिया किं वा णामधेज्जं

यौवनने इसके शरीर पर अपना अधिकार स्थापित करना प्रारंभ कर
दिया—उस समय यह रूप आकृति—से यौवन—तारुण्य वय से, और
यौवन वय जनित कान्ति विशेषसे विशिष्ट शोभा संपन्न हो गई और
समस्त इस के शारीरिक अवयव सुंदर हो गये अर्थात् उस समय यह
सर्वाङ्ग सुन्दरी बन गई । सू० ७ ।

थवा लागी. धीमे धीमे न्यारे ते अथपणु वटापीने युवावस्था संपन्न थवा
भांडी न्यारे तेना शरीर उपर यौवनना जिहो देभावालाग्यां. ते सभये ते इप-
आकृति-थी, यौवन-तारुण्य-धी अने यौवनावस्था जनित सविशेष कान्तिथी
विशिष्ट शोभा संपन्न थथं गथ अने तेना शरीरनां अर्धा अंगे सुंदर थथं
गथां, अट्ठे के ते वणते ते सर्वांग सुंदरी अनी गथं. ॥ सूत्र ७ ॥

से ?, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जिणदत्तेण सत्थवाहेणं एवं
 बुत्ता समाणा हट्ट करयल जाव एवं वयासी—एस णं देवाणु-
 प्पिया ! सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स धूया भदाए अत्तया सूमा-
 लिया नाम दारिया सुकुमालपाणिपाया जाव उक्किट्टूसरीरा
 तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे तेसिं कोडुंबियाणं अंतिए एयमट्ठं
 सोच्चा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णहाए
 जाव मित्तनाइ परिवुडे चंपाए० जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव
 उवागच्छइ, तएणं सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं
 एजमाणं पासइ पासित्ता आसणाओ अब्भुट्टेइ अब्भु-
 ट्ठित्ता आसणेणं उवणिमंतेइ उवणिमंतित्ता आसत्थं वीसत्थं
 सुहासणवरगयं एवं वयासी—भण देवाणुप्पिया ! किमाग-
 मणपओयणं ?, तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तं
 सत्थवाहं एवं वयासी—एवं खल्ल अहं देवाणुप्पिया ! तव धूयं
 भदाए अत्तियं सूमालियं सागरस्स भारियत्ताए वरेमि, जइ णं
 जाणाह देवाणुप्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो
 वा संजोगो दिज्जउणं सूमालिया सागरस्स, तएणं देवा-
 णुप्पिया किं दलयामो सुंक्कं सुमालियाए?, तएणं से सागर-
 दत्ते तं जिणदत्तं एवं वयासी—एवं खल्ल देवाणुप्पिया सूमालिया
 दारिया मम एगा एगजाया इट्ठा जाव किमंग पुण पासणयाए
 तं नो खल्ल अहं इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि
 विप्पओगं तं जइणं देवाणुप्पिया ! सागरदारए मम घरजामाउए

भवइ तो णं अहं सागरस्स दारगस्स सुमालियं दलयामि-
तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं बुत्ते
समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता साग-
रदारगं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता ! साग-
रदत्ते सत्थवाहे मम एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया !
सुमालिया ! दारिया मम एगा एमजाया इत्थं तं चैव तं जइ
णं सागरदारए मम घरजामाउए भवइ ता दलयामि, तएणं
से सागरए दारए जिणदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं बुत्ते समाणे
तुसिणीए, तएणं जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया क्वाइं सोहणंसि
तिहिकरणदिवसणकखत्तमुहुत्तंसि विउले असणवाणखाइन्ना-
इमं उवक्खवावित्ता मित्तणाइ० आनंतेइ जव सुम्मापित्ता
सागरं दारगं पहायं जाव सत्थालंकासवीन्त्तं केइ, कण्ठि-
पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुक्खंकेइ, दुक्खंविन्ना मित्तं
जाव संपरिवुडं सत्थिद्वीए साओ विदुत्तं मित्तच्छइ, मित्त-
च्छिता चंपानवरिं मज्झमंकेणं जेणं जणदुक्खं विवे देवेइ
उवागच्छइ, उवागच्छिता मीकंकेणं पत्तंत्तं वेइ, पत्तंत्तं
वित्ता सागरगं दारगं सत्थदत्तं जणं उवागच्छइ, उवाग-
रदत्ते सत्थवाहे विदुत्तं जणदुक्खं पत्तंत्तं वेइ, पत्तंत्तं
वेइ उवक्खदवित्तं जव सुम्मापित्तं जणं उवागच्छइ, उवाग-
दारियाए मदिं जणं उवागच्छइ, उवागच्छिता मीकंकेणं
सेहिं मजावइ मज्झमंकेणं जेणं जणदुक्खं विवे देवेइ
दारगं सुम्मापित्तं जणं उवागच्छइ, उवागच्छिता मीकंकेणं

टीका—‘तत्थ णं चंपाए’ इत्यादि । तत्र खलु चम्पायां नगर्यां जिनदत्तो नाम सार्थवाह आढ्यो यावद् अपरिभूत आसीत्, तस्य जिनदत्तस्य भद्रा भार्या आसीत्—सा किम्भूता—सुकुमारा इष्टा यावद् मानुष्यकान् ‘पञ्चणुभवमाणा’ प्रत्यनुभवन्ती विहरति । तस्य खलु जिनदत्तस्य पुत्रो भद्राया भार्याया आत्मजः= अङ्गजातः, सागरो नाम दारकः आसीत् स किम्भूतः—सुकुमारपाणिपादः, सर्व-लक्षणसम्पन्नः यावत्—सुरूषः । ततः खलु स जिनदत्तसार्थवाहः अन्यदा कदाचित्

‘तत्थ णं चंपाए’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तत्थ णं चंपाए नगरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे अड्डे, तस्स णंजिणदत्तस्स भद्रा भारिया, सूमाला इट्ठा जाव माणुस्सए कामभोए पञ्चणुभवमाणा विहरइ) उस चंपा नगरीमें जिनदत्त नामका एक सार्थवाह रहता था जो धनधान्य आदि से विशेष परिपूर्ण एवं जनमान्य था । इसकी धर्मपत्नी का नाम भद्रा था । यह सर्वाङ्ग सुन्दरी थी । समस्त अंग और उपांग इसके बड़े ही सुकुमार थे । यह अपने पतिको अत्यन्त इष्ट प्रिय थी । पति के साथ मनुष्य भव सम्बन्धी काम भोगों को भागती हुई यह आनन्द के साथ अपने समय व्यतीत किया करती थी (तस्स णं जिणदत्तस्स पुत्ते भद्राए भारियाए अत्तए सागरए नाम दारए सुकुमाले जाव सुरूवे) भद्रा भार्या से उत्पन्न हुआ जिनदत्त सार्थवाहके एक पुत्र था—जिसका नाम सागर था । यह सुकुमाल यावत्

तत्थणं चंपाए इत्यादि—

टीकार्थ—(तत्थणं चंपाए नगरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे अड्डे तस्सणं जिणदत्तस्स भद्रा भारिया, सूमाला इट्ठा जाव माणुस्सए कामभोए पञ्चणुभवमाणा विहरइ) ते चंपा नगरीमां एतदत्त नामे अेक सार्थवाह् रडेते इते। ते धनधान्य वगेथी सविशेष संपन्न तेमज्ज समाजमां पूछते। भाणुस्स इते। तेनी धर्मपत्नीतुं नाम लद्रा इतुं, ते सर्वांग सुंदरी इती। तेना अधा अंगो अने उपांगो अहुं ज सुकुमण इतां, ते पोताना पतिने अहुंज वहाली इती। पतिनी साथे मनुष्य लवना कामलोगो लोगवती ते सुपेथी पोतानो वपत्त पसार करी रही इती।

(तस्सणं जिणदत्तस्स पुत्ते भद्राए भारियाए अत्तए सागरए नामं दारए सुकुमाले जाव सुरूवे)

लद्रा(भार्या)थी उत्पन्न थयेतो लद्रा(भार्या)ने अेक पुत्र इते। तेनुं नाम सागर इतुं। ते सुकुमार यावत् सुंदर इयवान इते।

स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति=निर्गच्छति, प्रतिनिष्क्रम्य, सागदत्तस्य गृहस्य 'अदूरसामन्ते' =नातिदूरे नातिसमीपे 'वीईवयइ' व्यतिव्रजति=गच्छति, 'इमंचणं' अस्मिन् समये सुकुमारिका दारिका स्नाता=कृतस्नाना 'चेडियासंघपरिवुडा' चेटिकासंघपरिवृता=दासीसमूहमध्यगता, उपरि आकाशतलके-प्रासादस्याट्टालिकोपरि 'कणगतेदुसकेणं' कनकतेदुससयेन 'तेदुसय' इतिदेशीशब्दः, सुवर्णमयकन्दुकेन 'कीलमाणी २' विहरति, ततः खलु स जिनदत्तः सार्थवाहः सुकुमारिकां दारिकां पश्यति, दृष्ट्वा सुकुमारिकाया दारिकाया रूपे च यौवने च लावण्ये च 'जाय विम्हए' यावत् विस्मितः=आश्चर्ययुक्तः सन् कौटुम्बिकपुरुषान्न=आज्ञाकारिणः पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-एषा खलु हे देवानुप्रिया। कस्य दारिका किं वा नामधेयं 'से' इति तस्याः?, ततः खलु ते

अच्छे रूपवाला था। (तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाईं साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता सागरदत्तस्स गिहस्स अदूरसामन्तेणं वीईवयई) एक दिन जिनदत्त सार्थवाह अपने घरसे निकला और निकलकर सागरदत्तके घरके पास से हो कर जा रहा था। (इमं च णं सूमालिया दारिया ण्हाया चेडियासंघपरिवुडा उप्पिआगा त्तलगंसि कणगतेदूसएणं कीलमाणी २ विहरइ) इसी समय सुकुमारिका दारिका नहा थो कर अपने प्रासाद की छत पर दासी समूहके साथ २ सुवर्णमय कंदुक (गेंद) से खेल रही थी। (तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं पासइ पासित्ता सूमालियाए दारियाए रूवेय ३ जाय विम्हए कोडुविय पुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी एसणं देवाणुप्पिया । कस्स दारिया किं वा-नामधेज्जं से ? तएणं ते

तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाईं साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता सागरदत्तस्स गिहस्स अदूरसामन्तेणं वीईवयई)

એક દિવસે જીનદત્ત સાર્થવાહ પોતાને ઘેરથી બહાર નીકળ્યો અને નીકળીને સાગરદત્તના ઘરની પાસે થઈને બેઠો રહ્યો હતો.

(इमं च णं सूमालिया दारिया ण्हाया चेडियासंघपरिवुडा उप्पि आगासत्तलगंसि कणगतेदूसएणं कीलमाणी २ विहरइ)

ते वभते सुकुमारिका दारिका स्नान करीने पोताना भडेहनी अगाशी ७५२ दासी समूहनी साथे सुवर्णमय कंदुक (गेंद) रभती હતી.

(तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं पासइ पासित्ता सूमालियाए दारियाए रूवेय ३ जाय विम्हए कोडुविय पुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी एसणं देवाणुप्पिया ! कस्स दारिया किं वा नामधेज्जं से ? तएणं ते कोडुविय

कौटुम्बिकपुरुषा जिनदत्तेन सार्थवाहेनैवमुक्ताः सन्तो हृष्टवृष्टाः—अतिमुदिताः ' कर-
यल जाव ' करतलपरिशृहीतं शिर आवर्तं दशनखं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवा;
दिषुः—हे देवानुप्रियाः ! एषा सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य ' धूया ' दुहिता=पुत्री,
भद्राया आत्मजा सुकुमारिका नाम दारिका सुकुमारपाणिपादा यावद्-रूपेण च
यौवनेन च लावण्येन च उत्कृष्टा उत्कृष्ट शरीरा । ततः खलु स जिनदत्तः सार्थ-

कौटुम्बिय पुरिसा जिणदत्तेण सत्थवाहेण एवं वुत्तासमाणा हृष्ट करयल
जाव एवं वयासी-एसणं देवाणुप्पिया ! सागरदत्तसस सत्थवाहसस धूया-
भदाए अत्तिया सूमालिया नाम दारिया सुकुमालपाणिपाया जाव उक्किह
सरीरा) खेलती हुई उस कुमारिका दारिका को जिनदत्त सार्थवाह ने
देखा-देखकर वे सुकुमारिका दारिका के रूप यौवन एवं लावण्य में
आश्चर्यचकित हो गये-और आश्चर्य से युक्त होकर उन्होंने कौटुम्बिक
पुरुषों को बुलाया-बुलाकर वे उनसे इस प्रकार कहने लगे—हे देवानु-
प्रियो ! यह कन्या किसकी है इसका नाम क्या है । जिनदत्त सार्थवाह
के द्वारा पूछे गये उन कौटुम्बिक पुरुषों ने हर्षित हो कर और अपने
दोनों हाथों जोड़ कर बड़े विनय के साथ उनसे ऐसा कहा—हे देवानु-
प्रिय ! यह पुत्री सागरदत्त सार्थवाहकी है । भद्रा भार्या की कुक्षि से
यह जन्मी है । इसका नाम सुकुमारिका है । इसके कर चरण बड़े ही
सुकुमार हैं यावत् रूप, यौवन एवं लावण्यसे यह सर्वोत्कृष्ट है और
सर्वाङ्ग सुन्दरी है । (तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे तेसिं कौटुम्बियाणं

पुरिया जिणदत्तेण सत्थवाहेण एवं वुत्ता समाणा हृष्ट करयल जाव एवं वयासी-
एसणं देवाणुप्पिया ! सागरदत्तसस सत्थवाहसस धूया भदाए अत्तिया सूमालिया
नाम दारिया सुकुमालपाणिपाया जाव, उक्किहसरीरा)

रभती सुकुमार दारिकाने एनदत्त सार्थवाहे जेधं जेधने तेओ सुकुमार
दारिकाना इप, यौवन अने लावण्यमां आश्चर्यं चकित थधं गथा अने त्थार-
पणी तेभणु कौटुम्बिक पुरुषाने जेलाग्या अने जेलावीने ते तेभने आ
प्रमाणु कडेवा लाग्या के डे देवानुप्रियो । आ कन्या केनी छे ? जेअं नाम थुं
छे ? एनदत्त सार्थवाह वडे जेनी रीते पूछाजेला ते कौटुम्बिक पुरुषाओ हर्षित
थधने पोताना अने हाथ जेडीने जहुअ विनयनी साथे तेभने आ प्रमाणु
कहुं के डे देवानुप्रिय । सार्थवाह सागरदत्तनी आ पुत्री छे. भद्राभार्याना उदरथी
आनो जन्म थयो छे सुकुमारिका आअं नाम छे. जेना हाथपग भूण अ सुको
भण यावत् इप, यौवन अने लावण्यथी आ सर्वोत्कृष्ट छे अने सर्वाङ्ग सुन्दरी छे.

ब्राह्मस्तेषां कौटुम्बिकानामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्नातो यावद् मित्रज्ञातिपरिवृतश्रम्पाया नगर्यां मध्ये भूत्वा यत्रैव सागर-दत्तस्य गृहं तत्रैवोपागच्छति, ततस्तदनन्तरम् सागरदत्तः सार्थवाहः खलु जिनदत्तं सार्थवाहम् एजमानम्=आगच्छन्तं पश्यन्ति, दृष्ट्वाऽऽसनादुत्तिष्ठति, उत्थाय 'आस-णेणं उवणिमंतेइ' आसनेनोपनिमन्त्रयति=आसन उपवेशनार्थं प्रार्थयति, उपनि-मन्त्र्य, आसनोपर्युपवेशनानन्तरम्, आस्वस्थं=मार्गश्रमापगमात् श्रान्तिरहितं, विस्व-स्थं=विशेषतो विश्रान्तिप्लुपगतं, सुखासनवरगतं=मुखेन विशिष्टासनोपविष्टं, तं

अंतिए एयमद्वं सोच्चा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिच्चा ष्हाए, जाव मित्तणाइपरिवुडे चंपाए० जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, तएणं सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता आसणेणं उवणि-मंतेइ उवणिमंतिच्चा आसत्थं सुहासणवरगयं एवं वयासी) जिनदत्त सार्थवाहने उन कौटुम्बिक पुरुषों के मुख से जब इस अर्थ को सुना तो सुनकर वह पहिले अपने घर गया—वहाँ जा कर उसने स्नान किया । यावत् फिर वह अपने मित्र, ज्ञाति आदि परिजनों के साथ चंपानगरी के बीच से हो कर जहाँ सागरदत्त का घर था वहाँ पहुँचा—सागरदत्तने ज्यों ही अपने घर पर आते हुए जिनदत्त सार्थवाहको देखा - तो वह जल्दीसे अपने स्थान से उठा—और उठकर " आप यहाँ बैठिये " इस प्रकार उनसे कहने लगा जब वे यथोचित स्थान पर बैठ चुके और आस्व

(तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे तेसिं कौटुम्बिक वियाणं अंतिए एयमद्वं सोच्चा-जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिच्चा ष्हाए, जाव मित्तणाइ परिवुडे चंपाए० जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, तएणं सागरदत्ते सत्थवाहे, जिणदत्तं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता आसणेणं उवणिमंतेइ उवणिमंतिच्चा आसत्थं वीसत्थं सुहासणवरगयं एवं वयासी)

अनदत्त सार्थवाहे ते कौटुम्बिक पुरुषाना मुपथी आ वात सांखणीने सौ पडेलां तेष्वा पोताने घेर गया. त्यां पडेलांतीने तेभल्ले स्नानं कथुं. यावत् पथी ते पोताना मित्र, ज्ञाति वगेरे परिव्रजोनीं साथे यथा नगरीनीं वञ्चे थधने न्यां सागरदत्तं घेर इत्तुं त्यां पडेलांथ्या. सागर-दत्त अनदत्त सार्थवाहने पोताने घेर यावता नेधने स्वराथीं ते पोतानां आसनं उपरथीं जिलो थधं गये. अने जिलो थधने " तमे अहीं येसे " "

जिनदत्तं सार्थवाहमेवं=वक्ष्यमाणप्रकारेणावादीत्-हे देवानुप्रिय ! भण=कथय, किमा-
गमनप्रयोजनम्=कस्मै प्रयोजनाय समागतो भवान् ? ततः खलु स जिनदत्तः सार्थ-
वाहः सागरदत्तं सार्थवाहमेवं=वक्ष्यमाणप्रकारेणावादीत्-एवं खलु अहं हे देवानु-
प्रिय ! तत्र दुहितरं=पुत्रीं, भद्राया आत्मजां सुकुमारिकां=सुकुमारिकानाम्नी
सागरस्य=सागरनामकस्य मत्पुत्रस्य भार्यात्वेन 'वरेमि' वृणोमि=वाञ्छामि, यदि
खलु त्वं जानीहि हे देवानुप्रिय ! 'जुत्तं वा' युक्तं वा=योग्यं वा-'एतद् कार्यं
समुचितं भवति' ति 'पत्तं वा' प्राप्तं वा=एतद् कार्यं कुलमर्यादामनुप्राप्तं वा,

स्थविश्वस्थ वन जुके-तत्र विशिष्ट आसन पर शांतिके साथ बैठे हुए उन
जिनदत्त सार्थवाह से उसने इस प्रकार पूछा।-(भण देवाणुप्रिया !
किमागमणपओयणं) कहिये देवानुप्रिय ! यहां पधारने का आपका
क्या प्रयोजन है ? किस प्रयोजन से आप यहां आये हैं-कहिये-(तएणं
से जिणदत्तासत्थवाहे सागरदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खलु अहं
देवाणुप्रिया ! तत्र धूयं भद्दाए अंतियं सूमालियं सागरस्स भारियत्ताए
वरेमि जइणं जाणाह देवाणुप्रिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा
सरिसो वा संजोगो दिज्जउणं सूमालिया सागरस्स) जिनदत्त सार्थवा-
हने सागरदत्त सार्थवाहसे तत्र इस प्रकार कहा हे देवानुप्रिय ! मैं आपकी
सुभद्रा की कुक्षिसे उत्पन्न हुई सुमालिका पुत्री को अपने पुत्र सागर की
भार्या बनाना चाहता हूँ । यदि आप इसे स्वीकार करें कि यह कार्य
योग्य है-उचित है-कुल मर्यादा के अनुसार है अथवा मेरा पुत्र आपकी

आ रीते तेभने कडेवा लाज्यो. न्यारे तेज्यो उचित स्थाने भेसी गया अने
आस्वस्थ विश्वस्थ थर्ध सुकथा त्यारे विशिष्ट आसन उपर शांतिपूर्वक भेठेका
ते अनदत्त सार्थवाहने तेजे आ प्रभाजे कहुं-(भण देवाणुप्रिया ! किमागमण
पओयणं) हे देवानुप्रिय ! भतावे अर्धी पधारवानी पाछण आपने। शे। हेतु
छे ? क्या प्रयोजनथी आप अर्धी आन्या छे ?

(तएणं से जिणदत्त सत्थवाहे सागरदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खलु
अहं देवाणुप्रिया ! तत्र धूयं भद्दाए अंतियं सूमालियं सागरस्स भारियत्ताए वरेमि
जइणं जाणाह देवाणुप्रिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो
दिज्जउणं सूमालिया सागरस्स)

अनदत्त सार्थवाहे सागरदत्त सार्थवाहने त्यारे आ प्रभाजे कहुं के हे
देवानुप्रिय ! हुं तभारी सुलद्राना उदरथी न्म पाभेदी सुभादिका पुत्रीने भारी
पुत्र सागरनी पत्नी भनववा धन्धुं छुं. आप ने भारी भागणी उचित सम्-
भता छे, कुण-भर्यादा योग्य तेभन भारी पुत्र तभारी कन्या भाटे योग्य

पात्रं= 'कन्या योग्योऽयं मत्पुत्रः सागरः' इति, 'सलाहणिज्जं वा' श्लाघनीयं= प्रशंसनीयं वा 'सरिसो वा संजोगो' सदृशो वा संयोगः—अयं कन्यावरयो वैवाहिकः सम्बन्धः कुलेन रूपेण गुणेन वा तुल्य इति, 'तो' तर्हि 'दिग्जड' दक्षात् भवान् खलु सुकुमारिकां दारिकां सागराय=मत्पुत्रायैतिभावः । ततः खलु हे देवानुप्रिय ! ब्रूहि—किं दत्तं—किं दद्यां, शुल्कं=संभानार्थं द्रव्यं सुकुमारिकाया दारिकायाः ? ततः खलु स सागरदत्तः सार्थवाहस्तं जिनदत्तमेवमवादीत्—एवं खलु हे देवानुप्रिय ! सुकुमारिका दारिका ममैका एकजाता=एकैवोत्पन्ना, तथा—इष्टा—अनुकूला, यावत्—कान्ता=ईप्सिता, प्रिया=भीतिपात्रा, मनोज्ञा=मनोगता तथा—

कन्या के योग्य है यह संबन्ध प्रशंसनीय है, कन्या और वर का यह वैवाहिक संबन्ध कुल रूप और गुणों के अनुरूप है तो आप अपनी पुत्री सुकुमारिका को मेरे पुत्र सागर के लिये प्रदान कर दीजिये—(तएणं देवाणुप्पिया ! किं दल्लयामो सुक्कं सुमाल्लियाए ?) हे देवानुप्रिय ! साथ में यह भी कहदीजिये कि सुकुमारिका दारिका के संभानार्थं हम क्या द्रव्य देवें (तएणं से सागरदत्ते तं जिणदत्तं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! सुमाल्लिया दारिया मम एगा, एगजाया इद्धा जाव किमंगणुण पासणयाए तं नो खलु अहं इच्छामि, सुमाल्लियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं तं जहणं देवाणुप्पिया ! सागरदारए मम धरजामाउए भवइ, तो णं अहं सागरस्स सुमाल्लियं दल्लयामि) सागरदत्तए ने जिनदत्त से तब इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! यह सुकुमारिका पुत्री मेरे यहां एक ही लड़की है और यह एक ही उत्पन्न हुई

छे, आ संबंध सारे छे, कन्या तेमए वरने। आ जिन संबंध कुण इय अने शुष्णेने अनुइए छे तो तये तमारी पुत्री सुकुमारिकाने मारा पुत्र सागरने भाटे आपो। (तएणं देवाणुप्पिया ! किं दल्लयामो सुक्कं सुमाल्लियाए ?) हे देवानुप्रिय ! साथे साथे अे पणु अमने जणावे के सुकुमारी दारिकाना संभानार्थं अये शुं द्रव्य इपमां आपीअे ?

(तएणं से सागरदत्ते तं जिणदत्तं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! सुमाल्लिया दारिया मम एगा.एग जाया इद्धा जाव किमंगणुण पासणयाए तं नो खलु अहं इच्छामि सुमाल्लियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं तं जहणं देवाणुप्पिया ! सागरदारए मम धरजामाउए भवइ, तो णं अहं सागरस्स दारगस्स सुमाल्लियं दल्लयामि) तयारे सागरदत्ते जिनदत्तने आ प्रभाणु कहुं के हे देवानुप्रिय ! आ सुकुमारिका दारिकां मारे अेकनी अेक पुत्री छे अने आ अेकए जन्मी छे.

मनोमा-मतसः स्थानभूता, किं बहूना उदुम्बरपुष्पमिव ' उदुम्बरपुष्पं केनापि दृष्टम् ' इतिदत् श्रद्धणदिषयत्वेन सा दुर्लभा, किमङ्ग ! पुन-दर्शनविषयतया, तत्-तस्माद् नो खलु अहमिच्छामि सुकुमारिकाया दारिकायाः क्षणमपि विप्रयोगं=वियोगम्, तत्-तस्माद् यदि खलु हे देवानुप्रिय ! सागरदारको मम ' घरजामा-उए ' गृहजामातृकः=गृहवासीजामाता भवति ' तोणं ' तर्हि खलु अहं सागराय दारकाय सुकुमारिकां ददामि । ततः खलु स जिनदत्तः सार्थवाहः सागरदत्तेन सार्थवाहेनैव मुक्तः स न यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सगरदारकं=स्वपुत्रं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-एवं खलु हे पुत्र ! सागरदत्तः सार्थ-वाहो मम=मां प्रति, ' सम्बन्धसामान्ये पट्टी ' एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! सुकुमारिका दारिका ममैका एक जाता इत्था ' तं चेव'

है। यह मेरे लिये ईष्ट यावत् मनोम है-कान्त है, प्रिय है और मनोज्ञ है। अनुकूल होने से इष्ट, ईप्सित होने से कान्त प्रीतिपात्र होने से प्रिय मनको रुचने वाली होने से मनोज्ञ एवं मन का स्थान भूत होने से मनोज्ञ है। ज्यादा क्या कहूँ यह तो हमें उदुम्बर पुष्प के समान दर्शन दुर्लभ थी-सुनने की तो बात ही क्या। अतः मैं इसे देना नहीं चाहता हूँ। कारण इस सुकुमारिका दारिका के बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता हूँ इसलिए हे देवानुप्रिय ! सागर यदि घरजमाई बन कर रहना चाहें तो मैं उन्हें यह अपनी सुकुमारिका पुत्री दे सकता हूँ। (तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सागरदारगं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता ! सागरदत्ते सत्थवाहे मम एवं

आ मने धंथ यावत् मनोम छे-ओटवे के कांत छे, प्रिय छे, अने मनोम छे. अनुकूल होवा भदल धंथ, धप्सित होवाथी कांत, प्रीतिपात्र होवा भदल प्रिय अने मनने गमे ओवी होवाथी मनोज्ञ तथा मनने आश्रय होवाथी मनोम छे. वधादे शुं डहुं ! आ तो अमने उदुम्बर पुष्पनी लेम दर्शन-दुर्लभ डती. सांभणवानी तो वात न. शी करवी ! ओथी आने हुं आपवा धिच्छतो नथी. कारु के ओना वगर हुं क्षणवार पण रही शकतो नथी. ओटला भाटे हे देवा-नुप्रिय ! सागर ले घर नभाधं धधने भारी पासे रहेवा धिच्छतो डोथ तो हुं आ भारी सुकुमारीका पुत्री तेमने आपी शङुं तेम छुं.

(तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्ते णं सत्थवाहे णं एवं वुत्ते समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदारगं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता ! सागरदत्ते सत्थवाहे मम एवं वयासी-एवं खलु

तदेव=पूर्वोक्तवर्णनमेवात्रबोधं यावत्-तस्माद् नो खल्वहमिच्छामि सुकुमारिकाया दारिकायाः क्षणमपि विप्रयोगं, तत्=तस्माद् यदि खलु सागरदारको मम 'घर-जामाउए' गृहजामातृकाः=गृहवासी जामाताभवति, तर्हि ददामि । ततः खलु त सागरको दारको जिनदत्तेन तार्थवाहेनैवयुक्तः तन् तूष्णीकः=मौनावलम्बी सन् संतिष्ठते ।

वयासी-एवं खलु देवाणुपिया ! सूमालिया दारिया मम एगा एगजाया इहा तं चेव जइणं सागरदारए मम घरजमाउए भवइ ता दलयामि) इस प्रकार सागरदत्त सार्थवहके कहे जाने पर जिनदत्त सार्थवाह जहां अपना घर था वहां आया-वहां आकर उसने अपने सागेर पुत्र को बुलाया । बुला कर फिर उससे उसने ऐसा कहा-हे पुत्र-सागर-दत्त सार्थवाह ने मुझसे ऐसा कहा है कि आपका पुत्र सागर यदि मेरे घर जमाई बन कर रहना चाहें तो मैं अपनी सुकुमारिका उन्हें दे सकता हूँ । उनका घरजमाई बनाने का कारण यह है कि यह सुकुमारिका पुत्र पुत्री उसके एक ही पुत्री है-और एक ही उत्पन्न हुई हैं । यह उसे बहुत ही अधिक इष्ट यावत् मनोम है । इस तरह सागरदत्त का कहा हुआ समस्त कथन जिनदत्त ने अपने पुत्र सागर को सुना दिया । इसलिये वह उसका एक क्षण भी वियोग सहन नहीं कर सकता है । अतः वह

देवाणुपिया ! सूमालिया दारिया मम एगा एगजाया इहा तं चेव जइणं सागर-दारए मम घरजमाउए भवइ ता दलयामि)

आ रीते अनदत्त सार्थवाह तेमनी आ वात सांभलीने ते अनदत्त सार्थवाह नथां पोतानुं घर छंतुं तथां आव्या. तथां आवीने तेणु पोताना सागरपुत्रने गोलाव्या. गोलावीने तेणु तेने आ प्रभाणु कहुं के छे पुत्र ! सागरदत्त सार्थवाह भने आ प्रभाणु कहुं छे के तभारे पुत्र सागर ने भारे. घर नभार्थ रहेवा कभूलतो होथ तो हुं भारी पुत्री सुकुमारिका तेमने आपवा तैवार छुं. तेओ तभने घर नभार्थ जनाववा ओटला भाटे धन्छे छे के सुकुमारिका दारिका तेमनी ओकनी ओक पुत्री छे. ते तेमने अतीव धृष्ट यावत् भनोम छे. आ रीते सागरदत्ते ने कंथ कहुं छंतुं ते अधुं तेमणु पोताना पुत्र सागर आगण रजू कर्तुं. अने छेवटे कहुं के ओटला भाटे न ते ओक क्षण पणु पोतानी पुत्रीने वियोग सही शकतो नथी. तभने ते आ कारणुथी न घर नभार्थ जनाववा धन्छे छे.

ततः खलु जिनदत्तः तार्थवाहो ऽन्यदा कदाचित् शोभने=शुभकारके, तिथिकरणनक्षत्रमुहूर्ते विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यस्युपस्कारयति, निष्पादयति, उपस्कार्य मित्रज्ञातिप्रश्रुतिनामन्त्रयति, आमन्त्र्य 'जाव सम्माणेइ' यावत् सम्मानयति भोजयति, भोजयित्वा वस्त्रादिभिः सत्करोति, सत्कृत्य स्वागतवचनादिनां तुम्हें घरजमाई बनाना चाहता है । (तएणं से सागरए दारए जिणदत्ते णं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिद्धइ, तएणं-जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाइं सोहणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहूर्त्तंसि विउलं असण पान खाइम साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ०आमंतेइ, जाव सम्माणित्ता सागरं दारगं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्स वाहिणं सीयं दुरूहावेइ, दुरूहावित्ता मित्तणाइ जाव संपरिवुडे सव्विड्डीए साओ गिहाओ निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता चंपा नयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ) जिनदत्त सार्थवाह के द्वारा इस प्रकार कहा जाने पर वह सागर दारक चुपचाप रह गया उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । एक दिन जिनदत्त ने शुभ, तिथि करण, दिवस नक्षत्र मुहूर्त्तमें विपुलमात्रा में अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार बनवाया-बनवाकर उसने अपने मित्र ज्ञाति आदिवन्धुओं को आमंत्रित किया आमंत्रित करके फिर उसने उन सबको भोजनकराया-भोजन कराकर

(तएणं से सागरए दारए जिणदत्ते णं सत्थवाहे णं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिद्धइ, तएणं जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाइं सोहणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहूर्त्तंसि, विउलं असणपान खाइम साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ आमंतेइ, जाव सम्माणित्ता सागरं दारगं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणं सीयं दुरूहावेइ, दुरूहावित्ता मित्तणाइ जाव संपरिवुडे सव्विड्डीए साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता चंपा नयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ)

जिनदत्त सार्थवाह वडे आ प्रमाणे कडेवायेले सागर पुत्र ऐकदम थुप धधने जेसी ज रह्यो. तेणे केड पणु नतने जवाध आये नहि ऐक दिवस जिनदत्ते शुभातिथि, करण, दिवस, नक्षत्र मुहूर्त्तमां पुष्कण प्रमाणमां अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्य रूप यार नतने आहार बनावडाये. बनावडावने तेणे योताना मित्र, ज्ञाति वगेरे संबंधींजोने आमंत्रित कयां. आमंत्रित करीने तेणे ते अथा आवेला संबंधींजोने जमाइया. जमा-

सम्मानयति समान्य सागरं दारकं स्नातं यावत् सर्वालङ्कारविभूषितं कारयति, कारयित्वा पुरुषसहस्रवाहिनीं शिविकां दूरोहयति=आरोहयति, दूरोह मित्रज्ञाति स्वजन-सम्बन्धिभिर्यावत् परिद्वृतः सर्वद्वेषां सकलविभवेन स्वकाद् गृहाद् निर्गच्छति, निर्गत्य चम्पाया नगर्या मध्यमध्येन=मध्येभूत्वा यत्रैव सागरदत्तस्य गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य शिविकातः 'पञ्चोरुहावेद्' प्रत्यचरोहयति, सागरदारकं स्वपुत्रं प्रत्यवतारयति, प्रत्यचरोह सागरकं दारकं सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य उपनयति=समीपमानयति ।

ततः खलु सागरदत्तः सार्थवाहो विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं=चतुर्विधमाहारम् उपस्कारयति=निष्पादयति, उपस्कार्य यावत् = मित्रादिसहितं जिनदत्तमामन्त्र्य भोजयित्वा, सत्कृत्य, संमानयति, समान्य सागरकं दारकं सुकुमारिकया दारिकाया सार्थं 'पट्टयं' पट्टकं 'दुरूहावेद्' दूरोहयति=आरोहयति, दुरूह श्वेतपीतकः=

सवका वस्त्रादिक से सत्कार किया सत्कार करके फिर उनका स्वागत बचानादिकों द्वारा सन्मान किया- । सन्मान कर के बाद में उसने अपने सागरपुत्रको स्नान कराया- । स्नान कराकर उसने उसे समस्त अलंकारो से विभूषित कराया । विभूषित कराकर बाद में उसने उसे पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका पर चढाया चढाकर मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबंधियों को साथ लेकर फिर वह सकल विभवके अनुसार अपने घर से निकला-निकलकर चंपानगरी के बीचो बीच से होता हुआ सागरदत्त का जहाँ घर था वहाँ पहुँचा । (उवागच्छित्ता सीयाओ पञ्चोरुहावेह, पञ्चोरुहावित्ता सागरगं दारगं सागरदत्तस सत्यं उवणेद्, तएणं, सागरदत्ते सत्यवाहे विपुलं असणपाण खाइम साइमं उवक्खडावेह, उवक्खडावित्ता जाव सम्माणत्ता सागरगं दारगं सुमालियाए दारियाए सद्धिं पट्टयं

श्रीने अधाने वओ वणेरे आपीने सत्कार कथे, सत्कार करीने तेहे तेभुं स्वागत पथेने पडे सन्मान कथुं. सन्मान कथां भाइ तेहे पोताना सागर पुत्रने स्नान करावुं स्नान करानीने तेहे तेने अधा अद्वं करीथी शब्बुगारी, शब्बुगारीने तेहे तेने पुइय-सद्धिपवाडिनी पाइपीमां जेसाउथे. त्यारपञ्जी मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबंधीओने साथे लधने ते पोताना अ'पुल्लुं बैलवनी साथे पोताना घेरथी नीकपथे-नीकणीने थ'पा नगरीनी पत्रे थधने ते नथां सागरदत्तुं घर छुं त्यां पडोउथे।

(उवागच्छित्ता सीयाओ पञ्चोरुहावेह, पञ्चोरुहावित्ता सागरगं दारगं सागरदत्तस सत्यं उवणेद्, तएणं, सागरदत्ते सत्यवाहे विपुलअसणपाणखाइम साइमं उवक्खडावेह, उवक्खडावित्ता जाव सम्माणत्ता सागरगं दारगं सुमालियाए

राजतसौवर्णैः कलशैः = वारिपूर्णैर्घटैर्मज्जयति = स्नपयति, मज्जयित्वा अग्निहोमं कारयति, कारयित्वा सागरं दारकं सुकुमारिकाया दारिकायाः पाणिं ग्राहयति ॥ सू. ८ ॥

दुरूहावेह, दुरूहावित्ता सेयोपीएहिं कलसेहिं मज्जावेह, मज्जावित्ता अग्निहोमं करावेह, करावित्ता सागर दारयं सूमालियाए दारियाए पाणिं गिण्हावेह) वहां पहुँचकर उसने अपने पुत्र सागर को पालखी से नीचे उतारा और उतारकर सागरदत्त सार्थवाह के पास उसे लेआया । सागरदत्त सार्थवाहने भी पहिलेसे ही त्रिपुलमात्रा में अशन, पान, खाद्य, एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार तैयार करवालिया था सो उससे मित्रादि सहित जिनदत्त सार्थवाह को आनंद के साथ खिलाया खिलाकर सबका सत्कार किया सन्मान किया । सत्कार सन्मान करने के बाद फिर सागरदत्तने सागर दारक को अपनी पुत्री सुकुमारिका के साथ एक पट्टक पर बैठाया-बैठाकर सुवर्ण चांदी के कलशोंसे उनका अभिषेक कराया अभिषेक हो जाने के बाद अग्निहोम कराया । अग्निहोम जब हो चुका तब सागरदत्तने अपनी पुत्री सुकुमारिका का सागर के हाथ में हस्तमिलाप किया-अर्थात् लग्न कर दिया ॥ सू. ८ ॥

दारियाए सद्धिं पट्टयं, दुरूहावेह, दुरूहावित्ता सेयोपीएहिं कलसेहिं मज्जावेह, मज्जावित्ता अग्निहोमं करावेह, करावित्ता सागरदारयं सूमालियाए दारियाए पाणिं गिण्हावेह)

त्यां पडोन्धीने तेखे पोताना पुत्र सागरने पालखीमांथी नीचे उतार्यो अने उतारीने सागरदत्त सार्थवाहनी पासो दध गयो. सागरदत्त सार्थवाहो पखु पडेलेथी न पुष्कण प्रमाणुमां अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्य रूप थार जतने आहार तैयार करावीने राख्यो हतो. तेखे मित्र वगेरे दोडोनी साथे उनदत्त सार्थवाहने आनंदनी साथे नभाडया अने त्यारपछी तेखे सोने सत्कार तेमन सन्मान कर्युं. सत्कार अने सन्मान कर्यां पाह सागरदत्ते सागरदत्तने पोतानी पुत्री सुकुमारिकानी साथे ओक पट्टक उपर जेसाडयो. जेसाडीने सोना-चांदीना कणशोथी तेमने अलिषेक करावडाओयो. अलिषेकतुं काम पुइं थया पाह तेखे अग्निहोम कराओयो. अग्निहोमनी विधि पूरी थईं गईं त्यारे सागरदत्ते पोतानी पुत्री सुकुमारिकानो सागरनी साथे हस्तमेलनाप करावी दीधो ओदले के लग्न करावी दीधां. ॥ सू. ८ ॥

मूलम्—तएणं सागरदारए सूमालियाए दारियाए इमं
 एयारूवं पाणिफासं पडिसंवेदेइ से जहा नामए असिपत्तेइ
 वा जाव मुम्मुरेइ वा एत्तो अणिट्टतराए चेव० पाणिफासं
 पडिसंवेदेइ, तएणं से सागरए अकामए अवसव्वसे मुहु-
 त्तमित्तं संचिट्टइ, तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे सागरस्स
 दारगस्स अम्मापियरो मित्तणाइ० विउलेण असणपाणखा-
 इमसाइमं पुप्फवत्थ जाव सम्माणेत्ता पडिविसज्जइ, तएणं
 सागरए दारए सूमालियाए सद्धिं जेणेव वासघरे तेणेव उवाग-
 गच्छइ उवागच्छित्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि
 निवज्जइ, तएणं से सागरए दारियाए सूमालियाए दारि-
 याए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, से जहा नामए
 असिपत्तेइ वा जाव अमणामयरागं चेव अंगफासं पच्चणु-
 ब्भवमाणे विहरइ, तएणं से सागरए अंगफासं असहमाणे
 अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिट्टइ, तएणं से सागरदारए सूमा-
 लियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सूमालियाए दारियाए
 पासाउ उट्टेइ, उट्टित्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवाग-
 च्छइ, उवागच्छित्ता सुथणीयंसि निवज्जइ, तएणं सूमालिया
 दारियां तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी पइव्वया पइ-
 मणुरत्ता पतिं पासे अपस्समाणी तलिमाउ उट्टेइ, उट्टित्ता
 जेणेव से सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सागरस्स
 पासे णुवज्जइ, तएणं से सागरदारए सूमालियाए दारियाए

दुच्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जात्र अकामए
अवसवसे मुहुत्तमित्तं संचिट्टइ, तएणं सेसागरदारएसूमा-
लियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्तासयणिज्जाओ उट्टेइ उट्टित्ता
वासघरस्स दारं विहाडेइ विहाडित्ता मारामुक्के विव काए
जामेव दिस्सिं पाउब्भूए तामेव दिस्सिं पडिगए ॥ सू०९॥

टीका—‘तएणं’ इत्यादि । ततः खलु सागरदारकः सुकुमारिकाया दारि-
काया इमयेतद्रूपं=वक्ष्यमाणप्रकारं पाणिस्पर्शं=करस्पर्शं प्रतिसंवेदयति=अनुभवति,
कीदृशः स करस्पर्शः इति सदृष्टान्तमाह—‘से जहानामए’ इत्यादि । तद् यथा
नामकम्=यथा दृष्टान्तम्-दृष्टान्तं प्रदर्शयति—‘असिपत्तेइ वा’ इत्यादि । असि-
पत्रमिति वा=असिपत्रं—खड्गः, यथा खड्गधारायाः स्पर्शः सोढुमशक्यस्तद्वत् सुकु-
मारिका दारिकायाः करस्पर्शः प्रतिसंवेद्यत इति भावः । ‘जाव मुम्मुरे इ वा०’
यावत् मुम्मुरेति वा=अत्र यावत् करणादिदं बोध्यम्—‘करपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा

‘तएणं सागरदारए’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद—अर्थात् सागरदारकने जब हस्तमिलाप
क्रिया तब (सागरदारए) उस सागर को (सूमालियाए दारियाए) सुकु-
मारिका दारिकाका (पाणिपासं) वह हस्तका स्पर्श (इमं एयारूवं पडिसंवे-
देइ) इस प्रकार से लगा (से जहा नामए असिपत्तेइ वा जाव मुम्मुरे
इवा, एत्तो अणिट्टतराए खेव० पाणिफासं पडिसंवेदेइ) जैसे वह
असिपत्र तलवार का स्पर्श हो यावत् अग्नि कणमिश्रित भस्म का स्पर्श
हो । यहां यावत् शब्दसे “कर पत्तेइ” वा खुर पत्तेइवा, कलंत्र चीरिया

‘तएणं सागरदारए’ इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपथी अत्रेके के सागरदारके न्यारे हस्तमेणापथी त्पारे
(सागरदारए) ते सागरने (सूमालियाए दारियाए) सुकुमार दारिकाने (पाणि-
पासं) ते हाथने स्पर्श (इमं एयारूवं पडिसंवेदेइ) आ प्रमाणे लाग्थे के
(से जहा नामए असि पत्तेइ वा जाव मुम्मुरेइ वा, एत्तो अणिट्टतराए खेव
पाणिफासं पडिसंवेदेइ)

अथे ते असिपत्र-तरवार-ने स्पर्श न होय, यावत् अशिक्षु भिक्षित
भस्मने स्पर्श न होय. अर्ही ‘यावत्’ शब्दथी

(करपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा, कलंत्रचीरियापत्तेइ वा सत्ति अग्नेइ वा कौतग्नेइ

कलंवचीरियापत्तेइ वा सत्तिअग्गेइ वा कौतग्गेइ वा तोमरग्गेइ वा भिडिमालग्गेइ वा सूचिकलावएइ वा विच्छुयडंकेइ वा कविकच्छूइ वा इंगालेइ वा मुम्मुरेइ वा अच्चोइ वा जालेइ वा आलाइ वा सुद्धागणीइ वा भवेयारूवेसिया ?, नो इण्हे समहे; करपत्रमिति वा छुरपत्रमिति वा कदम्बचीरिकापत्रमिति वा शक्यग्रमिति वा कुन्ताग्रमिति वा तोमराग्रमिति वा भिन्दिपालाग्रमिति वा वृथिकदंश इति वा कपिकच्छुरिति वा अङ्गार इति वा मुर्धुर इति वा अचिरिति वा ज्वालेति वा, अलातमिति वा शुद्धाग्रिमिति वा भवेदेतद्रूपः-स्यात् ? , नायमर्थः समर्थः, इति । तत्र करपत्रं= क्रकवं ' करवत् ' इति प्रसिद्धं छुरपत्रम्=' उस्तरा ' इति प्रसिद्धम् , कदम्बचीरिकापत्रम्-कदम्बचीरिका-तृणविशेषः, अस्या अग्रभागोऽतितीक्ष्णो भवति तस्य पत्रं, शक्तिः=शस्त्रविशेषः-त्रिशूलं वा तस्या अग्रभागः स्व कुन्तः ' भाला ' इति प्रसिद्धः शस्त्रविशेषः, तदग्रभागः, तोमरः=वाण विशेषस्तदग्रभागः, भिन्दिपालः=शस्त्रविशेषः सूचीकलापकं सूचीसमूहस्तस्याग्रभागः, वृथिकदंशः=वृथिक कण्टकः, कपिकच्छुः-खजुकारी वनस्पतिविशेषः, अङ्गारः=ज्वालारहितोऽग्निः, मुर्धुरः=अधि-

पत्तेइ वा, सत्ति अग्गेइवा कौतग्गेइवा तोमरग्गेइ वा, भिडिमालग्गे वा सूचिकलावएइवा विच्छुय डंकेइ वा कवि कच्छूइवा इंगालेइ वा मुम्मुरेइ वा अच्चोइ वा जालेइ वा आलाइ वा सुद्धागणीइ वा भवेयारू वेसिया ? नो इण्हे समहे) कर पत्र-कर वत्, छुर पत्र-उस्तरा कदम्बचीरिका पत्र छुहिया घास-जिसका अग्रभाग अधिक तीक्ष्ण होता है शक्ति-अग्र-शक्ति-त्रिशूल अथवा आयुधविशेष का अग्रभाग कुन्ताग्र भाले की नोक तोमराग्र-वाण की अनी भिन्दिपाल-शस्त्र विशेष-का अग्रभाग-सूची कलापका अग्रभाग-विच्छु का डंक कपिकच्छु-करेंच-जिसके स्पर्श होनेपर खुजली आती है-ज्वाला रहित अग्नि, मुर्धुर-अग्निकणमिश्रित तोमरग्गेइ वा, भिडिमालग्गे वा सूचिकलावएइ वा विच्छुय डंकेइ वा, कविकच्छूइ वा इंगालेइ वा, मुम्मुरेइ वा अच्चोइ वा जालेइ वा, आलाइ वा सुद्धागणीइ वा भवेयारूवे सिया ? नो इण्हे समहे)

करपत्र-करवत्, छुरपत्र - अश्वो, कदम्बचीरिका पत्र-छुरिका के लेने अश्वलाग्ये केकदम्ब तीक्ष्ण होय छे, शक्ति-अश्व-शक्ति, -त्रिशूल अथवा आयुध विशेषने अश्वलाग्ये, कुन्ताग्र-लाहानी अश्वी, तोमराग्र-तीरनी अश्वी, भिन्दिपाल-विशेषने अश्वलाग्ये, सूचीकलापने अश्वलाग्ये, वीथीने उंभ, कविकच्छु-कवच-लेना स्पर्शथी अश्वलाग्ये आवे छे, अश्वलाग्ये रहित अश्वि, मुर्धुर-अश्विकच्छु मिश्रित लसम्, अश्वि-लाकडाओथी सजगती अश्वलाग्ये, अश्वलाग्ये-लाकडा वगरनी

कणमिश्रितभस्म अर्चिः=इन्धन प्रतिबद्धा ज्वाला, ज्वालातु-इन्धनच्छिन्ना, आला-
तम्=उल्मुकं, शुद्धाग्निः लोहपिण्डस्थाऽग्निः । असिपत्रादि-शुद्धाग्निपर्यन्तानां स्पर्श
इव सुकुमारिकायाः करस्पर्शो भवेत्कथञ्चित्कम्? नायमर्थः समर्थः=अर्थं दृष्टान्तसमूहः
करस्पर्शो साम्यं प्राप्तुं न समर्थः तर्हि कीदृशः? इत्याह 'एत्तो अणिद्वतराए चैव०'
एतस्माद् असिपात्रदीनां स्पर्शादिनिष्टतरक एव, अकान्ततरक एव=अत्यन्तमक-
मनीय एव, अप्रियतरक एव=अतिदुःखजनकएव अमनोज्ञतरकएव=अतिशयेन मनो-
विकृतिकारकएव अमनोमतरकएव=अतिशयेन मनःप्रतिकूलएव वर्त्तते, तमेवम्भूतं
पाणिस्पर्शं सुकुमारिकादारिकायाः करस्पर्शं प्रति संवेदयति=अनुभवति ।

ततः खलु स सागरदारकः अकामकः= निरमिलापः 'अवसव्वसे' अपसव्वसे=
अपगतस्वातन्त्र्यः विवशः सन् गृहूर्तमात्रं=स्तोककालं संतिष्ठते (ततः खलु स
सागरदत्तः सार्थवाहः सागरस्य दारकस्य अम्बापितरौ मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिप-

भस्म अर्चिः=इन्धन प्रतिबद्ध ज्वाला, ज्वाला-इन्धन से रहित ज्वाला
अलात-उल्मुक शुद्धाग्नि-लोहपिण्डस्थ अग्नि । इन असिपत्र से लेकर
शुद्धाग्नि पर्यन्त पदार्थों का स्पर्श जैसा होता है वैसा ही सुकुमारिका
के कर का स्पर्श हो सकता था-परन्तु यहां यह अर्थ समर्थित नहीं है
-अर्थात् उसके सुकुमारिका के कर स्पर्श में इन दृष्टान्तों के स्पर्श की
समानता नहीं मिल सकती है क्यों कि वह स्पर्श तो इनके स्पर्श से भी
अधिक अनिष्टतर ही था, अकान्ततरक ही था-अत्यन्त अकमनीय था,
अप्रिय तरकही था-अत्यन्त दुःखजनक ही था, अमनोज्ञतरक ही था
-अत्यन्त मनो विकृतिजनक ही था, अमनोमतरक ही था-अत्यन्त
मनः प्रतिकूल ही था । (तएणं से सागरए अकामए अवसव्वसे
सुहुत्तमित्तं संचिद्ध, तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे सागरस्स दारगरस्स

नवाणा, अलात-उल्मुक, शुद्ध अग्नि-लोहपिण्डस्थ अग्नि-आटली वस्तुओंतुं अक्षु
करुं अक्षु अ. आ असिपत्रथी भांदिने शुद्ध अग्नि सुधीना पहाथेना न् नतने।
स्पर्शं होय छि तेवे न सुकुमारिकानां हाथेना पणु स्पर्शं हते।

पणु हकीकतमां तो आ वस्तुओंनी समानता पणु तेना तीक्ष्ण स्पर्शनी साथे
करी शक्य तेम नथी केभके तेना हाथेना स्पर्शं तो उक्त वस्तुओंना स्पर्शं
करतां पणु वधारे अनिष्टतर हते, अकान्ततरक हते, अतीव अकमनीय हते,
अप्रियतरक हते, अत्यन्त दुःखजनक हते, अमनोमतरक हते, अणु मनो
विकृतिजनक हते, अमनोम तरक हते, अहु न मनः प्रतिकूल हते।

(तएणं से सागरए अकामए अवसव्वसे सुहुत्तमित्तं संचिद्ध, तएणं से सा-

रिञ्जनांश्च विपुलेनाशनयानत्वाद्यस्वाद्येन पुष्पवस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण सत्करोति
संमानयति सत्कृत्य संमान्य प्रतिविसर्जयति = प्रस्थापयति । ततः खलु सागरको
दारकः सुकुमारिकया सार्धं यत्रैव वासगृहं-शयनगृहं तत्रैवोपागच्छति उवागत्य
सुकुमारिकया दारिकया सार्धं 'तलिगंसि' तलिमे देशीयोऽयंशब्दः तल्पे-शयनीये
'निवज्जइ' निषीदति । ततः खलु स सागरदारकः सुकुमारिकाया दारिकाया
इममेतमद्रूपमङ्गस्पर्शं प्रति संवेदयति-तद् यथानामकं=तत् प्रति संवेदनं दष्टान्तोपन्या-
सपूर्वकं प्रदर्शयते-असिपत्रं वा यावद् अमनोमतरमेव सुकुमारिकाया अङ्गस्पर्शं

अम्मापियरो भित्तणाइ० विउलेणं असणं पाणंखाइमं साइमं पुष्पकवत्थ
जाव सम्माणेत्ता पडिविसज्जति) अतः वह सागर उसमें अभिलाषा
से रहित बन गया । फिर भी वहाँ विवश होकर वह कुछ समय तक
ठहरा रहा । सागरदत्त सार्धंवाह ने सागर दारक के मातापिता का तथा
उसके मित्र, ज्ञाति स्वजन, संबन्धी परिजनों का विपुल अशन, पान,
खाद्य और स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार से एवं पुष्प वस्त्र, गन्ध, माला
तथा अलंकार से खूब सत्कार किया-सन्मान किया । सत्कार सन्मान
करके फिर उसने सबको अपने यहाँ से बिदा कर दिया । (तएणं
सागरए दारए सुमालियाए सद्धिं जेणेव वासगिहे तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छिता सुमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ, तएणं
से सागरए दारए सुमालियाए दारियाए इमं एयाख्वं अंगकासं पडि-
संवेदेइ से जहानामए असि पत्तेइवा जाव अमणामयरागंचेव अंगकासं

गरदत्ते सत्यवाहे सागरस्त दारगस्त अम्मापियरो भित्तणाइ० विउलेणं असणं पाणं
खाइमं साइमं पुष्पकवत्थ जाव सम्माणेत्ता पडिविसज्जति)

येटला भाटे ते सागर तेभां अलित्रापाथी रद्धित जनी गयो। छांत्ते
ते त्यां वायार थधने थोडा वण्त सुधी दोकाथो। सागरदत्त सार्धंवाडे सागर
दारकना भातापितानो तेभज तेना मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबन्धी परिजनोना
विपुल अशन, पान, भाद्य अने स्वाद्य इप वार जतना आहारथी अने पुष्प
पत्र, गंध, भाणा तेभज अलंकारथी भहु सत्कार अने सन्मान कथुं। सत्कार
तेभज सन्मान करीने तेणे सौने पोताने त्यांथी विहाय कथां।

(तएणं सागरए दारए सुमालियाए सद्धिं जेणेव वासगिहे तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छिता सुमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ, तएणं से सागरए
दारए सुमालियाए दारियाए इमं एयाख्वं अंगकासं पडिसंवेदेइ से जहा नामए
असिपत्तेइ वा जाव अमणामयरागं चेव अंगकासं पच्चगुणवयमाणे विहरइ तएणं

प्रयत्नुभवन् विहरति । ततः खलु स सागरदारकस्तस्या अङ्गस्पर्शमसहमानोऽपस्व-
वशः=अपगत स्वातन्त्र्यः, सन् मुहूर्तमात्रं संतिष्ठते । ततः खलु स सागरदारकः
सुकुमारिकां दारिकां सुखप्रसृतां ज्ञात्वा सुकुमारिकाया दारिकायाः पार्श्वत उचिष्ठति,
उत्थाय यत्रैव स्वकं शयनीयं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य शयनीये, ' निवज्जइ '
निपीदति स्वपितीत्यर्थः । ततः खलु सुकुमारिका दारिका ततो मूहूर्तान्तरे पति-
बुद्धा=जागरिता सति पतिव्रता ' पइमशुरत्ता ' प्रत्यनुरक्ता स्वपतिं प्रत्यनुरागिणी,
पार्श्वे पतिमपश्यन्ती ' तलिमाउ ' तस्यात्=शयनीयाद् उचिष्ठति, उत्थाय यत्र

पच्चणुंभवमाणे विहरइ तएणं से सागरए अंगफासं असहमाणे अव-
सन्वसे मुहुत्तमित्तं संचिद्धइ) इसके बाद सागरदारक सुकुमारिका के
साथ जहां वासगृह-शयन घर-था वहां गया वहां जाकर वह उस सुकु-
मारिकाके साथ एक शय्यापर बैठ गया । बैठ जाने पर उस सागरदारक
को सुकुमारिका दारिकाका अंगस्पर्श इस रूपसे प्रनीत हुआ-जैसे मानो
असिपत्र आदिका स्पर्श हो ! इन असिपत्र (खड्गको यावत्) आदिको
के स्पर्श से भी उसका वह अंगस्पर्श यावत् अमनामतरक ही था । इस
प्रकार का उसका अंगस्पर्श अनुभवता हुआ वह सागरदारक विवश
बनकर वहां कुछ समय तक ठहरो बाद में जब उससे सहन नहीं
हुआ तो । (तएणं से सागरदारए सुमालियं दारियं सुहपसुत्तं
जाणित्ता सुमालियाए दरियाए पासउ उट्टेइ, उट्टित्तां जेणेव सए सय-
णिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणीयंसि निवज्जइ, तएणं
सुमालिया दारिया तओ मुहत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी पइव्वया पइ

से सागरए अंगफासं असहमाणे अवसन्वसे मुहुत्तमित्तं संचिद्धइ)

त्यारपथी सागर दारके सुकुमारिकानी साथे न्यां वासगुह-शयनघर छुं
त्यां गथे, त्यां नधने ते सुकुमारिकानी साथे ओक शय्या उपर भेसी गथे.
गेका भाइ ते सागर दारकने सुकुमारिका दारिकाने अंग-स्पर्शं ओवा प्रकारने
नष्ठाथे के ते असिपत्र - तरवार वगेरेने स्पर्शं न होथ । असिपत्र
वगेरे करतां पथु तेने अंग स्पर्शं यावत अमनोमततरक हुते. आ रीते तेना
अंग स्पर्शने अनुभवते सागर दारके लायार थधने त्यां थोडा वधत सुधी
देकाथे अने त्यारभाइ न्यारे तेने ते स्पर्शं असह्य थध पडथे त्यारे

(तएणं से सागरदारए सुमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सुमालियाए
दारियाए पासउ उट्टेइ, उट्टित्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता सयणीयंसि निवज्जइ, तएणं सुमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स

'से' तस्य शयनीयं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य सागरदारकस्य पार्श्वे (निवञ्जई) निषीदति=स्वपिति । ततः खलु स सागरदारकः सुकुमारिकाया दारिकाया 'दुर्चंपि' द्वितीयवारमपि इममेतद्रूपम् पूर्वोक्तप्रकारकम् अङ्गस्पर्शं प्रति संवेदयति यावद्-अक्रामकोऽपस्ववशो मुहूर्तमात्रं संतिष्ठति, ततः खलु स सागरदारकः सुकुमारिकां दारिकां सुखप्रसुप्तां ज्ञात्वा शयनीयात्=शय्यात् उत्तिष्ठति, उत्थाय वासगृहस्य=शयनगृहस्य द्वारं 'विहाडेइ' विघाटयति = उद्धाटयति विघाटय 'मारासुक्के विवकाए' मारासुक्त इव काकः=मार्यन्ते प्राणिनो यस्यां सा मारा

मणुरत्ता पतिं पासे अपस्समाणी तलिमाउ उट्टेइ उट्टित्ता.... उवागच्छइ) वह सागरदारक उस सुकुमारिका दारिका को सुखसे सोई हुई जानकर उस सुकुमारिका दारिका के पास से उठ बैठा-और उठकर जहाँ अपनी शय्या थी वहाँ चला गया । वहाँ आकर उस पर पड़ गया इतने में ही एक मुहूर्त के बाद वह-पति में अनुरक्त बनी हुई पतिव्रता सुकुमारिका दारिका जग गई और अपने पास पति को न देखकर अपने पलंग से उठ बैठी । उठकर वह-जहाँ सागरदारक का पलंग था वहाँ गई । (उवागच्छित्ता सागरस्स पासे पुवञ्जइ) वहाँ जाकर वह उसके पास सो गई । (तएणं से सागरदारए सुमालियाए दारियाए दुर्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जाव अक्रामए अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिइइ, तएणं से सागरदारए सुमालियं दारियं सुहपसुत्तं

पडिबुद्धा समाणी पइवया पइमणुरत्ता पत्तिपासे अपस्समाणी तलिमाउ उट्टेइ उट्टित्ता उवागच्छइ)

ते सागर दारक ते सुकुमारिका दारिकाने सुजेथी सूतेदी न्नीने तेनी पासेथी उठेथे, अने उठीने न्यां पोतानी शय्या छती त्यां नतो रह्यो. त्यां न्धने ते तेनी उपर पडी गथे. अटलाभां अक मुहूर्तं पडी पतिभां अनुरक्त अनेदी पतिव्रता सुकुमारिका दारिका नगी गध अने पोतानी पासे पति न नेतां पोतानी शय्या उपरथी उठी अने जेठी गध. त्यारपथी ते उठीने न्यां सागर दारकनी शय्या छती त्यां गध. (उवागच्छित्ता सागरस्स पासे पुवञ्जइ) त्यां न्धने ते तेना पड्याभां सूध गध.

(तएणं से सागरदारए सुमालियाए दारियाए दुर्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जाव अक्रामए अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिइइ, तएणं से सागरदारए सुमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणिता सयणिज्जाओ उट्टेइ, उट्टित्ता वासवरस्स दारं विहा-

शूना वधस्थानं, तस्यापुक्तो निस्सृतः काक इव, यद्वा-माराद्=मारुक्पुरुषादापुक्तः
=निर्मुक्तःविच्छुटितः काको यथा वेगतो निर्गच्छति तद्वत्, यस्या एव दिशः
प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ सू० ९ ॥

मूलम्-तर्णसूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा
पइवया जाव अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्टेइ सागरस्स
दारियाए सठवओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणोर वासघ-
रस्स दारं विहाडियं पासइ पासित्ता एवं वयासी-गए से

जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्टेइ, उट्टित्ता वासघरस्स दारं विहाडेई,
विहाडेत्ता मारासुक्के विव काए जामेव दिंसि पाउब्भूए तामेव दिंसि
पडिगए) सागरदारक को सुकुमारिका दारिका का अंगस्पर्श दुवा-
राभी वैसा ही पूर्वोक्तरूप से अनुभव में आया-अतः उसके पास सोने
की इच्छा न होने पर भी वह विश्वाहोकर कुछ समय तक उसके पास
सोता रहा-जब वह अच्छी तरह सो गई-तब वह उसे सुख प्रसुप्तजा-
नकर उसके पास से उठी-और उठकर उसने उस वास गृह के दरवाजे
को खोला खोलकर जिस प्रकार 'मारासुक्त' काक बढ़े वेगसे निकलता है
-उसी तरह यह भी बहुत जल्दी वहां से निकलकर जिस दिशा से
प्रकट हुआ था-उसी दिशा तरफ चोपिस चला गया। जिस में प्राणी
मारे जाते हैं उसका नाम मारा-शूना- वधस्थान है। इस मारा से
निकला हुआ अथवा मारनेवाले पुरुष के हाथ से छूटा हुआ-ऐसे ये दो
अर्थ " मारासुक्त " इस शब्द के हो सकते हैं। सू० ९

देई, विहाडित्ता मारासुक्के विव काए जामेव दिंसि पाउब्भूए तामेव दिंसि पडिगए)

सागर द्वारके सुकुमारिकाने भीष्मरने अंग स्पर्श पछु पडेलांनी
जेमज्ज दाव्ये। जेटेला भाटे तेनी पासे सूवानी धंथा न डोवा छतंजे ते
विवश थधने थोडीवार सुधी तेनी पासे पडी रह्यो। न्यारे ते सारी वीते सुध
गध त्यारे ते तेने सुजेथी सूती न्णणीने तेनी पासेथी उठ्यो अने उठीने
तेजे ते वासगृहना मारणाने उधाड्युं। उधाडीने जेम मारा-सुक्त कागडो न्ण्डी
नीकणी नय छे तेमज्ज ते पछु अहुं ज्ज त्वराथी त्यांथी नीकणीने जे दिशा तरइथी
आव्ये। डेतो ते ज्ज दिशा तरइ पाछे जतो रह्यो। जे स्थाने प्राणीये मारी
नाभवामां आवे छे तेसुं नाम " मारा " (वधस्थान) छे। आ ' मारा ' थी
धुडीने आम जे अर्थो ' मारासुक्त ' शब्दना थध शके छे। ॥ सूत्र ६ ॥

विष्पजहाय इहमागओ बहूहिं खिज्जणियाहि य संटणियाहि
य उवालभइ, तएणं जिणदत्ते सागरदत्तस्स एयमट्ठं सोच्चा
जेणेव सागरए दारए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता साग-
रयं दारयं एवं वयासी—दट्ठुणं पुत्ता ! तुमे कयं सागरदत्तस्स
गिहाओ इहं हव्वमागते, तेणं तं गच्छह णं तुमं पुत्ता !
एवमंवि गए सागरदत्तस्स गिहे, तएणं से सागरए जिणदत्तं
एवं वयासी—अवि आइं अहं ताओ ! गिरिपडणं वा तरु-
डणं वा मरुप्पवायं वा जलप्पवेसं वा जलणप्पवेसं वा
विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा वेहाणसं वा गिद्धापिट्ठं वा
पवज्जं वा विदेसगमणं वा अंभुवगच्छिज्जामि नो खल्ल अहं
सागरदत्तस्स गिहं गच्छिज्जा, तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे
कुडुंतरिए सागरस्स एयमट्ठं निसामेइ निसामित्ता लज्जिए
विलीए विड्ढे जिणदत्तस्स गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनि-
क्खमित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
सुकुमालियं दारियं सदावेइ सदावित्ता अंके निवेसेइ निवे-
सित्ता एवं वयासी—किण्णं तुमं पुत्ता ! सागरएणं दारएणं
मुक्का ?, अहंणं तुमं तस्स दाहामि जस्स णं तुमं इट्ठा जावं
मणामा भविस्ससित्ति सूमालियं दारियं ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं
समासासेइ समासालित्ता पडिविसज्जेइ ॥ सू० १० ॥

टीका—‘ तएणं ’ इत्यादि । ततः=तन्निर्गमनानन्तरं खल्ल सुकुमारिका
दारिका ततो सुहूर्वांतरे प्रतिबुद्धा=जागरिता सती पतिव्रता यावत् पतिमप्यन्यती

शयनीयात्=शय्यात उत्तिष्ठति, उत्थाय सागरस्स दारकस्य सर्वतः समन्ताद् मार्ग-
णगवेपणं कुर्वती २ वासगृहस्य=शयनगृहरथ द्वारं विघाटितम्=उद्धाटितं पश्यति,
दृष्ट्वा एवमवादीत्-गतः स सागरदान्तः, इति कृत्वा 'ओहयमणसंकल्प्या' अपह-
तमनः संकल्प्या=नष्टमनोरथा, यावत् ध्यायति=आर्तध्यानं करोतिस्म । ततस्तदन-
न्तरं भद्रा सार्थवाही 'कल्लं' कल्पे=द्वितीयदिगसे प्रादुः प्रमातायां रजन्यां यावत्
तेजसा ज्वलति=दीप्यमाने मूर्धे उदितं दासचेटीनां=दासपुत्रीं शब्दयति, शब्दयित्वा

'तएणं सूमालिआ दारिया' इत्यादी ।

टीकार्थं-(तएणं) इसके बाद (सूमालिया दारिया) सुकुमारिका दारिका
(तथो सुहुत्ततरस्स पडिबुद्धा पइवया जाव अपासमाणी) एक सुहुत्त
के बाद जग पडी-सो उस पतिव्रता ने वहाँ अपने पतिको जब नहीं देखा
तब (सयणिज्जाओ उट्टेइ, सागरस्स दारगस्स सन्वाओ समता मग्गण-
गवेसणं करेमाणी २ वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ, पासित्ता एवं
वयासी) पलंग से उठी उठकर उसने सागर दारक की वहाँ पर सब
और बार २ मार्गण गवेक्षण की- । जब उसने शयन गृह के दरवाजे
को उघड़ा हुआ देखा-तब उसे विचार आया कि (गये से सागरे नि
कहु ओहयमणसंकल्प्या जाव झियायइ, तएणं सा भदा सत्यवाही कल्लं
पाउं दासचेडियं सदावेइ) कि सागर चले गये हैं । इस प्रकार अप-
हतमनःसंकल्प होकर वह विचार में पड़ गई, इतने में भद्रा सार्थवा-

(तएणं सूमालिया दारिया इत्यादि—

टीकार्थं-(तएणं) त्पारणाहं (सूमालिया दारिया) सुकुमारिका दारिका
(तथो सुहुत्ततरस्स पडिबुद्धा पइवया जाव अपासमाणी) एक सुहुत्त पडी
भांगी गधं ते पतिव्रताओ त्यां पोलाना पतिने न्यारे न्येया नडि त्यारे

(सयणिज्जाओ उट्टेइ, सागरस्स दारगस्स सन्वाओ समता मग्गणगवेसणं
करेमाणी २ वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ, पासित्ता एवं वयासी)

शय्या उपरथी ज्जिथी थधं अने त्याइपथी तेजे त्यांअ आरुपास येअरे
सागर दारकनी मार्गणा-गवेषणा करी. न्यारे तेजे शयनगृहना गारणाने
उधारेले न्येयु त्यारे तेने विचार आयेओ के

(गए से सागरे निकरहु ओहयमणसंकल्प्या जाव झियायइ, तएणं सा
भदा सत्यवाही कल्लं पाउं दासचेडियं सदावेइ)

सागर जता रहा छे. आ रीते अण्डत मनः संकल्पवाणी धधने ते
का २७

एवमवादीत्—हे देवानुषिये ! गच्छ खलु त्वं ' बहुवरस्स ' वधूवरयोः समीपे ' मुहधोवणियं ' मुखधावनिकां=दन्तधावनादिरूपाम् ' उवणेहि ' उपनय=प्रापय । ततः खलु सा दासचेटी भद्रया सार्थवाहा एवमुक्तासती ' एयमट्ठं ' एतमर्थम्= एतद्वचनं ' तथा ऽरु ' इतिकृत्वा प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य ' मुहधोवणियं ' मुख धावनिकां पृच्छति, शृद्धीत्वा यत्रैव वासगृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सुकुमारिकां दारिकामेकाकिनीं यावत्-ध्यायन्तीं=आर्त्तध्यानं कुर्वती पश्यति. दृष्ट्वा एवमवादीत्—

हीने द्वितीय दिन प्रातः काल होते ही दासपुत्री को बुलाया (सदाचित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए । बहुवरस्स मुहधोवणियं उवणेहि तएणं सा दासचेटी भद्रए एवं वुत्ता समाणी एयमट्ठं तहत्ति पडि सुणंति मुहधोवणियं गेण्हइ, उवागच्छित्ता, सूमालियं दारियं जाव झियायमार्णि पासइ, पासित्ता एवं वयासी-किन्नं तुमं देवाणुप्पिया । ओहमणसंक्कप्पा जाव झियाहिसि ? तएणं सा सूमालिया दारिया तं दासचेटी एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया सागरए दारए मम मुहपसुत्तं जणित्ता मम पासोओ उट्ठइ, उट्ठित्ता वासघरदुवारं अवगुणइ, जाव पडिगए) बुलाकर उससे ऐसा कहा कि हे देवाणु प्रिय ! तूजा, और वधूवर के पास इस दन्त धावन आदिरूप मुख धावनिका को लेजा भद्रा के इस कथन को उस दासचेटी ने " तहत्ति " कहकर स्वीकार कर लिया—और मुख धावनीको को ले लिया—और लेकर फिर वह जहाँ वासगृह था—वहाँ गई । वहाँ पहुँचकर उसने सुकुमारिका दारिका को

चित्तामां गभग्गिन् थध गध. ओट्ठामां णीण दिवसे सवारे लद्रासार्थवाडीओ दासपुत्रीने गोलावी.

(सदाचित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए । बहुवरस्स मुहधोवणियं उवणेहि, तएणं सा दासचेटी भद्रए एवंवुत्ता समाणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणंति मुहधोवणियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेण्व वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सूमालियं दारियं जाव झियायमार्णि पासइ. पासित्ता एवं वयासी-किन्नं तुमं देवाणुप्पिया ओहयमणसंक्कप्पा जाव झियाहिसि ? तएणं सा सूमालिया दारिया तं दासचेटी एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! सागरए दारए मम मुहपसुत्तं जणित्ता मम पासोओ उट्ठइ, उट्ठित्ता वासघरदुवारं अवगुणइ, जाव पडिगए)

गोलावाने तेने आ प्रभाणे क्खुं के डे देवानुप्रिये ! तु वरवधूनी पासि आ इंतधावन वगेरे सुणधावनिका लध ल लद्राना आ इथनने सालणीने ते दासचेटीओ " तहत्ति " क्खीने तेने स्वीकारी वीधुं अने सुणधावनिका (दातथु) ने लध वीधुं अने लधने ते ल्यां वासगृहं डटुं त्यां गध त्यां

हे देवानुप्रिये ! हे सुकुमारिके ! किं=कुतः खलु त्वम् अपहतमनः संकल्पा यावत्
ध्यायसि ? ततस्तदनन्तरं सा सुकुमारिका दारिका तां दासचेटीमेवमवादीत्-हे
देवानुप्रिये ! एवं खलु सागरको दारको मां सुखमसुप्तां ज्ञात्वा मम पार्श्वोद्दिष्टति,
उत्थाय वासगृहद्वारम् 'अवगुणह' अवगुणयति=अपावृणोति उद्घाटयति, 'यावत्
प्रतिगतः' यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः । ततस्तदनन्तरं खलु
'ततो' ततो गृहूर्तान्तरेऽहं यावत्-प्रतिबुद्धा सती सागरदारकमपश्यन्ती क्षयना-
दुत्तिष्ठामि, उत्थाय तस्य मार्गणगवेपणं कुर्वती वासगृहस्य द्वारं विघाटितं पश्यामि
गतः खलु स सागरकः' इति कृत्वा=इति हेतोरहम् अपहतमनः संकल्पा यावद-

चिन्ता मग्न देखा-देखकर उसने उससे पूछा कि हे देवानुप्रिये ! क्या
कारण है जो आप अपहतमनः संकल्पा होकर चिन्ता मग्न बनी हुई
हो ? इस दासचेटी के प्रश्नको सुनकर उस सुकुमारिका ने उस से
कहा-देवानुप्रिये-सुनो-सागरदारक सुझे सुख प्रसुप्त जानकर मेरे
पास से उठे और उठकर वासगृह के दरवाजे को खोलकर जहाँ
से आये थे वहाँ चले गये हैं । (तए णं तओ अहं सुहुत्तंतरस्स
जाव विहाडियं पासामि गएणं से सागरए त्तिकहु ओहयमाणं
जाव झियायामि, तए णं सा दासचेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्टं
सोच्चा जेणेव सागरदत्ते तेणेव उवागच्छह) उसके बाद ज्योंही मैं
जगी-तो मैंने जब सागर दारक को अपने पास नहीं देखा-तो मैं शय्या
से उठ बैठी-और उठकर मैंने उनकी यहीं पर सब तरफ मार्गण गवे-
षणाकी उसमें मैंने वासगृह के दरवाजे उघडा पाया-तब मैं समझ

जधने तेझे सुकुमारिका दारिकाने चिन्तामां गमगीन जेध. जेधने तेझे तेने
पूछथुं के हे देवानुप्रिये ! सा कारणथी तमे अपहत मनः संकल्पा थधने
चिन्तामां जेध छे ? दासचेटीना प्रश्नने सांभणीने ते सुकुमारिकाजे तेने कहुं-
के हे देवानुप्रिये ! सांभणे, सागर दारक मने सुजेथी सूती जेधणीने भारी
पासेथी उला थया जने उला थधने वासगृहना पारणाने उवाडीने न्याथी
आन्था डता, त्यां जता रखा छे.

(तएणं तओ अहं सुहुत्तंतरस्स जाव विहाडियं पासामि गएणं से सागरए
त्तिकहु ओहयमाणं जाव झियायामि, तएणं सा दासचेडी, सूमालियाए दारियाए
एयमट्टं सोच्चा जेणेव सागरदत्ते तेणेव उवागच्छह)

त्यार पछी न्यारे हुं जगी त्यारे मे' सागर दारक ने भारी पासे जेथे
नहिं, हुं शय्या उपर उठी जने जेडी थधं गधं जने त्यार पछी मे' अर्धी ज
तेमनी जधे मार्गण-गवेषणा करी. मे' न्यारे वासगृहना पारणाने उवाहुं जेधुं
त्यारे हुं समज गधं के तेजो थाल्या गया छे. आ विचारथी ज हुं अपहत

आर्तध्यानं ध्यायामि । ततः खलु सा दासचेटी सुकुमारिकाया दारिकाया अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा, यत्रैव सागरदत्तः सार्थवाह—सुकुमारिकायाः पिता, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तं सागरदत्तमेतमर्थं निवेदयति । ततस्तदनन्तरं स सागरदत्तः सार्थवाहो दासचेटीया अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चय आशुरुप्तः—शीघ्रं क्रोधाविष्टः सन् यत्रैव जिनदत्तस्य सार्थवाहस्य गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य जिनदत्तं सार्थवाहमेवमवादीत्—हे देवानुप्रिय ! किं—कथं खलु एवं युक्तम्—उचितं वा प्राप्तं—कुलनर्यादामनुप्राप्तं वा कुलानुरूपं—कुलयोग्यतानुकूलं वा कुलसदृशं—कुलसाम्यापन्नं वा, यत् खलु सागरो दारकः सुकुमारिकां दारिकामदृष्टदोषां—निर्दोषां पतिव्रतां

गई कि वे चले गये है इस विचार से मैं अपहृतमनः संकल्प होकर आर्तध्यान—चिन्ता—में पड़ रही हूँ । इस प्रकार सुकुमारिका की बात सुनकर वह दासचेटी बहुत सोच विचार करके वहाँ से सागरदत्त के पास आई । (उवागच्छित्ता सागरदत्तस्य एयमदृष्टं निवेदह—तएणं से सागरदत्ते दासचेटीए अतिए एयमदृष्टं सोच्चा निसम्म आसुरत्ते जेणेव जिणदत्तस्य सत्थवाहस्य गिहे तेणेव उवागच्छह—उवागच्छित्ता जिणदत्तं एवं वयासी) वहाँ आकर उसने सागरदत्त से इस बात को कहा— इस तरह दासचेटी के सुख से इस बात को सुनकर और उसे हृदय में धारण कर सागरदत्त बहुत अधिक—क्रुद्ध हुआ—और उसी समय जहाँ जिनदत्त सार्थवाह का घर था वहाँ गया । वहाँ जाकर उसने जिनदत्त से इस प्रकार कहा—(किणं देवानुप्पिया ! एवं जुत्तं वा पत्तं वा कुलाणुरुत्वं वा कुलसरिसं वा जन्नं सागरदारए समालिंयं

मनः संकल्प थाने आर्तध्यान—चिन्ता—मां पडी छुं आ रीते सुकुमारीकानी वात सालणीने ते दास चेटी पूणअ विचार करीने त्यांथी सागरदत्तनी पास गर्थ.

उवागच्छित्ता सागरदत्तस्य एयमदृष्टं निवेदह—तएणं से सागरदत्ते दासचेटीए अतिए एयमदृष्टं सोच्चा निसम्म आसुरत्ते जेणेव जिणदत्तस्य सत्थवाहस्य गिहे तेणेव उवागच्छह—उवागच्छित्ता जिणदत्तं एवं वयासी)

त्यां आवी ने तेणे सागरदत्तने आ वात करी आ रीते दास चेटीना सुभथी भधी विगत सालणीने अने तेने हृदयमां धारण करीने सागर दत्त अत्यंत अरसे थये अने तरत अ त्यां जिनदत्त सार्थवाहंतुं घर छंतुं त्यां गये। त्यां अर्थने तेणे जिनदत्त सार्थवाहने आ प्रभाणे कहुं के

(किणं देवानुप्पिया ! एवं जुत्तं वा पत्तं वा कुलाणुरुत्वं वा कुलसरिसं वा जन्नं सागरदारए समालिंयं दरियं अदिदुदोसं पईवयं विप्यजहाय इहमार्गंओ वहुहिं खिज्जणियाहि य रुट्टणियाहि य उवालमइ)

विप्रहाय=त्यक्त्वा इहागतः-कथमेतद् युक्तं, यत् निर्दोषां सुकुमारिकां विहाय सागरदारकोऽत्र समायात इति । एवं बह्वीभिः 'खिञ्जणियाहि य' खेदनिकामिः=खेदपूर्णाभिस्तथा 'रुंणियाहि य' =रुंणियाभिश्च देखीयोऽयं शब्दः, रोदनक्रियायुक्ताभिः वाग्भिः उपालभते=सागरदत्तो जिनदत्तस्य उपालम्भं करोतीत्यर्थः ।

ततः खलु जिनदत्तः सार्थवाहः सागरदत्तस्य सार्थवाहस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चम्य यत्रैव सागरदारकस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सागरकं दारकं स्वपुत्रमेवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्-हे पुत्र ! त्वया खलु दुष्टु=अशोभनं कृतम् यत्-सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य गृहादिह हव्यमागतः, तत्=तस्माद् गच्छ खलु त्वं हे पुत्र ! एवमपि=यथास्थितस्तथैव सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य गृहम् । सागरदारको जिनदत्तं सार्थवाहमेवमवादीत्-हे तात ! अपि=निश्चयेन 'आइं' इति वाक्यालंकारे अहं

दारियं अदिदुदोसं पइदयं विप्पजहाय इह मागओ बहूहिं खिञ्जणियाहि य रुंणियाहि य उवालमइ) हे देवानुप्रिय ! क्या यह बान योग्य है-अथवा कुलमर्यादा के लायक है, या कुल की योग्यता के अनुसार है या कुल को शोभित करे ऐसी है, जो सागरदारक बिना किसी दोषके देखे-पतिव्रता सुकुमारिका दारिका को छोड़कर यहां आ गया है इस प्रकार अनेक खेदपूर्ण एवं रोदनक्रिया युक्त वचनोंसे सागरदत्तने अपने संदधी जिनदत्तको ठपका-उलाहना दिया । (नएणं जिणदत्ते सागरदत्तस्स एयमइं सोच्चा जेणेव सागरए दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरयं दारयं एवं वयासी-दुहुणं पुत्ता तुमे कयं, सागरदत्तस्स गिहाओ इह हव्वमागए, तेणं तं गच्छह णं तुमं पुत्ता ! एवमविगए, सागरदत्तस्से गिहे, तएणं से सागरए जिणदत्तं एवं वयासी-अवि आइं अहं ताओ !

हे देवानुप्रिय ! शुं आ वात वाञ्छी छे ? कुण भयादाने लायक छे ? अथवा तो कुणनी येअयता मुञ्ज छे ? कुणने शोभावनारी छे ? छे ने सागर दारक केई पब्ब नतना होय नेया वगर पतिव्रता सुकुमारिका दारिकाने त्यछने अहो आवी गये छे ? आ रीते मनने इलावनारा तेमञ्ज गणगणा यधने रइतां रइतां धणुं वयनेअथी सागरसे पोताना वेवाधं जिनदत्तने ढपके आये। (तएणं जिणदत्ते सागरदत्तस्स एयमइं सोच्चा जेणेव सागरए दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरयं दारयं एवं वयासी-दुहुणं पुत्ता तुमे कयं सागरदत्तस्स गिहाओ इह हव्वमागए, तेणं तं गच्छह णं तुमं पुत्ता ! एवमविगए, सागरदत्तस्स गिहे, तएणं से सागरए जिणदत्तं एवं वयासी-अवि आइं अहं

तवाज्ञया गिरिपतनं वा तरुपतनं वा मरुप्रपातं वा=निर्जलदेशगमनं वा जलप्रपातं वा=अगाधजले पतनं वा, ज्वलनप्रवेशं वा ज्वलद्गनौ प्रवेशं वा विपभक्षणं वा, 'सत्थोवाडणं वा' शस्त्रावपाटनं वा=शस्त्रेण शरीरविदारणं वा, 'वेहाणसं वा' वैहायसं वा कण्ठे पाशकग्रहणं वा, तथा-गृध्रस्पृष्टं=गृध्रैः स्पर्शनं मया गजोद्ग्रादीनां कलेवरे प्रवेशितस्य शरीरस्य मृतबुद्ध्या गृध्रैर्भक्षणं, तथा प्रम्रज्यां वा, विदेश-

गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्रपातं वा जलप्रवेसं वा जलणप्रवेसं वा विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा वेहाणसं वा गिद्धापिट्टं वा पवज्जं वा विदेशगमणं वा अब्भुवगच्छिज्जामि, नो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छिज्जा) जिनदत्त सागरदत्त के इस उलाहने रूप अर्थ को सुनकरके जहाँ सागरदारक था वहाँ गया-वहाँ जाकर उसने सागर दारक से इस प्रकार कहा-हे पुत्र ! यह तुमने अच्छा नहीं किया-जो तुम सागरदत्त के घर से यहाँ इतने जल्दी आ गये। इसलिये हे वेदा ! तुम जैसे यहाँ बैठे हो वैसे ही सागरदत्त के घर चले जाओ। तब सागरदारकने अपने पिता जिनदत्त से इस प्रकार कहा-पिताजी ! मैं आपकी आज्ञा से पर्वत से गिरना स्वीकार कर सकता हूँ, वृक्ष से नीचे पड़जाना स्वीकार कर सकता हूँ-मरुप्रपात-निर्जलप्रदेश में जाना अंगीकार कर सकता हूँ, अगाधजल में डूबकर भरसकता हूँ तथा जलती हुई अग्नि में प्रवेश करना, विषकाभक्षण करना, शस्त्र से शरीर का

ताओ ! गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्रपातं वा जलप्रवेसं वा जलणप्रवेसं वा विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा वेहाणसं वा गिद्धापिट्टं वा पवज्जं वा विदेशगमणं वा अब्भुवगच्छिज्जामि, नो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छिज्जा) जिनदत्त सागरदत्तना आ ठपकाने सांलणीने न्यां सागर दारके ढते। त्यां गथे। अने त्यां न्दने तेणे सागर दारकने आ प्रभाणे ढुं डे डे पुत्र ! तमे आ ने ढुं ढुं' छे, ते सारुं न ढडेवाय तमे सागरदत्तना घेरथी आटला न्दही आवता रहा। आ ठीके नथी। अथी डे गेटां। तमे अत्तारे नेवी स्थितिमां छे। तेवी न स्थितिमां सागरदत्तने घेर जाता रडे। त्तारे सागर दारके पोताना पिताने आ प्रभाणे ढुं डे डे पितत्री ! तमारी आ-ज्ञाथी हुं पर्वत ढरथी नीचे गण्डी पडुं स्वीकारी शकुं छुं, वृक्ष ढरथी नीचे पडी न्दुं स्वीकारी शकुं छु, मरुप्रपात-निर्जण प्रदेशमां न्दुं स्वीकारी शकुं छुं; ढांटा पाणीमां डूणीने भरी शकुं छुं, तेमन सणगता अग्निमां प्रवेशु, विषुं लक्षु करुं, शस्त्रनाघाथी शरीर ने ढापुं, गणां। क्षंसे

गमनं वा अभ्युपगच्छामि=स्वीकरोमि, किंतु खलु=निश्चयेन सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य
 गृहे नैवगच्छामि । ततस्तदा—स सागरदत्तः सार्थवाहः कृडयान्तरितः= भित्तिव्य-
 वधानेन स्थितः सागरस्य दारकस्य एतमर्थम्=उक्तं वचनं निजामयति=शृणोति,
 निशाम्य लज्जितः स्वयं, व्रीडितः परतः ' विडे ' विडुः=देशीयोऽयं शब्दः स्वप-
 रतोलज्जितः, जिनदत्तस्य गृहात् प्रतिनिष्क्रामति=निर्गच्छति । प्रतिनिष्क्रम्य
 यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सुकुमारिकां दारिकां शब्दयति, शब्द-
 यित्वा अङ्गे=उत्सङ्गे ' निवेसेद् ' निवेशयति= उपवेशयति, निवेश्य एवमवादीत्-हे
 पुत्री ! किं=केन कारणेन खलु त्वं सागरेण दारकेण ' मुक्ता ' मुक्ता=त्यक्ता ? ।

विदारण करना गले में फांसी लगाकर घरजाना, गज, उब्दू आदि के
 मृतकलेवर में मैं अपने आपको प्रविष्ट कराकर उस शरीरको मृतबुद्धि
 की कल्पना से गृह पक्षियों द्वारा भक्षण करवाना यह सब मैं स्वीकार-
 कर सकता हूँ, इसी तरह दीक्षागृहण करना अथवा विदेश में चलेजाना
 भी स्वीकारकर सकता हूँ—परन्तु मैं सागरदत्त के घरजानास्वीकार नहीं
 कर सकता हूँ । अर्थात् ये सब पूर्वोक्त आपकी आज्ञाएँ मुझे बिना किसी
 संकोचके या विचारके मान्य हैं परन्तु सागरदत्तके घरजाना मुझे मान्य
 नहीं है । (तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे कुडुंतरिए सागरस्स एयमट्टं नि-
 सामेइ, निसामित्ता लज्जिए, विलीए, विडे. जिनदत्तस्स गिहाओ पडिनि-
 कखमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
 सुकुमालियं दारियं सदावेइ, सदावित्ता अंकेनिवेसेइ, निवेसित्ता एवं
 वयासी, किण्णं तुमं पुत्ता सागरएणं दारएणं मुक्का? अहं णं तुमं तस्स

वेरवीने भस्वुं, हाथी अंत वगेरेना भरेत्वा शरीरमां प्रवेश करी मारा शरी-
 रने भुतबुद्धिनी कल्पनाथी गीध पक्षीओने भवडावलुं आ अंधुं हुं स्वीकारी
 शकुं तेम छुं, तेवी अ रीते दीक्षा अहणु करवी अथवा तो परदेशमां जाता
 रडेहुं पणु हुं स्वीकारी शकुं छुं पणु हुं सागरदत्तना घेर अहुं स्वीकारवा तैयार
 नथी. अटले के आ अधी उपरनी तमारी आज्ञाओ मने डोअ पणु अतना
 विचार कथां वगर मान्य छे, पणु सागरदत्तने त्यां अहुं मान्य नथी.

(तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे कुडुंतरिए सागरस्स एयमट्टं निसामेइ, निसामित्ता
 लज्जिए, विलीए, विडे, जिनदत्तस्स गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता
 जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुकुमालियं दारियं सदावेइ,
 सदावित्ता अंके निवेसेइ, निवेसित्ता एवं वयासी किण्णं पुत्ता सागरएणं दारएणं

अहं खलु त्वां तस्मै दास्यामि यस्य खलु त्वमिष्टा=अभिलषिता कान्ता प्रिया मनोज्ञा
मनोभा=मनोगता भविष्यति, इति=एवं सुकुमारिकां दारिकां तामिरिष्टाभिर्वाग्भिः
'समासासेइ' समाश्वासयति, समाश्वास्य प्रतिविसर्जयति=प्रस्थापयति ॥ १० ॥

मूलम्-तद्युगं से सागरदत्ते एगं महं दमगपुरिसं पासइ
दंडिखंडनिवसपां खंडगमल्लगघडगहृत्थगग्रं सच्छियासहस्सेहिं

दहामि जस्स णं तुमं इट्ठा जाव मणामा अविस्ससित्ति सुमालियं दारियं-
ताहिं इट्ठाहिं वग्गहिं समासासेइ, समासासित्ता पडिविसज्जेइ) वहीं
भित्ति के पीछे छुपा हुआ सागरदत्त सार्यवाह सागर-के उन बच्चों को
सुन रहा था। सो सुनकरके स्वयं बड़ा लज्जित हुआ तथा दूसरोंसे भी
उसे बड़ी शर्म आई इस तरह स्व और पर से लजाना हुआ वह जिन-
दत्त के घर से बाहर निकल गया। और जाकर अपने घर पहुँचा।
वहाँ पहुँच कर उसने अपनी पुत्री सुकुमारिका दारिका को बुलाया
-बुलाने पर जब वह आ गई तब उसे उसने अपनी गोदी में बैठा लिया
बैठानेके बाद फिर उसने उससे पूछा बेटी ! सागरने तुम्हें किस कारण
से छोड़ दिया है मैं तुम्हें उसी के दूंगा ! कि जिस के लिये तुम अच्छी
तरह इष्टा, कान्ता, प्रिया, मनोज्ञा एवं मनोभा होओगी, इस प्रकार उसने
सुकुमारिका दारिकाको उन२ इष्ट बच्चों द्वारा अच्छी तरह आश्वासन
दिया-वैर्य वैवाया-और आश्वासन देकर उसे विसर्जित कर दिया। सू०१०

सुकका ? अहं णं तुमं तस्स दाहामि जस्सणं तुमं इट्ठा जाव मणामा अविस्ससित्ति
सुमालियं दारियं ताहिं इट्ठाहिं वग्गहिं समासासेइ, समासासित्ता पडिविसज्जेइ)
त्यां ७ बीतनी पाछण छुपाछने सागरदत्त सार्यवाह सागरनी ते भधी
वातने सांभणी रह्यो इतो सांभणी ते अहुं अ लज्जित थयो तेमं ७ पील-
ओथी पणु ते भूणं अ लज्जित थयो. आ रीते 'लते' अने पीलओथी
ललतो ते जिनदत्तना घेरथी अहार नीकणी गयो अने नीकणीने पोताने घेर
पडोअयो. त्यां ७छने तेणु पोतानी पुत्री सुकुमारिका दारिकाने बोलावी. न्यारे
ते सुकुमारिका दारिका आवी अर्ध त्यारे तेने पोताना ओणामां ओसाडी दीधी.
ओसाडीने तेणु तेने पूछ्युं डे भेटी ! शा कारणथी सागरे तने त्यथ छे ? तने
हुं ते पुत्रुपने ७ आपीश डे नेना भाटे तुं सारी रीते छण्टा, कान्ता, प्रिया,
मनोज्ञा अने मनोभा थयो. आ रीते तेणु सुकुमार दारिकाने पोताना छण्ट वय
नोथी सारीरीते आश्वासन आप्थुं अने त्यार पधी तेने विहाय आपी ॥सू०१०॥

जाव अन्निज्जमाणमगं, तएणं से सागरदत्ते कोडुंबियपुरिसे
सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया !
एयं दमगपुरिसं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमं पलोभेहि
पलोभित्ता गिहं अणुप्पवेसेह अणुप्पवेसित्ता खंडगमल्लगं
खंडघडगं ते एगंते एडेह एडित्ता अलंकारियकम्मं कारेह
कारित्ता णहायं कयदलि० जाव सन्वालंकारविभूसियं करेह
करित्ता मणुणं असणपाणखाइमसाइमं भोयावेह भोया-
वित्ता मम अंतियं उवणेह, तएणं कोडुंबियपुरिसा जाव
पडिसुणेति पडिसुणित्ता जेणेव से दमगपुरिसे तेणेव उवा-
गच्छइ उवागच्छित्ता तं दमगं असणं उवप्पलोभेति उवप्प-
लोभित्ता सयं गिहं अणुपवेसिति अणुपवेसित्ता तं खंडगम-
ल्लगं खंडगघडगं च तस्स दमगपुरिसस्स एगंते एडंति,
तएणं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि थ एगंते
एडिज्जमाणंसि महया२ सद्देणं आरसइ, तएणं से सागरदत्ते
तस्स दमगपुरिसस्स तं महया२ आरसियसइ सोच्चा निसम्म
कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी-किण्णं देवाणुप्पिया ! एस
दमगपुरिसे महया महया सद्देणं आरसइ ? तएणं ते कोडुं-
वियपुरित्ता एवं वयासी-एस णं सामी ! तंसि खंडमल्लगंसि
खंडघडगंसि एगंते एडिज्जमाणंसि महया महया सद्देणं
आरसइ, तएणं से सागरदत्ते सत्थ० ते कोडुंबियपुरिसे एवं
वयासी-मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! एयस्स दमगस्स तं

खंडं जाव एडेह पासे ठवेह जहा णं पत्तियं भवइ, ते वि
तहेव ठवित्ति. तएणं ते कोडुंबियपुरिसा तस्स दमगस्स
अलंकारियकम्मं करेति करित्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिच्छेहिं
अब्भंगेति अब्भंगिए समाणे सुरभिगंधुव्वट्टणैणं गायं उव्व-
ट्टित्ति२ उस्सिणोदगेणं गंधोदगेणं सीतोदगेणं पहाणेति पम्हल
सुकुमाल गंधकासाइयाए । गायानं लूहंति लूहित्ता हंसल-
कखणं पट्टसाडगं परिहेति परिहित्ता सव्वालंकारविभूसियं
करेति करित्ता विउलं असणपाणखाइमसाइमं भोयावेति
भोयावित्ता सागरदत्तस्स उवणेति, तएणं सागरदत्ते सूमा-
लियं दारियं पहायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करिता तं
दमगपुरिसं एवं वयासी—देवाणुप्पिया! मम धूया इट्ठा एयं
णं अहं तव भारियत्ताए दलामि भद्वियाए भद्वओ भद्वि-
जासि, तएणं से दमगपुरिसे सागरदत्तस्स एयमट्टं पडिसु-
णेति पडिसुणिता सूमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं
अणुपविसइ अणुपविसित्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं
तलिमंसि निवज्जइ, तएणं से दमगपुरिसे सूमालियाए इमं
एयारुवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, तेसं जहा सागरस्स जाव
सयणिजाओ अब्भुट्टेइ अब्भुट्टित्ता वासघराओ निग्गच्छइ
निग्गच्छित्ता खंडमल्लगं खंडघडगं च गहाय मारामुक्के विव-
काए जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए, तएणं
सा सूमालिया जाव गएणं से दमगपुरिसे त्तिकट्टु ओहय-
मणं जाव झियायइ ॥ सू० ११ ॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु स सागरदत्तः सार्थवा-
होऽन्यदा=अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित् काले ‘उर्षि आगासतलगंसि’ उपरि आका-
शतलके=प्रासादोपरिभागे, सुहृन्निषण्णे’ सुखेनोपविष्टः, राजमार्गमवलोकमानः
२ तिष्ठति । ततः खलु स सागरदत्त एकं महान्तं ‘दमगपुरिसं’ द्रमनपुरुषं
‘दमग’ इति देशीयः शब्दः दरिद्रपुरुषं पश्यति, किम्भूतम् ? इत्याह—‘दंडिखंड
निवसणं’ दण्डिखण्डनिवसनं=दण्डि-कृतसन्धानं जीर्णवस्त्रं तस्य खण्डं तदेव निव-
सनं परिधानवस्त्रं यस्य स दण्डिखण्डनिवसनस्तम्, तथा—, खंडमल्लग घडगहृत्थगयं’
खण्डमल्लकघटकहस्तगतं=खण्डमल्लकं-खण्डशरावं स्फुटितशरावं भिक्षापानं, तथा
खण्डघटकश्च=खण्डरूपो घटः स्फुटितस्य घटस्य भागः स एवं जलपानं, एतद्-
द्वयं हस्तगतं यस्य तम्, ‘मच्छियासहस्सेहिं जाव अग्निज्जमाणमग्गं’ मक्षिकास-
हस्रै र्यावत् अन्वीयमानमार्गं, शरीरवस्त्रादेर्मलिनत्वात् तत्पृष्ठतो मक्षिका आप

‘तएणं से सागरदत्ते’ इत्यादि ।

टीकार्थं—(तएणं से सागरदत्ते)इसके बाद सागरदत्तने किसी एक समय
“उर्षि आगासतलगंसि” अपने प्रासाद के ऊपर सुख पूर्वक बैठी हुई
स्थिति में राजमार्ग का अवलोकन करते समय (एगं महं दमगपुरिसं
पासइ) एक अत्यंत दरिद्र पुरुष को देखा (दंडिखंडनिवसणं खंडगम-
ल्लगघडगहृत्थगयं मच्छियासहस्सेहिं जाव अग्निज्जमाणमग्गं) जो
जीर्णवस्त्र के जुड़े हुए चिथड़े को पहिने था और जिसके हाथ में खंड-
मल्लकथा-फुटा हुआ मिट्टि के खप्पर था—तथा पानी पीने के
लिये फुटे हुए घट का एक खप्पर था । हजारों मच्छिखया जिसके पीछे
पीछे, शरीर और वस्त्रों के मलिन होने से भिन्न २ करती हुई उड़ रही

‘तएणं से सागरदत्ते’ इत्यादि ॥

टीकार्थं—(तएणं से सागरदत्ते) त्पार भाद सागरदत्त को एक वधत (उर्षि आगा-
सतलगंसि) पोटाना’भडेलनी ७पर सुपेथी गेशीने राजमार्गं नु अवलोकनकरतो डतो-
त्यारे तेखे (एगं महं दमगपुरिसं पासइ) एक पूणअ दरिद्र-कं गाण-पुरुषने जेथो.
(दंडिखंडनिवसणं खंडगमल्लगघडगहृत्थगयं मच्छियासहस्सेहिं जाव अग्निज्जमा-
णमग्गं) तेखे नूना वस्त्रना चिथराओ पडेरेला डता अने तेना डथमं
‘अंडमल्लक डतुं’ ओटवे के कुटी गथेला माटीना वासणुनो ओक डकंडो डतो
तेमणपाछी पीवा भाटे कुटेवी भाटवीनुं ओक खप्पर डतुं डनरे भापीओ
तेनीपाछण पाछण-शरीर अने वस्त्रोनी मलीनताने वीथे डी रडी डती,

तन्तीत्यर्थः । ततः खलु स सागरदत्त कौडुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत् हे देवानुप्रियाः ! यूयं खलु एतं द्रमकपुरुषं = रङ्गपुरुषं विपुलेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन प्रलोभयत प्रलोभ्य गृहमनुभवेशयत, अनुभवेश्य खंडकमल्लकं = खण्डशरावं खण्डघटकं = पानीयपात्रं ' से ' तस्य द्रमकपुरुषस्य एकान्ते = एकान्तस्थाने ' एडेह ' निक्षेपयत, निक्षेप्य अलंकारिककर्म = केशनखच्छेदनादिकं नापितादिभिः कारयत, कारयित्वा स्नातं कृतवलिकर्माणं यावत् सर्वालङ्कार-

थीं । (तए णं से सागरदत्ते कौडुम्बियपुरिसे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी-तुम्भे णं देवानुप्पिया ! एयं दमगपुरिसं विउलेणं असणपाणखाइम साइमं पलोभेइ, पलोभित्ता गिहं अणुपवेसेह, अणुपवेसित्ता खंडगमल्लगं खंडघडगं तं एगंते एडेह एडित्ता अलंकारिकम्मं कारेह कारित्ता ण्हायं कयवलि० जाव सव्वालंकारविभूसियं करेह करित्ता मणुणं असणपाणखाइमसाइमं भोयावेह, भोयावित्ता मम अंतियं उवणेह) इसके बाद सागरदत्तने आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाया । बुलाकर उसने इस प्रकार कहा देवानुप्रियो । तुम लोग इस दरिद्र पुरुषको विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यरूप चतुर्विध आहारका प्रलोभन दो-प्रलोभन देकर फिर इसे घर में भीतर करलो । जब यह घरके भीतर हो जावेगा तब तुमलोग इसके घे खंडमल्ल (फटी लंगोटी) और खंडघटक इससे छुड़ाकर किसी एकान्त-सुरक्षित-स्थान में रखदो । बाद में नापित (नाई) को बुलाकर इसके सुन्दर ढंग से बाल बनवाओ नखआदि जो बढ़ रहे

(तएणं से सागरदत्ते कौडुम्बियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-तुम्भेणं देवानुप्पिया ! एयं दमगपुरिसं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमं पलोभेइ, पलोभित्ता गिहं अणुपवेसेह, अणुपवेसित्ता खंडगमल्लगं खंड घडगं तं एगं ते एडेह, एडित्ता अलंकारिकम्मं कारेह कारित्ता ण्हायं कयवलि० जाव सव्वालंकारविभूसियं करेह करित्ता मणुणं असणपाणखाइमसाइमं भोयावेह, भोयावित्ता मम अंतियं उवणेह)
 त्यारपछी सागरदत्ते आज्ञाकारी पुरुषाने बोलाव्या. बोलावीने तेभने आ प्रभाण्णे कहुं-डे डे हेवानुप्रियो ! तमे बोडे आ दरिद्र पुरुषने पुण्ण प्रभाण्णमां अशन, पान, भाद्य अने स्वाद्य इप आर नतना आहारनी लासथ आपो. लासथ आपीने तेने घरनी अंदर बोलावी ले. न्यारे ते घरमां आवी नथ त्यारे तमे तेनी पासना भ'उमल्ल अने भ'उघटक लधने तेने अेकांत सुरक्षित स्थानमां भूखी हो. त्यारपछी लज्जभने बोलावीने तेना सरस रीते वाण कपावी नापो अने वधी गथेला नप वगेरेने कपावी नापो. त्यारपछी तेने स्नान

विभूषितं कुरुत कृत्वा ' मणुष्यं ' मनोज्ञं=रुचिरम् अशनपानखाद्यस्वाद्यं भोजयत भोजयित्वा ममान्तिकं=समीपमुपनयत । ततः खलु कौटुम्बिकपुरुषा यावत्-प्रति-शृण्वन्ति= तथाऽस्तु ' इति कृत्वा तदाज्ञां स्वीकुर्वन्ति प्रतिश्रुत्य यत्रैव स द्रमकंपुरुषः=रङ्गपुरुषः, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तं द्रमकं रुचिरेण विपुलेनाशनादिना मलोभयन्ति मलोभ्य स्वकं ग्रहमनुभवेशयन्ति, अनुभवेश्य तं खण्डकमल्लकं खण्डकघटकं च तस्य द्रमकपुरुषस्यैकान्ते ' एडंति ' निक्षेपयन्ति, ततः खलु स द्रमकस्तस्मिन् खण्डमल्लके खण्डघटके च एकान्ते ' एडिज्जमाणंसि ' निक्षेप्यमाणे सति महता २ शब्देन ' आरसइ ' आक्रन्दति । ततः खलु स सागरदत्तस्तस्य द्रमकपुरुषस्य तं महान्तं ' आरसियइ सइ ' आक्रन्दनशब्दं श्रुत्वा निगम्य कौटु-

हैं उन्हें कटवाओ । उसके प्रश्नात् इसे स्नान कराओ । बाद में इससे पशु पक्षी आदिको अन्नादिका भागरूप बलिकर्म आदिकरवाओ-जब यह बलिकर्म आदिकर चुके तब तुमलोग इसे समस्त अलंकारो से विभूषित करो, विभूषित करके फिर इसे मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य, एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार खिलाओ-खिलाकर के बाद में फिर हमारे पास इसे ले आओ । (तएणं कौटुंबियपुरिसा जाव पडिसुणंति, पडिसुणिस्ता, जेणेव से दमगपुरिसे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दमगं असणं उवप्पलोभेति, उवप्पलोभित्ता सयं गिहं अणुपवेसिति अणुपविसित्ता, तं खंडमल्लगं खंडगघडगं च तस्स दमगपुरिसस्स एगंते एडंति, तएणं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि, खंडघडगंसि य एगंते एडिज्जमाणंसि महया २ सहेणं आरसइ, तएणं से सागरदत्ते तस्स दमगपुरिसस्स तं महया २ आरसियसइं सोच्चो

करावो स्नान कराव्या आइ तेना हाथैथी पशु-पक्षी वगेरेना अन्न वगेरेना भाग आपवा इप अडिकभं करावडावो. ज्यारे अडिकभं नी विधि पती जय त्यारे तमे डोडो ओने भधी जतना अदंकारोथी शशुगारे. शशुगारीने तेने मनोज्ञ, अशन, पान, आद्य अने स्वाद्य इप आर जतना आहारो जभाडे. जभाडेया पछी तेने अशरी पासे धरि आवो.

(तएणं कौटुंबियपुरिसा जाव पडिसुणंति, पडिसुणिस्ता जेणेव से दमगपुरिसे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तं दमगं असणं उवप्पलोभेते उवप्पलोभित्ता सयं गिहं अणुपवेसिति, अणुपविसित्ता, तं खंडमल्लगं खंडगघडगं च तस्स दमगपुरिसस्स एगंते एडंति तएणं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि, खंडघडगंसि य एगंते एडिज्जमाणंसि महया २ सहेणं आरसइ, तएणं से सागरदत्ते तस्स दमगपुरिसस्स तं महया २ आरसियसइं सोच्चो निसस्य कौटुंबियपुरिसे एवं वयासी)

म्बिकपुरुषानेवमवादीत्—हे देवानुप्रियाः ! किं=केन कारणेन खलु एष दमकपुरुषो महता २ शब्देन आरसति=आक्रन्दति ? । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः एवमवदन्—एष खलु हे स्वामिन् ! तस्मिन् खण्डपल्लके खण्डघटके एकान्ते निक्षेप्यमाणे महता २ शब्देन आरसति=आक्रन्दति । ततः खलु स सागरदत्तः सार्थवाहस्तान् कौटुम्बिकपुरुषान् एवमवादीत्—हे देवानुप्रियाः ! मा खलु यूयं एतस्य निसम्भ कौटुम्बियपुरिसे एवं वयासी) इस प्रकार की उन कौटुम्बिक ने सागरदत्त सेठ की इस आज्ञा को अच्छी तरह स्वीकार लिया और स्वीकार कर वहाँ जाकर उन्होंने उस दमक को अशन पान आदिरूप चतुर्विध आहार से बार २ लुभाया लुभाकर वे उसे अपने घर तक ले आये और अंत में अपने घर में उसे प्रवेश कराया । बाद में उन लोगों ने उस दमक पुरुष के फूटे हुए मिट्टी के दीपक के खंड को, तथा फूटे हुए घड़े के सप्पर को उससे लेकर किसी सुरक्षित स्थान में रख दिया । जब उस दमकपुरुष ने अपने खंडमल्लक(फटी लंगोटी) को और खंडघटकको अपने से लेकर एकान्त स्थानमें रखा जाता हुआ देखा—तो वह जोर जोरसे रोने लगा—उसके उस रोनेकी आवाजको सुनकर और उसे अपने चित्त में धारण कर सागरदत्तने कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा—(किण्णं देवाणुप्पिया ! एसदमगपुरिसे महया २ सहेणं आरसइ ३ तएणं ते कौटुम्बियपुरिसा एवं वयासी एसणं सामी ! तंसि खंडमल्लगंसि खंडघटगंसि एगंते एडिज्जमाणंसि महया २ सहेणं

आ नतनी सागरदत्तनी आज्ञाने ते कौटुम्बिक पुरुषोच्चे सारी रीते स्वीकारी लीधी. स्वीकारां ग्राह तेज्जे हरिद्र भाणुसनी पासो गथा त्यां न्धने तेभल्ले तेने घोलाब्धे. अने अशन, पान वगेरे इय आर नतना आहारनी वारवार लालथ आपी. ललथावीने तेज्जे तेने घर सुधी लध आब्धा अने छेवटे तेने घरमां दाभल करी दीधो. त्थारपथी ते बोडोच्चे ते हरिद्र भाणुसनी पासोथी इठेला माटीना वासल्लुनेा कटके तेमज्ज इठेला माटवाना अन्धरने लधने सुरक्षित स्थाने भूकी दीधुं न्थारे ते हरिद्र भाणुसे पोताना अन्धमल्लकने अने अन्धघटकने पोतानी पासोथी धीनवीने ज्येकांत स्थानमां भूकतां ज्जेसुं त्थारे ते मोठेथी धांटा पाडीने उडवा लाब्धे. तेना उडवाना आवाजने सांलणीने अने तेने पोताना चित्तमां धारथ करीने सागरदत्ते कौटुम्बिक पुरुषोच्चे आ प्रमाणु कहुं.

(किण्णं देवाणुप्पिया ! एस दमगपुरिसे महया २ सहेणं आरसइ, तएणं ते कौटुम्बियपुरिसा एवं वयासी एसणं सामी ! तंसि खंडमल्लगंसि खंडघटगंसि एगंते एडिज्जमाणंसि महया २ सहेणं आरसइ, तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे ते

द्रमकपुरुषस्य तत् खण्डमल्लकं खण्डघटकं यावत्—एकान्ते ' एडेह ' निक्षेपयत अस्य परोक्षे मा स्थापयतेत्यर्थः, किन्तु पार्श्वे स्थापयत, यथा खलु ' पत्तियं ' प्रत्ययः= विश्वासो भवति । तेऽपि कौटुम्बिकपुरुषाम्तथैव स्थापयन्ति । ततः खलु ते कौटु-

आरसइ, तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे ते कोडुंविद्य पुरिसे एवं वयासी) हे देवानुप्रियो ! क्या कारण है जो यह दमक पुरुष जोर २ से रो रहा है ? तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने ऐसा कहा कि हे स्वामिन् ! इसने ज्योंही अपने खंडमल्लक को और घटखंड को लेकर एक ओर सुरक्षित स्थान में रखे जाते हुए देखा वैसे ही यह बड़े जोर २ से रोने लगा है । ऐसा सुनकर सागरदत्त ने उन कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा— (माणं तुव्भे देवाणुप्पिया । एयस्स दमगस्स तं खंड जाव एडेह, पासे ठवेह, जहाणं पत्तियं भवइ, तेपि तहेव ठवेति, तएणं ते कोडुंविद्य पुरिसा तस्स दमगस्स अलंकारियकम्मं करेति, करिच्चा सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भगेति, अब्भंगिए समाणे सुरभिगंधुव्वहणेणं गायं उव्वहिति, २ उस्सिणोदगेणं गंधोदगेणं सीतोदगेणं ण्हावेति) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग इस दमक पुरुष के फूटे हुए मिट्टी के दीपक के खंड को और फूटे हुए घड़े के खप्पर को इससे लेकर परोक्ष में— अदृश्य स्थान में—मत रखो किन्तु इस के पास में ही—समक्षरखो, जिससे इसे अपना विश्वास बना रहे । इस प्रकार सागरदत्त की बात

कोडुंविद्य पुरिसे एवं एवं वयासी)

हे देवानुप्रियो ! शा कारणुथी आ हरिद्र भाणुस भोठेथी धांटा पाडी पाडीने रडी रळो छे ? त्त्यारे ते कौटुम्बिक पुइधोअे आ प्रभाणे कळुं डे डे स्वामिन् ! पोताना अ'उमल्लक अने अ'उघटकने तेनी पासेथी लधने पीअ सुरक्षित स्थाने लधं जतं जेधने आ हरिद्र भाणुस भोठेथी रउवा लाग्थे छे . आ प्रभाणे सांलणीने सागरदत्ते कौटुम्बिक पुइधोने आ प्रभाणे कळुं डे—

(माणं तुव्भे देवाणुप्पिया ! एयस्स दमगस्स तं खंड जाव एडेह पासे ठवेह, जहाणं पत्तियं भवइ, ते पि तहेव ठवेति, तएणं ते कोडुंविद्यपुरिसा तस्सं दमगस्स अलंकारियकम्मं करेति, करिच्चा सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भगेति अब्भंगिए समाणे सुरभिगंधुव्वहणेणं गायं उव्वहिति २ उस्सि णोदगेणं गंधोदगेणं सीतोदगेणं ण्हावेति)

हे देवानुप्रियो ! तमे डोडो आ हरिद्र पुइधना कूटेला भाडीना दीपकना कटकाने अने कूटेला घडाना अ'पपरने अेनी पासेथी लधने इर अेकतमां भूइशो नडि पणु अेनी पासे अ—अेनी साभे अ भूडी राअे . जेथी अेने विश्वास रडे .

म्बिकपुरुषास्तस्य द्रमक्रस्य=रङ्गपुरुषस्य अलंकारिककर्म कारयन्ति कारयित्वा शत-
पाक सहस्रपाकैस्तैरभ्यङ्गयति=मर्दयन्ति । अभ्यङ्गितः सन् सुरभिगन्धोर्द्धनेन=
सुगन्धिपिष्टकेन गात्रमुद्धर्तयन्ति, उद्धर्त्य उष्णोदकेन गन्धोदकेन शीतोदकेन
स्नपयन्ति, रनपयित्वा ' पम्हलसुकुमालगंधकासाइयाए ' पक्षमलसुकुमारगन्ध-
कावायिकया=पक्षमला=पक्षमवनी गृहुरोमयुक्ता अत एव सुकुमारा तथा कपायेण
रक्ता साटी कावायिका तथा गात्राणि ' ल्हंति ' रक्षयन्ति = प्रोच्छयन्ति,

सुनकर उन आदेशकारी पुरुषों ने वैसा ही किया—अर्थात् उसके मल्लक-
खंड और घटखंड दोनों को ही उसके समक्ष उन्होंने रख दिया ।
इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषोंने उस दमक पुरुषका आलंकारिक कर्म
करवाया । अब उसका अच्छी तरह अलंकारिक कर्म निष्पन्न हो चुका-
तब उसके बाद उस दमक पुरुष के शरीर की उन लोगों ने शतपाक और
सहस्र पाकवाले तैल से मालिश की—मालिश करनेके पश्चात्, सुगन्धि-
पिष्टक—सुगंधितपिटी—से उसके शरीर का उपटन किया उस सुगंधित
पिटी को उसके शरीर पर रगड़ कर मला इससे जो उसके शरीर
पर मल जमा हुआ था वह चिकनाहट के संबन्ध से उस पिटीद्वारा
निकल गया । जब उनके शरीर का उद्धर्तन हो चुका—तब फिर उन
लोगों ने उसे उष्णोदक से गंधोदक से, एवं शीतोदक से स्नान कराया ।
स्नान कराकर बाद में उसका शरीर (पम्हलसुकुमारगंधकासाइयाए
गायाई ल्हंति) पक्षमल—रूखवाली—गृहुरोमयुक्त—सुकुमार—नरम, रंगी-
हुई दवाल से—अंगोछी—ले—तौलिया से पोंछा । (ल्हंति हंसलक्खणं

आ रीते सागरदत्तनी वात सांभणीने ते आज्ञाकारी पुश्चेअत्ते ते प्रभाण्णे व
कथुं. अेट्ते के तेना मट्ठकथंड अने घटथंडने तेनी साभे व भूकी धीधा.
त्यारपणी ते कौटुम्बिक पुश्चेअत्ते ते हरिद्र भाणुसना वाण अने नभ कपाव्या.
न्यारे आक्राम सरस रीते पुइं थथं गथुं त्यारे तेअ्त्ते हरिद्र भाणुसना
शरीरने शतपाक अने सहस्रपाकवाणा तेदथी भादिश कथां भाद
सुगंधिपिष्टक—सुगंधित पीठी—तेना शरीरे थोणीने उपटन कथुं. अथी तेना
शरीर उपर नेट्ठो मेद डतो ते पीठीनी स्निग्धताने धीधि साइं थथं गथे
न्यारे तेना शरीरे पीठी थोणाथं गथं त्यारे ते डोकोअत्ते तेने गरम पाणीथी,
सुवासित पाणीथी अने ठडा पाणीथी स्नान कराव्युं. स्नान कराव्या भाद तेना
शरीरने (पम्हल सुकुमार गंध कासाइयाए गायाई ल्हंति) पक्षमल—इंवाटावाणा
मुकोभण, नरम रंगीन टुवालथी व्णथुं.

रूक्षयित्वा 'हंसलक्षणं' हंसलक्षणं = हंसस्वरूपं तदिव शुद्धं स्वरूपं यस्य तत्, 'पट्टसाडगं' पट्टशाटकं=क्षौमवस्त्रं 'परिहेंति' परिधापयन्ति परिधाप्य सर्वालंकार-विभूषितं कुर्वन्ति, कृत्वा विपुलमशनपानखाद्यस्वाद्यं भोजयन्ति, भोजयित्वा सागरदत्तस्योपनयन्ति । ततः खलु सागरदत्तः सुकुमारिकां दारिकां स्नातां यावत्-सर्वालङ्कारभूषितां कृत्वा तं द्रमकपुरुषम् एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्-हे देवानुप्रिय ! एषा खलु मम दुहिता इष्टा, एतां खलु अहं तव भार्यात्वेन ददामि

पट्टसाडगं परिहेंति, परिहित्वा सञ्चालंकारविभूषितं करोति, करित्वा विउलं असनपाणखाइमसाइमं भोजयेंति, भोजयित्वा सागरदत्तस्स उवर्णेंति) जब शारीरिक प्रत्येक अवयव ठीक २ अच्छी तरह से पोंछाजा चुका-तब फिर उन्होंने हंस चिह्नवाला अथवा हंस के जैसा शुभ्रपट्टशाटक-क्षौमवस्त्र उसको पहिराया । क्षौमवस्त्र पहिराकर फिर उसको विपुल, अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार का भोजन कराया । भोजन कराकर फिर वे उसको सागरदत्त के पास ले गये (तएणं सागरदत्ते सुमालियं दारियं ण्हायं जाव सञ्चालंकार विभू-सियं करित्ता तं दमगपुरिसं एवं वयासी-एसणं देवाणुप्पिया ! मम धूया इट्ठा एयं णं अहं तव भारियत्ताए दलामि) सागरदत्त ने अपनी सुकुमारिका दारिका को स्नान कराकर यावत् समस्त अलंकारो से विभूषित करके उस दमक पुरुष से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय ! यह मेरी लड़की है । और मुझे बहुत ही अधिक इष्ट, प्रिय, कान्त

(लुहित्वा हंसलक्षणं पट्ट साडगं परिहेंति, परिहित्वा सञ्चालंकारविभूषितं करोति, करित्वा विउलं असनपाणखाइमसाइमं भोजयेंति, भोजयित्वा सागरदत्तस्स उवर्णेंति)

न्यारे शरीरना भधा अणो भरस रीते लुछाध गथा त्यारे तेज्जोअजे ङंसन्नित्रित अथवा तो ङंस जेतुं स्वरुछ धोणुं पट्टशाटक क्षौम वस्त्र पडेरावुत्तुं । क्षौम वस्त्र पडेरावीने तेने विपुल अशन, पान, आद्य अने स्वाद्य इप आर नतना आढारे नभाडया. नभाडया पछी तेज्जो तेने सागरदत्तनी पासो लध गथा

(तएणं सागरदत्ते सुमालियं दारियं ण्हायं जाव सञ्चालंकारविभूषितं करित्ता तं दमगपुरिसं एवं वयासी-एसणं देवाणुप्पिया ! मम धूया इट्ठा एयं णं अहं तव भारियत्ताए दलामि)

सागरदत्ते चोतानी सुकुमारिका दारिकाने स्नान करावीने यावत् भधी नतना अलंकारोधी शष्पुगारीने ते हरिद्र माषुसने आ प्रसाणु कळुं के डे देवानुप्रिय ! आ भारी पुत्री छे अने मने अहुं न छिध, प्रिय, कान्त, मनोना

‘ भद्वियाए ’ भद्रिकया=भाग्यशालिन्याऽनया त्वमपि भद्रको भाग्यशाली भविष्यसि । ततः खलु स द्रमकपुरुषः सागरदत्तरस्यैतमर्थं प्रतिवृणोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य सुकुमारिकया दारिकया सार्धं वासगृहं लुप्रविशति, सुकुमारिकया दारिकया सार्धं ‘तलिगंसि’ तस्ये=शयनीये ‘नीवज्जइ’ निपीदति उपविशति । ततः खलु स द्रमक-पुरुषः सुकुमारिकाया इमं=पूर्वोक्तम् एतद्रूपं=पूर्वोक्तस्वरूपम् अङ्गरपर्वं ‘पडिसंवेदेइ’ प्रतिसंवेदयति=प्रत्यनुभवति शेषं यथा सागरस्य=शेषवर्णनं सागरदारकवद् बोध्यम्, यावत्-अत्र यावच्छब्दादिदं द्रष्टव्यम्-‘असिपत्रादीनां स्पर्शादप्यनिष्टतरं तदङ्ग-स्पर्शं ज्ञात्वा सागरदारकवद् द्रमकपुरुषोऽपि तां सुकुमारिकां सुखप्रसन्नां ज्ञात्वा, शयनीयादुत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय वासगृहाद् निर्गच्छति, निर्गत्य खण्डमल्लकं=रफुटि-

मनोज्ञ एवं मनोम है । मैं अपनी इस पुत्री को तुम्हें तुम्हारी भाग्य के रूप में प्रदान करता हूँ (भद्वियाए भद्रओ भविज्जसि, तएणं से दमग-पुरिसे सागरदत्तरस एयमइं पडि०२ सुमालियाए दारियाए सद्धिं वास घरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सुमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ) इस भाग्यशालिनी से तुम भी भाग्यशाली बनजाओगे । दमकपुरुष ने सागरदत्त के इस कथनरूप अर्थ को अंगीकार कर लिया, और फिर वह उस सुकुमारिका दारिका के साथ वासगृह में प्रविष्ट हुआ । वहाँ जाकर वह उस सुकुमारिका दारिका के साथ साथ एक ही पलंग पर-बैठ गया-सो गया (तएणं से दमगपुरिसे सुमालियाए इमं एयारुवं अंगफासं पडि संवेदेइ, सेसं जहा सागररस जाव सयणिज्जाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता वासघराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता खण्डमल्लकं

अने मनोम छे. हुं भारी आ पुत्रीने तमने तमारी पत्नीना रूपमां अपुं छुं. भद्वियाए भद्रओ भविज्जसि, तएणं से दमगपुरिसे सागरदत्तरस एयमइं पडि० २ सुमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सुमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ)

आ भाग्यशालिनी तमे पणु भाग्यशाली थरुं जेथो. ते दरिद्रं पुत्रे सागरदत्तानी अे वातने स्वीकारी वीधी अने त्यागनाह ते सुकुमारिका दारिकानी साथे वासगृहमां प्रविष्ट थथो. त्यां ज्जने ते दरिद्रं माणुम सुकुमारिका दारिकानी साथे अेक ज् शय्या उपर जेसी गथो.

(तएणं से दमगपुरिसे सुमालियाए इमं एयारुवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, सेसं जहा सागररस जाव सयणिज्जाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता वासघराओ निग्ग-च्छइ निग्गच्छित्ता खण्डमल्लकं खण्डघडगं च गहाय मारामुक्के विव काए जामेव

तमिक्षापात्रं, खंडघटकं=स्फुटितपानीयपात्रं च गृहीत्वा 'मारासुक्के विव काए' मारासुक्तइव काकः मारा-शना प्राणिवधस्थानं ततो मुक्तः निःसृतः काक इव, अथवा-माराद्-मारकपुरुषात् तदीयहस्तादित्यर्थः मुक्त-विच्छुटितः काक इव शीघ्रतया यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः । ततः खलु सा सुकुमारिका यावद्-ततो मुहूर्त्तान्तरे प्रतिशुद्धा सती पतिमपश्यन्ती शयनीयादुच्छिष्टति, उत्थाय द्रमकपुरुषस्य मार्गणवेषणं कुर्वाणा वासगृहस्य द्वारं दिघाटितं पश्यति

खंडघट्टं च गहाय मारासुक्के विव काए जामेव दिसं पाउम्भूए तामेव दिसं पडिगए) उस समय उस दमक पुरुष को उस सुकुमारिका दारिका का वह पूर्वोक्त तथा पूर्वोक्त स्वरूपवाला अंगस्पर्श अनुभव में आया । शेष वर्णन सागरदारककी तरह जानना चाहिये । इस तरह वह दमक पुरुष भी अस्तिपत्रादिकों के स्पर्श से भी अधिक अनिष्ट उसके अंगस्पर्श को जानकरके, सागरदारक की तरह, सुख प्रसुप्त उस सुकुमारिका दारिका को जान उसे छोड़ने के लिये पलंग से उठा और उठकर उस वास घर से बाहिर निकला-निकलकर खंडमलक-फूटे हुए भिक्षापात्र को तथा खंडघटक-फूटे हुए पानी पीने के पात्र को-लेहर वध्यस्थान से अथवा मारक पुरुष के हाथ से मुक्त हुए काककी तरह वह बहुत जल्दी जहाँ से आया था उसी ओर चलदिया (तएणं सा सूमालिया जाव गएणं से दमगपुरिसे त्ति कहु ओहयमण जाव झियायइ) इसके थोड़ीदेर बाद वह सुकुमारिका दारिका जगी और पतिको अपने पास न

दिसं पाउम्भूए तामेव दिसं पडिगए)

ते वपते ते हरिद्रं भाषुसने सुकुमारिका दारिकाना अंगेना स्पर्शं पडेवां पथुंन करवांभां आन्धा प्रमाञ्जेना कठोरं च लाग्धे। (अर्धी सागरदारक जेवुं च पथुंन समञ्च जपुं जेधजे.) आ रीते ते हरिद्रं भाषुस पथु तरवारना स्पर्शं करतां पथु वधाने अनिष्टकर तेना स्पर्शं जल्लीने सागर दारकनी जेमच सुजेथी सुधं गयेली ते सुकुमारिका दारिकाने जेधने, तेना त्याग करवा भाटे पवंग ढपरथी जिले थये अने जिले थधने वासगृहनी गडार नीडुब्धी अने नीकणीने अंडमलक-फूटेला भिक्षापात्र तेमच अंडघटक-फूटेला पाणी पीवा भाटेना पात्रने लधने वध्यस्थानथी अथवा तो मारक (डिसक) पुत्रपना ढाथथी मुक्त थयेला कागडानी जेम ते त्वराथी न्याथी ते आन्धे डतो ते तरकं च जतो रह्यो। (तएणं सा सूमालिया जाव गएणं से दमगपुरिसे त्ति कहु ओहमण जाव झियायइ) थोडावपत पथी ते सुकुमारिका दारिका जगी अने पतिने पेतानी पासं न जेधने

दृष्ट्वा एवमवादीत् '—इति कृत्वा, अपहृतमनः संकल्पयावद्-आर्तध्यानं
'ध्यायति ॥ सू० ११ ॥

मूलम्—तएणं सा भद्रा कल्लं पाउ० दासचेडिं सदावेइ सदा-
वित्ता एवं वयासी जाव सागरदत्तस्स एयमदं निवेदेइ, तएणं
से सागरदत्ते तहेव संभंते समाणे जेणेव वासहरे तेणेव उवा-
गच्छइ उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं अंकेनिवेसेइ निवेसित्ता
एवं वयासी—अहो णं तुमं पुत्ता ! पुरा पोराणा णं जाव पच्चणु-
ब्भवमाणी विहरसि तं मा णं तुमं पुत्ता ! ओहयमण जाव
झियाहि तुमं णं पुत्ता मम महाणसंसि विपुलं असणं४ जहा
पुट्टिला जाव परिभाएमाणी विहराहि, तएणं सा सुमालिया
दारिया एयमदं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता माहणसंसि विपुलं
असणं जाव दलमाणी विहरइ ॥ सू०११ ॥

टीका—' तएणं सा ' इत्यादि । ततः खलु सा भद्रा सार्थवाही=सुकुमारिका
दारिकाया जननी ' कल्लं ' कल्पे द्वितीयदिवसे प्रादुः प्रभातायां रजन्यां यावत्-
देखकर पलंग से उठी । उठकर उसने उस दम्कपुरुषकी मार्गणा एवं
गवेषणा की । उसमें उसने वासगृह के द्वार को खुला हुआ देखा । देख-
कर उसने विचारा कि वह दम्क पुरुष अब चला गया है । ऐसा सोचकर
वह अपहृत मनः संकल्प होकर यावत् आर्तध्यान करने लगी ॥ सू० ११ ॥

' तएणं सा भद्रा कल्लं ' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा भद्रा कल्लं पाउ० दासचेडिं

शब्धा उपरथी जल्ली थधं । जल्ली थधने तेणे ते हरिद्र भाणुसनी शोध जेण करी ।
तेणे विचार करी के ते हरिद्र भाणुस तो जेतो रह्यो छे आ रीते विचार करीने
ते अपहृतमनः संकल्पा थधने यावत् आर्तध्यानमां इणी गधं ॥ सूत्र ११ ॥

' तएणं सा भद्रा कल्लं ' इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्पारभाद (सा भद्रा कल्लं पाउ० दासचेडिं सदावेइ, सदा-

तेजसा ज्वलति सूर्ये-उदिते दासचेटीं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-यावत् सागरदत्तस्यैतमर्थं निवेदयति, अत्र यावच्छब्देन पूर्वसूत्रोक्तवर्णनमनुसन्धेयम्, तथा-वधुवरयोर्मुखधावनिकामुपनयेति । एवमुक्तासती दासचेटी वासगृहमुपागत्य सुकुमारिकामार्तध्यानं ध्यायन्ती पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्-हे देवानुप्रिये ! किं खलु त्वम् अपहतमनः संकल्पा ध्यायसि ? ततः सुकुमारिका तां दासचेटीमेवमवादीत्-स द्रमकपुरुषो मां सुखप्रसुतां ज्ञात्वा मम पार्श्वार्धुस्थाय निर्गतः, ततोऽष्टहूर्त्तान्तरेऽहमुत्थाय तमपश्यन्ती ' गतः सद्रमकपुरुषः, इति कृत्वा ऽऽर्तध्यानं ध्यायामि

सद्वावेह, सद्वाविन्ता एवं वयासी जाव सागरदत्तस्स एयमहं निवेदेहं) सुकुमारिका दारिकाकी माता उस भद्रा ने द्वितीय दिन जब प्रातः काल हो गया था-और सूर्य उदित हो चुका था-तब अपनी दासचेटी को बुलाया-बुलाकर उससे ऐसा कहा-यहां यावत् शब्द से यह पूर्वसूत्र गत वर्णन जोड़लेना चाहिये जैसे, भद्राने बुलाकर उससे ऐसा कहा कि तू वधु और वर के लिये यह सुख घोने की सामग्री दतौन आदि-लेजा जब भद्रा ने उससे ऐसा कहा तब वह दासचेटी वासगृह में गई-और वहां जाकर उसने सुकुमारिका को आर्तध्यान करती हुई देखा तब देखकर उसने उससे ऐसा कहा-देवानुप्रिये । क्या कारण है जो अपहतमनः संकल्प होकर तुम आर्तध्यान कर रहीं हो-तब सुकुमारिका दारिका ने उस दासचेटी से इस प्रकार कहा-वह द्रमक पुरुष मुझे यहां सुख प्रसुप्त जान छोड़कर चला गया है । जब मैं थोड़ी देरबाद उठी तो मैंने उसे अपने पास नहीं देखा, वासभवन का द्वार खुला हुआ

विन्ता, एवं वयासी जाव सागरदत्तस्स एयमहं निवेदेहं) सुकुमारिका दारिकाकी माता भद्राये गीला द्विसे न्यारे सवार थर्ध गथुं अने सूर्य उदय पाभ्यो त्यारे तेणे दासीने जोलावी अने जोलावीने आ प्रभाणे कहुं-अर्धी यावत् शण्ठथी पडेलांता सूत्रनी नेम न. वधुंन सभल वेवुं नेधये. नेमके भद्राये तेने जोलावीने आ प्रभाणे कहुं के वधु अने वरना सुभ प्रक्षासन भाटे हातणु वगेरे लधं न. न्यारे भद्राये तेने आ प्रभाणे कहुं त्यारे ते दासी वासगृहमां गध अने त्यां नधने तेणे सुकुमारिका दारिकाने आर्तध्यान करती नेधं. त्यारे आ प्रभाणे तेनी हाहात नेधने तेणे कहुं के छे देवानुप्रिये ! शा कारणुथी तमे अपहतमनः संकल्प थर्धने आर्तध्यान करी रहां छे. त्यारे सुकुमार दारिकाये ते दासीने आ प्रभाणे कहुं-के ते हरिद्र भाणुस भने अर्धी सुपेथी सुतेवी छोडीने जतो रह्यो छे. न्यारे थोडा वषत पछी हुं लगी त्यारे मे तेने मारी पासे लेयो नहि अने मे वासगृहता पारणाने पणु सुद्वुं

ततः सा दासचेटी सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य समीपभागत्यैतमर्थं निवेदयतीति योजना बोध्या । ततः खलु स सागरदत्तस्तथैव 'संभंते' संभ्रान्तः=उद्विग्नः सन् यत्रैव वासगृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सुकुमारिकां दारिकामङ्के निवेशयति, निवेश्य स्वमत्रादीत्-अहो ! इत्याश्चर्ये खलु हे पुत्रि ! त्वं 'पुरा' पुरा=पूर्वभवेषु 'पोराणाणं' पुराणानाम्=अतीतकालकृतानां, यावत्=अत्र यावच्छब्देनेदं बोध्यम्-'दुष्चिन्नाणं दुष्परकं ताणं कड़ाणं पावाणं कम्माणं पावगं फलविति

देखा तब मैं समझ गई कि वह यहाँ से चला गया है । इस प्रकार मैं चिन्ता में पड़ रही हूँ । सुकुमारिका को इस बात को सुनकर दासचेटी ने उसी समय वहाँ से वापिस आकर सागरदत्त को इस बात की खबर दी-"इस प्रकार यह पूर्वोक्त पाठ यहाँ लगा लेना चाहिये-(तएणं से सागरदत्ते तद्देव संभंते समाणे जेणेव वासहरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं अंके निवेशेइ, निवेशित्ता एवं वयासी, अहोणं तुमं पुत्ता पुरा पोराणाणं जाव पच्चणुम्भवमाणी विहरसि तं माणं तुमं पुत्ता ओहयमण जाव झियाहि-तुमं णं पुत्ता मम महाणसंसि विपुलं असणं ४ जहा पुट्टिला जाव परिभाएमाणी विहराहि) इसके बाद वह सागरदत्त पहिले जैसा उद्विग्न चित्त होकर जहाँ वासगृह था वहाँ गया । वहाँ जा कर उसने सुकुमारिका दारिका को अपनी गोद में बैठा लिया और बैठाकर कहने लगा-हे पुत्रि ! तुमने पहिले भवों में जो दुःस्त्रीणं दुष्पराकान्त, (कठिन-ताईसे भोगने योग्य एवं कृत ज्ञानावरणीय आदि अशुभ कर्म उपार्जित

नेथुं त्यारे भने बोळसपळे भात्री थर्ध गधं इ ते अर्डीथी आत्ये गथे छे. आ रीते हुं चिंताभां पडी छुं. सुकुमारिकांनी आ वात सांलणीने दासीजे तरत व सागरदत्तने भयर आपी. आ रीते अर्डी पडेलांनो पाठ लखी देवो नेधंजे. तएणं से सागरदत्ते तद्देव संभंते समाणे, जेणेव वासहरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं अंके निवेशेइ, निवेशित्ता एवं वयासी अहो णं तुमं पुत्ता ! पुरा पोराणाणं जाव पच्चणुम्भवमाणी विहरसि तं माणं तुमं पुत्ता ओहयमण जाव झियाहि-तुमं णं पुत्ता मम महाणसंसि विपुलं असणं ४ जहा पुट्टिला जाव परिभाएमाणी विहराहि)

त्यारपछी सागरदत्त पडेलांनी जेभ आकृण भित्तवयो थर्धने न्यां वास-गृहं उर्तुं त्यां आब्धो. त्यां आवीने तेजे सुकुमारिका दारिकाने चेताना भोग्याभां जेसाडी लीधी अने जेसाडीने उडेवा लाग्या के छे पुत्रि ! ते पडेला भवभां जे उर्धं दुस्त्रीणं, दुष्पराकांत अने कृतज्ञानावरणीय वगेरे अशुभ कर्मो उपा-

વિસેસં ' ઇતિ-દુશ્ચીર્ણાનાં-દુશ્ચરિતાનાં વાહ્મનોજનિત મૃષાવાદાદિકર્મણામિત્યર્થઃ, કિં ભૂતાનાં તેપાં? દુષ્પરાક્રાન્તાનાં-ક્રાયિકાનાં પ્રાણિર્હિસાડ્દાદાનાદીનાં, કૃતાનાં પ્રકૃતિસ્થિત્યલુભાગપ્રદેશભેદેન ચદ્વાનાં પાપાનાં=અશુભાનાં કર્મણાં=જ્ઞાનાવરણીયાદીનાં પાપક્રમ્-અશુભં, ફલવૃત્તિવિશેષમ્, પ્રત્યનુભવન્તી=વેદયન્તી વિહરસિ=વર્તસે તત્=તસ્માદ્ મા સ્વલુ ત્વં હે પુત્રિ! અપહતમનઃસંકલ્પા યાવદ્ ધ્યાય=આર્તધ્યાનં મા કુરુ ઇત્યર્થઃ, ત્વં સ્વલુ હે પુત્રિ! મમ ' મહાગસંસિ ' મહાનસે-પાકશાલાયાં વિપુલમશનં પાનં સ્વાઘં સ્વાઘં યથા પોટ્ટિલા યાવત્ પરિમાજયન્તી=શ્રમણાદિભ્યઃ પ્રવિભાગં કુર્વતી ' વિહરાહિ ' વિહર=તિષ્ઠ। તતઃ સ્વલુ સા સુકુ-

કિયે-પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુભાગ ઓર પ્રદેશ બંધકે ભેદસે ઘાંધે હૈં-ઉન્હીં પુરાને અશુભ જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોં કે તુમ અશુભ ફલ વિશેષ કો ઇસ સમય મોગ રહી હો । પૂર્વ ભવોં મેં જો પાપ કિયે હૈં વેહી યહાં " પુરાણ " શબ્દ સે ગૃહીત હુપ હૈં । પાપ શબ્દ યહાં અશુભ જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોં કા બોધક હૈ । યે અશુભ જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મ જીવ અશુભ મન, વચન ઓર કાય કી પ્રવૃત્તિ સ્થે જન્ય સૃષ્ટાવાદ આદિ ક્રિયાઓં સે, તથા પ્રાણિર્હિસા, અદત્તાદાન આદિ કુકૃત્વોં સે બાંધતા હૈ । બાંધતે સમય ઇનમેં પ્રકૃતિ, સ્થિતિ અનુભાગ ઓર પ્રદેશ બંધરૂપ વિભાગ હો જાતા હૈ । અધિક સ્થિતિ ઓર અધિક અનુભાગ બંધ ઇનમેં સંકલેદા પરિણામોં સે પડતા હૈ । ઇસલિયે હે પુત્રિ । તુમ અપહનમનઃ સંકલ્પ હોકર યાવત્ આર્તધ્યાન ભત કરો । તુમ તો મેરી મોજન જ્ઞાલા મેં ચતુર્વિધ આહાર તૈયાર કરા કર પોટ્ટિલા કી તરહ શ્રમણ આદિ

સ્થિત કર્મોં હતાં-પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુભાગ અને પ્રદેશ બંધના ભેદથી બાંધ્યા છે અત્યારે તું તેજ પહેલાંના અશુભ જ્ઞાનાવરણીય વગેરે કર્મોંના અશુભ ફળ વિશેષને ભોગવી રહી છે. પૂર્વ ભવમાં જે પાપ કરવામાં આવ્યાં હોય તેને અહીં " પુરાણ " શબ્દથી અહલ્ય કરવામાં આવ્યા છે. અહીં પાપ શબ્દ અશુભ જ્ઞાનાવરણીય વગેરે કર્મોંને સ્પષ્ટ કરે છે આ બધા અશુભ જ્ઞાનાવરણીય વગેરે કર્મોં છપ અશુભ-મન, વચન, અને કાયની પ્રવૃત્તિથી જન્ય સૃષ્ટાવાદ વગેરે ક્રિયાઓથી તેમજ પ્રાણીઓની હિંસા, અદત્તાદાન વગેરે કુકર્મોંથી બાંધે છે. બાંધતી વખતે એઓમાં પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુભાગ અને પ્રદેશ બંધરૂપ વિભાગ થઇ બધ છે. અધિક સ્થિતિ અને અધિક અનુભાગ બંધ તેઓમાં સંકલેદા પરિણામોથી પડે છે. એથી હે પુત્રિ । તમે અપહતઃ મનઃ સંકલ્પ થઈને યાવત્

मारिका दारिका एतमर्थं प्रतिशृणोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य महानसे विपुलमश-
नपानखाद्य खाद्यं यावद् 'दलमाणी' ददती विहरति=आस्ते स्म ॥ सू० १२ ॥

मूलम्—तेषां कालेण तेषां समपूर्णं गोवालियाओ अजाओ
बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ तहेव सनोस-
द्धाओ तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे तहेव जाव सूमालिया
पडिलाभित्ता एवं वयासी—एवं खल्लु अजाओ ! अहं सागरस्स
अणिट्ठा जाव असणामा नेच्छइ णं सागरए मम नामं वा जाव
परिभोगं वा, जस्स २ वि य णं दिज्जामि तस्स २ वि य णं
अणिट्ठा जाव असणामा भवामि, तुब्भे य णं अजाओ ! बहु-
नायाओ एवं जहा पुट्टिला जाव उवलद्धे जे णं अहं सागरस्स
दारियाए इट्ठा कंता जाव भवेज्जामि, अजाओ तहेव भणंति
तहेव साविया जाया चिंता तहेव सागरदत्तं सत्थवाहं आपु-
च्छइ जाव गोवालियाणं अंतिए पठ्वइया, तएणं सा सूमा-

जनों के लिये वितरण करती रहो (तएणं सा सूमालिया दारिया एय-
मद्धं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता महाणसंसि विपुलं असण जाव दलमाणी
विहरइ) इस तरह पिता सागरदत्त के समझाने पर उस सुकुमारिका
दारिका ने अपने पिता के इस कथन को स्वीकार कर के वह महानस
भोजन शाला में निष्पन्न चतुर्विध आहार को अमणादि जनों के लिये
वितरण भी करने लगी ॥ सूत्र १२ ॥

आर्तस्थान करीश नडि. तुं भारी भोजन शालाभां थार नतना आहारो
तैयार करावडावीने पोट्टिलानी जेम अमणु वगेरे जेनेने आपती रहे.

(तएणं सा सूमालिया दारिया एयमद्धं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता महाणसंसि
विपुलं असण जाव दलमाणी विहरइ)

आ रीते पिता सागरदत्त वडे समभववाभां आवेदी ते सुकुभाठ हरि-
काये पोताना पिताना कथनने स्वीकारी वीधुं अने स्वीकारीने ते भोजनशालाभां
तैयार थवेदा थारे नतना आहारोने अमणु वगेरेने आपता लागी. ॥ सू. १२

लिया अज्जा जाया ईरियासमिया जाव गुत्तवंभयारिणी बहूहिं चउत्थच्छट्टम जाव विहरइ, तएणं सा सूमालिया अज्जा अन्नया कयाइ जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवाग-च्छइ उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी चंपाओ बाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्टंछट्टेणं अणि-विखत्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुही आयावेमाणा विहरित्तए, तएणं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं एवं वयासी-अम्हे णं अज्जे ! समणीओ निग्गंथीओ ईरियासमियाओ जाव गुत्तवंभयारिणीओ नो खलु अरुहं कप्पइ वहिया गामस्स जाव सण्णिवेसस्स वा छट्टं जाव विहरित्तए, कप्पइ णं अरुहं अंतो उवस्सयस्स विइपरिविखत्तस्स संघाडिबद्धियाए णं समतल पइयाए आयावित्तए, तएणं सा सूमालिया गोवालियाए एय-मट्टं नो सदहइ नो पत्तियइ नो रोएइ एयमट्टं अ०३ सुभूमि-भागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्टं छट्टेणं जाव विहरइ ॥सू०१३॥

टीका—‘ तेणं कालेणं ’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये ‘ गोवा-लियाओ अज्जाओ ’ गोपालिका=गोपालिकानाम्ब्यः आर्याः=साध्व्यः, ‘ बहुस्सु-याओ ’ बहुश्रुताः=श्रुतपारगामिन्यः, एवम्=अनेन प्रकारेण यथैव ‘ तेतलिणाए ’ तेतलिज्ञाते=चतुर्दशे तेतलिपुत्राध्ययने वर्णिताः ‘ सुव्वयाओ ’ सुव्वताः=सुव्वता-

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तेणं कालेणं—तेणं समएणं) उस काल और उस समय में (गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ

‘ तेणं कालेणं—तेणं समएणं ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तेणं कालेणं—तेणं समएणं) ते क्षणे अने ते समये (गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ

नाम्न्यः साध्व्यः, 'तद्देव समोसङ्घाओ' तथैव समवसृताः=सुव्रतावद् गोपालिकाः समागताः । 'तद्देव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे' तथैव संघाटको यावद् अनुपविष्टः गोपालिकानामार्याणामेकः संघाटकः यावत्=सुकुमारिकाया गृहेऽनुप्रविष्टः । तथैव यावत् सुकुमारिका ता आर्याः अशनादिना प्रतिलम्भ्य एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्-हे आर्याः ! एवं खलु अहं सागरस्य दारकस्यानिष्टा यावद्=अकान्ता अप्रिया अमनोज्ञा अमनोमा मनः प्रतिकूलाऽस्मि, नेच्छति खलु सागरको मम नाम वा श्रोत्रं वा श्रोतुम्, किं पुनर्यावत् मया सह परिभोगं वा, यत्र मम नामाऽपि श्रोतुं नेच्छति तत्र का वार्ता परिभोगस्य, अहं तु तेन सर्वथा परि, त्यक्तेति भावः । अपि च यस्मै यस्मै खलु 'दिज्जामि' दीये=स्वपित्रा प्रदत्ता भवामि, तस्य तस्यापि च खलु अनिष्टा यावद् अमनोमा=मनः प्रतिकूला भवामि, हे आर्याः ! यूयं च खलु 'बहुनायाओ' बहुज्ञाताः ज्ञानातिशययुक्ताः, 'एवं

तद्देव समोसङ्घाओ तद्देव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे तद्देव जाव सुमालिया पडिलभित्ता एवं वयासी) गोपालिका नामकी आर्थिका जो श्रुत पारगामिनी थीं इस प्रकार से कि जिस प्रकार से तैललि प्रधान नामक चौदहवें अध्ययन में सुव्रता साध्वी वर्णित हुई है-थीं-वे उसी तरह से वहां आईं । इनका एक संगडा था, यावत् सुकुमारिका के घर में गोचरी के लिये प्रवेश किया । सुकुमारिका ने बड़ी भक्ति के साथ उन्हें आहार पानी दिया-और देकर वह फिर इस प्रकार से उनसे कहने लगी-(एवंखलु अज्जाओ ! अहं सागरस्स अणिट्ठा, जाव अमणामा, नेच्छहं णं सागरए मम नामं वा जाव परिभोगं वा जस्स २ वि य णं दिज्जामि तस्स-तस्स वि य णं अणिट्ठा, जाव अमणामा भवामि तुव्भे य णं अज्जाओ ! बहुनायाओ, एवं जहा पुट्टिला जाव उवल्ले

तद्देव समोसङ्घाओ तद्देव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे तद्देव जाव सुमालिया पडिलभित्ता एवं वयासी)

गोपालिका नामे आर्थिका के वे श्रुत पारगामिनी હતી. તેતલીપ્રધાન નામના ચૌદમા અધ્યયનની સુવ્રતા સાધ્વી જેવી હતી તેવી જ તે પણ હતી. સુવ્રતા સાધ્વીની જેમ જ તે યાવત્ સુકુમારિકાના ઘેર તે ગોચરી માટે ગઈ. સુકુમારિકાએ ખૂબ જ ભક્તિ-ભાવથી તેમને આહારપાણી આપ્યું અને આપીને તે તેમને આ પ્રમાણે કહેવા લાગી—

(એવં.ખલુ અજ્જાઓ અહં સાગરસ્સ અણિટ્ઠા, જાવ અમણામા નેચ્છહં ણં સાગરં મમ નામં વા.જાવ પરિભોગં વા જસ્સ ૨ વિ ય ણં દિજ્જામિ તસ્સ તસ્સ વિ ય ણં અણિટ્ઠા, જાવ અમણામા ભવામિ તુવ્ભે ય ણં અજ્જાઓ ! વહુનાયાઓ,

यथा पोष्टिला यावद् उपलब्धम् ' अयमर्थः—यथा तेतलिपुत्रभार्या पोष्टिला स्वमर्त-
वनीकरणोपापप्रदर्शनार्थं सुव्रतां साध्वीं पृच्छन्तिस्म, तथा—सुकुमारिका दारिका
योपालिका संवाटकं पृष्ठन्ती, तादृशं चूर्णयोगादिकमुपलब्धं=ज्ञातं किम् ? येनाहं
सागरस्य दारकस्वेष्टा कान्ता यावद् भवेयं आर्यास्तथैव मणन्ति=यथा पोष्टिलि-

जे णं अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता जाव भवेज्जामि, अज्जाओ
तहेव भणंति, तहेव साविया जाया, तहेव चिंता, तहेव सागरदत्तं सत्थ-
वाहं आपुच्छइ जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया) हे आर्याओ ।
मैं अपने पति सागर दारक के अनिष्ट बनो हूँ यावत् अकान्त
अप्रिय अमनोज्ञ एवं अमनोम मनः प्रतिकूल बनी हुई हूँ । वे मेरा नाम
गोत्र कुछ भी सुनना नहीं चाहते हैं । तो फिर उनके साथ परिभोग
करने की तो बात ही क्या है । सुझे तो उन्होंने सर्वथा ही छोड़ दी है ।
अपिच—मेरे पिता सुझे जिस २ व्यक्ति के लिये देते हैं—मैं उस २ व्यक्ति
के लिये भी अनिष्ट आदि बन जाती हूँ । हे आर्याओ ! आप तो बहु-
श्रुत हैं अनेक शास्त्रों की ज्ञाता हैं—ज्ञान के अतिशय से संपन्न हैं ।
इस प्रकार उस सुकुमारिका ने पोष्टिला की तरह अपने पति को वश
में करने के विषय में उनसे उपाय पूछा पोष्टिलाने अपने पति तेतलिपुत्र
को वशमें करने को पहिले जैसे सुव्रता साध्वी के संघाटेसे उपाय पूछा
था—और कहा आपको यदि कोई ऐसा चूर्ण आदि का प्रयोग उपलब्ध

एवं जहा पुष्टिला जाव उवल्ले जेणं अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता जाव
भवेज्जामि, अज्जाओ तहेव भणंति, तहेव साविया जाया, तहेव चिंता,
तहेव सागरदत्तं सत्थवाहं आपुच्छइ जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया)

हे आर्याओ ! मेरा पति सागरदारक माटे हुं अनिष्ट थई गयेदी छुं
यावत् अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ अने अमनोम थई थूडी छुं. तेज्जा मेरा
नाम गोत्र क'धं पणु सांखणवा छ'छिता नथी त्थारे तेमनी साथे परिभोग
करवानी तो बात न थी करवी. तेज्जाओ मने अकहम न न छोडी दीधी छे.
अने मेरा पिताओ मने न न माणुसने आपे छे ते जधा माटे पणु हुं अनिष्ट
वगेरे थई नई छुं. हे आर्याओ ! तमे तो णडुश्रुत छे, धणं शास्त्रोने
नणु छे, ज्ञान संपन्न छे. आ रीते पोष्टिलानी नेम न सुकुमारिका दारि-
काओ पणु पतिने वशमां करवा माटेना उपायोनी पूछपरछ करी. पोष्टिलाओ
पोताना पते तेतलिपुत्रने वशमां करवा माटे पडेइ सुव्रता साध्वीना संघा-
टाथी नेम उपायो पूछया डता तेमन तेज्जे पणु तेमने कहुं के-ने जेयो

कया पृष्ठा सुव्रतायाः संघाटकस्थिताः साऽन्यस्तामवोचत्, तथैव गोपालिका संघाटस्थाः आर्या भणन्ति=वदन्ति स्मेत्यर्थः । ' तथैव सावित्रा जाया ' तथैव श्राविका जाता=पोट्टिला वत् सुकुमारिका दारिकाऽपि श्राविका जाता । तथैव चिन्ता-पोट्टिलावदेव पश्चात्=प्रव्रज्यां ग्रहीतुं चिन्ता सुकुमारिकाया मनसि प्रादुर्भूता । सुकुमारिका सागरदत्तं सार्यवाहं=स्वपितरं तथैव=यथा स्वपतिं पोट्टिला, तदद् आपृच्छति, यावद् गोपालिकानामन्तिके प्रव्रजिता=दीक्षां गृहीतवती । ततः खलु सा सुकुमारिका आर्या=साध्वी जाता सा किं भूता-ईर्यासमिता यावद् गुप्त

हो तो भी चता दीजिये कि जिससे मैं अपने पति सागरदारक को इष्ट, कान्त यावत् मनोम बनजाऊँ । गोपालिका के संघाडे की इन आर्याओं ने सुकुमारिका को, पोट्टिला को सुव्रता साध्वी की तरह समझाया-वह उसी तरहसे श्राविका बन गई । पोट्टिला की तरह इस सुकुमारिका ने भी बाद में दीक्षा लेने का मन में विचार किया-पोट्टिलाने जिस तरह अपने पति से आज्ञा लेकर दीक्षा धारण की थी-उसी प्रकार इस सुकुमारिका ने भी अपने पिता सागरदत्त से पूछकर गोपालिका आर्या के समीप दीक्षा धारण कर ली । (तएणं सां सूमालिया अज्जा जाया ईरिया समिया जाव गुत्तवंभयारिणी बहूहिं चउत्थं छट्ठम जाव विहरइ, तएणं सां सूमालिया अज्जा अन्नया कयाइं जेणेव गोवालिया अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ) इस तरह वह सुकुमारिका आर्या बन गई । वह ईर्यासमिति आदि का पालन करने लगी

कोई ब्रह्म वगेरेना प्रयोग नहीं करे तो पण्डित होने जाता है के के बंधी हुं मारा पति सागरदारकना माटे करी छोट, कान्त, यावत् मनोम थरुं नउ । गोपालिका संघाडानी ते आर्याओओ-सुव्रता-साध्वीओ ओम पोट्टिलाने सम-जानी तेमओ समजानी अने छेवटे ते श्राविका अनि गछ । पोट्टिलानी ओमओ ते सुकुमारिकाओ पण्डितारपणी दीक्षा लेवानो मनमां मच्छम विचार करी दीधि । पोट्टिलाओ ओम पोताना पतिनी आज्ञा लधने दीक्षा धारण करी छती तेमओ सुकुमारिकाओ पण्डिताना पति सागरदत्तने पूछीने गोपालिका आर्यानी पासधी दीक्षा धारण करी दीधि ।

(तएणं सां सूमालिया अज्जा जाया ईरिया जाव गुत्तवंभयारिणी बहूहिं चउत्थं छट्ठम जाव विहरइ, तएणं सां सूमालिया अज्जा अन्नया कयाइं जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ)

आ रीते सुकुमारिका आर्या थरुं गछ, ते धर्या समिति वगेरेनुं पालन करवा लागी. अने नवकोटीथी प्रहस्यथं महाजतनी रक्षा करवा लागी. मण्ड

ब्रह्मचारिणी सा बहुभिश्चतुर्थपष्ठाष्टमभक्तैर्यावत्-तपः कर्मधिरात्मानं भावयन्ती
विहरति=आस्तेस्म । ततः खलु सा सुकुमारिका आर्या अन्यदा कदाचिद् यत्रैव
गोपालिका आर्यास्तत्रैवोपागच्छति उपागत्य वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा
नमस्यित्वा एवमवादीत्=हे आर्या । इच्छामि खलु युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती
चम्पानगर्या वहिः सुभूमिभागस्योद्यानस्यादूरसामन्ते = नातिदूरे नातिनिकटे
षष्ठषष्ठेन-षष्ठभक्तानन्तरं पुनः षष्ठमकतेन ' अणिक्विखत्तेण ' अनिक्षिप्तेन
=अविश्रान्तेन-अन्तररहितेन, तपःकर्मणा ' सूरामिमुही ' सूर्याभिमुखी ' आया-
वेमाणी ' आतापयन्ती-आतापनां कूर्चती विहर्त्सुम् ' इति । ततस्तदनन्तरं
ता गोपालिका आर्याः सुकुमानिकामार्यामेवमवादिषुः-हे आर्ये ! वयं खलु श्रमण्यो

और नौ कोटी ब्रह्मचर्य से महाव्रत की रक्षा करने लगी । अनेक चतुर्थ,
षष्ठ, अष्टम, भक्त आदि तपस्याओं से अपने आपको भावित
भी करने लगी । एक दिन की बात है कि वह सुकुमारिका आर्या
साध्वी-जहां गोपालिका आर्या विराज मान थी वहां गई-(उवाग-
च्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी, इच्छामि णं अ-
ज्जाओ ! तुभेहिं अबभणुजाया समाणी चंपाओ वाहिं सुभूमिभागस्स
उज्जाणस्स अदूर सामंते छट्ठं छट्ठेणं अणिक्विखत्ते णं तवोकम्मे णं सूर्रा
भिमुही आयावेमाणी विहरित्तए) वहां जाकर उसने उन्हें वंदना
की, नमस्कार किया ! वंदना एवं नमस्कार कर फिर वह इस-
प्रकार कहने लगी-हे भर्त ! मैं आप से आज्ञा प्राप्त कर चंपा नगरी से
बाहिर सुभूमिभाग नाम के उद्यान के समीप अंतररहित छट्ट छट्ट
की तपस्या से सूर्याभिमुखी होकर आतापना करना चाहती हूँ ।
(तएणं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सुमालियं एवं वयासी-अम्हेणं

यतुर्थं, षष्ठ, अष्टम भक्त वगैरे तपस्याओशी चोताने लामित पणु करवा
दागी. ओक द्विवसनी वात छे के ते सुकुमारिका आर्या साध्वी ज्यां गोपालिका
आर्या विश्रमान छेती त्यां गध. (उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमं-
सित्ता एवं वयासी, इच्छामि णं अज्जाओ ! तुभेहिं अबभणुजाया समाणी चंपाओ
वाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठं छट्ठेणं अणिक्विखत्तेणं तवो
कम्मेणं सूर्राभिमुही आयावेमाणि विहरित्तए) त्यां अघने तेणु तेभने वंदना करी
नमस्कार कर्या. वंदना तेभज्ज नमस्कार करीने तेणु आ प्रमाणे कहुं के छे
अदंत ! आपनी आज्ञा भेणवीने हुं यंपा नगरीभां अहार सुभूमिभाग नामना
उद्याननी पांसे अंतर रक्षित छट्ट छट्टनी तपस्या करतां सूर्याभिमुखी यधने
आतापना करवा धम्मिं छुं. (तएणं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सुमालियं

निर्ग्रन्थः ईर्यासन्निताः=ईर्यासमित्तियुक्ताः, यावद्-गुप्तब्रह्मचारिण्यः स्मः, तस्माद् नो खलु अस्माकं कल्पते-‘ बहिया ’ वहिः-ग्रामाद् यावद् संनिवेशाद् पष्ठ पष्ठेन ‘ जाव विहरित्तए ’ यावद् विहर्त्तुन्न ग्रामादे व्हिः-प्रदेशे साध्वीनां स्थितिः शीलभङ्गादिकारणं भवतीति भावः । किंतु कल्पते खलु अस्माकम् ‘अंतो’ अन्तः=अभ्यन्तरे ‘ उवस्सयस्स ’ उपाश्रयस्य=वसतेः, किम्भूतस्य ‘ वित्तिपरिक्खत्तस्स ’ वृत्तिपरिक्षिप्तस्य=भित्त्यादिना सर्वतः समावृतस्य, ‘ संघाड्विद्वियाए ’ संघ्याटिका प्रतिवद्धायाः=प्रतिवद्धशाटिकायाः सर्वथाऽनुद्धाटितगात्राया इत्यर्थः ‘ समतलपइयाए ’ समतलपदिकायाः=धूम्रौ समतलतया स्थापितचरणयुगलाया आयावित्तए ’ आतापयित्तुम्=आतापनां कर्तुं कल्पते इति पूर्वेण सम्बन्धः । ततः

अञ्जे ! समणीओ निग्गंथीओ ईरियासमियाओ जाव गुत्तबंभचारिणीओ, नो खलु अम्हं कप्पइ बहियागामस्स जाव सण्णिवेसस्स वा छट्ठं जाव विहरित्तए) इस प्रकार सुकुमारिका साध्वी का कथन सुनकर गोपालिका आर्या ने उस सुकुमारि का आर्या से इस प्रकार कहा है आर्ये ! हम लोग निर्ग्रन्थ भ्रमणियाँ हैं । ईर्या आदि समितियों का पालन करती हैं । और नौ कोटि से ब्रह्मचर्य की रक्षा करती हैं । इसलिये हम लोगों को ग्राम से यावत् सन्निवेश से बाहिर रह कर षष्ठ षष्ठ की तपस्या करना यावत् सूर्याभिमुखी होकर आतापन योग धारण करना कल्पित नहीं है । कारण-ग्रामादि के बाहिरी प्रदेश में साध्वियों का रहना शीलभंग आदि का निमित्त बन जाता है । (कप्पइ णं अम्हं-अंतो उवस्सयस्स विहपरिक्खत्तस्स संघाड्विद्वियाए णं समतल पइयाए आयावित्तए) हमें तो यही कल्पित है कि हम लोग उपाश्रय के

एव’ बयासी-अन्हेणं अञ्जे ! समणीओ निग्गंथीओईरिया सामियाओ जाव गुत्तबंभचारिणीओ, नो खलु अम्हं कप्पइ बहिया गामस्स जाव सण्णिवेसस्स वा छट्ठं जाव विहरित्तए) आ रीते सुकुमारिका साध्वीनुं कथन सांलणीने गोपालिका आर्याये सुकुमारिका आर्याने आ प्रभाण्णे कहुं के अर्थे । आपण्णे निअर्थ अश्रमण्णीओ छीये. धर्या वगेरे समित्तियेनुं पालन करीये छीये, अने नप-केटिथी अश्रमचर्यनुं रक्षणे करीये छीये. येथी आपण्णे गामथी यावत् सन्निवेशथी गडार रहीने षष्ठ षष्ठनी तपस्या करवी यावत् सूर्याभिमुखी थधने आतापन योग धारण करवो कल्पित नहीं. कारण्णे के-गाम वगेरेथी गडारना अहे शमां साध्वीओये रेखेपुं शीलभंग विगेरेनुं निमित्त थध नय छे. (कप्पइ णं अम्हं अंतो उवस्सयस्स विहपरिक्खत्तस्स संघाड्विद्वियाए णं समतलपइयाए आयावित्तए) आपण्णेने तो ये व कल्पित छे के आपण्णे कीत वगेरेथी येअरे

सखु सा सुकुमारिका गोपालिकानामार्याणामेतमर्थं नो श्रद्धाति ' नो पत्तिगइ ' नो मत्त्वेति=नो विश्वसिति, ' नो रोपइ ' नो रोचते, एतमर्थम् अश्रद्धधाना, अप्रतिगन्ती, अरोचमाना सति सुभूमिभागस्य उद्यानस्य अदूरसामन्ते षष्ठ-षष्ठेन यावत्-तपः कर्मणा सूर्याभिमुखी भूत्वा-आतापनां कुर्वती विहरति ॥ सू० १३ ॥

मूलम्-तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोटी परिवसइ, नरवइ दिपणवियारा अम्मापिइनिययनिप्पिवासा वेसविहारकयनिकेया नाणाविहअविणयप्पहाणा अड्डा जाव अपरिभूया, तत्थ णं चंपाए देवदत्ता नामं गणिया होत्था सुकुमाला जहा अंडणाए, तएणं तीसे ललियाए गोट्टीए अन्नया पंच गोट्टिलगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स

कि जो भित्ति आदि से सब तरफ से परिक्षिप्त है भीतर ही अपने शरीर को शाटिका से अच्छी तरह संवृत्त करती हुई और भूमि पर दोनों चरणों को बराबर स्थापित कर आतापना ले (तएणं सा सुमालिया गोवालियाए एयमट्टं नो सहइइ. नो पत्तिगइ नो रोपइ एयमट्टं अ० ३ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्टं छट्टेणं जाव विहरइ) इस गोपालिका आर्याके कथन ऊपर उस सुकुमारिका आर्या को श्रद्धा नहीं जमी उस पर उसे विश्वास नहीं आया. वह उसे रुचा नहीं। इस तरह वह उसे अश्रद्धा अप्रतीति और अरुचि का विषय बनाती हुई सुभूमिभाग नामक उद्यान के पास षष्ठ षष्ठ की तपस्या करती हुई वह सूर्याभिमुख होकर आतापना करने लगी ॥ सू० १३ ॥

परिक्षिप्त उपश्रयनी अंदर ७ पोताना शरीरने शाटिका-साडीधी सारी रीते ढांडीने अने भूमि उपर अने अरुचिने बराबर स्थापित करीने आतापना लधअ (तएणं सा सुमालिया गोवालियाए एयमट्टं नो सहइइ नो पत्तिगइ नो रोपइ, एयमट्टं अ० ३ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते षट्टं छट्टेणं जाव विहरइ) गोपालिका आर्याना कथन उपर सुकुमार आर्याने श्रद्धा थर्ध नडि, तेना उपर तेने विश्वास थये नडि ते तेने गग्गुं थयु नडि आ रीते ते ते कथन प्रत्ये अश्रद्धा, अप्रतीति अने अरुचि धरावती सुभूमिभाग नामना उद्याननी पासे षष्ठ षष्ठनी तपस्या करती सूर्याभिमुखी थर्धने आतापना करवा लागी ॥ सू० १३ ॥

उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तत्थ णं एगे गोट्टिलगपुरिसं देवदत्तं गणियं उच्छंगे धरइ एगे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ एगे पुप्फपूरयं रएइ एगे पाए रएइ एगे चामरुक्खेवं करेइ तएणं सा सूमालिया अज्जा देवदत्तं गणियं तेहिं पंचहिं गोट्टिल्लपुरिसेहिं सच्चिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी पासइ तएणं तीसे इमेयारूवेसंकप्पे समुप्पज्जित्था—अहो णं इमा इत्थिया पुरा पोरानाणं कम्मणं जाव विहरइ, तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तव-नियमबंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयारूवाइं उरालाइं जाव विहरिज्जामि त्तिक्कट्टु नियानं करेइ करित्ता आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ ॥सू०.१४॥

टीका—‘ तत्थ णं चंपाए ’ इत्यादि । तत्र खलु चम्पायां नगर्यां ललिता नाम्नी ‘ गोट्टी ’ गोष्ठी=मण्डली परिवसति । किं भूतो सा गोष्ठीत्याह—‘ नरवइदिण्ण-वियारा ’ नरपतिदत्तविचारा नरपतिना दत्तो विचारः संमतिर्यस्यै सा तथा—सेचा-दिना सन्तुष्टान्नरपतेर्लब्धस्वतन्त्रता, तथा — ‘ अम्मापिइनिययनिप्पिवासा ’ अम्बापितृनिजकनिःपिपासा=मातापित्रादि निरपेक्षा, ‘ वेसविहारकय निकेया ’

‘ तत्थ णं चंपाए ललिया नाम ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोट्टी परिवसइ) उस चंपानगरीमें ‘ ललिता ’ इस नामकी गोष्ठी-मंडली-रहती थी । (नरवइ दिण्णवियारा, अम्मापिइ नियय निप्पिवासा वेसविहारकयनिकेया,

‘ तत्थ णं चंपाए ललिया नाम ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोट्टी परिवसइ) ते चंपा नगरीमां ‘ ललिता ’ नामे गोष्ठी ‘ भ’उणी रडेती हती. (नरवइ, दिण्णवियारा अम्मापिइ निययनिप्पिवासा, वेसविहारकयनिकेया, नाणविहअविणयणहाणा, अइदा

वेश्याविहारकृतनिकेता - वेश्याग्रहकृतनिवासा, तथा- 'नाणाविहअविणयप्पहाणा' नानाविधाऽविनयप्रधाना, तथा-आढ्या=धनधान्यसम्पन्ना, यावद् अपरिभूता=परैरनभिभूता, आसीत् । तत्र खलु चम्पायां नगर्यां देवदत्ता नाम 'गणिया' गणिका=वेश्या, आसीत्, सा किम्भूतेस्याह-सुकुमारपाणिपादा, चतुष्पष्टिकला-विशारदा 'जहा अंडणाए' यथा अण्डज्ञाते=अण्डनामके तृतीये ज्ञाताध्ययने यथाऽस्यावर्णनं तद्वदिह बोध्यम् । ततः खलु तस्या ललिताया गोष्ठ्या अन्यदा=अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित्समये, पञ्च 'गोष्ठिल्लगपुरिसा' गोष्ठिकपुरुषा=मण्डलीपुरुषाः समानवयस्का इत्यर्थः देवदत्तया गणिकया सार्धं सुभूमिभागस्योद्यानस्योद्यानश्रियं=उद्यानशोभां प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति । तत्र खलु एको गोष्ठिकपुरुषो देवदत्तां

नाणाविह अविणयप्पहाणा, अड्डा जाव अपरिभूया) इसने अपनी सेवासे राजाको प्रसन्न कर रखा था-सो उसकी कृपा से यह बिलकुल स्वच्छन्द थे । अपने माता पिता आदि कुटुम्बी जनों की यह परवाह नहीं किया करते थे-उनको इन पुरुषों से बिलकुल भय नहीं था । वेश्याओं के घर में पड़े रहना-यही इनका एक काम था । अनेक प्रकार के अविनय प्रधान रूप अनाचारों का सेवन करना यही उनका काम था । पैसे की-द्रव्यकी उनके- पास कमी नहीं थी । कोई इनको कुछ कह सुन नहीं सकता था । (तत्थ णं चंपाए देवदत्ता नामं गणिया होत्था, सुकुमाला, जहा अंडणाए, तएणं तीसे ललियाए गोठीए अन्नया पंच 'गोष्ठिल्लगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिंरिं पच्चणुवभवमाणा विहरंति) उसी चंपा नगरी में

जाव अपरिभूया) ते भंडणीओ चेतानी सेवाथी राजने प्रसन्न करेवो हते। तेमनी कृपाथी ते भंडणी ओकहम स्वच्छंदपणुं आचरती हती। चेताना माता पिता वगेरे कुटुंभी होइानी पणु तेओ हरकार करता न हता तेओने आ वडीवोनी कोषपणु वननी थीक हती नहि, देश्याओना घेर पइया रहेवुं इक्ष ओअ ओमत्तुं ओअ मात्र काम हत्तुं, अनेक प्रकारना अविनयपूणुं आचरवो करवां ओअ तेओना एववत्तुं सुभय काम हत्तुं, धननी तेओनी पासो जोट हती नहि, कोषपणु नागरिकनी ओटकी पणु ताकात नहोती के तेओ तेमने कंधपणु कहे । (तत्थ णं चंपाए देवदत्ता नामं गणिया होत्था, सुकुमाला, जहा अंडणाए, तएणं तीसे ललियाए गोठीए अन्नया पंच गोष्ठिल्लगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिंरिं पच्चणुवभवमाणा विहरंति) तेअ थंपा

गणिकामुत्सङ्गे धरति एकः 'पिट्टओ' पृष्ठतः 'आयवत्तं' आतपन्नं=छत्रं धरति, एकः 'पुष्कपूरयं' पुष्पपूरकं=पुष्पाणां रचनाविशेषं 'रएइ' रचयति, एकः पादौ-अलक्तकादिना रञ्जयति । एकः 'चामरुक्खेवं' चामरोत्क्षेपं=चामरवीजनं करोति । ततः खलु सा सुकुमारिका आर्या देवदत्तां गणिकां तैः पञ्चभिर्गोष्ठक-

देवदत्ता नाम की एक गणिका रहती थी । यह चौसठ कलाओं में निष्णात थी । इसके हाथ पैर आदि सब ही अचयव बहुत ही अधिक सुकुमार थे । मयूर अंड नाम के तृतीय ज्ञाताध्ययन में इसका जैसा वर्णन किया गया है-वैसा ही वर्णन इसका यहाँ जानना चाहिये । एक समय की बात है कि गोष्ठी के ५, पुरुष कि जो समान वयसवाले थे देवदत्ता गणिका के साथ उस सुसूत्रभाग उद्यान में आये-और वहाँ की उद्यान की शोभा का निरीक्षण करते हुए इधर-उधर घूमने लगे-(तत्थ णं एगे गोष्ठिल्लग पुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छंणे धरइ, एगे पिट्टओ आयवत्तं धरेइ, एगे पुष्कपूरयं रएइ, एगे पाए रएइ, एगे चामरुक्खेवं करेइ, तएणं सा सूमालिया अज्जा देवदत्तं गणियं तेहिं पंचहिं गोष्ठिल्लगपुरिसेहिं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं सुंज-माणी पासइ) वहाँ एक उस मंडली के पुरुष ने देवदत्ता गणिका को अपनी गोदी में बैठाया, एक दूसरे-मंडली के पुरुष ने उसके पीछे से उसके ऊपर छाता ताना, एक तीसरे पुरुष ने उसके निमित्त पुष्पों की रचना रची, चौथे पुरुष ने उसके दोनों पैरों में माहुर लगाया पांचवें ने

नगरीमां देवदत्ता नामे ये गणिका रउतेती इती. ते ६४ कणाओमां निपुणु इती, तेना हाथ-पग वगेरे अधां अंगो अतीव सुकेभण इतां. मयूरी अउ नामना त्रील अध्ययनमां देवदत्तानुं वेपुं वरुणं करवासां आव्यु छे तेपुं अ वरुणं अहीं पणु वण्णी वेपुं लेधये अेक द्वियसनी वात छे के गोष्ठी-मंडलीना पांच भाणुसे के वेओ सरणी उभरवाणा इता-देवदत्ता गणिकानी साथे ते सुसूत्रिभाग उद्यानमां गथा अने त्यांनी उद्यान शोभानुं निरीक्षणु कतां आभ तेभ करवा लाग्या. (तत्थणं एगे गोष्ठिल्लगपुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छंणे धरइ, एगे पिट्टओ आयवत्तं धरेइ, एगे पुष्कपूरयं रएइ, एगे पाए रएइ, एगे चामरुक्खेवं करेइ तएणं सा सूमालिया अज्जा देवदत्तं गणियं तद्धिं पंचहिं गोष्ठिल्लपुरिसेहिं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भागभोगाइं सुंजमाणी पासइ) त्यां ते मंडलीना अेक भाणुसे देवदत्ता गणिकाने पोताना जेजानां जेसाही गील भाणुसे तेनी उपर छत्री ताण्णी, त्रील भाणुसे तेना माटे पुष्पानी रचना करी, चौथा भाणुसे तेना पगमां लाल रंग लाग्याये, पांचवा भाणुसे तेना उपर आभर

पुरुषैः सार्धंशुदारान्=श्रेष्ठान् भोगान् भुञ्जानो=कुर्वती पश्यति, ततस्तस्याः सुकुमारिकाया अयमेतद्रूपः=वक्ष्यमाणस्वरूपः संकल्पः=विचारः समुद्रपद्यत-अहो ! खलु इयं स्त्री पुरा=पूर्वभवे 'पोराणाणं' पुराणानाम्-पुरातनानां संचितानां कर्मणां पुण्यकर्मणां यावत्=फलवृत्तिविशेषं प्रत्यनुभवन्ती विहरति तत्=तस्मात् कारणाद् यदि खलु कोऽप्यस्य सुचरितस्य तपोनियमब्रह्मचर्यवासस्य कल्याणः=इष्टः शुभ-रूपः, फलवृत्तिविशेषः अस्ति, 'तो' तर्हि खलु अहमपि 'आगमिस्सेणं' आगामिना भवग्रहणेन इमान् एतद्रूपान् उदारान् भोगान् यावद् भुञ्जाना 'विह-

उस पर चमर होरे। इस तरह से उस सुकुमारिका आर्या ने उन मंडली के पांच पुरुषों के साथ उस देवदत्ता गणिका को उदार मनुष्य भव संबन्धी काम भोगों को भोगते हुए देखा। (तएणं तीसे इमेया-रुवे संकल्पे समुत्पज्जित्या-अहो णं इमा इत्थिया पुरा पोराणाणं कम्माणं जाव विहरइ) तो उस सुकुमारिका आर्या को इस प्रकार का यह विचार उत्पन्न हुआ-अहो ! इस स्त्री ने पूर्वभवं में जो पुण्य कर्म कमाये हैं उन्हीं पुराने पुण्य कर्मों के यावत् फलवृत्ति विशेष को यह भोग रही है। (तं जहणं केइ इमस्स सुचरियस्स तव नियमवंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तो णं अहमपि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयाहवाइं उराळाइं जाव विहरिज्जामि, त्ति कद्दु नियाणं करेइ, करित्ता आयावणभूमिओ पच्चोरुइइ) इसलिये यदि इन पालित तप, नियम एवं ब्रह्मचर्य व्रतों का कोई शुभरूप फलवृत्ति विशेष है तो मैं भी आगामी भव में इसी तरह के उदार मनुष्य भव सम्बन्धी काम भोगों

देखा. आ रीते ते सुकुमारि आर्याये म'उणीना पांचे भाषुसेानी साथे ते देवदत्ता गणिकाने उदार मनुष्यलवना कामलोगो लोगवर्ता नेया. (तएणं तीसे इमेयारुवे संकल्पे समुत्पज्जित्या-अहो णं इमा इत्थिया पुरा पोराणाणं कम्माणं जाव विहरइ) त्थारे ते सुकुमार आर्याने आ नतने। विचार उह-लव्थे के अछो ? आ स्त्रीये पूर्वलवमां ने पुण्यकर्म कयां छे तेमने लीधेअ ओठवे के ते अ पूर्वलवना पुण्य-कर्मोना यावत् इणविशेषने आ लोगवी रह्ठी छे. (तं जहणं केइ इमस्स सुचरियस्स तव नियम वंभचेरवासस्स कल्लाणे फल-वित्तिविसेसे अत्थि तो णं अहमपि आगमिस्से णं भवग्गहणे णं इमेयाहवाइं उरा-ळाइं जाव विहरिज्जामि, त्ति कद्दु नियाणं करेइ, करित्ता आयावणभूमिओ पच्चोरुइइ) आ अथा मारा वडे आत्थरवामां आयेसा तप, नियम अने अहमयथं नरोत्तुं शुल इण छे तो हुं पलु आवता लवमां आ नतना अ उदार मनुष्यलव रूप'धी कामलोगोने लोगवु. आ प्रभाषे विचार करीने तेखे निदान

रिज्जामिति कट्टु ' विहरामि ' इति कृत्वा ' नियाणं ' निदानं करोति, कृत्वा आतापनभूमितः प्रत्यवरोहति-आतापनां परित्यजति ॥ सू० १४ ॥

मूळम्-तएणं सा सूमालिया अज्जा सररीरवउसा जाया यावि होत्था, अभिक्खणं अभिक्खणंर हत्थे धोवेइ पाए धोवेइ सीसं धोवेइ मुहं धोवेइ थणंतराइं धोवेइ कक्खंतराइं धोवेइ गोज्झंतराइं धोवेइ जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ तत्थ वि ष णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खइत्ता तओ पच्छा ठाणं वा३ चेइए, तएणं ताओ गोवालियाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी-एवं खल्लु देवाणुप्पिया ! अज्जे अम्हे समणीओ निग्गंथीओ ईरियासमियाओ जाव बंभचेरधारिणीओ नो खल्लु कप्पइ अम्हं सररीरवाउसियाए होत्तए, तुमं च णं अज्जे ! सररीरवाउसिया अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवेसि जाव चेएसि, तं तुमं णं देवाणुप्पिए ! तस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि, तएणं सा सूमालिया गोवालियाणं अज्जाणं एयमट्ठं नो आढाइ नो परिजाणइ अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी विहरइ, तएणं ताओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं अभिक्खणं अभिक्खणं अभिहीलंति जाव परिभवन्ति, अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारंति, तएणं तीए सूमालियाए समणीहिं निग्गंथीहिं हीलिज्जमागीए जाव वारिज्ज-

को भोग्यं । ऐसा विचार कर उसने निदान बंध किया और करके फिर वह आतापन भूमि से आतापना लेकर अपने स्थान आगई ॥ सू० १४ ॥

अंध कुर्यो अने धरिने ते आतापन भूमिथी आतापना लधने पोताना स्थाने आवी गध. ॥ सूत्र १४ ॥

मार्णीए इमेयाह्वे अज्जत्थिए जाव समुप्पज्जित्था, जयाणं
 अहं अगारवासमज्जे वसामि तथा णं अहं अप्पवसा, जया
 णं अहं मुंडे भवित्ता पच्चइया तथा णं अहं परवसा, पुंवि च
 णं ममं समाणीओ आढायंतिर इयाणि नो आढंतिर तं सेयं
 खलु मम कल्लं पाउ० गोवालियाणं अंतियाओ पडिनिक्खमित्ता
 पाडिएकं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए सिक्कट्टु एव
 संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं पा० गोत्रालियाणं अज्जाणं अंतियाओ
 पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता पडिएकं उवस्सयं उवसंपज्जि-
 त्ताणं विहरइ, तएणं सा सूमालिया अज्जा अणोहट्टिया
 अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवेइ
 जाव चेएइ तत्थ वि य णं पासत्था पासत्थविहारी ओसण्णा
 ओसण्णविहारी कुसीलार संसत्तार वहुणि वासाणि सामण-
 परियाणं पाउणइ अद्धमासियाए सलेहणाए तस्स ठाणस्स
 अणालोइयअपडिकंता कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे
 अण्णयरंसि विमाणंसि देवगणियत्ताए उववण्णा, तत्थेगइयाणं
 देवीणं नव पलिओवमाइं ठिई पणत्ता, तत्थ णं सूमालियाए
 देवीए नव पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता ॥ सू० १५ ॥

टीका—' तएणं सा ' इत्यादि । ततः खलु सा सुकुमारिका आर्या ' स्त्रीर

' तएणं सा सूमालिया अज्जा ' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इस के बाद (सा सूमालियाए अज्जा स्त्रीर वडसा

' तएणं ' सा सूमालिया अज्जा ' इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्यारपणी (सा सूमालिया अज्जा स्त्रीरवडसा जाया यावि

बउसा 'शरीरवकुशा शरीरसंस्कारपरायणा जाता चाप्यमत्रत्, अगीक्ष्णं २ पुनः पुनः इस्ती 'धोवेइ' धावति=पक्षालयति, पादौ धावति 'सीसं' शीर्षं=शिरः धावति, मुखं धावति, 'थणंतराई' स्तनान्तराणि धावति 'कक्खंतराई' कक्षान्तराणि धावति, 'गोज्झंतराई' गुह्यान्तराणि गुह्यप्रदेशं धावति, यत्र खलु 'ठाणं वा' स्थानम्-उपवेशनार्थं स्थानं 'सेज्जं वा' शय्यां वा 'निसीहियं वा' नैषेधिकीं स्वोध्यायभूमिं वा 'चेएइ' चेतयति-करोति, तत्रापि च खलु पूर्वमेवोदकेन 'अब्भुक्खइत्ता' अभ्युक्ष्य=अभिषिच्य, ततः पश्चात् 'ठाणं वा' स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेएइ' चेतयति-करोति ।

जाया यावि होत्था-अभिक्षण २ हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराई धोवेइ, कक्खंतराई धोवेइ, गोज्झंतराई धोवेइ) वह खुज्जुमारिका आर्या शरीर संस्कार करने में भी तत्पर बन गई। बार २ वह होथ धोने लगी, पैर धोने लगी, शिर धोने लगी, मुख धोने लगी, स्तनान्तरों को धोने लगी, कक्षाओं को धोने लगी और गुह्य प्रदेश को धोने लगी। (जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ तत्थ विय णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खइत्ता तओ पच्छा ठाणं वा ३ चेएइ, तएणं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी) इसी तरह वह जहां अपना बैठने के लिये स्थान बनाती, शय्या-पाथरती, स्वाध्याय स्थान करती, वहां भी वह पहिले से ही उसे जल से सींच देती-तब जाकर वहां वह अपना स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय भूमि नियत करती। इस प्रकार की परिस्थिति देख कर गोपा-

होत्था-अभिक्षण २ हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराई धोवेइ, कक्खंतराई धोवेइ गोज्झंतराई धोवेइ) ते खुज्जुमारिका आर्या शरीर-संस्कारना काममां पदेवाध गध. वारवार ह्थ धोवा लागी, पग धोवा लागी, माथुं धोवा लागी, मुख धोवा लागी, स्तनाना पन्थेना स्थानने धोवा लागी, णगळेने धोवा लागी, अने शुभ स्थानने धोवा लागी. (जत्थणं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ तत्थवि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खइत्ता तओ पच्छा ठाणं वा ३ चेएइ तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी) आ प्रभाञ्जे ७ ते न्यां पोतानुं जेसवानुं स्थान नक्खी करती, ८ पथारी पाथरती अथवा तो स्वाध्याय माटे जेसवानुं स्थान नक्खी करती. त्यां पडेवेधी ७ ते स्थानने पाणी छांटती હતી અને त्यारपछी ते त्यां पोतानुं स्थान-शय्या અને स्वाध्याय स्थान नक्खी करती હતી आ नतनी परिस्थिति नेधने गोपालिका आर्याजे ते

ततः खलु गोपालिका आर्याः सुकुमारिकाभार्याभिव्रमवादिषुः एवं खलु हे देवानुप्रिये ! आर्ये ! वयं श्रमण्यः—तपस्विन्यः निर्ग्रन्थ्यः ब्राह्माभ्यन्तरग्रन्थि-रहिताः ईर्यासमिता यावद् गुप्तब्रह्मचर्यधारिण्यः स्मः, नो खलु कल्पतेऽस्माकं सरीरवाउसियाए ' शरीरवाकुशिका ' होत्तए ' भदितुम् इति त्वं च खलु हे आर्ये ! शरीरवाकुशिका जाता, असोद्धणं=पुनः पुनरतिशयेन हस्तौ धावसि =प्रक्षालयसि, यावत्—रथानं वा ज्ञय्यां वा स्वाध्यायभूमि वा जलेनाभ्युक्ष्य ' चेएसि ' चेतयसि स्थानादिकं करोषीत्यर्थः । तत्=तम्मात् त्वं खलु हे देवानु-प्रिये ! तत् स्थानम् ' आलोएहि ' आलोचय, स्वातिचारं प्रकाशयेत्यर्थः । यावत् ' पडिवज्जाहि ' प्रतिपद्यस्व=प्रायश्चित्तं स्वीकुरु ' इत्यर्थः । ततः खलु सा सुकु-

लिका आर्या ने उस सुकुमारिका आर्या से कहा—(एवं खलु देवाणुप्पि-या ! अज्जे अस्हे सम्मणीओ निगंथीओ ईरियासमियाओ जाव वंमचेर धारिणिओ, नो खलु कप्पह अस्हं सरीरवाउसियाए होत्तए, तुमं च णं अज्जे सरीरवाउसिया, अभिक्खणं २ हत्थे धोवेसि, जाव चेएसि) हे देवानुप्रिये ! हम आर्याएँ निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ हैं । ईर्या आदि पाँच सम्मि-तियोंका पालन करती हैं । नौकोटि ब्रह्मचर्य सहितमहाव्रतको पालन करती हैं । अतः हम लोगों को अपने शरीर के संस्कार करने में परा-यण बनना कल्पित नहीं है । हे आर्ये ! तुम शरीर संस्कार करने में परायण बन चुकी हो । बार २ तुम हाथों को धोनी हो यावत् स्थान को शोध्या को, और स्वाध्याय भूमि को पहिले से ही पानीसे धोकर नियत करती हो (तं तुमं णं देवाणुप्पिए ! तस्स ठाणस्स आलोएहिं, जाव पडिवज्जाहि) इस लिये हे देवानुप्रिये ! तुम उस स्थान की आलोचना करो—अपने अतिचारों को प्रकाशित करो यावत् उनका प्रायश्चित्त लो ।

सुकुमारिका आर्याने आ प्रभाषे कल्लु हे—(एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जे अस्हे सम्मणीओ निगंथीओ ईरियासमियाओ जाव वंमचेरधारिणिओ नो खलु कप्पह अस्हे सरीरवाउसियाए होत्तए, तुमं च णं अज्जे सरीरवाउसिया, अभिक्खणं २ हत्थे धोवेसि जाव चेएसि) हे देवानुप्रिये ! अमे आर्याओ निर्ग्रन्थ श्रम णीओ छीओ, ह्यथा वजेरे पाथ सम्मित्तोत्तुं अमे पालन करीओ छीओ, नव-कोटिथी ब्रह्मचर्यं महाव्रत धारण करीओ छीओ, ओथी पोताना शरीरनो संस्कार करेओ ओ आपण्णा भाटे योग्य गण्णाय नडिं डे आर्ये ! तमे शरीरना संस्का-रमां परायण्य बननी चूकी छे। तमे बारबार डोथेने धुओ छे यावत् स्थानने, शय्याने अने स्वाध्यायभूमिने पडिलेथी अ पाण्णीथी धोअने नछी करी छे। छे। (तं तुमं णं देवाणुप्पिए ! तस्स ठाणस्स आलोएहिं, जाव पडिवज्जाहि) ओथी

मारिका आर्या गोपालिकानामार्याणायेतमर्थं 'नो आढाह' नाद्रियते, नो परिजानीते तद्वचने ध्यानं न ददाति, । अनाद्रियमाणा=अनादरं कुर्वती, अपरिजानाना=ध्यानमददाना विहरति=आस्ते । ततः खलु ताः गोपालिका आर्याः सुकुमारिकामार्यामभीक्ष्णं=पुनः पुनरभिहीलन्ति खिसन्ति निन्दन्ति यावत् परिभवन्ति । अभीक्ष्णं=पुनः पुनः, 'एयमट्टं' एतमर्थम् उक्तमर्थं शरीरसोमाकरण-जलप्रक्षेपादिकं निवारयन्ति=प्रतिषेधयन्ति । ततः खलु 'तीए' तस्याः सुकुमारिकायाः श्रमणीभिर्निग्रन्थीभिः हील्यमानाया यावद् वार्यमाणाया अयमेतदूषणः=वक्ष्यमाणस्वरूपः आध्यात्मिको यावन्मनोगतः संकल्पो-विचारःसमुद्पद्यत=भाहु-

(तएणं सा सूमालिया गोवालियाणं अज्जाणं एयमट्टं नो आढाह, नो परिजानाह, अणाढायमाणी, अपरिजाणमाणी, विहरइ) सुकुमारिका आर्या ने गोपालिका आर्या के इस कथन रूप अर्थ को आदर की दृष्टि से नहीं देखा, उसके वचनों पर उसने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इस तरह उनके वचनों का अनादर और उन पर ध्यान नहीं देती हुई वह रहने लगी (तएणं ताओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं अभिक्खणं २ एयमट्टं निवारेंति, तएणं तीसे सूमालियाए समणीहिं निगंयीहिं हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्जत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) इस के पश्चात् उन गोपालिका आर्या ने उस सुकुमारिका आर्या की बार २ अवहेलना की, उस पर वे गुस्सा भी हुई उसकी निंदा भी की यावत् उसका तिरस्कार भी किया। बार २ उसे शरीर की शोभा करने से और जल का सिंचन करने से रोका। तब उसे इस प्रकार का

छे देवानुप्रिये । तमे ते स्थाननी आढोचनं करे-पोताना अतिथारने प्रकाशित करे यावत् तेना भाटे प्रायश्चित्त करे। (तएणं सा सुमालिया गोवालियाणं अज्जाणं एयमट्टं नो आढाह, नो परिजानाह, अणाढायमाणी, अपरिजाणमाणी, विहरइ) सुकुमारिका आर्याञ्चि गोपालिका आर्याना आ कथनरूप अर्थने आदरनी दृष्टिथी ज्येथे नडि, तेभना वचनेओ उपर तेणु क'धं पणु विचार कथे नडि. आ रीते तेभना वचनेनेओ अनादर अने ते प्रत्ये जेदरकार थधने ते पोतानेओ वपत्त पसार करवा लागी. (तएणं ताओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं अभिक्खणं २ एयमट्टं निवारेंति, तएणं तीसे सूमालियाए समणीहिं निगंयीहिं हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्जत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) त्थारपथी ते गोपालिका आर्याञ्चि ते सुकुमारिका आर्यानी वार'वार अवहेलना करी, तेनी तदइ तेभणु गुस्सा पणु गताव्ये, तेनी निंदा करी यावत् तेना तिरस्कार पणु कथे. तेने वार'वार शरीरने शोभाववा भदल तेभणु वणत्तुं सिथन करवा भदल

भूतः, यदा=यावत् कालं खलु अहमगारवासमध्ये वसामि, तदा=तावत् कालं खल्वहं 'अप्पवसा' आत्मवशा स्वाधीना आसम्, यदा खल्वहं मुण्डा भूत्वा प्रव्रजिता तदा खल्वहं परवशा पराधीना जाता । 'पुण्वि' पुरा पूर्वस्मिन् काले च खलु 'मम' मां श्रमण्यः 'आदायंति' २ आद्रियन्ते, तथा परिजानन्ति, इदानीं नो आद्रियन्ते नो परिजानन्ति, 'तं' तत्=तस्मात् श्रेयः खलु मम कल्पे प्रादुर्भूत प्रभातया रजन्त्या यावज्ज्वलति सूर्ये अभ्युद्गते गोपालिकानामार्याणामन्तिकत् मतिनिष्क्रम्य 'पाडिपक्कं' पार्थक्यं-पार्थवयाश्रयं पृथग्भूतम् अन्यमित्यर्थः 'उव-

यह आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—(जयाणं अहं आगारवासमज्जे वसामि तथाणं अहं अप्पवसा जयाणं अहं मुंडे भविस्ता पन्वइया तथाणं अहं परवसा, पुण्वि च णं मम समणीओ आदायंति, इयाणि णो आहंति २ तं सेयं खलु मम कल्लं पाडंगोवालियाणं अंतियाओ पडिनिक्खमिस्ता पडिपक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ) जब तक मैं घर में रही तब तक स्वाधीन रही—और अब जब से मुंडित होकर प्रव्रजित हुई हूँ तब से पराधीन बन रही हूँ । पहिले ये श्रमणियां मेरा आदर करती थीं—मेरी बात मानती थीं परन्तु अबतो कोई भी न मेरा आदर करती है—और न मेरी बात ही मानती है । इस लिये मुझे अब यही उचित होगा कि मैं दूसरे दिन जब प्रातः काल होने पर सूर्य प्रकाश से चमकने लगे—तब मैं गोपालिका आर्याके पास से निकल कर किसी दूसरे भिन्न उपा-

रोक ठोक करी. त्पारे तेने आ लतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्ने। के (जयाणं अहं आगारवासमज्जे वसामि तथाणं अहं अप्पवसा जयाणं अहं मुंडे भविस्ता पन्वइया तथाणं अहं परवसा पुण्वि च णं मम समणीओ आदायंति, इयाणि णो आहंति २ तं सेयं खलु मम पाठंगोवालियाणं अंतियाओ पडिनिक्खमिस्ता पडिपक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ) न्यां सुधीं हुं घरमां रहीं त्थां सुधीं स्वाधीन रहीं पणु न्यारथी मुंडित थधने प्रव्रजित थधं छुं त्पारथी पराधीन थधं गधं छुं. पहिलां आ श्रमणीओ भारे आदर करती हती, भारी बात मानती हती पणु अत्पारे तो केधं पणु भारे आदर नथी करतुं अने भारी बात पणु मानतुं नथी. तेथी भारे भारे ओ न उचित छे के भीरे दिवसे सवारे सूर्य उदय भाभतां न हुं गोपालिका आर्यानी पासैथी नीकणीने केधं भील उपाश्रये नती रहूं. आ लतने तेणु विचार कर्ये (संपेहिता) विचार करीने ते (कल्लपाठ

स्सयं' उपाश्रयम् उपसंपद्य विद्वर्तुमिति कृत्वा एवं संप्रेक्ष्य कल्पे प्रादुर्भूतममा-
तायां रजन्यां यावज्जलतिष्ठत्ये उदिते ति गोपालिकानामार्याणामन्तिकत् प्रति-
निष्कामति, प्रतिनिष्कम्प्य ' पाडिएक' ' प्रार्थक्यं-पृथग्भूतमन्यसुपाश्रयमुपसंपद्य
खलु विहरति-आस्ते स्म ।

ततः खलु ता सुकुमारिका आर्या ' अणोहृष्टिया ' अनप्यघट्टिका अपवारक-
रहिता-उच्छृङ्खला अविनयवतीति यावत् ' अनिवारिया ' अनिवार्या दुर्निशारा
' सच्छंदमई ' स्वच्छन्दमतिः-चारित्र्यमार्जुरोधरहितभावा, अभीक्ष्णं-पुनः पुन-
ईस्तौ धावति-प्रक्षालयति यावत्-स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिर्कीं वा जलेनास्युष्य
चेतयति-स्थानादिकं करोतीत्यर्थः। तत्रापि च खलु पार्श्वस्था, पार्श्वरथविहारिणी,

श्रय मे चली जाऊँ इस प्रकार का उरने विचार किया (संपेहिता)
ऐसा विचार करके (कल्लं पा० गोवालियाणं अज्जाणं) दूसरे ही दिन
प्रातः काल जब सूर्योदय हो गया-तब वह गोपालिका आर्या के (अंति-
याओ) पास से (पडिनिक्खमिस्सा) निकल कर (पडिएकं) भिन्न
दूसरे (उवस्सयं) उपाश्रय को (उवसंपज्जित्ताणं विहरइ) प्राप्तकर
वहां रहने लगी-अर्थात् दूसरे उपाश्रय में चली आई। (त एणं सा
सुमालिया अज्जा अणोहृष्टिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिवस्खणं
अभिवस्खणं हत्थे धोवेइ जाव चेएइ) वहां वह सुकुमारिका आर्या विना
किसी रोक टोक के स्वच्छंद बनकर रहने लग गई। वहां उसे कोई
रोकने वाला रहा नहीं-सो जो मन में आया वह करने लग गई-इस
तरह वह चारित्र्य धर्म के भाव से रहित बन गई। वार २ अपने हाथों
को धोती यावत् स्थान, शय्या, और स्वाध्याय की भूमि को धोकर वहां

गोवालियाणं अज्जाणं) भीने द्विसे नवरे न्यारे सूथं उदय पाग्गे त्तारे ते
गोपालिका आर्यानी (अंतियाओ) पासैथी (पडिनिक्खमिस्सा) नीकणीने (पडिएकं)
भीण (उवस्सयं) उपाश्रयने (उवसंपज्जित्ताणं विहरइ) भेणवीने त्यां उडेवा
दागी, ऐटवे के भीण उपाश्रयमां वती रली. (त एणं सा सुमालिया अज्जा
अणोहृष्टिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिवस्खणं हत्थे धोवेइ जाव चेएइ) त्यां
ते सुकुमारिका आर्यां केअपणुं नतनी रोक टोक वगर स्वच्छंतापूर्वक उडेवा
दागी. त्यां तेने केअ रोक-टोक करनार हतुं नडि ऐटवे ने प्रभाए तेनी
हच्छा यती ते प्रभाए ने ते आचरती हती. आ रीते ते चारित्र धर्मना
लावथी रहित गनी गइ. वारवार ते चेताना डाथेने धोती हती यावत् स्थान,
पथारी अने स्वाध्यायना स्थानने धोने त्यां चेतानुं स्थान नक्की करती हती.

अवसन्ना, अवसन्नत्रिगारिणी, कुशीला कुशीलविहारिणी, संसक्ता, संसक्तविहारिणी, बहूनि वर्षाणि श्राद्धपयपर्यायं पालयति, पालयित्वा अर्धमासिनया संलेखनया तस्य स्थानस्याऽनालोचना अप्रतिक्रान्ता कालमासे कालं कृत्वा, ईशाने कल्पेऽन्यत-
मस्मिन् विगतने गायुर्यादि वाचनात्मये आचार्याणां विमानसंख्याया विस्मरणेन निश्चयाभावाद्न्यतमस्मिन्नित्युक्तम्, देवगणिकृतया उत्पन्ना । तत्रैकैकासां देवीनां नवपल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० १५ ॥

अपना स्थान नियत करती । इस प्रकार (तत्त्व वि य णं पासत्था पासत्थ विहारी, ओसण्णा ओसण्णविहारी कुसीलार संसत्तार बहूणि वासाणि सामण्णपरियाणं पाउणइ) वहाँ उस सुकुमारिका ने पार्श्वस्था पार्श्वस्थ विहारिणी, अवसन्ना, अवसन्न विहारिणी, कुशीला, कुशील विहारिणी, संसक्ता, संसक्त विहारिणी बनकर अनेक वर्षों तक श्राद्धपय पर्याय का पालन किया (पाउणित्ता अद्धमासियाए) पालन करके वह अर्धमास की संलेखना धारण कर (कालगत) अपनी मृत्यु के अवसर (कालं किञ्चा) पर मरी-खो मरकर (अनालोचय अपडिक्कंता) अपने पापों की अनालोचना करने से वह प्रतिक्रान्त नहीं बन सकने के कारण (ईसाणे कप्पे) ईशानकल्प में (अण्णयरसि विमाणंसि) किसी एक विमान में (देवगणियत्ताए उववण्णा) देवगणिका के रूप में उत्पन्न हुई । (तत्थेगइयाणं देवीणं नवपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, नत्थणं सूमा-
लियाए देवीए नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता) वहाँ कितनिक देवियों

आ रीते (तत्त्व वि य णं पासत्था पासत्थविहारी ओसण्णा ओसण्णविहारी कुसीलाऽसंसत्ता २ बहूणि वासाणि सामण्णपरियाणं पाउणइ) त्थां ते सुकु-
मारिकाओ पार्श्वस्था, पार्श्वस्थ विहारिणी, अवसन्ना, अवसन्न विहारिणी, कुशीला, कुशील विहारिणी, संसक्ता, संसक्त विहारिणी थधने धण्णं वर्षो सुधी श्राद्धपय पर्यायं पालनं कथुं. (पाउणित्ता अद्धमासियाए) पालन करीने ते अर्धमासिकनी संलेखना धारण करीने (कालमासे) पीताना मृत्यु काणे (कालं किञ्चा) ते मरणु पाभी. अने मरणु पाभीने (अनालोचय अपडिक्कंता) पीताना पापोनी आलोचयना न करवाथी प्रतिक्रान्त न थनी शकवाना काण्णे ते (ईसाणे कप्पे) ईशान कल्पमां (अण्णयरसि विमाणंसि) कैहं ऐक विमा-
नमां (देवगणियत्ताए उववण्णा) देवगणिकाना रूपमां जन्म पाभी. (तत्थे गइयाणं देवी णं नवपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थणं सूमालियाए देवीए नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता) त्थां कैटलीक देवीओनी स्थिति नव पद्योपननी कडे-

મૂલ્ય—તેણં કાલેણં તેણં સમણં ઇહેવ જંબુદીવે ભારહે વાસે
 પંચાલેસુ જળવણસુ કંપિહ્ણપુરે નામં નયરે હોત્થા, વન્નઓ તત્થ
 ણં દુવણ નામં રાયા હોત્થા, વન્નઓ, તસ્સ ણં ચુલણીદેવી
 ધટ્ટજ્જુષે કુમારે જુવરાયા, તણં સા સૂમાલિયાદેવી તાઓ
 દેવલોયાઓ આઠવ્વણણં જાવ ચઢત્તા ઇહેવ જંબુદીવે દીવે ભારહે
 વાસે પંચાલેસુ જળવણસુ કંપિહ્ણપુરે નયરે દુપયસ્સ રણ્ણો ચુલ-
 ણીણ દેવીણ કુચ્છિસિ દારિયત્તાણ પચ્ચાયાયા, તણં સા ચુલ-
 ણીદેવી નવણહં માસાણં જાવ દારિયં પયાયા, તણં સા તીસે
 દારિયાણ નિવ્વત્તવારસાહિયાણ ઇમં ણ્યારૂવં ગોણં ગુણિણ્ણણં
 નામધેજ્જં જમ્હાણં ણ્ણ દારિયા દુવયસ્સ રણ્ણો ધૂયા ચુલણીણ
 દેવીણ અત્તયા તં હોઠ ણં અમ્હં ઇમીસે દારિયાણ નામધિજ્જે
 દોવર્ઠ, તણં તીસે અમ્માપિયરો ઇમં ણ્યારૂવં ગુણં ગુણનિ-
 પ્પન્નં નામધેજ્જં કરિતિ દોવર્ઠ, તણં સા દોવર્ઠ દારિયા પંચ
 ધાઈપરિગ્ગહિયા જાવ ગિરિકંદરમહ્ણીણ ઇવ ચંપગલયા નિવાય-

કી સ્થિતિ નૌ પલ્લોપમ કી કહી ગઈ હૈ—સો ઇસ સુકુમારિકાદેવી કી
 વહાં નૌ પલ્લોપમ કી સ્થિતિ હુઈ । યહાં જો ” કિસી ઇક વિમાન મેં ”
 ઇસા અનિશ્ચયાત્મક પદ્ધતિયો હૈ ઇસકા તોત્પર્ય યહ હૈ કિ માધુર્યાદિ-
 વાચના કે સમય મેં આચાર્યો કો વિમાન સંખ્યા કા વિસ્મરણ હો જાને
 સે ઇસકા નિશ્ચય નહીં રહા । અતઃ ઇસા કહો ગયા હૈ ॥ સૂ. ૧૫ ॥

વામાં આવી છે તેા તે સુકુમારિકા દેવીની પણ ત્યાં નવપદ્ધતિપમની સ્થિતિ
 થઈ. અહીં જે “કોઈ એક વિમાનમાં” આ બાતનું અનિશ્ચયાત્મક પદ આપ્યું
 છે તેનું કારણ આ પ્રમાણે છે કે માધુર્યાદિ વાચનાના સમયે આચાર્યેની વિમાન
 સંખ્યાનું વિસ્મરણ થઈ જવાથી તે વિષે નિશ્ચય રહ્યો નહિ. એથી આ પ્રમાણે
 કહેવામાં આપ્યું છે. ॥ સૂ. ૧૫ ॥

निन्वाघायंसि सुहंसुहेणं परिवड्ढइ । तएणं सा दोवई रायवरकन्ना
उम्मुक्कवालभावा जाव उक्किट्टसरीरा जाया जावि होत्था, तएणं
तं दोवईं रायवरकन्नं अपणया कयाई अंतेउरियाओ षहायं
जाव विभूसियं करेति करित्ता दुवयस्स रण्णोपाएवंदिउं पेसंति
तएणं सा दोवईं राय० जेणेव राया तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छित्ता दुवयस्स रण्णो पायग्गहणं करेइ, तएणं से दुवए
राया दोवईं दारियं अंके निवेसेइ निवेसित्ता दोवइए रायवर-
कन्नाए ह्वेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए दोवईं
रायवरकन्नं एवं वयासी-जस्स णं अहं पुत्ता ! रायस्स वा जुवरायस्स
वा भारियत्ताए सयंसेव दलइस्सामि तत्थ णं तुमं सुहिया वा
दुक्खिया वा भविज्जासि, तएणं मम जावजीवाए हिययडाहे
भविस्सइ, तं णं अहं तव पुत्ता ! अज्जयाए सयंवरं विरयामि,
अज्जयाए णं तुमं दिण्णसयंवरा जण्णं तुमं सयमेव रायं वा
जुवरायं वा वरेहिसि से णं तव भत्तारे भविस्सइ त्तिकड्डु ताहिं
इट्ठाहिं जाव आसासेइ आसासित्ता पडिविसज्जेइ ॥ सू० १६ ॥

टीका—‘ तेणं कालेणं ’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव
जम्बूद्वीपे भारते वर्षे पञ्चालेषु जनपदेषु काम्पिल्यपुरं=काम्पिल्यपुरनामकं नगर-

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस
समय में (इहैव जंबुद्वीपे भारते वासे पंचालेषु जनपदेषु कम्पिलपुरे नामं
नगरे होत्था) इसी जंबुद्वीप में भारत वर्ष में पांचाल जनपद में

तेणं कालेणं तेणं समएणं इत्यादि—

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये (इहैव जंबुद्वीपे
भारतवासे पंचालेषु जनपदेषु कम्पिलपुरे नामं नगरे होत्था) आ जम्बूद्वीपमां
भारत वर्षमां पांचाल जनपदमां कम्पिल्यपुर नामे नगर इत्तुं. (वज्रजो) आ
नगरं वषुंन औपपातिक सूत्रमां करवामां आण्युं छे त्याधी पाठकोत्थे व्याखी

मासीत्, वर्णकः=अस्य नगरस्य वर्णनशौपपातिकसूत्राद् बोध्यम् । तत्र खलु
द्रुपदो नाम राजाऽऽसीत्, चुलनी नाम्नी देवी भार्याऽभवत्, तस्मिन् पुत्रः 'धृ-
ज्जुणे' धृष्टद्युम्नो नाम कुमारो युवराजोऽभवत् ।

ततः खलु सा सुकुमारिका देवी तस्माद् देवलोकादायुःक्षयेण यावत्-
च्युत्वा इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे पंचालेषु जनपदेषु कास्पित्यपुरे नगरे
द्रुपदस्य राज्ञः=चुलन्या देव्याः कुक्षौ दारिकतया=पुत्रीत्वेन 'पञ्चायाया' प्रत्या
याता=समुत्पन्ना । ततः खलु सा चुलनीदेवी नवानां मांसानां बहुमतिपूर्णानां
यावद् दारिकां पुत्रीं प्रजाता=प्रजनितवती । ततः खलु सा तथा दारिकाया

कांपित्यपुर नाम का नगर था । (वन्नओ) इस नगर का वर्णन शौप-
पातिक सूत्र में किया गया है सो वहां से जान लेना चाहिये । (तत्थ
णं दुवए नामं राया होत्था वन्नओ तस्म णं चुलणीदेवी, धृज्जुणे कुमारे
जुवराया, तएणं सा सूमालिया देवी ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं
जाव चहत्ता इहेव जंबुद्वीपे दीपे, भारहे चासे पंचालेषु जगवएसु कपि-
ल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णे चुलणीए देवीए कुच्छिसि दारिचत्ताए
पञ्चायाया) वहाँके राजाका नाम द्रुपद था । राजाका वर्णन भी पहिले
जैसा ही जानना चाहिये । इस की रानी का नाम चुलनीदेवी था ।
कुमार का नाम धृष्टद्युम्न था—यह युवराज था । वह सुकुमारिका आर्या
का जीव उस दूसरे ईशान देवलोक से आयु आदि क्षय हो जाने के
कारण चक्कर इसी जंबूद्वीप नाम के द्वीप में भरत क्षेत्र में, पंचाल
जनपद में कांपित्यपुर नगर में द्रुपद राजा की चुलनीदेवी की कुक्षि में
पुत्री रूपसे अवतरित हुआ । (तएणं सा चुलणीदेवी नवणहं भासाणं जाव

देवुं नेधंये. (तत्थ णं दुवए नामं राया होत्था, वन्नओ, तस्मणं चुलणी देवी
धृज्जुणे कुमारे, जुवराया, तएणं सा सूमालिया देवी ताओ देवलोयाओ आ
उक्खएणं जाव चहत्ता इहेव जंबुद्वीपे दीपे भारहे चासे पंचालेषु जगवएसु कपिल्ल
पुरे नयरे दुवयस्स रण्णे चुलणीए देवीए कुच्छिसि दारिचत्ताए पञ्चायाया) त्यांना
राजान्तुं नाम द्रुपद इतुं राजान्तुं पश्चिम पश्चिम शौपपातिक सूत्रमा वक्षितं कोषिक
राजानी नेमन् नाली देवुं नेधंये तेनी राणींतुं नाम चुलनी देवी इतुं. तेना
पुत्रंतुं नाम धृष्टद्युम्न इतुं. धृष्टद्युम्न युवराज इतो, सुकुमारिका आर्याना एव
ते पीन्व देवलोकाथी आयु वगेरे क्षय थना षडल अथीने आन् न'पूद्वीप
नामना द्वीपमां, भरत क्षेत्रमां, पंचाल्य जनपदमां, कांपित्यपुर नगरमां द्रुपद
राजानी चुलनी देवीना उदरमां पुत्री रूपे अवतरित थथे. (त एणं सा चुलणी

‘निवृत्तवारसाहियाए’ निवृत्तद्वादशाहिकायां=द्वादशेऽहनि संप्राप्ते इदमेतद्रूपं नाम कृतवती यस्मात् खलु एषा दारिका द्रुपदस्य राज्ञो ‘धूया’ दुहिता-पुत्री चुलन्या देव्या ‘अत्तया’ आत्मजा=अङ्गजाता, तस्माद् भवतु खल्वस्माकमस्या दारिकाया नामधेयं ‘द्रौपदी’ इति । ततः खलु तस्या अद्यापितरौ इदमेतद्रूपं गोणं=गुणप्राप्तं गुणनिष्पन्नं=गुणसंपन्नं, नामधेयं कुरुतः । ततः सा द्रौपदी दारिका पञ्चधात्रीभिर्यावद् गिरिकन्दरमालीने चरुपकलता निर्वीतनिर्व्याघाते सुखं-सुखेन परिवर्धते स्म ।

दारियं पयाया तएणं सा तीसे दारियाए निव्वत्तवारसाहियाए इमं एया रुवं गोणं गुणणिष्फणं नामधेज्जं जम्हाणं एस दारिया दुवयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया तं होउणं-अम्हं इमीसे दारियाए नामधिज्जे दोवई) गर्भ के जब नौ मास अच्छी तरह समाप्त हो चुके तब चुलनी-देवी ने एक पुत्री को जन्म दिया । पुत्री को उत्पन्न हुए १२ वां दिन लगा-तब चुलनी माताने उसका इस रूप से गुणनिष्पन्न नामरक्ता क्यों कि यह द्रुपद्राजा की पुत्री है और मुझ चुलनी के उदर से उत्पन्न हुई है-इसलिये इस हमारी कन्या को नाम द्रुपदी रहो इस तरह के विचार से (तीसे अम्मा पिथरो) माता पिता ने उसका (इम एयारुवं गुणं गुणनिष्फन्नं नामधेज्जं करिंनि दोवई) इतरे तरह का गुणनिष्पन्न नाम द्रौपदी रख दिया । (तएणं) इसके बाद-(सा दोवई दारिया पंचधाइ परिग्गहिया जाव गिरिकंदरमल्लीणइव चंपगलया निव्वायनिव्वाघायंसि सुहं सुहेणं परिवद्धेइ) वह द्रौपदी दारिका पांच धायमानाओं से बुक्त

देवी नवण्हं मासाणं जाव दारियं पयाया तएणं सा तीसे दारियाए निव्वत्तवारसाहियाए इमं एयारुवं गोणं गुणणिष्फणं नामधेज्जं जम्माणं एस दारिया दुवयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया तं होउणं अम्हं इमीसे दारियाए नामधिज्जे दोवई) गर्भना नवमास व्यापरे संपूर्णपक्षे समाप्त तथा त्यारे चुलनी देवीये अके पुत्रीने जन्म आये। पुत्रीना जन्म पछी व्यापरे अगि-थार दिवस पूरा थया अने पारयो दिवस शङ्क थया त्यारे चुलनी माताये विचार कथो के दुपद रावनी आ कन्यापुत्री छे अने भारा गर्भथी जन्म पायी छे, आ प्रभाये आनुं नाम द्रौपदी राभीये तो साइं आम पिथारीने (तीसे अम्मापिथरो) मातापिताये (इमं एयारुवं गुणं गुणनिष्फन्नं नाम धेज्जं करिंनि दोवई) आ रीते ते कन्यानुं शुष्य निष्पन्न नाम द्रौपदी पारुथुं. (तएणं) त्यारपछी (सा दोवई दारिया पंचधाइपरिग्गहिया जाव गिरिकंदर मल्लीण इव चंपगलया निव्वायनिव्वाघायंसि सुहं सुहेणं परिवद्धेइ) द्रौपदी-

ततः खलु सा द्रौपदी राजवरकन्या उन्मुक्तबालभावा यावद् अकृष्टा, उत्कृष्ट-शरीरा जाता चाप्यभवत् । ततः खलु तां द्रौपदीं राजवरकन्यामन्यदा कदाचिद् 'अंते उरियाओ' आन्तः पुरिक्यः=अन्तः पुरवर्तिन्यः स्त्रियः स्नातां यावत्-वस्त्रा-कंकारविभूषितां कुर्वन्ति कृत्वा द्रुपदस्य राज्ञः पादौ वन्दितुं 'पेसंति' प्रेषयन्ति, ततः खलु सा द्रौपदी राजवरकन्या यत्रैव द्रुपदो राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य द्रुपदस्य राज्ञः पादग्रहणं करोति, ततः खलु स द्रुपदो राजा द्रौपदीं दारिकामङ्गे

होकर इस तरह पलने पुषने लगी कि जिस तरह गिरि की कंदरा के प्रदेशमें उत्पन्न हुई चंपकलता वात रहित निरुपद्रव स्थानमें आनन्द के साथ पलती पुषती है । (तएणं सा दोवई रायवरकन्ना उन्मुक्कवाल-भावा, जाव उक्किट्टसरीरा जाया यावि होत्था, तएणं तं दोवई रायवरकन्नं अण्णया कयाई अंते उरियाओ ण्हायं जाव विभूसियं करंति, करिन्ता दुवयस्स रण्णो पाए वंदिडं पेसंति) वह राजवर कन्या द्रौपदी घालभाव रहित होकर जब यौवन अवस्था वाली हो चुकी तब इस के शरीर में लावण्य की चमक से विषय सौन्दर्य आ गया-अतः उस समय यह विशेषरूप से उत्कृष्ट शरीर वाली बन गई । किसी एक दिन की बात है कि अंतः पुर की स्त्रियों ने द्रौपदी को स्नान कराकर यावत् वस्त्रालंकार से विभूषित किया-और विभूषित कर के द्रुपद राजा की चरण वंदना करने के लिये भेज दिया (तएणं सा दोवई राय० जेणेव दुवए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता, दुवयस्स रण्णो पायगग्रहणं करेइ,

दारिका पांथ धायभाताओथा युक्त थधने आ प्रभाणु दादित पादित थावा भांडी नेभके पवतनी कंदराना प्रदेशमां उन्नथयेदी अंपकलता निर्वत, निरुपद्रव स्थानमां सुभेथी मोटी थती न डोथ ! (तएणं सा दोवई रायवरकन्ना उन्मुक्कवालभावा जाव उक्किट्टसरीरा जाया यावि होत्था, तएणं तं दोवई रायवरकन्नं अण्णया कयाई अंते उरियाओ ण्हायं जाव विभूसियं करंति करिन्ता दुवयस्स रण्णो पाए वंदिडं पेसंति) ते राजवर कन्या, द्रौपदी अथपणु पटावनि न्यादे युवावस्था संपन्न थध गध त्थारे तेना शरीरमां लावण्यना अमकथी सविशेष सौंदर्य दीपी उड्युं. तेथी ते वपते ते विशेष इपथी उत्कृष्ट शरीरवाणी थध गध डती. कोथ अेक दिवसनी वात छे के रणुवासनी अीओअे द्रौपदीने स्नान करान्थुं यावत् पअदंकारेथी विभूषित करी अने विभूषित करीने द्रुपद राजानी अरणु पदंणु करवा भाटे मेडकी (तएणं सा दोवई राय० जेणेव दुवए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता, दुवयस्स रण्णो पायगग्रहणं करेइ, तएणं

निवेशयति, निवेश्य द्रौपद्या राजवरकन्याया रूपेण च यौवनेन च लावण्येन च 'जायविह्वए' जातविस्मयः=आश्चर्यं प्राप्तः स द्रुपदो द्रौपदीं राजवरकन्या मेवमवादीत्-हे पुत्रि ! यस्य खलु अहं राज्ञो वा युवराजस्य वा भार्यात्वेन स्वयमेव दास्यामि, तत्र खलु त्वं सुखिता वा दुःखिता वा भविष्यसि, ततः खलु मम 'जाव जीवाए' यावज्जीवं 'हिययडाहे' हृदयदाहः-मनोदुःखं भविष्यति ।

तएणं से दुवए राया दोवइं दारियं अंके निवेशेइ, निवेशित्ता, दोवईए रायवरकन्नाए रूपेण य जोव्वणेण य लावणणेण य जायविह्वए दोवइं, रायवरकन्नं एवं वयासी) सो वह राजवर कन्या द्रौपदी जहां द्रुपद राजा था वहां आई। वहां आकर उसने वंदना करने के लिये द्रुपद राजा के ज्योंही दोनों पैरों को पकड़ा कि इतने में उस द्रुपद राजाने उस द्रौपदी दारिका को अपनी गोदमें बैठा लिया। द्रौपदी के बैठते ही वह राजा उस राजवर कन्या द्रौपदी के रूप, यौवन और लावण्य से विशेष विस्मित हुआ-सो विस्मित होकर उसने उस राजवर कन्या द्रौपदी से इस प्रकार कहा-(जस्स णं अहं पुत्तां । रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थ णं तुमं सुहिया वा दुक्खिया वा भविज्जासि तएणं मम जाव जीवाए हिययडाहे भविस्सइ) हे पुत्रि ! मैं स्वयं तुम्हें जिस राजा को, अथवा युवराज को भार्या के रूप में दूंगा वहां तुम सुखी और दुःखी दोनों सी हो सकती हो। तो इससे मुझे यावज्जीव हृदय दाह-मानसिक दुःख रहेगा। (तं णं अहं पुत्ता ।

से दुवए राया दोवइं दारियं अंके निवेशेइ, निवेशित्ता, दोवईए रायवरकन्नाए रूपेण य जोव्वणेण य लावणणेण य जायविह्वए दोवइं रायवरकन्नं एवं वयासी) ते राजवर कन्या द्रौपदी न्यां राज द्रुपद उता त्यां गधं. त्यां बधने तेष्से द्रुपद राजने वधन करवा भाटे अने पणे पकडया त्यारे तेष्सेओ द्रौपदी दारिकाने पोताना गेजागामं गेसाडी द्रौपदी न्यारे गेजागामं गेसी गधं त्यारे राज ते राजवर कन्या द्रौपदीना इप, यौवन अने लावण्यथी सविशेष विस्मित थये अने विस्मित थधने तेष्से ते राजवर कन्या द्रौपदीने आ प्रभाष्से कथं— (जस्स णं अहं पुत्ता ! रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थणं तुमं सुहिया वा दुक्खिया वा भविज्जासि तएणं मम जाव जीवाए हिययडाहे भविस्सइ) हे पुत्रि ! हुं तने जे राजने के युवराजने साथेना इपमं आपीश त्यां तुं सुभी पणु थधं शके तेम छे अने दुःखी पणु, तेथी अने

ऋततस्मात् खल्वहं हे पुत्रि ! तव ' अञ्जयाए ' अद्यतया-एषु दिवसेषु अल्पेषु दिनेषु इत्यर्थः स्वयंवरं वरयामि-कारयामि अद्यतया स्वल्पदिवसेष्वेव खलु त्वं ' दिण्णसयंवरा ' दत्तस्वयंवरा-त्रियते इति वरः, कन्यया रवयं वृतः स्वयंवरः, स दत्तः कन्यायाः पित्रादिना यस्यै । दत्तस्वयंवरा भविष्यतीति भावः । 'दत्तस्वयंवरा' इत्तिपदं व्याचक्ष्णाण कथयति-'जंणं तुमं' इत्यादि । यं खलु त्वं स्वयमेव राजानं वा युवराजं वा वरिष्यसि, स खलु तव भर्ता भविष्यति ' इति कृत्वा=इत्यु-क्त्वा ताभिरिष्टाभिर्यावद्=त्राग्भिराश्वसयति, आश्वस्य प्रतिविसर्जयति ॥ सू० १६ ॥

मूलम्-तएणं से दुवए राया दूयं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! वारवइं नयरिं तत्थ णं तुमं कण्हं वासुदेवं समुहविजयपामोक्खे दस दसारे बलदेव-पामुक्खे पंचमहावीरे उग्गसेणपामोक्खे सोलसरायसहस्से पज्जुणपामुक्खाओ अद्धुट्ठाओ कुमारकोडीओ संबपामोक्खाओ

अञ्जयाए सयंवरं विरयामि, अञ्जयाए णं तुमं दिण्ण सयंवरा जण्णं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि से णं तव भत्तारे भविस्सइ त्ति कद्दु ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ, असासित्ता पडिविसज्जेइ) इस लिये हे पुत्रि ! मैं थोड़े ही दिनों में तुम्हारा स्वयंवर करवाने वाला हूँ । तुम इन दिनों में दत्तस्वयंवर हो जाओगी, सो तुम जिस राजाको या युवराज को अपनी इच्छानुसार वरोगी वही तेरा भर्ता बन जायगा । इस तरह कहकर राजा ने अपनी पुत्री को इष्ट आदि विशेषणों वाली वाणी से आश्वसित किया और फिर आश्वसित करके उसे वहाँ से भेज दिया ॥ सू० १६ ॥

एवम पर्यन्त दुःख तथा करशे. (तं णं अहं पुत्ता ! अञ्जयाए सयंवरं विर-यामि, अञ्जयाए णं तुमं दिण्णसयंवरा जण्णं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि से णं तव भत्तारे भविस्सइ, त्ति कद्दु ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ आसासित्ता पडिविसज्जेइ) हे पुत्रि ! थोड़ा दिवसोभां ए हुं तभास माटे स्वयंवर करवाने। छुं. त्थारे तु स्वयंवरभां दत्त स्वयंवर थर्थं वशे. वे राव के सुवरावने तु तारी पसंइगी आपसे तेव तारे पति थशे. आ प्रभावे क्खीने राववे पोतानी पुत्रीने छि वगेरे विशेषण्णोधी युत्ता वथने। वडे आश्वसनी थी आश्वसित करीने तेने त्यांथी विहाय करी. ॥ सूत्र १६ ॥

सष्टि दुइंतसाहस्सीओ वीरसेणपामोक्खाओ इक्कीसं वीरपुरिस-
साहस्सीओ महसेणपामोक्खाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ
अन्ने य वहवे राईसरतलवरमाडंविद्यकोडुंविद्यइब्भसिट्ठिसेणा-
वइसत्थवाहपभिइओ करयलपरिग्गहिंयं दसनहं सिरसावत्तं
अंजलिं मत्थए कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि वद्धावित्ता एवं
वयाहि—एवं खल्ल देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स
रण्णो धूयाए चुल्लणीए देवीए अत्तयाए धट्टुज्जुणकुमारस्स
भगिणीए दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे, भविस्सइ तं णं
तुच्चे देवाणुप्पिया ! दुवयं रायं अणुगिणहेसाणा अकालपरि-
हीणं चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह, तएणं से दूए करयल
जाव कट्टु दुवयस्स रण्णो एयमट्टं पडिसुणेंति पडिसुणित्ता
जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता कोडुंविद्यपुरिसे
सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !
चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टुवेह जाव उवट्टुवेति, उवट्टुवित्ता
तएणं से दूए ण्हाए जाव अलंकार० सरीरे चाउग्घंटं आसरहं
दुरुहइ दुरुहित्ता वहुहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध जाव गहियाऽऽउह पह-
रणेहिं सद्धिं संपरिवुडे कंपिल्लपुरं नयरं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ
पंचालजणवयस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवाग-
च्छइ, सुरट्टाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव बारवइ नयरी तेणेव
उवागच्छइ उवागच्छित्ता बारवइं नयरिं मज्झं मज्झेणं अणुप-
विसइ अणुपविसित्ता जेणेव कणहस्स वासुदेवस्स बाहिरिया

उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता चाउघटं आस-
रहं ठवेइ ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता मणुस्सवग्गु-
रापरिक्खित्ते पायविहारचारेणं जेणेव कणहे वासुदेवे तेणेव
उवागच्छइ उवागच्छित्ता कणहे वासुदेवे समुद्विजयपामुक्खे
य दस दसारे जाव बलवगसाहस्सीओ करयल तं चेव जाव
समोसरह । तएणं से कणहे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए
एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ट जाव हियएतं दूयं सक्कारेइ सम्मा-
णेइ सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ ॥ सू० १७ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं स द्रुपदो राजा दूतं शब्द-
यति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं हे देवानुमिय । द्वारवतीं=द्वारकां
नगरीम्, तत्र खलु त्वं कृष्णं वासुदेवं, समुद्रविजयप्रमुखान् दश दशार्हाव, बलदेव-
प्रमुखान् पञ्च महावीरान्, उग्रसेनप्रमुखान् षोडश राजसहस्राणि, प्रद्युम्नप्रमुखाः
अर्धवतुर्थीः कुमारकोटीः=प्रद्युम्नप्रमुखान् सार्धत्रिकोटिराजकुमारान्, साम्बप्रमुखाः
षष्टिदुर्दान्तसाहस्रीः=साम्बप्रमुखान् षष्टिसहस्रदुर्दान्तान्, वीरसेनप्रमुखान् एक-
त्रिंशतिवीरपुरुषसाहस्रीः=वीरसेनप्रमुखान् एकत्रिंशतिसहस्रवीरपुरुषान्, महासेन

‘ तएणं से दुवए ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं से दुवए राया दूयं सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी
गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया । वारवइं नयरिं—तत्थणं तुमं कणहं वासुदेवं समु-
द्विजय पामोक्खे दसदसारे बलदेव पामोक्खे पंच महावीरे उगसेन पामो-
क्खे सोलसरायसहस्से पज्जुण्णपामोक्खाओ अट्टुट्टाओ कुमारकोडीओ
संबपामोक्खाओ सट्टि दुहंत साहस्सीओ वीरसेन पामोक्खाओ इक्कवीसं

‘ तएणं से दुवए ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं से दुवए राया दूयं सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी—गच्छ णं
तुमं देवाणुप्पिया । वारवइं नयरिं—तत्थणं तुमं कणहं वासुदेवं समुद्र विजयपामोक्खे
दसदसारे बलदेवपामोक्खे पंच महावीरे उगसेनपामोक्खे सोलसरायसहस्से पज्जुण-
पामोक्खाओ अट्टुट्टाओ कुमारकोडीओ संबपामोक्खाओ सट्टि दुहंत साहस्सीओ वीर-
सेन पामोक्खाओ इक्कवीसं वीरपुरिससाहस्सीओ महसेनपामोक्खाओ छप्पनं बलव-

प्रमुखाः पट्टपञ्चाशत् बलवत्साहस्रीः=महासेनप्रमुखान् पट्टपञ्चाशत्सहस्रप्रमितबल-
वतो राज्ञः, अन्यांश्च बहून् राजेश्वरतलवरमाडंभिककौटुम्बिकेभ्यश्चेष्टिसेनापति सार्थ-
वहप्रभृतीन् करतलपरिगृहीतं दशनखं शिर आवर्तमञ्जलिं मस्तके कृत्वा जयेन विज-
येन=जयविजयशब्देन 'वद्वावेहि' वर्धय=अभिनन्दय वर्धयित्वा एव ब्रूहि=हे
देवानुप्रियाः ! एवं खलु काम्पिल्यपुरे नगरे द्रुपस्य राज्ञो दुहितुः=पुत्र्याः, चुलन्या
देव्या आत्मजायाः शृष्टद्युम्नकुमारस्य भगिन्याः, द्रौपद्या राजवरकन्यकाया स्वयं-

वीर पुरिससाहस्सीभो महासेनपानोकम्वाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सी
ओ अन्नेय बह्वे राई सरतलवरमाडंभियकोडुंभियइवमसेष्टिसेणावह
सत्यवाहपभिइओ करयलपरिगृहियं दसनहं सिरसावत्तं अंजलिं
मत्यए कइडु जएणं विजएणं वद्वावेहि वद्वावित्ता एवं वयाहि) इस
द्रुपद् राजाने अपने एक दूत को बुलाया और बुलाकर उससे ऐसा
कहा-देवानुप्रिय ! तुम द्वारका नगरीको जाओ वहा तुम कृष्ण वासुदेव
को, समुद्र विजय प्रमुख दश दशार्हो को, बलदेव प्रमुख पांच महावीरो
को, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजाओं को प्रद्युम्न प्रमुख ३॥)
साठे तीन करोड़ राजकुमारों को ६० हजार दुर्दान्त साम्ब प्रमुखों
को २१ हजार वीरसेन प्रमुख वीरों को ५६ हजार महासेन प्रमुख
बलिष्ठ राजाओं को, तथा और भी अनेक राजेश्वर तलवर, माडंभिक,
कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदिकों को दोनों अपने
हाथों की दशनखों वाली अंजलि बनाकर और उसे मस्तक से घुमाकर
नमस्कार करना तथा "जय विजय" शब्दोच्चारण करते हुए उन्हें
वधाई देना-उनका अभिनन्दन करना। वधाई देकरके फिर उन से ऐसा

गसाहस्सीओ अन्ने य बह्वे राईसरतलवरमाडंभियकोडुंभियइवमसेष्टिसेणावहसत्यवाह
पभिइओ करयल परिगृहियं दसनहं सिरसावत्तं अंजलिं मत्यए कइडु जएणं विज-
एणं वद्वावेहि, वद्वावित्ता एवं वयाहि) त्पारपछी दुपह राबन्ने पोताना ओक
इतने षोलाओने अने षोलावीने तेने कछुं के डे देवानुप्रिय ! तमे द्वारका
नगरीमां नओने। त्यां तमे कृष्णवासुदेवने, अणदेव प्रभुअ पांच महावीरोने,
उग्रसेन प्रभुअ सोण डणर राबन्नेने, प्रद्युम्न प्रभुअ साडा त्रषु करेड राब-
कुमारोने, ६० डणर दुर्दांतसांअ प्रभुओने, २१ डणर वीरसेन प्रभुअ वीरोने,
५६ डणर महासेन प्रभुअ अलिष्ठ राबन्नेने तेमअ अनी पषु अथा राजेश्वर,
तलवर, मांडणिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह वगेरेने पोताना
अने दश नओवाणा डोयोनी अंजलि अतावीने तेने मस्तके भूईने नमस्कार
करने तथा 'जय विजय' शब्दोच्चारण करतां अधाने तमे अखिनंइत

वरो भविष्यति, तत्=तस्मात् खलु यूयं हे देवानुप्रियाः । द्रुपदं राजानमनुगृह्णन्तः
 ' अकालपरिहीणं चैव ' कालविलम्बरहितमेव काष्पित्यपुरे नगरे समयसरत, ततः
 खलु स दूतः करतल० यावत्-अञ्जलिं मस्तके कृत्वा द्रुपदस्य राज्ञ एतमर्थं प्रति-
 शृणोति, प्रतिश्रुत्य यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य कौटुम्बिकपुरापान्
 शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः चतुर्घण्टं=घंटाचतु-
 ष्टययुक्तम् अश्वरथं युक्तमेवोपस्थापयत । यावत्-उपस्थापयन्ति । ततः खलु स दूतः

कहना-(एवं खलु देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरे नगरे दुवयस्स रण्णो धूयाए
 चुल्लणीए देवीए अत्तयाए धट्टज्जुणकुमारस्स भगिणीए दोवईए रायवर
 कण्णए सयंवरे भविस्सइ, तं णं तुम्हे देवाणुप्पिया ! दुवयं रायं अणु
 गिण्हे माणा अकालपरिहीणं चैव कंपिल्लपुरे नगरे समोसरह) हे देवा-
 नुप्रियो ! कांपित्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी देवी की
 आत्मजा, धृष्टद्युम्न कुमार की भगिनी राजवर कन्या द्रौपदी का स्वयंवर
 होनेवाला है, इसलिये हे देवानुप्रियो ! आप लोग द्रुपद राजाके ऊपर
 अनुग्रह करके बहुत ही शीघ्र कांपित्यपुर नगर मे पधारे । (तएणं से
 दूए करयल जाव कट्टु दुवयस्स रण्णो एयमट्टं पडिसुणेंति पडिसुणिन्ता
 जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडुंबियपुरिसे सहा
 वेइ, सहावित्ता एवं वयासी, खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं
 आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह जाव उवट्टवेति) दूतने द्रुपद राजा के इस
 कथन को दोनों हाथ जोड़कर स्वीकार कर लिया । स्वीकार करके फिर

करले. अलिनदित कथां भाह तमे तेभाने आ प्रभाषे विनंती करले (एवं
 खलु देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरे नगरे दुवयस्स रण्णो धूयाए चुल्लणीए देवीए
 अत्तयाए धट्टज्जुणकुमारस्य भगिणीए दोवईए रायवरकण्णए सयंवरे भविस्सइ, तं
 णं तुम्हे देवाणुप्पिया ! दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चैव कंपिल्ल
 पुरे नगरे समोसरह) हे देवानुप्रियो ! कांपित्यपुर नगरमें द्रुपद राजाकी पुत्री
 चुलनी देवीकी आत्मजा, धृष्टद्युम्नकुमारकी भगिनी राजवर कन्या द्रौपदीकी
 स्वयंवर थवाने छे. ओथी हे देवानुप्रियो ! तमे द्रुपद राजा ऊपर दूया करीने
 अत्तरे कांपित्य नगरमें पधारे. (तएणं से दूए करयल जाव कट्टु दुवयस्स
 रण्णो एयमट्टं पडिसुणेंति, पडिसुणिन्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवा
 गच्छित्ता कोडुंबियपुरिसे सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवा
 णुप्पिया ! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह जाव उवट्टवेति) द्रुपद राजाकी
 आज्ञाने इते भने हाथ जोडीने स्वीकारी लीधी. स्वीकार कथां भाह ते न्यां

स्नातः यावत्—सर्वालङ्कारविभूषितशरीरश्चतुर्घण्टमश्वरथं 'दुरुहइ' दूरोहति—आरो-
हति । दुरुह बहुभिः पुरुषैः कीदृशैः पुरुषैरित्याह—' सन्नद्ध जाव गहिया ' इति
अत्र यावच्छब्देनैवं बोध्यम्—सन्नद्धवद्धवर्मियकवर्णहिं, उर्षीलियसरासनपट्टुगेहिं,
पिणद्धगेविज्जगवद्धाविद्धविमलवरचिन्धपट्टेहिं, गहियाऽऽउहपरणेहिं इति । सन्नद्ध-
वद्धवर्मितकवचैः उत्पीडितशरासनपट्टकैः, पिनद्धग्रैवेयकवद्धविद्धविमलवरचिह्न-
पट्टैः गृहीतायुधमहरणैः, सन्नद्धाः सज्जीकृताः, वद्धाः=कशावन्धनेन संबद्धा,
वर्मिताः=भङ्गे परिहिताः कवचा यै स्ते सन्नद्धवद्धवर्मितकवचास्तैः, तथा—उत्पीडि-
तशरासनपट्टकैः उत्पीडितानि=गुणारोपणेन वक्रीकृतानि शरासनपट्टकानि धनुः
प्रकाण्डानि यैस्ते उत्पीडितशरासनपट्टकाः रज्जवारोपणवक्रीकृतधनुर्धारिणस्तैः,

वह जहां अपना घर था वहां आया । वहां आकर उसने कौटुम्बिक
पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे ऐसा कहा हे देवानुप्रियों ! तुम लोग
शीघ्र ही चार घंटों से युक्त अश्वरथ को छोड़े जोतकर यहां ले आओ ।
उन्होंने आज्ञानुसार ऐसा ही किया । वे चार घंटा वाले उस रथ में
छोड़े जोतकर उसे वहां ले आये (तएणं से दृए ण्हाए जाव अलंकार०
सरीरे चाउघंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता वहुहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध जाव
गहियाऽऽउहपरणेहिं सिद्धिः संपरिखुडे कंपिल्लपुरनयरं मज्झं मज्जेणं
निगगच्छइ) इस के बाद दूतने स्नान किया, यावत् अपने शरीर को
समस्त अलंकारों से विभूषित किया । बाद में वह उस चतुर्घट वाले
अश्वरथ पर सवार हो गया । उस के साथ सजाकर अपने शरीर पर
कवच पहिर रखा है ऐसा अनेक पुरुष थे जघापर बाण को आरोपित
करने से वक्री भूत हुआ धनुष जिनके हाथों में हैं ऐसे अनेक धनुर्धारी

पोतातुं घर હતું ત્યાં આવ્યો. ત્યાં આવીને તેણે કૌટુંબિક પુરૂષોને બોલાવ્યા
અને બોલાવીને તેમને કહ્યું કે હે દેવાનુપ્રિય ! તમે સત્વરે ચાર ઘંટીઓવાળો
અશ્વરથ નોતરીને અહીં આવો. કૌટુંબિક પુરૂષોએ તેમને કહ્યું. ચાર ઘંટી-
ઓવાળો અશ્વરથ નોતરીને ત્યાં લઇ આવ્યા. (તણં સે દ્રૂણ્ણાણ જાવ
અલંકાર૦ સરીરે ચાઊઘંટં આસરહં દુરુહइ, દુરુહિત્તા વહુહિં પુરિસેહિં સન્નદ્ધ
જાવ ગહિયાઽઽઊહપરણે હિં સિદ્ધિં સંપરિખુડે કંપિલ્લપુરનયરં મજ્ઝં મજ્જેણં
નિગગચ્છइ) ત્યારબાદ હૈતે સ્નાન કર્યું યાવત્ પોતાના શરીરને બધી બાતના
અલંકારોથી શબ્દગાર્યું. ત્યારપછી તે હૈત ચતુર્ઘંટવાળા અશ્વરથ ઉપર સવાર
થઇ ગયો. તે હૈતની સાથે બખતરથી સુસન્ન થયેલા ઘણા પુરૂષો હતા.
પ્રત્યંચા ઉપર બાણ ચઢાવવાથી વકે થઇ ગયેલા ધનુષો જેમના હાથોમાં છે

तथा-पिनद्वैप्रैवेयकवद्धाविद्धिमलवरचिह्नपट्टैः- पिनद्वानि - परिधृतानि प्रैवेय-
काणि-कण्ठभूषणानि यै स्ते तथा, वद्धः=आरोपितः संयोजितः आविद्धः=मस्तके-
परिधृतः विमलः=स्वच्छः वरः चिह्नपट्टः-स्वपक्षबोधकचिह्न : यैस्ते तथा,
ततो द्विपदकर्मधारयः, तथा-गृहीतायुधप्रहरणैः=आयुधानि अस्त्राणि, प्रहरणानि-
शस्त्राणि गृहीतानि यैस्ते गृहीतायुधप्रहरणा स्तैः, सार्धं संपरिधृतः काम्पिल्यपुरं
नगरं मध्यमध्येन मध्यमार्गेण निर्गच्छति, पञ्चालजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव
' देसपपंते ' देशप्रान्तं-देशसीमा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य 'सुरद्वाराजणवयस्स'
सौराष्ट्रजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव द्वारवती नगरी तत्रैवोपागच्छति उपागत्य
द्वारवती नगरीं मध्यमध्येन अनुपविशाति, अनुपविश्य यत्रैव कृष्णस्य वासुदेवस्य

पुरुष थे, जिन्होंने नले में आभूषणों को पहिरकर रखे हैं और मस्तक के
ऊपर स्वच्छ, स्वपक्षबोधक चिह्न धारण किया है ऐसे अनेक व्यक्ति
थे। तथा आयुध एवं प्रहरणों को लेकर अनेक सैनिक जन इसके
आसपास हो कर चल रहे थे। सो वह दूत इन सब के साथ २ उस
काम्पिल्यपुर नगर के बीचोंबीच से होकर निकला। (पंचालजनपदस्य
मज्झं मज्झेणं जेणेव देसपपंते तेणेव उवागच्छइ-सुरद्वारा जणवयस्स मज्झं
मज्झेणं जेणेव वारवइ नगरी तेणेव उवागच्छइ) चलते २ वह पंचाल
जनपदके बीचोंबीच से होता हुआ जहाँ पर अपने देशकी सीमा का
अन्त था वहाँ आया। वहाँ आकर वह सौराष्ट्र देशके बीचसे निक
लता हुआ जहाँ द्वारवती नगरी थी वहाँ आया-(उवागच्छित्ता वार-
वइ नगरीं मज्झं मज्झेणं अनुपविसिइ, अनुपविसित्ता जेणेव कण्हस्स

येवा धण्णा धनुर्धरे तेनी साथे इत्ता, जेणेवा जणाभां आभूषणेषु पडरेकां
अने मस्तक उपर स्वच्छ स्वपक्ष बोधक चिह्न पट्टे भांधी राणेवा येवा पणु
अनेक पुग्घे तेनी साथे इत्ता. आयुध अने प्रहरणेषु ते उच्यन्ते पणु धण्णा सैनिके
तेनी अने आभूषणे आदी रक्षा इत्ता आ रीते ते इत्त तेणे मधानी साथे
काम्पिल्यपुर नगरनी वरुत्थे थर्धने नीकण्ठे. (पंचाल जनपदस्य मज्झं मज्झेणं
जेणेव देसपपंते तेणेव उवागच्छइ सुरद्वारा जणवयस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव वारवइ नगरी
तेणेव उवागच्छइ) आभ पोतानी यात्रा पूरी करीने ते इत्त पंचाल जनपदनी
वरुत्थेवत्थे न्यां पोताना देशनी इदं पूरी थती इत्ती त्यां आण्थे. त्यां आवीने
ते सौराष्ट्र देशनी वरुत्थे थर्धने न्यां द्वारवती नगरी इत्ती त्यां आण्थे. (उवाग-
च्छित्ता वारवइ, नगरिं मज्झं मज्झेणं, अनुपविसिइ, अनुपविसित्ता जेणेव कण्हस्स

वाहिरुपरधानशाला-आस्थानमण्डपः, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चातुर्घण्टमध्वरथं स्थापयति, स्थापयित्वा 'रहाओ' रथात् 'पञ्चोरुहह' प्रत्यवरोहति-प्रत्यवतरति, प्रत्यवत्स्य 'समुद्रसवगुरापरिक्लिप्ते' मनुष्यवागुरापरिक्षिप्ते=मनुष्यसमूहपरिवृतः, स द्रुतः पादविहारचारेण=पादाभ्यां गमनेन यत्रैव कृष्णवासुदेवस्तत्रैवोपागच्छति, उपगत्य कृष्णं वासुदेवं समुद्रविजयप्रसूतान्श्च दमदगार्हान् यावत् बलवत्साहसीः, कस्तलपरिशुद्धीतदशनखं शिरःआवर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्- 'तं चेव' तदेव-अत्र पूर्वोक्तमेव वर्णनं बोध्यम् यावत्-समवसरत

वासुदेवस्स वाहिरिया उवट्टाण साला तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता चाउघंटं आसरहं ठवेह, ठवित्ता रहाओ पञ्चोरुहह, पञ्चोरुहित्ता मणुसवगुरापरिक्लिप्ते पायविहारचारेण जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छह) वहाँ आकर छागवती नगरी में चौचौबीच के मार्ग से होता हुआ प्रविष्ट हो कर वह जहाँ कृष्ण वासुदेव की बाहिर में उपस्थानशाला-सभामंडप था वहाँ गया । वहाँ पहुँचकर उसने अपने चार घंटावाले अश्वरथ को खड़ा कर दिया । गेह दिया-उसके रकते ही वह उससे नीचे उतरा । उतर कर वह मनुष्योंके समूहसे परिक्षिप्त (युक्त) हो कर पैदल ही जहाँ कृष्ण वासुदेव थे वहाँ गया । (उवागच्छित्ता कण्हं वासुदेवममुहविजयपामुक्खे य दस दसारे जाव बलवगसाहसीओ करयल तं चेव जाव समोसरह) वहाँ जा करके उसने कृष्ण वासुदेव को समुद्रविजय प्रसूत दश दशार्होंको यावत् महासेन प्रसूत५६, हजार बलिष्ठ राजाओंको दोनों हाथों की अञ्जलिकर और उसे मस्तक पर रखकर

देवस्स वाहिरिया उवाट्टणनाला तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता चाउघंटं आसरहं ठवेह, ठवित्ता रहाओ पञ्चोरुहह पञ्चोरुहित्ता मणुसवगुरापरिक्लिप्ते पायविहारचारेण जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छह) त्यां आवीने ते द्वाशपती नगरीना मध्यभागे थधने नगरभां प्रविष्ट थये अने त्यारपछी ते ज्यां कृष्णु-वासुदेवनी आधा उपस्थानशाणा-दीवाने आस-(सभा मंडप) हती त्यां गये. त्यां पळोव्हीने तेजे पोताना आर घंटडीओवाणा रथने जितो रापथे अने पोते नीचे उतर्यो. उतर्यो पछी ते पोताना नोकरी-सेवकनी साथे ज्यां कृष्णु-वासुदेव हता त्यां गये. (उवागच्छित्ता कण्हं वासुदेवसमुहविजयपामुक्खे य दस दसारे जाव बलवगसाहसीओ करयल तं चेव जाव समोसरह) त्यां अधने तेजे कृष्णु-वासुदेवने समुद्र विजय प्रसूत दशाडोने यावत् महासेन प्रसूत ५६ हजार बलिष्ठ राजाओने अने छायनी अञ्जलि अतावीने तेने

इति पर्यन्तम्, अयमर्थः—काम्पिल्यपुरनगरे द्रुपदस्य राज्ञः पुत्र्या द्रौपद्याः स्वयंवरो भविष्यति, तस्माद् द्रुप्यं द्रुपदं राजानमनुग्रहन्तः कालविलम्बरहितं काम्पिल्यपुरे नगरे समागच्छन्तैति स दूतः प्रोक्तवान्' इति ।

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवस्तस्य दूतस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चयं हृष्टतुष्टः यावत्—हर्षवशेन विसर्पद्दहृदयस्तं दूतं सत्कारयति तथा संमानयति, सत्कार्यं समान्य प्रतिविसर्जयति ॥ सू०१७ ॥

मूलम्—तएणं से कण्हे वासुदेवे कोडुंविद्यपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि, तएणं से कोडुंविद्यपुरिसे कर यल जाव कणहस्स वासुदेवस्स एयमट्टं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता

नमस्कार किया । यहाँ पर 'एवं खलु देवाणुप्पिया,' से लेकर समोसरह "तकका पूर्वोक्त पाठ इसके द्वारा कहा गया लगा लेना चाहिये—जिसका तात्पर्य यह है कि काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है सो आपलोग द्रुपद राजा के ऊपर कृपा कर के उसमें शीघ्र पधारें । इस प्रकार (तएणं से कण्हे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्ट जाव हियए तं दूयं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) कृष्ण वासुदेव ने उस दूत के मुखसे जब इस समाचार को सुना—तो वे सुनकर और उसे हृदयमें धारण कर बहुत ही अधिक हर्षित एवं संतुष्ट हुए । दूतका उन्होंने सत्कार किया, सम्मान किया । बादमें उसे वहाँ से विसर्जित कर दिया ॥सू०१७॥

भस्तके भूझीने नमस्कार कर्था. अर्धी ' एवं खलु देवाणुप्पिया ' थी समोसरह ' सुधीने। पाठ इत वडे कडेवाभां आवेदी छे जेभ समलु लेवुं जेधजे तेनी भतलभ जे छे के काम्पिल्यपुर नगरभां द्रुपद राजानी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवाने छे तो आप सौ द्रुपद राजा ऊपर भडेरभाणी करीने तेभां सात्वरे पधारो. आ रीते (तएणं से कण्हे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्टं सोचा निसम्म हट्ट जाव हियए तं दूयं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) कृष्ण-वासुदेवे इतना सुधथी आ नतना सभाथारे सांलन्था थारे सांलणीने अने तेज्जेने भरोभर हृदयभां धारण करीने अत्यंत हर्षित तेभज संतुष्ट थर्धने तेभजे इतने। सत्कार तेभज सम्मान कथुं, थारपथी तेभजे इतने विहाय कथे. ॥ सूत्र १७ ॥

जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छित्ता सामुदाइयं भेरिं महया महया सद्देणं तालेइ
तएणं ताए सामुदाइयाए भेरीए तालियाए समाणीए समु-
हविजयपामोक्खा दस दसारा जाव महसेणपामुक्खाओ
छप्पणं बलवगसाहस्सीओ पहाया विभूसिया जहा विभव-
इड्डिसक्कारसमुदएणं अप्पेगइया जाव पायविहारचारेणं
जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता कर-
यल जाव कण्हे वासुदेवे जएणं विजएणं वच्चावेंति, तएणं
से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वया-
सी-खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! अभिसेक्कं हत्थिरयणं
पडिकप्पेह हयगय जाव पच्चपिणंति, तएणंसे कण्हे वासुदेवे
जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समुत्तजा-
लाकुलाभिरामे जाव अंजणगिरिकूडसन्निभं गयवइं नरवई
दुरूढे, तएणं से कण्हे वासुदेवे समुहविजयपामुक्खेहिंदसहिं
दसारेहिं जाव अणंगसेणापामुक्खेहिं अणेगाहिं गणियासाह-
स्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सच्चिदीए जाव रवेणं चारवइनयरिं
मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता सुरट्टाजणवयस्स मज्झं
मज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
पंचालजणवयस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे
तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० १८ ॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिक-
पुरुषं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय । सभायां
सुधर्मायां ‘सामुदाइयं’ सामुदायिकिं भेरिं ताडय, ततः खलु स कौटुम्बिक-
पुरुषः करतल० यावद्—मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा यावत् कृष्णस्य वासुदेवस्यैतमर्थं
प्रतिशृणोति; प्रतिश्रुत्य यत्रैव सभायां सुधर्मायां ‘सामुदाइया’ सामुदायिकी
भेरी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सामुदायिकीं भेरीं महता २ शब्देन ताडयति,
येन महाशब्दो भवति, तथा भेरीं ताडयति स्मे’ त्यर्थः, ततस्तदनन्तरं खलु तस्यां

‘तएणं से कण्हे वासुदेवे’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं इसके बाद (से कण्हे वासुदेवे) उन कृष्ण वासुदेवने
(कौटुम्बियपुरिसं सहावेइ) अपने कौटुम्बिक पुरुष को बुलाया, बुला-
कर (एवं बयासी) उनसे ऐसा कहा—(गच्छह णं तुमं देवाणुप्रिया ।
सभाए सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि) हे देवानुप्रिय तुम सुधर्मा
सभामें जाओ और वहां जाकर सामुदाय की भेरी को बजाओ (तएणं
से कौटुम्बिय पुरिसे करयल जाव कण्हस्स वासुदेवस्स एयमइं पडि
सुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव (सभाए सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सामुदाइयं भेरिं महया २ सहेंणं तालेइ) इस
प्रकार की कृष्ण वासुदेव की आज्ञा को उस पुरुष ने बड़े विनय के साथ
अपने दोनों हाथों को मस्तक पर रखकर स्वीकार कर लिया—और
स्वीकार करके फिर वह सुधर्मा सभा में जहां वह सामुदायिकी भेरी थी
वहां आया । वहां आकर उसने उस सामुदायिकी भेरी को इसतरह से

‘तएणं से कण्हे वासुदेवे’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपणी (से कण्हे वासुदेवे) ते कृष्ण-वासुदेवे (कौटुम्बिय
पुरिसं सहावेइ) पोताना कौटुम्बिक पुरुषाने गोदाव्या अने गोदाव्याने (एवं
बयासी) तेभने आ प्रभाणु कळुं के—(गच्छह णं तुमं देवाणुप्रिया । सभाए
सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि) हे देवानुप्रिय । तमे सुधर्मा सभामां नये
अने त्यां नधने सामुदायिकी भेरी वगाडे. (तएणं से कौटुम्बियपुरिसे कर-
यल जाव कण्हस्स वासुदेवस्स एयमइं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता जेणेव सभाए
सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सामुदाइयं भेरिं महया २
सहेंणं तालेइ) आ नतनी कृष्ण-वासुदेवनी आज्ञाने ते पुरुषे भूमन नध-
पणु अने छाथेने मस्तके सूझीने स्वीकारी वीधी, स्वीकार कथां पछी ते त्यांथी
अथां सुधर्मा सभामां सामुदायिकी भेरी छती त्यां नधने तेणु मोटे अवाव
थाय तेम ते सामुदायिकी भेरीने वगाडी. (तएणं ताए सामुदाइयाए भेरीए

सामुदायिक्यां भेर्यां ताडितायां सत्यां समुद्रविजयप्रमुखा दश दशार्हा यावत्-
महासेन प्रमुखाःपट्टपञ्चाशद्बलवत्साहस्रयाः=पट्टपञ्चाशत्-सहस्रप्रमिता बलवन्तो
राजानः स्नाता यावद्-सर्वालंकारविभूषिता यथाविभवर्द्धिसत्कारसमुद्रयेन
'अप्येगइया' अप्येके-यावद्=केचिद् हयारूढा=अश्वारूढाः केचिद् गजारूढाः,
केचिद् रथारूढाः केचिद् पादविहारचारेण यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपाग-
च्छति, उपागत्य करतल० यावत् कृष्णं वासुदेवं जयेन विजयेन=जयविजय-
शब्देन वर्धयन्ति । ततः खलु कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिकपुररुपान शब्दयति, शब्द-
यित्वा एवमवादीन्-भो देवानुमियाः ! क्षिप्रमेव 'अभिसेककं' आभिषेक्यं भज-

बहे बल से बजायो कि जिससे उससे बड़ी भारी आवाज निकली
(तएणं ताए सामुदाइयाए भेरीए तालियाए समाणीए समुद्रविजय
पामोकखा दस दूसारा जाव महासेण पामुक्खाओ छप्पणं बलवगसाह-
स्सीओ पहाया जाव विभूसिया जहा विभव इड्ढी सक्कारसमुदएणं
अत्येगइया जाव पायविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवाग-
च्छति) इस तरह उस सामुद्रिकी भेरी के बजने पर समुद्रविजय आदि
दश दशार्हों ने यावत् ५६ हजार महासेन प्रमुख पलिष्ठ राजाओं ने
स्नान किया । यावत् समस्त अलंकारों से विभूषित होकर एवं सबके
सब अपने विभव ऋद्धि और सत्कार के अनुसार जहाँ कृष्ण वासुदेव
थे वहाँ आये । इनमें कितनेक घोड़ों पर कितनेक हाथियों पर कितनेक
रथों पर बैठकर आये और कितनेक पैदल ही चलकर आये (उवाग-
च्छित्ता करयल जाव कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं बद्धावेति, तएणं से
कण्हे वासुदेवे कोड्डुंविचय पुरिसे सहावेइ सहवित्ता एवं वयासी, खिप्पामेव

तालियाए समाणीए समुद्रविजयपामोकखा दस दूसारा जाव महासेण पामु-
प्लाओ छप्पणं बलवगसाहस्सीओ पहाया जाव विभूसिया जहा विभव इड्ढी
सक्कारसमुदएणं अप्येगइया जाव पायविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव
उवागच्छति) आ रीते ते सामुद्रिकी भेरी, वगाडवाभां आनी त्यारे समुद्र विजय
वगेरे दश दशाड्ढीये यावत् ५६ हजार महासेन प्रमुख अलिष्ठ राजाओये
स्नान क्युं. यावत् तेओ सवें समस्त अलंकारोथी सुसज्ज थधने पोताना
विभव अने सत्कारनी साथे न्यां कृष्ण-वासुदेव उता त्या गया. आभां डेटलाक
घोडाओ ७५२, डेटलाक हाथीओ ७५२, डेटलाक रथे ७५२ सवार थधने त्यां
५६०ओ उता तो डेटलाक पगे आलीने ७ कृष्ण-वासुदेवनी पासे डालर थया
उता. (उवागच्छित्ता करयल जाव कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं बद्धावेति
तएणं से कण्हे वासुदेवे कोड्डुंविचयपुरिसे सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी खिप्पा-

रत्नं=मम मुख्यहरितनं परिकल्पयत-सज्जीकुरुत, हयगजरथपदातिरूप चतुरङ्गवलं सज्जीकुरुत, एतां ममाज्ञां प्रत्यर्पयत, इति ततस्ते कौटुम्बिकपुरुषाः ' तथाऽस्तु ' इत्युक्त्वा तदाज्ञां स्वीकृत्य सर्वं संपाद्य वाहनं बलं च सर्वं सज्जीकृतमस्माभिरिति यावत् प्रत्यर्पयन्ति=निवेदयन्ति स्म । ततः खलु स कृष्णो वायुदेवो यत्रैव सज्जन-गृहं तत्रैवोपानच्छति, सज्जनगृहं कीदृशमित्याह-' सद्युक्तजालाकुलाभिरामे ' सद्युक्तजालाकुलाभिरामं युक्ताभिः सहितानि जालानि गवाक्षास्त्वेराङ्गलं युक्तमतएवाभिरामं सुन्दरम्, उपागत्य स तत्र स्नानं कृत्वा यावत्-सर्वालंकारविभूषितः, अञ्जनगिरिकूटमनिमयम्=उच्चतरं श्यामवर्णमित्यर्थः, गजपतिं=इतिष्ठु मुख्यं हस्तिनं नरपतिः=श्री कृष्णवासुदेवः ' दुरुढे ' दूरुढः=समारूढः, ततः खलु स कृष्णो

भो देवाणुपिया ! अभिसेकं हस्तिरयणं पडिकप्पेह, हयगय जाव पच्विपणनि) वहां आकर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कृष्ण वासुदेव को नमस्कार करते हुए जय विजय शब्दों द्वारा वधाई दी-इसके बाद उन कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया-बुलाकर उससे इस प्रकार कहा-भो देवानुप्रियो ! तुमलोग शीघ्र ही मेरे मुख्य हाथी को सजाओ-तथा-हय, गज, रथ और पदातिरूप चतुरंग युक्त सेना को भी सजाकर तैयार करो । पीछे हम तो इसकी खबर दो । इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषों ने-" तथास्तु " कहकर उनकी आज्ञा को स्वीकार लिया और स्वीकार करके बल और वाहन सब हमने सज्जित कर दिये हैं इस प्रकार की खबर उन्हें पीछे कर दी । (तपणं से कहे वासुदेवे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छता समुत्तजालाकुलाभिरामे जाव अंजणगिरि कूडसन्निभं गयवइं नरवईं दुरुढे) इसके पश्चात् वे

मेव भो देवाणुपिया ! अभिसेकं हस्तिरयणं पडिकप्पेह, हयगयजाव पच्विपणनि) त्यां ज्छने तेज्जेजे जने छाय ज्छीने ' न्यविजय ' शपेथी कृष्ण-वासुदेवने नमस्कार करतां अस्तिनं हित कयां । त्यारपछी कृष्ण-वासुदेवे कौटुम्बिक पुरुषोने मोलाव्या अने मोलावीने तेज्जेने आ प्रभाणे क्खुं के छे देवाणुप्रियो ! सवदे तमे भारा सुभ्य छायीने तेमज्ज णील पणु वेडा, छायी, रथ अने पायदलनी अतुरगिणी सेनाने सुसज्ज करे अने सेना सुसज्ज थर्छ न्य त्यारे अमने भयर आपो । त्यारपछी कौटुम्बिक पुरुषोने ' तथास्तु ' क्छीने तेमनी आज्ञा स्वीकारी वीधी अने स्वीकारीने तेज्जे मोताना काममां परोवाछ गयां । न्यारे काम थर्छ गयुं त्यारे तेज्जेने " सेना अने वाहन तैयार छे " आ जतनी भयर आपी । (तपणं से कहे वासुदेवे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छता समुत्तजालाकुलाभिरामे जाव अंजणगिरिकूडसन्निभं गयवइं नरवईं दुरुढे)

वासुदेवः समुद्रविजयप्रमुखैर्दशार्है र्यावत् अनङ्गसेनाप्रमुखाम्भिरनेकामिर्गणिका साहस्रीभिः सार्धं संपरिवृतः सर्वद्वर्चा—छत्रादिराजचिह्नरूपया यावत्—शङ्खपण-पटहमेर्यादिरवेण द्वारवती नगर्या मध्यमध्येन=निर्गच्छति, निर्गत्य सौराष्ट्रजन-पदस्य मध्यमध्येन यत्रैव देशप्रान्तं—देशसीमा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पञ्चा-लजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव काञ्चिप्लयपुरं नगरं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय= गन्तुं प्रवृत्तः ॥ सू०१८ ॥

कृष्ण वासुदेव जहां स्नान घर था वहां गये—वहां जाकर उन्होंने मुक्ताओं सहित गवाक्षों से सुन्दर उस स्नान घर में स्नान किया—स्नान करके फिर सर्व अलंकारों से विभूषित होकर वे नरपति अंजन गिरि के शिखर जैसे—विशाल कृष्णवर्ण वाले गजपति पर आरूढ़ हो गये । (तएणं से कण्ठे वासुदेवे समुद्रविजयपामोक्खेहिं दसहिं दसारेहिं जाव अणंग सेणा पामुक्खेहिं अणेगाहिं गणिया साहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्व-ड्डीए जाव रवेणं वारवइनयरिं मच्चं मज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छिन्ता सुरट्ठा जणवयस्स मच्चं मज्जेणं जेणेव देसपंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिन्ता पंचाल जणवयस्स मच्चं मज्जेणं जेणेव कं पिन्दपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए) आरूढ़ होकर वे कृष्ण वासुदेव समुद्र विजय आदि दश दशार्हों यावत् अंगसेना प्रमुख हजारों गणिकाओं के साथ २ छत्र आदि राज चिह्नरूप विभूति से युक्त होकर शंख, पणव, पटह, भेरी आदि वाजों की तुमुल ध्वनि पूर्वक द्वारावती नगरी के बीच से

त्यारपछी ते कृष्ण—वासुदेव जहां स्नानघर હતું ત્યાં ગયા. ત્યાં જઈને તેમણે મોતી જડેલા ગવાક્ષોથી રમણીય લાગતા સ્નानघरમાં સ્नान કર્યું અને ત્યાર પછી બધા અલંકારોથી વિભૂષિત થઈને—નરપતિ અંजनगिरिના શિખર જેવા વિશાલ કृष्ण વર્ણવાળા ગજપતિ ઉપર સારા થઈ ગયા. (તएणं से कण्ठे वासुदेवे समुद्रविजयपामोक्खेहिं दसहिं दसारेहिं जाव अणंगसेणा पामुक्खेहिं अणेगाहिं गणियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्डीए जाव रवेणं वारवइ नयरिं मच्चं मज्जेणं निग्गच्छइ निग्गच्छिन्ता सुरट्ठा जणवयस्स मच्चं मज्जेणं जेणेव देसपंते तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिन्ता पंचालजणवयस्स मच्चं मज्जेणं जेणेव कं पिन्दपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए) સારા થઈ ને તેઓ સમુદ્ર વિજય વગેરે દશ દશાર્હો યાવત્ અંગસેના પ્રમુખ હબરો ગણિકાઓની સાથે છત્ર વિગેરે રાજચિહ્ન રૂપ વિભૂતિથી યુક્ત થઈને શંખ, પણવ, પટહ, ભેરી વગેરે તુમુલ ધ્વનિ સ્થાને દારવતી નગરીની વચ્ચે થઈને પસાર થયા. ત્યાંથી પસાર

मूल्य-तएणं से दुवए राया दोच्चं दूयं सद्वावेइ सद्वावित्ता एवं वयासी-गच्छ णं तुमं देवाणुपिया ! हत्थिणाउरं नयरं तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं जुहिठिल्लं भीमसेणं अज्जुणं नउलं महदेवं दुज्जोहणं भाइसयसमग्गं गंगेयं विदुरं दोणं जयदहं सउणी किवं आसत्थामं करयल जाव कट्टु तहेव समोसरह, तएणं से दूए एवं वयासी जहा वासुदेवे नवरं भेरी नत्थि जाव जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाएर । एएणेव कमेणं तच्चं दूयं चंपानयरिं तत्थ णं तुमं कणहं अंगरायं सेहं नंदिरायं करयल तहेव जाव समोसरह । चउत्थं दूयं सुत्तिमहं नयरिं तत्थ णं तुमं सिसुपालं दमघोससुयं पंचभाइसयसंपरिवुडं करयल तहेव जाव समोसरह । पंचमगं दूयं हत्थसीसनयरं तत्थ णं तुमं दमदंतं रायं करयल तहेव जाव समोसरह । छट्ठं दूयं महुरं नयरिं तत्थ णं तुमं धरं रायं करयल जाव समोसरह । सत्तमं दूयं रायगिहं नयरं तत्थ णं तुमं सहदेवं जरात्तिधुसुयं करयल जाव समोसरह । अट्ठमं दूयं कोडिणं नयरं तत्थ णं तुमं रुप्पिं भेसगसुयं करयल तहेव जाव समोसरह । नवमं दूयं विराडनयरं तत्थ णं तुमं कीयगं भाउसयसमग्गं करयल जाव समोसरह । दसमं दूयं अवसेसेसु य गामागार

होते हुए निकले । निकलकर वे सौराष्ट्र देश के बीचों बीच से चलकर वहाँ आये जहाँ देश की सीमा थी । उस सीमा पर आकर के फिर वे पांचाल जनपद के मध्य से होते हुए जहाँ कांपिल्य पुर नगर था उस और चल दिधे । सू० १८

थधने तेज्यो सौराष्ट्र देशनी वच्चे थधने पोताना देशनी छट्ठं सुधी पडोत्था-
त्यांथी तेज्यो पांचाल जनपदनी वच्चे थधने ज्यां कांपिल्यपुर नगर छट्ठं ते
तरश्च रवाना थथा. ॥ सूत्र १८ ॥

नगरेसु अणेगाइं रायसहस्साइं जाव समोसरह । तएणं से दूए तहेव निग्गच्छइ जेणेव गासागर जाव समोसरह । तएणं ताइं अणेगाइं रायसहस्साइं तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुं तं दूयं सक्कारोति सक्कारित्ता सम्माणोति सम्माणिन्ता पडिविसज्जिति, तएणं ते वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्सा पत्तेयं२ पहाया सन्नद्धहृत्थिखंधवरगया ह्यगयरह० महया भडचडगररहपहकर० सएहितो२ नगरोहितो अभिनिग्गच्छंति२ जेणेव पंचाले जणवए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० १९ ॥

टीका—‘ तएणं से’ इत्यादि । ततः खलु स द्रुपदो राजा द्वितीयं दूतं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छ खलु तं पाण्डुं राजं सपुत्रकं=पुत्रैः सहितं

‘ तएणं से दुवए राया ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इस के बाद (से दुवए राया) उस द्रुपद राजाने (दोचं वृथं सहावेइ) अपने दूसरे दूतको बुलाया (सहावित्ता एवं वयासी) बुलाकर उससे ऐसा कहा-गच्छणं तुमं देवाणुप्पिया हृत्थिणाउरं नयरं तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं जुहिद्वित्तं भीमसेणं अज्जुणं नवलं सहदेवं दुज्जोहणं भाइसयसमग्गं गंगेयं विदुरं दोणं जयइहं सउणीकिवं आसत्थामं करयल जाव कइइ तहेव समोसरह) बुलाकर उससे ऐसा कहा हे देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ-वहां जाकर तुम पुत्र

‘ तएणं से दुवए राया ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपछी (से दुवए राया) ते द्रुपद राजाने (दोचं वृथं सहावेइ) पीताना भील इतने भोलाब्धे (सहावित्ता एवं वयासी) भोलाब्धिने तेने आ प्रभावे कहुं के (गच्छणं तुमं देवाणुप्पिया हृत्थिणाउरं नयरं, तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं जुहिद्वित्तं भीमसेणं अज्जुणं नवलं सहदेवं दुज्जोहणं भाइसयसमग्गं गंगेयं विदुरं दोणं जयइहं सउणी किवं आसत्थामं करयल जाव कइइ तहेव समोसरह) हे देवानुप्रिय ! तमे हस्तिनापुर नगरभां गयो

युधिष्ठिरं भीमसेनम् अर्जुनं नकुलं सहदेवं दुर्योधनं भ्रातृगतसमग्रं=शतभ्रातृभिः सहितं, गाङ्गेयं=भीष्मं, विदुरं द्रोणं जयद्रथं शकुनिं ' किवं ' कृपम्=कृपाचार्यं, अश्वत्थामानं करतल० यावत् मस्तकेऽङ्गुलिं कृत्वा, तथैव समवसरत यथा पूर्वमुक्तं तथैवात्र ' समवसरत ' इतिपर्यन्तं बोध्यम् अयं भावः—जयविजयशब्देन वर्धयित्वा एवं ब्रूहि—काम्पिल्यपुरे नगरे द्रुपदस्य राज्ञः पुत्र्या द्रौपद्याः स्वयंवरो भविष्यति तस्माद् खलु हे देवानुप्रियाः ! यूयं द्रुपदं राजानमनुगृह्णतः कालविलम्बरहितमेव काम्पिल्यपुरे नगरे समवसरत । ततः स दूतो द्रुपदस्य वचनं स्वीकृत्य हस्तिनापुरं गत्वा पाण्डुराजादिकमेवमवादीत—' काम्पिल्यपुरे द्रौपद्याः स्वयंवरो भविष्यति तत्र शीघ्रमागच्छत ' इति ततोऽसौ दूतः पाण्डुराजादिना सम्मानितो विसर्जितश्च ' जहा वासुदेवे ' यथा—वासुदेवः कृष्णस्तद्वदनापि विज्ञेयम्—' नवर ' विशेषरत्न ' भेरी नत्थि ' भेरीनास्ति, कृष्णवासुदेव इव पाण्डुराजादिः स्नातः सर्वालंकार विभूषितो गजारूढश्चतुरङ्गसेनया संपरिहृतः सर्वदुर्घा युक्तो यावत् द्रौपद्यैव काम्पिल्यपुरं नगरं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय=गन्तुं प्रवृत्तः ।

सहित पांडुराज को, युधिष्ठिर को, भीमसेन को, अर्जुन को नकुल को, सहदेव को, सौभाईयों सहित दुर्योधन को, गांगेय भीष्म पितामह को विदुर को, द्रोण को जयद्रथ को, शकुनि को, कृपाचार्य को, और द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को पहिले दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे भस्तक पर रखकर नमस्कार करना उन सबको जय विजय आदि शब्दों से वधा देना । वधाकर फिर इस प्रकार कहना कि काम्पिल्य पुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर है, इस लिये हे देवानुप्रियों ! आप सब द्रुपद राजा के ऊपर कृपा करके बिना किसी विलंब के शीघ्रही काम्पिल्यपुर नगर में पधारें। (तपणं से द्रुप एवं वयासी—जहा वासुदेवे नवरं भेरी नत्थि, जाव जेणेव काम्पिल्यपुरे

अने त्यां बंधने तसे पुत्रो सहित पांडुराजने, युधिष्ठिरने, भीमसेनने, अर्जुनने, नकुलने, सहदेवने, सो भाईयो सहित दुर्योधनने, गांगेय भीष्म पितामहने, विदुरने, द्रोणने, जयद्रथने, शकुनिने, कृपाचार्यने अने द्रोणाचार्यना पुत्र अश्वत्थामाने सो पहिलां करणद्ध थधने—अंजलि बनानेने तेने भस्तके मूझीने नमस्कार करले अने ' जय विजय ' शब्दोथी तेज्याने अलिखित करले. त्यांपधी तसे तेभने आ प्रभाषे विनंती करले के काम्पिल्यपुर नगरमां द्रुपद राजानी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवानो छे अथी छे देवानुप्रियो ! आप सो द्रुपद राजा ऊपर भडेरथानी करीने सत्वर काम्पिल्य नगरमां पधारो. (तपणं से द्रुप एवं वयासी—जहा वासुदेवे नवरं भेरी नत्थि जाव जेणेव काम्पिल्य-

नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए २ एएणेव कमेणं तच्चं दूयं चंपानयरिं
तत्थ णं तुमं कण्णं अंगरायं सेल्लं नंदिरायं करयल तहेव जाव समोसरह
चउत्थं दूयं सुत्तिमइं नयरिं, तत्थ णं तुमं सिखुपालं दमघोसमुयं पंच-
भाइसयसंपरिबुडं करयल तहेव जाव समोसरह) इस के बाद दूत
अपने राजा की आज्ञा प्रमाण कर वहाँ से हस्तिनापुर को चला गया ।
वहाँ पहुँच कर उसने पांडुराजा आदि से बड़े विनय पूर्वक इस प्रकार
कहा—कांपिल्यपुर में द्रौपदी का स्वयंवर होगा—सो आप सब कृपाकर
शीघ्रतिशीघ्र वहाँ पधारें । इस तरहके समाचार देकर वह दूत पांडुराजा
आदि से सन्मानित होकर वहाँ से वापिस हो गया । पांडुराज आदि
स्नान कर सर्वालंकारों से विभूषित होकर गजारूढ हो, चतुरंगिणी
सेना के साथ अपनी ऋद्धि आदि के अनुसार यावत् जहाँ कापिल्यपुर
नगर था उस ओर चल दिये । इस तरह कृष्ण वासुदेव की तरह यहाँ
पर सब पाठ लगा लेना चाहिये । उस पाठ से इस में विशेषता केवल
इतनी है कि वे सब जब द्वारावती नगरी से कांपिल्यपुर नगर को जाने
के लिये निकले तो उनके साथ बेरी थी—यहाँ वह नहीं है । इसी क्रम
से कृपद ने नीसरे दूत को बुलाया—बुलाकर उससे भी इसी प्रकार से

पुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए २ एएणेव कमेणं तच्चं दूयं चंपानयरिं
तत्थ णं तुमं कण्णं अंगरायं सेल्लं नंदिरायं करयल तहेव जाव समोसरह चउत्थं
दूयं सुत्तिमइं नयरिं तत्थ णं तुमं सिखुपालं दमघोसमुयं पंचभाइसयसंप-
रिबुडं करयल तहेव जाव समोसरह) त्पारपथी इत पीताना रान्नी आरा।
प्रभाळु त्यांथी हस्तिनापुर तरक्ष रवाना थध गथे। त्यां पछोन्थीने तेणु पांडु
रान् वगेरे रान्नेने नअपणु आ रीते विनति करी डे—कांपिल्यपुरमां
द्रौपदीना स्वयंवर थशे तो आप सी कृपा करीने सत्वेरे त्यां पधारो. आ
रीते सभाचारो आपीने ते इत पांडुराज वगेरेथी सन्मान पानीने त्यांथी
पाछे करीं. पांडुराज वगेरे अघाओ पणु स्नान वगेरेथी परचारीने तेमज सर्वा-
लंकारोथी सुसज्ज थधने हाथीओ उपर सवार थया अने पोत पीतानी यतु-
रंगिणी सेना तेमज ऋद्धिनी साथे यावत् जे तरक्ष कांपिल्यपुर नगर हतुं
ते तरक्ष रवाना थया. आ प्रभाळु कृष्ण—वासुदेवनी जेमज अर्द्धी पणु वल्लंन
समजु वेतुं जेधओ. कृष्ण—वासुदेवना पाठमां पांडुराज करतां ज्येटी विशेषता
हती हे तेओ न्यारे द्वारावती नगरीनी अछार नीकल्या त्यारे तेमनी साथे
बेरी पणु हती, पांडुराजनी साथे बेरी न हती आ प्रभाळु कृपद रान्ने
त्रोण हतने ओलाओ अने तेने पणु आ रीते कहुं डे डे देवानुप्रिय । तये

एतेनैव क्रमेण तृतीयं दूतं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! चम्पानगरीम्, तत्र खलु कर्णं=कर्णनामकम्-अङ्गराजम्=अङ्गदेश-स्याधिपतिं, तथा 'सेह्लं' शैल्यं=शैल्यनामकं नन्दिराजं=नन्दिदेशाधिपं करतल-परिगृहीतं दशनखं यावत्-मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन वर्धयित्वा एवं ब्रूहि- 'तथैव' तथैव=पूर्ववदत्र बोध्यम्-तद् यथा-"काम्पिल्यपुरे नगरे द्रुपदस्य राज्ञः पुत्र्या द्रौपद्याः स्वयंवरौ भविष्यति, तस्माद् खलु हे देवानुप्रियाः ! यूयं द्रुपदं राजानमनुगृह्यन्तः शीघ्रमेव काम्पिल्यपुरे नगरे समवसरत" इति एवं द्रुपदो-राजा चतुर्थं दूतं शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छ खलु त्वं शुक्तिमतीं नगरीं, तत्र खलु त्वं शिशुपालं दमघोषमुत्तं पञ्चभ्रातृशतसंपरिहृतं करतय० यावन्मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा ब्रूहि- 'तथैव यावत् समवसरत' यथा पूर्वमुक्तं तद्वदत्र 'समवसरत' इति-

कहा-कि हे देवानुप्रिय ! तुम चपानगरी जाओ वहाँ अंगदेश के अधि-पति कर्ण राजा को तथा नन्दिदेश के अधिपति शैल्यराजा को कर तल परिगृहीत दशनखवाली अंजलि मस्तक पर रखकर नमस्कार करना बाद में जय विजय शब्दों से उन्हें बधाई देकर पूर्व की तरह ऐसा कहना-कि कांपिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है, सो हे देवानुप्रियों ! आपलोग द्रुपद राजा पर कृपा करके जल्दी से जल्दी कांपिल्यपुर नगर पधारें। इसी तरह द्रुपद ने चौथे दूत को बुलाकर लम्बसे ऐसा ही कहा-कि तुम शुक्तिमती नगरी में जाओ वहाँ जाकर दमघोष के पुत्र तथा पांचसौ अपने भाइयों से युक्त शिशुपाल राजा से करतल परिगृहीत दशनखवाली अंजलि मस्तक पर रखकर कहना, पहिले की तरह ऐसा कहना कि कांपिल्यपुर नगरमें

अपा नगरीमां नञ्चो, त्यां अंग देशना अधिपति कर्ण राजने तेमञ्च नन्दि देशना अधिपति शैल्यराजने छाथोनी अञ्जलि जनावीने तेने मस्तके भूझीने नमस्कार करणे अने जय-विजय शब्दोथी तेमने अलिनाहित करणे. त्यारपछी तेमने विनंती करणे के कांपिल्यपुर नगरमां द्रुपद राजानी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवानो छे तो छे देवानुप्रियो तमे सौ द्रुपद राज उपर कृपा करीने अविलक्षण कांपिल्यपुर नगरमां आवो. आ रीते द्रुपद राजञ्चो बोधा इतने जोलाञ्चो अने तेने पणु आ प्रभाणु कछुं के तमे शक्तिमती नगरमां नञ्चो अने त्यां नञ्चने दमघोषना पुत्र शिशुपाल राजने न चोताना, पांचसो लाधञ्चो सहितकरणद्ध अथने अञ्जलि मस्तके भूझीने विनंती करतां आ भभाणुना समाचार आपणे के कांपिल्यपुर नगरमां द्रुपद राजानी पुत्री द्रौप-

पर्यन्तं वाच्यमित्यर्थः । एवं द्रुपदो राजा पञ्चमकं दूतं शब्दयित्वा एवमवादीत्-
गच्छ खलु त्वं हस्तिशीर्षनगरं, तत्र खलु त्वं दमदन्तं=दमदन्तनामकं राजानं कर-
तलपरिश्रुहीतदशनखं यावन्मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा ब्रूहि-‘ तथैव यावत् समवसरत ’
इति पूर्ववदेवात्रापि ‘ समवसरत ’ इतिपर्यन्तं वाच्यम् एवं स द्रुपदो राजा षष्ठं दूतं
शब्दयित्वाऽत्रादीत्-गच्छ खलु त्वं मथुरां नगरीं, तत्र खलु त्वं धरं=धरनामकं
राजानं ‘ करतलं यावत् समवसरत ’ अत्रापि पूर्ववद्दूतगमनादिकं बोध्यम्, एवं
सप्तमं दूतं शब्दयित्वा एवमवदत्-गच्छ खलु त्वं राजशुहं नगरम्, तत्र खलु त्वं
सहदेवं जरासिन्धुसुवं ‘ करतलं यावत् समवसरत ’ इति पूर्ववत्-द्रौपद्याः स्वयं-
वस्य वार्तां कथयित्वा ‘ काम्पिल्यपुरे नगरे समवसरत ’ इति ब्रूहि । तथा स

द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है-सो आप कृपा
करके शीघ्र ही वहाँ पधारें । (पंचमगं दूयं हस्तिशीसनयरं तत्थ णं तुमं
दमदन्तं रायं करयल तहेव जाव समोसरह, छट्टं दूयं महुरं नयरिं तत्थ णं
तुमं धरं रायं करयल जाव समोसरह सत्तमं दूयं रायगिहं नयरं तत्थणं
तुमं सहदेवं जरासिन्धुसुवं करयल जाव समोसरह, अट्टमं दूयं कोडि-
ण्णं नयरं तत्थणं तुमं हृषिं भेसगसुयं करयल तहेव जाव समोसरह,
नवमं दूयं विराडनयरं तत्थ णं तुमं कीयगं भाडसयसमगं करयल जाव
समोसरह, दसमं दूयं अबसेसेसु गामागरनगरेसु अणेगाइं रायसहस्साइं
जाव समोसरह) इसी तरह पांचवे दूत को हस्तिशीर्षनगर में दमदन्त
नाम के राजा के पास छठे दूत को मथुरा नगरी में धर राजा के पास,
सातवें दूत को राजशुह नगर में जरासिन्धु के पुत्र सहदेव के पास

दीनो स्वथ वर थवानो छे ज्येथी तमे कृपा करीने अविबंभ त्यां पधारो.
(पंचमगं दूयं हस्तिशीसनयरं तत्थ णं तुमं दमदन्तं रायं करयल तहेव जाव
समोसरह छट्टं दूयं महुरं नयरिं तत्थणं तुमं धरं रायं करयल जाव समोसरह
सत्तमं दूयं रायगिहं नयरं तत्थ णं तुमं सहदेवं जरासिन्धु सुयं करयल जाव
समोसरह अट्टमं दूयं कोडिण्णं नयरं तत्थणं तुमं हृषिं भेसगसुयं करयल
तहेव जाव समोसरह नवमं दूयं विराडनयरं तत्थ णं तुमं कीयगं भाडसय-
समगं करयल जाव समोसरह, दसमं दूयं अबसेसेसु गामागर नगरेसु अणेगाइं
रायसहस्साइं जाव समोसरह) आ प्रभाणु पांयभा इतने इतितीशीर्षं नगरभां
इमदन्त नामना रावनी पासे, छट्टा इतने मथुरा नगरीभां धर रावनी पासे,
सातमा इतने राजशुह नगरभां जरासिन्धुना पुत्र सहदेवनी पासे, आठमा
इतने कौडिस्थ नगरभां लीगमकना पुत्र इन्दिम रावनी पासे, नवमा इतने

द्रुपदो राजा अष्टमं दूतं शब्दयित्वाऽवादीत्—गच्छ खलु त्वं कौण्डिल्यनगरं तत्र खलु त्वं ' रुक्मिण्य ' रुक्मिण्यं=रुक्मिण्यनामकं भीष्मकसुतं करतल तथैव यावत् समवसरत पूर्ववत् ' समवसरत ' इति पर्यन्तं वाच्यम् । एवं स द्रुपदो राजा नवमं दूतं शब्दयित्वाऽवादीत्—गच्छ खलु त्वं विराटनगरं, तत्र खलु त्वं ' कीचकं ' कीचकं=कीचकनामकं राजानं शतभ्रातृसहितं करतल यावत् समवसरत अत्रापि व्याख्या पूर्ववत् । एवं स द्रुपदो राजा दशमं दूतं शब्दयित्वाऽवादीत्—अत्रापि व्याख्या नगरेषु अनेकानि राजसदृशाणि यावत् समवसरत, अत्रापि व्याख्या पूर्ववत्, ततस्तदनन्तरं खलु स दूतस्तथैव=पूर्वोक्तदूतइव निर्गच्छति काम्पिल्यनगरतो निः

में आठवें दूत को कौण्डिल्य नगर में भीष्मक के पुत्र रुक्मि राजा के पास में नौवें दूत को विराट नगर में सौ भाइयों से युक्त कीचक के पास में, और दशवें दूतों को अवशिष्ट ग्रामों में आकरों में एवं नगरों में हजारों राजाओं के पास जाने के लिये कहा। इन दूतों को राजा द्रुपद ने यह समझा दिया कि तुम लोग जब इन राजाओं के पास जाओ तब पहिले उन्हें दानों हाथ जोड़कर नमस्कार करना और कहना कि कांपिल्य पुर नगर में द्रुपदकी पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है सो आप लोग उस में द्रुपद राजा उपर दया कर के शीघ्र से शीघ्र पधारें। राजाकी आज्ञानुसार तीसरे दूतसे लेकर नौवें दूत तक समस्त दूत जिन्हें २ जहाँ २ जाने को कहा था—वे वहाँ २ चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने जैसा द्रुपद राजा ने इन से करने एवं कहने को कहा था—वैसा ही उन्होंने ने वहाँ २ किया और कहा। इस तरह पहिले की तरह यहाँ तक सब व्याख्या समझलेनी चाहिये। (तएणं से दूए तहेव निगच्छह,

विराट नगरमां सो भाष्योत्थी युक्त द्वीपकनी पासे अने दशमा दूतने भाषी रही गथेदा भीष्म आभोमां आकराभां अने नगरमां डलारे राज्ञोनी पासे जत्रा हुकम कथे। आ अथा इतोने राज्ञ द्रुपदे जतां पडेलं आ वात सरस रीते समज्जनी द्वीपे डती के ज्यारे तमे राज्ञोनी पासे लज्जे त्यारे सौ पडेलं पोताना अने हाथ लेडीने तेओने नमस्कार करले अने त्यारपथी तये तेमने विनती करले के कांपिल्य नगरमां द्रुपदनी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवाने छे तो आप सौ द्रुपद राज्ञ उपर कृपा करीने अनिलभ त्यां पधारो, राज्ञनी आज्ञा सुज्ज भीष्म इतथी भांडीने नवमा दूत सुधीन' अथा इतो ज्यं ज्यं तेओने जवानुं डतुं त्यां त्या पडोंज्या त्यां पडोंज्यीने तेओजे द्रुपद राज्ञे जेम आज्ञा करी डती तेमने तेओजे कथुं' अने डहुं, अर्द्धां पडोकांनी जेमज समज्ज डेवुं जेधजे. (तएणं से दूए तहेव निगच्छह, जेणेव गामागर जाव

सरति, निर्गत्य यत्रैव ग्रामाकरनगरेषु अनेकानि राजसहस्राणि, तत्रैवोपागच्छति
उपागत्य यावत्-समस्रसत, 'समवसत' इति पर्यन्तं दूतवाक्यं पूर्वशब्द बोध्यम् ।
ततः खलु तानि अनेकानि राजसहस्राणि तस्य दूतगयान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा
निसम्प्य हृष्टतृप्टाः सन्तः दूतं सन्कारयन्ति=सत्कृतं कुर्वन्ति संमानयन्ति, सत्कार्यं,
समान्य प्रतिविसर्जयन्ति ।

ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखा बहुसहस्रसंख्यका राजानः,=प्रत्येकं २ स्नाताः

जेणेव गामागर जाव समोसरह) वह दशावां दूत एसी तरह से-
पहिले के दूतों के समान कांपित्य नगर से निकला और निकल कर
जहां ग्राम आकर और नगर थे-वहां पर अनेक राजसहस्रों के पास
गया-वहां जाकर त्रिष्टाचार पूर्वक उसने सब से इस प्रकार कहा कि
काम्पित्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला
है-सो आपसब लोग द्रुपद राजा के ऊपर कृपा करके जल्दी कांपित्य
पुर नगर पधारे (तएणं ताई अणेगाई रायसहस्राई तस्स दूयस्स
अंतिण एयमट्टं सोञ्चा निसम्म हट्टं तं दूयं सक्कारेति, सक्कारित्ता
सम्माणेति, सम्माणित्ता पड्विसज्जेति) इस प्रकार वे अनेक बहुस्र
राजा उस दूत के मुख से इस समाचार को सुन कर और उसे अपने
अपने २ हृदयों में अवधारित कर बहूत ही अधिक आनन्द से प्रसुदित
बनकर परम संतोष को प्राप्त हुए । उन्होंने उस दूत का सत्कार किया
सत्कार करके सन्मान किया और सन्मान करके फिर उसे पीछे विसर्जित
कर दिया-भेज दिया । (तएणं ते वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्रा पत्तेयं

समोसरह) ते इशमे इत भद्रानी जेम कांपित्य नगरथी नीपुणे अने
नीकणीने ल्यां ग्राम आकर अने नगर छता त्यां अनेक सहस्रो राजायेनी
पासे गयो. त्यां जेधने नअपणे तेणे सहने आ प्रभाणे छहु के कांपित्य
नगरमां द्रुपद राजनी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवाने छे तो आप सौ द्रुपद
राज ऊपर कृपा करीने अखिलेय कांपित्य नगरमां पधारे. (तएणं ताई
अणेगाई रायसहस्राई तस्स दूयस्स अतिण एयमट्टं सोञ्चा निसम्म हट्टं तं
दूयं सक्कारेति, सक्कारित्ता, सम्माणेति, सम्माणित्ता, पड्विसज्जेति) आ रीते
सहस्रो राजाये ते इतना सुभथी आ सभाथार सांभणीने अने तेने
पोताना उदयमां धारणे करीने भूषण प्रसन्न तेभज परम संतुष्ट थया.
तेजेजे इतने। सत्कार कर्यो अने सन्मान कर्यो त्यारपणी इतने तेजेजे
विद्यथ आपी. (तएणं ते वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्रा पत्तेयं २ पहाया

सन्नद्धयद्धर्मितकवचाः यावद् गृहीतायुदप्रहरणाः हस्तिस्कन्धवरगता ह्यगजरथ
महाभटचटकरप्रकरवृन्दपरिक्षिप्ताः=अश्वगजरथमहासुभटसमूहपरिवृताः, स्वकेभ्यः
स्वकेभ्योअभिनिर्गच्छन्ति, अभिनिर्गत्य दक्षैव पञ्चालो जनपदस्तत्रैव प्राधारयन्
गमनाय=गन्तुं प्रवृत्ताः ॥ सू० १९ ॥

मूलम्—तएणं से दुवए राया कोडुंविचपुरिसे सदावेइ सदा-
वित्ता एअं वयासी—गच्छहणं तुमं देवाणुप्पिया ! कंपिल्ल-
पुरे नयरे वहिया गंगाए महानदीए अदूरसामंते एगं महं
सयंवरमंडवं करेह अणेगखंभसयसन्निविटुं लीलट्टियं साल-
भंजिआगं जाव पञ्चप्पिणांति, तएणं से दुवए राया दोच्चंपि
कोडुंविचपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव

रपहाया सन्नद्ध हस्तिखंघवरगया ह्यगजरह० महया भडचडगररहप-
हकर० सपहितो २ नगरेहितो अभिनिर्गच्छति २ जेणेव पांचाले जण-
वए तेणेव पहारेत्थ गमणाए) बादमें जब दून समोचार देकर वापिस
कांपिल्य पुर नगर में आञ्चुके तब वासुदेव प्रमुख वे अनेक शहस्त्र राजा
प्रत्येक स्नान से निबटे, और सजाकर अपने २ शरीर पर कवच पहिरा,
यावत् आयुध और प्रहरणों को अपने २ साथ लिया, अपने २ प्रधान
हाथियों पर चढे और हाथी घोडे रथ और महाभटों के समुदाय से
घिरे हुए होकर ये सब अपने राज महलोंसे—नगरों से—निकले—निलकर
जहां पांचाल जनपद था उस ओर चल दिये ॥ सू० १९

सन्नद्धहस्तिखंघवरगया ह्यगजरह० महया भडचडगररहपहकर० सपहितो २
नगरेहितो अभिनिर्गच्छति २ जेणेव पांचाले जणवए तेणेव पहारेत्थ गमणाए)
त्यारपछी न्यारे अथा इतो सभात्थार आपीने कांपिल्यपुर नगर पाछा
आवी गथा त्यारे वासुदेव प्रमुख वषु। डलरो राजन्थोअे स्नान कथी
अने त्यारणाह पोताना शरीर उपर कवचो धारणु कथी यात्रत् आयुधो अने
प्रहरणोने पोतानी साथे बीधा त्यारपछी तेओ अथा पोतपोताना प्रधान
हाथीओ उपर सवार थया अने हाथी, घोडा, रथ अने भडानटोना समु-
दायनी साथे पोताना राजमहलैथी—नगरेथी नीकण्या अने नीकणीने न्या
पांचाल जनपद इतो ते तरक देवाना थया ॥ सूत्र १९ ॥

भो देवाणुपिया ! वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं
 आवासे करेह तेवि करेत्ता पच्चप्पिणांति, तएणं दुवए
 वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमं जाणेत्ता
 पत्तेयंर हत्थिखंध जाव परिवुडे अग्घं च पज्जं च गहाय सवि-
 ङ्घिण् कंषिल्लपुराओ निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव ते वासु-
 देवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ उवाग-
 च्छित्ता ताइं वासुदेवपामोक्खाइं अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ
 सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं
 पत्तेयंर आवासे यियग्घइ, तएणं ते वासुदेवपामोक्खा जेणेव
 सयार आवासा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता हत्थिखं-
 धाहितो पच्चोरुहंति पच्चोरुहित्ता पत्तेयं खंधावारनिवेसं
 करेति करित्ता सएर आवासे अणुपविसंति अणुपविसित्ता
 सएसुर आवासेसु य आसणेसु य सयणेसु य सन्निसन्ना य
 संतुयट्ठा य बहूहिं गंधवेहि य नाडएहि. य उवगिज्जमाणा य
 उवणच्चिज्जमाणा य विहरंति, तएणं से दुवए राया कंषिल्ल-
 पुरं नगरं अणुपविसइ अणुपविसित्ता विउलं असणं उवक्ख-
 ङावेइ उवक्खङ्गावित्ता कोडुंविद्यपुरिसं सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं
 वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुपिया ! विउलं असणं सुरं
 च मज्जं च मंमं च सीधुं च पसणं च सुवहुपुण्फवत्थगंधम-
 ल्लालंकारं च वासुदेवपामोक्खाणं रायसहस्साणं आवासेसु
 साहरह, तेवि साहरंति, तएणं तं वासुदेवपामोक्खा तं विउलं

असणं४ जाव पसन्नं च आसाएमाणा४ विहरंति, जिमियाभुत्तु-
 त्तरागया वि य णं समाणा आयंता जाव सुहासणवरगया
 वद्धहिं गंधवेहिं जाव विहरंति, तएणं से दुवए राया पुव्वाव-
 रणहकालसमयांसि कोडुंबियपुरिसेसद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी
 गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरे संघाडन जाव पहे
 वासुदेवपामुक्खाण य रायसहस्साणं आवासेसु हत्थिखंधवरगया
 महयार सहेणं जाव उग्घोसेमाणा२ एवं वदह—एवं खल्ल देवा-
 णुप्पिया कल्लं पाउ० दुवयस्स रण्णो धूयाए चुलणीए देवीए
 अत्तयाए धट्टज्जुणस्स भगिणीए दोवईए रायवरकण्णए
 सयंवेरे भविस्सइ, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! दुदयं रायाणं
 अणुगिण्हेमाणा पहाया जाव विभूसिया हत्थिखंधवरगया सको-
 रंत० सेयवरचासर० हयगयरह० महया भडचडगरेणं जाव
 परिविखत्ता जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 पत्तेयं२ नामंकिएसु आसणेसु निसीयहर दोवइं रायकण्णंपडि-
 वालेमाणा२ चिट्ठह, घोसणं घोसेहे२ मम एयमाणत्तियं पच्च-
 प्पिणह, तएणं ते कोडुंबिया तहेव जाव पच्चप्पिणंति, तएणं
 से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी
 —गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सयंवरमंडपं आसियसंसज्जि-
 ओवलित्तं सुगंधवरगंधियं पंचवण्णपुप्फपुंजोवयारकलियं काला-
 गरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्क जाव गंधवट्ठिभूयं मंचाइमंचकलियं करेह
 करित्ता वासुदेवपामुक्खाणं वहुणं रायसहस्साणं पत्तेयं२ नामं-

काइं आसणाइं अत्थुपपच्चत्थुयाइं रएहर एयमाणत्तियं पच्च-
पिणह, ते वि जाव पच्चपिणंति, तएणं ते वासुदेवपामुक्खा
बहवे रायसहस्सा कल्लं पाउ० णहाया जाव विभूसिया हत्थि-
खंधवरगया सकोरंट० सेयवरचामराहिं हयगय जाव परिवुडा
सत्थिड्डीए जाव रवेणं जेणेव सयंवरे तेणेव उवागच्छइ उवाग-
च्छित्ता अणुपविसंति अणुपविसित्ता पत्तेयंर नामंकिएसु आस-
णेसु निज्जीयंति दोवइं रायवरकण्णं पड्डिवालेआणा चिट्ठंति,
तएणं से पंडुए राया कल्लं णहाए जाव विभूसिए हत्थिखंध-
वरगए सकोरंट० हयगय० कंपिल्लपुरे सज्झंसज्झेणं निगगच्छंति
जेणेव सयंवरमंडवे जेणेव वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्सा
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं
करयल० वज्जावेत्ता कणहस्स वासुदेवस्स सेयवरचामरं गहाय
उववीयमाणे चिट्ठंति ॥ सू० २० ॥

टीका—' तएणं से ' इत्यादि । ततः खलु स द्वुपदो राजा कौटुम्बिकपुर-
यान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमयादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुमियाः ।
काम्पिल्यपुरस्य नगरस्य बहिः प्रदेशे गङ्गाया महानद्या अदूरसामन्ते=नातिदूरे
नातिप्रनापे एतं महान्तं सयंवरमण्डलं कुरुत कौटुम्बिकपुराह—' अणेग ' इत्यादि ।

' तएणं से दूवए राया कोडुविय पुरि से ' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (दूवए राया) द्वुपद राजा ने (कोडुविय
पुरिसे सदावेइ) कौटुम्बिकपुरीको बुलाया (सदाविता एव वयासी)
बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—(गच्छह णं तुमं देवाणुपिया ! कंपिल्लपुरे
नगरे बहिया गंगाए महानईए अदूरसामंते एणं महं सयंवरमंडवं करेह,

' तएणं से दूवए राया कोडुविय पुरिसे ' इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपत्ती (दूवए राया) द्वुपद राजा ने (कोडुवियपुरिसे
सदावेइ) कौटुम्बिकपुरीको बुलाया. (सदाविता एव वयासी) बुलायीने
तेमने आ प्रभावे उद्धुं के (गच्छह णं तुमं देवाणुपिया ! कंपिल्लपुरे नगरे
बहिया गंगाए महानईए अदूरसामंते एणं महं सयंवरमंडवं करेह, अणेगखंभस्स

अनेकस्तम्भशतसंनिविष्टं=अनेकशतस्तम्भयुक्तं, 'लीलद्वियसालभंजियागं' लीला-स्थितशालभञ्जिकं=लीलाया स्थिता शालभञ्जिका=पुत्तलिना यस्मिंस्तादृशं, यावत्- 'तथास्तु' इति कृत्वा ते कौटुम्बिकपुरुषास्तदाज्ञां स्वीकृत्य तथैव संपाद्य, प्रत्यर्पयन्ति=मण्डपोनिर्मित इति निवेदयन्ति। ततः खलु स द्रुपदो राजा 'दोर्बपि' द्वितीयवारमपि कौटुम्बिकपुरुषान् चन्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-हे देवानु-प्रियाः ! भिप्रमेव वासुदेवममुखाणां बहूनां राजसहस्राणाम् आवासं-वासस्थानं कुरुत=तचयत, तेऽपि कौटुम्बिकपुरुषाः 'करेत्ता' कृत्वा=वासुदेवादीनां निवासार्थं पृथक् पृथक् योग्यं वासस्थानं विधाय प्रत्यर्पयन्ति=द्रुपदाय राज्ञे कथयन्ति। ततः

अणेग खंभसयसन्नविष्टं लीलद्वियसालभंजियागं जाव पचचपिणति) हे देवानुप्रियो ! तुमलोग जाओ-और कांपिल्यपुर नगरके बाहिर गंगा महानदी के नअतिदूर और न अति समीप-उचित स्थान-में एक बड़ाभारी स्वयंवरभंडप बनाओ। जो अनेक लैकडों स्तंभोंसे युक्त हो तथा जिसमें विविध प्रकार की क्रीडा करती हुई पुत्तलिकाएँ खजा कर लगाई गई हों। यावत् "तथास्तु" कह कर उन लोगों ने राजा की इस आज्ञा को मान लिया और उसी आज्ञाके अनुसार स्वयंवर भंडप बना कर इसकी खबर राजाको कर दी। (तएणं से द्रुवए राया दोर्बपि कोटुंभिय पुरिसे सदावेह सदाविस्ता एवं वयासी-खिप्पामेव देवाणुपिया। वासुदेव पासु-कखाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह ते वि करेत्ता पचचपिणति इसके बाद द्रुपद राजा ने दूसरे कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया-बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्रातिशीघ्र वासुदेव

यसन्नविष्टं लीलद्वियसालभंजियागं जाव पचचपिणति) हे देवानुप्रियो ! कांपिल्य-पुरनगरनी भंडार भंडा नदी गंगाथी वधारे हर नडीं तेमन् वधारे नलुक पणु नडिं जेवा योग्य स्थणे जेक लारे विशाण स्वयंवर भंडप तैयार करी के जे धणु से'कडे थांललाजोवाणे होय, तेमन् जेभां अनेक नतनी क्रीडा करती पूत-णीजो सजवीने भूकवांमां आवी होय ते लोकेजे पणु 'तथास्तु' कहीने सजनी आज्ञा स्वीकारी लीधी अने तयारपछी तेमनी आज्ञा सुज्जन् स्वयं-वर भंडप तैयार करीने सजने तेनी भणर आवी. (तएणं से द्रुवए राया दोर्बपि कोटुंभियपुरिसे सदावेह, सदाविस्ता एवं वयासी-खिप्पामेव देवाणुपिया। वासुदेव पासुकखाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह, ते वि करेत्ता पचचपिणति) तयारपछी द्रुपद राजाजे भीज कौटुम्बिक पुरुषोने जेलांथ्या अने जेलावीने तेमने कळुं के हे देवानुप्रियो ! तमे लोके अविलांण वासुदेव प्रभुभ वणु!

खलु द्रुपदो राजा वासुदेवप्रमुखाणां बहूनां राजसहस्राणाञ्च आगमं=आगमनं
ज्ञात्वा प्रत्येकं २ हरितस्कंधवरगतः, हयगजरथमहाभटसमूहपरिवृतः, अर्घ्यं=
पानार्थं जलं पार्थं=चरणप्रक्षालनार्थमुदकं च गृहीत्वा सर्वद्वयौ छत्रचामरादिरूपया
काम्पिल्यपुरतो निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव ते वासुदेवप्रमुखा बहुसहस्रसंख्यका-
राजानस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तानि वासुदेवप्रमुखाणि बहूनि राजसहस्राणि=
तान् बहुसहस्रसंख्याकान् वासुदेवप्रमुखान् राज्ञः, अर्घ्येण च पात्रेण च सत्कार-

प्रमुख अनेक सहस्र राजाओं को बैठने के लिये पृथक् स्थान बनाओ ।
उन्होंने राजाकी आज्ञानुसार बैला ही किया और इसकी खबर राजा को
कर दी । (तएणं द्रुवए वासुदेव पासुक्खाणं बहूणं रायसहस्राणं आगमं
जाणेत्ता पतेयं २ हत्थिखंध जाव पडिबुडे अग्घं च पज्जेनं च गहाय सक्वि-
द्धीए कंपिलपुराओ निगगच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव ते वासुदेव पासोक्खा
वहवे रायसहस्रा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताइं वासुदेवपासु-
क्खाइं अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ, सम्माणेइ) इसके बाद द्रुपद
राजा वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं को आगमन जानकर अपने प्रधान
हस्ती पर आरूढ़ हा हय, गज, रथ तथा महाभटों के समूह के साथ २
प्रत्येक राजा के लिये अर्घ्य-पीने के लिये पानी, पाय-चरण प्रक्षालन के
जल-लेकर छत्रचामर आदि अपनी राजविभूतिसे युक्त होकर काम्पिल्य
पुर नगर से निकल-निकलकर जहां वासुदेव प्रमुख हजारों राजा थे वहां
गये । वहां जाकर उन्होंने उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं का अर्घ्य

७७२। रावणोंने जेसवा भाटे बुदा बुदा स्थान तैयार करे। ते दोकाओ पणु
रावणनी आज्ञा सुअण ज अंधुं काम पतापी दीधु अने काम थर गयानी अजर
रावण सुधी पडोयाडी दीधी. (तएणं द्रुवए वासुदेवपासुक्खाणं बहूणं राय-
सहस्राण आगमं जाणेत्ता पतेयं २ हत्थिखंध जाव पडिबुडे अग्घं च पज्जेनं च
गहाय सक्विद्धीए कंपिलपुराओ निगगच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव ते वासुदेव पासोक्खा
वहवे रायसहस्रा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताइं वासुदेवपासुक्खाइं
अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ, सम्माणेइ) त्थारपछा वासुदेव प्रमुख ७७२।
रावणोंने आजमन सालणीने द्रुपद रावण पोतना प्रधान ७७३। उपर सवार
थया अने घोडा, ७७४। रथ तेमज मडालटोना समूडनी साथे दरेके दरेके
रावणने भाटे अर्घ्य-पीना भाटे पाणी-दधने छत्र चामर वगेरे पोतानी रावण
विभूतिथी युक्त थयने काम्पिल्यपुरथी अडार नीज्या अने नीज्याने तथा
वासुदेव प्रमुख ७७५। रावणोंने ७७६। तथा पडोया. त्यां जग्ने तेमथे ते

यति, संमानयति, सत्कारार्थं सत्कारं कृत्वा, संमान्य तेषां वासुदेवप्रमुखानां प्रत्येकं २ पृथक् २ आवासं 'चियरइ' चितरति । ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखाः यत्रैव स्वकाः २=निजा २ आवासास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य हस्तिस्क्रन्धात् प्रत्यवरोहन्ति प्रत्यवरुह्य प्रत्येकं २ स्क्रन्धावारनिवेशं कुर्वन्ति, कृत्वा स्वके स्वके आवासेऽनुप्रविशन्ति, अनुप्रविश्य स्वकेषु स्वकेषु आवासेषु-आसनेषु च शयनेषु च सन्निषणा उपविष्टाश्च तथा 'संतुयद्वा' संत्वग्वर्तिताः परिवर्तितपार्श्वार्थं बहुभिर्गन्धर्वैश्च 'नाड-एहि य' नाटकैश्च 'उवगिज्जमाणा य' उपगीयमानाश्च, 'उवगिज्जमाणा य'

और पाद्य से सत्कार किया-सन्मान किया । (सत्कारित्ता, सम्मानित्ता, तेषां वासुदेवप्रमुखानां पत्तयं २ आवासे चियरइ, तएणं ते वासुदेव प्रमुखानां जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हस्ति खंधाहि तो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता पत्तयं खंधावारनिवेशं करेति) सत्कार सन्मान करके उन्होंने उन सब वासुदेव प्रमुखों को प्रत्येक के लिये पृथक् २ आवास-स्थान-दिया, । इसके पश्चात् वे वासुदेव प्रमुखराजा जहां अपना २ स्थान नियत था-वहां गये । वहां जाकर के अपने २ हाथियों पर से नीचे उतरे और उतर करके उन्होंने अपनी २ स्क्रन्धा-वार स्थापित कर दी-अर्थात् सैन्य को ठहरा दिया । (करित्ता सए २ आवासे अणु०) ठहरा कर फिर वे अपने २ आवासों में प्रविष्ट हुए (अणुप्रविस्तिता सएसु २ आवासेसु य आसनेसु य शयनेसु य सन्नि-सन्ना य संतुयद्वा य बहुहि गंधर्वेहि य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य

वासुदेव प्रमुख ६७३ राक्षसोत्तु' अर्थं अने पाद्यथी सत्कार तेभ्य सन्मान कथुं. (सत्कारित्ता सम्मानित्ता तेषां वासुदेवप्रमुखानां पत्तयं २ आवासे चियरइ, तएणं ते वासुदेवप्रमुखानां जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हस्तिखंधाहितो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता पत्तयं खंधावारनिवेशं करेति) सत्कार तेभ्य सन्मान करीने तेभ्ये वासुदेव प्रमुख द्वरेके द्वरेके राक्षसेषु ६७३ आवास स्थान आणुं. त्थारपथी वासुदेव प्रमुख राक्षसेषु ६७३ आवास स्थान नक्का करवामां आणुं ६७३ त्था गथा. त्था ६७३ तेभ्ये पोतपोताना ६७३थी ६७३थी नीचे उतर्या अने उतररीने तेभ्ये पोतपोतानी स्क्रन्धावार-छावणी स्थापित करी अट्टे के संनाने. यथाव नाथ्ये. (करित्ता सए २ आवासे अणु०) छावणी नाथीने तेभ्ये पोतपोताना आवास स्थानमां प्रविष्ट थथा (अणुप्रविस्तिता सएसु २ आवासेसु य आसनेसु य शयने-सु य सन्नि-सन्ना य संतुयद्वा य बहुहि गंधर्वेहि य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य

उपनृत्यमानाश्च गीतं श्राव्यमाणाश्च, नृत्यं दर्शयमानाश्च विहरन्ति । ततः रूलु स द्रुपदो राजा वाग्पितृपुरं नगरमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य विपुलम्-अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् उपस्कारयति. संस्कारयति, उपस्कार्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत-गच्छत रूलु सूर्यं हे देवानुप्रियाः ! विपुलम्, अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं सुरां च मज्जं च मांसं च सीधुं च प्रसन्नां च सीधुः प्रसन्ना च मदिरा विशेषे, तथा सुबहु पुष्पदन्तगन्धमाल्यालंकारं च वामुदेवप्रमुखाणां राजसहस्राणाम् आवासेषु 'साहरह' संहरत=उपनयत, तेऽपि कौटुम्बिकपुरुषास्तथैव संहरन्ति ।

उवणच्चिञ्जमाणा य विहरन्ति, तएणं से हुवए राया कं पिह्लपुरं नयरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता विउलं असण ४ उवक्खडावेइ) प्रविष्ट होकर के वे अपने अपने आवास स्थानों में आमनों पर एवं बिरतरीं पर जाकर अच्छी तरह बैठ गये लेट गये । वहाँ लेटे हुए उनकी अनेक गंधर्वोंने, अनेक नाट्यकारों ने स्तुति की-उनकी प्रशंसा के गीत गाए, नाटक दिखलाया । इसके बाद द्रुपद राजा कांपित्यपुर नगर के भीतर आये-वहाँ आकर के उन्होंने विपुलमात्रा में अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार तैयार करवाया-पकवाया । (उवक्खडावित्ता कोडुंविद्यपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-(गच्छह णं तुम्मे देवाणु प्पिया ! विउलं असणं ४ सुरं च मज्जं च सीधुं च पसणं च सुबहु पुष्पदत्थ गंधमलरालंकारं च वामुदेवपामोक्खाणां रायसहस्रमाणं आवासे सु साहरह) तैयार करवा कर फिर उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो तुमलोग जाओ और इस

उवणच्चिञ्जमाणा य विहरन्ति, तएणं से हुवए राया कं पिह्लपुरं नयरं अणुप-विसइ अणुपविसित्ता विउलं असण ४ उवक्खडावेइ) प्रवेशीने तेज्जे पेटपेटाना आसनेो उपर सारी रीते जेसी गया, सूध गया. त्यां सूध जयेदा तेज्जेनी धणु गंधर्वेज्जे, धणु नाट्यकारेज्जे स्तुति करी, तेभनी प्रशंसा-गीतो गायं अने नाटकेो लब्ध्यां. त्थारपछी द्रुपद राजा कांपित्यपुर नगरमां आव्या. त्यां आवीने तेज्जेज्जे युक्कण प्रमाणुमां अशन, पान आद्य अने स्वाद्य इप आर लतनेो आहार तैयार करावडाव्ये (उवक्खडावित्ता कोडुंविद्यपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुम्मे देवाणुप्पिया ! विउलं असणं ४ सुरं च मज्जं च मांसं च सीधुं च पसणं च सुबहुपुष्पदत्थगंधमलालंकारं च वामु-देवपामोक्खाणां रायसहस्राणां आवासेसु साहरह) तैयार करानीने तेभने डौटुम्बिक युक्थेने जेलाव्या अने जेलावीने तेज्जेने क्खुं के डे देवानुप्रियो ! तजे

ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखास्तद् विपुलम्, असन्नं पानं स्वाद्यं स्वाद्यं यावत् प्रसन्नं च ' आसायमाणा ' आस्वादान्तो विहरन्ति, अपि च खलु ' जिमिया ' जिपिताः-शुक्तवन्तः, ' शुचुत्तरागया ' शुकोत्तरागताः शुकोत्तरं=भोजनानन्तरम् आगताः भुवन्तेत्यत्र भावे क्तः भोजनस्थानादासन्नदेशे मुखप्रक्षालनार्थमागताः सन्तः ' आयता ' आचान्ताः-कृतचुल्लकाः, यावत्-मुखामनवरगताः=भासनवरे सुखो-

अशन, पान, स्वाद्य स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार को सुरा मद्य, सीधु और प्रसन्न मदिरा को और अनेक विध इन पुष्पों को वस्त्रों को गंधमाल्य एवं अलंकारों को वासुदेव प्रमुख राजसहस्रों के आवास स्थानों पर ले जाओ। (ते वि साहरन्ति) राजा की आज्ञानुसार वे सब उन अशनादिवस्तुओं को वहां पर ले गये। (तएणं ते वासुदेवपामु-क्खा तं विउलं असणं ४ जाव पसन्नं च आसायमाणा ४ विहरन्ति) इसके बाद उन वासुदेव प्रमुख राजाओं ने उस आनीद विपुल अशनादिरूप प्रसन्ना मदिरा तक की आहार की सामग्री को खाया (जिमिया शुचुत्तरागया वि य णं समाणा जाव सुहासणवरगया ब्रह्मि गंधव्वेहिं जाव विहरन्ति) खा पी कर जब वे निश्चिंत हो चुके और मुख प्रक्षालन के लिये भोजन स्थान से उठकर दूसरे निकट स्थान पर आये-तब उन्होंने कुल्ला किया-और फिर सुन्दर अपने २ आसनों पर शांति पूर्वक आकर बैठ गये। इनके बैठते ही जनोविनोद के लिये

लोका लभ्यो अने आ अशन, पान, भाद्य, स्वाद्य रूप चार लतना आडा-रने सुरा, मद्य, मांस, सीधु अने प्रसन्न मदिराने अने धष्ठी लतना आ पुष्पाने, वस्त्राने, गंधमाद्य अने अलंकाराने वासुदेव प्रमुख राजसहस्राना आवास स्थाने पहोंथाडे। (ते वि साहरन्ति) राजनी आसा प्रभाञ्जे तेञ्जे अधाञ्जे ते भाद्य पद्यथेने राजञ्जेना आवास स्थाने पहोंथाडी दीधा। (तएणं ते वासुदेवपामुक्खा तं विउलं असणं ४ जाव पसन्नं च आसायमाणा ४ विहरन्ति) त्पारपष्ठी ते वासुदेव प्रमुख राजञ्जेञ्जे त्यां पहोंथाडवाभां आवेला पुष्पण प्रभाञ्जुभां अशन वगेरेथी मांतीने प्रसन्न मदिरा सुधीना अधी लतना आडार सामथ्री वगेरेहुं पूष इमिपूर्वक पान कथुं।

(जिमिया शुचुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता जाव सुहासणवरगया ब्रह्मि गंधव्वेहिं जाव विहरन्ति)

जमी परवारीने न्यारे तेञ्जे निश्चित थध चूक्यां त्पारे तेञ्जे सुभ प्रक्षालन माटे लोञ्जन स्थानथी जिसा थधने जील पासेना स्थाने गथा, त्यां तेञ्जेञ्जे डोगगा कथां अने त्पारपष्ठी तेञ्जे इरी पीतपीताना सुंदर आसने।

पविष्टाः बहुभिर्गन्धर्वैर्यौवद् नाटकैश्चोपगीयमानाः उपचृत्यमानाश्च विहरन्ति= आसते स्म इत्यर्थः ।

ततः खलु स द्रुपदो राजा पूर्वापराह्णकालसमये कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु हे देवानुप्रियाः ! काम्पिल्यपुरे नगरे शृङ्गाटक यावत्-त्रिकञ्चतुष्कञ्चत्वर महापथपथेषु वासुदेवप्रभुखानां च राजसद्वलाणामावासेषु आवाससमीपेषु इतिरुग्धरगता महता २ शब्देन=उच्चैः स्वरेण यावद् उद्योषयन्तः २ एवं वदत-एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! कल्पे-आगामीनि द्वितीय-

गंधर्वो ने नाना प्रकार के स्तुत्यात्मक गीत गाये और नाट्यकारों ने नृत्य दिखलाये । (तर्ण से द्रुप राया पुष्पावरणकालसमयसि कोहुं विप्रपुरिसे सदावेह, सदावित्ता, एवं वगारी, गच्छहं तुमे देवाणुप्रिया ! कम्पिलपुरे सिंघाडग जाव पहेसु वासुदेवपाशुक्लाण य राय सहस्राण य आवासेसु ह्यि खंघरगया भह्योर सदेणं जाव उग्वोसेमाणा २ एवं वदह, एवं खलु देवानुप्रिया ! कालं पाउ० दुवयस्स रण्णो धूयाए चुलणीए देवीए अत्तयाए षट्ठजुणस्स भगिणीए दोवईए रायवरकन्नाए सयंवरं भविस्सइ) इसके बाद द्रुपदराजा ने पूर्वापराह्ण काल के समय में कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया और बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानु प्रियों ! तुमलोग हाथी पर बैठकर कांपिल्यपुर नगर में जाओ और वहाँ शृंगाटक यावत् त्रिक चतुष्क चत्वर महापथ आदि मार्गों में जो वासुदेव प्रभुख राजा के आवासस्थान हैं उनके समीप बड़े जोर २

उपर शांतिपूर्वक भेरी गया तेभना भेना-विनेाड भाटे गंधर्वोच्चे अनेक जतना स्तुत्यात्मक गीते गायां अने नाट्यकारोच्चे नृत्य करी जताव्यां।

(तर्ण से द्रुप राया पुष्पावरणकालसमयसि कौटुम्बिकपुरिसे सदावेह, सदावित्ता, एवं वगारी, गच्छहं तुमे देवाणुप्रिया ! कम्पिलपुरे सिंघाडग जाव पहेसु वासुदेवपाशुक्लाण य सहस्रा २ सदेणं जाव उग्वोसेमाणा २ एवं वदह, एवं खलु देवानुप्रिया ! कालं पाउ० दुवयस्स रण्णो धूयाए चुलणीए देवीए अत्तयाए षट्ठजुणस्स भगिणीए दोवईए रायवरकन्नाए सयंवरं भविस्सइ)

त्यारपणी द्रुपः राज्ञे पूर्वापराह्ण क्षणना समये कौटुम्बिक पुरोधेने भोलाव्या अने भोलाव्रीने तेपने आ प्रभाणु क्खुं के डे देवानुप्रियो ! तमे कोके हाथी उपर भेरीने कम्पिल्यपुर नगरमां जत्थो अने त्यांना शृंगाटक यावत् त्रिक चतुष्क चत्वर महापथ वगेरे मार्गोमां-के मार्गोनी पासो वासुदेव प्रभुख राज्ञोना आवास धरो छे तेनी पासो बहु भोटा साडे आजातनी

दिवसे प्रादुर्भूतप्रभातायां रजःयां तेजसा ज्वलति सूर्येऽभ्युदये द्रुपदस्य राज्ञो
 दुहितुः=पुत्र्याः, चुलन्यादेव्या आत्मजायाः, धृष्टद्युम्नस्य भगिन्या द्रौपद्या राजवर-
 कन्यायाः स्वयंवरौ भविष्यति, तत्=तस्मात् रज्जु हे देवानुप्रिया ! यूयं द्रुपदं
 राजानम्पुत्रं तः रनाता यावत्-सर्वालङ्कारविभूषिता-हरितरक्तवधरगताः सको-
 रण्टमाल्यदारुणा छत्रेण ध्रियमाणेन श्वेतवरचामरैरुदधूयमानैश्च युक्ताः हयग-
 जरथमहाभटकरेण चतुरङ्गवलेन यावत् परिसिन्धुः=परिवृताः यत्रैव स्वयंवर-

से ऐसी घोषणा करते हुए कहो-कि हे देवानुप्रिय ! वल सूर्योदय होने
 पर द्रुपद राजा की पुत्री चुलनी देवी की आत्मजा और धृष्टद्युम्न की
 बहिन राजवर कन्या-द्रौपदी का स्वयंवर होगा (तं तुभ्ये णं देवानुप्रिया ।
 द्रुपयं रायाणं अणुगिण्हेमाणा ष्हाया जाव विभूषिया हृत्थिखंधवरगया
 सकोरण्ट० सेयवर चामर० ह्य गयरह० महया भडवडगरेणं जाव
 परिविखन्ता जेणेव सयंवर मंडवे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छिता पत्तेयं
 नामंकिएसु आसणेसु निस्सीयह २ दोवइं रायकणं पडिवालेमाणा २
 चिद्वह) इस लिये हे देवानुप्रियों ! आपलोग द्रुपदराजा के ऊपर कृपा
 करके स्नान आदि से निवृत्त कर एवं समस्त अलंकारों से विभूषित
 होकर जहाँ स्वयंवर मंडप है वहाँ पधारें । आते समय हाथियों पर
 बैठकर आवें । कोरण्ट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित छत्र उस
 समय आप सब के ऊपर तने हों और श्वेत सुन्दर चामर ऊपर दोरे जा
 रहे हों । हय, गज, रथ एवं महाभटों का समूहरूप चतुरंगबल आप

घोषणा करे के देवानुप्रियो । आवती कडे सवार थतां द्रुपद राजानी पुत्री
 चुलनी देवीनी आत्मजा अने धृष्टद्युम्ननी बहिन राजवर कन्या द्रौपदीनी
 स्वयंवर थये.

(तं तुभ्ये णं देवानुप्रिया ! द्रुपयं रायाणं अणुगिण्हेमाणा ष्हाया जाव विभू-
 सिया हृत्थिखंधवरगया सकोरण्ट० सेयवरचामर० ह्य गय रह० महया भडवड-
 गरेणं जाव परिविखन्ता जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छिता
 पत्तेयं नामंकिएसु आसणेसु निस्सीयह २ दोवइं रायकणं पडिवाले माणा २ चिद्वह)

अथी डे देवानुप्रियो ! तसे लोकें द्रुपद राजा ऊपर भडवरानी करीने
 स्नान वगेरैथी परवारीने तथा समस्त अलंकारैथी विभूषित थधने त्यां
 स्वयंवर मंडप छे, त्यां हाथीनी ऊपर सवार थधने पघारो. केशटे पुष्पोनी
 माणाओथी शोभतुं छत्र ते पथते तमारा ऊपर ताण्डुलुं डोडुं न्नेधंअने
 सड्ढे थभरो पणु तमारा ऊपर डोणाना डोवा न्नेधंअने. हाथी, रथ अने भडो-
 भटोना समूह द्रुप चतुरंगिणी सेना तमारी साथे डोवी न्नेधंअने. स्वयंवर

मण्डपस्तत्रैवोपागच्छत, उपागत्य प्रत्येकं ' नामांकिणसु ' नामाङ्कितेषु स्व स्व-
नामाक्षरयुक्तेषु आसनेषु निपीदत, निपद्य द्रौपदीं राजकन्यां ' पड्डिवालमाणा २ '
प्रतिपालयन्तः २ प्रतीक्षमाणाः २ तिष्ठत इति घोषणां घोषयत, घोषयित्वा
समैताप्राज्ञसिकां प्रत्यर्पयत, ततः खलु ते कौटुम्बिकास्तथैव यावत् प्रत्य
र्पयन्ति । ततः खलु स दुःसदो राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा
एवमवादीत्-गच्छत खलु पुर्यं हे देवानुप्रियाः । स्वयंवरमण्डपम् " आसियसंम-
ज्जिओवलितं " आसिक्तसमार्जितोपलिप्तम्=आसिक्तम्-जलभक्षेपेणाद्रीकृतं, संमा-
र्जितं-रुचवराद्यपनयनेन संशोधितम्, उपलिप्तं-मृद्गोमयादिभिरनुलिप्तं, तथा-
सुगंधवरागंधियं ' सुगंधवरागन्धितं-अगुरुगुग्गुलकर्पूरसरलदाहादिजनितसुगन्धयुक्तं,
' पञ्चवर्णपुष्पपुंजोवयारकलिय ' पञ्चवर्णपुष्पपुञ्जापचारकलितं । ' कालागुरुषवर-
कुंदुरुकुरुक-जाव गन्धवद्विभूयं ' कालागुरुषवरकुन्दुरुकुरुक-यावद्-गन्धवर्ति-
भूतं, अत्र यावच्छब्देन-धूाडज्जंतमघनघंतगन्धुद्धुयाभिरामं ' इति बोध्यम् ।

सब के साथ हो । मंडप में आकर प्रत्येक जन अपने अपने नामवाले
आसन पर बैठजावे । बैठकर फिर वहां वह राजवर कन्या द्रौपदी की
प्रतीक्षा करें । (घोसणं घोसेह २ मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) इस
प्रकार की घोषणा करो और जब तुमलोग ऐसी घोषणा कर चुको तब
इसकी हमें पीछे खबर दो । (तएण ते कोडुविया तहेव जाव पच्च-
प्पिणति) इन कौटुम्बिक पुरुषों ने नृपाज्ञानुसार ऐसा ही क्रिया-बाद
में हमलोग आपकी आज्ञानुसार घोषणा कर चुके हैं ऐसी सूचना राजा
के पास भेज दी । (तएणं से दुवए राया कोडुविय पुरिसे सदावेह,
सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुम्भे देवाणुप्पिया । सयंवरमंडवं
आसियसंमज्जिओवलितं सुगंधवरगंधियं पंचवर्णपुष्पपुंजोवयार-
कलियं कालागुरुषवरकुंदुरुकुरुक जाव गंधवद्विभूयं संचाइमंचकलियं

मंडपमा आवीने दरेके दरेके पीतपीताना नामवाणा आसन उपर भेसी नथ.
त्यां भेसीने तेभ्यो राजवर कन्या द्रौपदीना आगमननी प्रतीक्षा करे. (घोसणं
घोसेह २ मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) आ रीते तथे घोषणुा करी अने
आम थर्थ नथ त्यादे भने भभर आपे. (तएणं ते कोडुविया तहेव जाव
पच्चप्पिणति) ते डौटुंभिः पुइयेभ्ये राजनी आज्ञा प्रभाषुे न् अणुं काम
पतानी दीधुं अने ' अने डोडोअे आपनी आज्ञा अनुसार घोषणुा करी छे '
अेसी भभर न.नी पासे पडोआडी दीधी.

(तएणं से दुवए राया कोडुवियपुरिसे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी-
गच्छह णं तुम्भे देवाणुप्पिया ! सयंवरमंडवं आसियसंमज्जिओवलितं सुगंधवर-
गंधियं पंचवर्णपुष्पपुंजोवयारकलियं कालागुरुषवरकुंदुरुकुरुक जाव गंधवद्वि

धूपदहमानमधमघायमानगन्धीदूधूताभिरामं, तत्र कालागुरुः कृष्णागुरुः, प्रवर-
कुन्दुरुष्कं-चीडानामको गन्धद्रव्यविशेषः, तुरुष्कं च सिल्लकं, धूपश्च गन्धद्रव्य संयो-
गन इति द्वन्द्वः, यद्वा-एतत्तन्वन्धी यो धूपस्तस्य दह्यातानस्य यः सुरभिर्मधमघा-
यमानः-प्रतिप्रमान्, गन्ध उद्भूतस्तेनाभिरामो रमणीयः स तथा तं तथा-
गन्धार्तिधूतगन्धार्ति-गन्धद्रव्यगुणितानात्तदूधूतं-तत्स्युक्तं सौरभ्यातिशयात् तथा-
'मंचाइमंचकलियं' मञ्चातिप्रञ्चकलितं कुरुत, कृत्वा घामुदेवपमुखाणां वह्नां

करेह, करित्ता वासुदेव वासुखलागं बहूगं रायसहस्रागं पतेयं २ नामं-
काहं आसगाहं अत्युपपञ्चत्युयाहं रएह २ एवमाणतिथं पञ्चपिणह)
इसके बाद द्रुपदराजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुझाया और बुलाकर
उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रिया ! तुमलोग जाओ-और स्वयंवर मंडप
को आसिक कर-जलसिबन से आर्द्र करो, संमार्जित करा-
कचवर आदि को उससे बाहिर कर उसे साफ करो एवं उपलित
करो मित्रे तथा गोबर स उसे लीं। सुगंधवरगंधित करो उसमें-
अगुरु, शुग्गुल, कपूर आदि को जलाकर उनकी गंध से उसे सुगंध
युक्त बनाओ पंचवर्ग के पुष्पों के पुंज उसमें जगह २ रखो। कृष्णा-
गुरु प्रवर कुन्दुरुष्क, तुरुष्कलोधान इनके चूर्ण को वहां आप्र में
खूब जलाकर उनके गंध से उसे बहुत हा अधिक मनोभिराम
बनाओ ज्यादा क्या-उस ऐसा करदी कि जिससे ऐसा ज्ञात हो कि
यह एक सुगंधित द्रव्यों को वर्तिका है। वहां मंचा के ऊपर मंचों को

भूयं मंचाइमंचकलियं करेह, करित्ता वासुदेव वासुखलागं बहूगं रायसहस्रागं पतेयं
२ नामंकाहं आसगाहं अत्युपपञ्चत्युयाहं रएह २ एवमाणतिथं पञ्चपिणह)

त्यारपथी द्रुपद राज्ञे कौटुम्बिक पुरोधेने गोलाण्या अने गोलावीने
कहुं के डे देवानुप्रिया ! तमे लोकं नन्वे अने स्वयंवर मंडपने आसिक
करे-पाणी छांटे, संमार्जित करे, कचरो वगेरे सादे करे, अने उपलित
करे, अटले के भाटी तेम ४ छात्रुथी लीं। सुगंधवर गंधित करे अटले के
ते स्थाने अगुरु, शुग्गुल, कपूर वगेरेना धूप करीने तेनी सुगंधर्था ते स्थानने
सुवासित करे। पंचवर्णना पुष्पपुंजना समूडे स्थाने स्थाने गोडवाने तमे मंडपनी
शोलाभां अलिपृद्धि करे। कृष्णागुरु, प्रवर, कुन्दुरुष्क, तुरुष्क, लोधान आ
अथा पहाथीना चूर्णने अग्निमा नापीने ते स्थानने सुगंधर्था चूर्ण व रम-
णीय बनानी हो. ते स्थानने तमे अटल सरस सुगंधमय बनानी हो के लेधी
ते सुगंधित द्रव्योनी वर्तिका (अग्ररजती) लेखु लागे. त्यां तमे मंचो उपर

राजसहस्राणां प्रत्येकं २ नामाङ्कितान्यासनानि 'अत्थुयपञ्चत्थुयाहं' आस्तृत प्रत्यवस्तृतानि=आञ्छादित प्रत्याञ्छादितानि 'रएह' रचयत्, रचयिच्वा एतामा-
ङ्गिकां प्रत्यर्पयत्, तेऽपि=कौटुम्बिकपुरुषाः, यावत् प्रत्यर्पयन्ति । 'तएणं ते'
वासुदेवमनुखाः बहुसहस्रसंख्यकाराजानः 'कळं' कल्पे प्रादुर्भूतप्रमातायां रज्ज्यां
यावत् तेजसा ज्वलति सूर्येऽभ्युदगते स्नाता यावत् सर्वालंकारविभूषिता हस्ति-
रुन्धवागता सकोरण्टमाल्यद्राम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन श्वेतवरचामरैरुद्भूयमानैश्च
जुका ह्य गज-यावत्-रथपदातिसमूहेन परिवृता सर्वद्वर्षा यावत् 'शङ्खपणहपट-
हादीनां रवेण यत्रैव स्थाने स्वयंवरमण्डपस्तत्रैशोषामच्छन्ति, उपागत्यानुप्रविशन्ति,
अनुपविश्य प्रत्येकं २ 'नामंकिपसु' नामाङ्कितेषु=स्वस्वनामाक्षरयुक्तेषु आसनेषु
निषीदन्ति=उपविशन्ति, निषद्य द्रौपदीं राजवरकण्यां 'पडिवालेमाणा' मति-
पालयन्तः=प्रतीक्षमाणास्तिष्ठन्ति ।

रखो । उन पर वासुदेव प्रमुख राजाओं के प्रत्येक के नाम के आसनों
को आस्तृत-शुभ्रवस्त्र से ढककर प्रत्यवस्तृत-और द्वितीय शुभ्रवस्त्र से
आञ्छादित कर रखो । रख कर फिर हमें पीछे इस सब कार्य के समाप्त
होने की खबर दो । (ते वि जाव पचचप्पिणंति) इस प्रकार राजा की
आज्ञानुसार उन कौटुम्बिक पुरुषों ने सब कार्य उचित रूप में करके
पीछे राजा को "सब कार्य आज्ञानुसार यथोचित हो चुका है" ऐसी
खबर करदी । (तएणं ते वासुदेवपासुक्खा बहवे रायसहस्सा कल्लं
पाउ० ण्हाया जाव विभूसिया हत्थिखंधवरगया सकोरंट० सेयवर-
चामराहिं ह्य गय जाव परिवुडा सच्चिड्डीए जाव रवेणं जेणेव सयंवरे
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपविसंति, अणुपविसित्ता पत्तेयं
नामंकिपसु आसणेसु निसीयंति, दोवइं रायवरकणं पडिवालेमाणा २

मंथोनी गेहपथु करे। त्यां तमे वासुदेव प्रमुख दरके दरके राजाना नामथी
अदित थयेवा आसनेने आस्तृत-स्वच्छ वस्त्रथी दांकीने, प्रत्यावस्तृत अने
भीज्ज स्वच्छ वस्त्रथी दांकी आ णधुं काम पतावीने तमे अमने णयर आयो।
(ते वि जाव पचचप्पिणंति) आ रीते राजनी आसा सांलणीने ते कौटुम्बिक
पुरुषेणे ते सुअणअ णधुं काम पतावी दीधुं अने त्यारपजी 'तमारी आसा
सुअण काम णधुं पती गयुं छे' अत्री णयर राजनी पासे पडोयावी।

(तएणं ते वासुदेवपासुक्खा बहवे रायसहस्सा कल्लं पाउ० ण्हाया जाव
विभूसिया हत्थिखंधवरगया सकोरंट० सेयवरचामराहिं ह्य गय जाव परिवुडा
सच्चिड्डीए जाव रवेणं जेणेव सयंवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपवि-
संति, अणुपविसित्ता पत्तेयं नामंकिपसु आसणेसु निसीयंति, दोवइं रायवरकणं

ततः खलु 'पंडुए' पाण्डुः नामको राजा 'कल्लं' कल्लये-प्रातः काले स्नातो यावत् सर्वालङ्कारविभूषितो हस्तिस्कन्धवरगतः सकोरण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण प्रियमाणेन श्वेतवरचामरैरुद्धूयमानैश्च युक्तो ह्यगजरथपदातिसमूहेन परिवृतः सर्वद्वर्चा यावत्-रवेण काम्पिल्यपुरस्य नगरस्य मध्यमध्येन मध्येधूत्वा निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव स्वयंवरमण्डपो यत्रैव वासुदेवप्रमुखा बहुसहस्रसंख्यका राजानस्त-जैवोपागच्छति, उपागत्य तेषां वासुदेवप्रमुखाणां करतलपरिगृहीतदशनखं

चिह्नंति) इस के बाद वे वासुदेव प्रमुख हजारों राजा दूसरे दिन जब रात्रि समाप्त हो चुकी प्रातः काल हो गया-सूर्य उदित हो चुका तब स्नान यावत् समस्त अलंकारों से विभूषित होकर, हाथियों पर चढ़े हुए प्रियमाण कोरंट पुष्पों की माला से विराजित छत्र से युक्त होते हुए उद्धूयमान श्वेत वरचामरों से वीज्यमान होते हुए एवं हय, गज यावत् रथ पदाति समूह से परिवृत्त होते हुए अपनी राज विभूति के अनुसार यावत् शंख पणत्र पटह आदि के साथ २ जहाँ वह स्वयंवर मंडप था-वहाँ आये। वहाँ आकर वे सब उसके भीतर प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर वे प्रत्येक जन अपने २ नाम से अंकित आसनों पर पृथक २ बैठ गये और राजवर कन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करने लगे। (तएणं से पंडुए राया कल्लं ष्हाए जाव विभूसिए सकोरंटं ह्यगयं कंपिल्लपुरं भज्जमज्जेणं निग्गच्छंति-जेणेव स्वयंवरमंडवे जेणेव वासुदेव पाण्डु-कखा वहवे रायसहस्ता तेणेव उवागच्छह, उवागच्छिता तेषि वासुदेव

पडिवाल्लेमाणा २ चिह्नंति)

त्यारपणी वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं की आज्ञा से स्नातो यावत् सर्वालङ्कारविभूषितो हस्तिस्कन्धवरगतः सकोरण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण प्रियमाणेन श्वेतवरचामरैरुद्धूयमानैश्च युक्तो ह्यगजरथपदातिसमूहेन परिवृतः सर्वद्वर्चा यावत्-रवेण काम्पिल्यपुरस्य नगरस्य मध्यमध्येन मध्येधूत्वा निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव स्वयंवरमण्डपो यत्रैव वासुदेवप्रमुखा बहुसहस्रसंख्यका राजानस्त-जैवोपागच्छति, उपागत्य तेषां वासुदेवप्रमुखाणां करतलपरिगृहीतदशनखं चिह्नंति) इस के बाद वे वासुदेव प्रमुख हजारों राजा दूसरे दिन जब रात्रि समाप्त हो चुकी प्रातः काल हो गया-सूर्य उदित हो चुका तब स्नान यावत् समस्त अलंकारों से विभूषित होकर, हाथियों पर चढ़े हुए प्रियमाण कोरंट पुष्पों की माला से विराजित छत्र से युक्त होते हुए उद्धूयमान श्वेत वरचामरों से वीज्यमान होते हुए एवं हय, गज यावत् रथ पदाति समूह से परिवृत्त होते हुए अपनी राज विभूति के अनुसार यावत् शंख पणत्र पटह आदि के साथ २ जहाँ वह स्वयंवर मंडप था-वहाँ आये। वहाँ आकर वे सब उसके भीतर प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर वे प्रत्येक जन अपने २ नाम से अंकित आसनों पर पृथक २ बैठ गये और राजवर कन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करने लगे। (तएणं से पंडुए राया कल्लं ष्हाए जाव विभूसिए सकोरंटं ह्यगयं कंपिल्लपुरं भज्जमज्जेणं निग्गच्छंति-जेणेव स्वयंवरमंडवे जेणेव वासुदेव पाण्डु-कखा वहवे रायसहस्ता तेणेव उवागच्छह, उवागच्छिता तेषि वासुदेव

(तएणं से पंडुए राया कल्लं ष्हाए जाव विभूसिए हस्तिस्कन्धवरगतः सकोरंटं ह्यगयं स्वयंवरमंडवे जेणेव वासुदेव पाण्डु-कखा वहवे रायसहस्ता तेणेव

शिर आवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन वर्धयित्वा कृष्णस्य वासुदेवस्य
श्वेतवरचामरं गृहीत्वा ' उववीयमाणे ' उपवीजयन् चामराद्भूनेन सेवमान-
स्तिष्ठति ॥ सू० २१ ॥

पामुक्त्वाणं करयल०द्वान्ता कणहस्त वासुदेवस्त सेयवरचामरं गहाय
उववीयमाणे चिह्नति) इस के बाद पांडु नामक राजा प्रातः काल स्नान
से निवृत्त कर और समस्त अलंकारों से विभूषित होकर अपने पट्ट
गजराज पर चढ़ कर कांपिल्य पुर नगर के बीच से होते हुए उस स्व-
यंवर मंडप में आये। जब ये गजराज पर चढ़े हुए आरहे थे उस समय
इन के ऊपर कोरंट पुष्पों की माला से विरजित छत्र, छत्रधारियों ने
तान रखा था। चामर ढोरने वाले शूभ्र चामर ढोर रहे थे। हथ, गज,
रथ एक पदादि समूहरूप चतुरंगिणी सेना इनके साथ चल रही थी।
राजसी ढाटबाट से ये सुसज्जित थे। विविध बाजे साथ में बजते हुए-
आरहे थे। मंडप में आकर ये जहां वासुदेव प्रमुख हजारों राजा बैठे
हुए थे-वहां गये। वहां जाकर उन्होंने उन वसुदेव प्रमुख हजारों राजाओं
को दोनों हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता के साथ नमस्कार किया। जय
विजय शब्दों द्वारा उन्हें बधाई दी। बधाई देकर फिर ये कृष्ण वासुदेव
के ऊपर श्वेतचामर लेकर ढोरते हुए वहां बैठ गये ॥ सू० २० ॥

उवागच्छद्, उवागच्छत्ता तैर्मि वासुदेवपामुक्त्वाणं करयल०द्वान्ता कणहस्त
वासुदेवस्त सेयवरचामरं गहाय उववीयमाणे चिह्नति)

त्यारपछी पांडु नामक राज सवारि स्नानथी परवारीने समस्त अलंका-
रथी पोताना शरीरने शङ्खगारीने अने पोताना मुग्ध गजराज उपर सवार
थधने कांपिल्यपुर नगरनी पच्छेथी पसार थधने स्वयंवर मंडपमां आया.
न्यारे तेओ गजराज उपर भेसीने आवता हता त्यारे कोरंट पुष्पानी भाणा-
ओथी शोभित छत्र छत्रधारिओओ ताण्णेतुं हतुं. आमर ढोगनाराओ श्वेत
आमरे ढोणी नहा हता, घोडा, हाथी, रथ अने पदाति समूह रूप चतुर गिणी
सेना तेमनी साथे साथे आली रही हती राजसी हाठथी तेओ सुसज्जित
हता, अनेक नतना वाढओ वागी रह्यां हतां मंडपमां आवीने तेओ न्यां
वासुदेव प्रमुख हलारे रणओ भेडेवा हता त्यां गया. न्यां वासुदेव प्रमुख
राजओ भेडेवा हता त्यां तेमनी पासे नधने तेओओ वासुदेव प्रमुख सर्व
राजओने पूण न नम्रपण्णे अने हाथ न्नेडीने नमस्कार कथां. रथ विनय
शब्दोथी तेओने अलिनदित कथां. अलिनदित कथां भाद तेओ कृष्ण वासु-
देवनी उपर श्वेत आमर देणता त्यां भेसी गया. ॥ सूत्र २० ॥

मूलम्—तएणं सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पहाया कयवलिकम्मा कय-
कोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइ मंगल्लाइ वत्थाइं
पवरपरिहिया जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ, करित्ता जेणेव
अंतेटेरे तेणेव उवागच्छइ ॥ सू० २१ ॥

टीका—‘तएणं सा’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं सा द्रौपदी राजवरकन्या
यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्नाता ‘कयवलिकम्मा’ कृतवलि-
कर्मा अन्नादिषु चायसादिप्राणिनां संविभागो बलिकर्म तत् कृतं यथा सा तथा
कृतकौतुरुमङ्गलप्रायश्चित्ता ‘सुद्धप्पावेसाइ’ शुद्धप्रवेश्यानि शुद्धानि स्वच्छानि
प्रवेश्यानि—सभायां प्रवेष्टुं योग्यानि, यत्परिधानेन सभायां लोकाः प्रवेष्टुमर्हन्ती-
त्यर्थः, मङ्गलानि=शुभानि वस्त्राणि ‘पवरपरिहिय’ प्रवरपरिहिता=पवरविधिना
प्रवरेण शोभाकारेण विधिना परिहिता=परिधानेन धृतवती आप्तत्वात् कर्तरिक्तः,

‘तएण सा दोवई रायवर कन्ना’ इत्यदि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इस के बाद (सा दोवई रायवर कन्ना) वह राजवर
कन्या द्रौपदी (जेणेव मज्जणघरे) जहाँ स्नान घर था (तेणेव उवागच्छइ)
उस ओर गई (उवागच्छित्ता पहाया कयवलिकम्मा कयकोउयमंगल
पायच्छित्ता) वहाँ जाकर २ उसने स्नानघरमें स्नान किया, नहाकर फिर
उसने काक पक्षि आदि को अन्नादि का भाग देने रूप बलि कर्म किया
कौतुक मंगल प्रायश्चित्त क्रिये। (सुद्धप्पावेसाइ मंगल्लाइ वत्थाइ पवर
परिहिया) सभा में प्रवेश के योग्य ५ शुद्ध स्वच्छ मांगलिक वस्त्र
अच्छी तरह विधि के अनुसार पहिरी हुई (जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ)

‘तएणं सा दोवई रायवरकन्ना’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्य.२पछी (सा दोवई रायवरकन्ना) ते राजवर कन्या द्रौपदी
(जेणेव मज्जणघरे) तथा स्नानघर छतुं (तेणेव उवागच्छइ) तथा गध.
(उवागच्छित्ता पहाया कयवलिकम्मा कय कोउयमंगलपायच्छित्ता) तथा गधने
तेषु स्नानघरमां स्नान कथुं. स्नान कथां भाद तेषु डागडा वगेरे पक्षीओने
अन्न वगेरेना भाग अर्पिने अलिकर्म कथुं—कौतुक मंगल प्रायश्चित्त कथां.
(सुद्धप्पावेसाइ मंगल्लाइ वत्थाइ पवरपरिहिया मज्जणघराओ पडिनिवत्तमइ)
सभायां प्रवेशना योग्य स्वच्छ मांगलिक वस्त्रो तेषु सरस रीते पहियां,
त्यारपछी ते स्नानघरधी अक्षर नीकणी (जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ) एत-

वस्त्राणि परिधाय ' जिणपडिमाणं अञ्चणं करेइ ' जिनप्रतिमानां, कामदेव प्रति-
मानांमर्चनं करोति विवाहविधि निर्विघ्न संपन्नार्थं मिति भावः ' करित्ता ' कृत्वा
' जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ ' यद्वैवान्तःपुरं तत्रैवो- पागच्छति ॥सू० २१॥

द्रौपदीचर्चा

यत्तु—“ जिणपडिमाणं अञ्चणं करेइ ” इति पाठं समाश्रित्य भगवतोऽर्हतः
पूजनं जैनधर्मानुयायिभिः कर्तव्यमित्याहुरतन्मिथ्यात्वविलसितम्, अस्य पाठस्य
चरितानुवादरूपत्वेन विधायकत्वासम्भवात् । विधिवाक्यं हि जिनाज्ञाया बोधक-
त्वेन विधायकं भवति, यथा—भगवता विधेयतयोपदिष्टं पद्मविधावश्यकं चतुर्विध-
जिन प्रतिमा का कामदेव की प्रतिमा वा निर्विघ्न विवाहकार्य के लिये^{३३}
अर्चन करती है अर्चन कर के फिर वह (जेणेव अंते उरे तेणेव उवा-
गच्छइ) जहाँ अन्तःपुर था वहाँ चली गई ॥ सू० २१ ॥

द्रौपदी चर्चा

जो “जिणपडिमाणं अञ्चणं करेइ” इस पाठका आश्रय लेकर प्रति-
मापूजन की उपयोगिता कहते हुए यह कहते हैं, कि “ अर्हत भगवान
की प्रतिमा की पूजा जैनधर्म के पालकों को करना चाहिये” यह उनका
कथन मिथ्यात्व का विलास ही है। क्यों कि यह “ जिनपडिमाणं ”
इत्यादि वाक्य चरित का ही अनुवादक है—अतः ऐसे वाक्य किसी
मुख्य अर्थ के विधायक नहीं हुआ करते हैं। चरितानुवाद से तो सिर्फ
जिस व्यक्ति ने जो २ आचरण किया है उसका ही बोध होता है। शास्त्र
विहित मार्गके निर्देशक विधिवाक्य हुआ करते हैं—क्यों कि कि ऐसे
वाक्य जिन भगवान की आज्ञाके विधायक होते हैं। जिस प्रकार षट्

प्रतिमानुं कामदेवनी प्रतिमानुं निर्विघ्ने विवाहकार्यं संपन्नं भवाना डेतुथी
अर्थान उरे छे, अर्थान उरनि (जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ)
व्यां रणुवास छे ते तरइ वती रडी। ॥ सूत्र २१ ॥

द्रौपदी चर्चा

केटलाक “जिणपडिमाणं अञ्चणं करेइ” आ पाठना आधारे प्रतिमा पूज-
ननी उपयोगिता सिद्ध करतां आ प्रमाणे कडे छे के “ अर्हत भगवाननी
प्रतिमानुं पूजनं जैनधर्म पालन करनाराओये करतुं ओधये ” तेभनुं आ
कथन सत्यथी अहुं हर छे ओटले के आ वात साव असत्यथी पूणुं छे. केभके
आ “ जिनपडिमाणं ” वगेरे वाक्य चरितना व अनुवादक छे ओटला भाटे
ओवां वयनेा केाई विशेष अर्थने स्पष्ट करनारां होता नथी. चरितानुवादथी
तो कृत वे भाष्यसे वे ते व्याखरणुं थ्युं छे, कृता तेनुं व ज्ञान थाय तेभ
छे. शास्त्रविहित मार्गने पतावनारा तो विधि वाक्यो व थाय छे, वेवी रीते

संघस्य कर्तव्यं भवति ।

तथा चोक्तम्—समणेण सावणं य अवस्सकायवच्यं हवइ जम्हा ।

अंतो अहोनिस्स य, तम्हा आवस्सयं नाम ॥ १ ॥ इति (अनुयोगद्वा०)

छाया—श्रमणेन श्रावकेण च अवश्यकर्तव्यकं भवति यस्मात् ।

अन्तेऽहर्निशस्य च तस्माद् आवश्यकं नाम ॥ १ ॥

“ जं इमं समणे वा समणी वा सावणं वा साविया वा ।

तच्चित्ते तम्मणे जाव उभओकालं छव्विहं आवस्सयं करेति (अनु०)

छाया—यदिदं श्रमणो वा श्रमणी वा श्रावको वा श्राविका वा ।

तच्चित्तः तन्मना यावद् उभयकालं षड्विधमावश्यकं नाम ॥ २ ॥

आवश्यक कार्यों को प्रतिपादन करने वाले वाक्य जिन प्रसु की आज्ञा के निर्देशक होने से साधु साध्वी श्रावक श्राविकारूप चतुर्विध संघ को उपादेय माने जाते हैं । शास्त्र में भी यही बात कही गई है

‘ समणे ण सावणं य ’ इत्यादि

शास्त्र विहित षट् आवश्यक कर्तव्य चतुर्विध श्रीसंघ को रात्री एवं दिनके अंतिमभागमें अवश्य करन चाहिये । उनके किये बिना मुनि का मुनिपन नहीं और श्रावकका श्रावकपन नहीं । अतः षट् आवश्यक कार्य अवश्य करने योग्य होनेसे आवश्यक रूप से प्रतिपादित हुए हैं ।

“ जं इमं समणे वा समणी वा सावणं वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे वा जाव उभओ कालं ” इत्यादि ।

इसलिये जब ये आवश्यक हैं तब चाहे साधु हो या साध्वी हो श्रावक हो या श्राविका हो कोई भी क्यों न हो उसका यह कर्तव्य हो

छ आवश्यक कार्योंनां प्रतिपादन करनारां वाक्येषु एत प्रसुनी आज्ञानां निर्देशक ढोवाने कारणे साधु साध्वी श्रावक श्राविका इषु चतुर्विध संघना माटे योग्य गण्यथ छे । शास्त्रमां पणु आ प्रभाणु कडेवाभां आणुं छेः—

“ समणेण सावणं य ’ इत्यादि

शास्त्रविहित छ प्रकारना आवश्यक कर्तव्येषु चतुर्विध संघने रात्रि तेभज् द्विपसना अंतिम भागमां योक्कस पणु आचरवां नेधंअे । तेनां आचरणु वगर मुनिंतुं मुनिपणुं नथी अने श्रावकंतुं श्रावकपणुं नथी । अेटला माटे छ आवश्यक कार्य योक्कस करवा योग्य ढोवाथी आवश्यक इपथी प्रतिपादित करवाभां आणुं छे ।

“ जं इमं समणे वा समणी वा सावणं वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे जाव उभओ कालं इत्यादि—आ प्रभाणु न्यारे तेओ ‘ आवश्यक ’ छे, त्यारे लडे साधु ढोय के साध्वी ढोय तेभज् श्रावक ढोय के श्राविका ढोय गमे ते केभ

चारितानुवादवचनस्य विधायकत्वाङ्गीकारे सूर्याभदेवचरिते शस्त्रादिवस्तु-
नामर्चनस्य श्रूयमाणतया तन्मते तदपि विधेयं स्यात् ।

द्रौपद्यऽपि तत्र खलु प्रतिमायां भगवतोऽर्हतः पूजनं न कृतम्, जैनप्रवचने
प्रतिमापूजनस्य विधानाभावात्, प्रतिमापूजनस्य षट्कायजीवहिंसासाध्यतया जैन-
धर्मत्वाभावाच्च ।

तथाहि—प्रतिमापूजाऽङ्गीकारे तदर्थं षट्कायहिंसाऽवश्यंभाविनी, एवं च
जाता है कि वह उन्हीं में चित्त लगाकर और मन को तन्मय करके
हसे उभय काल में अवश्य करें ।

चरित के अनुवादक कथन करने वाले—वाक्य को यदि विधेय रूप
से स्वीकार किया जाय तो सूर्याभदेवके चरित में सङ्गादि शस्त्र आदि
वस्तुओं की भी पूजा सुनी जाती है—अतः उनमें भी पूज्यता आजानी
चाहिये और इस प्रकार से पूजन के पक्षपातियों को उनका पूजन भी
विधेय कोटि में मानलेना चाहिये ।

द्रौपदी ने भी वहाँ प्रतिमा में जो भगवान अर्हत की पूजन नहीं
की उसका कारण यह है कि एक तो जैन प्रवचन में प्रतिमा पूजन के
विधान का अभाव है और दूसरे—यह प्रतिमा पूजन षट् काय के जीवों
की विराधना द्वारा साध्य होती है, इसलिये इस प्रतिमा पूजन में जिने-
न्द्र द्वारा प्रतिप्रादित-धर्म आत्मकल्याणसाधकरूप सम्यग्दर्शनादिक का
अभाव है । षट् काय के जीवों की विराधना से जो साध्य हुआ करता
है वहाँ सच्चे धर्म के दर्शन तक भी दुर्लभ हैं अतः प्रतिमा पूजन

न डोय तेनी अे इरज थध पडे छे के ते तेओमां ज घोतातुं चित्त पशैवीने
भनने तव्वीन करीने तेने अने काणमां अवश्य आचरे.

अरितने अनुवादक इपे अतावनार वाक्यने जे विधेय इपमां स्वीकारवामां
आवे तो सूथोबहेवना अरितमां शस्त्र वगेरे वस्तुओनी पणु पूजनी वात
सांखणवामां आवे छे. अेथी तेमनामां पणु पूज्यता आपी जवी जेधअे अने
आ रीते पूजनना पक्षपातीओअे तेमनी पूजा पणु विधेयना इपमां मान्य
करवी जेधअे.

द्रौपदीअे पणु त्यां प्रतिमामां लगवान अड्कितुं पूजन कथुं नथी
तेतुं कारणु अे छे के प्रथम तो जैन प्रवचनमां प्रतिमा-पूजनतुं विधान नथी
अने पीळुं आ प्रतिमा पूजन षट्कायना अवेनी विराधना द्वारा संपन्न डोय
छे, तेथी आ प्रतिमा पूजनमां अनेन्द्र वडे प्रतिपादित धर्म-आत्मकल्याण
साधक इप सत्य-दर्शन वगेरेना अलाव छे. षट्कायना अवेनी विराधनाथी

प्राणातिपातविरमणव्रतिनां मुनीनां प्रतिमापूजोपदेशे स्वधर्मस्य मूलोच्छेदः स्या-
देव । अत एव-जिनप्रणीतागमे प्रतिमापूजायाविधिर्नोपलभ्यते । प्रतिमास्थापनार्थं
अंगीकार करने में उस पूजन के समय में षट् काय के जीवों की विरा-
धना जब अवश्यंभावी है तब भला । हम इसे विधेय मार्ग कैसे मान
सकते हैं, और कैसे यह स्वीकार किया जा सकता है कि इस पूजन
का कर्त्ता सच्चे धर्म का उपासक है तथा प्रतिमापूजन को धर्म माना
जावे तो एक बड़ा भारी दोष यह भी आकर उपस्थित होता है कि सर्व
प्रकार के हिंसादिक पापों से सर्वथा विरक्त महाव्रती मुनिजन जब इस
प्रतिमापूजनरूप धर्म का उपदेश करेंगे तब वे भी कारितादिरूप कराने
आदि रूप से इसके कर्त्ता होने के कारण अपने मुनिधर्म के मूलतः ही
विध्वंसक माने जायेंगे । मुनिजन हिंसादिक सावध व्यापारों के कृत,
कारित एवं अनुमोदना इन तीन करण एवं तीन योग से त्यागी हुआ
करते हैं । जब ये प्रतिमापूजन रूप धर्म का गृहस्थों के लिये व्याख्यान
देंगे तब उनके व्याख्यान से प्रेरित हो गृहस्थ जन उस ओर अपनी
प्रवृत्ति चालू करने वाले होंगे, और उस प्रकार के उनके व्यवहार से
इस कार्य में षट्काय के जीवों की विराधना होने से उस विराधना

ने साथ थाय छे तेमां तो साथ धर्मना दर्शन सुद्धं दुर्लभ छे, ओटला
भाटे प्रतिमा-पूजन स्वीकारवामां ते पूजन करती वभते षट्कायना लुवोनी
विराधना न्यारे ओच्छसपण्णे थवानी छे त्यारे अमे तेने विधेय मार्ग कथा
आधारे मान्य करीओ. अने ओनी साथे साथे अमे ओ पणु डेवी रीते स्वीकार
करीओ के आ भततुं पूजन करनार साथ धर्मना उपासक छे ? ने प्रतिमा
पूजनने धर्म इपे स्वीकारीओ तो ओमां ओक लारे दोष ओ छे के सर्व प्रका-
रनां हिंसा वगेरे पापेथी .सर्वथा विरक्त महाव्रती मुनिजने न्यारे आ
प्रतिमा पूजन इप धर्मना उपदेश आपसे त्यारे तेओ पणु कारितादि इप
कराववा वगेरे इपथी ओना कर्ता इपे होवा भदल पोताना मुनि धर्मना मूलतः
विध्वंसक गण्णथी. मुनिजने हिंसा वगेरे सावध व्यापारना कृत, कारित अने
अनुमोदना आ त्रणु करणु अने त्रणु योगना त्यागी होय छे. न्यारे तेओ
प्रतिमा-पूजन इप धर्मतुं गृहस्थाने भाटे व्याख्यान आपसे त्यारे तेमां
व्याख्यानथी प्रेरार्थने गृहस्थाने ते प्रमाणे आचरथे न अने आ भतनां तेमां
आचरणुथी आ काममां षट्काय लुवोनी विराधना होवोथी ते विराधनाने
करावनार आ उपदेशक मुनिओ न गण्णथी त्यारे ओमना अहिंसा वगेरे भद-
प्रती त्रियोग अने त्रिकरणु विशुद्ध इपे डेवी रीते रही शकथे ? ओथी धर्म-
द्वेषने ध्वंसतां पणु तेओ आ भतना विचारानी भूलमां न मोटी भूल करी

देवायतनप्रतिमाऽऽरामरूपपादिकरणे तद्गुपदेशदाने च पृथिवीकायर्हिंसाया अव-
श्यम्भावः । देवायतनादिकरणे पूजाङ्गतयास्नान प्रतिमास्नपनवस्त्रभालनादिक-
रणे च तद्गुपदेशदाने चापूकायविराधनमपि, तथा-पूजाङ्गधूपदीपारात्रिकसम्पा-
दनं चाग्निकायविराधनया विना न संभवति, वायुकायर्हिसनं तु धूपदीपारात्रिका-

के कराने वाले ये उपदेशक मुनिजन माने जायेंगे—तब इनके अर्हिसादि
महाव्रत त्रियोग और त्रिकरण विद्युद्द कैसे रह सकेंगे ? अतः लाभ की
चाहना में इन विचारों की भूल में ही बड़ी भारी भूल होने से ये
अपने धर्म के सच्चे आराधक नहीं माने जा सकेंगे । इसलिये यह
घात अवश्य माननी चाहिये कि जिन प्रणीत आगम में प्रतिमापूजन
की विधि नहीं पाई जाती है ।

इसी प्रकार प्रतिमा स्थापन, प्रतिमा प्रतिष्ठा करवाना, मंदिर वगैरह
बनवाना एवं उस प्रतिमा की पूजा निमित्त वगीचा तथा कुआ आदि
का करवाना ये बातें पृथिवी कायिक जीवों की हिंसा के कारण हैं अतः
त्याज्य हैं । इनके बनवाने आदि का जो उपदेश करते हैं वे भी
पृथिवीकायिक जीवों की हिंसा से मुक्त नहीं हो सकते हैं । इसी प्रकार
पूजन का अंग होने से स्नान, प्रतिमा के अभिषेक तथा पूजन के वस्त्रों
के धोने साफ करने में और उसके उपदेश देने में अपूकाय के जीवों
की विराधना होती है, धूपखेना, दीपक जलाना, आरती उतारना
ये सब बातें अग्निकायिक जीवों की विराधना के विना नहीं हो सकती
है अर्थात् इनमें अग्निकायिक जीवों की विराधना अवश्यंभाविनी है ।

ऐसशे अने तेज्यो पोताना धर्मना साथ आराधक गणेशे नडि. ज्येटला भाटे.
आ वात ज्येष्ठसपण्णे भानी न लेवी ज्येष्ठजे के 'अन प्रथीत' आगमभां
प्रतिमा-पूजननी विधि भणती नथी.

आ प्रभाण्णे प्रतिमा-स्थापन, -प्रतिमा-प्रतिष्ठा करावनी, मंदिर वगैरे
गनाववां अने ते प्रतिमाणी पूजा भाटे उधान तेमज वाव वगैरे तैयार
कराववां ज्ये पृथिव-कायिक ज्येवानी हिंसाना करण्णु छे-ज्येटला भाटे त्याज्य
छे. तेने गनाववा भाटे जे लोकें उपदेश आपे छे तेज्यो पण्णु पृथिव-कायिक
ज्येवानी हिंसाथी मुक्त थथ शकता नथी. आ दीते न पूजनने भाटे स्नान,
प्रतिमानो अभिषेक तेमज पूजनना वस्त्रोने धोवाभां अने तेना उपदेशभां पण्णु
अपूकायना ज्येवानी विराधना डेय छे. धूप करवो, दीपक करवो, आरती
उतारवी आ मधी विधिज्यो अग्नि-कायिक ज्येवानी विराधना वगर संलवणी
शके तेम नथी ज्येटले के तेज्योभां अग्नि-कायिक ज्येवानी विराधना ज्येष्ठसपण्णे

दिभिश्चामरादिवीजनैर्नृत्यगीतवादित्रैश्च सविशदं भवति, वनस्पतिकायविराधनं च प्रतिमापूजानिमित्तकेऽनन्तकायकोमलविद्धिफलपुष्पपत्रसंग्रहे नियतं भवति । पृथिवीकायाद्याश्रिता बहुविधनिरपराधहीनदीनदुर्बलप्रकृतिभीरुसंगोपितशरीरा द्वीन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियान्ताह्रसा जीवा अपि छेदनभेदनस्वाश्रयविनाशजनितानन्ददुःखैस्तीव्रतरवेदनाद्युपलभ्येतस्ततः स्वलितपतिता त्रियन्ते ।

धूपकेधुंआ से, दीप तथा आरती की ज्योति से चमर आदि के ढोरने से, नृत्य करने से, गीत गाते समय मुख से निकले हुए गर्म वायु से, एवं वाजों के बजाने से वायुकायिक जीवों की विराधना होती हुई स्पष्ट मालूम देती है । वनस्पति कायिक जीवों की विराधना भी इस समय इस प्रकार से होती है, कि-मूर्ति पूजन के लिये उसके पूजक अनन्त कायिक ऐसे कोमल अनेक प्रकार के फल, पुष्प और पत्रों का संग्रह जो करता है इस प्रकार इस पूजन में षट्कायिक जीवों की हिंसा का आरंभ स्पष्ट देखा जाता है । तथा व्रस कायिक जीवों का भी इसके निमित्तहनन होता है और वह इस प्रकार से-कि जब पृथिवीकायिकादि जीवों का आरंभ प्रतिमा आदि के निर्माण में या देव आयतन (मन्दिर) आदि के कराने में किया जाता है तो उस समय उसके आश्रित जो बहुत से अनेक जाति के निरपराधी, हीन, दीन, दुर्बल, प्रकृति से भयशील तथा संगोपित शरीरवाले ऐसे द्वीन्द्रियादिकसे लेकर पंचेन्द्रिय तक जितने भी व्रस जीव रहते हैं वे सब के सब छेदन, भेदन, एवं स्वाश्रय के विनाश जनित अनन्त दुःखों से संतप्त होकर

थवानी ७ छे. धूपना धूमाडाथी दीपक अने आरतीनी न्योतथी चमर वगेरेने ढाणवाथी तेम७ वान्ठयो वगाडवाथी वायुकायिक लवोनी विराधना थाय छे तेनी हरेकने स्पष्ट प्रतीति थती ७ रडे छे. वनस्पति-कायिक लवोनी विराधना पणु ते वपते आ प्रभाणु थाय छे के मूर्ति-पूजन माटे पूल करानाओ अनन्त-कायिक ओत्रा डोमण धणु नतनां इणो, पुण्यो अने पत्रोने ओकडां करे छे आम आ पूलमां पडू-कायिक लवोनी हिंसा स्पष्टपणु देथाय छे. व्रस-कायिक लवोतुं पणु तेने लीधे डनन डोय छे. नेमके न्यारे पृथिव-कायिक वगेरे लवोनेो आरंल प्रतिमा वगेरेना निर्माणमां अथवा तो देव-आयतन (मन्दिर) वगेने पनाववामां करवामां आवे छे त्यारे तेना आश्रित ने धणु अनेक नतना निरपराधि, हीन, हीन, दुर्बल, प्रकृतिथी ओकणु तेम७ संगोपित शरीरवाणा ओत्रा द्वीन्द्रियादिकथां मांडीने पंचेन्द्रिय सुधीना नेटलां व्रस लवो रडे छे तेओ सवे छेदन, भेदन अने स्वाश्रयना विनाशथी अनन्त

ધર્મસ્ય લક્ષણં હિ-જિનાજ્ઞાપ્રયોજ્યમટ્ટતિકત્વમ્, “ આળાણ મામગં ધમ્મં ”
 इति भगवद्भवनात्, किं च-अगारानगारभेदेन धर्मस्य द्वैविध्यमभिधाय-भग-
 वत्ता-“ अणगारधम्मो ताव ” इत्यादिना सर्वप्राणातिपातविरमणादि-रात्रिभो-
 जनान्तान् अनगारधर्मानुपदिश्य तदनन्तरमिदं कथितम्—

‘अयमाउसो ! अणगारसामइए धम्मे पण्णत्ते एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उव-
 द्विए निग्गंथे वा निग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ’ (औपपातिसूत्रम्)
 अयमायुष्मन् ! अनगारसामायिकः=अनगारसिद्धान्तविषयः, धर्मः प्रज्ञप्तः ।
 एतस्य धर्मस्य ‘ शिक्षायामुपस्थितः ’=आराधकः, निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा विहर-
 और चहां से गिर पड़कर अन्त में मर जाते हैं ।

जिनेन्द्र की आज्ञा में प्रवृत्ति करना यही धर्म का लक्षण है । भग-
 वान का भी आचाराङ्गसूत्र अ- ६ उ- २ सू- ८ में यही कथन है
 “ ओणाए मामगं धम्मं ” इति । प्रभु ने जिस समय धर्म का उपदेश
 दिया उस समय उन्होंने इस धर्मके दो भेद कहे हैं इनमें एक-
 १ सागारी गृहस्थका धर्म और दूसरा अनगार-मुनिका धर्म । “ अन-
 गार धम्मो ताव ” इत्यादि सूत्र से समस्त जीवों की विराधना आदि
 से विरक्त होना यहां से लगाकर रात्रिभोजन का सर्वथा परिहार करना
 यहां तक जो कुछ कहा है वह सब अनगार धर्म को लेकर कहा गया है
 उसके बाद उन्होंने औपपातिक सूत्र में यह कहा है कि “ अयमाउसो
 अणगारसामइए धम्मे पण्णत्ते, एयस्स धम्मस्स सिक्खाए, उवद्विए
 निग्गंथे वा निग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ ” हे
 आयुष्मन् ! यह अनगारसामायिक-मुनियों का सिद्धान्त विषयक

હુઃખોથી સંતપ્ત થઇને અને ત્યાંથી પડી બંધને, બ્રહ્મ થઇને અતે મૃત્યુને ભેટે છે.

જિનેન્દ્રની આજ્ઞા પ્રમાણે અનુસરવું એ જ ધર્મનું લક્ષણ છે. આચારાંગ
 સૂત્ર અ-૬, ઉ-૨, સૂ-૮ માં પણ ભગવાને આ પ્રમાણે કહ્યું છે કે “ આળાણ
 મામગં ધમ્મં ઇતિ ” પ્રભુએ જ્યારે ધર્મ વિષે ઉપદેશ આપ્યો ત્યારે તેમણે
 આ ધર્મના બે ભેદ બતાવ્યા છે ૧ સાગાર ગૃહસ્થનો ધર્મ અને ૨ અનગાર
 મુનિનો ધર્મ. “ અનગારધમ્મો તાવ ” વગેરે સૂત્રથી સમસ્ત જીવોની વિરા-
 ધના વગેરેથી વિરક્ત થવું અહીંથી માંડી રાત્રિ-ભોજનનો સંપૂર્ણપણે ત્યાગ
 કરવો અહીં સુધી જે કંઈ કહ્યું છે તે બધું અનગાર ધર્મને ઉદ્દેશીને કહેવામાં
 આવ્યું છે. ત્યારપછી ઔપપાતિક સૂત્રમાં તેઓશ્રીએ આ પ્રમાણે કહ્યું છે કે—
 (અયમાઉસો અણગારસામઇએ ધમ્મે પણ્ણત્તે, એયસ્સ ધમ્મસ્સ સિક્ખાએ, ઉવદ્વિએ
 નિગ્ગંથે વા નિગ્ગંથી વા વિહરમાણે આળાએ આરાહએ ભવઇ) હે આયુષ્મન્ !

માણ આજ્ઞાયા આરાધકો ભવતિ । એતસ્ય ધર્મસ્યારાધક એવાજ્ઞાયા આરાધક
ઇત્યુક્ત્વાઽઽત્રૈવ ધર્મસ્ય પ્રકાશકતયા મૂલમિતિ બોધિતમ્ । તદનન્તરં ચ ભગવતા-

“ અગારધર્મમ્ દુવાલસવિહં આહ્વલઃ । તં જઠ્ઠા—પંચ અણુવ્વયાઈં, તિણિ-
ગુણવ્વયાઈં ચત્તારિ સિક્ખાવયાઈં ” ઇત્યાદિના દ્વાદશવિધં ધર્મં નિરૂપ્ય કથિતમ્ ।

‘ અયમાડસો ! અગારસામ્પદ્દે ધમ્મે પળ્લત્તે ’ એયસ્સ ધમ્મસ્સ સિક્ખાપ્પ ઉવ-
હિપ્પે સમણોવાસપ્પ વા સમણોવાસિયા વા વિહરમાણે આણાપ્પ આરાહપ્પ ભવહં ” ઇતિ ।

ધર્મ કહા ગયા હૈ—અર્થાત્ મુનિયોં કા યહ ધર્મ કહા ગયા હૈ । ઇસ
ધર્મ કી શિક્ષા મેં જો ઉપસ્થિત હોતા હૈ અર્થાત્ જો ઇસ ધર્મ કી-
આરાધના કરતે હૈ— આહે વે સાધુ હોં આહે સાધ્વી હોં કોઈ મી હો વે
જિનેન્દ્ર ભગવાન કી આજ્ઞા કે આરાધક હોતે હૈ । ઇસ ધર્મ કી આરા-
ધના કરનેવાલા જીવ હી જિનેન્દ્ર કી આજ્ઞા કા આરાધક માના ગયા હૈ
ઇસ કથન સે “ જિસ વાત મેં ભગવાન કી આજ્ઞા હો વહી ધર્મ કા મૂલ
હૈ અન્ય આજ્ઞા વિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ હૈ ” યહ વાત સમજાઈ ગઈ હૈ ઇસ કે
વાદ ભગવાન ને “ અગારધર્મમ્ દુવાલસવિહં આહ્વલઃ ઇતં જઠ્ઠા—પંચ
અણુવ્વયાઈં, તિણિગુણવ્વયાઈં ચત્તારિ સિક્ખાવયાઈં ” ઇસ સૂત્ર સે યદ્
પ્રકટ ક્રિયા હૈ ક્ષિ ગૃહસ્થ કા ધર્મ ૧૨ પ્રકાર કા હૈ ૫ અણુવત, ૩ ગુણ-
વ્રત ઓર ૪ શિક્ષાવ્રત । ઇસ પ્રકાર સે કથન કર “ અયમાડસો અગાર-
સામ્પદ્દે ધમ્મે પળ્લત્તે એયસ્સ ધમ્મસ્સ સિક્ખાપ્પ, ઉવહિપ્પે, સમણોવાસપ્પ
વા સમણોવાસિયા વા વિહરમાણે આણાપ્પ આરાહપ્પ ભવહં ” ઇતિ—હૈ

આ અનગાર સામાયિક મુનિયોનો સિદ્ધાન્ત વિષયક ધર્મ કહેવામાં આવ્યો છે
એટલે કે આ મુનિઓનો ધર્મ કહેવામાં આવ્યો છે. આ ધર્મની શિક્ષામાં જે
ઉપસ્થિત હોય છે એટલે કે આ ધર્મની આરાધના કરે છે—તેલે તેઓ સાધુ
હોય કે સાધ્વીઓ ગમે તે કેમ ન હોય તેઓ જીનેન્દ્ર ભગવાનની આજ્ઞાના
આરાધકો હોય છે આ ધર્મની આરાધના કરનારો જીવ જીનેન્દ્રના આરા-
ધક ગણાય છે. આ કથનથી એ વાત સમજાવવામાં આવી છે કે જે વાતમાં
ભગવાનની આજ્ઞા હોય તે જ ધર્મ છે, આજ્ઞા વિરુદ્ધ બીલું આચરણ અધર્મ
છે. ત્યારપછી ભગવાન વડે “ અગારધર્મમ્ દુવાલસવિહં આહ્વલઃ ઇતં જઠ્ઠા પંચ
અણુવ્વયાઈં, તિણિગુણવ્વયાઈં ચત્તારિ સિક્ખાવયાઈં ” આ સૂત્ર દ્વારા એ સ્પષ્ટ
કરવામાં આવ્યું છે કે ગૃહસ્થનો ધર્મ ૧૨ પ્રકારનો છે—૫ અણુવત, ૩ અણુવ્રત
અને ૪ શિક્ષાવ્રત. આ રીતે “ અયમાડસો અગારસામ્પદ્દે ધમ્મે પળ્લત્તે એયસ્સ
ધમ્મસ્સ સિક્ખાપ્પ ઉવહિપ્પે, સમણોવાસપ્પ વા સમણોવાસિયા વા વિહરમાણે

छाया—अयमायुष्मन् ! अगारसामयिको धर्मः प्रज्ञप्तः, एतस्य धर्मस्य शिक्षायामुपरिधतः—आराधकः श्रमणोपासको वा श्रमणोपासिका वा विहरमाणा आज्ञाया आराधको भवति । इति ।।

अत्रापि एतस्य द्वादशविधस्य धर्मस्य आराधक एव श्रमणोपासक आज्ञाया आराधक इति बोधयताऽऽहैव धर्मस्य मूलमिति बोधितम् ।

आचाराङ्गसूत्रेऽपि प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशे भगवताऽभिहितम्—“ जाए सद्दाए णिक्खंते तमेवमणुपालिज्जा—विजहिच्चा विसोत्तिचं पुव्वसंजोगं । पणया वीरा महावीहिं । लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ।” इति

आयुष्यमन् ! यह गृहस्थ का धर्म कहा गया है । इस धर्म की शिक्षा में उपस्थित-श्रमणोपासक-मुनिजनों के भक्त ऐसे श्रावकजन अथवा श्राविकाजन तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा के आराधक माने जाते हैं । इस सूत्र में भी यही प्रकट किया गया है कि इस १२ प्रकार के धर्म का आराधक ही श्रमणोपासक-श्रावक, श्राविका तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा का आराधक है इस प्रकार समझनेवाले श्री जिनेन्द्र देव ने आज्ञा ही धर्म का मूल है यह समझाया है ।

आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययनके तृतीय उद्देशे में भगवान ने यह कहा है “ जाए सद्दाए णिक्खंते तमेव मणुपालिज्जा विजहिच्चा विसोत्तिचं पुव्वसंजोगं । पणया वीरा महावीहिं लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” कि जिस श्रद्धा उत्साह से “अहंन प्रभु द्वारा प्रतिपादित सम्बन्धदर्शनादिक मोक्षके मार्ग है या नहीं है” इम प्रकार सर्व

आणाए आराहए भवइ” के आयुष्मन्त । आ गृहस्थ धर्म अतएवामं आय्ये छे. आ धर्मनी शिक्षामं उपस्थित श्रमणोपासक मुनिज्जेना भक्तजन-श्रावके अथवा तो श्राविकाज्जे तीर्थंकर प्रभुनी आज्ञाना आराधक गल्लय छे. आ सूत्रमं पल्लु आ प्रभाण्णे ७ स्पष्ट करवामं आय्ये छे के १२ प्रकारना धर्मना आराधके ७ श्रमणोपासक श्रावक श्राविका तीर्थंकर प्रभुनी आज्ञाने आराधके छे. आ रीते समलवताना श्री छुनेन्द्रदेवे आज्ञा ७ धर्मनुं भूण छे आम समलव्युं छे. आचारांग सूत्रना पळेदा अध्ययनना त्रील उद्देशकमं भगवाने आ प्रभाण्णे

कळुं छे—“ जाए सद्दाए णिक्खंते तमेवमणुपालिज्जा विजहिच्चा विसोत्तिचं पुव्वसंजोगं । पणया वीरा महावीहिं लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” के ७ श्रद्धा-उत्साहथी “अहंन प्रभु वडे प्रतिपादित सम्बन्ध दर्शन वगेरे मोक्षना मार्गो छे के नहि ” आ रीते सर्व आगम विषयक सर्व शंका तेभए

યયા શ્રદ્ધયા-સમ્યક્ત્વેન 'વિસોત્તિયં' વિસોતસિકાં=શક્તિ-સર્વશક્તિ-દેશ-શક્તિ-ચેત્યર્થઃ, યથા- 'કિમાર્હતો મોક્ષમાર્ગોઽસ્તિ ન વા' इति सर्वांगमविपयिका शक्ता सर्वशक्ता, तथा- "કિમપ્કાયાદયો જીવાઃ સન્તિ ન વા" इति देशशक्ता । તથા 'પુન્વસંજોગં' પૂર્વસંયોગં=માતાપિત્રાદિસમ્બન્ધં ધનધાન્યસ્વજનાદિસમ્બન્ધં વા, इदमुपलक्षणं-તેન પશ્ચાત્સંયોગમપિ શ્વશુરાદિકૃતં, 'વિજહિતા' વિહાય=પરિ-ત્યજ્ય 'ગિજ્જવંતે' નિષ્ક્રાન્તઃ=પ્રવ્રજિતઃ । 'તં' તાં શ્રદ્ધામુઃ 'અણુપાલિજ્ઞા એવ' અણુપાલયેદેવ-નિરતિચારં રક્ષેદિત્યર્થઃ ।

અથ- 'પરિશીલિતમાર્ગોઽનુગમ્યતે' इति लोकरीत्या शिष्यश्रद्धादृढीकरणाय पूर्वमहापुरुषाचरितोऽयं मार्ग इति ।

વીરાઃ—ભાવવીરાઃ સંયમાલુછાને વીર્યવન્તઃ 'મહાવીરિં' મહાવીરિઃ=મહાવીરિઃ-સમ્યગ્દર્શનાદિલક્ષણો મહામાર્ગઃ મહાપુરુષસેવિત્ત્વાત્, તાંમહાવીરિં

આગમ વિષયક સર્વશંકા કા તથા "અપ્ કાચિકાદિક જીવ હૈં યા નહીં" इस प्रकार की देशशंका और माता पिता आदि के साथ के संबंधरूप पूर्व संयोग एवं धन, धान्य, स्वजन आदि संबंध, उपलक्षण से श्वशुर आदिरूप प्रश्नात् संयोग का परित्याग कर यह जीव संसार आदि पदार्थां को हेय समझ उनसे सर्वथा विरक्त हो जाता है उस श्रद्धा का अतिचार आदि कों से रक्षा करनी चाहिये-उस श्रद्धा का अतिचार रहिक होकर मुनि को पालन करना चाहिये । जो मार्ग परि-शीलित होता है उस पर अनेक प्राणी चलते हैं यह लौकिकरीति है । इसीरीति के अनुसार शिष्यों की श्रद्धा को दृढ करने के लिये " यह मार्ग पूर्व में महापुरुषों द्वारा सेवित किया गया है " हमें समझाने के लिये सूत्रकार " पणया वीरा महावीरिं " इस अंश का कथन करते हैं

"અપ્કાચિક વગેરે જીવો છે કે નથી" આ જાતની દેશ શંકા અને માતા પિતા વગેરેની સાથેના સંબંધ રૂપ પૂર્વ સંયોગ અને ધન, ધાન્ય, સ્વજન વગેરે સંબંધ ઉપલક્ષણથી 'શ્વશુર' વગેરે રૂપ પશ્ચાત્ સંયોગનો પરિત્યાગ કરીને આ જીવ સંસાર વગેરે પદાર્થોને હેય સમજીને તેમના તરફ સંપૂર્ણપણે વિરક્ત થઈ જાય છે તે શ્રદ્ધાની અતિચાર વગેરેથી રક્ષા કરવી જોઈએ. તે શ્રદ્ધાનું પાલન મુનિએ અતિચાર વગર થઈને કરવું જોઈએ જે માર્ગ પરિ-શીલિત હોય છે તે તરફ ઘણું પ્રાણીઓ જાય છે, આ લૌકિક પ્રથા છે. આ પ્રથા પ્રમાણે શિષ્યોની શ્રદ્ધાને મળ્યાં પાલનવા માટે " આ માર્ગ મહા પુરુષો વડે સેવવામાં આવ્યો છે. " આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર " પણયા વીરા મહાવીરિં " આ વચનને દાંકે છે. વીર એ મહારાજા હોય છે-

‘પણ્યા’ પ્રળતા: = પ્રાપ્તા: કઠિનતરતપ: સંયમારાધનેન પ્રાપ્તવન્ત ઇત્યર્થઃ । અય-
મેવ માર્ગો મોક્ષાવાપ્તિકરોઽગ્રેપસંયમિસેવિતત્વાન્, તીર્થક્લરાદિમહાપુરુષા અપિ
માર્ગમિયમનુશીલિતવન્ત ઇતિ વિશ્વસનીયતયા શિષ્યાણાં શ્રદ્ધાપૂર્વકં પ્રવૃત્તિર્થયા
સ્યાદિતિભાવઃ ।

કથિન્મન્દધીઃ શિષ્યોઽનેકદૃષ્ટાન્તૈર્વોધ્યમાનોઽપિ અપ્કાયાદિજીવેષુ ન
શ્રદ્ધાતીતિ તણુદિશ્ય કથયતિ—હે શિષ્ય ! તવ મતિર્થયપિ અપ્કાયજીવિવિષયે ન

વીર દો પ્રકાર કે હોતે હેં ? દ્રવ્યવીર ઓર દુસરે ભાવવીર । સંયમ કે
અનુષ્ઠાન કરને મેં જો શક્તિસંપન્ન હેં વે આવવીર હેં । યે જીવ સમ્યગ્-
ર્શન આદિ લક્ષ્મરૂપ હસ મહાવિસ્તૃતમાર્ગ કો કિ જો મહાપુરુષોં દ્વારા
સેવિત હુઆ હૈ કઠિનતર તપ ઓર સંયમ કી આરાધના સે પ્રાપ્ત કર
લિયા કરતે હેં । કહનેકા સાર યહો હૈ કિ આવવીર યહી અપને ચિત્તમેં
વિચાર ક્રિયા કરતે હેં કિ સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્ચારિત્ર ઓર
સમ્યગ્તપ રૂપ હી માર્ગ હૈ ક્યોં કિ હસી સે મુક્તિ કી પ્રાપ્તી હોતી હૈ—
હસીલિયે હસ માર્ગકા સમસ્ત સંયમીજીવોને પૂર્વ મેં સેવન ક્રિયા હૈ ઓર
તો કયા સ્વયં તીર્થકર પ્રશુ ને મી હસી માર્ગ કી પરિશીલના કી હૈ ।
હસલિયે હસ માર્ગ મેં પ્રવૃત્તિ સર્વહિત વિધાયી હૈ હસ પ્રકાર યહ માર્ગ
વિશ્વાસ યોગ્ય હોને સે શિષ્યજન મી શ્રદ્ધાપૂર્વક હસમેં પ્રવૃત્તિ કરેં ।

કોઈ બન્દવુદ્ધિવાલા શિષ્ય અનેક દૃષ્ટાન્તો દ્વારા સમજાયે જાને
પર મી યદિ અપ્કાય આદિ જીવોં કી શ્રદ્ધા સે રહિત હોતા હૈ તો ઉસે

૧ દ્રવ્ય-વીર, ૨ ભાવ-વીર. સંયમના અનુષ્ઠાનમાં જે શક્તિશાળી છે તે ભાવ
વીર છે. આ બધા જીવો સમ્યાગ્-દર્શન વગેરે લક્ષણ રૂપ આ વિસ્તૃતમાર્ગને
કે જે મહાપુરુષો વડે સેવવામાં આવ્યું છે—કઠણ તપ અને સંયમની આરા-
ધનાથી સેળવી લે છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે ભાવ-વીરો પોતાના મનમાં
આ પ્રમાણે જ વિચારો કરતા રહે છે કે ખરી રીતે સમ્યગ્ જ્ઞાન, સમ્યગ્ દર્શન,
સમ્યગ્ ચારિત્ર રૂપ જ માર્ગ છે કેમકે મુક્તિની પ્રાપ્તિ એનાથી જ થાય છે.
એટલા માટે જ પહેલાં થઈ ગયેલા બધા જીવોએ આ માર્ગનું જ અનુસરણ
કર્યું હતું. તીર્થકર પ્રભુએ જાતે પણ આ માર્ગની જ પરિશીલતા કરી છે.
એથી આ માર્ગમાં પ્રવૃત્ત થવું તે બધી રીતે હિતાવહ છે. આ પ્રમાણે આ
માર્ગ વિશ્વસનીય હોવા બદલ શિષ્યો પણ શ્રદ્ધા રાખીને તેમાં પ્રવૃત્ત થાય.
હેઈક મંદ મુદ્ધિ ધરાવનાર શિષ્ય ઘણા દૃષ્ટાન્તો વડે સ્પષ્ટ કરવામાં
આવવા છતાં પણ જે અપ્કાય વગેરે જીવોની શ્રદ્ધાથી રહિત હોય છે તે

परिस्फुरति, तद्विषये विशेषज्ञानाभावात्, तथापि भगवदाज्ञया श्रद्धा नितरां विधेयेत्याशयेनाह—“ लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” इति ।

“ लोगं ” लोकम् अत्र लोकशब्देन प्रकरणवशादप्याय लोक एव गृह्यते, तमप्रायलोकं, च शब्देन अन्यांश्चापकायाश्रितान् जीवान् “ आणाए ” आज्ञया तीर्थंकर वचनेन “ अभिसमेच्चा ” अभिसमेत्य अभिमुख्येन सम्यग्ज्ञात्वा, अप्-कायादयो जीवाः सन्तीत्येवमवबुध्येत्यर्थः, “ अकुतोभयं ” नास्ति कुतश्चित्

समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्य ! तुम्हारी बुद्धि अप्कायिक आदि जीवोंकी श्रद्धा करनेमें उन विषयक विशेषज्ञानके अभावसे यदि समर्थ नहीं है, तौ भी भगवान् की आज्ञा से तुम्हें उनके विषय में अपनी श्रद्धा को दूषित नहीं होने देना चाहिये—अर्थात् भगवान् की आज्ञा प्रमाण मानकर तुम्हें उनके विषय में अपनी अतिशय श्रद्धा जाग्रत करनी चाहिये । सूत्रकार इसी अभिप्राय से कहते हैं कि “ लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” इति । अप्काय रूप लोक को तथा “ च ” शब्द से अन्य अप्काय के अश्रित जीवों को तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा से अच्छी तरह जानकर उनकी आज्ञानुसार उनका अस्तित्व मानकर आत्मकल्याण के अभिलाषी मुनिगणों को संघम का पालन करना चाहिये । सूत्रस्थलोक शब्द यहाँ प्रकरण के वश से अप्काय का बोधक है । “ च ” शब्द से तदाश्रित अन्य जीवों का ग्रहण हुआ है । “ अकुतोभयं ” शब्द का अर्थ संघम है कहीं से भी किसी

तेने समझववा भाटे सूत्रकार कडे छे के छे शिष्य ! तमारी बुद्धि अप्कायिक वगेरे लोवानी श्रद्धा करवामां तेमना विषे सविशेष ज्ञानना अभावना लीधि जे समर्थ नथी तो पणु भगवाननी आज्ञाथी ते प्रत्ये तमे पोटानी श्रद्धाने दूषित थना देशी नहिं छेटवे के भगवाननी आज्ञा प्रमाण मानीने भदं बुद्धिवाणा शिष्याञ्जे तेमना प्रत्ये पोटानी वधादेमां वधादे श्रद्धा लक्षत करनी जेधञ्जे. सूत्रकार आ प्रयोगनथी ज कडे छे के “ लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” इति । अप्काय रूप लोकने तेमज ‘ च ’ शब्दथी जीव अप्कायाश्रित लोवोने तीर्थंकर प्रभुनी आज्ञाथी सारी घेठे समलने तेमनी आज्ञा मुज्ज तेमनुं आस्तित्व मानीने आत्मकल्याणने धम्भनारा मुनि-ज्जाञ्जे संघमनुं पालन करवुं जेधञ्जे. सूत्रमां आवेवो ‘ लोक ’ शब्द अर्द्धा प्रकरण वशात् अप्कायने वाचक छे. ‘ च ’ शब्दथी तदाश्रित जीव लोवोनुं श्रद्धेय थयु छे. ‘ अकुतोभयं ’ शब्दने अर्थ संघम छे. केध पणु जग्या-ज्जाञ्जे केध पणु रीते लोवोने जेनाथी लय डोटो नथी ते अकुतोभय-संघम

केनापि प्रकारेण प्राणिनां भयं यस्मात् सोऽकुतोभयः=संयमस्तम्, “अणुपालिञ्जा” अनुपालयेत् इति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः । सर्वदा जीवाभिरक्षणरूपसंयमानुपालने सावधानतया यत्नः कार्यः इत्यर्थः ।

अत्र “जाए सद्वाए निक्खंते तमेवमणुपालिञ्जा विजहिता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं” इत्यनेन श्रद्धाया आराध्यत्वे जिनाज्ञायाः सद्भावात् श्रद्धाया धर्मत्वं सिद्धम् ।

श्रद्धादृढीकरणमपि च धर्मस्तदर्थं “पणया वीरा महावाहिं” इति भगवदुपदेशस्य सद्भावात् ।

“लोगं च आणाए अभिसमेच्चा” इत्यनेनाज्ञायाः षट्कायजीवतत्त्वज्ञानहेतुत्वेन वर्णनात् तत्त्वज्ञानस्य धर्मत्वम् ।

भो प्रकार से जीवों को जिससे भय नहीं होता है वह अकुतोभय-संयम है भाव इसका यही है कि आत्म कल्याण के इच्छुक मुनियों को जीवों के संरक्षण रूप संयम की आराधना करने में सावधानता पूर्वक प्रयत्नशील रहना चाहिये । यहां “जाए सद्वाए निक्खंते तमेवमणुपालिञ्जा, विजहिता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं” इस सूत्रांश से यह बात समझाई गई है कि श्रद्धा की आराधना में जिनेन्द्र की आज्ञा का सद्भाव है अतः वहां धर्म है । अपि च श्रद्धा की दृढता करना यह भी धर्म है । इसी निमित्त “पणया वीरा महावाहिं” यह भगवान का उपदेश है ।

“लोगं च आणाए अभिसमेच्चा” इस सूत्रांश से यह प्रकट होता है कि जब जिनेन्द्र की आज्ञा षट् कायिक जीवों के वास्तविक ज्ञान होने में हेतुरूप से वर्णित हुई है तो इस स्थिति में तत्त्वज्ञान धर्म है ।

छे. भतलभ ज्ये छे के आत्मकल्याण धुंछनारा मुनिज्याने लुवेनी रक्षा रूप संयमनी आराधना करवाभां सावधान थधने प्रयत्न करतां रडेवुं ज्येज्ये. अर्द्धा “जाए सद्वाए निक्खंते तमेवमणुपालिञ्जा, विजहिता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं” आ सूत्रांश वडे आ वात रूप्य करवाभां आवी छे के श्रद्धानी आराधनाभां लुनेन्द्रनी आज्ञानो सद्भावा छे ज्येठला भाटे तेज धर्म छे. अने श्रद्धाने भजभूत भनाववी ते पणु धर्म छे. आ निमित्ते ज “पणया वीरा महावाहिं” आ लजवाननो उपदेश छे.

“लोगं च आणाए अभिसमेच्चा” आ सूत्रांश वडे आ वात रूप्य थाय छे के न्यारे लुनेन्द्रनी आज्ञा षट्कायिक लुवे विषे वास्तविक ज्ञान कराववा भाटे ज करवाभां आवी छे त्यारे आवी परिस्थितिभां तत्त्वज्ञान धर्म छे.

‘અક્રુતોભયં’ इत्यस्य—“अणुपालिञ्जा” इत्यनेनान्वयाद् अकृतोभयं-संयमम् अनुपालयेदित्यपि भगवदाज्ञैव, तथा च संयमस्याऽऽराध्यतया विधानात् संयमस्य धर्मत्वं बोध्यम् ।

अपरं च—उत्तराध्ययनसूत्रे—“धम्माणं कासवो मुहं” इत्युक्तम् “धम्माणं” धर्माणां श्रुतधर्माणां चारित्रधर्माणां च “कासवो” काश्यपः काश्यपगोत्रीयः श्रीमहावीरवर्धमानस्वामी “मुहं” मुखं वक्ता वर्तते ।

अहिंसादौ खलु भगवतोऽर्हत आज्ञा वर्तते, पर्यागमेषु । यथा—आचाराङ्गसूत्रे—
“से वेमि—जे य अतीता, जे य पड्डुप्पन्ना, जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो, ते सव्वेवि एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेति एवं परूवेति—

‘अकृतोभयं’ इस पद का “अणुपालिञ्जा” इस क्रियापद के साथ अन्वय करने से यह अर्थ होता है कि अकृतोभयरूप संयम का पालन करना चाहिये, यह भी जब भगवान की आज्ञा ही है तो इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भगवान की आज्ञा से संयम आराधन करने लायक होने से धर्म रूप है। अपरं च—उत्तराध्ययन सूत्र में “धम्माणं कासवो मुहं” यह कहा है इसका भाव यह है कि श्रुत एवं चारित्र धर्मों के मुख—वक्ता—काश्यप गोत्रीय श्री महावीर वर्धमान स्वामी हैं। देखो उन्होंने ने आगमों में अहिंसादिक महाव्रतों के पालने का मुमुक्षुओं=‘मोक्षाभिलाषियों के लिये इस प्रकार आज्ञा प्रदान की है “से वेमि—जे य अतीता जे य पड्डुप्पन्ना जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वे वि एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेति एवं परूवेति ” सव्वे

‘अकृतोभयं’ आ पहनो ‘अणुपालिञ्जा’ आ क्रियापदની સાથે અન્વય કરવાથી આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે કે અક્રુતોભય રૂપ સંયમનું પાલન કરવું જોઈએ. આ પછી ભગવાનની જ આજ્ઞા છે તેો એનાથી આ વાત સ્પષ્ટ થઈ નાય છે કે ભગવાનની આજ્ઞાથી ‘સંયમ’ આરધવા યોગ્ય હોવાથી ધર્મરૂપ છે. અને વળી ‘ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર’ માં “ધમ્માણં કાસવો મુહં” આ પ્રમાણેનો ઉલ્લેખ છે. એનો અર્થ એમ થાય છે કે શ્રુત અને ચારિત્ર ધર્મોના મુખ્ય—વક્તા—કાશ્યપ ગોત્રીય શ્રી મહાવીર વર્ધમાન સ્વામી છે. તેઓશ્રીએ અહિંસા વગેરે મહાવ્રતોના પાલન કરનારા યોક્ષ ધ્વિચિનારા લોકોને માટે આગમોમાં આ જાતની આજ્ઞા કરી છે કે:—

“સે વેમિ—જે ય અતીતા જે ય પડ્ડુવન્ના જે ય આગમિસ્સા અરહંતા ભગવંતો તે સવ્વે વિ એવમાઈક્ખંતિ એવં ભાસંતિ એવં પણ્ણવેતિ એવં પરૂવેતિ સવ્વે

सर्वे पाणा, सर्वे भूया, सर्वे जीवा, सर्वे सत्ता न हंतव्या न अज्जावेयव्या, न किलायव्या, न उद्देव्यव्या ।

एस धम्मे सुद्धे णितिए सासए, समेच्चा लोयं खेयनेहिं पवेइए ।

आर्हतधर्मएव श्रद्धेय इति बोधयित्तु श्रीसुधर्मास्वामीप्राह—“ से वेमि ” इत्यादि । तीर्थकरैः स्वस्वशिष्येभ्यो यत् सम्यक्त्वमुक्तं तदहं ब्रवीमि । यद्वा— ‘से’ इत्यस्य ‘स’ इतिच्छाया । येन मया भगवतः श्री वर्धमानरचामिनरतीर्थकरस्य सकाशे तद्वचनतरतस्वज्ञानं लब्धं, सोऽहं ब्रवीमि ।— भगदुक्तार्थमेव कथयामि, तस्मान्मम वाक्यं श्रद्धेयमितिभावः ।

पाणा, सर्वे भूया, सर्वे जीवा, सर्वे सत्ता न हंतव्या, न अज्जावेयव्या, न परिषेत्तव्या, न परितावेयव्या न किलामेयव्या, न उद्देव्यव्या । एस धम्मे सुद्धे णितिए समेच्चा लोयं खेयनेहिं पवेइए ” (आ. सू० अ० ४ उ० १ सू० १) श्री सुधर्मा स्वामी इस सूत्र द्वारा जम्बूस्वामी को यह समझाते हैं कि अर्हतप्रभु द्वारा प्रतिपादित धर्म ही श्रद्धा करने योग्य हैं—वे इसमें कहते हैं कि तीर्थकर देवों ने अपने २ शिष्यों के लिये जिस सम्यक्त्व का कथन किया है वही तत्त्व उन तीर्थकर प्रभुके वचनों द्वारा श्रवण कर मैं तुम्हें समझाता हूँ अर्थात् मैं अपनी निजी कल्पना से इस विषय में कुछ भी न कह कर जो कुछ तुम्हें समझाऊँगा वह तीर्थकर प्रभु की मान्यतानुसार ही समझाऊँगा अतः इस में संदेह के लिये थोड़ी सी भी जगह नहीं है—इसलिये इस मेरे कथन का मूल-स्रोत जब श्री तीर्थकर प्रभु का उपदेशश्रवण है तब यह श्रद्धेय-श्रद्धा करने योग्य आवश्यक है भगवान् का यह आदेश है—कि जितने भी

पाणा, सर्वे भूया, सर्वे जीवा, सर्वे सत्ता न हंतव्या, न अज्जावेयव्या, न परिषेत्तव्या, न परितावेयव्या, न किलामेयव्या, न उद्देव्यव्या । एस धम्मे सुद्धे णितिए समेच्चा लोयं खेयनेहिं पवेइए ” (आ. सू. अ. ४ उ. १ सू. १) श्री सुधर्मा स्वामी आ सूत्र वडे श्री जम्बू स्वामीने आ प्रमाणु समन्तये छे के अर्द्धत प्रभु वडे प्रतिपादित धर्म ज श्रद्धेय छे, तेओ आ सूत्रमां कडे छे के तीर्थकर देवोओ पानपोताना शिष्यो भाटे ने सम्यक्त्वतुं निरूपण कथुं छे ते ज तत्त्व तीर्थकर प्रभुना सुप्रथी श्रवण कथी भाह हुं तमने समन्तवी रह्यो छुं. ओटके के हुं पोतानी ओणे आमां कथं पणु उभेयां वगर तीर्थकर प्रभुनी मान्यता सुज्जय ज तमने समन्तवीश. ओधी आमां शकाने भाटे सडे ज पणु स्थान नथी. आ प्रमाणु न्यारे मारा कथननो भूण ओत श्री तीर्थकर प्रभुतुं उपदेश श्रवण छे त्तारे ते श्रद्धेय ज छे. भगवान्नी आ प्रमाणु आमां छे के

મગવદુક્તાર્થમાહ—“ જે ય અતીતા ” ઇત્યાદિ । યે ચ અતીતાઃ=અતીતકાલિકાઃ, યે ચ ‘ પહુપન્ના ’ પ્રચ્યુત્પન્નાઃ=વર્તમાનકાલિકાઃ પશ્ચમરતેષુ પશ્ચૈરવતેષુ પશ્ચમઠાવિદેહેષુ વર્તમાનાઃ, યે ચ “ આગમિસ્સા ” આગામિનઃ=મવિપ્યત્કાલધાવિનઃ, તે સર્વેઽપિ અર્હન્તો મગવન્તઃ; એવં=ચક્ષ્યમાણપ્રકારેણ “ આહ્વસંતિ ” આહ્વાન્તિ=પરમશ્રાવસરે વચયન્તિ । અત્ર વર્તમાનગ્રહણમુપલક્ષણં તેનાતીતાનાગ-

ભૂતકાલ મેં તીર્થંકર હુપ હેં, વર્તમાન કાલ મેં મી પાંચ મરત, પાંચ ઁરવત તથા પાંચ મહાવિદેહ સમ્બન્ધી જિતને મી તીર્થંકર હેં ઁર મવિવ્યત કાલ મેં જો તીર્થંકર હોંગે ઁન સવ ને જવ ઁનસે કિસી ને પ્રશ્ન કિયા, તો ઁક યહી ઁત્તર દિયા હૈ દેવ ઁવં મનુવ્યોં કો સમા મેં અપતી સર્વંભાષા મેં પરિણમિત હુઈ અર્ધમાગધીરૂપ દિવ્યધ્વનિ દ્રારા ઁન્હોં ને સમસ્ત જીવોં કો યહી સમજ્ઞાયા હૈ, ઁર હેતુ, દૃષ્ટાન્તોં દ્રારા ઇસી ખાત કી પુષ્ટિ કી હૈ । વક્તવ્ય વિષય કે મેદ ઁર પ્રમેદોં કો પ્રકટ કરતે હુપ ઁન્હોં ને અઁઁી તરહ સે યહી પ્રરૂપણા કી હૈ કિ સમસ્ત પ્રાણી પૃથિવી આદિક ઁકેન્દ્રિય સ્થાવર જીવોં સે લેકર દ્વીન્દ્રિયાદિક પંચેન્દ્રિય જીવ પર્યન્ત ત્રસ જીવ, ચતુર્દશ મૂતગ્રામરૂપ સમસ્ત મૂત, નરકગતિ, તિર્થશ્ચગતિ, મનુવ્યગતિ ઁવં દેવગતિ કે સમસ્ત જીવ, ઁવં અપને દ્રારા કિયે ગયે કર્મોં કે ઁદય કે ફલ સ્વરૂપ સુખ દુઃખ આદિ કા અનુમવ કરને વાલે સમસ્ત સત્વ દળડ આદિ દ્રારા કર્મોં મી તાડન કરને ઁગ્ય, ઘાત કરને ઁગ્ય, યે મેરે આધીન હેં ઁસા હ્યાલ

ભૂતકાળમાં જેટલા તીર્થંકર થયા છે, વર્તમાનકાળમાં પણ પાંચ ભરત, પાંચ ઁરવત તથા પાંચ મહાવિદેહ સંબંધી જેટલા તીર્થંકરો છે અને ભવિવ્યકાળમાં જેટલા તીર્થંકરો થશે તે બધામાંથી ન્યારે કોઈએ પ્રશ્ન કર્યો ત્યારે એક જ ઁત્તર આપ્યો છે, દેવ અને માણસોની સલામાં પોતાની સર્વ ભાષામાં પરિણમિત થયેલી અર્ધ માગધી રૂપ દિવ્યધ્વનિમાં તેઓએ બધા જીવોને એજ વાત સમજાવી છે અને હેતુ તેમજ દૃષ્ટાંતો વડે આ વાતનું જ સમર્થન કર્યું છે. વક્તવ્ય વિષયને ભેદ અને પ્રમેદોને સ્પષ્ટ કરતાં તેઓએ સરસ રીતે એજ પ્રરૂપણા કરી છે કે સમસ્ત પ્રાણીઓ પૃથિવ વગેરે એકેન્દ્રિય સ્થાવર જીવોથી માંડીને દ્વીન્દ્રિય વગેરે પંચેન્દ્રિય જીવ સુધીના ત્રસ જીવ, ચતુર્દશ ભૂતગ્રામ રૂપ સમસ્ત ભૂત, નરક ગતિ, તિર્થંચ ગતિ, મનુવ્ય ગતિ અને દેવ ગતિના બધા જીવો, અને પોતાના વડે કરવામાં આવેલાં કર્મોના ઉદયના દળ સ્વરૂપ સુખ દુઃખ વગેરેને અનુભવતા બધા સત્વો દંડ વગેરેથી કોઈ પણ વખત તાડન કરવા ઁગ્ય કે ઘાત કરવા ઁગ્ય, કે એઓ મારા આધીન છે

तयोरपि ग्रहणम्, तथा च—‘ एवमाचख्युः, एवमाख्यास्यन्ति ’ इत्यापि योजनीयम् । एवं सर्वासु क्रियासु योजनीयम् । तथा—एवं “ भासन्ति ” भावन्ते=सुर-
नरपरिषदि सर्वजीवानां स्वस्वभाषापरिणामिन्याऽर्धमागध्या भाषया ब्रुवन्ति ।
तथा—एवं“ पणवेति ” प्रज्ञापयन्ति=हेतुदृष्टान्तादिना प्रकर्षेण बोधयन्ति । तथा—
एवं ‘ परुवेति ’ प्ररूपयन्ति=तत्तद्भेदं प्रदर्श्य प्रकर्षेण निर्णयन्ति ।

ननु सर्वेऽप्यर्हन्तो भगवन्तः—किमाख्यान्तीत्यादिजिज्ञासायामाह—‘ सव्वे-
पाणा ’ इत्यादि । सर्वे=निरवशेषाः, प्राणाः=प्राणिनः, पृथिव्यादयः स्थावरा

कर परिग्रह रूप से संग्रह करने योग्य, अन्न, पान आदि के निरोध एवं गर्मासर्दी आदिमें रखने से कभी भी पीडा पहुँचाने योग्य और विषप्रदान एवं शस्त्र के आघात से विनाश करने योग्य नहीं हैं ।

सूत्र में “ आइक्खन्ति—आख्यान्ति ” यह वर्तमानकालिक—क्रियापद अतीत और अनागतकालिक क्रियापद का उपलक्षक है । अतः इस से यह अर्थ प्रतीत होता है कि उन तीर्थंकर प्रभुओं ने वर्तमान में जैसा कहा है वैसा ही उन्होंने ने या अन्य भूत कालिक तीर्थंकरों ने भूत काल में भी कहा है एवं आगामी कालमें भी वे वैसा ही कहेंगे । इसी प्रकार “ भासन्ति, पणवेति ” इत्यादि क्रियापदों के साथ भी अतीत और अनागत कालिक क्रियापदोंका संबंध कर लेना चाहिये । इस कथन से सूत्रकार ने उनके कथन में परस्पर में विरुद्ध अर्थकी प्ररूपणा का अभाव प्रदर्शित किया है जो कुछ उन्होंने ने कहा है । वह भूत, भविष्यत और वर्तमान काल में से किसी भी काल में किसी भी

श्रेष्ठ समझने परिग्रह रूपसे संग्रह करवा योग्य, के अन्न, पान वगैरेने निरोध अने गर्मी, ठंडी वगैरेमां राष्पीने कोष्ठ पणु वपते पीडित करवा योग्य अने विष आपीने तेमज् शस्त्रना आघातथी विनाश करवा योग्य नथी ।

सूत्रमां “ आइक्खन्ति आख्यान्ति ” आ वर्तमानकालिक क्रियापद अतीत तेमज् अनागत कालिक क्रियापदसुं उपलक्षक छे । श्रेथी श्रेना वडे आ जतना अर्थनी प्रतीति थाय छे डे ते तीर्थंकर प्रभुश्रेष्ठे वर्तमानकालमां जे प्रभाषे कहुं छे, ते प्रभाषे जे तेज्ज् अथवा ते जीज् भूतकालिक तीर्थंकरेज् भूतकालमां पणु कहुं छे अने भविष्यकालमां पणु तेज्ज् ते प्रभाषे जे कडेशे । आ रीते “ भासन्ति, पणवेति ” वगैरे क्रियापदोनी साथे पणु अतीत अने अनागत कालिक क्रियापदोने संबंध न्नेडेवे न्नेथे । आ कथनथी सूत्रकारे तेमना कथनमां परस्परमां विरुद्ध अर्थनी प्ररूपणाने अलाप गताये छे । तेमज् जे

દ્વીન્દ્રિયાદિપેન્દ્રિયપર્યગ્તાસ્તુ સાશ્વત્યર્થઃ, દ્વિન્દ્રિયાદિપ્રાણાનાં યથાસમ્ભવંધાર-
ણાત્ તેષુ પ્રાણિત્વમસ્તીતિ ભાવઃ । તથા-સર્વે 'ભૂયા' ભૂતાઃ=ભવન્તિ ભવિષ્ય-
ન્ત્યભૂવન્તિ ભૂતાઃ-ચતુર્દશભૂતગ્રામરૂપાઃ, તથા-સર્વે જીવાઃ=જીવન્તિ જીવિ-
ષ્યન્ત્યજીવિષુ રિતિ જીવાઃ-નારકતિર્યદ્મનુપ્યદેવાઃ, તથા-સર્વે "સત્તા" સત્તાઃ=

પ્રમાણ દ્વારા બાધિત નહીં હો સકને સે પૂર્વાપર વિરોધ રહિત હી કહા
હૈ । "પ્રાણ" શબ્દ સે સૂત્રકાર ને ત્રસ ઓર સ્થાવર પ્રણિયોં કા
ગ્રહણ કિયા હૈ । ક્યોં કિ ૧૦ દ્રવ્ય પ્રાણોં મેં સે इनको अपने २
योग्य प्राणों का सद्भाव पाया जाता है । अतः इनके सद्भाव से ही
ये प्राणी कहे जाते हैं । " भवन्ति, भविष्यन्ति, अभूवन् " यह
भूत शब्द की व्युत्पत्ति है । इसका भाव यही है कि जो वर्तमान
में सत्ता विशिष्ट हैं, आगामी काल में सत्ता विशिष्ट रहेंगे एवं भूत-
काल में भी जो सत्ता विशिष्ट थे । इस व्युत्पत्ति से सूत्रकार ने यह
प्रदर्शित किया है कि प्रत्येक जीवादिक पदार्थ किसी भी काल में उत्पाद
और व्यय धर्म विशिष्ट होते हुए भी अपनी २ सत्ता से रहित नहीं
होते हैं । क्योँ कि द्रव्य का " उत्पादव्ययध्रौव्यं सत् " उत्पाद, व्यय
और ध्रौव्य ये स्वभाव है । इससे यह बात निश्चित कोटि में आता है
कि किसी भी नवीन पदार्थ का उत्पाद नहीं होता है और न सत्
पदार्थ का विनाश ही होता है । " सतो विनाशः असत्तश्चोत्पादो न "
" जीवन्ति, जीविष्यन्ति, अजीविषु " यह जीव शब्द की व्युत्पत्ति है ।

કંઈ કહ્યું છે તે ભૂત ભવિષ્યત અને વર્તમાનકાળમાંથી કોઈ પણ કાળમાં ગમે :
તે પ્રમાણ દ્વારા બાધિત નહિ હોવા બદલ પૂર્વાપર વિરોધ રહિત જ કહ્યું છે, કે
" પ્રાણ " શબ્દ વડે સૂત્રકારે ત્રસ અને સ્થાવર પ્રાણીઓનું ગ્રહણ કર્યું છે.
કેમકે ૧૦ દ્રવ્ય પ્રાણીમાંથી એમનામાં પોતપોતાને યોગ્ય પ્રાણીને સદ્ભાવ
મળે છે. એથી એમના સદ્ભાવથી જ તેઓ પ્રાણી કહેવાય છે. " ભવન્તિ,
ભવિષ્યન્તિ, અભૂવન્ " આ ભૂત શબ્દની વ્યુત્પત્તિ છે. એનો અર્થ આ પ્રમાણે
છે કે વર્તમાનકાળમાં એઓ સત્તા વિશિષ્ટ છે, તેઓ ભવિષ્યકાળમાં સત્તા
વિશિષ્ટ રહેશે અને ભૂતકાળમાં પણ એઓ સત્તા વિશિષ્ટ હતા. આ વ્યુત્પત્તિ
વડે સૂત્રકારે એ બતાવ્યું છે કે દરેકે દરેક જીવ વગેરે પદાર્થ કોઈ પણ કાળમાં
ઉત્પાદ અને વ્યયધર્મ વિશિષ્ટ હોવા છતાંએ પોતપોતાની સત્તાથી રહિત હોતા
નથી. કેમકે દ્રવ્યનો " ઉત્પાદવ્યયધ્રૌવ્યં સત્ " ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રૌવ્ય
સ્વભાવ છે. એથી એ વાત ચોક્કસ રીતે સ્પષ્ટ થાય છે કે કોઈ પણ નવીન
પદાર્થનો ઉત્પાદ થતો નથી અને સત્ પદાર્થનો વિનાશ પણ થતો નથી.
" સતો વિનાશઃ અસત્તશ્ચોત્પાદો ન " " જીવન્તિ, જીવિષ્યન્તિ, અજીવિષુ " આ

स्वकृतकर्मजन्यसुखदुःखानुभविनः । अत्र सर्वपाणिषु पुनः पुनर्दयाकरणाय पर्यायशब्दप्रयोगः ।

‘न हंतव्या’ न हन्तव्याः=दण्डादिभिर्न ताडयितव्याः इत्यर्थः, “न अज्जा-वेयव्या” नाज्ञादयितव्याः=न घातयितव्या इत्यर्थः, “न परिवेत्तव्या” न परि-ग्रहीतव्याः=इमे ममायत्ता इति कृत्वा परिग्रहरूपेण न स्वीकर्तव्याः, “न परिता-

जो जीते हैं, जीवेंगे और जिये है, इस कथन से सूत्रकार ने जीव में त्रिकाल में भी जीवनत्व धर्म का अभाव नहीं होता है यह प्रदर्शित किया है चाहे जीव एक इन्द्रिय अवस्थावाला भी हो तो भी वह जीवन अवस्था से रहित नहीं होता है इससे वृक्षादिकों में अचेतनता मानने वाले बौद्ध आदिकों का मन्तव्य खंडित होता है ।

सूत्र में प्राणी, भूत, और सत्त्व इन एकार्थक पर्यायवाची शब्दों का जो सूत्रकार ने प्रयोग किया है उनका मुख्य प्रयोजन “समस्त जीवों में वारंवार दया करनी चाहिये” है ।

यह वीतरागप्रभु द्वारा प्रतिपादित प्राणातिपातविरमणरूप धर्मशुद्ध पापानुबन्ध रहित हैं । इस कथन से सूत्रकार ने इस बात की पुष्टि की है जो अवीतराग-शाक्य आदि द्वारा धर्मरूप से प्रतिपादित हुआ है तथा जिसे उन्होंने धर्मरूप से स्वीकार किया है वह वास्तविक धर्म नहीं है । कारण कि इनमें हिंसादिक दोषों का सद्भाव पाया जाता है इनके

एव शब्दनी व्युत्पत्ति छे. जेज्या एवे छे, एवशे अने एव्या छे आ कथन वडे सूत्रकारे एवमां त्रिकाणमां पञ्च एवन्त्व धर्मना अभाव थतो नथी आ वात स्पष्ट करी छे. लखे ते एव अेक इन्द्रिय अवस्थावाणे डोय छतांजे ते एवन अवस्थाधी रहित थतो नथी. आ कथनथी वृक्ष वगेरेमां अचेतना माननारा बौद्ध वगेरेना मततुं थ'उन थर्ष नय छे.

सूत्रकारे सूत्रमां जे प्राणी, भूत अने सत्त्व आ अथा अेकार्थक पर्याय-वाची शब्दोने जे प्रयोग कर्यो छे तेतुं भास करण्यु “अथा एवोमां वारंवार सह्य रहैवुं नोषंजे” ते ज छे.

वीतराग प्रभु वडे प्रतिपादित प्राणातिपात विरमण्यु इय आ धर्म शुद्ध पापानुबन्ध रहित छे आ कथनथो सूत्रकारे अे वातने पुष्ट करी छे के जे अवीतराग-शाक्य वगेरे द्वारा धर्म-इपथी प्रतिपादित थयो छे तेमज तेमजे जेने धर्म-इपथी स्वीकार्यो छे ते अरेअर धर्म नथी. केमके तेमां हिंसा वगेरे दोषोने सदभाव छे. असर्वज्ञ तथा रागयुक्त लोक्यो द्वारा प्रतिपादित होवाने

વેયવ્વા” ન પરિતાપયિતવ્યા:—અન્નપાનાઘવરોધનેન ધીષ્માતપાપદૌ સ્થાપનેન ચ ન પીડનીયા:; “ ન કિલામેયવ્વા ” ન ક્લામચિતવ્યા:—ન ચ્વેદયિતવ્યા:—ન વિપ-શસ્ત્રાદિના મારયિતવ્યા: ।

एषः=अनन्तरोक्तः सर्वाहंज्ञगवत्प्ररूपितः, धर्मः=सर्वप्राणिप्राणातिपातविरमण-रूपः, शुद्धः=निर्मलः-पापानुबन्धरहित-इत्यर्थः । आर्हतधर्मादन्यस्तु धर्मत्वेन यः शाक्यादेरभिमतः स खलु असर्वज्ञसरागोपदिष्टत्वेन हिंसादिदोषसद्भावेन च न शुद्ध इति भावः । अत एव-एव नित्यः=अविनाशी, सर्वदा पञ्चसु महाविदेहेषु सद्भाव का कारण उसमें असर्वज्ञ और सरागियों द्वारा प्रणीतता ही है पूर्ण ज्ञानीयों द्वारा प्रदर्शित मार्ग ही शुद्ध होता है इसका कारण उनमें राग द्वेष का सर्वथा अभाव ही होता है । असर्वज्ञ या रागद्वेषकलुषित-चित्तवालों द्वारा प्रदर्शित मार्ग इसलिये शुद्ध नहीं होता है कि वे एक तो उस विषय के पूर्ण ज्ञाता नहीं होते, दूसरी अपनी रागद्वेषमयी प्रवृ-त्ति को पुष्ट करने के लिये उसकी अन्यथा भी प्ररूपणा कर देते हैं । ऐसा धर्म शाश्वतिक नित्य नहीं होता है-क्यों कि ऐसा धर्मका विशिष्ट ज्ञानियों-केवलज्ञानियों द्वारा जीवों का कल्याण की कामना से निराकर-ण कर दिया जाता है । चीतरागप्रतिपादित धर्म ही अविनाशी रहता है, और उसीसे जीवों का सदा कल्याण होता रहता है । इसमें अन्य-थाप्ररूपणाके लिये थोड़ी सी भी जगह नहीं मिलती है । पंच महाविदेह क्षेत्रोंमें अब भी इस शुद्ध धर्मका सद्भाव है । इसी अपेक्षा इसे सूत्रकारने नित्य-अविनाशी कहा है । शाश्वतगतिरूप मुक्ति का कारण होने से

લીધે જ તેમાં હિંસા વગેરે સહોપતા છે. પૂર્ણજ્ઞાનીઓ વડે પ્રદર્શિત માર્ગે જ શુદ્ધ હોય છે. કેમકે તેઓમાં સંપૂર્ણપણે રાગદ્વેષનો અભાવ જ હોય છે. અસર્વજ્ઞ કે રાગદ્વેષ કલુષિત ચિત્તવાળા લોકો વડે પ્રતિપાદિત માર્ગ શુદ્ધ એટલા માટે હોતો નથી કે તેઓ પ્રથમ તો તે વિષયને સંપૂર્ણપણે બળુતા નથી અને બીજું તેઓ પોતાની રાગદ્વેષમયી પ્રવૃત્તિને પુષ્ટ કરવા માટે તેની અન્યથા પ્રરૂપણા પણ કરી એસે છે. એવો ધર્મ શાશ્વતિક-નિત્ય હોતો નથી કેમકે એવા ધર્મતું વિશિષ્ટ જ્ઞાનીઓ-કેવળજ્ઞાનીઓ-વડે જીવોની કલ્યાણ કામનાથી પ્રેરાઈને નિરાકરણ કરવામાં આવે છે. વીતરાગ પ્રતિપાદિત ધર્મ જ અવિનાશી રહે છે, અને તેથી સર્વદા જીવોતું કલ્યાણ થતું રહે છે. આમાં અન્યથા પ્રરૂપણા માટે અવકાશ જ નથી. અત્યારે પણ પચ્ચવિદેહ ક્ષેત્રમાં આ શુદ્ધ ધર્મનો સહભાવ છે. આ ધર્મને આ દૃષ્ટિથી જ સૂત્રકારે નિત્ય-અવિનાશી કહ્યો છે. શાશ્વત ગતિ રૂપ મુક્તિનો કારણ હોવાથી આ ધર્મ શાશ્વત માન-

“ जह मम ण पियं दुःखं जाणियं एमेव सन्वजीवाणं ।
 न हणइ न हणावेइ य, सममणइ तेण सो समणो । इति ”
 छाया—यथा मम न प्रियं दुःखं, ज्ञात्वा एवमेव सर्वजीवानाम् ।
 न इन्ति न घातयन्ति च समम् अणति तेन स समणः ॥
 च शब्दात् धनतश्चान्यान्न समणुजानीत इत्यनेन प्रकारेण ‘सममणति’ त्ति
 सर्वजीवेषु तुल्यं वर्त्तते यतस्तेनासौ श्रमण इति गाथार्थः ।
 ‘एस धम्मे सुद्धे’ इत्यनेन आर्हत धर्मस्य हिंसादि दोषाभावाद्भगवता शुद्ध-
 त्वमुक्तम् । शुद्धधर्मबोधकत्वाच्च द्वादशाङ्ग्याः प्रवचनत्वमागमत्वं सर्वोत्कृष्टत्वं
 च सिध्यति । प्रवचनस्य स्वरूपं माहात्म्यं चाऽऽगमेषु भगवताऽभिहितम् ।

अनुयोगद्वार में—

जह मम ण पियं दुःखं जाणियं एमेव सन्वजीवाणं ।
 न हणइ न हणावेइ य सममणइ तेण सो समणो ॥ इति ।
 जिस प्रकार दुःख मुझे इष्ट नहीं है, उसी तरह वह दुःख किसी भी
 संसारी जीवों को इष्ट नहीं है ऐसा समझ कर जो जीवों की विराधना
 स्वयं नहीं करता और न दूसरों से करवाता है तथा समस्त जीवों में
 तुल्यता की भावना रखता है वही श्रमण है । श्रमण होने में ये
 पूर्वोक्त बातें हेतु-कारण हैं ।

“ एस धम्मे सुद्धे ” इस सूत्रांश से श्री सुधर्मास्वामी ने तीर्थंकर
 कथिन धर्म में हिंसादिक दोषों के अभाव से शुद्धता का कथन किया
 है । इस शुद्ध धर्म का बोधक-बोध करानेवाली होने से ही द्वादशांगी
 में प्रवचनता, आगमता एवं सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है । भगवान ने

अनुयोगद्वारमां—जह मम ण पियं दुःखं जाणियं एमेव सन्वजीवाणं ।

न हणइ न हणावेइ य सममणइ तेण सो समणे ॥ इति ।

जेम मने दुःखं गमतुं नथी तेमए ते दुःखं संसारता केछं पणु एवने
 गमे ए नहिं. आम समएने जेओ एवोनी विशधना पोते करता नथी अने
 णीलओथी करावता नथी तेमए अथा एवोमां तुह्यता (समानता) नी इधि
 राणे छे तेओए ए ‘श्रमणु’ छे. आ उपरनी वातो श्रमणु थवा भाटेडेतु कारणु छे.

“ एस धम्मे सुद्धे ” आ सूत्रांशथी श्री सुधर्मास्वामीने तीर्थंकर कथित
 धर्ममां हिंसा वगेरे दोषोना अभावथी शुद्धतातुं कथन कथुं छे. आ शुद्ध धर्मना
 बोधक-बोध करावतारी होवाथी ए द्वादशांगीमां प्रवचनता आगमता अने सर्वो-
 उत्कृष्टता सिद्ध आय छे. भगवाने आगमोमां प्रवचनतुं स्वइए अने तेना प्रभाव

हंता गोयमा ! तमेव सच्चं । से नृणं भंते ! एवं मणे धारेमाणे एवं पकरेमाणे आणाए आराहए भवइ ? । हंता गोयमा ! तं चेव ” त्ति ।

छाया—अथ नूनं भदन्त । तदेव सत्यं निश्चङ्कं यज्जिनैः प्रवेदितम् ? । हन्त गौतम ! तदेव सत्यम् । अथ नूनं भदन्त ? एवं मनसि धारयन् एवं प्रकुर्वन् आज्ञाया आराधको भवति ? हन्त गौतम ! तदेव ” इति ।

आवश्य सूत्रेऽपि—“इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडि-
पुन्नं नेयाउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं
अवितहमसंदिद्धं । इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति वुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाएंति
सव्वदुःखाणमंतं करंति ।

धारेमाणे एवं पकरेमाणे आणाए आराहए भवइ । हंता गोयमा ! तं
चेव इति ” इस सूत्र का भावार्थ यह है कि प्रत्येक मुमुक्षु (मोक्षाभि-
लाषी) जन को अपने हृदय में इस बात का पूर्णदृढ विश्वास रखना
चाहिये कि जो जिनेन्द्र देव ने प्रतिपादित किया है वही वास्तविक तत्त्व
है—उसमें किसी भी प्रकार की शंका के लिये स्थान नहीं है इस प्रकार
के दृढ विश्वास से उसे अपने मन में धारण करनेवाला और उसके
अनुसार ही अपनी प्रवृत्ति करनेवाला मोक्षाभिलाषीजन तीर्थंकरप्रभुकी
आज्ञाका आराधक होता है आवश्यक सूत्रमें भी यही बात कही गई है

“ इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुन्नं नेया-
उयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं
अवितहमसंदिद्धं । इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति वुज्झंति मुच्चंति परिणि
व्वाएंति सव्वदुःखाणमंतं करंति ।

भवइ ! हंता गोयमा ! तं चेव इति) आ सूत्रेनो भावार्थ आ प्रभाण्णे छे के
हरके भोक्ष धम्मनारी व्यक्तित्ते पोताना हृदयभां संपूर्णपण्णे आ वातनी आतरी
थवी जेधण्णे के जे ज्जिनेन्द्र देवे प्रतिपादित कथुं छे ते जे वास्तविक तत्व
छे तेभां लगीरे शंका नथी, आ ज्ञातना देह विश्वासथी तेने पोताना मनभां
करनार थने ते सुज्जण जे आचरण्ण करनारी भोक्षने धम्मनारी व्यक्ति प्रभुनी
आज्ञानी आराधक होय छे, आवश्यक सूत्रभां पण्णे जे जे वात कडेवाभां आवी
छे—(इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुन्नं नेयाउयं संसुद्धं
सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं ।
इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति वुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाएंति सव्व दुःखाणमंतं करंति ।

छाया—इदमेव निर्ग्रन्थं प्रवचनं सत्यम् अनुत्तरं, कैवलिकं, प्रतिपूर्णं, नैया-
यिकं, संधुद्धं, शल्यकर्त्तनं, सिद्धिमार्गः, मुक्तिमार्गः, निर्याणमार्गः, निर्वाणमार्गः,
अवितथम्, असन्दिग्धम्, अत्र स्थिता जीवाः सिद्धयन्ति, बुध्यन्ते, मुच्यन्ते,
परिनिर्वाणन्ति, सर्वे दुःखानामन्तं कुर्वन्ति ।

अन्यच्च—इमं च णं सर्वजगज्जीवरक्षणदयद्वयाए पावयणं भगवत्या सुक-
हियं” इति (प्रश्न० संवर०)

छाया—‘ इदं च खलु सर्वजगज्जीवरक्षणदयार्थाय प्रवचनं भगवता
सुकथितम्’ इति ।

धर्मध्यानस्याऽऽज्ञाविचयादि भेदेन चातुर्विध्यं प्रदर्शयता भगवता—प्राधान्या-
दाज्ञाविचयः प्रथम्येन प्रोक्तः ।

भावार्थ—इस का स्पष्ट है। इसमें सूत्रकार ने मुख्यरूप से यही बात
प्रकट की है कि इस निर्ग्रन्थ प्रवचन मार्ग में स्थित जीव अष्ट कर्मोंका
विनाश कर सिद्धदशासंपन्न हो जाते हैं। इस अवस्थाकी प्राप्ति होना
ही जीवों के समस्त दुःखों का विनाश है।

अन्यच्च—इमं च णं सर्वजगज्जीवरक्षणद्वयाए पावयणं भगवत्या सुक-
हियं” इति—(प्रश्न० संवर०)

इस प्रवचन की प्ररूपणा करने का श्री तीर्थंकर प्रभु का यही एक
उद्देश रहा है कि समस्त संसारीजन इस प्रवचन के अभ्यास से सर्व
जगत के जीवों की रक्षा करें और उनकी दया पा लें ।

ध्यान का वर्णन करते हुए भगवान ने उस ध्यान के ४ भेद कहे
हैं। उनमें धर्मध्यान के आज्ञाविचय आदि जो ४ पाये प्रकट किये

आ कथनने लावार्थ स्पष्ट छे. आमां पास करीने सूत्रकारे अे न
वात स्पष्ट रीते अतावी छे डे आ निर्ग्रन्थ प्रवचन मार्गमां स्थित अुव अण्ट
कर्मोना विनाश करीने सिद्धि दशा संपन्न थर्ष न्थ छे. आ अवस्था भेण-
ववी अे न अुवोना सधणा दुःअने विनाश छे.

अन्यच्च—इमं च णं सर्व जगज्जीवरक्षणदयद्वयाए पावयणं भगवत्या सुकहीयं
” इति—(प्रश्न० संवर०)

श्री तीर्थंकर प्रभुने आ प्रवचननी प्ररूपणा करवाने अे न उद्देशे रक्षो
छे डे अथा संसारीअने आ प्रवचनना अभ्यासथी नगतना सवे अुवोनी
रक्षा करे अने तेअनी दया पाणे.

ध्याननुं वर्णन करतां भगवाने तेना आर खेडो वर्णव्या छे. तेअोमां
धर्मध्यानना आज्ञा-विचय वर्गेरे आर अपखेडो स्पष्ट करवामां आव्या छे

યથા ભગવતી સૂત્રે—(શ્લો ૨૫ ૩૦ ૭)

“ ધમ્મે જ્ઞાણે ચરુવિવહે પણ્ણત્તે, તં જહા-આણાવિચ્છે ” અવાચવિચ્છે, વિવાગવિચ્છે, સંઠાણવિચ્છે ॥

છાયા—ધર્મધ્યાનં ચતુર્વિધં પ્રજ્ઞસમ્ । તદ્ યથા-આજ્ઞાવિચયઃ, અપાય-વિચયઃ, વિપાકવિચયઃ, સંસ્થાનવિચયઃ ।

અત્ર પ્રસન્નવશાદ્ આજ્ઞાવિચય એવ વ્યાખ્યાયતે—

આજ્ઞાવિચયશ્ચ-આજ્ઞાયાઃ પર્યાલોચનં, આજ્ઞા-સર્વજ્ઞમ્પીત આગમ', તામાજ્ઞા-મિત્થં વિચિન્નુયાત્=પર્યાલોચયેત્ - પૂર્વાપરવિશુદ્ધમતિનિપુણામશેષજીવકાર્યહિતા

હૈં ઉન મેં સર્વ પ્રથમ આજ્ઞાવિચય કો જો કહા હૈં ઉસકા કારણ યહી હૈં કિ શ્લેષ ત્રીન પાર્યો (એર્થો) મેં પ્રધાન હૈં । ભગવતી સૂત્ર શ્લ. ૨૫ ૩-૭ મેં દેસ્વો યહ વર્ણન ઇસ પ્રકાર સે હુઆ હૈં-ધમ્મે જ્ઞાણે ચરુવિવહે પણ્ણ ત્તે, તં જહા-આણાવિચ્છે, અવાચવિચ્છે, વિવાગવિચ્છે, સંઠાણવિચ્છે ॥

અર્થ—ધર્મધ્યાન ૪ પ્રકાર કા હૈં (૧) અજ્ઞાવિચય (૨) અપાયવિચય (૩) વિપાકવિચય (૪) સંસ્થાનવિચય ।

પ્રસંગવશ યહાં આજ્ઞાવિચય પર વિવેચન કિયાં જાતા હૈં-તીર્થકર પ્રમુ કી આજ્ઞા કા વિચય-પર્યાલોચન-વિચાર કરના સો આજ્ઞાવિચય હૈં સર્વજ્ઞ કથિત આગમ કા નામ આજ્ઞા હૈં । ઉસ આગમરૂપ આજ્ઞા કા ઇસ પ્રકાર સે વિચાર કરના ચાહિયે-યહ પ્રમુ પ્રતિપાદિત આગમ પૂર્વાપર વિરોધ રહિત હોને સે વિશુદ્ધ હૈં, પ્રત્યેક સૂક્ષ્મ અન્નરિત ઔર દૂરાર્થ કે પ્રતિપાદન કરને મેં અતિનિપુણ હૈં, પ્રત્યેક જીવોં કા યહ હિતકારી

તેઓમાં ને સૌ પ્રથમ આજ્ઞા વિચયને એ ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે તેનું કારણ એ જ છે કે યાકી રહેલા ત્રણ ઉપલેદોમાં તે મુખ્ય છે. ભગવતી સૂત્ર શ્લ. ૨૫ ૩. ૭ માં એના માટે નેહું નોધ્યે. ત્યાં આનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે-ધમ્મે જ્ઞાણે ચરુવિવહે પણ્ણત્તે, તં જહા-આણાવિચ્છે, અવાચવિચ્છે, વિવાગવિચ્છે, સંઠાણવિચ્છે ॥

અર્થ—ધર્મધ્યાનના ચાર પ્રકાર છે. (૧) આજ્ઞા-વિચય, (૨) અપાય વિચય, (૩) વિપાક વિચય, (૪) સંસ્થાન વિચય.

પ્રસંગવશ અહીં આજ્ઞાવિચય વિષે વર્ણન કરવામાં આવે છે. તીર્થકર પ્રભુની આજ્ઞાનો વિચય-પર્યાલોચન-વિચાર કરવો તે આજ્ઞાવિચય છે. સર્વ-જ્ઞકથિત આગમનું નામ આજ્ઞા છે. તે આગમરૂપ આજ્ઞાનો આ રીતે વિચાર કરવો નોધ્યે કે આ પ્રભુ પ્રતિપાદિત આગમ પૂર્વાપર વિરોધ રહિત હોવા અદલ વિશુદ્ધ છે, દરેક સૂક્ષ્મ અન્નરિત અને દૂરાર્થના પ્રતિપાદન કરવામાં

है, अनवद्य है, इस में प्रत्येक जीवादिक पदार्थ का विवेचन बहुत ही अच्छी तरह से किया गया है अतः यह महार्थ है इसका प्रभाव भी अद्वितीय है इसकी छत्रछाया में आने से प्रत्येक भव्य जीव आत्मकल्याण के अपने अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि कर लिया करते हैं। इस में प्रतिपादित तत्व सामान्यजन नहीं ज्ञात कर सकते हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयरूप दो दृष्टियां जिनके पास हैं—वे ही इसमें प्रतिपादित विषय को अच्छी तरह ज्ञात कर सकते हैं। इसमें जो भी कुछ कथन सर्वज्ञ भगवान् ने किया है वह इन्हीं दो दृष्टियों को सामने रखकर किया गया है यदि एक दृष्टि को ही प्रधान रखकर इसके तत्व को समझने की चेष्टा की जाय तो वह प्रतिपाद्य विषय ठीक २ नहीं समझा जा सकता है। तथा इस प्रकार की प्ररूपणा अन्यथा भी ज्ञात होने लगनी है इसलिये दूसरी दृष्टि को सामने रखकर ही वह विषय ठीक २ रीति से समझ में आ सकता है, अतः इसी अभिप्रायसे इसे निपुण जनवेद्य कहा है तथा इस में प्रत्येक पदार्थ को उत्पादन व्यय और भ्रौव्य आत्मरू कहा गया है—वह भी द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा से ही कहा गया है द्रव्य की अपेक्षा से प्रत्येक जीवादिक पदार्थ भ्रौव्यरूप

अतीवकुशाया छे. दरेके दरेक लुवेो नेा आ हीतकारी छे. अनवद्य छे, ओमां दरेके दरेक लुव वगेरे पदार्थ'तु' विवेचन णडुण सूक्ष्मता पूर्वक करवामां आणु' छे ओथी आ मळार्थ' छे. आनेा प्रभाव पणु अद्वितीय छे, आनी छत्र-छायामां आववाथी दरेक लण्यलुव आत्मकल्याणु विषयक पोतानी अ'तिम लक्षणी सिद्धि प्राप्तकरी वे छे. आमां प्रतिपादित तत्त्व सामान्य लोकौ णणुी शकता नथी. द्रव्यार्थिक तेमण पर्यायार्थिक नयरूप मे दृष्टिओ जेनी पासे छे. तेओ ण आमां प्रतिपादित विषयने सारी पेटे समलु शके छे. सर्वज्ञ भगवाने आमां जे क'छ कहुं छे ते णधु आ पूर्वोक्त अने दृष्टिओ ने पोतानी सामे राणीने ण कहुं छे. जे ओक-दृष्टिने ण प्रधान समलुने तेना तत्त्वने णणुवानी ओटा करवामां आवे तो ते प्रतिपाद्य विषय यथावत् समलु शकय ण नहि. तेमण आ जतनी प्ररूपणा अन्यथा पणु मालुम थवा मांडे छे ओथी णीलु दृष्टिने पोतानी सामे राणीने ण विचार करीओ तो विषय सरस रीते समलु शकय तेम छे. आ प्रयोजनथी ण आने 'निपुणजन-वेद्य' कडेवामां आण्ये छे तेमण आमां जे दरेक पदार्थने उत्पाद, व्यय अने भ्रौव्य आत्मक कडेवामां आण्ये छे. ते पणु द्रव्य अने पर्यायनी अपेक्षाथी ण कडेवामां आण्ये छे. द्रव्यनी

મનવદ્યાં મહાર્થાં મહાનુમાર્થં નિપુણજનચિન્ત્રેયાં દ્રવ્યપર્યાયપ્રપ્તશ્વતીમનાઘનિ-
ધનામ્ । અસ્ય પ્રવચનસ્યાઽઽઘન્ટરહિતત્વં ચ ભગવતા નન્દીસૂત્રે નિગદિતમ્—

“ इच्छेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाह णासी ॥ ”

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदापि नासीत् ॥ इत्यादि ।

है और पर्याय की अपेक्षा से उत्पादन व्ययरूप है, इसलिये भी जिन प्रतिपादित आगरूप आज्ञा स्वयं द्रव्य और पर्याय के विस्तार वाली है। अथवा जीवादिक समस्त ६ द्रव्यों की त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायें इसमें प्रतिपादित हुई हैं, अथवा कोई भी द्रव्य कभी भी पर्याय रहित नहीं हो सकता है—स्वभाव पर्यायें और व्यञ्जन पर्यायें, विभाव पर्यायें और अर्थपर्यायें प्रत्येकक्षण में समस्तद्रव्यों में होती रहती हैं, इत्यादिरूप से द्रव्य और पर्यायों का प्रतिपादन इस आज्ञा में भगवान ने प्रदर्शित किया है इस अपेक्षा भी यह द्रव्य और पर्याय के विस्तार वाली मानी गई है तथा यह अनादि अनन्त है न कभी इस आज्ञा की आदि हुई है और न कभी इसका विनाश होगा। नंदीसूत्र में भी प्रवचन की अनादि अनन्तता के विषय में “ इच्छेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाहनासी” यही कहा है—ऐसा कोई सा भी काल नहीं था कि जिस काल में इस द्वादशांगरूप गणिपिटकका सद्भाव नहीं था।

અપેક્ષાર્થી દરેક જીવ વગેરે પદાર્થ ધ્રીવ્યરૂપ છે. અને પર્યાયની અપેક્ષાર્થી ઉત્પાદ વ્યયરૂપ છે. એટલા માટે પણ જિન પ્રતિપાદિત આગમરૂપ આજ્ઞા પોતે દ્રવ્ય અને પર્યાયના પ્રપંચ (વિસ્તાર) વાળી છે. અથવા તે જીવ વગેરે બધા ૬ દ્રવ્યોના ત્રિકાલ વર્તા સમસ્ત પર્યાયો આમાં પ્રતિપાદિત થયા છે, અથવા કોઈ પણ દ્રવ્ય કોઈ પણ દિવસે પર્યાય રહિત થઈ શકતું નથી. સ્વભાવ પર્યાયો અને વ્યંજન પર્યાયો, વિભાવ પર્યાયો અને અર્થ પર્યાયો દરેક ક્ષણમાં બધા દ્રવ્યોમાં થતી રહે છે. ઇત્યાદિ રૂપથી દ્રવ્ય અને પર્યાયોનું પ્રતિપાદન આ આજ્ઞામાં ભગવાને બતાવ્યું છે. આ અપેક્ષાર્થી પણ આ દ્રવ્ય અને પર્યાયના પ્રપંચ (વિસ્તાર) વાળી માનવામાં આવી છે. તેમજ આ અનાદિ અનંત છે. કોઈ દિવસ આજ્ઞાની આદિ થઈ નથી અને કોઈ પણ દિવસે આને વિનાશ થશે નહિ. નંદીસૂત્રમાં પણ પ્રવચનની અનાદિ અનંતતાને લગતી (इच्छे इयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाहनासी) એ જ વાત કહેવામાં આવી છે. એવો કોઈ પણ કાળ હતો નહિ કે તે કાળે આ દ્વાદશાંગ રૂપ ગણિપિટકને સદ્ભાવ હતો નહિ. આ રીતે આ આગમની મહત્તા અથવા તે એના મહા-

इत्थं चागममाहात्म्यपर्यालोचनरूपस्य धर्मध्यानस्याऽऽ - ईताऽऽज्ञाविषयत्वाद् धर्मध्यानस्य धर्मत्वं सिद्धम् । तथा-हिंसादि-दोषलेशेनाप्यसंपृक्तस्य शुद्धधर्मस्य बोधकत्वाद्हिंसाप्रधानस्य प्रवचनस्य श्रद्धेयत्वं च सिद्धम् ।

अहिंसायामर्हतो भगवत आज्ञा प्रदर्शिता, एवं संयमेपि तदाज्ञा वर्तते । यथा - ज्ञाताधर्मकथाऽङ्गसूत्रे- (प्रथमाध्ययने)

“ तएणं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ, जाव सयमेव आचार जाव धम्ममाइक्खइ, एवं खलु देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिट्ठियव्वं णिसीइयव्वं

इस प्रकार इस आगम की महत्ता अथवा उसके महात्म्य का विचार करना यही आज्ञाविषय नामक धर्मध्यान का प्रथम भेद है । इस ध्यान में अर्हत्प्रभु की आज्ञा का ही विचार होता है-अतः इस ध्यान में उन की आज्ञा का विषय करनेवाला होने से धर्मरूपता सिद्ध है तथा हिंसादि-क दोष के लेश से भी रहित ऐसे शुद्ध धर्म का बोधक होने से अहिंसाप्रधान इस प्रवचन में श्रद्धेयता सिद्ध होती है ।

इस पूर्वोक्त प्रकार से अहिंसा में अर्हत् भगवान् की आज्ञा का प्रदर्शन कर अब संयममें भी उनकी आज्ञा इसी प्रकार को है यह प्रकट करने के लिये सर्व प्रथम ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र से इस विषय की पुष्टि करते हुए सूत्रकार कहते हैं ।

“ तएणं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ, जाव धम्ममाइक्खइ, एवं खलु देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिट्ठियव्वं णिसी-

त्थने लगतो विचार करवे जे जे आज्ञा-विषय नामक धर्मध्यानने प्रथम लेइ छे. आ ध्यानमां अर्हत्त प्रभुनी आज्ञा विषे जे विचार होय छे. तेथी आ ध्यानमां तेमनी आज्ञाने विषय प्रतिपादित थये छे भाटे आमां धर्म रूपता सिद्ध छे तेमज हिंसा वगेरे दोषोधी पणु रहित शुद्ध कर्मने बोधक होवाने कारणे अहिंसा प्रधान आ प्रवचनमां श्रद्धेयता सिद्ध थाय छे.

आ प्रभाषे पूर्वोक्त रीते अर्हत्त भगवाननी अहिंसाना विषे आज्ञा पतावीने डवे आगण सूत्रकार सथम भाटे पणु तेजोश्रीनी आज्ञा आ रीने जे छे. आ वात स्पष्ट करवाने भाटे सौ प्रथम ज्ञाता-धर्मकथाङ्ग सूत्रथी आ विषयनी पुष्टि करतां कहे छे—

“ तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ, जाव सयमेव आचार जाव धम्ममाइक्खइ, एवं खलु देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिट्ठि-

तुयद्वियव्वं भुंजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्ठाय उट्ठाय पाणेहिं भूयेहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सि च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं ” इति, ।

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरो मेघं कुमारं स्वयमेव प्रत्राजयति, यावत् स्वयमेव आचार यावद् धर्ममाख्याति—एवं खलु हे देवानुप्रिय ! गन्तव्यं, स्थातव्यं’ निपत्तव्यं, त्यग्वर्तयितव्यं भोक्तव्यं भाषितव्यत्, एवमुत्थाय उत्थाय पाणेषु भूतेषु जीवेषु सत्त्वेषु संयमेन संयन्तव्यम्, अस्मिंश्च खलु अर्थे नो प्रमादयितव्यम् । इति, दशवैकालिक सूत्रे ऽपि—

“ जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए ।

जयं भुंजंतो भासंतो पावकम्मं न वंधई ॥ ”

इयव्वं तुयद्वियव्वं भुंजियव्वं भासियव्वं एवं उट्ठाय उट्ठाय पाणेहिं भूयेहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सि च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं”

श्रमण भगवान् महावीर ने स्वयं अपने ही हाथों से मेघकुमारको जब भागवती दीक्षा प्रदान की उसके लिये मुनि विषयक आचार आदि का जब उन्होंने उपदेश दिया तब उन्होंने उसे यही समझाया कि हे देवानुप्रिय ! चलते, ठहरते, बैठते, छेदते, आहारकरते और बात-चित्त करते समय प्राणियों, भूतों, जीवों, और सत्वों में सदा संयम से ही प्रवृत्ति करनी चाहिये। मुनि का यही कर्तव्य है कि वह प्रत्येक शारीरिक एवं वाचनिक क्रियाओं में, संयमित प्रवृत्ति करें। इस प्रकार की प्रवृत्तिशील होने से ही मुनि द्वारा अपने संयम की रक्षा होती है इस विषय में मुनि को कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। दशवैकालिक सूत्र में भी यही कहा है—“ जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं

यव्वं गिसीइयव्वं तुयद्वियव्वं भुंजियव्वं, भासियव्वं, एवं उट्ठाय उट्ठाय पाणेहिं भूयेहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं अस्सि च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं ”

श्रमण भगवान् महावीर ने जते पीतानां छाथथीं न मेघकुमारने न्यारे भागवती दीक्षा आपी अने तेने मुनिविषयक आचार वगेरने लगतो उपदेश आप्ये न्यारे तेजोश्रीजे तेने उपदेशमां जे न वात समजवी के डे देवानु-प्रिय ! चलतां जला रहतां, जेसतां, सूधं जतां, आहार करतां अने वातशील करतां प्राणीजो, भूतो, जूवो अने सत्वोमां छ भेसा संयमथीं न प्रवृत्ति करतां रहितुं जेधजे. मुनिनीं जे न इरज छे के ते इरक शारीरिक अने वाचनिक क्रिया-जोमां संयमित प्रवृत्ति करे. आ रीते प्रवृत्तिशील यधने रहवाथीं न मुनिजो वडे संयमनी रक्षा थाय छे. आ भाषतमां मुनिजो डोड पणु दिवसे प्रमाद करवो जेधजे नडि. दशवैकालिक सूत्रमां पणु जेन वात कडेवामां आवी छे. (जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए, जयं भुंजंतो भासंतो पावकम्मं न वंधई)

छाया-यत् चरेत् यत् तिष्ठेत्, यत्मासीत् यत् शयीत् ।

यत् भुञ्जानो भाषमानः पापकर्म न वध्नाति ॥ १ ॥ इति ।

तत्रैव- 'संयमं निभृतश्चर' इत्यादि । छाया-संयमं निभृतश्चर' इति ।

संयमे तीर्थकरस्याज्ञा प्रदर्शिता, इदानीं तपसि तदाज्ञा प्रदर्श्यते । यथा-दश-
वैकालिक सूत्रे-(द्वितीयाध्ययने)

“ आयावयाही चय सोगमल्लं ” इति । “ आयावयाही ” आतापय=आता-
पनारूपतपोधर्मांराधनेन तनुं शोषय, “ सोगमल्लं ” सौकुमार्यं “ चय ” त्यज=
परिहर ।

सए, जयं भुंजंतो भासंतो पावकम्मं न बंधई” सकल संयमियो' को पूर्ण
सावधान ता पूर्वक ही चलना चाहिये और पूर्ण सावधानता पूर्वक ही बैठना
चाहिये । उठने बैठने में तथा आहारादि क्रिया करने और बोलने चलने
में सदा उसे अपनी यत्नाचारमय प्रवृत्ति पर ही लक्ष्य रखना चाहिये ।
इस प्रकार की प्रवृत्ति करने से वह साधु पापकर्म का बंध नहीं करता
है । इसलिये हे मेघकुमार ! तुम “ संयमं निभृतश्चर ” इस सकल
संयम की अच्छी तरह से-यत्नाचारमय प्रवृत्ति से रक्षा करो-पालन
करो । इस प्रकार से संयम की आराधना में तीर्थकर प्रभु की आज्ञा
का प्रदर्शन सूत्रकार ने किया है । अब तप के आराधन करने में उनकी
क्या आज्ञा है-वे यह स्पष्ट करते हैं “ आयावयाही चय सोगमल्लं ”
(दशवैकालिक द्वितीय अध्ययन) ‘ हे मुने ! सुकुमालपने को छोड़
आतापनाले ' आतापनारूप तपधर्म की आराधना से मुनि को चाहिये

अथा संयमी षोडशोत्पण्णु सावधान यधनेन आलतुं नेधये अने पृष्णु
सावधान यधने न येसतुं नेधये. उठवा येसवाभां तेभन आहार वगेरे किया
करवाभां अने मोलवा आलवाभां ह'मेशा तेने पोतानी यत्नाचारमय प्रवृत्ति
उपर न लक्ष्य आपतुं नेधये. आ रीते प्रवृत्ति करवाथी ते साधु पाप-कर्मना
बंध करतो नथी. येथी हे मेघकुमार ! तमे “ संयमं निभृतश्चर ” आ सधल
संयमनी सारी रीते यत्नाचारमयी प्रवृत्ति वडे रक्षा करे-आतुं पालन करे.
आ रीते सूत्रकारे संयमनी आराधना विषे प्रभुनी आज्ञानुं प्रदर्शन करुं छे.
हे तपनी आराधना करवाभां तेज्याश्रीनी आज्ञा शी छे ? ते सूत्रकार अर्डी
स्पष्ट करे छे-“ आयावयाही चय सोगमल्लं ” (दशवैकालिक द्वितीय अध्ययन)
हे मुनि ! सुकुमालपने तेथले आतापना स्वीकारे. आतापना रूप तपधर्मनी
आराधनाथी मुनि पोताना शरीरने कृश (दुर्बल) बनाने अने शारीरिक

કિંચ શ્રમણસ્ય ક્ષાન્ત્યાદિદશવિધે ધર્મે તપસઃ પાઠો વર્તતે, તસ્માત્ તપોધર્મ
ઈતિ વિજ્ઞાયતે । તથાચોક્તં સમવાયાઽજ્ઞસૂત્રે—(સમવાય ૧૦)

“ દસવિધે સમગધર્મ્મે પળ્ણત્તે, તં જહા—(૧) સ્વંતી, (૨) મુત્તી (૩) અજ્જવે
(૪) મહવે (૫) લાઘવે (૬) સચ્ચે (૭) સંજમે (૮) તવે (૯) ચિયાણ
(૧૦) વંભચેરવાસે ।

અહિંસાદીનાં જિનાજ્ઞાપયોજ્યપ્રવૃત્તિકત્વરૂપસ્ય ધર્મલક્ષણસ્ય સદ્ગાવાદ્
ધર્મત્વં સિદ્ધં ।

ઉક્તં ધર્મસ્ય લક્ષણં, લક્ષ્યા અહિંસાદયશ્ચ પ્રોક્તાઃ, તન્નાહિંસાસંયમતપોરૂપો ધર્મ
ઉત્કૃષ્ટં મજ્જલં વોધ્યમ્ ।

તથાચોક્તં દશવૈકાલિકસૂત્રે—(પ્ર૦ અ૦ ૧)

“ ધર્મ્મો મંગલમ્મુક્ષિદ્ધં, અહિંસા સંજમો તવો ।

દેવાત્તિ તં નમંસંતિ જસ ધર્મ્મે સયા મળો ॥ ”

કિ વહ અપને શરીર કો કૃશ કરેં एवं શારીરિક સુકુમારતા का मोह
छोड़े । उत्तम क्षमा आदिक जो श्रमणों के दशप्रकार के धर्म कहे गये
हैं, उनमें तप का भी कथन आया है, अतः तप में धर्मरूपता सिद्ध ही
होती है । समवायांग सूत्र में श्रमण के दश प्रकार के धर्मों का कथन
करते हुए सूत्रकार ने यही कहा है—“ दसविधे समगधर्म्मे पण्णत्ते,
तं जहा—स्वन्ती, मुत्ती, अज्जवे, महवे, लाघवे, सचचे, संजमे, तवे,
चियाए वंभचेरवासे ।

इन अहिंसादिक महाव्रतों में धर्मरूपता इसलिये सिद्ध होनी है कि
वहां पर जिनेन्द्र प्रभु की आज्ञा प्रयोज्य प्रवृत्तिरूप धर्म के लक्षण का
सद्गाव पाया जाता है इस प्रकार धर्म का लक्षण और उसके लक्ष्यभूत
अहिंसादिकों का कथन है । ये अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म ही

સુકુમારતાને મોહ ત્યજી દે. ઉત્તમ ક્ષમા વગેરે શ્રમણોના દશ પ્રકારના ધર્મ
કહેવામાં આવ્યાં છે તેઓમાં તપનું કથન છે. એથી તપમાં ધર્મરૂપતા સિદ્ધ
થાય જ છે. સૂત્રકારે સમવાયાંગ સૂત્રમાં શ્રમણના દશ પ્રકારના ધર્મનું કથન
કરતાં આ પ્રમાણે જ કહ્યું છે—

“ દસવિધે સમગધર્મ્મે પળ્ણત્તે.—તં જહા—સ્વંતી, મુત્તી, અજ્જવે, મહવે, લાઘવે,
'સચ્ચે' સંજમે, તવે ચિયાણ વંભચેરવાસે । ”

આ અહિંસા વગેરે મહાવ્રતોમાં ધર્મરૂપતા એટલા માટે સિદ્ધ થાય છે
કે તેઓમાં જિનેન્દ્ર પ્રભુની આજ્ઞા પ્રયોજ્ય પ્રવૃત્તિ રૂપ ધર્મના લક્ષણનો સદ્-
ભાવ છે. આ રીતે ધર્મનું લક્ષણ અને તેના લક્ષ્યભૂત અહિંસા વગેરેનું કથન છે.
અહિંસા, સંયમ અને તપ રૂપ ધર્મ જ ઉત્કૃષ્ટ મંગળ રૂપ છે. દશવૈકાલિક

છાયા—ધર્મો મજ્જલમુત્કૃષ્ટમ્ અર્હિસા સંયમસ્તપઃ ।

દેવા અપિ તં નમસ્યન્તિ, યસ્ય ધર્મે સદા મનઃ ॥

નન્વર્હિસા—સંયમ—તપો—રૂપો ધર્મો મજ્જલમુત્કૃષ્ટમિત્યેતદ્વચઃ કિમાજ્ઞાસિદ્ધમ્
આહોસ્વિદ્ યુક્તિસિદ્ધમપિ ?

અત્રોચ્યતે—ઉભયસિદ્ધમપિ, તથાહિ—જિનવચનત્વા—દાજ્ઞાસિદ્ધમ્ અનુમાનમ-
પ્યત્રવર્તતે—‘ અર્હિસાસંયમતપોરૂપો—ધર્મો મજ્જલમુત્કૃષ્ટમ્’ ઇતિ પ્રતિજ્ઞા, ‘ દેવાદિ
ઉત્કૃષ્ટ મંગલરૂપ હૈં દશઐકાલિકસૂત્ર મેં યહી કહા હૈં “ ધમ્મો મંગલ-
મુક્કિટ્ઠં અર્હિસા સંજમો તવો । દેવા વિ તં નમંસંતિ જસ્સ ધમ્મે સયા-
મણો ” ધર્મ હી ઉત્કૃષ્ટ મંગલ હૈં । અર્હિસા સંયમ ઓર તપ યે હી ધર્મ
હૈં । જિસકા અન્તઃ કારણ ઇસ ધર્મ સે સદા યુક્ત રહતા હૈં ડસકે લિયે
દેવ મી નમસ્કાર કરતે હૈં ।

શંકા—અર્હિસા, સંયમ ઓર તપરૂપ ધર્મ મેં જો ઉત્કૃષ્ટ મંગલરૂપતા
કહી હૈં વહ આજ્ઞાસિદ્ધ હૈં ઇસલિયે કહી હૈં કિ યુક્તિ સે સિદ્ધ હૈં ઇસ-
લિયે કહી હૈં ? આવાર્થ—અર્હિસાદિકોં મેં ઉત્કૃષ્ટમંગલતા કિસ પ્રમાણ સે
સિદ્ધ હૈં ? આગમ સે યા અનુમાન સે ?

ઉત્તર—ઇનમેં ઉત્કૃષ્ટ મંગલરૂપતા આગમ ઓર યુક્તિ દોનોં સે સિદ્ધ
હૈં । જિનેન્દ્ર કે વચન હોને સે ઇનમેં આજ્ઞાસિદ્ધતા હૈં તથા અનુમાન સે
પ્રસિદ્ધ હોને સે યુક્તિ સિદ્ધતા હૈં । “ ધમ્મો મંગલમુક્કિટ્ઠં ” ઇત્યાદિ
ગાથા દ્વારા ઇનમેં જિનેન્દ્રવચનરૂપ આગમતાં પૂર્વ મેં હી પ્રદર્શિત કી જા
ચુકી હૈં અનુમાન પ્રસિદ્ધતા ઇસ પ્રકાર હૈં—અનુમાન કે પાંચ અંગ હોતે

સૂત્રમાં એ જ વાત કહેવામાં આવી છે—“ ધમ્મો મંગલમુક્કિટ્ઠં—અર્હિસા સંજમો
તવો । દેવા વિ તં નમંસંતિ જસ્સ ધમ્મે સયા મણો ” ધર્મ જ ઉત્કૃષ્ટ મંગળ
છે. અર્હિસા સંયમ અને તપ એ જ ધર્મ છે. એવું અન્તાકરણ આ ધર્મથી
સદા યુક્ત રહે છે તેને દેવો પણ નમન કરે છે.

શંકા—અર્હિસા, સંયમ અને તપ રૂપ ધર્મને જે ઉત્કૃષ્ટ મંગળ રૂપ
કહેવામાં આવ્યો છે તે આજ્ઞાસિદ્ધ છે. માટે કહેવામાં આવેલ છે કે યુક્તિથી
સિદ્ધ છે એટલા માટે કહેવામાં આવે છે ? ભાવાર્થ—અર્હિસા વગેરેમાં ઉત્કૃષ્ટ
મંગળતા કયા પ્રમાણથી સિદ્ધ છે ? આગમથી કે અનુમાનથી ?

ઉત્તર—આમાં ઉત્કૃષ્ટ મંગલરૂપતા આગમ અને યુક્તિ બનેથી સિદ્ધ છે.
જિનેન્દ્રનાવચને હોવાથી આમાં આજ્ઞા સિદ્ધતા છે તેમજ અનુમાનથી પ્રસિદ્ધ
હોવા બદલ યુક્તિ સિદ્ધતા છે. “ ધમ્મો મંગલમુક્કિટ્ઠં ” વગેરે ગાથા વડે
આમાં જિનેન્દ્ર પ્રવચનરૂપ આગમતા પહેલાં બતાવવામાં આવી જ છે અને અનુ-

मान्यत्वात्, इति हेतुः। अर्हदादिवत् इति दृष्टान्तः इह यो यो देवादियान्यः स स उरुकृष्टं मङ्गलं यथाऽर्हदादयः, 'तथा चायं धर्मः' इत्युपनयः, तस्माद् देवादिमान्यत्वादुकृष्टं मङ्गलमिति निगमनम्।

वस्तुतस्तु धर्मधर्मस्वरूपं ह्यः मत्वाच्छस्त्रस्थैर्दुर्ज्ञेयं, केवलं सर्वज्ञेन रागादिदोषरहितेन पञ्चत्रिंशद्वचनातिशयसंपन्नेन केवलिना तीर्थकरणेन केवलालोकेन सुज्ञेयं भवति। छद्मस्थानां तु भगवद्वचनमेव नियामकं, तथाचोक्तम्—

हैं—१ प्रतिज्ञा, २ हेतु, ३ दृष्टान्त, उपनय ४ और ५ निगमन। अर्हंत भगवान की तरह देवादिकों द्वारा मान्य होने से अहिंसा, तप और संयमरूप धर्म उत्कृष्ट मंगल हैं।

इस अनुमान वाक्य में “अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म उत्कृष्टमंगल है” यह प्रतिज्ञा है “देवादिकों द्वारा मान्य होने से” यह हेतु है। “अर्हन्त की तरह” यह दृष्टान्त है पक्ष में हेतु के दुहराने से उपनय और प्रतिज्ञा के दुहराने से निगमन सिद्ध हैं जैसे—“जो जो देवादिकों द्वारा मान्य होता है वह २ उत्कृष्ट मंगल होता है जैसे अर्हन्त प्रभु—ये भी देवादिकों द्वारा मान्य हैं। इस प्रकार पक्ष में हेतु के दुहराने रूप उपनय है इसलिये “वे भी उत्कृष्ट मंगल स्वरूप हैं” इस प्रकार प्रतिज्ञा के दुहराने रूप निगमनवाक्य है।

वास्तव में तो धर्म और अधर्म का स्वरूप सूक्ष्म होने से हम छद्मस्थों के लिये अत्यंत परोक्ष है—इस लिये हम उसे सिर्फ अनुमान या

मान प्रसिद्धता या प्रमाणा समन्वी ज्ञेयं। अनुमानना पांथ अंगो डोय छे—प्रतिज्ञा १, हेतु २, दृष्टान्त ३, उपनय ४, अने निगमन ५,

अर्हन्त भगवाननी जेम देव वगेरे द्वारा मान्य होवा भदल अहिंसा, तप अने संयम रूप धर्म उत्कृष्ट—मंगल छे.

आ अनुमान वाक्यमां “अहिंसा, संयम अने तप रूप उत्कृष्ट मंगल छे.” आ प्रतिज्ञा छे. “देव वगेरे द्वारा मान्य होवाथी आ हेतु छे. अर्हन्तनी जेम” आ दृष्टान्त छे पक्षमां हेतुने जेवडाववाथी उपनय अने प्रतिज्ञाने जेवडाववाथी निगमन सिद्ध छे. जेमके “देव वगेरे द्वारा जे जे मान्य होय छे ते ते उत्कृष्ट—मंगल होय छे जेम अर्हन्त प्रभु पणु देव वगेरे द्वारा मान्य छे. आरीते पक्षमां हेतुने जेवडाववाथी उपनय छे, माटे “तेआ पणु उत्कृष्ट मंगल स्वरूप छे” आरीते प्रतिज्ञाने जेवडाववा रूप निगमन वाक्य छे.

वस्तुतः धर्म तेमज्ज अधर्मतुं स्वरूप सूक्ष्म होवाथी अमारो जेवा छद्मस्थी माटे ते अतीव परोक्ष छे जेथी अमे इकत तेने अनुमान के आगमथी

“ धर्माधर्मव्यवस्थायाः, शास्त्रमेव नियामकम् ।
तदुक्ताऽऽसेवनाद् धर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात् ॥ ” इति,

आगम से ही ज्ञात कर सकते हैं। घटपटादिकों की तरह उसे स्पष्ट रूप से देखनहीं सकते हैं। इसीलिये वह दुर्ज्ञेय है। जो अनुमान और आगम से गम्य होता है वह अग्नि आदि की तरह किसी न किसी के प्रत्यक्ष होता है यह स्पष्ट सिद्धान्त है। तीर्थंकर प्रभु ने कि जो राग और द्वेष से सर्वथा रहित हैं, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को जो हस्तामलकवत् स्पष्ट जानते हैं, ३५ वाणी के अतिशय से जो युक्त हैं अपने केवलज्ञान रूपी आलोक से उसे विशदरूप से जान लिया है। हम छद्मस्थों के लिये इनके वचनों के सिवाय इस विषय का नियामक और कुछ नहीं है। अतः उनके कथनानुसार ही धर्म और अधर्म का स्वरूप हम संसारी जीव जान सकते हैं या जानते हैं। “ धर्माधर्मव्यवस्थायाः शास्त्रमेव नियामकं, तदुक्ता सेवनात् धर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात् ”—धर्म और अधर्म के स्वरूप की व्यवस्था करने वाले केवल सर्वज्ञ भगवान् के वचन स्वरूप आगम ही हैं। अतः उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का सेवन करना धर्म और उससे विपरीत मार्ग का सेवन करना अधर्म है

भावार्थ—जीवोंको धर्मकी प्राप्ति सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्रदर्शित मार्ग

समष्ट शक्ये छीजे. ‘ घट पट ’ वगेरेनी जेम तेने स्पष्ट पण्णे जेई शकता नथी जेथी ज ते दुर्ज्ञेय छे. जे अनुमान अने आगमथी गम्य डोय छे ते अग्नि वगेरेनी जेम कोएने कोएने प्रत्यक्ष डोय छे आ जेक स्पष्ट सिद्धांत छे. राग अने द्वेषथी संपूर्ण पण्णे रद्धित जेवा तीर्थंकर प्रभुजे—जे जेजो त्रिकालवर्ती जधा पदार्थोने हस्तामलकवत् स्पष्ट रीते जण्णे छे, उय वाणीना अतिशयथी जेजो युक्त छे—पोताना डेवणसान इपी आडोकथी तेने विशद इपथी जण्णी लीधु’ छे. अमार जेवा छद्मस्थोने माटे जेमनां वचनो सिवाय आ विषयनो नियामक भीजे कोई नथी. जेथी अजे तेमना कथा मुज्ज ज धर्म अने अधर्मनु’ स्वइय जण्णी शक्ये छीजे “ धर्माधर्म-व्यवस्थायाः शास्त्रमेव नियामकं, तदुक्तासेवनात् धर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात् ” धर्म अने अधर्मना स्वइयनी व्यवस्था करनार इकत सर्वज्ञ जगवानना वचन स्वइय आगमो ज छे. जेथी तेमना वडे दर्शाववाभा आवेला मार्गनु’ सेवन करवु’ जेज धर्म अने तेथी विरुद्ध मार्गनु’ सेवन करवु’ अधर्म छे. भावार्थ—सर्वज्ञ जगवान् द्वारा

पर चलनेसे ही हो सकती है, इससे विपरीत मार्ग पर चलने से नहीं। अतः जो जीव धर्म को साक्षात्कार करना चाहते हैं उनका कर्तव्य है कि वे सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित मार्ग का सेवन करें और उस से भिन्न मार्ग का परित्याग करें। इस प्रकार की प्रवृत्ति से वे धर्म और अधर्म के स्वरूप के ज्ञाता बन जाते हैं। इस कथन से शंकाकार की इस आशंकाका यहाँ परिहार किया गया है कि जो उसमें पहिले यह प्रश्न किया कि अहिंसादिकों में जो उत्कृष्ट मंगलरूपता है वह किस प्रमाण से है। सूत्रकारने आगम और अनुमान दोनों प्रमाणों से उनमें उत्कृष्ट मंगलता सिद्ध की है इस कथन से एक बात और हमें यह ज्ञात होती है कि सर्वज्ञ कथित सिद्धान्त की जांच के लिये जबतक तर्क का जोर चलता रहे बुद्धिमान जबतक अपनी तर्कणा की कसौटी पर उसे कसता रहे—पर जब तर्क की समाप्ति हो जावे—तर्कणा शक्ति कुंठित हो जावे—तो उस व्यक्ति का कर्तव्य है वह आगम प्रमाण से ही उस सिद्धान्त का अनुसरण करें। फिर उसे उस विषय में तर्क करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सूत्रमादिक पदार्थ सर्वज्ञ के सिवाय छद्मस्थों के

प्रदर्शित मार्ग उपर्याख्यवाची न लोको ने धर्मनी प्राप्ति थथ शके तेम छे-
 ज्योनाथी विरुद्ध मार्गना सेवन थी नहिं, ज्योथी ने लोको धर्मनु' प्रत्यक्ष दर्शन
 ध्विछताडोय तेमनी इरन छे के तेज्यो सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित मार्गनु'
 सेवन करे अने तेना विरुद्ध मार्गने ल्याग करे आ नतनी प्रवृत्तिथी तेज्यो
 धर्म' अने अधर्मना स्वप्नने नानुनारा थथ नय छे, आ कथनथी शंकाकारनी
 ज्ये आशंका'ना अही' परिहार करवाभां आये छे के जे तेभां पडेलां आ
 पक्ष करवाभां आये छे के अहिंसा वगेरे भां जे उत्कृष्ट मंगल रूपता छे ते
 कथा प्रमाणना आधार छे ? सूत्रकारे आगम तेमन अनुमान भने—प्रमाणो थी
 तेज्योभां उत्कृष्ट मंगलता सिद्ध करी छे, ज्ये कथन वदे पीछ आ वातनु' पञ्च
 ज्ञान थाय छे के सर्वज्ञ—कथित सिद्धान्तनी परीक्षा भाटे न्यां सुधी तर्कनी
 शक्ति कायम रहे बुद्धिमानो त्यां सुधी चोतानी तर्कणाणी कसौटी उपर कसता
 रहे—पञ्च न्यारे तर्कनी शक्ति मंद थथ नय—तर्कणा शक्ति कुंठित थथ नय
 त्यारे ते अकित नी इरन छे के ते व्यागण प्रमाणथी न ते सिद्धान्तनु' अनु-
 सरणा करे, पछी ते विषयभां न तेने भीनभेष करवी नैधज्ये नहिं केम के
 सूक्ष्म वगेरे पदार्थो' सर्वज्ञ सिवाय छद्मस्थोना भाटे रूपद रूपथी नहिं शक्य

સ્વયમેવ ભગવતા-અહિંસાસંયમતપસાં ધર્મત્વં, તથા - તેષામુત્કૃષ્ટમદ્ગુણસ્વરૂપ-
ત્વેન પ્રાધાન્યં ચ વર્ણિતં, તન્નાપ્યહિંસાયાઃ-સર્વધર્મમૂલત્વેન પ્રાધાન્યાત્ પ્રથમં સ્થાનં
પ્રદત્તમ્ । તસ્ય સર્વપ્રધાનસ્યાઽહિંસાધર્મસ્ય ષટ્કાવ્યોપમર્દનસાધ્યે મૂર્તિપૂજને
મૂલતઃ સમુચ્છેદં કેવલાલોકેન સાક્ષાત્ પચ્યન્ ભગવાનર્હન્ મૂર્તિપૂજનાર્થમાજ્ઞાં પ્રદ-
ધાદિત્યાકાશકુલુમમિવાત્યન્તમસદેવ વોદ્યમ્ ।

સ્પષ્ટ રૂપ સે જ્ઞાન કે વિષય નહીં હો સકતે હૈં । અતઃ ંસે વિષયોં
મેં સર્વજ્ઞ કે વચન હી પ્રમાણ કોટિ મેં અંગીકાર કરનોં ંચાહિયે ।

ભગવાન ને સ્વયં હી અહિંસા, સંયમ ંર તપ મેં ધર્મરૂપતા તથા
ઉત્કૃષ્ટ મંગલરૂપ હોને સે પ્રધાનતા કહી હૈં । અહિંસા મેં જો પ્રધાન
રૂપતા કહી ગઈ હૈં ંસકા મુખ્ય કારણ ંહ હૈં કિ વહ સમસ્તધર્મોં
કા મૂલ હૈં ંર ંસીલિયે ંસે ંન્હોં ને સર્વપ્રથમસ્થાન દિયા હૈં જવ
ંહ વાત હૈં તો વિચારના ંચાહિયે કિ ભગવા મૂર્તિપૂજા કી ંજ્ઞા કૈસે
દે સકતે હૈં । જ્યોં કિ વહ પૂજા ષટ્કાવ્ય કે જીવોં કી વિરાધના સે
સાધ્ય હોતો હૈં । ંસ વિરાધના મેં અહિંસા ધર્મ કા મૂલતઃ હી અભાવ
સમાયા હુંઆ હૈં । અર્થાત્ મૂર્તિપૂજા મેં ંસ પ્રહુપ્રતિપાદિત અહિંસા ધર્મ
કા સર્વથા ંચ્છેદ હો હો જાતા હૈં-મૂર્તિપૂજા કરને વાલા પૂજક અહિંસા
ધર્મ કા રક્ષક નહીં હો સકના હૈં-પ્રત્યુત ંસે હિંસા કા હી ંધોષ લગતા
હૈં ંસ પ્રકાર સ્વયં ભગવાન જવ ંપને કેવલ જ્ઞાન સે ંસ વાત કો

તેમ નથી. એથી એવી બાબતોમાં સર્વજ્ઞ નાં વચનો બ પ્રમાણ રૂપમાં સ્વીકાર-
વાં બેઠબે.

ભગવાનને ંયોતે બ અહિંસા, સંયમ ંને તપમાં ધર્મ રૂપતા તેમબ
ઉત્કૃષ્ટ મંગલરૂપ હોવાથી પ્રધાનતા બતાવી છે. અહિંસામાં બે પ્રધાન રૂપતા
દર્શાવવામાં ંવી છે, સુખ્યત્વે તેલું કારણ ંા પ્રમાણે છે કે તે બધા ધર્મોંતું
મૂળ છે ંને એથી તેને સૌબે સૌ પ્રથમ સ્થાન અપૂર્ણ છે. બ્યારે એવી
વાત છે ંારે ંપણે વિચારલુંબેઠબે કે ભગવાન મૂર્તિપૂજની ંજ્ઞા કેવી રીતે
ંપી શકે તેમ છે ? કેમ કે તે પૂજા તો ંરકાધના ંવોની વિરાધનાથી સાધ્ય
હોય છે. ંા વિરાધનામાં અહિંસા ધર્મતો, સુખ્યત્વે ંભાવેનો બ સમાવેશ
થયો છે તેમ કહી શકાય છે. એટલે કે મૂર્તિપૂજામાં તે પ્રહુ પ્રતિપાદિત અહિંસા
ધર્મનો સંપૂર્ણ પણે ઉચ્છેદ બ ંર્થ બાય છે. મૂર્તિપૂજા કરનાર પૂજારી અહિંસા
ધર્મનો રક્ષક ંર્થ શકતો નથી ંને બીલ રીતે તો તેને હિંસાનો ંધોષ બ
બાદવો પડે છે. ંા રીતે બ્યારે ંયોતે ભગવાન ંયોતાના કેવલજ્ઞાનથી ંા

एवं लक्ष्याः समालोचिताः, इदानीमलक्ष्या उच्यन्ते—हिंसादौ जिनाज्ञाविरुद्धा प्रवृत्तिर्भवति लोकानां तस्मादधर्मा हिंसादय एव तस्य धर्मलक्षणस्यालक्ष्या भवन्ति। धर्माधर्मस्वरूपबोधनार्थं हि भगवताऽऽवश्यके नाम-स्थापनाद्रव्यभावभेदेन चतुर्विधो निक्षेपः प्रदर्शितः। तत्र भावावश्यके एव तीर्थकराज्ञायाः सद्भावाद् साक्षात् जानते हैं तो फिर वे ही मूर्तिपूजा करने की आज्ञा देंगे यह मान्यता आकाशपुष्पकी तरह सर्वथा असत्य ही है यह स्वयं समझने जैसी बात है जहाँ हिंसा है वहाँ धर्म नहीं है अहिंसामें ही सच्चाधर्म है।

इस प्रकार धर्म के लक्ष्यभूत अहिंसा आदि का यहाँ तक विचार किया। अब उससे विपरीत हिंसादिकों का विचार करते हैं—

हिंसा आदि पाप हैं—इनमें प्रवृत्ति करने की आज्ञा जिन भगवान ने नहीं दी है फिर भी जो प्रवृत्ति करते हैं वे उस आज्ञा से बहिर्भूत हैं। अतः जिनाज्ञा से विरुद्ध प्रवृत्ति होने से जीवों के लिये धर्म प्राप्ति के बदले इनसे अधर्म की ही प्राप्ति होती है। जिन से जीवों को अधर्म की प्राप्ति होती हो, वे स्वयं अधर्म हैं। हिंसादिक पापों में अधर्मता होने का कारण उनमें धर्म के लक्षण का अभाव है। इसीलिये ये धर्म के लक्षण के अलक्ष्य हुए हैं। इस धर्म और अधर्म के स्वरूप को समझाने के लिये भगवान ने आवश्यकसूत्र में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव

वातने रूपपञ्चमे प्रत्यक्षरूपमां नञ्छे छे तो पछी तेञ्जा न मूर्तिपूज करवानी आज्ञा आपे जेथी मान्यता आकाश पुष्पनी जेम संपूर्णपञ्च असत्य न सिद्ध थाय छे. आपञ्चमे पोते पञ्च आ वात समञ्च शक्तीजे तेम छीजे. के न्यां हिंसा छे त्यां धर्म नथी. अहिंसामां न साञ्चो धर्म छे.

आ रीते धर्मना लक्ष्यभूत अहिंसा वगेरे ने भाटे अर्ही सुधी विचार करवामां आञ्चो छे. डवे आगण तेथी विरुद्ध हिंसा वगेरेनी भाणतमां मिथार करवामां आवे छे—

हिंसा वगेरे पाप छे—आमां प्रवृत्त थवानी आज्ञा जिन लगवाने के धर्मे पञ्च आपी नथी छतां जेञ्जा तेमां प्रवृत्ति करे छे तेञ्जा ते आज्ञाथी अहिंसा छे. जेथी जिनाज्ञानी प्रतिकूल प्रवृत्ति होवानी एवोने धर्म प्राप्तिना स्थाने जेमनाथी अधर्मनी न प्राप्ति थाय छे. एवोने जेनाथी अधर्मनी प्राप्ति थाय छे ते पोते अधर्म छे हिंसा वगेरे पापामां अधर्मता होवानी एधि तेञ्जामां धर्मना लक्षणो अभाव छे. जेटला भाटे न तेञ्जा धर्मना लक्षणथी अलक्ष्य थाय छे. आ धर्म अने अधर्मना स्वरूपने समझववा भाटे भगवाने

धर्मत्वम्, अन्यविधेषु वावश्यकेषु रागद्वेषहिंसादिदोषसद्भावेन मोक्षमार्गोपदेशे प्रवृत्तस्य तीर्थंकरस्य चाऽऽज्ञाया अभावेन न तत्र धर्मलक्षणं समनुगच्छति, तेषां मोक्षसाधकत्वाभावाज्जैनधर्मपदं लब्धु-मनर्हत्वात् । तथाचोक्तमनुयोगद्वारे--

‘‘से किं तं नामावरसयं ? । नामावरसयं जरस णं जीवरस वा अजीवरस वा

के भेद से ४ चार निक्षेपों का कथन किया है उनमें नाम स्थपना और द्रव्यरूप धर्म निक्षेप के आराधन करने की भगवान ने जीवों को आज्ञा नहीं दी है वर्यो कि इनसे जीवों को धर्म की प्राप्ति नहीं होती है । धर्म की प्राप्ति कराने वाला केवल भाव निक्षेपरूप आवश्यक है । इसकी आराधना से ही जीवों को धर्म प्राप्त हुआ करता है-अतः इस में ही धर्मरूपता प्रकट की गई है बाकी के इसके अनिरिक्त निक्षेपों में-आवश्यकों में रागद्वेष और हिंसा आदि दोषों का सद्भाव होने से एवं मोक्ष मार्ग के उपदेशप्रदान करने में प्रवृत्त तीर्थंकरों की इनके आराधन करने में आज्ञा का अभाव होने से धर्म के लक्षण का समन्वय ही नहीं होता है । मुक्ति का जो साधक होता है वही जैन-धर्म है । इन ३ निक्षेपरूप आवश्यकों में मुक्ति की साधकता का अभाव है-इसलिये ये जैनधर्म के पदको स्वप्न में भी प्राप्त नहीं कर कते हैं ।

अनुयोगद्वार में यही बात कही गई है—

से किं तं नामावरसयं ? नामावरसयं जरस णं जीवरस अजीवरस

आवश्यकसूत्रमां नाम, स्थापना द्रव्य अने भावना लेदथी चार निक्षेपो नुं कथन कथुं छे. तेजोभां नाम, स्थापना, अने द्रव्यरूप धर्म निक्षेपने आराधवानी भगवाने लुवेने आज्ञा आवी नथी डेम डे जेभनाथी लुवेने धर्मनी प्राप्ति थती नथी धर्मनी प्राप्ति करवनादे केवण भावनिक्षेपरूप आवश्यक छे. जेनी आराधनाथी जे लुवेने धर्मनी प्राप्ति थाय छे जेथी आमां जे धर्मरूपता पताववामां आवी छे, जेना सिवायना जीम निक्षेपोमां-आवश्यकोमां-रागद्वेष अने हिंसा वगेरे दोषोने सद्भाव होवथी अने मोक्ष मार्गना उपदेश आपवामां प्रवृत्त तीर्थंकरोनी जेभनी आराधना करवानी आज्ञोने अभाव होवथी धर्मना लक्षणोने समन्वय जे थतो नथी. मुक्तिने जे साधक होय छे ते जे जैन-धर्म छे. आ उ निक्षेपरूप आवश्यकोमां मुक्तिनी साधकताने अभाव छे भाटे जेजो जैन धर्मना यदने स्वप्नमाथि भेजवी शके नेम नथी.

अनुयोगद्वारमां जे जे वात कडेवामां आवी छे—

से किं तं नामावरसयं ? नामावरसयं जरस णं जीवरस अजीवरस वा जीवाण वा

जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा आवस्सएत्ति नामं कज्जइ, से तं नामावरस्सयं ।

अथ किं तत् नामावश्यकं ? नामावश्यकं—यस्य खलु जीवस्य वा अजीवस्य वा जीवानां वा अजीवानां वा, तदुभयस्य वा तदुभयेषां वा आवश्यकमिति नाम क्रियते तदेतन्नामावश्यकम् ।

“ से किं तं ठवणावस्सयं ? जणं कट्टकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अवखे वा वराडए वा एगो वा अणेगो वा सव्भावठवणा वा असव्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ, से तं ठवणावस्सयं ।

छाया—अथ किं तत् स्थापनावश्यकम् ? स्थापनावश्यकं यत् खलु काष्ठकर्म वा पुस्तकर्म वा चित्रकर्म वा लेप्यकर्म वा ग्रन्थिमं वा वेष्टिमं वा पूरिमं वा सद्वातिमं

वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा आवस्सएत्ति नामं कज्जइ से तं नामावस्सयं ।

से किं तं ठवणावस्सयं ? जणं कट्टकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अवखे वा वराडए वा एगो वा सव्भावठवणा वा असव्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ, से तं ठवणावस्सयं

भावार्थ—जीव, अजीव अथवा तदुभय स्वरूप आदि पदार्थों में “ यह आवश्यक है ” इस प्रकार नाम संस्कार करना वह जीव अजीव आदि नाम आवश्यक है इस नाम आवश्यक में आवश्यक के वास्तविक गुणादि कुछ भी नहीं होते हैं—सिर्फ लोक व्यवहार के लिये ही इस प्रकार की वहाँ पर निक्षेपविधि करली जाती है काष्ठ, पुस्तक चित्र

अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा आवस्सएत्ति नामं कज्जइ से तं नामावस्सयं ।

से किं तं ठवणावस्सयं ? जणं कट्टकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अवखे वा वराडए वा एगो वा अणेगो वा सव्भावठवणा वा असव्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ, से तं ठवणावस्सयं ।

भावाार्थ—एव, अएव अथवा तदुभय स्वरूप वगेरे पदार्थों में “ या आवश्यक छे ” या रीते नाम संस्कार करवे। ने एव अएव वगेरे ‘ नाम आवश्यक ’ छे या नाम आवश्यकतां आवश्यक ना वास्तविकशुद्ध वगेरे इंधं न होता नथी इकेत लोकव्यवहार ना भाटे न या जतनी त्यां निक्षेपविधि करवातां

वा अक्षं वा वराटकं वा एको वा अनेको वा सद्भावस्थापना वा असद्भावस्थापना वा ' आवश्यक '—मिति स्थापना स्थाप्यते, तदेतत् स्थापनावश्यकम् ।

भावावश्यकस्वरूपशून्ये गोपालदारकादौ आवश्यकेति नामकरणे नामना-
नाममात्रेणावश्यकं नामावश्यकं गोपालदारकादिर्भूवति। स्थापनाऽपि भावावश्यक

एवं अक्ष-शतरंज की गोटी आदि में एक अथवा अनेक आवश्यक क्रिया करने वाले श्रावक आदि का तदाकार अथवा अतदाकार लिखित चित्र स्थापना आवश्यक (निक्षेप) है यह स्थापना दो प्रकार की है एक सद्भाव स्थापना और २ दूसरी असद्भावस्थापना । सद्भाव स्थापना में जिसकी स्थापना की जाती है उसकी सर्व आकृति कोतरी रहती है असद्भूत स्थापना में इस प्रकार की आकृति आदि नहीं रहती है वहाँ पर केवल संकेत ही है जैसे शतरंज की गोटियां में यह प्यादा है यह बजीर है, यह हाथी है इत्यादि सिर्फ कल्पना ही कल्पना रहती है—वहाँ उनका कोई भी आकार कोतरा नहीं रहता है । नाम निक्षेप में जिस प्रकार भाव आवश्यक शून्यता रहती है उसी प्रकार स्थापना में भी यही बात रहती है किसी गोपाल (ग्वालिये) के लड़के का " आव-
श्यक " इस प्रकार का नाम जिस प्रकार भाव आवश्यक रहित नाम निक्षेप में है उसी प्रकार भाव आवश्यक के स्वरूप से शून्य स्थापना निक्षेप में भी " यह आवश्यक है " यह स्थापना निक्षेप है ।

आवे છે, કાષ્ઠ, પુસ્તક, ચિત્ર અને અક્ષ-શતરંજ ની સોગઠી વગેરેમાં એક કે અનેક આવશ્યક ક્રિયા કરનાર શ્રાવક વગેરેનું તદાકાર કે અતદાકાર લેખિત ચિત્ર-સ્થાપન આવશ્યક (નિક્ષેપ) છે. આ સ્થાપના બે પ્રકારની છે. એક સદ્ભાવ સ્થાપના અને બીજી અસદ્ભાવ સ્થાપના. સદ્ભાવ સ્થાપનામાં જેની સ્થાપના કરવામાં આવે છે તેની આકૃતિ સંપૂર્ણપણે કેતરેલ હોય છે. અસદ્ભૂત સ્થાપનામાં આ બંતની આકૃતિ વગેરે રહેતી નથી ત્યાં ફક્ત સંકેત જ છે. જેમ શેતરંજની સોગઠીઓમાં આ પાયદળ છે, આ વજીર છે, આ હાથી છે વગેરે ફક્ત કોરી કલ્પના જ હોય છે તેમાં તેમની કોઈપણ બંતની આકૃતિ કેતરેલી હોતી નથી. નામ નિક્ષેપમાં જેમ ભાવ આવશ્યક શૂન્યતા રહે છે તેમજ સ્થાપનામાં પણ એ જ વાત હોય છે. કોઈ ગોવાજિયાના પુત્રનું ' આવ-
શ્યક ' આ બંતનું નામ જેમ ભાવ આવશ્યક રહિત નામ નિક્ષેપમાં છે તે પ્રમાણે જ ભાવ આવશ્યકના સ્વરૂપથી શૂન્ય સ્થાપના નિક્ષેપમાં પણ " આ આવશ્યક છે " આ સ્થાપના નિક્ષેપ છે.

સ્વરૂપશૂન્યે કાઠકર્માદૌ ક્રિયતે । અતો માદશૂન્યે ત્રિયમાણત્વાદિશેષાદનયો-
નાસ્તિ કશ્ચિદ્ ભેદ इत्याશयेनाह—

“ ગામદ્રવણાણં કો પૃથિવિસેસો ? । છાયા-નામસ્થાપનયોઃ કઃ પ્રતિવિશેષઃ ? ।
અત્રોત્તરમુચ્યતે—

‘ગામં આવકહિં, ઠવળા ઇત્તરિયા વા હોજ્જા આવકહિયા વા ’ ॥ છાયા-
નામ-યાવત્કથિકં, સ્થાપના-ઈત્તરિકા વા ભવેદ્ યાવત્કથિકા વા ।

‘ ગામં આવકહિંયં ’ નામ યાવત્કથિકં-સ્વાશ્રયદ્રવ્યસ્યાસ્તિત્વકયાં યાવ-
દનુવર્તતે इत्यर्थः, સ્થાપના તુ ‘ ઇત્તરિયા વા ’ ઇત્તરિકા વા સ્વલ્પકાલસ્થાયિની
વા ‘ હોજ્જા ’ સ્યાત્, યાવત્કથિકા વા, અયં ભાવઃ-કાચિત્-સ્થાપના સ્વાશ્રય-
દ્રવ્યસ્ય સદ્ભાવેઽપિ, મધ્યકાલ એવ નિવર્તતે, કાચિત્-તત્સત્તાં યાવદવતિષ્ઠતે

શંકા—જિસ પ્રકાર આવ આવશ્યક કે સ્વરૂપ સે શૂન્ય ગાપાલ કે
લડકે આદિ મેં “ આવશ્યક ” હસ પ્રકાર કા નામનિક્ષેપરૂપ આવશ્યક
હે ડસી પ્રકાર ભાવ આવશ્યકકે સ્વરૂપસે શૂન્ય કાષ્ટધર્મ આદિકોં મેં મી
યહી વાત હે । અતઃ ભાવ આવશ્યકકે સ્વરૂપકી શૂન્યતાકી અપેક્ષા સે
હન ડોનોંમેં કોઈ મી અન્તર નહીં હે । તો ફિર હન ડોનોંમેં વ્યા ભેદ હે ।

ઉત્તર—“ગામં આવકહિંયં ઠવળા ઇત્તરિયા વા હોજ્જા આવકહિયા-
વા ” હસ પ્રકાર કી શંકા ઠીક નહીં-વ્યોં કિ નામ યાવત્કથિત હોતા
હે સ્થાપના ઇત્તરિક ઓર યાવત્કથિક ડોનોં પ્રકાર કી હોતી હે । અપને
આશ્રયભૂત દ્રવ્યકા જલતક અસ્તિત્વ-સદ્ભાવ રહતા હે તલતક નામનિ-
ક્ષેપ રહતા હે ! ઇત્તરિક શબ્દ કા અર્થ અલ્પકાલીન હે ચિત્ર એવં અક્ષ
આદિકોં મેં યહ સ્થાપના અલ્પકાલીન હોતી હે । હસ પ્રકાર નામ ઓર

શંકા—એમ ભાવ આવશ્યકના સ્વરૂપથી શૂન્ય ગોવાળિયાના પુત્ર વગે-
રેમાં “ આવશ્ય ” આ બંધનું નામ નિક્ષેપ રૂપ આવશ્યક છે તેમજ ભાવ
આવશ્યકના સ્વરૂપથી શૂન્ય કાષ્ટધર્મ વગેરેમાં પણ એ જ વાત છે. એથી ભાવ
આવશ્યકના સ્વરૂપની શૂન્યતાની દૃષ્ટિએ આ બંનેમાં કોઈ પણ બંધનને તક્ષવત
નથી, ત્યારે આ બંનેમાં ભેદ શો છે ?

ઉત્તર—(ગામ આવકહિંયં ઠવળા ઇત્તરિયા વા હોજ્જા આવકહિયા વા)
શંકા ચોગ્ય નથી કેમકે નામ યાવત્ કથિત હોય છે. સ્થાપના ઇત્તરિક અને
યાવત્કથિત બંને પ્રકારની હોય છે. પોતાને આશ્રયભૂત દ્રવ્યનું બધાં સુધી સદ્-
ભાવ-અસ્તિત્વ રહે છે ત્યાં લગી નામ નિક્ષેપ રહે છે । ઇત્તરિક શબ્દનો અર્થ
અલ્પકાલીન છે. ચિત્ર અને અક્ષ (રમવાના પાસા) વગેરેમાં એ સ્થાપના
અલ્પકાળ માટે હોય છે. આ રીતે નામ અને સ્થાપનામાં ભાવ, નિક્ષેપની

इति। एवं च—नामस्थापनयोर्भाव शून्यत्वेनाधारसाम्येऽपि भेदः स्वस्वावस्थानकाल-
कृत एव भगवता प्रदर्शितः। यद्यपि गोपालदारकादौ विद्यमानेऽपि कदाचिद-
नेकनामपरिवर्तनं लोके क्वचिद् दृश्यते, तथा च कालकृतोऽपि भेदो नास्ति,
तथापि—बहुशः स्थले नाम्नो यावत्कथिकत्वमेव दृश्यते, नाम्नः परावर्तनं तु
क्वचिद्विरलतयोपलभ्यते। अतोऽल्पस्थलव्यापित्वेन नाम्न इत्वरिकता भगवता
न विवक्षिता। नाम्नोऽल्पकालिकताकल्पने तूत्सूत्रप्ररूपणापत्तिरिति बोध्यम्।

स्थापनामैर् भावनिक्षेपकी शून्यताकी अपेक्षासे समानता आती है तो भी
अपने २ कालकी अपेक्षासे इनमें इस प्रकार भेद—अन्तर माना गया है।

शंका—नामनिक्षेप में जो यावत्कथिकता प्रदर्शित की गई है, वह
ठीक नहीं है—कारण कि हम देखते हैं नामवान द्रव्य—गोपालदारक
आदि के विद्यमान रहते हुए भी उस में अनेक नामों का परिवर्तन
होना रहता है। कभी उसका “आवश्यक” यह नाम होता है, तो
“इन्द्र” यह नाम रख लिया जाता है। फिर “आवश्यक” इस नाम
निक्षेप में यावत्कथिकता कैसे आ सकती है ?

उत्तर—शंका ठीक है इस प्रकार से विचार करने पर कालकृत
अन्तर यद्यपि उन दोनों में नहीं मालूम होता है—तौ भी इस बात की
यहां पर विवक्षा नहीं है इसका कारण यही है कि यह नामपरिवर्तन
अल्पस्थलवर्ती होनेसे व्याप्य है। यह बात सब जगह नहीं होती। कहीं
२ ही होती है यहां सामान्यकथन है—विशेष नहीं। सामान्यरूप से नाम

शून्यतानी अपेक्षाथी समानता आवी न्य छे, छताथे पोतपोताना काणनी
अपेक्षाथी तेओमां आ नतने वेद अन्तर मानवामां आन्थे छे.

शंका—नाम निक्षेपमां वे यावत्कथिकता भताववामां आवी छे, ते उचित
नथी. कारणु के नामवाणु गोपाणहारक वगेरेना विद्यमान रहेता पणु तेमां
अनेक नामेतुं परिवर्तन थतु रहे छे. केध वपते तेतुं नाम ‘आवश्यक’
राभवामां आवे छे तो केध वपत ‘इन्द्र’ नाम राभवामां आवे छे. तो
पछी ‘आवश्यक’ आ नाम निक्षेपमां यावत्कथित केवी रीते आवी शके छे ?

उत्तर—शंका उचित छे. आ रीते विचार करवाथी जे के काणकृत अन्तर
तेओ भते-मां नणुतुं नथी छताथे आ वातनी अही विवक्षा नथी. ओतुं
कारणु आ प्रमाणु छे के आ नाम परिवर्तन अल्प-स्थलवर्ती होवाथी व्याप्य
छे, आ वात पधे स्थाने होती नथी केधके केधके स्थाने न होथे छे. अही

યત્તુ-ઉપલક્ષણમાત્રં ચેદં કાલભેદેનૈતયોર્ભેદકથનમ્-અપરસ્યાપિ વહુપ્રકાર-
ભેદસ્ય સમ્ભવાત્, ઇત્યુક્તં, તદુત્સૂત્રપ્રરૂપણમ્ યથોત્સૂત્રપ્રરૂપણમિયાનામનિક્ષેપે
ઇત્વરિકતાયાઃ ક્વચિત્ સંભવેડપિ ભગવતાડનુક્તવાદુપલક્ષણમિતિ ન સ્વીકૃતં તથૈવ
સ્થાપનાયાં કાલાતિરિક્તસ્ય ભેદહેતોઃ કલ્પનેડપ્યુત્સૂત્રપ્રરૂપણં પ્રસજ્યેત કાલાન્યકૃત-

યાવત્કથિક હી હોતા હૈ । હસી અપેક્ષા કો લક્ષ્ય મેં રલ્લકર ભગવાન ને
લસમેં ઇત્વરિકતા કા કથન ન કર કેવલ યાવત્કથિકતા કા હી કથન
કિયા હૈ યદિ નામ મેં જો કેવલ ઇત્વરિકતા હી માની જાવેગી-તો યહ
બાત સિદ્ધાન્ત સે બહિર્ધૃત હોને સે માનને વાલે કે લિચે ઉત્સૂત્રપ્રરૂપણા
કરને કી આપત્તિ કા દોષ આવેગા-ક્યોં કિ શાસ્ત્ર મેં ભગવાન ને નામ
નિક્ષેપ મેં કેવલ યાવદ્રવ્ય ભવિતા હી પ્રદશિત કી હૈ ।

જો વ્યક્તિ હસ શંકા કા હસ પ્રકાર સે સમાધાન કરતે હૈં કિ
“ કાલ કે ભેદ સે જો નામ ઓર સ્થાપના મેં ભેદ કહા ગયા હૈ વહ
કેવલ ઉપલક્ષણ માત્ર હૈ-હસસે અન્ય અનેક પ્રકારોં સે ખી ઇન દોનોં મેં
પરસ્પર ભેદ હૈ યહ બાત જાની જાતી હૈ ” સો ડનકા યહ કથન શાસ્ત્ર-
મર્યાદા કે વિરુદ્ધ હૈ જિલ પ્રકાર નામ નિક્ષેપ મેં કહીં ૨ ઇત્વરિકતા
હોને પર ખી ભગવાન દ્વારા સ્વીકૃત ન હોને સે વહ ઉપલક્ષણ સે
સ્વીકૃત નહીં કી ગઈ હૈ-ડસી પ્રકાર સ્થાપના મેં ખી કાલકૃત ભેદ કે

સામાન્ય કથન છે વિશેષ નહિ. સામાન્ય રૂપથી નામ યાવત્ કથિત જ હોય
છે. આ વાતને સામે રાખીને જ ભગવાને તેમાં ઇત્વરિકતાનું કથન ન કરતાં
ફક્ત યાવત્કથિકતાનું કથન કર્યું છે. જો નામમાં ફક્ત ઇત્વરિકતા જ માનવામાં
આવશે તો આ વાત સિદ્ધાન્તની બહાર હોવાથી માનનાર માટે ઉત્સૂત્ર પ્રરૂ-
પણા કરવા રૂપ હોષ આવશે. કેમકે શાસ્ત્રમાં ભગવાને નામ નિક્ષેપમાં ફક્ત
યાવદ્-દ્રવ્ય-ભાવિતા જ બતાવી છે.

જે માણસો આ શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે કરે છે કે “ કાલના
લેક્ષી જે નામ અને સ્થાપનામાં તદ્દાવત બતાવવામાં આવ્યો છે તે ફક્ત
ઉપલક્ષણ માત્ર છે. એથી બીજા અનેક પ્રકારોથી પણ આ બંનેમાં પરસ્પર
તદ્દાવત છે આ વાત સ્પષ્ટ થાય છે. “ જેથી તેમનું આ કહેવું શાસ્ત્ર-મર્યાદાથી
વિપરીત છે. જેમ નામ-નિક્ષેપમાં કોઈક કોઈક ઠેકાણે ઇત્વરિકતા હોવા છતાં
ભગવાન વડે સ્વીકૃત ન હોવાથી તે ઉપલક્ષણ રૂપથી સ્વીકારવામાં આવી નથી,
તેમ સ્થાપનામાં પણ કાલકૃત લેક સિવાય બીજા વડે અન્તર-ભેદ-માનવામાં

भेदस्य भगवताऽनुक्तत्वात् । एतेन—“ यत् कैश्चिदुक्तं यथा प्रतिमारूपस्थापनादर्शनाद् भावः समुल्लसति नैवं नामश्रवणमात्रादिति नामस्थापनयोर्भेदः, यथा चेन्द्रादेः प्रतिमारूपस्थापनायां, लोकस्योपयाचितेच्छा पूजाप्रवृत्ति समीहितत्वात्माद्योद्दश्यन्ते, नैव नामेन्द्रादौ, इत्यपि तयोर्भेदः । एवमन्यदपि वाच्यमिति तदुत्सृज्यप्ररू-

सिवाय अन्य द्वारा अन्तर भेद मानने में उत्सृज्य प्ररूपणा करने का दोष आता है, कारण कि भगवान ने कालकृत भेदके सिवाय स्थापना निक्षेप में अन्य और किसी दूसरी अपेक्षा से भेद का कथन नहीं किया है इस प्रकार के कथन से “ यह बात भी जो दूसरों ने कही है कि नाम और स्थापना में इस प्रकार से भी भेद है—कि “ जिस प्रकार अर्हंत की प्रतिमारूपस्थापना के देखने-दर्शन करने से भावों की जागृति होती है, उस प्रकार नाम निक्षेपरूप अर्हंत नाम के सुनने से भावों की जागृति नहीं होती है । अथवा—इन्द्रादिक की प्रतिमारूप स्थापना में जिस प्रकार से लौकिकजनों की उस प्रतिमा से कुछ मांगने की इच्छा उसके पूजन करने की भावना और उस प्रतिमा द्वारा उनके अभिलषित मनोरथों की पूर्ति होती हुई देखी जाती है, उस प्रकार नामरूप इन्द्र में उनकी इस प्रकार की प्रवृत्ति और अभिलषित मनोरथों की पूर्ति होती हुई नहीं देखी जाती है । इसी तरह और भी ऐसी कई बातें हैं जो नाम और स्थापना में अन्तर कराती हैं । यह सब कालकृत भेद के सिवाय

उत्सृज्य प्ररूपण इप दोष थं नय छे कारण के लगवाने कालकृत लेह सिवाय स्थापना निक्षेपमां भीछ केह अन्य दृष्टिसे लेह-कथन कथुं नथी. आ नतना कथनथी “ आ वात पणु ने भीनओअे कही छे के नाम अने स्थापनामां आ रीते पणु तक्षावत छे के “ जेम अर्हंतनी प्रतिमा इप स्थापनाने लेवा ओटले के दर्शन करवाथी लावोनी नगृति थाय छे, तेम नाम निक्षेप इप अर्हंतना नामन सांलणवाथी पणु लावोनी नगृति होती नथी. अथवा ते धन्द्र वगेरेनी प्रतिमा इप स्थापनामां जेम लौकिक भाणुसोनी ते प्रतिमाथी कंधक भागणी करवानी ध्विछा, तेनी पूज करवानी लावना अने ते प्रतिमा वडे तेमना अलिदषित मनोरथोनी पूर्ति थती देभाय छे तेम नाम इप धन्द्रमां तेमनी आ नतनी प्रवृत्ति अने अलिदषित मनोरथोनी पूर्ति थती लेवामां आवती नथी. आ प्रमाणे भीछ पणु धणु आभते छे ने नाम अने स्थापनामां अंतर करावे छे.

पणा जनितानन्तसंसारजनकम् । आगमे यदिदमुपलभ्यते—“ तहारूढाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयसवणयाए महाफलं ।” इति, तत्र नास्ति नामनिक्षेपस्य विषयः । “ अरहंताणं भगवंताणं ” इत्युक्त्या तस्मिन्नर्थे प्रयुक्तस्य नाम्न एव श्रवणेन महा-फलसंभवात्, गोपालदारकादौ प्रयुक्तस्य नाम्नः श्रवणेन तु गोपालदारकाद्यर्थ-स्यैव बोधादात्मपरिणामशुद्धिहेतुत्वं तस्य नास्तीति । नामनिक्षेपस्यले भगवतोऽ-र्हतः स्मरणसंभवाः, तस्य भावशून्यत्वात्, अत्र तु नामगोत्राभ्यां भगवदहंतः सम्बन्धं पृष्ठचन्तपदप्रयोगादेव दर्शयता भगवता नामनिक्षेपो न विवक्षितः । भावजिन-

नाम और स्थापना में भेद कल्पना का कथन उत्सूत्र प्ररूपक होने से अनन्त संसार का जनक है अनः हेय है । “तहारूढाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयसवणयाए महाफलं ” आगम में जो यह सूत्र लिखा हुआ देखा है उसका अभिप्राय नामनिक्षेप परक नहीं है । अर्थात्-इस सूत्र से नाम निक्षेप की पुष्टि नहीं होती है । यदि सूत्रकार को इस सूत्र से जो नामनिक्षेप की पुष्टि करना इष्ट होता तो “अरहंताणं भगवं-ताणं इस पद के स्वतन्त्र देने की कोई खास आवश्यकता नहीं थी । अतः यह वान माननी चाहिये कि अरहंत भगवान के ही नामगोत्र के श्रवण से महाफल होता है । किसी गोपाल के लड़के में निक्षिप्त “अरहंत ” इस नाम के छुनने से नहीं । उस में प्रयुक्त भी उस नाम के श्रवण से तो केवल उस गोपाल दारकरूप अर्थ का ही बोध होता है । “अरहंत ” यह नाम जिसरूप के संकेत से अरि-

आ णधुं कालकृत लेढ सिवाय नाम अने स्थापनामां लेढ कल्पनातुं कथन उत्सूत्र प्ररूपक होवाथी अनंत संसारतुं जनक छे ज्येथी त्यान्य छे. “ तहारूढाणं अरहंताणं भगवंताणं नाम गोयसवणयाए महाफलं ” आगममां जे आ सूत्र मणे तेना अलिप्राय नामनिक्षेपपरक नथी. ज्येठले के आ सूत्र वडे नाम निक्षेप-पुष्टि थती नथी. जे सूत्रकारने आ सूत्र वडे नाम-निक्षेपपी पुष्टि करवुं छष्ट लागतुं छेत तो “अरहंताणं भगवंताणं ” आ पहने स्वतंत्र रूपमां भूषवानी कौंथ भास आवश्यकता छती नछि. ज्येथी आ वात मानी देवी ज्येथी के अरहंत लजवानना नाम गोत्र-श्रवणथी मडाईण प्राप्त छेय छे. कौंथ गोपाजना पुत्रमां निक्षिप्त “अरहंत ” आ नामने सांलगवाथी नछि. तेमां प्रयुक्त यणु ते नामना श्रवणथी तो इकत ते गोपाजना पुत्र रूप अर्थ-ना जे बोध छेय छे. “अरहंत ” आ नाम जे रूपना संकेतथी अरिहंत मणुमां संकेतित थयुं छे-ते रूपना संकेतथी जे गोपाजना पुत्रमां संकेतित

हंत प्रभु में संकेतित हुआ है—उसी रूप से संकेत से गोपाल के पुत्र में संकेतित नहीं हुआ है। लौकिक व्यवहारके लिये ही केवल “अरहंत” ऐसा उसका नाम करलिया गया है। नाम निक्षेप में जिसका निक्षेप किया जाता है उस जाति के द्रव्य, गुण और कर्म—क्रिया आदि निमित्त की अनपेक्षा रहती है इस निमित्त के सद्भाव में वह नाम निक्षेप का विषय नहीं माना जाता है। भाव निक्षेप का ही वह विषय होता है अतः यह निश्चिन होता है कि अरहंत भगवान के ही नाम गोत्र के श्रवण के महाफल सूत्रकार ने प्रकट किया है यदि नामनिक्षेप से यह फल प्राप्त होने लगता तो फिर भावनिक्षेप की आवश्यकता ही क्या थी। उसके श्रवण मात्र से ही जीवों के आत्मिक भावों में शुद्धिरूप महाफल का लाभ होने लगता। तथा जिसका “अरिहंत” यह नाम है वह स्वयं अरिहंत प्रभु की तरह महापवित्र, ३४ अतिशयों सहित ८ प्रतिहार्य आदि विभूति संपन्न हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता है अतः यह मानना चाहिये कि यह सूत्र भावनिक्षेप की ही पुष्टि विधायक है—नामनिक्षेप का नहीं। नामनिक्षेप से भगवान अरिहंत की स्मृति भी नहीं कराई जाती है—कारण कि वह नामनिक्षेप स्वयं उस प्रकार के भावों से शून्य है। अनुभूत पदार्थ की स्मृति हुआ करती

थ्यु' नथी. लौकिक व्यवहार भाटे इत्त “अरहंत” आबु' नाम पाठवामां नामनिक्षेपमां जेना निक्षेप करवामां आवे छे ते नतिना द्रव्य, गुणु अने कर्म—क्रिया वगेरे निमित्तनी अपेक्षा रहे छे. आ निमित्तना सद्भावमां ते नाम-निक्षेपना विषय मानवामां आवतो नथी. भाव निक्षेपना ज ते विषय होय छे. जेथी जे सिद्ध थाय छे के अरहंत भगवानना ज नाम गोत्रना श्रवणथी ज सूत्रकारे मडाइण गताव्युं छे. जे नामनिक्षेपथी आ इण भणी शक्युं होत तो पछी भावनिक्षेपनी आवश्यकता ज शी हती? तेना श्रवण मात्रथी ज जेथानी आत्मिक भावोमां शुद्ध रूप मडाइणना लाभ थवा मांडतो. तेमज जेनु “अरिहंत” आ नाम छे ते पोते अरिहंत प्रभुनी जेम मडा-पवित्र, ३४ अतिशयो सहित, ८ प्रतिहार्य वगेरे विभूतिजोथी संपन्न थछे नत, पणु आवुं थनु नथी जेथी जेम समणु लेवुं जेधजे के आ सूत्रथी भावनिक्षेपनी ज पुष्टि थाय छे—नाम निक्षेपनी नहि. नाम निक्षेपथी भगवान अरिहंतनी स्मृति पणु करवामां आवती नथी कारणु के ते नाम-निक्षेप नते ते नतना भावोथी रहित छे. अनुभूत पदार्थनु स्मरणु थवा करे छे जेनु

है जिसका “अरिहंत” यह नाम रखा गया है उसके देखने से अरिहंत की स्मृति हो भी कैसे सकती है—स्मृति तो अरिहंत की जब हो सकती कि जब उसमें उनकी स्मृति के चिह्न होते—वह स्वयं उस प्रकार के हेतु हो सकती है माना कि श्रवण कर्त्ता शास्त्र आदिकों में अरिहंतप्रभु के गुणों का वर्णन पढ़कर चित्त में उकेर कर भले ही “अरिहंत” इस नामके श्रवण से उनका स्मरण कर सकता है। परन्तु गोपालदारकादी में कृत्त नाम से उनका स्मरण उसे नहीं हो सकता—उस नाम से तो उसमें ही संकेतित उस शब्द से उस गोपाल दाररूप अर्थ का ही उसे बोध होगा। यदि अरिहंत नाम के सुनने से सुनने वाले को अरिहंत पदार्थ का भान होता हैतो वह नाम निक्षेप का विषय नहीं माना गया है भावनिक्षेप का ही वह विषय है। थोड़ा बहुत भी किसी अपेक्षा से सादृश्य होने पर एक पदार्थ को देखकर सदृश दूसरे पदार्थ का स्मरण हो जाता है परन्तु प्रकृत में गोपालदाकरूप अरिहंत नामनिक्षेप में ऐसा कौन सा सादृश्य है जो वह अरिहंत का स्मरण करा सके। अतः नाम और गोत्र के साथ साक्षात् भगवान् अरिहंत का संबंध पण्ठी विभक्ति द्वारा प्रदर्शित करने वाले सूत्रकार ने इस सूत्र में नामनिक्षेप का कोई

“अरिहंत” आ नाम राप्वामां आब्धुं छे. तेने जेवाथी अरिहंत स्मृति पण्ठु डेवी रीते थछ शके तेम छे? स्मृति तो अरिहंतनी त्पारे ज थछ शके के न्पारे तेमां तेमनी स्मृतिना थिहो होथ, ते पोते आ नतना लावेथी रडित थथेको होथ. त्पारे ते डेवी रीते तेमनी स्मृतिनुं कारणु थछ शके छे? आ वात आपण्ठे स्वी-कारी शकथे तेम छीये के श्रवण-कर्त्ता शास्त्र वगेरेमां अरिहंत प्रभुना गुणोतु पण्ठुन वाचीने चित्तमां धारणु करीने लसे ‘अरिहंत’ आ नामना श्रवणुथी तेमनुं स्मरणु करी शके छे. पण्ठु गोपाणहारक वगेरेमां कृत नामथी तेनुं स्मरणु थछ शकतुं नथी. ते नाम वडे तो तेमां ज स’केतित ते शण्ठथी ते गोपाणहारक इप अर्थने ज ते बोध थथे. जे अरिहंत नाम श्रवणुथी सांलणनारने अरिहंत पदार्थोतुं ज्ञान थाथ छे त्पारे ते नामनिक्षेपने विषय भानवामां आब्धे नथी लावनिक्षेपने ज ते विषय छे. कोछ पण्ठु रीते थोडुं पण्ठु सरणापण्ठुं होवाथी ओक पदार्थने जेधने तेना सरणा पीज पदार्थोतुं स्मरणु थछ न्पथ छे पण्ठु प्रकृतमां गोपाणहारक इप अरिहंत नामनिक्षेपमां ओतुं कछ न्ततनुं सरणापण्ठुं छे के जे ते अरिहंतनुं स्मरणु करावी शके? ज्यथी नाम अने गोवनी साथे साक्षरत् लगवान् अरिहंतने संभ’ध पण्ठी विलकित वडे दर्शावनारा सूत्रकारे आ इज्जरां नामनिक्षेपने कोछ पण्ठु विषय भतिपाडित कथे नथी. लावनिक्षेप-

बोधकल्प नाम्न एव श्रवणेन महाफलसंभवः । एवं स्थापनापि भावरूपार्थशून्या, स्थापनया भावरूपार्थरय नास्ति कोऽपि सस्वन्धः । भावजिनशरीरवर्तिनी याऽऽकृतिरासीत्, तस्या आश्रयाश्रयिभ्याः रूपसम्बन्धो भावजिनेन सह तदानीं विद्यमान आसीत् । यथा भावजिनं पश्यतास्तदानीं भावोच्छासोऽपि कस्यचित् संजातः,

भी विषय प्रतिपादित नहीं किया है । भावनिक्षेप का ही विषय इसमें कहा है इसलिये भावजिन का बोध कराने वाले जिन 'अरिहंत' आदि नामों के सुनने से ही महाफल होता है ऐसा मानना चाहिये ।

इसी प्रकार स्थापना निक्षेप भी भावरूप अर्थ से शून्य है कारण कि इसका उसके साथ कोई संबंध नहीं है भावजिन की अवस्था की आकृति पाषाण आदि की मूर्ति में " यह वही है " इस प्रकार की कल्पना करने का नाम स्थापना है तीर्थंकर प्रकृति के उदयसे समवसरणादि विसृति सहित आत्मा का नाम भाव जिन है इस भाव जिन के शरीर की जो आकृति है उसका संबंध विचारिये उस पाषाण आदि की प्रतिमा में कैसे आसकता है । क्यों कि इस आकृति का संबंध आश्रय आश्रयी भावसे वे जिन जिसकाल में थे उसी काल में उनके साथ था । उनके नहीं रहने पर पाषाण आदि में इस तरह का आश्रय आश्रयी भाव संबंध मानना उचित कैसे कहा जा सकता है; भावजिन के सद्भाव में जिस प्रकार उनके साक्षात् दर्शन से प्राणियों को एक प्रकार

नो ७ विषय तेमां भताव्यो छे ज्येथी लननो बोध करावनार लन " अरिहंत " वगेरे नाम श्रवणुथी महाइण प्राप्त होय छे आभ समजपुं जेधज्ये.

आ प्रभाजे स्थापना निक्षेप पणु लाव इय अर्थथी रडित छे. कारण के आनो तेनी साथे केठ पणु नतनो संभंध नथी. लावलननी अवस्थानी आकृति पथर वगेरेनी भूर्तिमां " आ तेज्यो ७ छे " आ नतनी कल्पना करवानुं नाम स्थापना छे. तीर्थंकरनी प्रकृतिना उदयथी समवसरणु वगेरे विबूति रडित आत्मानुं नाम लावलन छे. आ लावलनना शरीरनी ७ आकृति छे तेना विषे आपणु पणु विचार करीये के पथर वगेरेनी प्रतिमांमां तेना संभंध केवी रीते आवी शकं छे ? केमके ते आकृतिना संभंध आश्रय आश्रयी लावथी ते लन ७े काणमां हुता ते काणमां ७ तेमनी साथे हुतो. तेमनी गेरहाजरीमां पथर वगेरेमां आ नतनो आश्रय-आश्रयी लाव संभंध मान्य राभवो केवी रीते योग्य छडी शक्य तेम छे ? लावलनना सहलावमां जेम तेमना साक्षात् दर्शनथी प्राणीज्योमां जेके नतनो लावोदवास उद्वलवे छा ४४

તથા મત્ત્યા તામાકૃતિ સ્મરતો જનસ્ય ભાવોહ્લાસઃ સંમવતુ, તદાઽઽકૃતેર્ભાવજિનેન સંબન્ધાત્, પરંતુ સ્થાપનાયા આશ્રયાશ્રયિભાવસમ્બન્ધો નારિત ભાવજિનેન સહ । ભાવજિનાત્મનસ્તત્રાવાહનં સ્થાપનંતુ જિનાજ્ઞાવાહ્ય પ્રવચનવિરુદ્ધં કર્તુમશક્યં, કથં તર્હિ-ભાવજિનસમ્બન્ધાભાવે પ્રતિમા ભાવજિનં તદ્ગુણં વા સ્મારયિતું શક્તા મહેત્ ।

કા આવોહ્લાસ હોતા હૈ, ડસી પ્રકાર સે શક્તિ કે આવેશ સે ખી ડનકી ડસ આકૃતિ કા ડસ સમય સ્મરણ કરને વાલે પ્રાણી કો ડસ પ્રકાર કે આવોહ્લાસ કા સઙ્ગાવ હો સકતા હૈ । ડસકા નિષેધ નહીં હૈ । ક્ષયોં કિ સ્મૃતિ કે આધારશુત જિન પરમાત્મા ડસ કાલ મેં સ્વયં વિદ્યમાન હૈં । ડન કે અભાવ મેં ડન્હેં નહીં ડેઁવને વાલે પ્રાણિયોંકો ખી ડનકી ડસ પ્રતિમા સે ડસી પ્રકાર કા આવોહ્લાસ હોતા હૈ યહ માન્યતા કેવલ ંક કલ્પના માત્ર હૈ વાસ્તવિક નહીં । ડસકે સમાધાન કેં નિમિત્ત જો યહ કહા જાતા હૈ કિ ડસ પાષાણ પ્રતિમા મેં જિન મગવાન કી આત્મા કા મંત્રાઢિકોં ઢ્વારા આહ્વાન ક્રિયા જાતા હૈ અતઃ ડસ પ્રતિમા કે ઢર્શન સે સાક્ષાત્ ભાવ જિનકે હી ઢર્શન હોતે હૈં સો યહ માન્યતા સર્વથા અસત્ય હૈ-કારણ કિ મોક્ષ મેં પ્રાપ્ત આત્માઓં કા પાષાણ આઢિ પ્રતિમાઓં મેં અપની ઢ્વાન્યતા સિદ્ધ કરને કે લિયે આહ્વાન આઢિ માનના સર્વથા જિનસિદ્ધાન્ત સે વિરુદ્ધ હૈ મોક્ષ પ્રાપ્ત આત્માં કરીં પર ખી કિસી ખી કાલ મેં આહ્વાન કરને સે નહીં આતી હૈં ંસી જિન-શાસન કી આજ્ઞા હૈ ડસ તરહ સે ડસ પાષાણ આઢિ કી આત્માઓં કા

ં, તેમ ભકિતના આવેશથી પણ તેમની ં આકૃતિનું તે સમયે સ્મરણ કરનાર પ્રાણીને તે બલતના ભાવોલ્લાસની અનુભૂતિ થઈ શકે ં. આનો નિષેધ નથી કેમકે સ્મૃતિમાં તે આકૃતિના આધારભૂત ં પરમાત્મા તે કાળમાં બલે વિદ્યમાન ં. તેમના અભાવમાં તેમને નહિ બેનારા પ્રાણીઓને પણ તેમની તે પ્રતિમાથી તે પ્રમાણેના ં ભાવોલ્લાસ થાય ં, આ માન્યતા ક્રૂત ંક કોરી કલ્પના ં ં, વાસ્તવિક નથી. ંના સમાધાન માટે ં આમ કહેવામાં આવે ં કે તે પથ્થરની પ્રતિમામાં ં ભગવાનના આત્માનું મંત્રી વગેરેથી આવાહન કરવામાં આવે ં, ંથી તે પ્રતિમાનાં ઢર્શનથી પ્રત્યક્ષ ભાવબલનાં ં ઢર્શન થાય ં, તે આ માન્યતા સાવ અસત્ય ં કારણ કે મોક્ષમાં પ્રાપ્ત આત્માઓનું પથ્થર વગેરે પ્રતિમાઓમાં પોતાની માન્યતા સિદ્ધ કરવા માટે આહ્વાહન વગેરે માનવું તે તે ં સિદ્ધાંતથી સાવ વિરૂધ્ધ ં. મોક્ષ પ્રાપ્ત આત્માઓ કોઈ પણ સ્થાને ંને કોઈ પણ કાળે આવાહન કરવાથી આવતા નથી, ંવી ં શાસનની આજ્ઞા ં. આ રીતે તે પથ્થર વગેરેની પ્રતિમામાં

सर्वथा कुप्रावचनिकद्रव्यावश्यकवत् प्रतिमापूजनं कुर्वन्तः कारयन्तश्च मिथ्या-
दृष्टित्वं प्राप्नुवन्ति न तु सम्यक्त्वमिति ।

द्रव्यावश्यकं-द्विविधं-आगमतो नोआगमतश्च । यस्य जन्तुरावश्यकशास्त्रं
शिक्षितादिगुणोपेतं भवति, स जन्तुस्तत्रावश्यकशास्त्रे शिक्षणध्यापनरूपया वाचनया
गुरुं प्रति प्रश्लक्ष्णया प्रच्छन्नया, पुनः पुनः श्रुतार्थाभ्यासरूपया परावर्तनया, तथा

अह्वान होने से आना मान लिया जाय तो फिर उस प्रतिमा में सजी-
वता मानने में क्या दोष है इसलिये यह स्वीकार करना ही चाहीये ।
कि भावजिन के अभाव में वह प्रतिमा भावजिन एवं उनके गुणों का
स्मरण करवाने में सर्वथा समर्थही है । जब यह निश्चित सिद्धान्त है तो
फिर इसकी पूजनादि करने कराने से जो मनुष्य समकित की प्राप्ति
होना मानते हैं वे उस विधवा कि दशा जैसे हैं जो अपने पति की
फोटो या मूर्ति के दर्शन एवं सहवास आदि से सन्तान की उत्पत्ति की
कामना करती हो । इसलिये कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यक की तरह
यह प्रतिमापूजनादि कर्म करने कराने वाले दोनों ही जन मिथ्यात्वरूप
दृष्टि के ही पात्र हैं, सम्यक्त्व के नहीं ।

द्रव्य निक्षेपरूप आवश्यक, आगम और नोआगम के भेद से दो
प्रकार का है । उसमें जिस प्राणी के आवश्यक शास्त्र शिक्षितादिगुणों
से युक्त है वह प्राणी उस आवश्यक शास्त्र में, शिक्षियों का पहानेरूप

ते आत्माञ्छेत्तुं आवाहन् डोवाथी आवुं मानी लधञ्जे तो पथी ते प्रति-
माने सलव मानवामां शे वाधे छे ? अटला माटे आपले आ वात स्वीका-
रवी ज लधञ्जे के लावलनना अलावमां ते प्रतिमा लावलन अने तेमना
शुष्टोत्तुं स्मरण करववामां स'पूणु'पले समर्थ ज छे. न्यादे आ सिध्दान्त निश्चित
इपे मान्य थयेदो छे त्यादे तेतुं पूजन वगेरे करववथी जे दोडो समकितनी
प्राप्ति थवी माने छे तेमनी तो विधवा जेवी दशा छे के जे पोताना पतिनी
छणी के मूर्तिना दर्शन अने सहवास वगेरेथी सन्तान मेणववानी धञ्जा करती
होथ ! अटला माटे कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यकनी जेम आ प्रतिमा पूजन
वगेरे कार्य करनार तेमज करववनार अने माणुसो मिथ्यात्व इप दृष्टिनां ज
पात्र छे, सम्यक्त्वनां नथी.

द्रव्य निक्षेप इप आवश्यक आगम तेमज नोआगमना लेदथी जे
प्रकार छे. तेमां जे प्राणी आवश्यक शास्त्र शिक्षित वगेरे शुष्टोथी युक्त छे ते
प्राणी ते आवश्यक शास्त्रमां शिष्येने लावववा इप वाचनार्थी, श्रु-प्रति तद्

ધર્મકથયા વર્તમાનોપ્યનુપયોગે સતિ આગમતો દ્રવ્યાવશ્યકમ્, 'અણુવઓગો દ્વન્' इति वचनात् । अनुपयोगो भावशून्यता ।

વાચના સે, ગુરુ કે પ્રતિ તદ્વિષયક પ્રશ્ન લક્ષણરૂપ પૃચ્છના સે વાર વાર સૂત્ર ઓર અર્થ કે અભ્યાસરૂપ પરાવર્તન સે તથા ધર્મકથા સે વર્તમાન હોતા હુઆ મી અનુપયુક્ત અવસ્થાસંપન્ન હોને સે આગમ કી અપેક્ષા દ્રવ્ય આવશ્યક હૈ । અનુપયોગ કા નામ હી દ્રવ્ય હૈ ।

ભાવાર્થ—“ ભૂતસ્ય ભાવિનો વા ભાવસ્ય હિ કારણં તુ યલ્લોકે તદ્રવ્યમ્ ” યહ દ્રવ્યનિક્ષેપ કા લક્ષણ હૈ । ભૂતપર્યાય યા ભવિષ્યત્ પર્યાય કા જો કારણ આધાર હોતા હૈ, વહ દ્રવ્ય હૈ જિસ પ્રકાર કિસી રાજા કે યુવરાજ કો રાજા કહ દિયા જાતા હૈ યદ્યપિ વહ અમી વર્તમાન મેં રાજારૂપપર્યાય સે યુક્ત નહીં હૈ—આગે ઉસે રાજપર્યાય પ્રાપ્ત હોગી, પરન્તુ ફિર મી ઉસે વ્યવહાર મેં લોગ રાજા કહતે હૈં । યહ ભવિષ્યત્ પર્યાય કી અપેક્ષા દ્રવ્ય નિક્ષેપકા વિષય હૈ । જોપહિલે રાજા થા—કારણ વશ જવ વહ રાજાગદી કા પરિત્યાગ કર દેતા હૈ—તવ મી લોગ ઉસે રાજા કહતે હૈં । યહાં ઉસ રાજા મેં યદ્યપિ વર્તમાન સમય મેં રાજપર્યાય સે યુક્તતા નહીં હૈ તૌ મી ભૂતકાલ કી અપેક્ષા સે હી ઉસે રાજા કહા જાતા હૈ । યહ ભૂતકાલ કી અપેક્ષા સે રાજપર્યાય કા આધાર હોને કે કારણ દ્રવ્ય-નિક્ષેપ કા વિષય હૈ પ્રકૃત મેં ઇસ નિક્ષેપ કી આયોજના ઇસ પ્રકાર સે

વિષયક પ્રશ્ન લક્ષણ રૂપ પૃચ્છનાથી, વારંવાર સૂત્ર અને અર્થના અભ્યાસ રૂપ પરાવર્તનથી તથા ધર્મકથાથી વર્તમાન હોવા છતાંયે અનુપયુક્ત અવસ્થા સંપન્ન હોવાથી આગમની અપેક્ષા દ્રવ્ય આવશ્યક છે, અનુપયોગનું નામ જ દ્રવ્ય છે.

ભાવાર્થ—“ ભૂતસ્ય ભાવિનો વા ભાવસ્ય હિ કારણં તુ યલ્લોકે તદ્રવ્યમ્ ” આ દ્રવ્ય નિક્ષેપનું લક્ષણ છે. ભૂત-પર્યાય કે ભવિષ્યત પર્યાયનો જે કારણ આધાર હોય છે, તે દ્રવ્ય છે. જેમ કોઈ રાજાના યુવરાજને રાજા કહી દેવામાં આવે છે. જો કે તે વર્તમાનમાં રાજા રૂપ પર્યાયથી યુક્ત નથી. આગળ તેને રાજ પર્યાય પ્રાપ્ત થશે, છતાંયે તેને વ્યવહારમાં લોકો રાજા કહે છે. આ ભવિષ્યત પર્યાયની અપેક્ષા દ્રવ્ય નિક્ષેપનો વિષય છે. જે પહેલાં રાજા હતો—પણ કોઈ કારણસર રાજગાદિનો તે પરિત્યાગ કરી દે છે, ત્યારે પણ લોકો તેને રાજા કહે છે. અહીં તે રાજામાં જો કે વર્તમાન સમયમાં રાજ પર્યાયથી યુક્તતા નથી છતાંયે ભૂતકાળની અપેક્ષાથી તેને રાજા કહેવામાં આવે છે આ ભૂતકાળની અપેક્ષાથી તેને રાજા કહેવામાં આવે છે. આ ભૂતકાળની અપેક્ષાથી રાજપર્યાયનો આધાર હોવા બદલ દ્રવ્ય નિક્ષેપનો વિષય છે. પ્રકૃતમાં આ નિક્ષેપની આયો-

अथ नोआगमतो द्रव्यावश्यकमुच्यते-अत्र नो शब्दः सर्वथा प्रतिषेधे देशतः प्रतिषेधेऽपि च वर्तते। तथा च सर्वथा-आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकं, तथा होती है कि जो वर्तमान में आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता नहीं है आगे भविष्यत् काल में उस शास्त्र का ज्ञाता होंगे उसे तथा जो भूतकाल में उस शास्त्र का ज्ञाता था अब वर्तमान काल में उसका ज्ञाता नहीं है-उसे आवश्यक इस प्रकार जानना या कहना यहद्रव्यनिक्षेप की अपेक्षा आवश्यक है। इसके मूल में दो भेद हैं? आगम द्रव्य निक्षेप और दूसरा नोआगमद्रव्यनिक्षेप। आवश्यक शास्त्र आदि का जो ज्ञाता हो, शिष्यों को जो उसे पढ़ाता हो, उस विषयक गुरु आदि के निकट जो तात्त्विक चर्चा आदि भी करता हो इस प्रकार वाचना, प्रच्छना-पर्यटना अनुप्रेक्षा और धर्मोपदेशरूप पांचो प्रकार के स्वाध्याय से जो उसकी पर्यालोचना कर रहा है-परन्तु उसमें उपयोग नहीं है-अनुपयुक्त है वह आगम की अपेक्षा द्रव्य आवश्यक है। इसमें आवश्यक शब्द के अर्थ का ज्ञान ही आगमरूप से विवक्षित है। अतः आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता होता हुआ भी उसमें अनुपयुक्त आत्मा आगम की अपेक्षा द्रव्य आवश्यक है यह बात निश्चित हुई।

नो आगम की अपेक्षा द्रव्य आवश्यक इस प्रकार है-जहां आगम का सर्वथा अभाव या आगम के एक देश का अभाव विवक्षित होता

नना अे रीते डोय छे के वर्तमानमां ने आवश्यक शास्त्रनेा ज्ञाता नथी, वाचिककालमां ते शास्त्रनेा ज्ञाता थथे तेने तेमअ ने भूतकालमां ते शास्त्रनेा ज्ञाता डते डमण्णां वर्तमानकालमा तेनेा ज्ञाता नथी तेने, ' आवश्यक ' आ रीते लण्णुं के कडेडुं आ द्रव्यनिक्षेपनी अपेक्षाअे आवश्यक छे. अेना भूण इथे अे लेडेा छे-१ आगम द्रव्य निक्षेप अने वीजे नेाआगम द्रव्य निक्षेप. आवश्यक शास्त्र वगेरेनेा ने ज्ञाता डोय, ने शिष्येने लण्णवतेा डोय, तद्-विषयक गुरु वगेरेनी पासे अघने ने तात्त्विक अर्थ वगेरे पणु करतेा डोय, आ रीते वाचना, प्रच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा अने धर्मोपदेश इप पांचे लतना स्वाध्यायथी ने तेनी पर्यालोचना करी रह्यो छे, पणु तेमां तेनेा उप-योग नथी, अनुपयुक्त छे, ते आगमनी अपेक्षाद्रव्य ' आवश्यक ' छे अेमां आवश्यक शब्दना अर्थनुं ज्ञान अ आगम इपथी विवक्षित छे. अेथी आवश्यक शास्त्रना ज्ञाता डोवा छताथे तेमां अनुपयुक्त आत्मा आगमनी अपेक्षा द्रव्य आवश्यक छे, आ वात सिद्ध थछ छे.

नोआगमनी अपेक्षा द्रव्य आवश्यक अे प्रमाणे छे के न्यां आगमनेा संपूर्णपणु अभाव के आगमना अेक देशनेा अभाव विवक्षित डोय छे ते नेा

देशतः आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकं च—नोआगमतो द्रव्यावश्यकम् । तत्—त्रिविधम्—ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकं, भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं, तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यकं चेति ।

है—वह नो आगम की अपेक्षा से द्रव्य आवश्यक माना गया है । “ नो आगम ” में नो शब्द सर्वथा आगम के अभाव का अथवा उसके एक देश के अभाव का बोधक है । इसके ज्ञशरीरद्रव्यावश्यक, भव्यशरीर-द्रव्यावश्यक, और तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक, इस प्रकार तीन भेद हैं । आवश्यक शास्त्र का जो पहिले (भूतकाल में) ज्ञाता था—तथा दूसरों के लिये इस शास्त्र का उपदेश आदि भी जिसने पहिले दिया है ऐसे जीव का अचेतन शरीर ज्ञशरीरद्रव्यावश्यक है जो जीव इस समय आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता नहीं है भविष्यत् काल में उसका ज्ञाता बनेगा उसका वह सचेतन शरीर भविष्यत् काल में आवश्यक शास्त्र के ज्ञान का आधार होने की अपेक्षा से, भव्यशरीरद्रव्यावश्यक है । तद्व्यतिरिक्तद्रव्यावश्यक लौकिक कुप्रावचनिक और लोकोत्तर के भेद से ३ प्रकार का है । लौकिकजनों द्वारा आचरित आवश्यक कर्म लौकिक द्रव्यआवश्यक है । जैसे राजसभा में जाने वाले राजा, युवराज, तलवर (कोटपाल) आदि जन प्रातः काल में उठकर राजसभा में जाने के लिये प्रथम प्राभातिक विधियों से निपटते हैं—मुख धोते हैं, दातों को

आगमनी अपेक्षाशी द्रव्य आवश्यक मानवामां आये छे “ नोआगम ” मां नो शब्द आगमना संपूर्णपणे अभावना के तेना एक देशना अभावना बोधक छे तेना ज्ञशरीर द्रव्यावश्यक, भव्यशरीर द्रव्यावश्यक अने तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक आ प्रमाणे त्रणु लेटे छे. आवश्यक शास्त्रना के पढेदां (भूतकालमां) ज्ञाता छेतो तेमज् णीलये माटे आ शास्त्रना उपदेश वगेरे पणु केणे पढेदां आये छे अवा एवमुं अचेतन शरीर ज्ञ शरीर द्रव्यावश्यक छे. के एव अत्यारे आवश्यक शास्त्रना ज्ञाता नथी, भविष्यकालमां तेना ज्ञाता थथे तेनुं ते सचेतन शरीर भविष्यकालमां आवश्यक शास्त्रना ज्ञानना आधार होवने कारणे भव्य शरीर द्रव्यावश्यक छे. तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक लौकिक कुप्रावचनिक अने लोकोत्तर अम त्रणु प्रकारना छे. लौकिक माणुसो वडे आचरित आवश्यक कर्म लौकिक द्रव्य आवश्यक छे केम राजसभामां जनारा राज, युवराज, तलवर (कोटपाल) वगेरे लोको सवारे छेदीने राजसभामां जवा माटे प्रथम प्राभातिक विधियोथी परवारे छे, मुख धुये छे,

ज्ञातवानिति—ज्ञः, ज्ञस्य शरीरं-ज्ञशरीरं तर्देव द्रव्यावश्यकमिति विग्रहः । जीव परित्यक्तमावश्यकशास्त्रानवतः शरीरं ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकम् । यः कश्चिद् जीवः जन्मकालादारभ्य अनेनैव आत्मेन - गृहीतेन शरीरसमुच्छ्रयेण, जिनोपदिष्टेन भावेन आवश्यकमित्येतत् पदं—शास्त्रं आगामिनि काले शिक्षिष्यते न तावच्छिक्षते, तज्जीवाधिष्ठितं शरीरं भव्यशरीरद्रव्यावश्यकमिति । ज्ञशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकं त्रिविधम्—लौकिकं, कुप्रावचनिकं, लोकोत्तरिकं, चेति ।

लौकिकं द्रव्यावश्यकम् “ ये राजेश्वरतलवरादयः प्रभातसमये—मुखधावन-दन्तप्रक्षालन-तैल-कङ्कतक-सर्पप-दूर्वा-दर्पण-धूप-पुष्प-माल्य-गन्ध-ताम्बूल-बस्त्रादिकानि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति, कृत्वा पश्चाद् राजकुलदेवकुलादीं गच्छन्ति, तत्-तेषां सम्बन्धिसुखधावनादि ।

कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकम् ‘ ये इमे चरकचीरिकादयः पापण्डस्था’, इन्द्र-स्कन्द-रुद्र-शिव-वैश्रवण-देव-नाग-यक्ष-भूत-सुकुन्दाऽऽर्या-दुर्गा-कोट्टक्रियाणाम् - उपलेपनसंमार्जनाऽऽवर्षणधूपपुष्पगन्धमाल्यादिकानि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति, तेषां तद् इन्द्रस्कन्दादेरुपलेपनादि । कृत्सितं प्रवचनं येषां ते कुप्रावचनास्तेषामिदं कुप्रावचनिकम् । उपलेपनं चन्दनपङ्केन, संमार्जनं-स्नपनानन्तरं वस्त्रेण जलप्रोच्छनम् आवर्षणं-गन्धोदकेन, ‘ गुलावजल ’ इत्यादि भाषामसिद्धेन ।

नामावश्यकम्—आवश्यकनामको गोपालदारकादिः, स्थापनावश्यकम्—आव-

साफ करते हैं, स्नान करते हैं । सुगंधित तैल लगाते हैं इत्यादि आवश्यक कार्य करते हैं । पीछे राजसभा में या देवकुल में जाते हैं । उनका यह सुख धावन आदि कार्य लौकिक द्रव्य आवश्यक है । चरक चीरिका आदि पाखंडियों द्वारा जो इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, वैश्रवण, देव, नाग और यक्षादिकों की मूर्तियों का चंदन से लेपन, अभिषेक कराने के बाद वस्त्र से मूर्तिस्थ जल का पोंछना मंदिर में या उन मूर्तियों पर गुलाव-जल का छिड़काव आदि करना ये सब कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक है ।

हांत साक्ष करे छे, स्नान करे छे, सुगंधित तेल लगावे छे, वगेरे आवश्यक कार्य करे छे. त्यारपछी राजसभामां अथवा तो देवकुलमां जाय छे. तेमनु' सुभ धातु' वगेरे काम लौकिक-द्रव्य आवश्यक छे. चरक चीरिक वगेरे पाण्डिओ वडे जे धन्ड, स्कन्द, रुद्र, शिव, वैश्रवण, देव, नाग अने यक्षो वगेरेनी मूर्तिओतु' चंदनथी अभिषेक करान्या ग्राह वस्तुथी मूर्तिना पाणीने बूँछतु', भदिरमां छे ते मूर्तिओ. उपर गुलावजलतु' सिधन वगेरे करतु' आ वधु' कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक छे, आ प्रभाणु नाम स्थापना अने द्रव्यना बेदथी आ

श्यकक्रियावतः कस्यचित् काऽऽकृमादिषु प्रतिकृतिः, द्रव्यावश्यकं च आवश्यक-
कोपयोगशून्या देहागमक्रिया; एषावश्यकेषु उपयोगमावेन चणगुणरहितत्वेन
च कर्मनिर्जराजनकत्वाभावादाराध्यत्वेन जिनाज्ञा नास्ति, तस्मादेतत् त्रिविधमाव-
श्यकं धर्मपदवाच्यं न भवतीति निश्चयादलक्ष्यमेव । लोकोत्तरिकद्रव्यावश्यकं पत्र-

इस प्रकार नाम, स्थापना और द्रव्य के भेद से यह आवश्यक तीन
प्रकार का होता है । किसी गोपाल के पुत्र का “ आवश्यक ” इस प्रकार
का कृतनाम संस्कार नाम आवश्यक है । आवश्यक क्रियाओं से युक्त
किसी व्यक्ति की काष्ठ आदि में तदाकार रूप से या अतदाकाररूप से
प्रतिकृतिको कल्पना करना या उसे बनालेना यह स्थापना आवश्यक है ।
आवश्यक में उपयोग से शून्य प्राणी की जो भी आगम और नो आगम
की अपेक्षा से क्रियाएँ हैं वे सब द्रव्य आवश्यक हैं । इन तीनों आव-
श्यकों में उपयोग-आवरूप-आवश्यक के अभाव से तथा चारित्रगुण
तदनुकूल प्रवृत्ति के आचरण से रहित होने से कर्मों की निर्जरा कराने
में साधकपना नहीं है । अतः जिनेन्द्रदेव ने इनके आराधन करने की
आज्ञा प्रदान नहीं की है । धर्म को ही आराधन करने की उन्होंने आज्ञा
दी है क्योंकि वही कर्मों की निर्जरा कराने में साधक है । इन तीनों
में कर्मों की निर्जरा कराने का अभाव होने से धर्मस्वरूपता नहीं है ।
धर्मपद वाच्य भी वे नहीं हैं । इसीलिये ये तीनों धर्म के लक्षण से शून्य
होने से उसके अलक्ष्य हैं, ऐसा समझना चाहिये । लोकोत्तरिक द्रव्य

आवश्यक त्रय प्रकारतुं होय छे । कोष्ठ गोपालना पुत्रना ‘ आवश्यक ’ आ-
रीते करेदो संस्कार नाम आवश्यक छे । आवश्यक क्रियाओथी युक्त कोष्ठ
व्यक्तिनी काष्ठ वगेरेमां तदाकार रूपथी के अतदाकार रूपथी प्रतिकृतिनी कल्पना
करथी के प्रतिकृतिनुं निर्माण करवुं ते स्थापना आवश्यक छे । आवश्यकमां
उपयोगथी रहित प्राणीनी वे कर्मपणु आगम अने नो आगमनी अपेक्षाथी
क्रियाओ छे ते अर्धी द्रव्य आवश्यक छे । आ त्रये आवश्यकोमां उपयोग लाव
रूप आवश्यकता अलावथी तेमज चारित्रगुणु तदनुकूल प्रवृत्तिना आवश्यक वगर
थरुं जवथी कर्मोनी निर्जरा करववामां साधकपणुं नथी । तेथी एनेन्द्र देवे
तेमना आराधननी आज्ञा आपी नथी । धर्मनी आराधना करवानी ज तेओ-
श्रीओ आज्ञा आपी छे केनके धर्मज कर्मोनी निर्जरा करववामां साधक छे ।
आ त्रयेमां कर्मोनी निर्जरा करववानो अलाव होवाने कारणु धर्मस्वरूपता
नथी । ओ धर्मपद वाच्य पणु नथी । तेथी आ त्रये धर्मना लक्षणथी रहित
होवाने कारणु तेना अलक्ष्य छे ओम समजतुं ओधओ, सामाधिक वगेरे दोहा-

चनोक्तं सदपि जिनाज्ञावाहैः स्वच्छन्दविहारिभिर्भ्रूलोत्तरगुणरहितैः षट्कायनिरनु-
कम्पैरनुपयोगपूर्वकं क्रियमाणं सामान्यिकादिकम् तच्च धर्मपदवाच्यं न भवितुमर्हति,
तत्रापि निर्जराजनकत्वाभावेन विधेयत्वात् जिनाज्ञाया अभावात् ।

एवमेव-नामजिनः स्थापनाजिनस्तथा द्रव्यजिनश्च निर्जराजनकत्वाभावा-
दाराध्यत्वेन जिनाज्ञाया अभावात् । तदाराधनं धर्मपदवाच्यं न भवितुमर्हति ।

आवश्यक सामायिक आदि हैं इनके करने का विधान यद्यपि प्रवचन
शास्त्र में विहित है तो भी इसे जो धर्म का अलक्ष्य बताया गया है
उसका कारण यह है कि ये जय जिनदेव की आज्ञा से बहिर्भूत बने
हुए, स्वेच्छाचारी, मूलगुण और उत्तर गुणों से रहित एवं षट्काय
के जीवों की रक्षा करने में आसोवधान अनुष्यों द्वारा अनुपयोगपूर्वक
करने में आते हैं तब ये द्रव्य आवश्यकरूप से कहे जाते हैं । और
इसीलिये ये धर्मपद के वाच्य नहीं हैं अर्थात् धर्मरूप नहीं हैं । जहाँ
धर्मरूपता नहीं है वहाँ कर्मों की निर्जरा कारकत्व भी नहीं है । यह
सर्व सम्मत सिद्धान्त है । भगवान ने जो इस अवस्था में इन्हें विधेय
नहीं कहा है उसका यही कारण है । अतः जिस प्रकार नाम आव-
श्यक, स्थापना आवश्यक और द्रव्य आवश्यक ये तीन निक्षेप आरा-
ध्यरूप से तीर्थकर प्रभु ने अनविधेय कहे हैं, उसी प्रकार से नामजिन
स्थापनाजिन तथा द्रव्यजिन भी आराध्य नहीं हैं । इनकी आराधना
करने से जो धर्म की प्राप्ति होना कहते हैं या मानते हैं उन्हें जिन

त्तर द्रव्य आवश्यक छे प्रवचन शास्त्रमां जेमनां आचरणुत्तु विधान विहित
छे छताथि जेने जे धर्मा अलक्ष्य रूपमां अताववामां आये छे. तेनी मत-
लण जे छे के न्याये ते अनदेवनी आसाथी भडिभूत भनेदा स्वेच्छाचारी,
मूलगुण तेमज उत्तर गुणुथी रहित अने षट्काय जेवानी रक्षा
करवामां असावधान भाणुसे। वडे अनुपयोग पूर्वक आचरवामां आवे
त्याये ते द्रव्य आवश्यक रूपमा कडेवाय छे. जेथी ते धर्मपद वाच्य
नथी. जेटले के धर्म रूप नथी. न्यां धर्मरूपता नथी त्यां कर्मानी निर्जरा
कारकता पणु नथी. आ सर्वमान्य सिद्धान्त छे. भगवाने जे आ अवस्थांमां
जेमने विधेय कछा नथी तेनुं कारणु पणु जे न छे. जेटका माटे जेम नाम
आवश्यक, स्थापना आवश्यक अने द्रव्य आवश्यक आ त्रण निक्षेपाने आराध्य
रूपथी तीर्थकर प्रभुजे अविधेय कछा छे, तेमज नाम जिन, स्थापना जिन
तेमज द्रव्यजिन पणु आराध्य नथी. जेमनी आराधना करवामां जे धर्मनी
प्राप्ति थवी अताववामां आवे छे के मानवाभा आवे छे, तेमने जिन भगवाननी

एवं च प्रतिमापूजनमपि धर्मलक्षणस्य लक्ष्यं न भवति, तत्र धर्मत्वाभाव-
निश्चयात् । 'मोक्षकामो जिनप्रतिमां पूजयेत्' इत्येवमर्हतो भगवत् आज्ञायाः प्रवचने-
ऽनुपलब्धेः । धर्मत्रिपये सर्वत्र भगवदाज्ञोपलभ्यते-दृश्यते हि आवश्यकार्थं भगव-
भगवान् की आज्ञा से बहिर्भूत ही समझना चाहिये । यदि इन निक्षेपों
की या स्थापनानिक्षेप की आराधना करने से आराधक जीवों को धर्म
का लाभ होता तो वे उनकी आराधना करने का अव्य जीवों को अव
श्य २ उपदेश देते । इस प्रकार की स्वमनः कल्पित प्रवृत्ति से उनकी
पूजा आदि करने में षट्काय के जीवों की कितनी विराधना होती है
यह एक स्वानुभवगम्य बात है । अतः जहाँ आरंभ है वहाँ धर्म नहीं
है । जहाँ धर्म नहीं है उसकी आराधना से कर्मों की निर्जरा भी नहीं
हो सकती है । इस प्रकार से नाम स्थापना और द्रव्यजिन आदि तीन
निक्षेप भी धर्म के लक्षण से शून्य होने से उसके अलक्ष्य माने गये
हैं । जब स्थापना जिन ही उसका अलक्ष्यभूत है, तो फिर जिन की
प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा आदि कार्य भी धर्मलक्षण से शून्य होने
से वह भी उसका अलक्ष्य है ऐसा निश्चित हो जाता है भगवान् ने
इस प्रकार की आज्ञा शास्त्र में कहीं भी नहीं दी है "मोक्षकामो जिन-
प्रतिमां पूजयेत्" कि सुक्ति की अभिलाषा वाला प्राणी जिन प्रतिमा
की पूजा करें । धर्मकी आराधना करने की ही उन्होंने ने आगम में आज्ञा

आज्ञार्थी अङ्घ्रितं च समञ्जसा ज्ञेयम् । आ निक्षेपानी के स्थापना निक्षेपानी
आराधना करवाथी आराधक एवोने धर्मना लाभ थतो होय त्पारे तो तेजो
तेमनी आराधना करवा माटे लव्य एवोने जोष्ठस उपदेश आपता । आरीते
पोताना मनथी च कल्पना करीने तेमनी पूज वगेरे करवामां षट्काय एवोनी
केटली अधी विराधना होय छे ते जते च अनुभववा लेवी वात छे जेटला
माटे न्यां आरंभ छे त्यां धर्म तो नथी च अने न्यां धर्मनथी तेनी आरा-
धनाथी कर्मोनी निर्जरा पण थछ शके तेम नथी । आ रीते नाम स्थापना अने
द्रव्य जिन वगेरे त्रषु निक्षेपो पण धर्मना लक्षणथी रक्षित होवा अहस तेने
अलक्ष्य मानवामां आव्या छे न्यारे स्थापना जिन च तेना माटे अलक्ष्यरूप
छे, त्पारे जिननी प्रतिमा जनावीने तेनी पूज वगेरे कार्यो पण धर्मलक्षणथी
रक्षित होवाथी ते पण तेना माटे अलक्ष्यरूप छे आनी जोष्ठस भात्री थछ
नय छे । लजवाने आ जतनी आज्ञा शास्त्रमां केछ पण स्थाने करी नथी
"मोक्षकामो जिनप्रतिमां पूजयेत्" के जोक्षनी छच्छा राभताथे । प्राणी जिन
प्रतिमातुं पूजन करे । धर्मनी आराधना करवानी च तेजोश्रीजे आगममां आज्ञा

दाज्ञा, दर्शनार्थं ज्ञानार्थं च भगवदाज्ञा पुनरहिंसासंयमतपःसंवरादिविधिरपि शास्त्रे प्रदर्शितः परंतु प्रतिमापूजनार्थमाज्ञा कत्रापि नोपलभ्यते शास्त्रेषु, प्रत्युत्-कुप्रावचनिकद्रव्यावश्यकलक्षणाक्रान्तत्वेन प्रतिमापूजनं जैनागमविरुद्धमिति सूचितम् । इन्द्रादिपूजनं हि कुप्रावचनिकस्य नोआगमतो द्रव्यावश्यकस्योदाहरणतया भगवता प्रदर्शितम् । तेन सर्वं प्रतिमापूजनं कुप्रावचनिकं तादृशद्रव्यावश्यकं भगवता निक्षिप्तमिति सुस्पष्टं प्रतीयते । षट्कायहिंसासाध्यायाः पूजाया

प्रदान की है जैसे-आवश्यक, दर्शन और ज्ञान की आराधना प्रत्येक मोक्षाभिलाषी भव्य जन को करना चाहिये-इस प्रकार के आवश्यक आदि की आराधना करने का स्पष्ट उल्लेख आगमों में मिलता है-तथा जिस प्रकार उन्होंने अहिंसा, संयम, तप और संवर आदि की विधि शास्त्रों में प्रदर्शित की है-उस प्रकार न तो उन्होंने प्रतिमा पूजन की कहीं न आज्ञा प्रदान की है और न उस की विधि ही कही है कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यक के लक्षण से युक्त होने से प्रत्युत प्रतिमापूजन को जैन आगम से विरुद्ध ही सूचित किया है । कुप्रावचनियों द्वारा मान्य इन्द्रादिकों के पूजन को भगवान नो आगम की अपेक्षा से द्रव्य आवश्यक के उदाहरण रूप में प्रकट किया है इससे ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अन्य समस्त प्रतिमा पूजन को भी इसी कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यक की तरह द्रव्य आवश्यक में रखा है । प्रवचन में कुत्सितता-छोटापन कुशास्त्रता हिंसादिक साध्य पूजा आदि कार्यो

करी छे. जेम आवश्यक, दर्शन अने ज्ञाननी आराधना दरेके दरेके मोक्ष धन्धनारा लोच्य जनने करवी घटे छे. जेम आवश्यक वगेरेनी आराधना करवा विधेनो उल्लेख आगमोमां भणे छे, तेमज्ज जेम तेमजे अहिंसा, संयम, तप अने संवर वगेरेनी विधि शास्त्रोमां भतावी छे तेम तेमजे केध पणु स्थाने प्रतिमा पूजननी आज्ञा करी नथी अने तेनी विधि पणु भतावी नथी. प्रतिमा पूजने कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यकना लक्षणथी युक्त होवा पहल जैन आगमोथी विरुद्धज्ज भताववामां आवी छे. कुप्रावचनीज्जो वडे मान्य धन्ध वगेरेना पूजनने लगवाने आगमनी अपेक्षाज्जे द्रव्य आवश्यकना उदाहरण रुपमां भतावुं छे. जेथी आ वात स्पष्ट समल शक्य तेम छे के तेमजे भील पणु भधी प्रतिमा पूजने पणु आ कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यकनी जेम द्रव्य आवश्यकमां ज्ज स्थान आभ्युं छे. प्रवचनमां कुत्सितता कुशास्त्रता हिंसा वगेरे साध्य पूर्ण वगेरे कार्योनी युष्टि करवाथी ज्ज संलवे छे. भील अरु

विधायकतया प्रवचनस्य कुत्सितत्वं, तेनैव चेन्द्रादिपूजनस्य कुप्रावचनिकत्वं भवति । एवं प्ररूपयतो भगवतोऽर्हतः प्रतिमायाः पूजनस्य प्रसङ्ग एव तदानीं नासीत्—हिंसाभयत्वात्पूजनस्य, तेन प्रवचने भगवता प्रतिमापूजनप्रतिषेधो विशिष्य नोक्तः । प्रतिषेधवाक्यं हि तदैव सार्थकं, यदाप्रतिषेध्यरूपोऽर्थः कथंचित् प्रसक्तो भवति । जिनप्रतिमापूजनं हि न तावच्छौकिकं द्रव्यावश्यकं, नापि लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकं, जिनो हि लोकोत्तरो देवस्तत्पूजनमपि स्याच्चेत् लोकोत्तरिकमेव

की पुष्टि करने से ही आती है । अन्य चरक आदि समस्त प्रवचनों में इन्हीं हिंसादिक कर्मों के करने का विधान स्पष्टरूप से पाया जाता है । इसीलिये ये कुप्रवचन माने गये हैं । इनके द्वारा प्रदर्शित इन्द्रादिक पूजन भी इसी निमित्त से कुप्रावचनिक कहा गया है । जैन शास्त्रों में प्रतिमापूजन के निषेध का स्पष्ट उल्लेख जो देखने में नहीं आता है, उसका यह कारण है कि जिस समय प्रभु ने इन्द्रादिक के पूजन का कुप्रावचनिक रूप जानकर निषेध किया उस समय उनके समक्ष अर्हत की प्रतिमा के पूजन का प्रसंग ही नहीं था, नहीं तो इसका भी वे स्वतन्त्र रूप से निषेध करते—दूसरे—प्रतिमा पूजन कार्य हिंसाभय कार्य है—भगवान ने धर्म के लिये भी हिंसा करने का आदेश नहीं दिया है अतः जब वीतराग शास्त्र में हिंसा का विधान ही नहीं है—तब इसका भी विधान कैसे वे करते प्रतिषेध वाक्य उसी समय सार्थक जाना जाता है जब प्रतिषेध्यरूप पदार्थ किसी भी रूप से प्रसक्त होता है ।

शीरिष्ठ वगेरे अथा प्रवचनोभां अे न हिंसा वगेरे कथोने करवानुं विधान स्पष्ट इप जेवाभां आवे छे. अेथी आ अथा कुप्रावचनिक मानवाभां आवे छे. अेभना वडे प्रदर्शित धंन्द्र वगेरेनुं पूजन पणु आ कारणुने लीधे न कुप्रावचनिक कडेवाय छे. जैन शास्त्रोभां प्रतिमा पूजनना निषेधनो स्पष्टपणु न उद्वेग जेवाभां आवतो नथी तेनुं कारणु पणु अे छे के न्यारे प्रभुअे धंन्द्र वगेरेना पूजनने कुप्रावचनिक इप मानांनि निषेध कथो त्यारे तेमनी साअे अर्द्धतनी प्रतिमाना पूजननी वात न न डती, नडितर तेअोअी अे तेना पणु स्वतंत्र इपथी निषेध कथो डोत. थीलु वात अे छे के प्रतिमा पूजननुं कार्य हिंसाभय छे, भगवाने धर्मना भाटे पणु हिंसा करवानी आज्ञा करी नथी. अेटला भाटे न्यारे वीतराग शास्त्रभां हिंसा विषेनुं विधान न नथी त्यारे आनुं विधान पणु तेअो केवी रीते करे. प्रतिषेध वाक्य त्यारे न सार्थक गणुअे छे न्यारे प्रतिषेध्यइप पदार्थ डोअ पणु इपथी प्रसक्त डोअ छे. आ प्रतिमा

स्यात् लोके तु तस्य समावेशानर्हत्वा लौकिकत्वासंभवात् । प्रवचने भगवता यत् सामायिकादि पद्मविधावश्यकं प्ररूपितं तदेव स्वच्छन्दविहारिभिः षट्कायर्हि-सकैर्जिनाज्ञावाहैः क्रियमाणं लोकोत्तरिक-द्रव्यावश्यकम् । तत्र पद्मविधावश्यकं जिनप्रतिमा पूजनस्य प्रवेशात् तस्य लोकोत्तरिकद्रव्यावश्यकं समावेशो न संभवति ।

यह प्रतिमापूजनरूप कार्य न लौकिक द्रव्य आवश्यक है और न लोकोत्तर द्रव्य आवश्यक ही है ।

शंका—प्रतिमा पूजन लौकिक द्रव्य आवश्यक नहीं है यह तो आप का कहना ठीक है, क्यों कि यह लौकिक द्रव्य आवश्यकों से सर्वथा भिन्न है । परन्तु इसे लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक मानने में आपको क्या विवाद है । क्यों कि प्रभु स्वयं लोकोत्तर देव माने जाते अतः उनका पूजन भी लोकोत्तरिक ही मानना चाहिये ?

उत्तर—प्रवचन में भगवान जो सामायिक आदि छह प्रकार के आवश्यकों का वर्णन किया है—वे जब जिन आज्ञा बाह्य-स्वच्छन्दविहारी और पट्टकाय की विराधना करने में निरत अनुपयुक्त पुरुषों द्वारा करने में आते हैं लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक रूप से प्रतिपादित किये गये हैं । इन षट्प्रकार के आवश्यकों में प्रतिमापूजन का कोई अधिकार ही नहीं है । अतः इसे कैसे लोकोत्तरिक आवश्यक माना जा सकता है ।

पूजनरूप कार्य माटे न तो लौकिक द्रव्य आवश्यक छे अने न तो लोकोत्तर द्रव्य आवश्यक छे.

शंकाः—प्रतिमा पूजन लौकिक द्रव्य आवश्यक नहीं, तमारी आ वात तो उचित छे. डेभ के आ लौकिक द्रव्य आवश्यकोथी संपूर्णपण्णे लिन्न छे. पण्णे अने लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक मानवामां तमने शेा वांधा छे ? डेभके प्रण्णे जते लोकोत्तर देव मनाय छे. तयारे तेभतुं पूजन पण्णे लोकोत्तरिक न मानवुं जेधजे ?

उत्तर—प्रवचनमां भगवाने जे सामायिक वगेरे छ जतना आवश्यकोतुं वर्णन कथुं छे तेज्जे न्यारे जिन-आज्ञा बाह्य स्वच्छन्द विहारी अने षट्कायनी विराधना करवामां निरत अनुपयुक्त पुरुषो वडे आथरवामां आवे छे. लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक रूपथी प्रतिपादित करवामां आवे छे. आ छ जतना आवश्यकोमां प्रतिमा पूजनने कोध अधिकार न थी. ज्येठला माटे लोकोत्तरिक आवश्यक केवी रीते मानी शकय ?

कुप्रवचनेऽर्हतः पूजाविधानं विशिष्य नोक्तं तथापि कामपूरकमृतमनुष्यपूजनवत् तस्य पूजा प्रतिमायां क्रियमाणा कुप्रावचनिकीति वक्तुं शक्यते । तस्मिन् कुप-
वचने हि पूजाधारनिर्णयानसरे सामान्यतः पूज्यस्य सर्वस्यापि पूजाधारः प्रतिमा-

भावार्थ—शंकाकार ने प्रतिमापूजन को लोकोत्तरिक आवश्यक मानकर द्रव्य आवश्यक में जो उसका समावेश करना चाहा है सो उसकी इस आशंका का समाधान करते हुए सूत्रकारने यह कहा है कि जिन आज्ञा बाह्य एवं सामायिक आदि में अनुपयुक्त पुरुषों द्वारा किये गये सामायिक आदि षट् विध आवश्यक कार्य ही लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक में परिगणित किये गये हैं। इनमें प्रतिमा पूजा का कोई संबंध ही नहीं है—प्रतिमा पूजा षट् विध आवश्यक कार्यों में परिगणित ही नहीं हुई है। अतः उसका वहां पर किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होने से उसे लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक में नहीं गिना जा सकता है अतः इसका समावेश केवल कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यक में ही हुआ है ऐसा मानना चाहिये ।

शंका—कुप्रवचन में इन्द्रादिकों की पूजा करने के विधान की तरह प्रतिमा पूजा का विधान तो पाया नहीं जाता है फिर आप इसे कुप्रावचनिक में अन्तर्भूत कैसे कह सकते हैं ?

भावार्थः—शंकाकारे प्रतिमा पूजनने लोकोत्तरिक आवश्यक भानीने द्रव्य आवश्यकतां तेना समावेश करवानी न्ने धृच्छा भतावी छे. तेनी ते शंकातुं समाधान करतां सूत्रकारे आ प्रभाषे कल्लुं छे के जिन आज्ञा बाह्य अने सामायिक वगेरेमां अनुपयुक्त पुरुषो वडे करवामां आवेदा सामायिक वगेरे छे भतना आवश्यक कार्यों न्ने लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यकतां परिगणित करवामां आंव्यां छे. अनाथी प्रतिमा पूजनो कोध संवंध न्ने नथी. प्रतिमा पूजा षट्विध आवश्यक कार्योंमां परिगणित न्ने यध नथी. अटला माटे त्यां तेना कोध पणु रीते संवंध नहि होवाथी लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यकतां तेनी गणुना यध शके तेम नथी. अथी द्रव्य आवश्यकतां न्ने यथे छे आम भानी लेतुं न्नेछे.

शंकाः—कुप्रवचनमां धंद्र वगेरेनी पूजा करवानी विधाननी न्नेम प्रतिमा पूजातुं विधान तो मणतुं नथी त्यारे तमे अने कुप्रवाचनिकमां केवी रीते समाविष्ट करी शके ?

चित्रादय इति प्ररूपितम् । एवं च जिनपूजनं—कुप्रावचनिकं—नोआगमतो द्रव्या-
वश्यकं प्रतिमायां क्रियमाणत्वात्, इन्द्रादिपूजनवत्, इत्यनुमानेनापि कुप्रावचनिक
द्रव्यावश्यकतया धर्मपदवाच्यं न भवतीति ।

उत्तर—यद्यपि कुप्रावचन में प्रतिमा पूजा का विधान स्वतन्त्ररूप
से नहीं क्रिया गया है, तो भी कामपूरक प्रणियों के मनोरथ को पूर्ण
करने वाले—मनुष्य के मृत—निर्जीव देह की पूजा की तरह प्रतिमा में
होनी हुई पूजा भी कुप्रावचन की है ।

इस प्रकार हम अनुमानसे कह सकते हैं । उसमें प्रवचनमें पूजाके
आधार का निर्णय करते समय सामान्यरूप से पूजा के आधारभूत
जितने भी प्रतिमा चित्र आदि पूज्य हैं वे सब गृहीत हुए हैं । इस
प्रकार प्रतिमा की सर्व पूजा का आधार प्रतिमा और चित्र आदि है ।
इसलिये वह कुप्रावचनिक है । इस प्रकार हम कहते हैं । इस कथन से
यह व्याप्ति सिद्ध होती है कि इन्द्रादिक पूजन की तरह प्रतिमा में जो
जो पूजाएँ की जाती हैं वे सब कुप्रावचनिकी हैं । अतः जिन पूजन भी
प्रतिमा में किये जाने पर नोआगम की अपेक्षा से कुप्रावचनिक द्रव्य
आवश्यक ही है, और इसीलिये वह धर्मपद का वाच्य नहीं है यह बात
स्पष्टरूप से सिद्ध हो जाती है इसमें अनुमान प्रयोग इस प्रकार से
करना चाहिए ।

उत्तरः—जे के कुप्रावचनमा प्रतिमा पूजनम् विधान स्वतंत्र रूपमां कर-
वामां आभुं नथी छायां मानवीना मनोरथाने पूर्णा करनारा—भाष्यमना भूत
निष्ठा शरीरनी पूजनी जेभळ प्रतिमानी करवामां आवेळी पूज पण कुप्रा-
वचनिकी छे आस अमे अनुमानथी कळी शक्तीछे छीजे. ते कुप्रावचनमां
पूजना आधारने। निष्ठुंय करती वपते सामान्य रूपथी पूजना आधारभूत
जेठला प्रतिमा चित्र वगेरे पूज्य छे तेजे। सर्वे'तु' अर्द्धे थुं छे.

आ रीते प्रतिमानी सर्व पूजने। आधार प्रतिमा अने चित्र वगेरे छे
जेठला माटे ते कुप्रावचनिके छे आस अमे कळी शक्तीछे छीजे. आ कथनथी जे
व्यसिसिद्ध थाय छे ते इन्द्र वगेरेना पूजननी जेस प्रतिमाज्येमां जे जे
पूज्ये करवामां आवे छे तेजे। सर्वे' कुप्रावचनिकी छे. जेठला माटे जिन
पूज पण प्रतिमां आवती जेवाथी आगमनी अपेक्षाथी कुप्रावचनिके द्रव्य
आवश्यक छे अने जेथी ते धर्मपदवाच्य नथी. आ बात स्पष्टपणें सिद्ध
थई नय छे. आमां अनुमानप्रयोग आ प्रमाणें कळी शक्य तेस छे.

अथ भावावश्यकमुच्यते—विवक्षितक्रियानुभवयुक्तो योऽर्थः स भावः, भाव तद्वतोरभेदोपचाराद् भावः। यथा—ऐश्वर्यरूपायाद्दहनक्रियाया अनुभवाद् इन्द्रो भाव उच्यते। भावश्चासौ आवश्यकं च, भावमाश्रित्य वा आवश्यकं भावावश्यकम्।

“ जिनपूजनं नो आगमतो कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकं प्रतिमायां क्रियमाणत्वात् इन्द्रादिपूजनवत् ”। अतः इस सत्यस्त पूर्वोक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह प्रतिमापूजन कार्य लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक रूप से भी प्रसक्त होता तो भगवान् इसका अवश्य प्रतिषेध करते।

अथ भावावश्यकमुच्यते - अब भाव आवश्यक क्या है इसका कथन सूत्रकार करते हैं—वर्तमान समय में उस विवक्षितरूप पर्याय से युक्त द्रव्य का नाम भाव है। भाव यद्यपि वर्तमान क्रिया रूप माना गया है, फिर भी यहाँ पर उस क्रिया से युक्त द्रव्य को जो भाव कहा है उसका कारण द्रव्य और पर्याय का अभेद संबंध है। भगवान् द्रव्य के बिना नहीं रह सकता है। भाव द्रव्य की एक पर्याय है, वह निराश्रय होनी नहीं है—अतः जिस द्रव्य के आश्रय वह रहेगी उन दोनों में अभेदोपचार से उस पर्याय से उपलक्षित उस द्रव्य को ही भाव कह दिया है। जिस प्रकार ऐश्वर्यरूप इंदन (देवीप्यमान होना)

“ जिनपूजनं नो आगमतो कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकं प्रतिमायां क्रियमाणत्वात् इन्द्रादिपूजनवत् ”

जेटला भाटे आ पूर्वोक्त कथनथी आ वात स्पष्ट थाय छे के ते प्रतिमा पूजन कार्य लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक पणु नथी। जे ते लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यकइपे पणु प्रसक्त छैत तो लगवान तेनो आच्छस प्रतिषेध करत।

‘ अथ भावावश्यकमुच्यते ’:—हुवे आवश्यक शुं छे जेतुं स्पष्टीकरण सूत्रकार करे छे—वर्तमान समयमां ते विवक्षित इप पर्यायथी युक्त द्रव्यतुं नाम भाव छे। जे के भाव वर्तमान क्रियाइप मानवामां आओये छे। छतांय अर्द्धी ते क्रियाथी युक्त द्रव्यने न भाव भताओये छे तेतुं कारण द्रव्य अने पर्यायनो अलेह संबंध छे भाव लगवान द्रव्य वगर रही शकतो नथी भाव द्रव्यनी अेक पर्याय छे, ते निराश्रय छैती नथी। जेथी न द्रव्यना आश्रये ते रछेथे तेओ अनेमां अलेदोपचारथी ते पर्यायथी उपलक्षित ते द्रव्यने न भाव कही हीघो छे। जेभ अैश्वर्य इंदन (देवीप्यमान थतुं) क्रियाना अनुल-

तद् द्विविधम्- (१) आगमतः=आगममाश्रित्य, (२) नोआगमतः=आग-
माभावमाश्रित्य ।

आगमतो भावावश्यकमाह—

“ से किं तं आगमओ भावाःस्सयं ? आगमओ भावावस्सयं जाणए उवउत्ते,
सेतं आगमओ भावावस्सयं ” । (अनुयोग०)

अथ किं तदागमतो भावावश्यकम् ? उत्तरमाह—“ ज्ञायक उपयुक्त ” आग-
मतो भावावश्यकम् ।

अयमर्थः—आवश्यकपदार्थज्ञस्तज्जनितसंवेगेन विशुध्यमानपरिणामस्तत्र चो
पयुक्तः साध्वादिरागमतो भावावश्यकम्, अत्रावश्यकार्थज्ञानरूपस्यागमस्यात्र

क्रिया के अनुभव से उपलक्षित शचीपति भाव इन्द्र कहा जाता है ।
इसी प्रकार जो आवश्यक रूप क्रिया के अनुभवसे युक्त है वही आत्मा
भावावश्यक कहलाता है । भावरूप जो आवश्यक है वह, अथवा भाव
को आश्रय करके जो आवश्यक है वह भावावश्यक है ।

यह भाव आवश्यक भी दो प्रकार का है—१ आगम की अपेक्षा
भाव आवश्यक और दूसरा जो आगम की अपेक्षा भाव आवश्यक ।
इनमें “ ज्ञायकः उपयुक्तः आगमतो भावावश्यकं ” ज्ञायक उपयुक्त
आत्मा आगम की अपेक्षा से भाव आवश्यक माना गया है । आव-
श्यकरूप पदार्थ का जो ज्ञाता है उसका नाम ज्ञायक है । आवश्यकरूप
पदार्थ के ज्ञान से जनित संवेग द्वारा विशुद्ध हुए परिणामों का नाम
उपयोग है । इस उपयोग से विशिष्ट जो साधु आदि जन हैं वे आगम
की अपेक्षा से भाव आवश्यक हैं । क्यों कि इनमें आवश्यकरूप पदार्थ

वथी उपलक्षित शचीपति भाव इन्द्र कहेवाय छे तेमने के आवश्यकरूप क्रियाना
अनुभवथी युक्त छे ते आत्मा भावावश्यक कहेवाय छे, भावरूप के आवश्यक
छे ते अथवा भावने आश्रय करीने के आवश्यक छे ते भावावश्यक छे.

आ भाव आवश्यक पक्ष मे प्रकारनो छे-१, आगमननी अपेक्षा भाव
आवश्यक अने २, नो आगमननी अपेक्षा भाव आवश्यक ज्येभनामां “ज्ञायकः
उपयुक्तः आगमतो भावावश्यकं” ज्ञायक उपयुक्त आत्मा आगमनी अपेक्षार्थी
भाव आवश्यक मानवामां आये छे, आवश्यकरूप पदार्थनो के ज्ञाता छे तेनुं
नाम ज्ञायक छे आवश्यकरूप पदार्थना ज्ञानथी जनित संवेगवडे विशुद्धि
पामेला पणिष्ठाभेनुं नाम उपयोग छे, आ उपयोगथी विशिष्ट के साधु वगेरे
लोके छे तेओ आगमनी अपेक्षार्थी भाव आवश्यक छे, केमके तेओमां आव-

સત્ત્વાત્, ભાવાવશ્યકતા ચાત્રાવશ્યકાર્થજ્ઞાનજનિતોપયોગપરિણામવત્ત્વાદ્મા - માશ્રિત્યાવશ્યકમિતિ વ્યુત્પત્તેઃ । હૃદયુક્તં ભવતિ આવશ્યકાર્થજ્ઞસ્ય આવશ્યકોપ- યોગપરિણામ આગમતો ભાવાવશ્યકં, સાધ્વાદિસ્તુ તાદૃશપરિણામવત્ત્વાદાગમતો ભાવાવશ્યકમુચ્યતે । હૃદમાવશ્યકોપયોગપરિણામરૂપં મા વશ્યકં ધર્મપદવાચ્યં, શ્રુતધર્માન્તર્ગતત્વાત્, અન્ન જિનાજ્ઞાયાઃ સત્ત્વાત્ ।

નો આગમતો ભાવાવશ્યકં ત્રિવિધં-લૌકિકં, કુપ્રાવચનિકં, લોકોત્તરિકં ચેતિ લૌકિકં ભાવાવશ્યકં-પૂર્વાજ્ઞે ભારતસ્ય વાચનં શ્રવણં વા, અપરાજ્ઞે રામાયણસ્ય

કે જ્ઞાનરૂપ આગમ કા સદ્ભાવ પાયા જાતા હૈ । ઇસલિયે સાધુ આદિ જનોં મેં આગમ કી અપેક્ષા સે આવશ્યકતા ઓર ઇસ આવશ્યક કે અર્થ જ્ઞાન સે જનિત ઉપયોગરૂપ પરિણામોં કી વિશિષ્ટતા હોને સે ભાવ રૂપતા આતી હૈ । અતઃ “ ભાવ કો આશ્રિત કરકે જો આવશ્યક હૈ વહ ભાવ આવશ્યક હૈ ” યહ કથન સુસંગત હો જાતા હૈ

આવાર્થ-“આવશ્યક” ઇસ પદ કે અર્થજ્ઞાન સે વિશિષ્ટ તથા તદ- નુકૂલ ઉપયોગ પરિણતિ સંપન્ન આત્મા હી આગમ કી અપેક્ષા સે ભાવા- વશ્યક કહા ગયા હૈ । યે ભાવાવશ્યક સાધુ આદિ હૈ । ક્યોં કિ યે હી ઉસ પ્રકાર કી પરિણતિ વાલે હોતે હૈ । અતઃ શ્રુતધર્મ કે અન્તર્ગત હોને સે યહ ભાવાવશ્યક હી ધર્મ પદ કા વાચ્ય કહા ગયા હૈ ઓર ઇસે હી ધર્મ કી આરાધના કરને કી ભગવાને આજ્ઞા પ્રદાન કી હૈ ।

નો આગમ કી અપેક્ષા સે ભાવ આવશ્યક ત્રીન પ્રકાર કા માના ગયા હૈ । (૧) લૌકિક (૨) કુપ્રાવચનિક ઓર લોકોત્તરિક । પૂર્વાજ્ઞ મેં

શ્યકરૂપ પદાર્થના જ્ઞાનરૂપ આગમને સદ્ભાવ મળે છે. એટલા માટે સાધુ વગેરે લોકોમાં આગમની અપેક્ષાથી આવશ્યકતા અને આ આવશ્યકતાના અર્થ જ્ઞાનથી જનિત ઉપયોગરૂપ પરિણામોની વિશિષ્ટતા હોવાથી ભાવરૂપતા આવે છે. એટલા માટે “ ભાવને આશ્રિત કરીને જે આવશ્યક છે તે ભાવ આવશ્યક છે. ” આ કથ સુસંગત થઈ પડે છે.

ભાવાર્થઃ—“ આવશ્યક ” આ પદના અર્થ જ્ઞાનથી વિશિષ્ટ તેમજ તદ- નુકૂળ ઉપયોગ પરિણતિ સંપન્ન આત્મા જ આગમની અપેક્ષાએ ભાવ આવશ્યક સાધુ વગેરે છે કેમકે એ લોકો જ આ ભતની પરિણતિવાળા હોય છે. એથી શ્રુતધર્મના અન્તર્ગત હોવા બદલ આ ભાવાવશ્યક જ ધર્મપદવાચ્ય કહેવામાં આવ્યો છે અને આ ભતના ધર્મની આરાધના કરવાની ભગવાને પણ આજ્ઞા કરી છે.

નો આગમની અપેક્ષાએ ભાવ આવશ્યકના ત્રણ પ્રકારો છેઃ-(૧) લૌકિક (૨) કુપ્રાવચનિક (૩) અને લોકોત્તરિક પૂર્વાજ્ઞમાં ભારતજું વાંચન અથવા શ્રવણ

वाचनं श्रवणं वा । लोके हि भारतस्य वाचनं श्रवणं पूर्वाह्ने एव क्रियमाणं दृश्यते, तथा रामायणस्य वाचनं श्रवणमपराह्ण एव क्रियमाणं दृश्यते, वैपरीत्ये दोषदर्शनात् । ततश्चेत्थं लोकेऽवश्यकरणीयतयाऽऽवश्यकत्वं तद्वाचकस्य श्रोतुश्च तदर्थोपयोगपरिणामसत्त्वाद् भावत्वं, तद्वाचकः पुस्तकपत्रादिपरावर्तनरूपया हस्ताभिनयरूपया च क्रियया युक्तो भवति, श्रोतापि च गात्रसंयतत्व-करसंपुटीकरणादि

भारत का वांचना अथवा सुनना, अपराह्ण में रामायण का वांचना या सुनना ये सब लौकिक भाव आवश्यक हैं । लोक में भारत का वांचना अथवा सुनना पूर्वाह्णमें ही किया जाता है । रामायणका वांचन और श्रवण अपराह्ण में ही होता हुआ देखा जाता है । इससे विरुद्ध प्रवृत्ति करने से अनेक प्रकार के दोषों का भोजन बनना पड़ता है, इस प्रकार लोक में भारतादिक ग्रन्थों का वांचना आदि कार्य नियमित समय में अवश्य करने योग्य होने की वजह से आवश्यक रूपमें माना गया है । अतः इसमें इस प्रकार से आवश्यकपना आ जाता है । तथा इनके वांचने वालों में या सुनने वालों में उनके अर्थ के प्रति उपयोगात्मक परिणाम के सद्भाव से भावरूपता आती है । क्योंकि कि जबतक उनके वांचने वाले में उनके अर्थ के प्रति उपयोगात्मक परिणाम की जागृति नहीं होगी. तब तक वे उन पुस्तकों के पत्रों आदि का परावर्तन करने रूप क्रिया और श्रोताओं को अनेक अर्थ की संगति बैठाने के लिये हस्त आदि के संचालनरूप अभिनय क्रिया का उपयोग ही

अपराह्णमां रामायणतुं वाचन के श्रवण आ गधुं लौकिक भाव आवश्यक छे. लोकमां भारततुं वाचन अथवा तो श्रवण पूर्वाह्णमां ए करवामां आवे छे. रामायणतुं वाचन अने श्रवण अपराह्णमां ए थतुं लेवामां आवे छे. ज्येथी निरुद्ध आश्रय छे करवाथी माणस धष्ठी नतना दोषोने यात्र दध पडे छे. आ प्रमाणे भारत वगेरे अश्रोतुं वाचन वगेरे धार्थ नियमित समयमां आवश्यक करवा योग्य होवा अदल आवश्यक रूपमां मानवामां आवे छे. ज्येथी आमां आरीते आवश्यकपणुं आवी नथ छे. तेमए ज्येमतुं वचन करनाराज्योमां तेमना तरक उपयोगात्मक परिष्णामना सद्भावथी भावइपता आवे छे. केमके न्यासुधी तेमतुं वाचन करनाराज्योमां तेमना अर्थ प्रत्ये उपयोगात्मक परिष्णामनी नगृति थशे नछि, लां सुधी तेज्यो ते पुस्तकना पत्रो वगेरेना परावर्तन करवाइप क्रिया अने श्रोताज्योना भाटे अनेक नतना अर्थनी संगति ज्येसाडवा भाटे छेथ वगेरेना छेदनयदनइप अभिनय क्रिया उपयोग ए केवी रीते करी शके.

ક્રિયાવાનુ ભવતિ, એવં તયોઃ ક્રિયાવચ્ચેન નોઆગમત્વં, “કિરિયાઽગમો નહોઈ” ઇતિ વચનાત્ । ક્રિયારૂપે દેશે આગમાભાવાદ નોઆગમત્વમપિ, અત્ર નો શ્વદસ્ય દેશનિષેધવોધકત્વાત્ । લોકે ભારતાદાવાગમત્વં વ્યવહ્રિયતે, તસ્માદ્દેશત આગમોઽસ્ત્યપિ । તસ્માદ્ પૂર્વાહ્ણેઽપરાહ્ણે યથાનિર્દિષ્ટકાલે ભારતાદ્યુપયુક્તો યદવશ્યં ભારતાદિ વાચયતિ શૃણોતિ વા, તદ્ વાચનં શ્રવણં ચ લૌકિકં ભાવાવશ્યમિતિ વોધ્યમ્ ।

કેસે કર સકતે હૈં । પરન્તુ ઉલ્લ સમય હસ પ્રકાર કી યે સમસ્ત ક્રિયાઈં ઉનમૈં પ્રત્યક્ષ હી દેખને મૈં આતી હૈં । હસી પ્રકાર શ્રોતાજન મી અટલ હોકર ઉનકે સુનને મૈં તન્મય હો જાતે હૈં । સમય ૨ પર હાથ જોડને રૂપ ક્રિયાઈં મી કરતે હૈં । હસ પ્રકાર કી ક્રિયાઈં સે યુક્ત હોને સે ઉન સુનને વાંચને વાલોં મૈં નો આગમતા મી હૈ ક્યોં કિ “ કિરિયા આગમો ન હોઈ ” ક્રિયા આગમ નહીં માની જાતી હૈ એસા સિદ્ધાન્ત કા કથન હૈ । “ નો આગમ ” મૈં નો શ્વદ આગમ કે એક દેશ કા વાચક હૈ । હસલિયે ક્રિયારૂપ એક દેશ મૈં પૂર્ણરૂપ સે આગમ કા અભાવ હોને સે આગમ કી એક દેશતા ઉસમૈં માનને મૈં આતી હૈ । ભારતાદિક પુસ્તકોં મૈં આગમતા કા કથન લોક કી અપેક્ષા સે હી ક્રિયા ગયા જાનના ચાહિયે । ક્યોં કિ લોક મૈં અન્ય વ્યવહારી જન હનમૈં આગમતા કા વ્યવહાર કરતે હુપ દેખે જાતે હૈં । હસ પ્રકાર પૂર્વાહ્ણ યા અપરાહ્ણ મૈં કિસી મી નિર્દિષ્ટ સમય મૈં ભારતાદિક ગ્રન્થોં કા જ્ઞાતા ઉનમૈં ઉપર્યુક્ત હોકર જો ઉનકા વાંચના આદિ કાર્ય કરતા હૈ—યા જો શ્રોતાજન ઉપ-

પણુ તે વખતે આ ભતની આ બધી ક્રિયાઓ તેઓમાં પ્રત્યક્ષરૂપે ભોવામાં આવે છે. આ રીતે શ્રોતાઓ પણ તલ્લીન થઈને સાંભળવા માંડે છે. શેગ્ય સમયે તેઓ હાથ બેઠવારૂપ ક્રિયાઓ પણ કરે છે. આ ભતની ક્રિયાઓથી યુક્ત હોવા બદલ તે વાંચનારા તેમજ સાંભળનારાઓમાં નો આગમતા પણ છે. કેમકે “ કિરિયા આગમો ન હોઈ ” ક્રિયા આગમ માનવામાં આવતી નથી આ સિદ્ધાન્તતું કથન છે. “ નો આગમ ” માં નો શબ્દ આગમના એક દેશને વાચક છે એટલા માટે ક્રિયારૂપ એકદેશમાં આગમને સંપૂર્ણપણે અભાવ હોવાથી તેમાં આગમની એકદેશતા માનવામાં આવે છે ભારત વગેરે ગ્રંથોમાં આગમતાતું કથન લોકની અપેક્ષાથી જ કરવામાં આવ્યું છે કેમકે લોકમાં ખીલ્ય વ્યવહારી લોકો પણ એમાં આગમતારૂપ વ્યવહાર કરતાં ભોવાય છે. આ રીતે પૂર્વાહ્ણ કે અપરાહ્ણમાં કોઈ પણ નિર્દિષ્ટ સમયમાં ભારત વગેરે ગ્રંથો નો જ્ઞાતા તેઓમાં ઉપયુક્ત થઈને જે તેમનું વાંચન વગેરે કાર્ય કરે છે અથવા તે

યોગરૂપો દેશ આગમઃ; કરશ્ચિરઃ સંયોગાદિક્રિયારૂપો દેશસ્તુ નોઆગમઃ, તથા ચ દૈશિકાગમાભાવમાશ્રિત્ય નો આગમત્વમપિ, નોશ્વદ્વ્યાચાપિ દેશનિષેધપરત્વાત્ ।

લૌકિકં કુપ્રાવચનિકં ચ નોઆગમતો ભાવાવશ્યકં ન ધર્મપદવાચ્યમ્, તત્ર જિનાજ્ઞાયા અભાવાદિતિ વોધ્યમ્ ।

અથ કિં લોકોત્તરિકં નોઆગમતો ભાવાવશ્યકમ્ ? ઉચ્યતે અનુયોગદ્વારે ।

“ જળ્ણં ઇમે સમણે વા સમણી વા સાવઓ વા સાવિયા વા તત્ત્વિત્તે તમ્મણે

અપેક્ષા સે વહાં ભાવતા ઓર એકદેશ સે આગમતા મી હૈ । ક્યોં કિ હાથોં કા જોડુના નમસ્કાર કરના આદિ રૂપ જો મી ક્રિયાઈ હૈં વે સવ નો આગમ હૈં । ઇસ અપેક્ષા ઇનમૈં પૂર્ણરૂપ સે આગમપનો ન હોકર આગમ કી એક દેશતા હી હૈ ચરક ચીરીકાદિ દ્વારા માન્ય ગ્રન્થોં કી નિર્દિષ્ટ ક્રિયાઓં કા હી વહાં સહ્યાવ હૈ ઓર ઉન્હીં કે અર્થ મૈં ઉનકા ઉપયોગાદિરૂપ પરિણામ હૈ । ઇસલિયે યે સવ ચરક ચીરીકાદિ કી ક્રિયાઈ નો આગમ કી અપેક્ષા સે ભાવ આવશ્યક હૈં । યહાં પર મી નો શ્વદ્ દેશ નિષેધ પરક હૈ અર્થાત્ આગમ કે એક દેશ કા વાચક હૈ યે લૌકિક ઓર કુપ્રાવચનિક જિન્હૈં નો આગમ કી અપેક્ષા સે ભાવાવશ્યકરૂપ સૈં પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ ધર્મપદ કે વાચ્ય નહીં હૈં । ક્યોં કિ ઇન કી આરાધના સે જીવોં કે કર્મોં કી નિર્જરા નહીં હોતી હૈ । અતઃ તીર્થકર પ્રભુ ને ઇનકે આરાધન કરને કી આજ્ઞા પ્રદાન નહીં કી હૈ ।

નો આગમ કી અપેક્ષા સે લોકોત્તરિક ભાવ આવશ્યક ઇસ પ્રકાર

એકદેશથી આગમતા પણ છે. કેમકે હાથ જોડવા, નમસ્કાર કરવા વગેરે રૂપ જે ક્રિયાઓ છે તે સર્વે નોઆગમ છે. આ દૃષ્ટિએ એમનામાં આગમતા સંપૂર્ણ પણે નથી ફક્ત આગમની એકદેશતા જ છે. ચરક ચીરિક વગેરે વડે માન્ય ગ્રંથોની નિર્દિષ્ટ ક્રિયાઓનો જ ત્યાં સહ્યાવ છે અને તેમના જ અર્થમાં તેમનો ઉપયોગ વગેરેરૂપ પરિણામ છે. એટલા માટે આ બધા ચરક ચીરિકા વગેરેની ક્રિયાઓ નો આગમની અપેક્ષાથી ભાવ આવશ્યક છે. અહીં પણ નો શ્વદ્ દેશનિષેધ પરક છે એટલે કે આગમના એકદેશનો વાચક છે. આ લોકિક અને કુપ્રાવચનિકો જેમને નો આગમની દૃષ્ટિએ ભાવાવશ્યક રૂપમાં પ્રકટ કરવામાં આવ્યા છે-ધર્મપદના વાચ્ય નથી. કેમકે એમની આરાધનાથી જીવોના કર્મોની નિર્જરા થતી નથી, એટલા માટે તીર્થકર પ્રભુએ એમને આરાધવાની આજ્ઞા કરી નથી.

નો આગમની અપેક્ષાએ લોકોત્તરિક ભાવ આવશ્યક આ પ્રમાણે છે:—
જળ્ણં ઇમે સમણે વા સમણી વા સાવઓ વા સાવિયા વા તત્ત્વિત્તે તમ્મણે તલ્લેસે

तल्लेसे तदञ्जवसिए तत्तिव्वञ्जवसाणे तदद्वोपउत्ते तदप्पियवरणे तव्भावणा-
भाविए अणत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं आवस्सयं करेइ, से तं लो-
त्तरियं भावावस्सयं, से तं नोआगमतो भावावस्सयं, से तं भावावस्सयं ॥'

छाया-यत्कल्लु श्रमणो वा श्रमणी वा श्रावको वा श्राविका वा तच्चित्तस्तन्म-
नस्कस्तल्लेइयस्तदध्यवसितस्तत्तीव्राध्यवसायस्तदर्थोपयुक्तस्तदर्थितकरणस्तद्भावना-
भावित अन्यत्र कुत्रचिन्मनोऽकुर्वन् उभयकालं यत् आवश्यकं सामायिकादि करोति
तेषां तल्लोकोत्तरिकं भावावश्यकम् । तेषां तद् नोआगमतो भावावश्यकम् तदे-
तद्भावावश्यकम् ।

अत्राप्यवश्यं करणीपरादावश्यकत्वं, तदर्थोपयोगश्रद्धादिपरिणामस्य सद्भा-
वाद् भावत्वम्, रजोहरणप्रगार्जिकाव्यापारयथारतिनकवन्दनकरणानन्तरं सविधि

है-जपणं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविया वा तच्चित्ते
तम्मणे तल्लेसे तदञ्जवसिए तत्तिव्वञ्जवसाणे तदद्वोपउत्ते तदप्पिय-
करणे तव्भावणाभाविए अणत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं
आवस्सयं करेनि, से तं लोत्तरियं भावावस्सयं, से तं नो आगमतो
भावावस्सयं से तं भावावस्सयं (अनुयोगद्वार)

श्रमण अथवा श्रमणी श्रावक अथवा श्राविका जो सामायिक आदि
आवश्यक क्रियाओं को तच्चिन होकर (उनमें ही चित्त लगाकर) नञ्जान
होकर उनमें ही अन्तःकरणको एकाग्रकर इत्यादि सूत्रमें कथित विधिके
अनुसार दोनों कालों में करतेहैं वह उनकी कार्य नो आगम की अपेक्षा
से लोकोत्तरिक भाव आवश्यक हैं । ये सामायिक आदि क्रियाएँ
अवश्य करने योग्य होने से आवश्यक है । कर्त्ता का उनके अर्थ में
उपयोग रूप एवं श्रद्धा आदि रूप परिणाम का सद्भाव होने से उनमें

तदञ्जवसिए तत्तिव्वञ्जवसाणे तदद्वोपउत्ते तदप्पियवरणे तव्भावणाभाविए
अणत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं आवस्सयं करेति, से तं लोत्तरियं
भावावस्सयं, से तं नो आगमतो भावावस्सयं, से तं भावावस्सयं (अनुयोगद्वार) ।

श्रमण अथवा श्रमणी श्रावक अथवा श्राविका ने सामायिक वगेरे आव-
श्यक क्रियाओंने तच्चित्त धरने (तेमनामां मन परावीने) तद्वीन धरने
तेमनामां न मन लगावीने वगेरे सूत्रमा कथित विधि मुज्ज अने वपत्त
करे छे तेमनु' ते कार्य' नो आगमनी अपेक्षाओ वीकोत्तरिके भाव आवश्यक
छे. आ सामायिक वगेरे क्रियाओ अवश्य करवा योग्य होवाथी आवश्यक छे
कर्त्तानो तेमना अर्थमां उपयोगरूप परिष्कारनेो सहभाव होवाथी तेमनामां
भावता पणु छे. रजोहरणधुथी भूमि वगेरे' प्रमाज्जन करणु, वदना वगेरे कृति

ષ્ટ્ત્રવિધાવશ્યકકરણરૂપાયાઃ ક્રિયાયાઃ અનાગમત્વાત્ નોઆગમત્વં વ્રોધ્યમ્, અત્રાપિ નો-શબ્દસ્ય દેશતઃ પ્રતિષેધપરત્વાત્ । इदम् लोकोत्तरिकं नो आगमतो भावावश्याकं धर्मपदवाच्यम् तत्र त्रिविधतया भगवतोऽर्हत आज्ञायाः सद्भावात् । अन्येऽपि धर्मलक्षणमेवमाहुः—

“ वचनादविरुद्धाद्य-दनुष्ठानं यथोदितम् ।

मैत्र्यादिभावसंमिश्रं तद्धर्म इति कीर्त्यते ” ॥ १ ॥

ભાવતા મી હૈ રજોહરણ સે ભૂમિ આદિ કા પ્રમાર્જન કરના, વંદના આદિ કૃતિ કર્મ કરના આદિ વિધિ પૂર્વક જો ષટ્ વિધ આવશ્યક કરને રૂપ ક્રિયાઈ હૈં ઘે સત્ર “ કિરિયા આગમો ન હોઈ ” ઇસ નિયમ કે અનુમાર આગમ નહીં હૈં । અતઃ ઇન મેં આગમ કે ઇક દેશ અભાવ કી અપેક્ષા સે નો આગમતા હૈ । યહાં પર મી નો શબ્દ સમ્પૂર્ણ રૂપ સે આગમકા પ્રતિષેધ પરક ન હોકર-વસકે ઇક દેશ કા હી પ્રતિષેધક હૈ । અતઃ યે સામાયિક આદિ ષટ્વિધ આવશ્યક નોઆગમ કી અપેક્ષા સે લોકોત્તરીક ભાવ આવશ્યક હૈ ’ ઓર ઇનકે હી આરાધન કરને કી જિનેન્દ્ર દેવને અવ્ય જીવોં કો આજ્ઞા દી હૈ । કારણ કિ યે ધર્મપદ કે વાચ્ય હૈ ઇનકી આરાધના સે અવ્યજીવોં કે કર્મોં કી નિર્જરા હોતી હૈ । ટૂસરોં ને મી ઇસ પ્રકાર ધર્મ કા લક્ષણ કહા હૈ—

वाचनादविरुद्धाद्यदनुष्ठानं यथोदितम् ।

मैत्र्यादिभावसंमिश्रं तद्धर्म इति कीर्त्यते ॥

કર્મ આચ-વાં વગેરે વિધિપૂર્વક જો ષટ્વિધ આવશ્યક કરવાઈપ ક્રિયાઓ છે તેઓ સર્વે “કિરિયા આગમો ન હોઈ” આ નિયમ મુજબ આગમ નથી. એટલા માટે એમનામાં આગમના એકદેશ અભાવની અપેક્ષાથી નો આગમતા છે. અહીં પણ નો શબ્દ સંપૂર્ણ રૂપથી આગમનો પ્રતિષેધ પરક નથી પણ તેના એકદેશનો જ પ્રતિષેધક છે. એટલા માટે સામાયિક વગેરે આ ષટ્વિધ આવશ્યકો નો આગમની અપેક્ષા એ લોકોત્તરિક ભાવ આવશ્યક છે અને જિનેન્દ્ર દેવે એમની આરાધના કરવાની જ અવ્ય જીવોને આજ્ઞા કરી છે. કેમકે આ બધા ધર્મપદના વાચ્ય છે. એમની આરાધનાથી અવ્ય જીવોના કર્મોની નિર્જરા થાય છે.

બીજાઓએ પણ આ રીતે ધર્મનું લક્ષણ બતાવ્યું છે—

वाचनादविरुद्धाद्यदनुष्ठानं यथोदितम् ।

मैत्र्यादि भावसंमिश्रं तद्धर्म इति कीर्त्यते ॥ -

अस्यव्याख्या वचनादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी, वचनमनुसृत्येत्यर्थः । वचनम्—
अमागः । कीदृशाद् वचनादित्याह— अविरुद्धात्—कपच्छेदतापेषु अद्विष्टमानात् ,
तत्र विधिप्रतिषेधयोर्बाहुल्येनोपवर्णनं कपशुद्धिः, पदे पदे तद्योगक्षेमकारि क्रियोपद-
र्शनं छेदशुद्धिः, विधिप्रतिषेधतद्विषयाणां जीवादिपदार्थानां च स्याद्वादपरीक्षया
याथात्म्येन समर्थनं तापशुद्धिः । तच्चादिरुद्धं वचनं जिनप्रणीतमेव, निमित्तशुद्धेः

अविरुद्ध आगम से यथोक्ति एवं मैत्री आदि भावनाओं से मिश्रित
जो अनुष्ठान है वह धर्म है । स्पष्टार्थ—वचन शब्द का अर्थ आगम है ।
आगम से अविरुद्धता कप, ताप, और छेद द्वारा परीक्षित होने पर ही
आती है । जिस प्रकार सुवर्ण की परीक्षा कप-कसौटी पर करने से
ताप-अग्नि में तपाने से और छेद-छैनी वगैरह द्वारा काटने से होती
है, उसी प्रकार आगम की शुद्धि की परीक्षा भी इन तीन उपायों द्वारा
की जाती है । विधि और प्रतिषेध का बहुलता से जिस शास्त्र में
वर्णन है, वह शास्त्रकप से शुद्ध कहा जाता है । पद पद पर जिस
शास्त्र में इनके योग और क्षेमकरि क्रियाओं का कथन किया गया
मिलता है वह शास्त्र छेदसे शुद्धमाना जाता है । विधि एवं प्रतिषेध तथा
इन के विषयभूत जीवादिक पदार्थों का स्याद्वाद हंग से जहाँ पर यथार्थ
समर्थन किया जाता है सप्तभंगी द्वारा जहाँ पर इनका सुन्दर शैली से
विवेचन करने में आना है वह शास्त्र तप उपायद्वारा शुद्ध माना जाता

अविरुद्ध आगमधी यथोक्ति अने मैत्री वगेरे भावनाओधी मिश्रित वे
अनुष्ठान छे ते धर्म छे. स्पष्टार्थ—वचन शब्दने अर्थ आगम छे. आग-
ममां अविरुद्धता, कप, ताप अने छेद वडे परीक्षित तथा पछी न आवे छे.
जेम सोनाना परीक्षा कप-कसौटी उपर कसवाधी ताप अग्नि उपर तपाववाधी
अने छेद-छीपी वगेरेधी कपवाधी होय छे, तेमज आगमनी शुद्धिनी परीक्षा
पद्यु आ त्रणे उपायो वडे करवामां आवे छे. विधि अने प्रतिषेधनुं भोटा
प्रमाणमां जे शास्त्रमां वर्णन छे, ते शास्त्र कपधी शुद्ध कडेवाय छे. उगले ने
पगले जे शास्त्रमां ऐसना योग अने क्षेमकरि क्रियाओनुं कथन करवामां
आओनुं छे ते शास्त्र छेदधी शुद्ध मानवामां आवे छे विधि अने प्रतिषेध
तेमज ऐसना विषयभूत एव वगेरे पदार्थोना स्याद्वादना रूपधी न्यां यथार्थ
वर्णन करवामां आवे छे, सप्तभंगी वडे न्यां सुंदर शैलीमां ऐमनुं विवेचन
करवामां आवे छे, ते शास्त्र तप उपायवडे शुद्ध मानवामां आवे छे आ त्रणे
हा ४७

वचनस्य हि वक्ता निमित्तमन्तरङ्गम्, तस्य च रागद्वेषमोहपारतन्व्यमशुद्धिः, तेभ्यो वितथवचनप्रवृत्तेः, न चैषाऽशुद्धिर्जिने भगवति, जिनत्वविरोधात्, जयति रागद्वेष-मोहरूपान्तरङ्गान् रिपूनिति शब्दार्थानुपपत्तेः तपनदहनदिशब्दवत्, अन्वर्थतया चास्याभ्युपगमात्, निमित्तशुद्धयभावाद् नाजिनप्रणीतवचनमविरुद्धम् । यतः—
है । इन तीनों उपायों से परीक्षित आगम ही परिशुद्ध कहा गया है । अविरुद्ध वचन का नाम ही आगम है ।

इन कषादिकों से जो आगम में शुद्धता आती है उसका कारण निमित्त की शुद्धि है । निमित्त शुद्ध जिन प्रणीत वचन ही हैं । अन्य प्रणीत वचन नहीं । निमित्त में भी शुद्धि का कारण राग, द्वेष और मोह का अभाव है । वचन का अन्तरंग कारण वक्ता ही हुआ करता है वक्ता की प्रमाणता से ही वचन-आगम में प्रमाणता आती है इसी-लिये राग द्वेष आदि से कलुषित व्यक्तियों के वचन प्रमाण कोटि में नहीं आते हैं । क्यों कि राग द्वेष आदिक सद्भाव में वचनों में परस्पर विरुद्ध अर्थ की प्ररूपकता स्वयं ही आ जाती है अतः यह निश्चित सिद्धान्त है कि जहाँ पर इनका सर्वथा अभाव है वही सच्चा आगम का प्रणेता हो सकता है । और उसी आगम में अविरुद्धता है । ऐसा अविरुद्ध आगम जिन प्रणीत ही हो सकता है क्यों कि उनमें पूर्वोक्त राग-द्वेष आदि द्वारा अशुद्धि का सर्वथा अभाव हो चुका है इस के सर्वथा दूर होने से ही वे “जिन” इस प्रकार की संज्ञा वाले हुए हैं । “जयति

उपायेथी परीक्षित आगम न परिशुद्ध कडेवाभां आगमो छे अविरुद्ध वचननुं नाम न आगम छे. कष वगेरेथी आगमभां न शुद्धता आवे छे तेतुं कारण निमित्तनी शुद्धि छे. जिन प्रणीत वचनो न निमित्तशुद्ध छे. भीलनो वडे प्रणीत वचनो नहि. निमित्तभां पणु शुद्धितुं कारण राग, द्वेष अने मोहनो अलाव छे. वचननुं अन्तरंग कारण जोलनार न डोय छे जोलनारा (वक्ता) नी प्रमाणताथी न वचन-आगमभां प्रमाणता आवे छे. ओटला भाटे न राग द्वेष वगेरेथी कलुषित भाणुसोना वचनो प्रमाण कोटिभां आवतां नथी. डेमके रागद्वेष वगेरे सद्भाव वचनोभां परस्पर विरुद्ध अर्थनी प्ररूपकता जते न आवी जय छे. ओटला भाटे आ निश्चित सिद्धांत छे डे न्यां जेमनो संपूर्ण-अलाव छे ते न साचा आगमनो प्रणेतु थर् थर् छे अने ते आगमभां न अविरुद्धता छे. जेपुं अविरुद्ध आगम जिनप्रणीत न थर् थर् छे डेमके तेमनाभां पूर्वोक्त रागद्वेष वगेरे वडे अशुद्धि- संपूर्णपणे अलाव थर् थर्कथो छे अशुद्धि सर्व दीते मठी नवाथी तेजो ‘जिन’ संज्ञावाण थया छे.

कारणस्वरूपानुविधायि कार्यं, तन्न दृष्टकारणाऽऽरब्धं कार्यसद्वृष्टं भवितुमर्हति, निम्बवीजादिभ्यु यष्टिरिवेति । अन्यथा-कारणव्यवस्थोपरमप्रसङ्गात् ।

यच्च-यहच्छाप्रणयनप्रवृत्तेषु तीर्थान्तरीयेषु रागादिमत्स्वपि घुणाक्षरोत्किरण रागद्वेषमोहरूपान् अन्तरंगरिपून् इति जिनः ” राग द्वेष आदिक जो अन्तरंग शत्रु हैं इन पर जिसने विजय पायी है वे ही जिन कहलाते हैं जिस प्रकार तपन (सूर्य) दहन (अग्नि) आदि शब्द यथानाम तथा गुण वाले हुआ करते हैं, इसी प्रकार “ जिन ” यह नाम भी यथा नाम तथा गुण वाला है यथा नाम तथा गुण का होना ही नाम की सार्थकता है । जिन्होंने ने इन अन्तरंग शत्रुओं को परास्त नहीं किया उनके वचनों में परस्पर अविरोद्धार्थता नहीं आसकती है-क्यों कि वहाँ पर निमित्त की शुद्धि नहीं है । इसीलिये अजिन प्रणीत वचन अविरोद्ध नहीं होते हैं । लोक में भी जिस प्रकार नीम के बीज से इष्टु की उत्पत्ति देखने में नहीं आती उसी प्रकार सदोष कारण से उत्पन्न हुआ कार्य भी निर्दोष नहीं होता है । कार्य में निर्दोषता कारण कि निर्दोषता पर आधार रखती है । न्याय शास्त्र का भी यही सिद्धान्त है “ कारण स्वरूपानुविधायि कार्यं ” कि कार्य, कारण के स्वरूप का अनुविधायक होता है । यदि इस प्रकार की व्यवस्था न मानी जावे तो फिर कार्य कारण भाव की व्यवस्था ही नहीं बन सकती है । हर एक पदार्थ

“ जयति रागद्वेषमोहरूपान् अन्तरंगरिपून् इति जिनः ” रागद्वेष वगेरे के अन्तरंग शत्रुओं के तेमना उपर केमले विजय मेणये के तेमना के जिन केवेवाय के. केम तपन (सूर्य) दहन (अग्नि) वगेरे शब्दो नाम केवा के शुष्वाणा डेय के, ते प्रमाणे के “ जिन ” आ नाम पण नाम प्रमाणे के शुष्वाणुं के. केवु नाम तेवा शुष्वा डेवा के के नामनी सार्थकता के. केमले आ अन्तरंग शत्रुओंने डराव्या नथी तेमना वचनेमां परस्पर अविरोद्धार्थता आनी शकती नथी केम के त्यां निमित्तनी शुद्धि नथी. अेटला साटे अजिन प्रणीत वचने अविरोद्ध डेवा नथी. लोकमां पण केम लीमडाना भीथी शेरीनी उत्पत्ति केवामां आवती नथी तेमके सदोष कारणथी उत्पन्न थयेवुं कार्यं पण निर्दोष डेतुं नथी. कार्यंमां निर्दोषता कारणनी निर्दोषता उपर आधारित डेय के. न्यायशास्त्रने पण केके सिद्धांत के, “ कारणस्वरूपानुविधायिकार्यं ” के कार्यं कारण शुष्वा स्वप्ने अनुविधाता डेय के. के आ जतनी व्यवस्था मानवामां आवे

व्यवहारेण क्वचित् किञ्चिदविरुद्धमपि वचनस्रष्टव्यते, मार्गानुसारिबुद्धौ वा प्राणिनि क्वचित्, तदपि जिनप्रणीतमेव, तन्मूलकत्वात् तस्य ।

हर एक का कार्य और कारण हो जायगा । अतः आगमरूप कार्य की शुद्धि के लिये निमित्त रूप कारण शुद्धि का होना अवश्य आवश्यक माना गया है ।

प्रश्न—आपने जो कहा कि आगम में अविरुद्धता उसके कारणभूत प्रणेता के अधीन है—सो यह बात हमें मान्य है । परन्तु इससे यह बात तो सिद्ध नहीं होती है कि वे अविरुद्ध वचन जिन भगवान के ही है' अन्य के नहीं—कारण कि अन्य सिद्धान्तकारों के वचनों में भी किसी अंशसे अविरुद्धार्थता देखी जाती है । अतः उन्हें सदोष मान कर आप जो उनमें अनासता सिद्ध करते हैं सो यह बात कैसे मान्य हो सकती है ?

उत्तर—शंका तो ठीक है—परन्तु विचार करने से इसका उत्तर भी सहजरूप में मिल जाता है । अन्य सिद्धान्तकारों ने जो कुछ रचनाएँ की हैं—वे सब उन्होंने ने अपनी इच्छानुसार ही की हैं । अपनी निज कल्पना में जो कुछ उन्हें सूझा वहीं उन्होंने ने लिखा है । उनकी रचनाओं में पूर्वापर विरोध स्पष्ट प्रतीत होता है इससे उनमें रागादिक दोषों का अस्तित्व सिद्ध होता है । अब रही उनके वचनों में घुणाक्षर

नहि तो कार्य कारण लावनी व्यवस्था भनी शक्ये तेम नथी. इरेक पदार्थ इरे-
कतुं कार्य अने कारण थछ नशे. अेटला भाटे आगमइप कार्यनी शुद्धि भाटे
निमित्तइप कारण शुद्धि थवी योळसपण्णे आवश्यकीय मानवामां आवी छे.

प्रश्न:—तमे कहुं के आगममां अविरुद्धता तेना कारणभूत प्रणेताना
आधीन छे—जे वात जेभने मान्य छे. पण्णे जेनाथी आ वात तो सिद्ध थती
नथी के ते अविरुद्ध वचनेा जिन भगवानना न छे, भीलज्जेना नहि. केमके
भील सिद्धांतकारेना वचनेामां पण्णे केछ पण्णे अशे अविरुद्धार्थता जेवामां
आवे छे. अेटला भाटे तेभने दोषयुक्त भानीने तमे जे तेभनामां अनासता
सिद्ध करे छे आ वात केवी रीते मान्य थछ शक्ये तेम छे ।

उत्तर:—शंका तो ठीक छे, पण्णे विचार करवार्थी आना नवाप पण्णे सरग
रीते भणी शक्ये तेम छे. भील सिद्धांतकारेजे जे रचनाज्जे करी छे ते भधी
तेमजे पोतानी ध्विछा सुवण्ण न करी छे. पोतानी कल्पनाथी जे कछ तेभने
योग्य लाव्णुं ते तेमजे लव्णुं छे. तेमनी रचनाज्जेमां पूर्वापर विरोध स्पष्ट
रीते हेभाछ आवे छे. जेनाथी तेज्जेमां राग वगेरे दोषो छे जेकी वात सिद्ध
थाथ छे. डवे घुणाक्षर न्यायथी केछक केछक स्थाने तेमना वचनेामां अविरुद्ध

कीदृशमनुष्ठानं धर्मः? इत्याह— 'यथोदितम्' यथा येन प्रकारेण कालाद्या-
राधनानुसाररूपेण—उदितं=प्रतिपादितं, तत्रैवाविरुद्धवचने इति गन्यम् ।

अन्यत्र—

जो जहवार्य न कुणइ, मिच्छादिद्वी तओ उ को अओ ? ।
'बुद्धेइ मिच्छत्तं, परस्स संकं जणेमाणो ॥ इति ।

छाया—यो यथावाइं न करोति, निययादृष्टिस्ततन्तु कोऽन्यः ।
वर्धयति मिथ्यात्व, परस्य शङ्खाजनयन् ॥ इति ।

पुनरपि कीदृशमित्याह—'मैत्र्यादिभावसंमिश्रम्' इति । मैत्र्यादयः=मैत्री
मुदिता करुणा माध्यस्थ्यलक्षणा ये भावाः=अन्तःकरुणपरिणामाः, तत्पूर्वकाश्च

न्याय से कही २ अविरुद्ध अर्थ प्रतिपादकता सो वह उनकी निज की
घर की वस्तु नहीं है—उसका मूल ज्ञोत अविरुद्ध अर्थ का प्रत्येक जिन
प्रणीत आगम ही है । वही बात मार्गानुसारी बुद्धिवाले व्यक्ति में भी
समझ लेना चाहिये । वह जो कुछ भी सत्यार्थ कहना है उसका मूल
कारण जिनप्रणीत आगम का सहारा ही है । श्लोक कथित "यथोदित"
पद इस बात का समर्थन करता है कि देश काल आदि की आराधना
के अनुसार जो आचार-अनुष्ठान प्रतिपादित किया गया है । उससे जो
आवेरुद्ध कहा गया है—वही धर्म है इससे विपरीत नहीं । "मैत्र्यादि-
भाव संमिश्रम्" इस पद द्वारा सूत्रकार यह प्रतिपादिन करते हैं कि
वह अनुष्ठान मैत्री, मुदिता, करुणा और माध्यस्थ्य इन चार लक्षणों से
युक्त होता है । ये धर्म के बाह्य चिह्न हैं । इनके सङ्गाव से आत्मा में

अर्थ प्रतिपादकता पशु छे ते तेमनी पोतानी वस्तु तो नथी व केमके तेनां
भूषिथां तो अनिबुद्ध अर्थना उपपन्न जिनप्रणीत आगममां व छे. अे व वात
मार्गानुसारी बुद्धिवाणी व्यक्तितमा पशु समल देवीः।नेधंअे. ते ले कंथं पशु
सत्यार्थं दडे छे तेतुं भूषण धारणु जिन प्रणीत आगम व छे. श्लोक कथित
"यथोदित" ५६ आ वात ने स्पष्ट करे छे के देशकाल वगेरेनी आराधना
सुव्रम ले आचार-अनुष्ठान-प्रतिपादित कथांमां आत्मां छे, तेनाधी ले अ-
विबुद्ध कडेवांमां आऽभुं छे ते धर्म छे. अेनाधी विपरीत नडि. "मैत्र्यादि
भावसंमिश्रम्" आ पकरडे सूत्रकार आ वात स्पष्ट करे छे के ते अनुष्ठान-
मैत्री, मुदिता, करुणा अने माध्यस्थ्य आ चार लक्षणैधी युक्त होथ छे. आ
अधा धर्मना बाह्य चिन्हो छे. अेमना सङ्गावधी आत्मांमां धर्मतुं अस्तित्व

વાદ્યચેષ્ટાવિશેષાઃ, તૈઃ સંમિશ્રં=સંયુક્તં, યૈવાદિમાવાનાં નિઃશ્રેયસામ્યુદયધર્મમૂ-
લત્વેન શાસ્ત્રાન્તરેષુ પ્રતિપાદનાત્ । તદેવંવિધમનુષ્ટાનં ધર્મં ઇતિ કીર્ત્યંતે
શબ્દતે સુધીભિરિતિ ।

નન્વેવં વચનાનુષ્ટાનં ધર્મં ઇતિ પ્રાપ્તં, તથા ચ પ્રીતિમત્કત્યસજ્ઞાનુષ્ટાનેષ્વ-
વ્યાપ્તિરિતિ ચેન્ન-ઈહ તુ વચનાદિત્યત્ર વેદાત્ પ્રવૃત્તિરિત્યત્રેવ પ્રયોજ્યત્વાર્થિકા
ધર્મ કા અસ્તિત્વ જાના જાતા હૈ અન્ય બિદ્ધાન્તકારોં ને મી હન્ને નિઃ
શ્રેયસ ઓર સ્વર્ગ કે કારણમૂલ ધર્મ કા મૂલ કહા હૈ । અતઃ જો
આગમ સે અવિરુદ્ધ હૈ, કાલ ઓદિ કી આરાધના કે અનુસાર જો
આરાધિત હોતા હૈ ઓર જો યૈત્રી આદિ ચાર ભાવનાઓં સે ગર્ભિત હૈ
એસા અનુષ્ટાન હી ધર્મ હૈ । એસે હી ધર્મ કી આરાધના કરને કા ગણ-
ધર આદિ કા આદેશ હૈ ।

ભાવાર્થ-તીર્થકર કથિત આગમ કે અનુસાર હોને વાલે અનુષ્ટાન કા
નામ ધર્મ હૈ । ઇસકા ફલિતાર્થ યહી હૈ કિ જિસ અનુષ્ટાન મેં તીર્થકર
પ્રમુ દ્વારા કથિત આગમ સે વિરોધ નહીં આતા હૈ વહી ધર્મ હૈ । તથા
ચ-પ્રીતિ ભક્તિ ઓર અસંગ રૂપ અનુષ્ટાનોં મેં ઇસ લક્ષણ કી અપ્રાપ્તિ
નહીં હોતી હૈ ક્યોં કિ વહાં પર મી ઇસ લક્ષણ કા સજ્ઞાવ પાયા જાતા
હૈ “ વાચનાનુષ્ટાનં ધર્મઃ ” ઇસ પ્રકાર કે કથન મેં “ વેદાત્ પ્રવૃત્તિઃ ”
કી તરહ પ્રયોજ્ય અર્થ મેં પંચમી વિભક્તિ હુઈ હૈ અતઃ જિસ પ્રવૃત્તિ કા
પ્રયોજ્ય વચન હૈ વહ ધર્મ હૈ । (વચનાનુષ્ટાનં ધર્મઃ) યહાં સે લેકર
(પ્રીતિ ભક્તિ અસંગાનુષ્ટાન ઇત્યાદિ તક) ॥ લિખને કી આવશ્યકતા

બાણુવામાં આવે છે. બીજા સિદ્ધાંતકારોએ પણ આ ગદ્યાને નિઃશ્રેયસ અને
સ્વર્ગના કારણમૂલ ધર્મનું મૂળ ઘટાવ્યું છે એથી જે આગમથી અવિરુદ્ધ છે
કાળ વગેરેની આરાધના મુજબ જે આરાધિત હોય છે અને જે યૈત્રી વગેરે
ચાર ભાવનાઓથી સુક્ત છે એવું અનુષ્ટાન જ ધર્મ છે. એવા જ ધર્મની
આરાધના કરવા માટે ગણધર વગેરેનો આદેશ છે

ભાવાર્થ:—તીર્થકર કથિત આગમમુજબ આચરણેલા અનુષ્ટાનનું નામ
ધર્મ છે. એનો અર્થ આ પ્રમાણે કથિત થયો છે કે જે અનુષ્ટાનમાં તીર્થકર પ્રમુ
વડે કથિત આગમથી વિરોધ જણાતો નથી તે જ ધર્મ છે. તેમજ પ્રીતિ,
ભક્તિ અને અસંગ રૂપ અનુષ્ટાનોમાં આ લક્ષણની અપ્રાપ્તિ પણ હોતી નથી
કેમકે ત્યાં પણ આ લક્ષણનો સહભાવ મળે છે. “ વાચનાનુષ્ટાનં ધર્મઃ ” આ
બાતના કથનમાં “ વેદાત્ પ્રવૃત્તિઃ ”ની જેમ પ્રયોજ્ય અર્થમાં પંચમી વિભક્તિ
થઈ છે. એટલા માટે જે પ્રવૃત્તિનું પ્રયોજ્ય વચન છે તે ધર્મ છે. (વચના-
નુષ્ટાનં ધર્મઃ) અહીંથી માંડીને પ્રીતિ ભક્તિ અસંગાનુષ્ટાન વગેરે સુધી લખવાની

पञ्चमी, तथा च—वचनप्रयोज्यप्रवृत्तिवत्त्वं लक्षणमिति न कुत्राप्यव्याप्तिदोषावकाशः प्रीतिभक्त्यसङ्गानुष्ठानानामपि वचनप्रयोज्यत्वाऽनवायादिति ।

किं च—हिंसादिपापपरिहारो, धर्मसिद्धेल्लिङ्गमित्पार्हताः स्वीकुर्वन्ति । तथा चोक्तम्—

औदार्यं दाक्षिण्यं पापजुगुप्साऽथ निर्मलो बोधः ।

लिङ्गानि धर्मसिद्धेः, प्रायेण जनप्रियत्वं च ॥ इति ।

पापजुगुप्सा=पापपरिहारः ।

पदकायदधसाध्यं प्रतिमापूजनं कुर्यातां धर्मसिद्धिः कथं स्यादिति विचारयन्तु मुषियः । अपरं च—

प्रतीत नहीं होता है क्यों कि वचनानुष्ठान धर्म का अर्थ वचन के अनुसार होने वाला अनुष्ठान धर्म है इसमें कोई जातका दोष नहीं आता है । ”

किंच—हिंसादिक पांच पापों का परित्याग धर्म सिद्धि का चिह्न है इस प्रकार की मान्यता जैनियों की है । शास्त्रान्तर में यही बात प्रकट की गई है—

औदार्यं दाक्षिण्यं पापजुगुप्साऽथ निर्मलो बोधः ।

लिङ्गानि धर्मसिद्धेः प्रायेण जनप्रियत्वं च ॥ (षोडश-ग्रंथ ४ प्रकरण) उदारना-हृदय की विपालता, दाक्षिण्य-सर्व जीवों के अनुकूल प्रवृत्ति, पापजुगुप्सा-पाप का परित्याग, निर्मलबोध-तत्त्वज्ञान, और जन प्रियत्व ये ५ धर्मसिद्धि के लक्षण हैं । अब यहाँ पर विचारने की बात यह है कि जब पाप का परिहार करना यह धर्मसिद्धि का लक्षण

आवश्यकता नष्टाती नहीं केभके वचनानुष्ठान धर्मने अर्थ वचन मुवण थनार अनुष्ठान धर्म छे. आमां डेअ पणु नतने डोष नथी.

किंच—हिंसा वगैरे पाप पापेना परित्याग धर्मसिद्धितुं चिह्न छे. आ नतनी मान्यता नैनीजिानी छे. शास्त्रान्तरमां पणु अे न वात स्पष्ट इरवामां आवी छेः—

औदार्यं दाक्षिण्यं पापजुगुप्साऽथ निर्मलो बोधः ।

लिङ्गानि धर्मसिद्धेः प्रायेण विनप्रियत्वं च ॥ (षोडशग्रंथ ४ प्रकरण)

उदारता—हृदयनी निशालता, दाक्षिण्य-अधा लुवेने अनुकूल थअ पडे तेवी प्रवृत्ति, पाप जुगुप्सा-पापेना त्याग, निर्मल बोध - तत्त्वज्ञान, अने विनप्रियत्व आ पांचे धर्मसिद्धिनां लक्षणु छे, हये आपणुी सामे आ वात विचार इरवायेव्य छे के न्यारे पापेना परिक्षार इरवे अे धर्मसिद्धितुं लक्षणु

एकेन्द्रियादिपट्टजीवनिकायजीवानां रक्षणं धर्मस्य मूलमिति वदतामर्हतां
पट्टकायविराधनासाध्यायाः प्रतिमापूजायाः अङ्गीकारे जैनत्वमेव नव्यति, जैन
धर्मस्य मूलतरतत्र समुच्छेदान् ।

तथा चोक्तम्—जीवदयसुचवयणं, परधनपरिवज्जणं सुसीलं च ।

खंती पंचिदयनि—गगहो य धम्मरस मूलाइं ॥ दर्शनशुद्धि—२ तत्त्व)

है तो प्रति मा का पूजन करने वाले के इसका परिहार कैसे हो सकता है । क्यों कि यह पहिले ही प्रकट किया जा चुका है कि यह प्रतिमा-पूजन कार्य पट्ट काय के आरंभ के बिना साध्य हो ही नहीं सकता । अतः प्रतिमापूजन वाले को धर्मसिद्धि का लाभ मानना यह एक अनग वंन कल्पना ही है—शास्त्रीय कल्पना नहीं । शास्त्र में तो यही जिनेन्द्र देव की आज्ञा है कि एकेन्द्रिय आदि पट्ट निकाय के जीवों की रक्षा करना ही प्रत्येक जैन मात्र का कर्तव्य है, और यही धर्म का मूल है जब इस प्रकार की वातराग प्रभु की आज्ञा है—तो फिर यह तो सोचो की पट्टनिकाय की विराधना से साध्य इस प्रतिमापूजन की मान्यता में जैनत्व का रक्षण ही कैसे हो सकता है—। प्रत्युत जैनधर्म का इस प्रकार की मान्यता में समूलतः नाश ही हो जाता है ।

जीवदयसुचवयणं परधनपरिवज्जणं सुसीलं च ।

खंती पंचिदिय निगगहोय धम्मरस मूलाइं ॥ (दर्शन शु २ तत्त्व)

छे त्पारे प्रतिमानी पूज करनारामो भाटे आने परिहार डेवी रीते थर् शके तेम छे, डेमके आ वात पडेलां न प्रगट करवामां आवी छे डे आ प्रतिमा पूजन कार्य पट्टकायना आरंभ वगर साध्य थर् शके तेम नथी. अथी प्रतिमा पूजनवाणा भाटे धर्मसिद्धिने लाल समल देवे आ ओक जोटी कल्पना मात्र छे. शास्त्रीय कल्पना नथी. शास्त्रमां तो जिनेन्द्रदेवनी ओ न आज्ञा छे डे ओकेन्द्रिय वगेरे पट्टकायना लुवानी रक्षा करवी न हरेके हरेक जैनतुं कर्तव्य छे आने ओ न धर्मतुं मूण छे. न्यारे आ जतनी वीतराग प्रभुनी आज्ञा छे त्पारे आ वात उपर तो विचार करीओ डे पट्टकाय निकायनी विराधनाथी साध्य आ प्रतिमा पूजननी मान्यतामां जैनत्वतुं रक्षथु न डेवी रीते थर् शके छे. आ जतनी मान्यताथी तो जैन धर्मने मूणइपे विनाश न थर् नथ छे.

जीवदयसुचवयणं परधनपरिवज्जणं सुसीलं च ।

खंती पंचिदियनिगगहोय धम्मरस मूलाइं ॥ (दर्शन शु २ तत्त्व)

जीवाश्चेतनादिलिङ्गव्यङ्ग्या एकेन्द्रियादयः तेषां दया=रक्षणं जीवदयेति ।
ह्रस्वत्वं प्राकृतप्रभवम् । धर्ममूलं मरतीति सर्वत्र क्रियाऽध्याहारः कार्यः ।

प्रतिमापूजनं विशुद्धपरिणामजनकत्वाद्दुष्पादेवमितिकथनं निर्मूलम्--

धर्माङ्गेषु दयायाः प्राधान्यात् प्राथम्यं वर्तते । हिंसासाध्यायां प्रतिमापूजायां
दयाया अभावाद् धर्माङ्गत्वं न सिध्यति । तथा च विशुद्धात्मपरिणामरूपं धर्मं
प्रति कारणत्वं प्रतियापूजनस्य न संभवति । अन्यच्च--

इस लोक में यही बान कही गई है । जीवों की दया करना सत्य बोलना, पर धन के हरण करने का त्याग करना, कुशील का त्यागना, क्षमाभाव रखना, पाँचों इंद्रियों को वश में रखना ये सब धर्म के मूल हैं । जिस प्रकार बिना मूल-जड़ के वृक्ष की स्थिति आदि नहीं हो सकती है-उसी प्रकार उनके बिना भी धर्मरूपी महावृक्ष की जीवात्माओं में स्थिरता नहीं हो सकती है जो व्यक्ति "प्रतिमा के पूजने से विशुद्ध परिणामों की आत्मा में जागृति होती है" इस बात का समर्थन करते हुए उपयोगिता सिद्ध करते हैं उनका यह कथन थिलकुल ही निर्मूल है क्यों कि धर्म में सर्वप्रथम स्थान दया को ही दिया गया है जीवों की हिंसा से साध्य इस प्रतिमापूजन में उस दया का संरक्षण ही नहीं होता है-इसलिये इसे धर्म का अंग कैसे माना जा सकता है जो धर्म का ही अंग नहीं बनता है उससे कैसे परिणामों में विशुद्धता की जागृति हो सकती है अनः यह प्रतिमापूजन धर्म प्राप्ति में कारण नहीं है ऐसा मानना चाहिये ।

आ श्लोकमां अे व वात गताववाभां आनी छे के एव उपर दया करवी, सत्य बोलवुं, पारकाना धनने लध देवानी वृत्तिने इर करवी, कुशीलने त्याग करवो, क्षमालाव राभवो, पांच इंद्रियोने वशमां राभवो आ अधां धर्मां मूल छे. जे मूल-जड वगरनां वृक्षनी स्थिति वगेरे व थध शके तेम नथी तेमज्जेमना वगर पणु धर्मां रूपी भडावृक्षनी एवात्माओमां स्थिरता थध शके तेम नथी. जे व्यक्ति "प्रतिमाना पूजनथी विशुद्ध परिणामोनी आत्मायां जगृति थाय छे." आ वातने योग्य भानीने आनी उपयोगिता सिद्ध करे छे, तेमनुं आ कथन साव निर्भूण-व्यर्थ छे. केभडे धर्मां सी प्रथम स्थान दयानेव आपवाभां आवे छे. एवोनी हिंसाथी साध्य आ प्रतिमा पूजनमां ते दयानी रक्षा व घती नथी. जेटला भाटे आने धर्मां अंग देवी रीते भानी शकथि. अने जे धर्मां व अंग थध शकतुं नथी तेनाथी देवी रीते परिणामोमां विशुद्धतानी जगृति थध शके. जेटला भाटे आ प्रतिमापूजन धर्मां प्राप्तिमां कारण नथी आस भानी देवुं जेधजे,

ધર્માલ્મ્બનાનિ સ્થાનાજ્ઞસ્થ્રે ભગવતા પ્રજ્ઞતાનિ--

“ ધર્મ્મં પંચ ચરમાણસ્સ પંચ નિસ્સાઠાણા પળ્ણત્તા ।

તં જહા-છક્કાયા, ગણો, રાયા, ગિહવર્હી, સરીરં ” ॥ ઈતિ ।

ભગવતા ધર્માલ્મ્બનાનિ પચ્ચૈવ કથિતાનિ । તત્ત્ર “ છક્કાયા ” ઇત્યુક્ત્યા ગણરાજાદીનામપિ સંગ્રહે સત્યપિ પુનસ્તેષાં વિશિષ્યોપન્યાસઃ પ્રાધાન્યરૂપોપનાર્થઃ

અન્યત્ત્વ-“ ધર્મ્મં ચરમાણસ્સ પંચ નિસ્સાઠાણા પળ્ણત્તા-તંજહા-છક્કાયા, ગણો, રાયા, ગિહવર્હી, સરીરં ” ઇતિ-ભગવાન ને ધર્મ કે છહકાય, ગણ, રાજા, ગાથાપતિ ઓર શરીર ઇસ પ્રકાર ચે છહ આલ્મ્બન સ્થાન સ્થાનાજ્ઞસ્થ્ર એ કહે હૈં । ઇનમૈં જિન પ્રતિમા કા કથન નહીં કિયા હૈ-ઇસસે યહ ખલીખાંતિ વિદિત હો જાતા હૈ કિ જિન પ્રતિમા ઓર ડસકા પૂજન ધર્મ કા અવલમ્બન રૂપ નહીં હૈ યદિ જિન પ્રતિમા કા પૂજન કાર્ય ધર્મ કા અવલમ્બનરૂપ સિદ્ધાન્તકારોં કી દષ્ટિ મૈં માન્ય હોતા તો વે અવહ્ય ઇન સ્થાનોં કે કથન કરતે-જિસ પ્રકાર છહકાય, ગણ, રાજા ઇત્યાદિ કા કથન કિયા હૈ । યવ્યપિ “ છહકાય ” ઇસ એક પદ સે હી ગણ, રાજા આદિ કા સ્વતઃ કથન સિદ્ધ હો જાતા હૈ, કયોં કી ઇન સબ કા સમાવેશ ડસી એક પદ મૈં હો જાતા હૈ । ફિર ખી ઇનકા ખિન્ન ૨ રૂપ સે જો નામ નિર્દેપ કિયા હૈ ડસકા કારણ ચે ધર્મ કે પ્રધાન આલમ્બન રૂપ હૈં ઇસ વાત કો પ્રકટ કરને કે લિચે હી કિયા ગયા હૈ । ઇસી પ્રકાર

અને ધીરુ' પણ કહું છે કે “ધર્મ્મં ચરમાણસ્સ પંચ નિસ્સાઠાણા પળ્ણત્તા-તં જહા' છક્કાયા, ગણો, રાયા, ગિહવર્હી, સરીરં ” ઇતિ, ભગવાને ધર્મનાં છ કાય, ગણ, રાજા, ગાથાપતિ અને શરીર આ રીતે છ આલંબનસ્થાન સ્થાનાંગ સૂત્રમાં કહ્યાં છે. આ બધામાં જિન પ્રતિમાતું કથન કરવામાં આવ્યું નથી. એનાથી આ સ્પષ્ટ રીતે જણાય છે કે જિનપ્રતિમા અને તેતું પૂજન ધર્મતું અવલંબન નથી. બે સિદ્ધાન્તકારોની દષ્ટિમાં જિન પ્રતિમાના પૂજનતું કાર્ય ધર્મના અવલંબન રૂપમાં માન્ય હોત તો તેઓ ચોક્કસ આ સ્થાનોના કથનની સાથે સાથે તેમતું પણ કથન બેમ છ કાય, ગણ, રાજા વગેરેતું કથન કર્યું છે તેમ કર્યું હોત. બે કે “ પદકાય ” આ એક પદથી જ ગણ, રાજા વગેરેતું સ્વતઃ કથન સિદ્ધ થઈ બીય છે, કેમકે આ બધાનો સમાવેશ તે એક પદમાં જ થઈ બીય છે, છતાંય આ બધાનો સ્વતંત્ર રૂપમાં બે નામ નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે તેતું કારણ આ છે કે તે સર્વે ધર્મના પ્રધાન આલંબનરૂપ છે, આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે જ કરવામાં આવ્યો છે. આ પ્રમાણે બે જિનપ્રતિમા પણ

દર્શનવન્દનપૂજનાદિના જિનપ્રતિમાયાઃ સમ્યક્ત્વશુદ્ધિહેતુત્વાષ્ટકર્મક્ષયહેતુત્વ સ્વીકારે તુ અસ્યા અપિ નિશ્રાસ્થાનત્વેન નિશ્રાસ્થાનેષુ વિશિષ્ય તદુપન્યાસમકૃત્વા “પંચ નિસ્સાઠાણા પળ્ણત્તા” ઇતિ કથનં વિરુદ્ધયતે । તસ્માત્ જિનપ્રતિમાયા નિશ્રાસ્થાનેષ્વનભિધાનાત્ પ્રતિમાયાં ધર્માલમ્બનત્વં ન સિદ્ધયતિ । એવં ચ તત્પૂજનં કુશલાત્મપરિણામવિશેષસ્ય ધર્મસ્ય કારણં નાસ્તીતિ વિશ્વસનીયમ્ ।

પ્રતિમાપૂજાયમારમ્ભઃ પરિગ્રહશ્રાવણ્યં ભાવી । તાભ્યાં વિના પૂજાયા અસં-
ભવાત્ તથાઽપિ—પ્રતિમાપૂજોપદેશકાઃ એવં વદન્તિ—

યદિ જિન પ્રતિમા ખી દર્શનવન્દના ઔર પૂજાદિક દ્વારા સમ્યક્ત્વશુદ્ધિ એવં અષ્ટકર્મોં કે ક્ષય કા કારણ હોતી તો ડસકા ખી ધર્મ કા આલમ્બનરૂપ હોને સે યહાં પર વિશેષરૂપ સે શાસ્ત્રકાર કો કથન કરના ચહિયે ધા ! પરન્તુ ઁસા તો સૂત્રકાર ને કિયા નહીં હૈ । ફિર ખી યદિ ડસે ધર્મ કા અવલમ્બનરૂપ સ્વીકાર કિયા જાય તો ઇસ સૂત્ર મેં પ્રતિ-
પાદિત ‘પાંચ હી નિશ્રાસ્થાન હૈં ’ ઇસ કથન સે વિરોધ આતા હૈ કારણ કિ ડન સ્થાનોં સે અતિરિક્ત ઁક ઔર જિનપ્રતિમાપૂજન ધર્મ કા આલમ્બન રૂપ સ્થાન વઢ જાતા હૈ અતઃ ‘પંચ નિસ્સાઠાણા પળ્ણત્તા ’ ઇસ સૂત્ર પ્રદર્શિત ડપન્યાસ સે યહ વાત ડુષ્ટ હોતી હૈ કિ જિન પ્રતિમા ધર્મ કા આલમ્બન સ્થાન નહીં હૈ । યહ તો ડસ કે પક્ષપાતિયોં કે હી ડિમાગ કી ઁક ડટપટાંગ સૂત્ર હૈ યહ જાનતે હુઁ ખી કિ જિનપ્રતિમાપૂજન મેં આરંભ ઔર પરિગ્રહ અવશ્યંભાવી હૈ, ઇનકે ચિનાં વહ કથમપિ સાધ્ય હો નહીં સકતી હૈ, તો ખી જિનપૂજાકે ડપદેશક ઁલેદ હૈ કિ જનતા કો

દર્શન વન્દના અને પૂજા વગેરે વડે સમ્યક્ત્વ શુદ્ધિ અને અષ્ટ કર્મોના ક્ષયનું કારણ હોત તો ધર્મના આલમ્બનરૂપ હોવા બદલ અહીં વિશેષરૂપમાં શાસ્ત્રકારો વડે તેનું કથન કરવું બેધરૂચ. પણ સૂત્રકારે આનું કંઈ કંઈ નથી. છતાંય બે તેને ધર્મના અવલમ્બનરૂપે સ્વીકારીયે તો આ સૂત્રમાં પ્રતિપાદિત “પાંચ જ નિશ્રાસ્થાનો છે” આ કથનથી વિરોધ જીલો થાય છે કેમકે તે સ્થાનોથી અતિરિક્ત એક બીજા જિનપ્રતિમા પૂજન ધર્મના આલમ્બનરૂપ સ્થાનની વૃદ્ધિ થઈ બીય છે. એથી “પંચ નિસ્સાઠાણા પળ્ણત્તા” આ સૂત્ર પ્રદર્શિત ડપન્યાસથી આ વાત ડુષ્ટ થાય છે કે જિનપ્રતિમા ધર્મનું આલમ્બન સ્થાન નથી આ તો કૃત્તા તેના તરફદારીઓના મરિતબંધની જ વ્યર્થની કલ્પના છે. જિનપ્રતિમા પૂજનમાં આરંભ અને પરિગ્રહ અવશ્યંભાવી છે. એના વગર તે કોઈ પણ સંભોગે સાધ્ય થઈ શકે તેમ નથી આનું બાલુવા છતાં બહુ દુઃખ સાથે કહેવું પડે છે કે જિન પૂજના ડપદેશકો સમાજને “પૂણ્ય કાચ-

अपि च—“ पूयाए कायवहो, पडिक्कुट्टो सो उ किं तु जिणपूया ।

सम्मत्तसुद्धिहेउ, त्ति भावणीया उ गिरवज्जा ” ॥१॥

छाया—पूजायां कायवधः प्रतिक्कुष्ठः सतु किन्तु जिनपूजा ।

सम्यक्त्वशुद्धिहेतु—रिति भावनीया तु निरवद्या ॥१॥

सर्वमेतदुत्सूत्रपरूपणम्—श्रूयतां प्रवचनं तावत्—

दो ट्ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवल्लिपणत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए ।
तं जहा—आरंभे चैव परिग्गहे चैव । दोट्ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलं
बोधि बुज्झिज्जा । तं जहा—आरंभे चैव परिग्गहे चैव ॥ (स्था. २ टा. १उ.)इति

“ पूयाए कायवहो पडिक्कुट्टो सो उ कि तु जिणपूया । सम्मत्तसुद्धिहेउं,
त्ति भावणीया उ गिरवज्जा ॥ १ ॥ इस प्रकार की उत्सूत्र पररूपणा द्वारा
अम में ही डालते रहते हैं। हमें तो बुद्धि पर तरस आता है कि वे क्यों
नहीं इस सिद्धान्त को समझने की चेष्टा करते हैं कि—“ दोट्ठाणाइं अप-
रियाणित्ता आया णो केवल्लिपणत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए । तं जहा-
आरंभे चैव परिग्गहे चैव । दोट्ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवल-
बोधि बुज्झिज्जा तं जहा—आरंभे चैव परिग्गहे चैव (स्था. २ टा. १ उ.)
ये दो धनधान्य आदि रूप परिग्रह और प्राणातिपात आदि रूप आरंभ
स्थान अनर्थ के कारण है । जब तक आत्मा ज्ञ परिज्ञा से इन्हें जान कर
और प्रत्याख्यान परिज्ञा से इनका परित्याग नहीं कर देनी है तब वह
ब्रह्मदत्त की तरह केवल्लि द्वारा कथित धर्म के सुननेका अधिकारी नहीं
हो सकती है और न इन दोनों के त्याग किये बिना वक्र सम्यक्त्व को

वहो पडिक्कुट्टो सोउ किं तु जिणपूया । सम्मत्तसुद्धिहेउं, त्ति भावणीया उ गिर-
वज्जा ॥ १ ॥ आ आतनी उत्सूत्र प्रश्नणा वडे अममां व नाणी राणे छे,
अमने तो तेमनी बुद्धि उपर दया आवे छे डे तेयो आ सिद्धांतने सम-
भववानी कोशिश केम नहिं करता डोय ? डेभडे “ दो ट्ठाणाइं अपरियाणित्ता
आयाणो केवल्लिपणत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए । तं जहा—आरंभे चैव परिग्गहे
चैव । दो ट्ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवल्लिबोधिं बुज्झिज्जा तं जहा-
आरंभे चैव परिग्गहे चैव (स्था० २ टा० १ उ०) आ ये धन धान्य वगेरे
इप परिग्रह अने प्राणातिपात वगेरे इप आरंभ स्थान अनर्थना कारण छे,
न्यां सुधी आत्मा ज्ञ परिज्ञा वडे अमने आत्मीने अने प्रत्याख्यान परिज्ञावडे
अमने परित्याग करती नथी त्यां सुधी ते ब्रह्मदत्तनी जेम केवल्लिवडे कथित
धर्मने सांभलवा माटे अधिकारी (योग्य यात्र) गणुध शके तेम नथी, अने
ते अनेने न्यां सुधी त्याग करे नहिं त्यां सुधी ते सम्यक्त्व भेजववा योग्य

‘दो द्वाणां’ द्वे स्थाने=द्वे दस्तुनी ‘अपरियाणित्ता’ अपरिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ‘एतावारम्मपरिग्रहाचनर्थाय’ इत्यविज्ञाय अलं ममाभ्यामिति परिहारामिषुख्य-द्वारेण प्रत्याख्यानपरिज्ञया अप्रत्याख्याय च ब्रह्मदत्तवत् तयोः मृत्तः, ‘आया’ आत्मा=जीवः, नो केवलिज्ञप्तं=जिनोक्तं धर्मं लभेत श्रवणतया-श्रवणभावेन श्रोतुमित्यर्थः । जैनधर्मश्रवणानहो भवतीति भावः । तद् यथा आरम्भः-प्राणा-तिपातादिरूपः, पापस्थानम् परिग्रहः-धनधान्यादिसंग्रहः ।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय - ज्ञपरिज्ञयाऽनर्थकारणमज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया अप्रत्याख्याय च तत्र प्रवृत्तः ‘आया’ आत्मा-जीवः केवलं बोधिं=अर्थात् सम्यक्त्वं न बुष्येत=न प्राप्नुयादित्यर्थः ।

पाने के भी योग्य बन सकती है ” यह सूत्र हमें यह शिक्षा देता है कि अलां जिस परिग्रह और आरंभयुक्त आत्मामें केवल प्रज्ञप्त धर्म सुनने तक की भी योग्यता नहीं है और न जिसमें सम्यक्त्व का अनुभव है, है उस आत्मा में “ वह प्रतिमा सम्यक्त्व की शुद्धि का कारण होता ” इस प्रकार की मान्यता आकाश के फूल के समान एक कल्पना मात्र ही है । अतः यह सिद्धान्त निश्चित होता है कि इस प्रतिमापूजन में न तो धर्म के कोई भौतिकतत्त्व का समावेश है और न धर्म का कोई अंग ही है । यह न तो धर्म का आलम्बनरूप है और न धर्म के लक्षण से ही युक्त है । फिर भी इसे धर्म पद का वाच्य मानना केवल स्पष्ट रूप से उत्सृष्ट प्ररूपणामात्र है इस प्रकार शास्त्रीयज्यादा के विरुद्ध इस प्रतिमा पूजन का उपदेश देने वाले तथा प्रतिमापूजन कराने वाले उप-

पनी शके तेम नथी. “आ सूत्र अमने आ नतनी ललामणु करे छे डे डे वे परिग्रह अने आरंभयुक्त आत्मांमां डेवकि प्रज्ञत्व धर्म सांख्यता सुधीनी पणु योग्यता नथी अने जेमां सम्यक्त्वनी अनुभूति पणु नथी ते आत्मांमां “ ते प्रतिमा सम्यक्त्वनी शुद्धिं कुं कारणु डोय छे ” आ नतनी मान्यता आकाशना पुपनी जेम जेक जोटी कल्पना मात्र न नथी तो जीवुं शुं छे ? जेटला भाटे जे सिद्धान्त निश्चित थाय छे डे आ प्रतिमापूजनमां धर्मना न केरुं भौतिक तत्त्वानो समावेश छे अने न तो ते धर्मनुं केरुं पणु जेक अंग छे, आ धर्मनुं आलम्बनरूप नथी अने धर्मना लक्षणथी युक्त पणु नथी. छतां य तेने धर्मपदवाच्य माननुं ते स्पष्ट रीते उत्सृष्ट प्ररूपणु मात्र छे. आ रीते शास्त्री मर्यादाथी विपरीत आ प्रतिमा पूजननो उपदेश आपनाराओ तेमन प्रतिमा

યત્ર કેવલિપ્રજ્ઞધર્મસ્ય શ્રવણાયાપિ યોગ્યતા ન ભવતિ, સમ્યક્ત્વસ્ય ચ નાનુ-
ભવઃ, તત્ર સમ્યક્ત્વશુદ્ધિહેતુત્વં ગગનકુસુમવન્મનોવિકલપમાત્રમ્ । યસ્ય પ્રતિમા-
પૂજનસ્ય નાસ્તિ ધર્મશૂલ્ત્વં ન ચાસ્તિ ધર્માજ્ઞત્વં, નાપિ ધર્માલમ્બનત્વં, ન ચાપિ
ધર્મલક્ષણસમન્વિતં, તસ્ય ધર્મપદવાચ્યત્વકલપને — સુસ્પષ્ટસેવોત્સૂત્રપરૂપણમ્ ।
ભગવતાઽર્હતા-પ્રવચને અનુપદિષ્ટસ્ય પ્રતિમાપૂજનસ્યોપદેશકરણેન ભ્રાન્તિ જનયતાં
પ્રતિમાપૂજનં કારયતાં ચ કા ગતિઃ સ્યાદિતિ સમાલોચનીયં સુધીભિઃ । અપરં ચ—

દોહિં ઠાણેહિં આયા કેવલિપન્નત્તં ધર્મમ્ લભેજ્જા સવળયાણ તં જહા સ્વણ
ચેવ ઉવંસમેણ ચેવ ઇવં જાવ મળપજ્જવનાણં ઉપ્પાહેજ્જા તં જહા—સ્વણ ચેવ ઉવ-
સમેણ ચેવ । (સ્થા૦ ૨ ઠા૦ ૪ ૩૦)

“સ્વણ ચેવ” इति ज्ञानावरणीयस्य दर्शनमोहनीयस्य च कर्मण उदय-
प्राप्तस्य क्षयेण, अनुदितस्य चोपशमेन=क्षयोपशमेनेत्यर्थः । अत्र पदद्वयेन क्षयोप-
शमरूपोऽर्थो गृह्यते । यावत् करणात्—“केवलं बोहिं बुझेज्जा ।”

केवलिप्रज्ञधर्मस्य श्रवणं तथा सम्यक्त्वं च ज्ञानावरणीयस्य दर्शनमोहनीयस्य
च कर्मणः क्षयोपशमादेव लभ्यते इति भगवता प्रतिबोधितम् । इदमत्रबोध्यम्
नहि रुधिरलिप्तवस्त्रस्य रुधिरं प्रक्षालने शुद्धिर्भवति प्रत्युत मलिनतरत्वमेव,

देशक तथा प्रेरक की वास्तविक वस्तुस्थिति से जनता को अंधकार में
रखने के कारण क्या गति होगी यह स्वयं बुद्धिमानों को विचार ने
जैसी बात है ।

अपरं च—दोहिं ठाणेहिं आयाके वलिपन्नत्तं धर्मम लभेज्जा सवण-
याए-तं जहा इत्यादि सूत्र—

इसका भावार्थ यह है—जीव केवलियों द्वारा प्रज्ञ धर्म का श्रवण
तथा सम्यक्त्व का लाभ ज्ञानावरणीय और दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय
और क्षयोपशम से ही करता है प्रतिमापूजन से नहीं । जिस प्रकार
रुधिर से झेले वस्त्र की सफाई रुधिर में ही धोने से नहीं होती, उसी

પૂજન કરાવનારા ઉપદેશકો પ્રેરકરૂપ થઇને યથાર્થ વસ્તુસ્થિતિથી સમાજને
અધારામાં રાખે છે તે બદલ તેમની શી દશા થશે તે વિદ્વાનો સમજી શકે છે.

અને બીજી પાણ કે—દોહિં ઠાણેહિં આયા કેવલિપન્નત્તં ધર્મમ્ લભેજ્જા
સવળયાણ-તં જહા—ઈત્યાદિ સૂત્ર—

આનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે કે કેવલિઓ વડે પ્રજ્ઞ ધર્મનું શ્રવણ
તેમજ સમ્યક્ત્વનો લાભ જીવ જ્ઞાનાવરણીય અને દર્શન મોહનીય કર્યના ક્ષય
અને ક્ષયોપશમથી કરે છે. પ્રતિમાપૂજનથી નહિ. જેમ લોહીથી ખરડાયેલા
વસ્ત્રની સાફસૂદી લોહી વડે ધોવાથી થતી નથી તેમ જ સમ્યક્ત્વની શુદ્ધિ
અથવા તે કર્મોના વિનાશ પ્રતિમાપૂજનથી થતા નથી બદકે જેમ તે લોહીથી

તથા-સમ્યક્ત્વશુદ્ધચર્યે કર્મક્ષયાર્થં ચ પ્રતિમાપૂજને પ્રવૃત્તસ્ય જીવસ્ય ષટ્કાયો-
પમર્દનસાધ્યપૂજયા જ્ઞાનાવરણીયસ્ય દર્શનમોહનીયસ્ય ચ કર્મણો વૃદ્ધૌ સત્યાં સમ્ય-
ક્ત્વસ્ય કેવલિ પ્રજ્ઞધર્મસ્યાઽપિ પ્રાપ્તિઃકાલત્રયેઽપિ ન સંભવતિ કિંપુનઃ કર્મક્ષયાશા
સમ્યક્ત્વયાત્મનઃ ક્ષાયોપશમિક્કો ભાવઃ । પ્રતિમા તુ ન ક્ષયોપશમસ્વરૂપા, ન
ચાપિ ક્ષયોપશમહેતુઃ, જ્ઞાનાવરણીયદર્શનમોહનીયકર્મનિર્જરાજનકૃત્વામાવાત્,
દેશતઃ કર્મક્ષયો હિ નિર્જરા તાં પ્રતિ તપસ એવ કારણત્વાત્ । ઉક્તં ચોત્તરાધ્યયનમૂત્રે-

પ્રકાર સમ્યક્ત્વ કી શુદ્ધિ અથવા કર્મોં કા વિનાશ પ્રતિમાપૂજનસે નહીં
હોતા હૈ, પ્રત્યુત જિસ પ્રકાર વહ કષિરયુક્ત વલ્લરુધિર સે સાફ કિયે
જાને પર અધિક મલિન હો જાતા હૈ ઊસી પ્રકાર ષટ્કાય કી વિરાધના
સાધ્ય ઇસ પ્રતિમાપૂજન મેં લવલીન જીવ સી જ્ઞાનાવરણીય ઔર દર્શન
મોહનીય કર્મ કી વૃદ્ધિ કરતા હુઆ અધિકાધિક મલિન હોતા રહતા હૈ
વહ કમી મી ઇનકી વૃદ્ધિસેં સમ્યક્ત્વ ઔર કેવલિ પ્રજ્ઞ ધર્મ કા પાને
વાલા નહીં બન સકતા હૈ । ઇસલિયે કર્મોં કે ક્ષય કરને કી આશા સે
પ્રતિમાપૂજન મેં લવલીન મનુષ્ય અપને કર્મોં કા ઇસ કાર્યસે ક્ષય કરતા
હૈ યહ એક દુરાશામાત્ર હૈ અરે ! જય ઇસ કાર્ય સે જીવ સમ્યક્ત્વ ઔર
કેવલિપ્રજ્ઞ ધર્મ તક કે મી લાભ સે સદા વંચિત રહતા હૈ તો ઊસસે
ફિર કર્મ ક્ષય માનના યહ કોરી કલ્પના માત્ર હી હૈ । સમ્યક્ત્વ યહ
જીવ કા ક્ષાયોપશમિક ભાવ હૈ । પ્રતિમા ન ક્ષયોપશમ સ્વરૂપ હૈ ઔર
ન ઊસ ક્ષયોપશમ મેં કારણ રૂપ હી હૈ । કારણ કિ ઇસ સે જ્ઞાનાવર-
ણીય ઔર દર્શનમોહનીય કર્મ કી નિર્જરા નહીં હોતી હૈ । કર્મોં કા

ખરડાયેલું વસ્ત્ર લોહીવડે સાફ કરવાથી મલિન થઈ બચ છે તેમજ ષટ્કાયની
વિરાધના સાધ્ય આ પ્રતિમાપૂજનમાં તદ્દલીન થયેલો જીવ પણ જ્ઞાનાવરણીય
દર્શન મોહનીય કર્મની વૃદ્ધિ કરતો કરતોવધારે વધારે મલિન થતો બચ છે. તે
કોઈ પણ સમયે એમની વૃદ્ધિમાં સમ્યક્ત્વ અને કેવલિપ્રજ્ઞ ધર્મને મેળવી
શકનાર થઈ શકતો નથી. એટલા માટે કર્મોને ક્ષય કરવાની આશાથી પ્રતિમા
પૂજનમાં તદ્દલીન માણસ ચોતાના કર્મોને આ કાર્ય (પ્રતિમાપૂજન) થી ક્ષય
કરવા માંગે છે તે ક્ષત દુરાશા માત્ર છે. જ્યારે આ કાર્યથી જીવ સમ્યક્ત્વ
અને કેવલિપ્રજ્ઞ ધર્મના લાભથી પણ સદા ફર રહે છે ત્યારે તેનાથી કર્મ-
ક્ષયની આશા રાખવી તે ખોટી કલ્પના માત્ર જ છે. સમ્યક્ત્વ જીવનો ક્ષયો-
પશમિક ભાવ છે. હવે ન તો પ્રતિમા ક્ષયોપશમ સ્વરૂપ છે અને ન તે ક્ષયો-
પશમમાં કારણ રૂપ છે. કેમકે એનાથી જ્ઞાનાવરણીય અને દર્શનમોહનીય

“भवकोडीसंचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ ।” (अ ३०, गा ६) तत्त्वार्थ-
सूत्रेऽपि—

“तपसा निर्जरा च” (अ० ९ सू० ४ ।

अत्र चकारः संवरसमुच्चयार्थः । समित्तियुत्तिधर्मानुपेक्षापरीषद्व्ययचारित्रैः
संवरो भवति, तपसा तु निर्जरा संवरोऽपि चेति भावः सम्यक्त्वं नाम सम्यग्दर्शनं,
तच्च स्थानाङ्गसूत्रम्— (स्थान० २३० १) द्विविधं प्रोक्तं । निसर्गसम्यग्दर्शनम्
अभिगमसम्यग्दर्शनं चेति । निसर्गतः—स्वभावतः—न परोपदेशतो यदुत्पद्यते,
तन्निसर्गसम्यग्दर्शनम् । अभिगमात्—सद्गुरुरूपदेशतो यदुत्पद्यते, तदभिगम-
सम्यग्दर्शनम् ।

एक देश क्षय होना निर्जरा है । इस निर्जरा के प्रति कारणता तो तप
में बतलाई गई है । देखो उत्तराध्ययन सूत्र में यही बात कही है—

“भवकोडी संचियं कम्मं तपसा निज्जरिज्जइ” करोड़ों भवों में
संचित कर्मों की जीव तप से निर्जरा कर देता है । तत्त्वार्थ सूत्र में भी
“तपसा निर्जरा च” इस सूत्र द्वारा यही बात कही गई है—तप से
निर्जरा और संवर दोनों होते हैं । सूत्रस्थ “च” शब्द से संवर का
ग्रहण हुआ है ।

भावार्थ—इसका यही है कि पांच समिति, ३ युक्ति, १० यतिधर्म
१२, अनुपेक्षा, २२ परीषदों का जीनना एवं ५ प्रकार का चारित्र्य पालना—
इनसे संवर होता है और तप से संवर एवं निर्जरा दोनों ही होते हैं ।
स्थानाङ्गसूत्र में सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है—१ निसर्ग

कर्मों का निर्जरा शक्य है तेम नथी. कर्मों का ओकदेशने क्षय धवो ते निर्जरा
प्रत्ये क्षरणाता तो तपसां अताववासां आवी छे, अथवा उत्तराध्ययन सूत्रमां
ओ च वात स्पष्ट करी छे:—

“भवकोडी संचियं कम्मं तपसा निज्जरिज्जइ” करोड़ों लवोमां संचित
कर्मोंनी निर्जरा एव तपशी करी नाये छे. तत्त्वार्थ सूत्रमां पण्य “तपसा
निर्जरा च” आ सूत्रपडे ओ च वात कडेवामां आवी छे के तपशी निर्जरा
तेमच संवर अने थाय छे. “सूत्रमां आवेत्त “च” शब्दशी संवरतुं अहं
करवामां आण्यु छे.

भावार्थ—आने आ प्रमाणे छे के पांच समिति, ३ युक्ति, १०
यतिधर्म, १२ अनुपेक्षा, २२ परीषदोंने एतवा अने ५ प्रकारना चारित्र्य
पालन करतुं आ अर्थाधी संवर थाय छे. अने तपशी संवर अने निर्जरा
अने थाय छे. स्थानांगसूत्रमां सम्यग्दर्शन दो प्रकारतुं अताववासां आयुं०

केचित्तु—अज्ञाभिगमशब्दार्थो निमित्तमपि, तच्च प्रतिमादि इति वदन्ति, तन्मोहनीयकर्मोदयविलम्बित्यु — अभिगमसम्यग्दर्शने हि प्रतिमानि-
मित्तकत्वं न संभवति श्रवणादिना शयोपशमहेतौरेव सद्गुरुरूपदेशस्यात्राभिगमन-
और दूसरा अभिगम । जो सम्पद्दर्शन जीवों को स्वभाव से ही होता है । सद्गुरु के उपदेश से जो जीव को प्राप्त होता है वह अभिगम सम्यग्दर्शन है । निसर्ग और अभिगम में अन्तरंग कारणदर्शन मोहनीय कर्म का क्षयोपशम आदि समान हैं परन्तु इसके होने पर भी जो जीव को सद्गुरु के उपदेश से प्राप्त होता है वह अभिगम और जो इसके बिना प्राप्त होता है वह निसर्ग सम्यग्दर्शन है कोई २ व्यक्ति अभिगम शब्द का अर्थ निमित्त परक भी करते हैं और वह निमित्त “प्रतिमा आदि हैं” ऐसा मानते हैं । परन्तु यह उनका कथन केवल मोह कर्म का ही विलास है क्यों कि अभिगम सम्यग्दर्शन में प्रतिमा रूप निमित्त कला संभवित नहीं होती है—वहाँ तो श्रवण आदि से दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम के कारणरूप सद्गुरु के उपदेश का ही अभिगम शब्द से ग्रहण हुआ है । यदि सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में वह कारण होता तो उस का ग्रहण निमित्तरूप से होता परन्तु ऐसा तो होना नहीं है—कारण कि वह अचेतन है उस से प्रवचन के अर्थ का उपदेश होता नहीं है । प्रवचन के अर्थ के उपदेश करनेविना श्रोताओं को प्रवचन का अर्थ ज्ञान कैसे हो सकता है ? अर्थज्ञान हुए बिना

छे. १. निसर्गं अने २ अभिगम. सद्गुरुना उपदेशशी नहि पणु एवने स्वभावशी ७ ७ सम्यग्दर्शन थाय छे ते निसर्गं सम्यग्दर्शन छे. सद्गुरुना उपदेशशी ७ एवने सम्यग्दर्शन प्राप्त थाय छे ते अभिगम सम्यग्दर्शन छे. निसर्गं अने अभिगममां अतरंग कारण दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशम वगेरे समान ७ छे पणु एवना होवा छताय एवने ७ सद्गुरुना उपदेशशी भणे छे ते अभिगम अने ७ एवना वगर भणे ते निसर्गं सम्यग्दर्शन छे. केशकीक व्यक्तिसो अभिगम शब्दने अर्थ निमित्त परक पणु करे छे अने ते निमित्त “प्रतिमा वगेरे छे” एवुं माने छे. पणु एवुं कथन तेमना इकत मोह कर्मना ७ विलास छे केमके अभिगम सम्यग्दर्शनमां प्रतिमा रूप निमित्तकता संभवित थई शके तेम नही. त्यां तो श्रवण वगेरेशी दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशमना कारणरूप सद्गुरुना उपदेशशी ७ अभिगम शब्दशी ग्रहण थयुं छे ७ सम्यग्दर्शननी उत्पत्तिमां ते कारण छैत तो तेनुं ग्रहण निमित्त रूपशी थात पणु एवुं श्रुं नथी केमके ते अचेतन छे तेमानी प्रवचनना अर्थना उपदेश थई शकते नथी, प्रवचनना अर्थना उपदेश संभवता विना

શબ્દને ગ્રહણાત્ સમ્યક્ત્વં હિ તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાનરૂપં, તત્ત્વ પ્રવચનાર્થજ્ઞાનાદેવ, પ્રવચનાર્થજ્ઞાનં ચ નિર્જરામૂલકં, નિર્જરા ચ વિનયવૈયાટૃત્યસ્વાધ્યાયરૂપતપોવિશેષેભ્યઃ, તત્ર ચ સદ્ગુરુપદેશઃ કારણં, ન તુ પ્રતિમા । સો હિ સદ્ગુરુવત્ પ્રવચનાર્થમુપદેષ્ટુમસમર્થા, તસ્યા જહત્વાત્, । નાપિ સા નિર્જરાહેતુઃ, વિનયાદિતપોરૂપ-

કર્મોં કી નિર્જરા નહીં હો સકતીં હૈ । નિર્જરા કૈ અભાવ મૈં દર્શન મોહનીય કર્મ કૈ ક્ષય ઉપશમ આદિ રૂપ સમ્યક્ત્વ કી ઉત્પત્તિ સંભવિત નહીં હૈ । અતઃ અભિગમ સમ્યગ્દર્શન મૈં સદ્ગુરુ કા ઉપદેશ હી નિમિત્ત માના ગયા હૈ ઓર ઉસીકા ગ્રહણ વહાં પર ઉસ શબ્દ સે હુઆ હૈ પ્રતિમા કા નહીં-હસી કા સુલાશા “ સમ્યક્ત્વં હિ તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાનરૂપં, તત્ત્વ પ્રવચનાર્થજ્ઞાનાદેવ, પ્રવચનાર્થજ્ઞાનં ચ નિર્જરામૂલકં - નિર્જરા ચ વિનય વૈયાટૃત્યસ્વાધ્યાયરૂપતપોવિશેષેભ્યઃ, તત્ર ચ સદ્ગુરુપદેશઃ કારણં ન તુ પ્રતિમા ” અર્થે ઇન પંક્તિયોં મૈં લિખા ગયા હૈ । તત્ત્વાર્થ કા શ્રદ્ધાન કરના સમ્યક્ત્વ હૈ । વહ શ્રદ્ધાન પ્રવચન કૈ અર્થજ્ઞાન સે હી હોતા હૈ ઓર ઉસ અર્થજ્ઞાનકા મૂલ કારણ નિર્જરા માની ગઈ હૈ અપના પ્રતિપક્ષી કર્મોં કી નિર્જરા હુણ વિના તત્ત્વજ્ઞાન હો હી નહીં સકતા હૈ વિનય, વૈયાટૃત્ય, સ્વાધ્યાયરૂપતપ વિશેષ નિર્જરા કૈ કારણ હૈં તપ કી આરા ધના મૈં સદ્ગુરુ કા ઉપદેશ કારણ હૈ ઇસ પ્રકાર પરમ્પરા સંબંધ સે અભિગમ સમ્યગ્દર્શન મૈં સદ્ગુરુ કા ઉપદેશ હી નિમિત્તરૂપ સે ગૃહીત હુઆ હૈ પ્રતિમા નહીં-કારણ વહ સદ્ગુરુ કૈ ઉપદેશ કી તરહ પ્રવચન

શ્રોતાઓને પ્રવચનનું અર્થજ્ઞાન કેવી રીતે થઈ શકે? અર્થજ્ઞાન વગર કર્મોની નિર્જરા પણ થઈ શકતી નથી. નિર્જરા વિના દર્શનમોહનીય કર્મોના ક્ષય ઉપશમ વગેરે રૂપ સમ્યક્ત્વની ઉત્પત્તિ સંભવિત નથી એટલા માટે અભિગમ સમ્યગ્દર્શનમાં સદ્ગુરુનો ઉપદેશ જ નિમિત્તરૂપે માનવામાં આવ્યો છે. અને તે શબ્દથી તેનું જ અહીં થયું છે પ્રતિમાનું નહિ. આનું જ સ્પષ્ટીકરણ “ સમ્યક્ત્વં હિ તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાનરૂપં, તત્ત્વ પ્રવચનાર્થજ્ઞાનાદેવ, પ્રવચનાર્થજ્ઞાનં નિર્જરામૂલકં નિર્જરા ચ વિનયવૈયાટૃત્યસ્વાધ્યાયરૂપતપોવિશેષેભ્યઃ, તત્ર ચ સદ્ગુરુપદેશઃ કારણં ન તુ પ્રતિમા ” આનો અર્થ આ પ્રમાણે છે, કે તે તત્ત્વાર્થનું શ્રદ્ધાન કરવું તે સમ્યક્ત્વ છે. તે શ્રદ્ધાન પ્રવચના અર્થજ્ઞાનનું મૂળ કારણ નિર્જરા જ માનવામાં આવે છે. યોતાના પ્રતિપક્ષી કર્મોની નિર્જરા થયા વગર તત્ત્વજ્ઞાન થઈ જ શકતું નથી. વિનય, વૈયાટૃત્ય, સ્વાધ્યાય રૂપ તપ વિશેષ નિર્જરાના કારણ છે. તપની આરાધનામાં સદ્ગુરુનો ઉપદેશ કારણ છે. આ રીતે પરમ્પરા સંબંધથી અભિગમ સમ્યગ્દર્શનમાં સદ્ગુરુનો ઉપદેશ જ નિમિત્ત રૂપમાં ગૃહીત થયો છે. નહિકે પ્રતિમા. કેમકે તે સદ્ગુરુના ઉપદેશની જેમ

त्वाभावात्, कथं तद्दि सम्यक्त्वं प्रतिमायाः संभवति ? कथमपि नहि । अत एवो-
पदेशस्य सम्यक्त्वं प्रति कारणत्वं प्रदर्शयन् भगवानवादीत्—उत्तराध्ययनसूत्रे-
(अ० २८ गा० १५)

“ तद्विद्याणं तु भावाणं सन्भावे उवएसणं ।

भावेणं सद्वहंतस्स सम्मत्तं तं विद्याहियं ॥ इति ।

छाया—तथ्यानां तु भावानां सद्भाव उपदेशनम् ।

भावेन श्रद्धधतः सम्यक्त्वं तद् व्याख्यातम् ॥

जीवाजीवादिपदार्थानां सद्भावे यद् उपदेशनं=गुरोरुपदेशः, तद् भावेन-
अन्तःकरणेन श्रद्धधत मोहनीयकर्मणः क्षयेण क्षयोपशमेन वा याऽभिरुचिरूपपद्यते,
तद् सम्यक्त्वं तीर्थकरैर्व्याख्यातम् ।

के अर्थ का उपदेश करने में अचेतन होने से सर्वथा असमर्थ है कर्मों
की निर्जरा में भी वह हेतु रूप नहीं होती है—कारण कि कर्मों की
निर्जरा के हेतु तो विनयादिक तप ही खाने गये हैं, प्रतिमा विनयादि
तप स्वरूप नहीं है । अतः प्रतिमा में सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारणता
किसी भी प्रकार संभवित नहीं होती है—उत्तराध्ययन सूत्र में सद्गुरु
के उपदेश को सम्यक्त्व के प्रति कारण प्रकट करते हुए सिद्धान्तकार
कहते हैं कि—तद्विद्याणं तु भावाणं सन्भावे उवएसणं ।

भावेणं सद्वहंतस्स सम्मत्तं तं विद्याहियं ॥ इति ॥

जीव और अजीव आदि पदार्थों का सद्गुरु ने जो यथावस्थित
स्वरूप प्रकट किया है, उसका उसीरूप से अन्तःकरण से श्रद्धान
करने वाले प्राणी के दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम

प्रवचनना अधर्ना उपदेश करवाभां अचेतन डोवा पहल स'पुष्प'पष्पे असमर्थ
छे. कारणु के कर्मोनी निर्जरांना डेतु तो विनय वगेरे तपोल मानवाभां आल्या
छे. प्रतिमा विनय वगेरे तप स्वरूप नहीं, झेटला भाटे प्रतिमाभां सम्यक्त्वनी
उत्पत्तिभां कारणता डेअ' पष्प रीते संलनी शके तेम नहीं उत्तराध्ययन सूत्रभां
सद्गुरुंना उपदेशने सम्यक्त्वना प्रति कारणु अतापतां सिद्धान्तकार कडे छे—

तद्विद्याणं तु भावाणं सन्भावे उवएसणं ।

भावेणं सद्वहंतस्स सम्मत्तं तं विद्याहियं ॥ इति ॥

एव अने अएव वगेरे पदार्थोंनुं ले यथावस्थित स्वरूप सद्गुरुंके प्रकट
कथुं छे तेनुं ते इपथी अंतःकरणथी श्रद्धा न करनारा आणीना दर्शन मोह-
नीय कर्मना क्षय के क्षयोपशमथी ले इति उत्पन्न थाय छे, तेनुं नाम न

યદિ પ્રતિમાઽપિ સમ્યક્ત્વલાભે નિમિત્તં સ્યાત્તર્હિ ભગવતા સ્થાનાજ્ઞસૂત્રે પ્રતિમાનિમિત્તકત્વેન સમ્યગ્દર્શનસ્ય તૃતીયભેદોઽપિ વાચ્યઃ, તસ્યાનુક્તત્વાત્ પ્રતિમાયાઃ સમ્યક્ત્વલાભે નિમિત્તત્વં નાસ્તીતિ વોધ્યમ્ । કિં ચ—

પ્રાણાતિપાતસાધ્યાયાઃ પ્રતિમાપૂજાયાઃ સમ્યક્ત્વશુદ્ધિહેતુત્વં વદન્તઃ સ્વ-
દુર્ગતિં ન પચ્યન્તિ મોહાન્ધાઃ, સ્થાનાજ્ઞસૂત્રે હિ પ્રાણાતિપાતસ્ય દુર્ગતિહેતુત્વં
પ્રદર્શિતમ્—

પંચર્હિ ઠાળેર્હિ જીવા દુર્ગમ્ ગચ્છતિ । તં તહા—પ્રાણાદ્વાણં, મુસાવાણં,
અદિન્નાદાણેણં, મેહુણેણં, પરિગ્ગહેણં ” ઇતિ । (સ્થા. ૫ ઠા. ૧ ડ.)

સે જો ઠુચિ ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઉસી કા નામ સમ્યગ્દર્શન હૈ એસા તીર્થકર પ્રભુને કહા હૈ યદિ સમ્યક્ત્વ કી પ્રાપ્તિ મેં પ્રતિમા નિમિત્ત હોતી તો સ્થાનાજ્ઞ સૂત્ર મેં જો “ દોર્હિ ઠાળેર્હિ આયા કેવલિ પન્નત્તં ધર્મં લભેજ્ઞા સ્વળવાય ” એસા કહા હૈ વહાં યદિ સમ્યક્ત્વ કે લાભ મેં પ્રતિમા મી નિમિત્ત હોતી તો ઉસકે નિમિત્ત હોને સે દો સ્થાનોં કી જગહ સમ્યક્ત્વ કી પ્રાપ્તિ મેં ત્રીન સ્થાનોં કા કથન સૂત્રકાર કો કરનાં ચાહિયે થા પરન્તુ વહાં દો સ્થાનોં કે અતિરિક્ત તૃતીયસ્થાન કા કથન હુઓં નહીં હૈ, અતઃ હસસે યહ સિદ્ધાન્ત નિશ્ચિત હોતા હૈ કિ સમ્યક્ત્વ કે લાભ મેં પ્રતિમા નિમિત્ત નહીં હૈ । ફિર મી પ્રાણાતિપાત દ્વારા સાધ્ય પ્રતિમા પૂજન કો મોહ કે આવેશ સે ઝંચે હુએ વ્યક્તિ સમ્યક્ત્વ કી શુદ્ધિ કા કારણ બત-
લાતે હુએ અપની દુર્ગતિ કા કુહ મી ચ્યાલ નહીં કરતે હૈં યહી એક બડે આશ્ચર્ય કી બાત હૈ દેચો પ્રાણાતિપાત કો સ્થાનાજ્ઞ સૂત્ર મેં દુર્ગતિ

સમ્યગ્દર્શન છે, આમ તીર્થકર પ્રભુએ કહ્યું છે. જો સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિમાં નિમિત્ત રૂપે ઠોલ તો સ્થાનાંગ-સૂત્રમાં જે “ દોર્હિ ઠાળેર્હિ આયા કેવલિપન્નત્તં ધર્મં લભેજ્ઞા સ્વળવાય ” આ પ્રમાણે કહ્યું છે, ત્યાં જો સમ્યક્ત્વના લાભમાં પ્રતિમા પણ નિમિત્ત થઈ શકત તો તેને નિમિત્ત રૂપે થવા અદલ જે સ્થાનોની જગ્યાએ સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિમાં ત્રણ સ્થાનોનું કથન સૂત્રકારે કરવું જોઈતું હતું, પણ ત્યાં તો એ સ્થાનો સિવાય ત્રીજા સ્થાનનું કથન થયું જ નથી. એથી આ સિદ્ધાન્તની ખાત્રી થાય છે કે સમ્યક્ત્વના લાભમાં પ્રતિમા નિમિત્ત નથી. છતાં જે પ્રાણાતિપાત વડે સાધ્ય પ્રતિમા પૂજનને અસાનની નિદ્રામાં પડેલી વ્યક્તિએ સમ્યક્ત્વની શુદ્ધિનું કારણ બતાવતી પોતાની દુરવસ્થા તરફ સહેજ પણ જોતી નથી તે એક ખડું નવાઈ જેવી વાત છે. બુદ્ધિએ પ્રાણાતિપાતને સ્થાનાંગસૂત્રમાં દુર્ગતિનું જ કારણ બતાવવામાં આવ્યું છે— (પંચર્હિ ઠાળેર્હિ

किं च—यथा लोके घृगधानां सुवर्णमात्रसाम्येना शुद्धसुवर्णोऽपि प्रवृत्तिमवलोक्य शुद्धशुद्धपरीक्षणाय त्रिचक्षणैः कपच्छेदतापा आद्रियन्ते, तथाऽत्रापि परीक्षणीये श्रुतचारित्रलक्षणे धर्मे कषादयः समादरणीया भवन्ति ।

प्राणिबधादीनां पापस्थानानां यस्तु शास्त्रे प्रतिषेधः, तथा स्वाध्यायध्यानादीनां यश्च तत्र विधिः स धर्मरूपः । प्राणिबधसंपर्कवति पूजने तु धर्मत्वबुद्धिसौहवशादेव भवति, शास्त्रे प्राणिबधस्य प्रतिषेधात् । अतस्तत्र नास्ति कषशुद्धिः ।

का ही कारण कहा है “पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुग्गहं गच्छंति—तं जहा—पाणाइवाएणं, सुसावाएणं, अदिजादाणेणं, मेहुणेणं, परिग्गहेणं इति । (स्या. ५ ठा. १ उ.) इन पांचो स्थानों से जीव दुर्गति के पात्र बनते हैं—प्राणातिपात से, सुखावाद् से, अदस्तादान से मैथुन से और परिग्रह से । किञ्च—लोक में जिस में जिस प्रकार भोलेभाले व्यक्तियों की सुवर्णमात्र की समानता से अशुद्ध स्वर्ण में भी यह सच्चा सुवर्ण है इस प्रकारकी प्रवृत्ति को देखकर सुवर्णपरीक्षक जन उसके सम्यक्त्व और असम्यक्त्व परीक्षाके लिये कष छेद और तप रूप उपायों का अवलम्बन करते हैं उसी प्रकार परीक्षणीय इस श्रुतचारित्ररूप धर्म की परीक्षा के लिये सूत्रकारों ने कषादिक परीक्षा के साधनों का उपयोग किया है प्राणिबधादिक पापस्थानों का शास्त्र में जो निषेध का विधान हुआ है तथा स्वाध्याय एवं अध्ययन आदि का जो वहाँ पर विधान किया गया है यही धर्म का कष है पूजन में यह धर्म कष नहीं है क्योंकि वह प्राणि बध के संपर्क से दूषित है—अतः फिर भी जो उसमें धर्म

जीवा दुग्गहं गच्छंति—तं जहा—पाणाइवाएणं, सुसावाएणं, अदिजादाणेणं, मेहुणेणं परिग्गहेणं इति) (स्या. ५, ठा. १ उ.) आ पांचे स्थानोथी एव दुर्गतिने योग्य ठरे छे—प्राणातिपातथी, सुखावाहथी, अदस्तादानथी, मैथुनथी अने परिग्रहथी. अने भीण्डुं पणुं डे दोकमां जेम सोणा भाणुसोनी सुवणुंभात्रनी समानताथी अशुद्ध सुवणुंभां पणुं ‘आ सोणुं भइं छे,’ आ जतनी प्रवृत्ति नेधने सुवणुं परीक्षके तेना भरा—गोटाणी परीक्षा माटे कष, छेद अने ताप इप उपायोने आसरे ले छे तेमज परीक्षणीय आ श्रुतचरित्र इप धर्मनी परीक्षा माटे सूत्रकारोअे कष वगेरे परीक्षाना साधनेने उपायोग कथे छे. पाण्डि वध वगेरे पापस्थानोनुं शास्त्रमां जे निषेध इप विधान थयुं छे तेमज स्वाध्याय अने अध्ययन वगेरेनुं जे त्यां विधान करवामां आण्युं छे तेज धर्मनी कसोटी—कष छे पूजनमां आ धर्म कष नथी डेमडे ते प्राणिवधना संपर्कथी दूषित छे. छां य तेमां धर्मत्वनी शुद्धि साधवामां आवे छे ते इक

યત્ર વિધિઃ પ્રતિષેધશ્ચેતિ દ્વયં કદાચિત્ સ્વરૂપતો વૈપરીત્યં ન યાતિ, અર્થાત્-સ્વાધ્યાયધ્યાનાદૌ નિયમતઃ પ્રવૃત્ત્યા વિધિપરિશુદ્ધિઃ, તથા હિંસાદૌ નિયમતો નિવૃત્ત્યા પ્રતિષેધપરિશુદ્ધિર્ભવતિ, સ ધર્મચ્છેદ ઉચ્યતે । પ્રતિમાપૂજાયાં તુ નાસ્તિ ચ્છેદશુદ્ધિઃ, તસ્યાઃ ષટ્કાયોપમર્દનસાધ્યત્વેન પ્રતિષેધપરિશુદ્ધયભાવાત્ ।

પ્રવચને જીવાનીવાદીનાં તત્ત્વનાં યથાવસ્થિતસ્વરૂપનિરૂપણં મોક્ષસાધક મિત્યેવં નિશ્ચયસ્તાપશુદ્ધિઃ । યથા વહ્નોં તાપનેન સુવર્ણસ્ય યથાવસ્થિતસ્વરૂપાવિર્ભાવઃ તથા-પ્રવચનોક્તત્ત્વાનુસન્ધાનેન ધર્મસ્ય સ્વરૂપમાવિર્ભવતિ । અત્ર પ્રતિમાપૂજાયાં પ્રવચનોક્તસંવરનિર્જરાતત્ત્વલક્ષણાનાક્રાન્તત્વાન્નાસ્તિ તાપશુદ્ધિઃ ।

ત્વકી શુદ્ધિ હોતી હૈ વહ કેવલ મોહકા હી આવેશ હૈ । પ્રાણિવધ શાસ્ત્ર સે નિષિદ્ધ હૈ । જહાં પર વિધિ ઓર પ્રતિષેધ યે દોનોં કમીં મીં અપને સ્વરૂપ સે વિપરીતપને કો પ્રાંસ નહીંં હોતે હૈંં વહાં પર છેદ સે શુદ્ધિ માની જાતી હૈ જિસ પ્રકાર સ્વાધ્યાય ઓર અધ્યયન આદિ શુભ કાર્યોં મેં નિયમ સે શાસ્ત્ર મેં પ્રવૃત્તિ પ્રદર્શિત કી ગઈ હૈ ઓર હિંસાદિ કાર્યોં સે ઊસમેં નિયમ સે નિવૃત્તિ કહી ગઈ હૈ । પ્રતિમા પૂજન મેં યહ છેદ શુદ્ધિ નહીંં હૈ । ક્યોં કિ ઇસમેં પ્રતિષેધ સે પરિશુદ્ધિ કા અભાવ હૈ ઇસ કો કારણ યહ હૈ કિ વહ ષટ્કાય કે જીવોં કે ઘાત સે સાધ્યકાર્ય હૈ । પ્રવચન મેં જીવ ઓર અજીવ આદિ તત્ત્વોં કે યથાવસ્થિત સ્વરૂપ કા વર્ણન હી મોક્ષકા સાધક હૈ ઇસ પ્રકાર કા નિશ્ચય હી તાપ શુદ્ધિ હૈ । જિસ પ્રકાર અગ્નિ મેં તપાને સે સ્વર્ણ કા યથાવસ્થિત સ્વરૂપ પ્રકટ હોતા હૈ । ઊસી પ્રકાર પ્રવચન કથિત તત્ત્વોં કે અનુસન્ધાન સે ધર્મ કે સ્વરૂપ કા અવિર્ભાવ હોતા હૈ ઇસ પ્રતિમાપૂજન મેં ધર્મતત્ત્વકે અવિર્ભાવ કરને

અજ્ઞાનનો જ ઊભરો છે. પ્રાણિ વધ શાસ્ત્રનિષિદ્ધ છે. બ્યાં વિધિ અને પ્રતિષેધ આ અને કોઈ પણ વખતે પોતાના સ્વરૂપથી વિપરીતાવસ્થામાં પરિવર્તિત થતા નથી ત્યાં છેદથી શુદ્ધિ માનવામાં આવે છે જેમ સ્વાધ્યાય અને અધ્યયન વગેરે શુભ કાર્યોમાં નિયમથી શાસ્ત્રમાં પ્રવૃત્તિ ઘટાવવામાં આવી છે અને હિંસા વગેરે કાર્યોથી તેમાં નિયમથી નિવૃત્તિ ઘટાવવામાં આવી છે. પ્રતિમા પૂજનમાં આ છેદ શુદ્ધિ નથી કેમકે આમાં પ્રતિષેધથી પરિશુદ્ધિનો અભાવ છે. આનું કારણ આ પ્રમાણે છે કે તે ષટ્કાયના ભવોના ઘાતથી સાધ્ય કાર્ય છે. પ્રવચનમાં ભવ અને અભવ વગેરે તત્ત્વોના યથાવસ્થિત સ્વરૂપનું વર્ણન જ મોક્ષનું સાધક છે. આ જાતનો નિશ્ચય જ તાપ શુદ્ધિ છે. જેમ અગ્નિમાં તથા-વવાથી સોનાનું યથાવસ્થિત સ્વરૂપ પ્રકટ થાય છે તેમજ પ્રવચન કથિત તત્ત્વોના અનુસન્ધાનથી ધર્મના સ્વરૂપનો અવિર્ભાવ થાય છે. આ પ્રતિમા પૂજનમાં ધર્મ

एभिः कृपादिभिः परिशुद्धस्यैव धर्मत्वं संभवति तादृशस्यैव धर्मफल-जनकत्वात् ।

यथा—आधाकर्मदिदोषदूषिताहारादिदाने धर्मबुद्ध्या क्रियमाणे धर्म-व्याघातः, यथा वा इन्द्रादिपूजादौ धर्मव्याघातः, तथैव धर्मबुद्ध्या प्रतिमापूजनेऽपि धर्मव्याघातः स्यात्, तस्य जीवोपघातहेतुत्वात् ।

“ प्रतिमापूजा-धर्मव्याघातवती, आगमोक्तन्यायनिराकृतत्वात्, अयोग्य-प्रव्रज्यादानवत्, इन्द्रादिपूजावद् वा ” इत्याद्यनुमानेनापि प्रतिमापूजायां धर्म-व्याघातो भवतीति विश्वसनीयम् । उक्तं च—

की योग्यता तक भी नहीं है । कारण कि यह प्रवचन कथित संवर और निर्जरा तत्त्व के लक्षण से युक्त नहीं है—अतः इसमें ताप शुद्धि भी नहीं है । इन कथा,दिकों द्वारा परिशुद्ध हुई वस्तु में ही धर्मता आती है और वही यथार्थ में धर्म के फलका प्रदाना होता है । प्रतिमापू-जन में यह बात नहीं है—अतः वह धर्मरूप नहीं है ।

किंच-धर्मबुद्धि से बनाये गये, परन्तु आधाकर्म आदिदोषों से दूषित ऐसे आहार के दान में तथा इन्द्र आदिकों का पूजन करने में जिस प्रकार धर्म का व्याघात माना गया है, उसी प्रकार धर्मबुद्धि से की गई प्रतिमा का पूजन में भी जीवों का घात होने से धर्म का व्याघात होता है । इसलिये आगम कथित सिद्धान्त के अनुसार यह प्रतिमापूजन उपो-देय कोटि में नहीं आता है । फिर भी जो इसे करते हैं—कराते हैं—वे आगम कथित सिद्धान्त से सर्वथा बाह्य हैं—और धर्म का व्याघात कर-

तत्त्वने आविर्भूत करवा सुधीनी पणु क्षमता नथी, केमके आ प्रवचन कथित संवर अने निर्जरा तत्त्वनां लक्षणथी युक्त नथी. अेटला भाटे आमां ताप शुद्धि पणु नथी. आ कष वगेरे वटे परिशुद्ध थयेली वस्तुमां न धर्मता आवे छे अने ते न साया स्वरूपमां धर्मता इणने आपनार छे. प्रतिमा पूजनमां आ वात नथी अथी ते धर्म रूप नथी.

धर्मबुद्धिथी तैथार करवामां आवेला, पणु आधाकर्म वगेरे दोषा वटे दूषित अेवा आहारना दानमां तेमन ध-द्र वगेरेनी पूल करवामां नेम धर्मना व्याघात मानवामां आव्ये छे, तेम न धर्मबुद्धि राणीने करवामां आवेला प्रतिमा पूजनमां पणु अेवानो घात डोवाथी धर्मना व्याघात होय छे. अेटला भाटे आगम कथित सिद्धान्त सुवण्य आ प्रतिमा पूजन उपोदेय कोटिमां आवतुं नथी. छातां ये ने आने करे छे, करावे छे तेअो आगम कथित सिद्धान्तथी सर्वाथा बाह्य छे अने धर्मना व्याघातक छे अथी अथेअ्यने आपेदी

अकृत्स्नप्रवर्तकानां अकृत्स्नसंयमप्रवृत्तिप्रतां विरताविरतानां—देशचिरतीनां श्रावकाणाम् एष द्रव्यस्तवः खलु युक्त एव । किंभूतोऽयमित्याह—संसार प्रतनुकरणः=संसारक्षयकारकः इत्यर्थः । ननु द्रव्यस्तवो हेयः प्रकृत्यैवासुन्दरः स कथं श्रावकाणां युक्तः ? । इत्याशङ्क्याह—कूपदृष्टान्त इति—

यथा लोके केऽपि जलाभावतरतृष्णाकुलाः पिपासापनोदनाद्यर्थं कूपं खनन्ति ते कूपखनका मृत्तिकाकर्मदादिभिश्च मलिना भवन्ति, पश्चात् तदुद्भवेन जलेन तेषां तृष्णायास्तथा मृत्कर्ममलस्य च नाशो भवति तदनन्तरमपि ते तदन्ये च

श्रवणों के लिये उपादेय भी पुष्प आदिकों द्वारा भगवान की पूजा स्वरूप द्रव्यस्तव साधुओं के लिये हेय ही है । क्यों कि साधु सर्व आरंभ और परिग्रह के सर्वथा त्यागी हैं—श्रावक नहीं वे देश चिरति संपन्न हैं । अतः उनके लिये द्रव्यस्तव संसार का क्षय कारक माना गया है कूप का दृष्टान्त देकर भाष्यकार ने इस शंका का परिहार किया है कि जिस प्रकार जल के अभाव से पिपासा को दूर करने के लिये कोई २ मनुष्य कूप को खोदते हैं और उसे खोदते समय मिट्टी और कीचड़ से मलिन भी हो जाते हैं परन्तु पश्चात् उस कूप में निकले हुए जल से वे उस कीचड़ और लगी हुई मिट्टी को साफ कर देते हैं और समय २ पर अपनी पिपासा की भी शांति करते रहते हैं । दूसरे और भी लोक उससे लोभ उठाते हैं । इस प्रकार उस जलयुक्त कुएँ से खोदने वाले व्यक्तियों को तथा और भी अन्यजनों को समय २ पर अनेक प्रकार से लाभ होता रहता है । ठीक इसी तरह इस द्रव्यस्तव में जो कि संयम

कूपविद्वंतो ।) (भाष्यकार ४२) आ प्रभाषे कहुं छे के श्रावकाने भांटे उष-
 देय डोवा छतां पुष्प वगेरे वडे भगवाननी पूल स्वश्य द्रव्यस्तव साधुजाना
 भांटे तो त्याज्य न छे, केमके साधु सर्व आरंभ अने परिग्रहना संपूर्णपणे
 त्यागी डोव छे. श्रावक नथी, तेजो देश चिरति संपन्न छे ज्येठला भांटे तेभने
 सामे राभीने विचार करीजे तो द्रव्यस्तव संसारने क्षय करनार मानवाभां
 आण्ये छे. कूपं दृष्टान्त आभीने लाभ्यकारे आ शंकांने हर करी छे के लेभ
 पाणीना अलावने लीधे पीडाधने तरस भटाडवा भांटे केटलांक भाष्ये वाव
 जोडे छे अने ते वपते तेजो भाटी अने कादवथी भरडाधं लय छे पक्षु त्यार
 पछी वावभांथी नीकणता पाणीथी न तेजो कीचड तेभ शरीरे चोटेकी भाटीने
 साइ करी नाणे छे अने वपतो वपत योतानी तरस पक्षु भटाडे छे. थिल
 पक्षु केटलांक बोडो तेनाथी दास भेगवे छे. आ रीते ते पाणी लरेकी वावधी

लोका जलेन मुखिनो भवन्ति एवं द्रव्यस्तवे यद्यप्यसंयमो भवति तथापि तत् एव सा परिणामशुद्धिर्भवति, या तद् असंयमोपार्जितमन्यच्च निरवशेषं क्षपयति इति ।

“ तस्माद्विरताविरतैः श्रावकैरेष द्रव्यस्तवः कर्तव्यः ।

शुभानुबन्धी प्रभूतनिर्जराफल इति कृत्वा ” इत्युक्तम्—

तदसत्—अत्र हि कूपदृष्टान्तो न संघटते कूपखननेन जलमुत्पद्यते इति सकल लोकमत्यक्षं, किन्तु षट्कायवधं कुर्वतः कारयतश्च धर्मभूलभूताया दयाया एव

की रक्षा नहीं होती है, तो भी यह कर्त्ता को परिणामों में शुद्धि का हेतु होता है। इससे कर्त्ता उस द्रव्यस्तव के करने में उद्भूत असंयम द्वारा उपार्जित पापों का सम्पूर्णरूप से विनाश कर देता है। इसलिये विरताविरत (एकदेश संयम की आराधना करनेवाले पंचमद्युगस्थान-वर्ती श्रावकों द्वारा यह द्रव्यस्तव कर्तव्य कोटि में आने से उपादेय है। कारण कि यह उनके लिये शुभानुबन्धी और कर्मों की अधिक निर्जरा-रूप फल का प्रदाता होता है” यह सब आख्यकार का कथन ठीक नहीं है। कारण कि उन्होंने ने जो कूप का दृष्टान्त देकर इस विषय की पुष्टि करनी चाहिये, उससे प्रकृत विषय की वास्तविक पुष्टि नहीं होती है। यह तो प्रत्येक लौकिक जन के प्रत्यक्ष अनुभव में आने जैसी बात है कि कूप के खोदने से जल निकलता है इस में तो विवाद की कोई जरूरत ही नहीं है, किन्तु प्रतिमा की पूजा करने और करानेवालों से षट्-

भोहनार बोडोने तेमज्ज षील पणु धणु माणुसोने वणतो वणत धणुी रीते दास थता रडे छे. ठीक आ प्रभावे ज् द्रव्यस्तवमां जे डे संयमनी रक्षा थती नथी, छतां य ते कर्त्ताना भाटे परिष्णाममां शुद्धितुं कारणु छोय छे. तेनाथी कर्त्ता ते द्रव्यस्तवना करवामां उद्भूत असंयम वडे सेणवेदा पापोना संपूणु-पणुे विनाश करी नाणे छे. अथी विरताविरत (एकदेश संयमनी आराधना करनार पंचम शुष्णस्थानवर्ती) श्रावणे वडे आ द्रव्यस्तव कर्त्तव्य कोटिमां आववाथी उपादेय छे. कारणु डे ते तेमना भाटे शुभानुबन्धी अने कर्मोनी वधादे निर्जरा क्णने आपनार छे. लाभ्यकारतुं आ भणुं कथन योग्य नथी, कारणु डे तेआअे जे वापतुं दृष्टांत आपीने आ विषयनी पुष्टि करवा प्रयत्न कर्यो छे, तेनाथी प्रकृत विषयनी वास्तविक रूपमां पुष्टि थती जेवामां आवती नथी. दरेडे दरेक आणुसना भाटे आ तो अेक प्रत्यक्ष अनुभव करी शक्य तेवी छेकीकत छे डे वाच भोहवाथी पाणुी नीकणे छे, आमां तो अर्थानी डोअ वात ज् जेथी थती नथी. पणु प्रतिमांनी पूजा करनार अने कशवनाराअोथी

काय के जीवों की रक्षा नहीं हो सकती है—उनसे उनकी विराधना होती है। ऐसी परिस्थिति में धर्म के मूलभूत सिद्धान्त का ही जब वहां अभाव है तब उस पूजन कार्य के उनके परिणामों में शुद्धि मानना यह कथन शास्त्र से विरुद्ध और प्रत्यक्ष आदि सबस्त प्रमाणों से बाधित होता हुआ किसी भी समझदार व्यक्ति को मान्य नहीं हो सकता है प्रतिमा पूजनके पक्षपाती जो इस प्रकार अपने पक्षमें तर्क करते हैं कि—

सम्यक् स्नात्वोचिते काले संस्नाप्य च जिनात् क्रमात् ।

पुष्पाहारस्तुतिभिश्च पूजयेदिति तद्विधिः ॥

तथा—जिनप्रभसूरिकृतपूजाविधौ—सरससुरहिचंदणेणं अंगेसु पूअं काऊण पंचगङ्गुसुमेहिं गंधवासेहिं च पूएइ सद्धणैः सुगंधिभिः सरसैरभूपतितैर्विकाशिभिरसहितदलैः प्रत्यग्रैश्च प्रकीर्णैर्नानाप्रकारग्रथितैर्वा पुष्पैः पूजयेत्” इति—तथा—कुसुमक्खयगंधपईवधूयनेवेज्जफलजलेहिं पुणो अट्टविहकम्मदलनी अट्टुवयारा हवइ पूया” इति किञ्च—

जिनभवनं जिनविम्भं जिनपूजां जिनमतं च यः कुर्यात् ।

तस्य नरामरशिवसुखफलानि करपल्लवस्थानि ॥

पट्काय एवोनी रक्षा थर्ध शकती नथी, ते कार्यथी तो तेमनी विराधना न होय छे. आनी परिस्थितिमां धर्मना मूणभूत सिद्धान्तोना न न्यारे अभाव छे त्यारे ते पूजा इप कार्यथी तेमना परिष्ठाभोमां शुद्धि माननी आ वात शास्त्रथी विरुद्ध अने प्रत्यक्ष वगेरे भील अथा प्रमाणोथी बाधित थती केध पल्लु समन्वु भाष्यसना भाटे तो मान्य थर्ध शकै तेम नथी. प्रतिमा पूजननी तरङ्गहारी करनाराथो: योतानी वातने पुष्ट-करवा भाटे न्ने आ नतनी ज्योती दलीदो सामे भूके छे ई—

सम्यक् रनात्वोचिते काले संस्नाप्य च जिनात् क्रमात् ।

पुष्पाहारस्तुतिभिश्च पूजयेदिति तद्विधिः ॥

तथा—जिनप्रभसूरिकृतपूजाविधौ—सरस—सुरहिचंदणेणं अंगेसु पूअं काऊण पंचगङ्गुसुमेहिं गंधवासेहिं च पूएइ सद्धणैः सुगंधिभिः सरसैरभूपतितैर्विकाशिभिरसहितदलैः प्रत्यग्रैश्च प्रकीर्णैर्नानाप्रकारग्रथितैर्वा पुष्पैः पूजयेत् । इति तथा कुसुमक्खयगंधपईवधूयनेवेज्जफलजलेहिं पूणो अट्टविहकम्मदलनी अट्टुवयारा हवइ पूया” इति किञ्च—

जिनभवनं जिनविम्भं जिनपूजां जिनमतं च यः कुर्यात् ।

तस्य नरामरशिवसुखफलानि करपल्लवस्थानि ॥

ममुच्छेदात् परिणामशुद्धिरुपधत् इति प्रवचनविरुद्धं कल्पनं सर्वप्रमाणवाधितं कस्यानुमतं भवेत् । अपि तु न कस्यापि ।

(आचाराङ्गसूत्रे भगवताऽभिहितम् (अ. १ उ. १)

“ इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव पुढविसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेड,

भावार्थ—पूजक उचित समय में अच्छी तरह स्नान करके जिनेन्द्र का अभिषेक कर पुष्प आदिकों से उन की पूजा करें । जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित पूजाविधि में भी पूजा के विषय में यही विधि प्रदर्शित की गई है सरस सुगंधित चंदन से भगवान के नव अंगों में तिलकरूप पूजन कर पूजक सुगंधित, जमीन पर नहीं गिरे हुए, पत्र बिनाके ताजे पंच जाति ते पुष्पों द्वारा प्रभु की पूजा करें । पुष्प, अक्षत, गंध, प्रदीप, धूप, नैवेद्य फल और जल इन आठ द्रव्यों से आठ कर्मों को नाश करनेवाली अष्टप्रकार की पूजा होती है । जिनमंदिर, जिनप्रतिमा जिनपूजा और जिनसन को जो करता है, उस मनुष्य के हाथ में मनुष्यगति देवगति और मोक्ष के सुख आ जाते हैं—अर्थात् वह मनुष्य इन गतियों के सर्वोत्तम सुख भोग कर मोक्षसुख का भोक्ता बन जाता है—सो इस प्रकार का यह पूजन विषयक समस्त कथन प्रवचन सिद्ध ही है क्योंकि आचारांगसूत्र में भगवान ने “इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदण माणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपरिघायहेउं से सयमेव पुढविस-

भावार्थ—पूजा करनेपर योग्य समये सारी रीते स्नान करीने उनन्द्रने अलिषेक करे तेमज पुष्प वजेरेथी तेमनी पूजा करे. उनप्रभासूरि वडे विरचित पूजाविधिमां पण्ण पूजाणा विषयमां आ विधि ज गताववामां आवी छे. सरस सुगंधित चंदनथी भगवाननां नव अंगोमां तिलक इप पूजन करी पूजा करनार सुवासयुक्त, जमीन उपर पडेलां नडि, पत्र वगरनां ताल, पांथ जतिनां पुष्पोथी प्रभुनी पूजा करे. पुष्प, अक्षत, गंध, प्रदीप, धूप, नैवेद्य, इण अने पाण्णी आ आठ द्रव्येथी आठ करेनि नष्ट करनारी अष्ट प्रकारनी पूजा होय छे. उन मंदिर, उन प्रतिमा, उन पूजा अने उन भतने जे करे छे, ते भाषुसनी पासे मनुष्य गति, देवगति अने मोक्षनां सुभो आवी जय छे. अटले के ते भाषुस आ गतिज्जोनां सर्वोत्तम सुभो भोगवीने मोक्ष सुभने भोगवनार भनी जय छे, माटे आ जततुं आ पूजनने लगतुं गधुं कथन प्रवचन सिद्ध ज छे, केभके आचारांग सूत्रमां भगवाने—(इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदण माणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपरिघायहेउं से

अण्णे वा पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणइ । तं से अहियाए तं से अबोहीए ।” इति जीवः कस्मै प्रयोजनाय पृथिवीकायस्य समारम्भं करोतीत्याह—“ इमस्स चेव ” इत्यादि । अस्यैव=क्षणभङ्गुरस्य, “ जीवियस्स ” जीवनस्य-जीवनस्यार्थे, तथा-परिवन्दनमाननपूजनाय=परिवन्दनं-प्रशंसा, तदर्थं यथाऽऽश्रयगृहादिकरणे, माननं=सत्कारः तदर्थं, यथा-कीर्तिस्तम्भादिकरणे, पूजनं=स्वपूजनं प्रतिमापूजनं च, तत्र स्वपूजनं-वस्त्ररत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, तथा-प्रतिमापूजनार्थं च प्रतिमादिरचने तथा-जातिभरणमोचनाय, तथा दुःखप्रतिघातहेतुं-दुःखविध्वंसार्थं ।

त्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणइ । तं से अहियाए तं से अबोहिए ” इति-इस सूत्र में “ जीव किस प्रयोजन के लिये पृथिवीकाय का समारंभ करता है ” इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यह कहा है कि यह जीव इस क्षणभङ्गुर जीवन के लिये परिवन्दन-प्रशंसा के लिये-आश्रयोत्पादक गृह आदि बनवा न दें मान-सत्कार के लिये कीर्तिस्तम्भ आदि कराने में, अपनी प्रतिष्ठा के लिये वस्त्र रत्नकम्बल आदि पुरस्कार में तथा प्रतिमापूजन के लिये प्रतिमादि बनवाने में तथा जाति-परलोक में सुख के लिये देवमन्दिर आदिके बनवानेमें, भरण-जिनकीःश्रुत्यु हो चुकी है ऐसे अपने पिता आदि की स्मृति के लिये स्तूप आदि की रचना कराने में, मोचन-मुक्ति प्राप्ति के लिये देव प्रतिमा आदि बनवानेमें अथवा अनेक प्रकारके दुःखोंके विनाशके लिये वर्तमानकालमें स्वयं भी पृथिवी

सममेव पुढविसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेइ, अण्णेवा पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणइ तं से अहियाए तं से अबोहिए) इति— “ एव शा माटे पृथिवीकायने समारंभ करे छे ” जे सवालने जवाण आपतां आ प्रभाण्णे कडेवामां आण्युं छे के आ एव आ क्षणभङ्गुर एवन माटे परिवन्दन-प्रशंसा माटे आश्रयोत्पादक घर वगेरे बनाववामां, मान-सत्कार माटे कीर्तिस्तम्भा वगेरे तैयार कराववामां, पोतानी प्रतिष्ठा माटे वस्त्र, रत्न, कामण वगेरे रूप पुरस्कार तेमज प्रतिमा पूजन माटे प्रतिमा वगेरे बनाववामां जति परदोहमां सुभ प्राप्ति थाय तेना माटे देव-मंदिरे वगेरे तैयार कराववामां, भरण-जेजो भरण पाभ्या छे तेवा पोताना पिता वगेरेनी याहमां स्तूप, समाधि वगेरे बनाववामां, मोचन-मुक्ति भेणववा माटे देव-प्रतिमा वगेरे बनाववामां अथवा तो धणी जतनां दुःखोना विनाश माटे वर्तमान कालमां पोते पणु पृथिवीकायना विनाश स्वइय द्रव्यलाय शस्त्रो व्यापार

सः जीवनपरिवन्दनमाननपूजनाद्यर्थं जनः स्वयमेव पृथिवीशस्त्रं समारभते =पृथिव्युपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं व्यापारयति । अन्यैर्वा पृथिवीशस्त्रं समारम्भयति =उद्योजयति । पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् समजुजानाति अनुसोदयति । एवमतीतानागताभ्यां, तथा मनोवाक्यैश्च पृथिवीशस्त्रसमारम्भभेदा अवगन्तव्याः । पृथिवीशस्त्रं समारभमाणः किं फलं प्राप्नोतीत्याह—“ तं से अहियाए ” इत्यादि । “ तं ” तत्=पृथिवीकायसमारम्भणं, “ से ” तस्य=पृथिवीशस्त्रं समारभमाणस्य “ अहियाए ” अहिताय=अकल्याणाय भवतीति शेषः । ‘ तं ’ तत् = तदेव च पृथिवीकायसमारम्भणमेव च “ से ” तस्य पृथिवीशस्त्रं समारभमाणस्य “ अवो-हीए ” अवोधये सम्यक्त्वालाभाय जिनधर्मपाप्त्यभावाय च भवति ।

पृथिवीकायसमारम्भणं हि—कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधम्, तस्यातीत-काय के बिनाशस्वरूप द्रव्य भाव शस्त्रका व्यापार करता है, दूसरों से कराता है और इस शस्त्र का प्रयोग करने वाले प्राणियोंकी अनुमोदना करता है इसी प्रकार भूत और भविष्यत काल में जनवचन और काय से(त्रियोग और त्रिकरणके संबंधसे) यह जीव पृथिवी कायका समारम्भ करने वाला हुआ है और होगा । अतः जिस प्रकार वर्तमान में त्रियोग और त्रिकरण के संबंध से इस पृथिवी काय समारम्भ के भेद होते हैं उसी प्रकार भूत और भविष्यत काल में भी उनके संबंध इसके भेद जानलेना चाहिये । यह पृथिवी काय का समारम्भरूप शस्त्रका प्रयोग प्रयोक्ता जीवको कभी भी कल्याण एवं सम्यक्त्व के लोभ जिनधर्म की प्राप्ति की प्राप्ति कराने वाला नहीं होता है ।

भावार्थ—पृथिवीकाय का समारम्भ कृत्, कारित और अनुमोदना

(कार्य) करे छे, भील्लयो पासे करावे छे अने आ शस्त्रने प्रयोग करनार प्राणुिओनी अनुमोदना करे छे. आ प्रमाणे भूत अने भविष्यकाणमां मन, वचन अने कायथी (त्रियोग अने त्रिकरणना संघंधथी) आ एव पृथिव-कायने समारंभ करनार थये छे अने थये. ओटला माटे नेम वर्तमानकाणमां त्रियोग अने त्रिकरणना संघंधथी आ पृथिवकाय समारंभना लेद (प्रकार) होय छे तेमज भूत अने भविष्यत काणमां पणु तेमना संघंध तेमज लेद नथी देवा लेधये. आ पृथिवकायना समारंभ इप शस्त्रने प्रयोग प्रयोक्ता एचना माटे कर्हाप कल्याण सम्यक्त्वने लाभ तेमज एत धर्मनी प्राप्ति करावनार थतो नथी.

भावार्थ—पृथिवीकायने समारंभ कृत्, कारित अने अनुमोदनाना लेदथी त्रयु प्रकारने छे. अतीत अने अनागत काणना लेदोथी तेना भील्ल त्रयु त्रयु

वर्तमानानागतभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये नवधा भवति । नवविधस्यापि पृथिवीकाय-समारम्भणस्य मनोवाक्काययोगभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्ति । एवं विधपृथिवीकायसमारम्भप्रवृत्तः खलु षट्कायारम्भसंपातजन्यघोरतरदुरितार्जनेन दुरन्तसंसारदावानलज्वालान्तःपातं प्राप्यानन्तरकनिधोदादिदुःखमनुभवन् न कदाचित् कल्याणं शाश्वतसुखप्रदं मोक्षमार्गं प्राप्नोतीतिभावः ॥

भगवता पृथिवीकायसमारम्भणवदपूकायादिसमारम्भणमप्यहितायावोधये च भवतीत्यपि तत्रैव प्ररूपितम् । यत्रैकस्य पृथिवीकायस्य समारम्भणे तस्यैवत्व-के भेद से तीन प्रकार का है—इसके अतीत और अनागत काल के भेद से तीन ३ प्रकार का और हो जाते हैं इस प्रकार यह तीनों कालों की अपेक्षा से ९ प्रकार का है । इन नव प्रकारों के साथ-मन वचन और काय इन तीनों का गुणा करने से यह २७ प्रकार का माना गया है इस प्रकार त्रिकरण और त्रियोग के संबंध से २७ प्रकार के इस पृथिवीकाय के समारंभ में प्रवृत्त जीव षट्काय के आरंभ के संपात जन्य घोरतर पापों के अर्जन से दुरन्त संसार रूपी दावानल की ज्वाला के मध्य में निमग्न बन अन्त में अनन्त नरक निगोदादिकों के दुःखों का अनुभव करता हुआ कभी भी निज कल्याण का भोक्ता एवं शाश्वत सुख को प्रदान करने वाले मोक्ष के मार्ग का पथिक नहीं बन सकता है पृथिवी-काय के समारम्भ की तरह अपूकाय आदि का समारंभ भी इस जीवात्मा को सदा अहितकारी और अधोध का दाता है यह बात भी वहाँ पर (आचारांग सूत्र में) भगवान ने कही है अब विचारिए—जब

लेहो यथ जल्ये. आ रीते आ त्रणे कणोनी अपेक्षाये नव प्रकारेणे. आ नव प्रकारेणी साथे मन, वचन अने काय अने त्रणेणे शुष्काकार करवाधी आ २७ प्रकारेणे मानवामां आयेणे. आ प्रभाणे त्रिकरणे अने त्रियोगना संबन्धेणी २७ प्रकारेणा आ पृथिवीकायना समारंभामां प्रवृत्त एव षट्कायना आरंभना संपात जन्म घोरतर (लयंकर) पापेणे कारेणे दुरंत संसार उपी दावानलना अग्निमां पडीने छेवटे अनंत नरक निगोद वगेरे दुःखेणे अनु-लवते। क्व पि पोताना कल्याणुणे लोकता यथेने अने शाश्वत-सुखेणे आपनार मोक्ष मा गेने पथिक (वटेभार्थु) भनी शकते नथी. पृथिवीकायना समारंभनी जेभ अपूकाय वगेरेणे समारंभ पणु आ एवात्मा माटे उभेशां अहितकारी अने अधोध (अज्ञान) आपनारेणे. आ वात पणु आचारांग सूत्रमां लगवने कही छे. उवे आटलुं तो आपणु पणु समल शरीरे छीये के न्यारे एवना माटे क्वत पृथिवीकायने समारंभ न न्यारे अहित करनार अने मोक्षना

મલમ્બ્યં, કિં પુનસ્તત્ર પટ્કાયસમારમ્ભણે સ્વર્ગાપવર્ગલાભસ્ય સંભવઃ । પરિવન્દન-
માનનપૂજનાર્થં જાતિમરણમોચનાર્થં દુઃસ્વપ્રતિષ્ઠાતાર્થં ચ વે જીવાઃ પૃથિવીકાયાદિ-
સમારમ્ભં કુર્વન્તિ, તે તત્કલં વિપરીતમેવ લભન્તે યતોઽસૌ સમારમ્ભઃ અવોધિમહિતં
ચોત્પાદ્યતીત્યુક્તં મગવતા । પરંતુ તત્ર પ્રતિમાપૂજકાઃ શાસ્ત્રવિરુદ્ધમેવં કથયન્તિ-
પ્રતિમાપૂજાયાં સ્વાભ્યુદયમોધાર્થં ક્રિયમાણઃ પટ્કાયસમારમ્ભઃ સ્વલ્લ અવોધિમ-
જીવ કે લિયે યહ અકેલા પૃથિવીકાય કા સમારંભ હી અહિત કા કર્તા
ઔર મોક્ષ કે માર્ગ સે વંચિત રત્નનેવાલા કહા ગયા હૈ તો બલા કિસ
કાર્ય મેં પટ્કાય કે જીવોં કા સમારંભ હોતા હૈ, ઇસ કાર્ય સે અથવા
ઇસ પ્રકાર કે સમારંભ સે જીવોં કો સ્વર્ગ ઔર અપવર્ગ (મોક્ષ) કા
લાભ કેસે હો સકતા હૈ ? અર્થાત્ કિસી તરહ નહીં હો સકતા ।

જો મનુષ્ય પરિવંદન માનન ઔર પૂજન કે નિમિત્ત તથા જાતિ ઔર
મરણ કે મોચન કે નિમિત્ત એવં દુઃસ્વો કે વિનાશ કરને કે નિમિત્ત
પૃથિવીકાય આદિ કાં સમારંભ કરતે હૈં, વે ઇસકાં વિપરીત હી ફલ
મોગતે હૈં યહ વાત અચ્છી તરહ સે પ્રકટ કી જા સુકી હૈ । ક્યોં કિ
પ્રતિમાપૂજા યોધ એવં હિન પ્રાપ્તિ કે લક્ષ્ય કો લેકર કે હી કી જાતી હૈ
-પરંતુ ઇસ લક્ષ્ય કી સિદ્ધિ ન હોકર ઇસસે ઇટ્ટા કર્તા જીવ અવોધ
એવં અહિત કા પ્રાપક હી હોતા હૈ એસા શ્રી મહાવીર પ્રભુ કા કથન હૈ ।
ફિર ખી ઇસકે પક્ષપાતી જન ઇસ વાત પર ધ્યાન ન વેકર શાસ્ત્ર વિરુદ્ધ
હી કથન કરતે હૈં-વે યહ કહતે હૈં “ કિ ઇસ પ્રતિમાપૂજન મેં માના કિ

માર્ગથી ફર ફેંકી દેનાર બતાવવામાં આવ્યો છે ત્યારે કયા કાર્યમાં પટ્કાયના
ભવેનો સમારંભ હોય છે, તે કાર્યથી અથવા તો તે બતના સમારંભથી
ભવને સ્વર્ગ અને અપવર્ગ (મોક્ષ) નો લાભ કેવી રીતે સંભવી શકે તેમ
છે ? એટલે કે કોઈ પણ કાળે ભવને આ કાર્યથી સ્વર્ગ કે મોક્ષનો લાભ
થઈ શકતો નથી.

વે સાણસ પરિવંદન, માનન અને પૂજનના માટે તેમજ બલિ અને
મરણના મોચન માટે અને દુઃખોના વિનાશ માટે પૃથિવીકાય વગેરેનો સમા-
રંભ કરે છે, તેઓ તેનું ઉલટું ફળ ભોગવે છે આ વાત સારી રીતે સમ-
બલવામાં આવી છે, કેમકે પ્રતિમા પૂજા યોધ તેમજ હિન પ્રાપ્તિના લક્ષ્યને
લઈને જ કરવામાં આવે છે. પણ આ લક્ષ્યની સિદ્ધિ ન થતાં તેનાથી સાવ
વિપરીત કર્તા ભવ અયોધ અને અહિતને મેળવે છે એવું જ શ્રી મહાવીર
પ્રભુએ કહ્યું છે. છતાંય પ્રતિમા પૂજના કેટલાક તરફદારીઓ આ વાતને લક્ષ્યમાં
ન સમજતાં શાસ્ત્ર વિરુદ્ધ જ કથનને વળગી રહે છે. તેઓ આ પ્રમાણે કહે છે

હિતં નોત્પાદયતિ, પ્રત્યુત્ત્વોર્ધિ નરામરશિવસુખસ્વરૂપં હિતં ચ સમ્યગ્ જનયતીતિ, તદેતત્ સાક્ષાત્ પ્રવચનવિરુદ્ધમિતિ ।

કિં ચ આચારાન્નસૂત્રે પૃથિવીકાયસમારંભસ્ય ફલમ્બુક્ત્વા ભગવતા પુનરભિહિ- તમ્—‘ એસ સ્વલુ ગંથે, એસ સ્વલુ મોહે એસ સ્વલુ મારે, એસ સ્વલુ ગિરયે, ઇચ્ચત્થં ગદ્દિણ્ણ લોણ, જમિણં વિરુવરુવેહિં સત્થેહિં પુઢવિકમ્મસમારંભેણં પુઢવિસત્થં સમા- રંભમાણે અણ્ણે અણેગરુવે પાણે વિહિંસહ્ । ’ (આ૦ ૧ અ૦ ૨ ૩૦)

છાયા— એપ સ્વલુ ગ્રન્થઃ, એપ સ્વલુ મોહઃ, એપ સ્વલુ મારઃ, એપ સ્વલુ નરકઃ ઇત્યથં ઘૃહ્લો લોકઃ, યદિમં વિરુપરુપૈઃ શક્તૈઃ પૃથિવીકર્મસમારંભેણ પૃથિવીજ્ઞં

ષટ્કાય કા સમારંભ હોતા હૈ—પરન્તુ યહ સમારંભ સ્વાશ્યુદય એવં સુક્તિ પ્રાપ્તિ કે નિમિત્ત હી કિયા જાતા હૈ—અતઃ યહ કર્તા જીવોં કો ન અહિત કા હી ઉત્પાદક હોતા હૈ ઓર ન બોધિ કે લાભ સે વંચિત રક્ષતા હૈ પ્રત્યુત્ત યહ ઉન્હેં બોધિ એવં નર અમર ઓર મોક્ષ કે સુખ સ્વરુપ હિત કા પ્રદાન કરને વાલા હી હોતા હૈ ” સો ઇસ પ્રકાર કા ઉનકા યહ કથન સાક્ષાત્ શાસ્ત્ર સે વિરુદ્ધ હી હૈ—યહ વાત આચારાંગ સૂત્ર સે ખલી ખાતિ પુષ્ટ હોતી હૈ ઉક્ષમેં પૂર્વોક્તરીતિ સે પૃથિવીકાય કે સમારંભ કા ફલ કહ- કર ફિર યહ કહા ગયા હૈ—“ એસ સ્વલુ ગંથે, એસ સ્વલુ મોહે, એસ સ્વલુ મારે, એસ સ્વલુ નરયે, એચ્ચત્થં ગદ્દિણ્ણ લોણ, જમિણં વિરુવરુવેહિં સત્થેહિં પુઢવિકમ્મસમારંભેણં પુઢવિસત્થં સમારંભમાણે અણ્ણે અણેગરુવે પાણે વિહિંસહ્ ” (આ- ૧ અ- ૨ ૩૦) યહ પૃથિવીકાય કા સમારંભલપ શક્ત નિશ્ચય સે જીવોં કો અષ્ટપ્રકાર કે જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોં કા વન્ધ

કે—આપણે થોડા વખત માટે આમ પણ માની લઇએ કે આ પ્રતિમા પૂજ- નમાં ષટ્કાયનો સમારંભ થાય છે—પણ આ સમારંભ સ્વાશ્યુદય અને સુક્રિતની પ્રાપ્તિ માટે જ કરવામાં આવે છે એટલા માટે આ કર્તા જીવોના માટે અહિ- તનો ઉત્પાદક પણ હોતો નથી અને યોધિના લાભથી પણ તેઓને વંચિત રાખતો નથી આ તો તેમને યોધિ અને નર અમર અને મોક્ષના સુખ સ્વરૂપ હિતને આપનાર જ હોય છે પણ તેમનું આ કથન પ્રત્યક્ષ રૂપમાં શાસ્ત્રથી વિરુદ્ધ જ છે. આ વાત આચારાંગ સૂત્રથી સારી પેઠે પુષ્ટ થઈ જાય છે. તેમાં પૂર્વોક્ત રીતથી પૃથિવકાયના સમારંભનું રૂપ ખતાવીને આ પ્રમાણે કહ્યું છે—

‘એસ સ્વલુ ગંથે, એસ સ્વલુ મોહે, એસ સ્વલુ મારે એસ સ્વલુ નરયે, એચ્ચત્થં ગદ્દિણ્ણ લોણ જમિણં વિરુવરુવેહિં સત્થેહિં પુઢવિકમ્મસમારંભેણં પુઢવિસત્થં સમારંભમાણે અણ્ણે અણેગરુવે પાણે વિહિંસહ્ ” (આ. ૧ અ. ૨ ૩૦)

આ પૃથિવકાયનું સમારંભ રૂપ શસ્ત્ર ચોક્કસ જીવોના માટે આઠ પ્રકારના

समारम्भमाणः अन्वान् अनेकरूपान् प्राणान् विहितति । एषः=पृथिवीशस्त्रसमारम्भः खलु निश्चयेन ग्रन्थः=ग्रथयते=वध्यते जीवोऽनेनेति ग्रन्थः, अष्टविधकर्मबन्धः, बन्धजनकत्वाद् ग्रन्थ इत्युच्यते । तथा-एष मोहः विपर्यासः वीपरीतज्ञानरूप इत्यर्थः तथा-एष मारः=निगोदादिसरणरूपः । तथा-एष खलु नरकः-नारक जीवानां दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्-एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह मरण-नरकरूपं घोरं दुःखफलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृह्यः-लिप्सुरस्ति । यद्यपि विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं च पृथिवीशस्त्रसमारम्भं करोति, तथापि तत्फलं कर्मबन्धमोहमरणनरकरूपमेव लभते, अतः पृथिवीकर्मसमारम्भस्य तदेव फलं भवतीति भावः । तदेवं प्रवचनविरुद्धप्ररूपण-

कराने वाला होने से ग्रन्थस्वरूप, विपरीत ज्ञान का जनक होने से मोहरूप, निगोदादि जीवों का इस में मरण होता है-इसलिये मार स्वरूप तथा नारकियों की दश प्रकार की यातना का हेतु होने से यह नरकरूप माना गया है । इस प्रकार यह जीव इस पृथिवीकाय के समारम्भरूप शस्त्र के फलस्वरूप कर्मबन्ध, मरण और नरकरूप घोरतर दुःखों को भोगता हुआ भी अज्ञान के आधीन होकर उसी शस्त्र के प्रयोग करने का फिर भी अभिलाषी हो रहा है । यद्यपि विषय भोगों में आसक्त बना हुआ यह जीव शरीर आदि की पुष्टि परिवंदन, मानन, पूजन एवं जाति और मरण के मोचन के लिये तथा दुःखों के विनाश के लिये पृथिवीकाय के समारम्भरूप शस्त्र का प्रयोग करता है-परन्तु फिर भी इसका वह कर्मबन्ध, मोह, मरण, नरकरूप फल का ही भोक्ता बनता

ज्ञानावरणीय वगेरे कर्मोना बंध कशवनार डोवा गडल ग्रन्थ स्वरूप, विरुद्ध ज्ञानने उत्पन्न करनाइ डोवाथी मोह इप, निगोद वगेरे लुपोतुं आभां मरणु थाय छे माटे मार स्वरूप तेमन् नारकीज्जानी दश प्रकारनी यातनातुं कारक इप डोवाथी आ नरक इप मानवाभां आच्छुं छे. आ दीते आ एव आ पृथिवीकायना समारंभ इप शस्त्रना इण स्वरूप कर्मबंध. मरणु अने नरक इप घोरतर दुःखोने लोगववा छतां पणु अज्ञानवश धधने तेन् शस्त्रोने प्रयोग करवा माटे इरी तैथार धध रह्यो छे. जे के विषय लोगोभां आराज्ज भवेदो आ एव शरीर वगेरेनी पुष्टि परिवंदन, मानन, पूजन अने जाति मरणुना मोचन माटे तेमन् दुःखोने दूर करवा माटे पृथिवीकायना समारंभ इप शस्त्रोने प्रयोग करे छे पणु छनाथे ने कर्मबन्ध, मोह, मरणु अने नरक इप इज्जने लोगवनार न गने छे. ज्येठला माटे आपणु थोकरस कही शरीरि तेम धीरे

પરાઃ સર્વદોષનિર્મુક્તં શુદ્ધમદ્વિતીયમનવદ્યં જૈનધર્મં સાવચપૂજોપદેશેન કુપ્રાવચનિકોપમેયં કુર્વન્તઃ સંસારદાવાનલે જનાન્ પાતયન્તઃ સ્વયં ચ મોહનીયકર્મોદયવશાદન્ધ્યા ઇવ સન્માર્ગતો નિપતન્તઃ સ્વાત્માનમહિતેન મિથ્યાત્વેન ચ પુનઃ પુનઃ સંયોજયન્તિ । યદિ મૃગતૃષ્ણાઽપિ કેષાંચિત્ પિપાસાકુલાનાં સ્વચ્છજલધારાવાહિની ભવેત્, તદા પ્રતિમાપૂજાપિ તેષાં દ્રવ્યલિજ્જિનાં પરિણામશુદ્ધિ સંપાદિની અટવિધકર્મદલની નરામરશિવસુખવિધાયિની ભવેદિતિ વોદ્યમ્ !

હૈ । અતઃ પ્રતિમાપૂજન કા ઉપદેશ નિશ્ચિત્ત હૈ કિ પ્રવચનમાર્ગ સે વિરુદ્ધ હૈ । ઇસ વિરુદ્ધ પ્રરુપણા કરને મેં તત્પર મનુષ્ય સર્વ દોષોં સે રહિત, શુદ્ધ ઓર અદ્વિતીય એવં અનવચ ઇસ જૈનધર્મ કો સાવચ પૂજા કે ઉપદેશ સે કુપ્રાવચનિક કી તરહં કલંકિત-સદોષ કર સંસારરૂપી દાવાનલ મેં ખોલે ખાલે પ્રાણિયોં કો ડાલ રહે હૈં ઓર સ્વયં મી મોહનીય કર્મ કે ઉદય સે અન્ધ કી તરહ બન કર સન્માર્ગ સે વિમુક્ષ હોતે હુપ અપની આત્મા કો અહિત ઓર મિથ્યાત્વ કે કલંક સે કલુષિત કર રહે હૈં । અરે-કહીં મૃગતૃષ્ણા સે મી પ્યાસે વ્યક્તિયોં કી પ્યાસ વુદ્ધતી હૈં ? યદિ નહીં, ફિર મૃગતૃષ્ણા તુલ્ય ઇસ પ્રતિમા પૂજન સે કર્તાં કી સમ્યક્ત્વ ઓર હિત કી પ્રાપ્તિ હોને રૂપ પ્યાસ કૈસે વુદ્ધ સકની હૈ-સોચો । હાં । યદિ એસા હોતા કિ મૃગતૃષ્ણા સ્વચ્છજલ કી ધારા વહાકર પ્યાસે પ્રાણિયોં કી તૃષા કો શાંત કરતી-તો યહ પ્રતિમા પૂજન મી દ્રવ્યલિજ્જિ યોં કે પરિણામોં મેં શુદ્ધિ કરતી હુઈં ઉનકે અષ્ટકર્મોં કોં દલને વાલી ઓર ઉન્હેં નર, અમર એવં શિવસુખ પ્રદાન કરને વાલી મી હો સકતી ।

કે પ્રતિમા પૂજનનો ઉપદેશ પ્રવચન માર્ગથી વિરુદ્ધ છે આ બાતની વિરુદ્ધ પ્રરૂપણા કરવામાં તત્પર માણસ બધા દોષોથી રહિત, શુદ્ધ, અદ્વિતીય અને અનવચ આ જૈન ધર્મને સાવચ પૂજના ઉપદેશથી કુપ્રાવચનિકની જેમ કલંકિત દોષયુક્ત બનાવીને સંસાર રૂપી દાવાનલમાં લોળા પ્રાણીઓને નાખી રહ્યો છે અને બાતે પણ મોહનીય કર્મના ઉદયથી આંધળાની જેમ થઇને સન્માર્ગથી દૂર થતાં પોતાના આત્માને અહિત અને મિથ્યાત્વના કલંકથી કલુષિત કરી રહ્યો છે. મૃગજળથી પણ કોઈ દિવસે તરસ્યા માણસોની તરસ મટી શકી છે ? જો આરું નથી તો પછી મૃગજળ જેવી આ પ્રતિમા પૂજનથી કર્તાની સમ્યક્ત્વ અને હિતની પ્રાપ્તિ થવા રૂપ તરસ કેવી રીતે મટી શકે તેમ છે. જોમૃગજળ નિર્મળ પાણીને બરાે થઇને તરસ્યાં પ્રાણીઓની તરસ મટાડી શકત તો આ પ્રતિમા પૂજા પણ દ્રવ્યલિગિઓના પરિણામોમાં શુદ્ધિ કરનારી તેમના આઠ કર્મોને નષ્ટ કરનારી અને નર, અમર અને શિવ-સુખ આપનારી પણ થઈ શકત ?

यत्तु—ब्राह्मीलिपिरिव प्रतिमा बन्धा, ' नमो वंभीए लिबीए " इतिपदं यद् व्याख्याप्रज्ञप्तिरादानुपन्यस्तं, तत्र ब्राह्मीलिपिरक्षरविन्यासः, सा यदि श्रुतज्ञानस्याऽऽ कारस्थापना, तदा तद्वन्धत्वे साकारस्थापनाया भगवत्प्रतिमायाः स्पष्टमेव बन्धस्वम् तुल्यन्यायादित्युक्तं, तन्मोहनोयकर्मोदयविलसितम्—

श्रुतज्ञानरूपस्य भावश्रुतस्य स्थापना—श्रुतज्ञानवतः श्रुतपठनादिक्रियावतः साध्वादेश्वित्रादिकं भवति, श्रुततद्वतोरभेदोपचारात् साध्वादिः श्रुतमुच्यते । स्थापनावश्यकस्य स्थापनाश्रुतस्य च तथैवानुयोगद्वारे भगवता वर्णनात् । यदेवं लिपिः श्रुतज्ञानस्य स्थापनारूपत्वं न प्राप्नोति । तस्मात् प्रतिमायां ब्राह्मीलिपिदृष्टान्त प्रदर्शनमुत्सृज्यप्ररूपणम् ।

किञ्च—प्रतिमापूजन की पुष्टि के लिये " नमो वंभीए लिबीए " व्याख्याप्रज्ञप्ति की आदि में लिखे हुए इस सूत्र के बल पर जो उसके पक्षपाती जन यह कहते हैं—“ कि अक्षर विन्यासरूप ब्राह्मीलिपि जिस प्रकार श्रुतज्ञान के आकार की स्थानपरूप होकर बन्ध-बन्धनीय मानी गई है उसी प्रकार साकार स्थापनारूप भगवान की प्रतिमा में भी बन्धनीयता स्पष्ट ही है ” सो यह कथन विचार करने पर ठीक नहीं बैठता है ।

तथाहि—श्रुतज्ञानरूप भावश्रुत की स्थापना—श्रुतज्ञानसंपन्न, और श्रुत के पठन की क्रिया विशिष्ट ऐसे जो साधु आदिजन हैं उनके चित्र आदि स्वरूप पड़ती है अर्थात् श्रुतज्ञानी साधु आदि के चित्रस्वरूप ही श्रुतज्ञानरूप भावश्रुतकी स्थापना होती है । ब्राह्मीलिपि अक्षर विन्यास है । वह श्रुतज्ञान की स्थापना है । यहाँ श्रुतज्ञानी साधु आदि को जो

अने श्रील्लुं पण्डु के—प्रतिमा पूजननी पुष्टि माटे “ नमो वंभीए—लिबीए ” व्याख्या प्रज्ञप्तिनी शङ्क्यातमां आवेला आ सूत्र भुज्ज ने तेनी तरङ्गदारी करनारा भाषुसो आभ कडे छे के “ अक्षर विन्यास इप आक्षि लिपि नेम श्रुतज्ञानना आकारनी स्थापना इप थधने बन्ध-बन्धनीय मानवायां आवी छे, तेमञ्ज आकार—स्थापना इप लगवाननी प्रतिमायां पण्डु वन्धनीयता स्पष्ट हेभीती वात न् छे परंतु आ कथननेः पण्डु विचार कर्या भाद योग्य लागतुं नथी. तेमञ्ज श्रुतज्ञान इप भावश्रुतनी स्थापना—श्रुतज्ञान संपन्न अने श्रुतना पठननी क्रिया विशिष्ट जेवा ने साधु वगेरे लोके छे तेमना चित्र वगेरे स्वरूप होय छे. अटले के श्रुतज्ञानी साधु वगेरेना स्वरूप न् श्रुतज्ञान इप भावश्रुतनी स्थापना होय छे आक्षि—लिपि अक्षर विन्यास छे. ते श्रुतज्ञाननी स्थापना छे. अर्धी श्रुतज्ञानी साधु वगेरेने ने भावश्रुत इप कडेवायां आये छे ते श्रुतज्ञान

યત્તુ-અભયદેવીયત્તૌ સંજ્ઞાક્ષરરૂપં દ્રવ્યં શ્રુતં નમસ્કુર્વચાહ-‘ ણમો વંમીએ લિવીએ ’ ઇત્યુક્તં તદ્ બ્રાન્તિમૂલકમ્ પુસ્તકવર્તિન્યા અકારાદિવર્ણસંકેતરૂપાયા લિપેર્દ્રવ્યશ્રુતત્વં ન સંભવતિ યતઃ શ્રુતં નામ દ્વાદશાક્ષીરૂપમર્હત્પ્રવચનં શાસ્ત્રં યસ્ય કસ્યચિજ્જીવસ્ય શિક્ષિતં સ્થિતં જિતં યાવદ્ વાચનોપગતં ભવતિ સ જન્તુસ્તત્ર વાચનાપ્રચ્છનાદિભિર્વર્તમાનોઽપિ શ્રુતોપયોગાભાવાદાગમમાશ્રિત્ય દ્રવ્યશ્રુતમ્, આ

ભાવશ્રુતરૂપ કહા ગયા હૈ-વહ શ્રુતજ્ઞાન ઔર શ્રુતજ્ઞાન મૈં અભેદ કે ઉપચાર સે હી કહા ગયા સમજ્ઞાના ચાહિયે । હસી રૂપ સે હી ભગવાન ને અનુયોગ દ્વાર મૈં સ્થોપના આવરૂપક ઔર સ્થાપના શ્રુત કા કથન કિયા હૈ । અતઃ લિપિ મૈં ભાવશ્રુત કી કલ્પના સે શ્રુતજ્ઞાન કી સ્થાપના માનના કથમપિ યુક્તિ સંગત નહીં હૈ । હસી પ્રકાર લિપિ મૈં દ્રવ્યશ્રુતતા મી નહીં આતી હૈ । ક્યોં કિ દ્વાદશાંગીરૂપ અર્હત પ્રવચન કા નામ શ્રુત હૈ । શ્રુતજ્ઞાન કા જ્ઞાતા જબ ઉસમૈં અનુપયુક્ત અવસ્થાનવાલા હૈ । તબ વહી આગમ કી અપેક્ષા દ્રવ્યશ્રુત કહા જાતા હૈ । સંજ્ઞા અક્ષર રૂપ આકૃતિ કો દ્રવ્યશ્રુત નહીં કહા હૈ । હસ કથન સે હસ વાત કી પુષ્ટિ હોતી હૈ કિ-અભયદેવ ચિરચિત વૃત્તિ મૈં “ ણમો વંમીએ લિવીએ ” હસ પદ કા અર્થ સંજ્ઞા અક્ષરરૂપ દ્રવ્યશ્રુત પરક માનકર જો નમસ્કાર કિયા ગયા હૈ -વહ બ્રાન્તિમૂલક હૈ, ક્યોં કિ પુસ્તક મૈં રહી હુઈ સંકેતિત અકાર આદિ વર્ણ કી આકૃતિ મૈં દ્રવ્યશ્રુતતા સંભવિત નહીં હોતી હૈ । વાચના, પૃચ્છના આદિ સે અધિગત શ્રુત મૈં અનુપયુક્તજ્ઞાતા હી દ્રવ્યશ્રુત હૈ હસી

અને શ્રુતવાનમાં અલેદોપચારથી જ કહેવાયેલો સમજવો જોઈએ. આ રૂપથી જ ભગવાને અનુયોગદ્વારમાં સ્થાપના આવરૂપક અને સ્થાપના શ્રુતતું કથન કર્યું છે. એટલા માટે લિપિમાં ભાવશ્રુતની કલ્પનાથી શ્રુતજ્ઞાનની સ્થાપના માનવી કોઈ પણ રીતે યોગ્ય નથી આ પ્રમાણે જ લિપિમાં દ્રવ્યશ્રુતતા પણ આવતી નથી. કેમકે દ્વાદશાંગી રૂપ અહીં ત પ્રવચનતું નામ શ્રુત છે. આ શ્રુતજ્ઞાનનો જ્ઞાતા બ્યારે તેમાં અનુપયુક્ત અવસ્થારાજો હોય છે ત્યારે તે આગમની અપેક્ષાએ દ્રવ્યશ્રુત કહેવાય છે. સંજ્ઞા અક્ષર રૂપ આકૃતિને દ્રવ્યશ્રુત કહી નથી. આ કથનથી આ વાતની પુષ્ટી થાય છે કે અભયદેવ વિરચિત વૃત્તિમાં “ ણમો વંમીએ લિવીએ ” આ પદનો અર્થ સંજ્ઞા અક્ષર રૂપ દ્રવ્ય શ્રુતપરક માનીને જે નમસ્કાર કરવામાં આયા છે તે ભ્રાંતિમય છે, કેમકે પુસ્તકમાં રહેલી સંકેતિત અકાર વગેરે વર્ણની આકૃતિમાં દ્રવ્યશ્રુતતા સંભવિત નથી હોતી. વાચના, પૃચ્છના વગેરેથી અધિગત શ્રુતમાં અનુપયુક્ત જ્ઞાતા જ દ્રવ્યશ્રુત છે

चाराङ्गादिकं प्रतिपूर्णघोषं कण्ठोष्ठविप्रसृक्तं पठितवतः साध्वादेस्तदर्थज्ञानाभावे सति द्रव्यश्रुतत्वं भवति, तथैवानुयोगद्वारे द्रव्यश्रुतस्य वर्णनात् । वर्णसंकेतरूपा लिपिस्तु न शब्दात्मिका, यतो वर्णस्यैवोच्चारणमुपपद्यते, न तु तत्संकेतस्य लिपिमतः पुस्तकादेस्तु श्रुतं शिक्षितं यावद् वाचनोपगतं न भवितुमर्हति अतस्तस्य द्रव्यश्रुतत्वं न संभवति कथं पुनस्तद्गतलिपेस्तत्संभवः ? कथमपि नहि ।

किं च—द्रव्यश्रुतस्य बन्धत्वमेव नास्ति, अनुपयुक्तवाचरणगुणशून्यत्वाच्च, तस्माद् भावश्रुतस्यैव बन्धत्वप्राप्तौ द्रव्यश्रुतनमस्कारकल्पनं भ्रान्तिमूलकमेव । 'नमो बंभीए लिवीए' अस्यायमर्थः—वर्णात्मकभाषासंकेतरूपा लिपित्राहीलिपिः

प्रकार द्रव्यश्रुत का वर्णन अनुयोगद्वार में किया गया मिलता है । अकार आदि वर्णरूप से संकेतित लिपि में शब्दात्मकता आभी नहीं सकती है—क्यों कि वर्ण का ही उच्चारण होता है—उसके संकेत का नहीं । लिपियुक्त पुस्तकादि में भी वाचना आदि कुछ नहीं होता है । क्यों कि वह जड़ है—चेतन में ही ये वाचना पृच्छना आदि होते हैं । अतः उस में द्रव्यश्रुतता मानना सर्वथा अयुक्त है इसलिये यह निश्चित होता है कि अकार आदि वर्णरूप से संकेतित लिपि में और इस लिपि विशिष्ट पुस्तकादिक में द्रव्यश्रुतता किंचित मात्र भी संभावित नहीं है ।

किञ्च—अनुपयुक्त होने से और चरणगुण शून्य होने से द्रव्यश्रुत में बंधता आ ही नहीं सकती है । भावश्रुत में ही उपयोग सहित और चरणगुण युक्तता होने से बंधता आती है—अतः द्रव्यश्रुत में नमस्कार करने की कल्पना करना केवल भ्रान्तिमूलक ही है “नमो बंभीए

आ रीते द्रव्यश्रुतत्वं वर्णन अनुयोग द्वारमं करवाभां आण्युं छे अकार वगेरे वर्णरूपथी स'केतित लिपिमां शब्दात्मकता आवी शके तेम नथी, डेमके उच्चारण तो द्रव्यत्वं न् थाय छे, तेना स'केततुं नहि. लिपि युक्त पुस्तके वगेरेमां पणु वाचना वगेरे क'र्ष न् होतुं नथी, डेमके ते न् छे, चेतनमां न् वाचना पृच्छना वगेरे थाय छे. अथी तेमां द्रव्यश्रुतता मानवी साव अयोग्य छे. अथी अे वात शोक्कस थाय छे के अकार वगेरे वर्णरूपथी स'केतित लिपिमां अने आ लिपि विशिष्ट पुस्तके वगेरेमां द्रव्यश्रुतता थोडी पणु स'भवित नथी.

अने भीणुं पणु डे—अनुपयुक्त होवाथी अने अरण्यशुण्य शून्य होवाथी द्रव्यश्रुतमां बंधता आवी न् शकती नथी. भावश्रुतमां न् उपयोग सहित अने अरण्यशुण्य युक्तता होवाथी बंधता आवे छे. अटला माटे द्रव्यश्रुतमां नमस्कार करवानी कल्पना करवी भ्रान्तिमूलक न् छे. “नमो बंभीए लिवीए” आने अर्थ

ब्राह्मीशब्दस्य भाषार्थकत्वात्, उक्तं चाभरकोशे—‘ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाण्-वाणी सरस्वती’ इति । यद्वा—अष्टादशमकारा लिपिः श्रीसुधाशेयजिनेन ब्राह्मीनामिकां स्वसृतां प्रदर्शिता तस्मात् सा लिपिर्ब्राह्मीत्युच्यते । लिपिज्ञानस्य श्रुतज्ञानोपयोगितया भावश्रुतहेतुं लिपिज्ञानरूपं भावलिपिं वन्दमानः श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह—‘ नमो बंभीए लिवीए ’ इति । श्रुतज्ञानं प्रति लिपिज्ञानं कारणं, यतो लिपिज्ञानेन तत्संकेतितशब्दस्मरणं, तत्तदर्थज्ञानं जायते । तस्माद् भगवदुक्ता-र्थस्य प्रतिबोधनाय तद्वोधकशब्दजातरूपं श्रुतं लिपिवद् कर्तुकामः श्रुतबोधिकां

लिवीए ” इसका अर्थ इस प्रकारसे संगन बैठता है—अकार आदि वर्णात्मक भाषा के संकेतरूप लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि है—ब्राह्मी शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अमर कोष में भी यही बात कही है—“ ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाण् वाणी सरस्वती ” । अथवा—श्री आदिनाथ प्रभु ने अपनी ब्राह्मी नाम की पुत्री को १८ प्रकार की लिपि कही थी इसलिये भी उस लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि इस प्रकार से पड़ गया है । श्रुतज्ञान में उपयोगी होने से इस लिपि के ज्ञान को भावश्रुत का कारण माना है । इसलिये लिपि ज्ञानरूप भाव लिपि को वन्दन करते हुए श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं “ नमो बंभीए लिवीए ” । श्रुतज्ञान के प्रति लिपि ज्ञान कारण है—क्यों कि लिपि के ज्ञान से अकारादि वर्णात्मक लिपि रूप से संकेतित उस उस शब्द का स्मरण होता है और उससे उसके अर्थ का ज्ञान होता है । अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित अर्थ को समझाने के लिये उस अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्दों के

आ प्रभाषे सुसंगत येसी शके छे के—अकार वगेरे वर्णात्मक भाषाना संकेत रूप लिपिनुं नाम ब्राह्मी लिपि छे । ब्राह्मी शब्द ‘ भाषा ’ आ अर्थमां प्रयुक्त थये छे । अमरकोशमां पणु अे व वात कडेवामां आवी छे के “ ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाण्वाणी सरस्वती ” अथवा तो श्री आदिनाथ प्रभुअे पोतानी ब्राह्मी नामनी पुत्रीने अकार प्रकारनी लिपिआ भतावी हती अेटला माटे पणु आ लिपिनुं नाम ब्राह्मी लिपि पडी गथुं छे । श्रुतज्ञानमां उपयोगी होवाथी आ लिपिना ज्ञानने भावश्रुतनुं कारण मानवामां आव्यु छे । अथी लिपिज्ञान रूप भावलिपिने वन्दन करतां श्रीसुधर्मास्वामी कडे छे के “नमो बंभीए लिवीए” श्रुतज्ञानना प्रति लिपिज्ञान कारण छे केअके लिपिना ज्ञानथी अकार वगेरे वर्णात्मक लिपि रूपथी संकेतित ते शब्दनुं स्मरण थाय छे । अने तेनाथी तेना अर्थनुं ज्ञान थाय छे अेटला माटे भगवान्द्वारा प्रतिपादित अर्थने समझववा माटे ते अर्थनुं

भावलिपिं प्रति समुपजातभक्तिः श्रीसुधर्मा स्वामी लिपिज्ञानस्य माहात्म्यं प्रकट-
यन् भावश्रुतं प्रति भावलिपेः कारणतयाऽभ्यर्हितत्वेन ततः पूर्वं भावलिपिवन्दनं
कृतवान्, तत्पश्चाद् भावश्रुतं नमस्कुर्वन्वादीत् ' नमः सुयस्स ' इति ।

यत्तु-अभयदेवसूरिणा रचकृतटीकायामुक्तम् ' जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ '
त्ति एकस्यां वाचनायामेतावदेव दृश्यते । वाचनान्तरे तु- ' ण्हाया जाव सन्वालं-
कारविभूसिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमिन्ता जेणामेव जिणघरे
तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जिणघरं अणुपविसइ २ ता, जिणपडिमाणं

समूहरूप श्रुत को लिपिबद्ध करने की इच्छा से श्री सुधर्मास्वामी कि
जिन की भक्ति श्रुतबोधक भावलिपि के प्रति जागृत हुई है लिपिज्ञान
के माहात्म्य को प्रकट करते हुए भावश्रुत को नमस्कार करने के पहिले
भावलिपि को ही नमस्कार करते हैं क्यों कि भावश्रुत के प्रति भाव-
लिपि को ही कारणता है, और इसी निमित्त से यह उसकी अपेक्षा
पूज्य मानी गई है भावलिपि को नमस्कार करने के पश्चात् ही उन्हीं ने
" नमः-सुयस्स " भावश्रुत को नमस्कार इस सूत्र द्वारा किया
है । " जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ " इस पाठ को लेकर जो टीकोकार
अभयदेव सूरि ने जिनप्रतिमा कि पूजन करने की बात कही है-सो ठीक
नहीं हैं । क्यों कि मालूम होता है, कि उन्हें मूल पाठ का निश्चय ही
नहीं हुआ है-कारण कि एक वाचना में तो यही पाठ मिलता है-तब
कि दूसरी वाचना में " ण्हाया जाव सन्वालंकारविभूसिया मज्जणघ-
राओ पडिनिक्खमइ, २ जेणामेव जिणघरे तेणामेव उवागच्छइ, २

प्रतिपादन करनाश शब्दोना समूहइप श्रुतने लिपिबद्ध करवानी छिन्हाथी श्रीसुधर्मा
स्वामी-के जेभनी श्रुतयोधक लावलिपि प्रत्ये लक्षित उत्पन्न थथ छे-लिपि
ज्ञानता भाडात्म्यने प्रगट करतां लावश्रुतने नमस्कार करतां पडेलीं लावलिपि-
ने ज नमस्कार कर्था छे केभके लावश्रुत प्रत्ये लावलिपि ज कारवृता छे अने
आ कारवृथी ज आ तेना करतां पूज्य मानवामां आवी छे. लावलिपिने नम-
स्कार कर्था पाठ ज तेभले " नमः सुयस्स " आ सूत्र वडे लावश्रुतने नम-
स्कार कर्था छे. " जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ " आ पाठना आधारै जे टीका-
कार अक्षयदेवसूरिजे छनप्रतिमानी पूजनी वात छी छे ते योग्य नथी केभके
तेभने भूण पाठने निश्चयज थयो नथी जेभ जलुाथ आवे छे कारवृ के जेक
वाचनार्थां तो जे ज पाठ भणे छे. त्यारे भील वाचनार्थां—

(ण्हाया जाव सन्वालंकारविभूसिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, २ जेण-
मेव जिणघरे तेणामेव उवागच्छइ, २ जिणघरं अणुपविसइ, जिणपडिमाणं आलोए

आलोए पणामं करेइ २ चा, लोमहृत्थयं परामुसइ २ चा, एवं जहा सूरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जाव धूवं डहइ ' च्ति । तेन मूलपाठस्य निश्चयस्तस्य नाभूदिति विज्ञायते ।

अतः परं च—‘ वामं जाणुं अंचेइ दाहिणं जाणुं धरणियलंसि णिवेसेइ २ ’ इति प्रतिमापूजकैः स्वीकृतो मूलपाठस्तत्र वर्तते, टीकाकारस्तु—‘ दाहिणं जाणुं धरणीतलंसि निहट्टु ’ इति पाठं टीकायां विलिख्य निगदति—‘ निहट्टु ’ निहत्य स्थापयित्त्वेत्यर्थः, ‘ णिवेसेइ ’ इत्यत्र—‘ निहट्टु ’ इति पाठभेदः कृतः । तेनाप्येतद् विदितं भवति—यस्य यादृशं मनस्यभिरुचितं स तादृशमिदं मूलपाठं प्रकल्पयति स्म इति ।

जिणघरं अणुपविसइ जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेइ, २ लोमहृत्थयं परामुसइ, २ एवं जहासूरियाभो जिनपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जाव धूवं डहइ ” च्ति यह पाठ मिलता है । इसके बाद “ वामं जाणुं धरणियलंसि णिवेसेइ २ ” ऐसा पाठ मिलता है—और यही पाठ प्रतिमा पूजकों को संमत है । परन्तु टीकाकार श्री अभयसूरि ने “ दाहिणं जाणुं धरणीतलंसि निहट्टु ” ऐसा पाठ टीकामें रखकर ‘ निहट्टु ’ इस पद की टीका “ स्थापना करके ” ऐसी की है । इस प्रकार “ णिवेसेइ ” की जगह ‘ निहट्टु ’ ऐसा पाठ भेद किया गया है । इसी प्रकार प्रतिमा पूजकों द्वारा स्वीकृत “ तिकखुत्तो सुद्धाणं धरणियलंसि नमेइ ” इस मूल पाठ में भी परिवर्तन “ नमेइ ” क्रिया पद में “ निवेशयति ” इस रूप से कर दिया है । इससे यह बात निश्चित होनी है कि जिन के मन

पणामं करेइ, २ लोमहृत्थयं परामुसइ, २ एवं जहा सूरियाभो जिनपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जाव धूवं डहइ) च्ति,

आ पाठ भणे छे त्यारपछी “ वामं जाणुं धरणियलसि णिवेसेइ २ ” आ नतने पाठ भणे छे अने अे न पाठ प्रतिमा पूजना तरक्षारीअेने भाटे संमत रूप छे. पणु टीकाकारश्री अलयदेवसूरिअे “ दाहिणं जाणुं धरणीतलंसि निहट्टु ” आ नतने पाठ टीकाभां करीने “ निहट्टु ” आ पदनी टीका-स्थापना करीने आ प्रभाणु करी छे. आ रीते “ णिवेसेइ ” ना स्थाने “ निहट्टु ” आ नतने पाठ लेह करवाभां आच्ये छे. आ रीते न प्रतिमा पूजना तरक्षारीअे वडे स्वीकृत (तिकखुत्तो सुद्धाणं धरणीतलंसि नमेइ) आ भूणपाठभां पणु “ नमेइ ” क्रियापदभां “ निवेशयति ” आ नतनुं परिवर्तन करी नाञ्छुं छे. आधी आ वातनी भात्री थ य छे के अेना मनभां अेवे पाठ गभ्ये तेणु ते प्रभाणु न क्षवे तेम पोतानी कटपनाधी भूण पाठभां

तदनन्तरं पुनः प्रतिमापूजकैः स्वीकृते-मूलपाठे-‘ तिवस्वुत्तो मुद्धानं धरणि-
यलंसि नभेइ ’ इति दृश्यते, ‘नभेइ’ इत्यत्र टीकाकारः-‘ निभेसेइ ’ इति लिखित्वा
निवेशयतीत्यर्थ उक्तः, तेनात्र-मूलपाठस्य स्वस्वकपोलकल्पितत्वं सिध्यति, द्रौप-
द्याश्चरिते टीकाकृताऽभयदेवसूरिणा पुनरीदृशः पाठो लब्धः-

‘ईसिं पच्चुन्नमति २त्ता, करयल०जाव कट्टु एवं वयासी-नमोत्थु णं अरि-
हंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं वंदइ नमंसइ २ जिणघराओ पडिनिक्खमइ ’ इति
इसं पाठं टीकायां लिखित्य टीकाकारः प्राह—

‘तत्र वन्दते=चैत्यवन्दनविधिना प्रसिद्धेन, नमस्यति=पश्चात् प्रणिधानादियोगे-
नेति वृद्धाः । न च द्रौपद्याः प्रणिपातदण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे इति सूत्र-

में जैसा पाठ रूचा है उसने उसी प्रकार मूल पाठ में जिन कल्पना का
पाठ प्रक्षिप्त करके पाठ सेव कर दिया है। अतः स्वकपोलकल्पित होने
से असली मूल पाठ का निश्चय ही नहीं होता है, द्रौपदी के चरित में
टीकाकार अभयदेवसूरि को इस प्रकार का पाठ उपलब्ध हुआ-ईसिं
पच्चुन्नमति २, करयल० जाव कट्टु एवं वयासी-नमोत्थुणं अरिहंताणं
भगवंताणं जाव संपत्ताणं वंदइ, नमंसइ २, जिणघराओ पडिनिक्खमइ
इति ” पाठ को लिखकर उन्होंने ने टीका की। वन्दते-नमस्यति पद के
अर्थ का खुलाशा करते हुए वे कहते हैं कि प्रसिद्ध चैत्यवन्दन विधि के
अनुसार नमन करना वंदना और इसके बाद प्रणिधान आदि के योग
से नमस्कार करना नमन है ऐसा सिद्धान्त वृद्धों का है। सूत्र में जब
द्रौपदी का प्रणिधान दण्डक मात्र चैत्यवन्दन कहा है-अर्थात् दण्ड की
तरह प्रणाम करने रूप चैत्यवन्दन कहा गया है-तो इसी से यह

क'छके ठभेरेा करीने पाठ लेक करी नापये छे. अटला माटे स्वकपोलकल्पित
छेवा अदल आसल भूगपाठने। निश्चय न थथ शके तेम नथी. द्रौपदी अरितमां
टीकाकार अलभयदेवसूरिने। आ नतने। पाठ मपये छे के- (ईसिं पच्चुन्नमति
२, करयल० जाव कट्टु एवं वयासी-नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव
संपत्ताणं वंदइ, नमंसइ २, जिणघराओ पडिनिक्खमइ इति) आ पाठने लपीने
तेमणे टीका करी छे. ‘ वन्दते ’ ‘ नमस्यति ’ पठना अर्थानु' स्पष्टीकरण करतां
तेमो कडे छे के प्रसिद्ध चैत्य वंदन विधि सुत्रम नमन करवुं. वंदना अने
त्यारपणी प्रणिधान वगेरेना योगथी नमस्कार करये नमन छे, वृद्धोने। आ
नतने। सिद्धान्त छे. सूत्रमां न्यारे प्रणिपात दण्डक मात्र चैत्यवन्दन कहुं छे
त्यारे अनाधी न आ वात सिद्ध थथ नय छे के नील श्रावकेने पणु आ

प्रामाण्यादन्यस्यापि श्रावकादेस्तावदेव तदिति मन्तव्यं, चरितानुवादरूपत्वादस्य, इति । न चैत्यस्य मन्तव्यमित्यत्रान्वयः । द्रौपदी प्रणिपातदण्डकमात्रं—दण्डवत्प्रणाममात्ररूपं चैत्यवन्दनं—प्रतिमावन्दनं कृतवतीत्यर्थं बुद्ध्वाऽन्योपि श्रावक एतत्सूत्रं प्रमाणमाश्रित्य तावदेव तत् प्रणिपातदण्डकमात्रं वन्दनं कुर्यादिति न मन्तव्यम्, तत्र कारणमाह ' चरितानुवादरूपत्वादस्य ' इति । अस्य एतत्सूत्रस्य चरितानुवादरूपत्वात् ज्ञातप्रदर्शकतया यथावृत्तस्य तत्तच्चरितस्यानुवादरूपत्वात्, न तु भगवता ' जयं चरे जयं चिद्धे ' इत्यादिवत् कचिदाज्ञा प्रदत्ता ।

तस्मादस्य विधिनिषेधबोधकत्वं न संभवतीत्याह—' न च चरितानुवादवचनं भी सिद्धं हो जाती है कि अन्य श्रावकों को भी इसी प्रकार वन्दन नमन करना चाहिये—सो इस प्रकार का कथन ठीक नहीं है । कारण कि यह चरितानुवाद रूप है ।

भावावार्थ—कोई अन्य श्रावक जन ऐसा समझकर कि सूत्रमें जब द्रौपदी ने दण्डकी तरह होकर चैत्यवन्दन किया है तो इसी सूत्रकी प्रमाणता लेकर हमें भी इसी तरहसे प्रणाम करना चाहिये सो इस प्रकार की मान्यता उनकी ठीक नहीं है कारण कि यह चरित का ही अनुवादक है । चरितका अनुवादक वाक्य विधेयरूप से मान्य नहीं होता है । यह सूत्र चरित का अनुवादक रूप है—इसका यह भाव है कि यह वाक्य ज्ञात अर्थ का प्रदर्शक होने से पहिले जो जो बातें २ जिस २ रूपमें हो चुकी हैं उन सब का अनुवादक रूप है । " जयं चरे जयं चिद्धे " इत्यादि सूत्र की तरह यह विधि वाक्य नहीं है । इसीलिये भगवान ने प्रतिमा के पूजन और वंदना, नमन करने आदि की आज्ञा कहीं भी सूत्र में नहीं दी

प्रमाणे च वंदनं नमनं करवां नोद्यते. तो आ नतनुं कथन योग्य नहीं, केभके आ चरितानुवाद इयं छे.

भावार्थ—गन्ते ते श्रावक आभ समल्लने के सूत्रमां न्य.रे द्रौपदीये इंडाकारे यधने चैत्य वंदनं कथुं छे तो आ सूत्रने च प्रमाणे स्वइयं मानीने आभारे पणु आ प्रमाणे च प्रणाम करवा नोद्यते. तो तेमनी आ वात पणु ठीक कही शकय तेम नहीं, केभके आ चरितनेो च अनुवादक छे. चरितनुं अनुवादक वाक्य विधेय इयमां मान्य होतुं नहीं. आ सूत्र चरितनेो अनुवादक इयं छे. आनेो भाव ये छे के आ वाक्य ज्ञात अर्थनेो प्रदर्शक होवाथी ने ने वातो ने इयमां यधं बुद्धी छे ते गधातुं अनुवादक इयं छे—' जयं चरे जयं चिद्धे " इत्यादि सूत्रनी नेम आ विधिवाक्य नहीं. ओटला भाटे भगवाने प्रतिमाना पूजनं चने वंदनं, नमनं करवा वगेरेनी आज्ञा सूत्रमां

નાનિ ત્રિધિનિષેધસાધકાનિ ભવન્તિ અન્યથા સૂર્યાદેવાદિવક્તવ્યતાયાં વહૂનાં શસ્ત્રાદિવસ્તૂનામર્ચનં શ્રૂયતે ઇતિ તદપિ વિધેયં સ્યાત્ ' ।

અત્રેદં વોધ્યમ્—' ન ચ દ્રૌપદ્યાઃ પ્રણિપાતદણ્ડકમાત્રં ચૈત્યવંદનમભિહિતં સૂત્રે' ઇત્યાદિ વાક્યસન્દર્ભેણ ટીકાકારેણાભયદેવસૂરિણા દ્રૌપદ્યા વન્દનમેવ કૃતં ન તુ પૂજનાદિકમિતિવોધયતા તાવાનેવ પાઠઃ સ્વીકૃત ઇતિ । તસ્માદ્ વિધિરૂપેણ પ્રતિ માપૂજનાય ભગવતોઽર્હત આજ્ઞા ન લભ્યતે ઇતિ વાદસ્તાવદાસ્તામ્ , ચરિતાનુવાદ-રૂપેણાપિ શાસ્ત્રે ભગવતાઽર્હતપ્રતિમાપૂજનં કાપિ નોક્તમિતિ સિદ્ધમ્ । एवं चायमे-

है चरितानुवादरूप वाक्य में विधि और निषेध बोधकता संभवित नहीं होती है इसी ध्येय से " न च चरितानुवादवचनानि विधिनिषेध-साधकानि भवन्ति " ऐसा माना जाता है नहीं तो फिर, सूर्याभदेव द्वारा जिस प्रकार बहुत शस्त्र आदि वस्तुओं का पूजन करना सुना जाता है उसी प्रकार प्रतिमा पूजकों के लिये भी इनका पूजन विधेय मान लेना चाहिये ।

આવાર્થ—“ ન ચ દ્રૌપદ્યાઃ પ્રણિપાતદણ્ડકમાત્રં ચૈત્યવંદનમભિહિતં સૂત્રે ” ઇત્યાદિ વાક્ય કે દ્વારા ટીકાકાર અભયસૂરિ ને ઇતના હી પાઠ સ્વીકૃત ક્રિયા હૈ કિ દ્રૌપદી ને સિર્ફ વંદના હી કી હૈ, પ્રતિમાપૂજન નહીં હસલિયે હસસે યહ વાત સિદ્ધ હો જાતી હૈ જબ ચરિતાનુવાદ રૂપ સે બી શાસ્ત્ર મેં કહીં બી ભગવાન ને અર્હન કી પ્રતિમા કા પૂજન નહીં કહા હૈ । તવ વિધિરૂપ સે પ્રતિમા પૂજન કે લિયે ભગવાન અર્હત કી આજ્ઞા હૈ એસી માન્યતા કોરી કલ્પનામાત્ર હી હૈ । હસ પ્રકાર સ્થાનક-

કોઈ પણ સ્થાને કરી નથી ચરિતાનુવાદ રૂપ વાક્યમાં વિધિ અને નિષેધ બોધકતા સંભવિત થતી નથી. આ ધ્યેયથી (ન ચ ચરિતાનુવાદવચનानि विधि-निषेधसाधकानि भवन्ति) એમ માનવામાં આવે છે. નહિતર પછી સૂર્યાભદેવ વડે જેમ ઘણાં શસ્ત્રો વગેરે વસ્તુઓની પૂજા કરેલી વાત સંભળાય છે તેમજ પ્રતિમા પૂજકોના માટે પણ એમની પૂજા વિધેય રૂપમાં માની લેવી જોઈએ.

આવાર્થ—“ ન ચ દ્રૌપદ્યાઃ પ્રણિપાતદણ્ડકમાત્રં ચૈત્યવંદનમભિહિતં સૂત્રે ” વગેરે વાક્ય દ્વારા ટીકાકાર અભયદેવસૂરિએ આટલા પાઠને જ સ્વીકાર કર્યો છે કે દ્રૌપદીએ ફક્ત વંદના જ કરી છે. પ્રતિમા પૂજા નાહ. એથી આ વાત સ્પષ્ટ રીતે સિદ્ધ થઈ બીય છે કે બ્યારે ચરિતાનુવાદ રૂપથી પણ શાસ્ત્રમાં કોઈ પણ સ્થાને ભગવાને અર્હંતની પ્રતિમાના પૂજન વિધે કહ્યું નથી. ત્યારે વિધિ રૂપથી પ્રતિમા પૂજન માટે ભગવાન અર્હંતની આજ્ઞા છે એથી માન્યતા ફક્ત કલ્પના માત્ર જ છે. આ પ્રમાણે સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયની આ માન્યતા

तद्रूपः स्थानकवासिनां सिद्धान्तः शास्त्रानुकूलः सत्य इति निश्चीयताम् । अर्हद्वन्द-
नमपि द्रौपद्या न कृतमित्यग्रे सप्रमाणं निरूपयिष्यामः ।

किं च—प्रतिमापूजकानां प्रमाणभूते महानिशीथसूत्रेऽपि ‘ प्रतिमापूजायाः
सावद्यतया तदर्थं जिनालयविधानं सावद्यं भवतीति मत्वा द्रव्यलिङ्गिभिः पृष्टेन
कुवलयप्रभनाम्नाऽनगारेण निगदितं सावद्यमिदं नाहं वाङ्मात्रेणापि कुर्वे ’ इति ।
तदेवमनेन भणतासता तीर्थकरनामगोत्रं कर्माजितम् । एकभवावशेषीकृतश्च
भवोदधिः । ततस्तैः सर्वैरेकमतं कृत्वा तस्य सावद्याचार्य इति नाम दत्तं प्रसि-
द्धिनीतं च । इति प्रतिबोधितम् ।

वासी संप्रदाय की यह मान्यता निर्दोष एवं शास्त्रानुकूल और सत्य है
कि अर्हत की प्रतिमा बनाकर पूजना शास्त्र हिनमार्ग से विपरीत मार्ग
है । अर्हत की प्रतिमा की वन्दना भी द्रौपदी ने नहीं की है इस बात
को भी हम आगे प्रमाण देकर पुष्ट करेगे ।

किञ्च—प्रतिमापूजकों द्वारा प्रमाणरूप से स्वीकृत महानिशीथ सूत्र
में भी यही समझाया गया है कि प्रतिमापूजन स्वयं एक सावद्यकर्म है,
उसके निमित्त जनालय आदि बनवाना भी सावद्यकर्म हैं । ऐसा सम-
झकर—कुवलयप्रभनामक आचार्य ने द्रव्य लिङ्गियों द्वारा पूछे जाने पर
यही उत्तर दिया है कि ये सब सावद्यकर्म हैं, मैं अपने वचनों से भी
इस विषय का जरा भी संडन नहीं कर सकता हूँ ” इस प्रकार कहने
वाले उन कुवलयप्रभनामक आचार्यने तीर्थकर नाम गोत्र कर्म उपार्जन
करके एकभवावतारी बने । सावद्यकर्म निषेध करने वाले होने से

निर्दोष तेमञ् शास्त्रानुकूल अने सत्य छे के अर्हंतनी प्रतिमा बनावीने पूजवी
शास्त्रविहित मार्गथी उलठो। मार्ग छे अर्हंतनी प्रतिमानी वंदना पणु द्रौप
दीजे करी नथी, आ वातने पणु अमे आगण सप्रमाणसिद्ध करवा प्रयत्न करीथुं।

अने जीलुं पणु के—प्रतिमा पूजके वडे प्रमाणे इपे स्वीकृत महानिशीथ
सूत्रमां पणु अे न वात समभववामां आवी छे के प्रतिमा पूजन जाते अेके
सावद्य कर्म छे. तेना निमित्ते लनालय वगेरे बनाववा ते पणु सावद्य कर्म छे.
अेम लणुनि न कुवलयप्रभ नामना आचार्ये द्रव्यलिङ्गिअे वडे पूछाअेला
प्रश्नना उत्तरमां आ प्रमाणे न कलुं छे के आ अणु सावद्यकर्म छे. हुं मारा
वचनेअी पणु आ विषयतुं नराथ पणु मंडन करी शकुं तेम नथी. आ रीते
कडेनार ते कुवलयप्रभ नामके आचार्ये तीर्थकर नाम गोत्रकर्म उपाजन करीने
अेके लवावतारी अन्या. सावद्यकर्म निषेध करनार डोवाथी ते वैत्यवात्रीअेअे

भगवान् श्री वर्षमानस्वामी गौतमं प्रति कथयति—‘अस्या ऋषभादिवृत्तविंशतिकायाः प्राक् अतीतकालेन याऽतीता चतुर्विंशतिका, तस्यां मत्सदृशः सप्तद्वस्त-तनुर्धर्मश्रीनामा चरमतीर्थङ्करो वभूव, तस्मिन् तीर्थङ्करे सप्ताश्वर्याणि अभूवन् । असंयतपूजायां प्रवृत्तायामनेके श्राद्धेभ्यो गृहीतद्रव्येण स्वस्वकारितचैत्यनिवासिनोऽभून्, तत्रैको मरकतच्छविः कुवलयप्रभनामाऽनगारो महातपस्वी उग्रविहारी शिष्यनणपरिवृतः समागत, तैर्विन्दित्योक्तम्, तदेव तत्रत्यप्रकरणं प्रदर्शयते, तथा हि—महानिशीथमुन्ने पञ्चमाध्ययने—

जहा णं भयवं ! जह तुमभिहाइ एगइत्तारत्तियं चाउम्मासियं पउंजियंताण-मिच्छाए अणेगे चेइयालया भवंति नूणं तज्जाणणत्तीए ता कीरउ अणुगमहमग्धाणं

उन चैत्यवासियों ने मिलकर उनका नाम ‘सावधाचार्य’ रख दिया, और प्रसिद्ध भी कर दिया । जैसे-भगवान् श्री वर्षमानस्वामी गौतम प्रति कहते हैं-इस ऋषभादि चौबीसी के पहले भूतकालमें जो चौबीसी होगई है उस चौबीसीमें मेरे जैसा सात हाथप्रमाण शरीर वाला धर्म श्री नामका अंतिम तीर्थंकर हो गया है, उस तीर्थंकर के समयमें सात आश्चर्य हुए थे, उनमें “असंयतपूजा” नामका एक आश्चर्य था । उस असंयतपूजाकी प्रवृत्ति होनेपर बहुतसे साधु श्रावकों के पैसों से अपने अपने वनवाघे हुवे चैत्योंमें निवास करते थे अर्थात् चैत्यवासी हो गये थे, वहाँ पर एक श्याम कान्तिवाले कुवलयप्रभ नाम के मुनि महातपस्वी उग्रविहारी शिष्यपरिवार सहित पधारे थे, उनको उन चैत्यवासियों ने वंदना कर के जो कहा सो इस प्रकार है । जिस पाठ का यह कथानक है वह पाठ इस प्रकार है—

तेमनुं नाम “सावधाचार्य” ओ प्रभाणु राण्थुं अने प्रसिद्ध पणु कथुं. जेभडे भगवान् श्री वर्षमानस्वामी गौतमने कडे छे के-आ ऋषभादि चौबीसीना पडेवा लूतकाणमां जे चौबीसी थध गध छे ते चौबीसीमां मारा जेवा सात हाथ प्रभाणु शरीरवाणा धर्मश्री नामना छेव्वा तीर्थंकर थध गया छे. ते तीर्थंकरना समयमां सात आश्चर्यो थथा हता, तेमां “असंयतपूजा” नामनुं ओक आश्चर्यं हतुं ते असंयत पूजनी प्रवृत्ति थध त्यारे अनेक साधु-श्रावकेना पैसादीं पोतपोताना माटे जनावरावेदा चैत्योमां वास करता हता अर्थात् चैत्यवासी थध गया हता. त्यां ओक श्याम वलुवाणा कुवलयप्रभ नामना मुनिमहाराज के जेज्जे महा तपस्वी, उग्र विहारी हता, तेज्जे पोताना शिष्य परिवार सहित त्यां पधार्थां हता तेमने ते चैत्यवासीओजे वंदना करीने जे कछुं ते आ प्रभाणु छे—

इहेव चाउम्मासियं । ताहे भणिय तेण महाणुभागेणं - गोयमा ! जहा भो भो पियंवए । जइ वि जिणालए तहा वि सावज्जमिणं णाहं वायामित्तेण पि आयरिज्जा । एवं च समयसारपरं तत्तं जहट्टियं अविपरीतं णीसंकं भणमाणेण तेसिं मिच्छद्विट्ठिलिंगीणं साहुवेसधारीणं मज्झे गोयमा ! आसंकलियं तित्थयरनामकम्मगोयं तेणं कुवल्लयप्पभेणं, एगभवावसेसीकओ भवोयही ॥ इति ।

छाया-यथा खलु भगवन् ! यदि त्वमिहापि एकवर्षारात्रिकं चातुर्मासिकं प्रयोक्तृणाभिच्छया अनेके चैत्यालया भवन्ति नूनं । तद्ध्ययानाज्ञप्त्या तस्मात् करोतु अनुग्रहपत्तमाकम् इहैव चातुर्मासिकम् । तदा यणितं तेन महानुभागेन - गौतम ! यथा भो भो पियवंदा ! यद्यपि जिनालयः, तथापि सावधमिदं नाहं वास्माभेणापि आचरामि । एवं च समयसारवरं तत्तं यथास्थितम् अविपरीतं निःशङ्कं भणता तेषां मिथ्यादृष्टिलिङ्गिणां साधुवेषधारिणां मध्ये गौतम ! आसंकलितं तीर्थररनामकम्मगोत्रं तेन कुवल्लयप्रभेण एकभवावसेसीकृतो भवोदधिः ॥ इति

“जहा ण भयवं ? जइ तुमभिहाइ एकवासारत्तियं चाउम्मासियं पउंजियंताणमिच्छाए अणेगे चेइयालया भवंति नूनं तज्जाणणत्तीए, ता कीरउ अणुग्गहम्महाणं इहेव चाउम्मासियं । ताहे भणियं तेण महाणुभागेणं गोयमा ! जहा भो भो पियंवए जइवि जिणालए तहा वि सावज्जमिणं णाहं वायामित्तेण पि आयरिज्जा । एवं च समयसारपरं तत्तं जहट्टियं अविपरीतं णीसंकं भणमाणेण तेसिं मिच्छद्विट्ठिलिंगीणं साहुवेसधारीणं मज्झे गोयमा । आसंकलियं तित्थयरनामगोत्तं तेणं कुवल्लयप्पभेणं एगभवावसेसीकओ भवोयही । इति (महानिशीथ पञ्चम अध्ययन) इस सूत्रका भावार्थ इस प्रकार है-

हे भगवन् ! आप यहाँ एक वर्षारात्रिक चारमहिनें ठहरें

“जहा णं भयवं ! जइ तुमभिहाइ एकवासारत्तियं चाउम्मासियं पउंजियंताण मिच्छाए, अणेगे चेइयालया भवंति नूनं तज्जाणत्तिप ता कीरउ अणुग्गहम्महाणं इहेव चाउम्मासियं । ताहे भणियं तेण महाणुभागेणं गोयमा । जहा भो भो पियंवए जइवि जिणालए तहावि सावज्जमिणं णाहं वायामित्तेणं पि आयरिज्जा । एवं च समयसारपरं तत्तं जहट्टियं अविपरीतं णीसंकं भाणमणेण तेसिं मिच्छद्विट्ठिलिंगीणं साहुवेसधारीणं मज्झे गोयमा ? आसंकलियं तित्थयरनामगोत्तं तेणं कुवल्लयप्पभेणं एगभवावसेसीकओ भवोयही । इति (महानिशीथ पञ्चम अध्ययन) आ सूत्रने भावार्थ आ प्रभासे छे छे-छे लगवन् ।

हे भगवन् ! इह यदि यथा खलु त्वम् एकवर्षारात्रिकं चातुर्मासिकं तिष्ठसि प्रयोक्तृणां—प्रवर्तकानाम् इच्छया—आज्ञया अनेके चैत्यालया नूनं भवन्ति=भविष्यन्ति, तत् तस्माद् निवासार्थमाज्ञामुपादाय इहैव चातुर्मासिकं कुरु तावदस्माक-मनुग्रहं कुरु भवदीयाज्ञया वहवश्चैत्यालया भविष्यन्ति। ततश्चारमाकमुपकारः क्रिय-तामिति भावः । तदा तेषां सावद्यपूजायां प्रवृत्तानां द्रव्यलिङ्गिनां वचनं श्रुत्वा तेन महानुभावेन कुवलयप्रभनाम्नाऽनगारेण भणितम्=उक्तम्, यथा—भो भो भियं-वदाः । भो देवानुप्रियाः ! यद्यपि जिनालयः, तथापि सावद्यमिदं जिनभवने कृते

-अर्थात् यहाँ पर चौमासा व्यतीत करे। प्रवर्तकों की आज्ञा से यहाँ पर अनेक चैत्यालय बन जायेंगे। इस लिये आप यहाँ पर चौमासा व्यतीत करने का अनुग्रह करें। हमारे ऊपर आपका बड़ा ही अनुग्रह होगा। आपके उपदेश से निश्चय समझिये अनेक चैत्यालयों का निर्माण हो जायगा। इस प्रकार से उन द्रव्यलिङ्गियों से प्रार्थित होने पर महानुभाव कुवलयप्रभ आचार्य ने कहा कि हे देवानुप्रिय ! यद्यपि तुम जिनालय के विषय में कहते हो—परन्तु—मैं इस कार्य को करवाने में श्रेय नहीं देखता हूँ—कारण कि यह सावद्यकार्य है जिन भवन बनवाना और उसके बनवाने की प्रेरणा करना इन दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों में पृथिवीकाय आदि छह प्रकारके जीवों की विराधना होती है इसी प्रकार से पूजन करने में भी षट्काय के जीव-निकायों का आरंभ अवश्यभावी है। इसलिये अनेक प्रकार के षट्-काय के जीवों के विघात का हेतु होने से पूजन के निमित्त भी जिन भवन का बनवाना सावद्यतर कार्य है ऐसे सावद्यतर कार्य का मैं किसी भी प्रकारसे उपदेश नहीं दूंगा। मैं कभी भीऐसा उपदेश नहीं दूंगा कि

तमे अर्द्धी ओकवर्षारात्रिक—आर भास—शेकाओ—ओटले के अर्द्धी तमे चोभासुं पुई करे। प्रवर्तकेानी अज्ञाथी अर्द्धी धणु। चैत्यालयो गनी नशे। ओथी तमे अर्द्धी न चोभासुं पुई करवानी कृपा करे। अमारा उपर तमारो लारे अनुग्रह थशे तमारो उपदेशथी अभने शेकस पात्री छे के धणु। चैत्यालयोतुं निर्माण थथे नशे। आ रीते द्रव्य विंगिओनी प्रार्थना सांलणीने महानुभाव कुवलयप्रभ आचार्यो कथुं के हे देवानुप्रिय ! ने के तमे लनालयना विषे कडे छे। पणु भने आ काम करवनामा श्रेय लागतुं नथी, केमके आ सावद्यकर्म छे लन-लवन बनावसुं भने तेने बनाववानी प्रेरणु आपवी आ गने नतनी प्रवृ-त्तिओमां पृथिवीकाय वगेरे छ नतना लयोनी विराधना धाय छे आ रीते पूज करवामां पणु षट्कायना लवनिकायोने आरंभ अपश्यंभावी छे। ओटला माटे धणु नतना षट्कायना लयोना विघातना माटे डेतुइप डोवा गदल पूजना माटे पणु लनलवन बनावसुं सावद्यतर कार्य छे। ओवा सावद्यतर कार्य

कारिते च पृथिवीकायादिपृथ्वीविकायविराधना, तथैव जिनपूजायामपि तस्मात् पूजार्थकत्वाज्जिनभवनविधानं सावधतरं, बहुतरपदकायजीवोपघातहेतुत्वात् नाहं वाङ्मात्रेणाऽपि उपदेशदानरूपेण वाग्योगमात्रेणापि आचरामि=कुर्वे जिनालयं कर्तुं सुपदेशं न करिष्यामीत्यर्थः । एवं च=अनेन प्रकारेण, समयसारपरं ब्राह्मसिद्धान्त-साराऽज्ञोपश्रेष्ठं तत्त्वं त्रिकरणत्रियोगैः प्राणात्तिपातो वर्जनीय इत्यादिरूपं यथास्थितं यथावस्थितस्वरूपं प्रमाणभूतं, अविपरीतं=विपर्ययज्ञानाविषयं, निश्शङ्कं=संशयवर्जितं वचनं भणता=कथयता, तेषां मिथ्यादृष्टिलिङ्गिनां मिथ्यादृष्टयः कुतीर्थिकास्तद्ब्रज्जी-वोपघातकारिणांसाधुवेषधारिणां=मध्ये हे गौतम ! आसंकलितम्=सम्यक् संय-हीतम् उपार्जितमित्यर्थः । किमुपार्जितमित्याह-तीर्थकरनामगोत्रं तेन कुवलयप्र-भेण, एकभवावशेषी कृतो भवोदधिः । सुगममेतत् ।

जिस में जिनालय बनवाने का विधान हो । इस प्रकार प्रवचन सिद्धान्त की सारभूत वस्तुस्थिति को यथार्थ रूप से बिना किसी संकोच के प्रकट करने वाले उन मुनिराज ने उन साधुवेष धारी द्रव्यलिङ्गियों के बीच कि जो मिथ्यादृष्टियों की तरह जीवों की हिंसा करने में प्रवृत्त थे उनके सामने इस प्रकार शुद्ध प्ररूपणा करनेसे हे गौतम ! तीर्थकर नाम गोत्र कर्म का बंध किया-और संसार भी उनका एक भव मात्र बाकी रह गया इस उद्धारण से यही समझना चाहिये-कि जब प्रतिमा पूजन के लिये भी मंदिर बनवाना सावध्य कर्म है और इस सावध्यकार्य का उपदेश देना भी साधु के लिये वर्जनीय है-इसी अभिप्राय से कुवलयप्रभ सूरि ने इस कार्य का निषेध किया-इस निषेध से उन्हें तीर्थकर नाम-गोत्र कर्म का बंध हुआ और संसार भी उनका एक भव मात्र बाकी बचा-तो फिर सर्व प्रकार से सावध्य कर्मों का परित्याग

भाटे हुं कोई पणु रीते उपदेश आपवा तैयार नथी, हुं आ नानेने उपदेश कोईपणु वपते आपवा तैयार नथी के नेमां एतावथ अतावधानं विधान सरभुध डोय. आ रीते प्रवचन सिद्धांतनी सारभूत वस्तुस्थितिने साया उपमां वगर कोई पणु नतना स'केचे-प्रगट करनारा ते मुनिराजे ते साधु वेषधारी द्रव्य लिङ्गिओनी सामे के नेओ मिथ्यादृष्टिवाणाओनी नेम एवोनी हिंसा करवाभां प्रवृत्त इता-शुद्ध प्ररूपणा करी. आ रीते शुद्ध प्ररूपणा करवाथी हे गौतम ! तीर्थकर नाम-गोत्रकर्मने अंध कथो अने संसार पणु ओक लव नेटवो न शेष रह्यो. आ उदाहरणथी आपणु ओन वात समजवी नेधओ के न्यारे प्रतिमा पूजन भाटे पणु मंदिर बनाववुं सावध्यकर्म छे अने आ सावध्यकार्यने उपदेश करवो पणु साधुना भाटे त्याग्य छे. आ उेतुथी न कुवलयप्रभसूरिओ आ कथ'ने निषेध कथो छे. आ निषेधथी तेभने तीर्थ'कर

अत्रेदं बोध्यम्—यत्र प्रतिमापूजार्थं क्रियमाणस्य जिनालयस्य वाचोपदेशकरणं सावधमिति जानता तत्परिवर्जने कृते तीर्थकर नामगोत्रं कर्म समुपाजितं, तत्र सर्वथा सावधमार्गं परिवर्जयतां सर्वप्राणिरक्षणार्थमहिंसाधर्मं सर्वतः प्रचारयतां प्रवचन—सिद्धान्तसारं विजानतां संयममार्गं प्रवृत्तिमतां सम्यक्त्वशुद्धिमतां प्रति-
मापूजामकुर्वतां तन्निषेधयतां किं नामात्मनः कल्याणकरं कार्यमवशिष्टम्, इति ।

अथ विवाहसमये द्रौपदी सम्यक्त्ववती नासौदिति वर्णयते—जैनगमानां विद्वांसः=सम्यगिदं वदन्ति—सनिदानस्य जीवस्य निदानफलप्राप्तिर्विघ्न भवति, तावदसौ सम्यक्त्ववञ्चितो जैनधर्माद् दूर एवावतिष्ठते ।

करने वाले, समस्त प्राणियों की रक्षा के निमित्त अहिंसाधर्म का प्रचार करने वाले, प्रवचन सिद्धान्त के सार को जानने वाले, संयममार्ग में प्रवृत्ति वाले, सम्यक्त्व की शुद्धि से विशिष्ट और प्रतिमा की पूजा नहीं करने वाले एवं उसका निषेध करने वाले ऐसे संयमियों का अब और कौनसा ऐसा कार्य बाकी रहा है जो उनकी आत्मा के लिये कल्याण का साधन न हो ।

अब यहाँ इस बात का वर्णन किया जाता है कि विवाह के समय द्रौपदी सम्यक्त्ववाली नहीं थी ।

जैन आगमों का भलीभाँति परिशीलन करने वाले विद्वान् इस यानको अच्छी तरह जानते हैं कि जिस जीव ने जो निदान किया है—जबतक उसके फल की प्राप्ति उस जीव को नहीं हो जाती—तबतक वह जीव सम्यक्त्व से वञ्चित रहकर जिनधर्म से दूर ही रहता है ।

नाम—गोत्र कर्मना अंध थये अने संसार पणु तेमने भाटे जेकलव नेट-
दो ७ शेष रह्यो छतो. तो पछी सर्व रीते सावधकर्मना परित्याग करनारा
अथा प्राण्योगानी रक्षाना निमित्ते अहिंसा धर्मना अचार करनारा प्रवचन
सिद्धांतना सारने लक्षणारा, संयम मार्गमां प्रवृत्ति करनारा, सम्यक्त्वनी
शुद्धिथी विशिष्ट अने प्रतिमा पूजा नहि करनारा अने तेने निषेध करनारा
अथा संयमीओतुं अेवुं कथुं काम शेष रह्युं छे के ने तेमना आत्माना कथाएतुं
साधनरूप न होय ?

हवे अर्द्धा आ पातुं वर्युंन करवामां आवे छे के लक्षना वणते द्रौपदी
सम्यक्त्ववाणी न छती

जैन आगमोतुं सारी रीते परिशीलन करनारा विद्वानो आ पातने सारी
पछे लख्ये छे के ने एवे ने निदान कथुं छे—अथा सुधी तेना श्रणी प्राप्ति
ते एवने यथ नती नथी त्यां सुधी ते एव सम्यक्त्वथी वञ्चित रह्योने एत-
धर्मथी इर रह्ये छे

“ पुण्यकयनियाणेणं चोद्भज्यमाणी २ जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छद्, उवागच्छिता ते पंच पंडवे तेणं दसद्ववणेणं कुसुमदानेणं आवेदियपरिवेदियं करेइ, करित्ता, एवं वयासी-एए णं. मए पंच पंडवा वरिया । ” इति सूत्रपाठ प्रामाण्याद् विवाहसमये पूर्वकृतनिदानाधीनतया सम्यक्त्वरार्हात्त्ये द्रौपद्या आसीत् अतस्तस्यास्तदानीं श्राविकात्वं न सिध्यति युगपत् पञ्चानां पतीनां वरणेन तस्याः पूर्वसंस्कारोदयवशाद् विपुलसुखभोगलालसाऽपि स्वाभाविकी, अतः सा कौमारे वयसि श्राविका नासीदिति युक्तिसिद्धस्यार्थस्यापलापः केन शक्यते कर्तुम् । द्रौपदी कस्य पूजनं कृतवतीति जिज्ञासायां निर्णीयते—

“ पुण्यकयनिद्याणेणं चोद्भज्यमाणी २ जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छद्, उवागच्छिता ते पंच पंडवे तेणं दसद्ववणेणं कुसुमदानेणं आवेदिय परिवेदियं करेइ । करित्ता एवं वयासी-एएणं मए पंच पंडवा वरिया ” इस प्रकार के इस प्रमाणिक सूत्र पाठ से यह स्पष्टरीति से विदित हो जाता है कि विवाह के समय पूर्वकृत निदान के अधीन होने से द्रौपदी सम्यक्त्व रहित थी इसी लिये उस समय उस में श्राविकापना भी सिद्ध नहीं होता है । तथा एक ही साथ पांच पंडवों को पतिरूप से वरण करने से उसके पूर्व संस्कार के उदय से विपुल सुख भोगने की लालसा भी स्वाभाविकी ज्ञात होनी है इसलिये वह कुमार अवस्था में श्राविका नहीं थी इस युक्ति सिद्ध अर्थ का अपलाप कौन कर सकता है ।

द्रौपदी ने किस की पूजा की इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर

“ पुण्यकयनियाणेणं चोद्भज्यमाणी २ जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छद्, उवागच्छिता, ते पंच पंडवे तेणं दसद्ववणेणं कुसुमदानेणं आवेदियपरिवेदियं करेइ । करित्ता एवं वयासी-एएणं मए पंच पंडवा वरिया ”

आ नतनी आ आभाषिक्के सूत्रपाठथी आ स्पष्ट रूपमां भाषुम थथं नय छे के लभना वभते पूर्वकृत निदानने स्वाधीन होवाने शक्ये द्रौपदी सम्यक्त्व रहित छती. अटला भाटे ते समये तेमां श्राविकापण्यु सिद्ध थथं शके तेम नथी तेमज्ज अथी साथे पांडवोने पतिरूपमां वरण करवाथी तेना पूर्व संस्कारोना उदयथी विपुल सुख भोगववानी उच्छा पण्यु स्थाला-विक्री भाषुम धाय छे. अथी ते कुमार अवस्थामां श्राविका छती नहिं. आ युक्ति अर्थना परिहार केण्यु करी शके तेम छे

द्रौपदीअ केनी पूजा करी ? आ नतनी ज्ञानासाने साथे राणीने दीका-

અલ્પાંડસૌભાગ્યપ્રચુરભોગકામનયા કામદેવસ્વૈવ પૂજનં તદાનીહુપપદ્યતે ।
કામપૂજનં વિવાહોત્તવે વિસ્તરતો ભવતીતિ લોકે પ્રસિદ્ધમસ્તીતિ પ્રતિમાપૂજકોઽપિ
શ્રી વર્ધમાનસૂરિઃ પ્રોક્તવાન । રપટં ચૈતત્ તદ્વિરચિતે આચારદિનકરે દ્વિતીય-
વિભાગે—“ પરસમયે ગણપતિકન્દર્પસ્થાપનમ્ । ગણપતિકન્દર્પસ્થાપનં સુગમં
લોકપ્રસિદ્ધમ્ । ” इति ।

ટીકાકાર નિર્ણય કરતે હૈં—

અલ્પાંડ સૌભાગ્ય એવં પ્રચુર ભોગ કી ઇચ્છા એ કામદેવ કા હી
પૂજન ઉસ સમય દ્રૌપદી ને ક્રિયા હૈ—યહી વાંત સંગત બૈઠની હૈ । લોક
મૈં શ્રી યહી વ્યવહાર દેખા જાતા હૈં કિ વિવાહ કે સમય અચ્છી તરહ
ગાજે વાજે કે સાથ કામ દેવકા પૂજન લોગ ક્રિયા કરતે હૈં । ઇસ વાત
કો વર્ધમાન સૂરિ શ્રી જો પ્રતિમાપૂજન કે પક્ષપાતી હૈં સ્વીકાર કરતે
હૈં ઓર એસા હી કહતે હૈં । ઇસી વાત કા સ્પષ્ટીકરણ ઉન્હોં ને સ્વનિ-
ર્મિત આચારદિનકર કે દ્વિતીય વિભાગ મૈં ક્રિયા હૈ—વે લિખતે હૈં કિ—
“ પરસમયે ગણપતિકન્દર્પસ્થાપનમ્ । ગણપતિકન્દર્પસ્થાપનં સુગમં
લોકપ્રસિદ્ધમ્ ” इति ।

લૌકિક શાસ્ત્રમૈં ગણપતિ એવં કંદર્પ (કામદેવ) કી સ્થાપના હોતી
હૈ અતઃ ગણપતિ ઓર કન્દર્પકા સ્થાપન કરના સુગમ ઓર લોકપ્રસિદ્ધ હૈ ।

કાર નિર્ણય કરતાં કહે છે કે—

અખંડ સૌભાગ્ય તેમજ પ્રચુર ભોગની ઇચ્છાથી જ તે સમયે દ્રૌપદીએ
કામદેવનું જ પૂજન કર્યું છે, આ વાત જ યોગ્ય લાગે છે. લોકમાં પણ આ
બતનો જ વહેવાર ભવામાં આવે છે કે લક્ષ્મી વખતે વાળાંઓની સાથે સારી
રીતે કામદેવનું પૂજન લોકો કરતા રહે છે. આ વાતને વર્ધમાનસૂરિ પણ કે
જેઓ પ્રતિમા પૂજનના તરફદાર છે—સ્વીકાર કરે છે અને આ પ્રમાણે જ કહે
છે. આ વાતનું સ્પષ્ટીકરણ તેમણે સ્વનિર્મિત આચાર દિનકરના ખીલ વિભા-
ગમાં કર્યું છે. તેઓ લખે છે કે—

“ પરસમયે ગણપતિકન્દર્પસ્થાપનમ્ । ગણપતિકન્દર્પસ્થાપનં સુગમ લોક
પ્રસિદ્ધમ્ ” इति ।

લૌકિક શાસ્ત્રમાં ગણપતિ અને કંદર્પ (કામદેવ) ની સ્થાપના થાય છે. તેથી
ગણપતિ કંદર્પની સ્થાપના કરવી તેજ સુગમ અને લોકપ્રસિદ્ધ છે.

“जिनपडिमाणं अच्वणं करेइ” अत्र जिनशब्दः कामदेवपरः । जिनशब्दस्य बहुवोऽर्थाः कोशादौ प्रसिद्धाः सन्ति । यथा—

अर्हन्नपि जिनश्चैव, जिनः सामान्यकेवली ।

कन्दर्पोऽपि जिनश्चैव, जिनो नारायणो हरिः ॥ इति (हैमी नाममाला)

विजयगच्छीयः श्रीगुणसागरसूरिरपि ढालसागरनामके काव्ये षष्ठः खण्डे द्रौपद्याः पूज्यदेवं निर्णीतवान् । उक्तं च तेन—

करि पूजा कामदेवनी भांखे द्रुपदी नार ।

देव दया करी मुझने भलो देजो भरतार ॥ १ ॥

अर्हन् सकलकर्म कषायमोहपरीषहान् जयतीति जिन उच्यते । सामान्य

“जिनपडिमाणं अच्वणं करेइ” इस सूत्र में जिन शब्द जिनेन्द्र भगवान का वाचक नहीं है, किन्तु कामदेव का वाचक है क्यों कि जिन शब्द के अनेक अर्थ कोषादिक ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं—यथा—

अर्हन्नपि जिनश्चैव जिनः सामान्यकेवली ।

कन्दर्पोऽपि जिनश्चैव जिनो नारायणो हरिः ॥

इति (हैमीय नाममाला)

विजय गच्छीय श्री गुणसागर सूरि ने भी “ढालसागर” नाम के काव्य में छठवें खंड में द्रौपदी के आराध्य देव का निर्णय किया है । उन्होंने लिखा है—

करि पूजा कामदेव नी भांखे द्रुपदी नार ।

देव ! दया करी मुझने भलो देजो भरतार ॥ १ ॥

इस सूत्र में अर्हन्त भगवान को ‘जिन’ इसलिये कहा गया है

“जिनपडिमाणं अच्वणं करेइ”

आ सूत्रमां एन शण्डे एनेद्र भगवानने वाचक नथी पणु कामदेवने वाचक छे केभके एन शण्डेना धणु। अर्थी केष वगेरे ग्रन्थेभां प्रसिद्ध छे केभके—

अर्हन्नपि जिनश्चैव जिनः सामान्यकेवली ।

कन्दर्पोऽपि जिनश्चैव जिनो नारायणो हरीः ॥ इति (हैमीय नाममाला)

विजयगच्छीय श्री शुणुसागरसूरिअे पणु ‘ढालसागर’ नामना काव्यना छुं। अंउभां द्रौपदीना आराध्यदेवने। निर्णय करतां तेभखे कहुं छे के—

करि पूजा कामदेवनी भांखे द्रुपदिनर ।

देव ! दया करी मुझने भलो देजो भरतार ॥ १ ॥

आ सूत्रमां अर्हन्त भगवानने ‘एन’ अेटला भाटे कथा छे के तेभखे

केवली घनघातककर्मचतुष्टयं जयतीति जिन उच्यते । विष्णुः स्वभुजवलेन खण्ड-
त्रयं जयतीति जिन उच्यते । जिनशब्दस्य कामदेवोऽर्थश्चापि संगतः, यतः संसा-
रिणां कामदेववशवर्तिन्वेन लोकजयकारित्वाज्जिनत्वं कामस्योपपद्यते । रूपरहित-
स्यापि सिद्धस्य प्रतिमां पूज्यत्वेन शास्त्रानुक्तामपि प्रतिमापूजकाः प्रकल्पयन्ति,
तद्वदनङ्गस्यापि कामस्य लौकिकशास्त्रसिद्ध तद्वचनमनुसृत्य प्रतिमा प्रकल्प्यत इति

कि उन्हीं ने समस्त कषाय, कर्म, मोह और परीषहों को जीता है । सामान्य केवली 'जिन' इसलिये कहे गये हैं कि उन्हीं ने चार घनघा-
तिया कर्मों को अपनी आत्मा से समूल नष्ट कर दिया है । विष्णु
'जिन' इसलिये कहलाये कि उन्हीं ने अपने भुजवल से भरतरखंड
के छह खंडों में से तीन खंडों को अपने वश किया है इसी लिये ये
अर्द्धचक्री भी कहलाते हैं । कामदेव को 'जिन' इस लिये कहा गया है
कि इसके वश समस्त त्रिलोक है त्रिलोक में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं
बचा कि जिसे इस ने अपने वश में न किया हो ।

शंका—द्रौपदी ने कामदेव की मूर्ति की पूजा की—आप की यह
वात उस समय मानी जा सकती—जब कि कामदेव की मूर्ति बन
सकती होती ? परन्तु कामदेव की मूर्ति तो बन नहीं सकती क्यों कि
वह तो अमूर्तिक-अशरीर-अनङ्ग है । अंगवाले की ही मूर्ति बनती
है—अनंग की नहीं ।

अथा कषाय कर्म, मोह अने परिषहोने एत्या छे. सामान्य केवली "जिन"
अटला भाटे कडेवाभां आण्यो छे के तेमणे चार धनपतिओना कर्मोने पोताना
आत्माथी समूण नष्ट करी नाण्यो छे विष्णु 'जिन' अटला भाटे कडेवाय
छे के तेमणे पोताना लुज गणथी भरतअ'उना छ अ'उभांथी त्रणु अ'उने
पोताने वश कर्था छे अथी तेओ अर्द्धचक्री पणु कडेवाय छे. कामदेवने 'जिन'
अटला भाटे कडेवाभां आण्यो छे के तेना वशभां त्रणे लोको छे. त्रणे लोकोभां
अर्द्ध कोठ प्राणी रह्युं नथी के जेने कामदेवे पोताना वशभां कस्युं न उाय.

शंका—द्रौपदीओ कामदेवनी मूर्तिनी पूजा करी ते तमारी आ वात तयारेज
योग्य कही शक्य के ज्यारे कामदेवनी मूर्ति गनी शकती छे य ? पणु कामदेवनी
मूर्ति तो तयार थर शके तेम नथी केमके ते तो अमूर्तिक-अशरीर अनंग
छे. अंगवाणानी न मूर्ति अने छे, अनंगनी नहि.

नास्त्यत्र संशयः । लक्ष्मीगौर्यादिदेव्या अपि स्वाभीष्टपतिप्राप्तिकामनया पूजनं लोके प्रसिद्धमस्ति । लौकिकमन्त्रशास्त्रे मन्त्ररत्नमञ्जूपायां कामदेवाराधनस्याभीष्टपतिप्राप्तमहेतुत्वं निगदितम्—

“ कन्यामिष्टामवाप्नोति, सापीष्ट पतिमाप्नुयात् ॥ ” इति ।

अधुनाऽपि परिणयनसमये कुलदेवपूजनं लोके क्रियमाणं दृश्यते । कामदेवोऽपि

उत्तर—यह कहना ठीक नहीं है. क्यों कि मूर्ति पूजक जन अनङ्ग-सिद्धों की भी तो मूर्ति बनाकर उसकी पूजा किया करते हैं । यद्यपि सिद्धों की मूर्ति बनाने की आज्ञा शास्त्रों में नहीं कही गई है—तो भी मूर्तिपूजक जन अपनी कल्पना से उनकी भी मूर्ति बनाकर पूजा करते ही हैं—

उसी प्रकार लौकिकशास्त्र प्रसिद्ध अनङ्ग कामदेव की भी लोग अपनी कल्पनासुर मूर्ति बनाकर पूजते हैं । इस में आपत्ति की कौनसी बात है ।

लक्ष्मी, गौरी आदि देवियों की भी पूजा लोक में अपने को अभिलषित पति प्राप्ति की कामना से स्त्रियों द्वारा की ही जानी है । लौकिक मन्त्र शास्त्र में मन्त्ररत्नमञ्जूपा में कामदेव का आराधन—“ कन्यामिष्टामवाप्नोति सापीष्टं पतिमाप्नुयात् ’ इस श्लोकार्थद्वारा इच्छित पति प्राप्ति का कारण कहा गया है ।

वर्तमान समय में भी देखो ! विवाह के समय में लोक में कुल देवता का पूजन किया ही जाता है यह कुल देवता का पूजन ही एक

उत्तर—आ बात योग्य नहीं, डेभके मूर्ति पूजा करना तो दोषो अन्तर्गत सिद्धोनी मूर्ति अनाथीने तेनी पूजा करता रहे छे ले के शास्त्रोभां सिद्धोनी मूर्ति अनावधानी आज्ञा करवाभां आवी नहीं छताथ मूर्ति पूजक दोषो चेतानी कल्पनाथी तेभनी पण मूर्ति अनाथीने पूजा करे न छे. तेभन लौकिक शास्त्र प्रसिद्ध अन्तर्गत कामदेवनी पण दोषो चेतानी कल्पना मुख्य मूर्ति अनाथीने तेने पूजे छे, आभां बांधा लेवी केछ वात नहीं

लक्ष्मी, गौरी वगैरे देवीजोनी पूजा दोषोभां चेतानी इच्छा मुख्य पति भेणवधानी कामनाथी स्त्रीजो वडे करवाभां आवे न छे लौकिक मन्त्र शास्त्रोभां मन्त्र रत्न मञ्जूपाभां कामदेवतुं आराधन “ कन्यामिष्टामवाप्नोति सापीष्टं पति माप्नुयात् ” आ आर्द्धादिदोषो वडे इच्छित प्रतिप्राप्तिनुं कारण भतावधानां आव्यु छे.

वर्तमान समयभां पण आपणु लेछजे तो लक्ष्मी समये दोषोभां कुण देवतातुं पूजन करवाभां आवे न छे. आ कुणदेवतातुं पूजन न अके रीते

रागवर्तां गृहस्थानां कुलदेवत्वेन व्यवह्रियमाण आसीत् । द्रौपद्याऽपि स्वकुलदेवः पूजित इति युक्तमुत्पश्यामः ।

अत्र—“ नमोऽस्थुणं अरिहंताणं ” इति पाठस्तु प्रवचनविरुद्ध एव वर्तते, लौकिककुलदेवप्रतिमाऽर्चनप्रकरणे लोकोत्तरस्य भगवतोऽर्हतः प्रसङ्गाभावात् । पूर्वभवकृतनिदानवत्याः कामभोगानुरक्त्या द्रौपद्याः कामदेवार्चनसमये कामभोगविरतस्य वीतरागमार्गोपदेशकस्य वीतरागस्य भगवतोऽर्हतो वन्दनं नैव शास्त्रानुकूलम् । अत्र परिणयावसरे कुलदेवपूजनप्रसङ्गे भगवतोऽर्हतः प्रसङ्गएव नारित,

तरह से कामदेव का पूजन अनुसरण है । एक समय था कि जब कामदेव ही, रागशाली गृहस्थ जनों के लिये कुल देवता के रूप से वैवाहिक व्यवहार में मान्य होता था । द्रौपदीने भी उस समय जो कुल देवता का पूजन किया—वह कामदेव का ही पूजन किया यही युक्ति संगत बैठती है । इस पूजन के प्रकरण में जो “ नमोऽस्थुणं अरिहंताणं ” यह पाठ आता है वह प्रवचन विरुद्ध ही है क्यों कि लौकिक कुलदेवता की प्रतिमा के अर्चन-प्रकरण में लोकोत्तर अर्हत भगवान के प्रकरण का संबंध ही क्या है । उस समय जब कि वह पूर्व भव में किये गये निदान से युक्त थी—और कामभोग में अनुरक्त हृदयवाली थी उस के लिये कामदेवका अर्चन (पूजन) करनेका समय ही स्पष्टरूपसे ज्ञात होता है कामभोगों से विरत वीतराग मार्ग के उपदेशक वीतरागप्रभु अर्हत भगवान की पूजन वंदना का नहीं । यही सिद्धान्त शास्त्रानुकूल है—अन्य नहीं । अरे कहीं

कामदेवना पूजनं अनुसरणं छे, अथ वपत अवेो इतो के न्यादे कामदेव, रागशाणी गृहस्थ लोकांते माटे कुण देवताना इपमां लक्ष-संभंधी व्यवहारमां मान्य गण्यता इतो, द्रौपदीये पणु ते समये वे कुण देवतानुं पूजनं कथुं ते कामदेवतुं न पूजनं कथुं इतुं अवे वात परापर लागे छे, आ पूजनना प्रकरणमां वे “ नमोऽस्थुणं अरिहंताणं ” आ पाठ आवे छे ते प्रवचन विरुद्धं छे केभके लौकिक कुणदेवतानी प्रतिमाना अर्चन-प्रकरणां लोकात्तर अर्हतं भगवानना प्रकारणुना संभंधं न शी रीते योग्य कही शक्य, ते वपते के न्यादे ते पूर्व लवमां करेला निदानधी युक्त इती अने कामभोगमां अनु-रक्त हृदयवाणी इती अवेी स्थितिमां तो तेना माटे कामदेवनी अर्चना कर वानो वपत न स्पष्ट इये नखाथ आवे छे, कामभोगोधी विरत वीतराग मार्गना उपदेशक वीतराग प्रभु अर्हतं भगवाननी पूज वंदना माटे ते वपत योग्य कही शक्य नहि आ सिद्धांतं न शास्त्रानुकूलं छे अने नहि, युद्धमां

द्रौपद्याः पूर्वभवकृतनिदानफलप्राप्त्यभावेन सम्यक्त्वरहितत्वात् । यस्य पूजनं तस्यैव वन्दनं तु न्यायोपपन्नं भवति, अत्र पूजनं कुलदेवतायाः, वन्दनं तु वीतरागस्यार्हत इति लोकन्यायविरुद्धम् । तस्माद् द्रौपद्या वीतरागस्यार्हतो वन्दनमपि तदानीं न कृतमिति सर्वप्रमाणसिद्धम् ।

अत्रामयदेवसूरिणा स्वकृतवृत्तौ यदुक्तम् एकस्यां वाचनायामेतावदेव दृश्यते “ जिणपडिमाणं अच्छणं करेइ ” इति ।

वीररसके सिवाय युद्धमें जानेवाले वीरके लिये मल्हारराग भी आनंददायी हो सकता है ? । कभी नहीं परिणय-विवाहके अवसर में कुलदेवता की ही पूजा करने का प्रसंग होता है-न कि भगवान अर्हत की । अतः इस प्रकार का प्रसंग मानना एक मनगढ़ंत कल्पना मात्र ही है ! क्यों कि इस समय द्रौपदी पूर्वभव में किये हुए निदान की फल प्राप्ति के अभाव से सम्यक्त्व रहित थी, फिर उसे उस समय कामदेव की ही इच्छित फल प्राप्ति के लिये पूजा की सूझेगी, या उसके अभाव को करने वाले जिन भगवान की पूजा की । यह स्वयं विचारने जैसी बात है जिस का पूजन किया जाता है उसी की वंदना की जाती है-पूजन तो हो कुलदेवतारूप कामदेव का और वंदना की जाय वीतराग प्रभु श्री अरिहंत देव की । इस प्रकार की मान्यता तो लौकिकरीति से भी विरुद्ध पड़ती है । इसलिये सर्व प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि द्रौपदी ने जिनप्रतिमा का पूजन नहीं किया ।

जनार लडवैया भाटे वीर रस सिवायनो मल्हार राग पणु शु आनंद पमा-
उनार थड शके छे ? नहीं लजना समये तो लगवान अर्हतनी पूजा करतां तो
कुणदेवतानी पूजा करवानो प्रसंग ल योग्य लेणाय छे. जेटला भाटे आ नतना
प्रसंगनी वात मानवी जे मनभानी कल्पना मात्र छे. केभके आ समये
द्रौपदी पूर्वभवमां करेला निदाननी इण प्राप्तिना अलावने दीधे सम्यक्त्वधी
रहित छती अने जेवी स्थितिमां छिछित इण प्राप्ति भाटे तेने कामदेवनी
पूजा करवानी छिछि थाय के तेनाथी वरुद्ध इण आपनार एन लगवाननी
पूजानी ? आ नते विचार करवा योग्य वात छे. जेनी पूजा करवामां आवे छे.
तेने ल वंदना करवामां आवे छे. पूजा तो कुण देवताइप कामदेवनी थाय अने
वंदना वीतराग प्रभु श्री अरिहंत देवनी करवामां आवे. आ नतनी मान्यता
तो लौकिक रीतिथी पणु विरुद्ध छे. आ प्रमाणे गधी रीते विचारतां आ
सिद्ध थाय छे के द्रौपदीजे एन प्रतिमानुं पूजन करुं नथी.

वाचनान्तरे तु 'पद्या' इत्यादि, तथा-द्रौपद्याः प्रणिपातदण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे इति, तदप्यत्र पाठे सिद्धान्तविरुद्धपाठप्रक्षेपसंभावनां प्रद्योतयति । अत्र यद्वाच्यं तत्प्रागेव निगदितम् ।

मूलम्—तएणं तं दोवइरायवरकळं अंतेउरियाओ सन्वा-
लंकारविभूसियं करेति किं ते ? वरपायपत्तणेउरा जाव चेडिया-
चक्रवालमयहरगविंदपरिभ्रिखत्ता अंतेउराओ पडिणिक्रमइ-
पडिनिक्रमिक्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउ-
ग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिक्ता किड्ढावियाए
लेहियाए सद्धिं चाउग्घंटे आसरहं दुरूहइ, तएणं से धट्टुज्जुणे
कुमारे दोवईए कण्णाए सारत्थं करेइ, तएणं सा दोवई राय-
वरकण्णा कंपिल्लपुरं नयरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सयवरमंडवे तेणेव
उवागच्छइ उवागच्छिक्ता रहं ठवेइ रहाओ पच्चोरुहइ पच्चोरु-

अभयदेव सूरि ने स्वरचित वृत्ति में जो यह कहा है कि एक वाचना में "जिनपडिमाणं अखणं करेइ" दूसरी अन्य वाचना में "पद्या इत्यादि-तथा द्रौपद्याः प्रणिपात दण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे इति" सो यह उनका कथन इस बात की संभावना को प्रकट करता है कि इस पाठ में सिद्धान्त से विरुद्ध पाठ का प्रक्षेप हुआ है । इस विषय में जो कुछ हमें समाधान काना था वह हमने पहिले ही कर दिया है ।

॥ द्रौपदी पूजाचर्चा समाप्त ॥

अस्यथदेवसूरिणे स्वरचित वृत्तिमां ने जे कळुं छे के जेक वाचनामां
"जिनपडिमाणं अखणं करेइ" नीः वाचनामां "पद्या इत्यादि-तथा द्रौपद्याः
प्रणिपातदण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे इति ।" ते तेभनुं आ अथन आ
पातने प्रकट करे छे के आ पाठमां सिद्धान्तार्थी विद्बध जेवा पाठने प्रक्षेप
थये छे, आ [वने ने कंठं थोय्थ स्पर्शकरवु करवातुं छेत्तुं ते थये पडेवां
करी शीघ्रं छे.

द्रौपदी पूजा अर्था समाप्त.

हिता किड्ढावियाए लोहियाए य सद्धिं सयंवरमंडपं अणुप-
 विसइ अणुपविसित्ता करयल तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं वहुणं
 रायवरसहस्साणं पणामं करेइ, तएणं सा दोवई रायवर० एणं
 महं सिरिदामगंडं किं ते ? पाडलमल्लियचंपय जाव सत्तच्छया-
 ईहिं गंधद्वारिणिं मुयंतं परमसुहफासं दरिसणिज्जं गिणहइ, तएणं
 सा किड्ढाविया जाव सुरूवा जाव वामहत्थेणं चिल्लगं दप्पणं
 गहेऊण सललियं दप्पणसंकंतविंबसंदंसिए य से दाहिणेणं
 हत्थेणं दरिसए पवररायसीहे फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीर महु-
 रभणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्भापिऊणं वंससत्तसा-
 मत्थगोत्तविक्कंतिकंति बहुविह आगममाहप्परूवजोव्वणगुण-
 लावणणकुलसीलजाणिया कित्तणं करेइ, पढमं ताव वणिहपुंगवाणं
 दसदसारवीरपुरिसाणं तेलोक्कबलवगाणं सत्तुसयसहस्समाणा-
 वमहगाणं भवसिद्धिपवरपुंडरीयाणं चिल्लगाणं बलवीरियरूव-
 जोव्वणगुणलावन्नकित्तिया कित्तणं करेइ, ततो पुणो उग्गसेण-
 माईणं जायवाणं, भणइ य—सोहगगरूवकलिए वरोहि वरपुरिस-
 गंधहत्थीणं । जो हु ते होइ हिययइओ, तएणं सा दोवई
 रायवरकन्नगा वहुणं रायवरसहस्साणं मज्झं मज्जेणं समतिच्छ-
 माणीं २ पुव्वकयणियाणेणं चोइज्जमाणीं २ जेणेव पंच पंडवा
 तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ते पंचपंडवे तेणं दसद्ववणणेणं
 कुसुमदामेणं आवेढियपरिवेढियं करेइ करित्ता एवं वयासी-
 एएणं मए पंच पंडवा वरिया, तएणं तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं

वहूणि रायसहस्त्राणि महयारसद्वेणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयंति
सुवरियं खलु भो ! दोवइए रायवरकन्नाए २ च्चिकट्टु सयंवरमंड-
वाओ पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता जेणेव सया २ आवासा
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता, तएणं धट्टज्जुण्णे कुमारे पंच
पंडवे दोवइं रायवरकण्णं चाउग्घटं आसरहं दुरूहइ दुरूहित्ता
कंपिच्छपुरं मज्झं मज्झेणं जाव सयं भवणं अणुपविसइ, तएणं
दुवए राया पंच पंडवं देवइं रायवरकन्नं पट्टयं दुरूहेइ दुरूहित्ता
सेया पीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ मज्जावित्ता अग्गिहोमं कारवेइ
पचण्हं पंडवाणं दोवईए य पाणिगणं करावेइ तएणं
से दुवए राया दोवईए रायवरकण्णयाए इमं एयारूवं
पीईदाणं दलयइ, तं जहा — अट्ट हिरण्णकोडीओ जाव अट्ट
पेसणकारीओ दासचेडीओ, अण्णं च विउलं धणकणग जाव
दलयइ तएणं से दुवए राया ताइं वासुदेवपामोक्खाणं विउ-
लेणं असण्ण वत्थगंध जाव पडिविसज्जेइ ॥ सू० २१ ॥

टीका—‘ तएणं तं ’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु तां द्रौपदीं राजवरकन्यां
‘ अंतेउरियाओ ’ आन्तः पुरिक्यः= अन्तःपुरवर्तिन्यः स्त्रियः सर्वालंकारविभू-
षितां कुर्वन्ति, ‘ किं ते ’ तत्-तत्सौन्दर्यं किं वर्णयामि तद् वाचाऽभिलषितुं न

तए णं तं दोवइं रायवरकन्नं इत्यादि ।

टीकार्थ—(तए णं) इसके बाद (तं दोवइं रायवरकन्नं) उस राजवर कन्या
द्रौपदी को (अंतेउरियाओ सन्वालंकारविभूषितियं करोति) अतः पुर
की स्त्रियों ने समस्त अलंकारों से विभूषित किया । (किंते) उस समय

तएणं तं दोवइं रायवरकन्नं इत्यादि—

टीकार्थ—(तए णं) त्थारपत्नी (तं दोवइं रायवरकन्नं) ते राजवर कन्या
द्रौपदीने (अंते उरियाओ-सन्वालंकारविभूषितियं करोति) रत्नवासनी स्त्रीये ये
समस्त अलंकारोथी शयुगारी. (किं ते) ते समया तेना सौंदर्यं पश्यन्

शक्यत इत्यर्थः । ' वरपायपत्तणेउरा ' वरपादप्राप्तनूपुरा=चरणस्थापित प्रशस्त-
नूपुरा यावत्-चेडियाचक्रवालमयहरगविन्दपरिक्विखत्ता चेडिकाचक्रवालमहतरक
दृन्देन-अनेकदासीमहतरसमूहेन परिभ्रिम्भा-परिवृता, अन्तःपुरात् प्रतिनिष्कामति
-निः सरति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या=बहिः प्रदेशस्था ' उवट्टाणसाला ' उप-
स्थानशाला=आस्थानमण्डपः-सभामण्डप इत्यर्थः, यत्रैव चातुर्घण्टोऽश्वरथस्तत्रैवोपाग-
च्छति, उपागत्य ' किड्ढावियाए ' क्रीडिकया-क्रीडनधात्र्या कीडइया कीडिकया-
इत्याह ' लेहियाए ' इति लेखिकया=राजकुलवंशनामादिपरिचारिकया साथै

के उसके सौन्दर्य का हम क्या वर्णन करें । वह वाणी द्वारा कहने के
योग्य नहीं है अर्थात् वाणी से उसको वर्णन नहीं हो सकता है । (वर
पायपत्तणेउरा जाव ६ चेडियाचक्रवालमयहरगविन्दपरिक्विखत्ता अंते
उराओ पडिणिकखमइ) चरणों में स्थापित किये गये हैं-पहिराये गये
हैं-प्रशस्तनूपुर जिसको ऐसी वह द्रौपदी यावत् अनेक समझदार
दासियों के महोमहिम समूह से परिक्षिप्त होकर-अंतःपुर से बाहिर
निकली । (पडिणिकखमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव
चाउघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किड्ढावियाए लेहि-
याए सडिं चाउघंटे आसरहं दुरुहइ) बाहिर निकलकर वह जहाँ
बाहिर में सभामंडप और उसमें भी जहाँ चारघंटों वाला अश्वरथ था
वहाँ आई । वहाँ आकर वह अपनी क्रीडनधात्री के कि जो लेखिका
राजकुल, वंश नाम आदि की परिचायिका थी साथ उस चारघंटोंवाले

आपणु डेवी नीते करी शकिये. वाणी वडे तेतुं वणुंन अशक्य छे अट्टे
डे वाणीमां अट्टली शक्ति नथी डे तेना सौंदर्यतुं सथोड वणुंन करी शके.

(वरपायपत्तणेउरा जाव चेडियाचक्रवालमयहरगविन्दपरिक्विखत्ता अंतेउराओ
पडिणिकखमइ)

पणेमां ळेणे सुंदर नूपुर पडियां छे अवी ते द्रौपदी धणी अतुर दासी-
अथी वीटवाधने रणुवासथी गडार नीकणी.

(पडिणिकखमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउघंटे आसरहे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किड्ढावियाए लेहियाए सडिं चाउघंटे आसरहं दुरुहइ)

गडार नीकणीने ते न्यां गडारना सला-मंडपमां आर घंटवाणे अश्व-
रथ छेते त्यां आवी. त्यां आवीने ते पोताथी डीडन धात्री-डे ळे देभिका
राजकुल, वंश नाम वगेरेनी परिचारिका छती-तेनी साथे ते आर घंटवाणा
अश्वरथ उपर सवार थई गछ.

चातुर्घण्टमश्वरथं ' दुरुहइ ' द्रोहति=आरोहति । ततस्तदनन्तरं धृष्टद्युम्नः कुमारो द्रौपद्याः कन्यायाः ' सारथ्यं ' सारथ्यं-सारथिकर्म करोति, ततः खलु सा द्रौपदी राजवरकन्या काम्पिल्यपुरस्य नगरस्य मध्यमध्येन यत्रैव स्वयंस्वरमण्डपस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य रथं स्थापयति रथात् प्रत्यवरोहति प्रत्यवरुह्य क्रीडिकया लेखिकया च सार्धं स्वयंस्वरमण्डपम् अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य करतलपरिगृहीत दशनखं शिरआवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा तेषां वासुदेवप्रमुखानां बहूणं राजवरसह-

अश्वरथ में सवार हो गई। (तएणं से धृष्टद्युम्णे कुमारे दोवईए कन्याए सारथ्यं करेइ, तएणं सा दोवह रायवरकण्णा कंपिल्लपुरं नयरं मज्झं-मज्झेणं जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छइ) उस के सवार होते ही धृष्टद्युम्न कुमार ने उस द्रौपदी कन्या का सारथ्य किया-उसके रथ पर सारथि का काम किया-द्रौपदी के रथ को हांका। इस तरह धृष्टद्युम्न के द्वारा हांके गये रथ पर बैठी हुई वह राजवर कन्या द्रौपदी कांपिल्य पुर नगर के बीच से होकर जहाँ स्वयंस्वर-मंडप था उस ओर चल दी। (उवागच्छित्ता रहं ठवेइ रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता किड्ढावियाए लेहियाए सद्धिं सयंवरमंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता करयल तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं रायवरसहस्साणं पणामं करेइ) वहाँ पहुंचकर उसने रथ को खड़ा करवा दिया-रथके खड़े होते ही वह उससे नीचे उतरी, नीचे उतर कर वह उस लेखिका क्रीडन धात्री के साथ स्वयंस्वर मंडप में प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर के उसने अपने दोनों हाथों को जोड़ कर उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं को प्रमाण

(तएणं से धृष्टद्युम्णे कुमारे दोवईए कन्याए सारथ्यं करेइ, तएणं सा दोवह रायवरकण्णा कंपिल्लपुरं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छइ)

न्यारे ते सवार थरं गधं त्यारे कुमार धृष्टद्युम्ने ते द्रौपदी राजवर कन्याया रथ उपर जेसीने सारथीतुं काम संलाउथुं. आ प्रभावे धृष्ट मन वडे हांकायां आवेला ते रथ उपर सवार थधने ते राजवर कन्या द्रौपदी कांपिल्यपुर नगरनी मध्ये थधने न्यां स्वयंस्वर मंडप छतो त्यां रवाना थध.

(उवागच्छित्ता रहं ठवेइ रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता किड्ढावियाए लेहियाए सद्धिं सयंवरमंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता करयल तेसिं वासुदेव पामुक्खाणं बहूणं रायवरसहस्साणं पणामं करेइ)

त्यां पडेांथीने तेखे रथने थोलावडांथो, न्यारे रथ थोथो त्यारे ते रथ उपरथी नीचे उतरी, नीचे उतरीने ते लेखिका क्रीडन धात्रीनी साथे स्वयंस्वर मंडपमां प्रविष्ट थध. प्रविष्ट थधने तेखे वासुदेव प्रमुख छवारे राजांथोने थोताना थने हाथ नेडीने नमस्कार कथां.

स्नाणां प्रणामं करोति, ततः खलु सा द्रौपदी राजवरकन्या एकं महत् श्रीदामकाण्डं 'किं ते' किं तत्-तत्सौन्दर्यसौगन्ध्यवर्णनं किं करोमि ? तद् अपूर्वमिति भावः । 'पाटलमल्लियचंपय जाव सत्तच्छयाईहिं' पाटलमल्लिकाचम्पक-यावत् सप्तच्छदादिभिः 'गंधद्वारिणि' गन्धध्वारिणि गन्धवृत्तिं 'सुयंतं' सुश्रुतं=ददत् प्रकाशयदित्यर्थः परमसुखस्पर्शं दर्शनीयं गृह्णाति । ततः खलु सा क्रीडिका=क्रीडनधात्री यावत्-सुरूपा जाव 'वामहस्त्येणं चिल्लगं दप्पणं' यावत् वामहस्तेन चिल्लगं दर्पणम् अत्र यावच्छब्देनेदं बोध्यम्-सामावियघंसं चोद्गृहजणस्स उस्सुयकरं विचित्रमणिरयण-बद्धच्छरुहं' इति । स्वाभाविकघर्षं=स्वाभाविको नैसर्गिको घर्षो घर्षणं यत्र स तथा तं दर्पणमित्यन्वयः । स्वभावादेव चिक्रणमित्यर्थः, तथा-चतुर्दशजनस्योत्सुक्यकरं=तरुणलोकरय प्रक्षणाभिष्ठापजनकं, तथा-विचित्रमणिरत्नवद्धच्छरुकं=विचित्रमणिरत्नैर्बद्धः छरुको-सुष्टिं प्रदृणस्थानं, यस्य स तथा तं, तथा-'चिल्लगं' देदीप्यमानं. दर्पणं-वामहस्तेन "गहेउण" गृहीत्वा 'सललियं' सललितं 'दप्पण-

किया । (तए णं सा दोवई रायवरकन्या एगं महं सिरिदामगंडं किंते ? पाटलमल्लियचंपय जाव सत्तच्छयाईहिं गंधद्वारिणि सुयंतं परमसुहफासं दरिसणिज्जं गेण्हइ) इसके बाद उस राजवर कन्या द्रौपदी ने एक बडा विस्तृत श्री दामकांड-जिस की सुन्दरता और सुगंधि का हम क्या वर्णन करें-जो अपूर्व था-पाटक-गुलाब के पुष्पों से, मल्लिका-मौघरा के पुष्पों से यावत् सप्तच्छद वृक्ष के पुष्पों के गूँथा गया था, और जिस में से नासिका को तृप्ति करने वाली गंध निकल रही थी ।

जिसका स्पर्श परम सुख दायक था-तथा जो दर्शनीय था अपने हाथ में लिया (तएणं सा किड्ढाविद्या जाव सुरूवा जाव वामहस्त्येणं चिल्लगं-दप्पणं गहेऊण सललियं दप्पणसंकंनविंवसंदंसिए य से दाहिणेणं

(तए णं सा दोवई रायवरकन्या एगं महं सिरिदामगंडं किं ते ! पाटलमल्लिय चंपय जाव सत्तच्छयाईहिं गंधद्वारिणि सुयंतं परमसुहफासं दरिसणिज्जं गेण्हइ)

त्यारपथी ते रायवर कन्या द्रौपदीञ्जे अेक ञ्हु त्रोटो लारे श्रीदामकांडेने के नेनी सुदरतातुं वण्णंन थर्धं शके तेम नथी अने ने अपूर्वं हतो-पाटल शुलाभना पुष्पोथी, मल्लिका-मोगरोना पुष्पोथी, यम्पाना पुष्पोथी यावत् सप्तच्छद वृक्षना पुष्पोथी ते तैयार करवाभां आच्येो हतो अने नेभांथी नासिकाने तृप्तिं थाय तेथी सुवास प्रसरी रही हतो नेना स्पर्शं अत्यंत सुभकारी तेमञ्च ने दर्शनीय हतो-हाथमां लीघा.

(तएणं सा किड्ढा विद्या जाव सुरूवा जाव वामहस्त्येणं चिल्लगं दप्पणं गहेऊण सललियं दप्पणसंकंनविंवसंदंसिए य से दाहिणेणं हत्येणं दरिसए पवर-

संकंतविवसंदसिए य ' दर्पणसंक्रान्तविम्बसंदर्शितान्=दर्पणे संक्रान्तानि यानि राज्ञां विम्बानि-प्रतिविम्बानि, तैः संदर्शिताः=प्रतिबोधितास्तांश्च प्रवरराजसिंहान् सिंहसदृशशूरान् श्रेष्ठनृपान् दक्षिणेन हस्तेन ' से ' तस्याः द्रौपद्याः ' दरसिए ' दर्शयति इह कर्मणः सम्बन्धमात्रविचक्षायां पठ्ठी । तथा-' फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीरमहुरभणिया ' स्फुटविशदविधुद्धरिभितगम्भीरमधुरभणिता= अर्थतः

हृत्पेणं दरसिए पवररायसीहे फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीरमहुरभणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्मापिऊणं वंससत्तसामत्थगोत्तविक्कंतिकंतियहुविहआगममहप्पस्वजोव्वणगुणलावणं कुलजाणिया कित्तणं करेइ) इसके बाद उस क्रीडन धाय ने अपने हाथ में एक चमकता हुआ दर्पण लिया । यहां दर्पण के इन और विशेषणों का यावत् शब्द से ग्रहण हुआ है वे विशेषण ये हैं ' सामावियघंसं चोदहजणस्स उस्सुयकरं विचित्तमणिरयणवद्धल्लहं " इनका अर्थ इस प्रकार है-यह दर्पण स्वभावतः चिकना था । तथा तरुणजनों के चित्त में अपने को देखने की अभिलाषा का जनक था । मुष्टि से पकड़ने का जो इसका स्थान था वह विचित्र मणि-रत्नों से निर्मित था । उस दर्पण में जिन २ सिंह जैसे शूरवीर राजाओं के उस समय प्रतिविम्ब पड़े हुए थे उन प्रतिविम्बों को लेकर उस धायने उन श्रेष्ठ राजाओं को उस द्रौपदी के लिये अपने दक्षिण हाथ से बतलाया ! बतलाते समय उन्हें दिखाते समय-वह धात्री बिलकुल अर्थ की अपेक्षा स्फुट एवं वर्ण

रायसीहे फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीरमहुरभणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्मापिऊणं वंससत्तसामत्थगोत्तविक्कंतिकंतियहुविहआगममहप्पस्वजोव्वणगुणलावणं कुलजाणिया कित्तणं करेइ)

त्यारपथी ते डीडनधात्रीये पोताना ङाथमां अेक यमकतो अरीसो ढीधो. अर्द्धी ' अरीसा ' माटे य वत् शब्दथी नीचे लप्या मुञ्जण विशेषणुं पथु अडंषु समञ्जुं जेधंमे (सामावियघंसं चोदहजणस्स उस्सुयकरं विचित्तं मणिरयणवद्धल्लहं) आ विशेषणुं स्पष्टीकरंषु आ प्रभाणुं छे-ते अरीसो स्वाभाविक रीते ढीसो ढतो, तेमञ्ज तदंषु स्त्रीयोना यित्तमां तेने जेवानी सडंज लावे धंञ्जा जअत थाय तेयो ढते. ते अरीसानो ङाथो विचित्र मण्णीरत्तेनाथी जडेयो ढतो. ते अरीसामां सिंढ जेरा शूरवीर जे जे राज्ञो देभाया ते धात्रीये ते राज्ञोने पोताना जमणु ङाथथी सडेत करीने पतान्या. पतावती वपने अने समजवती वपते ते धाय अर्थनी अपेक्षाथी

भाविनी सिद्धिर्येषां, ते भवसिद्धिकास्तेषां मध्ये वरपुण्डरीकाणीव ये श्रेष्ठास्ते तथा तेषां, तथा 'चिल्लगाणं' तेजसा देदीप्यमानानां 'चिल्लग' इति देशी शब्दः । तथा— 'बलवीरियरूत्रजोव्वगगुणलावणक्वित्तिया' बलवीर्यरूपयौवन-गुणलावण्य कीर्तिका=बलं-कायिकं, वीर्यम्-उत्साहः, रूपं-सौन्दर्यं, यौवनं-तारुण्यं, गुणान्-औदार्यगाम्भीर्यादीन्, लावण्य-यौवनवयोजन्यं कान्तिविशेषं, कीर्तयति या सा तथा, सा क्रीडिकाधात्री कीर्तनं करोति स्मेत्यर्थः । अत्र पूर्वोक्तमपि विशेषणं किंचिद् विशेषवोधनार्थं पुनः कथितम् ।

ततस्तदनन्तरं पुनः सा क्रीडनधात्री 'उगसेणमाईणं जायवाणं' उग्रसेनादीनां यादवानां बलवीर्यादि कीर्तनं करोति कृत्वा भणति च=सा धात्री द्रौपदीं

गुणलावण्य कित्तियाकित्तणं करेइ) सबसे पहिले उस क्रीडन धात्री ने वृष्णिवंश के पुंगव समुद्रविजय आदिदश दशार्हों के कि जो ब्रैलोक्य में भी विशिष्ट बलशाली माने जाते थे, लाखों शत्रुओं के भान को मर्दन करने वाले थे, भवसिद्धिक पुरुषों में जो श्रेष्ठ कमल के जैसे माने गये हैं, और जो अपने स्वाभाविक तेज से सदा दमकते रहते थे बल का, वीर्य का, रूप का, यौवन का, गुणों का, लावण्य का, कीर्तिका होने के कारण कीर्तन-वर्णन किया । शारीरिक शक्तिका नाम बल, उत्साह का नाम वीर्य, सौन्दर्य का नाम रूप तारुण्य का नाम यौवन है । औदार्य गांभीर्य आदि गुण हैं । यौवन वय से जन्य जो कान्ति शरीर में आती है वह लावण्य है (तओ पुणो उगसेणमाईणं जायवाणं भणइ य सोहगख्खकलिए वरेहि वर पुरिसगंधहत्थीणं जो हु ते होइ हियय-दइओ, तएणं सा दोवई रायवरकन्नगा बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झं

जोव्वगगुणलावण्यक्वित्तिया कित्तणं करेइ)

ते क्रीडन धात्रीये सौ पडेलां वृष्णि वंशमां पुंगव (श्रेष्ठ) समुद्र विबन्ध वगेरे दश दशाहोर्तुं-के जेओ त्रणे लोकोमां पणु विशिष्ट शक्तिशाली गणुता हता, लाओ शत्रुओना मानतुं मर्दन करनारा हता, भवसिद्धिक पुत्रोभां जेओ कभगानी जेम श्रेष्ठ गणुता हता अने जेओ पोताना स्वाभाविक तेज्जथी हसेशां प्रकशता रहेता हता, भण, वीर्यं, रूपं, यौवनं, शुभो, लावण्यं, कीर्ति वगेरेथी संपन्न हता-वर्णन कथुं. शारीरिक शक्तितुं नाम बल, उत्साहतुं नाम वीर्यं, सौन्दर्यतुं नाम रूपं अने तारुण्यतुं नाम यौवनं छे. औदार्यं, गांभीर्यं शुभो छे. युवावस्थां जे शरीर कान्तिवाणुं थाय छे तेने लावण्य कडेवाभां आवे छे.

(तओ पुणो उगसेणमाईणं जायवाणं भणइ य सोहगख्खकलिए वरेहि वरपुरिसगंधहत्थीणं जो हु ते होइ हिययदइओ तएणं तं दोवई रायवरकन्नगा

पुनराह— 'सोहगख्वकलि' इत्यादि, एवमत्रान्वयमुखेनच्यारुया—'वरपुरि-सगंधहृत्थोणं' वीरपुरुषगन्धहस्तिना=हस्तिषु गन्धहस्तिन इव ये विशिष्टगुणसद्भावत्वात् पुरुषेषु सर्वतः श्रेष्ठास्ते वरपुरुषगन्धहस्तिनस्तेषां मध्ये 'सोहगख्वकलि' सौभाग्यरूपकलितः—अतिशयेन सौभाग्यसौन्दर्यसमन्वितः, यः खलु ते तव हृदय-दयितः=हृदयप्रियः 'होइ' भवति, तं 'वरेहि' वरय=पतिभावेन स्वीकुरु इत्यर्थः।

ततस्तदनन्तरं खलु द्रौपदी राजवरकन्या बहूनां राजवरसहस्राणां मध्यमध्येन 'समिच्छमाणी २' समतिक्रामन्ती=गच्छन्ती 'पुव्वकयणियाणेणं' पूर्वकृतनिदानेन=सुकुमारिकाभवे भर्तृपञ्चकाभिलापरूपं निदानं कृतं तेन, 'चोइज्जमाणी २' प्रेर्यमाणा २ यत्रैव पञ्च पाण्डवास्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तान् दशार्धवर्णेन-पञ्चवर्णेन कुसुमदाम्ना 'आवेढियपरिवेढिए' आवेष्टितपरिवेष्टितान् करोति,

मज्झेणं समतिच्छमाणी २ पुव्वकयणियाणेणं चोइज्जमाणी २ जेणेव पंचपंडवा तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद उस क्रीडन धाय ने यादव वंशबाले उग्रसेन आदि यादवों के बलवीर्य आदि का वर्णन किया—उसने द्रौपदी से कहा ये जैसे हाथियों में गंधहृस्ती श्रेष्ठ होता है उसी तरह ये पुरुषों में विशिष्ट गुणोंके सद्भाव के कारण सर्व प्रकार से श्रेष्ठ हैं—उनके बीच में जो तुझे सौभाग्यरूप संकलित प्रतीत हो और तेरे हृदय को प्यारा लगे—उसे तू पतिरूप से वरले। इसके बाद वह राजवर कन्या द्रौपदी उन हजारों राजाओं के बीच से होती हुई सुकुमारिका के भव में कून निदान के प्रभाव से वार २ प्रेरित होकर जहां पांच पांडव थे—वहां पहुँची—(उवागच्छिता ते पंच पांडवे तेषां दसद्ववणेणं कुसुम-दामेणं आवेढियपरिवेढियं करेइ, करित्ता एवं वयासी, एएणं मए पंच

बहूणं रायवरसहस्राणां मज्जेणं मज्जेणं समतिच्छमाणी २ पुव्वकयणियाणेणं चोइ-ज्जमाणी २ जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ)

त्यारपणी क्रीडन धात्रीञ्जे उग्रसेन वगेरेतुं वरुणं कथुं अने कहुं के-
डाथीञ्जेमां जेम गंध हृस्ती उत्तम गणुय छे तेमश्च पुइधोभा सविशेष
शुषुवान जेवा जेञ्जे मधी रीते सारा छे, आ मधामां तने जे सौभाग्य-
शाणी लागता होय अने तने जेञ्जे गभता होय तेञ्जेने तुं पति इपमां
द्वीकरी दे. त्यारपणी ते राजवर कन्या द्रौपदी ते डबरे राबञ्जेनी वञ्जेथी
पसार थधने पोताना सुकुमारिकाना लवमां करेला अलिपथी त्रेराधने न्यां
पांय पांडवे छेता त्यां पडोन्थी.

(उवागच्छिता ते पंच पांडवे तेषां दसद्ववणेणं कुसुमदामेणं आवेढिय
परिवेढियं करेइ, करित्ता एवं वयासी, एएणं मए पंचपंडवा वरिया, तएणं

कृत्वा एवमवादीत्—एते खलु पञ्च पाण्डवा मया वृता इति । ततः खलु ' ताई वासुदेवपामोक्त्वाइं बहूणि रायसहस्साणि ' तानि वासुदेवप्रमुखाणि बहूनि राज-सहस्रसंख्यका वासुदेवप्रमुखा राजान इत्यर्थः । महता २ शब्देनोद्धोषयन्त एवं वदन्ति—सुवृत्तं खलु भोः ! द्रौपद्या राजवरकन्याया इति कृत्वा—इत्युक्त्वा स्वयंवर-मण्डपात् प्रतिनिष्कामन्ति, निर्गच्छन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव स्वका स्वका आवा-सास्तत्रैवोपागच्छन्ति । ततः खलु धृष्टद्युम्नः कुमारः पञ्च पाण्डवान् द्रौपदीं राजवरकन्यां चातुर्घटमश्वरथं ' दुरूहइ ' दूरोहयति=आरोहयति दूरोह्य काम्पि-

पंडवा वरियो, तएणं तेसि वासुदेवपामोक्त्वाणं बहूणि रायसहस्साणि, महया २ सहेणं उगघोसेमाणा २ एवं वयंति, सुवरियं खलु भो । दोव-इए रायवरकन्याए त्ति कट्टु सयंवरमंडवाओ पडिनिक्खमंति, पडि-निक्खमित्ता जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छइ) वहां पण्डव कर उसने उन पांचो पांडवों को उस पंचवर्णवाली माला से अवेष्टिन परिवेष्टिन कर दिया । करके फिर वह इस प्रकार कहने लगी—ये पांच पांडव मैंने पतिरूप से वर लिये हैं । इसके बाद उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं ने बड़े २ जोर के शब्दों से ऐसा कहा इस राजवर कन्या द्रौपदीने बहुत अच्छे वर वरे ऐसा कहकर वे उस स्वयंवर मंडप से बाहिर हो गये । बाहिर आकर फिर वे जहां अपने २ आवास स्थान थे वहां चले आये । (उवागच्छित्ता तएणं धट्टज्जुण्णे कुमारे पंच पंडवे दोवइं रायवरकण्णं चाउगघंठं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता कंपिल्लपुरं तेसि वासुदेवपामोक्त्वाणं बहूणि रायसहस्साणि, महया २ सहेणं उगघोसेमाणा २ एवं वयंति, सुवरियं खलु भो । दोवइए रायवरकन्याए २ त्ति कट्टु सयंवरमंड-वाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छइ)

त्यां पडोअीने तेणु ते पांच पांडवाने पांच वर्षवागी भाणाथी अबे-ष्टित, परिवेष्टित करी दीधा. त्यारपछी तेअीने कडेवा लागी के डे पांच पांडवे । मे' तभने पति इपमां वरी दीधा छे. त्यारभाह ते वासुदेव प्रमुख उभारे शब्दोअीने अहु भोटा सादथी आ प्रभाणु कहुं के आ राजवर कन्या द्रौपदीअे अहु अ सारा वरे पसंद कर्या छे. आभ कहीने तेअो सर्वे स्वयंवर मंडपमांथी अहार नीकणी गया. अहार नीकणीने तेअो न्यां पेताना आवास स्थानो इतां त्यां जता रखा.

(उवागच्छित्ता तएणं धट्टज्जुण्णे कुमारे पंचपंडवे दोवइं रायवरकण्णं चाउ-गघंठं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता कंपिल्लपुरं मज्झं मज्झे णं जाव सयं भवणं अणु-

ह्यपुरस्य मध्यमन्वेन यावत् स्वकं भवनमनुभवति, ततः खलु द्रुपदो राजा पञ्च पाण्डवान् द्रौपदीं राजवरकन्यां 'पट्टयं' पट्टकं=पट्टकोपरि 'दुरूहेइ' दूरो-हयति=आरोहयति, दूरोह्य श्वेतपीतैः कलशैः 'मज्जावेइ' मज्जयति=स्नपयति अग्निहोमं विवाहविधिनाऽग्नौ होमं कारयति, पञ्चानां पाण्डवानां द्रौपद्याश्च पाणि-ग्रहणं कारयति, अत्र पञ्चानां पाण्डवानामिति सम्बन्धसामान्ये षण्ठी । ततः खलु स द्रुपदो राजा द्रौपद्या राजवरकन्यायाः इममेतद्रूपं प्रीतिदानं यौतुकदानं ददाति,

मज्जं मज्जेणं जाव सयंभवणं अणुपविसइ, तएणं दुवए राया पंच पंडवे दोवइं रायवरकन्नं पट्टयं दुरूहेइ, दुरूहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्निहोमं कारवेइ, पंचणं पंडवाणं दोवइए य पाणिगगहणं करावेइ,) इसके बाद धृष्टद्युम्नकुमार ने उन पांच पांडवों को एवं राजवर कन्या द्रौपदी को चारघंटों से युक्त उस अश्वरथ पर बैठाया-बैठाकर कांपिल्यपुर नगर के बीच से होता हुआ वह जहाँ अपना भवन था वहाँ आया वहाँ आकर वह उसमें उन सब के साथ प्रविष्ट हुआ । इसके बाद द्रुपद राजा ने उन पाँचों पांडवों को और राजवर कन्या उस द्रौपदी को एक पट्टक पर बैठा दिया-बैठाकर फिर उसने उनका श्वेत पीत कलशों से चांदी सोने के घड़ों से-अभिषेक करवाया अभिषेक करवा कर फिर उसने अग्नि होम करवाया-और उसकी साक्षी पूर्वक पाँचों-पांडवों के साथ अपनी कन्या द्रौपदी का पाणि ग्रहण संस्कार करवा दिया । (तएणं से दुवए राया दोवइए राय-

पविसइ, तएणं दुवए राया पंच पंडवे दोवइं रायवरकन्नं पट्टयं दुरूहेइ, दुरूहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ मज्जावित्ता अग्निहोमं कारवेइ, पंचणं पंडवाणं दोवइए य पाणिगगहणं करावेइ)

त्यारपछी धृष्टद्युम्न कुमारे ते पांच पांडवोंने अने राजवर कन्या द्रौप-दीने आर घंटवाणा ते अश्वरथ उपर जेसाडया अने जेसाडीने कांपिल्यपुर नगरनी वच्चे थधने जथा पोतानुं लवन डनुं त्हां गया. त्हां जईने तेओ सबे तेमां प्रविष्ट थथा. त्यारपछी डपह राजजे ते पांच पांडवोंने अने राज-वर कन्या ते द्रौपदीने ओक पट्टक उपर जेसाडी दीया अने जेसाडीने तेहे तेभने। अइइ, अने पीणा कणशेथी-ओटले के आही अने सोनाना कणशेथी अक्षिषेक करावडाओथे अक्षिषेक करावीने तेहे अग्निहोम करावराओथे अने तेनी साक्षीमां पोतानी कन्या द्रौपदीने छस्तमेणाप तेओनी साथे करावी दीया.

(तएणं से दुवए राया दोवइए रायवरकणयाए इयं एयासुं पीईदानं

तद् यथा—अष्ट हिरण्यकोटीः, यावत्=अष्ट रजतकोटी, अष्ट सुवर्णकोटीः, अष्ट 'पेसणकारीओ' प्रेषणकारिणीः, आज्ञाकारिणीः दासचेटीः—दासपुत्रीः, अन्नं च विपुलं धनकनक—यावत् धनं—गणिमादिकं, कनकम् अघटितस्वर्णं, यावच्छब्देन—रत्ननि—कर्केतनादीनि, मणयश्चन्द्रकान्ताद्याः मौक्तिकानि च शङ्खश्च प्रतीत एव शिलाप्रवालानि च विद्रुमाणि रक्तरत्नानि—पद्मरागादीनि तान्येव सद् विद्यमानं यत् सारं=प्रधानं स्वापतेयं द्रव्यं तद् ददाति स्म ।

ततः खलु स द्रुपदो राजा तान् वासुदेवप्रमुखान् बहुसहस्रसंख्यकान् राज्ञः विपुलेन अशनपानस्वाद्यस्वाद्येन भोजयति, भोजयित्वा वस्त्रगन्धादिभिर्यावत् सत्कास्यति संमानयति, सत्कार्यं संमान्य प्रतिविसर्जयति ॥ सू० २२ ॥

चरकणयाए इमं एयाख्वं पीईदाणं दलयइ, तं जहा—अट्टहिरण्यकोडीओ जाव अट्टपेसणकारिओ दासचेडीओ, अण्णं च विउलं धणकणग जाव दलयइ, तएणं से दुवए राया ताई वासुदेव पामोक्खाणं विउलेणं असण ४ वत्थगंध जाव पडि विसज्जेइ) इसके बाद द्रुपद राजाने राजवर कन्या उस द्रौपदी के लिये इतना इस प्रकार प्रीति दान दिया आठ हिरण्य कोटी—चांदी के बने हुए आठ करोड़ आभूषण, सुवर्ण के बने हुए आठ करोड़ आभूषण यावत् आज्ञा कारिणी ८ आठ दासियों और भी बहुत सा गणिमादिक रूप धन, अघटित स्वर्ण, कर्केतनादि रत्न, चन्द्रकान्त आदि मणि, मौक्तिक, शंख, विद्रुम, पद्मरागादि रक्त रत्न । यह सब सारभूत द्रव्य उसके लिये प्रदान किया । इसके बाद द्रुपदराजा ने उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं को अशन, पान, स्वाद्य एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार एवं वस्त्र गंध आदि से सत्कृत सम्मानित कर अपने यहां से बिदा कर दिया ॥ सू० २२ ॥

दलयइ, तं जहा अट्ट हिरण्यकोडीओ जाव अट्ट पेसणकारीओ दासचेडीओ, अण्णं च विउलं धणकणग जाव दलयइ, तएणं से दुवए राया ताई वासुदेव पामोक्खाणं विउलेणं असण ४ वत्थ गंध जाव पडि विसज्जेइ)

त्यारपथी द्रुपद राज्ञे राजवर कन्या द्रौपदीने आ प्रमाखे प्रीतिदान आभ्युं के आठ हिरण्य—कोटी—चांदीना आठ करोड़ आभूषणो यावत् आज्ञाभां रडेनारी आठ दासीओ अने थीअुं पणु धणुं गळिअ वगेरे इप. धन, अघटित सुवर्णुं, कर्केतन वगेरे रत्न, चन्द्रकान्त वगेरे मळि, मौक्तिक, शंख, विद्रुम, पद्मराग वगेरे रक्त रत्नो आभ्या. आ अयुं सारभूत धन द्रौपदीने आभ्युं. त्यारपथी द्रुपद राज्ञे ते वासुदेव प्रमुख ललरो राज्ञोने अशन, पान, भाद्य, अने स्वाद्य इपं त्यार लतना आहारो अने वस्त्र, गंध वगेरेथी सत्कृत सम्मानित करीने पाताना नगरथी विदाय कर्या. ॥ सू० २२ ॥

मूलम्—तएणं से पंडू राया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं
 राय० करयल एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! हत्थि-
 णाउरे नयरे पंचण्हं पंडवाणं दोवइए य देवीए कल्लणकरे
 भविस्सइ तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ममं अणुगिणहमाणा
 अकालपरिहीणं समोसरह, तएणं वासुदेवपामोक्खा पत्तेयं
 जाव पहारेत्थ गमणाए । तएणं से पंडुराया कोडुंबियपुरिसे
 सद्दा० २ एवं वयासी-गच्छहणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! हत्थि-
 णाउरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिसए कारेह अब्भु-
 गयमूसिय वण्णओ जाव पडिरुवे, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा
 पडिसुणेति जाव करावेति, तएणं से पंडुए पंचहिं पंडवेहिं
 दोवइए देवीए सद्धिं हयगयसंपरिवुडे कंपिल्लपुराओ पडि-
 निक्खमइ२ जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए, तएणं से
 पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता
 कोडुंबि० सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे
 देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरस्स नयरस्स वहिया वासुदेवपा-
 मुक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे कारेह अणेगखंभसय
 तहेव जाव पच्चप्पिणंति, तएणं ते वासुदेवपामोक्खावहवे
 रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागच्छइ, तएणं
 से पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता
 हट्टतुट्टे णहाए कयवल्लि० जहा दुवए जाव जहारिहं आवासे
 दलयइ, तएणं ते वासुदेव पा० बहवे रायसहस्सा जेणेव

सयाइं२ आवासाइं तेणेव उवा० तहेव जाव विहरंति, तएणं
से पंडुराया हत्थिणाउरणयरं अणुपविसइ अणुपविसित्ता
कोडुंबिय० सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-तुब्भेणं देवाणु-
प्पिया ! विउलं असण४ तहेव जाव उवणेति, तएणं ते
वासुदेवपामोक्खा बहवे राया पहाया कयवलिकम्मा तं
विउलं असणं४ तहेव जाव विहरंति, तएणं से पंडुराया
पंच पंडवे दोवइं च देविं पट्टयं दुरुहेइ दुरुहित्ता सेयपी-
एहिं कलसेहिं पहावेति पहावित्ताकल्लाणकारि करेइ करित्ता
ते वासुदेवपामोक्खे बहवे रायसहस्से विउलेणं असण४
पुप्फवत्थेणं सक्कारेइ सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ, तएणं ताइं
वासुदेवपामोक्खाइं बहूहिं जाव पडिगयाइं ॥ सू० २३ ॥

टीका-‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु पाण्डु राजा तेषां वासुदेव-
प्रमुखानां बहूनां राजसदस्यानां करतलपरिगृहीतं दशनखं शिर आवर्त मस्तकेऽञ्जलिं
कृत्वा एवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्पियाः ! इस्तिनापुरे नगरे पञ्चानां पाण्ड-
वानां द्रौपद्याश्च देव्याः कल्याणकरो भविष्यति तत्-तस्मात् यूयं खलु हे देवानु-
प्पियाः मामनुगृह्यन्तः, अकालपरिहीनं=कालविलम्बरहितं-शीघ्रं समवसरत=आग-

‘ तएणं से पंडुराया ’ इत्यादि ।

टीकार्थं-(तएणं) इस्सके घाद (से पंडुराया) उस्स पांडुराजा ने (तेसिं
वासुदेव पामोक्खा णं) उन वासुदेव प्रमुख (बहूणं राय० करयल
एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पियो । हात्थिणाउरे नयरे पंचण्हं पंडवानं
दोवइए देवीए कल्लाणकरे भविस्सइ तं तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! मम

तएणं से पंडुराया इत्यादि—

टीकार्थं-(तएणं) त्यारपथी (से पंडुराया) ते पांडु राज्ञे (ते सिं
वासुदेवपामोक्खाणं) ते वासुदेव प्रमुख

(बहूणं राय० करयल एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया । इत्थिणाउरे
नयरे पंचण्हं पंडवानं दोवइए, देवीए कल्लाणकरे भविस्सइ तं तुब्भेणं देवाणु-
प्पिया ! ममं अणुगिह्ममाणं अकालपरिहीर्षं समोसरइ)

मनं कुरुत । ततः खलु वासुदेवप्रमुखाः प्रत्येकं २ यावत् प्राधारयद् गमनाय= हस्तिनापुरं नगरं गन्तुं पृथ्वा इत्यर्थः ।

ततः खलु स पाण्डुनामको राजा कौटुम्बिकपुरूपान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! हस्तिनापुरे पञ्चानां पाण्डवानां पञ्च ' पासायवडिसए ' प्रासादावतंसकान् कारयत । किं भूतानित्याह-'अभ्यु- गमयस्यसि ' अभ्युद्गतोच्छ्रितान्-अत्युच्चानित्यर्थः । वर्णकः-प्रथमाध्ययनोक्त-

अणुगिण्हमाणा अकालपरिहीणं समोसरह) हजारों राजाओं से अपने दोनों हाथों की अंजलि करके और उसे शिर पर रखकर के बड़ी नम्रता के साथ नमस्कार करके-इस प्रकार कहा हे देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगर में पांच पांडवों और द्रौपदी देवी का कल्याणकारी उत्सव होगा इसलिये हे देवानुप्रियो ! आप सब मेरे ऊपर अनुग्रह करके शीघ्र से शीघ्र पधारें । (तएणं वासुदेवपामोक्खा पत्तेयं २ जाव पहारेत्य गम- णाए) इस के बाद वे वासुदेव प्रमुख प्रत्येक जन वहाँ हस्तिना पुर जाने के लिये प्रस्थित हो गये । (तएणं से पंडुराया कोट्टुम्बियपुरिसं सदावेह २ एवं वयासी-गच्छह णंतुम्भे देवाणुप्पिया हत्थिणाउरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिसए कारेह, अभ्युगमयस्यसि वण्णओ जाव पडि- रुवे) इतने में पांडुराजा ने कौटुम्बिकपुरुपों को बुलाया ओर बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम लोग हस्तिना पुर जाओ वहाँ जाकर पांचों पांडवों के लिये पांच श्रेष्ठ प्रासाद बनवाओ । ये प्रासाद

इतिरे राण्णोने पोताना णंने हाथेणी अंजलि णनावीने अने तेने भरतके भूडीने षूण ञ नम्रपणे नमस्कार कर्था अने आ प्रभाणे विनंती करी के हे देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगरमां पांचे पांडवे तेमअ द्रौपदी देवीने क्ख्याणुकारी उत्सव थये अथी हे देवानुप्रियो ! तमे सौ मारा उपर कृपा करीने सत्तरे त्यां पधारो । (तएणं वासुदेवपामोक्खा पत्तेयं २ जाव पहारेत्य गमणाए) त्यारपणी ते वासुदेव प्रमुख द्वरेक राण्ण त्याथी हस्तिनापुर ञवा उपडी गया ।

तएणं से पंडुराया कोट्टुम्बियपुरिसं सदावेह २ एवं वयासी-गच्छह णं तुम्भे देवाणुप्पिया हत्थिणाउरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिसए कारेह, अभ्युगमयस्यसि वण्णओ जाव पडिरुवे)

ते वभते पांडु राण्णो कोट्टुम्बिक पुरोधेने ओलाव्या अने ओलाधाने तेओने क्खुं के हे देवानुप्रियो ! तमे हस्तिनापुर ण्णो अने त्यां नथने

मेघकुमार-प्रासादवद् वर्णनं विज्ञेयम् यावद् अनेकस्तम्भशतसंनिविष्टान् प्रति-
रूपान्=शोभासौन्दर्यसम्पन्नान् । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः-‘तथाऽस्तु’
इत्युक्त्वा प्रतिशृण्वन्ति=आज्ञां स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य हस्तिनापुरं गत्वा पञ्च
प्रासादावर्तसकान् यावत् कारयन्ति । ततस्तदनन्तरं पाण्डुराजा पञ्चभिः पाण्डवै
द्रौपद्या देव्या च सार्धं हयगजरथपदातिसंपरिवृतः काष्पिल्यपुरात् प्रतिनिक्रामति-
प्रतिनिक्रम्य यत्रैव हस्तिनापुरं नगरं तत्रैवोपागतः ।

ततः खलु स पाण्डुराजा तेषां वासुदेवप्रभुखाणामागमनं ज्ञात्वा कौटुम्बिक-
पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुभियाः !

बहुत ऊँचे हों। इन प्रासादों का वर्णन प्रथम अध्ययन में उक्त मेघ
कुमार के प्रासादों जैसा जानना चाहिये। यावत् ये प्रासाद अनेक स्तं-
भशत से युक्त हों-शोभा सौन्दर्य से संपन्न हों। (तएणं ते कोट्टुम्बिय
पुरिसा पडिसुणेति, जा करावेति) राजा की इस प्रकार की आज्ञा को
उन कौटुम्बिक पुरुषों ने मान लिया और हस्तिनापुर जाकर उन्होंने
पांच प्रासाद कथित रूपसे बनवा दिये। (तएणं से पंडुए पंचहिं पंडवेहिं
दोवइए देवीए सद्धिं हय गय संपरिवुडे कंपिल्लपुराओ पडिनिक्खमइ २
जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए) इसके बाद वे पांडुराजा पांडवों
और द्रौपदी देवी को साथ लेकर हय, गज, आदि चतुरंगिणी सेना के
साथ २ कांपिल्यपुर नगर से चल दिये-चलकर जहां हस्तिनापुर नगर
था-वहां आये (तएणं से पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं

पांचे पांडवे भाटे पांचे उत्तम भडेल भनावडावे। भडेल छेत्था डोवा नेधमे.
आ भडेलोतुं वणुंन पडेला अध्ययनमां वणुंनपामां आवेला मेघ कुमाराना
भडेलो नेतुं नाली लेतुं नेधमे। यावत् आ भधा भडेलो घणा सेंडेला थांलला-
ओथी युक्त तेभन शोभा तथा सौंदर्य संपन्न डोवा नेधमे। (तएणं ते
कोट्टुम्बियपुरिसा पडिसुणेति जाव करावेति) आ नतनी रामनी आत्ताने
कौटुम्बिक पुरुषोत्तमे स्वीकारी लीधी अने हस्तिनापुर नधने तेओत्तमे डडेवा
सुणभ न पांचे भडेलो तैयार करानी दीधा।

(तएणं से पंडुए पंचहिं पंडवेहिं दोवइए देवीए सद्धिं हयगयसंपरिवुडे
कंपिल्लपुराओ पडिनिक्खमइ २ जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए)

त्यारपछी ते पांडु राम पांचे पांडवे अने द्रौपदी देवीने लधने साथे
घोडा, हाथी वगेरेनी चतुरंगिणी सेनानी साथे कांपिल्यपुर नगरनी भडार
नीकल्या अने नीकणीने न्यां हस्तिनापुर नगर हतुं त्यां पडेत्थ्या।

(तएणं से पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता कोट्टुम्बिय०

हस्तिनापुरस्य नगरस्य बहिः प्रदेशे वासुदेवप्रमुखाणां बहूनां राजसहस्राणामावासान् कारयत्, कीदृशानावासान् इत्याह—‘अणेगखंभ’ इत्यादि। अनेकस्तम्भशतसंनिविष्टान्, तथैव—यथाऽऽवासान् कारयितुं पाण्डुना कथितं, तथैव कारयित्वा कौटुम्बिकपुरुषा यावत् प्रत्यर्पयन्ति—राज्ञे निवेदयन्ति स्म। ततः खलु वासुदेवप्रमुखा बहु सहस्रसंख्यका राजानो यत्रैव स्वकाः स्वका आवसास्तत्रैवोपागच्छन्ति,

जाणित्वा कोटुंबिय० सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुम्भे देवाणुपियया ! हत्थिणाउरस्स नयरस्स बहिया वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह) वहां आकर उन पांडुराजा ने उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं का आगमन जानकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और हस्तिनापुर नगर के बाहिर वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं को ठहरने के लिये आवासों को बनवाओ (अणेगखंभसय तहेव जाव पच्चपिणंति, तएणं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागच्छंति) ये आवास अनेक सैंकडोंस्तभों से युक्त हों। इस प्रकार जैसे आवासों को बनवाने के लिये पांडु राजा ने उन कौटुम्बिक पुरुषों से कहा था—वैसे ही आवास उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बनवादिये और बनवाकर पीछे इसकी खबर भी राजा को करदी। इसके बाद वे वासुदेव प्रमुख हजारों राजा जहां हस्तिनापुर

सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुम्भे देवाणुपियया। हत्थिणाउरस्स नयरस्स बहिया वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह)

त्यां आवीने ते पांडु राज्ञे ते वासुदेव प्रमुष डंभरे राज्ञेने आवी गयेवा लक्ष्मीने चोताना कौटुम्बिक पुरुषेने जोलाव्या अने जोलावीने तेभने आ प्रभाञ्जे क्खुं के डे देवानुप्रियो ! तमे दोडे लब्धे अने हस्तिनापुर नगरनी भडार वासुदेव प्रमुष डंभरे राज्ञेने रडेवा भाटे आवासो भनावे।

(अणेगखंभसय० तहेव जाव पच्चपिणंति, तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागच्छंति)

आ अथा आवासो सैंकडे स्त'लोथी युक्त डोवा लक्ष्मी आ रीते पांडु राज्ञेने ले नतना आवासो भनावडाववाने। डुकभ कथेँ डते ते कौटुम्बिक पुरुषेने ते ले नतना आवासो भनावडावी दीधा अने भनावडावीने काम पुर थर्ष लवानी राजने अणर आपी त्थारपथी ते वासुदेव प्रमुष डंभरे राज्ञेने न्यां हस्तिनापुर नगर डंतु' त्यां आवी गया।

उपागत्य तथैव यावद् विहरन्ति । ततः खलु स पाण्डू राजा हस्तिनापुरं नगर-
मनुभविशति, अनुभविशय कौटुम्बिकपुरूपान् शङ्कयति, शङ्कयित्वा एवमवादीत्-
युयं खलु हे देवानुभियाः ! विपुलम् अन्ननपानपानखाद्यस्वाद्यं, उपस्कारयत,
उपस्कार्य यत्रैव वासुदेवप्रमुखास्तत्रैवोपनयत । तथैव यावद् उपनयन्ति, ततस्ते
कौटुम्बिकपुरुपास्तथैव विपुलमन्ननादि चतुर्विधाऽऽहारमुपस्कारयन्ति उपस्कार्य
यावद् वासुदेवादीनामन्तिके-उपनयन्ति=उपस्थापयन्ति ।

नगर था वहाँ आगये । (तएणं से पंडुराराया तेसि वासुदेवपामोक्त्वा
णं आगमणं जाणित्ता हट्टतुट्टे ण्हाए कयवलिकम्मे जहा दुवए जाव जहा
रिहं आवासे दलयंति, तएणं ते वासुदेव पा० बहवे रायसहस्सा जेणेव
सयाइं २ आवासाइं तेणेव उवाग० तहेव जाव विहरंति) वासुदेव
प्रमुख उन हजारों राजाओं का आगमन जानकर पांडुराजाने हर्षित एवं
संतुष्ट होकर स्नान किया वायसादि पक्षियों के लिये अन्नदि का देने
रूप बलि कर्म किया- जिस प्रकार दुपद राजाने यथा योग्य आवास-
स्थान इन्हीं के लिये दिये थे उसी तरह पांडुराजाने भी उन्हें जो जिस
के योग्य स्थान था वह आवासस्थान दिया । पश्चात् वे वासुदेव प्रमुख
हजारों राजा जहाँ अपने २ ठहरने के लिये आवासस्थान थे वहाँ गये
वहाँ जाकर वे उसी तरह से ठहर गये । (तएणं से पंडुराराया हत्थिणा-
उरं नयरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता, कोडुं विय० सदावेइ, सदाचित्ता
एवं वयासी-तुग्गेणं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं ४ तहेव जाव उव-

(तएणं से पंडुराराया तेसि वासुदेवपामोक्त्वाणं आगमणं जाणित्ता हट्टतुट्टे
ण्हाए कयवलिकम्मे जहा दुवए जाव जहारिहं आवासे दलयंति, तएणं ते वासुदेव
पा० बहवे रायसहस्सा जेणेव सयाइं २ आवासाइं तेणेव उवाग० तहेव
जाव विहरंति)

वासुदेव प्रमुख ते हल्लरे राअओत्तुं आगमन सांलणीने हर्षित तेमज्ज
संतुष्ट थर्धने पांडु राअओ स्नान क्खुं. कागडा वगेरे पक्षीओना माटे अन्न
वगेरेना भाग अर्धने भविकर्म क्खुं. दुपद राअओ जेम ते राअओने यथा-
योग्य आवास स्थानो शडेवा माटे आभ्या इता तेमज्ज पांडु राअओ पणु
तेओ अथाने उचित आवासे आभ्या. त्यारपथी तेओ वासुदेव प्रमुख हल्लरे
राअओ अथां पोतपोताना देकावाना आवासे इता तथां गथा, तथां पडेांथीने
तेओ तथां देकाधिं गथा.

(तएणं से पांडुराराया हत्थिणाउरं नयरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता,
कोडुं विय० सदावेइ, सदाचित्ता एवं वयासी-तुग्गेणं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं

ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखा बहवो राजानः स्नाताः कृतबलिकर्माणः= काकादिजीवैभ्यः कृतान्नादिसंविभागाः, तद् विपुलम् अशनं पानं खात्रं स्वाद्यं तथैव-आस्वादयन्तो विस्वादयन्तः परिभुञ्जाना यावद् विहरन्ति=आसतेस्म । ततस्तदनन्तरं स पाण्डुराजा तान पञ्च पाण्डवान् द्रौपदीं च देवीं 'पट्टयं' पट्टकं= पट्टकोपरि 'दुरुहेइ' दूरोहयन्ति=आरोहयति । आरोह्य श्वेतपीतैः कलशैः स्नपयन्ति,

गैति, तएणं ते वासुदेवपामोकत्वा बहवे राया ण्हाया कयबलिकम्मा तं विउलं असणं ४ तहेव जाव विहरंति-तएणं से पंडुराया पंच पंडवे दोवहं च देविं पट्टयं दुरुहेइ, दुरुहित्ता सेयपीएहिं ण्हावेति, ण्हावित्ता कल्लाण कारि करेइ) इस के बाद पांडुराजा ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया प्रवेश कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे ऐसा कहा हे देवानुप्रियो ! तुम लोग विपुल मात्रामें अशनादि रूप चतुर्विध आहार बनवाओ बनवाकर फिर उसे जहां वासुदेव प्रमुख राजा ठहरे हुए हैं वहां लेजाओ । इस प्रकार की अपने राजाकी आज्ञानुसार उन्होंने वैसा ही किया-चतुर्विध आहार बनवाया और फिर उसे वासुदेव आदि राजाओं के पास पहुँचा दिया । आहार के पहुँचने पर उन वासुदेव प्रमुख राजाओं ने स्नान किया बलिकर्म किया-काक आदि जीवों के लिये कून अन्नमें से विभाग देनेरूप कियाकी-बादमें उन्होंने उस चतुर्विध आहार को किया । इसके पश्चात् पांडुराजा ने उन पाँचों पांडवों

४ तहेव जाव उवणैति, तएणं ते वासुदेवपामोकत्वा बहवे राया ण्हाया कयबलिकम्मा तं विउलं असणं ४ तहेव जाव विहरंति-तएणं से पंडुराया पंच पंडवे दोवहं च देविं पट्टयं दुरुहेइ, दुरुहित्ता सेयपीएहिं कलसेहिं ण्हावेति ण्हावित्ता कल्लाणकारि करेइ)

त्यारपछी पांडुराज्ज हस्तिनापुर नगरमां प्रविष्ट थया. प्रविष्ट थधने तेज्जोअजे कौटुम्बिक पुत्रधेने ज्जालाअ्यां अने ज्जालाअ्यांने तेज्जोअने आ प्रभाण्णे कहुं के हे देवानुप्रियो ! तमे दोडे विपुल मात्रामां अशन वजेरे इप थार नतनेो आहार अनावडावे. अनावडावेने तमे ते आहारने न्यां वासुदेव प्रमुष राज्जो रेकाथा छे त्यां लथ नज्जो, आ रीते पोताना राजनी आसा सांल-जीने ते दोडेअजे ते प्रभाण्णे अ कथुं. तेज्जोअजे थार नतना आहारि अना-वडाअ्या अने त्यारपछी ते आहारिने वासुदेव प्रमुष राज्जोअनी पासे पडेअ-आदी दीधा. आहार पडेअ्यादी दीधा आह ते वासुदेव प्रमुष राज्जोअजे स्नान कथुं अने कागडा वजेरे पक्षीअ्जोअने अन्न लाग्ग अथीने भलिकर्म कथुं. त्यार पछी तेज्जोअजे ते थार नतना आहारने अस्था. त्यारआह पांडु राज्जो ते

स्नपयित्वा ' कल्लाणकारिं ' कल्याणकारि-शुभकारकं कर्म कारयति, कारयित्वा तान् वासुदेवप्रमुखान् बहुसहस्रसंख्यकान् राज्ञो विपुलेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन भोजयति, भोजयित्वा पुष्पवस्त्रादिभिः सत्कारयति, संमानयति, सत्कार्यं संमान्य यावत् प्रतिविसर्जयति । ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखा बहुसहस्रसंख्यका राजानो यावत् प्रतिगताः ॥ सू० २३ ॥

मूलम्—तएणं ते पंच पंडवा दोवईए देवीए सद्धिं कल्ला-
कल्लिं वारंवारणं ओरालाइं भोगभोगाइं जाव विहरंति, तएणं
से पंडू राया अन्नया कयाइं पंचहिं पंडवेहिं कौंतीए देवीए

को और द्रौपदी देवी को एक पट्टक पर बैठाया-बैठाकर उन का श्वेत पीत कलशों से चांदी और सोने के घड़ों से स्नान करवाया स्नान कर-
वाकर फिर उसने उनका शुभकारक कर्म करवाया । (करित्ता ते वासु-
देव पामोक्खे वहवे रायसहस्से विउल्लेणं असण ४ पुष्पवत्थेणं सक्कारेइ
सम्माणेइ जाव पड्डिविसज्जेइ, तएणं ताइं वासुदेवपामोक्खाइं वहूहिं
जाव पड्डिगयाइं) शुभकारक कर्म करवाकर बाद में उन वासुदेव प्रमुख
हजारों राजाओं का उस पांडुराज ने विपुल अशन पान आदिरूप
चतुर्विध आहार से एवं पुष्प वस्त्रादि से खूब सत्कार किया सम्मान
किया । यावत् फिर उन्हें अपने यहाँसे अच्छी तरह से विदा कर दिया ।
इसके बाद वे वासुदेव प्रमुख हजारों राजा जहाँ २ से जो २ आये थे
वहाँ २ चले गये ॥ सू० २३ ॥

पांचे पांडवे। अने द्रौपदी देवीने अेक पट्टक उपर जेसाडया अने जेसाडीने
सङ्के तेमज पीणा कणशेथी अेटवे के यांही अने सोनाना कणशेथी तेमने
स्नान कराव्युं. स्नान कराव्या भाइ तेमणे तेमनी पांचेथी शुल कर्मा करावडाव्यां.

(करित्ता ते वासुदेवपामोक्खे वहवे रायसहस्से विउल्लेणं असण पुष्पवत्थेणं
सक्कारेइ, सम्माणेइ जाव पड्डिविसज्जेइ तएण ताइं वासुदेवपामोक्खाइं वहूहिं
जाव पड्डिगयाइं)

शुल कर्मा कराव्या भाइ ते वासुदेव प्रमुख डलरौ रान्ज्योने ते पांडु
रान्ज्ये विपुल अशन-पान वगेरे इय चतुर्विध आहारथी तेमज पुष्प वस्त्र
वगेरेथीपूज्ज अ सत्कार कर्मा अने संमान कथुं. यावत् त्यारपथी तेज्योने त्यांथी
सारी रीते विहाय कर्मा. वासुदेव प्रमुख डलरौ रान्ज्यो पणु व्यांथी आंव्या
डता त्यां वता रछा. ॥ सूत्र २३ ॥

दोवइए देवीए य सद्धिं अंतो अंतेउरपरियालसद्धि संपरिवुडे
 सीहासणवरगए यावि विहरइ, इमं च णं कच्छुल्लणारए दंस-
 णेणं अइभइए विणीए अंतोर य कल्लसहियए मज्झत्थोवत्थिए
 य अल्लीणसोमपियदंसणे सुरूवे अमइलसगलपरिहिए काल-
 मियचम्मउत्तरासंगरइयवच्छे दण्डकमण्डलुहत्थे जडामउडदि-
 त्तसिए जन्नोवइयगणेत्तियमुंजमेहलवागलघरे हत्थकयकच्छभीए
 पियगंधव्वे धरणिगोयरप्पहाणे संवरणावरणिओवयणिउप्पयणि
 लेसणीसु य संकामणिअभिओगपणत्ति गमणीथंभणीसु य
 बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुयजसे इट्ठे रामस्स य केस-
 वस्स य पज्जुन्नपर्इवसंबअनिरुद्धणिसढ-उम्मुयसारणगयसुमुह-
 दुम्मुयहातीण जायवाणं अइधुट्ठाण कुमारकोडीणं हिययदइए
 संथवए कलहजुद्धकोलाहलप्पिए भंडणाभिलासी बहुसु य सम-
 रसयसंपराएसु दंसणरए समंतओ कलहंसदक्खणं अणुगवेस-
 माणे असमाहिकरे दसारवरवीरपुरिसतिलोक्कवलवगाणंआमं-
 तेऊण तं भगवई पक्कमणिं गगणगमणदच्छं उप्पइओ गगणमभि-
 लंघयंतो गामागरनगरनिगमखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासम-
 संवाहमहस्समंडियं थिमियमेइणीतलं वसुहं ओलोइंतो रम्मं हत्थि-
 णाउरं उवागए पंडुरायभवर्णासि अइवेगेण समोवइए, तएणं से
 पंडुराया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ पासित्ता पंचहिं पंड-
 वेहिं कुंतीए य देवीए सद्धिं आसणाओ अब्भुट्टेइ अब्भुट्टित्ता
 कच्छुल्लनारयं सत्तट्टपथाइंपच्छुग्गच्छइ पच्छुग्गच्छित्ता तिव्खु-

तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करित्ता वंदइ णमंसइ महरिहेणं
आसणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफासियाए
दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए णिसीयइ, णिसीयित्ता पंडुरायं
रज्जे जाव अंतेउरेय कुसलोदंतं पुच्छइ, तएणं से पंडूराया कौंती-
देवी पंच य पंडवा कच्छुल्लणारयं आढंति जाव पज्जुवासांनि,
तएणं सा दोवई कच्छुल्लनारयं असंजय अविरय अपडिहयप-
च्चखायपावकम्मे त्तिक्खु नो आढाइ नो परियाणइ नो अब्भु-
द्वेइ नो पज्जुवासइ ॥ सू० २४ ॥

टीका—‘ तएणं ते ’ इत्यादि । ततस्तस्तदनन्तरं खलु ते पञ्चपाण्डवा
द्रौपद्या देव्या साथं ‘ कल्लाकल्लिं ’ करयाकल्ये प्रतिदिवसं वारंवारणं उदारान्
भोगभोगान् यावद् भुञ्जाना विहरन्ति । ततः खलु स पण्डु राजाऽन्यदा कदाचित्
पञ्चभिः पाण्डवैः कुन्त्या देव्या द्रौपद्या देव्या च साथं ‘ अंतो अंतेउरपरियाल ’

‘ तएणं ते पंच पंडवा ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते पंच पंडवा) वे पांचों पांडव (दोवईए
देवीए) द्रौपदी देवी के साथ—(कल्लाकल्लिं वारंवारणं ओरालाईं भोग
भोगाईं जाव विहरंति—तए णं से पंडूराया अन्नया कयाईं पंचहिं पंडवेहिं
कौंतीए देवीए दोवईए देवीए य सद्धिं अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिबुडे
सीहासणवरगए यावि विहरइ) प्रतिदिन घारी घारी से उदारकाम
भोगों को भोगने लगे एक दिन की बात है—कि पांडु राजा किसी एक
समय पांचों पांडवों एवं अपनी पत्नी कुन्ती देवी और पुत्रवधु द्रौपदी

टीकार्थ—“ तएणं ते पंच पंडवा इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्याउपत्री (ते पंच पंडवा) ते पांच पांडवो (दोवईए
देवीए) द्रौपदी देवीनी साथे

(कल्लाकल्लिं वारंवारणं ओरालाईं भोगभोगाईं जाव विहरंति—तएणं
से पंडूराया अन्नया कयाईं पंचहिं पंडवेहिं कौंतीए देवीए दोवईए देवीए य
सद्धिं अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिबुडे सीहासणवरगए यावि विहरइ)

इदरेण वाशक्रेती उदार कायोग भोगववा दाग्या. जेक दिवसनी बात

अन्तः=अन्तःपुरस्य प्रासादमध्ये अन्तःपुरपरिवारेण 'परियाल' इति लुप्तवृत्ती-यान्तं सार्धं संपरिवृतः सिंहासनवरगतश्चापि विहरति । 'इमं च' अस्मिन् समये खलु 'कच्छुल्लणारए' कच्छुल्लनाम्नाप्रसिद्धो नारदः दर्शनेन 'अहमइए' अतिभद्रकः=भद्रदर्शनः 'विणीए' विनीतः=नम्रो बाह्यतः 'अंतो य' अन्तश्च-कलुषहृदयः, 'मज्झत्थोवत्थिए य' माध्यस्थोपस्थितः=बाह्यतो मध्यस्थभावं प्राप्तः 'अल्लीणसोमपियदंसणे' आलीनसौम्यप्रियदर्शनः आलीनानामाश्रितानां सौम्यम् =आहादकं, मियं = प्रीतिकारकं दर्शनं यस्य स तथा, सुरूपः - सुन्दराकृतिकः, तथा- 'अमइलसगलपरिहिए' अमलिनसकलपरिहितः=अमलिनं सकलम्-अखण्डम् परिहितं-वल्कलवस्त्ररूपं परिधानं यस्य स तथा, 'कालमियचम्मउत्तरासंग-

के साथ अंतःपुर के प्रासाद के भीतर अन्तःपुरपरिवार के साथ सिंहासन पर बैठे हुए थे-कि (इमंच णं) इसी समय (कच्छुल्लणारए पंडुरायभवणंसि अइवेगेण समोवइए दंसणे णं अइभइए, विणीए, अंतोय कलुसहियए मज्झत्थोवत्थिए य, अल्लीणसोमपियदंसणे सुरूवे अमइलसगलपरिहिए) पांडुराजा के भवन में कच्छुल्लनाम से प्रसिद्ध नारद गगन-आकाश-मार्ग से बड़े वेगसे उतर कर आये। नारद देखने में अति भद्र थे। ऊपर से बड़े विनीत थे। परन्तु भीतर में इनका हृदय बहुत अधिक कलुषित था। केवल ऊपर से घे माध्यस्थ भाव संपन्न थे। अपने आश्रित व्यक्तियों को इनका दर्शन आहादक एवं प्रीति कारक होता था। आकृति उनकी बड़ी सुन्दर थी। इनका वल्कल रूप परिधान अमलिन-सोफ स्वच्छ और खण्ड रहित था। (कालमिय

छे के ते पांडु राजा केअं अेक वअते पांचे पांडवे, पोतानी पत्नी कुंती देवी अने पुत्र वधु द्रौपदीनी साथे रणवासना भेलेनी अंदर पोताना परिवारनी साथे सिंहासन उपर गेहा छता. (इमं च णं) ते वअते

(कच्छुल्लणारए पंडुरायभवणंसि अइवेगेण, समोवइए दंसणे णं अइभइए विणीए अंतोय कलुसहियए मज्झत्थोवत्थिए य, अल्लीणसोमपियदंसणे सुरूवे अमइलसगलपरिहिए)

पांडु राजाना लवनमां कच्छुल्ले नामथी पंडायेला नारद गगन-आकाश मार्गथी अहू अ वेगथी उतरीने आया. नारद इेभावमां अत्यंत लदर छता. उपर उपरथी तेअो अेकदम विनअर छता. पखु अंतर तेमनुं मन पूअ अ कलुषित छतुं. इकत उपर उपरथी अ तेअो माध्यस्थ लाव संपन्न छता. आश्रित व्यक्तियेअोने तेमनुं दर्शन आह्लादक अने प्रीतिकारक छतुं. तेमनी आकृति पूअ अ सुंदर छती. तेमनुं वल्कल रूप परिधान, अेकदम स्वच्छ-निर्भण छतुं अने अंदरहित छतुं.

रह्यवच्छे' कालमृगचर्मोत्तरासंगरचितवक्षाः—कृष्णमृगचर्मोत्तरासङ्गेन रचितं शोभितं वक्षो यस्य स तथा, कृष्णमृगचर्मोत्तरीयवल्गुधारकः । तथा—'दण्डकमण्डलुहृत्ये' दण्डकमण्डलुहस्तः—'जडामउडदित्तिसिरए' जटामुकुटदीप्तशिरस्कः, जण्णोवइयगणेत्तियमुंजमेहलावागलधरे' यज्ञोपवीतगणेत्रिकामुञ्जमेखलावलकलधरः—तत्र यज्ञोपवीतं यज्ञसूत्रं गणेत्रिका—रुद्राक्षकृतं कलाचिकाभरणं, मुञ्जमेखला—मुञ्जमयं कटिबन्धनसूत्रं वलकलं वृक्षत्वक्, तेषां धारकः स्कन्धोपरियज्ञसूत्रधारी, करमूले घृत-रुद्राक्षमालः, मुञ्जमयकटिसूत्रधारी, शरीरे परिवृतवल्कल इत्यर्थः । 'हृत्थकयकच्छभीए' हस्तकृतकच्छपिकाः—हस्ते कृता कच्छपिका—वीणा येन स तथा, 'पियगंधव्वे' प्रियगन्धर्वः—गानप्रियः, 'धरणिगोयरप्पहाणे' धरणिगोचरप्रधानः—धरणिगोचराणां—भूमिचारिणां जनानां मध्ये प्रधानस्तस्या काशेऽपि विहरणशीलत्वात्

चम्मउत्तरासंगरइयवच्छे दण्डकमण्डलुहृत्ये, जडामउडदित्तिसिरए, जन्नो वइयगणेत्तिय मुंजमेहलवागलधरे, हृत्थकयकच्छभीए, पियगंधव्वे, धरणिगोयरप्पहाणे, संवरणावरणिओवयणिउप्पयणी लेसणीसुयसंकार्मणि अभिओगपण्णत्ति गमणीथंभणीसु य बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुयजसे) इनका वक्षस्थल काले मृग के चर्म रूप उत्तरासंग से सुशोभित था । दण्ड और कमण्डलु इनके हाथोंमें था । जटारूपी मुकुट से इनका मस्तक दीप्त हो रहा था । यज्ञसूत्र—जनेऊ, गणेत्रिका कलाई का आभरण रूप रुद्राक्ष की माला, मुञ्जमेखला—मुंज का बना हुआ कटि बन्धन सूत्र, और वृक्ष की छाल इन्होंने धारण कररक्खी थी । हाथमें कच्छपिका—वीणा ले रक्खी थी । गान इन्होंने बहुत प्रिय था । भूमि गोचरियों के बीच में ये प्रधान थे—क्यों कि ये आकाश में भी विहार

(कालमियचम्मउत्तरासंगरइयवच्छे दण्डकमण्डलुहृत्ये जडामउडदित्तिसिरए, जन्नोवइय गणेत्तियमुंजमेहलवागलधरे, हृत्थकयकच्छभीए पियगंधव्वे, धरणिगोयरप्पहाणे, संवरणावरणिओवयणिउप्पयणिलेसणोसु य संकार्मणि अभिओगपण्णत्ति गमणीथंभणीसु य बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुयजसे)

तेमंजु वक्षस्थल काणा डरलुना यमंइय उत्तरासंग्थी शैलुतुं डतुं.

हंस अने कमंडलु तेमनां डायोमां डता. जटा इपी मुकुटथी तेमंजु मस्तक प्रक्षशित थर्ध रलुं डतुं. यज्ञ सूत्र—जनेऊ, गणेत्रिका—कंडाभां पडेरवाणी आल-रलु इय रुद्राक्षनी माला, मुंज—मेखला—मुंजुं अनेतुं डेडमां पडोवातुं अधन सूत्र अने वृक्षकनी छाल तेज्जाये धारलु करेवी डती. डायमां तेज्जाये कच्छ-पिका—वीणा धारलु करेवी डती. संगीत तेमने अथ ज गमतुं डतुं. भूमि ओचरिज्जेने वच्चे तेज्जा प्रधान डता डेमके तेज्जा आकाशमां वियरलु करता

“संवरणावरणौघयणिलुप्पयणिलेसणीसु य” संवरण्यावरण्यवपतन्नुत्पतनी-
श्लेषणीषु च’ संवरणी-स्वस्यान्तर्धानकारिणी विद्या, आवरणी-परस्यान्तर्धान-
कारिणी विद्या, अवपतनीअधोऽवतरणी विद्या, उत्पतनी-ऊर्ध्वगमनकारिणी विद्या,
श्लेषणी-वज्रलेपादिवत् सन्धानकारिणी विद्या, ताम्र, तथा-‘संक्रामणि अभि-
ओगपण्णत्ति गमणीथंभणीसु य’ संक्रमण्यमियोगप्रज्ञप्तिगमनीस्तम्भनीषु च-
संक्रामणी-विद्या-विशेषः यया-परशरीरादीं प्रवेष्टुं शक्नोति, सा विद्या, अभि-
योगः स्वर्णदिनिर्माणविद्या वशीकरणविद्या च, प्रज्ञप्तिः=अविदितार्थबोधिनी गमनी

करते थे। संवरणी, आवरणी अवपतनी, उत्पतनी, श्लेषणी इन विद्या-
ओं में तथा संक्रमणी, अभियोग, प्रज्ञप्ति, गमनी स्तम्भनी इन नाना
प्रकार की विद्याधर संबन्धी विद्याओं में इनकी कीर्ति विख्यात थी।
जिस विद्या के प्रभाव से अपने आपको अन्तर्धान कर दिया जाता
जाता है उसका नाम संवरणी विद्या है। दूसरा जिस विद्या से अन्त-
र्धान करदिया जाता है उस विद्या का नाम आवरणी विद्या है। जिस
विद्या के प्रभाव से ऊपर से नीचे उतरा जाता है उसका नाम अव-
पतनी और जिसके प्रभाव से ऊर्ध्व में गमन किया जाता है उसका
नाम उत्पतनी विद्या है। वज्रलेप आदि की तरह जो चिपका देती है
वह श्लेषणी विद्या है। जिस विद्या के बल से दूसरे के शरीरमें प्रविष्ट
होना होता है-ऐसी परशरीरप्रवेशकारिणी विद्याका नाम संक्रमणी
विद्या है। स्वर्ण आदि के बनाने की जो निपुणता है-एवं परकी

इत्ता. संवरणी, आवरणी, अवपतनी, उत्पतनी, श्लेषणी आ जधी विद्या-
ओंमां तेमञ् संक्रमणी, अभियोग, प्रज्ञप्ति, गमनी, स्तम्भनी आ अनेक
जतनी विद्याधर संबन्धी विद्याओंमां तेमनी कीर्तिं ज्येभेर प्रसिद्धीं इती जे
विद्याना प्रभावथी ज्येतानी जतने अदृश्य करी शक्य छे ते संवरणी विद्या
छे. जे विद्याथी जीजने अदृश्य करी शक्य छे ते आवरणी कडेवाय छे. जे
विद्याना प्रभावथी उपरथी नीचे उतरती शक्य छे ते अवपतनी अने जेना
प्रभावथी ऊर्ध्व (आकाश) मां गमन करी शक्य छे ते विद्यातुं नाम उत्प-
तनी छे. वज्र लेप वगेरनी जेभ जे ज्योटाडी हे छे ते श्लेषणी विद्या छे. जे
विद्याना ज्येताथी जीजना शरीरमां प्रवेशी शक्य ज्येवी परकाय प्रवेश करिणी
विद्यातुं नाम संक्रमणी विद्या छे. ज्योतुं वगेरै जनावधामां जे निपुणता छे
अने जीजने वशवर्ती करवानी जे शक्ति छे ते विद्यातुं नाम अभियोग

-गमनप्रकर्षसाधिका-आकाशगामिनी च विद्याविशेषः-स्तम्भनी-स्तम्भनकारिणी विद्या, तासु 'बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु' बहुषु-नानाविधासु विद्याधरीषु=विद्या-धर सम्बन्धिषु विद्यासु 'विस्मयजसे' विश्रुतयशाः-विद्यासु नैपुण्याः=विरुपातकीर्तिः, इष्टः=पियः, रामस्य=वलदेवस्य केशवस्य=कृष्णवासुदेवस्य च पुनः केषां प्रियइ-त्याह-'पञ्जुन्नपईवसंब अनिरुद्धनिसदउस्सुयसारणगयसुमुहदुम्मुहाईणं जायवाणं' प्रद्युम्न प्रतीपशाम्बानिरुद्धनिषधोत्सुकसारणगजसुमुखदुम्मुखादीनां चादवानाम्, प्रद्युम्नादीनां संख्यामाह-प्रद्युम्नः, प्रतीपः, शाम्बः, अनिरुद्धः, निषधः, उत्सुकः,

वश में करने कि जो शक्ति है उस विद्या का नाम अभियोग विद्या है। अविदित अर्थ जिस के प्रभाव से विदित हो जावे वह प्रज्ञप्ति विद्या गमन प्रकर्ष की साधक तथा आकाश में गमन कराने वाली विद्या गमनी विद्या स्तम्भन कराने वाली विद्यास्तम्भनी विद्या है। (इष्टे रामस्य य केशवस्य य पञ्जुन्नपईवसंब अनिरुद्धनिसदउस्सुय सारण गयसुमुह दुम्मुहातीण जायवाणं अद्भुद्वाण कुमारकोडीणं हिययदइए संथवए कलइजुद्धकोलाहलपिए, भंडणाभिलासी, बहुसु य समर सयसंपराएसु दंसणरए, समंतओ कलहंसदक्खणं अणुगवेसमाणे, असमाहिकरे दसारवरवीरपुरिसतिलोक्कवलवगार्णं, आमंतेऊण तं भगवई पक्कमणि गगणगमणदच्छं उप्पइओ गगणमभिलंघयंतो गामागारनगरनिगमखेडकच्चडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसहसमंडियं थिमिणमेइणीतल वसुहं आलोइंनो रम्मं हत्थिणाउरं उवागए) बलदेव एवं कृष्ण वासुदेव को ये इष्ट थे तथा साढे तीन करोड, प्रद्युम्न, प्रतीप, शाम्ब, अनिरुद्ध निषध उत्सुक, सारण, गज सुकुमाल सुमुख दुम्मुख

विद्या छे. अविदित अर्थ जेना प्रसादथी नाणी शक्य ते प्रज्ञप्ति विद्या, गमन प्रकर्षनी साधिका तेमन् आकाशमां गमन करनारी विद्या गमनी विद्या कडे-वाय छे स्तम्भन करानारी विद्या स्तम्भनी विद्या छे. (इष्टे रामस्य य केश-वस्य य पञ्जुन्नपईवसंब अनिरुद्धनिसदउस्सुयसारणगयसुमुहदुम्मुहातीण जायवाणं अद्भुद्वाणकुमारकोडीगं हिययदइए संथवए कलइजुद्धकोलाहलपिए, भंडणाभिलासी, बहुसयसमरसयसंपराएसु दंसणरए समंतओ कलहंसदक्खणं अणुगवेसमाणे अस-माहिकरे दसारवरवीरपुरिसतिलोक्कवलवगार्णं, आमंतेऊण तं भगवई, पक्कमणि गगणगमणदच्छं उप्पइओ गगणमभिलंघयंतो गामागारनगरनिगमखेडकच्चडमडंबदोण-मुहपट्टणासमसंवाहसहसमंडियं थिमिण मेइणीतल वसुहं आलोइंनो रम्मं हत्थिणाउरं उवागए) अणुगवे तेमन् कृष्ण वासुदेवने तेओ इष्ट हता अने साहा प्रथु करौड प्रद्युम्न, प्रतीप, शाम्ब, अनिरुद्ध, निषध, उत्सुक, सारण, गज सुकुमाल, सुमुख दुम्मुखेदे वदाय कुमारोने भाटे तेओ इष्टयइयित हता अेटले के भूष न् भिय हता. अेटला

सारणः, गजसुकुमालः, सुमुलः, दुर्गुलः, इत्यादयो यादवकुमारास्तेषां 'अद्दुद्वानं कुमारकोटीणं' अर्धचतुर्थीनां कुमारकोटीनां च सार्धत्रिकोटिप्रमितानां यादवकुमाराणामित्यर्थः 'हियदहए' हृदयदयितः=हृदयप्रियः, 'संथावए' संस्ता-चक्रः—यादवानां प्रशंसकः, तथा—कलहयुद्धकोलाहलप्रियः=कलहो=विवादः, युद्धं=शस्त्रादिभिः प्रहरणं, कोलाहलो=जनानां महाध्वनिः, एते प्रियाः प्रमोदजनका यस्य स तथा, 'भंडणामिलासी' भण्डनामिलाषी=भण्डनं राट्टिः—कलहः 'राह' इति भाषायां तस्याभिलाषी तथा—बहुषु च समरशतसंपरायेषु=समरशतसंग्रामेषु दर्शनरतः=दर्शनाऽऽसक्तः, 'समंतओ' समन्ततः सर्वप्रकारेण—परस्परं च कलहं 'सदक्खणं' सदाक्षणं=सर्वस्मिन् क्षणे 'अणुगवेसमाणे' अनुगवेपयन्=अन्वेष-यन्, 'असमाहिकरे' असमाधिकरः—चित्तविक्षेपकारकः चित्तस्यास्थैर्यकरः केषां चित्तस्य विक्षेपकइत्याह—'दसारवरवीरपुरिसतिलोकवलवगाणं' दशार्हवरवीर-पुरुषत्रैलोक्यबलवतां—दशार्हाः—समुद्रविजयादयो दशसंख्यकाः त एव वराः श्रेष्ठाः

इत्यादि यादवकुमारों के लिये ये हृदय दयित थे—अत्यंत प्रिय थे। इसी कारण यादवों के प्रशंसक थे। कलहविवाद युद्ध एवं मनुष्यों का कोलाहल ये सब इन्हें बहुत अधिक अच्छे लगते थे। आनन्द जनक होते थे। राहु (लडाई) के ये अभिलाषी बने रहते थे। अर्थात् हर एक जगह किसी न किसी रूप में परस्पर में लोगों में तकरार, कजिया कैसे उत्पन्न हो इस बात का इन्हें विशेष ध्यान रहता था। समर शतसंग्राम के देखने में इन्हें विशेष हर्षोल्लास होता था। सब प्रकार से परस्पर में सब समय में ये कलह की गवेषणा करने में ही लगे रहते थे। नेमिनाथ की अपेक्षा त्रैलोक्य में विशिष्ट बलवाली जो श्रेष्ठ वीर पुरुष समुद्र विजयादि दश

भाटे न तेजो यादवोनां वभाषु करनारा हता. कलह-कंकास, विवाद, युद्ध
अने भाषुसोना शौरणकौर आ अणु तेमने अहु न गमतुं हर्तुं. आ अथाथी
तेमने पूष न मल पंती हती, कलथो तेमने पूषन गमतो हतो अेटके
के हरेक स्थाने गमे ते कारबुने लीधे वन्थे परस्पर कलह-कंकास कलथो
देवी रीते शर् थाय आ वातनी तेजो तक जेता रहेता हता. सेकडा युद्धोना
पीलत्स दृश्य जेवाभां तेमने पूष न आनंनो अनुभव थतो हतो. तेजो
अथी रीते रात अने दिवस अेकपीअने लडाववानी शोधभां न थोटी रहेता
हता. नेमिनाथनी अपेक्षा त्रैलोक्यमां सविशेष अणवान श्रेष्ठ वीर पुरुष समुद्र-
विजय वगैरे दश दशार्हां हता तेमना चित्तने तेजो कष्ट आपनारा हता.

वीराः पुरुषास्त्रैलोक्ये बलवन्तः नेमिनाथापेक्षया तेषाम्, 'आमतेऊण तं भगवई' आमन्त्र्य=प्रयुज्य तां भगवतीं-विद्यां, कीदृशीं विद्यामिच्छ्याह—'पक्वमणि' प्रक्रमणीं=प्रकृतगमनशक्ति-शालिनीं 'गगणगमणदच्छं' गगनगमनदक्षाम्=आकाशे गमने समर्थाम् 'उप्पइओ' उत्पतितः, गगनमभिलङ्घयन् उड्डीय गमनेनाकाशतलमुल्लङ्घयन् 'ग्रामागरनगरनिगमखेडकर्वडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसहस्समंडियं' ग्रामाकरनगरनिगमखेटकर्षटमंडवद्रोणमुखपत्तनाश्रमसंवाहसहस्रमण्डितं, तत्र-अष्टादशकरग्राह्यो ग्रामः, आकरः=स्वर्णाद्युत्पत्तिभूमिः, अविद्यमानकरं नगरं, निगमं=वणिग्ग्रामं खेटं=धूलीप्रकारं, कर्वटं=कुत्सितनगरं, यत्र योजनान्तराले ग्रामादिनास्ति तन्मडम्बं यत्र जलस्थलमार्गाभ्यां, भाण्डान्यागच्छंति तत् द्रोणमुखं, पत्तनं=द्वेषा-जलपत्तनं स्थलपत्तनं, यत्र पर्वतादिदुर्गे लोका धान्यानि संवहंति स संवाह एतैः सहस्रैर्मण्डितं, स्तिमितमेदिनीतलं, 'वसुहं' वसुधां भूमिं 'ओलोइंतो' अवलोकयन्=पश्यन् रम्यं हस्तिनापुरं नगरमुपागतः पाण्डुराजभवनेऽतिवेगेन समुपेतः=गगनादवतीर्ण इत्यर्थः ।

ततः खलु स पाण्डुराज कच्छुल्लनारयं 'कच्छुल्लनारदम् आगच्छन्तं पश्यति-दृष्ट्वा पञ्चभिः पाण्डवैः कुन्त्या च देव्यासार्धमासनादभ्युत्थिति, अभ्युत्थाय दशार्हं ये उनके ये सदा चित्त के विक्षेप कारक बने रहते थे । गमन में विशिष्ट शक्ति प्रदान करने वाली एवं आकाश में उठाकर ले चलने वाली उस भगवती प्रक्रमणी विद्या को प्रयुक्त करके ये आकाश में उड़ करते थे । ये नारद, गमन से आकाशतल को उल्लंघन करते हुए ग्राम, आकर, नगर, निगम खेट, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, संवाह इनके सहस्रों से मंडित हुई ऐसी स्तिमितमेदनीतलवाली वसुधा-भूमि को देखते हुए रम्य हस्तिनापुर नगर में आये और वहां से गगनमार्ग से होकर फिर ये पांडुराज के भवन में पहुँचे । ऐमा संबंध यहां लगाना (तर्ण से पांडुराया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ) इम के बोद पांडुराजा ने कच्छुल्ल इन नारद को आते हुए जब देखा (पासित्ता) तो

गमनमां विशिष्ट शक्ति आपनारी अने आकाशमां उडाडीने लध जनार ते पगवती प्रक्रमणी विद्याना अणथी तेओ आकाशमां उडता रडिता डता. आरीते आ नारद गमनथी आकाशने ओणगीने सडओ आम, आकर. नगर, निगम जेट कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, संवाहाडथी, मंडित अने स्तिमित पृथ्वीने जेता रमणीय हस्तिनापुर नगरमां आव्या अने त्याथी आकाश मार्गमां थधने पांडुराजना लवनमां पडोअ्या. (तर्ण से पांडुराया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ) त्यारभाह पांडुराजने कच्छुल्लनारदने न्यारे आपत्ता जेथा (पासित्ता) त्यारे लधने (पंचहिं पंचवेहिं कवीप देवीप सज्जिं) आसणाओ

कच्छुल्लनारदं सप्ताष्टपदानि प्रत्युद्गच्छति, नारदाभिमुखमायाति, प्रत्युद्गत्य 'तिक्खुत्तो' त्रिः कृत्वः - त्रिशारं, 'आयाह्णिणपयाहिणं' आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा वन्दते, नमस्यति वंदित्वा, नत्वा, महार्हेण-महतां योग्येन आसनेन उपनिमन्त्रयति । उपवेशनार्थं प्रार्थयति । ततः खलु स कच्छुल्लनारदः 'उदगपरिफासियाए' उदकपरिस्पृष्टायां जलच्छटेन सिक्तायां 'दम्भोवरिपच्चथुयाए' दम्भोपरिप्रत्यवस्तृतायां कुशे पर्यास्तीर्णायां 'भिसियाए' वृष्यां आसनविशेषे निषीदति=उपविशति, निषद्य पाण्डुं राजानं राज्ये यावदन्तः पुरे च कुशलोदन्तं-कुशलवातीं पृच्छति, ततः खलु स पाण्डुराजा कुन्तीं देवीं, पञ्च च पाण्डवा, कच्छुल्लनारदं 'आढंति' आद्रियन्ते यावत् पर्युपासते=सेवन्ते स्म । ततः खलु सा द्रौपदी कच्छुल्लनारदम् 'असंजयअविरयअपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे त्ति कट्टु' असंजयविरताप्रतिहताप्रत्याख्यातपापकर्मैति कृत्वा, तत्र-असंजयतः-वर्तमानकालिकसर्वसावधानुष्ठाननिवृत्तः

देखकर (पंचहिं पंडवेहिं कुंतीए देवीए सद्धि आसणाओ अब्भुट्टेइ) ये पांचो पांडवो एवं कुन्ती के साथ अपने आसन से उठे। (अब्भुट्टिता कच्छुल्लनारयं सत्तट्टपयाइं पच्चुगगच्छइ) और उठकर सात आठ पैर कच्छुल्लनारद के सामने स्वागत निमित्त गये (पच्चुगगच्छिता तिकखुत्तो आयाह्णिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमसइ, महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेइ तएणं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफासियाए दम्भोवरिपच्चथुयाए भिसियाए णिसीयइ, णिसीयित्ता पंडुरायं रज्जे जाव अंते-उरेय कुसलोदंतं पुच्छइ, तएणं से पंडुराया कौंतीदेवी पंचय पंडवा कच्छुल्लनारयं आढंति जाव पज्जुवासंति, तएणं सा दोवई कच्छुल्लनारयं असंजयअविरयअपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे त्ति कट्टु, नो आढाइ नो परियाणइ नो अब्भुट्टेइ, नो पज्जुवासइ) जाकर के इन्होंने

अब्भुट्टेइ) तेथो पांचे पांडवो अने कुंतीनी साथे चोताना आसन उपरथी उठ्ठा थया। (अब्भुट्टिता कच्छुल्लनारयं सत्तट्टपयाइं पच्चुगगच्छइ) अने उठ्ठा थयने कच्छुल्ल नारदना स्वागत भाटे सात आठ पैरों साथे गया।

(पच्चुगगच्छिता तिकखुत्तो आयाह्णिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमसइ, महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफासियाए दम्भोवरिपच्चथुयाए भिसियाए णिसीयइं, णिसीयित्ता पंडुरायं रज्जे जाव अंते-उरेय कुसलोदंतं पुच्छइ तएणं से पंडुराया कौंतीदेवी पंचय पंडवा कच्छुल्लनारयं आढंति जाव, पज्जुवासंति, तएणं सा दोवई कच्छुल्लनारयं असंजयअविरयअपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे त्ति कट्टु नो आढाइ नो परियाणइ नो अब्भुट्टेइ, नो पज्जुवासइ)

संयतस्तथा विधो न भवति यः सोऽसंयतः=संयमरहित इत्यर्थः, अविरतः=अतीत कालिकपापाञ्जुगुप्सापूर्वकं, भविष्यति च संवरपूर्वकमुपरतो निवृत्तो विरतस्तथा विधो न भवति यः सोऽविरतः, विरतिरहितः, अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा प्रतिहतं=वर्तमानकाले स्थित्यनुभागहासेन नाशितं तथा प्रत्याख्यातं=पूर्वकृताति-

उनके लिये तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण किया-करके उनको वंदनाकी नमस्कार किया। वंदना नमस्कार करके फिर उन्होंने उनसे महान् पुरुषों के बैठने योग्य आसन पर बैठने के लिये प्रार्थना की-इस के बाद वे कच्छुल्ल नारद जल के छीटों से सिक्त हुए आसन पर कि जो दर्भ के ऊपर आस्तीर्ण था बैठ गये। बैठकर उन्होंने पांडु राजा से राज्य की यावत् अंतः पुर की कुशल बर्ता पूछी। उनके पूछने पर पांडु राजाने कुन्ती देवी ने एवं पांचों पांडवों ने उन कच्छुल्ल नारद को खूब आदर किया यावत् अच्छी तरह से उनकी पर्युपासना की। द्रौपदी ने उन्हें असंयत, अविरत एवं अप्रतिहत प्रत्याख्यतपापकर्मा जानकर उनका आदर नहीं किया, उनके आगमन की अनुमोदना नहीं की और न वह उनके आने पर उठी। वर्तमान कालिक सर्व सावध अनुष्ठान से जो निवृत्त होता है वह संयत है-ऐसा संयत जो नहीं होता है वह असंयत कहलाता है। अतीत काल में हुए पापों से जुगुप्सा पूर्वक और भविष्यत्काल में उनसे संवर पूर्वक जो उपरत होता

सामे ऋधने तेमञ्चे त्रष्टुवार तेमनी शोभेर आदक्षिष्णु प्रदक्षिष्णु करी. त्थारपथी तेमञ्चे वंदन तेमञ्च नमन कथां' अने पथी तेमने चोताना करतां भोटा भाषुसोने जेसवा योग्य आसन उपर जेसवानी विन'ती करी. त्थारभाह ते कश्चुल्ल नारद पाष्णीना छांटाओथी लीना पाथरेला दर्भ'ना आसन उपर जेसी गया. जेसीने तेओओ पांडुराजने राजन्थनी यावत् रषुवासनी कुशणवार्ता पूछी. पांडुराज, कुंतीदेवी अने पांचि पांडवोओ कश्चुल्ल नारदने। श्रूणञ्च आहद कथो यावत् सारी रीते तेमनी पर्यु'पासना करी. तेमने असंयत, अविरत अने अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा ऋष्णीने द्रौपदीओ तेमने आहद कथो नहि, तेमना आगमननी अनुमोदना करी नहि अने न्थारे तेओ आन्धा त्थारे पषु ते ऋषी थध नहि. वर्तमानकालिक सर्व सावध अनुष्ठानथी जे निवृत्त होय छे ते संयत छे, आ न्धाभ्या मुञ्चण जे संयत नथी ते असंयत कहेवाय छे. भूतकाणमां थध गयेला पापकर्मांथी जुगु'प्सापूर्वक अने भविष्यत्कालमां तेमनाथी संवरपूर्वक जे उपरत होय छे ते विरत छे, जेओ जे नथी ते अविरत छे, ओठले के विरतिथी रहित छे. वर्तमानकाणमां जेमां

ચારનિન્દ્યા ભવિષ્યત્યકરણેન નિરાકૃતમ્ , અન્યોઃ કર્મધારયે પ્રતિહતપ્રત્યાખ્યાતં તતો નચૂતત્પુરુષઃ, ન પ્રતિહતપ્રત્યાખ્યાતમ્- અપ્રતિહતપ્રત્યાખ્યાતં-ન પ્રતિહતં નાપિ- પ્રત્યાખ્યાતં પાપકર્મ યેન સોઽપ્રતિહતપ્રત્યાખ્યાતપાપકર્મા, इति कृत्वा-एवं मत्वा 'नो आढाहं' नो आद्रियते, नो परिजानाति=नानुमोदयति नो अभ्युत्तिष्ठति नो पर्युपास्ते स्म ॥ सू०२४ ॥

है वह विरत है। ऐसा जो नहीं होता है वह अविरत है-विरति से रहित है। वर्तमान काल में जिसमें पापकर्मों को स्थिति और अनुभाग के ह्रास से नाश कर दिया है, तथा पूर्वकृत अतिचारों की निंदा से भविष्यत् काल में अकरण से जिसने उन्हें निराकृत कर दिया है ऐसी प्राणी प्रतिहत प्रत्याख्यात पापकर्म कहलाता है। ऐसा जो नहीं करता है-पापकर्मों को न प्रतिहत करता है और न प्रत्याख्यात करता है-वह अप्रतिहत प्रत्याख्यात पापकर्म है-। अष्टादश कर ग्राह्य (करसे युक्त) जो होता है वह ग्राम है। स्वर्ण आदि की उत्पत्तिकी खाने जिसमें हो वह आकर है। जिसमें अठारह तरह का टेक्स कर नहीं लगता है वह नगर है। जहां पर बणिक्रजनों का निवास हो वह निगम है। धुली का प्राकार जिसमें होता है-अर्थात् धूलि के परकोटे से जो घिरा होता है वह खेट है। कुत्सित नगर का नाम कर्बट है-जहां एक अढाई कोस के अन्तराल में (चारों दिशा से) ग्राम आदि नहीं पाये जाते हैं-वह मडम्ब है। जहां पर स्थलमार्ग से एवं जल मार्ग से भाण्ड (वस्तु) आते हैं वह द्रोणमुख है। जल पत्तन और स्थलपत्तन के भेद से पत्तन दो प्रकार का होता है। जहां तापसलोग निवास करते हैं वह

પાપકર્મોને સ્થિતિ અને અનુભાગના હ્રાસથી નાશ કર્યો છે તેમજ પૂર્વકૃત અતિચારોની નિંદાથી ભવિષ્યકાળમાં અકરણથી જેણે તેમને નિરાકૃત કરી દીધા છે એવું પ્રાણી પ્રતિહત પ્રત્યાખ્યાત પાપકર્મા કહેવાય છે. એવું જે કરતો નથી એટલે કે જે પાપકર્મોને પ્રતિહત કરતો નથી અને પ્રત્યાખ્યાત પણ કરતો નથી તે અપ્રતિહત પાપકર્મા છે. જેમાં સામાન્ય માણસો વસે તે ગ્રામ છે. સોના વગેરેની ખાણો જ્યાં હોયતે આકર છે. જેમાં કોઈપણ જાતનો વેરો નાખવામાં આવતો નથી તે નગર છે. જ્યાં વાણીયાઓને નિવાસ હોય તે નિગમ છે. માટીની ભીંત ચોમેર બનાવેલી હોય તે ખેટ છે. કુત્સિત નગરનું નામ કર્બટ છે. જ્યાં અદિ ગાઉ સુધીમાં ચારે તરફ ગ્રામ વગેરે હોતાં નથી તે મડંબ છે. જ્યાં સ્થળ માર્ગથી અને જળ માર્ગથી વાહનો આવે છે તે દ્રોણમુખ છે. જલપત્તન

मूलम्—तएणं तस्स कच्छुल्लणारयस्स इमेयारूवे अउझ-
 तिष्णं चिंतिष्णं पत्तिष्णं मणोगणं संकप्पे समुप्पज्जित्था अहोणं
 दोवई देवी रूवेणं जाव लावणणेण य पंचहिं पंडवेहिं अणुबद्धा
 समाणी ममं णो आढाइ जाव नो पज्जुवासइ तं सेयं खलु मम
 दोवइष्णं देवीष्णं विप्पियं करित्तष्णं च्चिकट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता
 पंडुयरायं आपुच्छइ आपुच्छित्ता उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ
 आवाहित्ता ताए उक्किट्टाए जाव विजाहरगईष्णं लवणसमुहं
 मज्झंमज्झेणं पुरत्थाभिमुहे वीइवइउं पयत्ते यावि होत्था ।
 तेणं कालेणं तेणं समएणं घायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धदाहिणइ
 भरहवासे अमरकंकाणाम रायहाणी होत्था, तएणं अमरकंकाए
 रायहाणीष्णं पउमणाभे णामं राया होत्था महया हिमवंत०
 वणगओ, तस्स णं पउमनाभस्स रत्तो सत्त देवीसयाइं ओरोहे
 होत्था, तस्स णं पउमनाभस्स,रणो सुनाभे नामं पुत्ते जुवराया
 यावि होत्था, तएणं से पउमणाभे राया अंतो अंतेउरंसि ओ-
 रोहसंपरिउडे सिंहासणवरगष्णं विहरइ, तएणं से कच्छुल्लणारष्णं
 जेणेव अमरकंका रायहाणी जेणेव पउमनाभस्स भवणे . तेणेव
 उवागच्छइ उवागच्छित्ता पउमनाभस्स रत्तो भवणंसि झत्तिं
 वेगेणं समोवइष्णं, तएणं से पउमनाभे राया कच्छुल्लं नारयं

आश्रम है जहां पर पर्वत आदि दुर्गम स्थानोंमें मनुष्य धान्य आदि
 रखते हैं—वह संवाह है अर्थात् नगर के बाहर का प्रदेश जहां आभीर
 वगेरे लोग निवास करते हो ॥ सूत्र २४ ॥

स्थवपत्तननी हृष्टिणे पत्तनना ये प्रकरो छे, तथां पवर्तं वगेरे दुर्गम स्थानोभां
 भाषुस धान्य वगेरेनी राणे छे ते संवाहं कडेवाय छे. अर्थात् नगरनी मंडा-
 रणे प्रदेश के तथां क्षरवाहं विगेरेनो वास डोय छे. ॥ सूत्र २४ ॥

षड्जमाणं पासइ पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता
 अग्घेणं जाव आसणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लनारए
 उदगपरिफासियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ
 जाव कुसलोदंतं आपुच्छइ, तएणं से पउमनाभे राया णियग-
 ओरोहे जायविम्हए कच्छुल्लणारयं एवं वयासी-तुब्भं देवाणु-
 प्पिया ! बहूणि गात्ताणि जाव गेहाइं अणुपविससि, तं अत्थि
 आइं ते कहिंन्धि देवाणुप्पिया ! एरिसए ओरोहे दिट्ठपुब्बे जा-
 रिसए णं मम ओरोहे ?, तएणं से कच्छुल्लणारए पउमनाभेणं
 रत्ता एवं बुत्ते समाणे ईसिं विहासियं करेइ करित्ता एवं वयासी
 -सरिसे णं तुमं पउमणाभा ! तस्स अगडददुदुरस्स, के णं
 देवाणुप्पिया ! से अगडददुदुरे ?, एवं जहा मल्लिगाए एवं खलु
 देवाणुप्पिया ! जंबूद्वीवे दीवे भारहेवासे हत्थिणाउरे दुवयस्स
 रणो धूया चूलगीए देवीए अत्तया पंडुस्स सुग्हा पंचणहं पंड-
 वाणं भारिया दोवई देवी रूवेण य जाव उक्किट्ठसरीरा दोवईए
 णं देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्ठयस्स अयं तव ओरोहो सतिमंपि
 कलं ण अग्घंतित्तिरुट्ठ, पउमणाभं आपुच्छइ आपुच्छित्ता जाव
 पडिगए, तएणं से पउमणाभे राया कच्छुल्लणारयस्स अंतिए
 एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म दोवईए देवीए रूवे यइ मुच्छिए ४
 दोवइए अज्झोववन्ने जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता पोसहसालं जाव पुब्बसंगइयं देवं एवं वयासी-
 एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबूद्वीवे दीवे भारहेवासे हत्थिणाउरे

जाव सरीरा तं इच्छामिणं देवाणुपिया ! दोवई देवीं इहमा-
 णियं, तएणं पुव्वसंगइए देवीए पउमनाभं एवं वयासी - नो
 खल्ल देवाणुपिया ! एयं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जण्णं
 दोवई देवी पंचपंडवे मोत्तूण अन्नेणं पुरिसेणं सद्धिं ओरालाइं
 जाव विहरिस्सइ, तहा वि य णं अहं तव पियट्ठतयाए दोवई
 देविं इहं हव्वमाणेमि त्तिरुट्ठु पउमणाभं आपुच्छइ आपुच्छित्ता
 ताए उक्किट्ठाए जाव लवणसमुद्धे मज्झंमज्जेणं जेणेव हत्थिणा-
 उरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तेणं कालेणं तेणं समएणं
 हत्थिणाउरे जुहिट्ठिल्ले राया दोवईएसद्धिं उप्पिं आगासतलंसि
 सुहपसुत्ते याविं होत्था, तएणं से पुव्वसंगइए देवे जेणेव जुहि-
 ट्ठिल्ले राया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 दोवईए देवीए ओसोवणियं दलयइ दलित्ता दोवइं देवीं
 गिणहइ गिणित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव अमरकंका जेणेव
 पउमणाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पउमणा-
 भस्स भवणंसि असोगवणियाए दोवइं देवीं ठावेइ ठावित्ता
 ओसोवणिं अवहरइ अवहरित्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव उवा-
 गच्छइ उवागच्छित्ता एवं वयासी-एसणं देवाणुपिया मए
 हत्थिणाउराओ दोवई इह हव्वमाणीया तव असोगवणियाए
 चिट्ठइ, अतो परं तुंमं जाणसित्तिरुट्ठु जामेव दिसिं पाउव्वमूए
 तामेव दिसिं पडिगए ॥ सू० २५ ॥

टीका-‘ तएणं तस्स ’ इत्यादि । ततः खलु तस्य कच्छुल्लनारदस्य अयमेत-
द्रूपः आध्यात्मिकश्चित्ततः प्रार्थितः कल्पितो मनोगतः संकल्पः समुद्रपद्यत, अहो !
खलु द्रौपदी देवी रूपेण यावत् लावण्येन च पञ्चभिः पाण्डवैरनुवद्भासती मां नो
आद्रियते यावत् नो पर्युपास्ते, तत्=तस्मात् श्रेयः खलु मम द्रौपद्या देव्याः ‘ वि-
प्पियं करित्तए ’ विप्रियं कर्तुम्, पाण्डवकृतसत्कारसंमानगर्विता विवेकरहिता जाता-

-:तएणं तस्स कच्छुल्लनारदसस इत्यादि ।

टीकार्थ-(तएणं) इसके बाद (तस्स कच्छुल्लनारदसस) उन कच्छुल्ल
नारदको (इमेयारूवे) यह इस रूप (अज्झत्थिए, चित्तिए, पत्थिए, मणो-
गए, संकप्पे समुप्पज्जित्था) आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत
संकल्प उत्पन्न हुआ । (अहो णं दोवईदेवी रूवेणं जाव लावण्येणं य पंचहिं
पंडवेहिं अणुवद्दा समाणी मम णो आढाइ, जाव नो पज्जुवासइ तं
सेयं खलु मम दोवईए देवीए विप्पियं करित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ,
संपेहिता पंडुरायं आपुच्छइ आपुच्छिता उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ
आवाहिता ताए उक्किट्ठाए जाव विज्जाहरगईए लवणसमुदं मज्झं
मज्झेणं पुरत्थाभिमुहे वीइवइउं पयत्ते यावि होत्था) देखो-यह कितने
आश्चर्य की बात है कि द्रौपदी देवी ने रूप यावत् लावण्य से पांचों
पांडवों के साथ भोगासक्त बनकर मेरा कोई आदर नहीं किया है यावत्
किसी भी प्रकार की पर्युपासना नहीं की है । इसलिये अब मुझे यही
उचित- श्रेयस्कर है कि मैं इस द्रौपदी देवी का विप्रिय करूँ-अनिष्टकरूँ

तएणं तस्स कच्छुल्लनारदसस इत्यादि ॥

टीकार्थ-(तएणं) त्थारपधी (तस्स कच्छुल्लनारदसस) ते कच्छुल्ल नारदने
(इमेयारूवे) आ नतने (अज्झत्थिए, चित्तिए, पत्थिए, मणोगए, संकप्पे
समुप्पज्जित्था) आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उद्भवोये के
(अहोणं दोवई देवी रूवेणं जाव लावण्येणं य पंचहिं पंडवेहिं अणुवद्दा
समाणी मम णो आढाइ, जाव नो पज्जुवासइ तं सेयं खलु मम दोवईए देवीए
विप्पियं करित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिता पंडुरायं आपुच्छइ आपुच्छिता
उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ आवाहिता ताए उक्किट्ठाए जाव विज्जाहरगईए लवण-
समुदं मज्झं मज्झेणं पुरत्थाभिमुहे वीइवइउं पयत्ते याविहोत्था)

बुझो, आ देवी नवाधनी बात छे के द्रौपदी देवीये इप यावत् लाव
रूपी पांचे पांडवोनी साथे भोगासक्त थधने मारे केध पलु रीते आइए
इयो नथी यावत् केध पलु नतनी पर्युपासना करी नथी. ओधी हवे मने
ओ न भोग्य लक्ष्मण छे के गमे ते रीते द्रौपदीनुं विप्रिय-अहित-कइ. लभयुं

तस्मान्मदापहरणेन अस्याः प्रतिकूलाचरणं श्रेयः इति भावः । इति कृत्वा=इति मनसि निधाय एवं संप्रेक्षते=पर्यालोचयति, संप्रेक्ष्य पाण्डुं राजानमापृच्छद्य ' उत्प-
यर्णि विज्जं ' उत्पतनीम्-विद्याम् ' आवाहेइ ' आवाहयति- स्मरति आवाह्य, मत्वा
तया उत्कृष्टया यावद् विद्याधरगत्या लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन पौरस्त्याभिमुखः=

पूर्वदिग्भिमुखः, ' वीइवइउं पयत्ते ' व्यतिव्रजितुं प्रवृत्तः=गमनतत्परश्चाप्यभवत् ।
तस्मिन् काले तस्मिन् समये ' धायईसंडे ' धातकीपण्डे धातकीषण्डनामके,
द्वीपे ' पुरत्थिमद्ददाहिण्डुभरहवासे ' पौरस्त्यार्धदक्षिणार्ध-भारतवर्षे=पूर्वदिग्-
र्तिनि दक्षिणार्धभरतक्षेत्रे अमरकंका नाम राजधानी आसीत् । ततः रज्जु अमर-
कंकायां राजधान्यां पञ्चनाभो नाम राजाऽभवत् । स कीदृश इत्याह-' महया हिम-
वंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे ' महा-हिमवन्महामलयमन्दरमहेन्द्रसारः=महाहिम-
वानिन् तथा-महामलयमन्दरमहेन्द्रवत् सारः=प्रधानः । अन्यनृपापेक्षयाऽधिकम-
हत्त्वादिगुणविभवैश्वर्यसम्पन्न इत्यर्थः, विस्तरतस्तु व्याख्यानं प्रथमाध्ययने कृतम् ,

यह इस समय पांडवों द्वारा कृत सत्कार सम्मान से गर्विष्ठ बनी हुई है-सो चिवेक रहित बन गई है-इसलिये इसके मद को उतारना चाहिये अतः इसके प्रतिकूल आचरण करना यही मुझे श्रेयस्कर है । इस प्रकार मन में रखकर उन्होंने ने विचार किया-विचार करके फिर उन्होंने ने पांडु-राज से पूछा हे राजन् हम जाते हैं-पूछकर उन्होंने ने उत्पतनी नाम की विद्या का ओह्वान किया स्मरण किया-स्मरण कर के उस उत्कृष्ट यावत् विद्याधर संवन्धी गति से वहाँ से पूर्व दिशा की तरफ मुख कर के वे उड़ने में प्रवृत्त भी हो गये-(तेणं कालेणं तेणं समएणं धायईसंडे दीवे पुरत्थिमद्ददाहिण्डुभरहे वासे अमरकंका नाम रायहाणी होत्था-तएणं अमरकंकाए रायहाणीए पउमणाभे णामं राया होत्था, महया हिमवंत०

ते आ पांडवो वडे सत्कृत तेमञ्ज सन्भानीत थधने गर्विष्ठा णनी गध छे तेथी ते अविपेक्षी थध पडी छे, अथी डवे अना भदने उतारवो लेधअ, अना विइद्ध आचरनुं लेधअ, आ प्रभाळु तेअोअे मनभां विचार कर्यो. विचार करीने तेमळे पांडुरायने पूछुं क्रे डे राजन् ! अमे न्धअ, अे प्रभाळु पूछीने तेअोअे उ.पतनी नामनी विद्यानुं आह्वान कर्युं, स्मरण कर्युं. स्मरण करीने ते उत्कृष्ट यावत् विद्याधर संवन्धी गतिथी त्यांथी पूर्व दिशा लक्ष्मी मुख करीने उडवा लाअ्या.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं धायईसंडे दीवे पुरत्थिमद्ददाहिण्डुभरहे वासे अमरकंका नाम रायहाणी होत्था तएणं अमरकंकाए रायहाणीए पउमणाभे णामं राया

वर्णकः=वर्णनं पूर्वोक्तवद् बोध्यम्, तस्य खलु पद्मनाभस्य राज्ञः 'सत्तदेवीसयाइं' सम्रदेवीशतानि=देवीनां राज्ञीनां शतानि-सप्तशतानिभार्याः 'ओरोहे' अवरोधे=अन्तःपुरे आसन् तस्य खलु पद्मनाभस्य राज्ञः सुनाभो नाम पुत्रो युवराजश्चाप्यभवत् । ततः खलु स पद्मनाभो राजा अन्तः प्रदेशे 'अंतेउरंसि' अन्तःपुरे 'आरोहसंपरिवुडे' अवरोधसंपरिवृतः - स्त्रीपरिवारसंपरिवृतः, सिंहासनव्रगतो विहरति-आस्तेस्म ।

वण्णओ तस्सणं पउमनाभस्स रण्णो सत्तदेवीसयाइं ओरोहे होत्था तस्स णं पउमनाभस्स रण्णो सुनाभे नामं पुत्ते जुवराया यावि होत्था तएणं से पउमणाभे राया अंतो अंतेउरंसि ओरोहसंपरिवुडे सिंहासण वरगए विहरइ) उस काल और उस समय में घातकी षंड नाम के द्वीप में पूर्व दिग्बर्ती दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र में अमरकंका नाम की राजधानी थी। उस अमरकंका नाम की राजधानी में पद्मनाभ नाम का राजा रहता था। यह राजा महा हिमवान् पर्वत की तरह तथा महा मलय, मन्दर एवं माहेन्द्र की तरह अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक महत्त्वादिगुणों से विभव से एवं ऐश्वर्य से संपन्न था। इन पदों का विस्तार पूर्वक वर्णन प्रथम मेघकुमार अध्ययन में किया जा चुका है। इस राजा का वर्णन पहिले की तरह जानना चाहिये। उस पद्मनाभ राजा के अंतःपुर में ७०० सात सौ रानियां थीं। सुनाभ नाम का पुत्र था जो युवराज था, पद्मनाभ राजा के यहां एक दिन की बात है

होत्था, महया हिमवंतं वण्णओ, तस्सणं पउमनाभस्स रण्णो सत्तदेवी सयाइं ओरोहे होत्था तस्स णं पउमनाभस्स रण्णो सुनाभे नामं पुत्ते जुवराया यावि होत्था तएणं से पउमणाभे राया अंतो अंते उरंसि ओरोहसंपरिवुडे सिंहासणवरगए विहरइ)

ते ऋणे अने ते समथे घातकी षंड नामे द्वीपमां पूर्व दिशा तस्सणा दक्षिणार्धं भरत क्षेत्रमां अमरकंका नामे राजधानी इत्ती, ते अमरकंका नामे राजधानीमां पद्मनाभ नामे राजा रहतेतो इत्तो, ते राजा महा हिमायल पर्वतानी जेम तेमज महामलय, मंदर अने माहेन्द्रनी जेम णीण राज्या करतां पधारे महत्त्व वगेरे शुद्धीथी, वैभवथी अने ऐश्वर्यथी संपन्न इत्तो, आ पदोतुं सविस्तार वर्णन प्रथम मेघकुमार अध्ययनमां करवामां आवुं छे, आ राजतुं वर्णन पलु पहिलानी जेम ज समजतुं जेधये, ते पद्मनाभ राजाना रजुवासमां ७०० राणीया इत्ती, सुनाभ नामे तेने पुत्र इत्तो, जे युवराज इत्तो, जे इवसनी वात छे के ते पद्मनाभ राजा रजुवासमां श्री परिवारनी साथे सिंहासन उपर जेठा इत्ता.

ततः खलु स कच्छुल्लनारदो यत्रैवामरकङ्काराजधानी यत्रैव पद्मनाभस्य भवनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पद्मनाभस्य राज्ञो भवने ' झत्ति ' झटिति वेगेन ' समोवहए ' समुपेतः=आकाशादवतीर्णः । ततः खलु स पद्मनाभो राजा कच्छुल्लं नारदं एजमानम्-आगच्छन्तं पश्यति, दृष्ट्वा आसनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थायार्ध्वेण यावदासनेन उपनिमन्त्रयति-जलमासनं च ग्रहीतुं प्रार्थयति । ततः खलु स कच्छुल्ल-

कि अतःपुर के भीतर स्त्री परिवार के साथ सिंहासन पर बैठे हुए थे । (तएणं से कच्छुल्लनारए जेणेव अमरकंका रायहाणी जेणेव पउम नाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमणाभस्स रण्णो भवणंसि झत्तिवेगेणं समोवहए, तएणं से पउमनाभे राया कच्छुल्लं नारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्बुट्ठेइ, अब्बुट्ठित्ता अग्घेणं जाव आसणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लनारए उदग परिफासियाए दग्गोपरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ जाव कुसलोदंतं आपुच्छइ) वे कच्छुल्ल नारद जहां अमर कंका राजधानी थी, जहां पद्मनाभ का भवन था वहां आये । आकर के वे पद्मनाभ राजा के भवन में बहुत शीघ्र वेग से उतरे । पद्मनाभ राजा ने जैसे ही कच्छुल्ल नारद को आते हुए देखा तो देखकर के अपने आसन से उठे और उठकर के उन्होंने ने उन्हें अर्धय यावत् आसन से आमंत्रित किया ।

(तएणं से कच्छुल्लनारए जेणेव अमरकंका रायहाणी जेणेव पउमनाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमणाभस्स रण्णो भवणंसि झत्तिवेगेणं समोवहए, तएणं से पउमनाभे राया कच्छुल्लं नारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्बुट्ठेइ, अब्बुट्ठित्ता अग्घेणं जाव आसणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफासियाए दग्गोपरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ जाव कुसलोदंतं आपुच्छइ)

ते कच्छुल्ल नारद न्यां अमरकंका राजधानी इती, न्यां पद्मनाभतुं भवन इतुं त्यां आव्या, आवीने ते पद्मनाभ राजना भवनभां शीघ्र वेगथी उतथा पद्मनाभ राजाभ्ये न्यारे कच्छुल्ल नारदने आवता न्येया त्थाइ तेभ्यो पौताना आसन उपरथी ऒला यथा अने ऒला यथने तेभ्ये तेभ्यो अर्धय यावत् हा ५९

नारदः उदकपरिस्पृष्टायां—जलाभिषिक्तायां दर्भोपरि प्रत्यवस्तृतायां वृष्याम् आसनशेषे निषीदति, यावत् कुशलोदन्तं=कुशलवार्ताम् आपृच्छति=सुखोपविष्टं तं कच्छुल्लनारदं पद्मनाभः कुशलवार्तां पृच्छतीत्यर्थः । ततः खलु स पद्मनाभो राजानिजकावरोधे स्त्रीपरिवारे जातविस्मयः=समुत्पन्नगर्वः, कच्छुल्लनारदम् एवं-वक्ष्यमाणक्रमेण, अवादीत्—हे देवानुमिय ! त्वं बहून् ग्रामान् यावत् गृहाणि अनुप्रविशति, तत्=तस्माद् अस्ति ' आइं ' इति वाक्यालङ्कारे ते=त्वया कुत्रचिद् हे

इसके बाद वे कच्छुल्लनारद जल के छींटो से सिंचित आसन पर जो दर्भ के ऊपर बिछा हुआ था बैठ गये—बैठकर उन्होंने ने पद्मनाभ राजा से कुशलवार्ता पूछा। पद्मनाभ राजा ने भी सुख पूर्वक बैठे हुए उन कच्छुल्ल नारद से उन के कुशल समाचार पूछे। (तएणं से पउमनाभे राया णियगओरो हे जायविम्हए कच्छुल्लणारयं एवं वयासी-तुग्भं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामाणि जाव गेहाइं अणुपविससि तं अत्थि आइं तैकहिं चि देवाणुप्पिया ! एरिसए ओरोहे दिट्ठपूव्वे, जारिसए णं मम ओरोहे ? तएणं से कच्छुल्लणारए पउमनाभेणं रत्ता एवं वुत्ते समाणे ईसिं विहसियं करेइ, करित्ता एवं वयासी-सरिसेणं तुमं पउमणाभा । तस्स अगड दद्दुरस्स, केणं देवाणुप्पिया ! से अगडदद्दुरे ? एवं जहा मल्लिणाए एवं खलु देवाणुप्पिया !) इसके बाद पद्मनाभ राजा ने अपने अतःपुर में विस्मित बनकर कच्छुल्लनारद से इस प्रकार

आसन ऊपर भेसवा भाटे विनंती करी. त्थारपथी ते कच्छुल्ल नारद थाणीना छांटोओथी सिंचित दर्भना ऊपर पाथरेला आसन ऊपर भेसीने पद्मनाभ राबने तेओना परिवारनी कुशणताना समाचारे पूछया. पद्मनाभ राबने पखु आसन ऊपर सुभेथी भेडेला ते कच्छुल्लनारदने कुशण समाचारे पूछया.

(तएणं से पउमनाभे राया णियगओरोहे जायविम्हए कच्छुल्लणारयं एवं वयासी-तुग्भं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामाणि जाव गेहाइं अणुपविससि, तं अत्थि आइं ते कहिं चि देवाणुप्पिया ! एरिसए ओरोहे दिट्ठपूव्वे जारिसए णं मम ओरोहे ? तएणं से कच्छुल्लणारए पउमनाभेणं रत्ता एवं वुत्ते समाणे ईसिं विहसियं करेइ, करित्ता एवं वयासी-सरिसेणं तुमं पउमणाभा । तस्स अगडदद्दुरस्स केणं देवाणुप्पिया ! से अगडदद्दुरे ? एवं जहा मल्लिणाए एवं खलु देवाणुप्पिया !)

त्थारपथी पद्मनाभ राबने योताना रखुवासना वैलवने लोधने आश्रयं थधने कच्छुल्ल नारदने आ प्रभाणे कछुं के छे देवानुप्रिय ! तमे धखा आभ यावत् धरैभां आवण करता रहे छे तो छे देवानुप्रिय ! शुं तमे पडेलां

देवानुप्रिय ! ईदृशोऽत्रोद्यो दृष्टपूर्वो यादृशः खलु ममात्रोद्यः ? ममान्तः पुरे यादृश्यः स्त्रियो वर्तन्ते, तादृश्यः स्त्रियः कुत्रापि भवता दृष्टा इति पृच्छतीत्यर्थः । ततः खलु स कच्छुल्लनारदः पद्मनाभेन राज्ञा एवमुक्तः सन् ' ईषद् विहसितं ' मन्दहासं करोति, कृत्वा एवमवादीत्—हे पद्मनाभ ! सदृशस्त्वं खलु तस्य ' अगडददुर्दुरस्त ' अगडददुर्दुरस्त्य=कूपमण्डूकस्य यथा कूपमण्डूकः कूपाद् वहिः प्रदेशे विद्यमानं न किमपि जानाति, तद्वत् त्वमपि स्वभवनाद् वहिरन्यत्रावस्थितं किमपि वस्तु न वेत्सीति भावः । कच्छुल्लनारदस्य वचनं श्रुत्वा पद्मनाभः कच्छुल्लनारदं पृच्छति—' के णं देवाणुप्पिया ! से अगडददुरे ' इति । हे देवानुप्रिय ! कः खलु सोऽगडददुर्दुरः ? एवं पद्मनाभेन राज्ञा पृष्टः सन् कच्छुल्लनारदः प्राह—' एवं यथा मल्लिगाए ' यथा मल्लिगजाते वर्णितमेवमत्र बोध्यम् समुद्रददुर्दुरकूपददुर्दुरयोः परस्परवार्तालापो यथा संजातस्तथा कच्छुल्लनारदेन कथित इत्यर्थः । पुनः कच्छुल्ल-

कहा—हे देवानुप्रिय ! तुम अनेक ग्राम यावत् से घरों में आते जाते रहते हो—तो क्या हे देवानुप्रिय ! तुमने कहीं पर क्या ऐसा अंतः पुर पहिले कभी देखा है—जैसा मेरा अन्तः पुर है ? पद्मनाभ राजा के द्वारा इस प्रकार पूछे गये वे कच्छुल्ल नारद कुछ हँसने लगे—हँसकर तब उन्होंने ने उनसे इस प्रकार कहा—हे पद्मनाभ ! तुम उस कूपमं डूक के समान हो—जो अपने निवासस्थान भूत कुंए से बाहिरी प्रदेश में विद्यमान कुछभी नहीं जानते हो । कच्छुल्ल नारद के वचन सुनकर के पद्मनाभ ने उन कच्छुल्ल नारद से पूछा—देवानुप्रिय ! वह अगडददुर्दुर का आख्यान कैसा है ? तब नारद ने उनसे कहा—मल्लि नाम के अध्वपयन में कूपमं डूक और समुद्र मं डूक के परस्पर में वार्तालाप के रूप में यह आख्यान वर्णित किया हुआ है—सो नारद ने यह आख्यान जैसे का तैसा उन्हें सुना दिया— पुनः कच्छुल्ल नारद उनसे

केरु पञ्च स्थाने अने केरु पञ्च द्विसे आवे आरा जेवे। रणुवास जेवे। छे ? पद्मनाभ राजा वडे आ रीते प्रश्न पूछाजेका ते कच्छुल्ल नारद हंसवा लाय्या, हसिने तेजेजे तेमने आ प्रभाषे कहुं के छे पद्मनाभ ! तमे ते रूप मं डूक जेवा छे के जे पोताना निवासस्थान कूपथी गडारना प्रदेश विषे थोडुं पञ्च ज्ञान धरावतो नथी। कच्छुल्ल नारदना वचन सांलणीने पद्मनाभे ते कच्छुल्ल नारदने पूछुं के छे देवानुप्रिय ! ते अगड ददुर्दुरकनुं आभ्यान केवी रीते छे ? त्यारे नारद तेमने मल्लि नामे अध्वयनभां वणुं ववाभां आवेका रूप मं डूक अने समुद्र मं डूकना वार्तालाप जेवे ते संपूणुं आभ्यान तेमने कही सल्लणांठुं

नारदोवदति—एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण खलु हे देवानुप्रिय । जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे हस्तिनापुरे नगरे द्रुपदस्य राज्ञो दुहिता चूलन्या देव्या आत्मजा पाण्डोः स्नुषा पञ्चानां पाण्डवानां भार्या द्रौपदी देवी रूपेण च यावद् उत्कृष्ट शरीरा वर्तते द्रौपद्याः खलु देव्याश्चिन्नस्यापि पादाङ्गुष्ठरूपायां तवावरोधः तवान्तःपुरवर्तिनी काचिदपि देवी 'सयतमंपि कलं' शततमामपि कलां नार्हति, इति कृत्वा—एवं ज्ञात्वा कथयोमि—द्रौपदीसदृशी नास्ति काचिदपीति । ततः कच्छुल्लनारदो गन्तुकामः

कहते हैं कि हे देवानुप्रिय । सुनो—बात इस प्रकार है—(जंबू द्वीपे द्वीपे भारते वासे हस्तिनापुरे दुवयस्स रणो धूया, चूलणीए देवीए अत्तया पंडुस्स सुण्हा, पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई देवी रूपेण य जाव उक्किट्ट सरीरा, दोवईए णं देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्टयस्स अयं तव अवरोहो सय-न्नमपि कलं ण अगई ति कट्टु पउमणाभं आपुच्छह आपुच्छित्ता जाव पडि-गए, तएणं से पउमणाभे राया कच्छुल्लनारयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म दोवइए, देवीए रूपे य च्छिण्ण दोवईए अज्जोववन्ने जेणेव पोस-हसाला तेणेव उवागच्छह) जंबूद्वीप नाम के प्रथम द्वीप (मध्य जंबूद्वीप में) में भारतवर्ष में, हस्तिनापुर नाम के नगर में द्रुपद राजा की पुत्री चुलनी देवी की आत्मजा, पांडु राजा की स्नुषा—पुत्रवधू—पांच पांडवों की भार्या द्रौपदी देवी है । यह रूप से यावत् उत्कृष्ट शरीर है । तुम्हारा यह अंतःपुर उसके कटे हुए पैर के अंगूठे के सौंवे अंश के बराबर

अने त्थारपथी उच्छुल्ल तेमने उडेवा लाग्या उ डे देवानुप्रिय ! सांभणे, बात जेवी छे डे—

(जंबू द्वीपे द्वीपे भारते वासे हस्तिनापुरे दुवयस्स रणो धूया, चूलणीए देवीए अत्तया पंडुस्स सुण्हा, पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई देवी रूपेण य जाव उक्किट्टसरीरा, दोवईए णं देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्टयस्स अयं तव अवरोहो सयन्नमपि कलं ण अगई ति कट्टु पउमणाभं आपुच्छह, आपुच्छित्ता जाव पडि-गए, तएणं से पउमणाभे राया कच्छुल्लनारयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म दोवईए, देवीए रूपे य च्छिण्ण दोवईए अज्जोववन्ने जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छह)

जंबू द्वीप नामना प्रथम द्वीपमां भारत वर्षमां हस्तिनापुर नामे नग-रमां द्रुपद राजनी पुत्री चुलनी देवीनी आत्मजा, पांडु राजनी स्नुषा—पुत्रवधू पांच पांडवानी पत्नी द्रौपदीदेवी छे. ते इथी यावत् उत्कृष्ट शरीरवाणी छे. तमासे आ रत्नवास तेना उपायेला अंगूठाना सोभा लागनी अरोधर पधु नथी, आ अधुं हुं विचारपूर्वकं कही रह्यो छुं. द्रौपदी जेवी नारी केई पधु

पद्मनाभमापृच्छति, पृष्ट्वा यावत् पद्मनाभेन राज्ञा सत्कारं प्राप्य प्रतिगतः=उत्पतनी विद्यया गगनमुद्धयन् प्रतिगत इत्यर्थः ।

ततः खलु स पद्मनाभो राजा कञ्जुल्लनारदस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा= आकर्ष्य निश्चय्य हृद्यवधार्य द्रौपद्या देव्या रूपे च यौवने च लावण्ये च मूर्च्छितः= आसक्तः, गृद्धः = लोलुपः, ग्रथितः=निवद्धचित्तः, अश्रुपपन्नः = एकाग्रचित्तः सन् यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पौषधशालां प्रमार्य यावदष्टम- भक्तं कृत्वा ' पूर्वसंगतिकं ' पूर्वमित्रं देवम् एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्-एवं खलु हे देवानुभिय ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे हस्तिनापुरे पाण्डवभार्या द्रौपदी देवी यावत्-उत्कण्ठसरीरा वर्तते, तत्=तस्माद् इच्छामि खलु हे देवानुभिय !

भी नहीं है। ऐसा मैं जानकर ही कह रहा हूँ । द्रौपदी के जैसी कोई भी नारी नहीं है। इस प्रकार कहकर वे कञ्जुल्ल नारद वहाँ से चलने के लिये अभिलाषी बन गये-तब उन्होंने पद्मनाभ राजा से जाने के लिये पूछा पूछकर यावत् वे वहाँ से पद्मनाभ राजा से सत्कृत होकर उत्पतनी विद्या के प्रभाव से गगन तल को उल्लंघन करते हुए वापिस चले गये। इसके बाद वे पद्मनाभ राजा कञ्जुल्ल नारद के मुख से इस समाचार रूप अर्थ को सुनकर और उसे हृदय में धारण कर द्रौपदी देवी के रूप, यौवन एवं लावण्य में मूर्च्छित ४ बन गये, यावत् उनका चित्त उन में बिलकुल एकाग्र हो गया। इस तरह होकर, वे जहाँ पौषधशाला थी वहाँ गये। (उवागच्छित्ता पोमहसालं जाव पुव्वसंगहयं देवं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे जाव सररीरा तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया !

नथी. आ प्रभाण्णे क्खीने ते कञ्जुल्ल नारद त्यांधी आत्तवा माटे तेरथा थध गया. तेमण्णे पद्मनाल राअने ज्वा माटे पूछथुं, पूछीने थावत् त्यांधी तेओ। पद्मनाल राअनी पांसेथी षट्ठे थधने उत्पतनी विद्याना प्रभावथी आका- शने ओणं गत्ता जत्ता रक्खा. त्यारपछी ते पद्मनाल राअ कञ्जुल्ल नारदना मुअथी आ समात्थारने सांलणीने अने तेने ह्दयमां धारण्णी करीने द्रौपदी देवीना इप, यौवन अने लावण्यथी मूर्च्छित ४ थध गया, थावत् तेमत्तुं मन तेमां ओक्कम थेंटी गत्थुं. आ स्थितिमां तेओ न्थां पौषधशाणा षत्ती त्यां गथा.

(उवागच्छित्ता पोसहसालं जाव पुव्वसंगहयं देवं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबू द्वीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे जाव सररीरा तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! दोवई देवीं इहमाणियं तएणं पुव्वसंगहए देवे पउमनाभं एवं

द्रौपदीं देवीम् ' इह माणियं ' इहानेतुम् । ततः खलु पूर्वसंगतिको देवः पद्मनाभं नृपम् एवमवादीत्—हे देवानुप्रिय ! नो खलु एतद् भूतं वा भवद् वा भविष्यद् वा, यत् खलु द्रौपदी देवी पञ्च पाण्डवान् मुक्त्वाऽन्येन पुरुषेण सार्धमुदारान् भोगान् यावद् विहरति, तथापि च खलु अहं तत्र प्रीत्यर्थं द्रौपदीं देवीमिह हव्यपानयामीति

दोवई देवों इहमाणियं तएणं पुव्वसंगइए देवे पउमनाभं एवं वघोसी-नो खलु देवाणुप्पिया ! एयं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जणं दोवई देवी पंच पंडवे मोत्तुग अन्नेणं पुरिसेणं सद्धिं ओराळाइं जाव विहरिस्सइ) वहां जाकर उन्हों ने उस पौषध शाला को रजोहरण से साफ किया यावत् अष्टम भक्त कर के पूर्व संगति देव का आवाहन किया देवों के आनेपर पूर्व संगतिक देव से इस प्रकार कहा हे देवानुप्रिय ! जंबूद्वीप नाम के द्वीप में भारत वर्ष में हस्तिनापुर नगर में पांडवों की भार्या द्रौपदी देवी है । यह यावत् उत्कृष्ट शरीर है । इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैं उस द्रौपदी देवी को तुमसे यहां ले आने के लिये चाहता हूँ । पद्मनाभ की इस बात को सुनकर पूर्वभव के मित्र उस देव ने उस से तब ऐसा कहा—हे देवानुप्रिय ! ऐसी बात द्रौपदी के साथ न पहिले हुई है, न आगे होगी—और न अब वर्तमान में हो सकती है, जो द्रौपदी देवी पांच पांडवों को छोड़कर अन्य किसी दूसरे पुरुष के साथ उदार यावत् मनुष्य भव सबन्धी काम सुखों को भोगे (तहावि-

वयासी नो खलु देवाणुप्पिया ! एयं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जणं दोवई देवो पंच पंडवे मोत्तुग अन्नेणं पुरिसेणं सद्धिं ओराळाइं जाव, विहरिस्सइ)

त्यां ञ्छने तेमण्णे ते पौषधशाणाने रजोहरण्ण्थी साइ करी यावत् अष्टम लकत करीने पूर्व संगति देवतुं आवाहनं कथुं । देव न्याये आनी गथे त्यादे तेमण्णे पूर्वसंगतिक देवने आ प्रमाण्णे कथुं के डे देवानुप्रिय । जंबूद्वीप नामना द्वीपमां भरत वर्षमां हस्तिनापुर नगरमां पांडवोनी पत्नी द्रौपदीदेवी छे, ते यावत् उत्कृष्ट शरीरवाणी छे. अथी डे देवानुप्रिय ! ते द्रौपदी देवीने तमे अहो लक्ष आवे। अथी भारी छ्छा छे. पद्मनाभनी आ वातने सांलणीने पूर्वलवना मित्र ते देवे तेमने आ प्रमाण्णे कथुं के डे देवानुप्रिय ! द्रौपदी देवीनी साथे आ जनतुं आचरण्णु न पडेवां थयुं छे न लविष्यमां थथे अने न वर्तमानमां थवानी शक्यता छे द्रौपदी देवी पांचे पांडवे। सिवाथ भील डोई पुत्रधी साथे उदार यावत् मनुष्यलव संबधी कामसुखो लोगवे आ बात तदन असंलवित छे.

कृत्वा=उक्त्वा पद्मनामम् आपृच्छति आपृच्छद्य तथा उत्कृष्टया देवसम्बन्धिन्या गत्या यावत् लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन=उपरिभागेन गगनमार्गेण, यत्रैव हस्तिनापुरं नगरं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये हस्तिनापुरे नगरे युधिष्ठिरो राजा द्रौपद्या सार्धमुपरि आकाशतले=प्रासादादालिकोपरि सुखप्रसुप्तश्चाप्यासीत्, ततः खलु स पूर्वसंगतिको देवो यत्रैव युधिष्ठिरो राजा यत्रैव द्रौपदीदेवी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य द्रौपद्यै

य णं अहं तव पियद्वतयाए दोवईं देवीं इहं हव्वमाणेमि त्तिकट्टु पउमणाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता ताए उक्किट्टाए जाव लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए) फिर भी मैं तुम्हारी प्रीति के निमित्त द्रौपदी देवी को यहाँ शीघ्र लेकर आता हूँ । ऐसा कहकर उसने जाने के लिये उन पद्मनाम से पूछा, पूछकर फिर वह उस उत्कृष्ट देवभवसंबन्धी गति से यावत् लवण समुद्र के बीच से होकर जहाँ हस्तिनापुर नगर था उस और चल दिया ! (तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणाउरे जुहिट्टिले राया, दोवईए सद्धि उप्पि आगासतलंसि सुहपसुत्ते यावि होत्था, तएणं से पुव्वसंगइए देवे जेणेव जुहिट्टिले राया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ) उस काल और उस समय में हस्तिनापुर नगरमें युधिष्ठिर राजाके साथ द्रौपदी आकाशतलमें—प्रासाद की अद्वालिका के ऊपर सोये हुए थे । वह पूर्व संगतिक देव जहाँ वे युधिष्ठिर राजा और जहाँ वह द्रौपदी देवी थी वहाँ आया—(उवागच्छित्ता

(तहात्रि य णं अहं तव पियद्वतयाए दोवईं देवीं इहं हव्वमाणेमि त्तिकट्टु पउमणाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता ताए उक्किट्टाए जाव लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए)

छतांभे तमने शुश करवा माटे हुं द्रौपदी देवीने शीघ्र ० ह्रीं लध आबुं छुं. आभ कडीने तेखे न्वा माटे पद्मनाम राजने पूछ्युं. पूछीने ते चोतानी उत्कृष्ट देवभव संबन्धी गतिथी यावत् लवण समुद्रनी पन्थे थधने न्यां हस्तिनापुर नगर हत्तु ते तरङ्ग रवाना थयो.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणाउरे जुहिट्टिले राया, देवईए सद्धि उप्पि आगासतलंसि सुहपसुत्ते यावि होत्था तएणं से पुव्वसंगइए देवे जेणेव जुहिट्टिले राया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ)

ते काणे अने ते समये हस्तिनापुर नगरभां युधिष्ठिर राजा अने द्रौपदी देवी मडेलनी अगाशी उपर सूता हता. ते पूर्व संगतिक देव न्यां ते युधिष्ठिर राजा अने न्यां ते द्रौपदी देवी हती त्यां आब्यो.

देव्यै 'आसोवणियं' अवस्वापनीं निद्रां 'दलयइ' ददाति सुखमसुप्तां द्रौपदीं गाढनिद्रयाऽऽक्रान्तां कृतवानित्यर्थः । दत्त्वा-गाढनिद्रावतीं कृत्वा द्रौपदीं देवीं गृहीत्वा तथा उत्कृष्टया देवसम्बन्धिन्यागत्या यावत् यत्रैवामरकंका राजधानी यत्रैव पद्मनाभस्य भवनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पद्मनाभस्य भवने 'असोगवणियाए' अशोकवनििकायाम् अशोकवाटिकायां द्रौपदीं देवीं स्थापयति, स्थापयित्वा 'आसोवणिं अवहरइ' अवस्वापनीं निद्रामपहरति, अपहृत्य

दोवईए देवीए ओसोवणियं दलयइ, दलित्ता दोवई देविं गिणहइ, गिणहत्ता तीए उक्किट्टाए जाव जेणेव अमरकंका जेणेव पउमणाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमणाभस्स भवणंसि असोगवणियाए दोवइ देवीं ठवेइ ठावित्ता ओसोवणिं अवहरइ, अवहरित्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया । मए इत्थिणाउराओ दोवई इह हव्वमाणीया, तव असोगवणियाए चिद्धइ, अतोपुरं तुमं जाणिसि त्तिक्कइजामेव दिस्सि पाउब्भूए तामेव दिस्सि पडिगए) वहां आकर उसने द्रौपदी देवी को गाढ निद्रा में सुला दिया, सुलाकर फिर उसने उस द्रौपदी को वहां से उठाया-और उठाकर फिर वह उस उत्कृष्ट देवभवनसंबन्धी गति से चलकर यावत् जहां अमरकंका नगरी और जहां पद्मनाभ राजा का भवन था वहां आया- वहां आकर के उसने पद्मनाभ के भवन में अशोकवाटिका में द्रौपदी देवी को रख दिया । रखकर के फिर उसने उसे गाढ निद्रा से रहित कर

(उवागच्छित्ता दोवईए देवीए ओसोवणियं दलयइ, दलित्ता दोवई देविं गिणहइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्टाए जाव जेणेव अमरकंका जेणेव पउमणाभस्स भवणे-तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पउमणाभस्स भवणंसि असोगवणियाए दोवई देवीं ठवेइ ठावित्ता ओसोवणिं अवहरइ, अवहरित्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी-एसणं देवाणुप्पिया मए इत्थिणाउराओ दोवई इह हव्वमाणीया, तव असोगवणियाए चिद्धइ, अतोपुरं तुमं जाणिसि त्तिक्कइजामेव दिस्सि पाउब्भूए तामेव दिस्सि पडिगए)

त्यां आवीने तेण्णे द्रौपदीने गाढ निद्राभां सुवाडी दीधी, सुवाडीने तेण्णे ते द्रौपदीने त्यांथी उडावी अने उडावीने ते उत्कृष्ट देवलय सं'ग'धी गतिथी आवीने यावत् त्यां अमरकंका नगरी अने त्यां पद्मनाभ राजतुं कामवन छतुं त्यां आये। त्यां आवीने तेण्णे पद्मनाभना लवनभां अशोक-वाटिकाभां द्रौपदी देवीने भूडी दीधी, भूडीने तेण्णे गाढ निद्रा द्वर करी दीधी, गाढ निद्रा द्वर

यत्रैव पद्मनाभस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य एवमवादीत्—एषा खलु हे देवानुप्रिय ! मया हस्तिनापुराद् द्रौपदी इह हव्यमानीता तवाशोकवनिकायां तिष्ठति, अतः परं त्वं जानासि ' इति कृत्वा—उक्त्वा, यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ सू० २५ ॥

मूलम्—तएणं सा दोवई देवी तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी तं भवणं असोगवणियं च अपचचभिजाणमाणी एवं वयासी—नो खल्ल अम्हं एसे सए भवणे णो खल्ल एसा अम्हं सगा असोगवणिया, तं ण णज्जइ णं अंहं केणइ देवेण वा दाणवेणं वा किं पुरिसेणवा महोरगेण वा गंधवेण वा अन्नस्स रण्णो असोगवणियं साहरियत्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ, तएणं से पउमणाभे राया पहाए जाव सव्वालंकार विभूसिए अंतेउरपरियालं संपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छत्ता दोवई देवीं ओहय० जाव झियायमाणीं पासइ पासित्ता एवं वयासी—किण्णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय जाव झियाहि, एवं

दिया—गाढ निद्रा से रहित कर फिर वह वहाँ से जहाँ पद्मनाभ राजा थे वहाँ गया—वहाँ जाकर उसने उनसे ऐसा कहा—हे देवानुप्रिय ! मैं हस्तिनापुर नगर से द्रौपदी को यहाँ ले आया हूँ। वह तुम्हारी अशोक वाटिका में ठहरी है, अतः अब तुम जानो। ऐसा कहकर वह देव जिस दिशा से प्रकट हुआ था—उसी दिशा की और वापिस चला गया। सू- २५

शरीने ते ज्ज्यां पद्मनाभ राजा इता त्यां गथो. त्यां ज्जने तेणु तेभने आ प्रभाणु कहुं के डे देवानुप्रिय ! हस्तिनापुर नगरथी द्रौपदी देवीने हुं अडी लथ आण्यो छुं. ते तमारी अशोक—वाटिकायां छे, जेथी इवे तमे आण्यो. आ प्रभाणु कहीने ते देव जे दिशा तरइथी प्रकट थयो इतो ते जे दिशा तरइ पाछे जतो रह्यो. ॥ सूत्र २५ ॥

खलु तुमं देवाणुप्पिया ! मम पुण्वसंगइएणं देवेणं जंबूद्वी-
वाओ २ भारहाओ वासाओ हत्थिणापुराओ नयराओ जुहिड्ढि-
ल्लस्स रण्णो भवणाओ साहरिया तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया !
ओहयं जाव झियाहि, तुमं मए सच्चिं विपुलाइं भोगभोगाइं
जाव विहराहि, तएणं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं वयासी
एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे वारवइए
णयरीए कणहे णासं वासुदेवे ममप्पियभाउए परिवसइ, तं णं
से छणहं मासाणं मम कूवं नो हव्वमागच्छइ तएणं अहं देवा-
णुप्पिया ! जं तुमं वदसि तस्स आणाओवायवयणाणिद्वेसेचिड्ढि-
स्सामि, तएणं से पउमे दोवईए एयमट्टं पडिसुणित्ता २ दोवइं
देविं कण्णंतेउरे ठवेइ, तएणं सा दोवई देवी छट्टं छट्टेणं अनि-
क्खित्तेणं आयांबिलपरिग्गाहिएणं तवोकम्मणेणं अप्पाणं भावेमाणे
विहरइ ॥ सू० २६ ॥

टीका—‘ तएणं सा ’ इत्यादि । ततः खलु सा द्रौपदी देवी ततो मुहूर्त्तान्तरे
प्रतिबुद्धा=जागरिता सती तद् भवनम् अशोकवनिकां च ‘ अपच्चभिजाणमाणी ’
अप्रत्यभिजानन्ती भवनादिकमपरिचितं जानन्ती एवमवादीत्-नो खलु अस्माक-

—तएणं सा दोवई देवी इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा दोवई देवी) वह द्रौपदी देवी (ताओ
मुहूर्त्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी) ? मुहूर्त्त के बाद जगी सो जग कर
उसने (तं भवणं असोगवणियं च अपच्चभिजाणमाणी एवं वयासी)
उस भवन को एवं उस अशोकवाटिका को अपरिचित जानकर अपने
मन में ऐसा विचार किया—(नो खलु अम्हं एसे सएभवणे, णो खलु

तएणं सा दोवई देवी इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपणी (सा दोवई देवी) ते द्रौपदी देवी (ताओ मुहूर्त्तरस
पडिबुद्धा समाणी) ओक मुहूर्त्त पणी लगी अने लगीने तेणे (तं भवणं
असोगवाणियं च अपच्चभिजाणमाणी एवं वयासी) ते लवन अने ते अथोड
वाटिकाने अपरिचित लणीने चोताना भनभं आ लतने विचार करे ३—

मेतद् भवनं नो खलु एषाऽस्माकं 'सगा' स्वका=स्वकीया, अशोकवनिका, तद् न ज्ञायते खलु-अहं केनापि देवेन वा दानवेन वा किं पुरुषेण वा किन्नरेण वा महोरगेण वा गन्धर्वेण वा अन्यस्य राज्ञोऽशोकवनिकायां 'साहरिया' संहृता-आनीताऽस्मि' इति कृत्वा=इति विचार्य, अपहतमनःसंकल्पा=अनिष्टयोगेन भग्न-मनोरथा विषादमृगतेत्यर्थः यावद् ध्यायति=आर्तध्यानं करोति ।

ततः खलु पद्मनाभो राजा स्नातो यावत् सर्वालंकारविभूषितोऽन्तःपुरपरि-
वारसंपरिवृतो यज्ञैवाशोकवनिका यज्ञैव द्रौपदी देवी, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य

एसा अम्हं सगा असोगवणिया, तं ण णज्जइ, णं अहं केणई देवेणवा दाणवेण वा किं पुरिसेण वा किन्नरेण वा महोरगेण वा गंधर्वेण वा अन्नस्स रण्णो असोगवणियं साहरियत्ति कइहु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ) यह मेरा निज का भवन नहीं है, यह मेरी निज की अशोक वाटिका नहीं है। तो पता नहीं पड़ता क्या मैं किसी दूसरे राजा की अशोकवाटिका में किसी देव, दानव, किंपुरुष, किन्नर महो-
रग अथवा, गंधर्व के द्वारा हरण कर लाई गई हूँ। इस प्रकार के विचार से उस का मनः संकल्प अपहत हो गया-अनिष्ट के योग से उस का मनोरथ भग्न हो गया और वह खेदखिन्न हो गई यावत् आर्तध्यान करने लगी। (तएणं से पउमणाभे राया ण्हाए जाव सव्वालंकारविभू-
सिए अंतेउरपरियालं संउपिबुडे, जेणेव असोगवणिया जेणेव दोवई देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवई देवीं ओहय० जाव झिया-

(नो खलु अम्हं एसे सएसवणे णो खलु एसा अम्हं सगा असोगवणिया, तं ण णज्जइ णं अहं केणई देवेण वा दाणवेण वा किंपुरिसेण वा किन्नरेण वा महो-
रगेण वा गंधर्वेण वा अन्नस्स रण्णो असोगवणियं साहरियत्ति कइहु ओहयमण संकप्पा जाव झियायइ)

आ भाइं भावन नथी, आ भारी अशोक वाटिका नथी. क'ई ऋषर पउती नथी, शुं हुं णील कोई सान्नी अशोक वाटिकाभां कोई देव, दानव, किंपुरुष किन्नर, महोरग अथवा तो गंधर्व पडे अपहृत थधने लई ज्वाभां आवी छुं. आ लतना विचारोथी तेनुं मन उदास थध गयुं, अनिष्टना योगथी तेने मनोरथ लभ थध गयो अने ते जेह-भिन्न थध गध यावत् आर्तध्यान करवा लागी.

(तएणं से पउमणाभे राया ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए अंतेउरपरियालं संपरिवुडे, जेणेव असोगवणिया जेणेव दोवई देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवाग-

द्रौपदीं देवीमपहतमनःसंकल्पां यावद् ध्यायन्तीं=आर्तध्यानं कुर्वतीं पश्यति दृष्ट्वा एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अत्रादीत्-हे देवानुमिये । किं खलु त्वं 'ओह्य० जाव झियाहि' अपहतमनः संकल्पा यावद् ध्यायसि=विपीदसि एवं खलु त्वं हे देवानुमिये । मम पूर्वसंगतिकेन देवेन जम्बूद्वीपाद् द्वीपाद् भारताद् वषाद् हस्तिनापुराद् नगराद् युधिष्ठिरस्य राज्ञो भवनात् संहत्वा=अपहत्वाऽसि, ततस्तस्माद् मा

यमाणी पासह, पासित्ता एवं बयासी, किष्णं तुमं देवाणुप्पिया ! मम पुण्वसंगइएणं देवेणं जंबूद्वीवाओ २ भारद्वाओ वासाओ हत्थिणापुराओ नयराओ जुहिष्ठिरस्स रण्णो भवणाओ साहरिया, तं माणं तुमं देवाणुप्पिया ! ओह्य० जाव झियाहि तुमं मए सद्धिं विपुलाइं भोग-भोगाईं जाव विहराहि) इसके बाद वह पद्मनाभ राजा नहा धोकर यावत् सर्वालंकारो से विभूषित हो अपने अंतःपुर परिवार से संपरिभृत होकर जहां वह अशोक वाटिका थी-और उसमें भी जहां वह द्रौपदी देवी बैठी थी-वहां आया-वहां आकर के उसने द्रौपदी देवी से अपहत मनः संकल्पवाली यावत् आर्त्तध्यान करती हुई देखकर इस प्रकार कहा-हे देवानुमिये ! तुम क्यों अपहत मनः संकल्प होकर यावत् आर्त्तध्यान कर रही हो-खेद खिन्न हो रही हो तुम यहां हे देवानुमिये ! मेरे पूर्व भव के मित्र देव के द्वारा जंबूद्वीप नाम के द्वीप से भारतवर्ष के हस्तिनापुर नगर से युधिष्ठिर राजा के भवन से हरण कर ले आईं

च्छित्ता दोवई देवीं ओह्य० जाव झियायमाणी पासइ, पासित्ता एवं बयासी किष्णं तुमं देवाणुप्पिया ! ममपुण्वसंगइएणं देवेणं जंबूद्विवाओ २ भारद्वाओ वासाओ हत्थिणापुराओ नयराओ जुहिष्ठिरस्स रण्णो मवणाओ साहरिया, तं माणं तुमं देवाणुप्पिया ! ओह्य० जाव झियाहि तुमं मए सद्धिं विपुलाइं भोग-भोगाईं जाव विहराहि)

त्यारपथी ते पद्मनाभराज स्नान करीने यावत् सर्वालंकारोधी विभूषित यधने पोताना रणुवास-परिवारने साथे लधने न्यां अशोक वाटिका छती अने तेभां पणु न्यां ते द्रौपदी देवी जेही छती त्यां आये। त्यां आवीने तेणु द्रौपदी देवीने अपहतमनः संकल्पवाणी यावत् आर्त्तध्यान करती जेधने आ प्रभाणु कळुं के छे देवानुमिये ! तमे शा भाटे अपहतमनः संकल्प यधने यावत् आर्त्तध्यान करी रही छे ? जेह-भिन्न यध रह्या छे ? छे देवानुमिये ! भारा पूर्वभवना मित्र देव वडे तमे जंबूद्वीप नामना द्वीपना, भारत वर्षना हस्तिनापुर नगरना युधिष्ठिर राजाना भवनथी अपहृत यधने अर्थां लावनामं

खलु त्वं हे देवानुप्रिये ! अपहतमनःसंकल्पा यावद् ध्याय, आर्तध्यानं मा कुरु त्वं मया सार्धं विपुलान् भोगभोगान् यावद् भुञ्जाना विहर=मदीयभासादे तिष्ठ' इति ।

ततः खलु सा द्रौपदी देवी पद्मनाभमेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे द्वारवत्यां नगर्यां कृष्णो नाम वासुदेवो मम प्रियभातृकः=ममप्रियस्य भर्तुर्भ्राता परिव्रसति, तद् यदि खलु स पण्णां मासानां मध्ये 'मम' मां 'कूर्वं' देशीशब्दोऽयम्, अन्वेषयितुं प्रहीतुं वा नो शीघ्रमागच्छति-ततः खलु

गई हो । इमलिये हे देवानुप्रिये ! तुम आपहतमनःसंकल्प बनकर यावत् आर्तध्यान मत करो । तुम तो अब मेरे साथ विपुल काजभोगों को भोगती हुई मेरे प्रासाद में रहो । (तएणं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबूद्वीपे दीवे भारहे वासे वारवइए णयरीए कण्णे णामं वासुदेवे ममप्पियभाउए परिवसइ, तं जइणं से छण्हं मासाणं मम कूर्वं णो हव्व मागच्छइ, तएणं अहं देवाणुप्पिया ! जं तुमं वदसि तस्स आणाओवायवयणणिहेसे चिद्धिस्सामि तएणं से पउमे दोवईए एयमइं पडिस्सुणेह २ दोवईं देवीं कणणंतेउरे ठवेइ, तएणं सा दोवईं देवी छट्ठं छट्ठेणं अणिविस्सत्तेणं आर्यंनिलपरिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) इसके बाद उस द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय ! सुनो-जंबूद्वीप नाम के द्वीप में भारतवर्षमें द्वारावती नगरी में कृष्ण वासुदेव मेरे प्रिय पतिके भ्राता रहते हैं । वे यदि छह मासके भीतर मुझे अन्वेषण करनेके लिये या

आवी छे अथी छे देवानुप्रिये ! तमे अपहतमनः संकल्पा धधने यावत् आर्तध्यान न करो तमे अनुप्यस्य संधंधी काम लोणे लोगतं भारा भडेसमां रडे।

(तएणं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबू द्वीपे दीवे, भारहे वासे वारवइए णयरीए कण्णे णामं वासुदेवे मम प्रियभाउए परिवसइ, तं जइणं से छण्हं मासाणं मम कूर्वं णो हव्व मागच्छइ, तएणं अहं देवाणुप्पिया ! जं तुमं वदसि तस्स आणाओवायवयणणिहेसे चिद्धिस्सामि तएणं से पउमे दोवईए एयमइं पडिस्सुणिच्चा २ दोवईं देवीं कणणंतेउरे ठवेइ, तएणं सा दोवईं देवी छट्ठं छट्ठेणं अणिविस्सत्तेणं आर्यंनिलपरिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावे माणे विहरइ)

त्यारपथी द्रौपदी देवीञ्च पद्मनाभने आ प्रभाञ्छे कहुं छे देवानुप्रिय ! सांलणे, जंबूद्वीप नामना द्वीपमां भारत वर्षमां द्वारावती नगरीमां कृष्ण-वासुदेव भारा प्रिय पतिना सार्धं रडे छे. तेञ्चो छ भद्वीनानी अंहर. भारी तपास

अहं हे देवानुप्रिय ! यत्-त्वं वदसि=वदिष्यसि ' तस्स ' तत्र ' आणाओवायव्य-
णणिहेसे ' आज्ञावपातवचननिर्देशे स्थास्यामि, तवाज्ञाकारिणी वशवर्तिनी भवि-
ष्यामीत्यर्थः, आज्ञा-अवश्य विधेयतया आदेशः, उपपातवचनं सेवावचनं, निर्देशः-
कार्याणि प्रति प्रश्नेकृते यन्निपतार्थमुत्तरम्, एषां समाहारद्वन्द्वः तत्र, ततः खलु
स पद्मनाभो राजा द्रौपद्या एतमर्थं प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य द्रौपदीं देवीं ' कर्णतेउरे'
कन्यान्तः पुरे स्थापयति, ततः खलु सा द्रौपदीदेवी ' छट्टं छट्टेणं ' षष्ठपठेन
षष्ठभक्तानन्तरं पुनः षष्ठभक्तेन, ' अनिक्वि वत्तेणं ' अनिक्षिप्तेन=विरामरहितेन
अन्तररहितेनैत्यर्थः, ' आर्यंबिलपरिगृहीणं ' आर्यंबिलपरिगृहीतेन तपः कर्मणा
आत्मानं भावयन्ती विहरति ॥ सू० २६ ॥

मूलम्-तएणं से जुहुट्टिल्ले रायातओ सुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धे
समाणे दोवइं देविंपासे अपासमाणो सयणिज्जाओ उट्टेइ उट्टित्ता
दोवईए देवीए सव्वओ समंता भग्गणगवेसणं करेइ करित्ता
दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्ति वा अलभमाणे
जेणेव पंडुराया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पंडुं रायं एवंपयासी
एवं-खलु ताओ ! ममं आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ

छेने के लिये यहां जल्दी से नहीं आयेगे तो उसके बाद हे देवानुप्रिय !
जैसा तुम कहोगे वैसा मैं करूंगी-तुम्हारी आज्ञा कारिणी वशवर्तिनी
बन जाऊंगी। ऐसा अर्थ " आणाओवायव्यणणिहेसे " इन पदों का
निकलता है। इसके बाद पद्मनाभ राजा ने द्रौपदी के इस कथन को
स्वीकार करके उसे कन्या के अन्तः पुर में रखदिया। वहां वह द्रौपदी
देवी आर्यंबिल परिगृहीत छट्ट छट्ट की अन्तर रहित तपस्या से अपने
आप को भावित करती हुई रहने लगी। सू० २६

क़रतां क़रतां अर्द्धीं नहिं आवी शके तो त्पारपछी डे देवानुप्रिय ! तमे जेम
क़डेशो तेभ करीश, हुं तभारी आज्ञाकारिणी वशवर्तिनी भनी ज़धश. " अणा
ओवायव्यणणिहेसे " आ पदोथी आ ज़तनेो अर्थ नीक़णे छे. त्पारपछी
पद्मनाभ राजाजे द्रौपदीना ते क़थनने स्वीकारी लीधुं अने तेने क़थाना अन्तः
पुरभां भूकी दीधी. त्यां ते द्रौपदी देवी आर्यंबिल परिगृहीत छट्ट छट्टनी अन्तर
रहित तपस्यार्थी भोतानी ज़तनेे भावित करती रहेवा लागी. ॥ सू० २६ ॥

दोवइ देवी ण णज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किन्नरेण
 वा किं पुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा णीया वा
 अवक्खित्ता वा ?, इच्छामि णं ताओ ! दोवइए देवीए सब्बओ
 समंता मग्गणगवेसणं कयं, तएणं से पंडुराया कोडुंबियपुरिसे
 सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया !
 हत्थिणाउरे नयरे सिंघाडगतिचउक्कच्चरमहापहपहेसु महयार
 सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया !
 जुहिट्ठिहस्स रणो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवइ
 देवी ण णज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किन्नरेण वा किं-
 पुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा नीया वा
 अवक्खित्ता वा, तं जो णं देवाणुप्पिया ! दोवइए देवीए सुइं
 वा जाव पवित्तिं वा परिकहेइ तस्स णं पंडुराया विउलं अत्थ-
 संपयाणं दाणं दलयइ त्तिकट्टु घोसणं घोसावेहर एयमाणत्तियं
 पञ्चाप्पिणह, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति,
 तएणं से पंडुराया दोवइए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव अलभ-
 माणे कौंतीं देवीं सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं
 तुमं देवाणुप्पिया ! बारवइं णयरिं कणहस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं
 णिवेदेहि कणह णं परं वासुदेवे दोवइए मग्गणगवेसणं करेज्जा
 अन्नहा न नज्जइ दोवइए देवीए सुतीं वा खुतीं वा पवत्तीं वा
 उवलभेज्जा, तएणं सा कौंतीं देवीं पंडुरण्णा एवं वुत्ता समाणी
 जाव पडिसुणेइ पडिसुणित्ता पहाया कयवलिकम्मा हत्थिखंध-

वरगया हृत्थिणाउरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ णिग्गच्छित्ता कुरु-
 जणवये मज्झंमज्झेणं जेणेव सुरट्टजणवए जेणेव बारवई णयरी
 जेणेव अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता हृत्थिखंधाओ
 पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं
 वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! जेणेव बारवई णयरी
 तेणेव अणुपविसह, अणुपविसित्ता कण्हं वासुदेवं करयल० एवं
 वयह-एवं खल्लु सामी ! तुब्भं पिउच्छा कौंती देवी हृत्थिणा-
 उराओ नयराओ इह हव्वमागया तुब्भं दंसणं कंखइ, तएणं
 ते 'कोडुंबियपुरिसा जाव कहेंति, तएणं कणहे वासुदेवे कोडुंबि-
 यपुरिसाणं अंतिए सोच्चा णिसम्म हृत्थिखंधवरगए हयगय
 बारवईए य मज्झंमज्झेणं जेणेव कौंती देवी तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता हृत्थिखंधाओ पच्चोरुह पच्चोरुहित्ता कौंतीए देवीए
 पायग्गहणं करेइ करित्ता कौंतीए देवीए सद्धिं हृत्थिखंधं दुरुहइ
 दुरुहित्ता वारावइए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव
 उवागच्छइ उवागच्छित्ता सयं गिहं अणुपविसइ । तएणं से
 कणहे वासुदेवे कौंती देविं पहायं कयबालिकम्मं जिमियभुत्तत्त-
 रागयं जाव सुहासणवरगयं एवं वयासी संदिंसउ णं पिउच्छा !
 किमागन्नणपओयणं ?, तएणं सा कौंती देवी कण्हं वासुदेवं
 एवं वयासी-एवं खल्लु पुत्ता ! हृत्थिणाउरे णयरे-जुहिद्धिस्स
 आगासतले सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण गज्जइ केणइ
 अवहिया जाव अवक्खित्ता वा, तं इच्छामि णं पुत्ता ! दोवईए

देवीए मगगणगवेसणं करित्तए, तएणं से कणहे वासुदेवे कौती पिउच्छि एवं वयासी-जं णवरं पिउच्छा ! दोवइए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव लभामि तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ अद्धभरहाओ वा समंतओ दोवइं साहत्थि उवणेमित्तिकहु कौती पिउत्थि सक्कारेइ समाणेइ जाव पडिविसजेइ, तएणं सा कौती देवी कणहेणं वासुदेवेणं पडिविसज्जिया समाणी जामेव दिसिं पाउ० तामेव दिसिं पडिगया ॥ सू० २५ ॥

टीका— 'तएणं से' इत्यादि । ततः खलु स युधिष्ठिरो राजा ततो मुहूर्ता-न्तरे प्रतिबुद्धः सन् द्रौपदीं देवीं पार्श्वे 'अपासमाणो' अपश्यन्=अनवलोकयन् शयनीयादुच्छिष्टति, उत्थाय द्रौपद्या देव्याः सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेषणं करोति, कृत्वा द्रोपद्या देव्या 'कत्थइ' कुत्रापि 'सुइं' श्रुतिं सामान्यवृत्तान्तं वा, 'सुइं' श्रुतिं छिक्कादि शब्दं वा 'पवत्ति' मद्युत्तिं वा विशेषवृत्तान्तं अलभमानो

तएणं से जुहिट्ठिल्ले राया इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से जुहिट्ठिल्ले राया) वे युधिष्ठिर राजा (तओ मुहुत्तरस्स) एक मुहूर्त्त के बाद (पडिवुद्धे समाणे) जगे-और जगकर उन्होंने (दोवई देवीं) द्रौपदी देवी को (पासे अपासमाणो सयणि-ज्जाओ उट्टेइ, उट्टित्ता दोवईए सव्वओ समंता मगगणगवेसणं करेइ) अपने पास जब नहीं देखा तो वे अपनी शय्या से उठे और लठकर द्रौपदी देवीकी सबओरसे उन्होंने मार्गणा गवेषणाकी (करित्ता दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्ति वा अलभमाणे जेणेव पंडुराया

'तएणं से जुहिट्ठिल्ले राया' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपथी (से जुहिट्ठिल्ले राया) ते युधिष्ठिर शल (तओ मुहुत्तरस्स) अेक मुहुत्तं भाः (पडिवुद्धे समाणे) अग्या. अने अागीने तेभण्णे (दोवई देवीं) द्रौपदी देवीने,

(पासे अपासमाणो सयणिज्जाओ उट्टेइ, उट्टित्ता दोवईए सव्वओ समंता मगगणगवेसणं करेइ)

न्त्यारे पोतानी पासे अेधं नहि त्यारे पोतानी शय्या उपरथी अिला थया अने अिला थयने द्रौपदी देवीनी अागेर भागण्णुा गवेषण्णुा करी.

(करित्ता दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्ति वा अलभमाणे

यजैव पाण्डुराजा तजैवोपागच्छति, उपागत्य पाण्डुं राजानमेवमवादीत्—हे तात ! एवं खलु ममाकाशतले प्रासादाट्टालिकोपरि 'सुहृपसुत्तस्स' सुखप्रसुप्तस्य पार्श्वोद् द्रौपदी देवी 'ण गज्जइ' न ज्ञायते केनापि देवेन वा दानवेन वा किन्नरेण वा किंपुरुषेण वा गन्धर्वेण वा हता वा नीता=अन्यत्र प्रापिता वा अवस्निप्ता वा= ? कूपगर्तादौ कुचित् पातिता वा इत्यर्थः, तत्-तस्माद् इच्छामि खलु हे तातः ! द्रौपद्या देव्याः सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेषणं कर्तुम् ।

तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुरायं एवं वयासी एवं खलु ताओ ममं आगासतलगंसि सुहृपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण गज्जइ, केणइ देवेण वा दाणवेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधर्वेण वा हिया वा णीया वा अवक्खित्ता वा) मार्गणा गवेषणा करके जब उसने द्रौपदी देवी की कहीं भी शोध, सामान्य खबर को उस के चिह्नस्वरूप छिन्ना आदि के शब्द को, अथवा प्रवृत्ति-विशेष वृत्तान्त को नहीं पाया तब वे जहाँ पांडुराजा थे वहाँ गये-वहाँ जाकर के उन्होंने पांडुराजा से इस प्रकार कहा-हे तात ! जब मैं प्रासाद की अट्टालिकाके ऊपर सुखसे सो रहा था-तब मेरे पाससे न मालूम द्रौपदी देवी को किसी देवने, दानवने, किन्नरने, किंपुरुषने, महोरगने, गंधर्वने हरण कर कहां रख दिया है।-या उसे किसी कुएं में या खड्डे में डाल दिया है (इच्छामि णं ताओ दोवईए देवीए सव्वओ समंता मगगण गवेषणं कयं) इस लिए हे तात ! मैं द्रौपदी देवी की सब तरफ से

जेणेव पंडुराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुरायं एवं वयासी एवं खलु ताओ ममं आगासतलगंसि सुहृपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण गज्जइ, केणइ देवेण वा दाणवेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधर्वेण वा हिया वा णीया वा अवक्खित्ता वा)

मार्गणा गवेषणा कथां भाव पणु न्यारे तेमण्णे द्रौपदी देवीनी केधपणु रीते, सामान्य अणर अने चिह्न स्वइप छीक वगेरे शब्दने अथवा तो प्रवृत्ति-विशेष वृत्तान्त-नी पणु णणु थर्ध नहि त्यारे तेज्जे न्यां पांडुराज्ज हता त्यां गया, त्यां न्धने तेमण्णे पांडुराज्जने आ प्रमाणे कहुं के छे तात ! न्यारे हुं महेलनी अगाशीमां सूध रद्धो हतो त्यारे मारी पासे न ण्ण्णे केण्णे द्रौपदी देवीतुं केध देवे, दानवे के किन्नरे के किंपुरुषे के महोरगे के गंधवे उरखु कथुं छे. अथवा तो द्रौपदी देवीने केधथे क्वाभां के आशाभां नाणी दीधी छे. (इच्छामि णं ताओ दोवईए देवीए सव्वओ समंता मगगण-

ततः खलु स पाण्डुराजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा एवमवा-
दीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! हस्तिनापुरे नगरे शृङ्गाटकत्रिकचतुष्क-
चत्वरमहापथपथेषु महता महता शब्देनोद्धोषयन्तः एवं वदत-एवं खलु हे देवानु-
प्रियाः ! युधिष्ठिरस्य राज्ञ आकाशतलके सुखप्रसुप्तस्य पार्श्वे द्रौपदी देवी न
ज्ञायते केनापि देवेन वा दानवेन वा किं पुरुषेण वा किन्नरेण वा महोरगेण वा

और सब प्रकार से मार्गणा और गवेषणा करना चाहता हूँ । (तए गं
से पंडुराया कोडुंवियपुरिसे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी गच्छहाणं
तुम्हे देवाणुप्रिया ! हत्थिगाउरे नयरे, सिंघाडगतीय चउक्कचत्वर महा
पहपहेसु महया २ सदेणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयासी-एवं खलु देवा-
णुप्रिया ! जुहिद्विल्लस रणो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस पासाओ
दोवई देवी ण णज्जह, केणह, देवेण वा दानवेण वा किन्नरेण वा किंपुरि-
सेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा नीया वा अवक्खित्ता वा)
इस बात को सुनकर के उन पांडुराजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया
और बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम लोग हस्तिनापुर
नगर में जाओ-और वहाँ के शृंगटाक, त्रिक चतुष्क, चत्वर, महापथ
इन समस्त मार्गों में बड़े जोर २ से ऐसी घोषणा वार २ करो कि हे
देवाणुप्रियों ! सुनो प्रासादकी अड्डालिका पर सुखपूर्वक सोये हुए युधिष्ठिर
राजा के पास से न मालूम किसी देवने, या दानवने, किसी, किन्नरने,

गवेषणं कयं) अथवा भाटे डे तात । हुं आभेर अथी रीने द्रौपदी देवीनी
भाग्ये आने गवेषणा करवा धंछुं छुं.

(तए गं से पंडुराया कोडुंवियपुरिसे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी गच्छह गं
तुम्हे देवाणुप्रिया ! हत्थिणाउरे नयरे, सिंघाडगतीयचउक्कचत्वरमहापह-
पहेसु महया २ सदेणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्रिया !
जुहिद्विल्लस रणो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस पासाओ दोवई देवी ण
णज्जह, केणह देवेण वा दानवेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा
गंधव्वेण वा हिया वा नीया वा अवक्खित्ता वा)

आ वातने सांखणीने पांडु राज्ञे कौटुम्बिक पुरुषोने जोलाण्या अने
जोदावीने तेभने आ प्रभाणु कळुं के डे देवानुप्रियो ! तमे वोडेो हस्तिनापुर
नगरभां लब्धो अने त्यांना शृंगटाक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ आ अथा
भाग्येभां भोटा साडे आ लतनी घोषणा करे के डे देवानुप्रियो ! सांखणो,
भडेवनी अगाशी उपर सुणेथी रूता युधिष्ठिर राजनी पांसेथी न लब्धे कोड
हेवे के दानवे अथवा तो कोड किन्नरे के डिंपुरुषे अथवा कोड भोरगे के

गन्धर्वेण वा हता वा नीता वा अवक्षिप्ता वा, तत्=तस्माद् यः खलु हे देवानु-
प्रियाः ! द्रौपद्या देव्याः श्रुतिं वा क्षुतिं वा प्रवृत्तिं वा परिक्रमयति, तस्य खलु
पाण्डु राजा विपुलमर्थसंभदानं दानं ददाति=इति कृत्वा-इत्युक्त्वा घोषणां घोष-
यत, घोषयित्वा एतामन्नप्तिकां प्रत्यर्पयत । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषास्त-
थैव घोषणां कृत्वा यावदाज्ञां प्रत्यर्पयन्ति=हे स्वामिन् ! भवदाज्ञया घोषणा
कृताऽस्माभिरिति निवेदयन्ति ।

या किसी किंपुरुष ने या किसी महोरग ने या किसी गंधर्व ने द्रौपदी
देवी को हरण कर लिया है-या हरणकर उसे कहीं रख दिया है अथवा
किसी कुएँ में या खड्डे में डाल दिया है (तं जो णं देवाणुप्पिया । दोव-
ईए देवीए सुइं वा जाव पवत्ति वा परिकहेइ, तस्स णं पंडुराया विउलं
अत्थसंपयाणं दाणं दलयइ, त्ति कट्ठु घोसणं घोसावेह २ एयमाणत्तियं
पच्चप्पिणह, तएणं ते कौडुंविद्य पुरिसा जाव पच्चप्पिणंति-तएणं से
पंडुराया दोवईए देवीए कत्थइ सुइंवा जाव अलभमाणे कौंतीं देवीं
सहावेइ) तो हे देवानुप्रियो ! जो कोई भी मनुष्य द्रौपदी देवी की शोध
करेगा यावत् उसके विशेषवृत्तान्त को लाकर देगा-हम से आकर
कहेगा, उसको पांडुराजा बहुत अधिक मात्रा में अर्थ संप्रदान-दान-
देगा । इस प्रकार की तुम घोसषणा करो, और घोषणा कर के फिर
हमें इसकी पीछे खबर दो । इस प्रकार राजा की आज्ञा पाकर उन
कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकारकी घोषणा करके इस की खबर राजाके

गंधर्वे द्रौपदी देवीतुं अपहरणु कथुं छे डे डरणु करीने तेने कथांके भूडी हीधी
छे डे डेअ डूवाभां अथवा तो भाडाभां नापी हीधी छे.

(तं जो णं देवाणुप्पिया । दोवईए देवीए सुइं वा जाव पवत्ति वा परिकहेइ,
तस्सणं पंडुराया विउलं अत्थसंपयाणं दाणं दलयइ, त्ति कट्ठु घोसणं घोसावेह २
एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह, तएणं ते कौडुंविद्यपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति-तएणं से
पंडुराया दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव अलभमाणे कौंतीं देवीं सहावेइ)

तो हे देवानुप्रियो ! हे डेअ पणु साधुस द्रौपदी देवीनी शोध करेये यावत्
तेना विधे सविशेष सभाचार लण्णीने अभने भभर आपथे, अभने कडेथे,
तेने पांडु राजा भूषण व द्रव्य-धन आपथे, आ रीते तथे घोषणु करीने अभने
घोषणु थध ववानी अभने भभर पणु आपो. आ रीते राजनी आज्ञा
सांलण्णीने ते कौटुंमिक पुरुषोअे आ प्रभाअे व घोषणु करीने तेनी भभर
राजने आपी. त्थारपथी त्थारि पांडु राजाअे द्रौपदी देवीनी डेअपणु स्थाने

ततः खलु स पाण्डू राजा द्रौपद्या देव्याः कुत्रापि श्रुतिं वा यावत् प्रवृत्तिम्
अलभमानः कुन्तीं देवीं शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं हे
देवानुप्रिये ! द्वारावतीं नगरीं कृष्णस्य वासुदेवस्य एतमर्थं निवेदय—सुखप्रसुप्ता
द्रौपदी केनाऽपि हता नीता कूपादौ प्रशिक्षा वेति न ज्ञायते इत्येतद्रूपं वृत्तान्तं कथय,
कृष्णः खलु परं वासुदेवो द्रौपद्या मार्गणगवेषणं कुर्यात् अन्यथा न ज्ञायते द्रौपद्या
देव्याः श्रुतिं वा प्रवृत्तिं वा क्षुत्तिं वा उपलभेत ।

पास भेजदी ! इसके बाद जब पांडुराजा ने द्रौपदी देवी की कहीं पर
भी श्रुती यावत् प्रवृत्ति नहीं पाई तब उन्होंने ने कुन्ति देवी को बुलाया—
(सद्वाचि० ए० वयासी) और बुलावार उन से ऐसा कहा—(गच्छहृणं तुमं
देवानुप्पिया ! वारवईं नयरिं ऋणहस्स वासुदेवस्स एयमहं णिवेदेहि,
कण्हेणं परं वासुदेवे दोवईए मगगणगवेसणं करेज्जा—अन्नहा न नज्जई,
दोवईए देवीए सुतीं वा खुतीं वा पवत्तीं वा उवलभेज्जा) हे देवानुप्रि-
यो ! तुम द्वारावती नगरी में कृष्ण वायुदेव के पास जाओ—और उनसे
इस अर्थका निवेदन करो कि सुख प्रसुप्त द्रौपदी को किसी ने हरलिया
है। हरण कर उसे कहीं पहुँचा दिया है या किसी कुँए में या खड्डे में
डाल दिया है। पता नहीं पड़ता है। वे कृष्ण वासुदेव अवश्य २ ही
द्रौपदी की मार्गणा गवेषणा करेंगे। नहीं तो द्रौपदी देवी की श्रुति, क्षुत्ति
अथवा प्रवृत्ति हमें प्राप्त हो जावेगी—यह नहीं कहा जा सकता है।

श्रुति यावत् प्रवृत्ति भेजवी नहि त्थारे तेमण्णे कुंती देवीने ज्ञेयावी. (सद्वा
चि० ए० वयासी) अने ज्ञेयावीने तेमने आ प्रभाण्णे कथं—

(गच्छहृणं तुमं देवानुप्पिया ! वारवईं नयरिं ऋणहस्स वासुदेवस्स एयमहं
णिवेदेहि, कण्हेणं परं वासुदेवे दोवईए मगगणगवेसणं करेज्जा अन्नहा न नज्जई,
दोवईए देवीए सुतीं वा खुतीं वा पवत्तीं वा उवलभेज्जा)

हे देवानुप्रिये ! तमे द्वारावती नगरीमां कृष्णवासुदेवनी पंसे ज्ञेया
अने तेमने आ प्रभाण्णे विनंती करे के सुभथी सुतेवी द्रौपदीतुं केअजे
हरण करी दीधुं छे. हरण करीने तेने कथांठे भूकी दीधी छे अथवा तो केअ
भूवामां के भाडांमां नाथी दीधी छे. न ज्ञेयां शुं थथ गथुं छे ? कृष्णवासुदेव
मने जानी छे के ज्ञेयास द्रौपदी देवीनी मार्गणा गवेषणा करेशे नहिंतर द्रौपदी
देवीनी श्रुति, क्षुत्ति अथवा प्रवृत्तिनी ज्ञेया अमने थशे जेवी शक्यता ज्ञेयाती नथी.

ततः खलु सा कुन्ती देवी पाण्डुना राज्ञा एवमुक्ता सती यावत् प्रतिश्रुणोति= पाण्डुव्रतस्याज्ञां स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य-स्वीकृत्य स्नाता कृतबलिकर्मा हस्तिस्कन्ध-वरगता हस्तिनापुरस्य मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य कुरुजनपदस्य=कुरुनाम-कस्य देशस्य मध्यमध्येन यत्रैव सौराष्ट्रजनपदः, यत्रैव द्वाारवती नगरी, यत्रैवाग्नी-द्यानं=यत्रान्यस्थानादागतानां स्थित्यर्थमावासो विद्यते तादृशं वहिः प्रदेशवर्त्युपव-नम्, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य हस्तिस्कन्धात् प्रत्यवरोहति=प्रत्यवतरति, प्रत्य-वरुह्य कौटुम्बिकपुरूपान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु युयं हे

(तएणं सा कौंती देवी पंडुरण्णा एवं वुत्ता समाणी जाव पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता, णहाया कयबलिकम्मा हत्थिखंधवरगया हत्थिणाउरं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ णिगच्छित्ता कुरुजणवयं मज्झं मज्झेणं जेणेव सुरट्ट जणवए जेणेव बारवई णयरी जेणेव अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ उवा-गच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता कोडुंविचपुरिसे सदा-वेइ, सदावित्ता एवं वयासी) इस के बाद पांडुराजा द्वारा इस प्रकार कही गई कुन्ती देवी ने पांडुराजा की आज्ञा को स्वीकार कर लिया-और स्वीकार कर के उसने स्नान क्रिया-काक आदि पक्षियों के लिये अन्न देने रूप बलि कर्म किया। बाद में वह हाथी के ऊपर बैठकर हस्तिनापुर नगर के बीच से होकर निकली -निकलकर वह कुरुदेश के बीच से होती हुई जहाँ सौराष्ट्र जनपद था और उसमें भी जहाँ द्वाारावती नगरी थी-वहाँ पर भी जहाँ वह अग्रउद्यान था कि जिसमें बाहरसे आये हुए पथिक विश्राम के लिये ठहर जाते थे-वहाँ गई। वहाँ जाकर

(तए णं सा कौंती देवी पंडुरण्णा एवं वुत्ता समाणी जाव पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता, णहाया कयबलिकम्मा हत्थिखंधवरगया हत्थिणाउरं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता कुरुजणवयं मज्झं मज्झेणं जेणेव सुरट्टजणवए जेणेव बारवई णयरी जेणेव अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोडुंविचपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी)
त्यारपछी पांडुराज्ज वडे आ प्रभाए आजापित थयेदी कुंती देवीजे पांडुराज्जनी आज्ञाने स्वीकारी लीधी अने स्वीकारीने तेणे स्नान क्युं. डागडा वजेरे पक्षीआने अन्नलाग अर्पाने अदिकर्म क्युं. त्यारपछी ते हाथी उपर सवार थधने हस्तिनापुर नगरनी वच्ये थधने नीकणी. नीकणीने ते कुडेशनी वच्ये थधने न्यां सौराष्ट्र जनपद हतुं अने तेमां पणु न्यां अथ उद्यान हतुं-डे नेमां अहारथी आपनाश पथिके विश्राम भाटे शकाता हता-तेमां

देवानुप्रियाः । यत्रैव द्वारवती नगरी तत्रैवानुप्रविशत, अनुप्रविश्य कृष्णं वासुदेवं करतलपरिगृहीतदशनखं शिर आवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवं वदत एवं खलु हे स्वामिन् ! युष्माकं पितृष्वसा कुन्ती देवी हस्तिनापुराद् नगराद् इह हव्यमागता युष्माकं दर्शनं काङ्क्षति । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषा यावत् कथयन्ति—कृष्ण-वासुदेवस्य समीपे कुन्तीकथितं वचनं निवेदयन्तीत्यर्थः । ततः खलु कृष्णो वासु-
वह हाथी से नीचे उतरती और उतर कर के उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया— बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—(गच्छह णं तुव्भे देवाणु-
प्पिया ! जेणेव बारवईणयरी, तेणेव अणुपविसह, अणुपविसित्ता कण्हं वासुदेवं करयल० एवं वयह, एवं खलु सामी ! तुव्भं पिउच्छा कौंती देवी हत्थिणाउराओ नयराओ इह हव्वमागया,—तुव्भं दंसणं कंखइ, तएणं ते कोडुंविद्य पुरिसाणं अंतिए सोच्चा गिसम्म हत्थिखंधवरगए हयगयवारवईए य मज्झं मज्झेणं जेणेव कौंती देवी—तेणेव उवागच्छइ) हे देवानुप्रियों ! तुम द्वारावती नगरी में जाओ—वहां जाकर कृष्ण वासुदेव को दोनों हाथोंकी अंजलि बनाकर और उसे मस्तक पर रख-
कर शिर झुकाते हुए नमस्कार करना—वादमें उनसे ऐसा कहना—कि हे स्वामिन् ! आपकी पितृष्वसा—सुआ—कुंती देवी हस्तिनापुर नगर से यहां अभी—आई है—वे आपके दर्शन करना चाहती हैं । उन कौटु-
म्बिक पुरुषोंने कुंती देवी की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर श्री कृष्ण

देकाथ. त्यां जधने ते हाथी उपरथी नीचे उतरती अने उतरतीने तेणे कौटुंभिक पुरुषोने जोलाव्या अने जोलावीने तेमने आ प्रभाणे कहुं के—

(गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया ! जेणेव बारवई णयरी, तेणेव अणुपविसह, अणुपविसित्ता कण्हं वासुदेवं करयल० एवं वयह एवं खलु सामी ! तुव्भं पिउच्छा कौंती देवी हत्थिणाउराओ नयराओ इह हव्वमागया, तुव्भं दंसणं कंखइ, तए णं ते कोडुंविद्यपुरिसा जाव कहेंति, तएणं कण्हं वासुदेवे कोडुंविद्य पुरिसाणं अंतिए सोच्चा गिसम्म हत्थिखंधवरगए हयगयवारवईए य मज्झं मज्झेणं जेणेव कौंती देवी—तेणेव उवागच्छइ)

हे देवानुप्रियो ! तमे द्वारावती नगरीमां ज्ञायो, त्यां जधने कृष्णुवासु-
देवने जधने हाथीनी अजलि जनावीने अने तेने मस्तके मूडीने माथुं नीचे नभावीने नमस्कार करणे त्यारपधी तेमने आ प्रभाणे जिनंती करणे के हे स्वामिन् ! तमारी पितृष्वसा—इति कुंती देवी हस्तिनापुर नगरथी अत्यारे अर्ही आव्या छे तेज्यो तमने जेवा भागे छे. ते कौटुंभिक पुरुषोअे कुंती देवीनी आ आज्ञाने स्वीकारिने श्रीकृष्णु वासुदेवने आ सभाचारनी अणर आपी

देवः कौटुम्बिकपुरुषाणामन्तिके श्रुत्वा निशम्य हस्तिस्कन्धवरगतो ह्यगज-
पदातिसंपरिहृतो द्वाारवत्या नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव कुन्ती देवी तत्रैवोपागच्छति,
उपागत्य हस्तिस्कन्धात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य कुन्त्या देव्याः पादग्रहणं करोति,
कृत्वा कुन्त्या देव्या सार्धं हस्तिस्कन्धं 'दुरुहइ' दूरोहति=आरोहतीत्यर्थः । दूरुह्य
द्वाारवत्या नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्वकं
गृहमनुप्रविशति ।

वासुदेव के लिये इस समाचार की खबर करदी कृष्ण वासुदेव कौटु-
म्बिक पुरुषों के पास से इस समाचार को सुनकर और उसे हृदय में
धारण कर हाथी पर बैठ, ह्यगज, रथ एवं पदातियों के साथ २ द्वारा
वती नगरी के बीच से होते हुए जहाँ कुन्तीदेवी थी वहाँ आये। (उवा-
गच्छित्ता हस्तिखंडाओ पचचोरुहइ, पचचोरुहिता कौंतीए देवीए पाथ-
गहणं करेइ, करित्ता कौंतीए देवीए सद्धि हस्तिखंधं दुरुहइ, दुरुहिता
वारवईए पायरीए मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता सयं गिहं अणुपविसइ, तएणं से कण्हे वासुदेवे कौंतीदेवीं
पहायं कयबलिकम्मं जिम्मियसुत्तरागयं जाव सुहासणवरगयं एवं
वयासी) वहाँ आकर वे हाथी पर से नीचे उतरे और उनरकर कुन्ती
देवी के चरणों में नमन क्रिया-चरण स्पर्श करके कुन्तीदेवी के साथ २
हाथी पर बैठ गये-बैठ कर के द्वारावती नगरी के ठीक भीतर से होकर
जहाँ अपना गृह-प्रासाद-था वहाँ आये-वहाँ आकर प्रासाद के भीतर

दीधी. कृष्णवासुदेवे कौटुम्बिक पुरुषोनी पांसिथी आ समाचारे सांलणीने तेने
हृदयमां धारण कराने, हाथी उतर सवार थधने, घोडा, हाथी, रथ अने पाथ-
दणोनी साथे द्वारावती नगरीनी पच्ये थधने न्यां कुंती देवी उतां त्यां आण्या.
(उवागच्छित्ता हस्तिखंडाओ पचचोरुहइ पचचोरुहिता कौंतीए देवीए पाथगहणं
करेइ, करित्ता कौंतीए देवीए सद्धि हस्तिखंधं दुरुहइ, दुरुहिता वारवईए पायरीए
मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सयं गिहं अणु
पविसइ, तएणंसे कण्हे वासुदेवे कौंती देवी पहायं कयबलिकम्मं जिम्मियसुत्त-
रागयं जाव सिहासणवरगयं एवं वयासी)

त्यां पडोन्थीने तेओ हाथी उपरथी नीचे उतरथे अने उतरिने कुंती
देवीने पगे लाण्या अने पगे लाणीने कुंती देवीनी साथे हाथी उपर सवार
थया. सवार थधने न्यां पोतालुं लवन उतुं त्यां आण्या, त्यां आनीने लवननी

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कुन्तीं देवीं स्नातां कृतबलिर्माणं काकादिभ्यः कृतान्नसंविभागा जिमित्तभुक्तोत्तरागतां जिमिता-भोजनं कृतवती भुक्तोत्तरागता-भुक्तोत्तरकालं-भोजनोत्तरकालम्-आगता, तां तथा, यावत् सुखासनवरगता-सुख-पूर्वकं विशिष्टासनोपविष्टाम् एवमवादीत्-हे पितृष्वसः ! संदिशन्तु किमागमनप्रयो-जनम् ? ततः खलु सा कुन्ती देवी कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्-एवं खलु हे पुत्र ! हस्तिनापुरे नगरे युधिष्ठिरस्याकाशतले सुखप्रसुप्तस्य पार्थाद् द्रौपदी देवी न ज्ञायते केनापि अपहता यावद् अवक्षिप्ता वा, तत् तस्माद् इच्छामि खलु हे पुत्र !

चले गये । कुन्ती ने वहां जाकर स्नान किया बलिकर्म किया । बाद में चतुर्विध आहार को जीमकर जब वे सुखपूर्वक बैठ गई तब कृष्ण वासुदेव ने उनसे कहा (संदिसउ णं पिउच्छा ! किमागमणपओयणं ? तएणं सा कोती देवी कणहं वासुदेवं एवं वयासी एवं खलु पुत्ता ! हत्थिणाउरे जुहिद्विहस्स अगासतले सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण णज्जइ, केणइ अवहियां जाव अदक्खित्ता वा तं इच्छामिणं पुत्ता ! दोवई ए देवीए मग्गणगवेसणं करित्तए) हे भुआजी ! कहिये-किस कारण से आप यहां पधारीं हैं ? इस प्रकार कृष्ण वासुदेव के पूछने पर उस कुन्तीने उन कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा-पुत्र ! सुनो-आने का कारण इस प्रकार है-हस्तिनापुर नगरमें प्रासाद की अट्टालिका के ऊपर सुखके साथ सोये हुए युधिष्ठिर के पास से द्रौपदी देवी न मालूम किसीने हरण करली है-यावत् किसी कुंए से या खड्डे में डाल दी है ।

अंदर गया. कुन्तीके त्यां पछोचीने स्नान कथुं अने पलिकर्म कथुं. त्यार पछी त्यार नतना आहारो न्नीने न्यारे ते सुभेथी स्वस्थ थधने षेसी गथा त्यारे कृष्ण वासुदेवे तेमने कहुं के:-

(संदिसउ णं पिउच्छा ! किमागमणपओयणं ? तएणं सा कोती देवी कणहं वासुदेवं एवं वयासी एवं खलु पुत्ता ! हत्थिणाउरे णयरे जुहिद्विहस्स अगासतले सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवीण णज्जइ, केणइ अवहियां जाव अदक्खित्ता वा तं इच्छामिणं पुत्ता ! दोवईए मग्गणगवेसणं करित्तए)

कडो, शा कारण्थी तमे अर्ही आन्था छे ? आ रीते कृष्ण वासुदेवना प्रश्नने सांलणीने कुंती देवीके कृष्ण वासुदेवने आ प्रभावे कहुं के डे पुत्र ! सांलणी, हुं जेटला भाटे अर्ही आवी छुं के हस्तिनापुर नगरमा भडेवनी अगाशी उपरथी सुभेथी सुतेला युधिष्ठिरनी पासेथी न लखे डेखे द्रौपदी देवीतुं हरण करी दीधुं छे यावत् डेअ इवामां के के आरामां नाभी दीधी छे. जेथी डे पुत्र ! हुं धरुं छुं के:-द्रौपदी देवीनी शोधणोप थनी जेधंके.

द्रौपद्या देव्या मार्गणगवेषणं ' करित्तए ' कर्तुम् इति । ततः खलु स कृष्णो वासु-
देवः कुन्तीं ' पिउच्छि ' पितृष्वसारमेवमवादीत्-यत् नश्यं हे पितृष्वसः । यदि
द्रौपद्या देव्याः कुत्रापि श्रुतिं वा क्षुतिं वा प्रवृत्तिं वा यावत् लभे, ' तो णं ' तर्हि
खलु, अहं पातालाद् भवनाद् वा अर्धभरताद् वा=खण्डत्रयमध्यात् समन्तात्=सर्वतः
स्थानाद्, द्रौपदीं देवीं ' साहत्थि ' स्वहस्तेन ' उवणेमि ' उपनयामि, इति
कृत्वा=इत्युक्त्वा कुन्तीं ' पिउत्थि ' पितृष्वसारं सत्कायति संमानयति, सरकार्यं

इस लिये हे पुत्र ! मैं चाहती हूँ कि द्रौपदी की मार्गणा एवं गवेषणा
होनी चाहिये । (तएणं से कण्हे वासुदेवे कोतीं पिउच्छि एवं वयासी-
जं णवरं पिउच्छी दोवइए देवीए कत्थइं सुइं वा जाव लभामि तो णं अहं
पायालाओ वा भवणाओ अद्ध भरहाओ वा, समंतओ दोवइं साहत्थि
उवणेमि त्ति कद्दु कोती पिउच्छि सक्कारेइ सम्माणेइ, जाव पडिविस-
ज्जेइ, तएणं सा कोती देवी कण्हेणं वासुदेवेणं पडिविसज्जियां, समा-
णी जामेव दिस्सि पाउ० तामेवदिस्सि पडिगया) तव कृष्ण वासुदेव ने
अपनी सुआ कुन्ती देवी से इस प्रकार कहा-हे सुआ ! मैं और अधिक
तो क्या कहूँ-द्रौपदी देवी की यदि मैं कहीं पर भी श्रुतिक्षुति, और
प्रवृत्ति पा लेता हूँ तो मैं चाहे वह पाताल में हो, या किसीके भवन में
हो, या अर्ध भरत क्षेत्र में से कहीं पर भी क्यों न हो-उस द्रौपदी देवी
को सब जगह से अपने हाथों से ला कर दूँगा । इस प्रकार कहकर
उन कृष्ण वासुदेव ने अपनी पितृष्वसा कुन्ती देवी का सत्कार किया,

(तएणं से कण्हे वासुदेवे कोत पिउच्छि एवं वयासी जं णवरं पिउच्छा
दोवइए देवीए कत्थइं सुइं वा जाव लभामि तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ
अद्ध भरहाओ वा, समंतओ दोवइं साहत्थि उवणेमि त्ति कद्दु कोती पिउच्छि
सक्कारेइ सम्माणेइ, जाव पडिविसज्जेइ, तएणं सा कोती देवी कण्हेणं वासुदेवेणं
पडिविसज्जिया समाणी जामेव दिस्सि पाउ० तामेव दिस्सि पडिगया)

त्यारे कृष्ण वासुदेवे पोताना इेध कुन्ती देवीने आ प्रभाणे कल्लं के डे
इेध ! हुं वधारे शुं कहुं, द्रौपदी देवीनी ने हुं केध पणु स्थाने श्रुति, क्षुति
अने प्रवृत्ति भेणवी एधश तो लले ते पाताणमां डोय, केधना लवनमां डोय
के अर्धं भरत क्षेत्रमां गमे त्यां केभ न डोय ते द्रौपदी देवीने गमे त्यांथी हुं
दावी आपने आपीश तेभ छुं. आ प्रभाणे कल्लिने ते कृष्ण वासुदेवे पोताना इेध
पितृष्वसा-कुन्तीदेवीने सत्कार करीं अने संमान कथुं. सत्कार तेभ संमान

समान्य यावत्-प्रतिविसर्जयति । ततः खलु सा कुन्ती देवी कृष्णेन वासुदेवेन प्रतिविसर्जिता सती यस्या एव दिशः प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता ॥ सू० २७ ॥

मूलम्-तएणं से कणहे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बार-वइं एवं जहा-पंडू तथा घोसणं घोसावेति जाव पच्चप्पिणंति, पंडुस्स जहा तएणं से कणहे वासुदेवे अन्नया अंतो अंतेउ-रगए ओरोहे जाव विहरइ, इमं च णं कच्छुल्लए जाव समो-वइए जाव णिसीइत्ता कणहं वासुदेवं कुसलोदंतं पुच्छइ, तएणं से कणहे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी-तुमं णं देवा-णुप्पिया ! बहूणि गामा जाव अणुपविससि, तं अत्थि 'याइं ते कहिं वि दोवइए देवीए सुतीं वा जाव उवलद्धा ?, तएणं से कच्छुल्ले कणहं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु देवाणु-प्पिया ! अन्नया कयाइं धायईसंडे दीवे पुरत्थिमद्धं दाहिण-डुभरह्वासं अन्नकंकारायहाणि गए, तत्थ णं मए पउमना-भस्स रत्तो भवणंसि दोवई देवी जारिसिया दिट्ठुप्पवा यावि होत्था तएणं कणहे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी-तुब्भं चेव णं देवाणुप्पिया ! एवं पुव्वकम्मं, तएणं से कच्छुल्ल-नारए कणहेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते सन्नाणे उप्पयणिं विज्जं

सन्मान क्रिया, सत्कार सन्मान कर यावत् उन्हें प्रति विसर्जित कर दिया । इसके बाद वे कुन्ती देवी वहां से प्रतिविसर्जित होकर जिस दिशा से प्रकट हुई थीं-उसी दिशा की ओर चली गईं ॥ सू० २७ ॥

धरिणे तेभने विहाय धर्यां, त्थारथथी ते कुंतीदेवी त्यांथी विहाय मेणवीने ते दिशा तरक्षथी आवांयां इतां ते ए तरक्ष पाछां रवाना थयां, ॥ सूत्र २७ ॥

तएणं से कणहे वासुदेवे इत्यादि ॥ सूत्र २८ ॥

आवाहेइ आवाहित्ता जामेव दिसि पाउब्भूए तामेव दिसिं
 पडिगए, तएणं से कण्हे वासुदेवे दूयं सदावेइ सदावित्ता
 एवं वयासी—गच्छहणं तुमं देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरं पंडुस्स
 रत्तो एयमंटं निवेदेहि एवं खलु देवाणुप्पिया ! धायइसंडे
 दीवे पुरच्छिमद्धे अवरकंकाए रायहाणीए पउमणाभभवणंसि
 दोवइए देवीए पउत्ती उवलद्धा, तं गच्छंतु पंच पंडवा
 चाउरंगिणीए सेणाए सच्चिं संपरिवुडा पुरत्थिमवेयालीए
 ममं पडिवालेमाणा चिट्ठंतु, तएणं से दूए जाव भणइ,
 पडिवालेमाणा चिट्ठह ते वि जाव चिट्ठंति, तएणं से कण्हे
 वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी—
 गच्छहणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सन्नाहियं भेरिं ताडेह, ते वि
 —तालेंति, तएणं तेसिं सण्णाहियाए भेरीए सहं सोच्चा
 समुद्धविजयपामोक्खा दसदसारा जाव छप्पणं वलवयसा-
 हस्सीओ सन्नद्धवद्ध जाव गहियाउहपहरणा अप्पेगइया
 हयगया गयगया जाव वग्गुरापरिक्खित्ता जेणेव सभा सु-
 हम्मा जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 करयल जाव बद्धवेत्ति, तएणं कण्हे वासुदेवे हत्थिखंधवर-
 गए सकोरंटमल्लदानेणं छत्तेणं० सेयवर० हयगय० महया
 भडच्चडगरपहकरेणं वारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्ग-
 च्छइ, जेणेव पुरत्थिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 पंचहिं पंडवेहिं सच्चिं एगयओ मिलित्ता खंधावारणिवेसं करेइ

करित्ता पोसहसालं अणुपविंसइ अणुपविसित्ता सुद्वियं देवं
मणंसिं करेमाणे२ चिट्टइ, तएणं कणहस्स वासुदेवस्स अट्ट-
मभत्तंसि परिणममाणंसि सुद्विओ आगओ, भणदेवाणु-
प्पिया ! जं मए कायव्वं, तएणं से कणहे वासुदेवे सुद्वियं
एवं वयासी-एवं खल्ल देवाणुप्पिया ! दोवई देवी जाव पउ-
मनाभस्स भवणंसि साहरिया तणं तुमं देवाणुप्पिया ! मम
पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे
मगं वियरोहि, जणं अहं अमरकंकारायहाणी दोवईए कूवं
गच्छामि, तएणं से सुद्विए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-
किण्हं देवाणुप्पिया ! जहा चेव पउमणाभस्स रत्तो पुव्वसं-
गइएणं देवेणं दोवई जाव संहरिया तहा चेव दोवई देविं-
धायइसंडाओ दीवाओ भारहाओ जाव हत्थिणापुरं साह-
रामि, उदाहु पउमणाभं रायं सपुरवलवाहणं लवणसमुद्दे
पक्खिवामि ?, तएणं कणहे वासुदेवे सुद्वियं देवं एवं वयासी
-मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव साहराहि तुमं णं देवा-
णुप्पिया ! लवणसमुद्दे अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं मगं विय-
राहि, सयमेव णं अहं दोवईए कूवं गच्छामि, तएणं से
सुद्विए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं होउ, पंचहिं
पंडवेहिं अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मगं वियरइ,
तएणं से कणहे वासुदेवे चाउरंगिणसिंणं पडिविसज्जेइ-पडिवि-
सज्जित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टे छहिं रहेहिं लवणसमुद्दे-

मज्झिमज्झेणं वीइवयइ वीइवइत्ता जेणेव अमरकंका राय-
 हाणी जेणेव अमरकंकाए अगुजाणे तेणेव उवागच्छइ उवा-
 गच्छित्ता रहं ठवेइ ठवित्ता दारुयं सारहिं सदावेइ सदावित्ता
 एवं वयासी-गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! अमरकंकारायहाणीं
 अणुपविसाहिं पउमणाभस्स रणो वामेणं पाएणं पायपीढं
 अक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणामेहि तिवलियं भिउडिं णिडाले
 साहट्ट आसुरुत्ते रुट्टे कुट्टे कुविए चांडिकिए एवं वयासी-हं भो
 पउमणाहा ! अपत्थियपत्थिया दुरंतपंतलक्खणा हीणपुन्नचा-
 उदसा सिरीहिरिधी परिवज्जिया अज्ज ण भवस्सि किन्नं तुमं ण
 याणासि कण्हस्स वासुदेवस्स अहव णं जुद्धसज्जे णिग्गच्छाहि
 एस णं कणहे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं अप्पच्छट्टे दोवई देवीए
 कूवं हव्वमागए, तएणं से दारुए सारही कणहेणं वासुदेवेणं
 एवं बुत्ते समाणे हट्टुट्टे जाव पडिसुणेइ पडिसुणित्ता अमरकंका
 रायहाणिं अणुपविसइ अणुपविसित्ता जेणेव पउमनाहे
 तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेत्ता एवं
 वयासी-एस्स णं सामी ! मम विणयपडिवित्ती इमाअन्ना मम
 सामिस्स ससुहाणत्तित्तिक्कहु आसुरुत्ते वामपाएणं पायपीढं
 अणुक्कमइ अणुक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणामइ पणामित्ता
 जाव कूवं हव्वमागए, तएणं से पउमणाभे दारुणेणं सारहिणा
 एवं बुत्ते समाणे आसुरुत्ते तिवलिं भिउडिं निडाले साहट्ट
 एवं वयासी-णो अप्पिणामि णं अहं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स

वासुदेवस्स दोवई, एसणं अहं सयमेव जुञ्जसज्जो णिग्गच्छामि
त्तिकट्ठु दारुयं सारहिं एवं वयासी-केवलं भो ! रायसत्थेसु दूथे
अवज्जे त्तिकट्ठु असक्कारिय असम्माणिय अवहारेणं णिच्छुभा-
वइ, तएणं से दारुए सारही पउमणाभेणं असक्कारिय जाव
णिच्छूढे समाणे जेणेव कणहे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छित्ता करयल० कणहं जाव एवं वयासी-एवं खलु अहं
सामी ! तुब्भं वयणेणं जाव णिच्छुभावेइ ॥ सू० २८ ॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिकपु-
रुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत् गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रिय ! द्वार-
वतीं नगरीम्, ‘एवं यथा पाण्डुस्तथा घोषणां घोषयत’-यथा पाण्डु राजा हस्ति-
नापुरे घोषणां कारितवान् तद्वदित्यर्थः । तेऽपि कौटुम्बिकपुरुषास्तथैव घोषणां

—तएणं से कणहे वासुदेवे इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कणहे वासुदेवे) उन कृष्ण वासुदेव
ने (कौटुम्बिकपुरिसे सहावेइ) कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया (सहाबित्ता)
बुलाकर (एवं वयासी) उन से ऐसा कहा (गच्छह णं तुब्भे देवानुप्पिया
वारवइं) हे देवानुप्रियों ! तुम द्वारावती नगर में जाओ (एवं जहा पंडु
तहा घोसणं घोसावेति जाव पच्चप्पिणंति पंडुस्स जहा) वहाँ पांडु
राजाकी तरह घोषणा करो—अर्थात् पांडु राजाने जिस प्रकार द्रौपदी की
खबर लानेवाले के लिये अर्थ प्रदान का घोषणा अपने कौटुम्बिक पुरुषों
द्वारा हस्तिनापुर नगर में करवाई थी—इसी प्रकार की घोषणा करने के

‘तएणं से कणहे वासुदेवे’ इत्यादि.

टीकार्थ—(तएणं) त्वारपथी (से कणहे वासुदेवे) ते कृष्ण वासुदेवे (कौटुम्बिक
पुरिसे सहावेइ) कौटुम्बिक पुरुषोंने भेलाव्या (सहाबित्ता) भेलावीने (एवं
वयासी) तेभने आ प्रभाणु कलुं के—(गच्छह णं तुब्भे देवानुप्पिया वारवईं)
हे देवानुप्रियो ! तमे द्वारावती नगरीमां गयो (एवं जहा पंडु तहा घोसणं
घोसावेति जाव पच्चप्पिणंति पंडुस्स जहा) त्थां पंडु राजानी नेम ने घोषणु
करो अट्ठे के पांडु राजने नेम द्रौपदीनी शोध करवा भाटेनी द्रव्य आप-
वानी घोषणा हस्तिनापुर नगरमां करवी हती ते प्रभाणु ने घोषणु करवा

कृत्वा 'जाव पञ्चपिण्याति' यावत् प्रत्यर्पयन्ति-घोषणां कृत्वा-कृष्णस्य वासुदेव-
स्यान्तिके ते कौटुम्बिकपुरुषा निवेदयन्ति-द्वारावत्यां नगर्यां सर्वत्र घोषणाकृता-
ऽस्माभिरिति । 'पंडुस्स जहा' पाण्डोर्यथा यथा पाण्डो र्वृपस्य वर्णकस्तथाऽत्रापि
बोध्यः । यथा पाण्डुराजा द्रौपद्याः श्रुतिं यावत् प्रवृत्तिं न लब्धवान्, तथा कृष्णवा-
सुदेवोऽपि द्रौपद्याः श्रुत्यादिकं न प्राप्तवानिति भावः । ततः खलु कृष्णो वासुदेवः
अन्यदा=अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित् समये 'अंतो' अन्तः-स्वभासादे अन्तःपुरगतो-
ऽवरोधे यावद् विहरति । 'इमं च णं' अस्मिन् समये च खलु 'कच्छुल्लए' कच्छ-
ल्लको नारदो यावत् समवसृतः= गगनतलादवतरन् कृष्णसन्नि समागतः यावत्
निपद्य=उपविश्य गगनतलादवतरन् कृष्णसन्नि समागतः, यावत् निपद्य=उपविश्य

लिये कृष्ण वासुदेव ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को आदेश दिया कि वे
भी द्वारावती में इसी तरह की घोषणा करें। अपने राजा की आज्ञानु-
सार उन्होंने द्वारावती में घोषणा करदी और इस की खबर पीछे कृष्ण
वासुदेव को कर दो। यहां अवशिष्ट वर्णन पांडु राजा के जैसा वर्णन
है वैसा ही जानना चाहिये। अर्थात् घोषणा कराने पर भी द्रौपदी की
किसी भी प्रकार की खबर वगैरह का कोई भी समाचार पांडु राजा को
नहीं मिला वैसा कृष्ण वासुदेव को भी नहीं मिला (तएणं) तब (से
कण्हे वासुदेवे अन्नया अंतो अत्तेउरगए ओरोहे जाव विहरह इमं च
णं कच्छुल्लए जाव समोसरए) वे कृष्ण वासुदेव एक दिन की बात है
कि अपने अन्तः पुर के प्रासाद के भीतर अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ
बैठे हुए थे कि इसी समय वे कच्छुल्ल नाम के नारद आकाश मार्ग से

भाटे कृष्ण वासुदेवे पोताना कौटुम्बिक पुरुषाने आज्ञा करी के तेणे पण
द्वारावती नगरीमां आ प्रभाणे व घोषणा करे, पोताना रान्नी आज्ञा प्रभाणे
ते दोडोअे द्वारावती नगरीमां घोषणा करी अने घोषणां काम थर्ग गयुं छे
तेनी अमर पण कृष्ण वासुदेवनी पांसे पडोयाडी हीधी, अर्ही अवशिष्ट वर्णन
पांडु रान्तुं नेतुं छे ते प्रभाणे व समल लेतुं नेधअे, अेडले के घोषणा कर्या
पणी पण पांडु रान्ते द्रौपदी देवीनी डोर्ध पण जतनीं अमर के समाचार
मअ्या नडि ते प्रभाणे कृष्ण वासुदेवने पण डोर्ध पण समाचारे घोषणा
आह मअ्या नडि, (तएणं) त्तारे (से कण्हे वासुदेवे अन्नया अंतो अत्ते-
उरगए ओरोहे जाव विहरह, इमं च णं कच्छुल्लए जाव समोसरए) अेक दिवसनी
वात छे के ते कृष्ण वासुदेव पोताना भडेलनी अंहर दण्वासनी अंजोनी
साथे मेका डंता ते वभते कच्छुल्ल नामे नारद आकाश मार्गधी उतरिने त्यां

कृष्णं वासुदेवं कुशलोदन्तं=कुशलवार्तां पुच्छति, ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कच्छुल्ले नारदमेवमवादीत्-हे देवानुप्रिय ! त्वं खलु बहूनि ग्रामाकरादीनि परिभ्राम्यसि, तत्र बहूनि गृहाणि यावद्गन्तुमविशसि, तत् तस्मादस्ति 'आई' इति वाक्यालंकारे ते त्वया यदि कुत्रचिद् द्रौपद्यादेव्याः श्रुतिर्वा यावद् उपलब्धा=ज्ञाता ? तर्हि कथंय' इति भावः । ततः खलु स कच्छुल्लनारदः कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रियाः अहमन्यदाकदाचिद् धातकीपण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्थे=पूर्वदिग्भागव-वर्तिनि, दक्षिणार्धभरतवर्षे-अमरकंकानाम्नीं राजधानीं गतः । तत्र खलु मया

उत्तरकर वहां आये-(जात्र गिसी इत्ता कण्हं वासुदेवं कुसलोदंतं पुच्छइ, तएणं से कणहे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी-तुमं णं देवानुप्पिया ! बहूणि गामागर जाव अणुपविससि तं अत्थि आई ते कर्हिं वि दोवईए देवीए सुतींवा जात्र उवलद्धा तएणं से कच्छुल्ले कण्हं वासुदेवं एवं वयासी) यावत् बैठकर उन्होंने ने कृष्ण वासुदेव से कुशल वृत्तान्त पूछा -कृष्णवासुदेव ने तब कच्छुल्ल नारद से ऐसा कहा-हे देवानुप्रिय ! तुम अनेक ग्राम आकर आदिस्थानों में परिभ्रमण करते रहते हो-अनेक गृहादिकों में आते जाते रहते हो तो कहो-कहीं पर क्या तुम्हें द्रौपदी देवी की श्रुति उपलब्ध हुई है-उसकी तुम्हें किसी प्रकार की कोई खबर मिली है-उसका किसी भी प्रकार का कोई चिन्ह उपलब्ध हुआ है ? इस प्रकार, कृष्ण वासुदेव के पूछने पर कच्छुल्ल नारद ने उन कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा-(एवं खलु देवानुप्पिया ! अन्नया कयाईं

आव्या. (जात्र गिसीइत्ता कण्हं वासुदेवं कुसलोदंतं पुच्छइ, तएणं से कणहे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी, तुमं णं देवानुप्पिया ! बहूणि गामागर जाव अणु-पविससि तं अत्थि आई ते कर्हिं वि दोवईए देवीए सुतींवा जात्र उवलद्धा-तएणं से कच्छुल्ले कण्हं वासुदेवं एवं वयासी) त्यां आवीने जेडा अने जेसीने तेमणे कृष्ण वासुदेवने कुशाण वार्ता पूछी. वासुदेवे त्यारे कच्छुल्लं नारदने आ प्रभाणे कहुं के हे देवानुप्रिय ! तमे धणां ग्राम, आकर वगेरे स्थानांमां परि-भ्रमण करता रहे। छे, धणा धरे वगेरेमां आवण करता रहे। छे। तो कडे, कडे पण स्थाने तमने द्रौपदी देवीनी श्रुति भणी छे-तेना तंमने कडे पण नततना सभायारे मथा छे, तेतुं कडे पण नततुं थिक तमने मथ्युं छे ? आ रीते कृष्ण वासुदेवना प्रश्नने सांखणीने कच्छुल्ल नारदे ते कृष्ण वासुदेवने आ प्रभाणे कहुं के:-

(एवं खलु देवानुप्पिया ! अन्नया कयाईं घायईंसडे वीवे पुरत्थिमद्धं
का ६३

पद्मनाभस्य राज्ञो भवने द्रौपदीदेवी यादृशी दृष्टपूर्वा चाप्यभवत्, अयं भावः—
काचिद्द्रौपदीसदृशी देवी पद्मनाभस्य राज्ञोभवने दृष्टा कितु सा मया न सम्यग्-
ज्ञाता नापि सम्यग्परिचिता, इति । ततः खलु कृष्णो वासुदेवः कच्छुल्लनारदमेव-
मवादीत्—हे देवानुप्रियाः युष्माकमेव खलु ' एवम् ' इदं ' पुण्यकर्म ' पूर्वकर्म
—पूर्वकृतं कर्म, युष्माधिरेवेदं कर्म पूर्वं कृतमित्यर्थः । ततः खलु स कच्छुल्लनारदः
कृष्णेन वासुदेवेनैवमुक्तः सन् उत्पतनीं विद्यामावाहयति । आवाह्य यस्याः एवदिशः
मादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवो दत्तं शब्दयति—

धायईसंडे दीवे पुरत्थिमळ्ळं दाहिणद्धभरहवासं अमरकंका रायहाणिं गए
तत्थ णं मए पडमनाभस्स रण्णो भवणंसि दोवई देवी जारिसिया दिट्ठ-
पुव्वा याचि होत्था, तएणं कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी—तुव्मं
चेव णं देवाणुप्पिया ! एवं पुण्यकम्मं—तएणं से कच्छुल्लनारए कण्हेणं
वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहिता
जामेव दिशिं पाउञ्जुए तामेव दिशिं पडिगए) सुनो मै तुम्हें बताता हूँ
—हे देवानुप्रिय ! मैं किसी एक समय द्वितीय धानकी खंड द्वीप में पूर्व
दिग्भागवतीं दक्षिणार्धं भरतक्षेत्र में अमरकंका नाम की राजधानी में
गया हुआ था वहाँ मैंने पद्मनाभ राजा के भवन में द्रौपदी देवी जैसी
एक नारी देखी थी—परन्तु मैं उसे अच्छी तरह नहीं जान सका—और
न उससे परिचित ही हो सका—। नारद की ऐसी बात सुनकर कृष्ण
वासुदेव ने उनसे कहा हे देवानुप्रिय ! आपने ही ऐसा कार्य सब से
पहिले किया है—इसके बाद उन कच्छुल्ल नारदने कृष्ण वासुदेवके द्वारा

दाहिणद्धभरहवासं अमरकंका रायहाणिं गए, तत्थणं मए पडमनाभस्स रण्णो
भवणंसि दोवई देवी, जारिसिया दिट्ठपुव्वा याचि होत्था, तएणं कण्हे वासुदेवे
कच्छुल्लं एवं वयासी—तुव्मं चेवणं देवाणुप्पिया ! एवं पुण्य कम्मं—तएणं से कच्छुल्ल
नारए कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहिता
जामेव दिशिं पाउञ्जुए तामेव दिशिं पडिगए)

सांभणो, तमने हुं ण्धी विगत भतावुं छुं. हे देवानुप्रिय ! ओं ओं
वभते हुं धातकी पंडकीपमां, पूर्व दिशा तरङ्गना दक्षिणार्धं भरत क्षेत्रमां,
अमरकंका नामे राजधानीमां गथे हतो. त्यां मे पद्मनाभ राजना भवनमां
द्रौपदी देवी जैसी ओं नारी ओं हती. पञ्च हुं तेने सारी पेटे ओणणी
शक्ये नहिं अने न तेनाथी परिचयित थथं शक्ये. नारदनी आ वात सांभणीने
कृष्णवासुदेवे तेमने कहुं हे हे देवानुप्रिय ! सो पडिवां तमे व आ काम कथुं छे.
त्यारपणी ते कच्छुल्लनारदे कृष्ण वासुदेवनी आ वात सांभणीने बताती उत्पतनी

आह्वयति, शब्दयित्वा-एवमवादीत्-गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रियाः ! हस्तिनापुरं पाण्डोराज्ञ एतमर्थं निवेदय-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! धातकीषण्डे द्वीपे ' पुर-
त्थिमद्वे ' पौरस्त्याधे पूर्वदिग्भागवर्तिनि अमरकंकायां राजधान्यां पद्मनाभभवने
द्रौपद्या देव्याः प्रवृत्तिरूपलब्धा, तत्=तस्मात् गच्छन्तु पञ्च पाण्डवाश्चतुरङ्गिण्या
सेनया सार्धं संपरिवृता ' पुरत्थिमवेयालीए ' ' पौरस्त्यवेलायां-पूर्वदिग्वर्तिनि
लक्षणसमुद्रे स्तं ' पडिवालेमाणा ' प्रतिपालयन्तः-प्रतीक्षमाणा स्तिष्ठन्तु, ततस्त-
दनन्तरं स दूतो यावत् पाण्डोरग्रे गत्वा कृष्णवासुदेवोन्तं वचनं भणति=कथयति=
' पडिवालेमाणा चिट्टुह ' अयं भावः- ' धातकीषण्डे द्वीपे पूर्वदिग्भागवर्तिनि अम-
रकंकायां राजधान्यां पद्मनाभभवने द्रौपद्याः प्रवृत्तिरूपलब्धा, तस्मात् पञ्च पाण्ड-

इस प्रकार कहे जाने पर अपनी उत्पत्तनीविद्याका स्मरण किया। स्मरण
करके फिर वे जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा की और चले
गये। (तएवं से कण्हे वासुदेवे दूयं सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी
गच्छणं तुमं देवानुप्रिया ! हृत्थिणाउरं पंडुस्त रण्णो एयमद्वं निवेदेहि)
इसके बाद उन कृष्ण वासुदेव ने दूत को बुलाया-बुलाकर उससे ऐसा
कहा-हे देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ-वहाँ पांडु राजा से
ऐसा कहना-(एवं खलु देवानुप्रिया ! धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्वे
अमरकंकाए रायहाणीए पउमणाभभवणंसि दोवईए देवीए पउतीं
उवलद्धा-तं गच्छंतु पंच पंडवा चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा
पुरत्थिमवेयालीए ममं पडिवालेमाणा चिट्टंतु) हे देवानुप्रिय ! वह वक्तव्य
विषय यह है-धातकी षंड नाम के द्वीप में पूर्व दिग्भागवर्ती दक्षिणार्ध
भरत क्षेत्र में वर्तमान अमरकंका नाम की राजधानी में पद्मनाभ राजा

विधानुं स्मरथु कथुं. स्मरथु करीने पछी तेओ ७ दिशा तरइथी आओया
हता ते ७ दिशा तरइ पाछा खाना थथ गया. (तएवं से कण्हे वासुदेवे दूयं
सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी-गच्छणं तुमं देवानुप्रिया ! हृत्थिणाउरं पंडुस्त
रण्णो एयमद्वं निवेदेहि) त्थारपछी ते कृष्ण वासुदेवे इतने ओलाओया अने
ओलावीने तेने आ प्रभाणे कथुं डे डे देवानुप्रिय ! तमे हस्तिनापुर नगरमां
अओ-अने त्थां पांडु राजने आ प्रभाणे कछो डे-

(एवं खलु देवानुप्रिया ! धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्वे अमरकंकाए राय
हाणीए पउमणाभा भवणंसि दोवईए देवीए पउतीं उवलद्धा-तं गच्छंतु पंच पंडवा
चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा पुरत्थिमवेयालीए ममं पडिवाले माणा
चिट्टंतु) हे देवानुप्रिय ! धातकी षंड नामे द्वीपमां पूर्व दिशा तरइना दक्षिणार्ध
भरत क्षेत्रमां विद्यमान अमरकंका नामनी राजधानीमां पद्मनाभ राजने भव-

चाश्वतुरङ्गिण्या सेनया सार्धं संपरिवृताः पौरस्त्यवेलायां मां प्रतिपालयन्तस्तिष्ठन्तु ' इति । एवं दूतसुखात् कृष्णवासुदेवोक्तं वचनं श्रुत्वा तेषामिन्द्रपञ्च पाण्डवा यावत् तिष्ठन्ति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, के भवन में द्रौपदी देवी की खबर मिली है-इसलिये पांचो पांडव चतुरंगिणी सेना के साथ युक्त होकर लवण समुद्र की पूर्व दिग्भागवर्तिनी वेला पर जाकर वहाँ मेरी प्रतीक्षा करें । (तएणं से दूए जाव भणइ, पडिवालेमाण्णा चिट्ठह, ते वि जाव चिट्ठंति, तएणं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सहावेइ सहाविन्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुवमे देवाणुप्पिया । सन्नाहियं भेरिं ताडेह ते वि ताडेति, तएणं तीसे सण्णाहियाए भेरिए सइं सोच्चा विजयपामोक्खा, दस दसारा जाव छप्पणं वलवयसाहस्सीओ सन्नद्धवद्ध जाव गहियाउहपहरणा अप्पेगइया ह्यगया, गयगया, जाव वग्गुरा परिक्खित्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव कण्णे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ) इस प्रकार अपने राजा कृष्णवासुदेव की आज्ञा लेकर वह दूत हस्तिनापुर गया वहाँ जाकर उसने इस समाचार को पांडुराजा से कह दिया । वे पांचों पांडव इस समाचार को दूत के मुख से सुनकर चतुरंगिणी सेना के साथ लवण समुद्र के पूर्व दिग्भागवर्ती तट पर जाकर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा में ठहर गये- इसके बाद कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया-बुलाकर

नमां द्रौपदी देवीना वावड भन्था छे तो डवे पांछे पांडवेो अतुरंगिणी सेनानी साथे प्रयाणु करीने लवणु समुद्रना पूर्वु दिनारा उपर पडोंचीने भारी प्रतीक्षा करे.

(तएणं से दूए जाव भणइ, पडिवाले माणा चिट्ठह ते वि जाव चिट्ठंति, तएणं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिय पुरिसे सहावेइ सहाविन्ता एवं वयासी गच्छह णं तुवमे देवाणुप्पिया । सन्नाहियं भेरिं ताडेह ते वि ताडेति, तएणं से सण्णाहियाए भेरिए सइं सोचा समुहविजयपामोक्खा, दस दसारा जाव छप्पणं वल वय साहस्सीओ सन्नद्धवद्धजाव गहियाउहपहरणा अप्पेगइया ह्यगया, गयगया, जाव वग्गुरापरिक्खित्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव कण्णे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ)

आ रीते चोताना रान्ण कृष्णु वासुदेवनी आज्ञा भेगवीने ते इत डस्तिनापुर तरइ रवाना थयो. त्यां पडोंचीने तेणु पांडु रान्णने भधा सभायादेो कडु सलणाव्या. पांछे पांडवेो इतना सुभथी आ सभायार सालणीने चोतानी अतुरंगिणी सेना साथे त्यांथी प्रयाणु करीने लवणु समुद्रना पूर्वु दिनारा उपर पडोंचीने त्यां कृष्णु वासुदेवनी प्रतीक्षा करता रोकध गया. त्थारपथी कृष्णु वासुदेवे, कौटुम्बिक पुरुषोने जोलाव्या अने जोलावीने तेभने आ प्रभाणु कडुं

शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः सांनाहिकीं सैनिकानां सज्जीमवनार्थं नादो यस्यास्तां भेरीं ताडयत तेऽपि ताडयन्ति, ततः खलु तस्याः सांनाहिक्या भेर्याः शब्दं श्रुत्वा समुद्रविजयप्रमुख्वा दश दशार्हा यावत् 'छपपण्णं वलवयसाहस्तीओ' पट्ट पञ्चाशद् वलवत्साहस्रथाः=पट्टपञ्चाशत्सहस्रप्रमिता वलवन्त इत्यर्थः 'सन्नद्धवद्ध-जाव गाहियाउहपहरणा' अत्र यावच्छब्देनैवं द्रष्टव्यम्-सन्नद्धवद्धवर्मितकवचा उत्पीडितशरासनपट्टकाः पिनद्धाग्रैवेयकवद्धाविद्धविमलवरचिह्नपटाः गृहीतायुधप्रहरणा इति । व्याख्याऽस्मिन्नेवाध्ययने पूर्वमुक्ता अप्ये-किकाः=केचिद् ह्यगताः केचिद् गजगताः यावद् त्रागुरापारिक्षिताः=मनुष्यपट्टदैः परिवृताः, यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य करतलं यावद् जयेन विजयेन वर्षयन्ति । ततः खलु कृष्णो वासुदेवो हस्तिस्कन्धवरगतः सको-

उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियों ! तुम सुधर्मा सभा में जाओ वहाँ जाकर तुम सांनाहिकी भेरी बजाओ-। कौटुम्बिक पुरुषोंने ऐसा ही क्रिया सुधर्मा सभामें जाकर उस सांनाहिकी भेरीको बजाया-। इस सांनाहिकी भेरीकी गर्जनाको सुनकर समुद्रविजय आदि दश दशार्ह यावत् ५६, हजार प्रमित वलवीर पुरुष सन्नद्ध वद्धर्मितकवच होकर, यावत् आयुध प्रहरणों को लेकर तैयार सुसज्जित हो गये । यहाँ यावत् शब्द से उत्पीडितशरासन पट्टकाः, " पिनद्धाग्रैवेयकवद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टाः " इस पाठ का संग्रह हुआ है । इन शब्दों की व्याख्या इसी अध्ययन में पहिले की जा चुकी है । इनमें कितनेक घोडों पर, कितनेक हाथियों पर, बैठकर अन्य मनुष्यों के समूह से परिवृत्त हो जहाँ वह सुधर्मा सभा और जहाँ वे कृष्णवासुदेव थे वहाँ आये । (उवागच्छित्ता करयल जाव

के डे देवानुप्रियो ! तमे सुधर्मा सभामां ज्ञायो, त्यां ज्ञधने तमे सांनाडिडी लेरी वगाडे, ते कौटुम्बिक पुरुषोऽपि पणु ते प्रभणु ज व्यासतुं पावन कथुं. सुधर्मा सभामां ज्ञधने तेऽप्ये सांनाडिडी लेरी वगाडी. सांनाडिडी लेरीने अपाज सांलणीने समुद्रविजय वगेरे दश दशार्हो यावत् पट्ट ६००० प्रमित भणवीर पुडुथो कवथो वगेरेथी सुसन्न जधने यावत् आयुध प्रहरणुने लधने तैयार थथ गथा. अर्हो यावत् शब्दथी " उत्पीडितशरासनपट्टकाः, पिनद्धाग्रैवेयकवद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टाः " आ पाठने संग्रह थथो छे. आ शब्दोनी व्याख्या आ अध्ययनमां ज पडिदां करवामां आवी छे. आमां केटलाक थोडाऽप्यो उपर, केटलाक डाथीऽप्यो उपर गेसीने तेभज केटलाक माणुसेना समूहोथी परिवृत्त थधने जयां ते सुधर्मा, सभा अने जयां कृष्ण-वासुदेव डता त्यां आव्या.

रष्टमाल्यदाग्ना छत्रेण धार्यमाणेन श्वेतवरचामरैरुद्भूयमानैः, ह्यगजरथपदाति
संपरिवृतो महाभटचटकरप्रकरणे द्वारवत्या नगर्वा मध्यमध्येन निर्गच्छति,
यत्रैव पौरस्त्यवेला तत्रैवोपागच्छति उपागत्य पञ्चभिः पाण्डवैः सह 'एगयओ'
वद्भवति, तएणं कण्हे वासुदेवे हृत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं
छत्तेणं० सेयवर० ह्यगय० महया भडचडगरपहकरणं वारवईए णयरीए
मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ, जेणेव पुरत्थिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छत्ता पंचहिं पंडवेहि सद्धि एगयओ मिलइ, मिलित्ता खंधावा-
रणिवेसं करेइ, करित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सुद्धियं
देवं मणसिं करेमाणे २ चिद्धइ, तएणं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्टमभत्तंसि
परिणममाणंसि सुद्धिओ आगओ अण देवाणुप्पिया ! जं मए कायवं)
वहां आकर उन सबने कृष्णवासुदेव को दोनों हाथ जोड़कर बड़े विनय
के साथ नमस्कार करते हुए जय विजय शब्दों द्वारा बधाई दी। इसके
बाद वे कृष्णवासुदेव हाथों पर सवार हुए। सवार होते ही छत्र धारियों
ने उन पर कौरंट पुष्पों की माला से विराजित छत्र ताना, चामर ढोरने
वालों ने उनपर श्वेत चामर ढोरना प्रारंभ करदिया। इस प्रकार ह्य,
गज, रथ, एवं पैदलसेना से घिरे हुए वे कृष्णवासुदेव महाभटों के
समूह के साथ २ द्वारावती नगरी के बीच से होकर निकले, निकलकर
जहां वह लवणरससुद्र की पूर्व दिग्भागवर्तिनी वेला थी वहां पहुँचे।

(उवागच्छित्ता करयल जाव वद्भवति, तएणं कण्हे वासुदेवे हृत्थि खंध-
वरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं० ! सेयवर० ह्यगय महया भडचडगरपहकरणं
वारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ जेणेव पुरत्थिमवेयाली तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छत्ता पंचहिं पंडवेहि सद्धि एगयओ मिलइ. मिलित्ता खंधावा-
रणिवेसं करेइ, करित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता, सुद्धियं देवं मणसिं
करेमाणे २ चिद्धइ, तएणं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि सुद्धिओ
आगओ अणदेवाणुप्पिया ! जं मए कायवं)

त्यां पडोथीने ते अधाये गने छाथ लेडीने अहु ७ विनअताथी नम-
स्कार करतां न्यविन्य शब्दोथी तेमने वधामणी आपी. त्थारपथी ते कृष्ण
वासुदेव छाथी उपर सवार थया. सवार थतां ७ छत्रधारीओये तेमनी उपर
कौरंट पुष्पेनी भाणाथी शोलेतु छत्र ताण्युं तेमन चामर टाणनाराओये
चामर टाणवानी शरआत करी आ प्रभाळे घोडा, छाथी, रथ अने पायदण्ठी
परिवृत्त थयेदा ते कृष्ण-वासुदेव महाभटाना समूहनी साथे साथे द्वारावती
नगरीनी वन्धे थधने पसार थया अने न्यां ते लवण समुद्रने पूर्वी दितादे

एकतः एकस्मिन् स्थाने मिलति, मिलित्वा स्कन्धान्धारनिवेशं=सैनिकानामावासं करोति कृत्वा पौषधशालामनुप्रविशति, अनुप्रविश्य " सुष्टियं देवं " सुस्थितं-सुस्थितनामानं देवं लवणसमुद्राधिष्ठितं मनसि कूर्वन्=स्मरन् तिष्ठति, ततः खलु कृष्णस्य वासुदेवस्याष्टमभक्ते परिणममाणे सुस्थितो देव आगतः, आगत्य वदति- हे देवानुप्रियः ! अणन्तु कथयन्तु यन्मया कर्तव्यमिति ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः सुस्थितदेवमेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! द्रौपदी देवी यावत् पश्चान्मस्य भवने संहता, तत्=तस्मात् खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! मम पञ्चभिः पाण्डवैः सार्धं ' अप्पच्छट्स ' आत्मषष्ठस्य-आत्मा-अहं पठो यत्र तस्य समुदायस्य-अस्माकं पण्णामित्यर्थः, पण्णां स्थानां लवणसमुद्रे मार्गं विहर=देहि, येनाहममरकङ्कां राजधानीं द्रौपद्या देव्याः ' कूर्वं ' प्रत्यानयनकर्तुं गच्छामि ।

वहाँ पहुँचकर वे पाँच पाण्डवों के साथ एक स्थान पर संमिलित हुए । संमिलित होकर उन्होंने अपनी सेना को ठहरने का स्थान नियत किया-स्थान नियतकर के फिर वे पौषधशाला में प्रविष्ट हो गये वहाँ प्रविष्ट होकर उन्होंने लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव का स्मरण किया-। इसके बाद जब कृष्णवासुदेव का अष्टमभक्त समाप्त हो रहा था-तब वह सुस्थित देव उनके पास आया-और कहने लगा-हे देवानुप्रिय ! कहिये-मेरे लायक क्या काम है ? (तएणं से कण्हे वासुदेवे सुष्टियं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया । दोवई देवी, जाव पउमनाभस्स भवणंसि साहरिया, तएणं तुमं देवाणुप्पिया मम पंचहि पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्सस छण्हं रहाणं लवणसमुद्रे मगं विघरेहि, जणं अहं अमरकंकारायहाणी दोवईए कूर्वं गच्छामि, तएणं से सुष्टिए देवे कण्हं

इतो त्यां पडोव्या. त्यां पडोव्याने तेव्हा पांचे पांडवोनी साथे जेष्ठ स्थाने जेष्ठत्र थया. जेष्ठत्र थथने तेमजे पोताना सैन्यना पडावनुं स्थान नखी कथुं. स्थान नखी करीने तेव्हा पौषधशाणामां प्रविष्ट थया. त्यां जथने तेव्हाजे लवणु समुद्रना अधिपति सुस्थित देवुं स्मरणु कथुं. त्यारभाट न्यारे कृष्णवासुदेवने। अष्टम लक्षत पुरे। थथ रळी इतो, त्यारे ते सुस्थित देव तेमनी पासे आये। अने उडेवा लाये। के डे देवानुप्रिय ! गोदो, मारा लायक शुं काम छे ?

(तएणं से कण्हे वासुदेवे सुष्टियं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया । दोवईदेवी, जाव पउमनाभरस भवणंसि साहरिया, तएणं तुमं देवाणुप्पिया मम पंचहि पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्सस छण्हं रहाणं लवणसमुद्रे मगं विघरेहि, जणं अहं अमरकंका रायहाणीं दोवईए कूर्वं गच्छामि, तएणं से सुष्टिए देवे कण्हं

ततः खलु स सुस्थितो देवः कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—हे देवानुप्रिय ! किं खलु यथैव पद्मनाभस्य राज्ञः पूर्वसंगतिकेन देवेन द्रौपदी यावत् संहता, तथैव द्रौपदीं देवीं घातकीपण्डाद् द्रौपाद् भारताद् यावद् हस्तिनापुरं संहरामि । ‘ उदाहू ’ उताहो ! =अथवा. कथय, पद्मनाभं राजानं सपुरबलवाहनं=नगरसैनिकवाहन-सहितं लवणसमुद्रे प्रक्षिपामि ? ततः खलु कृष्णो वासुदेवः सुस्थितं देवम् एव-

वासुदेवं एवं वयासी किण्हं देवाणुप्पिया ! जहा चैव पउमणाभस्स रत्तो पुव्वसंगइएणं देवेणं दोवई जाव संहरिया, तथा चैव दोवईदेविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ जाव हत्थिणापुरं साहरामि, उदाहू पउमणाभं रायंसपुरबलवाहणं लवणसमुदे पक्खिवामि ?) तत्र कृष्णवासुदेव ने उस सुस्थित देव से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! सुनो—द्रौपदी देवी यावत् पद्मनाभ के भवन में हरण कर रखी गई है इमलिये हे देवानु-प्रिय ! तुम आत्मबुद्ध मेरे पांच पांडवों के साथ चहों रथों को लवण समुद्र में मार्ग प्रदान करो । अर्थात् पांच पांडवों के और छठे मेरे इस प्रकार हमारे छह रथों को जाने के लिये रास्ता दो—कि जिससे मैं अमरकंका राजधानी में द्रौपदीदेवी को वापिस ले आने के लिये जा सकूँ । तत्र सुस्थित देव ने उन कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे देवानु-प्रिय ! जिस प्रकार पद्मनाभ राजा के पूर्व संगतिक देवने द्रौपदीदेवी का यावत् हरण किया है, उसी तरह मैं भी द्रौपदी देवी को घातकी खंड द्वीप के भरत क्षेत्र से यावत् हस्तिनापुर में हरणकर ला सकता हूँ—

वासुदेवं एवं वयासी किण्हं देवाणुप्पिया ! जहा चैव पउमणाभस्स रत्तो पुव्व-संगइएणं देवेणं दोवई जाव संहरिया, तथा चैव दोवई देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ जाव हत्थिणापुरं साहरामि, उदाहू पउमणाभं रायं सपुरबल-वाहणं लवणसमुदे पक्खिवामि ?)

त्यारे कृष्ण-वासुदेवे ते सुस्थित देवने आ प्रभाण्णे कड्ढुं के डे देवानु-प्रिय ! सालणे, द्रौपदी देवी यावत् पद्मनाभना लवणमां डरणु करारणे राण-वाभां आवी छे. ओटला माटे डे देवानुप्रिय ! तमे ‘आत्मबुद्ध’ मारा तेसण पांचि पांडवोना छ रथोने लवणु समुद्रमां थधने पसार थवा माटे भागं आपो. ओटले के पांचि पांडवोना अने छुटा मारा आम छये रथोने पसार थवा माटे रस्ते आपो. जेथी हुं द्रौपदी देवीने पाछा लाववा माटे अमरकंका राजधानीमां अर्थ शकुं. त्यारे सुस्थित देवे ते कृष्ण-वासुदेवने आ प्रभाण्णे कड्ढुं के डे देवानुप्रिय ! पद्मनाभ राजाना पूर्वसंगतिक देवे जेम द्रौपदी देवीतुं यावत् डरणु कड्ढुं छे, तेमज हुं पणु द्रौपदी देवीने घातकी अंडद्वीपना भरत क्षेत्रमांथी यावत् हस्तिनापुरमां डरणु करंने लावी शकुं तेम छुं अने जे

मवादीत्—मा खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! यावत् संहर, त्वं खलु हे देवानुप्रिय ! लवणसमुद्रे आत्मपष्ठस्य पण्णां रथानां मार्गं ' वियराहि ' वितर=देहि, स्वयमेव खल्वहं द्रौपद्या देव्याः ' क्लृवं ' प्रत्यानयनकर्तुं गच्छामि, ततः खलु स सुस्थितो

अधवा—आपकी आज्ञा हो तो नगर, सैनिक, और वाहन सहित पद्मनाभ राजा को लवण समुद्र में डुबा दे सकता हूँ (तएणं कण्हे वासुदेवे सुद्वियं देवं एवं वयासी) जब कृष्णवासुदेव ने उस स्वस्तिक देव से इस प्रकार कहा—(माणं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव साहराहि तुमं णं देवाणुप्पिया ! लवणसमुद्रे अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्रे मग्गं वियराहि सयमेव णं अहं दोवईए क्लृवं गच्छामि, तएणं से सुद्विए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी, एवं होउ, पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्रे मग्गं वियरइ तएणं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीसेणं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जिस्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टे छहिं रहेहिं लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं वीइवयइ, वीइवइत्ता जेणेव अमरकंका रायहाणी, जेणेव अमरकंकाए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) हे देवानुप्रिय ! तुम ऐसा मत करो—अर्थात् पद्मनाभ के भवन से द्रौपदी देवी को हरण मत करो, और न पद्मनाभ राजा को नगर, सैनिक एवं वाहन सहित लवणसमुद्र में प्रक्षिप्त करो, तुम तो केवल हे देवानुप्रिय ! हमारे छहों रथों को लवणसमुद्र में मार्ग दे दो । मैं

तभारी आज्ञा डेय तो नगर, सैनिक अने वाहन सहित पद्मनाभ राजाने लवणसमुद्रमां डुभाडी शकुं तेभ छुं. (तएणं कण्हे वासुदेवे सुद्वियं देवं एवं वयासी) त्थारे कृष्ण-वासुदेवे ते स्वस्तिक देवने आ प्रभाषे कल्लुं इ—

(माणं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव साहराहि तुमं णं देवाणुप्पिया ! लवणसमुद्रे अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्रे मग्गं वियराहि सयमेव णं अहं दोवईए क्लृवं गच्छामि, तएणं से सुद्विए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी, एवं होउ, पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्रे मग्गं वियरइ, तएणं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणी सेणं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जिस्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टे छहिं रहेहिं लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं वीइवयइ, वीइवइत्ता जेणेव अमरकंका रायहाणी, जेणेव अमरकंकाए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ)

हे देवानुप्रिय ! तमे आ प्रभाषे करवानी तरही डो नडि ओटवे इ पद्मनाभना लवणमांथी द्रौपदी देवीतुं डरलु करी नडि तेभअ पद्मनाभ राजाने नगर, सैनिक अने वाहन सहित लवण समुद्रमां इके पलु नडि. तमे तो हे देवानुप्रिय ! इकत अमारा छमे रथो भाटे लवण समुद्रमां मार्गं आपो.

देवः कृष्णं वासुदेवमेवसत्रादीत्—एवं भवतु इति, ततोऽसौ पञ्चशिः पाण्डवैः सार्धम् आत्मषष्ठस्य षण्णां स्थानां लवणसमुद्रे मार्गं वितरति ततः खलु स कृष्णो वासु- देवश्चतुरङ्गिणीं सेनां प्रतिविसर्जयति, प्रतिविसर्ज्य पञ्चभिः पाण्डवैः सार्धमात्म- षष्ठः पद्भिरथैर्लवणसमुद्रं मध्यमध्येन 'वीड्वयद्' व्यतिव्रजति—गच्छति, व्यति- व्रज्य यत्रैवामरकङ्का राजधानी, यत्रैवामरकङ्काया अग्नोद्यानं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य रथं स्थापयति, स्थापयित्वा दारुकं सारथिं शब्दयति, शब्दयित्वा एव- मवादीत्—गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! अमरकङ्काराजधानीमनुपविश, अनु-

स्वयं ही द्रौपदी देवी को वहाँ से वापिस ले आऊंगा। अथवा मैं स्वयं ही द्रौपदी देवी को लेने के लिये जाऊँगा तब उस सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—अच्छा ऐसा ही हो—इस प्रकार कह कर उसने आत्म षष्ठ के छहों रथों को लवणसमुद्र में मार्ग वितरित कर दिया। तब कृष्णवासुदेव ने अपनी चतुरंगिणी सेना को वहाँ से वापिस करदिया वापिस कर फिर वे पांच पाण्डवों के साथ छहों रथों को—१ एक अपने रथको और पांच पाण्डवोंके रथोंको—लेकर लवणसमुद्रके भीतरसे होकर चलने लगे। चलते २ वे जहाँ अमरकंका राजधानी थी— और उसमें भी जहाँ वह अग्नोद्यान था वहाँ पहुँचे। (उवागच्छित्ता रहं ठवेद्) वहाँ पहुँच कर उन्होंने अपने रथ को रोक दिया—(ठवित्ता दारुकं सारहिं सद्वावेद्, सद्वावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुमं देवाणुपियया ! अमरकंकारायहाणीं अनुपविसाहि २, पउमणाभस्त रणो वामेण पाएणं

त्यां लधने हुं लते ल द्रौपदी देवीने त्यांथी पाछी लध आवीश. अट्ठे के हुं लते ल द्रौपदी देवीने देवा भाटे लधश. त्यादे ते सुस्थित देवे कृष्ण- वासुदेवने कलुं के साइं, आभ ल करे. आ प्रभाळे कहीने तेणे आत्मषष्ठना छये रथेने लवणु समुद्रमां रस्ते आये. त्यारथछी कृष्ण-वासुदेवे पोतानी चतुरंगिणी सेनाने त्यांथी पाछी वणावी छीधी अने पाछी वणावीने तेजो पाये पांडवोनी साथे छये रथेने—अक पोताना रथने अने पांच पांडवोना रथेने— लधने लवणु समुद्रनी वच्ये थधने पसार थवा लाग्या. आभ पसार थतां तेजो न्यां अभरकंका राजधानी अने तेमां पणु न्यां ते अग्नोद्यान डटु' त्यां पडोन्त्या. (उवागच्छित्ता रहं ठवेद्) त्यां पडोन्थीने तेमळे पोताना रथने जेणे राभ्ये.

(ठवित्ता दारुकं सारहिं सद्वावेद्, सद्वावित्ता एवं वयासी, गच्छह णं तुमं देवाणुपियया ! अमरकंका रायहाणीं अनुपविसाहि २ पउमणाभस्त रणो वामेणं

प्रविश्य पद्मनाभस्य राज्ञो वामेन पादेन ' पायपीठ ' पादपीठम् सिंहासनसंलग्न-
सोपानम् आक्रम्य कुन्तप्रेण लेखं पत्रिकां ' पणामेहि ' अपय=देहि अपयित्वा
' तिवलियं ' त्रिवलिकां रेखात्रययुक्तां ' भिउडिं ' भ्रुकुटीं- ' गिड्डाले ' ललाटे
' साहदु ' संहृत्य-उन्नीय ' आसुरुते ' आसुरुतः=शीघ्रं क्रोधाविष्टः ' रुद्धं '
रुष्टः ' क्रुद्धे ' क्रुद्धः ' कुविए ' कुपितः चंडिकिए ' चाण्डिकियतः-रोषयुक्तः,
एवमवादीत्-हं भो ! पद्मनाभ ! ' अपत्यियपत्यिया ' अपार्थितप्रार्थित !-मर-
णवाञ्छक ! ' दुरंतपंतलक्षण ! ' दुरन्तप्रान्तलक्षण ! पूर्व व्याख्यातमेतत्,

पायपीठं अक्षमिन्ना कुन्तगणेण लेहं पणामेहि, तिवलियं भिउडिं गिड्डाले
साहदु आसुरुते रुद्धे क्रुद्धे कुविए चंडिकिए एवं वयासी हं भो पउमणाहा
अपत्यियपत्यिया ! दुरंतपंतलक्षण ! हीणपुणचाउदसा ! सिरिहिरि
धी परिवज्जिया ! अज्ज ण भवसि किन्नं तुमं ण याणासि, कणहस्स
वासुदेवस्स अहवणं जुद्धसज्जे गिगच्छाहि) रथ को रोककर वहां
स्थापित कर-दाहक सारथि को बुलाया बुलाकर के उससे ऐसा कहा-
हे देवानुप्रिय तुम जाओ-अमरकंका राजधानी में जाओ वहां जाकर
पद्मनाभ राजाके पादपीठको वाम पादसे आक्रमित कर, कुन्त (भाला)के
अग्रभाग से उसे पत्रिका दो देकर के अपनी भ्रुकुटी को भालपर चढा-
कर, इकदम गुस्से में आकर, रुष्ट, कुपित एवं क्रुद्ध होकर क्रोध के
आवेश से तम तमाते हुए तुम उससे ऐसा कहों-अरे ओ पद्मनाभ !
अप्रार्थित प्रार्थित ! मरणवाञ्छक-! दुरंतप्रान्त लक्षण ! भोलुम होता है

पाएणं पायपीठं अक्षमिन्ना कुन्तगणेण लेहं पणामेहि, तिवलियं भिउडिं गिड्डाले
साहदु आसुरुते रुद्धे क्रुद्धे कुविए चंडिकिए एवं वयासी हं भो पउमणाहा !
अपत्यियपत्यिया ! दुरंतपंतलक्षण ! हीणपुणचाउदसा ! सिरि हिरिधी
परिवज्जिया ! अज्ज ण भवसि किन्नं तुमं ण याणासि, कणहस्स वासुदेवस्स
अहवणं जुद्धसज्जे गिगच्छाहि)

रथने लोको राभीने, त्यां न रथने भूषीने दाइक सारथिने गोदाव्यी.
अने गोदावीने तेने आ प्रभाळु कथुं के डे देवानुप्रिय ! तमे अमरकंका
राजधानीमां नयो अने त्यां नधने पद्मनाभ राजना पादपीठने दाया पगथी
आकमित करीने कुंतना अथ लागथी तेने पत्रिका आयो. पत्रिका आपीने
तमे पातानी लभभरे 'अदावीने, अकहम दादवोण थधने इथ, कुपित अने
क्रुद्ध थधने हीधना आवेशमां आपीने तेने आ प्रभाळु कडो के अरे ओ
पद्मनाभ ! अप्रार्थित प्रार्थित ! मरथु वांछक ! दुरंत प्रांत लक्षण ! (नीथ

‘ हीनपुत्रचाउदसा ! ’ हीनपुण्यचातुर्दशिकः - अलब्धपुण्यचातुर्दशिकजन्मा, चतुर्दशीजातो हि भाग्यवान् भवति । तथा-‘ सिरि हिरि धी परिवज्जिया ! ’ श्री ह्री धी परिवर्जित ! लक्ष्मी लज्जा बुद्धि रहित !, अद्य न भवसि, किं खलु त्वं न जानासि, कृष्णस्य वासुदेवस्य भगिनीं द्रौपदीं देवीमिह ‘ ह्रवं आणमाणे ’ हव्यमानयत्, ‘ तं ’ तत्-तस्मात् ‘ एयमपि ’ एतामपि=आनीतामपि आहू पूर्वकाद् इण्गतौ ’ इत्यस्मात् क्त प्रत्ययः, ‘ अहव ’ अथवा खलु ‘ जुद्ध सज्जे ’ युद्ध-सज्जः-युद्धाय सज्जः=सन्नद्धः सन् ‘ णिगच्छाहि ’ निर्गच्छ-बहिर्निःसर एष खलु कृष्णो वासुदेवः पञ्चभिः पाण्डवैः सह ‘ अप्पच्छे ’ आत्मपण्डः=आत्मा पण्डो यत्र स समूहे, द्रौपदी देव्याः ‘ कूवं ’ प्रत्यानयनं कर्तुं हव्यमागतः ।

तू अलब्ध पुण्य चातुर्दशिक जन्म वाला है-तू-चतुर्दशी में उत्पन्न हुआ नहीं है-क्यों कि चतुर्दशी के दिन उत्पन्न हुआ व्यक्ति भाग्यशाली होता है किन्तु तू ऐसा नहीं है अर्थात् अभागा है तू श्री ह्री, बुद्धि से रहित है । याद रख-या तो आज तू नहीं है या मैं नहीं हूँ तुझे यह ख्याल नहीं है-कि यह द्रौपदी देवी कृष्ण वासुदेव की वहिन है जिसे तूने यहां हरण करवा कर मंगवाई है । अतः यदि अपनी कुशल चाहता है, तो तू इस हरण करवा कर अपने यहां मंगवाई गई द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव के पास जाकर पीछे वापिस पहुँचा दे । नहीं तो युद्ध के लिये सज्जित होकर घर से बाहिर निकल आ । (एरणं कण्हे वासुदेवे) ये कृष्ण वासुदेव (पंचहिं पंडवेहिं अप्पच्छे दोवई देवीए कूवं हव्वमागए, तएणं से दारुए सारही कण्हे णं वासुदेवे णं एवं बुने

विचारो तेभञ् नीत्थ लक्षणेो युक्त) अभने अभे लागे छे के तु अलब्ध पुण्य चातुर्दशिके न-भवाणे छे, अट्ठे के तु यौदशने द्विसे न-भे नथी केभके यौदशने द्विसे उत्पन्न थनारी व्यक्तित्वाग्यशाणी होय छे. तु श्री, ह्री अभने बुद्धि वगरने छे. भरोभर सांलणी ले के आने कां तो तु नहि के कां हुं नहि. तने अट्ठली पणु भभर नथी के आ द्रौपदी देवी कृष्ण-वासुदेवनी भडेन छे-के नेने तं हरणु करानीने अही मंगावी छे. हवे ने तुं पोताहुं लहुं ध्विछतो होय तो तुं आ हरणु करानीने पोताने त्यां शकी राजेदी द्रौपदी देवीने कृष्ण-वासुदेवनी पासने नधने पाछी सोंपी हे. नडितर युद्धना माटे तैथार थधने भडार मेदानमां आवी न. (एस णं कण्हे वासुदेवे) आ कृष्णवासुदेव

(पंचहिं पंडवेहिं अप्पच्छे दोवई देवीए कूवं हव्व मागए, तएणं से दारुए

ततः खलु स दाक्षकः सारथिः कृष्णेन वासुदेवेनैवमुक्तः सन् हृष्टतुष्टो यावत् प्रतिश्रुणोति 'तयाऽस्तु' इति कृत्वाऽऽज्ञां स्वीकरोति प्रतिश्रुत्य=अमरकण्ठाराजधानीमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव पञ्चनाभस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य करतलपरिशुद्धीतदशनखं शिरावर्तं मस्तकेऽङ्गलिं कृत्वा यावद् वर्धयति-जयेन विजयेन चाभिनन्दयति । वर्धयित्वा-अभिनन्द्य एवमवादीत्-एषा खलु हे स्वामिन् ! मम विनयप्रतिपत्तिः इयमन्या मम स्वामिनो विनयप्रतिपत्तिः, "समु-

समाणे हृदुतुष्टे जाव पडिसुणेइ, पडिसुणिता, अमरकंका रायहार्णि अणुपविसइ, अणुपविसिता जेणेव पउमनाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता, करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी-एसणं सामी मम विणयपडिविती, इमा अन्ना मम सामिस्स समुहाणत्ति त्ति कइइ असुरुत्ते नाम पाएणं पायपीढं अणुकमइ) पांच पांडवों के साथ आत्म व्रत होकर द्रौपदी देवी को लेने के लिये अभी अभी आये हुए हैं । इस प्रकार कृष्णवासुदेव के द्वारा कहे गये उस दाक्षक सारथि ने हृष्ट तुष्ट होकर कृष्णवासुदेव की आज्ञा स्वीकार करली । स्वीकार कर के फिर वह अमरकंका राजधानी में प्रवेश किया वहाँ प्रवेश कर वह वहाँ पहुँचा जहाँ पञ्चनाभ राजा थे । उनके समीप जाकर उस ने पहिले उन्हें दोनों हाथों की अंजलि बना कर और उसे मस्तक पर रखकर नमस्कार किया-जय विजय शब्दों से उन्हें बधाया-वाद में उसने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया-हे स्वामिन् ! यह तो मेरी विनय प्रतिपत्ति है-इत

सारही कण्ठेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे हृदुतुष्टे जाव पडिसुणेइ पडिसुणिता, अमरकंका रायहार्णि अणुपविसइ, अणुपविसिता जेणेव पउमनाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता, करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी-एसणं सामी मम विणयपडिविती, इमा अन्ना मम सामिस्स समुहाणत्ति त्ति कइइ आसुरुत्ते वामपाएणं पायपीढं अणुकमइ)

पांचे पांडवोनी साथे आत्मव्रत थधने द्रौपदी देवीने देवा भाटे अत्यादे आवी गया छे. आ प्रमाणे कुण्ड-वासुदेव वडे कडेवाभां आवेलां पथने. सांखणीने हृष्ट-तुष्ट थधने ते हाडुक सारथीअे तेमनी आज्ञा स्वीकारी लीधी. स्वीकारीने ते अमरकंका राजधानीसां प्रविष्ट थयो. प्रविष्ट थधने ते ल्यां पञ्चनाभ राजा उता तेमनी पासे जधने सौ पडेलां तेणे भंने छायोनी अंजलि गनावीने अने तेने मस्तके भूकीने नमस्कार कथो अने जय विजय शब्दोथी शब्दने वधासुणी आपी. त्पारपडी तेणे आ प्रमाणे कडेवाणी शब्दात् करी के छे स्वामी ! आ तो भादी विनय प्रतिपत्ति छे. इतनी क्षण अवधतां ये

દાગતિ” સ્વમુલાગ્નિઃ-સ્વમુલેન કથિતા આગ્નિઃ-આગ્ના’ इति कृत्वा ‘आसुरत्वे’ आशुररूपः शीघ्रं क्रोधाग्निष्टः, वामपादेन पादपीठं ‘अणुकर्म’ अनुकामति, अनुक्रम्य कुन्ताग्रौण लेखं-पत्रिकां ‘पणामह’ अर्पयति । अर्पयित्वा यावत् ‘कूवं’ प्रत्यानयनं कर्तुं हव्यमागतः । ततः खलु स पद्मनाभो दारुकेण सारथिना एवमुक्तः सन् अशुररूपः=शीघ्रः क्रोधाक्रान्तं, त्रिवलिकां रेखात्रययुक्तां भुङ्कुर्ति-‘निडाले’ ललाटे-भालप्रदेशे ‘साहद्रु’ संहृत्प-उन्नीय, एवमवादीत-नो अर्पयामि खलु अहं हे देवानुमिय कृष्णस्य वासुदेवस्य द्रौपदीम्, एष खलु अहं स्वयमेव युद्धसज्जो निर्गच्छामि=अधुनैव युद्धार्थं वहिर्निःसरामि इतिकृत्वा

કે કર્તવ્ય અનુસાર મૈને યહ આપકો નમસ્કાર ક્રિયા હૈ જય વિજય આદિ શબ્દોં દ્વારા વધાર્ણ દી હૈ-પરન્તુ મેરે સ્વામીની ઉનકે મુખસે આપકે લિયે જો આજ્ઞા દી ગઈ હૈ વહ દૂસરી હૈ-ઔર વહ ઇસ પ્રકાર હૈ-ઇસ પ્રકાર અપને મુખ સે કહકર વહ શીઘ્ર ક્રોધ સે ખર ગયા, ઔર વામપાદ સે ઉસકે પાદપીઠ પર ચઢ ગયા । (અવક્રમિત્તા) ચઢકર ફિર (કોંતમ્ગેળં લેહં પ્ણામહ) ફિર ઉસને ઉસકે લિયે કુન્ત કે અગ્રભાગ સે પત્રિકા અર્પિત કી । (પ્ણામિત્તા જાવ કૂવં હવ્વમાગઈ) પત્રિકા અર્પિત કરકે યાવત્ કૃષ્ણવાસુદેવ પાંચો પાંડવોં કે સાથ યહાં દ્રૌપદી દેવી કો વાપિસ લેને કે લિયે હવ્વ-અમી અમી-આવે હૈં યહ સ્વ સમાચાર ઉસે સુનાદિયા । (તર્ણં સે પડમણામે દારુણં સારહિણા એવંબુત્તે સમાણે આસુરુત્તે ત્તિવલિં મિઝડિં નિડાલે સાહદ્રુ એવં વયાસી ણો અપ્પિણામિ, ણં અહં દેવાણુપ્પિયા ! કપહસ્ત વાસુદેવસ્ત દોવર્હૈ, એલ ણં અહં સયમેવ

વિનયોપચાર માટે નમસ્કાર કર્યો છે તેમજ જ્ય વિજય વિજય શબ્દો દ્વારા તમને વધામણી આપી છે. પરંતુ મારા સ્વામીએ તેમના મુખથી તમારે માટે જે કંઈ આજ્ઞા આપી છે તે કંઈક ખીજુ જ છે અને તે આ પ્રમાણે છે કે- ઇત આમ કહીને એકદમ ક્રોધમાં લાલચોળ થઈ ગયો અને ડાબા પગથી તેના પાદાસન ઉપર ચઢી ગયો. (અવક્રમિત્તા) ચઢીને (કોંતમ્ગેળં લેહં પ્ણામહ) તેણે રાબને કુંત (ભાલા) ના અગ્રભાગથી પત્રિકા આપી. (પ્ણામિત્તા જાવ કૂવં હવ્વમાગઈ) પત્રિકા આપીને યાવત કૃષ્ણ-વાસુદેવ પાંચે પાંડવોની સાથે અહીં દ્રૌપદી દેવીને લેવા માટે અત્યારે આંખ્યા છે. આ ભલતના બધા સમાચારો તેને કહી સંભળાંખ્યા.

(તર્ણં સે પડમણામે દારુણેણ સારહિણા એવંબુત્તે સમાણે આસુરુત્તે ત્તિવલિં મિઝડિં નિડાલે સાહદ્રુ એવં વયાસી-ણો અપ્પિણામિ, ણં અહં દેવાણુપ્પિયા !

दारुकं सारथिमेवमवादीत्—

केवलं भोः ! ' रायसत्येसु ' राजशास्त्रेषु-राजनीतिषु दूतः ' अवज्ज्ञे ' अवध्यः= न हन्तव्यः, इत्युक्तमस्ति तस्मात् त्वां सुश्रामि इति कृत्वा=इत्युक्त्वा तं दूतम् असत्कार्यं, असम्मान्य अपहारेण ' णिच्छुभावेइ ' निक्षोभयति-निष्कासयति, ततः खलु स दारुकः सारथिः पद्मनाभेनासत्कार्यं यावत्-' णिच्छुद्धे ' निक्षोभितः-निःसारितः ' समाणे ' सन्, यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य करतलपरिशृङ्गीतदशनखं शिरआवर्त्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा कृष्णं यावद् एवमवादीत्-

जुद्धसज्जो णिगच्छामि,त्ति कद्दु दारुकं सारयं एवं वयासी-केवलं भो रायसत्येसु दूये अवज्ज्ञे त्ति कद्दु असत्कारिय असम्माणिय अवहारेणं णिच्छुभावेइ) तद् वह पद्मनाभ जब दारुक सारथि ने इस प्रकार कहा तो इकदम क्रोधित होकर त्रिबलि युक्त भूकृष्टि को माथे पर चढा कर इस प्रकार कहने लगा हे देवानुप्रिय ! मैं द्रौपदी को कृष्णवासुदेव के लिये अर्पित नहीं करता हूँ-पीछी नहीं देता हूँ—। इसके लिये मैं अभी स्वयं ही युद्ध करने को तैयार हूँ—। इस प्रकार कहकर फिर उसने उस दारुक सारथि से ऐसा कहा अरे ! राजनीति के शास्त्रों में दून अवध्य कहा गया है-इस लिये तुझे छोड़ देता हूँ । इस तरह कहकर उसने दून को असत्कृत और असमानित कर पीछे के दरवाजे से बाहिर निकलवा दिया । (तएणं दारुए सारही पउमणाभे णं असत्कारिय जाव णिच्छुद्धे समाणे जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवा कण्हस्स वासुदेवस्स दोवई, एसणं अहं सयमेव जुद्धसज्जो णिगच्छामि त्ति कद्दु दारुकं सारहिं एवं वयासी-केवलं भो ! रायसत्येसु दूये अवज्ज्ञे त्ति कद्दु असत्कारिय असम्माणिय अवहारेणं णिच्छुभावेइ)

दाडुक सारथिना आ प्रभाञ्जे वयनेना सांभणीने पद्मनाभ अेकदम क्रोधमां लादयेण थधं गये। अने लभभरो यदावीने आ प्रभाञ्जे कडेवा लाये। डे डे देवानुप्रिय ! हुं कृष्णु-वासुदेवने द्रौपदी केषपणु स्थितिमां सोपवा तैयार नथी. अेना माटे हुं अत्यारे पणु युद्ध करवा तैयार छुं. आ प्रभाञ्जे कडीने तेञ्जे दाडुक सारथीने कहुं डे अरे ! राजनीतिना शास्त्रोमां इत अवध्य कडेवामां आये छे अथी तने जेतो कइं छुं. आ प्रभाञ्जे कडीने तेञ्जे इतने असत्कृत अने असमानित करीने पाछवा गारुथी अहार कडावी भूक्ये।

(तएणं दारुए सारही पउमणाभेणं असत्कारिय जाव णिच्छुद्धे समाणे जेणेव कण्णे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिचा करयल० कण्हं जाव एवं

एवं खलु अहं हे स्वामिन् ! गुप्ताकं वचनेन यावत् ' णिच्छुभावेइ ' निक्षोभयति-
पद्मनाभः क्रोधादिष्टः सन् द्रौपदीं न दास्यामीत्युक्त्वा दूतो न हन्तव्य इति कृत्वा
मामसत्कार्यं, असंभान्यापद्वारेण निःसारयति स्म ' इत्यर्थः ॥ २८ ॥

मूलम्—तएणं से पउमणाभे बलवाउयं सदावेइ सदावित्ता
एवं वयासी-खिप्पाभेव भो देवाणुप्पिया । आभिसेक्कं हत्थिर-
यणं पडिकप्पेह, तयाणंतरं च णं से बलवाउए छेयायरियउव-
देसमइविकप्पणा विगप्पेहिं निउणेहिं जाव उवणेइ, तएणं से
पउमनाहे सन्नद्ध० अभिसेयं दूरुहइ दूरुहिन्ता ह्यगय जेणेव
कण्हे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं से कण्हे वासु-
देवे पउमणाभं रायाणं एज्जमाणं पासइ पासित्ता तं पंच पंडवे

गच्छह, उवागच्छित्ता करयल० कण्हं जाव एवं वयासी-एवं खलु अहं
सामी ? तुभं वयणेणं जाव णिच्छुभावेइ) इस प्रकार जब वह दारुक
सारथि पद्मनाभ के द्वारा असत्कृत यावत् होकर बाहिर निकलवा दिया,
तब वह वहाँ से चलकर जहाँ कृष्णवासुदेव थे वहाँ आया । वहाँ आकर
उसने दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे मस्तक पर रखकर
कृष्णवासुदेव से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ? मैंने पद्मनाभ राजा से
आपके वचन जैसे ही कहे वैसे ही उसने “ क्रोध में आकर ” मैं नहीं
दूंगा, दूनमारने योग्य नहीं होता है—इत्यादि कहकर मुझे असत्कृत एवं
असंमानित कर अपने घर्हा से पीछे के दरवाजे से बाहिर निकलवा
दिया है ॥ सूत्र २८ ॥

वयासी—एवं खलु अहं सामी ! तुभं वयणेणं जाव णिच्छुभावेइ)

आ प्रभाणु न्यारे ते दारुक सारथि पद्मनाभ राज वडे असत्कृत यावत्
असंमानित थधने अडार कडावी भूकथे त्यारे ते त्यांथी अडार आवीने न्यां
कृष्ण-वासुदेव हता त्यां आव्यो. त्यां आवीने तेणु अने डाथेथी अजलि अनावीने
अने तेने मस्तके भूडीने कृष्ण-वासुदेवने आ प्रभाणु कण्हं के छे स्वामी ! पद्म-
नाभ राजने मे' न्यारे तभारे स' देश कडी संलगाव्यो. त्यारे संलगतांनी
साथे अ ते क्रोधभां लराधने “ हूं द्रौपदी देवी पछी आपीश नडि, यावत् इत
अवध्य होय छे. ” वगेरे वयनेथी असत्कृत तेमअ असंमानित करीने अने
तेणु पोताना लवनना पाछला आरणुथी अडार कडावी भूकथे छे. ॥ सू. २८ ॥

एवं वयासी--हं भो दारगा ! किन्नं तुब्भे पउमनाभेणं सद्धिं
जुज्झहिह उयाहु पेच्छहिह ?, तएणं ते पंच पंडवा कण्हं
वासुदेवं एवं वयासी--अस्हे णं सामी ! जुज्झामो तुब्भे पेच्छह
तएणं पंच पंडवे सण्णद्ध जाव पहरणा रहे दुरुहंति दुरुहिच्चा
जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता एवं
वयासी--अस्हे वा पउमणाभे वा रायत्तिकट्टु पउमनाभेणं सद्धिं
संपलग्गा यावि होत्था, तएणं से पउमनाभे राया तं पंच पंडवे
खिप्पामेव ह्यसहिय पवर निवडिय चिन्धद्ध्युपडागा जाव
दिसोदिसिं पडिसेहेइत्ति, तएणं ते पंच पंडवा पउमनाभेणं रत्ता
ह्यसहियपवरनिवडिय जाव पडिसेहिया समाणा अत्थामा
जाव आधारणिज्जत्तिकट्टु जेणेव कणहे वासुदेवे तेणेव उवा०,
तएणं से कणहे वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी--कहणं
तुब्भे देवाणुप्पिया ! पउमणाभेणं रत्ता सद्धिं संपलग्गा ?,
तएणं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--एवं खलु
देवाणुप्पिया ! अस्हे तुब्भेहिं अब्भणुत्ताया समाणा सन्नद्ध०
रहे दुरुहामो२ जेणेव पउमनाभे जाव पडिसेहेइ, तएणं से
कणहे वासुदेवे तं पंच पंडवे एवं वयासी--जइ णं तुब्भे देवाणु-
प्पिया ! एवं वयंता अस्हे णो पउमणाभे रायत्तिकट्टु पउमना-
भेणं सद्धिं संपलग्गं ताओ णं तुब्भे णो पउमणाहे ह्यसहिय-
पवर जाव पडिसेहंते, तं पेच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! अहं
नो पउमणाभे रायत्तिकट्टु पउमनाभेणं रत्ता सद्धिं जुज्झामि रहं

दुरुहइ दुरुहिता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता सेयं गोखीरहारधवलं तणसोच्छियसिंदुवारकुंदेंदुस-
 न्निगासं निययबलस्स हरिसज्जणं रिउसेण्णविणासंकरं पंच-
 जणं संखं परामुसइ परामुसित्ता मुहवायपुरियं करेइ, तएणं तस्स
 पउमणाहस्स तेणं संखसद्देणं बलइभाए हयजाव पडिसेहिए, तएणं
 सेकण्हे वासुदेवे धणुं परामुसइ वेढो धणुं पूरेइ पूरित्ता धणुसइं करेइ,
 तएणं तस्स पउमनाभस्स दोञ्चे बलइभाए तेणं धणुसद्देणं
 हयमहिय जाव पडिसेहिए, तएणं से पउमणाभेराया तिभाग-
 बलावसेसे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे
 अधारणिज्जत्तिकहु सिग्धं तुरियं जेणेइ अमरकंका तेणेव उवा-
 गच्छइ उवागच्छिता अमरकंकां रायहाणिं अणुपविसइ अणुप-
 विसित्ता दाराइं पिहेइ पिहित्ता रोहसज्जे चिट्टइ, तएणं से कण्हे
 वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता रहं
 ठवेइ ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता वेउव्वियसमु-
 ग्घाएणं समोहणइ, एगं महं णरसीहरूवं विउव्वइ विउव्वित्ता महया
 महया सद्देणं पाददहरयं करेइ, तएणं से कण्हेणं वासुदेवेणं
 महया महया सद्देणं पाददहरएणं कएणं समाणेणं अमरकंका
 रायहाणी संभग्गपागारगोपुराट्टालयच्चरियतोरणपल्हत्थियपव-
 रभवणासिरिघरा सरस्सरस्स धरणियले सन्निवइया, तएणं
 से पउमणाभे राया अमरकंकां रायहाणिं संभग्ग जाव
 पासित्ता भीए दोवईए देवीए सरणं उवेइ तएणं सा

दोवईदेवी पउमनाभं रायं एवं वयासी—किणं तुमं देवा-
 णुप्पिया ! न जाणसि कण्हस्स वासुदेवस्स उत्तमपुरिसस्स
 विप्पियं करेमाणे ममं इहं हव्वमाणेसि, तं एवमवि गए
 गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! ण्हाए उल्लपडसाडए अवचूलग-
 वत्थणियरथे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे अग्गाइं वराइं रयणाइं
 गहाय ममं पुरओ काउं कण्हं वासुदेवं करयलपायपडिए सरणं
 उवेहि, पणिवइयवच्छला णं देवाणुप्पिया ! उत्तमपुरिसा, तएणं
 से पउमनाभे, दोवइए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता
 ण्हाए जाव सरणं उवेइ उवित्ता करयल० एवं वयासी—दिट्ठाणं
 देवाणुप्पियाणं इट्ठी जाव परक्कमे तं खामेमि णं देवाणुप्पिया !
 जाव खमंतु णं जाव णाहं भुज्जो२ एवं करणयाएत्तिकट्ठु पंज-
 लिवुडे पायवडिए कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइं देविं साहत्थि
 उवणेइ, तएणं से कण्हे वासुदेवे पउमणाभं एवं वयासी—हं
 भो पउमणाभा ! अप्पात्थियपत्थिया४ किणं तुमं ण जाणसि
 मम भगिणिं दोवइंदेवीं इह हव्वमाणमाणे तं एवमवि गए णत्थि
 ते ममाहिंतो इयाणिं भयमत्थि त्तिकट्ठुपउमणाभं पडिविसज्जेइ
 पडिविसज्जित्ता दोवइं देविं गिण्हइ गिण्हित्ता रहं दुरूहेइ दुरूहित्ता
 जेणेव पंच पंडवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पंचणहं पंडवाणं
 दोवइं देविं साहत्थि उवणेइ, तएणं से कण्हे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं
 अप्पच्छे छहिं रहेहिं लवणसमुदं मज्झं मज्जेणं जेणेव जंबूद्वीवे
 दीवे जेणेव भारहे वासे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० २९ ॥

टीका— 'तएणं से' इत्यादि। ततः खलु स पद्मनाभः 'बलवाउयं' बलव्या-
पृतं-सैन्यनायकं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव-शीघ्रमेव भो
देवानुप्रिय ! 'आभिसेकं' आभिषेक्यं प्रधानं हस्तिरत्नं 'पडिकप्पेह' प्रतिक-
ल्पय सुसज्जितं कुरु, तदनन्तरं च स बलव्यापृतः खलु "छेयायरियउवदेसमह-
विकप्पणाविगप्पेहिं" छेकाचार्योपदेशमतिविकल्पनाविकल्पैः—तत्र छेकः—निपुणः,
आचार्यः—कलाशिक्षकः, तस्योपदेशाद् या मतिं 'द्विस्तस्या विकल्पना-विचारणा,
तज्जनितो विकल्पः—विशिष्ट रचनाशक्तियेषां तः, 'जाव उवणेइ' यावद् उपत-

—:तएणं से पउमणाभे इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से पउमणाभे) उन पद्मनाभ राजा ने
(बलवाउयं सद्दावेइ) अपने सैन्य नायक को बुलाया (सद्दाविस्ता) और
बुलाकर फिर उससे (एवं वयासी) इस प्रकार कहा—(खिप्पामेव भो
देवानुप्पिया! आभिसेकं हत्थिरयणं पडिकप्पेह) हे देवानुप्रिय! तुम
शीघ्र ही प्रधान हस्तिरत्न को सुसज्जित करो। (तयाणंतरं च णं से
बलवाउए छेयायरिय उवदेसमह विकप्पणा विगप्पेहिं निउणेहिं जाव
उवणेइ) इसके बाद उस सैन्य नायक ने निपुणकला शिक्षक के उपदेश
से प्राप्त बुद्धि की कल्पना से उत्पन्न हुई है विशिष्ट रचना की शक्ति
जिन्होंने को ऐसे मनुष्य से कि जो शोभा करने में अत्यन्त निपुण थे उस
हस्तिरत्न को सुसज्जित करवाया। जब उन्होंने ने उस हस्तिरत्न को चम-
कीले निर्मल वेष से शीघ्र परिवस्त्रित-कर दिया। वज्राच्छादन द्वारा

तएणं से पउमणाभे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) तयारपछी (से पउमणाभे) ते पद्मनाभ राजा ने (बलवाउयं
सद्दावेइ) पोताना सैन्य नायकने पोलाव्यो। (सद्दाविस्ता) अने पोलावीने तेने
(एवं वयासी) आ प्रभाळ्हे कहुं छे (खिप्पामेव भो देवानुप्पिया! आभिसेकं
हत्थिरयणं पडिकप्पेह) छे देवानुप्रिय! तमे सत्परे प्रधानं हस्तिरत्नने
सुसज्जित करे। (तयाणंतरं च णं से बलवाउए छेयायरियउवदेसमहविकप्पणा
विगप्पेहिं निउणेहिं जाव उवणेइ) तयारपछी ते सैन्य नायकने निपुण कलाशिक्ष-
कना उपदेशाथी नेमळ्हे विशिष्ट रचना माटे बुद्धि तेमज्ज कल्पना शक्ति मेणवी
छे, तेमज्ज श्रृंगार कलाभां नेमळ्हे अतीव थतुर छे तेवा भाणुसेा वडे
हस्तिरत्नने सुसज्जित कराव्यो। न्यारे सत्परे तेमळ्हे ते हस्तिरत्नने चमकता
निर्मल वेषाथी परिवस्त्रित करी दीयो—वज्राच्छादन वडे आच्छादित करीने सुयो-

यति-अत्र यावच्छब्देनैव बोध्यम्-मुनिउणेहि नरेहि हस्तिरयणं परिकल्पेद्, उज्ज्वलनेवत्य ह्यवपरिवृतियं सुसज्जं इत्यादि परिकल्पित्वा ' इति मुनिपुणैः=शोभाकरणचतुरैः, नरैर्हस्तिरत्नं परिकल्पयति-शोभयति किं भूतं हस्तिरत्नं-उज्ज्वलनेपथ्यहव्यपरिवृत्तितं उज्ज्वलनेपथ्येन-छुतिमन्निर्मलवेपेण शीघ्रं परिवृत्तितः वस्त्राच्छादनमुशोभितः, तथा-सुसज्जं-घण्टाभरणादिभिः समलङ्कृतं, एवं परिकल्प्य सबलव्यापृतः पद्मनाभमृपस्यान्तिके तं हस्तिरत्नमुपनयति, आनयति । ततः खलु स पद्मनाभः सन्नद्धवद्धवर्मितकवचः - आभिषेक्य हस्तिरत्नं दूरोहति-आरोहति दूरुद्ध ह्यगजरथपदातिपरिवृतः यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैव प्राधारयद् गमनाय ।

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः पद्मनाभं राजानम् एजमानम्=आगच्छन्तं पश्यति । दृष्ट्वा च तान् पञ्च पाण्डवान् एवमवदत-हं भो ! दारकाः भो वत्साः !

आच्छादित कर सुशोभित करदिया-अर्थात्-शूल वगैरह डालकर उसे बहुत अच्छी तरह सजा दिया, तथा घंटा आभरण आदि से उसे अलङ्कृत करदिया, तब वह सैन्य नायक उस हस्ति रत्न को लेकर पद्मनाभ राजा के पास पहुँचा (तएणं से पउमणाभे सन्नद्ध० अभिसेय० दूरुहह, दूरुहिचा ह्यगय जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं से कण्हे वासुदेवे पउमणाभरायाणं एज्जमाणं पांसइ पासित्ता ते पंच पंडवे एवं वयासी) इसके बाद वह पद्मनाभ राजा सन्नद्ध, वद्ध, वर्मित कवच वाला होकर उस प्रधान हस्तिरत्न पर आरूढ हो गया और आरूढ होकर ह्य, गज, रथ, एवं पैदल सैन्य को साथ लेकर जहाँ कृष्णवासुदेव थे उस और चल दिया । जब कृष्णवासुदेव ने पद्मनाभ राजा को आता हुआ देखा तो देखकर उन्होंने ने पांच पांडवों से ऐसा कहा-(हं भो

बित करी हीधो अएले के अल वगेरे नाभीने णहुअ सरस रीते सुसन्नित करी हीधो तेभअ धंटे, आभरणा वगेरेथी तेने अलङ्कृत करी हीधो. त्यारे ते सैन्य नायक ते हस्तिरत्नने लधने पद्मनाभ राजानी पासि गथो.

(तएणं से पउमणाभे सन्नद्ध० अभिसेय० दूरुहह दूरुहिचा ह्यगय जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं से कण्हे वासुदेवे पउमणाभरायाणं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता ते पंच पंडवे एवं वयासी)

त्यारपधी ते पद्मनाभ राजा कपथ तेभअ धीना शस्त्रेथी सन्नधधने ते प्रधान हस्तिरत्न उपर सवार थध गथो अने सवार थधने घोडा, डोधी, रथ अने पायदण सेनाने साथे लधने कृष्ण-वासुदेव डता ते तरके रवाना थथो. कृष्ण-वासुदेवे त्यारे पद्मनाभ राजाने आवतो जेथो त्यारे तेने जेधने पांखे

किं खलु यूयं पद्मनाभेन सार्धं ' जुञ्जिहिह ' युध्यथ । ' उयाहु ' उताहो-अथवा ' पेच्छिहिह ' प्रेक्षध्वे, ? ततः खलु ते पञ्च पाण्डवा कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्-वयं खलु हे स्वामिन् ! युध्यामः, यूयं प्रेक्षध्वम् । ततः खलु पञ्च पाण्डवाः सन्नद्धवद्धर्मितकवचा यावद् गृहीतायुधप्रहरणाः रथान्=स्व स्व रथोपरि दूरोहन्ति=आरोहन्ति दूरोह्य यत्रैव पद्मनाभो राजा तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य एवमवदन्-'अम्हे वा पउमणाभे वा राया ' वयं वा भवामः पद्मनाभो वा राजा, इति

दारगा ! किन्तं तुम्हे पउमनाभेणं सद्धिं जुञ्जिहिह उयाह पेच्छिहिह ? तएणं ते पंडवा कर्णं वासुदेवं एवं वयासी) हे वत्सो ! क्या तुमलोग पद्मनाभ के साथ युद्ध करोगे-या युद्ध को देखोगे ? तब उन पांडवो ने कृष्णवासुदेव से इस प्रकार कहा-(अम्हेणं सामी ! जुञ्जामो, तुम्हे पेच्छह, तएणं पंच पंडवे सन्नद्ध जाव पहरणा रहे दुरुहंति, दुरुहित्ता जेजेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता एवं वयासी, अम्हे वा पउमणाभे वा रायत्ति कट्टु पउमणाभेणं सद्धिं संपलगा यावि होत्था) हे स्वामिन् ! हम तो युद्ध करेंगे-आप उस का निरीक्षण करें । इसके बाद वे पांचो पांडव सन्नद्धवद्धर्मित कवचावाले होकर यावत् आयुध प्रहरणों को ले २ कर अपने २ रथों पर सवार हो गये । सवार होकर फिर वे जहां पद्मनाभ राजा थे-उस और गये-वहां जाकर वन्हों ने पद्मनाभ राजा से इस प्रकार कहा-यां तो आज हम नहीं या पञ्-

पांडवोने आ प्रभाषे कथं-(हं भो दारगा ! किन्तं तुम्हे पउमनाभेणं सद्धिं जुञ्जिहिह उयाहु पेच्छिहिह ? तएणं ते पंच पंडवा कर्णं वासुदेवं एवं वयासी) हे वत्स ! शुं तमे पद्मनाभ राजनी साथे मेहाने उतरथो ? हे कथा युद्धने भेशो ? त्थारे ते पांडवोयो कृष्ण-वासुदेवने आ प्रभाषे कथं कै-

(अम्हेणं सामी ! जुञ्जामो, तुम्हे पेच्छह, तएणं पंच पंडवे सन्नद्ध जाव पहरणा रहे दुरुहंति, दुरुहित्ता जेजेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी, अम्हे वा पउमणाभे वा रायत्ति कट्टु पउमणाभेणं सद्धिं संपलगा यावि होत्था)

हे स्वामी ! अमे तो युद्ध भेडीशुं, तमे अमारा युद्धने लुओ. त्थार-पडी ते पांचे पांडवो कवचथी सुसन्नद्ध थधने आयुध प्रहरणोने दधने पोत पोताना रथो ङपर सवार थध गया. सवार थधने तेओ पद्मनाभ राजा तरक्ष रवाना थया. पद्मनाभ राजनी पांचे पडोन्थीने तेओ आ प्रभाषे कथं कै- " आओ कं तो अमे नडिं अने कं पद्मनाभ नडिं. " आभ कहीने तेओ पद्मनाभ राजनी साथे युद्ध करवा लाग्या.

कृत्वा=इत्युक्त्वा—पद्मनाभेन सार्धं योद्धुं संपलङ्गनाश्चाप्यभवन्, ततः खलु स पद्मनाभो राजा तान् पञ्च पाण्डवान् क्षिप्रमेव 'हयमहियपवरनिवडियचिन्ध्वजपताका' हयमथितप्रवरनिपतितचिह्नध्वजपताकान्—तत्र हयाः—अश्वा मथिता—पीडिताः, प्रवराः—प्रशस्ताः, चिह्नध्वजपताका निपातिता येषां तान्, शस्त्रास्त्रप्रहारजनित प्राप्तान् इत्यर्थः, यावद् दिशो दिशं=सर्वतः 'पडिसेहेइ' प्रतिपेधयति=प्रतिनिवर्तयति स्मेत्यर्थः। ततः खलु ते पञ्च पाण्डवाः पद्मनाभेन राज्ञा हयमथितप्रवरनिपतित यावत् प्रतिपेधिताः सन्तः 'अत्थामा' अस्थामानः—बलरहिताः, 'जाव अधारणिज्जा' अत्र यावच्छब्देन—'अवला अवीर्या' इत्यनयोः संग्रहः। अवलाः—

नाभ राजा ही नहीं" ऐसा कहकर वे पद्मनाभ राजा के साथ युद्ध करने में संलग्न हो गये। (तएणं से पउमनाभे राया ते पंच पंडवे खिप्पामेव हयमहियपवर निवडिय जाव पडिसेहिया, समाणा, अत्थामा जाव अधारणिज्ज त्ति कट्टु जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवा०, तएणं से वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी कहण्णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! पउमनाभेणं रत्ता सद्धिं संपलङ्गा ? तएणं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया। अम्हे तुब्भेहिं अब्भणुत्ताया समाणा सन्नद्धं रहे दुरूहामो २ जेणेव पउमनाभे जाव पडिसेहेइ) तब पद्मनाभ राजा ने उन पांचों पांडवों को बहुत जल्दी पीड़ित घोड़ों वाला एवं निपातित प्रशस्त चिह्नध्वज पताका वाला कर दिया। यावत् एक दिशा से दूसरी दिशा में जाने से भी उन्हें रोक दिया अथवा—एक दिशा से दूसरी दिशा में खदेड़ दिया। इस तरह वे पांचों पांडव पद्मनाभ राजा के द्वारा पीड़ित घोड़ोवाले, एवं निपातित प्रशस्त चिह्न ध्वज पताका वाले जब बन गये और एक दिशा से दूसरी दिशा में जाने से रोक दिये गये—अथवा खदेड़ दिये गये तब बलरहित बनकर यावत्

(तएणं से पउमनाभे राया ते पंच पंडवे खिप्पामेव हयमहियपवरं निवडिय जाव पडिसेहिया समाणा, अत्थामा जाव अधारणिज्ज, त्ति कट्टु जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवा०, तएणं से कण्हे वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी कहण्णं तुब्भे देवाणुप्पिया। पउमनाभेणं रत्ता सद्धिं संपलङ्गा ? तएणं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे तुब्भेहिं अब्भणुत्ताया समाणा सन्नद्धं रहे दुरूहामो २ जेणेव पउमनाभे जाव पडिसेहेइ)

त्यारपथी पद्मनाभ राज्ञे ते पांचे पंडवाने शोडा वधतमां च पीडित घोडाओवाणा तेभञ्च निपातित प्रशस्त चिह्नध्वज पताकावाणा धनावी हीधा यावत् अेक दिशाभांथी भील दिशा तरइ अर्ध शके नडि तेभ तेओअे रत्तेतो देशी लीधा. अथवा तो अेक दिशाभांथी भील दिशा तरइ लगाडी भूक्या. आवी

सन्त्यहीनाः अत्रीर्याः—आन्तरिकशक्तिरहिताः, उत्साहहीनाइत्यर्थः, तथा—अधा-
रणीयाः=आत्मानं रणभूमौ धारयितुमशक्ताः, इति कृत्वा—इति विचार्य, यत्रैव
कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपागच्छन्ति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवस्तान् पञ्च
पाण्डवान् एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादीत्—‘ कृष्णं ’ कथं खलु यूयं हे देवानु-
प्रियाः ! पञ्चनाभेन राज्ञा सार्धं योद्धुं सम्प्रळग्नः ?; ततः खलु ते पञ्च पाण्डवाः
कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! वयं युष्माभिरभ्यनुज्ञाताः
सन्तः सन्नद्धवद्व्यभिर्भक्तकवचाः रथान् ‘ दुरुहामो ’ दूरोहामः—आरोहामः आरूढाः,
आरूढ्य यत्रैव पञ्चनाभस्तत्रैव गत्वा युद्धाय सम्प्रळग्नः; ततः पराजयं प्राप्ता यावत्
प्रतिषेधिता ’ इति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवस्तान् पञ्च पाण्डवान् एवमवा-

रणभूमि में अपने आपको टीका ने में भी असमर्थ जानकर जहाँ कृष्ण-
वासुदेव थे वहाँ आये । वहाँ पहुँच तेही कृष्णवासुदेवने उनसे—उन पाँचो
पाण्डवों से—इस प्रकार कहा—जब आपलोग पराजित हो गये तो पञ्च-
नाभ राजा के साथ युद्धरत हुए—लड़े—तब उन पाँचो पाण्डवो ने कृष्ण-
वासुदेव से इस प्रकार कहा, हे देवानुप्रिय ! हमलोगो ने आप से अभ्य-
नुज्ञान होकर ही कवच आदि से सुसज्जित हो रथों पर आरोहण
किया, और आरोहण कर जहाँ पञ्चनाभ राजा था वहाँ हमलोग पहुँचे ।
वहाँ पहुँचकर हमलोग उनके साथ युद्धरत हो गये । बाद में पराजित
हो गये । और पराजित होकर फिर ऐसे बन गये जो उसने हमें एक
दिशा से दूसरी दिशा में खदेड़ दिया या जाने से रोक दिया । (तपणं
से कण्हे वासुदेवे ते पं पं.) तब कृष्णवासुदेव ने उन पाँचो पाण्डवो से

परिस्थितिमां दात्वार यधने यावत् युद्धभूमिमां पोतानी नतने टकायी शक-
वामां पण्य असमर्थं नष्णीने पांचे पांडवो न्यां कृष्ण-वासुदेव हुता त्यां
आग्या. त्यां पडोयतां न कृष्ण-वासुदेवे पांचे पांडवोने आ प्रभाण्ये कहुं के
तमे दोडे पञ्चनाभ राजनी साथे युद्धरत यधने परालत यध गया छे ? त्यारे
ते पांचे पांडवोअे कृष्ण-वासुदेवने आ प्रभाण्ये कहुं के हे देवानुप्रिय ! अमे
अधा आपनी आज्ञा मेणवीने कवच वगेरेथी सुसज्जित यधने रथे उपर
सवार थया. सवार यधने अमे न्यां पञ्चनाभ राज हुतो त्यां गयो. त्यां
पडोयतीने अमे अधा तेनी साथे युद्ध करवा दाग्या अने तेने परिष्ठासे अमे
हारी गया छीअे. हार पानीने अमे अेवी लयंकर परिस्थितिमां सपडाध
गया हुता के नेथी अेक दिशा तरकथी नील दिशा तरक नवामां पण्य असमर्थं
यध गया अथवा तो तेले अमने अेक दिशाभांथी नील दिशा तरक भगडी
भूकथा छे. (तपणं से कण्हे वासुदेवे ते पं पं.) त्यारे कृष्ण-वासुदेवे ते पांच
पांडवोने आ प्रभाण्ये कहुं के—

दीत्-यदि खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! पूर्वमेवं वक्तारो भवत, 'अम्हे, ' णो पउमणाभे राया ' इति ' वयं भवामः, नो पञ्जनाभो राजा ' इति ' वयमेवजेव्यामो न तु पञ्जनाभो राजा ' इत्यर्थः. तथा-यदि पूर्वम्-इति कृत्वा-इत्येवं निश्चयं मनसि निधाय, पञ्जनाभेन सार्धं 'संपलगंता ' युद्धाय संपलगना भवत, ' तो णं ' तर्हि खलु ' तुम्हे, णो पउमणाहे ' यूयं नो पञ्जनाभः-यूयमेव जेतारो भवेत्, न तु पञ्जनाभः, तथा यूयं तं हयमथितश्वरनिपतित चिह्नध्वजपताकं यावत्-पञ्जनाभं ' पडिसेहंते ' प्रतिषेधयेत्-प्रतिनिवर्तयेत् । तत्-तस्मात् ' पेच्छह ' प्रेक्षध्वं, खलु

इस प्रकार कहा-(जहणं तुम्हे देवानुप्पिया । एवं वयंता अम्हे णो पउमणाभे राय त्ति कद्दु पउमनाभेणं सद्धिं संपलगंताओ णं तुम्हे णो पउमणाहे, हय-महिय-पवर-जावःपडिसेहंते, तं पेच्छह णं तुम्हे देवानुप्पिया । अहं णो पउमणाभे राय त्ति कद्दु पउमनाभेणं रन्ना सद्धिं जुज्झामि, रं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सेयं गोखीरहारधवलंतणसोल्लियसिंदुवारकुंदेदु सन्निगासं निययबलस्स हरिसज्जणं रिउसेण्णविणासकरं पंचजणं संखं परामुसह) हे देवानुप्रिय ! तुम तो पहिले ऐसा कहते थे कि हम जीतेगे, पद्मनाभ राजा नहीं जीतेगा-और ऐसा ही मन में विचार कर-निश्चय कर-तुम लोगों ने पद्मनाभ राजा के साथ युद्ध करना प्रारंभ किया-तो तुम लोगों को ही जीतना चाहिये था । पद्मनाभ राजा को नहीं-और तुम्हीं लोग उसे पीड़ित घोड़ों वाला एवं निपातितप्रश-

(जहणं तुम्हे देवानुप्पिया ! एवं वयंता अम्हे णो पउमणाभे राय त्ति कद्दु पउमनाभेणं सद्धिं संपलगं ताओ णं तुम्हे णो पउमणाहे, हयमहियपवर जाव पडिसेहंते, तं पेच्छह णं तुम्हे देवानुप्पिया ! अहं णो पउमणाभे रायत्ति कद्दु पउमनाभेणं रन्ना सद्धिं जुज्झामि, रं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेयं गोखीरहारधवलंतणसोल्लियसिंदुवार कुंदेदु सन्निगासं निययबलस्स हरिसज्जणं रिउसेण्णविणासकरं पंचजणं संखं परामुसह)

हे देवानुप्रिय ! तमे तो पडेवेधी अ आ प्रभाणे डडेता हता के अये अतीशुं, पञ्जनाभ राजा अतसे नहि. अने आ प्रभाणे विचार करीने अ तमे दोडोअे पञ्जनाभ राजनी साथे युद्धनी शउआत करी हती, आवी परिसिधभां तो तमादे अत भेजववी न्नेधअे. पञ्जनाभ राजनी अत नहि थवी न्नेधअे तमे दोडो तेने पीडित बोडाओवाणे अनावत, तभने ते नहि पणु आ अधी तमारी मननी धउअ सङ्ग थउ शरी नहि. अेधी हे देवानुप्रियो ! उवे शुओ,

यूयं हे देवानुप्रियाः । ' अहं नो पद्मनाभे राया ' ' अहं नो पद्मनाभो राजा ' = अहमेव जेता भवामि, न तु पद्मनाभो राजा, इति कृत्वा पद्मनाभेन राज्ञा सार्धं युध्यामि, इत्युक्त्वा रथं ' दुरूहइ ' दूरोहति-आरोहति-स कृष्ण वासुदेवः पद्मनाभेन सह योद्धुं रथमारूढवान् इत्यर्थः । आरूढ्य यत्रैव पद्मनाभो राजा तत्रैवो पागच्छति, उपागत्य ' सेयं ' श्वेतं-गोक्षीरहारधवलं=गोदुग्धवत्-हारवच्च धवलं शुक्लं ' तणसोल्लिपसिंदुवारकुंदेंदुसन्निगासं ' ' तणसोल्लिपा ' मल्लिक्ता अयं देशीयः शब्दः सिन्दुवारो=निर्गुण्डी, कुन्दं-कुन्दनाम्ना प्रसिद्धः श्वेतपुष्पविशेषः, इन्दुश्चन्द्रस्तद्वत् संनिकाशः-प्रभा यस्य स तं, निययवलसस ' निजकवलस्य स्वकीयसेनाय ' हरिसज्जणं ' हर्षजननं-हर्षोत्पादकं, ' रिउसेण विणासरं ' रिपुसैन्य विनाशकरं=शत्रुसैन्यबलहारकं पाञ्चजन्यं शङ्खं पाञ्चजन्यनामकं शङ्ख ' परामुसई'परा-मृशति हस्ते गृह्णाति, परामृशय ' मुहवायपूरियं करेइ ' मुखवातरूति मु ववातेन धमातं करोति-वादयतीत्यर्थः । ततः खलु तस्य पद्मनाभस्य तेन गङ्गशब्देन ' बल-

स्त चिह्नध्वज पताका चाला बनाते-वह तुम्हें ऐसा नहीं बनाना-परन्तु ऐसा तुम लोगों का मन में धारा विचार सफली भूत नहीं हुआ अतः देवानुप्रियो ! अब देखो-मैं 'उसके साथ युद्धरत होता हूँ इसमें मैं ही जीतूंगा पद्मनाभ राजा नहीं । ऐसा कहकर वे कृष्णवासुदेव रथपर सवार हो गये । और सवार होकर वे वहाँ पहुँचे जहाँ पद्मनाभ राजा था । वहाँ पहुँच कर उन्होंने ने अपने पांचजन्य श्वेतशंख को जो अपनी सेनाको हर्ष का जनक एवं शत्रु सेना का संहारक था एवं गोक्षीर तथा हार के जैसा धवल वर्णवाला था उठाया । इसकी प्रभा मल्लिका निर्गुण्डी कुंदपुष्प एवं चन्द्रमाके जैसी उज्ज्वल थी । (परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ) उसे उठाकर उन्होंने ने मुँह से बजाया-(तएणं तसस पद्मनाहास्स तेणं संखसडेणं बलइभाए हय जाव पडिसेहिए) तब उस पद्मनाभ की सेना

तेनी साथे हुं डवे मेदने पडुं छुं आभां विजय भने ज प्राप्त थये, पद्मनाभ राजने नडि. आभ कहीने कृष्ण-वासुदेव रथ उपर सवार थड गथा अने सवार थडने जथां पद्मनाभ राज डतो त्यां पडोअथा. त्यां पडोअथीने तेभणु पोताना पांचजन्य सडेइ श'भने-के जे तेमनी सेना भाटे डधोत्पादक तेमज शत्रुओनी सेना भाटे स'डार इप डतो तथा गायना इध अने डारना जेवो सडेइ डतो-डथभां दीधो. ते श'भनी डंति मदिलका नियुंठी कुंइ पुष्प अने य-द्र जेवी डती. (परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ) लधने तेभणु सुभथी वगाडथो. (तएणं तसस पद्मनाहास्स तेणं संखसडेणं बलइभाए हय जाव पडिसेहिए) ते वथते ते पद्मनाभ राजनी सेनानो त्रिभाग श'भना

तिभाए हते ' बलत्रिभागो हतः-सैन्यस्य तृतीयांशो हतमथित यावत् दिशोदिशं प्रतिषेधितः-प्रतिनिवृत्तः पलायित इत्यर्थः । ततस्तदनन्तरं खलु स कृष्णो वासु-
देवो धनुः परामुशति शृङ्गाति, परामुश्य ' वेदो ' वेष्टः वर्णकः धनुर्विषयकं वर्णनं
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तितो विज्ञेयमित्यर्थः, ' धणुं पूरेइ ' धनुः पूरयति धनुषि गुणमारो-
पयति पूरयित्वा धनुः शब्दं करोति ततः खलु तस्य पञ्चनाभस्य द्वितीयवारं ' बल-
तिभाए ' बलत्रिभाग बलस्य सैन्यस्य तृतीयोभागस्तेन धनुः शब्देन ' ह्यमहिय
पवरनिवडिय चिन्धद्वयपडागे ' ह्यमथितप्रवरनिपतितचिह्नध्वजपताको यावद्

का त्रिभाग उस शंख के शब्द से हत हो गया मथित हो गया यावत्
एक दिशा से दूसरी दिशा की तरफ भाग गया । तएणं से कण्हे वासु-
देवे धणुं परामुसइ, वेदोधणुं पूरेइ, पूरित्ता धणुसइ करेइ) इसके बाद
कृष्ण वासुदेवने धनुष को उठाया । इस धनुष का वर्णन जंबूद्वीप प्रज्ञ-
प्ति में किया गया है । सो वहां से जानना चाहिये उठाकर उन्होंने उस
पर ज्या का आरोपण किया फिर उसे चढाया-सो उससे शब्द हुआ
(तएणं तस्स पउमनाभस्स दोच्चे बलइभाए तेणं धणुसइणं ह्यमहिय
जाव पडिसेहिए, तएणं से पउमणाभे राया तिभागबलावसेसे अत्था
मे अबळे, अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जत्ति कट्टु सिगं
तुरियं जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ) तब उस पद्मनाभ राजा
की सैन्य का तृतीयभाग उस धनुष के शब्द से हत हो गया, मथित
हो गया, उस की प्रवर चिन्ह स्वरूप ध्वजापताकाएँ सब गिर गईं यावत्

शब्दथी अ हत थई गथे, मथित थई गथे यावत् अके दिशा तरइथी भीअ
दिशा तरइ नाशी गथे । (तएणं से कण्हे वासुदेवे धणुं परामुसइ, वेदो धणुं
पूरेइ, पूरित्ता धणुसइ करेइ) त्थारपथी कृष्ण-वासुदेवे धनुष उठांथुं. आ
धनुषतुं वणुंन जंबूद्वीप प्रज्ञप्तिमां करवामां आंथुं छे. निज्ञासुओअे त्थांथी
भाएँ लेवुं लेथअे. उठावीने तेओअे तेनी उपर प्रत्यंआ अढावी. त्थारपथी
धनुषने अढांथु अने तेनाथी शब्द थथे—

(तएणं तस्स पउमनाभस्स दोच्चे बलइभाए तेणं धणुसइणं ह्यमहिय जाव
पडिसेहिए, तएणं से पउमणाभे राया तिभागबलावसेसे अत्थाभे अबळे,
अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जत्ति कट्टु सिगं तुरियं जेणेव अमर-
कंका तेणेव उवागच्छइ)

ते पञ्चनाभ राजनी सेनानो त्रीअे लाग ते धनुषना शब्दथी अ हत थई
गथे, मथित थई गथे, तेनी प्रवर चिह्न-स्वरूप ध्वज पताकाओ अथी पडी

दिशो दिशं प्रतिपेक्षितः, ततः खलु स पञ्चनाभो राजा ' तिमागवलावसेसे ' त्रिभागवलावशेषः तृतीयांशावशिष्टसैन्यवाचं सन् अस्थामा, अवलः, अवीर्यः, अस्थामेत्यादि प्राग्व्याख्यातम् अपुरुषकारपराक्रमः—पौरुषपराक्रमरहितः, अधारणीयः—प्राणान् धारयितुमशक्तः, इति कृत्वा=इति विचार्य शीघ्रं त्वरितं यत्रैवा मरकंका तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अमरकंकां राजधानीमनुप्रविशति, अनुपविश्य द्वाराणि ' पिहेइ ' विधत्ते, रोधसज्जः=दुर्गं निरुध्य तिष्ठति, ततः खलु स कृष्णो

वह एकदिशा से दूसरी दिशा में आग गया अथवा भागने में असमर्थ बन गया। इस के बाद तृतीयांशावशिष्ट सेना वाला होकर वह पद्मनाभराजा बल रहित हो गया, पर्याप्त सैन्य रहित हो गया एवं अन्तरिक शक्ति-उत्साह हीन हो गया। अतः वह पौरुष पराक्रम से रहित होने के कारण रणभूमि में ठहरने के योग्य नहीं रहा। अथवा प्राणों को धारण करने में भी असमर्थ बन गया। इसलिये वह वहाँ से शीघ्र बढ़ी उतावली से जहाँ अमरकंका नगरी थी वहाँ आ गया। (उवागच्छिता अमरकंकां रायहाणि अणुपविसिह, अणुपविसित्ता दाराइं पिहेइ पिहित्ता रोहसज्जे चिट्ठह, तएणं से कण्हे वासुदेवे, जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छह) वहाँ आकर वह अमरकंका राजधानी में गया। जाकर उसने दरवाजोंको बंद करवा दिया। बंद करवाकर फिर वह अपने दुर्ग (किल्ला)की रक्षा करता हुआ वहाँ ठहरा। इसके बादकृष्णवासुदेव

गर्भ यावत् ते सेनानो भाग अेक दिशा तरक्षथी भीशुदिशा तरक्ष नाशी गथे। अथवा तो ते नाशी ज्वाभां पणु असमर्थं थं गथे। त्थारपथी त्रीन भाग जेट्ठी सेना ज् जेनी भासे रही छे अेवे। ते पञ्चनाभ राज्ञ साव निर्णण थं गथे, पर्याप्त सैन्य रहित थं गथे अने आंतरिक शक्ति-उत्साह रहित थं गथे। ते पौरुष पराक्रम वगर्ने। थं ते रणभूमिभां टकी शके तेम पणु रहो नहि अथवा तो ते प्राणोने धारणु करवाभां पणु असमर्थं थं गथे। अथी ते सत्वरे न्यां अमरकंका नगरी छती त्यां आवी गथे।

(उवागच्छिता अमरकंकां रायहाणि अणुपविसिह, अणुपविसित्ता-दाराइं पिहेइ, पिहित्ता रोहसज्जे चिट्ठह, तएणं से कण्हे वासुदेवे, जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छह)

त्यां आवीने ते अमरकंका राजधानीभां गथे, त्यां ज्जने तेणु दरवाजांने अंध करवी छिधा। अंध करवीने ते चेताना दुर्गनी रक्षा करतां त्यां रक्षाथे। त्थारपथी कृष्ण-वासुदेव न्यां ते अमरकंका नामे नगरी छती त्यां

वासुदेवो यत्रैवामकङ्का तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य रथं स्थापयति, रथात् प्रत्यव-
रोहति प्रत्यवरोह, ' वेउञ्चियसमुग्धाएणं ' वैक्रियसमुद्घातेन वैक्रियशरीरं निर्मातुं
मात्मप्रदेशानां बहिर्निं सारणेन खलु ' समोहणइ ' समुद्घातं करोति समुद्घन्ति
एकं महत् ' णरसीहरुवं ' नरसिंहरूपं ' विउव्वइ ' विकुर्वते दिव्यसामर्थ्येन
करोति विकुर्व्यं महता २ शब्देन ' पाददहरयं ' पादददररं=भूमौ चरणाघातं
करोति, ततः खलु स कृष्णेन वासुदेवेन महता २ शब्देन पादददररंकेण=भूमौ
चरणाघातेन कृतेन सता अमरकङ्काराजधानी ' संभगपागारगोपुराट्टालयचरिय-
तोरणपलहत्थिय पन्नभवणसिरिधरा ' सम्भग्नप्राकारगोपुराट्टालकचरिकातोरणपर्य-
स्तितपन्नभवणश्रीयुहा=तत्र संभगानि-प्राकारश्च गोपुराणि च अट्टालकाश्च चरिका

जहांवह अमरकंका थी वहां गये(उवा०) वहां जाकर के (रहं ठवेइ,
ठवित्ता रहाओ पचोरुहइ, पचोरुहित्ता वेउञ्चियसमुग्धाएणं समोह-
णइ) उन्होंने अपने रथको खड़ा किया-खड़ा करके फिर वे उससे नीचे
उतरे। नीचे उतर कर वैक्रिय समुद्घात किया। वैक्रियशरीरको निर्माण
करने के लिये जो आत्मप्रदेशों का बाहिर निकालना होता है-उसको
नम वैक्रिय समुद्घात है। (एगं महं णरसिहरुवं विउव्वइ विउञ्चित्ता
महया २ सदेणं पाददहरणं कएणं समाणेणं अमरकंका रायहाणी संभग
पागारगोपुराट्टालचरियतोरणं पलहत्थियपन्नभवणसिरिधरा सरस्स-
रस्स धरणियले संन्निवइया) इस समुद्घातके द्वारा उन्होंने एक विशाल
काय नरसिंहरूप की विकुर्वणा की नरसिंहरूप की विकुर्वणा करके
अपनी अयंकर गर्जना से भूमि पर चरणों द्वारा आघात किया। इस
तरह गर्जना पूर्वक किये गये चरणाघात से अमरकंका राजधानी की

गया. (उवा०) त्या ञ्ठने (रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पचोरुहइ, पचोरुहित्ता
वेउञ्चियसमुग्धाएणं समोहणइ) तेभल्ले पोताना रथने ङ्ठले राभ्ये, ङ्ठले
राणीने तेअो तेभांधी नीथे उतरथो. नीथे उतरिने तेभल्ले वैक्रिय समुद्घात कथो.
वैक्रिय शरीरने भनाववा माटे ने आत्मप्रदेशेने भडार कडवाभां आवे छे ते
वैक्रिय समुद्घात कडेवाय छे.

(एगं महं णरसिहरुवं विउव्वइ, विउञ्चित्ता महया २ सदेणं पाददहरणं
कएणं समाणेणं अमरकंका रायहाणी संभगपागारगोपुराट्टालयचरियतोरणं
पलहत्थियपन्नभवणसिरिधरा सरस्सरस्स धरणियले संन्निवइया)

आ समुद्घात वडे तेभल्ले अेक विशाल काय नरसिंह रूपनी विकुर्वण्णा
करी. नरसिंह रूपनी विकुर्वण्णा करीने पोतानी अयंकर गर्जनाथी भूमि उपर
अरल्लोाने आघात कथो. आ रीते गर्जनापूर्वकं कसथेत्ता अरल्लोधातथी अमर-

च तोरणानि च यस्यां सा तथा, तत्र गोपुराणि-प्रतोलयः अट्टालकाः-प्राकारो-परिस्थान् विशेषाः, चरिका-नगरप्राकारान्तरेऽष्टहस्तोमार्गः। तथा-पर्यस्तितानि-सर्वतः क्षिप्तानि मवरभ्रवनानि श्रीगृहाणि-भण्डागाराणि कोशागाराणि च यस्यां सा तथा, ततो द्विपदः कर्मधारयः। कृष्णवासुदेवेन भूमौ चरणाघातशब्देन अमर-कंकाराजधान्याः प्राकारगोपुरादिकं विध्वंसितमित्यर्थः, तथा-'सरस्सरस्स' अनुकरणशब्दोऽयम् निपतनक्रियाविशेषणं धरणितले संनिपतिता=अमरकंकां राजधानी सरस्सरस्सेति शब्दं कुर्वाणा भूमौ पतितेत्यर्थः। ततः खलु स पद्मनाभो राजा अमरकंकां राजधानीं संभ्रममाकारादिकां यावत्-धरणितले संनिपतितां दृष्ट्वा भीतः त्रस्तः, उद्विग्नः, संजातभयः, द्रौपद्या देव्याः शरणमुपैति प्राप्नोति, ततः खलु सा द्रौपदी देवी पद्मनाभं राजानमेवमवादीत्-किं खलु त्वं हे देवानु-प्रिय ! न जानासि कृष्णस्य वासुदेवस्योत्तमपुरुषस्य विभियं कुर्वन् मामिह अत्र

गलियों को अटारियों को, चरिकाओं को, श्री गृहों को कोशागारों को श्री कृष्ण ने ध्वंस करदिया। तथा वह अमरकंका राजधानी भी सरसर शब्द करती हुई उस गर्जना पूर्वक किये गये चरणाघात से जमीन पर गिर पड़ी। (तएणं से पउमणांसे राया, अमरकंका रायहारिणं संभग-जाव पासित्ता, भीए दोवईए देवीए सरणं उवेइ) तब पद्मनाभ राजा अमरकंका राजधानी को प्राकार गोपुर आदि की ध्वस्त अवस्थावाली देखकर अत्यन्त भीत हुआ त्रस्त हुआ, उद्विग्न हुआ। और संजात-भय संपन्न होकर द्रौपदी देवी की शरण में पहुँचा। (तएणं सा दोवई देवी, पउमनाभं रायं एवं वयासी) तब उस द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ राजा से इस प्रकार कहा-(किण्णं तुमं देवानुपियया ! न जानासि कण-

कंका राजधानीनी शैरीओने, अटारीओने, चरिकाओने, श्रीगृहोने, कोशा-गारेने श्रीकृष्णे नष्ट करी नाभ्या तेभञ्ज ते अमरकंका राजधानी पथु सरसर शब्द करती गर्जनापूर्वक करवाभां आवेला चरणाघातधी जमीनहोस्त थर्ध गर्ध.

(तएणं से पउमणांसे राया, अमरकंका रायहारिणं संभग जाव पासित्ता, भीए दोवईए देवीए सरणं उवेइ)

पद्मनाभ राज अमरकंका राजधानीना प्राकार, गोपुर वजेरेना विनाश जेधने भूषण लयलीत थर्ध गये, त्रस्त थर्ध गये तेभञ्ज उद्विग्न थर्ध गये अने संभतलय संपन्न थर्धने द्रौपदी देवीनी शरणे पडेण्ये। (तएणं सा दोवई देवी पउमनाभं रायं एवं वयासी) त्वारे ते द्रौपदी देवीजे पद्मनाभ राजाने आ प्रभाण्णे कळुं के-

हृद्यं-शीघ्रम् आनयसि-आनीतवानसि तत्-तस्मात्-‘ एवमवि गए ’ एवमपि गते-इत्थंममापरहणे कृतेऽपि, गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! स्नातः ‘ उल्लपडसाडए ’ आर्द्रपट्टसाटकः स्नानेनाऽऽर्द्रीकृतोत्तरीयपरिधानवस्त्रधारी ‘ अवचूलगवत्थणियत्थे ’ अवचूलकवस्त्रणियत्थः=अवचूलकम्-अधोमुखं नीचैर्लम्बमानं चूलं-वस्त्राञ्चलं-वस्त्रमासं यथा भवति तथा ‘ णियत्थं ’ परिहितं वस्त्रं येन स तथा-स्त्रीणां परिधानसिव चरणपर्यन्तलम्बितवस्त्रान्तं यथास्यात्तथा परिहितवस्त्र इत्यर्थः । ‘ अंतेउरपरियालसंपरिवुडे ’ अन्तःपुरपरिवारसंपरिवृतः=स्त्री परिवारेण सहितः, ‘ अग्गाइं ’ अग्र्याणि वराणि रत्नानि गृहीत्वा मां पुरतः ‘ काउं ’ कृत्वा कृष्णं

स्स वा सुदेवस्स उत्तमपुरिस्सस्स विप्पि यं करे माणे ममं इह हव्वमाणेसि) हे देवानुप्रिय । क्या तुम उत्तम पुरुष कृष्णवासुदेव को नहीं जानते हो जो उनको अनिष्ट कर तुम मुझे यहाँ ले आये हो । (तं एवमविगए गच्छहणं तुमं देवानुप्पिया ! णहाए उल्लपडसाडए अवचूलगवत्थणियत्थे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे, अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय, ममं पुरओ, काउं कण्हं वासुदेवं करयलपायपडिए सरणं उवेहि) खैर अब इस बात को जाने दो-हे देवानुप्रिय । तुम स्नान करो, और गीले वस्त्र पहिने हुए ही श्री कृष्णवासुदेव की शरण में जाओ । जाते समय तुम स्त्रियों के परिधान के समान चरण पर्यन्त लटकते हुए वस्त्र पहिनकर जाना । अकेले मत जाना किन्तु अपने अंतःपुर की समस्त स्त्रियों को साथ में ले जाना । रीते हाथ भी मत जाना किन्तु भेट निमित्त वेश कीमती रत्नों को लेकर और मुझे आगे करके चलना ।

(किष्णं तुमं देवाणुप्पिया । न जाणासि कण्हस्स वासुदेवस्स उत्तमपुरिस्सस्स विप्पियं करेमाणे ममं इह हव्वमाणेसि)

हे देवानुप्रिय ! शुं तमे उत्तम पुरुष कृष्ण-वासुदेवने ओणभता नथी. मने अर्द्धी लावीने तमे तेमंतुं अ अनिष्ट कथुं छे.

(तं एवमविगए गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! णहाए उल्लपडसाडए अवचूलगवत्थणियत्थे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे, अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय, ममं पुरतो, काउं कण्हं वासुदेवं करयलपायपडिए सरणं उवेहि)

जेर, छोडो ओ वातने. हे देवानुप्रिय ! तमे हने स्नान करे अने धीना वओथी अ श्रीकृष्ण वासुदेवनी शरणमां लओ. जती वभते तमे ओओना परिधान (अङ्घ्रिया) नी ओमओ पग सुधी लटकता वओ पडेरले. तमे ओकला जता नडि परंतु रणुवासनी अर्धी ओओने साथे लधने ओओ. तमे भावी छथे तेमनी पासे जता नडि पणु कंधक सेठ स्वरूप किमती वओने लधने

वासुदेवं ' करयलपायपडिण ' करतलपादपतितः—संयोजितकरतलद्वयः, पादयोः पतितः सन् शरणं उपैहि—त्रायस्वमामितिषदन् उपगतो भवेत्यर्थः । हे देवानु-
प्रिय ! ' पणिब्रह्मवच्छला ' प्रणिपतितवत्सला—चरणोपरिनिपतितानां वत्सलाः
स्नेहवन्तः खलु उत्तमपुरुषाः भवन्ति प्रणामगात्रेण महापुरुषाः प्रसीदन्तीत्यर्थः ।
तनस्तदनन्तरं स प्रब्रह्मनाभो राजा द्रौपद्या देव्या एतमर्थं=उक्तकथनरूपमर्थं प्रति-
श्रुगोति—स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य रनातो यावत् शरणमुपैति द्रौपदीवचनमनुसृत्य
प्रब्रह्मनाभो राजा कृष्णवासुदेवस्य शरणमुपगत इत्यर्थः । उपेत्य करतलपरिगृहीत-
दशनखं शिर आवर्त मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अमादीद्=दृष्ट्वा

बहानं पहुँच कर तुम दोनों हाथ जोड़ कर उनके चरणों में गिर जाना
(पणिब्रह्मवच्छला णं देवाणुप्पियां उत्तमपुरिसां तएणं से पउमनाभे दोवइए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता पहाए जाव सरणं उवेइ,
उवित्ता, करयल० एवं वयासी दिट्ठाणं देवाणुप्पियाणं इड्डी, जाव परक्कमे तं स्वामेमि णं देवाणुप्पिया ।) हे देवाणुप्रिय ! उत्तम पुरुष जो हुआ
करते हैं वे प्रणिपतितवत्सल हुआ करते हैं—प्रणाममात्रसे महापुरुष प्रसन्न
हो जाया करते हैं—अर्थात् नमन करनेवालेको वे नहीं मारते तब प्रब्रह्मनाभ
राजाने द्रौपदी देवीके इस शिक्षाप्रद कथनरूप अर्थको स्वीकार कर लिया ।
स्वीकार कर बादमें उसने स्नान किया, यावत् वह द्रौपदीके कहें अनुसार
कृष्णवासुदेव की शरणमें पहुँच गया । शरण में पहुँच कर उसने अपने
दोनों हाथों को जोड़कर अंजलि बनाई और आदक्षिण प्रदक्षिण करके
उसे शिरपर रखा । फिर इस प्रकार बोला—आप देवानुप्रियकी मैंने ऋद्धि

तेमजे भने आगण राभीने आदले. त्यां पडोंचीने तसे अने हाथ लेडीने
तेमना पगे पडले.

(पणिब्रह्म वच्छलाणं देवाणुप्पियां उत्तमपुरिसां, तएणं से पउमनाभे दोवइए
देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता पहाए जाव सरणं उवेइ, उवित्ता करयल०
एवं वयासी, दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं इड्डी जाव परक्कमे तं स्वामेमि णं देवाणुप्पिया ।)

हे देवानुप्रिय ! उत्तम पुरुषो तेमनी सामे विनम्र थयेला भावुसो प्रत्ये
अकथम वत्सल थर्ध नथ छे. इकत नमस्कार करवाथीजे तेआ प्रसन्न थर्ध नथ
छे. आ अधुं सांभणीने पब्रह्मनाभ राजाये द्रौपदीना आ शिक्षाप्रद कथन इप
अर्थने स्वीकारी लीधो. स्वीकार करीने तेणे स्नान कथुं यावत् ते द्रौपदीना
कथा सुश्रुणजे कृष्ण-वासुदेवनी शरणुमां गथो. शरणुमां नथने तेणे चोताना
अने हाथ लेडीने अंजलि अनावी अने आदक्षिण प्रदक्षिणा करीने तेना भाशा
उपर भूडी अने त्पारभाड ते आ प्रमाथे कडेवा लाग्यो हे-देवानुप्रिय ! तमाडी

खलु देवानुप्रियाणाम् ऋद्धिर्यावत् पराक्रमः—तत्—तस्मात् क्षमयामि खलु हे देवानुप्रियाः ! यावत् क्षमन्तु खलु यावत् नाहं भूयो भूयः एवं करणतया—पुनरेवं न करिष्यामि, इति कृत्वा—इत्युक्त्वा—‘पंजलिबुडे’ प्राञ्जलिपुटः—संयोजितकरतलद्वयः पादपतितः कृष्णस्य वासुदेवस्य द्रौपदीं ‘साहस्यि’ स्वहस्तेन, उपनयति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः पद्मनाभमेवमवादीत्—हं भोः ! पद्मनाभ ! अप्रार्थितप्रार्थित !—हे मरणवाञ्छक ! ४ किं खलु त्वं न जानासि मम भगिनीं द्रौपदीं देवीमिहहव्यमानयन्, ‘तं’ तत्—तस्मात्—‘एवमवि गए’ एवमपिगते अनेन प्रकारेण शरणं प्राप्ते सति, नास्ति ते तव मद्भयमिदानीमिति कृत्वा प्रतिविसर्जयति । प्रतिविसृज्य द्रौपदीं देवीं गृह्णाति, गृहीत्वा रथं दूरोहति—आरोहयति

देखली, यावत् पराक्रम देख लिया। हे देवानुप्रिय ! मैं अपने अपराध की क्षमा मांगता हूँ। (जाव खमंतु) यावत् आप मुझे क्षमा दें। (णं जाव णाहं मुञ्जो २ एवं करणाए) अब मैं पुनः ऐसा नहीं करूंगा। (त्ति कद्दु पंजलिबुडे पायवडिए कणहसस वासुदेवसस दोवइं देविं साहस्यि उवणेइ) इस प्रकार कहकर वह दोनों हाथ जोड़ उन कृष्णवासुदेव के पैरों पर गिर पड़ा और अपने हाथ से ही उसने फिर उनके लिये द्रौपदी सौंपदी। (तएणं से कणहे वासुदेवे पउमणाभं एवं वयासी—हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया ४ किण्णं तुमं ण जाणासि मम भगिणि दोवइं देविं इह हव्व माणमाणे तं एवमविगए, णत्थि ते ममाहितो इयाणिं भयमत्थि त्ति कद्दु पउमणाभं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जिन्ता दोवइं देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता रहं दुरूहेइ, दुरूहित्ता जेणेव

मे’ ऋद्धि नोष्ठं वीधी छे, यावत् तभाइं पराक्रम पथु मे’ नोष्ठं वीधी छे. हे देवानुप्रिय ! हुं मारा अपराध भदक क्षमा मांशु छु’ (जाव खमंतु) यावत् तमे भने क्षमा करे। (णं जाव णाहं मुञ्जो २ एवं करणाए) હવે ફરી હું આહું કદાપિ નહિ કહું (ત્તિ કદ્દુ પંજલિબુડે પાયવડિએ કણહસસ વાસુદેવસસ દોવઈં દેવિં સાહસ્યિ) આ પ્રમાણે કહીને તે બને હાથ નોડીને કૃષ્ણ—વાસુદેવના પગોમાં આગોટી ગયો અને ત્યારપછી તેણે પોતાના હાથથી જ દ્રૌપદી તેમને સોંપી દીધી.

(तएणं से कणहे वासुदेवे पउमणाभं एवं वयासी—हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया ४ किण्णं तुमं ण जाणासि मम भगिणिं दोवइं देविं इह, हव्व माणमाणे त एवमपि गए, णत्थि ते ममाहितो इयाणिं भयमत्थि त्ति कद्दु पउमणाभं पडिविसज्जेइ पडिविसज्जिन्ता दोवइं देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता रहं दुरूहेइ,

आरोह यज्ञैव पञ्च पाण्डवास्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पञ्चानां पाण्डवानां द्रौपदीं देवीं 'साहर्त्वि' स्वहस्तेन, उपनयति=ददाति । ततः खलु स कृष्णः पञ्चभिः पाण्डवैः मार्धमात्मपष्ठः षड्भूमिरथैर्लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन यज्ञैव जम्बूद्वीपो द्वीपः, यज्ञैव भारतं वर्षं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय=गन्तुं प्रवृत्तः ॥ सू० २९॥

पंच पंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचणहं पंडवाणं दोवइं देविं साहर्त्वि उवणेइ) तब कृष्णवासुदेव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा अरे ओ पद्मनाभ ! तुम इस तरह से अकाल में ही भरण के अभिलाषी क्यों बने षक्यातुझे यह पता नहीं था कि द्रौपदी मेरी बहिन है । क्यों तू इस को यहाँ ले आया ! खैर-जब तू इस रूप में मेरी शरण में आचुका है-तो अब तुझे किसी भी प्रकार का मेरी तरफ से भय नहीं रहा-ऐसा कहकर कृष्णवासुदेव ने उसे विसर्जित कर दिया-अपने स्थान पर उसे जाने की आज्ञा देदी- बाद में द्रौपदी को साथ में लिया और लेकर वे रथ पर आरूढ हुए । आरूढ होकर फिर वे, वहाँ आये-जहाँ पाँचों पांडव थे वहाँ आकर उन्होंने ने द्रौपदी को अपने हाथों से पाँचों पांडवों के सुपुर्द कर दिया । (तएणं कण्हे पंचेहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छे छहिं रहेहिं लवणसमुदं मज्झं मज्जेणं जेणेव जंबूद्वीवे दीवे जेणेव भारहे वासे तेणेव पहारेत्थ गमणाए) इसके बाद वे कृष्णवासुदेव पाँचों पांडवों के साथ आत्मपष्ठ होकर छहों रथों को ले लवण समुद्र से बीचों

दुरूहित्ता जेणेव पंच पंडवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पंचणहं पंडवाणं दोवइं देविं साहर्त्वि उवणेइ)

त्यारे कृष्ण-वासुदेवे पद्मनाभने आ प्रभाण्णे कहुं के अरे ओ ! पद्मनाभ ! तमे आ प्रभाण्णे असमयमां अ भरणुना अलिंलाषी केम भनी गया छे^५, तुं तमने अणर नडोती के द्रौपदी भारी अडेन छे तुं ओने अर्डी शा भाटे लठ आठथे ? जेर, तुं न्यारे आ स्थितिमां भारी पासे आठ्यो छे तो डवे तारे भारा तरइथी केरि पणु नतनेो लथ राभवो ल्ठअे नडि. आभ कडीने कृष्ण वासुदेवे तेने विहाय कथी. त्यारपछी द्रौपदीने साथे लठने तेओ रथ उपर सवार थया. सवार थधने तेओ न्यां पांचे पांडवेो डता त्यां आठ्या. त्यां आवीने तेमण्णे पोताना डायथी द्रौपदीने पांचे पांडवेाने सोंपी हीधी.

(तएणं से कण्हे पंचेहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छे छहिं रहेहिं लवणसमुदं मज्झं मज्जेणं जेणेव जंबूद्वीवे दीवे जेणेव भारहेवासे तेणेव पहारेत्थ गमणाए)
त्यारभाड ते कृष्ण-वासुदेव पांचे पांडवेानी साथे आत्मपष्ठ थधने छये

मूल-तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे दीवे पुरत्थि-
 मिद्धे भारहे वासे चंपाणामं णयरी होत्था, पुण्णभदे चेइए, तत्थ
 णं चंपाए नयरीए कविले णामं वासुदेवे राया होत्था, महिया
 हिमवतं० वण्णओ, तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए
 अरहा चंपाए पुण्णभदे समोसडे, कपिले वासुदेवे धम्मं सुणेइ
 तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयस्स अरहओ धम्मं सुणे-
 माणे कण्हस्स वासुदेवस्स संखसहं सुणेइ, तएणं तस्स कवि-
 लस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था - किं
 मण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे ?
 जस्स णं अयं संखसहे मसंपिव मुहवायपूरिए वीयं भवइ, तएणं
 मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी-से णूणं ते
 कविला वासुदेवा ! मम अंतिए धम्मं णिसामेमाणस्स संखसहं
 आकण्णिन्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए किं मन्ने जाव वीयं भवइ, से
 णूणं कविला वासुदेवा ! अयमट्ठे समट्ठे ? हंता ! अत्थि, नो
 कविला ! एवं भूयं वाइ जन्नं एगे खेत्ते एगे जुगे समए दुवे
 अरहंता वा चक्कवही वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उप्पज्जिसु
 उप्पज्जित्ति उप्पज्जिस्संति वा, एवं खल्लु वासुदेवा ! जंबूदीवाओ
 भारहाओ वासाओ हत्थिणाउरणयराओ पंडुस्स रण्णो पुव्व-

बीच हो जहां जंबूद्वीप नाम का द्वीप, जहां भरतक्षेत्र नाम का क्षेत्र था
 उस ओर चल दिये ॥ सू० २९ ॥

रथाने लधने लवणु समुद्रनी वर्ये थर्धने न्यां जंबूद्वीप नामे द्वीप, याने
 तेमां पणु न्यां भारतवर्ष नामे क्षेत्रे इत्तुं ते तरइ रवाना थया. ॥ सूत्र २९ ॥

संगइएणं देवेणं अमरकंकाणयरिं साहरिया, तएणं से कणहे वासुदेवे पंचहि पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्टे छहिं रहेहि अमरककं रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए, तएणं तस्स कणहस्स वासुदेवस्स पउमणाभेणं रणणा सद्धिं संगामे संगामेमाणस्स अयं संखसहे तव मुहवाया० इव वीइं भवइ, तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइए एवं वयासी-गच्छामि णं अहं भंते ! कणहे वासुदेवे उत्तमपुरिसं सरिसपुरिसं पासामि, तएणं मुणिसुव्वए अरहा कविले वासुदेवे एवं वयासी - नो खलु देवाणुप्पिया ! एवं भूयं वा३ जणं अरहंतो वा अरहंतं पासइ चक्कवट्ठी वा चक्कवट्ठिं पासइ बलदेवा वा बलदेवं पासइ वासु- देवो वा वासुदेवं पासइ, तहविय णं तुमं कणहस्स वासुदेवस्स लवणसमुहं मज्झंमज्झेणं वीइवयमाणस्स सेयापीयाइं धयग्गाइं पासिहिंसि, तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता हत्थिखंधं दुरूहइ दुरूहित्ता सिग्घं२ जेणेव वेला- उले तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता कणहस्स वासुदेवस्स लवण- समुहं मज्झंमज्झेणं वीइवयमाणस्स सेयापीयाइं धयग्गाइं पासइ पासित्ता एवं वयइ-एसणं मम सरिसपुरिसे उत्तमपुरिसे कणहे वासु- देवे लवणसमुहं मज्झं मज्झेणं वीइवयइत्तिकट्टु पंचजन्नं संखं परामुसइ परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ, तएणं से कणहे वासुदेवे कविलस्स वासुदेवस्स संखसहं आयन्नेइ आयन्त्रित्ता पंचजन्नं जाव पूरियं करेइ, तएणं दोवि वासुदेवा संखसहसा-

मायारिं करेइ, तएणं से कविले वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अमरकंकं रायहाणिं संभग्गतोरणं जाव पासइ पासित्ता पउमणाभं एवं वयासी—किन्नं देवाणुप्पिया ! एसा अमरकंका संभग्ग जाव सन्निवइया ?, तएणं से पउमणाहे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु सामी ! जंबूदीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कणहेणं वासुदेवेणं तुब्भे परिभूए अमरकंका जाव सन्निवाडिया, तएणं से कविले वासुदेवे पउमणाहस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा पउमणाहं एवं वयासी हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया किन्नं तुमं न जाणसि मम सरिसपुरिसस्स कणहस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे ?, आसुरुत्ते जाव पउमणाहं णिव्विसयं आणवेइ, पउमणाहस्स पुत्ते अमरकंका रायहाणीए महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव पडिगए ॥ सू० ३० ॥

टीका—‘ तेणं कालेणं ’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये धातकी-षण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्धे भारते वर्षे चम्पा नाम नगरी आसीत् । तस्या वहिभागे पूर्णभद्रं नाम चैत्यम्=उद्यानम्, आसीत् । तत्र=तस्यां खलु चम्पानगर्यां

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस कालमें और उस समयमें (धायइसंडे दीवे, पुरत्थिमद्धे भारहेवासे चंपा णामं णयरी होत्था, पुण्णभदे चेइए) धातकी षंड द्वीप मे पूर्व दिग्भागवर्ती भरत क्षेत्र में चंपा

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये (वाचइ सडे दीवे, पुरत्थिमद्धे भारहेवासे चंपा णामं णयरी होत्था, पुण्णभदे चेइए) धातकी षंडद्वीपमां पूर्व दिग्भागवर्ती भरतक्षेत्रमां चंपा नगरी હતી, તેમાં પૂર્ણભદ્ર નામે ઉદ્યાન હતું.

‘ कविले णामं’ कपिलो नाम वासुदेवो राजाऽऽसीत् ‘महया हिमवंत०’ वण्णओ’ महाहिमवानित्यादि वर्णकः=वर्णनं पूर्वोक्तवद् बोध्यम् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये मुनिसुव्रतोऽहं चम्पायं नगरीं पूर्णभद्रे नाम्नि चैत्ये समवसृतः । तस्य समीपे कपिलो नाम वासुदेवो धर्मं श्रृणोति । ततः खलु स कपिलो वासुदेवः मुनिसुव्रतस्याहंतोऽन्तिके धर्मं श्रृण्वन् कृष्णस्य वासुदेवस्य शङ्खशब्दं श्रृणोति ततः खलु तस्य कपिलस्य वासुदेवस्य अयमेतद्रूपः=वक्ष्यमाणस्वरूपः, ‘अञ्जत्थिए’ आध्यात्मिकः=आत्मगतः संकल्पो=विचारः, यावद् समुद्रपद्यत-किम्-अन्यो धातकीपण्डे द्वीपे भारते वर्षे द्वितीयो वासुदेवः

नामकी नगरी थी । उसमें पूर्णभद्र नाम का उद्यान था । (तत्स्थणं चंपाए नयरीए कपिले नाम वासुदेवे राया होत्था, महया हिमवंत वण्णओ तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहां, चंपाए पुण्णभदे समोसडे) उस चंपानगरीमें कपिल नाम के वासुदेव राज्य करते थे । ये महा हिमवान् पर्वत जैसे गुणोंसे पूर्ण थे । पहिले जैसा वर्णन राजाओंका भिन्न २ जगह किया गया है वैसा ही वर्णन इसका भी जानना चाहिये । उस काल और उस समय में मुनि सुव्रत तीर्थंकर चंपा नगरी में इस पूर्ण भद्र उद्यान में आये हुए थे (कविले वासुदेवे धम्मं सुणेइ, तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयस्स अरहाओ धम्मं सुणेमाणे कण्हस्स वासुदेवस्स संखसहं सुणेइ, तएणं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अञ्जत्थिए समुप्पज्जितथा-किं मण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे ? जस्स णं अयं संखसहे ममं पिव मुह्वायपरिए वीयं

(तत्स्थणं चंपाए नयरीए कपिले नाम वासुदेवे राया होत्था, महया हिमवंत वण्णओ, तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा, चंपाए पुण्णभदे समोसडे)

ते चंपा नगरीमां कपिल नामे वासुदेव राज करता होता. तेओ मडा डिभवान वगेरे नेवा भणवान होता. पडेतां बुडा बुडा राजओतुं ने प्रभाणे वरुण करवामां आओं छे ते प्रभाणे आ राजतुं पष्ण वरुण नाणी देवुं नेधओ ते कोणे अने ते समये मुनिसुव्रत तीर्थंकर चंपा नगरीमां ते पूरुं-लद्र उद्यानमां पधायीं होता.

(कविले वासुदेवे धम्मं सुणेइ, तएणं से कविले वासुदेवे मुणि सुव्वयस्स अरहाओ धम्मं सुणेमाणे, कण्हस्स वासुदेवस्स संखसहं सुणेइ, तए णं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अञ्जत्थिए समुप्पज्जितथा-किं मण्णे धायइसंडे दीवे भारहेवासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे ? जस्स णं अयं संखसहे ममं पिव मुह्वायपरिए वीयं भवइ)

समुत्पन्नः ? यस्य वासुदेवस्य खलु अयं शङ्खशब्दो ममेव मुखवातपूरितः—मद्वादित-
शङ्खध्वनिरिवेत्यर्थः, ' वीर्यं भवइ ' द्वितीयो भवति । ततः खलु मुनिसुव्रतौऽर्हद्
कविलं वासुदेवम् एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादीत्—' से ' पूर्णं इत्यादि—' से '
नूनं ते तव हे कपिल वासुदेव ! ममान्तिके धर्मं ' गिसामेमाणस्स ' निशामयतः=
शृण्वतः, शङ्खशब्दम् ' आकण्णित्ता ' आकर्ष्य=श्रुत्वा ' इमेयारूवे ' अयमेतद्रूपः
आध्यात्मिकः संकल्पो विचारः समुदपद्यत—किमन्यो वासुदेवः समुत्पन्नः, यस्यायं
शङ्खशब्दो यावद् द्वितीयो भवति ' से ' अथ नूनं हे कपिलवासुदेव ! अयमर्थः
समर्थः=किं सत्यः ? कपिल वासुदेवः प्राह—हंता ! अत्थि इति हन्त ! हे प्रभो !
अयमर्थः सत्योऽस्ति । मुनिसुव्रतो भगवानाह—हे कपिल वासुदेव ! नो खलु एवम्=
ईदृशं, ' भूयं वा ' भूतं वा=अतीतं वा, भवद् वा=वर्तमानं वा भविष्यद् वा अवा-
गतं वा कालत्रयेऽप्येवं न भवतीत्यर्थः, ' जन्न ' यत् खलु एकस्मिन् क्षेत्रे, एक-

भवइ) उनके पास वे कपिल वासुदेव धर्मका उपदेश सुन रहे थे । सो उस
कपिल वासुदेवने मुनि सुव्रतप्रभुके पास धर्मका उपदेश सुनते हुए कृष्ण
वासुदेवकी शंखध्वनि सुनि । तब उस कपिल वासुदेवको इस प्रकार
आध्यात्मिक यावत् मनोगत विचारः उत्पन्न हुआ—क्या घातकी बंध नामके
क्षीणमें वर्तमान भरतक्षेत्रमें कोई और दूसरा वासुदेव उत्पन्न हुआ है ?
कि जिसके शंखका यह शब्द मेरे द्वारा बजाये गये शंखके शब्द जैसा
हुआ है ? (तएणं मुणि सुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी—से पूर्णं
ते कविला वासुदेवा ! मम अंतिए धम्मं गिसामेमाणस्स संखसहं आक-
ण्णित्ता इमेयारूवे अज्जत्थिए किं मण्णे जाव वीर्यं भवइ से पूर्णं कविला
वासुदेव ! अयमट्ठे समट्ठे ? हंता अत्थि, नो खलु कविला एयं भूयं वा इ जन्नं

तेभनी पासै ते कपिल वासुदेव धर्मोपदेश सांभणी रह्या डता. ते कपिल
वासुदेवे मुनिसुव्रत प्रभुनी पासै धर्मोपदेश स भणतां ७ कृष्णवासुदेवना श'भने।
ध्वनि स भण्ये। त्यारे ते कपिल वासुदेवने आ नतने। आध्यात्मिक यावत्
मनोगत संकल्प उत्पन्न थयो के शु घातकी व'ड नामना क्षीणमां विद्यमान
भरतक्षेत्रमां डेअ भीजे वासुदेव उत्पन्न थयो छे ? डेभके तेना श'भने। आ
ध्वनि भासा वडे वगाडवामां आवेला श'भना ध्वनि जेयो ७ छे.

(तएणं मुणि सुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी—से पूर्णं ते कवि-
लावासुदेवा ! मम अंतिए धम्मं गिसामेमाणस्स संखसहं आकण्णित्ता इमेयारूवे
अज्जत्थिए किं मण्णे जाव वीर्यं भवइ, से पूर्णं कविला वासुदेवा ! अयमट्ठे
समट्ठे ? हंता, अत्थि, नो खलु कविला एयं भूयं वा इ जन्नं एगखेत्ते एगे जुगे

સ્મિન્ યુગે, એકસ્મિન્ સમયે દ્વાવર્હન્તૌ વા ચક્રવર્તિનૌ વા બલદેવૌ વા વાસુદેવૌ વા ' ઉપ્પજ્જિસુ ' ઉદપચ્છેતામ્, ' ઉપજ્જિતિ ' ઉત્પચ્છેતે ' ઉપજ્જિસ્સંતિ ' ઉત્પત્સ્યેતે વા, એવં સ્વલુ હે વાસુદેવ ! જમ્બૂદ્વીપાદ્ ભારતાદ્ વર્ષાદ્ હસ્તિનાપુરનગરાત્ પાણ્ડો રાજ્ઞઃ ' સુણ્ઠા ' સ્તુપા=પુત્રવધૂઃ, પશ્ચાનાં પાણ્ડવાનાં માર્યાં દ્રૌપદીં દેવી તવ પત્ન્ય એગે સ્વેત્તે એગે જુગે એગે સમપ દુવે અરહંતા વા, ચક્રવટ્ટી વા, બલદેવા વા, વાસુદેવા વાં ઉપ્પજ્જિસુ, ઉપ્પજ્જિતિ, ઉપ્પજ્જિસ્સંતિ વા,) તથ મુનિસુવ્રત તીર્થંકર પ્રભુને ડન કપિલ વાસુદેવ સે ઇસ પ્રકાર કહા હે કપિલ વાસુ-દેવ ! મેરે પાસ ધર્મ કો સુનતે સમય તુમ્હેં શંખ શબ્દ શ્રવણ કર ઇસ પ્રકાર કા યહ આધ્યાત્મિક સંકલ્પ-વિચાર ઉત્પન્ન હુઆ હૈ, કિ કયા કોઈ દૂસરા વાસુદેવ ઉત્પન્ન હો ગયા હૈ-જિસકે શંખ કા શબ્દ મુગ્ધે સુનાઈ દિયા હૈ । કહો કપિલ વાસુદેવ ! યહી વાત હૈ ન ? તથ કપિલ વાસુદેવને કહા-હાં પ્રભો ! યહી વાત હૈ-એસા હી વિચાર ઉત્પન્ન હુઆ હૈ-તથ મુનિસુવ્રત મગવાનને કપિલ વાસુદેવસે કહા-હે કપિલ વાસુદેવ એસી વાત ન મૃતકાલ મેં હુઈ હૈ ઓર ન મવિષ્ણકાલ મેં હોગી-ન વર્ત-માન્ મેં હોતી હૈ કિ જો ઇક હી ક્ષેત્રમેં ઇક હી યુગમેં ઇક હી સમય મેં ડો અર્હત પ્રભુ, ડો ચક્રવર્તી, ડો બલદેવ, ડો વાસુદેવ, ઉત્પન્ન હો રહે હૌં, ઉત્પન્ન હુઇ હૌં ઓર આગે ઉત્પન્ન હૌં । (એવં સ્વલુ વાસુદેવા ! જંબૂદ્વીવા-ઓ મારહાઓ વાસાઓ હત્થિણાઝરણયરાઓ, પંડુસ્સરણ્ણો સુણ્ઠા એગે સમપ દુવે અરહંતા વા ચક્રવટ્ટી વા, વાસુદેવા વા ઉપ્પજ્જિસુ, ઉપ્પજ્જિતિ, ઉપ્પજ્જિસ્સંતિ વા)

ત્યારે મુનિસુવ્રત તીર્થંકર પ્રભુએ તે કપિલ વાસુદેવને આ પ્રમાણે કહ્યું કે હે કપિલવાસુદેવ મારી પાસે ધર્મને સાંભળતાં શંખ-શબ્દ સાંભળીને તમને આ જાતનો આધ્યાત્મિક સંકલ્પ-વિચાર ઉત્પન્ન થયો છે કે, શું કોઈ બીજો વાસુદેવ ઉત્પન્ન થયો છે-એના શંખનો ધ્વનિ મને સાંભળાઈ રહ્યો છે. જોહો, કપિલ વાસુદેવે કહ્યું કે હો, પ્રભુ ! એ જ વાત છે. મારા મનમાં એ જ જાતનો વિચાર ઉદ્ભવ્યો છે. ત્યારે મુનિસુવ્રત ભગવાને કપિલ વાસુદેવને કહ્યું કે હે કપિલ વાસુદેવ ! આવી વાત ભૂતકાળમાં થઈ નથી અને ભવિષ્યકાળમાં થશે નહિ અને વર્તમાનકાળમાં સાંભવી શકે તેમ પણ નથી કે જે એક જ ક્ષેત્રમાં, એક જ યુગમાં, એક જ સમયમાં જે અર્હત પ્રભુ, જે ચક્રવર્તી, જે બળદેવ, જે વાસુ-દેવ ઉત્પન્ન થયા હોય, ઉત્પન્ન થઈ રહ્યા હોય અને આગળ ઉત્પન્ન થવાના હોય.

(એવં સ્વલુ વાસુદેવા ! જંબૂ દ્વીવાઓ મારહાઓ વાસાઓ હત્થિણાઝરણયા-રાઓ, પંડુસ્સરણ્ણો, સુણ્ઠા પંચહં પંડવાણં મારિયા ડોવઈ દેવી તવ પડમનામસ્સ

नामस्य राज्ञः पूर्वसंगतिकेन देवेनामरकङ्कानगरीं ' साहरिया ' संहता=आनीता, ततः खलु सः कृष्णो वासुदेवः पञ्चभिः पाण्डवैः सधं आत्मषष्ठः पद्भीरथैरमरकंकां राजधानीं द्रौपद्या देव्याः ' कूवं ' देशी शब्दोयं प्रत्यानयनार्थकः प्रत्यानयनं कर्तुं हव्यमागतः, ततः खलु तस्य कृष्णस्य वासुदेवस्य पद्मनाभेन राज्ञा सार्धं ' संगामं ' संग्रामं=युद्धं ' संगामेमाणस्स ' युध्यत, अयं शङ्खशब्दस्तवमुखवातपूरित इव द्वितीयो भवति । ततः खलु स कपिलो वासुदेवो मुनिसुव्रतं वन्दते, नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्-गच्छामि खलु अहं हे

पंचहं पंडवाणं भारिया दोवईदेवी तव पडमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगईएणं देवेणं अमरकंका नयरिं साहरिया, तएणं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं अमरकंकां रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए, तएणं तस्स कण्णस्स वासुदेवस्स पडमणाभेणं रण्णा सद्धिं संगामं, संगामेमाणस्स अयं संखसदे तव मुहवाया० इव वीयं भवइ) सुनो वात इस प्रकार है जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में वर्तमान हस्तिनापुर नगर से पांडुराजा की पुत्रवधू पांच पांडवों की पत्नी द्रौपदी देवी को तुम्हारे पद्मनाभ राजा का पूर्व भवीय मित्र कोई देव हरण कर अमरकंका नगरी में ले आया । तब भरत क्षेत्र के वासुदेव कृष्ण पांच पांडवों के साथ आत्मषष्ठ होकर छह रथों से उस अमरकंका नगरी में द्रौपदी देवी को वापिस ले जाने के लिये बहुत जल्दी आये । तब उन कृष्ण वासुदेव के, पद्मनाभ राजा के साथ युद्ध करते समय शंख का यह शब्द तुम्हारे शंख के शब्द जैसा हुआ है । (तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदंति, २ एवं वयासी गच्छामि णं

रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं अमरकंका नयरिं साहरिया तएणं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं अमरकंकां रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए, तएणं तस्स कण्णस्स वासुदेवस्स पडमणाभेणं रण्णा सद्धिं संगामं, संगामे माणस्स अयं संखसदे तव मुहवाया० इव वीयं भवइ)

सांभणो, विगत येवी छे के जंबूद्वीपना भरतक्षेत्रमां विद्यमान इस्ति-नापुर नगरथी पांडुराजनी पुत्रवधू पांचि पांडवोनी पत्नी द्रौपदी देवीने तभारा पद्मनाभ राजाना पूर्वभवनेो मित्र कोछि देव इरीने अमरकंका नगरीमां लध आयेो इतो. तयारपछी भरतक्षेत्रना वासुदेव कृष्ण पांचि पांडवोनी साथे आत्मषष्ठ थधने छ रथो उपर सवार थया अने सत्वरै द्रौपदी देवीने पाछां गेणववा भाटे त्यां पडोच्यी गथा पद्मनाभ राजनी साथे युद्ध करतां कृष्णवासुदेवे जे शंभध्वनि कथे छे ते तभारा शंभना ध्वनि जेयो छे.

(तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदंति, २ एवं वयासी, गच्छामि

भदन्त ! कृष्णं वासुदेवमुत्तमपुरुषं पश्यामि ततः खलु मुनिसुव्रतोऽर्हन् कपिलं वासुदेवम् एवमवादीत्—नो खलु हे देवानुप्रिय ! एवं भूतं वा, भवति वा भविष्यति वा यत् खलु अर्हन् अर्हन्तं पश्यति, चक्रवर्ती वा चक्रवर्तिनं पश्यति बलदेवो वा बलदेवं पश्यति वासुदेवो वा वासुदेवं पश्यति, तथा ऽपि च खलु त्वं

अहं भंते ! कण्हं वासुदेवं उत्तमपुरिसं सरिसपुरिसं पासामि) इस प्रकार सुनकर उस कपिल वासुदेव ने मुनि सुव्रत प्रभु को वंदना की—नमस्कार किया वंदना नमस्कार करके फिर उनसे इस प्रकार कहा—हे भदंत ! मैं जाता हूँ और उत्तम पुरुष उन कृष्णवासुदेव से कि जो मेरे जैसे पुरुष हैं—वासुदेव पद के धारक हैं—जाकर मिलता हूँ । (तएणं मुणि सुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी) तब मुनि सुव्रत प्रभु ने उस कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा—(नो खलु देवाणुप्पिया ! एवं भूयं वा ६ जणं अरहंतो, वा अरहंतं पासइ, चक्रवट्ठी वा चक्रवट्ठिं पासइ, बलदेवो वा, बलदेवं पासइ, वासुदेवो वा वासुदेवं पासइ) हे देवानुप्रिय ! ऐसी बात न छुई है, वर्तमानमें न होती है और न भविष्यत्काल में होनेवाली है कि जो एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर से मिलें, एक चक्रवर्ती दूसरे चक्रवर्ती से मिले, एक बलदेव दूसरे बलदेव से मिलें, एक वासुदेव दूसरे वासुदेव से मिलें । ऐसा सिद्धान्त का नियम है कि एक तीर्थंकर का दूसरे तीर्थंकर से कभी भी मिलाप नहीं होता है ।

णं अहंभंते ! कण्हं वासुदेवं उत्तमपुरिसं सरिसपुरिसं पासामि)

आ प्रभाणु सांलणीने ते कपिलवासुदेवे मुनिसुव्रत प्रभुने वंदन तेमं नमन कर्यां. वंदन अने नमन करीने तेमनी आमे आ प्रभाणु विनंती अस्तां कंहुं के छे लहतं । हुं लउ छुं अने लउने मारा जेवा ते उत्तम पुरुष कृष्ण वासुदेव के जेआ वासुदेव पदने शोभावे छे—तेमने भणुं छुं. (तएणं मुणि सुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी) तयारे मुनिसुव्रत प्रभुजे ते कपिल वासुदेवने आ प्रभाणु कंहुं के—

(नो खलु देवाणुप्पिया ! एवं भूयं वा ३ जणं अरहंतो वा अरहंतं पासइ, चक्रवट्ठी वा चक्रवट्ठिं पासइ, बलदेवो वा, बलदेवं पासइ, वासुदेवो वा वासुदेवं पासइ)

हे देवानुप्रिय ! जेवी बात केअ पणु दिवसे संलवी नहीं, वर्तमानमें पणु संलवी शके तेम नहीं अने भविष्यकाणमें पणु संलवी शकेशे नहि के जेके तीर्थंकर पील तीर्थंकरने भजे, जेके चक्रवर्ती पील चक्रवर्तीने भजे, जेके अणदेव पील अणदेवने भजे. आ लतने सिद्धान्तने नियम छे के जेके

कृष्णस्य वासुदेवस्य लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजतः श्वेतपीतानि-ध्वजा-
ग्राणि ' पासिहिंसि ' द्रक्ष्यसि । ततः खलु स कपिलो वासुदेवो मुनि सुव्रतं वन्दते,
नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा इस्तिस्कन्धं दूरोहति=आरोहति आरुह्य शीघ्रं २
यत्रैव ' वेलाउले ' वेलाकूलं=समुद्रवेला तटं वर्तते, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य
कृष्णस्य वासुदेवस्य लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन ' वीङ्गयमाणस्स ' व्यतिव्रजतः=
गच्छतः, श्वेतपीतानि ध्वजाग्राणि पश्यति, दृष्ट्वा एवं वदति एसणं मम सदशपुरुषः
उत्तमपुरुषः कृष्णो वासुदेवो लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन ' वीङ्गयइ ' व्यतिव्रजति=
गच्छति, इति कृत्वा पाश्र्वजन्यं शङ्गं परामृशति=गृह्णाति, गृहीत्वा मुखत्रातपुरितं
करोति=कपिलवासुदेवः स्वशङ्गं वादयति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कपि-

चक्रवर्ती का दूसरे और चक्रवर्ती से बलदेव का दूसरे और किसी बल-
देव से, वासुदेव का दूसरे और वासुदेव से कभी भी मिलाप नहीं होता
है । (तह वि य णं तुमं कणहस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्धं मज्झं मज्झेणं
वीङ्गयमाणस्स सेया पीयाइं धयग्गाइं पासिहिंसि) हां, इतना हो सकता
है कि जब वे कृष्णवासुदेव लवणसमुद्रके बीचसे होकर जा रहे हों तब
तु मउनकी श्वेत पीत ध्वजाओंके अग्र भाग को देख सकते हा । (तएणं
से कविळे वासुदेवेमुणिसुव्वयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता, हत्थि-
खंधं दुरुहइ, दुरुहित्ता सिग्घं २ जेणेव वेलाउले, तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता कणहस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्धं मज्झं मज्झेणं वीङ्गयमाणस्स
सेयापीयाहिं धयग्गाइं पासइ, पासित्ता एवं वयइ-एसणं मम सरिसपुरिसे
उत्तमपुरिसे कणहे वासुदेवे लवणसमुद्धं मज्झं मज्झेणं वीङ्गयइत्ति कट्टइ

तीर्थं करनी साथे भील तीर्थं करने भेगाप डेअं पणु स'नेगेआं थते नथी.
એક ચક્રવર્તીનો બીલ ચક્રવર્તીની સાથે, એક બળદેવનો બીલ બળદેવની સાથે
તેમજ એક વાસુદેવનો બીલ કોઈ પણ વાસુદેવની સાથે કદાપિ ભેગાપ થતો
નથી. (તહ વિ ય ણં તુમં કણહસ્સ વાસુદેવસ્સ લવણસમુદ્દં મજ્ઝં મજ્ઝેણં વીઙ્-
ગયમાણસ્સ સેયાપીયાઈ ધયગ્ગાઈં પાસિહિંસિ) હા, એમ થઈ શકે છે કે ન્યારે
તે કૃષ્ણવાસુદેવ લવણ સમુદ્રની વચ્ચે થઈને પસાર થતા હોય ત્યારે તમે તેમની
સફેદ, પીળી ધ્વજાઓના અગ્રભાગને જોઈ શકો છો. (તएणं से)

कविळे वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता हत्थिखंधं दुरुहइ,
दुरुहित्ता सिग्घं २ जेणेव वेलाउले, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कणहस्स
वासुदेवस्स लवणसमुद्धं मज्झं मज्झेणं वीङ्गयमाणस्स सेयापीयाहिं धयग्गाइं
पासइ, पासित्ता एवं वयइ, एसणं मम सरिसपुरिसे उत्तमपुरिसे कणहे वासुदेवे

लस्य वासुदेवस्य शङ्खशब्दम् ' आयन्नेइ ' आकर्णयति=शृणोति, आकर्ण्य पाञ्च-
जन्यं यावत् मुखवातपूरितं करोति=कृष्णो वासुदेवः स्वकीयं शङ्खं वादयति, ततः
खलु द्वात्रिंशत् वासुदेशी ' संखसहसामायारि ' शङ्खशब्दसामाचारि=शङ्खशब्देन
परस्परमिलनं कुरुतः ।

पंचयज्ञं संखं परामुसह, परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ) इस प्रकार
प्रभु का आदेश सुनकर उन कपिलवासुदेव ने उन प्रभु मुनिसुव्रत
भगवंत को वंदना की, नमस्कार किया । वंदना नमस्कार करके फिर वे
अपने प्रधान हस्ती पर आरूढ हुए । और आरूढ होकर शीघ्र जहाँ
लवणसमुद्र का बेलतट था—वहाँ पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने लवण-
समुद्र के बीच से होकर जोते हुए कृष्णवासुदेव की श्वेत पीत ध्वजाओं
के अग्रभाग को देखा देखकर तब मनमें विचार—किया ये ही मेरे जैसे
उत्तम पुरुष कृष्णवासुदेव लवणसमुद्र के बीच से होकर जा रहे हैं—
ऐसा विचार कर उन्होंने अपने पांचजन्य शंख को उठाया और उठा-
कर उसे अपने मुख की वायु से पूरित किया (तएणं से कण्ठे वासुदेवे
कविलस्स वासुदेवस्स संखसहं आयन्नेइ, आयन्नित्ता, पंचजन्ने, जाव
पूरियं करेइ, तएणं दो वि वासुदेवा संखसहसामायारिं करेइ, तएणं

लवणसमुहं मज्झं मज्झेणं वीइवयइत्ति कहु पंचजन्नं संखं परामुसइ परामुसित्ता
मुहवायपूरियं करेइ)

आ रीते प्रभुनी आज्ञा सांभलीने ते कपिल वासुदेवे ते प्रभु मुनिसुव्रत
भगवंतने वंदनं अने नमस्कार कर्था. वंदनं अने नमस्कार करीने तेजो पोताना
प्रधान हाथी उपर सवार थया अने सवार थयने जल्दी न्यां लवणु समु-
द्रना किनारे डतो त्यां पडोन्था. त्यां पडोन्थीने तेमझे लवणुसमुद्रनी वर्ये
थयने पसार थता कृष्णवासुदेवनी संश्लेष-पीणी ध्वजाज्येना अग्रभागने ज्येथे
अने ज्येथने मनमां विचार कर्ये के भारा जेवा उत्तम पुरुष कृष्णवासुदेव
जे ज छे के ज्येथो लवणु-समुद्रनी वर्ये थयने पसार थरहा छे. आम
विचार करीने तेमझे पांच जन्य शंखने उठाव्ये अने उठावीने पोताना मुपना
पवनथी तेने पूरित कर्ये.

(तएणं से कण्ठे वासुदेवे कविलस्स वासुदेवस्स संखसहं आयन्नेइ, आय-
न्नित्ता, पंचजन्ने जाव पूरियं करेइ तएणं दो वि वासुदेवा संखसहं सामायारिं
करेइ, तएणं से कविले वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिवा

ततस्तदनन्तरं स कपिलो वासुदेवो यत्रैवामरकङ्काराजधानी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्यामरकङ्कां राजधानीं संभग्नतोरणां यावत् पश्यति, दृष्ट्वा पद्मनाभमेवमवादीत्—किं—कस्मात् खलु हे देवानुप्रिय ! एषा अमरकंकां संभग्नतोरणां यावत्—सन्निपतिता ? ततः खलु स पद्मनाभः कपिलं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं खलु हे स्वामिन् ! जम्बूद्वीपाद् द्वीपाद् भारताद् वर्षाद् इह हव्यमागत्य कृष्णेन वासुदेवेन ' तुभ्ये परिभूए ' युष्मान् परिभूय=अनादृत्य कपिलवासुदेवेन मम काऽपि हानिनं शक्यते कर्तुमिति मनसि निधायेत्यर्थः, अमरकङ्का यावत् संनिपतिता ।

से कविले वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता अमरकंकां रायहाणि संभग्नतोरणं जाव पासह; पासित्ता पउमणाभं एवं वयासी) तथ कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शंख शब्द को सुना सुनकर उन्होंने ने भी पांचजन्य शंख को अपने मुख की वायु से पूरित किया—बजाया—इस तरह वे दोनों वासुदेव साक्षात् रूप में न मिलकर शंख के शब्द से परस्पर में मिले । अब वे कपिल वासुदेव जहां वह अमरकंका नगरी थी वहां आये । वहां आकर उन्होंने अमरकंका राजधानी को संभग्न तोरण आदि वाला देखा । देखकर तब पद्मनाभ राजा से इस प्रकार कहा—(कृष्णं देवाणुप्पिया ! एसा अमरकंका संभग्न जाव सन्निवहया ? तएणं से पउमणाहे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु सामी ? जंबूद्वीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कण्हेणं वासुदेवेणं तुभ्ये परिभूए अमरकंका जाव सन्निवाडिया) हे देवानुप्रिय ! यह अमरकंका नगरी क्या कारण है—जो

अमरकंकारायहाणि संभग्नतोरणं जाव पासह, पासित्ता पउमणाभं एवं वयासी)

न्यारे कृष्णवासुदेवे कपिल वासुदेवना श'भने ध्वनि सांलये। त्यारे तेमळे पणु पोताना पांचजन्य श'भने सुभना पवनथी पूरित कर्यो अने वगाडयो. आ रीते तेज्यो भ'ने वासुदेव प्रत्यक्ष रीते नडि पणु श'भना ध्वनिथी परस्पर मल्या. त्यारपछी ते कपिल वासुदेव न्यां ते अमरकंका नगरी हुती त्यां आल्या. त्यां आवीने तेमळे अमरकंका राजधानीने धळज्यो वगे. रेथी नष्ट थयेदी जेध, जेधने तेमळे पद्मनाभ राजाने आ प्रभाळे कळुं हे—

(कृष्णं देवाणुप्पिया एसा अमरकंका संभग्न जाव सन्निवहया ? तएणं से पउमणाहे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु सामी ! जंबूद्वीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कण्हेणं वासुदेवेणं तुभ्ये परिभूए अमरकंका जाव सन्निवाडिया)

ततः खलु स कपिलो वासुदेवः पद्मनाभस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा पद्मनाभम् एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादीत्—हं भो ! पद्मनाभ ! अप्रार्थितं प्रार्थितं ! =मरण-वाञ्छक !, किं खलु त्वं न जानासि मम सदृशपुरुषस्य वासुदेवस्य त्रिषियं=विरुद्धं कुर्वत ?; इत्युक्त्वा आशुरुसः=शीघ्रं क्रोधाऽऽक्रान्तः, यावत् पद्मनाभं ' णिव्विसयं ' निर्विषयं=विषयात् स्वराज्याद् निर्गतं—निष्कासितं कर्तुम् ' आणवेइ ' आज्ञापयति पद्मनाभस्य पुत्रममरकङ्काराजधान्यां महता महता राज्याभिषेकेण अभिषिञ्चति,

संभ्रम तोरण आदि वाली होकर भूमिसात् हो गई है। तब पद्मनाभ राजा ने उस कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ! इसका कारण इस प्रकार है—जंबूद्वीप नाम के प्रथम द्वीप से भरतक्षेत्र से यहाँ बहुत ही शीघ्र आकर कृष्ण वासुदेव ने आपकी कुछ भी परवाह न करके—कपिल वासुदेव हमारी कुछ भी हानि नहीं कर सकते हैं—ऐसा अपने मन में समझ करके—अमरकंका में आकर—उसे पहिले संभ्रम तोरण वाली किया—और बाद में विध्वस्तकर दिया। (तएणं से कविले वासुदेवे पउमणाहस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा पउमणाहं एवं वयासी) तब पद्मनाभ राजा के मुख से इस समाचार को सुनकर के उस कपिल वासुदेव ने उस पद्मनाभ राजा से इस प्रकार कहा—(हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया ! किन्नं तुमं न जाणासि मम सरिसपुरिसस्स कणहस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे ? असुरुत्ते जाव पउमणाहं णिव्विसयं आणवेइ, पउमणाहस्स पुत्तं अमरकंका रायहाणीए महया

हे हेवानुप्रिय ! शां कारण्णुथी आ अमरकंका नगरीनी धल्लओ वगेरे पणु तूटी गधं छे अने संपूणु नगरी विनष्ट थधं गधं छे। त्थारे पद्मनाभ राज्ञे ते कपिल वासुदेवने आ प्रभाणु कळुं के हे स्वामी ! वात ज्येवी छे के जंबूद्वीप नामना प्रथम द्वीपना भरतक्षेत्रथी अहं ओहुं जं जट्टी आवीने कृष्णवासुदेवे तभारी जराये दरकार कथां वगर “ कपिल वासुदेव अभाइं कंधं करी शकथे नहि ” आ जतने पोताना मनभां विचार करीने पडेलां तो अमरकंकाणा तोरण्णो नष्ट कथां अने त्थारपछी आ नगरीने पणु जमीनदोस्त करी नापी छे। (तएणं से कविले वासुदेवे पउमणाहस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा पउमणाहं एवं वयासी) त्थारे पद्मनाभ राज्ञता सुधथी आ जधी विगत सांभ-णीने ते कपिलवासुदेवे ते पद्मनाभ राज्ञने आ प्रभाणु कळुं के—

(हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया ! किन्नं तुमं नजाणासि मम सरिस-पुरिसस्स कणहस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे ? आसुरुत्ते जाव पउमणाहं णिव्वि-

यावत् प्रतिगतः=पद्मनाभस्य पुत्रं राज्येऽभिषिच्य कपिलवासुदेवो यस्यादिशः
मादुर्भूतस्तां दिशं प्रतिगत इति भावः ॥ सू०३० ॥

मूलम्—तए णं से कण्हे वासुदेवे लवणसमुद्गं मज्झं मज्झेणं
वीडवयइ, तं पंच पंडवे एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवानु-
प्पिया ! गंगामहानइं उत्तरह जाव ताव अहं सुट्ठियं लवणा-
हिवइं पासामि, तए णं तं पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं
वुत्ता समाणा जेणेव गंगामहानइं तेणेव उवागच्छंति उवाग-
च्छित्ता एगट्टियाए णावाए मग्गणगवेसणं करेति करित्ता एग-
ट्टियाए नावाए गंगामहानइं उत्तरंति उत्तरित्ता अण्णमण्णं एवं
वयंति—पहू णं देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगामहाणइं बाहाहिं
उत्तरित्तए उदाहु णो पभू उत्तरित्तएत्ति कट्टु एगट्टियाओ नावाओ

महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव पडिगए) अरेओ मरणवाञ्छक
पद्मनाभ ! मेरे जैसे पुरुष कृष्ण वासुदेव का विप्रिय-अनिष्ट-करते हुए
तुमने मेरा कुछभी ख्याल नहीं किया ? इस प्रकार कह कर वे उस पर
बहुत अधिक क्रुपित हो गये । यावत् उस पद्मनाभ राजा को उन्होंने ने
अपने देश से बाहिर भी निकालदिया । तथा-उसका जो पुत्र सुनाम
था । उस को बड़े भारी उत्सवके साथ राज्य में अभिषिक्त किया । इस
प्रकार पद्मनाभ के पुत्र को राज्य में अभिषिक्त करके वे कपिल वासु-
देव जिस दिशासे आये थे उस दिशाकी ओर वापिस चले गये ॥सू३०॥

सयं आणवेइ, पउमणाहस्स पुत्तं अमरकंका रायहाणीए महया महया रायाभिसे-
एणं अभिसिंचइ, जाव पडिगए)

अरे, ओ मृत्युने धंछनार पद्मनाभ ! भारा जेवा पुरुष कृष्णवासुदेवतुं
पुत्रं कर्तां ते भारी पणु हरकार करी नहि ? आ प्रभाणे कहीने तेओ पणुण
कोधित थधं गया. यावत् ते पद्मनाभ राजने पोताना देशथी गहार पणु नसाडी
भुंथे. त्यारपछी तेना पुत्र सुनाभनेा लारे उत्सवनी साथे राज्याभिषेक कर्थे.
आ रिते पद्मनाभनेा पुत्रने राज्यासने अक्षिषिक्त करीने कपिल वासुदेव जे
दिशा तरश्ची आन्या हुता ते दिशा तरश् पाछा जाता रइया. ॥ सूत्र ३० ॥

णूमैति णूमित्ता कण्हं वासुदेवं पडिवालेमाणार चिह्नुंति, तएणं
 से कणहे वासुदेवे सुट्टियं लवणाहिवइं पासइ पासित्ता जेणेव
 गंगामहाणइं तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता एगट्टियाए सव्वओ
 समंता मग्गणगवेसणं करेइ करित्ता एगट्टियं अपासमाणे एगाए
 वाहाए रहं सतुरगं ससारहिं गेणहइ एगाए वाहाए गंगं महाणइं
 वासट्टिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिन्नं उत्तरिउं पयत्ते यावि
 होत्था, तएणं से कणहे वासुदेवे गंगामहाणइंए बहुमज्झदेस-
 भागं संपत्ते समाणे संते तंते परितंते बद्धसेए जाए यावि होत्था
 तएणं कणहस्स वासुदेवस्स इमे एयारूवे अब्झत्थिए जाव
 समुप्पज्जित्था अहो णं पंच पंडवा महाबलवगा जेहिं गंगा-
 महाणइं वासट्टिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिण्णा वाहाहिं
 उत्तिण्णा, इत्थं भूएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पउमणाभे राया जाव
 णो पडिसेहिए, तएणं गंगादेवी कणहस्स वासुदेवस्स इमं एया-
 रूवं अब्झत्थियं जाव जाणित्ता थाहं वितरइ, तएणं से कणहे
 वासुदेवे सुहुत्तंतरं समासासइ समासासित्ता गंगामहाणइं वावट्टिं
 जाव उत्तरइ उत्तरित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ उवा-
 गच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी-अहो णं तुब्भे देवाणुप्पिया !
 महाबलवगा जेणं तुब्भेहिं गंगामहाणइं वासट्टिं जाव उत्तिण्णा,
 इत्थं भूएहिं तुब्भेहिं पउमं जाव णो पडिसेहिए, तएणं ते पंच
 पंडवा कणहेणं वासुदेवेणं एवं बुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं
 वयासी-एवं खल्ल देवाणुप्पिया ! अम्हे तुब्भेहिं विसज्जिया समाणा

जेणेव महाणई तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता एगट्टियाए मग्गणगवेसणं तं चेव जाव णूमेमो तुब्भे पडिवालेमाणा चिट्ठामो तएणं से कणहे वासुदेवे तेसिं पंचणहं पांडवाणं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते जाव तिवालियं एवं वयासी—अहो णं जया मए लवणसमुद्धं दुवे जोयणसयसहस्सा विच्छिण्णं वीइवइत्ता पउमणाभं हयमहिय जाव पडिसेहित्ता अमरकंका संभग्गं दोवई साहत्थि उवणीया तथा णं तुब्भेहिं मम महप्पं ण विण्णायं इयाणि जाणिस्सहत्तिकट्ठु लोहदंडं परामुसइ, पंचणहं पंडवाणं रहे चूरेइ चूरित्ता णिविसए आणवेइ आणवित्ता तत्थ णं रह महणे णामं कोड्ढे णिविट्ठे, तएणं से कणहे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता सएणं खंधावारेणंसद्धि अभिसमन्नागए यावि होत्था, तएणं से कणहे वासुदेवे जेणेव बारवई णयरी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता अणुपविसइ ॥सू०३१॥

टीका—' तएणं से इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु स कृष्णो वासुदेवो लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजति=गच्छति व्यतिव्रज्य तान् पञ्च पाण्डवान् एव-मवादीत्=गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! गङ्गामहानदीमुत्तरत्त=उतीर्णा भवत,

तएणं से कणहे वासुदेवे इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कणहे वासुदेवे) उन कृष्णवासुदेवने (लवणसमुद्धं) जब लवण समुद्र में (मज्झं मज्झेणं वीइवयइ) बीच से होकर वे चले जा रहे थे । (ते पंच पंडवे एवं वयासी) तब पांच पांडवों से ऐसा कहा—(गच्छइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! गंगामहानइ उत्तरह जाव

तएणं से कणहे वासुदेवे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (से कणहे वासुदेवे) ते कृष्णवासुदेवे (लवणसमुद्धं) के न्यारे तेज्जे लवण समुद्रनी (मज्झं मज्झेणं वीइवयइ) वच्चे थधने पसार थता छता त्थारे (ते पंच पंडवे एवं वयासी) पांच पांडवोंने आ प्रभाञ्जे कथ्थुं (गच्छइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! गंगा महानदि उत्तरह जाव ताव अहं सुट्ठियं

यावत् तावदहं सुस्थितं देवं लवणाधिपतिं पश्यामि, सुस्थितेन देवेन सह मिलित्वा तमापृच्छयागच्छामि; ततः खलु ते पञ्चपाण्डवा कृष्णेन वासुदेवेन एवमुक्ताः सन्तो यत्रैव गङ्गामहानदी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य ' एगद्वियाए ' एकार्थिकायाः=महानौकासमानकार्यकारिण्याः ' णावाए ' नावाः=नौकाया मार्गणगवेषणं कुर्वन्ति । कृत्वा=मार्गणगवेषणं कृत्वा नौकायामारूढ्य ते पञ्च पाण्डवा एकार्थिकया नावा गङ्गामहानदीं मुत्तरन्ति, उत्तीर्य अन्योन्यम्=परस्परमेवं वदन्ति—' पहू ' मधुः=समर्थः, खलु हे देवानुप्रियाः ! कृष्णो वासुदेवो गङ्गामहानदीं ' बाहाहिं ' बाहुभ्यां=भुजाभ्याम् ' उत्तरित्तए ' उत्तरीतुम् ' उदाहु ' उताहो—अथवा नो

ताव अहं सुद्विष्टं लवणाहिवइं पासामि) हे देवानुप्रिया ! तुमलोग जाओ—और गंगानदी को पार करो तबतक मैं लवणसमुद्राधिपति सुस्थित देव से मिलकर और उनकी आज्ञा लेकर आता हूँ । (तएणं ते पंच पंडवा कण्हेणं वसुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा जेणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता एगद्वियाए णावाए मग्गणगवेषणं करेति, करित्ता एगद्वियाए गंगामहानइं उत्तरंति) इस तरह कृष्ण वासुदेव द्वारा कहे गये वे पांचों पांडव जहाँ गंगा महानदी थी—वहाँ आये । वहाँ आकर के उन्होंने एकार्थिक—महानौकासे जैसी कार्य साधक—नौका मार्गणा एवं गवेषणा की, मार्गणा गवेषणा कर के वे पांचों पांडव नौका पर चढ़ गंगा महानदीसे पार हो गये । (उत्तरित्ता अण्णमण्णं एवं वयंति पहूणं देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगा महानई बाहाहिं उत्तरि-

लवणाहिवइं पासामि) हे देवानुप्रियो ! तमे दोडो डवे ळन्धो अने गंगा नदीने आणगे। त्यांसुधी हुं लवणु समुद्रना अधिपतिं सुस्थित देवने मणीने अने तेमनी आज्ञा प्राप्त करीने आहुं छुं ।

(तएणं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा, जेणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता एगद्वियाए णावाए मग्गणगवेषणं करेति, करित्ता एगद्वियाए नावाए गंगा महानइं उत्तरंति)

आ रीते कृष्णवासुदेव वडे आज्ञापित थयेला ते पांचे पांडवो न्यां गंगा मळा नदी छती त्यां आज्ञा. त्यां आवांने तेमणे आकार्थिक मळानौका नेवी काममां आवी शके तेवी नौकानी मार्गणा तेमण गवेषणा करी. मार्गणा तेमण गवेषणा करीने ते पांचे पांडवो नौका छपर सवार थयने गंगा मळा नदीने पार छतरी गया.

(उत्तरित्ता अण्णमण्णं एवं वयंति पहूणं देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगा-

प्रभुः=समर्थ उत्तरीतुम्, इति कृत्वा गङ्गामहानद्या बाहुभ्यामुत्तरणे कृष्णवासु-
वदेस्य सामर्थ्यमस्ति, नास्ति वा तद् विजानामीति विचार्य एकार्थिकां नावं=
नौकां ' नूमेति ' गोपयन्ति । गोपयित्वा कृष्णं वासुदेवं ' पडिवालेमाणा ' प्रति-
पालयन्तः=प्रतीक्षमाणाः तिष्ठन्ति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः सुस्थितं देवं
लवणाधिपतिं पश्यति=सुस्थितेन साकं मिलति दृष्ट्वा तमापृच्छद्य यत्रैव गङ्गामहा-
नदी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य एकार्थिकाया नावः=नौकाया मार्गणगवेषणं
करोति, कृत्वा, एकार्थिकां नावमपश्यन् एकेन बाहुना रथं सतुरगं=सहाश्वं,

त्तए उदाहृणो पभू उत्तरित्तए त्तिकट्टु एगट्टियाओ णावाओ नूमेति,
णूमित्ता कण्हं वासुदेवं पडिवाले माणा २ चिट्ठंति, तएणं से कण्हे वासु-
देवे सुट्ठियं लवणाहिवइं, पासइ, पासित्ता जेणेव गंगा महाणई तेणेव
उवागच्छइ) जय पार होकर वे तट पर पहुँच चुके—तब परस्पर में
उन्होंने ने ऐसा विचार किया—हे देवानुप्रियो ! देखो कृष्ण वासुदेव गंगा
महानदी को हाथों से तैरकर पार करने में समर्थ हो सकते हैं
या नहीं हो सकते हैं ? इस प्रकार विचार करके उन्होंने ने उस एकार्थि
नौका को कृष्ण वासुदेव के आने के लिये वापिस उस पार भेजा नहीं
वहीं पर छिपा दिया । और छिपाकर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करते
वे वहीं ठहरे रहे । उधर—कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्राधिपति सुस्थित
देव से जाकर मिले और उसकी आज्ञा लेकर जहाँ गंगा नदी थी वहाँ
आये । (उवागच्छित्ता एगट्टियाए सन्वओ समंता मग्गणगवेषणं करेइ,
करित्ता एगट्टियं अपासमाणे एगाए बाहाए रहं सतुरगं ससारहिं गेण्हइ

महानई वाहाहिं उत्तरित्तए, उदाहृ णो पभू उत्तरित्तए त्तिकट्टु एगट्टियाओ णावाओ
णूमेति, णूमित्ता कण्हं वासुदेवं पडिवालेमाणार चिट्ठंति, तए णं से कण्हे वासुदेवे
सुट्ठियं लवणाहिवइं, पासइ, पासित्ता जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छइ)

पार उतरने न्यारे तेओ क्कानारे पडोन्थी गया त्यारे तेमणे परस्पर
विचार कर्यो के के देवानुप्रियो ! कृष्णवासुदेव गंगा महानदीने हाथो पडे
तरने पार करी शके के नहिं ? आम विचार करिने तेमणे ते 'एकार्थि'
नौकाने कृष्णवासुदेवने लाववा भाटे पाछी सोकली नहिं पण त्यांज छुपावी
दीधी. अने छुपावीने तेओ त्यांज कृष्णवासुदेवनी प्रतीक्षा करता सोकथि गया.
कृष्णवासुदेव लवण समुद्राधिपति सुस्थितदेवने मन्था अने तेनी आज्ञा प्राप्त
करिने नथा गंगा नदी हती त्यांज आन्था.

(उवागच्छित्ता एगट्टियाए सन्वओ समंता मग्गणगवेषणं करेइ, करित्ता
एगट्टियं अपासमाणे एगाए बाहाए रहं सतुरगं ससारहिं गेण्हइ, एगाए बाहाए

ससारथिं गृह्णाति एकेन बाहुना गङ्गां महानदीं ' वासर्द्धि ' द्वापष्टिं योजनानि अर्धयोजनं च ' विस्थिनन् ' विस्तीर्णाम्, उत्तरितुं प्रवृत्तश्चाप्यभवत्, ततः खलु स कृष्णो वासुदेवो गङ्गामहानद्या बहुमध्यदेशभागं संप्राप्तः सन् ' संते ' श्रान्तः=श्रमंप्राप्तः, ' तंते ' तान्तः=खिन्नः ' परितंते ' परितान्तः=सर्वथा खिन्नः ' बद्धसेए ' संप्राप्तस्वेदः, जातश्चाप्यभवत् ।

ततः खलु कृष्णस्य वासुदेवस्यायमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् मनोगत संकल्पः समुदपद्यत-अहो खलु पञ्च पाण्डवा महाबलवन्तः, यैर्गङ्गामहानदी द्वापष्टिं योजनानि अर्धयोजनं च विस्थिना-विस्तीर्णां बाहुभ्यामुत्तीर्णां, ' इत्थंभूएहि ' इत्थंभूतैः-ईदृशपराक्रमशालिभिः खलु पञ्चभिः पाण्डवैः पद्मनाभो राजा यावत् नो

एगाए बाहाए गंगं महाणइं वासर्द्धिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिन्नं उत्तरिपयत्ते यावि होत्था) वहां आकर के उन्हीं ने एकार्थिक नौका की सब तरफ सब प्रकारसे मार्गणा गवेषणा की 'मार्गणागवेषण करके जब उनके देखने में एकार्थिक नौका नहीं आई, तब सारथि और घोडों से युक्त रथ को उन्हीं ने एक हाथ से पकड़ा और एक हाथ से ६२॥, साठे वासठ, योजन विस्तीर्ण उस गंगा महानदी को तैरकर पार करना प्रारंभ किया । (तएणं से कण्हे वासुदेवे गंगा महाणइंए बहुमज्झदेस-भागं संपत्ते समाणे संते, तंते, परितंते, बद्धसेए जाए यावि होत्था, तएणं कण्हस्स वासुदेवस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था -अहोणं पंच पंडवा महाबलवगा, जेहिं गंगामहाणइं वासर्द्धिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिण्णा बाहाहिं उत्तिण्णा इत्थंभूएहिं णं पंचहिं पंड-

गंगं महाणइं वासर्द्धिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिन्नं उत्तरिपयत्ते यावि होत्था) त्यां आनीने तेमण्णे ' अेकार्थिक ' नौकानी येअेर अधी रीते भागंष्ठा गवेषष्ठा करी. भागंष्ठा तेमण्णे गवेषष्ठा करीने न्यारे ' अेकार्थिक ' नौका तेमणा नेवाभां आनी नद्धि त्यारे सारथि अने घोडाथी युक्ता रथने तेमण्णे अेक हाथभां उपाउथे अने अेक हाथ वडे ६२" येअेन विस्तीष्ठां ते गंगा महा नदीने तरीने पार करवा लाग्या.

(तएणं से कण्हे वासुदेवे गंगा महाणइंए बहुमज्झदेस भागं संपत्ते समाणे संते, तंते, परितंते, बद्धसेए जाए यावि होत्था, तएणं कण्हस्स वासुदेवस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-अहोणं पंच पंडवा महाबलवगा जेहिं गंगा महाणइं वासर्द्धिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिण्णा बाहाहिं उत्तिण्णा इत्थं

प्रतिषेधितः=नो पराजितः, इदमाश्चर्यम्, ततः खलु गङ्गादेवी कृष्णस्य वासुदेवस्य इममेतद्रूपमाध्यात्मिकं यावत् मनोगतं संकल्पं ज्ञात्वा 'थाहं' स्ताघं-गाधं वितरति,=ददाति। ततः खलु स कृष्णो वासुदेवो मुहूर्तान्तरे 'समासासइ' समाश्वसिति-विश्रामं प्राप्नोति समाश्वस्य गङ्गामहानदीं द्वाषष्टिं यावद् उत्तरति, उच्यते

वेहिं पद्मनाभे राया जाव णो पडिसेहिए-तएणं गंगादेवी कण्हस्स वासुदेवस्स इमं एयारूवं अज्झत्थिए जाव जाणित्ता थाहं वितरइ) तैरत्ते २ जय वे कृष्णवासुदेव गंगा महानदी के ठीक मज्झ-मध्य भाग में आये-तब वहां तक आते २ वे भ्रम प्राप्त हो गये, खेदखिन्न बन गये, और सर्वथा थक गये। यहां तक कि उनके शरीर भर में थकावट की थजह से पसीना २ हो गया। तब उन कृष्णवासुदेव को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ। देखो-ये पांचो पांडव बड़े बलिष्ठ हैं-जिन्होंने ने ६२॥, योजन विस्तीर्ण इस गंगा महानदी को हाथों से तैरकर पार कर दिया परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात हैं-कि ऐसे पराक्रम से युक्त होते हुए भी इन पांडवों से वह पद्मनाभ राजा प्रतिषेधित नहीं हो सका-जीता नहीं जा सका। इस प्रकार के उन कृष्णवासुदेव के इस रूप इस आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प को गंगादेवी ने जानकर उन्हें थाह दे दी (अधार दिया)। (तएणं से कण्हे वासुदेवे सुहुत्तंत्तरं समासासइ) थाह प्राप्त कर कृष्णवासुदेव ने वहां

भूएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पडमणाभे राया जाव णो पडिसेहिए-तएणं गंगादेवी कण्हस्स वासुदेवस्स इमं एयारूवं अज्झत्थिए जाव जाणित्ता थाहं वितरइ)

तरतां तरतां न्यारे कृष्णवासुदेव गंगा महानदीना अेकदम मध्यमां आ०या-त्यासुधी आवतां आवतां तो तेआ थाकी गया, जेदणित्त थई गया, अने अेकदम थाकी गया. थाकने लीधे तेमत्तुं संपूष्णं शरीर परसेवाथी तरणेण थई गयुं. त्यारे ते कृष्णवासुदेवने आ नतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उद्भवये के सुआ आ पाथि पांडवो केटवा मथा अदिष्ठ छे के जेभञ्जे ६२" योजन विस्तीर्ण आ गंगा महानदीने डाथे वडे तरीने पार करी छे पञ्च अेनी साथे आ पञ्च अेक नवाधं जेवी वात छे के जेवा पराक्रमी होवा छतांअे आ पांडवोथी ते पद्मनाभ राज यावत् पराश्रित करी शकथे नडि. कृष्णवासुदेवना गंगा महानदीअे आ नतना आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प नाल्हीने तेमना भाटे थाड आपी (तएणं से कण्हे वासुदेवे सुहुत्तंत्तरं समासासइ) थाड भेणवीने कृष्णवासुदेवे थोडीवार त्यां विश्राम कर्यो (समासा०) विश्राम कर्यो आड तेभञ्जे

यत्रैव पञ्च पाण्डवास्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पञ्च पाण्डवान् एवमवादीत्—
अहो खलु यूयं हे देवानुप्रियाः । महाबलवन्तः येन युष्माभिर्गङ्गा महानदी द्वाषष्टि
योजनानि अर्धयोजनं च विस्तीर्णा यावद् उत्तीर्णा, इत्थंभूतैर्युष्माभिः पञ्च-
नाभो यावत् नो मतिषेधितः=पराजयं न प्रापितः, ततः खलु ते पञ्च पाण्डवाः

थोड़ी देर तकविश्राम किया (समाप्त०) विश्राम करके फिर उन्होंने (गंगा
महाणई वावट्टि जाव उत्तरइ, उत्तरिन्ता जेणेव पंचपंडवा तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी-अहोणं तुम्हे देवाणुप्पिया । महा-
बलवगा जेणं तुम्हेहिं गंगा महाणई वासट्टि जाव उत्तिण्णा, इत्थंभूएहिं
तुम्हेहिं पउम जाव णो पडिसेहिए, तएणं ते पंचपंडवा कण्हे णं वासु-
देवेणं एवं वुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु देवाणु-
प्पिया । अम्हे तुम्हेहिं विसज्जिया समाणा जेणेव गंगा महाणई तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगट्टियाए मग्गणगवेसणं तं चेव जाव
णूमेमो तुम्हे पडिवाले माणा चिट्टामो) साढे बासठ योजन विस्तीर्ण
उस गंगा महानदी को तैरकर पार कर दिया । पार करके फिर वे वहाँ
आये-जहाँ ये पांचो पांडव थे । वहाँ आकर उन्होंने ने उन पांचो पांडवों
से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियों ! तुमलोग बहुत ही अधिक बलशाली
हो जो तुमलोगों ने ६२॥ योजन विस्तीर्ण इस गंगा महानदी को बाहुओं
से तैरकर पार कर दिया । परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि इतने बल-
शाली होकर भी जो तुम से पद्मनाभ राजा पराजित नहीं हो सका ।

(गंगा महाणई वावट्टि जाव उत्तरइ, उत्तरिन्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी-अहोणं तुम्हे देवाणुप्पिया ।
महाबलवगा जेणं तुम्हेहिं गंगा महाणई वासट्टि जाव उत्तिण्णा इत्थं भूएहिं तुम्हेहिं
पउमं जाव णो पडिसेहिए, तएणं ते पंच पंडवा कण्हे णं वासुदेवेणं एवं वुत्ता
समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया । अम्हे तुम्हेहिं विस-
ज्जिया समाणा जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगट्टियाए
मग्गण गवेसणं तं चेव जाव णूमेमो तुम्हे पडिवाले माणा चिट्टामो)

६२" योजन विस्तीर्णुं ते गंगा महानदीने तरीने पार पडोन्थी गथा
पार पडोन्थीने तेओ न्यां पांथे पांडवो छता त्यां व्याव्या. त्यां व्यावीने तेभणे
पांथे पांडवोने आ प्रभाणे कछुं के डे देवानुप्रियो । तमे षडु न भगवान् छे
केभके तमे लोकेशे ६२" योजन विस्तीर्णुं आ गंगा महानदीने छथो पडे
तरीने पार करी छे. पण्णेनी साथे आ अेक नवाध् नेरी वात छे के तमे
आटवा अधा भगवान् छेवा छतां पण्णे पक्षनाल राबने डरावी शक्या नदि.

कृष्णेन वासुदेवेनैवमुक्ताः सन्तः कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं खलु हे देवानु-
प्रियाः ! वयं युष्माभिर्विसर्जिताः सन्तो यत्रैव गङ्गा महानदी तत्रैवोपागच्छामः,
उपागत्य ' एगद्वियाद् ' एकार्थिकाया नावो मार्गणगवेषणं कृत्वा ' तं चैव
जाव ण्मेमो ' तदेव=यदुक्तं पूर्वं तदेवात्र बोध्यमित्यर्थः—तां नावमधिरुह्य वयं
गङ्गामहानदीमुत्तीर्णाः, ततः खलु हे देवानुप्रियाः ! गङ्गां महानदीं वाहुभ्या-
मुत्तरितुं भवन्तः शक्नुवन्ति नवा, इति ज्ञातुं वयमेकार्थिकां नौकां यावद् 'ण्मेमो'
गोपयामः, युष्माद् ' पडिवालेमाणा ' प्रतिपालयन्तः—प्रतीक्षमाणा वयं तिष्ठामः ।

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवस्तेषां पञ्चानां पाण्डवानाम् एतमर्थं श्रुत्वा
आकर्ण्य निश्चयं हृद्यनर्धार्य आशुस्नाः—शीघ्रं संजातकोपः, यावत् त्रिवलिकां=रेखा-

इस प्रकार जब कृष्णवासुदेवने उन पांचो पांडवों से कहा तब उन्होंने ने
कृष्णवासुदेव से ऐसा कहा हे देवानुप्रिय ! सुनिये—वात इस प्रकार है
जब हमलोगों को आपने वहां से विसर्जित कर दिया—तब हमलोग
जहां गंगा महानदी थी—वहां आये—वहां आकर हमलोगों ने एकार्थिक
नौका की मार्गणा गवेषणा की—नाव के मिलते ही हमलोग उसपर चढ-
कर यहाँ गंगा नदी को पार कर आये हैं । हमलोगों ने यहाँ आकर
फिर हे देवानुप्रिय ! ऐसा विचार किया - कि - कृष्णवासुदेव गंगा
महानदी को हाथों से पार कर सकते हैं या नहीं—इसी बात को जानने
के लिये हमलोगों ने उस एकार्थिक नौका को यहीं छिपा कर रख दिया
है । और आपकी प्रतीक्षा में यहाँ ठहरे हुए हैं । (तएणं से कण्हे वासु-
देवे तेसि पंचण्हं पांडवाणं एयमद्वं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते जाव तिव-

आ रीते न्यारे कृष्णवासुदेवे ते पांचे पांडवोने कहुं त्यारे तेभण्हे कृष्णवासु
देवने आ प्रभाण्हे कहुं के हे देवानुप्रिय ! सांलणो, वात जेपी छे के अमने
अधाने तमे न्यारे विहाय कथां त्यारे अमे लोको न्यां गंगा महानदी छती
त्यां आव्या त्यां आवीने अथाजे अकार्थिक नौकानी भागण्हा गवेषणा करी.
नौका प्राप्त थतां अमे अथा तेमां खेसीने गंगा महानदीने पार करीने आ
तरक्ष आवी गया. आ तरक्ष आवीने हे देवानुप्रिय ! अमे लोकोजे आ प्रभाण्हे
विचार कर्यो के—कृष्णवासुदेव गंगा महानदीने हाथो वडे तरीने पार करी शक्ये
के केम ? आ वात लण्णवा भाटे अमे लोकोजे ते अकार्थिक नौकाने छुपावीने
तभारी प्रतीक्षा करतां अमे अर्ही अ खेसी रक्षां छता.

(तए णं से कण्हे वासुदेवे तेसि पंचण्हं पांडवाणं एयमद्वं सोच्चा णिसम्म
आसुरुत्ते जाव तिवलियं एवं वयासी—अदोणं जया मए लवणसमुदं दुवे जोयण

त्रयुक्तां भृकुटिं ललाटे उन्नीय प्रदर्श्य, एवमवादीत्-अहो-आश्चर्यं खलु ' जया ' यदा-यस्मिन् समये, मया लवणसमुद्रं ' दुवे जोयणसयमहस्सा वित्थिण्णं ' द्वियो-जनशतसहस्रविस्तीर्णं द्विलक्षयोजनपरिमितं विस्तीर्णं ' वीइवइत्ता ' व्यतिव्रज्य-समुल्लङ्घ्य, पद्मनाभं राजानं ' हयमहिय-जाव पडिसेहिता ' हतमथित-यावत्

लियं एवं वयासी-अहोणं जया मए लवणसमुद्रं दुवे जोयणसयसहस्सा विच्छिन्नं वीइवइत्ता पउमणाभं हयमहिय जाव पडिसेहिता अमरकंका संभग० दोवई साहत्थि उवणीया तथा णं तुभेहिं मम माहप्यं ण विण्णायं इयाणिं जाणिस्सह, त्ति कट्टु लोहदंडं परामुसइ, पंचणहं पंडवाणं रहे चूरेइ, चूरित्ता णिव्विसए आणवेइ आणवित्ता तत्थ णं रहमइणे णामं कोइडे णिवेडे, तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सएणं खंधावारेणं सद्धि अभिसमन्नागए यावि होत्था, से कण्हे वासुदेवे जेणेव बारवईए णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपविसइ) उन पांचो पांडवों के मुख से इस कथन रूप अर्थ को सुनकर और उसे अपने हृदय में अवधारित कर उन कृष्णवासुदेव को इकदम क्रोध आ गया। त्रिवलियुक्त उनकी दोनों भृकुटियां ललाटतट पर चढ़ गई। उसी समय उन्होंने उन पांडवों से कहा यह बड़े आश्चर्य की बात है-जिस समय मैंने २ दो लाख योजन विस्तारवाले लवणसमुद्र को उल्लंघन कर पद्मनाभ राजा को संग्राम में जीता-उस की सेना को हत मथित किया-राजचिन्हस्वरूप उसकी

सयसहस्सा विच्छिन्नं वीइवइत्ता पउमणामं हय महिय जाव पडिसेहिता अमरकंका संभग० दोवई साहत्थि उवणीया तथाणं तुभेहिं मम माहप्यं ण विण्णायं इयाणिं जाणिस्सह, त्ति कट्टु लोहदंडं परामुसइ, पंचणहं पंडवाणं रहे चूरेइ, चूरित्ता णिव्विसए आणवेइ आणवित्ता तत्थणं रहमइणे णामं कोइडे णिवेडे, तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सएणं खंधावारेणं सद्धि अभिसमन्नागए यावि होत्था तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव बारवइ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपविसइ)

ते पांचे पांडवोना सुभथी आ कथनरूप अर्थने सांभणीने अने तेने पोताना हुइथमां अवधारित करीने ते कृष्णवासुदेव अकदम क्रोधाविष्ट थइ गया. त्रिवलियुक्त तेभना अने लभभरे वड थइ गया. तेभणे ते २ समये पांडवोने आ प्रभाणे कहुं हे आ अरेअर नवाध बेवी वात छे हे अयारे मे २ लाख थेअन विस्तीर्ण लवण समुद्रने आणणीने पद्मनाभ राजने युद्धमां लथे, तेनी सेनाने मथी नाथी, राजचिह्न स्वरूप तेनी प्रशस्त ध्वजा पताकाअने

प्रतिषेध्य-इतमथितप्रवरवीरघातितनिपतितचिद्भवजपताकं यावत् प्रतिषेध्य = संग्रामात् प्रतिनिवर्त्य-पद्मनाभं विजित्येत्यर्थः, अमरकंकां राजधानीं संभनतोरणा यावद् विनिपातिता-विध्वंसिता, तथा-द्रौपदी स्वहस्तेनोपनीता-भवद्भ्यः प्रदत्ताः, 'तयाणं' तदा=तस्मिन् समये खलु युष्माभिर्मम 'माहर्ष्यं' माहात्म्यं=महत्त्वं बलं, 'ण विष्णायं' न विज्ञातम् 'इयार्णि' इदानीम्-अस्मिन् समये 'जाणि-स्सह' ज्ञास्यथ, इति कृत्वा=इत्युक्त्वा, लोहदण्डं 'परामुसद्' परामुशति-गृह्णाति पञ्चानां पाण्डवानां रथान् चूर्णयति, चूर्णयित्वा 'णिव्विसए आणवेद्' निर्विष-यान् आज्ञापयति-विषयात् स्वदेशतो निर्गताः वहिर्याता इति निर्विषयास्तान्, यूयं मम देशात् निर्विगच्छत, इत्याज्ञापयति स्म 'इत्यर्थः। आज्ञाप्य तत्र खलु 'रथमदणे णामं कोट्टे णिविद्धे' रथमर्दननामा कोष्ठो निविष्टः-रथमर्दनपुरं नाम नगरं स्थापितम्।

ततस्तदनन्तरं स कृष्णो वासुदेवो यत्रैव स्वकः=निजः, 'खंधावारे' स्कन्धा-वारः-सेनानिवेशस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्वकेन स्कन्धावारेण-सोपकरण-सैनिकेन सार्धम् अभिसमन्वागतः=मिलितश्चाप्यभवत्। ततः खलु स कृष्णो वासु-देवो यत्रैव द्वारवती नगरी, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य, अनुभवति ॥मू० ३१॥

प्रशस्त ध्वजा पताकाओं को जमीन में मिला दिया-उस की राजधानी अमरकंका नगरी को ध्वस्त कर दिया, तथा उससे द्रौपदी को अपने हाथ से लाकर तुम लोगों को दिया उस समय तुम लोगों ने मेरे बल को नहीं जाना ? जो अब जानोगे-ऐसा कहकर उन वासुदेव कृष्ण ने लोह दंडे को उठाया-और उससे पांचों पांडवों के रथों को चूर २ कर दिया। चूर २ कर के फिर उन्हें देश से बाहिर हो जाने की आज्ञा देदी। आज्ञा देकर उन कृष्ण वासुदेव ने वहीं पर एक रथमर्दन नाम का नगर बसा दिया। इस के बाद वे कृष्ण वासुदेव जहाँ अपना स्कंधावार था वहाँ

जमीनहोस्त करी नाभी तेनी राजधानी अमरकंका नगरीने नष्ट करी नाभी अने तेनी पासेथी द्रौपदीने धारिने तमने सोंपी दीधी ते वभते तमे लोकां भारा भगने ब्रह्मी शक्या नहि तो डवे भारा भगने तमे तुष्ठा-आम कडीने ते कृष्णवासुदेवे लोहदण्डने हाथमां दीधी अने तेनाथी तेभञ्जे पांथे पांडवोना रथानां लूडेभुका उडावी दीधी। रथाने नष्ट करीने तेभञ्जे पांथे पांडवोने देशथी बहार जाता रहेवानी आज्ञा आपी। आज्ञा आपीने ते कृष्णवासुदेवे ते स्थलेन अेक रथमर्दन नामे नगर बसावुं। त्यारपछी ते कृष्णवासुदेव ब्यां पोताना सैन्यनी छावणी इती त्यां आंव्या। त्यां आपीने तेष्वा पोताना सैनिकाने

मूलम्—तएणं ते पंच पंडवा जेणेव हृत्थिणाउरे तेणेव उवा-
गच्छंति उवागच्छिता जेणेव पंडू तेणेव उवागच्छंति उवाग-
च्छिता करयल एवं वयासी—एवं खलु ताओ ! अम्हे कणहेणं
णिविसया आणत्ता, तएणं पंडुराया ते पंच पंडवे एवं वयासी—
कहणं पुत्ता ! तुम्हे कणहेणं वासुदेवेणं णिविसया आणत्ता?,
तएणं ते पंच पंडवा पंडुरायं एवं वयासी—एवं खलु ताओ !
अम्हे अमरकंकाओ पडिणियत्ता लवणसमुद्धं दोन्नि जोयणसय-
सहस्साइं वीइवइत्ता तएणं से कणहं अम्हे एवं वयासी—गच्छह
णं तुम्हे देवाणुप्पिया ! गंगामहाणइं उत्तरह जाव चिट्ठह ताव
अहं एवं तहेव जाव चिट्ठामो, तएणं से कणहे वासुदेवे सुट्ठियं
लवणाहिवइं दट्ठण तं चैव सव्वं नवरं कणहस्स चिंता ण जुज्जइ
जाव अम्हे णिविसए आणवेइ, तएणं से पंडुराया ते पंच पंडवे एवं
वयासा—दुट्ठु णं पुत्ता ! कयं कणहस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमा-
णेहिं, तएणं से पंडुराया कोत्तिं देविं सदावेइ सदावि त्ता एवं
वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! बारवइं कणहस्स वासुदे-
वस्स णिवेदेहि—एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुम्हे पंच पंडवा णिवि-
सया आणत्ता तुमं च णं देवाणुप्पिया ! दाहिणइभरहस्स सामी
तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया पंच पंडवा कयरं दिस्सिं वा विदिसं

आये । वहाँ आकर वे अपने सैनिकों के साथ मिले । बाद में जहाँ
द्रावाती नगरी थी उस ओर चल दिये वहाँ पहुँच कर वे द्रावाती
नगरी में प्रविष्ट हुए ॥ सू० ३१ ॥

मन्था, त्याग्नाइ तेओ ने तरइ द्रावाती नगरी छती ते तरइ रवाना थया.
त्यां पडोन्नि तेओ द्रावाती नगरीमां प्रविष्ट थया. ॥ सूत्र ३१ ॥

वा गच्छंतु ? , तएणं सा कौंती पंडुणा एवं बुत्ता समाणी हत्थि-
खंधं दुरुहइ दुरुहित्ता जहा हेट्टा जाव संदिसंतु णं पिउत्था !
किमागमणपओयणं ? , तएणं सा कौंती कण्हं वासुदेवं एवं
वयासी-एवं खलु पुत्ता ! तुमं पंच पंडवा णिविसया आणत्ता
तुमं च णं दाहिणद्धुभरह जाव विदिसं वा० गच्छंतु ? , तएणं
से कण्हे वासुदेवे कौंतिं देविं एवं वयासी-अपूर्इवयणाणं पिउ-
त्था ! उत्तमपुरिसा वासुदेवा बलदेवा चक्कवट्ठी तं गच्छंतु णं
देवाणुप्पिया ! पंच पंडवा दाहिणिहं वेलाऊलं तत्थ पंडुमहुरं
णिवेसंतु ममं अदिट्ठसेवगा भवंतु त्तिकट्टु कौंतिं देविं सक्कारेइ
सम्भाणेइ जाव पडिविसज्जेइ, तएणं सा कौंती देवी जाव पंडुस्स
एयमट्ठं णिवेदेइ, तएणं पंडू पंच पंडवे सदावेइ सदावित्ता एवं
वयासी-गच्छह णं तुब्भे पुत्ता ! दाहिणिहं वेलाऊलं तत्थ णं
तुब्भे पंडुमहुरं णिवेसेह, तएणं पंच पंडवा पंडुस्स रणो जाव
तहत्ति पडिसुणेति सबलवाहणा हयगय० हत्थिणाउराओ पडि-
णिक्खमंति पडिणिक्खमित्ता जेणेव दक्खिणिह्हे वेयाली तेणेव उवा-
गच्छइ उवागच्छित्ता पंडुमहुरं नगरिं निवेसेति निवेसित्ता तत्थ
णं तेविपुलभोगसमिति समण्णागया यावि होत्था ॥ सू० ३२ ॥

टीका— तएणं ते इत्यादि । तनस्तदनन्तरं खलु ते पञ्च पाण्डवा यज्ञैव
हस्तिनापुरं नगरं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य यज्ञैव पाण्डू राजा तत्रैवोपागच्छन्ति,

- : तएणं ते पंच पंडवा इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते पंच पंडवा) वे पांचों पांडव (जेणेव
हत्थिणा उरे) जहां हस्तिनापुर नगर था (तेणेव उवागच्छंति) वहां

तएणं ते पंच पंडवा इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपछी (ते पंच पंडवा) ते पांचे पांडवे (जेणेव हत्थिणा
उरे) वथां हस्तिनापुर नगर छंतु (तेणेव उवागच्छंति) तथा आ०या. (स्वा-

उपागत्य करतलपरिग्रहीतदशनखं शिरआवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा, एवं=वक्ष्य-
माणमकारेण, अत्रादिषुः—एवं खलु हे तात ! वयं कृष्णेन निर्विषयाः=विषयाद्
मम देशाद् बहिर्निर्गताः आज्ञप्ताः=कृष्णोऽस्मान् देशाद् बहिर्निर्गन्तुमाज्ञप्तवानि-
त्यर्थः । ततः खलु पाण्डु राजा तान् पञ्च पाण्डवान् एवमवादीत्—‘ कहणं’ कथं-
केन कारणेन खलु हे पुत्र ! वयं कृष्णेन निर्विषया आज्ञप्ताः ? ततः खलु ते
पञ्च पाण्डवाः पाण्डुं राजानम् एवमवदन्—एवं खलु हे तात ! वयममरकङ्कातः प्रति-
नितृत्ता लवणसमुद्रं ‘ दोन्निजोयणसयं सहस्साइं ’ द्वियोजनशतसहस्राणि द्विलक्ष-
योजनपरिमितं ‘ वीइवइत्ता ’ व्यतिव्रजिताः—उल्लङ्घिताः । ततः खलु स कृष्णो-

आगए (उवागच्छित्ता) वहां आकर के (जेणेव पंडू) वे जहां पांडु
राजा थे (तेणेव उवागच्छंति) वहां गये (उवागच्छित्ता) वहां जाकर
(करयल० एवं वयासी) उन्होंने ने अपने २ दौनों हाथों को जोड़कर उनसे
इस प्रकार कहा—(एवं खलु ताओ !) हे पिताजी ! सुनो—(अम्हे कण्हे-
णं णिव्विसया आणत्ता) हमलोगों को कृष्ण वासुदेव ने देश से निकल
जाने को कहा है (तएणं पंडुराया पंच पंडवे एवं वयासी) तब पांडु राजा
ने उन पांचों पांडवों से इस प्रकार कहा—(कहणं पुत्ता तुव्भे कण्हेणं
वासुदेवेणं णिव्विसया आणत्ता) हे पुत्रो ! किस कारण को लेकर कृष्ण
वासुदेव ने तुमलोगों को देश से बाहिर निकल जाने को कहा है (तएणं
ते पंच पंडवा पंडुराया एवं वयासी) तब उन पांचों पांडवों ने पांडु
राजा से इस प्रकार कहा—(एवं खलु ताओ ! अम्हे अमरकंकाओ पडि-
णियत्ता लवणसमुद्रं दोन्नि जोयणसयसहस्साइं वीइवइत्ता) हे तात !

गच्छित्ता) त्यां आधिने (जेणेव पंडू) तेओ न्यां पांडु राजा डता (तेणेव
उवागच्छंति) त्यां गया. (उवागच्छित्ता) त्यां वधिने (करयल० एवं वयासी)
तेमणे पोतपोताना अंने डथो नेडीने तेमने आ प्रभाणे विनंती करी डे
(एवं खलु ताओ) डे पिता ! सांभणे, (अम्हे कण्हेणं णिव्विसया आणत्ता)
कृष्णवासुदेवे अमने देशथी अडार वता रडेवानी आसा आपी छे. (तएणं पंडु
राया पंच पंडवे एवं वयासी) त्यारे पांडु राजाये पांचे पांडवोने आ प्रभाणे डहुं
डे—(कहणं पुत्ता तुव्भे कण्हेणं वासुदेवेणं णिव्विसया आणत्ता) डे पुत्रे !
कृष्णवासुदेवे शा डारणुथी तमने देशभांथी अडार वता रडेवानी आसा आपी
छे ? (तएणं ते पंच पंडवा पंडुराया एवं वयासी) त्यारे ते पांचे पांडवोये
पांडु राजाने आ प्रभाणे डहुं डे—(एवं खलु ताओ ! अम्हे अमरकंकाओ पडि-
णियत्ता लवण-समुद्रं दोन्नि जोयणसयसहस्साइं वीइवइत्ता) डे पिता ! सांभणे,

ऽस्मान् एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! गङ्गामहानदीमुत्तरत, यावत् तिष्ठत । ताव अहं एवं तद्देव ' जाव चिद्दामो ' एवं यथा कृष्णवासुदेवस्य वाक्यं पूर्ववृक्तं तथैवात्र बोध्यम्-तावदहं सुस्थितं लवणाधिपतिं पश्यामीति । ' जाव चिद्दामो ' यावत्तिष्ठामः-अत्र यावच्छब्देनैवं योजनीयम्-ततः खलु वयं कृष्णवासुदेवेनैवमुक्ताः सन्तो नौकया गङ्गामहानदीमुत्तीर्य, कृष्णो बाहुभ्यां गङ्गामहानदीमुत्तरितुं समर्थो न वेति विज्ञातुं तां नौकां संगोपितवन्तः, ततः कृष्णं प्रतीक्षमाणस्तिष्ठाम इति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः सुस्थितं लवणाधिपतिं दृष्ट्वा, ' तं चेव सच्चं ' तदेव सर्वं-गङ्गामहानद्यास्तटे समागत्य, एकार्थिकां नाव-

सुनो-चात इस प्रकार है-जब हमलोग अमरकंका नगरी से पीछे आकर २, दो लाख योजन विस्तार वाले लवणसमुद्र को पार कर चुके (तएणं) तब (से कण्हे अहं एवं वयासी) उन कृष्ण वासुदेव ने हमलोगों से इस प्रकार कहा-(गच्छह णं तुव्भे देवानुप्रिया ! गंगा महाणइं उत्तरह जाव चिद्दह-ताव-अहं एवं तद्देव जाव चिद्दामो) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग चलो और गंगा महानदी को पारकरो-तब तक मैं सुस्थित देव से मिलकर और आज्ञा प्राप्तकर आता हूँ । कृष्ण वासुदेव द्वारा इस प्रकार आज्ञास हुए हमलोगों ने नौका से गंगा महानदी को पार करके वहीं पर उस नौका को छुपा दिया-इस अभिप्रायसे कि देखें कृष्ण वासुदेव अपने हाथों से तैर कर इस गंगा महानदी को पार कर ने में समर्थ हो सकते हैं या नहीं । नौका को छिपाकर हमलोग वहीं पर उनकी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे । (तएणं से कण्हे वासुदेवे सुद्वियं लवणाहिवइं

चात आ प्रभाणु छे के न्यारे अमे अमरकंका नगरीथी पाछा वणतां २ लाख योजन ठेटला विस्तारवाणा लवणु समुद्रने पार करी चुक्या (तएणं) त्यारे (से कण्हे अहं एवं वयासी) ते कृष्णवासुदेवे अमने आ प्रभाणु कळुं के-(गच्छइणं तुव्भे देवानुप्रिया ! गंगा महाणइ उत्तरह जाव चिद्दह-ताव अहं एवं तद्देव जाव चिद्दामो) छे देवानुप्रियो ! तमे लअ्यो अने गंगा महानदीने पार करी तेटलाभां हुं सुस्थित देवने भणीने अने तेमनी पासेथी आज्ञा भेजवीने आवुं छुं. आ प्रभाणु कृष्णवासुदेव वडे आज्ञापित थयेला अमे नौका वडे गंगा महानदीने पार करीने त्यां न ते नौकाने छुपावी हीथी. नौकाने छुपाववा पाछण अमारो अे लतनेो आशय इतो के कृष्णवासुदेव योताना हाथीथी तरीने गंगा महानदीने पार करी शके छे के नळिं ? नौकाने छुपावीने असे त्यां न तेमनी प्रतीक्षा करतां दैकार्थ गया. (तएणं से कण्हे वासुदेवे सुद्वियं

महद्वा एकेन वाहुना रथं सतुरगं ससारथिं गृहीत्वा, एकेन वाहुना गङ्गासहानदीं मुत्तीर्य, समागतः । ' नवरं कणहस्स चित्ता न बुद्धइह ' नवरं कृष्णस्य चिन्ता न बुध्यते नवरं=विशेषस्तु हे तात ! नौकायां संगोपितायां सत्यां कृष्णः केनोपायेन गङ्गासहानदीं तरिष्यति इति चिन्ताऽस्माभिर्न बुध्यते=न क्रियतेस्म, अनेनापराधेन ' जाव अम्हे णिच्चिसए आणवेइ ' यावत्-रथाञ्चूर्णीकृत्याऽस्मात् निर्विषयान् आज्ञापयति । ततस्तदनन्तरं स पाण्डू राजा तान् पञ्चपाण्डवानेवमवादीत्- ' दुद्दुणं ' दुद्दुणं=अशोभनं खलु हे पुत्राः ! कृतं युष्माभिः कृष्णस्य वासुदेवस्य विष्णियं ' विप्रियम्-अनिष्टम् कुर्वद्भिः, ततः खलु स पाण्डू राजा कुन्तीं देवीं शब्दयति, शब्दयित्वा, एवमवादीत्-गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिये ! द्वारवती

दुद्दुणं तंचेव सव्वं-नवरं कणहस्स चित्तां न जुज्जति जाव अम्हे णिच्चिसये आणवेइ) वाद् में कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्राधिपति सुस्थित देव से मिलकर ज्यों ही गंगा महानदी के तट पर आये-तो उन्हें वह नौका नहीं मिली-इस कारण वे ? एक हाथ से तुरग एवं सारथि युक्त रथ को ले दूसरे हाथ से गंगा महानदी को तैर कर जहां हमलोग थे-वहां आ गये । " कृष्णजी किस तरह गंगा महानदी को पार करेंगे " यह विचार हमबोगों ने नौका को छिपाते समय नहीं किया । इसी अपराध से उन्होंने ने हमारे रथों को चक्रना चूर कर देश से बाहिर निकल जाने के लिये आज्ञा दी है । (तएणं से पंडुराया ते पंच पंडवा एवं वयासी-दुद्दुणं पुत्ता ! कथं कणहस्स वासुदेवस्स विष्णियं करेमाणेहि-तएणं से पंडुराया कौंतिं देविं सदावेइ सदाविस्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुमं

लवणाहिइहं दुद्दुणं तं चेव सव्वं-नवरं कणहस्स चित्तां न जुज्जति जाव अम्हे णिच्चिसये आणवेइ) त्पारपथी कृष्णवासुदेव लवणु समुद्रना अधिपति सुस्थित-देवने मणीने न्यारे गंगा महानदीना किनारा उपर आव्या त्पारे तेमने नौका नडी नडि. त्पारे तेओ ओक डायमां घोडा अने सारथि सडित रथने उच-कीने धीज्ज डायथी गंगा महानदीने तरीने न्यां अमे डता त्यां आवी गया. " कृष्णवासुदेव केवी रीते गंगा महानदीने पार करथे " नौकाने छुपावतां अमे आ विषे विचार न कथीं नडोतो. आ अपराधथी तेमणे अमारा रथोने नष्ट करी नाथ्या अने अमने देशनी भडार जता रडेवानी आज्ञा करी छे.

(तएणं से पंडुराया ते पंच पंडवे एवं वयासी-दुद्दुणं पुत्ता ! कथं कणहस्स वासुदेवस्स विष्णियं करेमाणेहि-तएणं से पंडुराया कौंतिं देविं सदावेइ, सदा-

नगरीं, कृष्णस्य वासुदेवस्य निवेदय, एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! युष्माभिः पञ्च पाण्डवा निर्धिपयाः देशनिकासिताः आज्ञप्ताः, यूयं च खलु हे देवानुप्रियाः ! दक्षिणार्धभरतस्य स्वामिनः । ' तं ' तत्=तस्मात् संदिशन्तु=कथयन्तु हे देवानुप्रियाः ! ते पञ्च पाण्डवाः कतरां दिशं विदिशं वा गच्छन्तु ? भवतामेव सर्वे देशाः, तर्हि इमे कुत्र गमिष्यन्तीति कथयन्तु भवन्तः । ततः खलु सा कुन्ती पाण्डुना राज्ञैवमुक्ता सती हस्तिस्कन्धं दूरोहति-आरोहयति-दूरुह्य ' जहाहेडा '

देवाणुप्पिया ! वारवहं कण्हस्स वासुदेवस्स निवेदेहिं एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुरहे पंच पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं देवाणुप्पिया ! दाहिणद्धुभरहस्स सामी, तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! ते पंच पंडवा कयरं दिस्सि वा विदिसं वा गच्छंतु ?) तव पांडु राजा ने उन पांचों पांडवों से इस प्रकार कहा तुम लोगों ने यह सुन्दर काम नहीं किया जो इस प्रकार से कृष्ण वासुदेव का अनिष्ट किया-उन्हें नहीं रुचने वाला काम किया इस प्रकार कहकर पांडु राजा ने उसी समय कुन्ती देवी को बुलाया-बुलाकर उससे ऐसा कहा-हे देवानुप्रिये ! तुम द्वारा-वनी नगरी में कृष्ण वासुदेव के पास जाओ और उनसे निवेदन करो -कि आपने पांच पांडवों को देश से बाहिर निकल जानेके लिये आज्ञा दी है-सो हेदेवानुप्रिय ! आप दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र के अधिपति हैं-अतः कहें कि वे कौनसी दिशा अथवा विदिशा की ओर जावें । जब आपके ही सर्व देश हैं-तो ये कहाँ जावें आप कहें । (तएणं सा कोती

वित्ता एव वयासी-गच्छहइं णं तुमं देवाणुप्पिया ! वारव कण्हस्स वासुदेवस्स निवेदेहिं एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुम्हे पंच पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं देवाणुप्पिया ! दाहिणद्धुभरहस्स सामी, तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! ते पंच पंडवा कयरं दिस्सि वा विदिसं वा गच्छंतु ?)

त्यारे पांडु राज्ञे ते पांचे पांडवोने आ प्रभाणु कळु के तमे लोडोअणे कृष्णवासुदेवतुं सुइं करीने साइं कथुं नथी तेमने अणुगभतुं काम तमे कथुं छे. आ प्रभाणु कळीने पांडु राज्ञे ते व वभते कुंती देवीने गोलावी. गोलावीने तेमने आ प्रभाणु कळु,के छे देवानुप्रिये । तमे द्वारावती नगरीमां कृष्णवासुदेवनी पांचे ज्ञेअने तेमने विनंती करे के तमे पांचे पांडवोने देशथी अहार नीकणी ज्वानी आसा आपी छे. छे देवानुप्रिये ! तमे दक्षिणार्ध भरतक्षेत्रना अधिपति छे तो अतावे के तेअने कथं दिशा के विदिशा तरइ जय. न्यारे अथा देशे तभारा व छे त्यारे अतावे के आ लोडे कथां जय ?

यथा अधः, यथापूर्वं द्वारवतीमागता तथाऽत्रापि बोध्यम् यावत् संदिशन्तु—अत्र यावदित्यनेनैवं बोध्यम्—द्वारवतीं नगरीमागत्य कृष्णेन सत्कृता स्नाता कृतभोजना-सुखासनवर्गताऽभवत् इति, ततस्तां कृष्णः पृच्छति संदिशन्तु=कथयन्तु खलु हे पंडुणा एवं वृत्ता समाणी, हत्थिखंधं दुरुहह, दुरुहिता जहा हेट्टा जाव संदिसंतु णं पिउत्था । किमागमणपओयणं ? तएणं सा कौती कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता ! तुमे पंच पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं दाहिणद्धु भरह जाव विदिसं वा गच्छंतु ? तएणं से कणहे वासुदेवे कौतीदेविं एवं वयासी अपूर्हवयणा णं पिउत्था । उत्तम पुरिसा वासुदेवा, बलदेवा, चक्कवट्ठी तं गच्छंतु णं देवाणुपिया ! पंच पंडवा दाहिणिल्लं वेलाउलं तत्थ पंडुमहुरं णिवेसंतु ममं अदिट्टसेवगा भवंतु त्ति कट्टु कौतीदेविं सकारेह, सम्माणेह, जाव पडिदिसज्जेह) पांडु के द्वारा इस प्रकार कही गई वह देवी हाथी पर चढ़ी और चढ़ कर जिस प्रकार पहिले यह द्वारवती आई थी वसी तरह अब भी यह वहां पहुँची । यहां यावत् शब्द से इस प्रकार पाठका संबन्ध लगा लेना चाहिये—जब कुन्ती द्वारवती नगरी में आई—तब कृष्ण वासुदेवने उनका खूब मनमाना सत्कार किया । बड़े ठाट बाट से उनका प्रवेशोत्सव मनाया—। कुन्तीने स्नान आदि दैनिक कार्यों से निवट कर आनंद के साथ चतुर्विध आहार किया बाद में विश्राम के निमित्त सुखासन पर

(तएणं सा कौती पंडुणा एवं वृत्ता समाणि, हत्थिखंधं दुरुहह, दुरुहिता जहा हेट्टा जाव संदिसंतु णं पिउत्था । किमागमणपओयणं ? तएणं सा कौती कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता ! तुमे पंच पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं दाहिणद्धु भरह जाव विदिसं वा गच्छंतु ? तएणं से कणहे वासुदेवे कौती देविं एवं वयासी—अपूर्ह वयणा णं पिउत्था उत्तमपुरिसा देवा, बलदेवा, चक्कवट्ठी तं गच्छंतु णं देवाणुपिया ! पंच पंडवा दाहिणिल्लं वेलाउलं तत्थ पंडुमहुरं णिवेसंतु ममं अदिट्टसेवगा भवंतु त्ति कट्टु कौती देविं सकारेह, सम्माणेह, जाव पडिदिसज्जेह)

आ प्रभाषे पांडु वडे आज्ञापित थयेली कुंती हेवी हाथी उपर सवार थई अने सवार थईने पडेवां जेम ते द्वारावती नगरी गर्ह इती तेमज्ज अत्यारे पणु पडेवांथी । आहीं यावत् शण्ठथी आ नतनेो पाठ समज्जेो ज्जेथंजे के न्यारे कुंती द्वारावती नगरीमां आवी त्यारे कृष्णवासुदेवे तेमनेो प्रमज्ज सत्कार कथेो । अहुं ज्ज हाठथी तेमनेो प्रवेशोत्सव ज्जयेो । कुंतीजे पणु स्नान वजेरे नित्यकर्मोथी परिवारीने सुजेथी चतुर्विध आहार कथेो । त्यारपथी विश्राम

पितृष्वसः ! किमागमनप्रयोजनम् ? ततः खलु सा कुन्ती कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं खलु हे पुत्र ! स्वया पञ्च पाण्डवा निर्विषया आज्ञाः त्वं च खलु दक्षिणार्धभरतस्य यावत् स्वामी, तत् कथय ते पञ्च पाण्डवाः कतरां दिशं विदिशं वा गच्छन्तु ? । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कुन्तीं देवीमेवमवादीत्—‘अपूर्वव्यवर्णा णं’ अपूर्तिवचनाः=सकृद्वचनाः खलु हे पितृष्वसः ! उत्तमपुरुषाः वासुदेवा बलदेवाश्चक्रवर्तिनः, ‘तं’ तत्-तस्मात् गच्छन्तु खलु हे देवानुप्रिये ! पञ्च पाण्डवाः ‘दाहिणिल्लं’ वेलाऊलं ‘दाक्षिणात्यं वेलाऊलं—दक्षिणसमुद्रतटम्, तत्र ‘पंडुमहूरं’ पाण्डुमथुरां नगरीं ‘णिवेशंतु’ निवेशयन्तु, समादृष्टसेवका भवन्तु,

उन्होंने आराम किया । इतने में कृष्ण वासुदेव ने जब वे विज्ञाम कर चुकीं उन से पूछा—कहिये सुआ जी ! किस प्रयोजन को लेकर यहां आपका आगमन हुआ है तब कुन्ती ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा हे पुत्र ! आनेका प्रयोजन इस प्रकार है—तुमने जो पांचों पांडवों को अपने देश से बाहिर निकल जाने की आज्ञा दी है—सो इस विषय में यह पूछना है कि तुम तो दक्षिणार्ध भरत के अधिपति हो अतः हमें समझाहिये कौनसी दिशा या विदिशा में जावें ? इस प्रकार कुन्तीदेवीके मुखसे सुनकर कृष्ण वासुदेव ने उससे ऐसा कहा—हे सुआ जी—उत्तम पुरुष, वासुदेव, बलदेव, एवं चक्रवर्ती ये सब अपूर्तिवचन वाले होते हैं—जो कुछ कहते हैं वह एक ही बार कहते हैं—उसमें परिवर्तन नहीं होता है—इसलिये हे देवानुप्रिय ! पांचों पांडव दक्षिणसमुद्र पर जावें और वहां पांडु मथुरा नगरी को बसावें—स्थापित करें—और मेरे अदृष्ट सेवक

माटे तेभाळु सुभासानु उपर आराम कर्यो. न्यारे तेज्या सारी रीने विश्राम करी शुक्या त्यारे तेमने कृष्णवासुदेवे पूछ्युं डे—आज्ञा, श्रेष्ठभा, शा आरुष्यथी तमे आर्डी पधार्था छे ! त्यारे कुंतीजे कृष्णव.सुदेवने आ प्रभाळे कळुं डे डे पुत्र ! हुं अेटशा माटे आवी छुं डे तमे पांचे पांडवोने पैताना देशमांथी अकार नीकणी नवानी आज्ञा करी छे तो आ विषे भारे आ वाततुं स्पर्धी-करणु करतुं छे डे तमे तो दक्षिणार्ध भरतना अधिपति छे, तो आवी परिस्थितिमां तमे न अमने अतावे डे तेज्या कथ दिशा डे विदिशा तरक नथ ? आ प्रभाळे कुंती देवीना सुभथी गंधी वान सांखणीने कृष्णवासुदेवे तेमने आ प्रभाळे कळुं डे डे श्रेष्ठभा ! वासुदेव, अणदेव अने अकवर्ती आ गधा उत्तम पुरुषो अति वचनवाणा छेय छे—तेज्या ने कथं पळु कडे छे ते जेकर वार कडे छे तेमां कथं पळु नतने। श्रेष्ठार थर्ध शकतो नथी. अेटशा माटे डे देवानुप्रिये ! पांचे पांडवो दक्षिण समुद्र तरक नथ अने त्यां पांडु मथुरा

इति कृत्वा कुन्तीं देवीं सत्कारयति संमानयति, सत्कार्यं, संमान्य यावद् विसर्जयति । ततः खलु सा कुन्ती देवी हस्तिनं समारुह्य हरितनापुरमागता यावत् पाण्डो राज्ञ एतमर्थं निवेदयति । ततः खलु पाण्डु राजा पञ्च पाण्डवान् शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत-गच्छत खलु यूयं हे पुत्राः ! ' दाहिणिल्लं वेलाऊलं ' दाक्षिणात्यवेलाऊलं-दक्षिणसमुद्रतटं, तत्र खलु यूयं पाण्डुमथुरां नगरीं निवेशयत ।

होकर रहें। इस प्रकार कहकर उन्होंने ने कुन्तीदेवी का सत्कार किया सम्मान किया। सत्कार सम्मान करके फिर उन्हें अपने यहां से विदा दिया। (तएणं सा कौंती देवी जाव पंडुस्स एयमट्टं निवेदेइ, तएणं पंडु पंच पंडवे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुवमे पुत्ता ! दाहिणिल्लं वेलाऊलं तत्थणं तुवमे पंडुमहुंरं णिवेसेह तएणं पंच पंडवा पंडुस्स रण्णो जाव तहत्ति पडिसुणेंति, सवलवाहणा ह्य गजं हत्थिणाउराओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वेयाली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुमहुंरं नगरिं णिवेसेंति, निवेशित्ता तत्थ णं ते विउलभोगसमित्तिसमण्णागया यावि होत्था) वहां से हाथी के ऊपर बैठ कर कुन्तीदेवी हस्तिनापुरमें आ गई, यावत् पांडुराजासे कृष्णवासुदेव के कथितआदेश को उन्होंने ने सुना दिया। इसके बाद पांडु राजा ने पांचों पांडवों को बुलाया-और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा-हे पुत्रों-तुम यहां से दक्षिण दिग्दर्शी समुद्र तट पर जाओ और वहां पांडु मथुरा

नगरीने वसावे अने भारा अष्ट सेवडे थधने त्यां निवास करे. आ प्रभाळे कडीने तेभळे कुंती देवीने सत्कार कथे अने सम्मान कथुं. सत्कार तेभञ्ज सम्मान करीने तेभळे कुंतीदेवीने त्यांथी विहाय कथीं.

(तएणं सा कौंती देवी जाव पंडुस्स एयमट्टं निवेदेइ, तएणं पंडु पंच पंडवे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुवमे पुत्ता ! दाहिणिल्लं वेलाऊलं तत्थणं तुवमे पंडुमहुंरं णिवेसेह तएणं पंच पंडवा पंडुस्स रण्णो जाव तहत्ति पडिसुणेंति, सवलवाहणा ह्य गजं हत्थिणाउराओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वेयाली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुमहुंरं नगरिं णिवेसेंति निवेशित्ता, तत्थणं ते विउलभोगसमित्तिसमण्णागया यावि होत्था) त्यांथी हाथी उपर सवार थधने कुंतीदेवी हस्तिनापुर आवी गथीं. यावत् कृष्णवासुदेवनी के कथं आज्ञा हती ते पांडु राजाने कडी संलग्णवी. तयारपडी पांडु राजाने पांचे पांडवने भोलांथा अने भोलावीने तेभने आ प्रभाळे कथुं के हे पुत्रो ! तमे अर्द्धांथी दक्षिण दिशा तरक्षना समुद्रना छिनाश उपर जाओ अने त्यां पांडु-मथुरा नगरीने वसाओ. पिता पांडु राजनी आ प्रभाळे

ततः खलु पञ्च पाण्डवाः पाण्डो राज्ञो वचनं यावत्-‘तद्वत्ति’ तथाऽस्तु’ इति कृत्वा प्रतिश्रुण्वन्ति = स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य सबलवाहनाः-सैन्ययानसहिताः, हयगजरथपदातिसंपरिवृताः, हस्तिनापुरात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रनिनिष्क्रम्य यत्रैव ‘दाहिणिल्लं वेलाऊलं’ दाक्षिणात्यं वेलाकूलं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य पाण्डुमथुरां नगरीं निवेशयन्ति निवेश्य तत्र खलु ते विपुलभोगसमिति समत्वा-गताश्चाप्यभवन् ॥ सू०३२ ॥

मूलम्-तएणं सा दोवई देवी अन्नया कयाइं आवणसत्ता जाया यावि होत्था, तएणं सा दोवई देवी णवणहं सासाणं जाव सुखवं दारगं पयाया सूमालणिव्वत्तबारसाहस्स इमं पयारुवं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करेति जम्हाणं अम्हं एस दारए पंचणहं पंडवाणं पुत्ते दोवईए अत्तए तं होउ अम्हं इमस्स दारगस्स णमधेज्जं पंडुसेणै, तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्जं करेति पंडुसेणत्ति, वावत्तारिं कलाओ जाव भोगसमत्थे जाए जुवराया जाव विहरइ, थेरा सलो-सढा परिसा निग्गया पंडवा निग्गया धम्मं सोच्चा एवं जं णवरं देवाणुप्पिया ! दोवईं देविं आपुच्छासो पंडुसेणं च

नगरी को बसाओ । पिता पांडु राजा की इस आज्ञा को उन पांचों पांडवों ने “तद्वत्ति” कहकर स्वीकार कर लिया । स्वीकार करके फिर वे हय, गज, रथ, एवं पदातिरूप चतुरंगिणी सेना से परिवृत्त होकर हस्तिनापुर नगर से निकले और निकलकर जहां दाक्षिणात्य वेलाकूल था वहां आये-वहां आकर उन्होंने ने पांडु मथुरा नगरी को बसाया । बसाकर वहां के विपुल भोगों को भोगते हुए रहने लगे ॥ सू०३२ ॥

आज्ञाने ते पांचे पांडवोऽन्ने “तद्वत्ति” कहीने स्वीकारी दीधी स्वीकार करीने तेओ घोडा, हाथी, रथ अने पायडणवाणी अतुरंगिणी सेनानी साथे हस्तिना-पुर नगरथी णडार नीकल्या-अने नीकणीने न्यां दक्षिण दिशाने समुद्रने दिनारे हते त्यां पडोऽन्ना, त्यां पडोऽन्थीने तेमन्ने पांडु-मथुरा नगरी बसावी. बसावीने तेओ त्यां पुष्कण कामशेओगे भोगवतां रडेवा लाग्या ॥ सूत्र ३२ ॥

कुमारं रज्जे ठावेमो तओ पच्छा देवाणुप्पिया ! अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वयामो, अहासुहं देवाणुप्पिया !, तएणं ते पंच पंडवा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता दोवइं देविं सदावेति सदावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं थेराणं अंतिए धम्मं णिसंते जाव पव्वयामो तुमं देवाणुप्पिए ! किं करेसि !, तएणं सा दोवई देवी ते पंच पंडवे एवं वयासी-जइणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! संसारभउट्ठिग्गा पव्वयह ममं के अण्णे आलंवे वा जाव भविस्सइ !, अहंपि य णं संसारभउट्ठिग्गा देवाणुप्पिएहिं सद्धिं पव्वइस्सामि, तएणं ते पंच पंडवा पंडुसेणस्स अभिसेओ राया जाए जाव रज्जे पसाहेमाणे विहरइ, तएणं ते पंच पंडवा दोवई य देवी अन्नया कयाइं पंडुसेणं रायाणं आपुच्छंति, तएणं से पंडुसेणं रायाकोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! निक्खमणाभिसेयं जाव उवट्टवेह पुरिससहस्सवाहिणीओ सिबियाओ जाव पच्चोरुहंति पच्चोरुहित्ता जेणेव थेरा तेणेव० आलित्ते णं जाव समणा जाया चोइस्स पुव्वाइं अहिज्जंति अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि छट्टट्टमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥सू०३२॥

टीका—‘तएणं सा’ इत्यादि । ततः खलु सा द्रौपदीदेवी अन्यदा कदाचित् ‘आवणसत्ता’ आपन्नसत्त्वा=गर्भवती जाता चाप्यभवत् । ततः खलु सा द्रौपदीदेवी नवसु मासेषु संपूर्णेषु सार्धोष्टमदिवसेषु व्यतिक्रान्तेषु सत्सु यावत् सुरुपं सुन्दरं दारकं=वालकं ‘पयाया’ प्रजाता=प्रजनितवती, किं भूतं दारकं=सूमाल=सुकुमारपाणिपादं, ‘णिव्वत्तवारसाहस्स’ निर्वृत्तद्वादशाहस्स=संभ्रातृद्वादशदिवसस्य दारकस्य इदमेतद्रूपं गुणनिष्पन्नं नामधेयं कुर्वन्ति यस्मात् खलु अस्माकमेव दारकः पञ्चानां पाण्डवानां पुत्रो द्रौपद्या आत्मजः, ‘तं’ तत्-तस्माद्

—तएणं सा दोवई देवी इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा दोवई देवी) वह द्रौपदीदेवी (अन्नया कयाइं) किसी एक समय (आवणसत्ता जाया यावि होत्था) गर्भावस्थासे संपन्न हुई। (तएणं सा दोवई देवी णवण्हं मासाणं जाव सुरुवं दारगं पयाया) जब गर्भ ९ नौमास ७। दिन का हो गया तब उस द्रौपदी देवी ने पुत्र को जन्म दिया। यह बालक बहुत ही अधिक सुन्दर था। (सूमालणिव्वत्तवारसाहस्सइमं एयारुवं गुणनिष्पन्नं नामधिज्जं करेति जम्हाणं अम्हं एस दारए पंचण्हं पंडवाणं पुत्ते दोवईए अत्तए तं होउ अम्हं इमस्स दारगस्स णामधेज्जं पंडुसेणे) इसके करचरण आदि अवयव सब ही अधिक सुकुमार थे। जब बारहवां दिन लगा—तब माता पिताओं ने इस पुत्र का गुणनिष्पन्न होने से यह नाम रक्खा यस्मात्—यह पुत्र हम पांचों पांडवों का है तथा द्रौपदी की कुक्षि से

तएणं सा दोवई देवी इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (सा दोवई देवी) ते द्रौपदी देवी (अन्नया कयाइं) के। अथ वपते (आवणसत्ता जाया यावि होत्था) सगलां थथ. (तएणं सा दोवई देवी णवण्हं मासाणं जाव सुरुवं दारगं पयाया) न्यादे गर्भं नव मास ७। दिवसनेो थथ गये। त्यादे ते द्रौपदी देवीअे पुत्रने जन्म आये, ते णाणकं भूणं न सुन्दरं इत्तु.

(सूमालणिव्वत्तवारसाहस्स इमं एयारुवं गुणनिष्पन्नं नामधिज्जं करेति, जम्हाणं अम्हं एसदारए पंचण्हं पंडवाणं पुत्ते दोवईए अत्तए तं होउ अम्हं इमस्स दारगस्स णामधेज्जे पंडुसेणे)

तेना ह्यथ पञ्च वज्रे भधा अवयवो भूषणं सुकैमलता इति, न्यादे आरभो दिवस आभ्यो त्यादे माता-पिताअे ते पुत्रतुं नाम तेना शुभो विषे विचार करता आ प्रभाषे राभ्युं के आ पुत्र आभारा पांचे पांडवोने अे,

मवतु अस्माकमस्य दारकस्य नामधेयं ' पाण्डुसेन ' इति । ततः खलु तस्य दार-
कस्याम्बावितरौ नामधेयं कुर्वन्ति—'पाण्डुसेन ' इति । ' वावत्तरि कलाओ ' द्वास-
प्तति कलाः शिक्षिताः, यावद् भोगसमर्थौ जातः, राजकन्यां परिणीय युवराजो
यावत् मानुष्यकान् भोगान् भुञ्जानो विहरति—आस्ते ।

उत्पन्न हुआ है—अतः हमारे इस पुत्र का नाम पाण्डुसेन होना चाहिये
(तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेति पंडुसेणत्ति)
इस ख्याल से उन्होंने ने उस नवजात पुत्र का नाम पाण्डुसेन रख दिया ।
(वावत्तरि कलाओ जाव भोगसमत्थे जाए जुवराया जाव विहरइ थेरा
समोसहा, परिसा निग्गया, पंडवा निग्गया, धम्मं सोच्चा एवं वयासी
जं णवरं देवानुप्पिया ! दोवइं देवि आपुच्छामो पंडुसेणं च कुमारं रज्जे
ठावेमो तओ पच्छा देवानुप्पिया ! अंतिए मुंडे भविता जाव पन्वयामो)
पाण्डुसेन कुमार को ७२ कलाओं में निपुण बनाने के लिये माता पिताने
उसे कलाचार्य के पास भेज दिया । धीरे २ वह ७२, कलाओं में
निष्णात बन गया । यावत् भोग भोगने के लायक अवस्था संपन्न भी
हो गया । राजकन्याओं के साथ इसका वैवाहिक संबन्ध कर के पिताओं
ने इसे युवराज पद प्रदान भी कर दिया—यावत् यह मनुष्यभव संबन्धी
काम सुखों को अनुभव करता हुआ अपने समय को आनन्द के साथ

तेमए द्रौपदी देवीना गर्भधी तेनो जन्म थये छे, ओटवा भाटे अमारा आ
पुत्रतुं नाम पांडुसेन होवुं ओधये.

(तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेति पंडुसेणत्ति)
आ त्रियारथी तेमण्णे ते नवअन पुत्रतुं नाम पांडुसेन राधुं.

(वावत्तरि कलाओ जाव भोगसमत्थे जाए जुवराया जाव विहरइ, थेरा
समोसहा, परिसा निग्गया, पंडवा निग्गया, धम्मं सोच्चा एवं वयासी जं णवरं
देवानुप्पिया ! दोवइं देवि आपुच्छामो पंडुसेणं च कुमारं रज्जे ठावेमो तओपच्छा
देवानुप्पिया ! अंतिए मुंडे भविता जाव पन्वयामो)

पांडुसेन कुमारने ७२ कलाओमां निपुण बनववा भाटे मातापिताओओ .
कलाचार्यनी पासे ओकथ्ये. आभ धीमे धीमे ते ७२ कलाओमां निष्णात बनी
गथे. यावत् ते संसारना लोगे लोगववा योग्य अवस्थावागे पळ थध गथे. ;
राजकन्याओनी साथे लओ करावीने पिताओओ तेने युवराज पद पळ सोपी
हीधुं. यावत् ते मनुष्य-भव संबंधी कामसुओने अनुभवतो पोटाना वणतने
सुओथी पसार करवा लाग्ये. ओक वणतनी वात छे के पांडु-भयुरा नगरीमां

अथ कदाचित् तत्र—'थेरा समोसद्दा' स्थविराः समवसृताः, परिपन्निगता, पाण्डवा अपि स्थविराणां वन्दनार्थं निर्गताः, धर्मं श्रुत्वा ते पाण्डवाः प्रतिवृद्धाः सन्त एवमदन्-यत् नवरं हे देवानुप्रियाः द्रौपदीं देवीमापृच्छामः, पाण्डुसेनं च कुमारं राज्ये रथापयामः, ततः पश्चात् देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डाभूत्वा यावत् प्रव्रजामः प्रव्रज्यां गृह्णीमः, तदा स्थविरा ऊचुः—'अहासुहं देवानुप्रिया !' हे देवानुप्रियाः यथासुखं—सुखं यथा भवति तथा कुरुत, अलं विलम्बेन, इति भावः । ततः खलु ते पञ्च पाण्डवा यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य द्रौपदीं देवीं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा, एवमवदन्—एवं खलु हे देवानुप्रिये ! वयं स्थविरा-

व्यतीत करने लगा। एक समय की बात है कि पाण्डु मथुरा नगरी में स्थविरों का आगमन हुआ। स्थविरों का आगमन सुनकर नगरी का समस्त जन उनकी वंदना एवं धर्मोपदेश सुनने के निमित्त अपने २ घर से निकले पांचों पाण्डव भी निकले—परिषद को आयी हुई देवकर स्थविरों ने उसे धर्म का उपदेश दिया। उपदेश श्रवण कर परिषद पीछे चली गई। पाण्डव लोग उस धर्म के उपदेश का पानकर प्रतिबोध को प्राप्त हो गये—उसी समय उन्होंने उन स्थविरों से कहा—हे देवानुप्रियों ! हमलोग द्रौपदी देवी को पूछकर और पाण्डुसेन कुमार को राज्य में स्थापित कर आप देवानुप्रियों के समीपसुंडित होकर यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहते हैं। पाण्डवों की इस प्रकार हार्दिक भावना देखकर उन स्थविरों ने पाण्डवों से इस प्रकार कहा—(अहासुहं देवानुप्रिया ! तपणं ते पंच पंडवा जेजेव सएगिहे, तेणेव उवागच्छह, उवागच्छिस्ता दोवहं देविं सदावेति, सदावित्ता एवं वयासी एवं खलु देवणुप्रिया !

स्थविरा पधार्या. स्थविराना आगमननी जणु थतां नगरीना अधा लोका तेमनी वंदना तेमज तेमनी पासेथी धर्मोपदेश सांलणवा भाटे पोतपोताना थेरथी निकल्या, पांचे पांडवे पणु त्यां पडोव्या परिषदने आवेवी लोधने स्थविराये धर्मोने उपदेश आपये। उपदेश सांलणीने परिषद जती रही पांडवे ते धर्मोने उपदेश सांलणीने प्रतिबोधित थध गया। तेमणे तेज समथे स्थविराने विनंती करतां कछुं के हे देवानुप्रिये ! अमे द्रौपदी देवीने पूछी तेमज पांडुसेन कुमारने राव्यासने अलिपिक्त करीने तमादी पासे सुंडित थधने यावत् प्रमन्या अहंषु करवानी अलिवाधा राणीये छीये। पांडवानी आ जातनी छानिक धंछा जणुने ते स्थविराये ते पांचे पांडवेने आ प्रभाणु कछुं हे—

(अहासुहं देवानुप्रिया ! तपणं ते पंच पंडवा जेजेव सए गिहे, तेणेव उवागच्छह, उवागच्छिस्ता दोवहं देविं सदावेति, सदावित्ता एवं वयासी, एवं

णामन्तिके धर्मं श्रुतवन्तो यावत् प्रव्रजामः, त्वं हे देवानुप्रिये ! किं करोषि किं करिष्यसि ? । ततः खलु सा द्रौपदी तान् पञ्च पाण्डवान् एवमवादीत्-यदि खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! संसारभयोद्विग्नाः=जन्ममरणादि दुःखाद् भीताः सन्तो यावत् प्रव्रजथ, मम कोऽन्य आलम्बो वा यावद् भविष्यति ?, अहमपि च खलु संसारभयोद्विग्ना देवानुप्रियैः सार्धं प्रव्रजिष्यामि, ततः खलु ते पञ्च पाण्डवाः पाण्डुसेनस्य अभिषेकं=राज्याभिषेकं कृत्वा स्वराज्ये स्थापितवन्तः, यावद् राजा जातः, यावद् राज्यं प्रसाधयन्=पालयन् विहरति=आस्तेस्म ।

अम्हेहिं थेराणं अंतिए धम्मं णिसंते जाव पव्वयामो-तुमं देवाणुप्पिए ! किं करेसि) हे देवानुप्रियों ! जिस प्रकार तुम्हें सुख मिले वैसा तुम करो ! अच्छे काम में विलम्ब मत करो । इसके बाद-वे पांचों पांडव जहाँ अपना घर था वहाँ आये-वहाँ आकर के उन्हीं ने द्रौपदी देवी को बुलाया-बुलाकर उससे ऐसा कहा-हे देवानुप्रिये ! खुने बान इस प्रकार है-हमलोगों ने स्थविरोंके पास धर्मका श्रवण किया है । अतः हमलोगों की भावना मुंडित होकर उनके पास प्रव्रजित होने की है । अब-तुम्हारी भावना क्या है-हे देवानुप्रिये कबो तुम हमारे बाद क्या करोगी- (तएणं सा दोवई देवी ते पंच पंडवे एवं वयासी-जइ णं तुव्भे देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गा पव्वयह ममं के अण्णे आलंबे वा जाव भविस्सइ ? अहं पि य ण संसारभउव्विग्गा देवाणुप्पिएहिं सद्धिं पव्वइस्सामि, तएणं ते पंच पंडवा पंडुसेणस्स अभिसेओ जाव राया जाए, जाव रज्जे पसाहे

खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं थेराणं अंतिए धम्मं णिसंते जाव पव्वयामो तुमं देवाणुप्पिए ! किं करेसि)

हे देवानुप्रिये ! जे म तमने सुख भणे तेस करे, सारा काममां मोडुं करे नहिं त्थारपणी तेओ पाये पांडवे न्यां पे.तानुं धर डतुं त्यां आन्था. त्यां आवीने तेभल्ले द्रौपदी देवीने बोलावी. बोलावीने तेने आ प्रभाञ्जे कहुं के हे देवानुप्रिये ! सांलणे, वात जेनी छे के अमेओ स्थविरोंने प.सेथी धर्मनुं श्रवणु कथुं छे, जेटला भाटे अमारी धञ्छा मुंडित थमने तेमनी पासेथी प्रव्रन्था अडणु करवानी छे. डवे तमारी शी धञ्छा छे ? हे देवानुप्रिये ! अमने कडे। अमे प्रव्रन्था अडणु करी लधुं त्थारभाड तमे शुं करथे ?

(तएणं सा दोवई देवी ते पंच पंडवे एवं वयासी-जइणं तुव्भे देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गा पव्वयह, ममं के अण्णे आलंबे वा जाव भविस्सइ ? अहं पि य ण संसारभउव्विग्गा, देवाणुप्पिएहिं सद्धिं पव्वइस्सामि, तएणं ते पंच पंडवा पंडुसेणस्स अभिसेओ जाव राया जाए, जाव रज्जे पसाहेमाणे विहरइ)

ततः खलु ते पञ्च पाण्डवा द्रौपदी च देवी अन्यदा कदाचित् पाण्डुसेन राजा-
नमापृच्छन्ति, ततः खलु स पाण्डुसेनो राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्द-
यित्वा, एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो ! देवानुप्रियाः । निष्क्रमणाभिषेकं=दीक्षोपयोग-
वस्तूनि यावद् उपस्थापयत, पुरुषसहस्रवाहिनीः शिविका उपस्थापयत, ' यावत्
प्रत्यवरोहन्ति=अत्र यावच्छब्देनेदं बोध्यम्, ततः पाण्डुसेनस्य राज्ञोवचनमाकर्ण्य ते

माणे विहरइ) इस प्रकार पांडवों का कहना सुनकर द्रौपदी देवी ने
उन पांचों पांडवों से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियों ! तुमलोग यदि
संसार भय से उद्विग्न होकर प्रव्रजित होना चाहते हो, तो फिर मेरे
लिखे आप के सिवाय और कौन दूसरा आलंबन अथवा आधार होगा ।
अतः मैं भी आप देवानुप्रियों के साथ संसार भय से उद्विग्न होकर
दीक्षित होऊँगी । इस प्रकार द्रौपदी देवी का कथन सुनकर उन पांचों
पांडवों ने पाण्डुसेन कुमार का राज्याभिषेक करके उसे राज्यपद में स्था-
पित किया । इस तरह पाण्डुकुमार राजा हो गया । यावत् राज्य का वह
अच्छी तरह पालन करने लगा । (तएणं ते पंच पंडवा दोवईय देवी
अन्नया कयाइं पंडुसेनरायाणं आपुच्छंति, तएणं से पंडुसेणे राया कोडुं-
षिय पुरिसे सदावेह, सदावित्ता, एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणु-
प्पिया ! निक्खमणाभिसेयं जाव उवट्टवेह, पुरित्तसहस्सवाहणीओ
सिचियाओ उवट्टवेह, जाव पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणेव थेरा उवा-

आ प्रभाण्णु पांडवोतुं कथन सांभणीने द्रौपदी देवीञ्जे ते पांचे पांडवोने
आ प्रभाण्णु कहुं के डे देवानुप्रियो । तमे न्यारे संसारभयथी उद्विग्न थधने
प्रवन्त्या अडुल्लु करवा धुंछे छे । त्यारे तमारा वगर मारा माटे आ संसारभां
णीणुं कयुं आलंभन अथवा तो णिल्ले कथे आधार थथे ? ज्येटला माटे हुं
पणु तमारी साथे संसारभयथी उद्विग्न थधने दीक्षा अडुल्लु करवा धुंछुं छुं ।
आ प्रभाण्णु द्रौपदी देवीतुं कथन सांभणीने ते पांचे पांडवोञ्जे पांडुसेन कुमारने
राज्याभिषेक करीने तेने राज्यासने जेसाडी दीधे। आ प्रभाण्णु पांडुसेन कुमार
राज भए गथे यावत् ते राज्यातुं सारी रीते रक्षणु करवा लाग्ये।..

(तएणं ते पंच पंडवा दोवईय देवी अन्नया कयाइं पंडुसेनरायाणं आपुच्छंति,
तएणं से पंडुसेणे राया कोडुं वियपुरिसे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी, खिप्पामेव
भो देवाणुप्पिया ! निक्खमणाभिसेयं जाव उवट्टवेह, पुरिससहस्सवाहणीओ
सिचियाओ उवट्टवेह, जाव पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणेव थेरा तेणेव उवाग०
आलित्तेणं जाव समणा जाया, चोदस्सपुण्वाइं अहिज्जंति, अहिज्जित्ता वहूणि

कौटुम्बिकपुरुषास्तथास्तु' इत्युक्त्वा तथैव यावदुपस्थापयन्ति, तदा ते पञ्च पाण्डवाः पुरुषसहस्रवाहिनीः शिबिका आरूढा, पाण्डुमथुराया नगर्यां मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य शिबिकाभ्यः प्रत्यवरोदन्ति=प्रत्यवतरन्ति । प्रत्यवरूढा, 'जेणैत्र' यत्रैव स्थविरास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य एवमवादिषुः—' आलिच्छे णं जाव समणा

गच्छइ आलिच्छेणं जाव समणा जाया, चोदसपुण्वाइं अहिज्जन्ति, अहिज्जित्ता, बहूणि वासाइं छट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति) इसके बाद पांचो पाण्डवों ने और द्रौपदी देवी ने किसी एक समय पाण्डुसेन राजा से दीक्षित होने के लिये पूछा। तब पाण्डुसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे ऐसा कहा—भो देवानुप्रियो ! तुमलोग शीघ्र ही दीक्षा में उपयोग आनेवाली वस्तुओं को लाकर उपस्थित करो—तथा पुरुष सहस्रवाहिनी शिबिकाओं को भी उपस्थित करो—इस प्रकार पाण्डुसेन राजा के बचन सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने “ तथास्तु ” कहकर उनकी आज्ञा को स्वीकार कर लिया—और दीक्षा में उपयोगी समस्त सामग्री को एवं पुरुष सहस्रवाहिनी शिबिकाओं को लाकर उपस्थित कर दिया। तब वे पांचो पाण्डव उन पुरुष सहस्रवाहिनी शिबिकाओं पर आरूढ होकर पाण्डु मथुरा नगरी के बीच से होकर निकले। वहां से निकलकर वे जहां स्थविर ठहरे हुए थे—वहां—आये—वहां आकर सबके सब शिबिकाओं से

वासाइं छट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति)

त्यारपथी पांचे पांडवोञ्जे अने द्रौपदी देवीञ्जे कोठे कोठे वधते पांडुसेन राजाने दीक्षा अडण्ड करवा भाटे पूछ्युं. त्यारे पांडुसेन राजाञ्जे कौटुम्बिक पुरुषोने जोलाव्या जोलावीने तेमने आ प्रभाण्णे कड्डुं के डे देवानुप्रियो ! तमे कोठे दीक्षा वधते उपयोगमां आवनारी अधी वस्तुञ्जे नदही लध आवो तेमञ् पुरुष सहस्रवाहिनी पादणी पण्डु लध आवो. आ प्रभाण्णे पांडुसेन राजाना वचन सांखणीने ते कौटुम्बिक पुरुषोञ्जे ' तथास्तु ' कहीने तेमनी आज्ञा स्वीकारी लीधी अने दीक्षा भाटे उपयोगी ओवी अधी वस्तुञ्जे तेमञ् पुरुष-सहस्रवाहिनी पादणी लध आव्या. त्यारपथी ते पांचे पांडवो ते पुरुष सहस्रवाहिनी पादणीञ्जे उपर सवार थधने पांडु-मथुरा नगरीनी वञ्जे थधने नीकण्ठ्या. त्यांथी^१ नीकणीने तेञ्जे न्यां स्थविर उता त्यां पडोन्ठ्या, त्यां पडोन्ठ्याने तेञ्जे अधा पादणीञ्जेमांथी नीचे उतथो, नीचे उतरिने स्थविरानी

जाया ' आदीप्तोऽयं लोकः खलु इत्यादि । यावद् श्रमणाः जाताः, चतुर्दशपूर्वाणि अधीयते स्म, अधीत्य बहूनि वर्षाणि पद्याष्टमदशम द्वादशैर्मासार्धमासक्षणैस्तपोभिरात्मानं भावयन्तो विहरन्ति ॥ सू९ ३३ ॥

मूलम्—तएणं सा दोवई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ जाव पव्वइया सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए दलयइ, इक्कारस अंगाइं अहिज्जइ बहूणि वासाणि छट्ठमदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ ॥ सू० ३४ ॥

टीका—' तएणं सा ' इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु सा द्रौपदी देवी शिविकातः प्रत्यवगच्छति प्रत्यवतरति, प्रत्यवतीर्य यावत् प्रव्रजिता—दीक्षां गृहीतवती । ' सुव्वयाए ' सुव्रतायै=सुव्रतानामधेयायै ' अज्जाए ' आर्यायै 'सिस्सिणीयत्ताए'

नीचे उतरे । नीचे उतरकर स्थविरों के पास पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने ने स्थविरों से इस प्रकार कहा—हे भदंत ! यह समस्त लोक आदीप्त—हो रहा है इत्यादिरूप से अपनी भावना प्रदर्शित कर यावत् वे श्रमण हो गये । चौदह वर्षों का उन्होंने ने अध्ययन किया । अध्ययन करके अनेक वर्षों तक षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास अर्धमास की तपस्याओं को वे करते हुए विचरने लगे ॥ सू० ३३ ॥

' तएणं सा दोवई ' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (दोवई देवी) द्रौपदीदेवी (सीयाओ पच्चोरुहइ) अपनी शिविका से नीचे उतरी—(जा पव्वइया, सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए दलयइ, इक्कारसअंगाइं अहिज्जइ, बहूणि वासाइं

पासे पडोन्था. त्यां पडोन्थीने तेमणु स्थविरेने विनंती करतां आ प्रभाणु कळुं के डे लहन्त । आ स'पूणुं जगत सणगी रळुं छे वगेरे इपथी पोतानी लावना प्रकट करीने यावत् तेओ श्रमणु थयं गया. औद पूर्वोत्तुं तेमणु अध्ययन कथुं; अध्ययन करीने धणुं वर्षो सुधी तेओ षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास अर्धमासनी तपस्याओ करता रळी. ॥ सूत्र ३३ ॥

तएणं सा दोवई इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपथी (दोवई देवी) द्रौपदी देवी (सीयाओ पच्चोरुहइ) पोतानी पादभीमां नीचे उतरी.

(जा पव्वइया, सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए दलयइ, इक्कारसअंगाइं

शिष्यातया ददाति पाण्डुसेनो राजा द्रौपदीं सुव्रतायै शिष्यारूपेण दत्तवानिति-
भावः । एकादशाङ्गानि अधीते, बहूनि वर्षाणि षष्ठाष्टमदशमद्वादशैस्तपोभिर्वाव-
दात्मानं भावयन्ती विहरति ॥ सू० ३४ ॥

मूल्य-तएणं थेरा भगवंतो अन्नया कयाई पंडुमहुराओ
णयरीओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति पडि-
णिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति, तेणं कालेणं
तेणं समएणं अरिहा अरिट्टनेमी जेणेव सुरट्टाजणवए तेणेव
उवागच्छइ उवागच्छित्ता सुरट्टाजणवयंसि संजमेणं तवसा
अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तएणं बहुजणो अन्नमन्नस्स
एवमाइक्खइ०-एवं खलु देवाणुप्पिया! अरिहा अरिट्टनेमी
सुरट्टाजणवए जाव वि०, तएणं ते जुहिट्टिल्लपामोक्खा पंच
अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा अन्नमन्नं
सहावेति सहावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया !
अरहा अरिट्टनेमी पुग्वाणु० जाव विहरइ, तं सेयं खलु
अम्हं थेरा आपुच्छित्ता अरहं अरिट्टनेमिं वंदणाए गमित्तए

छट्टमदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ) नीचे उतरकर यावत् वह भी
प्रव्रजित हो गई । पांडुसेन राजा ने उसे-द्रौपदी को सुव्रता नाम की
साध्वी के शिष्यारूप से प्रदान किया । द्रौपदी आर्या ने ग्यारह अंगों
का अध्ययन किया । बाद में अनेक वर्षों तक छट्ट अष्टम, दशम, द्वादश
तपस्याओं से अपने आपको उसने भावित किया ॥ सू० ३४ ॥

अहिज्जइ, वहुणि वासाइं छट्टमदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ)

नीचे उतरने यावत् ते पणु प्रव्रजित थर्ध गथं. पांडुसेन राजा
द्रौपदीने सुव्रता नामनी साध्वीने शिष्याना इपमां अपिं करी. द्रौपदी आर्या
अगियार अंगोतुं अध्ययन कथुं. त्यारपछी घणुं वर्षो सुधी छु, अष्टम,
दशम, द्वादश तपस्याओथी पोताना आत्माने तेले लावित कथे. ॥ सू. ३४ ॥

अन्नमन्नस्त एयमद्वं पडिसुणेति पडिसुणित्ता जेणेव थेरा
 भगवंतो तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता थेरं भगवंतं वंदंति
 णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामो णं तुब्भेहिं
 अब्भणुन्नाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं जाव गमित्तए,
 अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं ते जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच
 अणगारा थेरेहिं भगवंतेहिं अब्भणुन्नाया समाणा । थेरे
 भगवंते वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतियाओ
 पडिणिक्खमंति मासंमासेणं अणिक्खित्तेणं तवोक्कमेणं गा-
 माणुगामं दूर्इज्जमाणा जाव जेणेव हत्थिकप्पे नयरे तेणेव
 उवा० हत्थिकप्पस्स बहिया सहसंबवणे उज्जाणे जाव विह-
 रंति, तएणं ते जुहिट्ठिल्लवज्जा चत्तारि अणगारा मासख-
 मणपारणए पढमाए पोरिसीए सुज्जायं करेति वीयाए एवं
 जहा गोयमसामी णवरं जुहिट्ठिल्लं आपुच्छंति जाव अढ-
 माणा बहुजणसहं णिसामेति, एवं खल्ल देवाणुप्पिया !
 अरहा अरिट्ठनेमी उज्जितसेल्लसिहरे मासिएणं भत्तेणं
 अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए
 जाव पहीणे, तएणं ते जुहिट्ठिल्लवज्जा चत्तारि अणगारा
 बहुजणस्स अंतिए एयमद्वं सोक्खा हत्थिकप्पाओ पडिणि-
 क्खमंति पडिणिक्खमित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जेणेव
 जुहिट्ठिल्ले अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता भत्तपाणं
 पच्चक्खंति पच्चक्खित्ता गमणागमणस्स पडिक्कमंति पडि-

कमिन्ना एसणमणेसणं आलोएंति आलोइत्ता भत्तपाणं पडिदंसेंति पडिदंसित्ता एवं वयासी-एवं खल्ल देवाणुप्पिया ! जाव कालगए तं सेयं खल्ल अम्हं देवाणुप्पिया ! इमं पुव्वगहियं भत्तपाणं परिट्टवेत्ता सेत्तुंजं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहित्तए 'संलेहणा झूसणा झूसियाणं' कालं अणवकंख-माणार्णं विहरित्तएत्तिकु अणमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति पडिसुणित्ता तं पुव्वगहियं भत्तपाणं एगंते परिट्टवेत्ति परि-ट्टवेत्ता जेणेव सेत्तुंजे पव्वए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता सेत्तुंजं पव्वयं दुरूहंति दुरूहित्ता जाव कालं अणवकंखमाणं विहरंति । तएणं ते जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पंच अणगारा सामाइयमाइयाइं चोइसपुव्वाइं० बहूणि वासाणि० दोमा-सियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसित्ता जस्सट्ठाए कीरइणग्ग-भावे जाव तमट्ठमाराहेति तमट्ठमाराहित्ता अणंते जाव केवलवरणाणदंसणे समुप्पन्ने जाव सिद्धा ॥ सू० ३३ ॥

टीका—' तएणं थेरा ' इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खल्ल स्थविरा भगवन्तोऽन्यदाकदाचित् पाण्डुमथुरातो नगरीतो सहस्राब्रवणादुद्यानात् प्रतिनिष्क्रामन्ति=निर्गच्छन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य, वहिर्जनपदविहारं विहरन्ति ।

—तएणं थेरा भगवंता इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (थेरा भगवंतो) उन स्थविर भगवंतोंने (अन्नया कयाइं) किसी एक समय (पंडुमथुराओ) पांडु मथुरा (णयरीओ) नगरी से (सहसंबवणाओ) सहस्राब्रवन नाम के (उज्जा-

तएणं थेरा भगवंता इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारभाद (थेरा भगवंतो) ते स्थविर भगवंतोऽन्ने (अन्नया कयाइं) केऽथ ओक वपते (पंडु मथुराओ) पांडु मथुरा (णयरीओ) नगरीथी (सहसंबवणाओ) सहस्राब्रवन नामना (उज्जाणाओ) उद्यानभां (पडि-

तस्मिन् काले तस्मिन् समयेऽर्हन् अरिष्टनेमिर्यत्रैव सौराष्ट्रजनपदस्तत्रैवोपा-
गच्छति, उपागत्य सौराष्ट्रजनपदे संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति । ततः
खलु बहुजनोऽन्योन्यमेवमाख्याति=वक्ति, एवं भाषते, एवं प्ररूपयति एवं प्रज्ञाप-
यति—एवं खलु हे देवानुप्रिय ! अर्हन् अरिष्टनेमिः सौराष्ट्रजनपदे यावद् विहरति ।
ततः खलु ते युधिष्ठिरप्रमुखाः पञ्चानगरा बहुजनस्थान्तिके एतमर्थं श्रुत्वाऽन्योन्यं
शब्दयन्ति, शब्दयित्वा, एवमवदन्, एवं खलु हे देवानुप्रिय ! अर्हन् अरिष्टनेमिः पूर्वा-

णाओ) लघ्यान से (पड्डिणिक्खमंति) विहार क्रिया (पड्डिणिक्खमित्ता)
विहार करके (वहिया जणवयविहारं विहरंति) बाहिर के जनपदों
में विचरने लगे (तेषां कालेणं तेषां समएणं अरिहा अरिष्टनेमी जेणेव
सुरट्ठा जणवए तेषेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठा जणवर्यंसि
संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तएणं बहुजणो अन्नमन्नस्स
एवमाइक्खइ) उस काल में और उस समय में अर्हन् अरिष्टनेमि
प्रभु विहार करते हुए जहाँ सौराष्ट्र जनपद था—वहाँ आये वहाँ आकर
के वे उस सौराष्ट्र जनपद में संयम और तप से अपने आत्मा को
भावित करते हुए विचरने लगे । जब वहाँ के अनेक लोगों को इसकी
खबर हुई तब वे परस्पर में इस प्रकार कहने लगे (एवं खलु देवाणु-
प्पिया ! अरिहा । अरिष्टनेमी सुरट्ठा जणवए जाव वि० तएणं ते जुहि-
ट्टिल्लपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोचां अन्न-

णिक्खमंति) विहार कथें। (पड्डिणिक्खमित्ता) विहार करीने तेओ। (वहिया
जणवयविहारं विहरंति) अहारना जनपदोभां विहार करवा लाग्या.

(तेषां कालेणं तेषां समएणं अरिहा अरिष्टनेमी जेणेव सुरट्ठा जणवए
तेषेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठा जणवर्यंसि संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे-
माणे एवमाइक्खइ)

ते कथे अने ते सभये अर्हन् अरिष्टनेमि प्रभु विहार करतां करतां न्यां
सौराष्ट्र जनपद इतो त्यां आत्था. त्यां आवीने तेओ ते सौराष्ट्र जनपदभां
संयम अने तपथी चोताना आत्माने भावित करतां विचरए करवा लाग्या.
न्यारे त्यांना घण्टा लोकोने आ वातनी नल्लु थर्ह त्यारे तेओ परस्पर आ
प्रभाषे कळेवा लाग्ये के—

(एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरिहा अरिष्टनेमी सुरट्ठाजणवए जाव वि० तएणं
ते जुहिट्टिल्लपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं मोच्चा अन्नमन्
सदावेति, सदाविता एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरिहा अरिष्टनेमी

तुपूर्व्यां=तीर्थकराणां मर्यादया यावद् विहरति, 'तं' तत्-तस्माद् 'सेयं' श्रेयः खलु अस्माकं यत् स्थविरान् आपृच्छयार्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दनायै गन्तुम् । अन्योन्यस्य =परस्परस्यैतमर्थं सर्वे पञ्चानगाराः प्रतिशृण्वन्ति, स्वीकुर्वन्ति प्रतिश्रुत्य यत्रैव स्थविरा भगवन्तस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तान् स्थविरान् भगवतो वन्दन्ते नमस्यन्ति च वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादिषुः-इच्छामः खलु युष्माभिरभ्यनुज्ञाताः सन्तोऽर्हन्तमरिष्टनेमिं यावद् गन्तुम् । स्थविरा ऊचुः यथासुखं हे देवानुप्रिया ।

मन्नं सद्वावेति, सद्वाविन्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्रिया । अरिहा अरिष्टनेमी पुन्वाणु जाव विहरइ, तं सेयं खलु अम्हं थेरा आपुच्छित्ता अरहं अरिष्टनेमिं वंदणाए गमित्तए) हे देवानुप्रियो ! सुनो-अर्हंत अरिष्टनेमि प्रभु तीर्थकर परम्परानुसार विहार करते हुए यावत् सौराष्ट्र जनपद में आये हुए हैं । लोगों के मुख से इस बात को उन पांच युधिष्ठिर आदि अनगारो ने सुना-तब आपस में एक दूसरे को-बुलाया-और बुलाकर इस प्रकार कहा-देवानुप्रियो ! सौराष्ट्र जनपद में तीर्थकर परम्परा के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि विहार कर रहे हैं-अतः हमलोगों को स्थविरों की आज्ञा लेकर अर्हंत अरिष्टनेमि को वंदना करने के लिये चलना बहुत अच्छा है-उचित है-(अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणैति, पडिसुणिन्ता जेणेव थेरा भगवंतो, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामो णं

पुन्वाणुं जाव विहरइ, तं सेयं खलु अम्हं थेरा आपुच्छित्ता अरहं अरिष्टनेमिं वंदणाए गमित्तए)

हे देवानुप्रियो ! सांभणो, अर्हंत अरिष्टनेमि प्रभु तीर्थकर परंपरा सुश्रुत विहार करतां यावत् सौराष्ट्र जनपदमां पधारेला छे. लोकोना सुभथी आ वातने ते पांचे युधिष्ठिर वगेरे अनगारोअये सांभणी. त्यारे तेअये परस्पर अेक थीअअोने ओलाअ्या अने ओलावीने आ प्रभाषे कहुं हे हे देवानुप्रियो ! सौराष्ट्र जनपदमां तीर्थकर परंपरा सुश्रुत भगवान् अरिष्टनेमि विहार करी रह्या छे अथी स्थविरानी आसा भेणवीने अरिष्टनेमिने वंदन करवा माटे अभादे जतुं नोथअे.

(अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणैति, पडिसुणिन्ता जेणेव थेरा भगवंतो, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामो णं तुअेहिं अब्भणुआया समाणा अरहं अरिष्टनेमिं जाव गमित्तए

ततः खलु ते युधिष्ठिरप्रमुखाः पञ्चानगाराः स्थविरैर्भगवद्भिरभ्यनुज्ञाताः सन्तः स्थविरान् भगवतो वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा स्थविराणामन्तिक्रातु प्रतिनिष्क्रामन्ति, मास-मासेन 'अणिकिखत्तेणं' अनिक्षिप्तेन=अन्तररहितेन तपः

तुम्हेहिं अब्रह्मणुन्नाया समाणा अरहं अरिद्विनेमि जाव गमित्तए अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं ते जुहिद्विस्लपामोक्खा पंच अणगारा थेरेहिं भगवन्तेहिं अब्रह्मणुन्नाया समाणा थेरे भगवन्ते वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिणिकखमंति, मासं मासेणं अणिकिखत्तेणं त कम्मणेणं गामाणुगामं दूईज्जमाणा जाव जेणेव हत्थिकप्पे नयरे तेणेव उवा० हत्थिकप्पस्स वहिया सहसंबवणे उज्जाणे जाव विहरंति-तएणं ते जुहिद्विस्लवज्जा चत्तारि अणगारा मासखमणपारणए पढमाए पोरसीए सज्जायं करेति, वीयाए जहा गोयमसामी, णवरं जुहिद्विलं आपुच्छंति जाव अडमाणा बहुजणसहं णिसामेति) इस प्रकार का परस्पर का यह विचार उन्होंने ने स्वीकार कर लिया-स्वीकार करके फिर वे जहां स्थविर भगवंत थे-वहां गये-वहां जाकर उन्होंने ने उन स्थविर भगवंतों को वंदना की नमस्कार किया। वंदना नमस्कार कर फिर उनसे इस प्रकार कहा हसलोग आप भगवंतों से आज्ञा प्राप्त कर अर्हत नेमिनाथ प्रभु को वंदना करने के लिये सौराष्ट्र जनपद जाना चाहते हैं। तब उन स्थविर भगवंतों ने उनसे कहा हे देवानुप्रियो! यथासुखम्-तुम्हें जैसे सुख हो-वैसा करो इस प्रकार उनस्थविर भग-

अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं ते जुहिद्विस्लपामोक्खा पंच अणगारा, थेरेहिं भगवन्तेहिं अब्रह्मणुन्नाया समाणा थेरे भगवन्ते वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिणिकखमंति, मासंमासेणं अणिकिखत्तेणं तवोक्कमेणं गामाणुगामं दूईज्जमाणा जाव जेणेव हत्थिकप्पे नयरे तेणेव उवा० हत्थिकप्पस्स वहिया सहसंबवणे उज्जाणे जाव विहरंति तएणं ते जुहिद्विस्लवज्जा चत्तारि अणगारा मासखमणपारणए पढमाए पोरसीए सज्जायं करेति, वीयाए एवं जहा गोयमसामी, णवरं जुहिद्विलं आपुच्छंति जाव अडमाणा बहुजणसहं णिसामेति)

आ रीते तेज्जोअे अेकधीअना विचारोने स्वीकारीने लीधा, स्वीकारीने तेज्जो अ्यां स्थविर भगवंत हुता त्यां गया. त्यां अधने तेअणे ते स्थविर भगवंतोने वंदन अने नमस्कार कर्यां. वंदन अने नमस्कार करीने तेअने आ प्रभाणे विनंती करी के अथे आप भगवंतनी आसा येणवीने अहं त नेमिनाथ प्रभुना वंदन माटे सौराष्ट्र जनपदमां जवा छच्छीअे छीअे. त्यांर ते स्थविर भगवतोअे तेअने आ प्रभाणे आसा करी के हे देवानुप्रियो ! 'यथा सुखम्' तअने अे काममां आनंद प्राप्त थाथ ते करी. आ प्रभाणे ते स्थविर

कर्मणा ग्रामानुग्रामं ' दूङ्जमाणा ' द्रवन्तः=गच्छन्तः, यावत् यत्रैव ' हस्तिकल्पे नगरे ' हस्तिकल्पं नगरं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य हस्तिकल्पस्य वहिः सहस्रा-
 भ्रवणे उद्याने यावद् विहरन्ति । ततः खलु ते युधिष्ठिरवर्ज्याश्चत्वारोऽनगारा मास
 क्षपणपारणके प्रथमायां पौरुष्यां स्वाध्यायं कुर्वन्ति, ' बीयाए ' द्वितीयायां पौरु-
 ष्यां ध्यानं ध्यायन्ति तृतीयायां पौरुष्यामत्वरितमचपलमसंभ्रान्तसदोरकमुख-
 वस्त्रिकां प्रतिलेखयन्ति, भाजनवस्त्राणि प्रतिलेखयन्ति, भाजनानि च-पात्राणि
 प्रपार्जयन्ति, भाजनान्यवगृह्णन्ति, गृहीत्वा एवं यथा गौतमस्वामी श्रमणं महावीर-
 मापृच्छति नवरं-अयमत्र विशेषः अत्र चत्वारोऽनगाराः युधिष्ठिरमापृच्छन्ति यावत्

वंतों से आज्ञा प्राप्त कर वे युधिष्ठिर प्रसुम्ब पांच अनगार उन स्थविर
 भगवंत को बंदना नमस्कार करके उनके पास से चले आये और निर-
 न्तर मास मास खमण करते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार
 करने लगे । इस तरह ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे पांचों अनगार
 जहाँ हस्तिकल्पनाम का नगर था वहाँ आये । वहाँ आकर वे हस्तिकल्प
 नगर के बाहिर सहस्राभ्रवन उद्यान में जाकर ठहर गये । इसके बाद वे
 युधिष्ठिर के सिवाय चारों अनगार मासक्षपण के दिन प्रथम पौरुषी में
 स्वाध्याय करते, द्वितीय पौरुषी में ध्यान करते, और तृतीय पौरुषी में
 अत्वरित, अचपल एवं असंभ्रान्त होकर सदोरकमुखवस्त्रिकाकी प्रतिले-
 खना करते, भाजन और वस्त्रोंकी प्रतिलेखना करते-फिर उन्हें उठाते-
 और लेकर जिस प्रकार गौतम स्वामी श्रमण महावीर स्वामी से पूछकर
 गोचरी के लिये निकलते उसी प्रकार ये भी युधिष्ठिर से पूछ कर हस्त

लगवतीनी आज्ञा भेजनीने ते युधिष्ठिर प्रसुम्ब पांच अनगारे ते स्थविर
 लगवतीने वंदन तेमज नमस्कार करीने तेमनी पासधी आवता रहा अने
 सतत मास अभ्रषु करतां ओके गामथी भीजे गाम विहार करवा लाग्या. आ
 रीते ग्रामानुग्राम विहार करतां ते पांचि अनगारे न्यां हस्तिकल्प नामे नगर
 हंतु त्यां आव्या. त्यां आवीने तेजो हस्तिकल्प नगरनी गडार सहस्राभ्रवन
 उद्यानमां जधने मुकाम क्यो. त्यारभाह ते युधिष्ठिर सिवायना चारे अनगारे
 मासक्षपण पारणाना द्विसे प्रथम पौड्धीमां स्वाध्याय करता, द्वितीय पौड्धीमां
 ध्यान करता अने तृतीय पौड्धीमां गोचरी माटे नीकणती वपते पणु अयपण
 असंभ्रात थधने सदोरकमुखवस्त्रिकांनी प्रतिलेखना करता, लाजन अने वस्त्रोनी
 प्रतिलेखना करता, त्यारभाह तेमने उपाठता अने उपाडीने जेभ गौतम स्वामी
 श्रमणु लगवान भडावीर स्वामीनी आज्ञा भेजनीने गोचरी माटे नीकणता
 तेमज तेजो पणु युधिष्ठिरनी आज्ञा भेजनीने हस्तिकल्प नगरमां उच्य, नीय,

हस्तिकल्पे नगरे उच्चनीचमध्यमकुलानि ' अडमाणा ' अटन्तः बहुजनशब्दं निशामयन्ति-शृण्वन्ति=किं शृण्वन्तीत्याह- ' एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! अर्हन् अरिष्टनेमिः ' उज्जितसेलसिहरे ' उज्जयन्तशैलशिखरे-गिरनारपर्वतोपरिभागे मासिकेन भक्तेन भक्तप्रत्याख्यानानेन पानकेन-पानीयरहितेन चतुर्विधाहारपरित्यागेनेत्यर्थः ' पञ्चहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं ' पञ्चभिः षट्त्रिंशताऽनगारशतैः=षट्त्रिंशदधिकपञ्चशतसंख्यकैरनगारैः सार्धं कालगतो यावत्-सिद्धोबुद्धः परिनिर्वातः सर्वदुःखप्रहीणो जातः ' ।

' तएण ' ति ' ततः खलु ते युधिष्ठिरवर्जाश्चत्वारोऽनगारा बहुजनस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा हस्तिकल्पाद् नगरात् प्रतिनिष्कामन्ति, मतिनिष्क्रम्य यत्रैव सहस्रा-

कल्प नगर में उच्च, नीच एवं मध्यम कुलों में गोचरी के लिये आये। उस समय इन्होंने अनेक मनुष्यों के मुख से इस प्रकार समाचार सुने (एवं देवानुप्रिया ! अरहा अरिष्टनेमी उज्जितसेलसिहरे मासिएणं भक्तेणं अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए जाव पहीणे, तएणं ते जुहिद्विल्लवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमहं सोच्चा इत्थिकप्पाओ पडिणिक्खमंति) देवानुप्रियों ! अर्हन्त अरिष्टनेमि ऊर्जयंतशैल शिखर पर-गिरनार पर्वत के ऊपर एक मास के चतुरविध आहार के परित्यागरूप भक्तप्रत्याख्यान से ५२६ अनगारों के साथ कालगत यावत् सिद्ध, बुद्ध, परिनिर्वात हो कर सर्व दुःखों से रहित हो गये हैं। इस प्रकार अनेक मनुष्यों के मुख से इस समाचार को सुनकर वे युधिष्ठिर वर्ज चारों अनगार उस हस्तिकल्पनगर से निकले (पडिनिक्खमिन्त्ता जेणेव सहसंबवणे लज्जाणे जेणेव

अने मध्यम कुलोभां गोचरी भाटे आ०या. ते सभये तेभणु धणु माणुसोना सुभथी अे नतना सभाथारे सांलण्या डे—

(एवं देवानुप्रिया ! अरहा अरिष्टनेमी उज्जितसेलसिहरे मासिएणं भक्तेणं अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए जाव पहीणे, तएणं ते जुहिद्विल्लवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमहं सोच्चा इत्थिकप्पाओ पडिणिक्खमंति)

हे देवानुप्रिया ! अर्हन्त अरिष्टनेमि ऊर्जयंत शैलशिखर उपर-गिरनार पर्वत उपर-अेक मासना थारे नतना आहारना परित्याग रूप लक्ष प्रत्याख्यानथी प३६ अनगारोनी साथे कालगत यावत् सिद्ध, बुद्ध, परिनिर्वात थधने सर्व दुःखोथी मुक्त थध गथा छे. आ प्रभाणु धणु माणुसोना सुभथी आ नतना सभाथारे सांलणीने ते युधिष्ठिर वगरने थारे अनगारो ते हस्तिकल्प नगरथी निकल्या.

अवगममुद्यानं यत्रैव युधिष्ठिरोऽनगरस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य भक्तपानं 'पञ्च-
 क्खंति' प्रत्याख्यान्ति=प्रत्याख्याय 'गमनागमनस्स' गमनागमनं प्रतिक्रामन्ति
 ईर्यापथिकीं कुर्वन्ति प्रतिक्रम्य 'एसणमणेसणं' एषणामनेषणाम् आलोचयन्ति,
 आलोच्य भक्तपानं-प्रतिदर्शयन्ति-युधिष्ठिरस्य पुरोऽवस्थाप्य प्रतिदर्शयन्ति, प्रति-
 दर्शय एवमवादिषुः-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! यावत् कालगतः=अहं अरिष्टनेमि
 मीक्षं प्राप्तः, 'तं' तस्मात् श्रेयः खलु अस्माकं हे देवानुप्रियाः ! इमं पूर्वगृहीतं

जुहिष्ठिल्ले अणगारे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पञ्च-
 क्खंति, पञ्चक्खित्ता गमणागमणस्स पडिक्कमंति पडिक्कमित्ता एसणम-
 नेसणं आलोएंति, आलोइत्ता भत्तपाणं पडिदंसेंति पडिदंसित्ता एवं
 वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! जाव कालगए तं सेयं खलु अम्हं देवा-
 णुप्पिया ! इमं पुव्वगहियं भत्तपाणं परिट्टवेत्ता सेत्तुंजं पव्वयं सणियं
 सणियं दुरुहत्तए) निकलकर वे जहां सहस्राव्रवन नाम का उद्यान था
 और उस में भी जहां युधिष्ठिर अनगर विराजमान थे, वहां आये।
 वहां आकर उन्होंने ने उनकी साक्षी से भक्त प्रत्याख्यान करदिया और
 भक्त प्रत्याख्यान करके फिर उन्होंने ने ईर्यापथ शुद्धि की। शुद्धि करके
 एषणा अनेषणा की आलोचना करके फिर उन्होंने लाये हुए उस
 आहार को युधिष्ठिर अनगर के समक्ष रख कर दिखलाया। दिखलाकर
 फिर वे इस प्रकार कहने लगे। हे देवानुप्रिय ! अहं अरिष्टनेमि मुक्ति
 को प्राप्त हो चुके हैं-इसलिये हे देवानुप्रिय ! इसको अब यही उचित

(पडिक्कमित्ता जेणेव सहस्रववणे उज्जाणे जेणेव जुहिष्ठिल्ले अणगारे
 तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता भत्तपाणं पञ्चक्खंति पञ्चक्खित्ता गमणागमणस्स
 पडिक्कमंति, पडिक्कमित्ता एसणमनेसणं आलोएंति, आलोइत्ता भत्तपाणं पडिदंसेंति
 पडिदंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! जाव कालगए तं सेयं खलु
 अम्हं देवाणुप्पिया ! इमं पुव्वगहियं भत्तपाणं परिट्टवेत्ता सेत्तुंजं पव्वयं सणियं
 सणियं दुरुहत्तए)

नीक्षणीने तेभ्यो न्यां सहस्राव्रवन नामे उद्यानं हतुं अने तेभ्यं पथु
 न्यां युधिष्ठिर अनगरं हता त्यां आत्वा. त्यां आत्वा अने तेभ्यो तेभ्यो तेभ्यो साभे
 लकत पानतुं प्रत्याख्यानं करी क्षीधुं. प्रत्याख्यानं करीने तेभ्यो ध्यापथनी शुद्धि
 करी. शुद्धि करीने अनेषणा अने अनेषणा करी, आलोचना करी. आलोचना
 करीने तेभ्यो लभं आवेत्ता ते आहारने युधिष्ठिर अनगरनी साभे भूक्षीने
 गताभ्यो. गताभ्यो आठ तेभ्यो आ प्रमात्ते कडेवा लात्वा के हे देवानुप्रिय !
 अहं अरिष्टनेमि प्रलुभ्ये मुक्तिं भेगवी छे अटला माटे हे देवानुप्रिय !

भक्तपानं परिष्ठाप्य 'सेत्तुंजं' शत्रुंजयं-शत्रुंजयनामकं पर्वतं शनैः शनैर्दूरोहितुम्
=आरोहितुम्, तथा-'संलेहणाद्भ्रूसणाद्भ्रूसियाणं' संलेखना जोषणाजुष्टानां=संले-
खनायां कषायशरीरकृषीकरणे या जोषणा-प्रीतिः सेवा वा तथा जुष्टाः=सेवि-
तास्तेषां=संलेखनात्पःकारिणामित्यर्थः-कालम्-अनवकाङ्क्षमाणानाम् - अनि-
च्छताम् विदुर्मुम्, इति कृत्वाऽन्योन्यस्यैतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति, प्रति-
श्रुत्य तद् पूर्वगृहीतं भक्तपानम् एकान्ते=प्राप्तुक्रे स्थाने परिष्ठापयन्ति, परिष्ठाप्य
यत्रैव शत्रुंजयः पर्वतस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य शत्रुंजयं पर्वतं शनैः शनैर्दूरोहन्ति
आरोहन्ति, दूरुह्य यावत्-कालमनवकाङ्क्षमाणा विहरन्ति ।

है कि हम इस पूर्व गृहीत भक्त पान का परिष्ठापन कर शत्रुंजय नामके
पर्वत पर धीरे धीरे चढ़ें (संलेहणाद्भ्रूसणाद्भ्रूसियाणं कालं अणवकंस्त्र-
माणानं विहरित्तए चिकद्दु अणमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसु-
णित्ता तं पुव्वगहियं भत्तपाणं एगंते परिट्ठवेंति, परिट्ठवित्ता जेणेव
सेत्तुंजं पव्वए तेणेव उवागच्छंति) और वहाँ काय और कषाय को
कृश करनेवाली संलेखना मरणांशंसा से रहित होकर प्रीति पूर्वक
धारण करें इस प्रकार विचार करकेउन्होंने ने परस्पर के इस विचार रूप
अर्थ को स्वीकार कर लिया । स्वीकार करके फिर उस पूर्व गृहीत भक्त
पान को उन्होंने एकान्त स्थान में परिष्ठापित कर दिया और परिष्ठापित
करके वे सब जहाँ शत्रुंजय पर्वत था वहाँ चले गये (उवागच्छित्ता)
वहाँ जाकर के (सेत्तुंजं पव्वयं दुरुहंति, दुरुहित्ता जाव कालं अणव-

हवे अभने अे व वात योग्य लागे छे के अभि आ पूर्वगृहित भक्तपानं
परिष्ठापन करीने शत्रुंजय नामना पर्वत उपर धीमे धीमे चढ़ीये.

(संलेहणाद्भ्रूसणाद्भ्रूसियाणं कालं अणवकंस्त्रमाणानं विहरित्तए चिकद्दु
अणमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता तं पुव्वगहियं भत्तपाणं एगंते परि-
ट्ठवेंति, परिट्ठवित्ता जेणेव सेत्तुंजं पव्वए तेणेव उवागच्छंति)

अने त्यां काय अने कषायने कृश करनारी संलेखनाने भरुषांशंसाथी
रहित शनने त्रैमपूर्वक धारण करीये. आ प्रमाळे विचार करीने तेभळे अेक
धीळना आ विचार इय अर्थने स्वीकारी लीधि. स्वीकार करीने तेभळे ते
पूर्वगृहीत भक्तपानने अेकांत स्थाने परिष्ठापित करी लीधुं. अने परिष्ठापित
करीने तेअो सवे' न्यां शत्रुंजय पर्वत हते त्यां व्याख्या गथा. (उवागच्छित्ता)
त्यां वधने—

(सेत्तुंजं पव्वयं दुरुहंति, दुरुहित्ता जाव कालं अणवकंस्त्रमाणा विहरंति,

ततः खलु ते युधिष्ठिरप्रमुखाः पञ्चानगराः 'सामाह्यमाह्याइं' सामायि-
कादीनि चतुर्दशपूर्वाणि अधीत्य बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा पष्ठाष्ट-
मादितपः कृत्वा द्विमासिकया संलेखनयाऽऽत्मानं 'ज्ञोसित्ता' जुष्ट्वा सेवित्वा
यस्यार्थाय क्रियते नग्नभावो=निर्ग्रन्थभावः यावत् तमर्थमारोधयति, आराध्य
अनन्तम् अनन्तार्थविषयकं यावत् 'केवलव्रणणादंसणे' 'केवलव्रणज्ञानदर्शनं समु-
त्पन्नं यावत् सिद्धाः=सिद्धिगतिं प्राप्ता इत्यर्थः ॥ सू० ३५ ॥

कंखभाणां विहरन्ति, तएणं ते जुहिद्विल्लपामोक्खा पंच अणगारा सामा-
ह्यमाह्याइं चोदसपुव्वाइं बहूणि वासाणि० दो मासियाए संलेहणाए
अत्ताणं ज्ञोसित्ता जस्सट्ठाए कीरइ, जग्गभावे जाव तमट्टमारोहंति,
तमट्टमारोहिता अणंते जाव केवलव्रणणादंसणे समुप्पन्ने जाव सिद्धो)
वे शत्रुंजय पर्वत पर चढे चढकर के उन्होंने मरणाशंसा से रहित होकर
संलेखना धारण करली । इस तरह उन युधिष्ठिर प्रमुख पंच अनगारोंने
सामायिक आदिचतुर्दश पूर्वोंका अध्ययन करके अनेक वर्षों तक श्राम-
ण्य पर्याय का पालन करके तथा षष्ठ, अष्टम, आदि तपस्याओं को
करके अन्त में दो मास की संलेखना से अपने आप की प्रीति पूर्वक
सेवित किया और जिस निमित्त नग्न भाव-निर्ग्रन्थ अवस्था धारण की
थी उस अर्थ को उन्होंने ने सिद्ध कर लिया । सिद्ध करके-आराधित कर
के अनन्त अर्थ को विषय करने वाले केवलव्रणज्ञानदर्शन को उत्पन्नकर
यावत् वे सिद्धि गति को प्राप्त हो गये ॥ सूत्र ३५ ॥

तएणं ते जुहिद्विल्लपामोक्खा पंच अणगारा सामाह्यमाह्याइं चोदसपुव्वाइं०
बहूणि वासाणि० दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणे ज्ञोसित्ता जस्सट्ठाए कीरइ,
जग्गभावे जाव तमट्टमारोहंति, तमट्टमारोहिता अणंते जाव केवलव्रणणा
दंसणे समुप्पन्ने जाव सिद्धा)

तेज्जे शत्रुंजय पर्वत उपर चढया अने चढीने तेमजे मरणशंसाथी
रहित थधने संलेखना धारण करी लीधी आ प्रभाजे ते युधिष्ठिर प्रमुख
पांच अनगारोते सामायिक वगेरे चतुर्दश पूर्वोनुं अध्ययन करीने धवुं वर्षो
सुधी श्रामण्य-पर्यायतुं पालन करीने तेमज्ज षष्ठ, अष्टम वगेरे तपस्याओने
करीने छेवटे जे मासनी संलेखनाथी त्रेमपूर्वकं चोतानी जतने सेवित करी
अने जे निमित्तने लधने नग्नभाव-निर्ग्रन्थ अवस्था धारण करी इती ते
अर्थने तेमजे सिद्ध करी लीधी. सिद्ध करीने आराधित करीने अनन्त अर्थने
विषयइय जनावनार केवलज्ञान दर्शनने उत्पन्न करीने यावत् तेज्जेजे सिद्धगति
प्राप्ती लीधी. ॥ सूत्र ३५ ॥

मूलम्—तएणं सा दोवई अज्जा सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए
सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूणि
वासाणि० मासियाए संलेहणाए० आलोइयपडिक्कंता कालमासे
कालं किच्चा बंभलोए उववन्ना, तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं
दस सागरोवमाइं ठिई पणत्ता तत्थ णं दुवयस्स देवस्स दस
सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता, से णं भंते ! दुवए देवे ताओ जाव
महाविदेहे वासे सिज्जइ जाव काहिइ । एवं खलु जंबू ! सम-
णेणं जाव संपत्तेणं सोलमस्स णायज्जयणस्स अयमट्ठे पणत्ते
त्तिवेमि ॥ सू० ३४ ॥ सोलसमं नायज्जयणं समत्तं ॥ १६ ॥

टीका—‘तएणं सा’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु सा द्रौपदी आर्या
साध्वी सुव्रतानामार्यिकाणामन्तिके सामायिकादिकानि एकादशाहानि अधीते,
अधीत्य बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा मासिकया संलेखनया आलोचित-
प्रतिक्रान्ता कालमासे कालं कृत्वा ‘बंभलोए’ पंचमे ब्रह्मलोके देवत्वेन ‘उववन्ना’

‘तएणं सा दोवई’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा दोवई अज्जा) उस द्रौपदी आर्यानि
(सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहि-
ज्जइ) सुव्रता आर्या के पास सामायिक आदि ११ अंगों का अध्ययन
किया (अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि० मासियाए संलेहणाए० आलोइय-
पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा बंभलोए उववन्ना) अध्ययन करके
अनेक वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर एक मास की संलेखना

तएणं सा दोवई इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपथी (सा दोवई अज्जा) ते द्रौपदी आर्याये (सुव्व-
याणं अज्जियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ) सुव्रता
आर्यानी पासे सामायिक वगेरे ११ अंगेतुं अध्ययन कथुं”.

(अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि० मासियाए संलेहणाए० आलोइय पडिक्कतां
कालमासे कालंकिच्चा बंभलोए उववन्ना)

अध्ययन करीने घण्टां वर्षी सुधी श्रामण्य पर्यायतुं पालन कथुं”, त्पार-

उत्पन्ना, तत्र तस्मिन् देवलोके—खलु अस्त्येकेपां=केपांचिद्वानाम् दशसागरोप-
मानि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तत्र खलु द्रौपदेवस्यस्य दशसागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता तत्र
खलु गौतमः पृच्छति—हे भदन्त ! स खलु द्रौपदो देव आयुर्भवस्थितिक्षयेण 'ताओ'
तस्माद् देवलोकाच्च्युत्वा कुत्रगमिष्यति कुत्रोत्पत्स्यते ? भगवान् प्राह—' जाव '
इति यावन्महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति, यावत् सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति ।

से आलोचित प्रतिक्रान्त बन वे काल अवसर काल कर के पांचवें ब्रह्म-
लोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हुई । (तत्थ णं अत्थे गइयाणं देवाणं
दस सागरोवमाइं ठिई पण्णात्ता, तत्थ णं दुवयस्स देवस्स दस सागरो-
वमाइं ठिई पण्णात्ता, सेणं भंते ! दुवए देवे ताओ जाव महाविदेहे वासे
सिज्झइ, जाव काहिइ । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं सोलसम-
स्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णात्ते त्तिवेमि) उस देवलोक में कितनेक
देवों की दश सागर की स्थिति प्रज्ञप्त हुई है । सो वहां द्रौपदी देव की
दश सागर की स्थिति हुई । अब गौतम पूछते हैं हे भदंत ! वह द्रौपदी
देव आयु एवं भवस्थिति के क्षय होने पर वहां से चव कर कहाँ जावे-
गा—कहाँ उत्पन्न होगा ? उत्तर में भगवान् कहते हैं—हे गौतम ! वह
द्रौपदी देव वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और वहीं
से सिद्ध बनेगा यावत् समस्त दुःखों का अंत करेगा ।

पछी ओक भासनी स'लेअनाथी आलोच्यत प्रतिक्रान्त भनीने तेओः काण अय-
सरे काण करीने पांअभा अइल्लोअभां देवना पर्यायथी जन्म पोथी.

(तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णात्ता, तत्थ णं
दुवयस्स देवस्स दस सागरोवमाइं ठिई पण्णात्ता, सेणं भंते ! दुवए देवे ताओ
जाव महाविदेहे वासे सिज्झइ, जाव काहिइ । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव
संपत्तेणं सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णात्ते त्तिवेमि)

ते देवलोअभां डेट्ठाअ देवे'नी दश सागरनी स्थिति प्रज्ञप्त थर्छे. आ
प्रमाखे द्रौपदी देवीनी त्यां दश सागरनी स्थिति प्रज्ञप्त थर्छे.

हुवे गौतम स्वामी प्रश्न करे छे के डे लदन्त ! ते द्रौपदी देवीनी आयु
अने भवस्थिति पूरी थया आइ यवीने कथां जरी ? कथां उत्पन्न थरी ?

तेना उत्तरभां भगवान् कडेया लाग्या के डे गौतम ! ते द्रौपदी देव
त्यांथी यवीने महाविदेह क्षेत्रभां उत्पन्न थरी अने त्यांथी ज सिद्ध अनरी.
यावत् तेओः पोताना समस्त दुःभोना अंत कररी.

सुधर्मास्वामी कथयति—‘ एवं खलु ’ इत्यादि । एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं सम्प्राप्तेन षोडशस्य ज्ञाता-
ध्ययनस्यार्थं=पूर्वकथितः अर्थः=द्रौपदीदृष्टान्तरूपो भावः प्रज्ञप्तः, प्ररूपितः, इति
ब्रवीमि व्याख्यापूर्ववत् ॥ ३४ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितक-
लापालापक-प्रविशुद्भगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छ-
त्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त-‘ जैनशास्त्राचार्य ’ पदभूषित-कोल्हापुरराज-
गुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री-घासीलाल-
व्रतिविरचितायां-ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रस्या, नगारधर्माभृतवर्षि-
ण्याख्यायां व्याख्यायां षोडशमध्ययनं समाप्तं ॥ १६ ॥

सुधर्मा स्वामी कहते हैं हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने जो
सिद्धि गतिनामक स्थान को प्राप्त हो चुके हैं इस षोडश ज्ञानाध्ययन
का यह पूर्वोक्त द्रौपदी दृष्टान्त रूप भाव अर्थ प्ररूपित किया है । ऐसा
मैं उन्हीं श्रमण भगवान महावीर के द्वारा कहे श्रुत उपदेश के अनुसार
कहता हूँ ॥ सूत्र ३६ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलालजी महाराज कृत

“ ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र ” की अनगारधर्माभृतवर्षिणी व्याख्याका

सौलहर्वा अध्ययन समाप्त ॥ १६ ॥

सुधर्मा स्वामी कहे छे डे डे डे जम्बू ! श्रमणु भगवान महावीरे डे जेज्यो
सिद्धिगति नामक स्थानने मेणनी सूकथा छे आ सोणमा ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वे
वणुवेदो द्रौपदी दृष्टान्त इय भाव अर्थ प्ररूपित कथे छे, ते श्रमणु भगवान
महावीर वडे कडेवाज्येला श्रुत उपदेश सुज्य ज तमने हुं कही=हो छुं ॥ सू० ३६ ॥
श्री जैनाचार्य घासीलाल महाराज कृत ज्ञातासूत्रनी अनगारधर्माभृतवर्षिणी
व्याख्यानुं सोणमुं अध्ययन समाप्त ॥ १६ ॥

॥ अथ सप्तदशाध्ययनम् ॥

व्याख्यातं षोडशाध्ययनम्, साम्प्रतं सप्तदशं व्याख्यायते । पूर्वस्मिन्नध्ययने द्रौपद्या नागश्रीभवे कृत्स्नदानेन तस्या एव सुकुमारिकाभवे निदानेन चानर्थः प्रोक्तः, साम्प्रतमवशेन्द्रियत्वानेनानर्थो भवतीत्युच्यते, इति सम्बन्धेन सम्बद्धस्यास्याध्ययनस्येदमादिमं सूत्रम्—‘ जङ्घं भंते ! ’ इत्यादि ।

मूलम्—जङ्घं भंते ! समणैणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सोलसमस्स णायज्जयणस्स अयमट्टे पणत्ते सत्तरसमस्स णं भंते ! णायज्जयणस्स समणैणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पन्नत्ते ?, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं

सत्रहर्षा अध्ययन का प्रारंभ

—:आकीर्णं-जातिमान् घोड़े का सत्रहर्षा अध्ययन प्रारंभ:-

सोलहर्षा अध्ययन संपूर्ण हुआ-अब सत्रहर्षा अध्ययन कहा जाता है । पूर्व अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि द्रौपदी ने नागश्री के भव में कृत्स्न दान दिया था-कडवे तुंबेका आहार मुनिराज को दिया था-तथा जब वह सुकुमारिका के भव में उत्पन्न हुई थी तो उसने निदानबंध किया था इससे उसे महान् अनर्थ की प्राप्ति हुई । अब इस अध्ययन में यह विषय स्पष्ट किया जावेगा-कि जो अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखते हैं-वे अनर्थ के भागी होते हैं । इसी संबंध से सम्बन्धित हुए इस अध्ययन का यह आदिम सूत्र है-

सत्तरमा अध्ययनो प्रारंभ

—: आकीर्णं जातिमान् घोडानुं सत्तरमुं अध्ययन प्रारंभ :—

सोणमुं अध्ययन पूरं थधं गच्छं छे, हवे सत्तरमा अध्ययननी शङ्खात् थाय छे. सोणमा अध्ययनमां ओ वातत्तुं स्पष्टीकरणुं करवामां आण्युं छे के द्रौपदीओ नागश्रीना लवमां कृत्स्न ('ओडुं') दान क्खुं हत्तुं. कडवा तुंणाने आहार मुनिशब्बने आण्ये हत्तो. तेसज्ज न्यारे ते सुकुमारिकाना लवमां उत्पन्न थधं हत्ती त्तारे तेणुं निदान थधं क्खे हत्तो. तेथी तेने महान् अनर्थनी प्राप्ति थधं हत्ती. हवे आ सत्तरमा अध्ययनमां ओ वात स्पष्ट करवामां आवशे के ओओ योतानी धन्दिथेने वशमां राधता नथी-तेओ अनर्थं लोगवे छे. ओ ज्ज वातने स्पष्ट क्खत्तुं सत्तरमा अध्ययनत्तुं आ पडेल्लुं सूत्र छे.

समयं हत्थिसीसे नयरे होत्था, वणओ, तत्थ णं कणगकेऊ
 णामं राया होत्था, वणओ, तत्थणं हत्थिसीसे णयरे बहवे
 संजत्ता णावावाणियगा परिवसंति अड्ढा जाव बहुजणस्स अप-
 रिभूया यावि होत्था, तएणं तेसिं संजत्ता णावा वाणियगाणं
 अन्नया एगयओ जहा अरहणओ जाव लवणसमुदं अणेगाइं
 जोयणसयाइं ओगाढा यावि होत्था तएणं तेसिं जाव बहुणि
 उप्पाइयसयाइं जहा मार्गदियदारगाणं जाव कालियवाए य तत्थ
 समुत्थिए, तएणं सा णावा तेणं कालियवाएणं आघोलिज्ज-
 माणी२, संचालिज्जमाणी२, संखोहिज्जमाणी२, तस्थेव परिभ-
 मइ, तएणं से णिज्जामए णट्टमइए णट्टसुइए णट्टसण्णे मूढ-
 दिसाभाए जाए यावि होत्था, ण जाणइ कयरं देसं वा दिसं
 वा विदिसं वा पोयवहणे अवहिए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पे
 जाव झियायइ, तएणं ते बहवे कुच्छिधारा य कणधारा य
 गब्भिह्लगा य संजत्ताणावावाणियगा य जेणेव से णिज्जामए
 तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता एवं वयासी-किन्नं तुमं देवा-
 णुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह ?, तएणं से
 णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी-एवं खलु
 देवाणुप्पिया ! णट्टमइए जाव अवहिए त्ति कट्टु तओ ओहय-
 मणसंकप्पे जाव झियामि, तएणं ते कुच्छिधाराय ४ तस्स
 णिज्जामयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म भीया ४ पहाया
 कयवालिकम्मा करयल बहूणं इंदाण य खंधाण य जंहा मल्लि-

नाए जाव उवायमाणा२ चिट्ठंति, तएणं से णिज्जामए तओ सुहुत्तंतरस्स लद्धमइए३ अमूढदिसाभाए जाए यावि होत्था, तएणं से णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी- एवं खल्ल अहं देवाणुप्पिया ! लद्धमइए जाव अमूढदिसाभाए जाए, अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कालियदीवे तेणं संवूढा एसणं कालियदीवे आलोकइ, तएणं ते कुच्छिधारा य४ तस्स णिज्जामगस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्टुतुट्ठा पयक्खिणाणुकूलेणं वा- एणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता पोय- वहणं लवेति लवित्ता एगट्ठियाहिं कालियदीवं उत्तरंति, तत्थ णं ते बहवे हिरण्णागरे य सुवण्णागरे य रयणागरे य वइरा- गरे य बहवे तत्थ आसे पासंति, किं ते ?, हरिरेणुसोणिसुत्तगा आइण्णवेढा, तएणं ते आसा ते वाणिथए पासंति पासित्ता तेसिं गंधं अग्घायंति अग्घायित्ता भीया तत्था उव्विग्गमणा तओ अणैगाइं उब्भमंति, तेणं तत्थ पउरतणपाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहं सुहेणं विहरंति ॥ सू० १ ॥

टीका—जम्बूस्वामी पृच्छति—यदि खल्ल भदन्त ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं सम्प्राप्तेन षोडशस्य ज्ञाताध्ययनस्यायमर्थः=

—:जइणं भंते ! इत्यादि ।

टीकार्थ—(भंते ! हे भदंत ! (जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं) यदि श्रमण भगवान् महावीरने कि जो सिद्धिगति नामकस्थान को प्राप्तकर चुके हैं (सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सत्तर-

जइणं भंते ! इत्यादि—

टीकार्थ—(भंते !) हे भदन्त ! (जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं) ने श्रमणु भगवान् महावीरे के-केओ सिद्धिगति नामका स्थानने भगवा चूकथा छे.

पूर्वोक्तो भावः भद्रतः ? सुधर्मास्वामीप्राह—एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये हरितशीर्षं नाम नगरमासीत् । ‘वण्णओ’ वर्णकः=‘ऋद्धे’ त्यादि-नगरवर्णनम् पूर्ववद् विज्ञेयम् । तत्र खलु कनककेतुर्नाम राजाऽऽसीत् ‘वण्णओ’ वर्णकः—‘महयाद्विमवंते’ त्यादि राजवर्णनं पूर्ववद् बोध्यम् । तत्र खलु हस्तिशीर्षं

मस्स णं भंते । णायज्झयणस्स सवण्णेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते) सोलहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्तरूप से अर्थ प्ररूपित किया है—तो सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए उन्हीं अयण भगवान् महावीर ने सबहवें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ प्ररूपित किया है (एवं खलु जंबू !) इस प्रकार जंबू स्वामी के ब्रह्मणे पर सुधर्मा स्वामी अब उन्हें समझाते हैं—वे कहते हैं हे जंबू ! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—

(तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नयरे होत्था, वण्णओ, तत्थ, णं कणगकेऊणां राया होत्था, वण्णओ, तत्थ, णं हत्थिसीसे णयरे बहवे संजत्ता णावा वाणिगया परिवसंति, अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया यावि होत्था) उस काल और उस समय में हस्तिशीर्ष नाम का नगर था । “ऋद्ध” इत्यादि रूपसे पूर्व अध्ययनों में वर्णित पाठ की तरह इस नगर का वर्णन जानना चाहिये । उस नगर में कनक केतु नामका राजा रहता था । इसका भी वर्णन “महया द्विमवंत” इत्यादिरूप से पहिले के अध्ययनोंमें वर्णित राजाओंके वर्णन जैसा ही जानना चाहिये । उस

(सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सत्तरमस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते)

सोणमा ज्ञाताध्ययनो पूर्वोक्त इये अर्थं प्ररूपित कर्ये छे त्यारे सिद्ध-गति स्थानने मेणवी बुद्धेला ते ज्ज श्रमणु लगवान महावीरे सत्तरमां ज्ञाता-ध्ययनो शो अर्थं प्ररूपित कर्ये छे ।

(एवं खलु जंबू) आ रीते ज्जुना प्रश्नने सांख्यीने तेमने समलवतां सुधर्मा स्वामी बुद्धेला लाया के छे ज्जु ! तमारा प्रश्नने ज्जवाय आ प्रमाणु छे के—

(तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नयरे होत्था, वण्णओ, तत्थणं कण-गकेऊणां राया होत्था, वण्णओ, तत्थणं हत्थिसीसे णयरे बहवे संजत्ता णावा वाणिगया परिवसंति, अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया यावि होत्था)

ते काले अने ते समये हस्तिशीर्ष नामे नगर छंतुं । “ऋद्ध” वगेरे रूपमां पडेलाना अध्ययनोमां वर्णन करवामां आवेला पाठनी जेभ आ नगरसुं वर्णन पणु लणु लेखुं लेखुं । ते नगरमां कनककेतु नामे राजा रहते छे ।

नगरे बहवः ' संजज्ञाणावात्राणियगा ' संयात्रानौकावाणिजकाः=सं=सङ्गता यात्रा=देशान्तरगमनं संयात्रा, तत्प्रधाना नौकावाणिजकाः=पोतवणिजः-संयात्रानौका वाणिजकाः परिवसन्ति कीदृशाः ? इत्याह-आढ्या यावत् ' बहुजनस्य ' बहुजनस्य सम्बन्धसामान्ये पृथीजनसमुदायेनेत्यर्थः ' अपरिभूया ' अपरिभूताः=पराभवरहिता चाप्यासन् । ततः खलु तेषां संयात्रानौका वाणिजकानाम् अन्यदा=अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित्समये ' एग्यओ ' एकतः एकत्रमितिया ' जहा अरहणओ ' यथा अर्हन्नकः=अत्रैवाष्टमाध्ययनोक्ताहन्नकवत् यावत् लवणसमुद्रमनेकानि योजनशतानि ' ओगाढा ' अवगाढाः=उत्तीर्णाश्चप्यामन् । ततः=तत्र खलु तेषां यावत् बहूनि ' उप्पाइयसयाइं ' औत्पात्तिकशतानि=आकस्मिकोत्पातशतानि यथा माकन्दिकदारकयोः-जिनरक्षितजिनपालितयोः संजातानि तथैवास्यापि यावत् ' कालियवाए ' कालिकवातः प्रलयकालिकवत्पचण्डवातश्च तत्र समुत्थितः । ततः=तदनन्तरं खलु सा नौका तेन कालिकवातेन ' आघोलिज्जमाणी २ ' आपूर्णमाना २ पुनः पुनर्धाम्यन्ती ' संचालिज्जमाणी २ ' संचालयमाना २ पुनः पुनश्चाल्य-

हस्तिश्रीर्षे नगरमें अनेक पोत वणिक् (नावसे व्यापार करने वाले) रहते थे । ये एक साथ मिलकर ही परदेश नें जाकर व्यापार किया करते थे । इनकी उस नगर में अच्छी प्रतिष्ठा थी-कारण ये सब के सब लक्ष्मीदेवी के विशेष रूप से कृपापात्र थे । (तएणं तेसि संजस्ता णावा वाणियगाणं अन्नया एगयाओ जहा अरहण्णाओ जाव लवणसमुद्धं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा याचि होत्था, तएणं तेसि जाव बहूणि उप्पाइयसयाइं जहा मार्गदियदारगाणं जाव कालियवाए य तत्थ समुत्थिए, तएणं सा तेणं कलियवाएणं आघोलिज्जमाणी २ संचालिज्जमाणी २ संखोलिज्जमाणी

आ राणु' वणु' न पणु ' " महया हिमवत " वगेरे इपमां पडेलाना अध्ययनेमां वणित राणयेाना वणु' न जेपु' न नाणी लेपु' जेधमे. ते हस्तिश्रीर्षे नगरमां धणुा पोतवणिके (वहाणु वडे वेपार करनारा) रडेता हता तेओ सवे' ओधी साथे मणीने परदेशमां जाता अने त्यां वेपार करता हता. ते नगरमां तेमनी सारी ओवी प्रतिष्ठा हती. डेमडे भास करीने तेओ सवे' लक्ष्मीना कृपापात्र हता.

(तएणं तेसि संजस्ता णावा वाणियगाणं अन्नया एगयाओ जहा अरहण्णाओ जाव लवणसमुद्धं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा याचि होत्था, तएणं तेसि जाव बहूणि उप्पाइयसयाइं जहा मार्गदियदारगाणं जाव कालियवाए य तत्थ समुत्थिए तएणं सा णावा तेणं कलियवाएणं आघोलिज्जमाणी २ संचालिज्जमाणी

माना 'संखोहिज्जमाणी २' संस्रोभ्यमाणा २ पुनः पुनः क्षोभं प्राप्यमाणा सती तत्रैव=एकस्थान एवैतस्ततः परिभ्राम्यति किन्तु ततः परं गन्तुं न प्रभृतीति भावः । ततः खलु स निर्यामकः=नाविकः 'णट्टमइए' नष्टमतिकः-मतिज्ञानरहितः 'णट्टसुइए' नष्टश्रुतिकः-विरुद्धनिर्यामकशास्त्रः दिग्निर्णयं कर्तुमशक्तत्वात् णट्टसण्णे 'नष्टसब्ब' =मार्गज्ञानरहितः 'मूढदिसाभाए' मूढदिग्भागः=पूर्वादि-दिग्विभागज्ञानरहितः जातश्चप्यासीत्, पुनश्च स न जानाति यत् कतरं=कं देशं

२ तत्रैव परिभ्रमइ, तएणं से णिज्जामए णट्टमइए णट्ट सुइए णट्ट सण्णे मूढदिसाभाए जाए यावि होत्था) एक दिनकी बात है कि जब ये सांया-त्रिक पोत वणिक् एक जगह मिलकर बैठे हुए थे तब अष्टम अध्ययन में वर्णित अरहन्क सेठ की तरह इनका लवण समुद्रसे होकर परदेश में व्यापार निमित्त जाने का विचार हुआ । विचार स्थिर होते ही ये जब नौका द्वारा लवण समुद्र में सैकड़ों योजन तक निकल चुके तब इनके लिये जिन रक्षित और जिनपालितकी तरह आकस्मिक अनेक उत्पातशत (सैकड़ों) हुए । उस समय प्रलय कालकी तरह प्रचण्ड वायु उठी । उससे उनकी नौका बार २ डगमगा ने लगी इधर से उधर फिर ने लगी । बार २ चञ्चल होकर बार २ क्षुब्ध होकर एक ही स्थान पर नीची ऊंची होने लगी-उससे आगे वह नहीं बढी । इससे निर्धार्मिक-नाविक-मतिज्ञान से रहित हो गया । दिशाओं का निर्णय करने का ज्ञान उसका जाता रहा । वह मार्ग ज्ञान रहित होकर दिग्मूढ बन गया । (ण जणइ

२ संखोहिज्जमाणी १ तत्रे वपरिभमइ, तएणं से णिज्जामए णट्टमइए णट्टसुइए णट्टसण्णे मूढ दिसाभाए जाए यावि होत्था)

એક દિવસની વાત છે કે બ્યારે તેઓ સર્વે સાંયાત્રિક પોતવણિકે એક સ્થાને એકત્ર થઇને એકા હતા ત્યારે આઠમા અધ્યયનમાં વર્ણિત અરહનક શેઠની જેમ તેમનો પણ લવણ સમુદ્રમાં થઇને પરદેશમાં વેપાર માટે જવાનો વિચાર થયો. વિચાર સ્થિર થતાં જ તેઓ બ્યારે નૌકા વડે લવણ સમુદ્રમાં સેકંડે યોજન સુધી પહોંચી ગયા ત્યારે અનપાલિત અને અનરક્ષિતની જેમજ તેમના માટે પણ સેકંડે આચિંતા ઉપદ્રવો ઉત્પન્ન થયા. તે વખતે પ્રલય કાળના જેવો પ્રચંડ વાયુ કુંકાવા લાગ્યો તેથી તેમની નૌકા વારંવાર ડગમગવા લાગી, આમથી તેમ ફરવા લાગી. વારંવારથી અચંચળ થઇને, વારંવાર ક્ષુબ્ધિત થઇને એક જ સ્થાન ઉપર નીચે ઉપર થવા લાગી, તેનાથી આગળ વધી નહિ. તેથી નિર્ધાર્મિક-નાવિક મતિજ્ઞાનથી રહિત થઇ ગયો. દિશા-ઓને બાણવાયુ તેમ જ્ઞાન જતું રહ્યું. માર્ગજ્ઞાનથી રહિત થઇને દિગ્મૂઢ બની

वा दिशं वा विदिशं वा प्रति मे पोतवहनम् नौकायानं ' अवहिए ' अपहतम् महा वातेन नीतम् , इति । इति कृत्वा=इतिमनसि निधाय अपहतमनः संकल्पो यावद् ध्यायति=आर्त्तध्यानं करोति । ततः खलु ते बहवः कुक्षिधाराश्च=पार्श्वतो नौका चालकाः कर्णधाराश्च=नाविकाः । ' गम्भिल्लगाय ' गार्भेयकाश्च नौमध्ये यथावसर कर्मकराः, संयात्रानौका वाणिजकाः=माण्डपतयश्च यत्रैव स निर्यामकः=नौकाधिपतिरतत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य एवमवादिषुः-किं खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! अपहतमनःसंकल्पाः निरुत्साहमनस्काः यावत् ' झियायह ' ध्यायथ आर्त्तध्यानं कुरुथ, आदरार्थं बहुवचनम् । ततः खलु स निर्यामकस्तान् बहून् कुक्षिधारांश्च ४

कयरं देसं वा दिसं वा विदिसं वा पोयवहणे अवहिए त्ति कट्टु) अतः जब उसे इस बात का भी ज्ञान नहीं रहा कि यह महावात मेरी नौका को किस दिशा अथवा विदिशा की ओर ले गया है-तब इस प्रकार मन में विचार कर के वह (ओहयमणसंकप्पे जाव झियायह) अपहत मनः संकल्पवाला बनकर यावत् आर्त्तध्यान करने लगा । (तएणं ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गम्भिल्लगा य संजत्ता णावो वाणि-यगा य जेणेव से णिज्जामए तेणेव उवागच्छइ) इतने में अनेक कुक्षि-धर-पार्श्व में बैठकर नौका चलाने वाले कर्णधार-नाविक, गार्भेयक-नौका के भीतर यथावसर काम करने वाले और सांयात्रिक पोत वाणिक जहां वह निर्यात्रिक था-वहां आये । (उवागच्छित्ता एवं वयासी-किन्नं तुमं देवानुप्पिया भोहयमणसंकप्पो जाव झियायह-तएणं से णिज्जामए

गथे. (ण जाणाइ कयरं देसं वा दिसं वा विदिसं वा पोयवहणे अवहिएत्ति कट्टु) अथै न्यारे तेने आ वातनी पणु भगर रही नडि डे आ भडावात अमारी नौकाने कइ दिशा अथवा तो विदिशा तरइ लछ गथे छे. त्यारे मनमां आ नतने। विचार करीने ते (ओहयमणसंकप्पे जाव झियायह) अपहतमनः संकल्पवाणे। थधने यावत् आर्त्तध्यान करवा लाग्थे।

(तएणं ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गम्भिल्लगा य संजत्ता णावा वाणियगा य जेणेव से णिज्जामए तेणेव उवागच्छइ)

अटलाभां घणु। कुक्षिधर-पार्श्वभां गेसीने नौका यथावतारा, कर्षुधार नाविक, गार्भेयक-नौकाभां यथा समय काम करनारा अने सांयात्रिको-पोत-वणिके न्यां ते निर्यामक डते। त्यां गथा।

(उवागच्छित्ता एवं वयासी-किन्नं तुमं देवानुप्पिया ओहयमणसंकप्पो जाव झियायह-तएणं से णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी-

एवमवादीत् एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! अहं नष्टमतिकः यावत् न ज्ञायते कं देशं वा दिशं वा विदिशं वा प्रतिपोतवहनम् ' अवहिए ' अपहतं=महावातेन नीतम् ? इति कृत्वा=इति विचार्य ततः=तस्मात्कारणात् अपहतमनःसङ्कल्पो यावत् ध्यायामि=आर्त्तध्यानं करोति । ततः खलु ते कुक्षिधाराश्च ४ सर्वे तस्य निर्यामकस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चय भीताः, त्रस्ताः, त्रसिताः, उद्विग्नाः, सञ्जातभयाः सन्तः स्नाताः कृतबलिकर्माणः ' करयल० ' करनलपरिगृहीतं शिर आवर्त्त दशनखं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा बहूनां इन्द्राणां च स्कन्दानां च यथा मल्लिङ्गाते तथैव यावत्-बहूनां रुद्रादीनां देवानां देवीनां च=उपयाचितशतानि अनेकविध-

ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया । णट्टमइए जाव अवहिए त्ति कट्टु तओ ओहयमणसंकप्पे जाव द्वियामि) वहां आकर के उन्हों ने उस से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय । क्या कारण है जो तुम अपहतमनःसंकल्प यावत् होकर आर्त्तध्यान कर रहे हो । उन सब की ऐसी बात सुनकर उस निर्यामक ने उन अनेक कुक्षिधार ४ आदिकों से इस प्रकार कहा-सुनो बात इस प्रकार है-मैं इस समय नष्ट मतिज्ञान आदि वाला हो रहा हूँ-सुझे यह पता नहीं पड रहा है कि मेरी यह नौका महावानके द्वारा किस देशमें और किस दिशाअथवा विदिशा में ले आई गई है-इस कारण मैं इस समय निरत्साह मनवाला आदि बन रहा हूँ । (तएणं ते कुच्छिधारो य ४ तस्स णिज्जामयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म भीया ५ पहाया कयवलिकम्मा करयल बहूणं इंदाण य खंधाण य जहा मल्लिनाए जाव उवायमाणा २ एवं खलु देवाणुप्पिया णट्टमइए जाव अवहिए त्ति कट्टु तओ ओहयमणसंकप्पे जाव द्वियामि)

त्यां अधने तेभ्ये तेने आ प्रभाद्ये क्खुं के हे देवानुप्रिय ! शा कारण्थी तमे अपहतमनः संकल्पवाणा थधने आर्त्तध्यान करी रह्या छे। तेओ सर्वेनी आ वात सांलणीने नियाभके ते धष्ठा कुक्षिधार ४ वगेरे अधने आ प्रभाद्ये क्खुं के सांलणेो, वात जेवी छे के अत्यारे हुं नष्ट मतिज्ञानवाणेो थध गयेो छुं भने जे लतनी पञ्च समञ्ज पडती नथी के आ भारी नौका महावात वडे प्रेराधने कया देशमां अने कर्ध दिशा अथवा तो विदिशामां तष्ठाध् आवी छे. जेटला माटे हुं अत्यारे निराश मनवाणेो थध गयेो छुं.

(तएणं ते कुच्छिधारा य ४ तस्स णिज्जामयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म भीया ५ पहाया कयवलिकम्मा करयलबहूणं इंदाण य खंधाण य जहा मल्लिनाए जाव उवायमाणा २ विद्वत्ति, तएणं से णिज्जामए तओ सुहुत्तंतरस्स

मान्यताशतानि ' उर्वीयसाणा २ ' उपयाचमानाः २ पुनः पुनः कुर्वाणाः—तत्-
त्प्रसादनार्थमनेकविधां प्रतिज्ञां कुर्वन्तस्तिष्ठन्ति, ततः खलु स निर्यामकः ततो-
मुहूर्तान्तरात्=मुहूर्तानन्तरं लब्धमतिकः लब्धश्रुतिकः, लब्धसङ्गः, अमूढदिग्भागः
सर्वथा समुपलब्धसंज्ञ इत्यर्थः जातश्चाप्यासीत् । ततः खलु स निर्यामकस्तान् बहून्

चिह्नंति तएणं से णिज्जामए तओ मुहुत्तंतरस्स लद्धमइए ३ अमूढदि-
साभाए जाए यावि होत्था) इस तरह वे कुक्षिधार वगैरह उस निर्या-
मक के मुख से इस प्रकार के वचन सुनकर और उन्हें हृदय में अव-
धारण कर भीत, व्रस्त, व्रसित उद्विग्न एवं उत्पन्न भयवाले हो गये ।
उन्होंने उसी समय स्नान एवं वायसादि पक्षियों को अन्नादि देने रूप
बलिकर्म करके अपने २ हाथों की अंजलि बनाई और उसे मस्तक पर
रखकर अनेक इन्द्रों की स्कन्दों की, अनेक रुद्रादिक देवताओं की अनेक
देवियों की जैसा कि मल्लिनामक अध्ययन में कहा है—सैकड़ों तरह की
बार २ मग्नौती की, उनके प्रसाद के लिये अनेक प्रकार की प्रतिज्ञाएँ
की । इस के बाद उस निर्यामक की मति ठिकाने आ गई । वह दिशाओं
के ज्ञान करने में रासर्था बन गया । मार्ग का ज्ञान उसे ही गया । तथा
यह पूर्व दिशा है यह पश्चिम दिशा है इत्यादि रूप से उसे दिशाओं
के विभाग का भी ज्ञान हो गया । (तएणं से णिज्जामए ते बहवे
कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! लद्धमइए

लद्धमइए ३ अमूढदिसाभाए जाए यावि होत्था)

ते कुक्षिधार वगेरे दोडोअे निर्यामकना सुणथी आ प्रभाएे वयने।
सांलणीने अने तेमने हृदयमां धारणु करीने भीत, व्रस्त, उद्विग्न अने
उत्पन्न लयवाणा थर्छं गया. तेओअे तत्काण स्नान तेमज्ज कागडा वगेरे पक्षी-
ओने अन्नलाग वगेरे आपीने णलिकभं कथुं अने त्यारपथी तेओअे पोताना
हाथोनी अण्जलि भनावी अने तेने मस्तके मूडीने धणु धन्द्रेनी, धणु इद्र
वगेरे देवताओनी धणु देवीओनी—मह्वी नामक अध्ययनमां ने प्रभाएे वयनं
करवामां आवेतुं छे ते प्रभाएे सेकडो नतनी वारवार मानताओे सानी,
तेमने प्रसाद अदाववानी अनेक नतनी प्रतिज्ञाओे करी. त्यारपथी ते निर्या-
मकनी विवेक शक्ति नअत थर्छं गछ. तेने दिशाओेतुं ज्ञान थवा लाणु.
मार्गतुं ज्ञान तेने थर्छं गथुं तेमज्ज आ पूर्व दिशा छे, आ पश्चिम दिशा
छे, वगेरे इपथी पणु तेने दिशाओेना विलागेेतुं ज्ञान थर्छं गथुं.

(तएणं से णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी एवं खलु
अहं देवाणुप्पिया ! लद्धमइए जाव अमूढदिसाभाए जाए—अग्घेणं देवाणुप्पिया !

पाराश्व ४ एवमवादीत्-एवं खलु अहं हे देवानुप्रियाः ! अयुना लब्धमतिको
 अमूढदिग्भागो जातोऽस्मि-वयं खलु हे देवानुप्रियाः ! ' कालियदीव-
 कालिकद्वीपान्ते=कालिकद्वीपसमीपे खलु 'संवूढा' संप्रसादाः,
 अग्रे वर्त्तमानोऽयं खलु कालिकद्वीपः 'आलोक्य' आलोक्यते=दृश्यते । ततः
 ते कुक्षिधाराश्च ५ सर्वे तस्य निर्यामकस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा हृष्टतुष्टाः
 अणानुकूलेन=पृष्टप्रदेशागमनशीलत्वात्सानुकूलेन वातेन यत्रैव कालिकद्वीपस्त-
 यागच्छन्ति, उपागत्य पोतवहनं लंबेति=लम्बयन्ति=श्रुत्वा खलाभिर्वधन्ति स्थिरी-
 न्ते=इत्यर्थः, लम्बयित्वा ' एगद्वियार्हि ' एकार्थिकायिः-एकः=समानः प्र-

॥ अमूढदिसाभाए जाए-अम्हेणं देवानुप्रिया ! कालियदीवतेणं
 दा, एसणं कालियदीवे आलोक्य, तएणं ते कुच्छिधारा ४ य तस्स
 जामगस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा हट्टतुट्टा पायक्खिण्णाणुकूलेणं वाएणं
 (व कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति) इस के बाद उस निर्यामक ने
 अनेक कुक्षिधार आदिकों से ऐसा कहा हे देवानुप्रियों ! मैं लब्धम-
 गाला हो गया हूँ मेरी बुद्धि ठिकाने आ गई है। यावत् अब मैं पूर्वादि-
 गाओं का विभाग कर सकता हूँ। इस समय हमलोग कालिक द्वीप
 पास आ गये हैं। देखो यह सामने कालिक द्वीप ही दिखलाई दे
 है। इस तरह उस निर्यामक के मुख से सुनकर वे सब कुच्छिधार
 दि बड़े प्रसन्न हुए, उन्हें बड़ा अधिक संतोष हुआ। इसी समय
 कुल बायु ने उन सब को जहाँ वह कालिक द्वीप था वहाँ पहुँचा
 गा) (उवागच्छन्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता एगद्वियार्हि कालिय-
 लियदीवं तेणं संवूढा, एसणं कालियदीवे आलोक्य, तएणं ते कुच्छिधारा ४
 इस्स णिज्जामगस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा हट्ट तुट्टा पायक्खिण्णाणुकूलेणं वाएणं
 (व कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति)

त्यारणाः ते निर्यामके ते घृणा कुक्षिधार वगेरे लोडोने आ प्रभाणे कहुं
 हे देवानुप्रिया ! मारी बुद्धि शक्ति इरी न्यत थर्ध गध छे. मारी बुद्धि
 वस्थित थर्ध गध छे. यावत् हवे हुं पूर्व वगेरे दिशाओतुं विलाज्ज पञ्च
 मल्ल शर्धे छुं. अत्यारे अमे कालिक द्वीपनी पास आवां गया छीओ. ओओ
 ॥ सासे कालिक द्वीपए देभाए रहो छे. आ प्रभाणे ते निर्यामकेना सुभथी
 (लणीने ते अथा कुक्षिधार वगेरे लोडो पूण ए प्रसन्न थया, तेओने पूण
 (तोष थयो. ओ ए वपते अतुट्टण पवने तेओने न्यां शक्तिद्वीप हतो
 गां पडोयाडी दीधा.

(उवागच्छन्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता एगद्वियार्हि कालियदीवं उच-

हणतुल्यः अर्थः=प्रयोजनं यासां तास्तथा, तामिः=सहायिकाभिल्लुचुनौकाभिः कालिकद्वीपम् उत्तरन्ति स्म । तत्र खलु ते बहून् हिरण्याकरान्=रजताकरान् सुवर्णाकरांश्च, रत्नाकरांश्च, वज्राकरान्=वज्राख्यरत्नखनीरित्यर्थः, तथा बहून् तत्राश्वांश्च पश्यन्ति, किं ते=किम्भूतास्ते ? इत्याह—‘ हरिरेणुसोणिसुत्तगा ’ हरिद्रेणुसोणिसूत्रकाः=हरिद्वर्णधूलिकृतकटिसूत्राः ‘ आहणवेढा ’ आकीर्णवेष्टः=वर्णनग्रन्थो—अत्र वाच्यः—‘ हरिरेणुसोणिसुत्तगा ’ इत्यादिरूपं वर्णनं सर्वमत्र कथनीयमित्यर्थः । ततः खलु तेऽश्वास्तान् पश्यन्ति, दृष्ट्वा तेषां गन्धम् ‘ अग्रायन्ति ’ आजिघ्नन्ति, आघ्राय भीताः=भयं प्राप्ताः, त्रस्ताः=त्रासं प्राप्ताः त्रसिताः=विशेष-

दीवं उत्तरन्ति, तत्स्थणं ते बहवे हिरण्णागरे य सुव्रण्णागरे य रयणागरे य बहुरागरे य बहवे तत्थ आसे पासन्ति, किं ते ? हरिरेणुसोणिसुत्तगा-आहणवेढा, तएणं ते आसा ते वाणियए पासन्ति पासित्ता तेसि गंधं अग्रायन्ति, अग्रायित्ता भीया तत्था उन्विग्गा उन्विग्गमणा तओ अणेगाइं जोयणाइं उवमन्ति) बहानं पहुँच कर उन्होने लंगर डालदिया । अर्थात् जहाज को साँकलों से बांधकर वहाँ स्थिर कर दिया । बाद में वे एकाधिक-समान प्रयोजन साधक-छोटी २ नौकाओं से उस कालिक द्वीप में उतरे । वहाँ पर उन्होंने अनेक हिरण्य की खानों को सुवर्ण की खानों को, रत्न की खानों को, हीरे की खानोंको तथा अनेक घोड़ों को देखा । उन पर कटिसूत्र हरिद्वर्ण वाली धूलि से रचा गया था । ये सब जात्यश्व थे । उन जात्यश्वों ने उन पौनवणिकों को देखा । उनकी गंध को उन्होंने सूँघा । सूँघ कर वे सब के सब भयभीत हो गये । त्रस्त हो

रन्ति, तत्स्थणं ते बहवे हिरण्णागरे य सुव्रण्णागरे य रयणागरे य बहुरागरे य बहवे तत्थ आसे पासन्ति, किं ते ? हरिरेणुसोणिसुत्तगा आहणवेढा, तएणं ते आसा ते वाणियए पासन्ति, पासित्ता तेसि गंधं अग्रायन्ति, अग्रायित्ता भीया तत्था उन्विग्गा उन्विग्गमणा तओ अणेगाइं जोयणाइं उवमन्ति)

त्यां पडोन्धीने तेमल्ले लंगर नाभ्युं. अेटले के वडाएने सांङणे वडे भांधीने त्यां छिळुं राभ्युं. त्यारपछी तेओ अेकार्थिके नानी नानी नौकाओ वडे ते कार्थिके द्वीपमां उतर्यां त्यां तेमल्ले घण्णी डिंरुयनीं भाएणे, सुवर्णुंनीं भाएणे तेमञ्च घण्णा घोडाओने जेया. घोडाओ उपर कटिसूत्र लीला रंगनी भाटी वडे अनाववाभां आभ्युं उटुं. आ अथा नत्यश्वो उता. ते नत्याश्वो जे ते पोतवाछिङ्काने जेया. तेमल्ले तेमनी गंधने सूंधी. सूंधीने तेओ गथा लय-लीत थर्ध गथा. त्रस्त थर्ध गथा. विशेषरूपथी तेमना अित्तमां लयतुं संअरुषु

तस्मात् प्राप्ताः, उद्विग्नाः=उद्वेगं प्राप्ताः उद्विग्नमनसः=व्याकुलमानसः सन्तः ततः= तस्मात्स्थानात् अनेकानि योजनानि=अनेकयोजनदूरम्, 'उत्तमंति' उद्भ्रा-
म्यन्ति=पलायन्ते स्म । ते=अथाः खलु तत्र वने 'पउरगोयरा' प्रचुरगोचराः-
प्रचुरः=बहुलः गोचरः=संचरणभूमिभागो येषां ते तथा, स तु तृणजलरहितोऽपि
भवतीत्याह-'पउरतणपाणिया' प्रचुरतृणपानीयाः-प्रचुराणि=प्रभूतानि तृणानि
पानीयानि च येषु ते तथा, निर्भयाः=श्वापदादिभयरहिताः, अतएव 'निरुव्विग्गा'
निरुद्विग्नाः=मनः क्षोभरहिताः सन्तः सुखं सुखेन विहरन्ति ॥ सू० १ ॥

पूलम्-तएणं ते संजत्तानावावाणियगा अणमणं एवं
वयासी-किणं अरुहं देवाणुप्पिया ! आसेहिं ?, इमे णं वहवे
हिरण्णागरा य सुवण्णागरा य रयणागरा य वड्ढागरा य तं
सेयं खलु अरुहं हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वड्ढस्स
य पोयवहणं भरित्तए त्तिकट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्टुं पडिसुणेंति
पडिसुणित्ता हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वड्ढस्स य
तणस्स य अण्णस्स य कट्टुस्स य पाणियस्स य पोयवहणं भरेति

गये । विशेषरूप से उनके चित्त में भय का संचार हो गया । उनका
मन उद्विग्न हो गया । इस तरह होकर वे सब वहाँ से अनेक योजन
दूर तक वन में भाग गये । (तणं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया
निवभया, निरुव्विग्गा सुहं सुहेणं विहरंति) वहाँ वन में उनको विचरण
करने के लिये बहुत अधिक विस्तृत भूमिभाग था तृण जल की वहाँ
सर्व प्रकार से प्रचुरता थी । अतः वे उस वन में श्वापद आदि के भय
से निर्मुक्त होकर विना किसी मनः क्षोभ के आनन्द के साथ विचरण
करने लगे ॥ सूत्र १ ॥

थयं गयुं, तेमनुं मन उद्विग्न थयं गयुं, आ प्रभाणुं तेओ भधा त्यांथी धणु
योअनो इर सुधी वनमां नासी गया. (तणं तत्थ पउरगोयरा पउरतण-
पाणिया निवभया, निरुव्विग्गा सुहं सुहेणं विहरंति) त्यां वनमां विथरथुं करवा
भाटे अहुं व विस्तृत भूमिभाग छतो. धास, पाणीनी त्यां भधी दीते सरस
सगवड छनी. अटला भाटे तेओ वनमां डिंसकं प्राणीओना लयथी मुद्धत थयने
होअरहित थयने सुभेथी विथरथुं करवा लाग्या. ॥ सूत्र १ ॥

भरित्ता पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता पोयवहणं लंवेति लम्बित्ता सगडी-सागडं सज्जेति सज्जित्ता तं हिरण्णं जाव वडरं च एगट्टियाहिं पोयवणाओ संचारेति संचारित्ता सगडीसागडं भरेति भरित्ता संजोइति संजोइत्ता जेणेव हत्थिसीसए नयरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स बहिया अग्गुज्जाणे सत्थाणिवेसं करेति करित्ता सगडीसागडं मोएति मोइत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हंति गेण्हित्ता हत्थि सीसं नगरं अणुपविसंति अणुपविसित्ता जेणेव कणगकेऊराया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव उववेति ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ तएणं ते संजत्ता ’ इत्यादि । ततः खलु ते संयात्रानौकावाणि-जका अन्योन्यमेवमनादिषुः—किं खलु अस्माकं हे देवानुप्पियाः ! अथैः—इमे खलु बहवो हिरण्यकाराश्च, सुवर्णकाराश्च, रत्नाकाराश्च वज्राकाराश्च सन्ति, तत् श्रेयः खलु अस्माकं हिरण्यस्य च सुवर्णस्य च रत्नस्य च वज्रस्य च पोतवहनं भर्तुम् इति

‘ तएणं ते संजत्ता नावा वाणियगा ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते संजत्ता नावावाणियगा) उन सांघा-त्रिक नौका वाणिक जनों ने (अणमण्णं एवं वयासी) परस्पर में इस प्रकार से विचार किया—(क्किण्णं अम्हं देवाणुप्पिया । आसेहिं ? इमेणं बहवे हिरण्णागरा य सुवण्णागरा य रयणागरा य वहरागरा य तं सेयं खलु अम्हं हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वडरस्स य पोयवहणं

तएणं ते संजत्ता नावा वाणियगा, इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्यारपथी (ते संजत्ता नावा वाणियगा) 'ते सांघात्रिक नौका वल्लिकणोअे (अणमण्णं एवं वयासी) अेक भीष्मनी साथे आ प्रभावे विचार कथे के—

(क्किण्णं अम्हं देवाणुप्पिया । आसेहिं ? इमेणं बहवे हिरण्णागरा य सुव-ण्णागरा य रयणागरा य वहरागरा य तं सेयं खलु अम्हं हिरण्णस्स य सुवण्णस्स

कृत्वा=इति त्रिवार्य अन्योन्यस्य एतमर्थं प्रतिभृण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुस्य हिर-
ण्यस्य च सुवर्णस्य च रत्नस्य च वज्रस्य च तृणस्य च अन्नस्य च काष्ठस्य च पानी-
यस्य च पोतवहनं भरन्ति, भृत्वा प्रदक्षिणानुकूलेन=पृष्ठतः समागच्छताऽनुकूलेन
वातेन यत्रैव ' गंभीरपोयपट्टणे ' गंभीरपोतपत्तनं=पोतावतरणस्थानं वर्त्तते तत्रै-
वोपागच्छन्ति, उपागत्य पोतवहनं ' लंबेति ' लम्बयन्ति=शृङ्खलापातादिना स्थाप-
यन्ति, लम्बयित्वा=स्थापयित्वा शकटीशाकटं सज्जयन्ति, मज्जयित्वा ' तं ' तद्
हिरण्यं यावद् वज्रं च ' एगट्टियाहिं ' एकार्थिकाभिः=लघुनौकाभिः पोतवहन्नात्
' संचारेति ' संचारयन्ति=हिरण्यादिकमवतारयन्ति, संचार्य,=अवतार्य तैः शकटी-

भरित्ता ए त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेति पडिसु० हिरण्यस्स
रयणस्स य वइरस्स य तणस्स य अण्णस्स य कट्टस्स य पाणियस्स पोय-
वहणं भरेति) हे देवानुप्रियो ! हमें इन अश्वों से क्या तात्पर्य है। ये
जो हिरण्य की खानें हैं, सुवर्ण की खानें हैं, रत्न की खानें हैं वज्र की
खानें हैं उनमें से हिरण्य, सुवर्ण, रत्न एवं वज्रों को लेकर पोत भर
लेने में आनंद है इस प्रकार विचार कर उन्होंने एक दूसरेकी इस वान
को मान लिया। मान करके फिर उन्होंने हिरण्य को सुवर्ण को रत्न
को वज्र को अनाज को काष्ठ लकड़ी-और पानीको जहाज में
भर लिया। (भरित्ता पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीर पोयपट्ट-
णे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता,
सगडीसागडं सज्जेति सज्जित्ता तं हिरण्यं जाव वइरं च एगट्टियाहिं

य रयणस्स य वइरस्स य पोयवहणं भरित्ता ए त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडि-
सुणेति पडिसु० हिरण्यस्स रयणस्स य वइरस्स य तणस्स य अण्णस्स य कट्टस्स
य पाणियस्स पोयवहणं भरेति)

हे देवानुप्रियो ! आ घोडाओधी अभावे शी निरुगत छे ? आओ डि-
र-
इयनी भाओ छे, सुवर्णधी भाओ छे, रत्ननी भाओ छे, वज्रनी भाओ छे,
ते ओभांधी डिरेइय, सुवर्ण, रत्नो, अने वज्रोने लधने वहाओने भरी देवा-
मां न आनंद छे. आ प्रभाओ विचार करीने तेमओ ओक जीवनी वातने
स्वीकारी लीधी. स्वीकारीने तेमओ डिरेइय, सुवर्ण, रत्नो, वज्रो, तृण, अनाज,
काष्ठ-लाकडांओ, अने पाणीने वहाओमां भरी लीधां.

(भरित्ता पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीर पोयपट्टणे तेणेव उवाग-
च्छन्ति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता, सगडीसागडं सज्जेति मज्जित्ता
तं हिरण्यं जाव वइरं च एगट्टियाहिं पोयवहणाओ संचारेति, संचारित्ता सगडी

शाकटं भरन्ति, भृत्वा शकटीशाकटं संयोजयन्ति संयोज्य यत्रैव हस्तिशीर्षकं नगरं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य हस्तिशीर्षकस्य नगरस्य वहिः ' अग्गुज्जाणे ' अद्योद्याने-आगन्तुकनिवासोद्याने सार्थन्निवेशं कुर्वन्ति, कृत्वा शकटीशाकटं मोचयन्ति, मोचयित्वा, महार्थं यावत् प्राभृतं शृलन्ति, शृहीत्वा हस्तिशीर्षं नगरमनु-

पोयवहणाभो संचारंति, संचारित्ता सगडीसागडं भरंति, भरित्ता संजो-
इति, संजोइत्ता जेणेव हत्थिसीसए णयरे तेणेव उवागच्छन्ति) भरकर
के फिर वे लोग अपने पृष्ठ भाग से होकर आनेवाली अनुकूल वायु
की सहायना से जहाँ पोत के ठहरने का स्थान बंदरगाह-था वहाँ आ-
ये। वहाँ आकर के उन्होंने अपने पोत को लंगर डालकर ठहरा दिया।
पोत ठहरा करके फिर उन्होंने शकटी-गाड़ी और शकटों-गाड़ों को
सज्जित किया-रस्सी आदि बांध कर उन्हें तैयार किया। जब वे अच्छी
तरह सुसज्जित हो चुके-तब बाद में उन लोगों ने छोटी २ नौकाओं
से उस पोत-नाव पर रक्खे हुए हिरण्य आदि वज्र पर्यंत के समस्त
सामान को उतार लिया और उतार कर उन शकटी-गाड़ी शकटों-
गाड़ों में उसे भर दिया। भरने के बाद फिर उन्होंने उन शकटी शाक-
टों को जोत दिया-जोतकर फिर वे जहाँ हस्तिशीर्ष नगर था वहाँ आये
(उवागच्छित्ता हत्थिसीनयस्स नयरस्स वहिया अग्गुज्जाणे सत्थणि-
वेसं करंति, करित्ता सगडी सागडं मोपंति, मोइत्ता महत्थं जाव पाहुडं
गेण्हंति, गेण्हित्ता हत्थिसीसं नगरं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता जेणेव
सागडं, भरंति, भरित्ता संजोइति, संजोइत्ता जेणेव हत्थिसीसए णयरे तेणेव
उवागच्छइ)

लरीने तेओ षधा पोतानी पीठ तरइथी वडेटा अनुकूण पवननी सडा-
यताथी न्यां वडाणु णु' राभवानु स्थान-भंहर डंतु त्यां आन्या. त्यां आवीने
तेमळे पोताना वडाणुने लंगर नाभीने लांगणु'. वडाणुने लांगरी तेमळे
शकटी-गाडी, अने शकटी-गा. िओने सुसन्न कथां. दोरी वजेरेथी भांधीने
तेमने तैयार कथां. न्यारे ते सारी रीते सुसन्न थछ गथां त्यारे ते डोकळे
नानी नानी नौकाओथी ते वडाणुमां भूकेवा छिरण्यथी मांडीने वण सुधीना
षधा सामानने उतारी बीषा, अने उतारीने ते शकटी-गाडी अने शकटी-
गाडाओमां लरी दीषा. लयां पछी तेमळे ते शकटी-गाडी अने शकटी-गाडां-
ओने नेतथां अने नेतरीने तेओ न्यां हस्तिशीर्ष नगर डंतु त्यां गथा.

(उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स वहिया अग्गुज्जाणे सत्थणिवेसं
करंति, करित्ता सगडीसागडं मोपंति, मोइत्ता महत्थं जाव पहुडं गेण्हंति गेण्हित्ता

प्रविशन्ति, अनुप्रविश्य यत्रैव कनककेतु राजा तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य यावत्
तत्प्राभृतम् ' उवर्णति ' उपनयन्ति भूपसमीपे स्थापयन्ति ॥ सू० २ ॥

मूळम्—तएणं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्ताणावावाणि-
यगाणं तं महत्थं जाव पडिच्छइ पडिच्छित्ता तं संजत्ताणावा-
वाणियगा एवं वयासी तुब्भेणं देवाणुप्पियां ! गामागार जाव
अहिंडह लवणसमुदं च अभिक्खणं२ पोयवहणेणं ओगाहह
तं अत्थि आईं केइ भे कहिंचि अच्छेरए दिट्ठुपुव्वे ?, तएणं ते
संजत्ताणावावाणियगा कणगकेऊं एवं वयासी—एवं खल्लु अम्हे
देवाणुप्पिया ! इहेव हत्थिसीसे नयरे परिवसामो तं चेव जाव
कालियदीवं तेणं संबूढा, तत्थ णं बह्वे हिरण्णागरा य जाव

कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव उवर्णति) वहाँ
आकर के वे लोग उस हस्तिशीर्ष नगर के बाहर के प्रधान उद्यान में
ठहर गये वहाँ ठहर उन्हीं ने वहाँ पर शकटी—गाड़ी शाकटो—गाड़ों की
ढील—ठहरा दिया। ढीलकर के बाद में महार्थ—महाप्रयोजन साधक भूत
—यावत् प्राभृत भेंट को उन्हीं ने अपने २ हाथों में लिया—और लेकर के
वे हस्तिशीर्ष नगर में प्रविष्ट हुए नगर में प्रविष्ट होकर वे जहाँ कनक
केतु राजा थे वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्हीं ने उस महाप्रयोजन साधक
भूत प्राभृत को राजा के पास रख दिया ॥ सू० २ ॥

हत्थिसीसं नगरं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता, जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवा
गच्छइ, उवागच्छित्ता जाव उवर्णति)

त्यां आवीने तेज्जा अधा ते हस्तिशीर्ष नगरनी अडाइरना भुञ्जं उवा-
नमां शैकाध गया, त्यां शैकाधने तेमब्बे त्यां ७ शकटी—गाडी अने शाकटो—
गाडांअने छोडी भूइयां. त्यारआइ तेमब्बे महार्थ—महाप्रयोजन साधक भूत
यावत् बेटने पोतपोताना डाथोमां दीधी अने लधने तेज्जा हस्तिशीर्ष नग-
रमां प्रविष्ट थया. नगरमां प्रविष्ट थधने तेज्जा न्यां इनककेतु राजा इतो त्यां
पडोअ्या. त्यां पडोअ्याने तेमब्बे ते महार्थ—महाप्रयोजन साधक इप बेटने राजनी
सामे भूइी दीधी. ॥ सूत्र २ ॥

बहवे तत्थ आसा किं ते ?, हरिरेणु जाव अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति, तएणं सामी अम्हेहिं कालियदीवे ते आसा अच्छे-
 रए दिट्टपुब्बे, तएणं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्तगाणं
 अंतिए एयमट्टं सोच्चा ते संजत्तए एवं वयासी-गच्छहणं तुब्भे
 देवाणुप्पिया मम कोडुंबियपुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते
 आसे आणेह, तएणं ते संजत्ताणावावाणियगा कणगकेऊं रायं
 एवं वयासी-एवं सामि त्तिकट्टु आणाए पडिसुणेति,
 तएणं कणगकेऊं राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता
 एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! संजत्तिएहिं सद्धिं
 कालियदीवाओ मम आसे आणेह, ते वि पडिसुणेति, तएणं
 ते कोडुंबिय० सगडीसागडं सज्जेति सज्जित्ता तत्थ णं बहूणं
 वीणाण य वल्लकीण य भामरीण य कच्छभीण य भंभाण य
 छब्भामरीण य वित्तवीणाण य अन्नेसिं च बहूणं सोतिंदिय-
 पाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति भरित्ता बहूणं किण्हाण
 य जाव सुक्किलाणं य कट्टुकम्माण य ४ गंथिमाण य ४ जाव
 संघाइमाण य अन्नेसिं च बहूणं चर्किखदियपाउग्गाणं दव्वाणं
 सगडीसागडं भरेति बहूणं कोट्टपुडाण य केयईपुडाण य जाव
 अन्नेसिं च बहूणं घाणिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं
 भरेति बहुस्स खंडस्स य गुलस्स य सक्कराए य मच्छंडियाए
 य पुप्फुत्तर पउमुत्तराण य अन्नेसिं च जिडिंभदियपाउग्गाणं
 दव्वाणं सगडीसागडं भरेति । बहूणं कोयवियाण य कंबलाण

य पावरणाण य नवतयाण य मलयाण य मसूराण य सिला-
वट्टाण य जाव हंसगब्भाण य अन्नेसिं च फासिंदिय पाउग्गाणं
दव्वाणं सगडीसागडं भरेति भरित्ता सगडीसागडं जोएंति
जोइत्ता जेणेव गंभीरए पोयट्टाणे तेणेव उवागच्छंति उवागं-
च्छित्ता सगडीसागडं मोएंति मोइत्ता पोयवहणं सज्जेति सज्जित्ता
तेसिं उक्किट्टाणं सहफरिसरसरूवगंधाणं कट्टस्स य तणस्स य
पाणियस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोरसस्स य जाव अन्नेसिं
च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं पोयवहणं भरेति भरित्ता दक्खि-
णाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छित्ता पोयवहणं लंबेति लंबित्ता ताइं उक्किट्टाइं सहफरिसरस-
रूवगंधाइं एगट्टियाहिं कालियदीवे उत्तरेति । जहिं २ च णं
ते आसा आसायंति वा सयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्ठंति वा
तहिं २ च णं ते कोडुंबियपुरिसा ताओ व्रीणाओ य जाव वित्त-
वीणाओ य अन्नाणि य बहूणि सोइंदियपाउग्गाणि य दव्वाणि
समुदीरेमाणा चिट्ठंति तेसिं परिपरंतेणं पासए ठवेति ठवित्ता
णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति, जत्थ २ ते आसा आसयंति
वा जाव तुयट्ठंति वा तत्थ तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा बहूणि
किण्हाणि य ५ कट्टकम्माणि य जाव संघाइमाणि य अन्नाणि
य बहूणि चक्खिंदियपाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेति तेसिं परि-
पेरंतेणं पासए ठवेति ठवित्ता णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया
चिट्ठंति जत्थ २ ते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं तेसिं बहूणं

कोट्टुपुडाण य जाव अन्नेसि च बहूणं घाणिदियपाउग्गाणं
दव्वाणं पुंजे य णियरे य करेति करित्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव
चिट्ठंति जत्थ २ णं ते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं गुलस्स
जाव अन्नेसिं च बहूणं जिब्भियपाउग्गायं दव्वाणं पुंजे य
निकरे य करेति करित्ता वियरए खणंति खणित्ता गुलपाणगस्स
खंडपाणगस्स जाव अन्नेसिं च बहूणं पाणगाणं वियरे भरेति
भरित्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेति जाव चिट्ठंति, जहिं २
च णं ते आसा आस० तहिं २ च णं ते बहवे कौयविया य
जाव हंसगन्भा य अण्णाणि य बहूणि फासिंदिय पाउग्गाइं
अत्थुयपच्चत्थुयाइं ठवेति ठवित्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव चिट्ठंति,
तएणं ते आसा जेणेव एते उक्किट्ठा सदफरिसरसरूवगंधा तेणेव
उवागच्छंति उवागच्छित्ता तत्थणं अत्थेगइया आसा अपुव्वा
णं इमे सदफरिसरसरूवगंधा इतिकट्टु तेसु उक्किट्ठेसु सदफरिस-
रसरूवगंधेसु अमुच्छिया ४ तेसिं उक्किट्ठाणं सद जाव गंधाणं
दूरंदूरेणं अवक्कमंति, तेणं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया
णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहंसुहेणंविहरंति, एवामेव समणाउसो!
जो अम्महं णिगंथो वा णिगंथी वा जाव सदफरिसरसरूवगंधेसु
णो सज्जइ णो रज्जइ णो गिज्जइ, णो मुज्जइ णो अज्जोववज्जेइ
से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिजे जाव वीइ-
वइस्सइ ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स कनककेतु राजा तेषां संयात्र-
नौकावाणिजकानां तन्महार्थं यावत् प्राप्तं ‘ पडिच्छइ ’ प्रतीच्छति=स्वीकरोति
प्रतीष्य तान् संयात्रनौकावाणिजकान् एवमवादीत्-यूयं खलु हे देवानुप्रियाः !
‘ गामागर जाव अहिंडह ’ ग्रामाकर यावत् - ग्रामाकरनगरादिषु आहिण्डथ=
गच्छत, लवणसमुद्रं च अभीक्ष्णं २ पोतवहनेन अवगाहध्वे ‘ तं ’ तत्=तर्हि
अस्मि ‘ आइं ’ इतिवाक्यालङ्कारे किमपि ‘ भे ’ युष्माभिः ‘ कर्हिचि ’ कुत्रचिद्
‘ अच्छेए ’ आश्चर्यकर्म=आश्चर्यजनकवस्तु ‘ दिट्टपुव्वे ’ दृष्टपूर्वम् ? यदि दृष्टमस्ति
तर्हि कथयतेतिभावः । ततः खलु ते संयात्रनौकावाणिजकाः कनककेतुमेवमव-

-:तएणं से कणगकेऊ राया इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कणगकेऊ राया) उस कनककेतु राजा
ने (तेसिं संजत्ता णावा वाणियगाणं तं महत्थं जाव पडिच्छइ, पडि-
च्छित्ता-ते संजत्ता णावा वाणियगा एवं वयासी-तुम्भेणं देवाणुप्पिया ।
गामागर जाव अहिंडह लवणसमुद्रं च अभिक्खणं २ पोयवहणेणं
ओगाहह तं अत्थिआइं केइं भे कर्हिचि अच्छेए दिट्टपुव्वे ?) उन
सांघात्रिक पोतवणिक जनो की उस महार्थसाधक भेंट को स्वीकार कर
लिया और स्वीकार करके फिर उन सांघात्रिक पोतवणिक जनो से इस
प्रकार कहा हे देवानुप्रियो तुमलोग अनेक ग्राम आकर नगर आदि
स्थानो में जाते रहते हो और बार २ पोतवहन द्वारा लवणसमुद्र में
अवगाहन करते रहते हो तो कहो कहीं पर तुम ने यदि कोई आश्चर्य
कारी वस्तु देखी हो तो कहो—(तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा कण-

तएणं से कणगकेऊ राया इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्यारपछी (से कणगकेऊ राया) ते कनककेतु राजा

(तेसिं संजत्ता णावा वाणियगाणं तं महत्थं जाव पडिच्छइ, पडिच्छित्ता-
ते संजत्ता णावा वाणियगा एवं वयासी-तुम्भेणं देवाणुप्पिया । गामागर जाव
अहिंडह लवणसमुद्रं च अभिक्खणं २ पोयवहणेणं ओगाहह तं अत्थि आइं केइं
भे कर्हिचि अच्छेए दिट्टपुव्वे ?)

ते सांघात्रिक पोतवखिक्खनेनी ते महार्थ साधक भेंटने स्वीकारी लीधी,
अने स्वीकारीने ते सांघात्रिक पोतवखिक्खनेनी आ प्रभावे कछुं के डे देवापु-
प्रिया । तभे दोडे धणुं गाम, आकर, नगर वगेरे स्थानोमां आपण करता
रडे छे । अने वडावु वडे लवणु समुद्रनी वारवार यात्रा करता रडे छे । ते
अभने कडे के तभे केअं नवार पभाडे तेवी अद्रुत वस्तु ओध छे ?

दन्-एवं खलु वयं हे देवानुप्रियाः । इहैव हस्तिशीर्षे नगरे परिवसामः, 'तंचेव' तदेव पूर्वोक्तवर्णनं सर्वमत्र वाच्यम् 'जाव' यावत् कालिकद्वीपान्ते=कालिक-द्वीपसमीपे खलु 'संवूढा' संव्यूढाः-प्राप्ताः, तत्र खलु बहवो हिरण्णाकराश्च यावद् बहवस्तत्राश्वाः सन्ति, किंते' किम्भूतास्ते ? इत्याह-'हरिरेणु जाव' हरिद्रेणु शोषि-सूत्रकाः यावद्-तेऽस्मद्गन्धमाघ्राय भीताः सन्तः अनेकानि योजनानि दूरम् 'उबम-मंति' उद्भ्रमन्ति पलायन्ते स्म, ततः खलु हे स्वामिन् ! अस्माभिः " कालिक-द्वीपे तेऽश्वाः सन्ति " तदेव 'अच्छेरए' आश्चर्यकं दृष्टपूर्वमिति । ततः खलु स

गकेऊं एवं वयासी एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया ! इहेव हत्थिसीसे नगरे वसामो तं चेव जाव कालियदीवं तेणं संवूढा तत्थ णं बहवे हिरण्णागरा य जाव बहवे तत्थ आसा किंते ? हरिणेणु जाव अणेगाइं जोयणाइं उबम-मंति-तएणं सामी अम्हे हि कालियदीवे ते आसा अच्छेरए दिट्ठपुव्वे) इस प्रकार राजा की बात सुनकर उन सांघात्रिक पोतवणिगजनों ने उन कनककेतु राजा से कहा हे देवानुप्रिय ! हमलोग इसी हस्तिशीर्ष नगर में रहते हैं। हमलोग यहाँ से लवणसमुद्र में होकर व्यापार के निमित्त बाहर परदेश गये हुए थे-। मार्ग में हमलोगों को अनेक प्रकार के सैकड़ों उपद्रव हुए-उनसे जिस किसी तरह सुरक्षित हो हमलोग कालिकद्वीप के समीप पहुँच गये। वहाँ हमने अनेक हिरण्य आदि की खानों को एवं अनेक अश्वों को कि जिनका कटिभाग हरिद्वर्णवाली घृलि से रचित कटिसूत्रसे चिन्हित था देखा, वे हमलोगों की गंध को सूँघ-

(तएणं ते संजत्ता णारा वाणियगा कणगकेऊं एवं वयासी-एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया ! इहेव हत्थिसीसे नगरे वसामो तं चेव जाव, कालिअ दीवं तेणं संवूढा, तत्थ णं बहवे हिरण्णागरा य जाव बहवे तत्थ आसा किं ते ? हरि-रेणु जाव अणेगाइं जोयणाइं उबममंति-तएणं सामी अम्हेहि कालियदीवे ते आसा अच्छेरए दिट्ठपुव्वे)

आ प्रभाञ्जे राजनी वात सांलणीने ते सांघात्रिक पोतवणिकजनोअे ते कनककेतु राजने कलुं के डे डे देवानुप्रिय ! अये यथा आ हस्तिशीर्षे नगर मां न रडीअे छीअे अये यथा व्यापार जेऽवा माटे अर्द्धीथी लवण समुद्रमां धरिने अर्द्धार परदेशमां गया डता. रस्तामां धरिने लतना सेकडे उपद्रवो थया. छेवटे गमे तेम करीने सुरक्षित रूपमां अये यथा कालिकद्वीपनी पासो गया. त्यां अमोअे धरिने डिश्ये वजेरेनी आञ्जोने अने धरिने अश्वोने-के जेमना कटिभागो लीला रजनी माटीथी अनावेला कटिसूत्रथी चिन्हित डता-लोया. अमारी गंधने सूंधीने ते अश्वो तथांथी डेटलाक योजने डर सुधी

कनककेतु राजा तेषां 'संजत्तिगाणं' सांयात्रिकाणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा तान् सांयात्रिकान् एवमवदत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! मम कौडुम्बिक-पुरुषैः सार्द्धं कालिकद्वीपात्तानश्वानानयत । ततः खलु ते संयात्रानौकात्राणिकः कनककेतुं राजानमेवमवादिषुः हे स्वामिन् ! एवमस्तु 'त्ति कट्टु' इति कृत्वा= इत्युक्त्वा 'आणाए' आत्रायाः=आत्रामित्यर्थः,—'पडिसुणेंति' प्रतिश्रृण्वन्ति=

कर वहाँसे कट्टु योजन दूरतक जंगलमें भाग गये । अतः हे देवानुप्रिय "कालिकद्वीप में हमलोगों ने उन घोड़ों रूपी आश्चर्य को देखा है । (तएणं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्तगार्णं अंतिए एयमट्टं सोच्चा ते संजत्तए एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया ! मम कोडुंबिय पुरि-सेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा कणगकेऊं रायं एवं वयासी एवं सामित्ति कट्टु आणाए पडिसुणेंति, तएणं कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया । संजत्तिएहिं सद्धिं कालिय-दीवाओ मम आसे आणेह, ते वि पडिसुणेंति) इसके बाद कनक केतु राजा ने उन सांयात्रिक पोतवणिकुजनों के मुख से इस अर्थ को सुन-कर उन सांयात्रिकों से इस प्रकार कहा हे देवानुप्रियों ! तुमलोग जाओ और मेरे कौडुम्बिक पुरुषों के साथ कालिकद्वीप से उन अश्वों को लाओ । इस प्रकार सुनकर पोतवणिकु जनों ने कनक केतु राजा से ऐसा कहा

वनमां नासी गया. हे देवानुप्रिय ! अमेअे कालिक द्वीपमां ते अश्व इपी अट्टुत्त वस्तुने लेधं छे.

(तएणं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्तिगाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा ते संजत्तए एवं वयासी-गच्छहणं तुव्भे देवाणुप्पिया ! मम कोडुंबियपुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह, तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा कणग-केऊं रायं एवं वयासी एवं सामी त्ति कट्टु आणाए पडिसुणेंति, तएणं कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छहणं तुव्भे देवाणु-प्पिया । संजत्तिएहिं सद्धिं कालियदीवाओ मम आसे आणेह, ते वि पडिसुणेंति)

त्यारभाइ कनककेतु राजअे ते सांयात्रिक पोतवणिकुजनोंना सुअथी/आ वातने सांलणीने ते सांयात्रिकेने आ प्रभाळे कट्टु के हे देवानुप्रिये ! तमे दोडे मारा कौटुम्बिक पुरुषोनी साथे कालिक द्वीपमां लअे अने त्यांथी ते अश्वोने लावे। आ प्रभाळे कनककेतुनी आसा सांलणीने ते पोतवणिकुजनोंअे तेभने आ प्रभाळे कट्टु के हे स्वामी ! तमारी आसा अमारा भाटे प्रभाळु स्वइष छे. आभ कहीने तेभळे कनककेतु राजनी आसा स्वीकारी वीधी. त्यार

स्वीकुर्वन्ति । ततः खलु कनककेतु राजा कौटुम्बिकपुरातन शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! सांयात्रिकैः सार्द्धं कालिकद्वीपात् मह्यम् अश्वानानयत । तेऽपि=कौटुम्बिकपुराः 'पडिसुणोति' प्रतिश्रुण्वन्ति 'तथास्तु' इत्युक्त्वा राजाज्ञां स्वीकुर्वन्ति । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुराः शकटीशाकटं 'सज्जेति' सज्जयन्ति=कालिकद्वीपे गमनार्थं सज्जीकुर्वन्ति, सज्जयित्वा तत्र खलु शकटीशाकटे बहूनां च वल्लकीनां च, भ्रामरीणां च 'कच्छभीण य' कच्छभीनां च- 'कच्छभी' इति कच्छपाकारवीणाविशेषः, भंभानां=भेरीणां च, पद्भ्रामरीणां च,

हे-स्वामिन् । हमें आपकी आज्ञा प्रमाण है-ऐसा कहकर उन्होंने ने कनक केतु राजा की आज्ञा को स्वीकार कर लिया । इसके बाद कनक केतु राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया-और बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियों ! तुम सांयात्रिक पोतवणिकु जनों के साथ जाओ -और कालिकद्वीप से मेरे लिये घोड़ों को ले आओ । राजा की इस आज्ञा को उन लोगों ने भी स्वीकार कर लिया । (तएणं ते कोडुंबियपुरिसा सगडीसागडं सज्जेति, सज्जित्ता तत्थणं बहूणं वीणाण य वल्लकीण य भ्रामरीण य कच्छभीण य भंभाण य छ्वभामरीण य वित्तवीणाण य अन्नेसि च बहूणं सोइंदिय पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी सागडं भरेति, भरित्ता बहूणं किण्ढाणं य जाव संघाइमाण य अन्नेसि च बहूणं चक्खिदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति) इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषों ने गाड़ी और गाड़ों को सज्जित किया-सज्जित करके उनमें उन्होंने ने अनेक वीणाओं को, वल्लकियों को, भ्रामरियों को, कच्छप

भाद कनककेतु राजाये पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने गोदाव्या अने गोदापीने तेभने आ प्रमाणे कहुं के हे देवानुप्रियो । तमे सांयात्रिक पोतवणिकुभनेनी साथे जेयो अने कालिक द्वीपमाथी मारा भाटे घोडाओने लावे। शकनी आ आज्ञाने ते लोकओये पणु स्वीकारी लीधी।

(तएणं ते कोडुंबियपुरिसा सगडीसागडं सज्जेति, सज्जित्ता तत्थणं बहूणं वीणाण य वल्लकीण य भ्रामरीणय कच्छभीणय भंभाण य छ्वभामरीण य वित्तवीणाण य अन्नेसि च बहूणं सोइंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति, भरित्ता बहूणं किण्ढाणं य जाव संघाइमाण य अन्नेसि च बहूणं चक्खिदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति)

त्यारपछी ते कौटुम्बिक पुरुषोये गाडी अने गाडाओने जेतथी। जेत-रीने तेमां तेभणे धण्णी वीणुओयो, पल्लकीओयो भ्रामरीओयो, काय्थाना आकर

‘चित्तवीणाणय’ दृत्तवीणानां=गोलाकार वीणानां च-अन्येषां च बहूनां नानाविधानां
 ‘सोऽदियपाउग्गाणं’ श्रोत्रेन्द्रिय प्रायोग्याणां=कर्णेन्द्रियसुखजनकानां द्रव्याणां=
 तन्व्यादिरूपाणां शकटीशाकटं भरन्ति तैर्त्रीणादिभिरित्यर्थः, भृत्वा बहूनां ‘किष्ठा-
 णय जाव सुक्काणय’ कृष्णानां यावत्-नीलानां पीतानां रक्तानां शुक्लानां च
 कृष्णादिपञ्चवर्णयुक्तानां ‘कट्टकम्माण य’ काष्ठकर्मणां=काष्ठनिर्मितपुत्तलिकादी-
 नाम्, ‘पोत्थकम्माणय’ पुस्तुषु कर्मणां-पुस्तेषु=वल्हताडपत्रकर्मणांलादिषु कर्मणि=
 लेखनकर्मणि, तेषाम्, ‘चित्तकम्माण य’ चित्रकर्मणां=पट्टकादिषु चित्ररूपानां-
 णाम्, ‘लेप्पकम्माणय’ लेप्पकर्मणां=मृत्तिकासेटिकादिना वल्लयाद्याकाररचनां
 विशेषरूपाणाम्, तथा-‘ग्रन्थिमाण य’ ग्रन्थिमानां=कौशलातिशयेन ग्रन्थिसमु-
 दायनिष्पादितानाम्-यावत्-‘वेडिमाण य’ वेष्टिमानां=लतादि वेष्टनतो निष्पा-
 दितानाम्, ‘पूरिमाण य’ पूरिमाणानां=रुनकादिषु पुत्तलिकावत् द्विद्रादिपूरणेन

के आकार जैसी वीणाओं को, भभाओं भेरियों-को, षड् भ्रामरियों को
 -गोलाकार वीणाओं को, तथा और भी अनेक विधश्रोत्रेन्द्रिय सुखज-
 नक तंत्री आदिरूप द्रव्यों को, भरा-भर करके फिर नीले, पीले, रक्त,
 शुक्ल और कृष्ण रंग से रंगे हुए काष्ठ के बने हुए खिलौनों को, पुस्त-
 कर्मों को-वल्ह, ताडपत्र एवं कागज आदि पर लिखे विविध प्रकार के
 लेखों को, निबन्धों को उपदेश पूर्ण-दोहे चौपाइ आदि में लिखी हुई
 कविता आदि कों को-चित्रकर्मों को-पटिया आदि पर लकेरे गये विविध
 चित्रों को-लेप्पकर्मों को-मृत्तिका सेटिका आदि से बल्ली आदि रूप में
 बनाये गये चित्रों को, ग्रन्थियों को विशेष चतुराई के साथ गांठों से
 बनाये गये खिलौनों को, लताओं आदि द्वारा वेष्टित करके २ रची गईं
 चीजों को,-टोपियों को, हाथों की पैरों की अंगुलियों में पहिरने योग्य

लेवी वीणाओ, ल'लाओ-लेरीओ (नगाराओ) षड्-भ्रामरीओ, गोण आकार-
 वाणी वीणाओ तेमळ भीळ पळ धष्ठा क्खेन्द्रियने सुध आये तेवा तंत्री
 वगेरे साधेनेने लथीं. लरीने लीला, पीणा, राता, सद्दे अने काणा रंगोथी
 रंगाओलां लाउअंनाने अनेलां रमउअंने, पुस्तकमोने-वल्ह ताडपत्र अने कागज
 वगेरे उपर लथाओला लतलतना लेओने, निबधोने, इड्डा, चोपाइ वगेरेमां
 लथाओली उपदेशक कविताओ वगेरेने, चित्र कर्मोने-इलक वगेरे उपर चित्रित
 करेलां धष्ठां चित्रोने लेप्य कर्मोने, माटी सेटिका वगेरेथी लता वगेरे रूपमां
 अनाववामां आवेला चित्रोने, अ'थिमोने-विशेष आतुर्यथी गांठोथी अनाववामां-
 आवेलां रमउअंने, लताओ वगेरे वडे वेष्टित करीने अनाववामां आवेला वस्तु-

निष्पादितानाम्, 'संघाद्भाषण य' सङ्घातिमानां=लोहकाष्ठादिभी रथादिवद् वस्तु-
समूहैर्निष्पादितानाम्, तथा-अन्येषां च बहूनां ' चर्म्मिखदियपाउग्गाणं ' चक्षुरि-
न्द्रियप्रायोग्याणां=नयनानन्दजनकानां द्रव्याणां शकटीशाकटं भरन्ति । तथा
बहूनां ' कोट्टपुडाण य ' कोष्टपुटानां = सुगन्धिद्रव्यविशेषाणां च केतकीपुटानां
च यावत्-एलापुटानां च, कुङ्कुमपुटानां च, उशीरपुटानां=' खस ' इतिभाषा
प्रसिद्धसुगन्धिद्रव्याणां च, लवङ्गपुटानां चेत्यादि । अन्येषां च बहूनां घ्राणेन्द्रिय-
प्रायोग्याणां द्रव्याणां शकटीशाकटं भरन्ति । तथा वधोः खण्डस्य च गुडस्य च
शर्करायाश्च ' मिसरी ' इति भाषा प्रसिद्धायाः ' मच्छंडियाएय ' मत्स्यण्डिकायाः=
' कालपीमिसरी ' इति भाषा प्रसिद्धायाः, पुष्पोत्तर-पत्रोत्तराणां=गुलकन्द ' इति
प्रसिद्धानां च, अन्येषां च जिह्वेन्द्रियप्रायोग्याणां द्रव्याणां शकटीशाकटं भरन्ति ।
तथा बहूनां ' कोयवियाण य ' कोयविकानां = रूतपूरितपावरणविशेषाणां
' रजाई ' इति प्रसिद्धानाम्, कम्बलानां=रत्नकम्बलानाम्, पावरणाणां=शाटिकानां
' चदर ' इति प्रसिद्धानाम्, ' नवतयाण य ' नवतकानाम्=ऊर्णामयपर्याणानां

आभूषण आदि कों को-पुत्तलिका की तरह जो सुवर्ण आदि के पतरों
पर कृत छिद्रादिकों के पूरने से चित्र बनाये जाते हैं वे पूरिम हैं इन
पूरिमों को और संघातिमों को-लोहकाष्ठ आदि की तरह अनेक वस्तुओं
के समुदाय से निष्पादित चित्रों को तथा और भी नेत्र इन्द्रिय को
सुहावने लगने वाले द्रव्यों को भरा । (बहूणं कोट्टपुडाण य, केयई पुडा-
ण य जाव अन्नेसि च बहूणं घार्णिदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं
भरेति, बहुस्स खंडस्स य गुलस्स सक्कराए य मच्छंडियाए य पुष्कुत्तर
पउमुत्तराणय अन्नेसि च जिर्विभदिय पाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं
भरेति बहूणं कोयवियाण य केवज्जाणय पावरणाण य नवतयाण य

आने-ठापीजाने, डाथो, पयो आने आंगणीआमां पडेरवानां आलूषण वगे-
रेने पूतणीनी जेम जे सुवर्ण वगेरेनां पतरां उपर काष्ठां पाडीने तेभने
पूरीने अनाववाभां आवेला चित्रो अट्ठे के पूरिआने आने संघातिआने
लोअउ, काष्ठ वगेरेथी अनाववाभां आवेला रथ वगेरेनी जेम धष्ठी वस्तुआने
अकत्रित करीने तेभना पडे अनाववाभां आवेला चित्रोने तेभअ धीन' पथु
धष्ठां नेत्र धन्द्रियने गमे तेवा द्रव्योने लथां ।

(बहूणं कोट्टपुडाण य, केयई पुडाण य जाव अन्नेसि च बहूणं घार्णिदिय
पाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति, बहुस्स खंडस्स य गुलस्स सक्कराए य
मच्छंडियाए य पुष्कुत्तरपउमुत्तराण य अन्नेसि च जिर्विभदियपाउग्गाणं दव्वाणं
सगडीसागडं भरेति बहूणं कोयवियाण य केवज्जाण य पावरणाण य नवतयाण

‘जीन’ इति प्रसिद्धानाम्, मलयानां च=मलयदेशोत्पन्नवस्त्रविशेषाणाम्, ‘मसूराण य’ मसूरकाणां=वस्त्रादिनिर्मित वृत्ताकारासनविशेषाणाम्, ‘सिलावट्टाण य’ शिलापट्टानां=पट्टाकारचिक्कणशिलानां यावत् हंसगर्भाणां=हंसः=चतुरिन्द्रियकृमि-विशेषः, गर्भः=तन्निर्वर्तित कोसिभारोरूपः, तन्मयवस्त्राप्यपि हंसगर्भाणीत्यु-

मलयाण य मसूराण य सिलावट्टाण य जाव हंसगव्भाग य अन्नेसि च फांसिदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति) इसी तरह अनेक कोष्ठपुटों को-सुगंधित द्रव्य विशेषों को केतकीपुटों को-सुगंधित पुष्पों यावत् पलापुटों को-इलायचियों को, लखीरपुटों को, खश के समुदाय को-कुंकुमपुटों को तथा और भी अनेक, प्राणेन्द्रिय को तृप्ति कारक द्रव्यों को उन लोगों ने गाड़ी और गाड़ों में भरा। बहुत सी खांड, बहुत से शुद्ध बहुत सी शर्करा-मिसरी-बहुत सी मत्स्यण्डी-कालपी मिसरी बहुत से शुलकंद, बहुतसे पद्मपाक को तथा और भी जिह्वाहन्द्रिय को तृप्ति करने वाले द्रव्यों को उन लोगों ने गाड़ी और गाड़ों में भरा। इसी तरह स्पर्शन इन्द्रिय को आनंददेने वाले कोयचिकों को-रूई कपास-से भरे हुए प्रावरण विशेषों को-रजाहयों को-कम्बलों को-रत्न कम्बलों को-प्रावरणों को-चदरों को-नवलकों को-ऊन के बने हुए पल्लवों को-जीनों को-मलयदेश के बने हुए वस्त्रों को, मसूरकों को-वस्त्रों से बनाये हुए गोलाकार आसनों को-शिलापट्टों को-पट्टाकार चिकनी

य मलयाणय मसूराण य सिलावट्टाण य जाव हंसगव्भाग य अन्नेसि च फांसि-दियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति)

आ प्रमाळु घण्टा कोष्ठ पुटकेने-सुगंधित द्रव्य-विशेषोने, केतकी पुटोने केवडानां पुष्पोने यावत् खेलापुटोने, खेदय्योने, लशीर पुटोने-भशना समुदायोने, कुंकुम पुटोने तेमत्र पील पञ्च घण्टा प्राणैन्द्रिय (नाक) ने तृप्ति पमाडनारा द्रव्योने तेज्योने गाडी अने गाडाज्योभां लयां. अहुं च पुष्कण प्रमाळुभां आंड, गोज, साकर-मिश्री, मत्स्य डी-डालपी मिश्री, (हंथी नतनी साकर) शुलकंद, पद्मपाका तेमत्र पील पञ्च घण्टा लहार्थ इन्द्रिय (लस) ने तृप्ति आप-नार द्रव्योने ते लोकोने गाडी अने गाडाज्योभां लयां. आ प्रमाळु चतुरेन्द्रियने सुभ आपनारी कोयचिकोने इथी लरेला प्रावरण विशेषोने-रत्नयोने, काम-जोने, रत्न कामजोने, प्रावरणोने, आहरोने, नवलकोने, अनधी पनाववाभां आवेशां पक्षेज्योने-लुनोने-मलय देशना वस्त्रोने, मसूरकोने-वस्त्रो वडे पनाववाभां आवेशा गोज आकार आसनोने, शिलापट्टकोने-पट्टना आकारनी

च्यन्ते, तेषां कौशेयवस्त्राणां ' रेशमीवस्त्र ' इति भाषा प्रसिद्धानां च, तथा-
अन्येषां च स्पर्शेन्द्रियप्रायोग्याणां द्रव्याणां शकटीशाकटं भरन्ति, भृत्वा शकटीशाकटं
योजयन्ति, योजयित्वा यत्रैव गम्भीरकं=गम्भीरनामकं पोटस्थानं तत्रैवोपागच्छन्ति,
उपागत्य शकटीशाकटं मोचयन्ति, मोचयित्वा ' पोयवहणं ' पोटवहनं=नीकां
सज्जयन्ति, सज्जयित्वा तेषाम् ' उक्किट्टाणं ' उक्किट्टाणां=श्रेष्ठानां शब्दस्पर्शरसरूप-
गन्धानां काष्ठस्य च पानीयस्य च तन्दुलानां च ' सामियस्स य ' समीतस्य=

शिलाओं को, हंस गर्भों को-रेशमी वस्त्रों को, तथा और भी स्पर्शान्
इन्द्रिय को आनन्द देने वाली वस्तुओं को उन लोगों ने गाड़ी और
गाड़ों में भरा। (भरित्ता सगडीसागडं जोएंति, जोइत्ता जेणेव गंभी-
रए पोयट्टाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोएंति,
मोइत्ता पोयवहणे सज्जेति, सज्जित्ता तेसि उक्किट्टाणं सदफरिसरस-
रुवगंधाणं कट्टस्स य तणस्स य पाणियस्स य तंदुलाणय समियस्स
य गोरसस्स य जाव अन्नेसि च वहूणं पोयवहणपाउग्गा णं पोयवहणं
भरेंति) भरकर के फिर उन लोगों ने गाड़ी और गाड़ों को जोत दिया।
जोतकर के फिर वे वहाँ आये-जहाँ गंभीर नाम का पोटस्थान था-बंद-
रगाह था। वहाँ आकर के उन लोगों ने गाड़ी और गाड़ों को ढील-रोक
दिया। और फिर नौकाओंको सजाया-तैयार किया। और तैयार करके
बादमें उन्हें उन श्रेष्ठ शब्द, स्पर्श, रस, रूप, एवं गंधोंको काष्ठको तृण
को पानीय द्रव्य को तंदूलों को, गेहूँ के आटे को, गोरस घृतादिक-को

दीक्षी शिलाओने, हंस गर्भोंने-रेशमी वस्त्रोंने तेमज्ज णीलं पण्ण धण्णी स्पर्शे-
न्द्रियने सुभ पभाडे तेवी धण्णी वस्तुओने ते दोडोओ गडी अने गाडाओभां लरी.

(भरित्ता सगडीसागडं जोएंति, जोइत्ता जेणेव गंभीरए पोयट्टाणे तेणेव
उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोएंति मोइत्ता पोयवहणं सज्जेति,
सज्जित्ता तेसि उक्किट्टाणं सदफरिसरसरूपगंधाणं कट्टस्स य तणस्स य पाणि-
यस्स य तंदुलाण य सामियस्स य गोरसस्स य जाव अन्नेसि च वहूणं पोयवहण
पाउग्गाणं पोयवहणं भरेंति)

लरीने ते दोडोओ गडी अने गाडाओने नेतर्या. नेतररीने तेओ
त्यांधी न्यां गंभीर नामे पोटस्थान (बंदर) इत्तुं त्यां आओवा. त्यां आओने
ते दोडोओ गडी अने गाडाओने छोडी भूक्या. अने त्यारपणी नौकाओने
सुसज्जित करी. सुसज्जित कर्या भाद तेसण्णे ते उत्तम शब्द, स्पर्श, रस,
रूप अने गंधोने, काष्ठने, घासने, पाण्णीवाणा द्रव्योने, तंदुलो (ओषा) ने,

गोधूमादीनामदृकस्य- 'आटा' इति प्रसिद्धस्य, 'गोरसस्य य' गोरसस्य=घृता-
दिकस्य च यावत् अन्येषां च बहूनां पोतवहनप्रायोग्याणां द्रव्याणां पोतवहनं
भरन्ति, भृत्वा 'दक्खिणाणुकूलेण' दक्षिणाणुकूलेन=सानुकूलेन वातेन यत्रैव
कालिकद्वीपस्तत्रौपागच्छन्ति, उपागत्य तत्र पोतवहनं 'लंबेति' लम्बयन्ति=
तीरस्थापितशङ्खेषु बध्नन्ति, बद्ध्वा तान्=नौकास्थितान् उत्कृष्टान्=उत्तमोत्तमान्
शब्दस्पर्शरूपगन्धान् 'एगद्धियाहिं' एकार्थिकाभिः=लघुनौकाभिः 'कालिय-
दीवे' कालिकद्वीपे 'उत्तारंति' उत्तारयन्ति=नौकातो निस्सार्य भूमौ स्थापयन्ति ।

यावत् और अनेक पोतवहन प्रायोग्य द्रव्यों को उस नौका में भरदिया।
(भरित्वा दक्खिणाणुकूलेण वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता ताहं उक्किट्ठाइं सद्धफरिसरस-
रूप गंधाइं एगद्धियाहिं कालियदीवे उत्तारंति । जहिं २ च णं ते आसा
आसायंति वा संयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्ठंति वा तहिं २ च णं ते कोडुं-
धियपुरिसा ताओ वीणाओ य जाव वित्तवीणाओ य अन्नाणि य बहूणि
सोइंदिय पाउग्गाणि समुदीरेमाणा चिट्ठंति) भर करके फिर ये लोग जब
पीछे से आनेवाला अनुकूल वायु वहा तब वहां से चलकर जहाँ
कालिक द्वीप था वहाँ आये-वहाँ आकर के इन लोगों ने
लंगर डाल दिया-लंगर डालकर पोत में से शब्द के साधन भून वीणा
आदिकों को, अच्छे स्पर्श के साधनभूत रुई से भरे हुए रजाई आदि
वस्त्रों को रसनाइन्द्रिय को सुहावने लगनेवाले खांड आदि पदार्थों को

धडना डोटने, गोरस धी वगेरेने यावत् णील पषु घण्टा वहाणु यात्रामां
धाम लाणे तेवां द्रव्येने ते नौकाभां लयां ।

(भरित्वा दक्खिणाणुकूले णं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता ताहं उक्किट्ठाइं सद्धफरिसरस
रूपगंधाइं एगद्धियाहिं कालियदीवे उत्तारंति । जहिं २ च णं ते आसा
आसायंति वा संयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्ठंति वा तहिं २ च णं ते कोडुं
धियपुरिसा ताओ वीणाओ य जाव वित्तवीणाओ य अन्नाणि य बहूणि
सोइंदिय पाउग्गाणि समुदीरेमाणा चिट्ठंति)

भरिने तेज्या णया रे पाछणथी वहेतो अतुङ्गण पवन वडेवा लाण्ये
त्यारे त्यांथी रवाना अधने न्यां कालिक द्वीप डेतो त्यां आण्ये त्यां आवीने
ते डोडोअ्ये लंगर नाभ्युं । लंगर नाणीने वहाणुमांथी शण्डना साधन रुप
वीणु वगेरेने; डोभण स्पर्शना साधनभूत इथी भरिखा रलाध वगेरे वस्त्रोने,
रसना (लभ) इन्द्रियने गभता भांड वगेरे पहाथोने, नेत्र इन्द्रियने आनंठ

‘ जर्हिं २ च णं ’ यत्र यत्र च वने खलु ते ‘ आसा ’ अथाः=ज्ञात्या अश्वाः ‘ आसयंति वा ’ आसते=उपविशन्ति ‘ सयंति वा ’ शेरतेस्वपन्ति वा ‘ चिद्वृति वा ’ तिष्ठन्ति वा, ‘ तुयद्वृति वा ’ त्वग्वर्चयन्ति=शरीरं प्रसार्य स्वपन्ति वा ‘ तर्हिं २ तत्र तत्र च खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः ‘ ताओ ’ ताः=हस्तिशीर्षनगरादानीता वीणाश्च यावत्-वृत्तवीणाश्च, तथा अन्यानि च बहूनि श्रोत्रेन्द्रियप्रायोग्याणि च द्रव्याणि ‘ समुदीरेभाणा ’ समुदीरयन्तः=मधुरध्वनिना वादयन्तः तिष्ठन्ति, तेषामश्वानां ‘ परिपेरंतेणं ’ परिपर्यन्तेन=सर्वतः समन्तात् चतुर्दिक्षु इत्यर्थः ‘ पासए ’ पार्श्वे समीपे वीणादीनि स्थापयन्ति, स्थापयिञ्चा ते पुरुषाः ‘ निच्चला ’ निश्चलाः=चलनक्रियारहिताः ‘ णिप्फंदा ’ निः स्पन्दाः=हस्ताद्यवयवसंचाररहिताः ‘ तुसिणीया ’ वचन व्यापाररहिताः ‘ चिद्वृति ’ तिष्ठन्ति ।

तथा-यत्र यत्र तेऽश्वोः आसते वा यावत् त्वग्वर्चयन्ति=लुठन्ति तत्र तत्र खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः बहूनि कृष्णानि च ५=कृष्णनीलपीतरक्तशुक्लवर्णानि काष्-

नेत्र इन्द्रिय को आनन्द देनेवाले नीले पीले आदि रंगवाले चित्रों को एवं घ्राणइन्द्रियों को सुखकारक काष्ठपुट आदि सुगंधित द्रव्यों को छोटी २ नौकाओं द्वारा पोत में से उतार कर कालिक द्वीप में रख दिया। बाद में जहां २ वे जाति अश्व बैठते थे सोते थे, ठहरते थे, छेदते थे, वहां २ वे कौटुम्बिक पुरुष उन हस्तिशीर्ष नगर से लाये हुए वीणा से लेकर वृत्तवीणा पर्यन्त के साधनो को तथा और भी श्रोत्र इन्द्रिय को सुहावनी लगनेवाली साधन सामग्री को मधुर ध्वनि से बजाते हुए ठहर गये। और (तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेति, ठविच्चा णिच्चला, णिप्फंदा, तुसिणीया चिद्वृति, जत्थ २ ते आसा आसयंति वा जाव तुयद्वृति वा तत्थ २ णं ते कोडुंबिय पुरिसा बहूणि किण्हणि य ५ कट्टकम्माणि य

पमाडनार नीला, पीला वगैरे रंगना चित्राने अने प्राणु (नाक) इन्द्रियने सुभ आये तेवा काष्ठपुट वगैरे सुगंधित द्रव्योने वडाशुभांथी नानी नानी डोडीयोभां भूकीने कालिक द्वीप उपर भूकी द्वीपे। त्यारपछी नयां ते नाति अश्वो भेसता डता, सूता डता, रडेता डता, आराम करता डता त्यां ते कौटुम्बिक पुरुषो ते हस्तिशीर्ष नगरथी लड आवेली वीणाथो भांडीने वृत्त-वीणा सुधीना साधनेने तेभज णीअ पणु श्रोत्र (कान) इन्द्रियने गये तेवी साधन सामग्रीने मधुर ध्वनिथी वगाडतां त्यां दाकार्थ गया अने—

(तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेति, ठविच्चा णिच्चला, णिप्फंदा, तुसिणीया चिद्वृति, जत्थ २ ते आसा आसयंति वा जाव तुयद्वृति वा तत्थ २ णं ते कोडुं

कर्माणि यावत् संघातिमानि च अन्यानि च बहूनि चक्षुरिन्द्रियप्रायोग्याणि च द्रव्याणि स्थापयन्ति=एकत्री कुर्वन्ति, तेषामश्वानां परिपर्यन्तेन=सर्वतः समन्ताद् पार्श्वे स्थापयन्ति च, स्थापयित्वा ते निश्चलाः, निस्पन्दाः, तूष्णीकास्तिष्ठन्ति २ ।

तथा-यत्र यत्र तेऽश्वा आसते स्वपन्ति तिष्ठन्ति त्वग्वर्चयन्ति च तत्र तत्र खलु तेषां बहूनां कोष्ठपुटानां च यावद् अन्येषां च बहूनां घ्राणेन्द्रियप्रायोग्याणां

जाव संघाद्गमाणि य अन्नाणि य बहूणि चत्रिखदिय पाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेति, ठवित्ता तेसि परिपेरंतेण पासए ठवेति, ठवित्ता णिचल्ला णिष्फंदा तुसिणीया चिट्ठेति) उस के चारों तरफ चारों दिशाओं में-बीणा आदिकों को स्थापित करते रहे। स्थापित करके फिर वे वहीं पर निश्चल-चलन क्रिया से रहित होकर हस्तादि अवयव को कंपित किये बिना ही चुपचाप बैठ गये।

इस तरह-जिस २ वनमें वे अश्व बैठते थे, सोते थे, ठहरते थे, लेटते थे, वहां २ वन कौटुम्बिक पुरुषों ने उस आनीत बहुतसी कृष्ण, नील, पीत, रक्त, शुक्ल वर्णवाली काष्ठकर्म आदि संघातिम पर्यंत की सामग्री को जो चक्षुइन्द्रिय को आनन्दप्रद थी. तथा और भी चक्षुइन्द्रि को सुहावनी लगनेवाली जो वस्तुएँ थीं उन को एकत्रित किया और उन्हें उन अश्वों की चारों दिशाओं में रख दिया। रखकर के फिर वे निश्चल, निस्पन्द होकर चुपचाप बैठ गये। (जत्थ २ ते आसा आसयंति ४ तत्थ

विय पुरिसा बहूणि किण्हणि य ५ कट्टकम्माणिय जाव संघाद्गमाणि य अन्नाणि य बहूणि चत्रिखदिय पाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेति, ठवित्ता तेसि परिपेरंतेण पासए ठवेति ठवित्ता णिचल्ला, णिष्फंदा तुसिणीया चिट्ठेति)

तेमनी चोमेर, चारे चार दिशाओंमें वीष्वाओ वगेरे भूरी. भूक्षीने तेओ त्थां ७ निश्चल-इतन अलननी क्रियाथी रहित थधने अंगाने इलाय्था वगर युपथाप त्थां भेसी गथा. आ प्रमाणे ७ ७ वनमां अश्वो (बोडाओ) भेसता इत्ता, सुत्ता इत्ता, रहता इत्ता, आसाम इत्ता इत्ता ते ते वनमां ते कौटुम्बिक पुरुषोओ साथे लावेली धल्ली डानी, नीली, पीली राती, सक्के रंगनी काष्ठकर्म वगेरे संघातिम सुधीनी अथी वस्तुओने के वेओ अश्व (आंण) धन्द्रियने सुभ आपनारी इती तेम ७ गील पल्ल अश्व धन्द्रियने सुभ आपनारी नेटली सारी वस्तुओ इती तेमने लेगी करी अने अथीनी चोमेर तेमने गोठवी हीधी गोठवीने तेओ त्थां ७ निश्चल, निस्पंद थधने युपथाप त्थां ७ भेसी गथा.

(जत्थ २ ते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं तेसिं बहूणं फोड्डुहाणं य जाव अन्नेसिं च बहूणं घाणिदियपाउग्गाणं दव्वाणं पुजेय णियरे य करेति,

द्रव्याणां पुञ्जांश्च एकत्रस्तुसमूहरूपान् निकरांश्च नानात्रिभ्रसुराशिरुपान् कुर्वन्ति, कृत्वा तेषामश्वानां परिपर्यन्तेन=सर्वादिक्षु यावत् तूष्णीकास्तिष्ठन्ति ३ ।

यत्र यत्र च खलु तेऽश्वा आसते ४ तत्र तत्र खलु गुडस्य यावद् अन्येषां च बहूनां जिह्वेन्द्रियप्रायोग्याणां द्रव्यणां पुञ्जांश्च निकरांश्च कुर्वन्ति, कृत्वा 'विय-

२ णं तेसिं बहूण फोडुपुडाणं य जाव अन्नेसिं च बहूणं घाणिंदिय पाउग्गाणं दब्बाणं पुंजेय णियरे य करेति करित्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव चिद्वंति, जत्थ जत्थ णं ते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं गुलस्स जाव अन्नेसिं च बहूणं जिर्विंदिय पाउग्गाणं दब्बाणं पुंजे य णियरे य करेति, करित्ता वियरेण खणंति, खणित्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स जाव अन्नेसिं च बहूणं पाणगाणं वियरे भरेति-भरित्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेति जाव चिद्वंति जहिं २ च णं ते आसा आस० तहिं २ णं ते बह्वे कोयविया य जाव गम्भाय अण्णाणि य बहूणि फासिंदिय पाउग्गाइं अत्थुय पच्चत्थुयाइं ठवेति, ठवित्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव चिद्वंति) जहां जहां वे घोड़े बैठते थे, सोते थे, ठहरते थे, लेटते थे, वहाँ २ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उन अनेक कोष्ठ पुटों के यावत् अन्य और घ्राणेन्द्रिय प्रायोग्य द्रव्यों, के पुंजों को निकरो को एकात्रित कर दिया और करके फिर वे उन अश्वों की चारों दिशाओं में यावत् चुपचाप बैठ गये । जहां २ वे घोड़े बैठते थे, सोते थे, ठहरते थे, लेटते थे, वहाँ २ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने गुड़ के यावत् दूसरे और रसनेन्द्रिय आलहादक

करित्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव चिद्वंति, जत्थ जत्थ णं ते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं गुलस्स जाव अन्नेसिं च बहूणं जिर्विंदिय पाउग्गाणं दब्बाणं पुंजे य णियरे य करेति, करित्ता वियरेण खणंति, खणित्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स जाव अन्नेसिं च बहूणं पाणगाणं वियरे भरेति-भरित्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेति जाव चिद्वंति जहिं २ च णं ते आसा आस० तहिं २ च णं ते बह्वे कोयविया य जाव गम्भाय अण्णाणि य बहूणि फासिंदिय पाउग्गाइं अत्थुयपच्चत्थुयाइं ठवेति, ठवित्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव चिद्वंति)

न्यां न्यां ते घोडाओ जेसता हुता, सूता हुता, रडेता हुता, आराम करता हुता त्यां त्यां ते कौटुम्बिक पुरुषोओ ते घण्टा डेक पुटकेने यावत् थिल पणु घण्टी घ्राणेन्द्रिय (नाक) ने सुभ्र यंभाउ तेंवी वस्तुओने पुच्छण प्रमा-ल्लभां त्यां गोठवी हीधी, ओकडी करी हीधी अने ओकडी करीने तेओ ते घोडाओने आरे तरइ यावत् चुपचाप धधने जेओ गसा ते घोडाओ न्यां न्यां जेसता हुता, सूता हुता, रडेता हुता, आराम करता हुता त्यां त्यां ते कौटु-

अन्येषां च बहूनां पानकानां विवराणि भरन्ति, भृत्वा तेषां परिपर्यन्तेन पार्श्वे
 १७ कालिकद्वीपगत आकीर्णाववकव्यता ६१७

ए' विवराणि—गर्तानि स्रन्ति, खनित्वा गुडपानकस्य खण्डपानकस्य यावत्
 अन्येषां च बहूनां पानकानां विवराणि भरन्ति, भृत्वा तेषां परिपर्यन्तेन पार्श्वे
 स्थापयन्ति यावत् तूष्णीकास्तिष्ठन्ति ४ ।
 यत्र यत्र च खलु तेऽथा आसते ४ तत्र तत्र च खलु ते=कौटुम्बिकपुस्ताः
 बहून् कोयविकान्—रूतप्रतिभावरणविशेषान् यावत् हंसगर्भान्=मौशेयवह्वविशेषान्
 अन्यानि च बहूनि स्पर्शेन्द्रियमायोऽयाणि बह्लादीनि 'अथुय पञ्चथुयाइ'
 आसृत्प्रत्यवस्तुतानि=श्लक्ष्णप्रावरणपाट्टतानि कृत्वा स्थापयन्ति, स्थापयित्वा
 तेषां परिपर्यन्तेन यावत् तूष्णीकास्तिष्ठन्ति ५ ।
 ततः खलु तेऽथा यत्रैव एते उत्कृष्टाः बन्धस्पर्शरसरूपगन्धास्त्वैवोपागच्छन्ति,

द्रव्योके पुंज एवं निकर लगाकर खड़े कर दिये । एक ही वस्तुओंकी जो
 राशि होती है उसका नाम पुंज तथा भिन्न वस्तुओं की राशि का नाम
 निकर है । बाद में वहाँ पर उन्हीं ने अनेक गर्त खड़े किये । गर्त करके
 उनमें गुडपानक खंडपानक यावत् और भी अनेक पानक भर दिये ।
 बाद में वहाँ पर उनकी चारो दिशाओं में निश्चल-निस्पन्द होकर चुप-
 चाप बैठ गये । इसी तरह जिन २ वनो में वे घोड़े बैठते थे, सोते थे,
 ठहरते थे, एवं लेटते थे, वहाँ २ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने अनेक रुई के
 भरे हुए प्रावरणों को यावत् हंसगर्भों को-रेशमी वस्त्रों को तथा-और
 भी अनेक स्पर्शनहन्द्रिय को सुखदायक वस्त्रों को चिकने प्रावरणों से
 ढककर रख दिया । बाद में वे उनके चारों ओर यावत् चुपचाप बैठ गये
 (तर्पणं ते आसा जेणेव एए उक्किट्ठा सदफरिसरसरुवगंधा तेणेव उवा-

जिक पुरुषोऽप्ये गेणना यावत् भील' धष्ठां रसनेन्द्रिय (७७) ने सुप पमाडे
 तेषां द्रव्योना पुमे अने निकरे दगावीने पडी दीधां. जेक न वस्तुना दग-
 धाने पुंज तेमन जुडी जुडी वस्तुयोना दगधाओने निकर कडे छे. त्थारपडी
 ते दोडोऽप्ये त्यां न धष्ठां आसाओ त्थार ध्यां. ते आसाओमां तेओओ गेण
 पानक, आंडपानक, यावत् भील पष्ठां धष्ठां अतना पानको बरी दीधां. त्थार
 पाड तेओ त्यां न तेमनी थारे तरक निश्चल-निस्पंद धधने युपथाप मेसी
 गया. आ प्रभाषि ने ने वनोमां ते दोडाओ मेसता डता, सुता डता, रडेता
 डता अने आराम करता डता त्यां त्यां ते डोटुमिक पुरुषोऽप्ये धष्ठां इना
 प्रावरणोने यावत् हंसगर्भोने, देशमी वस्त्रोने तेमन भील पष्ठां धष्ठां स्पर्शे-
 न्द्रियने सुप थापे तेषां वस्त्रोने बीसां प्रावरणोथी आच्छादित करी दीधां.
 त्थारपडी तेओ नथा युपथाप तेनी थारे तरक मेसी गया.
 (तर्पणं ते आसा जेणेव एए उक्किट्ठा सदफरिसरसरुवगंधा तेणेव उवाग-

उपागत्य तत्र खलु—‘अत्येगइया’ अस्त्येके=केचिद् अश्वाः—‘अपूर्वाः=अदृष्टपूर्वाः खलु इमे शब्दस्पर्शरसरूपगन्धाः सन्ति’ इति कृत्या=इति विचिन्त्य तेषु उत्कृष्टेषु=आकर्षकेषु शब्दस्पर्शरसरूपगन्धेषु ‘अमुच्छ्रिया’ अमूर्च्छिताः=मूर्छारहिताः, प्राप्तहेयोपादेयविवेकाः अगृह्णा=असक्तिरहिताः, अग्रथिताः=लोभतन्तुभिरवद्धाः, अनध्युपपन्नाः=तदेकाग्रतारहिताः किञ्चिन्मात्रमपि तेष्व्वासक्तिमकुर्वाणाः सन्तः तेषामुत्कृष्टानां ‘सद् जाव गंधाणं’ शब्दस्पर्शरसरूपगन्धानां दूरंदूरेण=अतिदूरत एव ‘अवक्कमंति’ अपक्रामन्ति=पलायन्ते स्म । ते च खलु तत्र प्रचुरगोचराः=प्रचुरचरणभूमयः प्रचुरतृणपानीयाः, निर्भयाः, निरुद्विग्नाः ‘सुहं सुहेणं’ सुखं-सुखेन=सुखपूर्वकं विहरन्ति ।

गच्छन्ति, उवागच्छिता तत्थ णं अत्ये गइया आसा अपुव्वा णं इमे सद्-फरिसरसरूवगंधां त्ति कट्टु तेषु उक्किट्टेषु सद्फरिसरसरूवगंधेषु अमुच्छ्रिया ४ तैस्सि उक्किट्टाणं सद् जाव गंधाणं दूरं दूरेणं अवक्कमंति) बादमें वे अश्व जहां ये पूर्वोक्त उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप गंध और स्पर्शवाले पदार्थ थे वहां पर आये वहां आकर के इनमें कितनेक अश्व “ये शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध अदृष्टपूर्व है” ऐसा विचार कर उन आकर्षक शब्द रूप, रस, स्पर्श एवं गंधों में—उन पदार्थों में—सूच्छित नहीं बने। हेय उपादेय के विवेक से युक्त बने हुए वे कितनेक अश्व उन में आसक्ति से रहित ही रहे लोभरूपतन्तु से बन्धे नहीं। तथा किञ्चिन्मात्र भी उनमें आसक्ति नहीं करते हुए वे उन शब्द, स्पर्श रूप, और गंधों को बहुत ही दूर से छोड़कर चल दिये। (तेणं तत्थ पउरगोयरा

च्छन्ति, उवागच्छिता तत्थणं अत्येगइया आसा अपुव्वा णं इमे सद्फरिसरसरूव-त्ति कट्टु तेषु उक्किट्टेषु सद्फरिसरसरूवगंधेषु अमुच्छ्रिया ४ तैस्सि उक्किट्टाणं सद् जाव गंधाणं दूरं दूरेणं अवक्कमंति)

त्यारपथी ते घोडाओ आ अथा पूर्वे भूकेला उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस इय अने गंधवाणा पदार्थो डता त्यां आव्या. त्यां आवीने तेओमांथी केट-लाक घोडाओ “आ शब्द, स्पर्श, रस, इय अने गंध अदृष्टपूर्व छे.” आभ विचार करीने ते आकर्षक शब्द, रस, स्पर्श अने गंधवाणा ते पदा-र्थोमां भूच्छित (भोडांध-दोद्युप) थया नडि. डेथ अने उपादेयना विवेकथी सापथ अनेला केटलाक घोडाओ ते पदार्थोमां निरासकत न रथा. तेओ डोअ इथी डोरीथी अंधाया नडि. थोडी पथु आसक्ति गताव्या वगर तेओ ते शब्द, स्पर्श, रस, इय अने गंधवाणा पदार्थोने भूथ इरथी न छोडीने जता रथा. (तेणं तत्थ पउरगोयरा पउरत्तणपणिया गिन्धया गिरुव्विगा सुहं

अधोपनयं प्रदर्शयति,— 'एवामेव' एवमेव=शब्दाद्यमूर्छिताकीर्णाश्वत् 'सम-
णाउसो' हे आयुष्मन्तः श्रमणाः । योऽस्माकं निर्ग्रन्थी वा यावत्-आचार्योपा-
ध्यायानामन्तिके प्रव्रजितः सन् शब्दस्पर्शरसरूपगंधेषु 'नो सज्जइ' 'नो सज्जते=
आसक्तिमान् न भवति 'नो रज्जइ' 'नो रज्यते अनुरक्तो न भवति, नो गृह्यति,
न वाञ्छति, नो मुद्यति=न मूर्च्छति, नो अध्येयपद्यते=न तल्लीनो भवति, स खलु
इह लोके एव बहूनां श्रमणादीनां चतुर्विधसङ्घस्य अर्चनीयाः=समाननीयः यावत्
चातुरन्तसंसारकान्तारं 'वीइवइस्सइ' व्यतिव्रजिष्यति=उल्लङ्घयिष्यति-पारं
गमिष्यतीत्यर्थः ॥ सू० ३ ॥

पउरत्तणपाणिआ गिअमया गिरुअिग्गा सुहं सुहेणं विहरंति) और
जंगल में ही जो प्रचुरचरने की जमीन थी-जिसमें अधिक से अधिक
मात्रा में तृण और पानी भरा हुआ रहता था उसमें ही निर्भय, निरु-
द्विग्न होकर सुखपूर्वक रहे। अब इस दृष्टान्त का उपनय प्रदर्शिन करने
के लिये सूत्रकार कहते हैं- (एवामेवसमणाउसो) जो अहं गिग्गंधो
वा गिग्गंधी वा जाव सइ फरिसरसरुवगंधेषु णो सज्जइ णो
णो रज्जइ, जो गिज्जइ, णो मुज्जइ, णो अज्जोववज्जेइ, से णं इह-
लोए चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चगिज्जे जाव वीइवइस्सइ) हे आयु-
ष्मन्त श्रमणो ! इसी तरह जो हमारा निर्ग्रन्थ साधुजन एवं निर्ग्रन्थी
साध्वी जन आचार्य उपाध्यय के पास प्रव्रजित होकर शब्द स्पर्शा, रस,
रूप, और गंध इन पांचों इन्द्रियों के विषयो में आसक्ति युक्त नहीं
होता है, अनुरक्त नहीं बनता है, उन्हें चाहता नहीं है, उनमें मूर्छित
नहीं होता है, उनमें तल्लीन नहीं होता है, वह इस लोक में ही अनेक

सुहेणं विहरंति) अने वनमां ७ प्रचुर चरवानी ७भीन हती, ७थां वधादेमां
वधादे घास अने पाणी हतां त्यां ४ निर्भय, निरुद्विग्न यधने सुपथी रहेवा
लाग्वा. हवे आ दृष्टान्तने। उपनय रूप करवा माटे सूत्रकार कडे छे के :-

(एवामेव समणाउसो जो अहं गिग्गंधो वा गिग्गंधी वा जाव सइफरिस-
रसरुवगंधेषु णो सज्जइ णो रज्जइ, जो गिज्जइ, णो मुज्जइ, णो अज्जोववज्जेइ,
से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चगिज्जे जाव वीइवइस्सइ)

हे आयुष्मन्त श्रमणो ! आ प्रमाद्धे ४ ७े वमारा निर्ग्रन्थ साधुज्जो
के निर्ग्रन्थ साध्वीज्जो आचार्य के उपाध्यायनी पास प्रव्रजित यधने शफ्ठ,
रस, रूप अने गंध आ पांचे इन्द्रियोना विषयोमां आसक्ता यता
नथी, अनुरक्त यता नथी, तेयने छंछता नथी, तेज्जोमां मूर्छित यता नथी

मूलम्-तस्य णं अत्थेगइया आसा जेणेव उक्किट्टा सद्वपरिस-
 रसरूवगंधा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छत्ता तेसु उक्किट्टेसु
 सद्वपरिसे ५ मुच्छिया जाव अज्झोववण्णा आसेविउं पयत्ता
 यावि होत्था, तएणं ते आसा ते उक्किट्टे सद्व ५ आसेवमाणा
 तेहिं बहूहिं कूडेहि य पासेहि य गलएसु य पाएसु य
 बज्झंति, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा ते आसे गिण्हंति गिण्हत्ता
 एगट्टियाहिं पोयवहणे संचारेंति संचारित्ता तणस्स कट्टस्स
 जाव भरेति, तएणं ते संजत्तानावावाणियगा दक्खिणाणु-
 कूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरपोयट्टणे तेणेव उवागच्छइ उवा-
 गच्छत्ता पोयवहणं लंबेंति लंबित्ता ते आसे उत्तारेंति उत्ता-
 रित्ता जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव
 उवागच्छंति उवागच्छत्ता करयल जाव वद्धावेंति वद्धावित्ता
 ते आसे उवणेंति, तएणं से कणगकेऊ तेषिं संजत्तानावा-
 वाणियगाणं उस्सुक्कं वियरइ वियरित्ता सक्कारेंति सम्माणेंति
 सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसजेइ, तएणं से कणगकेऊ
 कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता सक्कारेंति० पडिविस-
 जेइ, तएणं से कणगकेऊ राया आसमहए सदावेइ सदा-
 वित्ता एवं वयासी-तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! मम आसे विण-

श्रमण आदि जनोका तथा चतुर्विध संघका संमाननीय होता है । यावत्
 वह इस चतुर्गति संसार कान्तारको पार कर देने वाला होता है ॥सू०३॥

ते आ दीडभां ७ घण्टा श्रमणु वगेरेथी तेम ७ चतुर्विध संघथी संमान प्राप्त
 करे छे. यावत् ते आ चतुर्गति ३५ संसार कान्तारने पार करनार थर
 जाय छे. ॥ सूत्र ३ ॥

एह, तएणं ते आसमद्गता तहन्ति पडिसुणंति पडिसुणिन्ता ते
 आसे बहूहिं मुहबंधेहिं य कण्णबंधेहिं य णासाबंधेहिं य
 खुरबंधेहिं य खल्लिणबंधेहिं य अहिलाणेहिं य पडियाणेहिय
 अंकणाहिं य वित्तप्पहारेहिं य लयप्पहारेहिं य कसप्पहारेहिय
 छिवप्पहारेहिं य विणयंति विणयिन्ता कण्णकेउस्स रत्तो
 उवणेति । तएणं से कण्णकेऊ राया ते आसमद्दए सक्का-
 रेइ सक्कारिन्ता पडिविसज्जेइ, तएणं ते आसा बहूहिं मुह-
 बंधेहिं य जाव छिवप्पहारेहिं य बहूणि सारीरमाणसाणि
 दुक्खाइं पावेति, एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो
 वा निग्गंथी वा पठ्वइए समाणे इट्ठेसु सद्दफरिसरसरुवगंधेसु
 य सज्जइ रज्जइ गिज्जइ मुज्झइ अज्झोववज्जइ से णं इह-
 लोए चेव बहूणं समणाण य जाव साविघाण य हीलणिज्जे
 जाव अणुपरियट्ठिस्सइ ॥ सू० ४ ॥

टीका- ' तत्थ णं ' इत्यादि । तत्र खलु ' अत्येगइया ' अस्त्येके=केचित्
 अथा यत्रैव उत्कृष्टाः शब्दस्पर्शरसरूपगन्धास्त्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तेषु उत्कृ-
 ष्टेषु=शब्दस्पर्शरसरूपगन्धेषु मूर्च्छिताः यावत्-अध्युपपन्नाः=तत्तद्विषयेषु एकाग्रतां
 प्राप्ताः सन्तस्तान् आसेवितुं प्रवृत्ताश्चाप्यभवन् । ततः खलु तेषुश्चा एतान् उत्कृष्टान्

' तत्थणं अत्ये गइया ' इत्यादि ।

टीकार्थं-(तत्थणं अत्येगइया आसा जेणेव उक्किट्ठो सद्दफरिसरसरुव-
 गंधातेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिन्ता तेसु उक्किट्ठेसु सद्दफरिसे ५ मुच्छिया
 जाव अज्झोववण्णा आसेविउं पयत्ता याविहोत्था) उस जंगल में उन

तत्थणं अत्येगइया इत्यादि—

टीकार्थं-(तत्थ णं अत्येगइया आसा जेणेव उक्किट्ठासद्दफरिसरसरुवगंधा
 तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिन्ता तेसु उक्किट्ठेसु सद्दफरिसे ५ मुच्छिया जाव अज्झो-
 ववण्णा आसेविउं पयत्ता यावि होत्था)

ते वनभां ते घोडाओभां डेटलाकं घोडाओओ ओया पथु डता डे ओओ

शब्दस्पर्शरसस्वगन्धान् ' आसेवमाणा ' आसेवमानाः तत्सुखानुभवं कुर्वाणाः तैर्व-
हुभिः कूटैश्च बन्धनविशेषैः, पात्रैश्च रज्ज्वादिरूपैः गलएषु=गलेषु=कण्ठेषु पादेषु च
' वज्जन्ति ' बध्यन्ते-ते कौटुम्बिकपुरुषास्तान्श्वान् बध्नन्ति स्मेत्यर्थः । ततः

घोड़ों में से कितनेक घोड़े ऐसे भी थे जो जहाँ वे उत्कृष्ट शब्द स्पर्श
रस, रूप एवं गंध ये पाँचों इन्द्रियों के आकर्षक विषय थे वहाँ आकर
उन उत्कृष्ट शब्द स्पर्श आदि विषयों में मूर्च्छित यावत् तल्लीन बनगये।
और उन्हें सेवन करने में प्रवृत्त भी हो गये। (तएणं ते आसा ते
उक्किट्टे सद् ५ आसेवमाणा तेसिं बहूहिं कूडेहिं य पासेहिं य गलएसु य
पाएसु य वज्जन्ति, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा ते आसे. गिण्हंति गिण्हित्ता
एगट्टियाहिं य पोयवहणे संचारंति, संचारित्ता तणस्स कट्टस्स जाव
भरंति, तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव
गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबंति-
लंबित्ता ते आसे उत्तारंति) इसके बाद वे घोड़े उन उत्कृष्ट शब्द स्पर्श
रस, रूप, एवं गंध इन पाँचों इन्द्रियों के विषयों को सेवन करते हुए
रज्ज्वादिरूपबन्धन विशेषों द्वारा कंठों और पैरोंमें बांध लिये गये। अर्थात्
उन कौटुम्बिक पुरुषों ने इन घोड़ों को उस समय रस्सियों द्वारा बांध-
लिया। बांध करके फिर उन कौटुम्बिक पुरुषोंने उन्हें पकड़ लिया पकड़

न्यां ते उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप अने गंध आ पांचे इन्द्रियोना
आकर्षक विषयो हुता त्यां आपीने ते उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श वगेरे विषयोमां
मूर्च्छित (आसकत) यावत् तददीन थर्ध गया अने तेमना सेवनमां प्रवृत्त
पणु थर्ध गया.

(तएणं ते आसा ते उक्किट्टे सद् ५ आसेवमाणा तेसिं बहूहिं कूडेहिं य
पासेहिं य गलएसु य पाएसु य वज्जन्ति, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा ते आसे
गिण्हंति गिण्हित्ता एगट्टियाहिं य पोयवहणे संचारंति, संचारित्ता तणस्स कट्टस्स
जाव भरंति, तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव
गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबंति-लंबित्ता ते
आसे उत्तारंति)

आरपणी ते घोडाओ. उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप अने गंध आ
पांचे इन्द्रियोना विषयोनुं सेवन करतां दोरडाओ वगेरे रूप गंधन विशेषधी
डोके अने पगोमां गंधार्ध गया. ओटवे के ते कौटुम्बिक पुरुषोओ ते घोडा-
ओने दोरडाओधी गंधी. दीधा. गंधीने ते कौटुम्बिक पुरुषोओ ते घोडाओने

खलु ते कौटुम्बिकपुरुषास्तान्श्वान् गृह्णन्ति, गृहीत्वा 'एगद्विवाहिं' एकार्थिव्याभिः= लघुनौकाभिः पोतवहने=बृहन्नौकायां 'संचारंति' सञ्चारयन्ति=आरोहयन्ति सञ्चार्यं तृणस्य काण्डस्य च यावत् पोतवहनं भरन्ति तृणकाष्ठादिभिरिति भावः । ततः खलु ते संयात्रनौकावाणिजकाः दक्षिणानुकूलेन=स्वानुकूलेन वातेन यत्रैव गम्भीरपोतपत्तनं=पोतलम्बनस्थानं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य पोतवहनं 'लंबेति' लम्बयन्ति=शंकुषु बद्ध्वा स्थापयन्ति, लम्बयित्वा तान्=अश्वान् 'उत्तारंति' उत्तारयन्ति, उत्तार्यं यत्रैव हस्तिशीर्षं नगरं यत्रैव कनककेतू राजा तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य 'करयल जाव' करतलपरिगृहीतं शिरावर्त्तं दशनखं मस्तके-

कर फिर उन्हें छोटी २ नौकाओं द्वारा लाकर बड़ी नौका में चढाया-चढा करके फिर उसमें तृण और काष्ठ आदि को भरा । इसके बाद वे सांयात्रिक पोतवणिक् दक्षिणानुकूल वायु के चलने पर जहाँ गंभीर नामका पोतपट्टण (चन्द्रगाह) था वहाँ आये । वहाँ आकर के उन्होंने ने अपने पोत को लंगर डालकर ठहरा दिया । ठहरा कर उन अश्वों को उस पोत से फिर उन्होंने ने नीचे उतार लिया । (उत्तारित्ता जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल जाव बद्धावेंति, बद्धावित्ता ते आसे उवणेंति, तएणं से कणगकेऊ तेसिं संजत्ता णावावाणियमाणं उस्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता सक्कारेइ संमाणेइ सक्कारित्ता संमाणित्ता पडिविसज्जेइ) उतार कर फिर वे वहाँ उन्हें ले गये जहाँ हस्तिशीर्ष नगर और उसमें भी

पडडी वीधा. पडडीने तेमळे नानी नानी डोडीओ वडे मोठा वडाणुमां चढाव्या. चढाव्या भाडे तेओओ तेमां घास ओने डाध भर्या. त्यारपधी ते सांयात्रिक पोतवणिक्के इक्षिणुने अनुकूण पवन पडेवा लाग्ये त्यारे त्यांथी रवाना थधने न्यां गभीर नामे पोतपट्टण (अंहर) હતું त्यां आल्या. त्यां आधीने तेमळे पोताना वडाणुने लगर नाभीने रेकथुं. त्य.रभाडे तेमळे घोडाओने वडाणु-मांथी नीचे उतार्या.

(उत्तारित्ता जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव बद्धावेंति, बद्धावित्ता ते आसे उवणेंति. तएणं से कणगकेऊ तेसिं संजत्ता णावा वाणियमाणं उस्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारित्ता, संमाणित्ता पडिविसज्जेइ)

नीचे उतारिने तेओ ते घोडाओने हस्तिशीर्ष नगरमां न्यां कनककेतु राव डते त्यां लध ग्या. त्यां अधने पडेवां तेमळे अंने डाध जेडीने राव

ऽञ्जलिं कृत्वा 'वद्धावैति' वर्द्धयन्ति जयविजयशब्देनाभिनन्दन्ति, वर्द्धयित्वा तान् अश्वान् राज्ञः समीपे 'उवर्णेति' उपनयन्ति । ततः खलु स कनककेतु राजा तेषां संयात्रनौकावाणिजकानाम् 'उस्पृक्षं' उच्छुल्कम्= 'एभ्यः केनापिकरो न ग्राह्यः' इत्येवंरूपमाज्ञापत्रं वितरति=ददाति, वित्तीयं सत्करोति-मधुर-वचनादिभिः, संमानयति-वस्त्रादिभिः, सत्कार्यं सम्मान्य प्रतिविसर्जयति ।

ततः खलु स कनककेतु राजा 'आसमहए' अश्वमर्दकान्=अश्वशिक्षकान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-यूयं खलु हे देवानुमियाः ! ममाश्वान् 'विणएह' विनयत=शिक्षयत-गत्यादिकलाकुशलान् कुरुतेत्यर्थः । ततः खलु तेऽश्व-मर्दकाः 'तद्वचि' तथेति 'तथाऽस्तु' इत्युक्त्वा प्रतिश्रुण्वन्ति=तृपात्रां स्वीकुर्वन्ति,

जहां कनककेतु राजा थे। वहां जाकर उन्होंने पहिले दोनों हाथ जोड़ कर राजा कनककेतु को नमस्कार किया-जय विजय शब्दों द्वारा उन्हें बधाई दी-बधाई देकर बाद में उन घोड़ों को उनके समक्ष उपस्थित कर दिया इसके बाद कनककेतु राजा ने उन सांघाविक पोतवणिज्जनों के लिये निःशुल्क (कररहित) अवस्था वितरित की इन्हीं से कोई भी राज्यकर्मचारी टेक्स न लेवे इस प्रकार का आज्ञापत्र उन्हें लिखकर दे दिया। आज्ञापत्र लिखकर देने के बाद राजाने उनका मधुर वचनों द्वारा सत्कार किया। वस्त्रादि प्रदान पूर्वक उनका सम्मान किया। फिर सत्कार सम्मान करके उन्हें विसर्जित कर दिया। (तएणं से कणककेऊ कोडुंबियपुरिसे सहावेइ, सहावित्ता सक्कारेति० पडिविसज्जेइ, तएणं से कणगकेऊ राया आममहए सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी तुव्भेणं देवानुप्पिया ! मम आसे विणएह) इस के बाद कनककेतु राजाने कौडु-

कनककेतुने नमस्कार कर्था अने जय-विजय शब्दो वडे तेभने वधाभष्ठी आपी। वधाभष्ठी आपीने तेभण्णे ते अधा धोराअ्यानं तेभनी सामे उपस्थित कर्था त्थारपणी कनककेतु राजण्णे ते सांघाविक पोतवणिज्जेने माटे कर माद्री करी आपी तेभनी पासोथी कोडुं पण्ण राजण्य कर्मचारी कर (टेक्स) ले नडि तेडुं अज्ञापत्र तेभने लणी आभुं अज्ञापत्र आपीने राजण्णे तेभनी मधुर वचनेो वडे सत्कार कर्था अने वस्त्रो वगेरे आपीने तेभनुं सम्मान कर्था। त्थारपणी तेभने विहाय कर्था।

(तएणं से कणगकेऊ कोडुंबियपुरिसे सहावेइ, सहावित्ता सक्कारेति० पडिविसज्जेइ, तएणं से कणगकेऊ राया आसमहए सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी तुव्भेणं देवानुप्पिया । मम आसे विणएह)

प्रतिश्रुत्य तान् अश्वान् बहुभिर्मुखवन्धैश्च कर्णवन्धैश्च नासावन्धैश्च बालवन्धैश्च केशवन्धैरित्यर्थः खुरवन्धैश्च 'खल्लिवन्धेहि य' खलीनवन्धैः 'लगाम' इति प्रसिद्धवन्धनैः, 'अहिलाणेहि य' अभिलानैः= 'जीन' इति प्रसिद्धैः, पडियाणेहि' पर्याणकैः= 'तंग' इति प्रसिद्धैश्चर्ममयैरश्वोपकरणविशेषैः, 'अंकणाहि य' अङ्कनाभिः=तप्तलोहशलाकादिभिरङ्कनकरणैश्च 'वित्तप्पहारेहि य' वेत्रप्रहारैश्च

मिथक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनका आदर सत्कार किया। फिर उन्हें विसर्जित कर दिया। इसके पश्चात् कनककेतु राजा ने अश्वशिक्षकों को बुलाया और बुलाकर उनसे ऐसा कहा—हे देवानुप्रियों! तुम इन हमारे इन घोड़ों को शिक्षित बनाओ—गत्यादिकला में निपुण करो। (तएणं ते आसमहग्गा तहत्ति पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता ते आसे बहूहिं सुह वंधेहि य कण्ण वंधेहि णासा वंधेहि य बालवंधेहि य खुरवंधेहि य खल्लिवंधेहि य अहिलाणेहि य पडियाणेहि य अंकणाहि य वित्तप्पहारेहि य कसप्पहारेहि य छिवप्पहारेहि य विणयंति) राजा कनककेतु की इस आज्ञा को उन अश्वमर्दकों ने "तहत्ति" कहकर स्वीकार कर लिया। स्वीकार करके फिर उन्होंने ने अनेक विध मुख बंधनों से, कर्णबंधनों से नानाबंधनों से लगामरूप बंधनों से अभिलानों से—पलेचाओं से—पर्याणकों से तंगों के कसने से—अंकनों से—तप्त हुई लोहकी शलाकाओं द्वारा डाम लगाने से वेत्र के प्रहारों से, लताओंके प्रहारोंसे, चाबुकों के

त्यारपणी कनककेतु राज्ञे कौटुम्बिक पुरुषेणे षोडश्या, षोडशीने तेमने सत्कार कथीं अने पणी तेमने विहाय कथां त्यारभाह कनककेतु राज्ञे अश्वशिक्षकेने षोडश्या अने षोडशीने तेमने आ प्रभाषे कहुं के डे देवानुप्रियो ! तमे अमारा आ घोडाञ्चाने शिक्षित जनावो, दोडवा वगेरेनी कणाञ्चोमां निपुण जनावो।

(तएणं ते आसमहग्गा तहत्ति पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता ते आसे बहूहिं सुह वंधेहि य कण्ण वंधेहिं णासा वंधेहि य बालवंधेहि य खुर वंधेहि य खल्लिवंधेहि य अहिलोणेहि य पडियाणेहि य अंकणाहि य वित्तप्पहारेहिय लयप्पहारेहिय करूपहारेहि य छिवप्पहारेहि य विणयंति)

राज कनककेतुनी आज्ञाने ते अश्वमर्दकाञ्चे " तहत्ति " कहीने स्वीकारी लीधी. स्वीकार करीने तेमण्णे धरणी जतना सुण भंधनोथी, कण्ठं भंधनोथी, नासा भंधनोथी, वाण भंधनोथी, खुर भंधनोथी, लगाम इप भंधनोथी, अखिलानोथी, पलेचाञ्चोथी, पर्याणकोथी, तंगेने कसवाथी, अंकनोथी, तपानवासां आवेली लोण्डनी शणीञ्चो वडे डामवाथी, वेत्ताना आघातोथी लता-

‘ लयप्पहारेहि य ’ लताप्रहारैश्च, ‘ कसप्पहारेहि य ’ कशाप्रहारैश्च ‘ कशा ’-
चांबुक ’ इति भाषायाम्, ‘ छिवप्पहारेहि य ’ छिवाप्रहारैः=चर्ममयचिकणकशा-
प्रहारैश्च ‘ विणयंति ’ विनयन्ति=शिक्षयन्ति, विनीय=शिक्षयित्वा कनककेतो राज्ञ
उपनयन्ति । ततः खलु सः कनककेतू राजा तान् अश्वमर्दकान् सत्करोति सम्मा-
नयति, सत्कृत्य सम्मान्य प्रतिविसर्जयति । ततः खलु तेऽश्वाः बहुभिर्मुखबन्धैश्च
यावत्-छिवाप्रहारैश्च बहूनि शारीरमानसानि दुःखानि प्राप्नुवन्ति ।

‘ एवामेव ’ एवमेव=शब्दादिविषयमूर्छिताकीर्णाश्ववत् ‘ समणाउसो ’ हे
आयुष्मन्तः श्रमणाः ! योऽस्माकं निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा आचार्योपाध्यायानाम-
न्तिके प्रव्रजितः सन् इष्टेषु शब्दरुपर्शरसरूपगन्धेषु ‘ सज्जइ ’ सज्जते=आसक्तो

प्रहारों से, छिपा-चर्म की बनी हुई चिकनी कशाओं के प्रहारों से उन
घोड़ों को शिक्षित बना दिया । (विणयित्वा कणगकेऊरस रण्णो उवणेंति
तएणं से कणगकेऊराया ते आसमइए सक्कारेइ सक्कारित्ता पडिविस
ज्जेइ, तएणं ते आसा बहूहिं सुहबंधेहिं जाव छिवप्पहारेहि य बहूणि
सारीरमानसाणी दुक्खाइं पावेंति) शिक्षित बनाकर फिर वे उन
घोड़ों को कनककेतु राजा के पास ले गये । बादमें राजा कनककेतु ने
उन अश्वमर्दकों का सत्कार सन्मान किया । सत्कार सन्मान करके फिर
उन्हें विसर्जित कर दिया । वे घोड़े लेकर अनेक विध उन मुख बंधनों
से यावत् चर्ममय चिकणकशाओं के प्रहारों से नाना प्रकार के शा-
रीरिक एवं मानसिक दुखों को पाने लगे । (एवामेव समणाउसो ।
जो अम्हं निगंथो वा निगंथी वा पव्वइए समाणे इट्ठेसु सदफरिसरस

ओना प्रहारैथी, आयुक्ता प्रहारैनी, छिपा आमडाना भनेवा दीसा आयु-
केना प्रहारैथी ते बोडाम्भेने केणया.

(विणयित्वा कणगकेऊ राया ते आसमइए सक्कारेइ, सक्कारित्ता पडिविस-
ज्जेइ तएणं ते आसा बहूहिं सुह बंधेहिं जाव छिवप्पहारेहि य बहूणि सारीर-
मानसाणि दुक्खाइं पावेंति)

केणवीने-शिक्षित जनावीने ते बोडाम्भेने तेओ कनककेतु राजा पास
लाध गया. त्पारपछी कनककेतुओ ते अश्वमर्दकेना सत्कार तेभण सन्मान कथुं.
सत्कार भने सन्मान करीने तेभने विसर्जित कथां. ते बोडाम्भे धणुा सुथ
बंधनेथी यावत् आमडाना दीसा आयुकेना प्रहारैथी भनेक नतना शारी-
रिके भने मानसिक हुंओ बोगवा लाग्या.

(एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निगंथो वा निगंथी वा पव्वइए समाणे
इट्ठेसु सदफरिसरसरूपगंधेषु य सज्जइ, रज्जइ, गिज्जइ, सुज्जइ, अज्झोववज्जइ,

ભવતિ, ' રજ્જહ ' રજ્યતે=અનુરક્તો ભવતિ, ' ગિજ્જહ ' ગૃધ્યતિ=તદ્વાઠ્ઠાસક્તો ભવતિ, ' મુજ્જહ ' મુહ્યતિ=મૂર્છિતો ભવતિ, ' અજ્જોવવજ્જહ ' અધ્યુપવધતે=સર્વથા તલ્લીનો ભવતિ, સ તલ્લુ ઇહ લોક એવ વહૂનાં શ્રમણાનાં ચ યાવત્-શ્રમણીનાં શ્રાવકાણાં શ્રાવિકાણાં ચ ' હીલણિજ્જે ' હીલનીયઃ યાવત્ ચાતુરન્તસંસારકાન્તારમ્ ' અણુપરિચદ્ધિસ્સહ ' અણુપર્યાટપ્યતિ=અભિષ્યતીતિ ભાવઃ ॥૨૦૪॥

મૂલમ્-કલરિભિયમ્હુર તંતીતલતાલવંસકરુહાભિરામેસુ ।

સહેસુ રજ્જાણા રમંતિ સોઈંદિયવસદ્દા ॥ ૧ ॥

સોઈંદિયદુહન્તત્તણસ્સ અહ ઇત્તિઓ હવદ્દોસો ।

દીવિગરુયમ્સહંસો વહવંધં તિત્તિરો પત્તો ॥ ૨ ॥

ટીકા-અથેન્દ્રિયાસંવરણદોષાન્ ગાથામિઃ પ્રદર્શયતિ-' કલરિભિયં ' ક્ત્યાદિકલરિભિતમધુરતન્ત્રી તલ તાલવંસકરુહાભિરામેષુ ।

રુવગંધેસુ ય સજ્જહ, રજ્જહ, ગિજ્જહ, મુજ્જહ, અજ્જોવવજ્જહ, સેણં ઇહલાહે ચેવ વહૂણં સમાણણ ય જાવ સાવિયાણ ય હીલણિજ્જે જાવ અણુપરિચદ્ધિસ્સહ) હસી પ્રકાર હે આયુષ્મંન શ્રમણો ! જો હમારા નિર્ગ્રંથ સાધુજન અથવા સાધ્વીજન આચાર્ય ઉપાધ્યાય કે પાસ પ્રવ્રજિત હોતા હુઆ ઇટ્ટ શબ્દ, સ્પર્શ, રસ, રૂપ, ગંધ ઇન પાંચો ઇન્દ્રિયો કે વિષયો મેં આસક્ત હોતા હૈ, અનુરક્ત હોતા હૈ, ઉનકી ચાહ સે વંધતા હૈ, ઉનમેં સૂચ્છિત બનતા હૈ, સર્વ પ્રકાર સે ઉનમેં તલ્લીન હોતા હૈ વહ ઇસ લોક મેં હી અનેક શ્રમણજનો દ્વારા શ્રમણી, શ્રાવક ઓર શ્રાવિકાઓ દ્વારા હીલનીય-નિન્દા કા પાત્ર-હોતા હૈ યાવત્ વહ ચતુર્ગતિરૂપ ઇસ સંસાર કાન્તાર મેં ભટકતા હૈ ॥ ૨૦૪ ॥

સેણં ઇહલોપ ચેવ વહૂણં સમાણણ ય જાવ સાવિયાણ ય હીલણિજ્જે જાવ અણુ પરિચદ્ધિસ્સહ)

આ પ્રમાણે હે આયુષ્મંત શ્રમણો ! જે અમારા નિર્ગ્રંથ સાધુજનો કે સાધ્વીજનો આચાર્ય અથવા ઉપાધ્યાયની પાસે પ્રવ્રજિત થઈને ઈટ્ટ, શબ્દ, સ્પર્શ, રસ, રૂપ અને ગંધ આ પાંચે ઈન્દ્રિયોના વિષયોમાં આસક્ત હોય છે, અનુરક્ત હોય છે, તેમની ઈચ્છા કરીને તેઓમાં બંધાઈ બંધ છે, તેઓમાં મૂર્છિત બની બંધ છે, બંધી રીતે તેઓમાં તલ્લીન બની બંધ છે. તે આ લોકમાં જે ઘણા શ્રમણો વડે તેમજ ઘણી શ્રમણી, શ્રાવક અને શ્રાવિકાઓ વડે હીલનીય-નિન્દનીય-હોય છે યાવત્ તે ચતુર્ગતિ રૂપ આ સંસાર-કાંતારમાં ભટકતા રહે છે. ॥ સૂત્ર ૪ ॥

शब्देषु रज्यमाना, रमन्ते श्रोत्रेन्द्रियवशात्तर्त्ताः ॥ १ ॥

श्रोत्रेन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य अथ एतावान् भवति दोषः ।

द्वीपिकारुतमसहमानो, -वधवन्धं तित्तिरः प्राप्तः ॥ २ ॥

श्रोत्रेन्द्रियवशात्तर्त्ताः=कर्णेन्द्रियवशात्तर्त्तिनः कलाः श्रवणसुखदाः रिभिताः स्वर-

घोलनाविशेषयुक्ताः मधुराः-प्रियाः कलरिभितमधुरध्वनिजनकत्वात् तद्रूपा ये तन्त्रो-

तलतालवंशाः-वीणां-करताल वेणवस्तैः समुद्भाषितत्वात्-ककुदः-प्रधानाः, अभि-

रामाः-मनोहरास्तेषु-शब्देषु रज्यमानाः=अनुरक्ताः सन्तः रमन्ते=मोदन्ते ॥ १ ॥

‘सोईदिये’ त्यादि । ‘सोईदियदुर्दान्तत्तणस्स’ श्रोत्रेन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य श्रोत्रेन्द्रियं

दुर्दान्तं यस्य स श्रोत्रेन्द्रियदुर्दान्तः=श्रोत्रेन्द्रियस्य जेतुमशक्यतया तद्वशावर्तीत्यर्थः,

तस्य भावस्तत्त्वं, तस्य, श्रोत्रेन्द्रियाधीनतायाः, ‘एत्तिओ’ एतावान्=वक्ष्यमाण-

प्रकारकः दोषो भवति । तं सदृष्टान्तं प्रदर्शयति-‘दीविगरुयमसहंतो’ द्वीपिकारु

तमसहमानः-द्वीपिका=व्याध पञ्जरस्थतित्तिरः, तस्याः कृतं शब्दम् असहमानः=

‘कलरिभिय’ इत्यादि ।

अब सूत्रकार, इन्द्रियों के असंवरण से जो दोष उत्पन्न होते हैं उन्हें इन गाथाओं द्वारा प्रदर्शित करते हैं-कर्णेन्द्रिय के वशावर्ती बने हुए प्राणी फल-श्रवण सुखदा, रिभित-स्वरों के घोलना विशेष से युक्त ऐसे मधुरमिय, तंत्री-वीणा, तलताल-करताल, वंशावासुरी इन से उत्पन्न होने की वजह से ककुद-अत्यन्त, अभिराम-मनोहर ऐसे शब्दों में अनुरक्त होते हुए यद्यपि मुदितमन होते हैं परन्तु श्रोत्रेन्द्रिय उनकी दुर्दमन होनेके कारण-श्रोत्रेन्द्रिय उनकी जितनेमें अशक्य होनेके कारण तद्वशावर्ती बने हुए वे प्राणी जिस तरह व्याध के पंजर में रही हुई तित्तिरी के शब्द को सुनकर तीतरपक्षी-कामराग के वश से आकृष्ट

‘कलरिभिय’ इत्यादि—

सूत्रकार ढवे ध्निद्रियोना असंवरण्थी जे दोषो उत्पन्न थाय छे तेभने आ गाथाओ वडे प्रदर्शित करे छे. कर्णेन्द्रियना वशाभां थयेला प्राणीओ कल-श्रवण सुखदा, रिभित स्वराने विशेष रूपमां जेणववाथी उत्पन्न थयेला ध्वनि, मधुर-प्रिय, तंत्री-वीणा, तलताल-करताल, वंश-वांसणी ज्येभनाथी उत्पन्न होवा पहल ककुद-अत्यन्त, अभिराम-मनोहर ज्येवा शब्दोभां अनुरक्त थर्ता जे के तेओ मुदितमन-प्रसन्न थाय छे. परन्तु तेभनी श्रोत्रेन्द्रिय (जान) दुर्दमनीय होवा पहल ज्येठवे के मश्रोत्रेन्द्रिय उपर काणु जेणववातुं काम तेभना माटे अशक्य होवा पहल तेने वश थयेला प्राणीओ जेभ व्याधा-शिक्षारीना पीजराभां सपडछं जयेला तित्तिरीना शब्दने सालणीने तीतर पक्षी कामरागना

तिक्तिरः वधं=मरणं वन्धं=पञ्जरादि वन्धनं मामः-प्राप्नोतीत्यर्थः 'अथ'
वाक्यालङ्कारे ॥ २ ॥

मूलम्—थणजहणवयणकरचरणणयणगव्वियविलासियगईसु ।

रूवेसु रज्जमाणा रमंति चक्खिदियवसट्ठा ॥ ३ ॥

चक्खिदियदुदंत्तत्तणस्स अह एत्तिओ भवइ दोसो ।

जं जलणंमि जलंते पडइ पयंगो अबुद्धीओ ॥ ४ ॥

टीका—स्तनजघनवदनकरचरणनयणगर्वितविलासितगतिषु ।

रूपेषु रज्यमाना,—रमन्ते चक्षुरिन्द्रियवशात्तः ॥ ३ ॥

चक्षुरिन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य अथ एतावान् भवति दोषः ।

यद्ज्वलने ज्वलति, पतति पतङ्गः अबुद्धिकः ॥ ४ ॥

'थणे' त्यादि । चक्षुरिन्द्रियवशात्तः स्त्रीणां स्तनजघनादि रूपेषु रज्यमानाः
=अनुरक्ता रमन्ते ॥ ३ ॥

ज्वलने=अग्नौ । शेषं सुगमम् ॥ ४ ॥

होकर वध और बंधन को पाता है उसी तरह नाना प्रकार के वध बंधनों
को पाया करते हैं ॥ गा० १-२ ॥

'थणजहण, चक्खिदिय' इत्यादि ।

यद्यपि चक्षुर्इन्द्रिय के विषय की प्राप्ति करने में व्याकुल हुए प्राणी
उस विषय की प्राप्ति होने पर आनन्दमग्न बन जाया करते हैं—वे स्त्रियों
के स्तन, जघन, वदन, कर, चरण, नयन, गर्वित विलासयुक्त गमना-
दिरूप चक्षुर्इन्द्रिय के विषय को बार बार देखकर आसक्त होते हैं—
परन्तु यह इन्द्रिय जब दुर्दान्त बन जाया करती है—तब ऐसे प्राणी जिस

आवेशभां आर्षानि भृत्यु तेमज्ज अंधनने प्राप्ति करे छे, तेम ज्ज अनेक जतना
वधअंधने भेजवे छे. " गा. १-२ "

थण जहण चक्खिदिय इत्यादि—

जो के चक्षुर्इन्द्रियोना विषयोने भेजववा भाटे अत्यंत उत्सुक भनेला
प्राणीओ ते विषयोनी प्राप्ति थध जरा पाद आनंदमग्न थध जाय छे—तेओ
स्त्रीओना स्तन, जघन, सुष, हाथ, यरुण, नयन, गर्वित विलास-युक्त गमन
वगेरे इथ चक्षुर्इन्द्रियोना विषयोने बारबार नेधने आसक्त थउं जाय छे, परंतु आ
ध्इन्द्रिय न्यारे दुर्दान्त भनी जाय छे त्यारे ओवा प्राणीओ अज्ञानी पतंगनी

मूलम-अगुरुवरप्रवरधूपण उउय मल्लानुलेवणविहीसु ।

गंधेसु रज्यमाना रमन्ति घाणिंदियवसट्टा ॥ ५ ॥

घाणिंदियदुदंतत्तणस्स अहं एत्तिओ हन्नइ दोसो ।

जं ओसहिगंधेणं बिलाओ निच्चावइ उरगो ॥ ६ ॥

टीका-अगुरुवरप्रवरधूपन ऋतुजमालयानुलेपनविधिषु ।

गन्धेषु रज्यमाना, -रमन्ते घ्राणेन्द्रियवशात्ताः ॥ ५ ॥

घ्राणेन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य अथ एतावान् भवति दोषः ।

यद् औषधिगन्धेन बिलाद् निर्धावति उरगः ॥ ६ ॥

घ्राणेन्द्रियवशात्ताः अगुरुवरः=कृष्णागुरुः, प्रवरधूपनं=दशाङ्गादिरूपो धूपः, 'उउयमल्ल' ऋतुजमालयानि=उत्तद्ऋतुजातपुष्पाणि, अनुलेपनानि=चन्दनकङ्कुमादिरूपाणि, तेषां विधयः=प्रकारा येषु गन्धेषु तत्र रज्यमानाः=अनुरक्ताः सन्तो रमन्ते ॥ ५ ॥

‘ ओसहिगंधेणं ’ औषधिगन्धेन=केतक्यादिवनस्पतिसुगन्धानुरागवशेन

प्रकार अज्ञानी पतंग अपने प्राणों को अग्नि में डाल देता है उसी प्रकार उसी विषय में अपने प्राणों का नाश करते हैं ॥ गा० ॥ ३-४ ॥

अगुरुवर, घ्राणिय इत्यादि ।

घ्राणइन्द्रिय के वशवर्ती बने हुए प्राणी अगुरुवर-कृष्णागुरु, प्रवर, धूपन, -दशाङ्गादिरूप धूप, ऋतुजमालय-तत्तद्ऋतु के पुष्प, अनुलेपन-चन्दन कङ्कुम आदि के विविध लेप रूप गंध में अनुरक्त होते हुए हर्षित मन होते हैं, परन्तु वे इस इन्द्रिय की दुर्दमनता का कुछ भी विचार नहीं करते हैं। जब यह इन्द्रिय दुर्दमन बन जाती है-तब ऐसे प्राणी

जेम पोताना प्राणाने अग्निमां होमी हे छे, तेमजे ते पणु ते विषयमां ज पोताना प्राणाने नष्ट करी नाजे छे. “-गा. ३-४ ”

अगुरुवर, घ्राणिय इत्यादि ।

घ्राणइन्द्रियना वशमां पडेला प्राणीओ अगुरुवर-कृष्णागुरु, प्रवर, धूपन दशाङ्गादि रूप धूप ऋतु ज मालय-तत्तद् ऋतुना पुष्पा, अनुलेपन-चन्दन-कङ्कुम प्रगेरेना नतनतना लेपना गंधमां अनुरक्त थडने हर्षित थड नाय छे, परंतु छेकिकतमां तो तेओ ते इन्द्रियनी दुर्दमता विषेने होध पणु नतने विचार करता ज नथी. न्यारे ते इन्द्रिय दुर्दम भनी नाय छे त्यारे ओवा प्राणीओ

उरगः=सर्पः विलात् 'निधावई' निर्धावति=निस्सरति, ततो वधं वन्धनं च प्राप्नोतीति भावः । शेषं स्पष्टम् ॥ ६ ॥

मूलम्—तित्तकड्डय कसायं वमहुखज्जपेज्जलेज्जेसु ।

आसाएसु य गिञ्जा रमंति जिर्भिभदियवसट्टा ॥ ७ ॥

जिर्भिभदिय दुहंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।

जं गललग्गुक्खित्तो फुरइ थरविरह्खित्तो मच्छो ॥ ८ ॥

छाया—तित्तकडुककपायाम्लमधुरवहुखाद्यपेयलेहेषु ।

आस्वादेषु च गृह्णा, रमन्ते जिह्वेन्द्रियवशात्तर्पाः ॥ ७ ॥

जिह्वेन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य, अथ एतावान् भवति दोषः ।

यद् गललग्नोत्क्षिप्तः, स्फुरति स्थलं वरह्खित्तो मत्स्यः ॥ ८ ॥

टीका—जिह्वेन्द्रियवशात्तर्पाः—तित्तं=मरीचादिक, कडुकं=कारवेलादिकं, कपायः=आमलकादिकम्, अम्लं=काश्वादिकं, मधुरं=मोदकादिकं, बहु=अनेकविधं 'खज्ज' खाद्यं=कदलीकडादिकं, 'पेज्जं' पेयं=दुग्धादिकं, 'लेज्जं' लेहं=दधिशर्करादिकेतकी आदि की गंध से आकृष्ट बनकर जिस प्रकार बिल से निकला सर्प वधबंधन आदि कष्टों को पाता है वैसे कष्ट पाते हैं ॥ गा० ५-६ ॥

'तित्तकड्डय जिर्भिभय' इत्यादि ।

जो प्राणी जिह्वाइन्द्रिय के वशवर्ती बना रहता है वह मरीच आदि के जैसे तित्त स्वाद में करेला के जैसे कडुक स्वाद में, आमल आदि के जैसे कषायरस में करम्बादिके जैसे अम्ल-खट्टे रस में, मोदकादि के जैसे मधुर स्वाद में तथा विविध प्रकार के कदली फलादिक खाद्य पदार्थों में, दुग्धादि पेयपदार्थों में, एवं दधि और शक्कर आदि से निष्पन्न हुए

केतकी वगेरेनी गंधेथी आकृष्ट थधने जेम हरमांथी नीउगेथेी साप वधबंधन वगेरे कष्टेने प्राप्त करे छे तेमञ्ज कष्ट प्राप्त करे छे. ॥ गा. ५-६ ॥

तित्तकड्डय जिर्भिभय इत्यादि ।

जे प्राणी लुङ्गवा धन्द्रिय (लुल) ने वश थथेथेी डोय छे, ते मरथुं वगेरेना जेवा तीया स्वादमां, करेला जेवा कडवा स्वादमां, आमली वगेरेना जेवा उषाय रसमां, करंभादिना जेवा अरञ्ज-पारा रसमां, लाडवा वगेरेना जेवा मधुर स्वादमां तेमञ्ज नतनतनां केणां वगेरेना पाद्य पदार्थेमां, इध वगेरे जेवा पेय पदार्थेमां, अने हर्डी तेमञ्ज पांड वगेरेथी तैथार थथेथेी

નિષ્પન્નં શ્રીલ્પ્ઠાદિકમ્, एतेषां द्वन्द्वः, तेषु आस्वादेषु=आस्वाद्यन्ते इति आस्वादाः रसास्तेषु गृह्याः=आसक्ताः सन्तः रमन्ते ॥ ७ ॥

‘जिर्विभदिये’ त्यादि । पूर्वं गले=मत्स्यवेधने लग्नः, मत्स्यवेधनेन मुखे विद्ध इत्यर्थः, पश्चाद् उत्तिष्ठः=जलादुद्घृतः इति कर्मधारयः, एवंभूतो मत्स्यः स्थलविरल्लितः=स्थले निपातितः सन् स्फुरति व्याकुलो भूत्वा भूमौ लुठति । शेषं स्पष्टम् ॥ ८ ॥

मूलम्—उउभयमाणा सुहेसु य सविभवहिययमणनिव्वुइकरेसु ।

फासेसु रज्जमाणा रमंति फासिंदियवसट्टा ॥ ९ ॥

फासिंदिय दुदंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।

जं खणइ मत्थयं कुंजरस्स लोहंकुसो तिक्खो ॥ १० ॥

छाया—ऋतुभज्यमानमुखेषु च, सविभवहृदयमनोनिवृत्तिकरेषु ।

स्पर्शेषु रज्यमाना, रमन्ते स्पर्शेन्द्रियवशात्तार्चाः ॥ ९ ॥

स्पर्शेन्द्रिय दुर्दान्तत्वस्य, अथ एतावान् भवति दोषः ।

यत् खनति मस्तकं कुञ्जरस्य लोहाङ्कुशस्तीक्ष्णः ॥ १० ॥

टीका—‘उउभये’ त्यादि । स्पर्शेन्द्रियवशात्तार्चाः—‘उउभयमाणसुहेसु य’ ऋतुभज्य-
मानमुखेषु ऋतुषु=हेमन्तादिषु भज्यमानानि=सेव्यमानानि सुखानि, येषु ते,

श्री खंड आदि लेख्य पदार्थों में आसक्तमति होकर बड़ा हर्ष मनाया करते हैं । परन्तु जब इनकी यह इन्द्रिय दुर्दान्त बन जाती है तब ऐसे प्राणी जैसे मत्स्यवेधन से—मछली पकड़ने के कांटे—वंशी—से सुख में विद्ध हुआ मत्स्य जल में से खींचकर बाहर भूमिपर डाल दिया जाता है और वह भूमिपर तड़पू २ कर मर जाता है उस इन्द्रिय के विषय में फंमकर तड़पू २ कर मर जाया करते हैं ॥ गा० ७-८ ॥

श્રીખંડ વજેરે લેખ્ય (ચાટીને ખાઈ શકાય તેવા) પદાર્થોમાં આસક્ત થઈને ખૂબ જ હર્ષિત થતા રહે છે. પરંતુ જ્યારે તેમની આ ઇન્દ્રિય દુર્દાંત બની જાય છે, ત્યારે એવા પ્રાણી જેમ મત્સ્યવેધનથી—માછલી પકડવાના કાંટાથી મુખમાં વિદ્ધ થયેલું માછલું પ્રાણીમાંથી બહાર ખેંચીને બહાર જમીન ઉપર નાખવામાં આવે છે—અને તે જમીન ઉપર તડપી તડપીને મૃત્યુવશ થાય છે, તેમજ તે ઇન્દ્રિયના વિષયમાં ફસાઈને તડપી તડપીને મૃત્યુવશ થાય છે. ॥ ગા. ૭-૮ ॥

તેણુ તથોક્તેણુ તથા સપિમવાનાં-સંપત્તિશાલિનાં હૃદયસ્ય મનસશ્ચ નિર્વૃત્તિકરેણુ
સુલ્કરેણુ । एवं भूतेषु स्पर्शेषु रज्यमानाः=अनुरक्ताः रमन्ते ॥ ९ ॥

‘ ફાર્સિદિયે’ ત્યાદિ । કુચ્છરસ્ય=ઠરિગીસ્પર્શલુચ્છસ્ય હસ્તિનો મસ્તકં તીક્ષ્ણો-
લોહાક્ષુશઃ સ્વનતિ=વિદારયતિ । શેર્ષં મુગમમ્ ॥ ૧૦ ॥ ૫ ॥ સૂ૦ ॥

મૂલ્મ્-કલરિભિય મહુરતંતીતલતાલવંસકઝહામિરામેસુ ।

સદેસુ જં ન ગિદ્ધા વસટ્ટમરણં ન તે મરણ ॥ ૧૧ ॥

થગજહ્ણવયણકરચરણનયણગઠિવયવિલાસિયગર્હસુ ।

રૂવેસુ ન રક્તા વસટ્ટમરણં ન તે મરણ ॥ ૧૨ ॥

અશુરુવરપવરધૂવણ ઉડયમહ્ણાણુલેવણવિહીસુ ।

ગંધેસુ જે ન ગિદ્ધા વસટ્ટમરણં ન તે મરણ ॥ ૧૩ ॥

તિત્તકહુચકસાયંબમહુરવહુલ્લજ્જપેજ્જલેજ્જેસુ ।

આસાણસુ ન ગિદ્ધા વસટ્ટમરણં ન તે મરણ ॥ ૧૪ ॥

(ઉડઅયનાળં, ફાર્સિદિયદુહંત ઇત્યાદિ,

ટીકાર્થ-જો પ્રાણી સ્પર્શન ઇન્દ્રિયકે વશવર્તી હોતે હૈં વે અપની સ્પર્શ-
નેન્દ્રિયકી લોલુપતાસે હેમન્ત આદિ પ્રત્યેક ક્ષતુ સંબન્ધી સુખ ભોગતે હૈં ।
તથા સંપત્તિશાલિયોં કે હૃદય મેં ઓર મન સુલ્કર સ્પર્શોં મેં અનુરક્ત
વને રહતે હૈં । ઇસ તરહ કારતે ૨ જબ ઇનકી યહ સ્પર્શન ઇન્દ્રિય દુર્દાન્ત
વન જાતી હૈ તબ વે પ્રાણી જિસ પ્રકાર તીક્ષ્ણ લોહ કો અંકુશ કરિણી
(હસ્તિની) કે સ્પર્શ કરને મેં લુચ્છક બને હુણ મત્ત ગજરાજ કે મસ્તક
કો વિદાર દેતા હૈ ડસી તરહ ઇત્ત સ્પર્શન ઇન્દ્રિય કે દ્વારા વિનષ્ટ કર
દિયે જાતે હૈં ॥ ગા૦ ૯-૧૦ ॥

ઉ ડ મનસાળં, ફાર્સિદિયદુહંત ઇત્યાદિ ।

વે પ્રાણીઓ સ્પર્શેન્દ્રિયને વશ થાય છે, તેઓ પોતાની સ્પર્શેન્દ્રિયની
લોલુપતાથી હેમન્ત વગેરે દરેકે દરેક જતુઓના સુખો ભોગવે છે. તેમજ
સંપત્તિશાળીઓના હૃદય અને મનસુખદ સ્પર્શોમાં આસક્ત બનીને રહે છે.
આમ કરતાં કરતાં જ્યારે તેમની આ સ્પર્શેન્દ્રિય દુર્દાન્ત બની જાય છે ત્યારે
તે પ્રાણીઓ (હાથિણી) ને સ્પર્શવામાં લુચ્છક બનેલા મત્ત ગજરાજના
મસ્તકને વિદીલું કરી નાખે છે તેમજ આ સ્પર્શેન્દ્રિય વડે વિનષ્ટ કરી
નાખવામાં આવે છે. ॥ ગા. ૯-૧૦ ॥

उडभयमाणसुहेसु य सविभवहियमणनिव्वुइकरेसु ।

फासेसु जे न गिद्धा वसट्टमरणं न ते मरणं ॥ १५ ॥

टीका—शब्दादिविषयेष्वनासक्तानां वशात्तमरणं न भवतीति पञ्चभिर्गाथाभिः प्राह—‘ कलरिभिय ’ इत्यादि ।

कलरिभितमधुरतन्त्रीतलतालवशककुदाभिरामेषु ।

शब्देषु ये न गृद्धा,—वशात्तमरणं न ते भ्रियन्ते ॥ ११ ॥

स्तनजघनवदनकरचरणनयनगर्वितविलासितगतिषु ।

रूपेषु ये न रक्ता,—वशात्तमरणं न ते भ्रियन्ते ॥ १२ ॥

अगुरुवरप्रवरधूपन,—ऋतुअमालयानुलेपनविधिषु ।

गन्धेषु ये न गृद्धा,—वशात्तमरणं न ते भ्रियन्ते ॥ १३ ॥

तिक्तकटुककषायाम्ल, मधुरबहुस्वाद्यपेय लेह्येषु ।

आस्वादेशु न गृद्धा,—वशात्तमरणं न ते भ्रियन्ते ॥ १४ ॥

ऋतुभज्यमानसुखेषु च, सविभय हृदयमनोनिर्हृत्तिकरैषु ।

स्पर्शेषु ये न गृद्धा—वशात्तमरणं न ते भ्रियन्ते ॥ १५ ॥

आसाम् व्याख्या सुगमा ॥ १५ ॥ सू० ६ ॥

(कलरिभिय, धणजहण, अगुरुवरपवर, तिक्तकटुय, उडभयमाण, इत्यादि ।

इन गाथाओं द्वारा सूत्रकार यह प्रदर्शित करते हैं कि जो शब्दादि पांच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त नहीं पतते हैं उनका वशात्तमरण नहीं होता है । इन गाथाओं की व्याख्या सुगम है ।

जो प्राणी कर्णइन्द्रिय के निषयभूत शब्द में, चक्षुइन्द्रिय के विषयभूत रूप में नासिका इन्द्रियके विषयभूत गंध में जिह्वाइन्द्रिय के विषयभूत रस में, तथा स्पर्शन इन्द्रिय के विषयभूत स्पर्श में आसक्त-गृद्ध-नहीं होते हैं ॥ गा० ११-१५ ॥

कलरिभिय, धणजहण, अगुरुवरपवर, तिन कटुय उ उ भयमाण, इत्यादि ।

आ गाथाओ वडे सूत्रकार आ वात स्पष्ट करवा भागे छे के के शब्द वगेरे पांचे इन्द्रियोना विषयोओ आसक्त थता नथी, तेमनु वशात्तमरण थरु नथी, आ गाथाओनी व्याख्या सरण छे ।

के प्राणी कर्णइन्द्रियोना विषयभूत रूपमां, नासिका इन्द्रियोना, विषयभूत गंधमां; जिह्वा इन्द्रियोना विषयभूत रसमां तेमने स्पर्शन इन्द्रियोना विषयभूत स्पर्शमां अत्यंत आसक्त-गृद्ध थता नथी, तेओ वशात्तमरणे प्राप्त करता नथी ॥ गा. ११-१५ ॥

मूलम्—सहेसु य भद्रपावणसु सोयविसय उवागणसु ।
 तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ १६ ॥
 रुवेसुय भद्रपावणसु चक्खुविसय उवगणसु ।
 तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ १७ ॥
 गंधेसु य भद्रपावणसु घाणविसय उवागणसु ।
 तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ १८ ॥
 रसेसु य भद्रपावणसु जिबभविसय उवगणसु ।
 तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ १९ ॥
 फासेसु य भद्रपावणसु कायविसय उवगणसु ।
 तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ २० ॥

एवं खलु जंबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव संपत्तेणं
 सत्तरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते तिवेमि ।

॥ सत्तरसमं नायज्झयणं समत्तं ॥ १७ ॥

टीका—अनुकूल प्रतिकूलशब्दादिषु रागद्वेषवर्जनं पञ्चभिर्गाथामिः प्रतिबोध-
 यति—'सहेसु य' इत्यादि ।

शब्देषु च भद्रकपापकेषु श्रोत्रविषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ १६ ॥

सहेसुय; फासेसुय इत्यादि ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेण जाव संपत्तेणं सत्त-
 रसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते तिवेमि ॥

अथ सूत्रकार इह पांच गाथाओं द्वारा अनुकूल प्रतिकूल शब्दादि
 विषयों में श्रमणजन को कभी भी रागद्वेष नहीं करना चाहिये—इस

सहेसुय, फासेसुय इत्यादि

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेण जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स
 नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते तिवेमि ॥

सूत्रकार डेवे आ पांच गाथाओं व ठे ओ वात स्पष्ट करवा छिछे छे

के अनुकूल-प्रतिकूल शब्दादि विषयों में श्रमणजनोने कदापि राग-द्वेष नहि

रूपेषु च भद्रकपापकेषु, चक्षुर्विषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ १७ ॥

१-भद्रकपापकेषु=अनुकूल-प्रतिकूलेषु ।

गन्धेषु च भद्रकपापकेषु, प्राणविषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ १८ ॥

रसि च भद्रकपापकेषु, जिह्वाविषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ १९ ॥

स्पर्शेषु च भद्रकपापकेषु, कायविषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ २० ॥

विषय को समझाते हैं यहाँ भद्रक शब्द का अर्थ अनुकूल और पापक शब्द का अर्थ प्रतिकूल है । जब शब्द रूप विषय श्रोत्रेन्द्रिय का हो तो उस समय चाहे वह मनोज्ञ हो या अमनोज्ञ हो कैसा ही क्यों न हो उसमें श्रमण-साधु-को कभी भी तुष्ट अथवा रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ गा० ॥ १६ ॥

चक्षुइन्द्रिय का विषयभूतरूप जब उस इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने में आवे-तब वह चाहे मनोज्ञ हो या अमनोज्ञ हो उसमें श्रमण जन को कभी भी हर्ष विषाद-तुष्ट रुष्ट-नहीं होना चाहिये ॥ गा० १७ ॥

मनोज्ञ एवं अमनोज्ञ गंध जब प्राणइन्द्रिय का विषय हो तब साधु को उस विषय में कभी भी तुष्ट रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ गा० १८ ॥

मनोज्ञ अथवा अमनोज्ञ रस जिह्वाइन्द्रिय का विषय हो-तब उसमें श्रमण जन को कभी भी तुष्ट और रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ गा० १९ ॥

करवे। लोभ्ये अर्ही लद्रक शब्दने अर्थ अनुकूल अने पापक शब्दने अर्थ प्रतिकूल छे। न्यारे शब्दरूप विषय श्रोत्र इन्द्रियने होय तो लवे ते मनोज्ञ होय के अमनोज्ञ होय, गमे तेवे डेम न होय, तेमां श्रमण-साधु-ने कदापि तुष्ट के इष्ट थवुं लोभ्ये नहिं ॥ गा. १६ ॥

चक्षु इन्द्रियना विषयभूत रूप न्यारे ते इन्द्रिय वडे अडणु करवांमां आवे त्यारे ते मनोज्ञ होय के अमनोज्ञ होय, श्रमणने कदापि तेमां हर्ष-विषाद-तुष्ट-रुष्ट नहिं थवुं लोभ्ये ॥ गा. १७ ॥

मनोज्ञ अने अमनोज्ञ गंध न्यारे प्राण इन्द्रियने विषय होय त्यारे साधुने ते विषयमां कदापि तुष्ट के इष्ट नहिं थवुं लोभ्ये ॥ १८ ॥

मनोज्ञ अथवा तो अमनोज्ञ रस न्यारे जिह्वा इन्द्रियने विषय होय त्यारे तेमां श्रमण-जनने कदापि तुष्ट अने इष्ट थवुं लोभ्ये नहिं ॥ गा. १९ ॥

‘सहेषु य’ इत्यादि, गाथा पञ्चकं सुगमम् ॥

सुधर्मास्वामी प्राह—‘एवं खलु हे खम्बूः ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्संप्राप्तेन सप्तदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अपमर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः । इति ब्रवीमि—व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ७ ॥

इति श्री विश्वविख्यात - जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलित-
ललितकलापालापक - प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक
श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’ पदभूषित
कोल्हापुरराजगुरु-वालब्रह्मचारि जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री
घासीलालत्रतिविरचितायां श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रस्यानगारधर्माभृ-
तवर्षिण्याख्यायां व्याख्यायां सप्तदशमध्ययनं समाप्तं ॥ १७ ॥

८ आठ प्रकार का स्पर्श चाहे वह अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल हो—
जब २ स्पर्शन इन्द्रिय का विषय हो उसमें साधु को किसी भी तरह से
कभी भी तुष्ट एवं रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ २० ॥

इस प्रकार हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो सिद्धिगति
नामक स्थान को प्राप्त कर चुके हैं इस सत्रहवें ज्ञाताध्ययन का यह
पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्ररूपित किया है । ऐसा मैं उन्हीं के कहे अनुसार
कह रहा हूँ ।

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर श्री घासीलालजी महाराज कृत “ज्ञाता
धर्मकथाङ्गसूत्र” की अनगार धर्माभृतवर्षिणी व्याख्या का सत्रहवां
अध्ययन समाप्त ॥ १७ ॥

८ आठवो स्पर्श—अबै ते अनुकूल के प्रतिकूल गमे तेवे केम न डोय
व्यारे व्यारे ते स्पर्शन इन्द्रियेन विषय डोय तेमां साधुने केई पणु रीते
कदापि तुष्ट अने रुष्ट थहुं कोईअे नहि ॥ गा. २० ॥

आ प्रमाणे छे जंभू ! श्रमणु भगवान् महावीरे के जेमणु सिद्धगति
नामक स्थानने मेणुं छे—आ सत्तरमा ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वोक्त रूपमां
अर्थ प्ररूपित करीं छे. आहुं हुं तेमना कहेअु सुजण ज तमने कही रह्यो छुं.

श्री जैनाचार्य घासीलालजी महाराज कृत ज्ञातासूत्रनी अनगारधर्माभृतवर्षिणी
व्याख्यानुं सत्तरमुं अध्ययन समाप्त ॥ १७ ॥

॥ अथाष्टादशमध्ययनम् ॥

अथाष्टादशमारभ्यते, अस्य च पूर्वेण सहायमभिसम्बन्धः-पूर्वस्मिन् अध्ययने इन्द्रियवशवर्तिनाम् वशीकृतेन्द्रियाणां च अनर्थार्थौ प्रोक्तौ, इह तु लोभाविष्टानां लोभरहितानां च तावेवोच्येते, इत्येवं पूर्वेण सह संबद्धयिदमध्ययनम्, तस्येदमादिमं सूत्रम्-‘ जइणं भंते’ इत्यादि—

जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स णाय-
ज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते, अट्टारमस्स णं भंते ! णायज्झय-
णस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जंबू !
तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहं णामं णथरे होत्था ।
वण्णओ० । तत्थ णं धण्णे णामं सत्थवाहे । भद्दाभारिया तस्स
णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए अत्तया पंचसत्थवाह-

अठारहवां अध्ययन प्रारंभ

सुंसमादारिका का वर्णन

सत्रहर्वा अध्ययन समाप्त हो चुका है। अब १८ वां अध्ययन प्रारंभ होता है। इस अध्ययन का पूर्व अध्ययन के साथ इस प्रकार से संबन्ध है-कि पूर्व अध्ययन में इन्द्रियवशवर्ती तथा वशकृत इन्द्रियवाले जीवों को अर्थ की प्राप्ति होना कहा गया है। अब इस अध्ययन में सूत्रकार यह कहेंगे कि जो लोभ कषायसे युक्त तथा लोभ कषाय से रहित जीव होते हैं वे अनर्थ और अर्थ प्राप्ति से योग्य होते हैं। इस अध्ययन का सर्व प्रथम सूत्र यह है-‘ जइणं भंते ’ इत्यादि।

अठारहा अध्ययनने। प्रारंभ

सुंसमादारिकानुं वणुंन

सत्तरसुं अध्ययन पुइं थयु छे. डवे अठारहा अध्ययननी शइयात् थाय छे. आ अध्ययनने पडेला अध्ययननी साथे आ जातने संभध छे के पडेला अध्ययनमां इन्द्रिय वशवर्ती तेमज वशीकृत इन्द्रियेवाणा. एवोने अर्थनी प्राप्ति थाय छे, ते विषे कडेवामां आ०युं छे. सूत्रकार डवे आ अध्ययनमां आ वातनुं स्पष्टीकरण करशे के ने एवो लोभकषायथी तेमज लोभकषायथी रहित होय छे. तेओ अनर्थं अने अर्थं प्राप्तिने लायक करे छे. आ अध्ययननुं पडेलुं सूत्र आ छे—जइणं भंते समणेणं महावीरेणं इत्यादि—

दारगाहोत्था, तं जहा—धण्णे धणपाले, धणदेवे, धणगोत्रे, धणर-
 विखए । तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्सधूया भद्दाए अत्तया
 पंचणहं पुत्ताणं अणुमग्गजातीया सुंसुमाणां दारिया होत्था,
 सुमालपाणिपाया, तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स चिलाए नामं
 दासचेडे होत्था, अहीणपंचिदियसरीरे संसोवचिए वालकाल्लवि-
 णकुसले यावि होत्था । तएणं से चिलाए दासचेडे सुंसुमाए दारियाण
 बालग्गाहे जाए यावि होत्था । सुंसुमं दारियं कडीए गिणहइ,
 गिणहत्ता, बहूहिं दारएहि य दारियाहि य वालेहिं वालियाहि य
 डिंभएहिं य डिंभियाहि य कुमारएहिं य कुमारियाहि य सद्धिं
 आभिरममाणे २ विहरइ । तएणं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं
 दारियाण य जाव अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, एवं वडइ
 आगेलियाओ, तेंदुसए, पोतुल्लए, साडोल्लए, अप्पेगइयाणं
 आभरणमल्लालंकारं अवहरइ अप्पेगइए आउस्सइ, एवं अवहसइ
 निच्छोडेइ, निब्भच्छेइ तज्जेइ, अप्पेगइए तालेइ । तएणं ते
 बहवे दारगा य ६ जाव रोयमाणा य कंदमाणा य साणं २
 अम्मापिऊणं णिवेदेति । तएणं तेसिं बहूणं दारगाणय ६
 जाव अम्मापियरो जेणेव धन्ने सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति,
 उवागच्छित्ता धन्ने सत्थवाहे बहूहिं खिज्जणाहि य रंटाणाहि
 य उवलंभणाहि य खिज्जमाणाहिय रंटाणाहि य उवलंभमाणा
 य धण्णस्स एयमट्टं णिवेदेति ॥ सू० १ ॥

टीका—' जइणं भन्ते ! ' इत्यादि । जम्बूस्वामीपृच्छति—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावन्मोक्षं सम्प्राप्तेन सप्तदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अयमर्थः जितेन्द्रियाऽजितेन्द्रियाणामर्थानर्थप्राप्तिरूपो भावः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः, अष्टादशस्य तु ज्ञाताध्ययनस्य श्रमणेन यावन्मोक्षं सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? सुधर्मास्वामी प्राह—एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरमासीत्, ' वण्णओ ' वण्णो=तेषां वण्णानां पूर्ववद् विज्ञेयम् । तत्र खलु धन्यो नाम सार्थवाहः परिवसति । तस्य भद्रा नाम भार्याऽसीत् । तस्य खलु धन्यस्य सार्थवाहस्य पुत्राः, भद्राया आत्मजाः पञ्च 'सार्थवाहदारका आसन् । तेषां नामान्याह—' तं जहा ' तद्यथा—

टीकार्थ—जम्बू स्वामी श्री सुधर्मास्वामीसे पूछते हैं कि—(जइणं भन्ते ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते अट्ठारसमस्स ण भन्ते णायज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ?) हे भदन्त ! श्रमण भगवान महावीर ने जो कि सिद्धिगति नाम क स्थान को प्राप्त कर चुके हैं मन्त्रहवे ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्रज्ञप्त किया है—तो उन्हीं सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए श्रमण भगवान महावीर ने १८ वें ज्ञानाध्ययन का क्या अर्थ प्ररूपित किया है ? (एवं खलु जम्बू !) इस प्रकार जम्बू स्वामी के पूछने पर सुधर्मास्वामी उनसे कहते हैं कि जम्बू ! सुनो—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—(तेषं कालेणं तेषं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था । वण्णओ० तत्थणं धणणे णामं सत्थवाहे—भद्रा भारिया—तस्सणं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए अत्तथा पंच सत्थवाहदारगा होत्था, तं जहा—

टीकार्थ—जम्बू स्वामी श्री सुधर्मास्वामीने पूछे छे डे—

(जइणं भन्ते ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते अट्ठारसमस्स णं भन्ते णायज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ?)

हे भदन्त ! श्रमण भगवान महावीर ने जम्बूओ सिद्धिगति नामक स्थानने मेणवी युक्था छे—सत्तरमा ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वोक्त रूपे अर्थ निरूपित कथी छे तो ते जम्बूओ सिद्धिगति नामना स्थानने मेणवी युक्थेला श्रमण भगवान महावीर १८ मा ज्ञाताध्ययनने शो अर्थ प्ररूपित कथी छे ?

(एवं खलु जम्बू !) आ प्रभाषे जम्बू स्वामीओ प्रश्न पूछथे त्थाराह श्री सुधर्मास्वामी तेमने कडे छे डे छे जम्बू ! सांख्यो, तभारा प्रश्नने जम्बूओ आ प्रभाषे छे—

(तेषं कालेणं तेषं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था ! वण्णओ० तत्थणं धणणे णामं सत्थवाहे—भद्रा भारिया—तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए

धनः १ धनपालः २ धनदेवः ३ धनगोपः ४ धनरक्षितः ५ इति । तस्या खलु धन्यस्य सार्थवाहस्य दुहिता भद्रायाः सार्थवाहा आत्मजा धनादीनां पञ्चानां पुत्राणाम् 'अणुमग्गाइया' अनुमार्गजातिका=जाता एव जातिका, अनुमार्ग जातिका=अनुमार्गजातिका=पश्चाज्जाता सुंसुमा नाम दारिका आसीत् । कीदृशी सा ?-'सुमालपाणिपाया' सुकुमार पाणिपादा=कोमलकरवरणा । तस्य खलु धन्यस्य सार्थवाहस्य चिलातो नाम दासचेटः=दासपुत्र आसीत् । योहि 'अहिण-

घण्णे २- घणपाले-२ घणदेवे ३, घणगोवे-४ घणरक्षिण-५) उस काल और उस समयमें राजगृह नाम का नगर था । इसका वर्णन पहले जैसा ही जानना चाहिये । उस नगर में धन्य नामका सार्थवाह रहता था । इसकी पत्नी का नाम भद्रा था । इस भद्रा भार्या से उत्पन्न हुए धन्य सार्थवाह के ये पाँच पुत्र थे-धन-१ धनपाल-२ धनदेव-३ धनगोप-४ और धनरक्षित-५ ।

(तस्सणं घण्णस्स सत्यवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गाजातीया सुंसुमा णामं दारिया, होत्था, सुमालपाणिपाया, तस्स णं घण्णस्स सत्यवाहस्स चिलाणामं दासचेडे होत्था, अहं णं पंचेदिय सरीरे मंसोवचिए, बालकीलावणकुसले यावि होत्था) इस धन्य सार्थवाह के भद्रा भार्या की कुक्षि से उत्पन्न एक सुंसुमा नामकी पुत्री थी-जो धनादिक पाँच पुत्रों के पीछे उत्पन्न हुई थी । इसके कर, चरण बड़े कोमल थे । इस धन्य सार्थवाह का एक दासचेट-दास पुत्र-था-जिस

अत्तया पंच सत्यवाहदारगा होत्था, तं जहा-घण्णे १, घणपाले २, घणदेवे ३, घणगोवे-४, घणरक्षिण-५)

तेकाणे अने ते सभये शब्दनामो नगरं हुतुं । तेतुं वर्षुन पडेलानी जेम सभल्ल वेतुं जेधंजे । ते नगरमां धन्य नामे सार्थवाह रडेतो डेतो । तेनी पत्नीतुं नाम भद्रा हुतुं । ते भद्रा भार्याना गलथी जन्म पामेला पांच पुत्रो हुता, तेमना नाम आ प्रभाण्णे छे-धन-१, धनपाल-२, धनदेव-३, धनगोप-४, अने धनरक्षित-५ ।

(तस्स णं घण्णस्स सत्यवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गाजातीया सुंसुमा णामं दारिया, होत्था, सुमालपाणिपाया, तस्स णं घण्णस्स सत्यवाहस्स चिलाणामं दासचेडे होत्था, अहं णं पंचेदिय सरीरे मंसोवचिए, बालकीलावणकुसले यावि होत्था)

ते धन्य सार्थवाहनी भद्रा-भार्याना गलथी जन्म पामेदी सुंसुमा नामे जेक पुत्री डती । ते धन वगेरे योताना लार्थजो भाद उत्पन्न थर्ध डती । तेना साथ-पण णहुं जे कामण डता । ते धन्यसार्थवाहने जेक दासीपुत्र डतो । तेनुं

पंचिदियसरीरे ' अहीनपञ्चेन्द्रियशरीरः=प्रतिपूर्णसर्वेन्द्रियशरीरः, ' मंसोवचित् ' मांसोपचितः=मांसैरुपचितः, पुष्टशरीर इत्यर्थः, पुनः ' बालक्रीलावणकुसले ' बालक्रीडनकुशलश्चापि आसीत् । ततः खलु स दासचेटः सुंसुमाया दारिकायाः ' बालगगाहे ' बालग्राहः धो हि बालक्रीडयितुं नियुक्तो भृत्यः स ' बालग्राहः ' इत्युच्यते जाताश्चाप्यभवत् । सहि चिलातः सुंसुमां दारिकां कटथां गृह्णाति, गृहीत्वा, बहुभिर्दारिकैश्च दारिकाभिश्च बालकैश्च बालिकाभिश्च, डिम्भकैश्च डिम्भिकाभिश्च कुमारैश्च कुमारिकाभिश्च सार्द्धम्=दारकडिम्भकबालककुमारानां अल्प, बहु, बहुतर कालकृतभेदो विज्ञेयः, अभिरममाणः २ = पुनः पुनः क्रीडन् विहरति । ततः खलु स चिलातो दासचेटः तेषां बहूनां ' दाराण जाव ' दारकाणां यावत्=दारकाणां दारिकाणां डिम्भकानां डिम्भिकानां कुमारानां कुमारिकाणां

का नाम चिलात था । जो प्रमाणोपेत पांचों इन्द्रियों से परिपूर्ण शरीर वाला था । मांसोपचित था पुष्ट देहवाला था । यह बालकों को खिलाने में विशेष कुशल था । (तएणं से चिलाए दासचेडे सुंसुमाए दारियाए बालगगाहे जाए यावि होत्था सुंसुमदारियं कडीए गिण्हइ, गिण्हत्ता बहूहिं, दारएहिं य दारियाहिं य... विहरइ-तेसिं बहूणं दारियाण य जाव अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, एवं वइए आडोलियाओ तेंदुरुए पोत्तुल्लए साडोल्लए, अप्पेगइयाणं आभरणं मल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइयाए आउस्सइ, एवं अवहरइ, निच्छेडेइ, निग्भच्छेइ तज्जेइ अप्पेगइए ताळेइ) इसलिये वह दासचेट सुंसुमा दारिकाके खिलाने के लिये नियुक्त हो गया । अतः वह चिलान दास चेटक सुंसुमादारिका को गोदी में लेकर अनेक दारक दारिकाओं के साथ बालक बालिकाओं के साथ डिम्भक डिम्भिकों के साथ और कुमार कुमारिकों

नाम चिलात इतुं ते सप्रभाषु पांचे इन्द्रियेथी परिपूर्णु शरीरवाणे इतो । ते मांसद तेमञ्च पुष्ट शरीरवाणे इतो । ते आणकाने रभाउवामां सविशेषयतुर इतो ।

(तएणं से चिलाए दासचेडे सुंसुमाए दारियाए बालगगाहे जाए यावि होत्था सुंसुम दारियं कडीए गिण्हइ, गिण्हत्ता बहूहिं, दारएदि य दारियाहिं य विहरइ तेसिं बहूणं दारियाण य जाव अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, एवं वइए आडोल्लियाओ तेंदुरुए पोत्तुल्लए, साडोल्लए, अप्पेगइयाणं आभरणं मल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइए, आउस्सइ, एवं अवहरइ, निच्छेडेइ, निग्भच्छेइ, तज्जेइ, अप्पेगइए ताळेइ)

तेथी ते दासचेर सुंसुमा दारिकाने रभाउवामां माटे नियुक्त करवामां आयेथी । आ प्रभाषु ते चिलात दास चेरक सुंसुमा दारिकाने जेणामां जेसा-
दीने धणु दासक दारिकाओनी साथे आणक तेमञ्च आणामां साथे डिम्भक

च मध्ये 'अप्येगहयाणं' अप्येकेषाम् 'खुल्लए' क्षुल्लकान्=कपर्दकविशेषान् 'कोडी'
इति भाषा प्रसिद्धान् अपहरति=चोरयति। एवं 'वट्टए' वर्तकान्=जत्वादिमयगोलकान्
'आडोलियाओ' आडोलिका इति नाम्ना प्रसिद्धान् बाल क्रीडनवस्तुविशेषान् 'तैदूसए'
देशीशब्दोऽयम्-गेन्दुकान् 'पोतुल्लए' वल्लमयपुत्तल्लिकाः, 'साडोल्लए' उत्त-
रीयवस्त्राणि चोरयति। तथा अप्येकेषाम् आभरणमालयालङ्कारान् अपहरति। अन-
न्तरम् 'अप्येगहए' अप्येककान् 'आउस्सइ' आकुञ्चयति=निष्ठुरवचनेन 'एवं'
अवहसइ' अपहसति=अपशब्दमुच्चार्य हास्यं करोति, 'निच्छोडेइ' निच्छोटयति=
'यदि त्वं किमपि वदिष्यसि तदा त्वां वहिर्निष्काशयिष्यामीत्यादि शब्दैस्तात्
भीषयति, तथा 'णिम्भच्छेइ' निर्भर्त्सयति=तेषां निर्भर्त्सनां करोति, एवं
'तइजेइ' तर्जयति 'मया कृतं किमपिकार्यं यदि स्व मातापितृभ्यो यूयं वदिष्यथ

के साथ बार २ खेलने में लगा रहता। खेलते २ वह चिलात दास-
चेटक उन अनेक दारक दारिका, डिम्भका, डिम्भिका, कुमार कुमा-
रिकाभा में से कितनेक बच्चों के खेलने के साधन भूत कपर्दक
विशेषों को कौडियों को चुरा लेता कितनेक के जतुके बने हुए चपेटों
को, कितनेक के अडोलिक नाम से प्रसिद्ध खिलेनों को, कितनेक घच्चों
की गेंदों को कितनेक बच्चों की वस्त्र के बनी हुई गुडियों को, तथा
कितनेक बच्चों के उत्तरीयवस्त्रों-को फरियों को चुरालेता था। कितनेक
बच्चों के आभरणों को मालाओं को और अलंकारों को भी चुरालिया
करता था कितनेक बच्चों को गाली देना कितनेक बच्चों की वह नि-
ष्ठुर बचनों को उच्चारण कर हँसी मजाक करने लग जाता था। यदि
तू कुछ कहेगातो मैं तुझे यहाँ से बाहिर निकाल दूंगा इत्यादि शब्दों
से कितनेक बच्चों को वह डरा दिया करता था। कितनेक बच्चों को

अने डिंलिकञ्जे साथे अने कुमार कुमारिकाञ्जेानी साथे वारवार रभवामां ७
शेठी रछेता डते। ते खिलात दासखेर रभतां रभतां धलुं दारक-दारिक,
डिंलक-डिंलिक, कुमार-कुमारिकाञ्जेमांथी डेटलाक भाणकेनां रभवानां साधन
कपर्दक विशेषेने-कोडीञ्जेने थोरी लेता, डेटलाकनां लाभना अनेला चपेटा-
ञ्जेने, डेटलाकनां अडोलिक नामथी प्रसिद्ध जेवा रभकडांञ्जेने, डेटलाक भाण-
केनी हडीञ्जेने, डेटलाक भाणकेनी वस्त्रथी अनेली हीगलीञ्जेने तेम ७ डेटलाक
भाणकेना उत्तरीय वस्त्रोने थोरी जते डते। ते डेटलाक भाणकेना आभरणोने,
भाणोने अने धरेणुंञ्जेने पणु थोरी जते डते। ते डेटलाक भाणकेने
गाणो डते अने डेटलाक भाणकेनी निष्ठुर वचनेना जोलीने हठा-भशकरी करवा
दागतो डते। "जे तु कंघं पणु जोलथे तो हुं तने अहीथी पडार काडी

तदायुष्माकं प्राणान् अपहरिष्यामीत्येवंरूपैर्वाक्यैरङ्गुलिनिर्देशपूर्वकं तेषु भीतिमुत्पादयति । तथा अप्येककान् बालकान् 'तालेइ' ताडयति चपेटादिभिः । ततः खलु ते बहवो दारकश्च यावत्-कुमारिकाश्च सर्वे बाला 'रोयमाणा य' रुदन्तश्च 'कंदमाणा य' क्रन्दन्तश्च=उच्चैः स्वरेण चीत्कारं कुर्वन्तः 'साणं २' स्वेषाम् २ 'अम्मापिऊण' अम्मापितृभ्यइदमर्थं निवेदयन्ति । ततः खलु तेषां बहूनां=दार-

वह निर्भर्त्सित कर देता "मेरा किया हुआ कुछ भी काम यदि तुम-लोग अपने माता पिता से कहोगे-तो याद रखना मैं तुम्हारे प्राणों को ले लूंगा-तुम्हें जान से मार डालूंगा" इस तरह कितनेक बालकों को वह अंगुलि दिखा २ कर भयभीत कर दिया करता । कितनेक बालकों को वह थप्पड़ आदि भी मार देता । (तएणं ते बहवे दारगा-य जाव रोयमाणा य कंदमाणा य ४ सायं २ अम्मापिऊणं णिवेदेति, तएणं तेसिं बहूणं दारगाण य ६ जाव अम्मापिउरो जेणेव धण्णे सत्थ-वाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता धण्णं सत्थवाहं बहूहिं खिज्ज-णाहिं य रुंउणाहिं य उवलंभणाहिं य खिज्जमाणाय रुंउमाणाय उवलं भेमाणा य धण्णस्स एयमट्ठं णिवेदेति) इस तरह वे अनेक दारक यावत् कुमारिकाएँ सब ही रो रो कर के आक्रंदन करके-उच्चस्वर से चीत्कार करके-अपने २ माता पिताओं से उस दासचेटक की इस वार्ता

भूक्रीश वगेरे वय्थेनाथी डेट्ठांक आणकेने ते णीवडावी देतो डेतो. डेट्ठांक आणकेनी ते बत्संता पणु करतो डेतो-भारी डेछि पणु वात तमे तभारा मातापिताने डडेथो तो थड राभणे हुं तभने शुवता नडि छेडुं. तभने हुं नानथी भारी नाभीश. "आ प्रभाणु डेट्ठांक आणकेनी सामे ते आंगणीओ थीधी थीधीने णीवडावी देतो डेतो. डेट्ठांक आणकेने ते तभान्थे वगेरे पणु दगावी देतो डेतो.

(तएणं ते बहवे दारगा य ६ जाव रोयमाणा य कंदमाणा य ४ सायं २ अम्मापिऊणं णिवेदेति, तएणं तेसिं बहूणं दारगाण य ६ जाव अम्मापिउरो जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता धण्णं सत्थवाहं बहूहिं खिज्ज-णाहिं य रुंउणाहिं य उवलंभणाहिं य खिज्जमाणा य रुंउमाणा य उवलंभेमाणा य धण्णस्स एयमट्ठं णिवेदेति)

आ प्रभाणु ते धण्णां दारक यावत् कुमारिकाओ रउतां रउतां, आरुंढं न कस्तां कस्तां, मोटा साहे थीत्कार करीने पोतपोतानां मातापिताने ते दास-चेटकी भराभ वर्तणुक विषे क्षरियादो करवा लाग्यां. पोतानां आणकेने

कादीनां अम्वापितरः यत्रैव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य धन्यं सार्थवाहं बहुभिः 'खिज्जणाहि य' खेदनाभिश्च=खेदजनकवाग्भिः 'रुंठणाहि य' रोदनाभिः साश्रुद्धितवाग्भिः, 'उवलंभणाहि' उपालम्भनाभिः=किमेतदुचितम् ? भवाद्दशाम् ? इत्यादि वाग्भिश्च 'खेज्जमाणा' खेदयन्तः स्वखेदं प्रकाशयन्तः 'रुंठमाणा य' रूदन्त उवलंभमाणा य' उपालम्भयन्तश्च धन्याय सार्थवाहाय एतमर्थं=चिलातकृताऽपराधरूपमर्थं निवेदयन्ति ॥ सू० १ ॥

मूलम्-तएणं से धणणे सत्थवाहे चिलायं दासचेडं एय-
मट्टं मुज्जो मुज्जो णिवारेइं, णो चेव णं चिलाए दासचेडे
उवरमइ। तएणं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं दारगाण
य ६ अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ जाव तालेइ। तएणं ते
बहवे दारगा य जाव रोयमाणा य जाव अम्मापिऊणं जाव
णिवेदेति। तएणं ते आसुरुत्ता जेणेव धणणे सत्थवाहे तेणेव

की शिकायत करने लगे। अपने २ बालकों के मुख से इस प्रकार की दासचेटक थी हरकत सुनकर उन दारक आदि को के माता पिता जहां धन्य सार्थवाह होता था वहां आते और आकर के धन्य सार्थवाह को अनेक खेदजनक वचनों द्वारा रोते २ उपालंभ=उलहना दिया करते-क्या आप जैसे व्यक्तियों को यह उचित-है-इस तरह से उससे कहा करते। इस तरह वे खेदजनक तथा अश्रु मरकर कही गई वाणियों द्वारा अपना खेदप्रकाशित करते हुए रोते हुए एवं उलहना देते हुए धन्यसार्थ-वाह के लिये चिलातकृत अपराध रूप अर्थ की निवेदना करते ॥सू० १॥

मुपेथी आ प्रभाणे दास चेटकणी अराभ वत्तल्लुक विषेणी विगत सांलणीने ते दारक वजेरेनां मातापिता न्यां धन्यसार्थवाहं डो तो त्यां आपता अने आपीने धन्यसार्थवाहने धणुं कडोर वयनेथी रडतां रडतां ठपके आपतां रडेतां डतां. " शुं तमारी जेवी व्यक्तिने आ वात शोखे छे ? " आ प्रभाणे ते कथां करतां डतां आ प्रभाणे तेजो जेदजनक तेमज अश्रुषीनी डालतमां कडेडी वाणुओ वडे पोतातुं दुःख प्रकट करतां, रडतां तेमज ठपके आपतां धन्य-सार्थवाहने खिलाते जे कंधं अराभ वत्तल्लुक करी डोय ते पहल इरियाडो कडतां रडेतां डतां. ॥ सूत्र १ ॥

उवागच्छइ, उवागच्छिता बहूहिं खेज्जणाहिं जाव एयमट्टं
 णिवेदेति । तएणं से धण्णे सत्थवाहे बहूणां दारगाणं ६
 अम्मापिऊणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा आसुरुत्ते चिलायं दासचेडं
 उच्चावयाहिं आउसणाहिं आउसइ, उज्जंसइ, णिब्भच्छेइ
 निच्छोडेइ, तज्जेइ उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ, साओ
 गिहाओ णिच्छुभइ । तएणं से चिलाए दासचेडे साओ
 गिहाओ निच्छूडे समाणे रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव
 पहेसु देवकुलेसु य सभासु य पवासु य जूयखलएसु य
 वेसाघरेसु य पाणघरेसु य सुहं सुहेणंपरिवड्ढइ ॥सू० २॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु धन्यः सार्थवाहः चिलातं दास-
 चेडम् ‘ एयमट्टं ’ एतमर्थम्=एतस्मादर्थात् दारकादीनां कपर्दकापहरणादिरूपोद-
 र्थात् भूयोभूयो निवारयति । नो चैव खलु दासचेट एतस्माद्दुष्कृत्यादुपरमते ।
 ततः खलु स चिलातो दासचेटः तेषां बहूनां ‘ दारगाण य ’ दारकाणां च=दार-

तएणं से धण्णे सत्थवाहे इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं से धण्णे सत्थवाहे) इसके बाद उस धन्यसार्थवाहने
 (चिलायं दासचेडं) चिलात दास पुत्र को (एयमट्टं सुज्जो २ णिवारेइ)
 बालकों के कपर्दक आदि चुराने रूप अर्थ से बार २ मना किया, परन्तु
 (जो चैव णं चिलाए दासचेडे उवरमइ) वह चिलात दारक उस काम
 से विरक्त नहीं हुआ । (तएणं से दासचेडे तेसिं बहूणां दारगाण य ६

तएणं से धण्णे सत्थवाहे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं से धण्णे सत्थवाहे) त्थारभाह ते धन्य सार्थवाडे (चिलायं दास
 चेडं) चिलात दासपुत्रने (एयमट्टं सुज्जो २ णिवारेइ) भाण्डेनी केडीओ
 वगेडेने बोदी जवा भदल वारंवार मनाथ करी, परंतु (जो चैव णं चिलाए
 दासचेडे उवरमइ) ते चिलात दारक पोतानी भरभ वर्तलुक छोडीने सुधर्थो नडि.

(तएणं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणां दारगाण य ६ अप्पेगइयणं

कादीनां मध्ये अप्येकेषां 'खुल्लए' खुल्लकान्=कपर्दकविशेषान् अपहरति 'जाव तालेइ' यावत्ताडयति=पूर्वोक्तक्रमेण एव कपर्दकाद्यपहरणं यावत्तर्जनं ताडनं च करोति । ततः खलु वहवो दारकाश्च दारकादयो रुदन्तश्च यावत् स्वेपां २ अम्बापितृभ्यो निवेदयन्ति । ततः खलु ते आसुरुताः=स्व पुत्रवचनं श्रुत्वा झटिति क्रोधाविष्टमानसाः यत्रैव धन्यः सार्थवाहः तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य बहूभिः 'खेज्जणाहि जाव एयमट्टं' खेदनाभिर्यावत् एतमर्थम्=खेदसंमूचनाभिर्यावत् उपालम्भनयुक्ताभिर्वाग्भिः चिलातदासचेट्क कृताऽपराधलक्षणम् अर्थम् निवेदयन्ति । ततः खलु धन्यः सार्थवाहो बहूनां 'दारगाणं' दारकाणां ६=दारकादीनाम् अम्बापितृणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य आसुरुताः चिलातः दासचेट्म् 'उच्चावचाभिः=अनेकविधाभिः 'आउमणाहि' आक्रोशनाभिः=क्रोपजनकैर्वचनैः 'आउसइ' आक्रुश्यति=आक्षिपति 'उद्धंसइ' उद्धर्षयति=नामगोत्रादिनाऽधः पातयति-निन्दतीत्यर्थः । नेत्रमुखादि वक्रीक्रमणेन 'णिम्भच्छेइ' निर्भर्त्सयति=

अप्येगृह्याणं खुल्लए अवहरइ जाव तालेइ, तएणं ते बहवे दारगा य जाव रोयमाणा य जाव अम्मापिऊणं जाव णिवेदेति) इस तरह समझाने पर भी वह चिलात दासचेट उन अनेक दारकों आदि में से कितनेक दारक आदिकों के कपर्दक (कौड़ी) विशेषों को चुराता रहा। यावत् उन्हें ताडित करता रहा-मारता पीटता रहा। और वे बालक आदि भी रोते हुए अपने २ माता पिताओं से उस के अपराध को जा २ कर कह देते रहे। (तएणं ते आसुरुता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता, बहूहि खेज्जणाहि जाव एयमट्टं णिवेदेति, तएणं से धण्णे सत्थवाहे बहूणं दारगाणं अम्मापिऊणं अतिए एयमट्टं सोच्चा आसुरुत्ते चिलायदासचेडं उच्चावचाहि आउमणाहि आउसइ उद्धंसइ णिम्भच्छेइ,) इस प्रकार अपने २ बालकों के मुख से धार २

खुल्लए अवहरइ जाव तालेइ, तएणं ते बहवे दारगा य जाव रोयमाणा य जाव अम्मापिऊणं जाव णिवेदेति)

आ प्रभाणे समनयवा छांअंते ते चिंसात दासचेट्क धणु दाउके वगे रेमां डेट्ठाक दाउके वगेरेनी केडीअंने चोरतो अ रद्धो यावत् ते ण उकेने ताडित कर्तो रद्धो, तेमअ भारतो पीटतो रद्धो. अने ते आउके वगेरे पणु रडता रडतां पीतपीतानां मातापिताने आनी इरियादो कर्ता अ रद्धां.

(तएणं ते आसुरुता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता बहूहि खेज्जणाहि जाव एयमट्टं णिवेदेति, तएणं से धण्णे सत्थवाहे बहूणं दारगाणं अम्मापिऊणं अतिए एयमट्टं सोच्चा आसुरुत्ते चिलायं दासचेडं उच्चावचाहि आउमणाहि आउसइ उद्धंसइ, णिम्भच्छेइ)

तिरस्करोति, ' निच्छोडेइ ' निच्छोटयति=त्यजति, ' तज्जेइ ' तर्जयति= ' निस्सर मम गृहात् नोचेत्त्रां ताडयिष्यामि ' इत्यादि वचनेन भर्त्सयति ' उच्चावयाहिं तालणाहिं ' उच्चाववाभिर्यष्टिमुष्ट्याद्यनेकविधाभिस्ताडनाभिः ' तालेइ ' ताडयति ' साओ गिहाओ ' स्वस्माद् गृहात् ' गिच्छुभइ ' निक्षिपति=निः सारयति । ततः खलु स चिलातो दासचेटः तेन सार्थवाहेन स्वस्माद् गृहात् ' गिच्छूडे ' निक्षिप्तः=निः सारितः सन् राजगृहे नगरे सिंघाडग जाव गहेसु श्रृङ्गाटक यात्रन्महापथपथेषु चतुष्पथादिषु सर्वत्र स्थलेषु, देवकुलेषु च सभासु च

चिलात दासचेटक की पूर्वोक्त अपराधों को जब २ वे सुना करते तब वे गुस्से में भर २ कर जहाँ धन्यसार्थवाह होता वहाँ चले जाते रहे । और वहाँ जाकर बड़े खेद के साथ रोते हुए अपने २ दुःखों को प्रकट करते रहे इस तरह बार २ उन दारक आदि के माता पिताओं के मुख से इस दासचेटक के दुष्कृत्य को सुनकर वह धन्य सार्थवाह क्रोध में आकर उस दासचेटक चिलात को अनेक विधकोप जनक ऊँचे नीचे शब्दों से धिक्कार ने लगते थे उसका नाम गोत्र आदि की निंदा करने लग जाते थे । नेत्र, मुख, आदि को टेडा करके उसका तिरस्कार भी करते थे । (गिच्छोडेइ, तज्जेइ, उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ, साओ गिहाओ गिच्छुभइ, तएणं से चिलाए दासचेडे साओ गिहाओ निच्छूडे समाणे रायगिहे गयरे सिंघाडग जाव पहेसु देवकुलेसु जाव सभासु

आ प्रभाणु पोतपोतानां आणकेने सुभेथी वारंवार शिखात दासचेटकनी इरियाहो न्यारे न्यारे तेओ सांभणतां त्यारे त्यारे तेओ गुस्से थधने न्यां धन्यसार्थवाड डता त्यां नता डता, अने त्यां नधने तेओ षडु न दुःअनी साथे रडतां रडतां पोतपोताना दुःभोने प्रकट करता रडता डता । आ प्रभाणु वारंवार ते दारक वगेरेना मातापिताना सुभथी ते दासचेटकनी अराभ वतंल्लुके विषेनी विगत सांभणीने ते धन्यसार्थवाड क्रोधमां भराधने ते दासचेटक शिखातने धणुा क्रोध उत्पन्न करे तेवा अराभ वयनेथी धिक्कारवा दागतो डतो तेभअ तेनां नाम गोत्र वगेरेनी निंदा करवा दागतो डतो । आंभो, सुअ वगेरे भगाडीने तेने तिरस्कार पणु करता रडता डता ।

(गिच्छोडेइ, तज्जेइ, उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ, साओ गिहाओ गिच्छुभइ, तएणं से चिलाए दासचेडे साओ गिहाओ निच्छूडे समाणे रायगिहे गयरे सिंघाडग ज व पहेसु देवकुलेसु जाव सभासु य पवासु य जूय खलपसु य वेसा धरेसु य पाणधरेसु य सुहं सुहेणं परिवद्धइ)

प्रपासु=पानीयशालासु च 'जूय खलएसु' द्यूतखलकेषु=द्यूतक्रीडनस्थानेषु च 'वेसाघरेसु' वेश्यागृहेषु च पाणघरेसु 'पानगृहेषु=मद्यपानगृहेषु च सुखं सुखेन परिवडूह' परिवर्द्धते=वृद्धिं प्राप्नोति ॥ सू० २ ॥

मूलम्—तएणं से चिलाए दासचेडे अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई सइरप्पयारी मज्जप्पसंगी चोज्जप्पसंगी संसप्पसंगी जुयप्पसंगी वेसापसंगी परदारप्पसंगी जाए यावि

य पवासु य जूयखलएसु य वेसाघरेसु य पाणघरेसु य सुहंसुहेण परिवडूह) और यहाँ तक हुआ कि कभी २ वह उसे छोड़ भी देता रहा और कभी २ तू मेरे घर में से निकल जा नहीं तो मैं तुझे मारूँगा इस तरह के वचनों से उस को निरस्कार भी कर देते थे। परन्तु जब इस की शिक्षाओं का या भय प्रदर्शक वाक्यों का उस चिलात दासचेटक पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा तब अन्त में धन्य सार्थवाह ने हताश होकर उसे अनेक विध यष्टि सुष्टि आदिकी ताडनाओं से ताडित कर अपने घर से बाहिर निकाल दिया। इस तरह जब धन्य सार्थवाह ने इसे अपने घर से बाहिर निकाल दिया—तब यह राजगृह नगरमें श्रृंगाटक आदि मार्गोंमें अवारा (स्वच्छन्दगामी) फिरने लगा और देवकुलों में सभास्थानों में, पानीय शालाओं में—घाऊ घरों में, जुआ खेलने के स्थानों में वेद्याओं के घरोंमें, और शराब पीने की जगहों में घूम फिर कर जिस किसी भी तरह से अपना पालन पोषण करने लगा ॥सू० २॥

अने छेवटे आ वात त्यां सुधी पडोन्धी के कोर्ध कोर्ध वण्णते ते तेने षडार पणु काढी भूकतो इतो. अने कोर्ध कोर्ध वण्णते तेने आ नतनां वचनोथी षपके पणु आपतो रडेतो इतो के तुं भारा धरमांथी नीकणी न नडितर तने हुं भारी नाणीश परंतु न्यारे आ नतनी शिक्षाओनी के वय प्रदर्शननी ते दास चेटक ऒपर कशी असर थर्ध नडिे त्यारे छेवटे धन्यसार्थवाडे इताश थधने तेने लाकडी, सुक्खो वगेरेथी ताडित करीने पोताना घेरथी षडार काढी भूकथो. आ प्रभाणु न्यारे धन्य सार्थवाडे तेने पोताना घेरथी षडार काढी भूकथो त्यारे ते राजगृह नगरनां श्रृंगाटक वगेरे रस्ताओमां रण्डेलनी जेम लटकवा लाग्थो अने देवकुणोमां, सभास्थानोमां, परणोमां, लुगारना अड्डाओमां, वेश्याओनां धरोमां अने शराभणानाओमां लटक्रीने जेम तेम करीने पोतानुं पादन-पोषणु करवा लाग्थो. ॥ सूत्र २ ॥

होत्था । तएणं रायगिहस्स नयरस्स अदूरसामंते दाहिण-
 पुरत्थिमे दिसीभाए सीहगुहा नामं चोरपल्ली होत्था, विसम-
 गिरिकडगकोडंबसंनिविट्ठा, वंसी कलंकपागारपरिक्खित्ता
 छिण्णसेलविसमप्पवायफलिहोवगूढा एगदुवारा अणेग-
 खंडी विदियजणणिग्गमपवेसा अड्ढिभतरपाणिया सुदुल्ल-
 भजलपेरंता सुबहुस्स वि कुवियबलस्स आयगस्स दुप्पहंसा
 यावि होत्था । तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए विजए णामं
 चोरसेणावई परिवसइ अहम्मिंए जाव अधम्मकेऊ समुट्टिए
 बहुणगरणिग्गयजसे सूरे द्ढप्पहारी साहसिए सद्देही । से
 णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचणहं चोरसयाणं आहेव-
 च्चं जाव विहरइ । तएणं से विजए तक्करे चोरसेणावई
 बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधि-
 च्छेयगाण य खत्तखणगाण य रायावगारीण य अणधारगाण
 य बालघायगाण य विसंभघायगाण य जूयकाराण य
 खंडरक्खाण य अत्तेसिं च बहूणं छिन्नभिन्नबहिराययाणं
 कुडंगे यावि होत्था । तएणं से विजए तक्करे चोर-
 सेणावई रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिमे जणवयं बहूहिं
 गामघाएहि य नगरघाएहि य गोग्गहणेहि य बंदिग्गहणेहि
 य खत्तखणणेहि य पंथकुट्टणेहि य उवीलेमाणे २ विद्धंसे-
 माणे २ णित्थाणं णिद्धणं करेमाणे विहरइ । तएणं से
 थिलाए दासचेडे रायगिहे बहुहिं अत्थाभि संकीहि य चोजामि

संकीहिय दाराभिसंकीहि य धणिण्हि य जूङ्करोहि य पर-
 षभवमाणेर रायगिहाओ नगराओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छत्ता,
 जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ उवागच्छत्ता
 विजयं चोरसेणावइ उवसंपजित्ताणं विहरइ ॥ सू०३ ॥

टीका—‘तएणं से इत्यादि । ततः खलु स चिलातो दासचेटः ‘अणोह-
 ट्टिए’ अनपघट्टितः, यो हि दुष्कृतौ प्रवर्तमानं क्रमपि हस्तौ धृत्वा निवारयति,
 सोऽपघट्टकः, निशर्षमाणस्तु अपघट्टितः, अयं हि निवारयितुरभावात् अनपघट्टितः=
 निरङ्कुशः ‘अणिवारिए’ अनिवारितः, हितोपदेशकस्याभावात् अनिवारितः,

‘तएणं से चिलाए दासचेडे’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चिलाए दासचेडे) वह चिलात दासचे
 टक (अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई सहरप्पयारी मज्जप्पसंगी चोञ्ज-
 प्पसंगी मंसप्पसंगी, जूयप्पसंगी, वेसापसंगी, परदारप्पसंगी जाए यावि
 होत्था) अनपघट्टित—निरङ्कुश बन गया—जो दुष्कर्म में प्रवर्तमान किसी
 को भी हाथ पकड़कर उससे निवारित कर देता है उसका नाम अपघट्टक
 और जो दूर किया जाता है वह अपघट्टित कहलाता है । निवारण कर
 नेवाले का अभाव होने से यह चिलात दासचेटक अनपघट्टित इसी
 कारण से बन गया । हितोपदेशक कोई उसका रहा नहीं अतः यह
 कुत्सित काम करने से पीछे नहीं हटता—इसलिये यह अनिवारित होकर
 जो मन में आता उसे कर डालता—अतः उदण्ड बन गया । स्वच्छन्द

तएणं से चिलाए दासचेडे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपथी (से चिलाए दासचेडे) ते चिलात दास चेटक
 (अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई, सहरप्पयारी मज्जप्पसंगी, चोञ्जप्पसंगी मंस-
 प्पसंगी, जूयप्पसंगी, वेसापसंगी, परदारप्पसंगी, जाए यावि होत्था)

अनपघट्टित—स्वच्छंद भनी गयो, दुष्कर्मों में पडेला गये तेने जे हाथ
 पकडीने तेमांथी तेने हर करे छे तेतुं नाम अपघट्टक :अने जे हर
 करवामां आवे छे ते अपघट्टित कहेवाय छे. चिलात दासचेटकने जोटा कामोथी
 हर लथ बनार—तेने निवारणु करनार कोथं हंतुं नहिं अथी ते अनपघट्टित
 थथं गयो हतो. तेने कोथं हितोपदेशक हतो नहिं तेथी ते कुत्सित काम कर-
 वामां पछु पीछेछठ करतो न हतो, अरण कामोथी तेने शकनार नहिं होवाने
 कश्चे ते भनमां शवे तेम करतो हतो अथी ते उदण्ड भनी गयो हतो. ते

‘सच्छन्दमई’ स्वच्छन्दमतिः=स्वाभिप्रायवर्ती-उद्दण्डइत्यर्थः, अतएव ‘सइरप्यारी’ स्वैरप्यारी = स्वच्छन्दविहारी ‘मज्जप्पसंगी’ मद्यप्रसङ्गी मद्यपयी, ‘चोउज्जप्पसंगी’ चौथप्रसङ्गी=चौर्यकर्मणि परायणः, ‘मांसप्पसंगी’ मांसप्रसङ्गी=मांसभक्षणशीलः, ‘जूयप्पसंगी’ धूतप्रसङ्गी-धूतक्रीडाप्रसक्तः, ‘वेसापसंगी’ वेश्यालम्पटः, एवं ‘परदारप्पसंगी’ परदारप्रसङ्गी=परदाररतो जातश्चापि आसीत् । ततः खलु राजगृहस्य नगरस्य अदूरसामन्ते दक्षिणपौरस्त्ये दिग्भागे अग्निकोणे सिंहगुहानाम चोरपल्ली आसीत्, या हि पल्ली ‘विसमगिरिकडगकोडंबसन्निविट्टा’ विषमगिरिकटककोडम्बसन्निविट्टा=विषमो निम्नोच्चतो यो गिरिकटकः=पर्वत मध्यभागः, तस्य यः कोडम्बः प्रान्तभागः, तत्र संनिविट्टा=स्थिता आसीत् । पुनः ‘वंसीकलंकपागारपरिक्खत्ता’ वंशीकलंकप्रकारपरिक्षिप्ता=वंशीकलङ्का वंशजालमयी वृत्तिः, सैव प्रकारः, तेन परिक्षिप्ता=परिवेष्टिता=वंशनिर्मितजालमयप्रकारैः समन्तात्-परिवेष्टिता, ‘छिण्णसेलविसमप्पघायफालिहोवगूढा’=छिन्नशैलविषमप्रपातपरिखोपगूढा=छिन्नोऽवयवाःतरापेक्षया विभक्तो यः शैलः=पर्वतः, तत्सम्बन्धिना ये विषमाः प्रपाता गर्ताः, त एव परिखाः तथा उपगूढा=आश्लिष्टा परिवेष्टिता-विभक्तशैलावयवनिर्गतविषमप्रपातरूपपरिखापरिवेष्टितेत्यर्थः ‘एगदुवारा’ एकद्वारा=एकं द्वारं=प्रवेशनिर्गमरूपं यस्याः सा=एकप्रवेशनिर्गमा, ‘अणेगखंडी’ अनेकखण्डा=अनेकानि खण्डानि=विभागा रक्षाहेतोर्यस्यां सा अनेकखण्डा, यत्र=स्वरन्धायै अनेकानि स्थानानि सन्ति, ‘विदियजणणिग्गमपवेसा’

विहारी हो गया-मद्यप्रसंगी हो गया-अदिरा पीने लग गया। मांस खाने लग गया, चोरी करने लगा, जूभा खेलने लगा, वेश्यासेवन करने लगा, और परदार सेवन करने में भी लंपट हो गया। (तएवं रायगिहस्स नयरस्स अदूरसामन्ते दाहिणपुरत्थिमे ‘दिसीभाए सीहगुहानाम चोरपल्ली होत्था-विसमगिरिकडगकोडंबसन्निविट्टा वंसीकलंकपागारपरिक्खत्ता छिण्णसेलविसमप्पघायफालिहोवगूढा रग्गदुवारा, अणेगखंडी, विदियजणणिग्गमपवेसा अर्भिततरपाणिगया सुदुल्लभजल

स्वच्छन्द विहारी थर्ध गथे। इते, दाइ पिनारे थर्ध गथे। ते मांस भावालाग्ये, चोरी करवा लाग्ये, जुगार रभवा लाग्ये, वेश्या-सेवन करवा लाग्ये। अने परश्ची सेवनमां पणु ए‘पट् थर्ध गथे। इते।

(तएवं रायगिहस्स नयरस्स अदूरसामन्ते दाहिणपुरत्थिमे दिसीभाए सीहगुहानाम चोरपल्ली होत्था-विसमगिरिकडगकोडंबसन्निविट्टा वंसीकलंकपागारपरिक्खत्ता, छिण्णा सेल विसमप्पघायफालिहोवगूढा एगदुवारा, अणेगखंडी, विदियजणणिग्गमपवेसा

विदितजननिर्गमप्रवेशा=विदितजनानामेव=विश्वासवतामेव निर्गमप्रवेशौ यस्यां सा=
विश्वस्तजननिर्गमप्रवेशवती ' अर्धितरपाणिया ' अभ्यन्तरपानीया=मध्यस्थित-

पेरंता, सुबह्रस्स विकूवियवलस्स आगयस्स दुप्पहंसा, यावि होत्था तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए विजए णामं चोरसेणावई परिवसई, अहम्मिय जाव अहम्मकेऊसमुट्टिए बहुणगरणिग्गयजसे, सूरे ददप्पहारी साहसिए सद्देही-सेणं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोर सयाणं आहिवच्चं जाव विहरइ) उसी राजगृह नगर के न अधिक दूर पर और न अधिक पास में दक्षिण पौरस्त्य दिग्दिग्भाग में-अग्निकोण में-सिंहगुहा नाम की एक चोर पल्ली थी-यह चोरपल्ली विषम गिरिकंटक के प्रान्त भाग में-निम्नोन्नतपर्वत के मध्यभाग के अन्त भाग में स्थित थी। इसके चारों ओर वांसों की बाड़ थी-यह बाड़ ही इसका प्राकार (किला) था-उससे यह घिरी हुई थी। अवयवान्तरों की अपेक्षा से विभक्त जो पर्वत तत्संबन्धी जो विषम प्रपात खड़ा उन विषम खड्डेरूप परिखा से यह परिवेष्टित थी। निकलने का और आने का इस में एक ही द्वार था। इसमें रक्षा के निमित्त चोरोंने अनेक स्थान बना रखे थे। परिचित-विश्वासवाले-व्यक्ति ही इसमें आ जा सकते थे।

अर्धितरपाणिया, सुदुल्लभजलपेरंता, सुबह्रस्स वि कूवियवलस्स आगयस्स दुप्पहंसा, यावि होत्था तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए विजए णामं चोरसेणावई परिवसई, अहम्मिय जाव अहम्मकेऊ समुट्टिए बहुणगरणिग्गयजसे, सूरे ददप्पहारी, साहसिए सद्देही सेणं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं अहिवच्चं जाव विहरइ)

ते राजगृह नगरथी धण्डे इर पण्डे नडि अने धण्डी नल्लक पण्डे नडि अनी, दक्षिण पौरस्त्य दिग्दिग्भागमां अग्निदिग्भागमां-त्रिद्व्युहा नामे अेक चोरपल्ली હતી તે ચોરપल्ली ઊંચી નીચી ગિરિમાળાઓના પ્રાંત ભાગમાં નિમ્નોન્નત પર્વતના મધ્યભાગના અંતભાગમાં આવેલી હતી તેની ચોમેર વાંસોની વાડ હતી. તે વાડ જ તેનો કોટ (કિલ્લો) હતો તેનાથી તે ઘેરા-એલી હતી અવયવાંતરોની અપેક્ષાએ વિલક્ષત જે પર્વત અને તત્સંબંધી જે વિષમ પ્રપાત-ખાડો-તે વિષમ ખાડાંરૂપી પરિખાથી તે પરિવેષ્ટિત હતી. આવવા અને જવા માટે તેમાં એક જ દરવાજો હતો. ચોરોએ પોતાની રક્ષા માટે ઘણાં સ્થાનો બનાવેલાં હતાં. પરિચિત વિશ્વાસુ માણસો જ તેમાં આવવા કરી શકતા હતા. પાણી માટે તેની વચ્ચે એક જળાશય હતું, તેની ખડાર

जलाशया 'सुदुर्लभजलपेरंता' सुदुर्लभजलपर्यन्ता=सुदुर्लभं जलं पर्यन्ते=प्रान्त-
भागे=बहिर्भागे यस्याः सा=जलरहितबहिर्भागा 'सुबहुस्स वि' सुबहोरपि
कूवियवलस्स 'कूपिकवलस्य=चोरगवेषकसैन्यस्य 'आगयस्स' आगतस्य 'दुष्-
हंसा' दुष्पध्वंसा दुर्धर्षणीया चापि आसीत् । तत्र खलु सिंहगुहायां चोरपल्लीयां
विजयो नाम चोरसेनापतिः=चोरनायकः परिवसति यो हि 'अहम्मिण्ण जाव'
अधार्मिको यावत्=अधर्मेण चरति अधार्मिकः अधर्माचरणशीलः-अत्र यावत्पदेन-
इतभारभ्य 'घायाए वहाए अञ्जायणाए' इत्यन्तः पाठो ग्राह्यः, तथाहि-'अध-
म्मिण्णे' अधर्मिष्ठः=सर्वथा धर्मरहितः, 'अधम्मक्खाई' अधर्माख्यायी-अधर्मक-
थकः, 'अधम्माणुगे' अधर्मानुगः=अधर्मानुगामी 'अधम्मपलोई' अधर्मप्रलोकी=
अधर्मदर्शी 'अधम्मपलञ्जणे' अधर्मप्ररञ्जनः=अधर्मानुरक्तः, 'अधम्मसीलसमु-
दायारे' अधर्मशीलसमुदाचारः=अधर्म एव शीलं स्वभावः समुदाचारश्चैव यस्य सः,

पानी के लिये इसमें बीच में एक जलाशय था-इसके बाहिरी भाग में
जल नहीं था। अनेक भी चोर गवेषक सेनाजन यहां आजावे तो भी
वे इस पल्ली का नाश नहीं कर सकते थे। इस सिंहगुहा नामकी चोर
पल्ली में विजय नाम का एक चोर सेनापति रहता था। यह अधार्मि-
क यावत् अधर्म केतुग्रह जैसा उदित हुआ था। यहां यावत् शब्द से
"घायाए वहाए अञ्जायणाए" यहां तक का पाठ ग्रहण किया गया
है-इस का खुलाशा भाव इस प्रकार है-अधार्मिक शब्द का अर्थ होता
है अधर्माचरणशील-यह विजय नामका चोर अधर्माचरणशील था। अध-
र्मिष्ठ था-सर्वथा धर्मसे रहित था, अधर्माख्यायी था-अधर्मका कथन कर-
नेवाला था, अधर्मानुग था-अधर्म का अनुगामी था, अधर्मप्रलोकी था-
अधर्म का ही देखने वाला था-अधर्मप्ररञ्जन था अधर्म में अनुरक्त था

पाणी હતું નહિ. ઘણા ચોરાની શોધ કરતા સૈનિકો ત્યાં આવે છતાંએ તે
પલ્લીનો નાશ કરી શકતા ન હતા. તે સિંહગુહા નામની ચોરપલ્લીમાં વિજય
નામે એક ચોર સેનાપતિ રહેતો હતો. તે અધાર્મિક યાવત્ અધર્મ કેતુગ્રહની
જેમ ઉદય પામ્યો હતો. અહીં યાવત્ શબ્દથી "ઘાયાએ વહાએ અજ્ઞાયણાએ"
અહીં સુધીનો પાઠ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યો છે તેનું સ્પષ્ટીકરણ આ પ્રમાણે
છે:-અધાર્મિક શબ્દનો અર્થ-અચરણશીલ હોય છે. તે વિજય નામે ચોર
અધર્માચરણશીલ હતો, અધર્મિષ્ઠ હતો, સાવ ધર્મરહિત હતો, અધર્માખ્યાયી
હતો, અધર્મની વાત કહેનાર હતો, અધર્માનુસાગી હતો, અધર્મનો અનુગામી
એટલે કે અધર્મને અનુસરનાર હતો, અધર્મપ્રલોકી હતો, અધર્મને જ નેનાર
હતો, અધર્મપ્રરજન હતો, અધર્મમાં આસક્ત હતો, અધર્મશીલ સમુદાયારી

अधर्मशीलोऽधर्माचरणश्चेत्यर्थः, 'अधर्मेण चैव वृत्तिं कपे माणे विहरइ' अधर्म-
णैव वृत्तिं कलयन् विहरति=अधर्मणैव सावधानुष्ठानेनैव, वृत्तिं कलयन्=जीविका-
मुपार्जन्यन् 'विहरइ' विहरति=आस्ते । पुनः 'हणछिंद्भिद्वियत्तए' जहिछिन्धि
भिन्धि विकर्तकः=' हण ' जहि=मारय यष्ट्यादिना ' छिंद ' छिन्धि=छेदय-
खङ्गादिना, ' भिंद ' भिन्धि=भेदय भल्लादिना, इतिशब्दैः स्वानुयायिनः प्रेरयन्
प्राणिनो विक्रन्तति यः सः, जहि छिन्धिभिन्धि विकर्तकः, इति, ' लोहियपाणी '
लोहितपाणिः=लोहितौ पाणी यस्य सः, रक्तरञ्जितकरयुगलः 'चंडे' चण्डः उत्कटरोपः
' रुदे ' रौद्रः=भयानकः ' छुल्ले ' छुद्रः=छुद्रकर्मचारी ' उक्कंणवंचणमायानिय-
डिकवडकूडसाइसंपयोगवहुले ' उत्कञ्चनवञ्चनमायानिकृतिक्पटकूटसाइसंपयोग-

अधर्मशील समुदाचारवाला था-अर्थात् इसका स्वभाव और आचरण
दोनों अधर्ममय थे-अधर्म ही इस का स्वभाव था और अधर्म ही इस
का आचरण था । अतः अपनी जीविका का निर्वाह सावध अनुष्ठानों
(अधर्म) द्वारा ही किया करता था । यष्ट्यादि द्वारा इसे मारो, खङ्गादि
द्वारा इसे छेदो भल्लादि द्वारा इसे भेदो इस प्रकार के शब्दों से यह
अपने अनुयायियों को सदा प्रेरित करता हुआ स्वयं जीवों का छेदन
भेद न किया करता था । इसके दोनों हाथ रक्त से रंजित रहते थे ।
इस का क्रोध बहुत प्रचंड था देखने में यह बड़ा भयानक दिग्गता था ।
छुद्र कर्मकारी था । " उक्कंणवंचणमायानियडिकवडकूडसाइसंपओग
वहुले " उत्कंचन, वंचन, माया, निकृति, कपट, कूट, साह, इनका व्यव-

हृतो-ओटके के तेना स्वभाव अने आचरण अने अधर्मभय हतां. अधर्म अ
तेना स्वभाव हतो अने अधर्म अ तेनुं आचरण हतुं. ओथी ते पोतातुं
अवन सावध अनुष्ठानो वडे ओटके के अधर्मनुं आचरण करीने पुइं करतो
हतो. लाकडी वगेरैथी अने मारो, तरवार वगेरैथी अने कापी नाचो, भालाओ
वगेरैथी अने लेही नाचो आ जलना शब्दोथी ते पोताना अनुय.यीअने
हमेशां हुकम करतो रडेतो हतो. ते पोते पणु अनेनुं छेदन-लेहन करतो
रडेतो हतो. तेना अने हाथो बाहीथी परडाओला रडेता हता. तेना क्रोध
अत्यंत प्रचंड हतो. देणावभां ते भूअ अ भयानक लागतो हतो, ते छुद्र
कर्म करनार हतो.

(उक्कंणवंचणमायानियडिकवडकूडसाइसंपओगवहुले) उत्कंचन, वंचन,
माया, निकृति, कपट, कूट, साह आ अधानो वडेवार तेना अवनभां

बहुलः, तत्र-उत्कञ्चनम् सुगन्धजनवञ्चनप्रवृत्तस्य समीपागतविचक्षणभयात् तत्क्षणे-
वञ्चनाकरणम् वञ्चनं=प्रतारणम्, माया=परवञ्चनबुद्धिः, निकृतिः=मायाप्रच्छाद-
नार्थं मायान्तरकरणम्, कपटम्=वेषादिविपर्ययकरणम्, कूटम्=तुलातोलनका-
दीनामन्यथाकरणम्, 'साह' देशी शब्दोऽयम्, विश्वासाभावः, एषां संप्रयोगो
व्यवहारः स एव बहुलः प्रचुरो यस्य सः, 'निस्सीले' निःशीलः=शीलरहितः,
'निव्यए' निर्वृतः=अणुव्रतरहितः, 'निर्गुणे' निर्गुणः=गुणव्रतरहितः, 'निप-
च्चक्खाणपोसहोववासे' निप्रत्याख्यान पौषधोपवासः = प्रत्याख्यानपौषधोप-
वासरहितः 'बहूणां दुपयचउप्पयमियपसुपक्खिसरीसिवाणं घायाए वहाए उच्छाय-
णाए' बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशुपक्षिसरीसृपाणां घाताय, वधाय=सामान्य

हार इसके पास प्रचुर था। भोलेजनों के वंचन करने में प्रवृत्त हुआ
वंचक जन जब पास में आये हुए जनको भय से नहीं ठगता है इस-
का नाम उत्कंचन है। प्रतारण (ठगना) करना इसका नाम वंचन है।
दूसरों को वंचन करने की बुद्धि का नाम माया है। अपनी मायाचारी
को छिपा ने के लिये जो दूसरी मायाचाररूप क्रिया करनी होती है इस
का नाम निकृति है। वेष आदि के परिवर्तन करने का नाम कपट है।
तराजू एवं तोलने आदि के बाँटों को कमती बढ़ती रखना इसका नाम
कूट है। "साह" यह देशीय शब्द है। इसका अर्थ विश्वास का
अभाव होता है। यह निःशील था-शीलरहित था-निर्वृत था-व्रत
रहित था, निर्गुण था-गुण रहित था, "प्रत्याख्यान और पौषधोपवास
से वर्जित था " बहूणां दुपयचउप्पयमियपसुपक्खिसरीसिवाणं घायाए
वहाए उच्छायणाए अधम्मकैऊ समुट्टिए " अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग,

पुष्कण प्रभाषुमां हतो. लोणा भाषुसोना वंचनमां प्रवृत्त थयेसो वंचक न्यारे
पासे आवेला भाषुसने भीकथी ठगतो नथी तेनुं नाम उत्कंचन छे प्रतारणुं
नाम वंचन छे. भील भाषुसने ठगवानी बुद्धिनुं नाम माया छे. पोतानी
मायाचारीने छुपाववा भाटे ने भील मायाचार रूप क्रिया करवामां आवे छे
तेनुं नाम निकृति छे. वेश वगेरे अदलबुं ते कपट कडेवाय छे. त्रालवां तेमज
लोणवानी वचनोने हलकां अने लारे करवां तेनुं नाम कूट छे. "साह"
आ देशीय शब्द छे तेनो अर्थ विश्वासनो अभाव होय छे. ते निःशील
होतो, शील रहित होतो, निर्वृत व्रत रहित होतो. निर्गुण होतो-गुण रहित
होतो. प्रत्याख्यान अने पौषधोपवासथी वर्जित होतो. "बहूणं दुपयचउप्पय-
मियपसुपक्खिसरीसिवाणं घायाए वहाए - उच्छायणाए अधम्मकैऊ समुट्टिए"

विशेषप्रकारेण नाशाय, उत्पादनाय=द्विषदादिमकलजीवानां सर्वथा नाशाय च, 'अधम्मकेऊ समुट्ठिप' अधर्मकेतुः समुत्थितः-अधर्मः पापप्रधानो यः केतुः=केतुग्रहः, अधर्मकेतुः=उत्पातरूपधूमकेतुमहाग्रहः तद्वत् समुत्थितः । बहुणगरणिगणयजसे 'बहुनगरनिर्गतयशाः, बहुनगरेषु निर्गतं जनमुखाभिःसृतं यशः ख्याति र्यस्य सः, प्रसिद्ध इत्यर्थः, शूः 'दहपहारी' दहमहारी=दहमहरण शीलः 'साहसिप' साहसिकः=अत्रिमृश्यकारी 'सहवेही' शब्दवेधी=शब्दश्रवणेन लक्ष्यवेधी च आसीत् । 'से' सः = विजयश्वौरः खलु तत्र सिंहगुहायां चोरपल्लीयां पञ्चानाम् चोरशतानाम् 'आहेवच्चं जात्र' आधिपत्यं यावत्=स्वामित्वं कुर्वन् विहरति । ततः खलु स विजयस्तस्करः चोरसेनापतिः बहूनां चोराणां च 'पारदारियाणय' पारदारिकाणां=परस्त्रीगामिनां च 'गंठिभेयगाणय' ग्रन्थिभेदकानां 'संधिच्छेयगाणय' सन्धिच्छेदकानां=भित्तिर्संधिं छिन्वा ये धनमपहरन्ति ते संधिच्छेदका उच्यन्ते, तेयाम्, 'खत्तखणगाणय' क्षात्रखनकानां=संधिरहितभित्ति खनकानाम्, 'रायावगारीणय' राजाऽपकारिणां=

पशु, पक्षी, सरीसृप आदि प्राणियोंके घातके लिये, वधके लिये, तथा उनके सर्वथा विनाशके लिये, यह अधर्मकेतुग्रह जैसा उदित हुआ था । अनेक नगरों में यह कुख्यात हो चुका था । बडा शूरवीर था । इसका प्रहार बहुत गहरा होता था । विना विचारे काम करना ही इसका स्वभाव था शब्द श्रवण कर यह अपने लक्ष्य के वेधने में बडा निपुण था । वह विजय चौर सिंहशुफा नाम की उस चोरपल्ली में पांचसौ चोरों का आधिपत्य यावत् स्वामित्व करता हुआ रहता था । (तएणं से विजय तक्करे चोरसेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाणय, रायावगारीण य अणघारगाण य

घण्टा द्विपद, त्र्युपपद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृप (साप) वगैरे प्राणीजोना घात माटे, वध माटे तेमज्ज तेमना सर्वनाश माटे ते अधम्म' केतुमइणी जेमज्ज उदय पाभ्यो हतो. घण्टां नगरैमां ते कुख्यात थर्ह युद्धयो हतो. ते भारे शूरवीर हतो, तेना प्रहार भूण ज् भारे थतो हतो. वजर विचार्या काम करवामां ज् तेना स्वभाव हतो. शब्द श्रवणु करीने ते पोताना लक्ष्यने वीधी नाभवामां भूण ज् निपुणु हतो. ते विजय चौर सिद्ध शुद्ध नामनी ते चौर-पक्षीमां पांचसेा चोरैना स्वामी-यावत् स्वामित्व योगवतो रउतेतो हतो.

(तएणं से विजयतक्करे चोरसेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाणय, रायावगारीण य ऊण-

राजद्रोहिणां 'अणधारगाणय' ऋणधारकाणाम् बालघातकानां 'वीसंभघायगाणय' विश्रम्भघातकानां=विश्वासघातिनां द्यूतकारकाणां 'खंडक्खाणय' खण्डरक्षाणां=राजविरोधेन भूमिखण्डधारिणाम् एवम् अन्येषां च बहूनां 'छिन्नभिन्नबहिराहयाणं' छिन्नभिन्नबहिराहतानाम्-छिन्ना=छिन्नहस्तादिकाः, भिन्नाः=भिन्नकर्णनासिकादिकाः, बहिराहता=राजापराधेन देशनिष्काशिताः, एतेषां द्वन्द्वः, तेषां च 'कुडंगे' कुटङ्कः=कुटङ्कः इव कुटङ्कः - वंशवर्नं रक्षार्थमाश्रयणीयत्वसाम्यात्

बालघायगाणय वीसंभघायगाणय जूयकाराणय खंडरक्खाणय अन्नेसिं बहूणं छिन्नभिन्न बहिराययाणं कुडंगे याविहोत्था) वह विजय तस्कर चोर सेनापति अनेक चोरों का अनेक परस्त्री लंपटों का ग्रन्थि भेद को का, संधिच्छेदकों का-मकान की भीत फोड़कर धनका अपहरण करनेवालों का, क्षात्रखनकों का संधि रहित भीत को फोड़कर चोरी करनेवालों का, राजा का अपकार करने वालों का-राजद्रोहियों का, ऋण करने वालों का बाल हत्या करने वालों का विश्वासघात करने वालों का जुआ खेलनेवालों का, राजा की आज्ञा लिये बिना ही कुछ जमीन को अपने अधिकार में करनेवालों का, तथा और भी अनेक छिन्न, भिन्न बहिराहत व्यक्तियों का यह कुटंक जैसा था। जिन के हाथ आदि काटदिये गये हैं ऐसे प्राणी, छिन्न शब्द से जिनकी नाक आदि काट दी गई है ऐसे प्राणी भिन्न शब्द से एवं राजापराध के कारण जो देश से बाहिर निकाल दिये गये हैं ऐसे मनुष्य यहाँ बहि आहत शब्द

धारगाणय बालघायगाणय वीसंभघायगाणय जूयकाराणय खंडरक्खाणय अन्नेसिं बहूणं छिन्नभिन्नबहिराययाणं कुडंगे यावि होत्था)

ते विजय तस्कर चोर सेनापति धणु थोरौ, धणु परस्त्री लंपटौ, अशिकेहडौ, संधिच्छेदकौ-आडौई पाडीने धननुं अपहरणु करनाराओ, क्षात्रभनडौ-संधिलाग वगरनी लीतमां आडौई पाडीने थोरौ करनाराओ, रानना अपकारडौ-राजद्रोहीओ, ऋणु करनाराओ (देवाहारौ) भाणडत्या करनाराओ, भाणडत्या करनाराओ, विश्वासघात करनाराओ, लुगार रमनाराओ, राननी आज्ञा लीधा वगर न थोडी नभनीने पोताना अधिकारमां लेनाराओ तेमन पीन पणु धणु छिन्न, सिन्न अडिराडत लौडौना माटे ते कुटंक नेपो डने। नेमना हाथ पग वगेरे कापी नाभवामां आव्या छे जेयां प्राणीओ, छिन्न शण्ड वडे नेमनां नाक वगेरे कापवामां आव्यां छे जेयां प्राणीओ, सिन्न शण्ड वडे अने रान्यापराध गडल ने देशमांथी लडार काडी भूवामां आव्या छे जेवा भाणुसो अडौ " अडिः आडत " शण्ड वडे सओधित करवामां आव्या

चापि अभूत् । ततः खलु स विजयस्तस्करः चोरसेनापतिः राजशूहस्य 'दाहिणपुरस्थिमं' दक्षिणपौरस्थं अग्निकोणस्थितं जनपदं बहुभिः 'गामघाएहिं' ग्रामघातैः—ग्रामविनाशैश्च, नगरघातैश्च, 'गोग्रहणेहिय' गो ग्रहणैः=घवां लुण्ठनैः, बंदिग्रहणेहिय' वन्दिग्रहणैः=लुण्ठने ये जना गृहीतास्ते वन्दिन उच्यन्ते, तेषां ग्रहणैः=स्वकारायां स्थापनैः, 'खत्तखणणेहिय' क्षाप्रखननैश्च एवं विधैःशुक्रत्यैः

से प्रतिबोधित क्रिये गये हैं। रक्षणार्थ आश्रयणीय होने की समानता से इसे कुटंक-वंशवन-जैसा कहा गया है। (तएणं से विजए तक्करे चोरसेणावई रायगिहस्स दाहिणपुरस्थिमं जणवयं बहूहिं गामघाएहिं य नगरघाएहिं य गोग्रहणेहि य बंदिग्रहणेहि य खत्तखणणेहिय, पंथकुहणेहि य उवीले माणे २ विद्धंसणे माणे २ गित्थाणं, णिद्धणं करेमाणे विहरइ, तएणं से चिलाए दासचेडे रायगिहे बहूहिं अत्थामिसंकीहि य चोज्जाभिसंकीहि य दाराभिसंकीहि य धणिएहि य जूयकरेहि य परव्वभवमाणे २ रायगिहाओ नगराओ णिगगच्छइ, णिगगच्छित्तां जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विजयं चोरसेणावई उवसंपज्जित्ताणं विहरइ) चोरों का सेनापति वह विजय तस्कर राजशूह नगर के अग्निकोण में स्थित जनपदों को, अनेक ग्रामों के विनाश से नगरों के घात से, गायों के लूटने से, लूटते समय पकड़े गये मनुष्य को अपने कारागार में बंद करने से, क्षत्रखनन से—मकानों में खातदेने

छे. रक्षषु भाटे आश्रयणीय डोवाना साभ्यथी तेने कुटंक-वांसनावन'नी नेभ भताववाभां आये छे.

(तएणं से विजए तक्करे चोरसेणावई रायगिहस्स दाहिणपुरस्थिमं जणवयं बहूहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोग्रहणेहि य बंदिग्रहणेहि य खत्तखणणेहि य पंथकुहणेहि य उवीलेमाणे २ विद्धंसणे माणे २ गित्थाणं, णिद्धणं करेमाणे विहरइ, तएणं से चिलाए दासचेडे रायगिहे बहूहिं अत्थामिसंकीहि य चोज्जाभिसंकीहि य धणियेहि य जूयकरेहि य परव्वभवमाणे २ रायगिहाओ नगराओ णिगगच्छइ, णिगगच्छित्ता जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विजयं चोरसेणावई उवसंपज्जित्ताणं विहरइ)

शोरानो सेनापति ते विजय तस्कर राजशूह नगरना अशिकोषुना जनपदोने, धषुं आभोने विनाश करीने नगरानो घात करीने गाथोने लूटीने लूटती वथते पकडी पाडेवा भाषुसोने योताना कारागारभां पूरी इधने, क्षत्र-अनन करीने, भक्रानोभां भातर पाडीने अने सुसाइराने मारीने निरंतर

‘पथकुट्टणेहिय’ पान्थकुट्टेनैः=पथिकजनमारणैश्च ‘उवीलेमाणे २’ उत्पीडयन् २=सन्ततमुत्पीडनं कुर्वन्, ‘विद्धंसेमाणे २’ विध्वंसयन् २=सर्वदा विध्वंसं कुर्वन्, ‘गिस्थानं’ निःस्थानं=गृहरहितं, ‘गिद्धणं’ निर्धनम्=धनरहितं कुर्वन् विहरति । ततः खलु स चिलातो दासचेटः राजगृहे बहुभिः ‘अत्थाभिसंकीहिय’ अर्थाभिश्चिभिः=अयं चिलातो मदीयमर्थं गृहोतवान्, ग्रहीष्यति वा इत्यभिश्चिभिः शीलैः ‘चोउजाभिसंकीहिय’ चौर्याभिश्चिभिः=अयं मम गृहे चौर्यं कृतवान् करिष्यति वेत्यभिश्चिभिः शीलैश्च ‘दाराभिसंकीहि’ दाराभिश्चिभिः=‘अयं मम दारान् दूषितवान् दूषयिष्यति वेत्यभिश्चिभिः शीलैः तथा धनिकैश्च धूतकरैश्च पराभूयमाणः २=पुनः पुनः पराभवं प्राप्यमाणो राजगृहात् नगराद् बहिः निर्गच्छति, निर्गत्य, यत्रैव सिंहगृहा चोरपल्ली तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य विजयं चोरसेनापतिम् उपसंपद्य=प्राप्य विहरति ॥ सू० ३ ॥

से, एवं पथिकजनों के मारने से, निरन्तर पीडित करता विध्वंस करता करता और गृह विहिन करता रहता था । इस के पश्चात् वह दासचेटक चिलात राजगृह नगर में अनेक अर्थाभिशांक-इस चिलात ने हमलोगों के द्रव्य को हरण किया है तथा इसी तरह से यह आगे भी करेगा-प्रकार की शांका करने वाले, चौर्याभिशांकी इसने हमलोगों के घर में घुसकर पहिले चोरी की है-तथा इसी तरह यह आगे भी करेगा-इस प्रकार की आशांका करने वाले, दाराभिशांकी-इसने पहिले हमारी स्त्रियों के साथ बलात्कार किया है-इसी तरह से यह आगे भी करेगा इस तरह की अपनी स्त्रियों के साथ बलात्कार करने की आशांकावाले पुरुषों के द्वारा तथा धनिक व्यक्तियों के द्वारा, जुआ खेलने वाले ज्वारियों के द्वारा पुनः पुनः पराभूत होता हुआ राजगृह नगर से बाहर निकला

पीडित करता, विध्वंस करता अने गृहविहीन बनावी भूकतो डतो. त्यारपछी ते दासचेटक चिलाते राजगृह नगरमां घण्टा अथोलिश'क-आ चिलाते अमारो द्रव्यतुं डरण कथुं छे तेमञ्च आ प्रभाण्णु लविण्यमां पणु डरण करशे, आ नतनी श'का करनाराओ वडे, चौर्यालिश'की-ओण्णु अमारो धरोमां पेसीने पडेलां चोरी करी डती तेमञ्च लविण्यमां पणु ते चोरी करशे न-आ नतनी चोरीनी आश'का करनाराओ वडे, दारालिश'की-ओण्णु पडेलां अमारी स्त्रीओ उपर अलात्कार कर्ये छे, आ प्रभाण्णु लविण्यमां पणु ते ओळस आणुं कर-शे न, आ रीते पोतानी स्त्रीओ उपर अलात्कारनी आश'कावाणा पुइयो वडे तेमञ्च धनवानो वडे, जुगार रमनारा जुगारीओ वडे, बार'वार पराभूत थतो

मूलम्—तएणं से चिलाए दासचेडे विजयस्स चोरसेणा-
वइस्स अग्गे असिलटुग्गाहे जाए यावि होत्था, जाहे वि य णं
से विजए चोरसेणावई गामघायं वा जाव पंथकोट्टिं वा काउं
वच्चइ ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडे सुबहुंपि हु कुवियबलं
हयविमहिय जाव पडिसेहेइ । पुणरवि लद्धे कयकज्जे अणह
समग्गे सीहगुहं चोरपल्लि हव्वमागच्छइ । तएणं से विजए
चोरसेणावई चिलायं तक्करं बहुईओ चोरविज्जाओ य चोरमंते
य चोरमायाओ चोरनिगडीओ य सिक्खावेइ । तएणं से
विजए चोरसेणावई अन्नया कयाइं कालधम्मणा संजुत्ते यावि
हांत्था । तएणं ताइं पंचचोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स
महयाइ इड्डीसक्कारसमुदएणं णीहरणं करेति, करित्ता बहुइं
लोइयाइं मयकिच्चाइं करेति, करित्ता जाव विगयसोया जाया
यावि होत्था । तएणं ताइं पंच चोरसयाइं अन्नमन्नं सहावेति,
सहावित्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! विजए
चोरसेणावई कालधम्मणा संजुत्ते, अयं च णं चिलाए तक्करे
विजएणं चोरसेणावइणा बहुईओ चोरविज्जाओ य जाव सिक्खा-
विए, तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! चिलायं तक्करं सीह-
गुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए त्तिकहु
अन्नमन्नस्स एयमइं पडिसुणेति, पडिसुणित्ता चिलायं तीए
सीहगुहाए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचति । तएणं से चिलाए

और निकल कर जहां वह सिंहगुहा नाम की चोरपल्ली थी वहां आया
वहां आकर वह चोर सेनपति के बाद रहने लगा ॥ सूत्र-३ ॥

शब्द नगरधी भंडार नीकण्ये अने नीकणीने न्यां ते सिंहगुहा नामे चोरपल्ली
हती त्यां आण्ये, त्यां आवीने चोर सेनापतिनी साथे रहेवा लाग्ये ॥ सू०३॥

चोरसेणावई जाए अहम्मिए जाव विहरइ । तएणं से चिलाए चोरसेणावई चोराणय जाव कुडंगे यावि होत्था । से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचणहं चोरसयाण य एवं जहा विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिभिल्लं जणवयं जाव नित्थाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ तएणं ’ इत्यादि । ततः खलु स चिलातो दासचेटो विजयस्य चोरसेनापतेरभ्यः=प्रधानः ‘ असिलद्धग्गाहे ’ असियष्टिग्राहः=असिः=रुग्वालः, यष्टि=वंशदण्डः, तौ गृह्णातीति, असियष्टिग्राहः=असियष्ट्यादिप्रचालनचतुरो जातश्चापि अभूत् । ‘ जाहे वि यणं ’ यदाऽपि च खलु स विजयश्चोर सेनापतिः

तएणं से चिलाए दासचेडे इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चिलाए दासचेडे) वह दासचेटक चिलात (विजयस्स चोरसेणावहस्स) चोर सेनापति उस विजय तस्कर का (अग्गे.यावि हो०) सब से प्रधान असि, यष्टि, ग्रह-तलवार और लाठी के चलाने में चतुर-बन गया । (जाहे वि य णं से विजए चोरसेणावईगामघायं वा जाव पंथकोट्ठिं वा काउं वच्चइ, ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडे सुवहुं पि हू कूवियबलं हयविमहिय जाव पडिसेहेइ, पुणरवि लद्धे कयकज्जे अणहसमग्गे सीहगुहं चोरपल्लि हव्वमागच्छइ) जब वह चोर सेनापति विजय, ग्रामों का घात करने के लिये,

(तएणं से चिलाए दासचेडे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपल्ली (से चिलाए दासचेडे) ते दास चेटक चिलात (विजयस्स चोरसेणावहस्स) चोर सेनापति ते विजय तस्करने (अग्गे.... यावि हो०) सौथी प्रधान आसि, यष्टि (लाठी) आडे, तलवार अने लाठी थलाववाभां चतुर बनी गयो.

(जाहे वि य णं से विजए चोरसेणावई गामघायं वा जाव पंथकोट्ठिं वा काउं वच्चइ, ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडे सुवहुं पि हू कूवियबलं हयविमहिय जाव पडिसेहेइ, पुणरवि लद्धे कयकज्जे अणहसमग्गे सीहगुहं चोरपल्लि हव्वमागच्छइ)

अथारि ते चोर सेनापति विजय आशेना घात भाटे यावत् पथिकेने लुंत्वा भाटे नीकणतो हतो त्थारि ते दास चेटक चिलात चोरने पडया भाटे

ग्रामघातं वा यावत् 'पंथको' पान्थकुट्टिम्=पथिकजनलुण्ठनं वा 'काउं' कर्तुं 'वच्चइ' व्रजति=गच्छति 'ताहेवि य' तदाऽपि च खलु स चिन्वतो दासचेटः सुबहु अपि 'हुं' इति चाक्यान्ङ्कारे कूचियवलं' कूपिकवलं=चोरगवेपरुसैन्यं 'हयविमहिय जाव' हतविमथित यावत्-सर्वथा विध्वस्त कृत्वा 'पडिसेहेइ' प्रतिषेधयति=निवारयति । पुनरपि 'लद्धट्टे' लब्धार्थः=लब्धः प्राप्तः, अर्थः=स्वामिलपितं येन सः=प्राप्तस्वामिलपितः, अत एव 'कयकज्जे' कृतकार्यः=कृतं कार्यं येन सः, कृतनिजकृत्यः 'अणहसमग्गे' अनयसमग्रः=अनयम्=अज्ञतम्-अन्तराले केनाप्यनपहतं समग्रं=समस्तं चौरीघपहतवस्तुजातं यस्य सः=अलुण्ठित सर्वस्वः सिंहगुहां चोरपल्लिं 'ह्वं' शीघ्रमागच्छति । ततः खलु स विजयश्चोरसेनापतिः चिलातं तस्करं बद्धीः चोरविद्याश्च चोरमन्त्रांश्च चोरमायाश्चोरनिकृतीश्च मायायाः प्रच्छादनार्थं या माया सा 'निकृतिः' उच्यते ताः 'सिक्खावेइ'

यावत् पथिक जनो को लूटने के लिये चलता था-तब वह दास चेटक चिलात भी चोर गवेषक सैन्य को हत, विमथित यावत् सर्वथा विध्वस्त करके पीछे भगा देता था-और स्वामिलपित अर्थ को प्राप्तकर अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर लिया करता था । इस तरह वह चोरी में मिले हुए द्रव्य को सुरक्षित रखता हुआ-बीच में किसी के भी द्वारा द्रव्य की छीना झपटी से रहित होता हुआ उस सिंहगुहा नाम के चोरपल्ली में बहुत जल्दी लौट आता था ! (तएणं से विजय चोर सेनावई चिलायं तस्करं बहईओ चोरविज्जाओ य चोरमंते :य चोर मायाओ चोर निगडीओ य सिक्खावेइ) उस चोर सेनापति विजय तस्कर ने चिलात चोर के अनेक चोर विद्याओं को, अनेक चोरमंत्रों को अनेक विध चोर सम्बन्धी मायाचारी को और मायो को छिपाने के

आवेदा सैन्यने हत, विमथित यावत् संपूर्ण रीते विध्वस्त करीने लगादी भूकतो हतो अने पोताना धञ्छित अर्थने प्राप्त करीने पोताना कार्यभां सङ्गता भेजवतो हतो. आ प्रमाणे ते चोरीभां भेजवेला द्रव्यने सुरक्षित राभतो वञ्चे डोर्ध पण्णी भोज वडे द्रव्यनी दूट-पाट न थाय-तेम पोतानी जतने सुरक्षित राभतो ते शीघ्र सिंङ्गुहा नामे चोरपल्लीभां पाछे आवतो रडेतेो हतो.

(तएणं से विजय चोरसेनावई चिलायं तस्करं बहईओ चोरविज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ चोरनिगडीओ य सिक्खावेइ)

ते चोर सेनापति विजय तस्करे चिलात चोरने धण्डी चोर विद्याओने, षष्ठा चोरमंत्रोने, धण्डी चोर संधी मायाचारीओने अने मायाने छुपाववा भाटे भीण्ण मायाचारीओ शीभवादी.

शिक्षयति । ततः खलु स विजयो चोरसेनापतिः अन्यदा कदाचित् 'कालधम्मणा' कालधर्मेण=मृत्युना संयुक्तश्चापि अभवत् मृतइत्यर्थः । ततः खलु तानि पञ्चचोरशतानि=पञ्चशतसंख्यकाश्चौराः, विजयस्य चोरसेनापतेः महता २ इड्डिसक्कारसमुदणं' ऋद्धिसत्कारसमुदयेन 'णीहरणं' निर्हरणं=श्मशानभूमिनयनं 'करेति' कुर्वन्ति, कृत्वा बहूनि लौकिकानि मृतककृत्यानि कुर्वन्ति, कृत्वा यावत् त्रिगतशोका जाताश्चापि अभवन् । ततः खलु तानि पञ्चचोरशतानि अन्योऽन्यं शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादिषुः-सर्वे मिलित्वा परस्परमेवं विचारितवन्तइत्यर्थः एवं

लिये दूसरी और माया चारी को सिखला दिया । (तएणं से विजए चोरसेणावई अन्नया कयाइं कालधम्मणा संजुत्ते यावि होत्था, तएणं ताइं पंचचोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स महया २ इड्डी सक्कार समुदणं णीहरणं करेति करित्ता बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेति, करित्ता जाव विगयसोया जाया यावि होत्था । तएणं ताइं पंच चोर सयाइं अन्नमन्नं सहावेति, सहावित्ता एवं वयासी) इस से बाद वह चोर सेनापति विजय किसी एक दिन कालधर्मगत हो गया । तब उन पांच सौ चोरों ने चोर सेनापति विजय तस्कर की बड़े ठाट बाट के साथ अर्धी-श्मशान यात्रा निकाली बादमें उन्होंने ने भृत्यसंबन्धी जितने भी लौकिक कृत्य होते हैं वे सब किये । लौकिक कृत्य करके सबके सब धीरे २ शोक रहित जब बन चुके-तब उन पांच सौ चोरों ने परस्पर में एक दूसरे को बुलाया-और बुलाकर उन से इस प्रकार कहा-विचार

(तएणं से विजए चोरसेणावई अन्नया कयाइं कालधम्मणा संजुत्ते यावि होत्था, तएणं ताइं पंच चोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स महया २ इड्डी सक्कारसमुदणं णीहरणं करेति करित्ता बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेति, करित्ता जाव विगयसोया जाया यावि होत्था । तएणं ताइं पंच चोर सयाइं अन्नमन्नं सहावेति, सहावित्ता एवं वयासी)

त्यारपछी ते चोर सेनापति विजय केए अक द्विसे मृत्यु पाये त्यारे ते पांथसे चोशेअे चोर सेनापति विजय तस्करनी लारे हाथी श्मशानयात्रा हादी त्यारपछी तेमले तेना मृत्यु संभंधी लौकिक कृत्यो कयां । लौकिक कृत्यो पूरा कयां भाद धीमे धीमे ल्यारे अथा शोक रहित थया त्यारे ते पांथसे चोशेअे परस्पर अेकणीअने जेलाव्या अने अेक स्थाने अेकत्र थधने तेमले आ प्रभाले विचार कयो के—

खलु अस्माकं हे देवानुप्रियाः ! विजयश्चोरसेनापतिः कालधर्मेण संयुक्तः=वृत्
इत्यर्थः । अयं च खलु चिन्तातः तस्करो विजयेन चोरसेनापतिना ' बहूर्द्धो चोर-
विज्जाओ जाव ' बहूर्द्धयः चोरविद्या यावत्-चोरविद्यादि चोरनिकृतिपर्यन्तासु
सकलचोरशिक्षामु ' सिखिखए ' शिक्षितः=पारङ्गमितः, ' तं ' तस्मात् कारणात्
' सेयं ' श्रेयः खलु अस्माकं हे देवानुप्रियाः ! चिलातं तस्करं सिंहगुहायाश्चोर-
पल्लयाश्चोरसेनापतितयाऽभिपिञ्चितुम्, अर्थात् अयं चिलातः तस्करोऽस्माभिः चोर
सेनापतिपदे नियोज्यः, ' चिकट्टु ' इति कृत्वा=इति मनसि विधाय ' अन्नमन्नस्स '
अन्योऽन्यस्य ' एयमट्टं ' एतमर्थम्=चिलातस्य चोरसेनापतिपदे नियोजनरूपमर्थम्

क्रिया-(एवं खलु अम्हं देवानुप्पिया ! विजए चोरसेणावर्द्ध कालधम्म-
णा संजुत्ते, अयं च णं चिलाए तक्करे विजएणं चोरसेणावइणा बहूर्द्धो-
ओ चोरविज्जाओ य जाव सिखिखाविए, तं सेयं खलु अम्हं देवानुप्पिया !
चिलायं तस्करं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए
त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिसुणेंति, पडिसुणिन्ता चिलायं तीसे
सीहगुहाए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचंति) देवानुप्रियो ! देखो-हमारे
नायक चोर सेनापति विजय तो अब मर चुके हैं । उन्होंने इस चिलात
चोर को अनेक चोर विद्याएँ आदि सब कुछ सिखलाही दिया है । अतः
हमलोगों को अब यही उचित है कि हमयोग चिलात चोर को सिंह
गुहा नामकी इस चोर पल्ली का चोर सेनापति के रूप में नियुक्त करलें
अर्थात् चोरसेनापति के पद पर इस चिलात चोर को नियुक्त करलें
इस प्रकार विचार करके उन्होंने एक दूसरे के विचार रूप अर्थ को

(एवं खलु अम्हं देवानुप्पिया ! विजए चोरसेणावर्द्ध कालधम्मणा
संजुत्ते, अयं च णं चिलाए तक्करे विजएणं चोरसेणावइणा बहूर्द्धो चोरविज्जाओ
य जाव सिखिखाविए, तं सेयं खलु अम्हं देवानुप्पिया ! चिलायं तक्करं सीह
गुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए चिकट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्टं
पडिसुणेंति, पडिसुणिन्ता, चिलायं तीसे सीहगुहाए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचंति)

हे देवानुप्रियो ! तुमो, अमारा नायक चोर सेनापति विश्व तो ढवे
भरखु पाभ्या छे. तेभखे आ चिदात चोरने धखी चोर विद्याओ वगेरे अधु
शीण्ठुं न छे. ओटका भाटे ढवे अभने ओ न योग्य लागे छे के अभे
दोका चिदात चोरने आ सिंहगुहा नामनी चोरपल्लीने चोर सेनापति
भनावी लधओ. ओटके के चोर सेनापतिना स्थाने आ चिदात चोरनी नीम-
खुंके करी लधओ. आ प्रभाखे विचार करीने तेभखे ओके पीनना विचार इय

‘ पडिहुणेंति ’ प्रतिश्रुण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य, चिलातं तस्करं चोरसेना-पतितया अर्थात् चोरसेनापतिपदे अभिपिञ्चति । ततः खलु स चिलातः चोरसेना-पतिर्जातः, कीदृशः ? इत्याह—‘ अहम्मिए जाव ’ अधार्मिको यावत्—विजयचोर-सेनापतिवदधार्मिको यावदधर्मकेतुर्भवन् विहरति । ततः खलु स चिलातः चोर-सेनापतिः ‘ चोराण य जाव ’ चोराणां च यावत्=चोरपारदारिकादीनां च ‘ कुडंगे ’ कुडङ्गः आश्रयस्थानं चाऽपि आसीत् । स खलु तत्र सिंहगुहायां चोर-पत्न्यां पञ्चानां चोरशतानां च एवं यथा विजयस्तथैव सर्वं यावत्=विजयवत् पञ्च-शतानां चोराणामुपरि आधिपत्यं कुर्वन्, राजगृहस्य दक्षिणपौरस्तम्भम्=अग्निकोणस्थं

स्वीकार कर लिया । और स्वीकार करके उस चिलात चोर को अन्त में उस सिंहगुहा नामकी चोर पल्ली का उन्हीं ने चोर सेनापति के रूप में अभिषेक कर दिया । (तएणं से चिलाए चोरसेणावई जाए अहम्मिए जाव विहरइ तएणं से चोर से० चोराण य जाव कुडंगे यावि होत्था, सेणं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचणहं चोरसयाणं य एवं जहा विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिमिल्लं जणवयं जाव णित्थाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ) इस तरह वह चिलात चोर सेनापति बन गया । चोरसेनापति बनकर वह विजय चोर सेनापति की तरह अधार्मिक यावत् अधर्मकेतु जैसा हो गया । अतः वह चिलात चोर सेनापति चोरों का यावत् पारदारिक आदिकों का कुडंग की तरह वासों के बन के समान-आश्रयस्थान बन गया और उस सिंहगुहा नामकी पल्ली में पांचसौ चोरों का आधिपत्य करता हुआ विजय तस्कर

अर्थने स्वीकारी दीधो अने स्वीकारीने छेवटे ते सिद्धुडा नामनी चोरपट्ठानीने तेमणे चोर सेनापतिना रूपमां अभिषेक करी दीधो.

(तएणं से चिलाए चोरसेणावई जाए अहम्मिए जाव विहरइ तएणं से चोर से० चोराण य जाव कुडंगे यावि होत्था, सेणं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचणहं चोरसयाणं य एवं जहा विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स दाहिण-पुरत्थिमिल्लं जणवयं जाव णित्थाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ)

आ प्रमाणे ते सिद्धात चोर चोर सेनापति श्रद्ध गयो. चोर सेनापति अपनीने ते विजय चोर सेनापतिनी जेम अधार्मिक यावत् अधर्मकेतु जेवो श्रद्ध गयो. तेथी ते सिद्धात चोर सेनापति चोरसेना यावत् पारदारिक वगैरेने कुडंगानी जेम-वासोना बननी जेम-आश्रयस्थान पानी गयो अने ते सिद्धुडा

जनपदं 'निस्थानं निद्धणं' निस्थानं निर्धनं गृहरहितं धनरहितं च कुर्वन्
विहरति ॥ सू० ४ ॥

मूलम्—तएणं से चिलाए चोरसेणावई अन्नया कयाइं विउलं
असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेत्ता पंच चोरसए आमंतेइ ।
तओ पच्छा ष्हाए कयबलिकम्मे भोयणसंडवंसि तेहिं पंचहिं
चोरसएहिं सद्धिं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च
जाव पसणं च आसाएमाणे४ विहरइ, जिसिय सुत्ततरागए
ते पंच चोरसए विउलेणं धूवपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ,
सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—एवं खल्ल देवा-
णुप्पिया ! रायगिहे णयरे धण्णे णामं सत्थवाहे अड्ढे०, तस्स
णं धूया, भद्दाए अत्तया पंचणं पुत्ताणं अणुत्तग्गजाइया सुसुमा
णामं दारिया यावि होत्था, अहीण जाव सुरुवा, तं गच्छामो
णं देवाणुप्पिया ! धण्णस्स सत्थवाहस्स गिहं विल्लंयामो, तुब्भं
विउले धणकणग जाव सिलप्पवाले ममं सुसुमा दारिया । तएणं ते
पंच चोरसया चिलायस्स चोरसेणावइस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति ।
तएणं से चिलाए चोरसेणावई तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं
अल्लचम्मं दुरुहइ, दुरुहित्ता पुव्वावरण्हकालसमयंसि पंचहिं
चोरसएहिं सद्धिं सण्णद्ध जाव महियाउहपहरणे माइयगोमु-
हिएहिं फलएहिं णिकट्टाहिं असिलट्टीहिं असंगएहिं तोणेहिं

की तरह राजगृह नगर के बाहिर के अन्निकोणस्थ जनपदों को गृह
रहित और धन रहित करने लग गया ॥ सूत्र ४ ॥

नामनी चोरपट्टीयां पांयसो चोरानो अधिपति धधने विज्य तस्सरणी लेभ
राजगृहं नगरणी ष्ण्डारना अन्निकेणु तरस्सना जन्पदोने गृहरहितं अने धन-
रहितं अट्ठे के अरणाह करवा द्वाभ्या ॥ सूत्र ४ ॥

सजीवेहिं धणूहिं समुक्खित्तेहिं सरेहिं समुल्लालियाहिं दीहाहिं
 ओसारियाहिं उरुघंटयाहिं छिप्पतूरेहिं वज्जमाणेहिं महया महया
 उक्किट्ठसीहणायचोरकलकलरवं समुद्दरवभूयं करेमाणे सीहगु-
 हाओ चोरपल्लीओ पडिणिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव राय-
 गिहे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहस्स नयरस्स
 अदूरसामंते एगं महं गहणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता, दिवसं
 खवेमाणे चिट्ठइ ॥ सू० ५ ॥

टीका— 'तएणं से' इत्यादि । ततः खलु स चिलातश्चोरसेनापतिः अन्यदा
 कदाचित् विपुलम् अशनपानखादिमस्वादिमम् 'उवक्खवेत्ता' उपस्कार्य=निष्पाद्य
 पञ्च चोरशतानि आमन्त्रयति । ततः पश्चात् स्नातः 'कयवल्लि कम्म' कृतवलि-
 कर्मा=कृतं बलिकर्म येन सः, काकादीनां कृतेदत्त भोजनोपहारो भोजनमण्डपे तैः
 पञ्चभिः चोरशतैः सार्धं 'विउलं' विपुलम्=अत्यर्थम्, अशनं पानं खाद्यस्वाद्यं सुरां
 च यावत् प्रसन्नां च 'आसाएमाणे' आस्वादयन् विहरति । पुनश्च 'जिमिय

'तएणं से चिलाए चोरसेणावई' इत्यादि ।

टीका— (तएणं) इसके बाद (चोर सेणावई चिलाए) चोर सेना-
 पति चिलात चोर ने (अन्नया कयाइ) किसी एक समय (विउलं असण-
 पाणखाइमसाइमं उवक्खडावेत्ता पंचचोरसए आमंतेइ - तओ पच्छा
 णहाए कयवल्लिकम्म, भोयणमंडवंसि तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं विउलं
 असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च जाव पसणं च ओसाए माणे ४
 विहरइ, जिमियभुत्तुरागए ते पंच चोरसए विउलेणं धूवपुप्फगंधम-

तएणं से चिलाए चोरसेणावई इत्यादि—

टीका— (तएणं) त्थापथी (चोरसेणावई चिलाए) ये २ सेनापति
 थिदात् थोरे (अन्नया कयाइ) डे।४ थे४ व४भते (विउलं असणपाणखाइमसाइमं
 उवक्खडावेत्ता पंच चोरसए आमंतेइ-तओ पच्छा णहाए कयवल्लिकम्म, भोयण-
 मंडवंसि तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं
 च जाव पसणं च आसाए माणे४ विहरइ, जिमिय भुत्तुरागए ते पंच चोरसए विउ-
 लेणं धूवपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सकारेइ, सम्माणेइ, सकारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी)

शुतुत्तरागप' जिमितशुक्तोत्तरागतः=जिमितः=कृतभोजनः शुक्तोत्तरकालमागतः यावत् परमशुचिभूतः सुखासनवरगतः सन् तानि पञ्च चौरशतानि विपुलेन=अत्यर्थेन 'धूपपुष्पगंधमल्लालंकारेण' =धूप पुष्पगन्धमाल्यालंकारेण=धूपः=सुगन्धित द्रव्येण उत्पन्नो धूमः, पुष्पं=कुसुमम्, गन्धः=चन्दनादि माल्यम्-माला, अलङ्काराणि=आभरणानि, एतेषां च समाहारद्वन्द्वः, तेन सत्करोति, सम्मानयति, सत्कृत्य सम्मान्य एवम्-अवदत्-एवं खलु हे देवानुभियाः ! राजशुहे नगरे धन्यो

ल्लालंकारेण सक्कारेह, सम्माणेह, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी) विपुल मात्रा में, अशन पान, खादिम एवं स्वादिमरूप चारों प्रकार का आहार बनवा कर उन पांचसौ चोरो को आमंत्रित किया। जब वे सब आचुके-तब उस चिलात चोर ने स्नान से निवट कर और बाघसादि को अन्नादिका भाग देनेरूपबलिकर्म आदि कर भोजन मंडपमें बैठकर उन पांच सौ चोरो के साथ उस विपुलमात्रा में निष्पन्न हुए अशन, पान, खादिम, एवं स्वादिमरूप चारों प्रकार के आहार को तथा सुरा, यावत् प्रसन्न मदिरा को खूब मनमाने रूप में पिया खाया जब वे सब के सब अच्छी तरह भोजन कर उत्तर काल में परमशुचिभूत होकर आनंद के साथ एक स्थान पर आकर बैठचुके तब उस चिलात चोर सेनापति ने उनका धूप से-सुगंधित द्रव्य से निष्पन्न हुए धूप से, पुष्पों से, चंदन आदि से, मालाओं से, और आभरणों से सत्कार किया सम्मान किया। सत्कार सम्मान करके फिर उनसे उसने इस प्रकार

पुष्कण प्रमाणुमां अशन, पान, आदिम अने स्वादिम आरे नतने आहार गनावडावीने ते पांचसो चोरोने आमंत्रित कर्था. न्यारे तेज्यो भधा आवी गथा त्यारे ते चिलात चोरे स्नान क्युं अने त्यारपछी तेजे कागडा वगेरे पक्षीज्योने अन्न वगेरेने लाग अर्पाने बलिकर्म वगेरे क्युं. त्यारभाह तेजे लोअन मंडपमां भेसीने ते पांचसो चोरोनी साथे ते पुष्कण प्रमाणुमां गनावडावेदा, अशन, पान, आदिम अने स्वादिम रूप आरे प्रकारना आहारने तेमज सुरा यावत् प्रसन्न मदिराने षण धराछ धराछने भाधा-पीधां. न्यारे तेज्यो भधा सारी रीते जभीने परमशुचीभूत थधने आनंदपूर्वक ज्येक स्थान उपर आवीने ज्येकठा थथा-भेसी गथा, त्यारे ते चिलात चोर सेनापतिज्ये तेमने धूपथी, पुष्पोथी, चंदन वगेरेथी, मालाज्योथी अने आभरणोथी सत्कार कर्था अने सम्मान कर्था. सत्कार तेमज सम्मान कर्दीने तेजे तेमने आ प्रमाणु कर्षुं हे—

नाम सार्थवाहः आद्योऽस्ति । तस्य खलु दुहिता भद्राया आत्मजा पञ्चानां पुत्रा-
णामलुभार्गीजातिकाः=पञ्चानां पुत्राणां जननान्तरं सद्युत्पन्ना सुसुमा नाम दारिका
चापि अस्ति, कीदृशी सा ? 'अहीण जाव सुरूवा' अहीन यावत् सुरूवा=अहीन
पञ्चेन्द्रियशरीरा यावद् सुरूपयती, 'तं' तत्=तस्माद् गच्छामः खलु हे देवानु-
प्रियाः । धन्यस्य सार्थवाहस्य गृहं विलुम्पामः=लुण्ठामः, युष्मार्कं धनकनक

कहा-(एवं खलु देवानुप्पिया । रायगिहे णयरे धण्णे णामं सत्थवाहे
अड्डे० तस्स णं धूया भदाए अत्तया पंचणहं पुत्ताणं अणुमगजाइया
सुंसमा णामं दारिया यावि होत्था, अहीण जाव सुरूवा तं गच्छामोणं
देवानुप्पिया । धणस्स सत्थवाहस्स गिहं विलुंयामो तुळं विउले
धणकणग जाव सिलप्पवाळे, ममं सुसुमा दारिया । तएणं ते पंच
चोरसया चिलायस्स चोरसेणवईस्स एयमदुं पडिसुणेंति । तएणं से-
चिलाए चोरसेणवई तेहिं पंचहिं चोरसहिं सद्धिं अत्लचम्मं दुरूहइ,
दुरूहत्ता पुव्वावरणहकालसमयंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं) हे देवानु-
प्रियो ! सुनो-एक बात कहना है-वह इस प्रकार है-राजगृह नगर में
धन्य नाम का एक धनिक एवं सर्वजन मान्य सार्थवाह रहता है । इस
की एक लड़की है । जिसका नाम सुंसमा है । यह उसकी पत्नी भद्रा
भार्या से पांच पुत्रों के बाद उत्पन्न हुई है । यह अहीन पांचों इन्द्रियों से
युक्त शरीरवाली है तथा बहुत अधिक सुकुमार एवं सुन्दर है । इसलिये
-चलो हे देवानुप्रियों ! हम सब चलें और धन्य सार्थवाह के घर को

(एवं खलु देवानुप्पिया । रायगिहे णयरे धण्णे णामं सत्थवाहे अड्डे०
तस्सणं धूया भदाए अत्तया पंचणहं पुत्ताणं अणुमगजाइया सुंसमा णामं दारिया
यावि होत्था अहीण जाव सुरूवा तं गच्छामो ण देवानुप्पिया । धणस्स सत्थ-
वाहस्स गिहं विलुयामो, तुळं विउले धणकणग जाव सिलप्पवाळे, ममं सुंसमा
दारिया । तएणं ते पंच चोरसया चिलायस्स चोरसेणवइस्स एयमदुं पडि
सुणेंति । तएणं से चिलाए चोरसेणवई तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं अल्लचम्मं
दुरूहइ, दुरूहत्ता पुव्वावरणहकालसमयंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं)

हे देवानुप्रियो ! सांभणो, तमने मारे ऐक वात कडेवी छे ते आ
प्रभाणे छे के राजगृह नगरमां धन्य नामे ऐक धनिक अने सर्वजनमान्य
सार्थवाह रहे छे, तेने ऐक पुत्री छे, तंतुं नाम सुंसमा छे, धन्यनी पत्नी
भद्राभार्याना गभंथी ते पुत्री पांचे भाइयो भाइ जन्म पायी छे, ते अहीन
पांचे इन्द्रियोथी युक्त शरीरवाणी छे तेमज भूम ज सुकुमार अने सुंदर छे.

यावत् गिलाप्रवालः, मम सुसुमा दारिका-लुण्ठितेषु वस्तुषु मध्ये धनकनकमणि-
मौक्तिकशिलाप्रवालादि वस्तुजातानि युष्माकं भवन्तु. मम तु एका ह्यसुसुमा दारिका
भविष्यति । ततः खलु तानि पञ्च चोरशतानि चिलातस्य चोरसेनापतेः एतमर्थं
प्रतिभृण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति । ततः खलु स चिलातश्चोरसेनापतिः तैः पञ्चभिः
चोरशतैः सार्द्धं 'अलुचर्म' आर्द्रचर्म दूरोहति, लुण्ठकाहि लुण्ठनप्रस्थानात्
पूर्वं भाङ्गल्यार्थमार्द्रचर्मण्यारोहन्तीति तेषां व्यवहारः, दूख, 'पुत्रशरणाकालसम-
यसि' पूर्वापराङ्गकालसमये '=दिनस्य चतुर्थप्रहरे पञ्चमिश्चोरशतैः सार्द्धं
'सण्णद्ध जाव गहियाउहपहरणे' सन्नद्ध यावत् शृङ्गीतायुधप्रहरणः=सन्नद्धवद्-
वर्मितकवचः=संनद्धः=सज्जीकृतः, वद्धः=कगावन्धनेन संबद्धः, वर्मितः=अङ्गे परि-
हितः कवचो येन स तयोक्तः, 'शृङ्गीतायुधप्रहरणः' शृङ्गीतानि आयुधप्रहरणानि

लूटें-जो वस्तु हम-तुम लूटेंगे उनमें से तुम्हारी तो धन, कनक, जणि,
मौक्तिक शिलाप्रवाल आदि चीजें होगी-और मेरी देवल एवं वह सुसु-
मादारिका होगी-। इस तरह उन पांचसौ चोरों ने अपने सेनापति
चिलात चोर की इस बात को मान लिया । इसके बाद यह चोर सेना-
पति चिलात, उन पांचसौ चोरों के साथ गीले चमड़े पर बैठ गया ।
लुटेरे लूटने के लिये जब प्रस्थान करते हैं तब वे पहिले गीले चमड़े पर
शुभ शङ्कुन धानने के निमित्त बैठते हैं ऐसा उनमें व्यवहार है बैठकर
फिर वह दिन के चतुर्थप्रहर में पांचसौ चोरों के साथ (सीहगुहाओ
चोरपल्लीओ पडिनिक्खमइ) उल्ल सिंहगुहा नाम की चोरपल्ली से
निकला । (सण्णद्ध जाव गहियाउहपहरणे साहयगोमुहिपहिं फलपहिं

अेटला माटे आला तैयार थाओ, डे देवानुप्रियो । आपणे मधा त्यां लधओ
अने धन्य साथवाढना घरने लुटी लधओ, ने वस्तुओ आपणे मधा लुटीशुं
तेमांथी धन, कण्ठक, मणि, मौक्तिक, शिलाप्रवाल वगेरे वस्तुओ तमारी धशे
अने इकत ते सुंसुमा दारिका मारी धशे. आ प्रमाणे ते पांचसे आदोओ
पोताना सेनापति चिलात चोरनी आ वात स्वीकारी लीधी. त्यारपथी ते चोर
सेनापति चिलात, ते पांचसे आदोनी साथे साथे लीना आमडा उपर गेसी
गथे. हुंठाराओ हुंठया माटे न्यारे धेश्ठी नीधणे छे त्यारे तेओ पहेंलां शुभ
शङ्कुन माटे लीना आमडा उपर गेसे छे, आ नतने तेओमां रिना छे
लीना आमडा उपर गेसीने ते दिवसना योथा पडोरमां पांचसे आदोनी
साथे (सीहगुहाओ चोरपल्लीओ पडिनिक्खमइ) ते सिंडशुडा नामनी
आरपल्लीमांथी नीधओ.

येन सः, गृहीताऽस्त्रशस्त्रः, ' माइयगोमुहियेहि ' माइकगोमुखितैः = माइकानि= पक्ष्मलानि, गोमुखितानि=गोमुखाकाराणि=माइकानि च तानि गोमुखितानि तैः=उदररक्षार्थं भल्लूकरोमाट्टवैर्गोमुखाकारैः ' फलएहि' फलकैः=पट्टिकेति प्रसिद्धः ' गिकट्टाहिं असिलट्टीहिं ' निष्कृष्टाभिः असिपष्टिभिः, कोशवहिकृतैः खड्गैः, ' अंसगएहिं तोणेहिं ' अंशगतैस्तूणैः=स्फुन्धस्थितैस्तूणीरैः, ' सजीवेहिं धनूहिं ' सजीवैर्धनुभिः=कोटधारोपितप्रत्यञ्चैर्धनुभिः, ' समुक्खित्तेहिं सरेहिं ' समुत्क्षिप्तैः शरैः=तूणीरसकाशान्निष्काशितैर्वाणैः, ' समुल्लालियाहिं दीहाहिं ' समुल्लालिताभिः दीहाभिः=समुच्छालितैः शस्त्रविशेषैः ' ओसारियाहिं ' अवस्वरिताभिः=नादिताभिः ' उरुघंटियाहिं ' उरुघण्टिकाभिः=विशालघण्टाभिः ' छिप्पतूरेहिं

गिकट्टाहिं असिलट्टीहिं अंसगएहिं तोणेहिं मजीवेहिं धनूहिं, समुक्खित्तेहिं सरेहिं समुल्लालियाहिं दीहाहिं, ओसारियाहिं उरुघंटियाहिं छिप्पतूरेहिं वज्जमाणेहिं महयार उक्किट्टी सीहणाये चोरकलकल रवं समुहरवं भूयं करेमाणे) चोरपल्ली से वह किस तरह की स्थिति में निकला-यही बात सूत्रकार इन पंक्तियों में कह रहे हैं-वे कहते हैं कि जब वह अपनी चोरपल्ली में से निकला तो उस समय उसने अपने शरीर पर कवच को सज्जिन करके कशाबंधन से अच्छी तरह बांध रखा था “ गृहीतायुधप्रहरणः ” आयुध और प्रहरण उसके दोनों हाथों में थे। रीछ के रोम से युक्त गोमुखाकार पट्टिका से, म्यान से बाहिर खेंची हुई तलवारों से, कंधों पर लटकते हुए भार्योंतूणीरों-से ज्यापर चढे हुए धनुषों से, तूणीर से निकाले गये बाणों से ऊपर उछालेगये शस्त्र विशेषों से,

(सण्णद्ध जाव गहियात्रहपहरणे माइयगोमुहिएहिं फलएहिं गिकट्टाहिं असिलट्टीहिं अंसगएहिं तोणेहिं सजीवेहिं धनूहिं समुक्खित्तेहिं सरेहिं समुल्लालियाहिं दिहाहिं ओसारियाहिं उरुघंटियाहिं छिप्पतूरेहिं वज्जमाणेहिं महया २ उक्किट्टसीहणाये चोरकलकलरवं समुहरवं भूयं करेमाणे)

ચોરપલ્લીમાંથી તેઓ કેવી રીતે બહાર નીકળ્યા એ જ વાત સૂત્રકાર આ પંક્તિઓમાં સ્પષ્ટ કરી રહ્યા છે. તેઓ કહે છે કે જ્યારે તે પોતાની ચોરપલ્લીમાંથી નીકળ્યા ત્યારે તેણે પોતાના શરીર ઉપર કવચ ધારણ કરીને તેને કશાબંધનથી સારી રીતે બાંધી રાખ્યું હતું. “ ગૃહિતાયુધપ્રહરણઃ ” આયુધ અને પ્રહરણ તેના બંને હાથોમાં હતાં. રીછના રોમથી યુક્ત ગોમુખાકાર પટ્ટિકાથી, મ્યાનમાંથી બહાર કાઢેલી તરવારોથી, ખંભાઓ ઉપર લટકતા તૂણીરોથી, જ્યા ઉપર ચઢેલા ધનુષોથી, તૂણીરમાંથી કાઠવામાં આવેલાં બાણોથી, ઉપર ફેંકવામાં આવેલાં શસ્ત્ર વિશેષોથી, શબ્દ કરતા-ચોટા ઘંટોથી

वज्रमाणोर्हि ' क्षिप्रतूर्यैः वाद्यमानैः=द्रुतं वाद्यमानैः तूर्यैः उपलक्षितः सन् ' महा-
महया उक्किट्टसीहणाये चोरकलकलरवं ' महामहोत्कृष्टसिंहनादचोरकलकलरवं-
अत्यन्तोत्कृष्टसिंहनादचोरकलकलशब्दं समुद्रवभूतं=समुद्रवेलावृद्धिसमये ध्वनि-
भिवक्तुर्वत्, यद्वा महता महता उत्कृष्टसिंहनादेन- ' छत्रवृतीयान्तं पदम् '
स्वकृतोत्कृष्टसिंहनादेनेत्यर्थः, शेषं पूर्ववत् । सिंहगुहातश्चोरपल्लीतः प्रतिनिष्क्रा-
भ्यति, धतिनिष्क्रम्य वनैव राजगृहं नगरं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य राजगृहस्य
नगरस्य अदूरसामन्ते एगं महद् ' गहणं ' गहनम्=वनम् अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य,
दिवसम्=शेषदिवसभागं क्षपयन्=व्यतियन् तिष्ठति ॥ सू०५ ॥

शब्दायमान-बड़े २ घंटों से जल्दी २ बजते हुए बाजोंसे वह उपलक्षित
-युक्त था । तथा उसके निकलने पर जो चोरों का कलकल रव हुआ-वह
सिंह की गर्जना के जैसा महान उच्चस्वर था- तथा जिस समय समुद्र
बहता है उस समय जैसा उसका शब्द होता है-वैसा ही वह कल २
रव गर्भीर था । (पडिनिक्खमिन्त्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवाग-
च्छह, उवागच्छित्ता रायगिहस्स नयरस्स अदूर सामन्ते एगं महं गहणं
अणुपविसइ, अणुपविसित्ता दिवसं खवेमाणे चिट्ठह) चोरपल्ली से
निकलकर वह जहाँ राजगृह नगर था वहाँ आया-वहाँ आकर के वह
राजगृह नगर के अदूरसामन्त-न अति दूर न अति समीप रहे हुए एक
महान जंगल में छिप रहे वहाँ छिपकर उसने अपना वह दिवस वहीं
पर ठहर कर समास कर दिया ॥ सू०५ ॥

जली जली वागतां वालोथी ते युक्ता इतो. तेभञ्ज न्यारे ते नीकल्यो
त्यारे चोराने जे घोण्टा थये ते सिद्धनी गञ्जना जेवे महा ध्वनि हतो.
तेभञ्ज न्यारे समुद्रमां शरती आवे छे अने त्यारे जेवे तेना ध्वनि होय
छे, ते भाषुसेनो ध्वनि पणु तेवे ज गंभीर इतो. (पडिनिक्खमिन्त्ता जेणेव
रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता रायगिहस्स नयरस्स अदूरसामन्ते
एगं महं गहणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता दिवसं खवेमाणे चिट्ठह) थारपल्लीमांथी
नीकणीने न्यां राञ्जुड नगर इतुं त्यां ते आल्यो. त्यां आवीने ते राञ्जुड
नगरथी धणु इर पणु नहि अने धणु नल्लक पणु नहि जेवा जेक सोटा वनमां
छुपाधने रक्षा त्यां छुपाधने तेणु पेतानो ते दिवस त्यां ज पसार करी दीथे. ॥सू०५॥

मूलम्—तएणं से चिलाए चोरसेणावई अद्धरत्तकालसमयांसि
 निसंतं पडिनि संतंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं माइयगोमुहिणहिं
 फलएहिं जाव मूइआहिं उरुघंटियाहिं जेणेव रायगिहस्स
 नयरस्स पुरत्थिमिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
 उदगवत्थिं परामुसइ, आयंते चोक्खे सुइभूए तालुग्घाडणिविज्जं
 आवाहेइ, आवाहित्ता, रायगिहस्स दुवारकवाडे उद-
 एण अच्छोडेइ, कवाडं विहाडेइ विहाडित्ता रायगिहं अणुप-
 विसइ, अणुपविसित्ता, महयार सद्धेणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासी
 —एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! चिलाए णामं चोरसेणावई
 पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सीहयुहाओ चोरपल्लीओ इह हवमागए
 धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाउकामे, तं जोणं णवियाए साउ-
 याए दुद्धं पाउकामे से णं णिगच्छउ त्तिकहु जेणेव धणस्स सत्थ-
 वाहस्स गिहं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणस्स गिहं विहा-
 डेइ। तएणं से धणो चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं
 सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए तत्थे ४ पंचहिं
 पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ । तएणं से चिलाए चोरसेणावई
 धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ घाइत्ता, सुबहु धणकणग
 जाव सावएज्जं सुंसुमं च दारियं गेणहइ, गेणित्ता, रायगिहाओ
 पडिणिवस्समइ, पडिनिक्खमित्ता, जेणेव सीहयुहा तेणेव
 पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स चिलातश्चोरसेनापतिः ‘ अद्-
रत्तकालसमयसि ’ अर्धरात्रकालसमये=मध्यरात्रे, कीदृशे ‘ निसंतपडिनिसंते ’ निशान्त-
प्रतिनिशान्ते=निशान्तं=जनध्वनिरहितं प्रतिनिशान्तं=प्रत्येकगृहं यस्मिन् तस्मिन् ,
जने प्रसुप्ते सतीत्यर्थः, पञ्चमिशोरशतै सार्द्धम् ‘ माइयगोमुहिएहिं ’ माइकगोमु-
खितैः, उदररक्षार्थं भल्लकरोमाद्युतैर्गोमुखाकारैः ‘ फलएहिं ’ फलकैः=पट्टकैः उदरव-
द्धकाष्ठफलकैरित्यर्थः, यावत् ‘ मूइआहिं उरुघंटियाहिं ’ मूकताभिरुघण्टिकाभिः=
निः शब्दी कृताभिः विशालघण्टाभिर्गुक्तः यत्रैव राजगृहस्य नगरस्य पौरस्त्यं द्वारं
तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, ‘ उदगवत्थिं ’ उदगवस्ति=वर्धमयजलपात्रम्, ‘ मसक’
इति प्रसिद्धम् ‘ परामुसइ ’ परामुशति=गृह्णाति, अनन्तरम् ‘ आयंते ’ आवातः=
कृतमुखादि प्रक्षालनः ‘ चोक्खे ’ चोक्षः=स्त्रच्छः अतएव ‘ तालुग्घाडणिं विज्जं ’

‘ तएणं से चिलाए चोरसेणावई ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (चोरसेणावई से चिलाए) चोरसेनापति
वह चिलात चोर (निसंतपडिनिसंते अद्दरत्तकालसमयसि) जब जन
ध्वनिरहित प्रत्येक घर हो गया ऐसे मध्यरात्रिके समयमें (पंचहिं चोर-
सएहिं सद्धिं) उन पांचसौ चोरों के साथ (माइय गोमुहिएहिं फलएहिं
जाव मूइआहिं उरुघंटियाहिं जेणेव रायगिहस्स नयरस्स पुरत्थिमिल्ले
दुवारे तेणेव उवागच्छइ) अपने उदर की रक्षा के निमित्त बद्ध भल्लुक
के रोमों से आवृत हुए गोमुखकार काष्ठफलकों से यावत् निःशब्दीभूत
विशाल घंटिकाओं से युक्त होकर जहां राजगृह नगर का पूर्वदिशा का
द्वार था वहां आया । (उवागच्छित्ता उदगवत्थिं परामुसइ, आयंते,
चोक्खे, सुइभूए, तालुग्घाडणिंविज्जं आवाहेइ, आवाहित्ता रायगिहस्स

‘ तएणं से चिलाए चोरसेणावई ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारभाइ (चोरसेणावई से चिलाए) चोर सेनापति ते
चिलात चोर (निसंतपडिनिसंते अद्दरत्तकालसमयसि) न्थारे इरेके इरेके
घरमां भाणुसेने। अवाञ्जे अकहम भध थध गथे, जेवा ते मध्यरात्रिना
समये (पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं) ते पांचसौ चोरोंने साथे

(माइय गोमुहिएहिं फलएहिं जाव मूइआहिं उरुघंटियाहिं जेणेव राय
गिहस्स नयरस्स पुरत्थिमिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ)

पोताना पेटनी रक्षा भाटे रीछना रोमोथी आपुत्त थथेला गोमुभाकार
काष्ठ इलकोथी यावत् शांत थध गथेदी भोटी घंटिकाओथी सुद्धत थधने न्थां
राजगृह नगरनुं पूर्वं दिशानुं द्वार छतुं त्यां आन्था. (उवागच्छित्ता उदगवत्थिं
परामुसइ आयंते चोक्खे सुइभूए, तालुग्घाडणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहित्ता

तालोद्घाटिनीं विधाम् ' आवाहेइ ' आवाहयति=स्मरति, ' आवाहिता ' आवाह= स्मृत्वा राजगृहस्य द्वारकपाटानि उदकेन ' आच्छोडेइ ' आच्छोटयति=अभिषि- श्रति, ' आच्छोडित्ता ' आच्छोटय=अभिषिच्य, कपाटं ' विहाडेइ ' विघाटयति= उद्धाटयति, विघाटय सकलचोरैः सहितः राजगृहमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य महता महता=अतिमहता शब्देन ' उग्घोसमाणे २ ' उद्घोषयन् २=गृहसुगृहघोषणां कुर्वन् एवमवदत्, घोषणाप्रकारमाह-एवं खलु अहं हे देवानुप्रियाः ! विलातो नाम चोरसेनापतिः पञ्चभिः चोरशतैः सार्द्धम् सिंहगुहातश्चोरपल्लीत इह ' ह्वं ' ह्वयं=

दुवारे कवाडे उदणं अच्छोडेइ कवाडं विहाडेइ, विहाडित्ता रायगिहं अणुपविसइ अणुपविसित्ता महया २ सहेणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासी -एवं खलु अहं देवाणुप्पिया चिळाए नामं चोरसेणावेई पंचहिं चोरस- एहिं सद्धिं सिंहगुहाओ चोरपल्लीओ इह ह्ववमागए धणणस्स सत्थवा- हस्स गिहं घाउंकामे) वहां आकर के उसने चर्ममय जलपात्र को-मसक को-अपने हाथ में लिया-और उसके जल से आचमन किया-आचमन करके जब वह शुद्ध परमशुचीभूत हो चुका-तब उसने तालोद्घाटिनी विद्या का आवाहन किया-स्मरण कियो-और स्मरण करके राजगृह के द्वार कपाटों को उदक के छीटों से सिञ्चित किया। सिञ्चित करके फिर उसने उन कवाडों को खोला और खोल करके फिर वह समस्त चोरों के साथ राजगृह नगर के भीतर प्रविष्ट हो गया। प्रविष्ट होकर के उसने वहां बड़े-बड़े आवाजसे बारंबार घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियों ! सुनो-मैं चोरसेनापति चिलात नाम का चोर हूँ-अभी २

रायगिहस्स दुवारकवाडे उदणं अच्छोडेइ कवाडं विहाडेइ, विहाडित्ता रायगिहं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता महया २ सहेणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया चिळाए नामं चोरसेणावेई पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सिंहगुहाओ चोरपल्लीओ इह ह्ववमागए धणणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाउंकामे)

त्यां आनीने तेष्से आभाडानी येदी-भशक-ने पोताना ढाधभां दीधी अने तेना पाष्ठीधी आचमन कथुं. आचमन करीने न्यारे ते शुद्ध परम- शुचीभूत थई थूथये त्यारे तेष्से तालोद्घाटिनी विधातुं आवाहन कथुं-स्मरण कथुं, अने स्मरण करीने राजगृहना दरवाजनां कभाडोने पाष्ठीधी सिञ्चित करीने तेष्से ते कभाडोने उघाडयां. उघाडीने ते अधा आशानी साथे राजगृह नगरनी अंदर प्रविष्ट थई गयो. प्रविष्ट थईने तेष्से त्यां मोटा साडे बारंबार घोषणा करतां आ प्रभाष्से कथुं के डे देवानुप्रियो ! सांभणो, हुं चोर सेनापति

शीघ्रम् आगतः धन्यस्य सार्थवाहस्य गृहं 'घाउकामे' घानयितुकामः=लुण्ठयितुकामः हे देवानुप्रियाः ! यूयं शृणुत, पञ्चशतचौरैः सहाहं चिलातश्चोरसेनापतिरत्रधन्यस्य सार्थवाहस्य गृहं लुण्ठयितुमागतोऽस्मीति भावः, 'तं' तत्=तस्मात् कारणात् 'जो णं' यः खलु 'णवियाए माउआए' न च्यायाः मातृकायाः 'दुद्धं पाउकामे' दुग्धं पातुकाम=यः खलु मदीयहस्तान्मृत्युं प्राप्य पुनर्भाविभ्रमभात्रिन्या नूतनाया मातृदुग्धाभिलाषीभयेत् 'सेणं' स खलु 'णिग्गच्छउ' निर्गच्छतु सम संमुख मागच्छतु 'त्ति कट्टु' इतिकृत्वा=इत्थयुक्त्वा यत्रैव धन्यस्य सार्थवाहस्य गृहं तत्रैव

पांचसौ चोरों के साथ यहाँ सिंहगुहा नाम की चोरपत्नी से आया हुआ हूँ। मेरी इच्छा धन्यसार्थवाह के घर को लूटने की है—(तं) इसलिये—(जो णं णवियाए, माउआए, दुद्धं पाउकामे सेणं णिग्गच्छउ, त्ति कट्टु जेणेव धणस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता गिहं विहाडेइ। तएणं से धण्णे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोर-सएहिं सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए तत्थे ४ पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ,। तएणं से चिलाए चोरसेणावई धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ, घाइत्ता सुवहुधणकणम जाव सावएज्जं सुंसमं च दारियं गेणइ, गेणित्ता रायगिहाओ पडिणिक्वमइ, पडिणिक्वमित्ता जेणेव सीहगुहा तेणेव पहारेत्थ गमणाए) जो नवीन माता का दूध पीना चाहता हों—मेरे हाथ से मृत्यु को प्राप्त कर पुनः भाविभ्रम में होनेवाली जननी का दुग्ध पान करने का जो अभिलाषी बन रहा हो

चिलात नामे चोर छुं ६भण्णां ७ हुं पांचसो चोरानी साथे अर्द्धी सिद्धगुहा नामनी चोरपत्नीथी आये छुं. धन्य सार्थवाहना. घरने लूटवानी भारी धच्छ छे. (तं) माटे

(जोणं णवियाए, माउआए, दुद्धं पाउकामे सेणं णिग्गच्छउ, त्ति कट्टु जेणेव धणस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता धणस्स गिहं विहाडेइ, तएणं से धण्णे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए तत्थे ४ पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ। तएणं से चिलाए चोरसेणावई धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ, घाइत्ता सुवहु धणकणम जाव सावएज्जं सुंसमं च दारियं गेणइ, गेणित्ता रायगिहाओ पडि-णिक्वमइ, पडिणिक्वमित्ता जेणेव सीह गुहा तेणेव पहारेत्थ गमणाए)

७ नवी मातातुं इध पीवा धच्छ छे अट्ठे के भारा ६थथी मृत्यु पापीने इरी पीला लपभां थनारी मातातुं इध पीवा ७ धच्छतो ६थ ते

उपागच्छति, उपागत्य धन्यस्य गृहं 'विहाडेइ' विघाटयति=उद्धाटयति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः चिलातेन चोरसेनापतिना पञ्चभिः चोरशतैः सार्द्धं गृहं 'घाइज्जमाणं' घात्यमानं=लुण्ठयमानं पश्यति, दृष्ट्वा, भीतः=भयं प्राप्तः, त्रस्तः=त्रासंगतः, त्रसितः=विशेषतस्त्रासं प्राप्तः 'उद्विग्ने' उद्विग्नेः=अयमस्माकं सर्वस्वमपहरति अहमस्य किमपि कर्तुं न शक्नोमीति हेतोः परमचिन्तामापन्नः, पञ्चभिः पुत्रैः सार्द्धम् 'एगंतं' एकान्तम्=भयरहितं स्थानम् 'अक्कमइ' अपक्राम्यति=अपगच्छति । ततः खलु स चिलातः चोरसेनापतिः धन्यस्य सार्थवाहस्य गृहं घातयति=लुण्ठयति घातयित्वा लुण्ठयित्वा सुवहुं 'धणकणग जाव सावएज्जं' धनकनक यावत् स्वापतेयस्व=धनकनक मणिमौक्तिकादिकं द्रव्यं सुसुमां च दारिकां गृह्णापि, गृहीत्वा राजगृहात् प्रतिनिक्राम्यति, प्रतिनिक्रम्य यत्रैव सिंहगुहा तत्रैव प्राधारयद् गमनाय=गन्तुमुद्यतोऽभूत् ॥ सू०६ ॥

-वही मेरे सम्मुख आवे-इस प्रकार कहकर वह जहां धन्यसार्थवाह का घर था वहां गया-वहां जाकर उसने धन्यसार्थवाह के घर को खोला जब धन्यसार्थवाह ने पांचसौ चोर के साथ चोरों सेनापति चिलात के द्वारा अपने घर को लुटता हुआ देखा-तो देखकर वह भय को प्राप्त हो गया-और त्रस्त एवं त्रसित-विशेष त्रास को प्राप्त होकर अन्त में वह उद्विग्न बन गया यह हमारा सर्वस्व हरण कर रहा है और मैं इसका कुछ भी नहीं कर सकता हूँ-इस ध्यान से वह चिन्ताकुल हो गया-और चिन्ताकुल होकर अपने पांचों पुत्रों के साथ वहां से निर्भय स्थान में चला गया । चोर सेनापति चिलात ने धन्य सार्थवाह को खूब मनमाना लूटा और लूट करके उससे बहुत सा धन कनक, मणि, मौक्तिक आदि द्रव्यों को एवं सुसुमादारिका को ले लिया-। लेकर वह राजगृह नगर से

भारी सामे आवे आ प्रभाण्णे कहीने ते न्यां धन्य सार्थवाहंतुं घर ढंतुं त्यां जये। त्यां जधने तेण्णे धन्य सार्थवाहना धरने उवाहंतुं न्यादे धन्य सार्थवाहे पांयसे। आशानी साथे चोर सेनापति चिलात वडे पोताना धरने लुटांतुं जेथुं त्यादे जेधने ते लयभीत थधं जये। अने त्रस्त तेमज्ज त्रासित (विशेष त्रास) प्राप्त करीने छेवटे उद्विग्न थधं जये। आ अभाइं सर्वस्व हरणुं करी रह्यो छे अने हुं जेथुं क'धंज्ज भगाडी शकते नथी। आ ज्ञातने विचार करीने ते ज्ञिताकुण थधं जये अने ज्ञिताकुण थधने ते पोताना पांथे पुत्रोनी साथे त्यांथी निर्भय स्थानमां जतो रह्यो चोर सेनापति चिलाते धन्य सार्थवाहना धरने पूण धञ्जल सुज्जल लूटंतुं अने लूटीने तेमांथी धणुं धन, कनक, मण्णि, मोती वगेदे द्रव्ये तेमज्ज सुंसमा दारिकाने लधं लीथी। लधने ते राजगृह

मूलम्—तएणं से धन्ने सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबहुं धणकणगं सुंसुमं च दारियं अवहरियं जाणित्ता, महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं गहाय जेणेव णगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, तं महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं जाव उवणेति, उवणित्ता, एवं वयासी—एवंखलु देवाणुप्पिया ! चिलाए चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं समगिहं घाएत्ता धणकणगं सुंसुमं च दारियं गहाय जाव पडिगए । तं इच्छामो णं देवाणुप्पिया ! सुंसुमा दारियाए कूवं गमित्तए, तुब्भं णं देवाणुप्पिया ! से विउले धणकणगे, ममं सुंसुमा दारिया । तएणं ते णगरगुत्तिया धण्णस्स एयमट्टं पडिसुणेति, पीडसुणित्ता संनद्ध जाव गहियाउहपहरणा सहयार उक्किट्टं जाव समुहरवभूयं पिव करेमाणा रायगिहाओ णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता, जेणेव चिलाए चोरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, चिलाएणं चोरसेणाव-इणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था । तएणं ते णगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हयमहिय जाव पडिसेहेति । तएणं तेपंच चोरसया णयरगोत्तिएहिं हयमहिय जाव पडिसेहिया समाणा तं विउलं धणकणगं विच्छड्डेमाणा य विप्पकिरेमाणा य सव्वओ

वापिस निकला-और निकल करके जहां सिंहगुहा नाम की चोरपल्ली थी-उस ओर चलने के लिये उद्यत हो गया ॥ सू० ६ ॥

नगरमांथी पाछे षडार आये। अने आवीने न्यां सिद्धशुडा नामे चोरपल्ली छती ते तरङ्ग स्वाना थवा तैयार थछ गये। ॥ सूत्र ६ ॥

समंता विप्पलाइत्था । तएणं ते णगरगुत्तिया ते विउलं धण-
 कणंगं गेणहंति, गेण्हत्ता जेणेव रायगिहे तेणेव उवागच्छंति ।
 तएणं से चिलाए तं चोरसेणं तेहिं णयरगुत्तिएहिं हयमहिय
 जाव भीए तत्थे सुंसुमं दारियं गहाय एगं महं अग्गासियं दीह-
 मद्धं अडविं अणुप्पविट्ठे । तएणं धण्णे सत्थवाहे सुंसुमं दारियं
 चिलाएणं अडवीमुहं अवहीरमाणिं पासित्ताणं पंचहिं पुत्तेहिं
 सद्धिं अप्पछट्ठे सन्नद्धबद्धं० चिलायस्स पदमंगवीहिं अणुगच्छ-
 माणे अभिगज्जंते हक्कारेमाणे पुक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे
 अभितासेमाणे पिट्ठओ अणुगच्छइ । तएणं से चिलाए तं धण्णं
 सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछट्ठं सन्नद्धबद्धं० समणुगच्छ-
 माणं पासइ, पासित्ता अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कार-
 परक्कमे जाहे णो संचाएइ सुंसुमं दारियं णिव्वाहित्तए, ताहे
 संते संते परितंते नीलुप्पल० असिं परामुसइ, परामुसित्ता
 सुंसुमाए दारियाए उच्चमंगं छिंदइ, छिंदित्ता, तं गहाय तं
 अग्गासियं अडविं अणुप्पविट्ठे । तएणं से चिलाए तीसे अगा-
 मियाए अडवीए तण्हाए अभिभूए समाणे पम्हुइ दिसाभाए,
 सीहगुहं चोरपच्छिं असंपत्ते अंतरा चैव कालगए ।

एवामेव समणाउसो ! जाव पंक्वइए समाणे इमस्स ओ-
 रालियसरीरस्स वंतासवस्स जाव विद्धंसणधम्मस्स वण्णहेउं
 जाव आहारं आहारेइ, से णं इहलोए चैव बहूणं समणाणं४
 हिलणिज्जे ३ जाव अणुपरियट्ठिस्सइ, जहा व से चिलाए
 तक्करे ॥ सू० ७ ॥

टीका— 'तएणं से' इत्यादि । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहो यत्रैव स्वर्कं गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य सुवहुं धनकनकं सुंस्तुमां च दारिकाम् अपहृतां ज्ञात्वा 'महत्थं महग्घं महरिहं' महार्थं महार्घं महार्हम्=महानर्थः प्रयोजनं यस्मिन् तत्=महार्थं=महाप्रयोजनकम्, बहुमूल्यं पुनः महतां योभ्यम् 'पाहुडं' प्राप्तं=उपायनं गृहीत्वा यत्रैव 'नगरगुत्तिया' नगरगोप्तृकाः=नगररक्षकाः कोट्टपालादयः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत् महार्थं यावत्=महार्घं महार्हं प्राप्तम् 'उवणेइ' उपनयति=समर्पयति, उपनीय=समर्प्य एवमवदत्—एवं खलु हे देवानु-

'तएणं से धन्ने सत्थवाहे' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से धन्ने सत्थवाहे) वह धन्य सार्थवाह (जेणेव सरणिहे तेणेव उवागच्छइ) जहाँ अपना घर था वहाँ आया (उवागच्छित्ता सुवहुं धणकणगं सुंसमं च दारियं अवहरियं जाणित्ता महत्थं महग्घं महरियं पाहुडं गहाय जेणेव नगर गुत्तिया तेणेव उवागच्छइ) वहाँ आकरके उसने अपने घरमें से बहुत सा धन कनक एवं सुंसमा दारिका को हरण किया हुआ जब जाना तब वह महार्थ बहुमूल्य एवं महापुरुषों के योग्य भेंट लेकर जहाँ नगर रक्षक—कोट्टपाल—आदि थे वहाँ गया—(उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं जाव उवणेति, उवणित्ता एवं वयासी) वहाँ जाकर उसने उस महाप्रयोजन साधक भूत बहुमूल्य तथा महापुरुषों के योग्य भेंट को उनके लक्ष्य रक्षदिया—और रखकर उनसे उसने इस प्रकार कहा—(एवं

'तएणं से धन्ने सत्थवाहे' इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपछी (से धन्ने सत्थवाहे) ते धन्य सार्थवाह (जेणेव सरणिहे तेणेव उवागच्छइ) ज्थां पोतानुं धर हुंतुं त्थां आब्धे।

(उवागच्छित्ता सुवहु धणकणगं सुंसमं च दारियं अवहरियं जाणित्ता महत्थं महग्घं महरियं पाहुडं गहाय जेणेव नगर गुत्तिया तेणेव उवागच्छइ)

त्थां आब्धेने तेब्बे पोताना धरमांथी पुष्कण प्रभाषुमां धन, कनक अने सुंसमा दारिकानुं हरण करवाभां आवेलुं नाब्धिने ते म्हात्थं, षडु डिमती अने म्हापुरुषोने योग्य भेट दधने ज्थां नगर-रक्षक-कोट्टपाल-वणेरे हता त्थां गथे। (उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं जाव उवणेति, उवणित्ता एवं वयासी) त्थां ज्धने तेब्बे ते म्हाप्रयोजन साधकभूत षडु डिमती तेमज्ज म्हा पुरुषोने योग्य भेटने तेमनी सामे भूषी दीधी अने भूषीने तेमने तेब्बे आ प्रभाषे विनंती करतां कहुं के—

પ્રિયા: ! ચિલાતશ્ચોરસેનાપતિ: સિંહગુહાયાશ્ચોરપત્ન્યા: इह हव्यमागत्य पञ्चभिश्चोर-
 शतैः सार्द्धम् मम गृहं 'घाएत्ता ' घातयित्वा=लुण्ठयित्वा सुवहुं धनकनकं सुंसुमां
 च दारिकां गृहीत्वा 'जाव पडिगए ' यावत् प्रतिगतः=पञ्चभिश्चोरशतैः सार्धं
 सिंहगुहां चोरपल्लीं प्रतिनिवृत्त इत्यर्थः, ' तं ' तत्=तस्मात् कारणात् इच्छामः
 खलु हे देवानुप्रिया: ! ' सुंसुमा दारियाए सुंसुमा दारिकाया ' क्वं ' प्रत्यान-
 यने ' गमितए ' गन्तुम् । ' तुवभेणं देवाणुप्पिया ! ' युष्माकं खलु हे देवानु-
 प्रिया: ! तत्=अपहतं विपुलं धनकनकम्=हे देवानुप्रिया: ! चोराऽपहतं धनकना-
 दिकं सर्वं युष्माकं भवतु, मम सुंसुमा दारिका भवतु । ततः खलु ते नगरगोप्तकाः

खलु देवाणुप्पिया: ! चिलाए चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ
 इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता, सुवहुं धन-
 कणगं सुंसुमां च दारियं गहाय जाव पडिगए-तं इच्छामो णं देवाणु-
 प्पिया ! सुंसुमा दारियाए क्वं गमितए-तुवभं णं देवाणुप्पिया । से विउले
 धणकणगे ममं सुंसुमा दारिया) हे देवानुप्रियो सुनो चोर सेनापति
 चिलात चोर ने सिंहगुहा नाम की चोरपल्ली से यहां शीघ्र आकर
 पांचसौ चोरों के साथ मेरे घर पर डांका डाला है । उसमें उसने बहुत
 सा धन, कनक एवं सुंसुमा दारिका को लूटा है और-लूटकर वह वहां
 वापिस अपने स्थान पर चला गया है । अतः हे देवानुप्रियो ! मैं चाहता
 हूँ कि आप लोग उस सुंसुमा दारिका को लेने के लिये जावें, मिलने पर
 वह हून धनकनक आदि सब आपका रहे-और सुंसुमा दारिका मेरी

(एवं खलु देवाणુપ્પિયા ! ચિલાए ચોરસેનાવई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ
 इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता, सुवहुं धणकणगं सुंसुमां
 च दारियं गहाय जाव पडिगए तं इच्छामो णं देवाणुप्पिया ! सुंसुमा दारियाए
 क्वं गमितए-तुवभं णं देवाणुप्पिया ! से विउले धणकणगे ममं सुंसुमा दारिया)

હે દેવાનુપ્રિયો ! સાંભળો, ચોર સેનાપતિ ચિલાત ચોરે સિંહગુહા નામની
 ચોરપદ્ધીથી એકદમ અહીં આવીને પાંચસો ચોરોની સાથે મારા ઘરમાં ધાક
 પાડી છે. તેમાં તેણે ઘણું ધન, કનક અને સુસુમા દારિકાની લૂંટ કરી છે.
 લૂંટ કરીને તે પાછો પોતાના સ્થાને જતો રહ્યો છે એથી હે દેવાનુપ્રિયો !
 મારી ઈચ્છા છે કે તમે સુસુમા દારિકાને પાછી લેવા માટે જાઓ અને તેને
 મેળવી લીધા બાદ તે અપહૃત કરાયેલું ધન કનક વગેરે બધું તમે રાખો અને
 સુસુમા દારિકાને મને સોંપી દેજો.

पुरुषाः धन्यस्य एतमर्थं प्रतिश्रुत्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य 'सन्नद्ध जाव गहियाउहपरणा' सन्नद्ध यावत् गृहीतायुधप्रहरणाः=सन्नद्धवद्धवर्मितकवचा यावद् गृहीतायुधप्रहरणा इत्यस्य व्याख्या पूर्ववद् बोध्या, 'महया २ उक्किद्ध जाव समुद्रवभूयंपिव' महा महोत्कृष्ट यावत् समुद्रवभूतमिव, वेलावृद्धिसमये समुद्रध्वनिमिव महाध्वनिं 'करेमाणा' कुर्वन्तो राजगृहात् निर्गच्छन्ति, निर्गत्य रहे। (तएणं ते णगरगुत्तिया धणस्स सत्थवाहस्स एयमहं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सन्नद्ध जाव गहियाउहपरणा महया २ उक्किद्ध० जाव समुद्रवभूयं पिवकरेमाणा रायगिहाओ णिगगच्छंति णिगच्छित्ता जेणेव चिलाए चोरे-तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चिलाएणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था तएणं ते णगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हयमहिय जाव पडिसेहेंति, तएणं ते पंच चोरसया णयरगोत्तिएहिं हयमहिय जाव पडिसेहिया समाणा तं विउलं धणकणगं विच्छड्ढेमाणा य विप्पकिरेमाणा य सव्वओ समंता विप्पलाइत्था) धन्य सार्थवाह की इस बात को सुनकर उन नगर रक्षकों ने स्वीकार कर लिया। और स्वीकार करके उसी समय उन्होंने अपने २ शरीरपर कवच को सज्जित करके कशाबंधन से बांध लिया यावत् आयुध और प्रहरणों को छे लिया-। वेलावृद्धिके समय में जिस प्रकार समुद्र की ध्वनि होती है-उसी प्रकार की महाध्वनि करते हुए फिर वे राजगृह नगर

(तएणं ते णगरगुत्तिया धणस्स सत्थवाहस्स एयमहं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सन्नद्ध जाव गहियाउहपरणा महया २ उक्किद्ध० जाव समुद्रवभूयं पिवकरेमाणा रायगिहाओ णिगगच्छंति, णिगच्छित्ता जेणेव चिलाए चोरे-तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चिलाएणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था-तएणं ते णगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हयमहिय जाव पडिसेहेंति, तएणं ते पंच चोरसया णयरगोत्तिएहिं हयमहिय जाव पडिसेहिया समाणा तं विउलं धणकणगं विच्छड्ढेमाणा य विप्पकिरेमाणा य सव्वओ समंता विप्पलाइत्था)

धन्य सार्थवाहनी ते वातने सांसणीने नगर रक्षकाञ्च तेने स्वीकारी दीधी अने स्वीकारीने तेमण्णे तरत अ पोतपोताना शरीरे। उपर कत्रओ पडिरीने कशा अंधनेाथी बांध्यां यावत् आयुध अने प्रहरणोने साथे लथ दीधां। सरतीना समथे जेणे। समुद्रने। ध्वनि डोय छे तेवे। अ महाध्वनि करतां तेञ्चो। राजगृह नगरभांथी अडार नीकळ्या अने नीकणीने ल्यां चोर सेनापति ते

यत्रैव चिलातश्चोरः, तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य चिलातेन चोरसेनापतिना सार्धं 'संपलङ्गा' संप्रलङ्गाः=युद्धं कर्तुं प्रवृत्ताश्चापि अभवन् । ततः खलु नगर-गोप्तृकाः चिलातं चोरसेनापति 'हयमहिय० जाव' हतमथित यावत्=हतम-थित प्रवरवीरघातितनिपतितचिह्नध्वजपताकं=हता=मारिताः, मथिताः=निश्शेषतां प्राप्तिताः, प्रवरवीराः=श्रेष्ठवीरा यस्यासौ हतमथितप्रवरवीरः, घातितः=घातः शस्त्रादिप्रहारेण क्षतिः, स संजातोऽस्य घातितः क्षत इत्यर्थः, निपतिता=भूमौ पतिता चिह्नध्वज पताकाः यस्याऽसौ, निपतितचिह्नध्वजपताकः, एतेषां कर्म-धारयः, तम्, यावत् प्रतिषेधयन्ति=निवारयन्ति । ततः खलु ते 'पंचचोरसया' पञ्चशतचौराः 'नगरगोप्तिर्हि' नगरगोप्तृकैः=नगररक्षकैः पुरुषैः 'हयमहिय जाव पडिसेहिया' हतमथितयावत्प्रतिषेधिताः=प्रतिषेधिताः रान्तः तत् विपुलं धनकनक=धनकनकमणिमौक्तिकादिकं 'विच्छडूडेमाणा' विच्छर्दयन्तः=प्रक्षिपन्तः 'विप्किरेमाणा य' विप्रकिरन्तश्च=इतस्ततो विकिरणं कुर्वन्तः 'सन्वओ समंता' सर्वतः समन्तात्=चतुर्दिक्षु 'विप्पलाइत्था' विप्लायन्तः=पलायिताः ततः खलु ते

से बाहर निकले—और निकलकर जहाँ चोर सेनापति वह चिलात चोर था वहाँ गये—वहाँ पहुँचते ही उनका चोर सेनापति उस चिलात चोर के साथ युद्ध होना प्रारंभ हो गया—उस युद्ध में उन्होंने ने उस चिलात के सैन्य को पहिले खूब मारा—पीटा—बाद में उन्हें बिलकुल नष्ट भ्रष्ट कर दिया । कितनेक चोरों को उन्होंने ने क्षत किया । उसकी चिह्न ध्वजपता-काओं को जमीन पर डाल दिया । इस प्रकार उसे हरतरह परास्त कर दिया । जब वे पांचसौ चोर नगररक्षक पुरुषों द्वारा हर प्रकारसे हतमथित यावत् प्रतिषेधित हो चुके तब वे उस विपुल धनकनक मणिमौक्तिक आदिको छोड़कर तथा इधर उधर डालकर सर्व प्रकारसे चोरों दिशाओंमें इधर उधर भाग गये । (तएवं ते नगरशुक्तिघातं विडलं धनकणमं

शिलात चोर हतो त्यां गया. त्यां जतांनी साथे ज चोर सेनापति शिलातनी साथे तेमनुं युद्ध शर्द्ध थर्द्ध गथुं. युद्धमां तेमणु पडेलां तो शिलातनी सेना साथे शूण मार-पीट करी अने तयारपणी तेने नष्ट-भ्रष्ट करी नाणी. डेटलाक जोशेने तो तेमणु क्षत (धवायेला) कर्था. तेमनी शिह्नभूत ध्वज पताकाज्याने जमीनहोस्त करी नाणी आ प्रमाणु तेने जधी रीते डरावी दीधी. ज्यारे ते पांचसो जोशे नगर रक्षक पुरुषो वडे सर्व रीते हत, मथित यावत् प्रतिषेधित थर्द्ध गया त्यारे तेज्यां ते पुष्कण धन, कनक, मणुी, मोती वजेरेने त्यां ज भूकीने आभतेम नाणीने थारे दिशाज्यामां आभतेम पलायन थर्द्ध गया.

नगरगोप्तृकाः=नगररक्षकाः=तं त्रिपुलं धनकनकं=धनकनकादिकं गृह्णन्ति, गृहीत्वा, यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैव उपागच्छन्ति । ततः खलु स चिलातः तां चोरसेनां 'हयमहिय जाव' हतमथित यावत्=हतमथितमन्त्रवीरघातितनिपतित चिह्नध्वजपताकाम् यावद् दृष्ट्वा भीतस्त्रतः सुंसुमां दारिकां गृहीत्वा एकां महतीम् 'अगामियं' अग्रामिकाम्=ग्रामरहिताम् 'दीहमद्' दीर्घार्ध्वां=दीर्घमागामिम् 'अडविं' अटवीम्=अनुमविष्टः । ततः खलु धन्यः सार्थवाहः सुंसुमां दारिकां चिलातेन 'अडवीसुहं' अटवीमुखम्=अरण्यसम्मुखम् 'अवहीरमार्णि' अपह्रियमाणाम्-नीयमानां 'पासित्ता' दृष्ट्वा पञ्चभिः पुत्रैः सार्द्धम् 'अप्पछ्छे' आत्मपण्डः 'सन्नद्धवद्धं' सन्नद्धवद्धवर्मितकवचः चिलातस्य 'पदमग्गवीहिं' पद-

गेण्हति, गेण्हित्ता, जेणेव रायगिहे तेणेव उवागच्छति । तएणं से चिलाए तं चोरसेणं तेहिं णयरगुत्तिएहिं हयमहिय जाव भीए तत्थे सुंसमं दारियं गहाय एणं महं अगामियं दीहमद् अडविं अणुप्पविट्ठे) उन नगर रक्षकों ने उस त्रिपुल धन कनक आदिको ले लिया और लेकर राजगृह नगर में वापिस आ गये । इस के बाद वह चिलात चोर अपनी उस सेना को नगर रक्षकों द्वारा हत मथित प्रवल वीरवाली एवं घातित तथा निपतित चिह्न ध्वज पताका वाली देखकर त्रस्त हो गया और सुंसुमादारिका को लेकर एक बड़ी भारी ग्रामरहित अटवी में घुस गया (तएणं धणणे सत्थवाहे सुंसमं दारियं चिलाएणं अडवीसुहं अवहिरमार्णि पासित्ता णं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछ्छे सन्नद्धवद्ध चिलायस्स पदमग्गवीहिं अणुगच्छमाणे अभिगज्जंते हाक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे

(तएणं ते णयर गुत्तिया तं त्रिउलं धणकणगं गेण्हति, गेण्हित्ता, जेणेव रायगिहे तेणेव उवागच्छति । तएणं से चिलाए तं चोरसेणं तेहिं णयरगुत्तिएहिं हयमहिय जाव भीए तत्थे सुंसमं दारियं गहाय एणं महं अगामियं दीहमद् अडविं अणुप्पविट्ठे)

ते नगर रक्षकोंसे ते पुष्कण प्रभाषुमां पठेलां धन, कनक वगेरेने लध लीधुं अने लधने राजगृह नगरमां पाछा आवी गया । त्यारपछी ते चिलात चोरे पोतानी ते चोर सेनाने नगर रक्षकों वडे डत, मथित तेमळ घातित अने निपतित चिह्नध्वज पताकाओवाणी लोधने त्रस्त थर्ध गये अने सुंसुमा दारिकाने लधने ओक लारे मोठी आभरडित अटवीमां पोस्ती गये।

(तएणं धणणे सत्थवाहे सुंसमं दारियं चिलाएणं अडवीसुहं अवहीरमार्णि पासित्ता णं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछ्छे सन्नद्धवद्धचिलायस्स पदमग्गवीहिं अणुगच्छमाणे अभिगज्जंते हाक्कारेमाणे पुक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे अभिहासे-

मार्गत्रिधि=पदमार्गप्रचारम्=चरणचिह्नम् 'अणुगच्छमाणे' अनुगच्छन्=पृष्ठतो धावन् 'अणुगज्जेमाणे' अनुगज्जन्=मेघवद्गर्जनां कुर्वन् 'हकारेमाणे' 'हंभो' दुष्ट ! तिष्ठ-तिष्ठ' इत्यादि, वाक्यैः हकारयन्=आकारयन् 'पुकारेमाणे' पूत्कारयन् ' तिष्ठ २, नोचेच्चां हनिष्यामीत्यादिवाक्यैः तमाह्वयन् 'अभितज्जेमाणे' अभितर्जन्='रे निर्लज्ज' इत्यादि वाक्यैस्तर्जनां कुर्वन्, 'अभितासेमाणे' अभित्रासयन्=अस्त्रशस्त्रादिदर्शनेन त्रासमुत्पादयन् 'पिट्ठाओ' पृष्ठतः=चिलातचोरस्य पृष्ठदेशतः अनुगच्छति=पश्चाद्भावति । ततः खलु स चिलातः तं धन्यं सार्थवाहं पञ्चभिः पुत्रैः सादर्धम् 'अप्पच्छट्टं' आत्मपण्डं 'सन्नेद्धवद्धवर्मितकवचं यावत् समणुगच्छन्तं=पश्चाद्भावन्तं पश्यति, दृष्ट्वा 'अत्थामे ४' अस्थामा=आत्मवलरहितः, अवलः=सैन्यरहितः, अवीर्यः = उत्साहरहितः, अपुरुषकारपराक्रमः सन्

अभितासेमाणे पिट्ठाओ अणुगच्छइ) . धन्यसार्थवाह ने जब सुंसमा दारिका को चिलात चोर द्वारा अटवी के मध्य में हरणकर ले जाई गई जब जाना-तब वह अपने पांचों पुत्रों के साथ आत्मपण्ड होकर कवच बांध उस चिलात के पीछे २ पद चिह्नों का अनुसरण करता हुआ, मेघ के जैसी गर्जना करता हुआ, अरे ओ दुष्ट ! ठहर ठहर इस प्रकार से कहता हुआ, पुकार करता हुआ ठहर जा ठहर जा-नहीं तो मैं तुझे मार डालूंगा इस प्रकार के वाक्यों से उसे बुलाता हुआ रे. निर्लज्ज ! इस प्रकार से उसे तर्जित करता हुआ, तथा अस्त्र शस्त्र आदि के दिखाने से उसे त्रास उत्पन्न करता हुआ चला ।

(तएणं से चिलाए तं धणणं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टं अन्नद्धवद्धं समणुगच्छमाणं पासइ, पासित्ता अत्थामे अवले

माणे पिट्ठाओ अणुगच्छइ)

न्यारे धन्य सार्थवाहे सुंसमा दारिकाने चिलात चोर वडे अटवीमां डरथु करीने लधं न्यायेकी न्णणी, त्यारे ते पोताना पांचे पुत्रेनी साथे आत्मपण्ड थधने कवच बांधीने ते चिलात चोरनी पाछण तेना पद चिह्नेतुं अनुसरथु करतो मेघना जेवी ध्वनि करतो "अरे ज्यो दुष्ट ! जिलोरे, जिलोरे," आ प्रमाथे डडेतो "जिलोरे, जिलोरे, नद्धितर मरी गयेकी न्णण्णे" आ प्रमाथे डाकेल करतो, तेने जोलापतो 'अरे निर्लज्ज !' आभ तर्जित करतो तेभज शस्त्र अस्त्र वजेरेने यतावीने तेने त्रसित करतो थ्थयो.

(तएणं से चिलाए तं धणणं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टं सन्नद्धं समणुगच्छमाणं पासइ, पासित्ता अत्थामे अवले अवीरिए अपुरितक्कार

पुरुषकारः=पौरुषम्, पराक्रमः=सामर्थ्यं, तद्रहितः सन् 'जाहे' यदा नो शक्नोति सुंसुमां दारिकां 'णिन्वाहित्त्प' निर्वाहयितुं=बोद्धुम्, 'ताहे' तदा 'संते' श्रान्तः=परिश्रमं गतः, 'तंते' तान्तः=ग्लानिं प्राप्तः, 'परितंते' परितान्तः=सर्वतोभावेन खिन्नतामुपगतः, 'नीलुप्पल०' नीलोत्पल०=नीलोत्पगवलगुलिकादि विशेषणविशिष्टमतितीक्ष्णम् 'असिं' करवालं 'परासुसइ' परामुशति=कोशान्निःसारयति, परामुश्य, सुंसुमाया दारिकायाः 'उत्तमंगं' उत्तमाङ्गं=शिरः

अवीरिए अपुरिसकारपरक्कमे जाहे णो संचाएइ सुंसमं दारियं णिन्वाहित्त्प, ताहे संते तंते परितंते निलुप्पल० असिं परामुसइ, परामुसित्ता सुंसमाए दारियाए उत्तमंगं छिदइ, छिदित्ता, तं गहाय तं अग्गामियं अडविं अणुपविट्ठे, तएणं से, चिलाए तीसे आंगामियाए अडवीए तण्हाए अभिभूए समाणे पम्हुइदिसाभाए सीइहं शुहं चोरपल्लिं असंपत्ते अंतराचेव कालगए) जब चिलात चोर ने उस धन्यसार्थवाह को पांचो पुत्रों के साथ आत्मबध्न होकर एवं कवच आदि से सुसज्जित होकर अपने पीछे २ आता हुआ देखा-तब वह देख कर आत्मबल रहित हो गया। इस तरह सैन्य रहित, उत्साह रहित तथा पौरुष और पराक्रम रहित बना हुआ वह जब सुंसुमा दारिका को अपने पास रखने के लिये शक्तिशाली नहीं हो सका तब उसने श्रान्त, तान्त-ग्लानि युक्त और परितान्त सर्वतोभावेन खिन्नता को प्राप्त होकर नीलोत्पल, गवलगुलिका, आदि विशेषणों वाली अपनी तलवार को उठाया-भ्यान

परक्कमे जाहे णो संचाएइ सुंसमं दारियं णिन्वाहित्त्प, ताहे संते तंते परितंते नीलुप्पल० असिं परामुसइ, परामुसित्ता सुंसमाए दारियाए उत्तमंगं छिदइ, छिदित्ता, तं गहाय तं अग्गामियं अडविं अणुपविट्ठे, तएणं से, चिलाए तीसे आंगामियाए अडवीए तण्हाए अभिभूए समाणे पम्हुइदिसाभाए सीइशुहं चोरपल्लिं असंपत्ते अंतरा चेव कालगए)

न्यादे थिलात शेरे ते धन्य सार्थवाहने पांचे पुत्रेनी साथे आत्मबध्न थधने तेमज्ज कवच वगेरेथी सुसज्जित थधने पोतानी पाछण पाछण आवतो जेथे। त्यारे ते जेधने आत्मबध्न वगरनेो थधं गथे। आ प्रभाणु सेना रहित उत्साह रहित तेमज्ज पौरुष अने पराक्रम रहित थधं गथेदी ते न्यारे सुंसुमा दारिकाने पोतानी पासे राभवामां पणु असमर्थं थधं गथे। त्यारे तेणु श्रान्त, तान्त, ग्लानि युक्त अने परितान्त तेमज्ज भधी रीते खिन्नता प्राप्त करीने नीलोत्पल, गवल गुलिका वगेरे विशेषणवाणी पोतानी तरवारने उपाडी अने भ्यानभांथी गडार काडी अने गडार काडीने सुंसुमा दारिकां माथुं कापी

छिनत्ति, छित्त्वा, ' तं ' तत्=उचमाङ्गं गृहीत्वा ताम् अग्रामिकाम्=जनावासरहिताम् अटवीमनुप्रविष्टः=प्रवेशं कृतवान् । ततः खलु चिलातः तस्यामग्रामिकायामटव्यां ' तण्हाए ' तृष्णया=पिपासया अभिभूतः सन् ' त्रिम्हुट्टदिसामाए ' त्रिस्तुतदिग्भागः=पूर्वादिदिशाविवेकविकलः सन् सिंहगुहां चोरपल्लीम् ' अभंपत्ते ' असम्प्राप्तः ' अंतराचेव ' अन्तरा एव=मध्य एव ' कालंगए ' कालंगतः=असौ चोरो मृत्युं प्राप्तवान् । अस्य शेषचरितं ग्रन्थान्तरादवसेयम् , ज्ञास्त्रेत्-उपयोगि चरितं तावन्मात्रं भगवतोपदिष्टम् ।

अथ चिलातदृष्टान्तेन भगवान् निर्ग्रन्थादीन् संबोध्य प्रतिबोधयति — ' एवामेव ' एवमेव=अनेन प्रकारेणैव ' समणाउसो ' आयुष्तः श्रमणाः ! ' जाव पव्वइए समाणे ' यावत् प्रव्रजितः सन्=योऽस्माकं निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा आचार्योपाध्यायानां समीपे प्रव्रजितः सन् ' इमस्स ' अस्य ' ओरालियसरीरस्स ' औदारिकसरीरस्य वान्तासवस्स यावद् विध्वंसनधर्मस्य ' वण्णहेउं ' वर्णहेतुं = कान्तिविशेषप्राप्त्यर्थम् , यावत्—' रूवहेउं ' रूपहेतुं=सौन्दर्यार्थम् , ' वल्लहेउं '

से बाहर क्रिया और उठाकर खुंलसमा दारिका के मस्तक को काट डाला उस कटे हुए मस्तक को लेकर फिर निर्जन अटवी में प्रवेश कर गया । उस अटवी में पिपासा से व्याकुल होकर वह पूर्वादि दिशाओं के विवेक से रहित हो गया—इस तरह वह पुनः वहाँ से पीछे वापिस अपनी सिंहगुहा नामकी चोर पल्ली में नहीं आ सका—और बीच ही में काल कवलित बन गया । इसका अवशिष्ट चरित्र ग्रन्थान्तर से जान लेना चाहिये । यहाँ तो भगवान् ने जितना चरित्र इसका उपयोगी जाना उतनाही उपदिष्ट किया है !—(एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स जाव त्रिद्वंसणधम्मस्स वण्णहेउं जाव आहारं आहारेइसे णं इहलोए चेव बहूणं सम-

नाभ्यु. ते कथाञ्जला भाथाने लधने ते निज्जन-अथ'कर अटवीमां पेसी गथे. अटवीमां ते तरसथी व्याकुण थधने पूर्व वगेरे दिशाञ्जाना विवेकथी रहित अर्थ गथे अने आ प्रभाणु ते क्षरी त्यांथी ते पोतानी सिद्धगुहा नामनी थार-यद्वीमां कोध पणु दिवसे पाठो आवी श्रुथो नहि अने वच्चे न मृत्यु पाभ्यो. तेतुं पाडीतुं अरित्र थील अथमांथी लण्णी लेतुं नेधञ्जे, अही तो लगवाने नेटतुं अरित्र तेतुं उपयुक्त लण्णुं तेटतुं कहुं छे.

(एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स जाव त्रिद्वंसणधम्मस्स वण्णहेउं जाव आहारं आहारेइ सेणं इहलोए

बलहेतुं=शरीरबलवर्धनार्थम्, 'वीरियहेतुं' वीर्यहेतुम्=आन्तरिकशक्तिसम्पादनार्थम्, आहारम् आहारयति, स खलु इह लोके एव वहूनां श्रमणानां श्रमणीनां श्रावकाणां श्राविकाणां च 'हीलणिज्जे जाव' हीलनीयो यावत्, यावत्पदेन, निन्दनीयः, खिसनीयः गर्हणीयो भवेत्, परलोकेऽपि दुःखं प्राप्नोति, यावत्-चातुरन्तसंसारकान्तारम् 'अणुपरियट्टिस्सइ' अनुपर्यटिष्यति=अभिष्यति, यथा स चिलातस्तस्करः-चिलातस्तस्करवदिति भावः ॥५०७॥

मूलम्-तएणं से धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्प-छट्टे चिलायं परिधाडेमाणेर तणहाए लुहाए य संते तंते परितंते

गाणं ४ हीलणिज्जे ३ जाव अणुपरियट्टिस्सइ जहाव से चिलाए तक्करे) अब प्रभु इस चिलात के दृष्टान्त से निर्ग्रन्थ आदिकों को संबोधित कर प्रतिबोधित करते हैं-हे आयुष्मंत श्रमणों! इसी तरह जो हमारा निर्ग्रन्थ श्रमण अथवा श्रमणीजन आचार्य उपाध्याय के पास प्रव्रजित होकर वान्तास्रववाले यावत् विध्वंसन धर्मवाले इस औदारिक शरीर में कान्ति विशेष प्राप्ति के लिये सौन्दर्य आदिरूप विशेष के लिये, बलवर्धन के लिये तथा आन्तरिक शक्ति वृद्धिके लिये आहार को लेता है-करता है:- वह इस लोक में अनेक श्रमण श्रमणी, श्रावक तथा श्राविका जनों द्वारा हीलनीय यावत् निन्दनीय, खिसनीय गर्हणीय तो होता ही है-परन्तु पर भवमें भी वह दुःखों कोही पाता है। यावत् ऐसा जीव इस चतुर्गतिरूप संसार कान्तार में चिलात चोर की तरह परिभ्रमण ही करता रहना है ॥ सूत्र ७ ॥

वेव वहूणं समणाणं ४ हीलणिज्जे २ जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहाव से चिलाए उक्करे)

इवे प्रभु ते शिखातना दृष्टान्तने सासे राणीने निर्ग्रन्थ वगेरेने स बोधित करीने आज्ञा करे छे डे डे डे आयुष्मंत श्रमणो। आ प्रभाणु ने अमारा निर्ग्रन्थ श्रमण अथवा श्रमणीजन आचार्य के उपाध्यायनी पासे प्रव्रजित श्रमणने वान्तास्रववाणा यावत् विध्वंसन धर्मवाणा आ औदारिक शरीरमां कृति विशेषनी प्राप्ति भाटे, सौन्दर्य वगेरे इप विशेषना भाटे, अणवर्धन भाटे तेमअ आंतरिक शक्तितने वधारवा भाटे आहार अहणु करे छे ते आ ढोकमां धणु श्रमण, श्रमणी, श्रावक तेमअ श्राविकाओ वडे हीलनीय यावत् निन्दनीय, खिसनीय अने गर्हणीय तो डोय अ छे पणु साथे साथे ते परलवमां पणु दुःख अ नेणवे छे. यावत् जेवे एव आ चतुर्गति इप संसार कान्तारमां शिखात चोरनी जेम लट्ठतो अ रडे छे. ॥ सूत्र ७ ॥

नो संचाएइ चिलायं चोरसेणावइं साहत्थिं गिण्हित्तए । से णं तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सा सुंसुमा दारिया चिलाएणं जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सुंसुमं दारियं चिलाएणं जीवियाओ ववरोवियं पासइ, पासित्ता परसुंनियत्तेव चंपगवरपायवे धसत्तिधरणियलंसि निवडइ । तएणं से धणणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छेट्ठे आसत्थे कूयमाणे कंदमाणे विलवमाणे सहयार सदेणं कुहूर सुपुत्ते सुचिरं कालं बाहमोक्खं करेइ । तएणं से धणणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छेट्ठे चिलायं तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए थ परिभूए समाणे तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता उदगस्स मग्गणगवेसणं करेइ, करित्ता संते तंते परितंते, णिव्विन्ने, तीसे अग्गामियाए अडवीए उदगस्स मग्गणगवेसणं करेमाणे नो चैवणं उदगं आसादेइ । तएणं से धणणे सत्थवाहे अप्पच्छेट्ठे उदगं अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जेट्ठं पुत्तं धणदत्तं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता ! अम्हे सुंसुमाए दारियाए अट्ठाए चिलायं तक्करं सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए थ अभिभूया समाणा इमीसे अग्गामियाए अडवीए उदगस्स मग्गणगवेसणं करेमाणा णो चैव णं उदगं आसादेमो, तएणं उदगं, अणासाएमाणा णो संचाएमो रायगिहं संपावित्तए, तएणं

तुम्हे ममं देवाणुप्पिया ! जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेइ, आहारित्ता, तेणं आहारेणं अविद्धत्था समाणा तओ पच्छा इमं अग्गामियं अडविं णित्थरिहिह, रायगिहं च संपावेहिह, मित्तणाइ० य अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह । तएणं से जेट्ठुपुत्ते धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे धण्णं सत्थवाहं वयासी-तुब्भे णं ताओ ! अम्हे पिया गुरुजण य देवभूया ठावगा पइ-ट्ठावगा संरक्खगा संगोवगा तं कहणं अम्हे ताओ ! तुब्भे जीवियाओ ववरोवेमो, तुब्भे णं मंसं च सोणियं च आहारेमो ? तं तुब्भे णं तातो ! ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अग्गामियं अडविं णित्थरह, तं चेव सव्वं भणइ जाव अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह । तएणं धण्णं सत्थवाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी-मा णं ताओ ! अम्हे जेट्ठं भायरं गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो, तुब्भे णं ताओ ! ममं जीवियाओ ववरोवेह जाव आभागी भविस्सह । एवं पंचमे पुत्ते तएणं से धण्णे सत्थवाहे पंचणं पुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता, तं पचं पुत्ते एवं वयासी-मा णं अम्हे पुत्ता ! एग्गमविजीवियाओ ववरोवेमो, एस्सणं सुसुमाए दारियाए णिप्पाणे णिच्चेट्ठे जाव विप्पजडे, तं सेयं खलु पुत्ता ! अम्हे सुसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए । तएणं अम्हे तेणं आहारेणं अविद्धत्था समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो । तएणं तं पंच पुत्ता

धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा ष्यसद्वं पडिसुणेति । तएणं धण्णे सत्थवाहे पंचहिंपुत्तेहिं सद्धिं अरणिं करेइ, करित्ता, सरगं च करेइ, करित्ता, सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अग्गि-पाडेइ, पाडित्ता, अग्गि संधुक्खेइ, संधुक्खित्ता दारुयाइं परिक्खेवेइ, परिक्खेवित्ता, अग्गिपज्जालेइ, पज्जालित्ता, सुंसुमाए दारियाए मंलं च सोणियं च आहारोति । ते णं आहारेण अविद्धत्था समाणा रायगिहं नयरं संपत्ता मित्तणाइ० अभिसमणा-गया तस्स य विउलस्स धणकणगरयण जाव आभागी जाया यावि होत्था । तएणं से धण्णे सत्थवाहे सुंसुमाए दारियाए बहूइं लोइयाइं जाव विगयसोए जाए यावि होत्था ॥ सू०८ ॥

टीका—‘ तएणं से’ इत्यादि । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः पञ्चभिः पुत्रैः सह आत्मषष्ठः चिलातं ‘ परिघाडेमाणे २ ’ परिघावन् २=चिलातं ग्रहीतुकामस्त-स्पृष्टतोऽनुधावन् ‘ तण्हाए छुहाए य ’ तृण्णया सुधया च ’ संते ’ श्रान्तः,=मनसा खिन्नः, ‘ तंते ’ तान्तः=शरीरेण क्लान्तः, ‘ परितंते’ परितान्तः=मनसा शरीरेण च

—:तएणं से धण्णे सत्थवाहे । इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछट्टे से धण्णे सत्थवाहे) पांचों पुत्रों के साथ छठा बना हुआ वह धन्यसार्थवाह (चिलायं परिघाडेमाणे २) चिलातचोर को पकड़ने की इच्छा से उस के पीछे २ बार बार दौड़ता हुआ, (तण्हाए छुहाए य संते तंते परितंते नो संचाइए चिलायं चोरसेणावई साहत्थिं गिण्हित्तए) पिपासा और

‘तएणं से धण्णे सत्थवाहे’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछट्टे से धण्णे सत्थवाहे) पांचे पुत्रोनी साथे छट्टे ते धन्य सार्थवाह (चिलायं परिघाडेमाणे २) थिदात थारनी पाछण पाछण तेने पकडी पाउवा माटे वारवार दोउतां दोउतां (तण्हाए छुहाए य संते तंते परितंते नो संचाइए चिलायं चोरसेणावई साहत्थिं गिण्हित्तए) तस्स अने भूथथी श्रान्त थध गथे, भित्त अनी गथे, तांत थध

खिन्नः, 'नो संचापइ' नो शक्नोति विलातं चोरसेनापति 'साहसि' स्वहस्तेन ग्रहीतुम् । तदा स खलु 'तभो' ततः=चिलातग्रहणव्यापारात्, 'पडिनियत्तइ' प्रति निवर्तते, प्रतिनिवृत्य, यत्रैव सा सुसुमा दारिका चिलातेन जीविताद् 'ववरोविया' व्यपरोपिता=पृथक्कृता=मारिता सती पतिता आसीत् तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य सुसुमां दारिकां चिलातेन जीविताद् व्यपरोपितां पश्यति, दृष्ट्वा 'परसुनियत्तेव' परशुनिकृत्त इव=परशुच्छिन्नो यथा चम्पकवरपादपस्तद्वत्

ध्रुवा से श्रान्त हो गया-खिन्न बन गया, तान्त हो गया-शरीर से मुरझा गया-परितान्त हो गया-इकदम उत्साह रहित बन गया-सो वह उसे अपने हाथ से पकड़ने के लिये शक्तिशाली नहीं हो सका-(सेणं तभो पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सा सुंसमा दारिया चिलाएणं जीवियाओ ववरोविया-तेणेव उवागच्छइ) अतः-वह वहाँ से लौट आया-और लौटकर वहाँ गया जहाँ वह अपनी पुत्री सुंसमा चिलातचोर के द्वारा-जीवन से रहित की गई पड़ी थी। (उवागच्छित्ता सुंसमा दारियं चिलाएणं जीवियाओ ववरोवियं पासइ, पासित्ता परसुनियत्तेव चंपगवरपायवे धसत्ति धरणियलंसि निवडइ-तएणं से धणणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छे आसत्थे कूयमाणे कंदमाणे विलवमाणे महया २ सदेणं कुहू २ सुपरुण्णे सुचिरं कालंवाहमोक्खं करेइ) वहाँ जाकर उसने सुंसमा दारिका को चिलातचोर के द्वारा जीवन से रहित की गई देखा। देखते ही वह पुत्रों सहित परशु से काटे गये उत्तम

गया-शरीर तेजुं विभडार्थं गच्छुं परितांतं थडं गयो-साव निश्त्साडीं भनी गयो. ज्येवीं डालतमां ते पोतानां हाथथी तेने पडडीं पाडवामां समर्थं थडं शक्ये नडि (सेणं तभो पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सा सुंसमा दारिया चिलाएणं जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ) तेथी ते त्यांथी पाछे इरी गयो. अने पाछे इरीने ते ज्यं थिदात थोर वडे डण्णुयेलीं पोतानी पुत्री सुंसमा दारिका पडीं डती त्यां गयो.

(उवागच्छित्ता सुंसमा दारियं चिलाएणं जीवियाओ ववरोवियं पासइ पासित्ता परसुनियत्तेव चंपगवरपायवे धसत्ति धरणियलंसि निवडइ-तएणं से धणणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छे आसत्थे कूयमाणे कंदमाणे विलवमाणे महया २ सदेणं कुहू २ सुपरुण्णे सुचिरं कालं वाहमोक्खं करेइ)

त्यां ज्यंने तेज्जे सुंसमा दारिकाने थिदात थोर वडे डण्णुयेलीं जेधं. जेतानी साथे ज ते पुत्रोनी साथे पशु वडे डपाज्जेला उत्तम थं पक वृक्षनी

सपुत्रो धन्यः सार्थवाहः ' धसत्ति ' धस ' इति शब्दपूर्वकं धरणीतले निपतति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः आत्मषष्ठः ' आश्वस्त्ये ' आश्वस्त=उच्छ्वासं मुञ्चन् सचेष्टः सन् ' कूवमाणे ' कूजन् = अव्यक्तशब्दं कुर्व ' कंदमाणे ' क्रन्दन् उच्चस्वरेण, पुनः ' विलवमाणे ' विलपन्=विलापं कुवन् ' महया महया सदेणं ' महतामहता शब्देन=अत्युच्चैः शब्देन ' कुहू २ सुपरन्ने ' कुहू २ सुपरदन्-कुहू कुहू इति शब्दमुच्चार्यात्यर्थं रुदितः सन् सुचिरं कालं=बहुकालपर्यन्तं ' वाहमोक्त्वं ' वाष्पमोक्षम्=अश्रुमोचनं करोति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः पञ्चभिः पुत्रैः सह आत्मषष्ठः चिलातं तस्यामग्रामिकायाम् अटव्यां सर्वतः समन्तात् ' परिधाडे

चंपक वृक्ष के समान " धस " इस शब्द पूर्वक श्रूमिपर गिर पड़ा। बाद में पांच अपने पुत्रों के साथ आत्मषष्ठ बना हुआ वह धन्यसार्थवाह आश्वस्त, उच्छ्वास छोड़ता हुआ सचेष्ट-हो गया सो अव्यक्त शब्द करता हुआ खूब जोर २ से रोने लगा, विलाप करने लगा। एवं बहुत ऊँचे २ शब्दों से कुहू कुहू करता हुआ-हाय सांसे लेता हुआ-बहुत देरतक रोता रहा-अश्रुमोचन पूर्वक आक्रंदन करता रहा-(तएणं से धण्णे सत्यवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धि अप्पच्छे चिलायं तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडे माणे तण्हाए छुहाए य परिभूए समाणे तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता उद्गस्स मग्गणगवेसणं करेइ) इसके बाद पांचो पुत्रों के साथ आत्मषष्ठ बना हुआ वह धन्यसार्थवाह उस अग्रामवाली अटवी में चिलातचोर के पीछे पीछे बार २ दौड़ता हुआ तृषा और क्षुधा से पीड़ित होकर उस अग्रामवाली अटवी

जेम " धम " शब्दनी साथे जमीन उपर पडी गये। त्थारपछी पांचे पुत्रे तेमज छुठे ते धन्यसार्थवाह आश्वस्त-उच्छ्वास छोडतो-निजासा नाथतो सचेष्ट थई गये। अने अव्यक्त शब्द करते। धूसके धूसके भूष जेरथी रउवा दाग्ये, विलाप करवा दाग्ये अने ञहु मोटा साडे ' कुई कुई ' करते। डाय डाय करीने थ्यासे लेने। बणीवार सुधी रडतो रथी तेमज थ्यास पाडतो आकंड करते। रथी।

(तएणं से धण्णे सत्यवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धि अप्पच्छे चिलायं तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए य परिभूए समाणे तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता उद्गस्स मग्गणगवेसणं करेइ)

त्थारभाड पांचे पुत्रेनी साथे छुठे ते धन्यसार्थवाह ते गाभ वजरनी निजंन अटवीमां थिदात चोरनी पाछण पाछण बारबार होडतो होडतो तृषा

माणे 'परिधावन्' तृष्णया क्षुधया च 'परिभूए' परिभूतः सन् तस्यामग्रामिकायामटव्यां सर्वतः समन्तात्=चतुर्दिक्षु 'उदगस्स' उदकस्य=जलस्य 'मगगण-गवेसणं' मार्गणगवेपणम्=अन्वेषणं करोति, कृत्वा श्रान्तः, तान्तः, परितान्तः 'णिव्विन्ने' निर्विण्णः=औदासीन्यं प्राप्तः । तस्यामग्रामिकायामटव्यामुदकस्य मार्गणगवेपणं कुर्वन् नो चैव खल्ल उदकम् 'आसादेइ' आसादयति=प्राप्नोति । ततः खल्ल स धन्यः सार्थवाह आत्मषष्ठः उदकमनासादयन् पानीयमप्राप्नुवन् यत्रैव सुंसुमा जीविताद् व्यपरोपिता मारिता सती पतिताऽऽसीत् तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य व्येष्टं पुत्रं धनदत्तं शब्दयति, शब्दयित्वा, एवमवदत्-एवं खल्लु में चारो दिशाओं में जल की मार्गणा और गवेषणा करने लगा (करिच्चा संते तंते परितंते णिव्विन्ने तीसेऽअगामियाए अडवीए उदगस्स मगगण-गवेसणं करेमाणे णो चैव णं उदगं आसाएइ) मार्गणा गवेषणा करके वह श्रान्त, मन से खिन्न, तान्तशरीर से खिन्न और परितान्त-बन गया शरीर एवं मन इन दोनों से खिन्न हो गया इस तरह उस अग्रामवाली अटवी में उदकपानी की मार्गणा और गवेषणा करते हुए भी उसे जल नहीं मिला (तएणं से धण्णे सत्थवाहे अप्पच्छे उदगं अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा दारिया जीवियाओ ववरोविया-तेणेव उवागच्छइ) तब आत्मषष्ठ बना हुआ वह धन्यसार्थवाह उदक प्राप्त नहीं करता हुआ जहाँ सुंसुमा दारिका का शव पड़ा हुआ-था वहाँ आया - (उवागच्छित्ता जेहुं पुत्तं धणदत्तं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी)

अने क्षुधा (तरस्य अने भूय) थी पीडा होने ते गाम वगरनी अटवीमां थाभेर पाष्णीनी मार्गण्णा अने गवेषण्णा करवा लाग्ये।

(करिच्चा संते तंते परितंते णिव्विन्ने तीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मगगणगवेसणं करेमाणे णो चैव णं उदगं आसाएइ)

मार्गण्णा तेभञ्ज गवेषण्णा करीने ते श्रान्त, मनथी णिन्न, तांत शरीरथी णिन्न अने परितांत भनी गये। शरीर तेभञ्ज मन आ भंनेथी ते णिन्न थर्ध गये। आ प्रसाण्णे ते गाम वगरनी अटवीमां उदक-पाष्णी-नी मार्गण्णा गवे-षण्णा करतां तेने पाष्णी भव्युं नहिं।

(तएणं से धण्णे सत्थवाहे अप्पच्छे उदगं अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा दारिया जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ)

त्यारे आत्मषष्ठ भनेदो ते धन्य सार्थवाह पाष्णी न मेणवतां न्यां सुंसुमा दारिकात्तुं भड्डं पड्युं हत्तुं त्यां आये। (उवागच्छित्ता जेहुं पुत्तं धण-दत्तं सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी) त्यां आवीने तेण्णे येताना मोटा पुत्र धनदत्तने भोलाये अने भोलावीने तेण्णे आ प्रसाण्णे कहुं हे-

हे पुत्राः ! वयं सुंसुमाया दारिकायाः ' अट्टाए ' अर्थाय=निमित्तं चिलातं तस्करं प्रति ' सव्वओ समता ' सर्वतः समन्तात्=अट्टव्यां चतुर्दिक्षु ' परिधाडेमाणा ' परिधावन्तः ' तण्हाए ' तृष्णया=पिपासया, ' छुहाए ' क्षुधया च अभिभूताः सन्तः अस्यामग्रायिकायामट्टव्यामुदकस्य मार्गणगवेषणं कुर्वन्तो नो चैव खलु उदकमासादयामः, ततः खलु उदकम् अनोसादयन्तः=अलभमानाः नो शक्नुमो राजगृहं संप्राप्तुम्, ' तण्णं ' तत्खलु=तस्मात् कारणात् खलु वयं मां हे देवानु-प्रियाः ! जीविताद् व्यपरोपयत, मांसं च शोणितं च ' आहारेह ' आहारयत, आहार्यं=भुक्त्वा, ' तेणं आहारेणं ' तेन आहारेण ' अविद्धत्था ' अविध्वस्ताः=शरीरनाशमप्राप्ताः सन्तः तृप्ताः सन्तः ' तओपच्छा ' ततः पश्चात् इमामग्रायिका-

चहां आकर के उसने अपने जेष्ठ पुत्र धनदत्त को बुलाया-और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा-(एवं खलु पुत्ता ! अम्हे सुंसुमाए दारियाए अट्टाए चिलायं तक्करं सव्वओ समता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य अभिभूया समाणा इमी से अग्गामियाए अडवीए उदगस्स मग्गण-गवेषणं करेमाणा णो चैव णं उदगं आसाएमो-तएणं उदगं अणासा-एमाणा णो संचाएमो रायगिहं संपावित्तए) हे पुत्र सुनो अपने लोग सुंसुमा दारिका के निमित्त चिलातचौर के पीछे २ सब तरफ सब प्रकार से दौड़ते २ प्यास और भूख से दुःखी हो गये हैं हमने इस अग्राम-वाली अट्टवी में पानी की मार्गणा और गवेषणा भी की-परन्तु वह मिला नहीं अतः पानी की प्राप्ति के अभाव में अब राजगृह नगर में पहुँचने के लिये हम असमर्थ बन चुके हैं। (तएणं तुम्हे ममं देवाणुप्पिया ! जीवियाओ ववरोवेह मंसं च सोणियं च आहारेह, आहारित्ता तेणं आहारेणं अविद्धत्था समाणा तओ पच्छा इमं अग्गामियं अडविं गित्थ-

(एवं खलु पुत्ता ! अम्हे सुंसुमाए दारियाए अट्टाए चिलायं तक्करं सव्वओ समता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य अभिभूया समाणा इमीसे अग्गामियाए अडवीए उदगस्स मग्गणगवेषणं करेमाणा णो चैव णं उदगं आसाए मो-तएणं उदगं अणासाएमाणा णो संचाएमो रायगिहं संपावित्तए)

हे पुत्र ! सांभल, अमे सुंसुमा दारिकाने मेणववा भाटे सिद्धात चोरनी पाछण पाछण आभतेम थारे तरक्क लटकतां लटकतां तरस अने लूअथी दुःपी थइ गया छीअे. अमेअे आ गाभ वगरनी अट्टवीमां पाळीनी भागैला अने गवेषणा पर करी छे, पणु अमे छेला मेणवी शक्या नथी. अथी छेवे पाळीना अलावमां अमे राजगृह नगरमां पडोअी शक्रीशुं तेम लागतुं नथी.

(तएणं तुम्हे ममं देवाणुप्पिया ! जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, आहारित्ता तेणं आहारेणं अविद्धत्था समाणा तओ पच्छा इमं अग्गामियं

मटवीं ' गित्थरिहिह ' निस्तरिष्यथ=पारङ्गमिष्यथ, राजगृहं च ' संपाविहिह ' संप्राप्स्यथ ' मित्तणाई० य ' मित्रज्ञातिञ्च=मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिपरिजनान ' अभिसमागच्छिहिह ' अभिसमागमिष्यथ=मित्रज्ञातिप्रभृतिभिः सह संगता भविष्यथ, तथा च ' अत्थस्स ' अर्थस्य=धनस्य च धर्मस्य च पुण्यस्य च ' आभागी ' अभागिनो = भोक्तारो भविष्यथ । ततः खलु स ज्येष्ठपुत्रो धन्येन सार्थवाहेन एव युक्तः = अनेन प्रकारेण कथितः सन् धन्यं सार्थवाहमेव मवदत्-हे तात ! यूयं खलु अस्माकं पिता ' गुरुजनदेवभूया ' गुरुजन-दैवतभूताः=देवगुरुजनसदृशाः ' ठावका ' स्थापकाः नीतिधर्मादौ ' पड्डावका ' प्रतिष्ठापकाः=राजादिसमक्षं स्वपदस्थापनेन प्रतिष्ठाकारकाः तथा ' संरक्खगा

रिहिय रायगिहं च संपावेहिह) इसलिये हे देवानुप्रियों ! तुम मुझे मारडालो और मेरे मांस और रक्त से तुम अपने प्राणोंकी रक्षाकर शरीर के विनाश होने से बचाकर इस अग्रामिक अटवी से पार हो जाओगे-एवं राजगृह नगर पहुँच जाओगे । (मित्तणाइ० य अभिसमागच्छिहिह अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्यस्स य आभागी भविस्सह, तएणं से जेट्ठे पुत्ते) वहां पहुँचकर तुम अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबन्धी परिजनों के साथ मिलोगे तथा धन, धर्म और पुण्य के भोक्ता भी बनोगे-इसके बाद उस ज्येष्ठ पुत्र धनदत्त ने (धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं युत्ते समाणे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी) धन्यसार्थवाह के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उन अपने पिता धन्यसार्थवाह से इस प्रकार कहा (तुव्भे णं ताओ ! अम्हं पिया गुरुजण्यदेवभूया ठावगा

अडविं गित्थरिहिह रायगिह च संपावेहिह)

अथी छे देवानुप्रिय ! तमे मने भारी नाओे अने भारा मांस अने रक्तने आवो, पीवो आधां-पीधां पछी तमे शरीरना विनाशथी भोगरी अथो अने त्ति भेणवीने आ गामवगरनी अटवीने पार करी अथो अने छेवटे राजगृह नगरमां पडेांथी अथो ।

(मित्तणाइ य अभिसमागच्छिहिह अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्यस्स य आभागी भविस्सह, तएणं से जेट्ठे पुत्ते)

त्यां पडेांथीने तमे पो-ना मित्र,ज्ञाति, स्वजन,संबंधी परिजनोनी साथे भणथो तमेध धन, धर्म अने पुष्योनेो उपयोग करथो । त्यारपछी मोटा पुत्र धनदत्ते

(धण्णेणं सत्थवाहेणं एवे युत्ते समाणे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी धन्य सार्थवाह वडे आ प्रमाळु कडेवाथा आह पोताना पिता धन्य

सार्थवाहने आ प्रमाळु कळुं के—

संरक्षकाः यदृच्छामप्रवृत्तेः 'संगोवगा' संगोपका दुश्चरितप्रवृत्तेः, 'तं' तत्=तस्मात् कारणात् 'कहणं' कथं खलु=केन प्रकारेण खलु हे तात ! वयं युष्मान् जीविताद् व्यपरोपयामः=मारयामः, युष्माकं खलु मांसं च शोणितं च कथम् आहारयामः? 'तं' तत्=तस्माद् वयं खलु हे तात ! मां धनदत्तनामानं जीविताद् व्यपरोपयत=मारयत मम मांसं च शोणितं च आहारयत, अग्रामिकामटवीं 'णित्य-

पइद्वावगा संरक्षवगा संगोवगा तं कण्ठं अम्हे ताओ ! तुव्भे जीवियाओ ववरोवेमो तुव्भे णं मांसं च शोणियं च आहारेमो अग्गमियं अडवि णित्थरह तं चैव सव्वं भणइ जाव अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह) हे तात ! आप हमारे पिता है इसलिये आप मेरे लिये देव, गुरुजन के स्थान भूत हैं। नीति धर्म आदि में मुझे स्थापित करते रहते हैं। राज आदि समक्ष आप अपने पद पर मुझे बैठाते है इसलिये आप मेरे लिये स्थापक एवं प्रतिष्ठापक हैं यथेच्छा प्रवृत्ति से आप हमारी सदा रक्षा करते रहते हैं इसलिये आप मेरे संरक्षक हैं, दुश्चरित-प्रवृत्ति से आप हमें रोकते रहते हैं इसलिये आप मेरे संगोपक हैं, तो कैसे मैं हे तात ! आप को जीवन से रहित कर सकता हूँ। और कैसे आप के शोणित और मांस को खा सकता हूँ। इसलिये हे तात ! आप ही मुझे जीवन से रहित कर दीजिये और मेरे खून और मांस को आप खाइये ताकि आप इस अग्रामिक अटवी को पार कर सके और राजगृह नगर

(तुव्भेणं ताओ ! अम्हं पिया गुरुजणयदेवभूया ठावगा पइद्वावगा संरक्वगा संगोवगा तं कहणं अम्हे ताओ ! तुव्भे जीवियाओ ववरोवेमो तुव्भं णं मांसं च शोणियं च आहारेमो अग्गमियं अडवि णित्थरह तं चैव सव्वं भणइ जाव अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह)

हे तात ! तमे अमारा पिता छे, अेथी तमे अमारा देव अने गुरुना स्थाने छे। तमे भने नीति धर्म वगेरेमां प्रवृत्त पणु करता रहे छे। राज वगेरेनी सामे तमे पोताना स्थाने भने भेसाठे छे अेथी तमे मारा स्थापक अने प्रतिष्ठापक छे। यथेच्छा प्रवृत्तिथी तमे मारी रक्षा करता रहे छे अेथी तमे मारा संरक्षक छे, दुश्चरित प्रवृत्तिथी तमे भने रोकता रहे छे, अेथी तमे मारा संगोपक छे। तो आवी परिस्थितिमां हे तात ! हुं तभने डेवी रीते लुपन रहित भनावी शकुं अने डेवी रीते तमारा शोखित अने मांसतुं लक्ष्णु करी शकुं ? अेथी हे तात ! तमे सुअ धनदत्तने अ लुपन रहित भनावी हो अने मारा पून अने मांसतुं तमे लक्ष्णु करी अेथी तमे आ गाम वगरनी अटवीने पार करी शके अने राजगृह नगरमां पहुँचीने त्या

रह' निस्तरत=पारंगच्छत, 'तंचेव सव्वं भणइ' तदेवसर्वं भणति=यथा धन्य सार्थवाहो ज्येष्ठं पुत्रमवदत्, तथैवायमपि तदेव सर्वं कथयति, यावत् अर्थस्य धर्मस्य पुण्यस्य च आभागिनो भविष्यथ । ततः खलु धन्यं सार्थवाहं 'दोच्चे' द्वितीयः पुत्रधनपालनामा एवमवदत्-मा खलु हे तात ! अस्माकं ज्येष्ठं भ्रातरं 'गुरुदेवयं' गुरुदेवतं=देव-गुरुसदृशम्, जीविताद् व्यपरोपयामः=मारयामः, यूयं खलु हे तात ! 'ममं' मां=धनपालनामानं जीविताद् व्यपरोपयत यावत् अर्थादिफलभाजो भविष्यथ । 'एवं' =अनेन प्रकारेण 'जाव पंचमेपुत्ते' यावत्

पहुंच कर वहां अपने मित्रादि परिजनों के साथ मिल सके । तथा धन धर्म एवं पुण्य के भोक्ता बन सके । "तं चेव सव्वं भणइ" इसका तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार धन्यसार्थवाह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र, धनदत्त से कहा-उसी प्रकार धनदत्त ने भी अपने पिता से वैसाही कहा-(तएणं धणं सत्थवाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी-माणं ताओ ! अम्हे जेठे भायरं गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो-तुम्भेणं ताओ ! ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अग्गामियं अडडिं णित्थरह तं चेव सव्वं भणइ जाव अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह) इसके बाद धन्यसार्थवाह से उसके द्वितीय पुत्र ने इस प्रकार कहा-हे तात ! आप हमारे गुरु देवतातुल्य ज्येष्ठ भाई को जीवन से रहित मत कीजिये किन्तु आप तो हे तात ! मुझे ही जीवितसे रहितकर दीजिये-और मेरे ही रक्त एवं मांस को आप खाईये पीईये-ताकि इस अग्रामिक अटवी से पार हो सके इत्यादि पहिले जैसा ही इसने

पोताना मित्रा वगेरे परिजनोनी साथे भणी शके. तेमज धन धर्म अने पुण्यना बोधता अनी शके. "तं चेव सव्वं भणइ" आनेो अर्थ आस थाय छे के जेध धन्य सार्थवाडे पोताना भोटा पुत्र धनदत्तने कहुं तेमज धनदत्ते थयु पोताना पिताने कहुं.

(तएणं धणं सत्थवाह दोच्चे पुत्ते एवं वयासी-माणं ताओ ! अम्हे जेठे भायरं गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो, तुम्भेणं ताओ ! ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अग्गामियं अडडिं णित्थरह तं चेव सव्वं भणइ जाव अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह)

त्यारपछी धन्य सार्थवाहने तेना भीज पुत्रे आ प्रभाणे कहुं के छे तात ! तमे अमारा गुरुदेवता जेवा भोटा साथे एवन रहित न करे। पयु छे तात ! तमे मने ज भारी नाणे। अने मारा ज बोली अने मांसने तमे भाओ पीओ. जेथी तमे आ गाम वगरनी अटवीने पार करी शके, आस

पञ्चमः पुत्रः=तृतीयो धनदेवश्चतुर्थो धनगोपः, पञ्चमो धनरक्षितश्चाऽप्यवदत् । ततः इत्थं तेषां वचनश्रवणानन्तरं, खलु स धन्यः सार्थवाहः पञ्चपुत्राणां 'हियइच्छियं' हृदयेष्टम्=हृदयेप्सितं ज्ञात्वा तान् पुत्रान् एवमवादीत्-मा खलु वयं हे पुत्राः ! एकमपि अस्माकं मध्येएकमपि जीविताद् व्यपरोपयामः एतत् खलु सुंसुमाया दारिकायाः शरीरं 'णिप्पाणं' निष्प्राणं=प्राणरहितम्, 'णिच्चेट्टं' निश्चेष्टं=चेष्टारहितम् 'जीवविप्पजडे' जीवविप्रत्यक्तम्=जीवहीनम्, सर्वथा मृतमस्तीत्यर्थः, तच्छ्रेयः=उचितं खलु हे पुत्राः 'अम्हं' अस्माकम् सुंसुमाया दारिकाया मांसं च शोणितं च आहर्तुम्, ततः=तदनन्तरं च खलु वयं तेन आहारेण 'अ-

सब कहा (एवं पंचमे पुत्ते) इसी तरह उससे तृतीय धनदेवने चतुर्थ धनगोपने एवं पांचवे धनरक्षित ने भी कहा-(तएणं से धण्णे सत्थवाहे पंचणहं पुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता तं पंचपुत्ते एवं वयासी) इस के बाद उस धन्यसार्थवाह ने पांचों पुत्रों के अभिप्राय को जानकर उन अपने पांचों ही पुत्रों से इस प्रकार कहा-(माणं अम्हे पुत्ता ! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो एसणं सुंसमाए दारियाए सरीरए णिप्पाए णिच्चेट्टे जीवविप्पजडे-तं सेयं खलु पुत्ता ! अम्हं सुंसमाए दारियाए मंसं च सोणियं च अहारेत्तए) हे मेरे पुत्रों ! मैं एक को भी जीवन से रहित नहीं करना चाहता हूँ किन्तु यह सुंसुमादारिका का शरीर जो कि निष्प्राण, निश्चेष्ट, और जीवन से रहित बन गया है-इसलिये हमे उचित है कि हे पुत्रों ! हम इस सुंसुमादारिका का मांस एवं शोणित

तेषु पडेदांनी जेम ज गधुं कळुं. (एवं पंचमे पुत्ते) आ प्रभाणु ज तेने त्रीण धनदेवे, आथा धनगोपे अने पांचमा धनरक्षिते पणु कळुं.

(तएणं से धण्णे सत्थवाहे पंचणहं पुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता तं पंच पुत्ते एवं वयासी) त्पारपणी ते धन्य सार्थवाडे पांचे पुत्रोनी हुइयनी अलिदाभा ण्णुनि योताना ते पांचे पुत्रोने आ प्रभाणु कळुं के-

(माणं अम्हे पुत्ता ! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो एसणं सुंसमाए दारियाए सरीरए णिप्पाणे णिच्चेट्टे जीवविप्पजडे-तं सेयं खलु पुत्ता ! अम्हं सुंसमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए)

हे मारा पुत्रे ! तमाराभांथी ऐकने पणु हुं मारवा भागतो नथी. परंतु आ सुंसुमा दारिकानुं शरीर के जे निष्प्राणु, निश्चेष्ट अने निर्धुव जनी गधुं छे-अएदा माटे अमारा माटे हे पुत्रे ! ऐ ज योच्य छे के आपणु आ सुंसुमा दारिकानां मांस अने शोणितने भाध्जे.

विद्धत्या समाणा 'अविध्वस्ताः=शरीरनाशमप्राप्ताः सन्तः राजगृहं 'संपाउणि-
स्सामो' संपाप्यामः । ततः खलु ते पञ्चपुत्राः धन्येन सार्थवाहेन एवमुक्ताः
सन्तः 'एयमट्टं' एतमर्थम् पूर्वोक्तरूपम् 'पडिसुणेति' प्रतिशृण्वन्ति=स्वीकृ-
वन्ति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः पञ्चभिः पुत्रैः सार्द्धम् 'अरणिं' अरणिं
यस्मिन् मध्यमानेऽग्निरुत्पद्यते तत्काष्ठम् 'करेइ' करोति=संगृह्णाति, कृत्वा 'सरगं'
सरकम्=निर्मथनकाष्ठं करोति=आनयति कृत्वा, सरकेण अरणिं मथ्नाति=घर्षयति
मथित्वा, 'अग्निं पाडेइ' पातयति=मन्यनवशादग्निमुत्पादयति 'पाडित्ता' पात-

खावें । (तएण अम्हे तेणं आहारेणं अविद्धत्या समाणा रायगिहं संपाउ-
णिस्सामो-तएणं ते पंच पुत्ता धणणेणं सत्थवाहेणं एवंवुत्ता समाणा
एयमट्टं पडिसुणेति) इस से हमलोग उस आहार से शरीर नाश को
अप्राप्त होकर राजगृह नगर में पहुँच जावेंगे । इस प्रकार धन्यसार्थवाह
के द्वारा कहे गये उन पाँचों पुत्रों ने धन्यसार्थवाह के इस कथन को स्वी-
कार कर लिया । (तएणं धणणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धि अरणिं क-
रेइ, करित्ता सरगंच करेइ, करित्ता सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अ-
ग्निं पाडेइ, पाडित्ता अग्निं संधुक्खेइ, संधुक्खित्ता दारुयाइं परिक्खवेइ
परिक्खवित्ता अग्निं पज्जालेइ पज्जालित्ता सुं समाए मंसं च सोणियं
च आहारेति) इस के बाद धन्यसार्थवाह ने पाँचों पुत्रों के साथ मिल-
कर अरणिकाष्ठ को एकत्रित किया । एकत्रित कर के फिर वह सरक
काष्ठ को निर्मथनकाष्ठ को ले आया-उसे लेकर के उसने उससे अरणि
का घर्षण किया । इस तरह घर्षण से अग्नि उत्पन्न हो गई । अग्नि के

(तएणं अम्हे तेणं आहारेण अविद्धत्या समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो
तएणं ते पंच पुत्ता धणणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा एयमट्टं पणिसुणेति)

ओथी आपणे षष्ठा आ आहारथी शरीर नाशथी अगरी षष्ठने राज-
गृह नगरमां पडेांची षष्ठुं. आ प्रभाणे धन्य सार्थवाह वडे कडेवायेला पांशे
पुत्रोअे धन्य सार्थवाहनी ते पातने स्वीकारी लीधी.

(तएणं धणणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धि अरणिं करेइ, करित्ता, सरगं च
करेइ, करित्ता सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अग्निं पाडेइ, पाडित्ता अग्निं संधु-
क्खेइ, संधुक्खित्ता दारुयाइं परिक्खवेइ, परिक्खवित्ता अग्निं पज्जालेइ, पज्जा-
लित्ता सुं समाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेति)

त्यारपणी धन्य सार्थवाह पांशे पुत्रोनी साथे मणीने अरणि काष्ठने
ओकट्टुं कथुं. ओकट्टुं करीने तेओ सारक काष्ठने-निर्मथन काष्ठने लध आया.
तेने लधने तेओ तेथी अरणि का काष्ठं घर्षण कथुं. आ प्रभाणे घर्षणथी अग्नि

यित्वा=उत्पाद्य अग्निं 'संधुक्खेइ' संयुक्षयति=उद्दीपयति, संयुक्ष्य=उद्दीप्य 'दारु-
याई' दारुहाणि=इन्धनानि तत्र 'परिक्खिवइ' परिक्षिपति, परिक्षिप्य, अग्निं
प्रज्वालयति, प्रज्वाल्य, सुंसुमाया दारिकाया भर्जितं मांसं च शोणितं च 'आहा-
रेइ' आहारयति । अनन्तरं तेन आहारेण 'अविद्धत्था' अविध्वस्ताः=शरीरना-
शमप्राप्ताः सन्तो राजगृहं नगरं संप्रामाः 'मित्तणाई० अभिसमण्णागया' मित्र-
ज्ञातिं=मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिपरिजनैः सह 'अभिसमण्णागया' अभिसमन्वागताः=
संमिलिताः सन्तः तस्य च विपुलस्य 'धणकणगरयण जाव' धनकनक रत्न यावत्
=धनकनकरत्नादिकस्य 'आभागी जाया यावि होत्था' आभागिनो जाताश्चा-
प्यभवन् । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः सुंसुमाया दारिकाया बहूनि लौकिकानि
उत्पन्न होने पर उसने फिर उसे धोंका-उद्दीपित किया-जब वह उद्दी-
पित हो चुकी-तब उसने उसमें लकड़ियों को लगाया-। इस तरह की
क्रिया से जब अग्नि अच्छी तरह प्रज्वलित हो चुकी-तब उसमें सुंसमा
:दारिका के मांस को और खून को भूँजा-भूजकर उसे सघने खाया
पीया-(तेणं आहारेणं अविद्धत्था समाणा रायगिहं नयरं संपत्ता मित्त-
णाइ० अभिसमणागया तस्स य विउलस्स धणकणगरयण जाव
आभागी-जाया यावि होत्था तएणं से धण्णे सत्थवाहे सुंसमाए दारिया
ए बहूइं लोइयाइं जाव विगयसोए याविहोत्था) इस प्रकार उस आहार
की सहायता से अविध्वस्त शरीर होकर वे वहाँ से चल कर राजगृह
नगर में आ गये । वहाँ अकार वे अपने मित्रज्ञाति आदि परिजनों से
खूब हिले मिले । एवं धनकनक आदि द्रव्य के भोक्ता भी बन गये ।

उत्पन्न थछ गथे. अग्नि उत्पन्न थया आह तेण्णे तेने उद्दीपित कथे. न्यारे ते
उद्दीपित थछ गथे त्यारे तेण्णे तेमां लाकडीओ भूझी. आ रीते न्यारे सारी
रीते अग्नि प्रज्वलित थछ गथे त्यारे तेमां सुंसमा दारिकाना मांसने अने
बोहीने शेक्यां, शेक्या आह तेने यथाअे आधां-पीधां.

(तेणं आहारेणं अविद्धत्था समाणा रायगिहं नयरं संपत्ता, मित्तणाइ०
अभिसमणा गया, तस्स य विउलस्स धणकणगरयण जाव आभागीजाया यावि
होत्था तएणं से धण्णे सत्थवाहे सुंसमाए दारियाए बहूइं लोइयाइं जाव विगय-
सीए यावि होत्था)

आ प्रमाणे ते आहारनी सहायताथी अविनष्ट शरीरवाणा थधने तेओ
त्यांथी रवाना थधने राजगृह नगरमां आवी गया. त्यां आवीने तेओ पाताना
मित्र ज्ञाति वगेरे परिज्जनानी साथे पूण आनंद-पूर्वक भठया, अने धन,
कनक वगेरे द्रव्योने लोभववा लाग्या. सुंसमा दारिकाना भरणु पछीनां नेटलां

मृतकृत्यानि कृत्वा कालान्तरे ' विगयसोमे ' विगतशोकः=सुंसुमामरणजनितशोक-
रहितो जातश्चास्यभूत् ॥ सू० ८ ॥

मूलम्—तेषां कालेषां तेषां समेषां समणे भगवं महावीरे
गुणशिलए चेइए समोसढे । से णं धण्णे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं
सोच्चा पव्वइए, एक्कारसंगवी । मासियाए संलेहणाए सोहम्मे
उववण्णो, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ । जहा वि य णं जम्बू !
धण्णेणं सत्थवाहेणं णो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो वलहेउं
वा नो विसयहेउं वा सुंसुमाए मंससोणिए आहारिए, नन्नत्थ
एगाए रायगिहं संपावणट्टयाए । एवामेव समणाउसो ! जो
अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा इमस्स ओरालियत्तरीरस्स वंता-
सवस्स पित्तासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स जाव अवस्सं
विप्पजहियव्वस्स वा नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो वल-
हेउं वा नो विसयहेउं वा आहारे आहारेइ, नन्नत्थ एगाए
सिद्धिगमणसंपावणट्टयाए, से णं इहभवे चेव वड्डूणं समणाणं
वड्डूणं समणीणं वड्डूणं सावयाणं वड्डूणं सावियाणं अच्चणिज्जे
जाव वीइवइस्सइ ।

एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं
अट्टारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पण्णत्ते त्तिवेमि ॥सू०९॥

॥ अट्टारसमं अज्झयणं समत्तं ॥

टीका—' तेषां कालेषां ' इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो
भगवान् महावीरो गुणशिलके चेत्ये ' समोसढे ' समवदतः=तीर्थंकरपरम्परया

सुंसुमा दारिका के मरणोत्तर काल में जो भी लौकिक कृत्य कियेजाते
—वे सब भी उन्होंने किये और धीरे २ विगत शोक भी हो गए ।सू०८।

लौकिक कृत्यो इत्थं ज्ञेयं ते सर्वे तेभ्यु पताभ्यां अने धीने धीने तेभ्यो
शेअरहित पण्ण अनी गया. ॥ सूत्र ८ ॥

समागतः । अनन्तरं स धन्यः सार्थवाहः सपुत्रो धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः, प्रव्रज्यानन्तरम् ' एकारसंगवी ' एकादशाङ्गवित्=एकादशाङ्गाभिज्ञो जातः ' मासियाए ' मासिक्या संलेखनया कालं कृत्वा ' सोहम्मे ' सौधर्मे कल्पे 'उपपन्नः' । पुनः ततश्च्युतः महाविदेहे वर्षे ' सिञ्जिहिह् ' सेत्स्यति-शुक्तिं प्राप्स्यति । सम्प्रति धन्यसार्थवाहदृष्टान्तेन जम्बूस्वामिनं सम्बोध्य श्रीसुधर्मास्वामीप्राह ' जहा वि इत्यादिना-

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं इत्यादि ।

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में (समणे भगवं महावीरे) श्रमण भगवान् महावीर (गुणसिलए चेइए समोसडे, से णं धणणे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं सोच्चा पव्वइए-एकारसंगवी-मासियाए संलेहणाए सोहम्मे उववण्णे, महाविदेहे वासे सिञ्जिहिह्) गुणशिलक उद्यान में आये । उनसे धर्म का उपदेश सुनकर वह धन्यसार्थवाह अपने पांचों पुत्रों सहित उनके पास प्रव्रजित हो गया । प्रव्रजित होकर धीरे २ वह एकादशांगों का ज्ञाता भी हो गया । अन्त समय में उसने एक मास की संलेखना धारणकर काल अवसर काल किया-तो उसके प्रभाव से वह सौधर्म कल्प में उत्पन्न हो गया-वहाँ से चव कर अब वह महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति को प्राप्त करेगा । इस धन्यसार्थवाह के दृष्टान्त से जंबू स्वामीको संबोधितकर के श्री

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये (समणे भगवं महावीरे) श्रमण भगवान् महावीर

(गुणसिलए चेइए समोसडे । सेणं धणणे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं सोच्चा पव्वइए-एकारसंगवी-मासियाए संलेहणाए सोहम्मे उववण्णे, महाविदेहे वासे सिञ्जिहिह्)

शुशिलक उद्यानमां आन्या. तेमनी पासेथी धर्मापदेश सांभणीने ते धन्य सार्थवाहं चेताना पांथे पुत्रोनी साथे तेमनी पासे प्रव्रजित थधं गथे. प्रव्रजित थधने ते धीमे धीमे ऐकादश (अगियार) अगोने ज्ञाता पण थधं गथे. छेवटे मृत्यु समये ऐक भासनी सदीपना धारण करीने काण अप्प सरे तेणु काण कथे. ते तेना प्रलावथी सौधर्मं कल्पमां उत्पन्न थधं गथे. त्यांथी यवीने हवे ते महाविदेह क्षेत्रमां मुक्ति प्राप्त करथे. आ धन्य सार्थवाहना दृष्टान्तने साथे राणीने श्री सुधर्मास्वामीं जम्बूस्वामीने संबोधित

जहावि य णं' यथाऽपि च खलु=येन प्रकारेण खलु हे जम्बू! धन्येन सार्थवाहेन नो वर्णहेतोः = नो रूपहेतोः बन्धहेतोः=नो विषयहेतोः. सुसुमाया दारिकाया मांस-शोणितमाहारितम्, एगाए रायगिहसंपावणद्वयाए' एकस्य राजशुह संप्रापणार्थताया अन्यत्र न, किन्तु-अहं राजशुहं संप्राप्तुयाम् इति हेतोरेव तेन पुत्रैः सह तद् आहारितमिति भावः ।

भगवानाह—' एगामेव ' एवमेव=अनेन प्रकारेणैव ' समणाउसो ' हे आयुष्मन्तः श्रमणाः योऽस्माकं निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा अस्य वान्तास्रवस्य पित्ता-

सुधर्मा स्वामी ने उनसे कहा—(जहा वि य णं जंबू! धण्णेणं सत्थवाहेणं णो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा सुसुमाए मंससोणिए आहारिए नन्नत्थ एगाए रायगिहं संपावणद्वयाए-एवामेव समणाउसो। जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथीवा इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतास्रवस्स पित्तास्रवस्स सुक्कास्रवस्स सोणियास्रवस्स जाव अवस्सं विप्पजहियव्वस्स नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं; आहारं अहारेइ, नन्नत्थएगाए सिद्धिगमणसंपावणद्वयाए) हे जंबू! जिस तरह धन्यसार्थवाह ने अपने शरीर में कान्ति विशेष बढ़ाने के लिये, बल बढ़ाने के लिये, अथवा विषय सेवन की शक्ति बढ़ाने के लिये सुसुमा दारिका का मांस एवं शोणित नहीं खाया। किन्तु मैं पुत्रों के सहित राजशुह नगर में पहुँच जाऊँ इसी एक अभिप्राय से सुसुमा दारिका का अपने पुत्रों सहित मांस शोणित सेवन किया—इसी तरह हे आयुष्मन्त श्रमणो! जो हमरा निर्ग्रन्थ श्रमण जन अथवा श्रमणी जन है—वह इस वान्तास्रववाले, पित्तास्रववाले, शुक्लास्र-

करीने आ प्रभाणु क्खुं के—

(जहा वि य णं जंबू! धण्णेणं सत्थवाहेणं णो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा सुसुमाए मंससोणिए आहारिए नन्नत्थ एगाए रायगिहं संपावणद्वयाए एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतास्रवस्स पित्तास्रवस्स सुक्कास्रवस्स सोणियास्रवस्स जाव अवस्से विप्पजहियव्वस्स नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा आहारं आहारेइ, नन्नत्थ एगाए सिद्धिगमणसंपावणद्वयाए)

हे जंबू! जेभ धन्य सार्थवाडे पाताना शरीरमां कान्ति विशेषणी वृद्धि करवा भाटे भगनी वृद्धि भाटे अथवा विषय सेवननी शक्तिना वर्धन भाटे सुसुमा दारिकानां मांस अने शोणित नहि पाधां, पण पुत्रो सहित हुं राजशुह नगरमां पडेअंथी बडि आ जेक ज मतलअथी पाताना पुत्रोनी साथे सुसुमा दारिकाना मांस-शोणित सेवन कथां. आ प्रभाणु हे आयुष्मन्त श्रमणो। जे अमारा निर्ग्रन्थ श्रमण अथवा श्रमणीने छे तेज्जो आ पांता-

स्रवस्य शुक्रास्रस्य ' जाव आस्रं त्रिपञ्चद्वियवस्रस ' यावद् अवस्यं विप्रत्या-
ज्यस्य औदारिकशरीरस्य नो वर्णहेतोर्वा, नो रूपहेतोर्वा नो बलहेतोर्वा, नो
त्रिपयहेतोर्वा, आहारमाहारति=आहारं करोति, ' एगाए सिद्धिगमनसंपादनद्वयाए'
एकस्याः सिद्धिगमनसंपादनार्थतायाः ' नन्नत्थ ' अन्यत्र न, मोक्षप्राप्तिरूपं प्रयो-
जनं विहाय वर्णादिप्रयोजनेन आहारं नाहरतीति भावः । सः=निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी
वा खलु ' इहभवे चेव ' इहभवे एव=अस्मिन् जन्मन्येव बहूनां श्रमणानां बहूनां
श्रमणीनां बहूनां श्रावकाणां बहूनां श्राविकाणाम् ' अच्चणिज्जे ' अर्चनीयः=
आदरणीयः ' जाव वीइवइस्सइ यावद् व्यतिव्रजिष्यति=चातुरन्तसंसारकान्तार-
मुल्लङ्घयिष्यति-संसारपारं गमिष्यतीत्यर्थः ।

वाले, यावत् अवश्य परित्याग होने की योग्यतावाले इस औदारिक
शरीर में कान्ति विशेष बढ़ाने के लिये बल बढ़ाने के लिये, अथवा
विषय की प्रवृत्ति चालू रखने के लिये आहार नहीं लेता है त्रिन्तु-एक-
केवल सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त करने के लिये ही आहार लेता
है । मोक्ष प्राप्तिरूप प्रयोजन को छोड़कर और किसी कान्ति आदि बढ़ाने
के अभिप्राकरूप प्रयोजन से निर्ग्रन्थ श्रमण श्रमणी जन अहार नहीं
लिया करते हैं-(सेणं) ऐसे निर्ग्रन्थ श्रमण श्रमणी जन (इहभवे चेव
बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं साविद्याणं अच्च-
णिज्जे जाव वीइवइस्सइ) इस भव में ही अनेक श्रमण, श्रमणी, जनों
द्वारा तथा श्रावक श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय-आदरणीय यावत् इस
चतुर्गतिरूप संसार कान्तार को पारकरने वाले होते हैं । (एवं खलु

स्रवणा, पित्तास्रवणा, शुक्रास्रवणा यावत् योच्छन्न नष्ट यतारा आ
औदारिक शरीरमां कान्ति विशेषनी वृद्धि माटे, जलनी वृद्धि माटे अथवा तो
विषयनी प्रवृत्ति आलु राभववा माटे आहार लेतो नथी यल्लु इत्थं अेकं
सिद्धिगति नामक स्थानने भेजववा माटे ज आहार अडल्लु करे छे. योक्षप्राप्ति
इय प्रयोजन वगर [णीलु केअ कान्ति वगेरेनी वृद्धिनी अखिलाया राणीने
निर्ग्रन्थ-श्रमणीजन आहार अडल्लु करता नथी. (सेणं) अेवा निर्ग्रन्थ
श्रमणु श्रमणीजनो—

(इहभवे चेव बहूणं समणाणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं साविद्याणं
अच्चणिज्जे जाव वीइवइस्सइ)

आ लवमां ज वल्लु श्रमणु श्रमणीजनो वडे तेमज श्रावक-श्राविकाओ
वडे अर्चनीय, आदरणीय यावत् आ चतुर्गति इय संसार कान्तारने पार
करी जनारा छेय छे.

સુધર્માસ્વામીપ્રાહ— ' एवं ' અનેન પૂર્વોક્તપ્રકારેण खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण 'जाव संपत्तेण ' यावत् संप्राप्तेन=મોક્ષંગતેન અષ્ટાદશસ્ય જ્ઞાતા-
ધ્યયનસ્ય ' અયમદ્વે ' અયમર્થઃ=પૂર્વોક્તરૂપોઽર્થઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ=પ્રરૂપિતઃ, ' ત્તિ વેમિ '
इति ब्रवीमि=अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ९ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितक-
लापालापक-प्रविशुद्धगद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छ-
त्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य ' पदभूषित-कोल्हापुरराज-
गुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री-घासीलाल-
त्रतिविरचितायां-ज्ञाताधर्मकथाङ्गमूत्रस्यानगारधर्मामृतवर्षि-
ण्याख्यायां व्याख्यायामष्टादशमध्ययनं समाप्तं ॥ १८ ॥

જંબૂ ! સમણેણં ભગવયા મહાવીરેણં જાવ સંપત્તેણં અઢારસમસ્સ ણાય-
જ્ઞયણસ્સ અયમદ્વે પળ્ણતેત્તિવેમિ) હસ પ્રકાર સે હે જંબૂ ! શ્રમણ ભગ-
વાન્ મહાવીરને જો સિદ્ધિ ગતિ નમક સ્થાન કો પ્રાપ્ત હો તુકે હૈં હસ
અઠારહવેં જ્ઞાતાધ્યયન કા યહ પૂર્વોક્તરૂપ સે અર્થ પ્રરૂપિત કિયા હૈં ।
એસા જો મૈને કહા હૈ વહ ઉન્હોં કે શ્રી મુલ નિર્ગતવાણી કો સુનકર
હી કહા હૈ-અપની ઓર સે હસમેં કુહ બી મિલાકર નહીં કહા હૈ ॥ સૂ૦ ૯ ॥
શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મ દિવાકર પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત

“ જ્ઞાતાધર્મકથાઙ્ગમૂત્ર ” કી અનગારધર્મામૃતવર્ષિણી વ્યાખ્યાકા
અઠારહવાં અધ્યયન સમાપ્ત ॥ ૧૮ ॥

एवं खलु जंबू ! संमणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्टारसमस्स
णायज्झयणस्स अयमद्वे पण्णणेत्तिवेमि)

આ પ્રમાણે હે જંબૂ ! શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે-કે જેઓ સિદ્ધગતિ
નામક સ્થાનને મેળવી ચુકયા છે-આ અઠારમા જ્ઞાતાધ્યયનને આ પૂર્વોક્ત
રૂપથી અર્થ પ્રરૂપિત કર્યો છે. આવું જે મેં કહ્યું છે, તે તેમના જ શ્રીમુખથી
નીકળેલી વાણીને સાંભળીને જ કહ્યું છે. પોતાના તરફથી ઉમેરીને મેં
કહ્યું નથી. ॥ સૂત્ર ૯ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મ દિવાકર પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત

“ જ્ઞાતાધર્મકથાઙ્ગમૂત્ર ” ની અનગારધર્મામૃતવર્ષિણી વ્યાખ્યાનું

અઠારમું અધ્યયન સમાપ્ત ॥ ૧૮ ॥

अथ एकोनविंशतितममध्ययनम्—

गतमष्टादशमध्ययनम्, साम्प्रतमेकोनविंशतितमं व्याख्यायते, अस्य च पूर्वेण सह अयमभिसम्बन्धः—पूर्वस्मिन्नध्ययने असंवृतास्रस्य तदितरस्य च अनर्थार्थौ उक्तौ, इहतु चिरं संवृतास्रवोऽपि यः पश्चादन्यथा स्यात्तस्य अल्पकालं संवृतास्रवस्य च अनर्थार्थौ प्रोच्येते, इत्येवं सम्बन्धेनायातस्यास्येदमादिसूत्रम्—‘जङ्गमंते’ इत्यादि ।

॥ पुण्डरीक-कण्डरीक नाम-का उन्नीसवां अध्ययन प्रारंभ ॥

अठारहवां अध्ययन समाप्त हो चुका-अब १९ वां अध्ययन प्रारंभ होता है-इस अध्ययन-का पूर्व अध्ययन के साथ इस प्रकार का संबन्ध है पूर्व अध्ययन में असंवृतास्रव अथवा संवृतास्रव वाले प्राणी को अर्थ एवं अनर्थ की प्राप्ति होना समर्थित किया गया है-अर्थात् संवर वालेको अनर्थ की प्राप्ति होती है और संवरवाले को इष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है । अब इस अध्ययन में सूत्रकार यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि जिस प्राणी ने चिरकाल से आस्रवको संवृत कर दिया है-परन्तु यदि वह पीछे से असंवृतास्रव वाला बन जाता है तो उसके अनर्थ की प्राप्ति तथा अल्प काल भी जिसने आस्रव को संवृत कर दिया है उसके अर्थ की प्राप्ति होती है । इस संबंध को लेकर प्रारंभ किये गये इस अध्ययन का यह सर्व प्रथम सूत्र है ।

पुण्डरीक-कण्डरीक नामे ज्योगृहीसुं अध्ययन प्रारंभ

अठारसुं अध्ययन पुं थर् गयुं छे हवे ज्योगृहीसुं अध्ययन शरं थाय छे । आ अध्ययनने ज्येना पूर्वा अध्ययननी साथे आ जतने संबंध छे के पूर्व अध्ययनमां असंवृतास्रव अथवा संवृतास्रववाणा प्राणीने अर्थ अने अनर्थनी प्राप्ति थाय छे, ते वातनुं समर्थन करवामां आओ छे, जेटवे के असंवरवाणाज्येने अनर्थनी प्राप्ति होय छे अने संवरवाणाज्येने इष्ट-अर्थनी प्राप्ति होय छे । हवे आ अध्ययनमां सूत्रकार आ वातनुं स्पष्टीकरण करी रखा छे के जे प्राणीजे चिरकालथी जेटवे के जहुं लांभा वपतथी आस्रवने संवृत करी दीधो छे, परंतु जे ते पाछणथी जेटवे के लविष्यमां असंवृतास्रववाणो जनी जाय छे तेने अनर्थनी प्राप्ति तेमज थोडा वपत सुधी पयु जेजे आस्रवने संवृत करी दीधो छे तेने अर्थनी प्राप्ति थाय छे । आ वातने लधने आरंभाज्येला-आ अध्ययननुं आ पडेहुं सूत्र छेः—

मूलम्—जड्णं भंते ! समणेणं भगवथा महावीरेणं जाव
संपत्तेणं अट्टारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, एग्गुण-
वीसइमस्स णायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खल्लु जंबू !
तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूदीवे दीवे पुव्वविदेहेवासे
सीयाए महाणईए उंत्तरिख्खे कूले नीलवंतस्स दाहिणेणं उत्तरि-
ह्खस्स सीयासुहवणसंडस्स पच्चत्थिमेणं एगसेलगस्स वक्खारपव्व-
यस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं पुक्खलावई णामं विजए पन्नत्ते ।
तत्थ णं पुंडरिगिणी णामं रायहाणी पन्नत्ता णवज्जोयणवित्थि-
ण्णा दुवालसज्जोयणायामा जाव पच्चवखं देवलोगसूया पासार्इया
दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । तीसेणं पुंडरिगिणीए णयरीए
उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए णालिणिवणे णामं उज्जाणे । तत्थ णं
पुंडरिगिणीए रायहाणीए महापउमे णामं राया होत्था, तस्स
णं पउमावई णामं देवी होत्था । तस्स णं महापउमस्स रत्तो
पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था, तं जहा-
पुंडरीए य कंडरीए य, सुकुमालपाणिपाया० । पुंडरीए जुव-
राया । तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं, महापउमे राया
णिग्गए धम्मं सोच्चा, पोंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए पोंडरीए
राया जाए, कंडरीए जुवराया, महापउमे अणगारे चोदसपुव्वाइं
अहिज्जइ, तएणं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरंति, तएणं
से महापउमे बहूणि वासाइं जाव सिद्धे ॥ सू० १ ॥

टीका—‘ जङ्घं भंते ’ इत्यादि । यदि खलु हे भदन्त ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्संप्राप्तेन अष्टादशस्य ज्ञाताऽध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, पुनः खलु हे भदन्त ! एकोनत्रिंशतितमस्य ज्ञाताऽध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? इति जम्बूस्वामी-प्रश्नानन्तरं सुधर्मास्वामी कथयति—एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव ‘ जंबूदीवे दीवे ’ जम्बूद्वीपे द्वीपे=मध्यजम्बूद्वीपे ‘ पुण्ड्रविदेहवासे ’ पूर्वविदेहे वर्षे श्रीताया महानद्याः ‘ उत्तरीये=उत्तरदिक् स्थिते कूले=तीरे ‘ नील-वंतस्स दाहिणेणं ’ नीलवतो दक्षिणे=नीलवतः पर्वतस्य दक्षिणेभागे ‘ उत्तरिल्लस्स ’ उत्तरीयस्य=उत्तरदिक् स्थितस्य ‘ सीयामुहवणसण्डस्स ’ सीयामुहवणसण्डस्य=श्रीताया नद्या यन्मुखमुद्रमस्थानं, तत्र यद् वनण्डम् तस्य, ‘ पच्चत्थिमेणं ’

‘ जङ्घं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेण ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि (जङ्घं भंते समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्टारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते एगूणवीसइमस्स णायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?) हे भदन्त ! यदि श्रमण भगवान् महावीरने कि जो सिद्धि गति नामक मुक्तिस्थान को प्राप्त कर चुके हैं अठारहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्तरूप से अर्थ निरूपित किया है—तो उन्हीं श्रमण भगवान् महावीरने १९ वें ज्ञाताध्ययन का क्या भाव-अर्थ निरूपित किया है ? (एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूदीवे दीवे पुण्ड्रविदेह वासे सीयाए महाणईए उत्तरिल्ले कूले नीलवंतस्स दाहिणेणं उत्तरिल्लस्स सीयामुहवणसण्डस्स पच्चत्थिमेणं एगसेलगस्स वक्खारपच्चयस्स

‘ जङ्घं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं—

टीकार्थः—७०७ स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे के :

(जङ्घं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्टारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते एगूणवीसइमस्स णायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?)

हे भदन्त ! जे श्रमणु भगवान् महावीरे—के जेभल्ले सिद्धिगति नामक मुक्तिस्थानने भेणवी लीधुं छे—अठारमा ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वोक्त रूपमा अर्थ निरूपित कर्थे छे त्यारे ते ७ श्रमणु भगवान् महावीरे आगणुसमा ज्ञाताध्ययनने शे भाव-अर्थ निरूपित कर्थे छे ?

(एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबू दीवे दीवे पुण्ड्र-विदेहवासे सीयाए महाणईए उत्तरिल्ले कूले नीलवंतस्स दाहिणेणं उत्तरिल्लस्स

पाश्चात्ये=पश्चिमेभागे ' एगसेलगसस ' एकशैलकस्य=मध्यजम्बूद्वीपमेरुपर्वतसमीप-
स्थस्य एक शैलकनामकस्य ' वक्खारपक्वयसस ' वक्षस्कारपर्वतस्य ' पुरत्थिमेणं '
पौरस्त्ये=पूर्वस्यां दिशि ' एत्थणं ' अत्र खलु पुष्कलावती नाम विजयः प्रज्ञप्तः ।
तत्र खलु पुण्डरीकिणी नाम राजधानी प्रज्ञप्ता, सा ' णवजोयणवित्थिण्णा '
नवयोजनविरतीर्णा = नवयोजनविस्तारवती ' दुवालसजोयणायामा ' द्वादश-
योजनायामा=द्वादशयोजनानि आयामो दैर्घ्वं यस्याः सा=द्वादशयोजनदीर्घेत्यर्थः,
पुनः ' जाव पच्चक्खं देवलोयभूया यावत् प्रत्यक्षदेवलोकभूता=साक्षात् स्वर्गसदशा-
पुनः प्रासादीया, दर्शनीया, अभिरूपा, प्रतिरूपा । तस्याः खलु पुण्डरीकिण्याः

पुरत्थिमेणं एत्थणं पुक्खलावणामं विजए पण्णत्ते) इस प्रकार जंबूस्वामी
के पूछने पर सुधर्मा स्वामी उनसे कहते हैं-सुनो-तुम्हारे प्रश्न का
उत्तर इस प्रकार है उस काल और उस समय में इस जंबूद्वीप नाम के
द्वीप में पूर्व विदेह क्षेत्रमें, शीत महानदी के उत्तरदिग्वर्ती तीर पर स्थित
नील पर्वत के दक्षिण दिग्भाग में, तथा उत्तर दिग्वर्ती शीतासुखवनषंड
के पश्चिम भाग में, तथा एक शैलक नाम वाले वक्षस्कार पर्वत की पूर्व
दिशा में पुष्कलावती इस नाम का विजय है । शीतासुखवनषंड
का तात्पर्य यह है-कि जहां से शीतानदी निकली है उस उद्गमस्थान
पर एक वनषंड है । मध्य जंबूद्वीप और मेरुपर्वत के समीप में रहा
हुआ एक शैलक नाम का वक्षस्कार पर्वत है ।-(तएणं पुंडरिगिणीणामं
रायहाणी पन्नत्ता, णवजोयणवित्थिण्णा दुवालसजोयणायामा, जाव पच्च-
क्खं देवलोयभूया पासाईया, दरसणिज्जा अभिरूवा पडिह्वा) उस

सीयासुखवनषंडसस पच्चत्थिमेणं एगसेलगसस वक्खारपक्वयसस पुरत्थिमेणं
एत्थणं पुक्खलावणं नामं विजए पण्णत्ते)

आ प्रभाणे ऋषू स्वामीना प्रश्नने सांलणीने श्री सुधर्मा तेभने कडेवा
दाग्धा के डे ऋषू ! सांलणो, तभारा सवालनो ऋषाण आ प्रभाणे छे के
ते कण्णे अने ते सभये आ ऋषूद्वीप नामके द्वीपभां पूर्व विदेह क्षेत्रभां,
शीता भहा नदीना उत्तर दिशा तरश्ना किनारा उपर आवेला नील पर्वतना
दक्षिण दिग्भागभां तेभण उत्तर दिशाभां आवेला सीता सुखवनषंडना पश्चिम
भागभां, तेभण ओक शैलक नामवाणा वक्षस्कार पर्वतनी पूर्व दिशाभां पुष्क-
लावती नामे ओक विषय छे. सीता सुखवन-पर्वतने अर्थ आम सभणवे
जेधजे के न्याथी शीता नदी निकली छे, ते उद्गम स्थान उपर ओक वनषंड छे.
मध्य ऋषूद्वीप अने मेरुपर्वतनी पांसे आवेला ओकशैलक नामे वक्षस्कार पर्वत छे.

(तएत्थणं पुंडरिगिणीणामं रायहाणी पन्नत्ता, णव जोयणवित्थिण्णा दुवालसजो-
यणायामा, जाव पच्चक्खं देवलोयभूया पासाईया, दरसणिज्जा अभिरूवा पडिह्वा)

નગર્યાં : ઉત્તરપૌરસ્ત્યે દિગ્ભાગે નલિનીવનં નામ ઉદ્યાનમ્ । તત્ર સ્વલુ પુન્ડરીકિણ્યાં રાજધાન્યાં મહાપદ્મો નામ રાજાઽઽસીત્ । તસ્ય સ્વલુ પદ્માવતી નામ દેવી આસીત્ । તસ્ય સ્વલુ મહાપદ્મસ્ય રાજ્ઞઃ પુત્રો પદ્માવત્યા દેવ્યા આત્મજૌ દ્વૌ કુમારૌ આસ્તામ્ । 'તં જહા' તથથા તયોર્નામરૂપે, તદાહ- 'પુંડરીણ ચ કંડરીણ ચ સુકુમાલ-પાણિપાયા' પુન્ડરીકશ્ચ કંડરીકશ્ચ સુકુમારપાણિપાદૌ કોમલકરચરણૌ । તયોર્મધ્યે પુન્ડરીઠો યુવરાજાઽઽસીત્ । તસ્મિન્ કાલે તસ્મિન્ સમયે 'થેરાગમણં'

પુષ્કલાવતી વિજય મેં પુંડરી કિની નામ રાજધાની થી । યહ નવ યોજન વિસ્તારવાલી તથા ૧૨ યોજન કી લંબી હૈ યહ સાક્ષાત સ્વર્ગ જૈસી પ્રતીત હોતી હૈ । પ્રાસાદીયચિત્ત એવં અન્તઃકરણ કો યહ પ્રસન્ન કરને વાલી હૈ, દર્શનીય-નેત્રોં કો તૃપ્તિ કરને વાલી હૈ, અભિરૂપ-અસાધારણ રચના સે યુક્ત હૈ એવં પ્રતિરૂપ હૈ-હસકે જૈસી ઓર દૂસરી કોઈ નગરી નહીં હૈ એસી । (તીસેણં પુંડરિગિણીણ ણયરીણ ઉત્તરપુરત્થિમે દિસિભાણલિણિવણે ણામં ઉજ્જાણે-તત્થ ણં પુંડરિગિણીણ રાયહાણીણ મહાપડમે ણામં રાયા હોત્થા-તસ્સણં પડમાવર્ણનામં દેવી હોત્થા, તસ્સ ણં મહાપડમસ્સ રણ્ણો પુત્તા પડમાવર્ણ દેવીણ અત્તયા દુવે કુમારા હોત્થા) ઉસ પુંડરીકિણી નગરી કે ઉત્તર પૌરસ્ત્ય દિગ્ભાગ મેં નલિનીવન નામ કાં એક ઉદ્યાન થા । ઉસ પુંડરીકિણી રાજધાની મેં મહાપદ્મનામ કા એક રાજા રહતા થા । ઉસકી દેવી કા નામ પદ્માવતી થા । ઉસ મહાપદ્મ રાજા કે યહાં પદ્માવતી કી કુક્ષિ સે ઉત્પન્ન હુણ દો કુમાર થે (તં જહા પુંડરીણ ચ, કંડરીણ ચ-સુકુમાલપાણિ પાયાઃ । પુંડરીણ જુવરાયા તેણં કાલેણં

તે પુષ્કલાવતી વિજયમાં પુંડરીકિની નામે રાજધાની હતી. તે નવ યોજન જેટલા વિસ્તારવાળી તેમજ બાર યોજન જેટલી લાંબી છે. તે પ્રત્યક્ષ સ્વર્ગ જેવી જ લાગે છે. તે પ્રાસાદીયચિત્ત અને અન્તઃકરણને તે પ્રસન્ન કરનારી છે, દર્શનીય-આંખોને તે તૃપ્ત કરનારી છે, અભિરૂપ તે અસાધારણ (અપૂર્વ) રચનાવાળી છે, અને પ્રતિરૂપ-એના જેવી બીજી કોઈ નગરી નથી એવી છે.

(તીસેણં પુંડરિગિણીણ ણયરીણ ઉત્તરપુરત્થિમે દિસિભાણલિણિવણે ણામં ઉજ્જાણે-તત્થ ણં પુંડરિગિણીણ રાયહાણીણ મહાપડમે ણામં રાયા હોત્થા-તસ્સણં પડમાવર્ણનામં દેવી હોત્થા, તસ્સણં મહાપડમસ્સ રણ્ણો પુત્તા પડમાવર્ણ દેવીણ અત્તયા દુવે કુમારા હોત્થા)

તે પુંડરીકિણી નગરીના ઉત્તર પૌરસ્ત્ય દિગ્વિભાગમાં નલિનીવન નામે એક ઉદ્યાન હતો. તે પુંડરીકિણી રાજધાનીમાં મહાપદ્મ નામે એક રાજા રહેતો હતો. તેની રાણીનું નામ પદ્માવતી હતું. તે મહાપદ્મ રાજાને ત્યાં પદ્માવતી દેવીના ગર્ભથી ઉત્પન્ન થયેલા બે રાજકુમાર હતા.

स्थविरागमन=तस्या राजधान्या नलिनीवने उद्याने स्थविराणामागमनमभूत् । महापद्मो राजा धर्मं श्रोतुं निर्गतः, धर्मं श्रुत्वा संजातवैराग्यः पुण्डरीकं राज्ये स्थापयित्वा प्रव्रजितः । अनन्तर पुण्डरीको राजा जातः, कण्डरीको युवराजः । महापद्मसंगारः चतुर्दशपूर्वाणि अधीते । ततः खलु स्थविरा बहिर्जपदविहारं विहरन्ति । ततः खलु स महापद्मो बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा यावद् सिद्धः॥सू० १॥

तेणं समएणं थेरागमणं, महापडमे राया णिग्गए, धम्मं सोच्चा पोंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए । पोंडरीए राया जाए, कंडरीए जुवराया । महापडमे अणगारे चौद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ, तएणं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरंति, तएणं से महापडमे बहूणि वासाइं जाव सिद्धे) उनके नाम इस प्रकार है-१ पुंडरीक और दूसरा कंडरीक-ये दोनों पुत्र सुकुमार करचणवाले थे । पुंडरीक को पिता ने युवराज पदप्रदान किया था । उस काल में और उस समय में वहां स्थविरों का आगमन हुआ । महापद्माराजा धर्म का व्याख्यान सुनने के लिये अपने महल से निकलकर नलिनीवन उद्यान में आये । वहां धर्म का उपदेश सुनकर उन्हें वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया-सो वे पुंडरीक को राज्य में स्थापितकर दीक्षित हो गये । पुंडरीक राजा बन गया-और कंडरीक युवराज हो गया । महापद्माराजर्षि ने चौदह पूर्वों का अध्ययन कर लिया । इसके बाद वहां से स्थविरों ने

(तं जहा-पुंडरीए य, कंडरीए य-सुकुमालाणिपाया० । पुंडरीए जुवराया तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं, महापडमे राया णिग्गए, धम्मं सोच्चा पोंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए । पोंडरीए राया जाए, कंडरीए जुवराया । महापडमे अणगारे चौद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ, तएणं थेरा बहिया, जणवयविहारं विहरंति, तएणं से महापडमे बहूणि वासाइं जाव सिद्धे)

तेभनां नभो आ प्रभाञ्जे छे-१ पुंडरीक, अने २ कंडरीक आ अने पुत्रो सुकुमालाणिपाया इति । राज्ञे पुंडरीकने युवराजपद प्रदानं कथुं इत्तुं । ते काले अने ते समये त्यां स्थविरानुं आगमनं थयुं । महापद्मं राज्ञं धर्मं व्याख्यानं सांख्येण भाटे चोत्तानां महेत्थी नीकणीने नलिनीवन उद्यानमां आण्ये । त्यां धर्मोपदेशं सांख्येण तेने वैराग्यज्ञानं उत्पन्नं थयं गये । छेवटे पुंडरीकने राज्यासने स्थापितं करीने तेणो दीक्षितं थयं गया पुंडरीकं राज्ञं थयं गये अने कंडरीकं युवराजं थयं गये । महापद्मं राजर्षिं चोद्दपूर्वोत्तं अध्ययनं करी इत्तुं । त्यारपथी स्थविरा त्याथो अहारं नपटोमां विहारं

मूलम्—तएणं थेरा अन्नया कयाइं पुणरवि पुंडरिणिणीए रायहाणीए णलिणिवणे उज्जाणे समोसढा, पौंडरीए राया णिग्गए । कंडरीए महाजणसइं सोच्चा जहा महाबलो जाव पञ्जुवासइ । थेरा धम्मं परिकहेति पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए । तएणं से कंडरीए उट्टाए उट्टेइ, उट्टाए उट्टित्ता जाव से जहेयं तुवभे वदह जं णवरं पुण्डरीयं रायं आपुच्छामि, जाव पव्वयामि । अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं से कंडरीए जाव थेरे वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता तमेव चाउग्घटं आसरहं दुरुहइ जाव पच्चोरुहइ, जेणेव पुण्डरीए राया तेणेव उवागच्छइ करयंल जाव पुंडरीयं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए थेराणं अंतिए जाव धम्मो निसंते से धम्मो जाव अभिरुइए, तएणं देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइत्तए । तएणं से पुंडरीए कंडरीए एवं वयासी—माणं तुमं देवाणुप्पिया ! इयाणि मुंडे जाव पव्वयाहि, अहं णं तुमं सहया२ रायाभिसेएणं अभिसिंचामि । तएणं से कंडरीए पुंडरीयस्स रण्णो एयमइं णो आढाइ णो-परिजाणइ तुसिणीए संचिट्ठइ । तएणं पुण्डरीए राया कंडरीयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—जाव तुसिणीए संचिट्ठइ । तएणं पुण्डरीए कंडरीयं कुमारं जाहे नो संचाएइ, वहुहिं आघवणाहि बाहिर जनपदो में विहार कर दियो । महापद्म अनगार ने अनेक वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालनकर घोवत् सिद्धपद को प्राप्त कर लिया ॥ सू० १ ॥

भाटे नीकणी पडया. महापद्म अनगारे धनुं वर्षो सुधी श्रामण्य पर्यायतुं पावन करीने यावत् सिद्धपदने प्राप्त करी दीधु. ॥ सूत्र १ ॥

य पणवणाहि य४ ताहे अकामए चेव एयसहुं अणुमन्नित्था जाव णिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव थेराणं सीसभिव्खं दलयइ । पवइए अणगारे जाए एगारसंगविऊ । तएणं थेरा भगवंतो अन्नया कयाइं पुंडरिणिणीओ नयरीओ णलिणीवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमांति पडिणिक्खमित्ता वहिया जणवय-विहारं विहरंति ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ तएणं ते ’ इत्यादि । ततः खलु ते स्थविरा अन्यदा कदाचित् पुण्डरीकिण्या राजधान्या नलिनीवने उद्याने समवसृताः—समगताः । तेषां समागमनं श्रुत्वा पुण्डरीको राजा तान् वन्दितुं निर्गतः । अनन्तरम्—कण्डरीको ‘ महाजणसइं ’ महाजनशब्दं=स्थविरान् वन्दितुं कामानां गच्छतां वहूनां जनानां कोलाहलं श्रुत्वा ‘ जहा महाबलो जाव पज्जुवासइ ’ यथामहाबलो यावत्पर्युपास्ते । महाबल इव स्थविराणां समीपे गत्वा तान् वन्दित्वा नमस्त्येत्वा सेवते । स्थविरा धर्मं ‘ परिकहेति ’ परिकथयन्ति=उपदिशन्तीत्यर्थः । तैरुपदिष्टं धर्मं श्रुत्वा पुण्डरीकः श्रमणोपासको जातः ‘ जाव पडिगए ’ यावत्प्रतिगतः=स्थविरान् वन्दित्वा

‘ तएणं ते थेरा अन्नया कयाइं ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(तएणं) इसके बाद (ते थेरा) वे स्थविर (अन्नया कयाइं) किसी एक समय (पुणरवि) फिर से (पुंडरिणिणीए रायहाणीए णलिणिवणे उज्जाणे समोसदा, पौंडरीए रायाणिग्गए) पुंडरीकिणी राजधानी में आये । वहाँ वे नलिनीवन उद्यान में ठहरे । पुंडरीक राजा उनका आगमन सुनकर धर्म सुनने की इच्छा से वहाँ जाने के लिये अपने महल से निकले । (कंडरीए महाजणसइं सोचा जहा महाबलो जाव पज्जुवासइ, थेरा धम्मं परिकहेति, पुंडरीए समणोवासए जाए जाव

‘ तएणं ते थेरा अन्नया कयाइं ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (ते थेरा) ते स्थविरा (अन्नया कयाइं) के।धं अेक वभते (पुणरवि) री (पुंडरिणिणीए रायहाणीए णलिणिवणे उज्जाणे समोसदा, पौंडरीए रायाणिग्गए) पुंडरीकिणी राजधानीमें आया। त्यां तेअे नलिनीवन उद्यानभां देकाया। पुंडरीक राज तेभनुं आगमन सांलणीने धर्मनुं व्याभ्यान सांलणवानी ध्विछाथी त्यां जवा माटे पोताना भडेडथी नीकल्या। (कंडरीए महाजणसइं सोचा जहा महाबलो जाव पज्जुवासइ, थेरा धम्मं परि-

नमस्यित्वा प्रतिनिवृत्तः । ततः खलु कण्डरीकः ' उद्गाए ' उत्थया=उत्थानशक्त्या उत्तिष्ठति, उत्थया उत्थाय ' जाव ' यावत् स्थविरान् वन्दित्वा नमस्यित्वा एव-मवदत्- ' से जहेयं तुग्मे वदह ' तद्यथेदं यूयं वदथ=हे देवानुप्रियाः ! यूयं यथा यद् वदथ, तत्तथैव, ' जं णवरं ' यन्नवरं=यो विशेषः सचैत्रम्-यदहं पूर्वं पुण्डरीकं राजानम् आपृच्छामि । ततः खलु ' जाव पव्वयामि ' पावत् प्रव्रजामि ।

पडिगए) इसके बाद कंडरीक युवराज स्थविरों को वंदना करने के लिये जानेवाले अनेक मनुष्यों का कोलाहल सुनकर महाबल राजा की तरह स्थविरों के पास गया-वहां जाकर उसने उनकी वंदना की-नमस्कार किया । वंदना नमस्कार कर फिर उसने उनकी पर्युपासना की । स्थविरों ने धर्म का उपदेश दिया । उस उपदेश को सुनकर पुंडरीक श्रमणोपासक बन गया । बाद में वह स्थविरों को वंदना और नमस्कार कर अपने स्थान पर वापिस वहां से लौट आया । (तएणं से कंडरीए उद्गाए उद्देह, उद्गाए उट्टित्ता जाव से जहेयं तुग्मे वदह, जं णवरं पुंडरीयं रायं आपुच्छामि, तएणं जाव पव्वयामि-अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं से कंडरीए जाव थेरे वंदह, नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडि-निकखमह) इसके बाद कंडरीक उत्थानशक्ति से उठा-उत्थानशक्ति-उठने की शक्ति से उठकर उसने स्थविरों को वंदना की-नमस्कार किया । वंदना नमस्कार करके फिर उसने उनसे इस प्रकार कहा-हे

कहेति, पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए) त्थारपणी कंडरीक युवराज स्थविशेनी वंदना करवा माटे उपडेवा अनेक भाषुसेना धोधाट सांखणीने भडाअध राबनी नेम स्थविशेनी पासे गथे। त्यां जधने तेखे तेमने वंदन अने नमस्कार कर्थां। वंदना अने नमस्कार करीने तेखे तेमनी पयुपासना करी। स्थविशेअ धरुपदेश आअथे, ते उपदेशने सांखणीने पुंडरीक श्रमणुपासक भनी गथे। त्थारपणी ते स्थविशेने वंदन तेमज नमन करीते योताना निवास-स्थाने पाछे आवतो रह्यो।

(तएणं से कंडरीए उद्गाए उद्देह, उद्गाए उट्टित्ता जाव से जहे यं तुग्मे वदह जं णवरं पुंडरीयं रायं आपुच्छामि, तएणं जाव पव्वयामि-अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं से कंडरीए जाव थेरे वंदह, नमंसह, वंदित्ता, नमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमह)

त्थारपणी कंडरीक उत्थान शक्ति वडे लिले थये, उत्थान शक्ति-लिसा थयानी शक्ति वडे लिले थधने तेखे स्थविशेने वंदन तेमज नमस्कार कर्थां। वंदना अने नमस्कार करीने तेखे तेमने आ प्रभाषे विनंती करतां कहुं के

इति तद् वचनं श्रुत्वा ते स्थविराः प्रोचुः ' अहासुहं देवाणुप्पिया ' यथासुखं हे देवानुप्रिया ! हे देवानुप्रिय ! यथा तव सुखकरं भवेत् तथा कुरु । ततः खलु स कण्डरीको यावत् स्थविरान् वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा स्थविराणामन्तिकान्=समीपात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य, तमेव ' चाउगघंटं ' चतुर्घण्टं=चतस्रो घण्टा यस्मिन् स तम्=घण्टा चतुष्टयोपेतम् अश्वरथं दूरोहति, यावत् प्रत्यशरोहति=रथादवतरति । अवतरणानन्तरं यत्रैव पुण्डरीको राजा तत्रैव उपागच्छति, ' करयल जाव ' करतल यावत्=करतलपरिगृहीतं शिर आवत्तं दशनखं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा पुण्डरीकमेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! मया स्थविराणामन्तिके यावद्धर्मो निशान्तः=श्रुतः, स धर्मः=स्थविरप्रोक्तो धर्मः यावत् अभिरुचितः । तत् खलु हे देवानुप्रिय ! ' जाव पव्वइत्तए ' यावत् प्रव्रजितुम्=हे देवानुप्रियाः ! भवद्भिरभ्यनुज्ञातो स्थविराणामन्तिके प्रव्रजितुमिच्छामीतिभावः ।

देवानुप्रियो ! आप जैसा कहते हैं-वह वैसा ही है-मेरी भावना उसे सुनकर संयम लेने की हो गई है-अतः संयम धारण करने के पहिले मैं पुंडरीक राजा से इस विषय में पूछ आता हूँ उसके बाद संयम धारण करना चाहता हूँ । इस प्रकार उसके वचन सुनकर उन स्थविरों ने उससे कहा-हे देवानुप्रिय ! तुम्हे जैसे सुख हो-तुम वैसा करो-इसके बाद कंडरीक ने स्थविरों को वंदना की-नमस्कार किया और वंदना नमस्कारकर वह उनके पास से चला आया (पडिनिक्खमिन्ता) आकर के (तमेवचाउगघंटं आसरहं दुरुहइ, जाव पचोरुहइ, जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, करयल जाव पुंडरीयं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए थेराणं अंतिए जाव धम्मे निसंते से धम्मे जाव अभिरुइए

हे देवानुप्रियो ! तमे वेम कडे छे ते अशेअर तेम छे. आ गधुं सांलणीने स'थम अरुणु करवानी मारी ध'च्छा थ' गध छे अेटवा माटे स'थम धारणु करतां पडेवां हुं पुंडरीक रावने आ विषे पूछी आहुं छुं. त्यारपछी हुं स'थम धारणु करवा आहुं छुं. आ अभाणु तेनां वचने। सांलणीने ते स्थविशेअे तेने कहुं के हे देवानुप्रिय ! तमने जेमां सुअ मणे तेम करे। त्यारपछी कंडरीके स्थविशेने व'हन तेमअ नमस्कार करीने ते तेमनी पासेशी आवतो रव्वे। (पडिनिक्खमिन्ता) आणीने,

(तमेव चाउगघंटं आसरहं दुरुहइ, जाव पचोरुहइ, जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, करयल पुंडरीयं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए थेराणं अंतिए जाव धम्मे निसंते से धम्मे जाव अभिरुइए-तण्णं देवाणुप्पिया !

ततः पुण्डरीकः कण्डरीकमेवमवादीत्-मा खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! भ्रातः इदानीं मुण्डो यावत् प्रव्रज अहं खलु त्वां महता २ ' रायाभिसेएणं ' राजाभिषेकेण ' अभिसिंचामि=भभिषेचयामि । ततः खलु स कण्डरीको युवराजः पुण्डरीकस्य राज्ञ एतमर्थं नो आद्रियते=रवस्य राज्याभिषेकरूपमर्थं नो मनुते, ' नो परिजाणइ ' नो प्रतिजानाति=न स्वीकरोति ' तुसिणीए संचिद्इ ' तूष्णीकः

-तण्णं देवाणुप्पिया ! पव्वइत्तए ! तएणं से पुंडरीए कंडरीए एवं वयासी -माणं तुमं देवाणुप्पिया ! इयाणिं मुंडे जाव पव्वयाहि-अहं णं तुमं महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचामि) वह वहां आया-जहां चतुर्धटो पेत अपना अश्वरथ रखा हुआ था । वहां आकर वह उसपर चढ़ गया -चढ़कर वह जहां पुंडरीक राजा थे वहां आया-वहां आते ही वह रथ से नीचे उतरा । नीचे उतरकर पुंडरीक राजा के पास गया-वहां जाकर उसने पुंडरीक राजा को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया-बाद में इस प्रकार कहने लगा-हे देवानुप्रिय मैंने स्थविरों के पास धर्म का उपदेश सुना है-वह मुझे बहुत रुचा है इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैं आपसे आज्ञापित होकर उन स्थविरों के पास संयम लेना चाहता हूँ-इस प्रकार कंडरीक की बात सुनकर पुंडरीकने उससे इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय ! तुम इस समय लुंडित होकर स्थविरों के पास संयम धारण मतकरा मैं बड़े जोर शोर के उत्सव के साथ तुम्हारा राज्याभिषेक करना चाहता हूँ । (तएणं से कंडरीए पुंडरीयस्स

जाव पव्वइत्तए ! तएणं से पुंडरीए कंडरीए एवं वयासी-माणं तुमं देवाणुप्पिया । इयाणिंमुंडे जाव पव्वयाहि अहं णं तुमं महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचामि)

ते त्यां आब्भे न्यां यतुधं टवाणेो पोतानेो अश्वरथेो उतो त्यां आचीने ते तेमां भेसी गथेो, अने भेसीने ते न्यां पुंडरीक राजेो उतो त्यां गथेो, त्यां पडेांयता ँ ते रथेो उपरथी नीचे उतरथी, नीचे उतरथीने पुंडरीक राजानी पासे गथेो, त्यां ँधने तेणेो अने उाथेो नेडीने पुंडरीक राजनेे नमस्कार कथां अने त्यारपछी तेणेो तेमनेे चिन्ती करतां आ प्रभाणेो उहुं के डे डे देवानुप्रिय । मे स्थविराणी पासेथी धर्मोपदेशे सांलण्णेो छे ते मनेे पूअ ँ गभी गथेो छे, अथी डे देवानुप्रिय । हुं तमारी आसा मेणचीने स्थविराणी पासेथी संधम अडण्णु करवा धुब्धुं छुं, आ प्रभाणेो कंडरीकनी वात सांलण्णेोने पुंडरीके तेने आ प्रभाणेो कहुं के डे देवानुप्रिय । तमे डमण्णां मुंडित थधनेे स्थविराणी पासेथी संधम धारण्णु करेो नडिं, हुं मोटा उत्सव साथेे तमारो राज्याभिषेक करवा आहुं छुं.

संतिष्ठते=तमर्थं न स्वीकृतवान् केवलं मौनमवलम्ब्य स्थितः । ततः खलु पुण्डरीकी राजा कण्डरीकं भ्रातरं द्वितीयमपि तृतीयमपि वारम् ' एवं 'पूर्वोक्तरूपेण अवादीत्- ' जाव तुसिणीए संचिद्वइ ' यावत्-तुष्पीकः संतिष्ठते । ततः खलु पुण्डरीकः कण्डरीकं यदा ' नो संचाएइ ' नो शक्नोति = न समर्थो भवति बहुभिः ' आघवणाहि य ' आरुयापनामिश्र-आरुयापनाभिः-प्रब्रज्याविरोधिभि-रारुयानैः ' पणवणाहि य ' प्रज्ञापनामिश्र ' अहं तव ज्येष्ठभ्राताऽस्मि, तव हितं येन भवति, तदेव कथयामि, इत्यादि रूढैः प्रज्ञापनवाक्यैः एवं ' विणवणाहि य ' विज्ञापनाभिः विनितयदुवचनावलिरुपवर्णिक्यप्रबन्धैः, तथः ' सणवणाहि य ' संज्ञापनाभिः ' प्रब्रज्यायां महान् कण्टो भवति ' इत्यादि स्थाभीप्सितसंज्ञापकैर्वाक्यैश्च

रणो एयमद्वं णो आढाइ, णो पजिणइ, तुसिणीए संचिद्वइ, तएणं पुंडरीए राया कंडरीयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी जाव तुसिणीए संचिद्वइ, तएणं पुंडरीए कंडरीयं कुमारं जाहे नो संचाएई, बहूहि आघवणाहि य पणवणाहि य ४ ताहे अकामए चेव एयमद्वं अणुमन्नित्था जाव णिक्खमणाभिसेएणं अभिसिचइ जाव थेराणं सीसभिव्वं दलयइ) कंडरीक कुमारने पुंडरीक राजा की इस बात को आदर की दृष्टि से नहीं देखा-नहीं माना-और न उसे स्वीकार ही किया-केवल चुपचाप ही रहा । पुंडरीक राजा ने जब कंडरीक कुमार को चुपचाप देखा-तब उसने दुबारा और तिबारा भी उससे ऐसा ही कहा-परन्तु उसने इस बात पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया केवल चुपचाप ही रहा-। अतः जब पुंडरीक राजा कंडरीक कुमार को उसके ध्येय से विचलित करने

(तएणं से कंडरीए पुंडरीयस्स रणो एयमद्वं णो आढाइ, णो परिजाणइ, तुसिणीए संचिद्वइ, तएणं पुंडरीए राया कंडरीयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी जाव तुसिणीए संचिद्वइ, तएणं पुंडरीए कंडरीयं कुमारं जाहे नो संचाएई, बहूहि आघवणाहि य पणवणाहि य ४ ताहे अकामए चेव एयमद्वं अणुमन्नित्था जाव णिक्खमणाभिसेएणं अभिसिचइ जाव थेराणं सीसभिव्वं दलयइ)

कंडरीक कुमारे पुंडरीक राजानी आ वाततुं सन्मान कथुं नडि-भानी नडि अने तेना स्वीकार पणु कथेो नडि, इकत ते भूगेो थधने जेसी ७ रह्यो. पुंडरीक राजाये न्यादे कंडरीक कुमारने भूगेो भूगेो जेसी रहेलो जेथेो त्यादे तेमणे भील वार अने त्रील वार पणु तेने आ प्रभाणे ७ कथुं. परंतु तेणे आ वातनी सह ७ पणु हरकार करी नही, इकत भूगेो थधने जेसी ७ रह्यो. छेवटे न्यादे पुंडरीक राजा कंडरीक कुमारने तेना ध्येयथी मळम विचारथी

‘आघवित्तए’ आख्यापयितुं ४=सर्वथापतिरोधयितुं न शक्नोतीति पूर्वेण सम्बन्धः, ‘ताहे’ तदा ‘अकामए वेव’ अकामक एव=अनिच्छ एव ‘एयमट्ट’ एतमर्थम्—कण्डरीकाभिलषितं प्रव्रज्यारूपम्, ‘अणुमन्निस्था’ अन्वमन्यत=स्वीकृतवान्, ‘जाव णिक्खमणाभिसेएणं’ यावत् निष्क्रमणाभिषेकेण ‘स्वीकरणानन्तरं निष्क्रमणोपयोगि वस्तुजातमुपनीय सविधि दीक्षाभिषेकेण अभिषिञ्चति, ‘जाव थेराणं सीसभिकखं दलयइ’ यावत्-स्थविरेभ्यः शिष्यभिक्षाम्=अभिषेकानन्तरं स पुण्डरीको राजा कण्डरीकं शिविकायां समुपवेश्य महता समारोहेण सह नलिनीवने उद्याने सप्पायाति, तत्र स्थितेभ्यः स्थविरेभ्यः स्वलघुभ्रातरं शिष्यभिक्षां ददाति । अनन्तरं स कण्डरीकः प्रव्रजितः सन् अनगारो जातः । तथा ‘एकारसंगविऊ’ एकादशाङ्गवित्तु=एकादशाङ्गज्ञानवान् जातः । ततः खलु स्थविरा भग-

के लिये आख्यापनाओं द्वारा, प्रज्ञापनाओं द्वारा विज्ञापनाओं द्वारा संज्ञापनाओं द्वारा, समर्थ नहीं हो सके—तब उन्होंने बिना इच्छा के ही कण्डरीक कुमार को दीक्षा ग्रहण करने रूप अर्थ की स्वीकृति देने के बाद निष्क्रमणोपयोगी समस्त वस्तुओं को उन्होंने मंगवाया—जब वे आ चुकी—तब उन्होंने उसका सविधि दीक्षाभिषेक से अभिसिंचन किया । अभिषेक के बाद पुण्डरीक राजा कण्डरीक को शिविका में बैठाकर बड़े समारोह के साथ नलिनीवन में आये । वहाँ आकर उन्होंने स्थविरों के लिये अपने लघुभाई को शिष्य की भिक्षा रूप से प्रदान किया । इसके बाद कण्डरीक (पन्वइए अणगारेजाए) प्रव्रजित होकर अनगारावस्था संपन्न हो गये । (एगारसंगविऊ,—तएणं थेरा भगवंतो अन्नया कयाइं पुण्डरिगिणीओ नयरीओ णलिणीवणाओ उज्जाणाओ पडिणिकखमंति,

वियलित करवा भाटे आख्यापनाओ, प्रज्ञापनाओ, विज्ञापनाओ, संज्ञापनाओ बडे पणु समर्थ थध शकथा नहिं त्थारे तेमणु धम्मि न डुडिवा छतांओ कण्डरीक कुमारने दिक्षाग्रहण करवानी स्वीकृति आपी दीधी स्वीकृति आया भाद तेमणु निष्क्रमणुने लगती भधी वस्तुओ मंगायी. न्थारे वस्तुओ आपी गध त्थारे तेमणु तेहुं विधिसर दीक्षाभिषेक बडे अलिसिंचन कयुं. अलिषेक कयां भाद पुण्डरीक राजा कण्डरीकने पादणीमां भेसाडीने लारे समारोहनी साथे नलिनी वनमां आया. त्यां आवीने तेमणु स्थविरेने पोताना नाना भाधने शिष्यता रूपमां आपी दीधो. त्थारपणी कण्डरीक (पन्वइए अणगारे जाए) प्रव्रजित थधने अनगारावस्था संपन्न थध गयो.

(एगारसंगविऊ—तएणं थेरा भगवंतो अन्नया कयाइं पुण्डरिगिणीओ नय-

वन्तो ज्यदा कदाचित् पुण्डरीकिण्या नगर्या नलिनीवनात् उद्यानात् प्रतिनिष्क्राम्यन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिर्जनपदविहारं विहरन्ति ॥ सू० २ ॥

मूलम्—तएणं तस्स कंडरीयस्स अणगारस्स तेहिं अंतेहिं य पंतोहिं य जहा सेलागस्स जाव दाहवक्कंतिए थावि विहरइ । तएणं थेरा अन्नया कयाइं जेणेव पोंडरिगिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, णलिणिवणे समोसढा, पोंडरीए णिग्गए धम्मं सुणेइ । तएणं पोंडरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वावाहं सरोयं पासइ, पासित्ता, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, थेरे भगवंते वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—अहणं भंते ! कंडरीयस्स अणगारस्स अहा पवत्तेहिं ओसहभेसज्जेहिं जाव तेइच्छं आउट्टामि, तं तुब्भे णं भंते ! मम जाणसालासु समोसरह । तएणं थेरा भगवंतो पुंडरीयस्स पडिसुणेति, पडिसुणित्ता, जाव उवसंपज्जित्ताणं

पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरन्ति) धीरे २ वे ग्यारह अंगोंके पाठी भी बनगये इसके बाद उन स्थविर भगवंतों ने किसी एक दिन पुंडरीकिणी नगरी के उस नलिनीवन नामके उद्यान से विहार किया सो विहार कर के बाहिर के जनपदों में विचरने लगे ॥ सू० २ ॥

रीओ णलिणीवणाओ उच्चणाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरन्ति)

धीमे धीमे तेमल्ले अणियार अ गोलुं अकथयन करी लीधु. त्यारभाह ते स्थविर भगवतोअे केअ अेक द्विसे पुंडरीकिणी नगरीना ते नलिनीवन नामना उद्यानथी विहार कथो, विहार करीने तेओ अहारना जनपदोमां विचरल्लु करवा लाग्या. ॥ सूत्र २ ॥

विहरन्ति। तएणं पुंडरीए राया जहा मंडुए सेलागस्स जाव
बलियसरीरे जाए । तएणं थेरा भगवंतो पोंडरीयं रायं पुच्छंति,
पुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरन्ति । तएणं से कंडरीए
ताओ रोयायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुण्णांसि अस-
णपाणखाइमसाइमंसि मुच्छिए गिच्छे गढिए अज्जोववण्णे णो
संचाएइ पोंडरीयं रायं आपुच्छित्ता बहिया अब्भुज्जएणं जण-
वयविहारं विहरित्तए । तत्थेव ओसण्णे जाए । तएणं से पोंड-
रीए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे णहाए अंतेउरपरियालसंप-
रिवुडे राया जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता, कंडरीयं अणगारं तिकखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं
करेइ करित्ता वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता, एवं वयासी-
धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले
जे णं तुमं रज्जं च जाव अंतेउरं चावि छड्डयित्ता जाव विगो-
वइत्ता जाव पव्वइए । अहणं अहण्णे अकयपुन्ने रज्जे जाव
अन्तेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए जाव अज्जो-
ववन्ने नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए । तं धन्नेसि णं तुमं देवा-
णुप्पिया ! जाव जीवियफले । तएणं से कंडरीए अणगारे पुंड-
रीयस्स एयमट्ठं णो आढाइ जाव संचिट्ठइ । तएणं कंडरीए पोंड-
रीएणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे अकामए अवस्सवसे
लज्जाए गारवेणय पोंडरीयं रायं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता थेरेहिं
सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू०३ ॥

टीका— 'तएणं तस्स' इत्यादि । ततः खलु तस्य कण्डरीकस्य अनंगारस्य तैः 'अंतेहि य' अन्तैश्च=वल्लचणकादिभिः, 'पंतेहि य' प्रान्तैश्च=पर्युषितैः, नीरसैः स्वादवर्जितैर्वा अशनादिभिः यथा शैलकस्य राजर्षेस्तथा ऽस्याऽपितथा-विधमाहारं कुर्वतो यावत्प्रकृतिमुकुमारकस्य सुखोपचितस्य शरीरे वेदना प्रादुर्भूता, कीदृशीत्याह - उज्ज्वला यावद् दुरधिसन्धा = सोढुमशक्या पुनः सुखलेशरहिता कण्डरीकः 'दाहवकंतिए' दाहव्युत्क्रान्तिकः=दाहस्य शरीरसन्तापरूपरोगस्य व्युत्क्रान्तिः=उत्पत्तिर्यस्यासौ दाहव्युत्क्रान्तिकः=करचरणादिज्वलनवान् चापि विहरति । ततः खलु स्थविरा अन्यदा कदाचित् यत्रैव पुण्डरीकिणी नगरी तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य, नलिनीवने समवसृताः । पुण्डरीकस्तद्दर्शनार्थं स्वभवना-

'तएणं तस्स कंडरीयस्स' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तस्स कंडरीयस्स अनंगारस्स तेहिं अंतेहिं पंतेहिं य जहासेलगस्स जाव दाहवकंतिए यावि विहरइ) उस कंडरीक अनंगारके वल्लचणक आदि रूप अन्ताहार करनेसे तथा पर्युषित अथवा नीरस आहाररूप प्रान्ताहार करनेसे शैलक राजर्षिकी तरह प्रकृतिसे मुकुमार सुखोपचित होने के कारण शरीरमें वेदना उत्पन्न हो गई । जो उज्ज्वला एवं सोढुमशक्या थी । इस तरह शरीर सन्तापरूप रोग की उत्पत्ति से वे कंडरीक अनंगार कर चरण आदि में जलन होने के कारण सुख के लेश से भी वर्जित हो गये । (तएणं येरा अन्नया कयाहं जेणेव पोंडरिगिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णलिणिवणे समोसदा पोंडरीए

तएणं तस्स कंडरीयस्स इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपछे,

(तस्स कंडरीयस्स अनंगारस्स तेहिं अंतेहिं पंतेहिं य जहा सेलगस्स जाव दाहवकंतिए यावि विहरइ)

ते कंडरीक अनंगारना शरीरमां भद्लयलुक वगेरे इप अन्ताहार करवाथी तेभञ्च पर्युषित अथवा नीरस आहार इप प्रान्ताहार करवाथी शैलक राजर्षिनी जेभ प्रकृतिथी मुकुमार अने सुखोपचित होवा भद्ल वेदना उत्पन्न थई गछ. ते वेदना अत्यंत उअ अने असह्य छती. आ प्रमाछे शरीर संताप इप शोगनी उत्पत्तिथी ते कंडरीक अनंगार हाथ पगमां भणतराने वीधे थोडी सुभशांति पछे भेगनी शक्या नछि.

(तएणं येरा अन्नया कयाहं जेणेव पोंडरिगिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णलिणिवणे समोसदा पोंडरीए निगए धम्मं सुणेइ, तएणं पोंडरीए राया

निर्गतः तत्र गत्वा धर्मं शृणोति । तत्रः खलु पुण्डरीको राजा धर्मं श्रुत्वा यत्रैव कण्डरीकोऽनगारस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, कण्डरीकं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा कण्डरीकस्य अनगारस्य शरीरं 'सव्वावाहं' सव्वावाधं=पीडासहितं 'सरोयं' सरोगं=रोगसहितं 'पासइ' पश्यति, दृष्ट्वा यत्रैव स्थविरा भगवन्तस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य स्थविरान् भगवतो वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—'अहण्णं भंते !' अहं खलु हे भदन्त ! कण्डरीकस्य

निगगए धम्मं सुणेह, तएणं पौंडरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छह उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं वंदइ नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वावाहं सरोयं पासइ) किसी एक समय वे स्थविर पुंडरीकिणी नगरी में विहार करते हुए आये। वहाँ आकर वे नलिनीवन नाम के उद्यान में ठहर गये। आगमन सुनकर पुंडरीक राजा उन को वंदना एवं उनसे धर्मश्रवण करने की भावना से अपने राजमहल से निकलकर उस नलिनीवन उद्यान में आये—स्थविरों ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। धर्म का उपदेश श्रवण कर फिर वे जहाँ कंडरीक अनगार थे उनके पास आये। वहाँ आकर उन्होंने उनको वंदना की नमस्कार किया—। वंदना नमस्कार करके उन्होंने कंडरीक अनगारके शरीर को पीडासहित एवं रोगसहित देखा—(पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—अहण्णं भंते !

धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं वंदइ नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वावाहं सरोयं पासइ)

इहा अक वभते ते स्थविर पुंडरीकिणी नगरीमां विहार करता करता आब्बा. त्यां आबिने तेज्जे नलिनीवन नामना उद्यानमां शोकाया. तेभजुं आगमन सांभणीने पुंडरीक राजा तेभने वंदन करवा भाटे तणा तेभनी पासिथी धर्मेपदेश सांभणवा भाटे पोताना राजमहलथी नीकणीने ते नलिनीवन उद्यानमां आब्बे. स्थविराज्जे तेभने धर्मेपदेश आब्बे, धर्मेपदेश सांभणीने तेज्जे ज्जां कंडरीक अनगार इता तेभनी पासि गवा. त्यां ज्जिने तेभज्जे तेभने वंदन ज्जिने नमस्कार कथीं. वंदन ज्जिने नमस्कार करीने तेभज्जे कंडरीक अनगारना शरीरने पीडा सहित ज्जिने दिगयुक्त ज्जेथुं.

(पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—अहण्णं भंते ! कंडरीयस्स अण-

अनंगारस्य 'अहापवत्तेहिं' यथा प्रवृत्तैः=प्रासुकैरित्यर्थः 'ओसहभेसज्जेहिं' औषधभैषज्यैः 'जावतेइच्छं' यावत् चिकित्साम् 'आउट्टामि' आवर्तयामि=कारयामि, 'तं' तत्=तस्मात् कारणात् यूयं खलु हे भदन्त ! मम यानशालासु समवसरत=आगच्छत । ततः खलु स्थविरा भगवन्तः पुण्डरीकस्य एतमर्थं प्रतिश्रुयन्ति=एतद्वचनं स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य यावत्-उपसंपद्य=यानशालां समाश्रित्य विहरन्ति । ततः खलु पुण्डरीको राजा 'जहा मंडुए सेलगस्स जाव वलियसरीरे जाए' यथा मण्डूकः शौलकस्य यावद् वलिकशरीरो जातः =

कंडरीयस्स अणगारस्स अहापवत्तेहिं ओसहभेसज्जेहिं जाव तेइच्छं आउट्टामि-तं तुव्भे णं भंते ! मम जाणशालासु समोसरह-तएणं थेरा भगवंतो पुंडरीयस्स पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जाव उपसंपज्जित्ताणं विहरंति) देखकर जहाँ स्थविर भगवंत विराजमान थे-वहाँ पर वे आये वहाँ आकर उन्हीं ने स्थविर भगवंतों को वंदना एवं नमस्कार किया-। वंदना नमस्कार करके फिर उन्हीं ने उनसे इस प्रकार कहा हे भदन्त ! मैं कंडरीक अनंगार की यथा प्रवृत्त-प्रासुक-औषध, भैषज्यों द्वारा यावत् चिकित्सा करवाऊंगा-अतः हे भदन्त ! आपलोग मेरी यानशाला में यहाँ से विहार कर पधारें-वहीं ठहरें-। इस प्रकार पुंडरीक राजा की प्रार्थना को उन स्थविर भगवंतों ने स्वीकार कर लिया-और वहाँ से विहार कर वे पुंडरीक राजा की यानशाला में आकर ठहर गये । (तएणं पुंडरीए राया जहामंडुए सेलगस्स जाव वलियसरीरे जाए तएणं थेरा

गारस्स अहापवत्तेहिं ओसहभेसज्जेहिं जाव तेइच्छं आउट्टामि तं तुव्भेणं भंते मम जाणशालासु समोसरह-तएणं थेरा भगवंतो पुंडरीयस्स पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जाव उपसंपज्जित्ताणं विहरंति)

नेधने तेओ न्यां स्थविर भगवंत विराजमान हेता त्यां आओया. त्यां आवीने तेमणे स्थविर भगवतोने वंदन अने नमस्कार कर्यां. वंदन अने नमस्कार करीने तेमणे तेमने आ प्रभाणे विनंती करी के डे लहन्त । हुं कंडरीक अनंगारनी यथाप्रवृत्त-प्रासुक-औषध-लैषज्यो (दवाओ) वडे यावत् चिकित्सा (छेला) करवा भाशुं छुं. येठला भाटे डे लहन्त । तमे सौ अहीथी विहार करीने भारी यानशाणांमां आवो अने त्यांन रोकाओ आ प्रभाणे पुंडरीक राजनी विनंतीने ते स्थविर भगवतोओ स्वीकार करी दीधो अने त्यांथी विहार करीने तेओ पुंडरीक राजनी यानशाणांमां आवीन रोकाध गया. (तएणं पुंडरीए राया जहा मंडुए सेलगस्स जाव वलियसरीरे जाए तएणं थेरा

यथा मण्डूको राजा शौलकरय राजर्षेः प्रासुकैरौषधभैषज्यैश्चिकित्सामकारयत्, तथैव पुण्डरीकोऽपि कण्डरीकस्यानगारस्य यथा योग्यैरौषधभैषज्यैश्चिकित्सां कारयतिस्म यावन् कतिपयैर्दिनैः कण्डरीको वञ्चितशरीरः=निरामयो जातः। ततः खलु स्थविरा भगवन्तः पुण्डरीकं राजानं आपृच्छन्ति, आपृच्छ्य च वहिर्जनपदविहारं विहरन्ति। तत खलु स कण्डरीकः तस्मात् 'रोगायंकाओ' रोगातङ्काद् विपमुक्तः सन् तस्मिन् 'मनुष्णंसि' मनोज्ञे=रामणीये अशनवानखाद्यस्वाद्ये चतुर्विधे आहारे 'मुच्छिष्टे' मूच्छिष्टः=मूर्च्छां प्राप्तः=आसक्त इत्यर्थः, 'गिद्धे' गृद्धः=आकाङ्क्षावान्, 'गदिए' ग्रन्थितः=रसास्वादे निवद्धमानसः, 'अञ्जोववण्णे' भगवन्तो पौंडरीयं रायं पुच्छन्ति, पुच्छिन्ता वहिया जणवयविहारं विहरन्ति, तएणं से कंडरीए ताओ रोयायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुष्णंसि असणपाणखाइमसाइमंसि मुच्छिष्टे गिद्धे गदिए अञ्जोववण्णे णो संचाएइ पौंडरीयं रायं आपुच्छिन्ता वहियो अब्भुज्जएणं जणवयविहारं विहरित्तए) इसके बाद मंडूक ने जिस प्रकार शौलकराजर्षि की प्रासुक औषध, भैषज्यों द्वारा चिकित्सा करवाई थी उसी प्रकार पुंडरीक राजा ने भी कंडरीक अनगार की यथायोग्य औषध भैषज्यों द्वारा चिकित्सा करवाई—इस से वे बलितशरीर निरोग हो गये। इसके अनन्तर उन स्थविर भगवन्तो ने वहां से विहार करने के लिये पुंडरीक राजा से पूछा—बाद में वे वहां से बाहिर जनपदों में विहार कर गये। कंडरीक अनगार कि जो रोगातंकेसे निर्मुक्त हो चुके थे मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य, एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार में इतने अधिक आसक्त हो गये

भगवन्तो पौंडरीयं रायं पुच्छन्ति, पुच्छिन्ता वहिया जणवयविहारं विहरन्ति, तएणं से कंडरीए ताओ रोयायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुष्णंसि—असणपाणखाइमसाइमंसि मुच्छिष्टे गिद्धे गदिए अञ्जोववण्णे णो संचाएइ पौंडरीयं रायं आपुच्छिन्ता वहियो अब्भुज्जएणं जणवयविहारं विहरित्तए)

त्यारपछी भंडूके जेम शौलक राजर्षिनी प्रासुक, औषध, अने लैषज्ये वडे चिकित्सा करावडावी छती तेमअ पुंडरीक राजने पणु कंडरीक अनगारनी उचित औषध-लैषज्ये (इवाज्ये) वडे चिकित्सा करावडावी. तेथी तेज्ये निरोग-संभवा भनी गया. त्यारपछी ते स्थविर जगवतोअे त्यांथी विहार करवा भाटे पुंडरीक राजने पूछयुं. त्यारभाडे तेज्ये भडारना जनपदोभां विहार करी गया. रोगातंगोथी निर्मुक्त थछ गयेला कंडरीक अनगार ते मनोस, अशनं, पान, आद्य अने स्वाद्यरूप यार नततना आहारभां जेटला भधा आसक्त थछ गया—गृद्ध भनी गया, अथित-रसना आस्वादनभां निषद्ध मान-

अध्युपपन्नः=सर्वथा आसक्तः सन् नो शक्नोति पुण्डरीकं राजानमापृच्छय 'वहिया' वहिः 'अध्युज्जण' अभ्युद्यतेन=उग्रविहारेण खलु विहर्तुम्, किन्तु 'तथेव' तत्रैव=यानशालायामेव 'ओसण्णे' अवसन्नः,=शियिलसाधुसमाचारीवान् जातः। तत खलु स पुण्डरीको राजा 'इमीसे कहाए' अस्या, कथायाः=कण्डरीकोऽनगारोऽवसन्नो जातः' इति वृत्तान्तस्य लघ्वार्थः सन् स्नातः 'अंतेउरपरियालसंपरिवुडे' अन्तःपुरपरिवारसंपरिवृतः, यत्रैव कण्डरीकोऽनगारस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, कण्डरीकं त्रिः कृत्व आदक्षिण प्रदक्षिणं करोति, कृत्वा, वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा वमस्यित्वा एवमवादीत्-धन्योऽसि खलु त्वं हे देवानुमिय ! यतरत्वम् 'कयट्टे' कृतार्थः=विहितजीवनकृत्यः 'कयपुन्ने' कृतपुण्यः=विहितप्रव्रजितवेपः। पुनः सुलद्धे 'सुलद्धं=सुष्ठुतया प्राप्तं खलु हे देवानुमिय ! 'तव' त्वया 'माणु-ससए' मानुष्यकं=मनुष्यसम्बन्धि, 'जम्मजीविचफले' जन्मजीवितफलम्-जन्म-

-गृह्य वन गये ग्रथित-रसास्वाद में निवद्धमानसवाले हो गये, और अध्युपपन्न बन गये-अर्थात् सर्वथा आसक्त बन गये कि वहाँ से बाहिर उग्र विहार करने के लिये उनका मन ही नहीं हुआ-अतः उन्हें ने पुण्डरीक नरेश से विहार करने की कोई बात ही नहीं पूछी किन्तु (तथेव-ओसन्ने जाए) वहीं पर वे रहते २ शिथिल साधुसमाचारीवाले बन गये। (तएणं से पौंडरीए इमीसे कहाए लद्धे समणे पहाए अंते-उरपरियालसंपरिवुडे राया जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं त्तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-धन्नेसिणं तुमं देवाणुप्पिया ! कयत्थे कयपुन्ने कयलक्खणे सुलद्धेणं देवाणुप्पिया ! तव माणुसजन्मजीविचफले जेणं तुमं रज्जं च जाव अंतेउरं चावि छड्डित्ता

सवाया थध गया अने अध्युपपन्न भनी गया अेटले के तेओ अेकइम आसक्ता थध गया के त्यांथी भडार उअ विडार करवा भाटे पषु तेओ तैयर धया नडि. अेथी तेभजे पुंडरीक राब्बने विडार करवानी भाअतभां इधंअ पूछयुं नडि पषु (तथेव ओसन्ने जाए) त्यांअ रडेतां रडेतां तेओ शिथिल साधु सभाचारी थध गया अेटले के साधुओना आचारभां तेओ शिथिल थध गया

(तएणं से पौंडरीए इमीसे कहाए लद्धे समणे पहाए अंतेउरपरियाल-संपरिवुडे राया जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं त्तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-धन्नेसि णं तुमं देवणुप्पिया ! कयत्थे कयपुन्ने कयलक्खणे

માનવયોનો ઉચ્ચત્તિ; જવિતમ્=જીવનમ્=પ્રાણધારણમ્, તયોઃ ફલમ્=જન્મજીવિ-
તફલમ્=પ્રવ્રજ્યાગ્રહણમેત્ર મનુષ્યજન્મસારઃ, તદેવ સ્પષ્ટયતિ-યઃ સ્વલુ ત્વં રાજ્યં ચ
યાવદન્તઃ પુરં ચ છઙ્ઙહૃતા ' છદ્ધયિત્વા=ત્યક્ત્વા ' વિગોવહૃતા ' વિગોપ્ય=તિર-
સ્કૃત્ય યાવત્ પ્રવ્રજિતઃ અહં સ્વલુ અધન્યઃ અકૃતપુણ્યો રાજ્યે યાવત્ અન્તઃ
પુરે ચ માનુષ્યકેષુ ચ કામભોગેષુ મૂચ્છિતો યાવત્ અધ્યુપપન્નો નો શક્રોમિ
યાવત્ પ્રવ્રજિતુમ્ = રાજ્યેઽન્તઃ = પુરે માનુષ્યકેષુ ચ કામભોગેષુ નિમગ્ન-
માનસોઽહં ન શક્નોમિ પ્રવ્રજ્યાં ગ્રહીતુમ્ ઇતિ ભાવઃ । ' તં ' તત્ = તસ્માત્

વિગોવહૃતા જાવ પવ્વહૃષ) જવ પુંડરીક રાજા કો " કંડરીક અનગાર
અવસન્ન હો ગયે હૈ " યહ સમાચાર જ્ઞાત હુઆ-તો વે સ્નાન કર અપને
અન્તઃપુર પરિવાર કો સાથ લેકર જહાં કંડરીક અનગાર થે વહાં આયે
વહાં આકર ઉન્હોં ને કંડરીક અનગાર કો ત્રીન બાર આદક્ષિણ પ્રદક્ષિણ
કરકે વંદના કી નમસ્કાર ક્રિયા । વંદના નમસ્કાર કરકે ફિર ઉનસે વે
હસ પ્રકાર કહને લગે-હે દેવાનુપ્રિય ! તુમ ધન્ય હો, તુમ કૃતાર્થ હો, તુમ
કૃતલક્ષણ હો । હે દેવાનુપ્રિય ! તુમને મનુષ્યભવ સંબંધી જન્મ ઓર
જીવન કા ફલ અચ્છી તરહ પાલિયા હૈ । જો તુમ રાજ્ય યાવત્ અન્તઃપુર
કા પરિત્યાગ એવં તિરસ્કાર કર પ્રવ્રજિત હો ગયે હો । (અહ્ણણં અહ્ણણે
અક્રયપુન્ને રજ્જે જાવ અંતેરે ય માણુસ્સણુ ય કામભોગેસુ મુચ્છિણ
જાવ અજ્ઞોવવન્ને નો સંચાણમિ જાવ પવ્વહૃષ્ણ । તં ધન્નેસિ ણં તુમં
સુલહેણં દેશણુપ્પિયા ! તવ માણુસ્સણુ જન્મ જીવિયફલે જેણં તુમં રજ્જં ચ જાવ
અંતેરં ચાવિ છઙ્ઙહૃતા વિગોવહૃતા જાવ પવ્વહૃષ)

બ્યારે પુ'ડરીક રાજાને ક'ડરીક અનગારના અવસન્ન થઈ જવાના સમા-
ચારે મળ્યા ત્યારે તેઓ સ્નાન કરીને પોતાના રણુવાસના પરિવારને સાથે
લઈને બ્યાં ક'ડરીક અનગાર હતા ત્યાં આબ્યા. ત્યાં આવીને તેમણે ક'ડરીક
અનગારને ત્રણ વખત આદક્ષિણ પ્રદક્ષિણ કરીને વંદન તેમજ નમસ્કાર
કર્યા. વંદન અને નમસ્કાર કરીને તેઓ તેમને આ પ્રમાણે કહેવા લાગ્યા કે
હે દેવાનુપ્રિય ! તમે ધન્ય છો, કૃતાર્થ છો, કૃત-લક્ષણ છો. હે દેવાનુપ્રિય !
મનુષ્ય ભવના જન્મ અને જીવનના ફળને સારી પેઠે મેળવી લીધું છે. કેમકે
તમે ખરેખર રાજ્ય યાવત્ રણુવાસને ત્યજીને તેને તિરસ્કૃત કરીને પ્રવ્રજિત
થઈ ગયા છો.

(અહ્ણણં અહ્ણણે અક્રયપુન્ને રજ્જે જાવ અંતેરે ય માણુસ્સણુ ય કામ-
ભોગેસુ મુચ્છિણ જાવ અજ્ઞોવવન્ને નો સંચાણમિ જાવ પવ્વહૃષ્ણ । તં ધન્નેસિ ણં

कारणात् खलु व्रवीमि यत् धन्योऽसि त्वं हे देवानुप्रिय ! ' जाव सुलब्धं जन्म-
जीवितफलम् , ततः खलु स कण्डरीकोऽनगारः पुण्डरीकस्य एतमर्थं=विहारभि-
प्रायकमर्थं , नो आद्रियने यावत् तूष्णीकः संतिष्ठते मौनमवलम्ब्य तिष्ठति । ततः
खलु कण्डरीकः पुण्डरीकेण द्वितीयमपि तृतीयमपि=द्वित्रिवारम् , एव=पूर्वोक्त-
प्रकारेण , उक्तः सन् ' अक्रामए ' अक्रामकः=कामनारहितः ' अवस्सवसे ' अप-

देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले तएणं से कंडरीए अणगारे पुंडरीयस्स
एयमट्ठ णो आहाइ जाव संचिट्ठइ, तएणं कंडरीए पौंडरीएणं दोच्चंपि
तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे अक्रामए अवस्सवसे लज्जाए गारवेण य पौंड-
रीयं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता थेरेहिं सद्धिं वहिया जणवयविहारं विहरइ)
मैं अधन्य हूँ अकृतपुण्य हूँ । जो राज्य में यावत् अन्तःपुर में तथा मनुष्य
संबंधी कामभोगोंमें मूर्च्छित यावत् अध्युपपन्न बना हुआ हूँ । इसीलिये
प्रव्रज्या ग्रहण करने में असमर्थ हो रहा हूँ । इसी कारण से मैं यह कह
रहा हूँ कि तुम धन्य हो, हे देवानुप्रिय ! तुमने ही जन्म और जीवन
का फल जो प्रव्रज्या का ग्रहण करना है—वह अच्छी तरह पा लिया है ।
पुंडरीक राजा की विहार करने के अभिप्रायवाली इस बात को सुनकर
कंडरीक अनगार ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया—उसे आदर की दृष्टि
से नहीं देखा—किन्तु वे उसे सुनकर भी चुपचाप बैठ रहे । कंडरीक
अनगार की इस स्थिति को देखकर पुंडरीक ने दूसरी बार और तीसरी

तुमं देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले तएणं से कंडरीए अणगारे पुंडरीयस्स
एयमट्ठ णो आहाइ, जाव संचिट्ठइ, तएणं कंडरीए पौंडरीएणं दोच्चंपि तच्चंपि
एवंवुत्ते समाणे अक्रामए अवस्सवसे लज्जाए गारवेण य पौंडरीयं रायं आपुच्छइ,
आपुच्छित्ता थेरेहिं सद्धिं वहिया जणवयविहारं विहरइ)

हुं तो अधन्य अने अकृतपुण्य छुं केभके हुं तो राअ्यमां यावत्
रख्खासमां तेमअ मनुष्येअवना कामेअगेमां मूर्च्छित यावत् अध्युपपन्न अनी
रह्यो छुं, अेटला माटे अ प्रवज्या अडणु करवामां असमर्थ अथ रह्यो छुं.
अेथी अ हुं आ कही रह्यो छुं—के तमे अरेअर धन्य छे. हे देवानुप्रिय ।
तमे अ अन्म अने अवननुं अण के अे प्रवज्या अडणु करवा अेय छे—ते सारी
रीते मेणवी लीधु छे. तेअे त्यांथी विहार करी अथ ते आशयथी कडेत्ता ते
पुंडरीकना वयनेा सांअणीने कंडरीक अनगारे तेनी कशी अ दरकार करी नहिं
ते वातने तेमअे सन्माननी दृष्टिअे रवीकारी नहिं. आ अधु सांअणीने यअु
तेअे त्यांअ मूंगा अधने गेसीअ रह्या. कंडरीक अनगारनी आ स्थिति अेधने

स्ववशः=अपगतस्वातन्त्र्यः सन् ' लज्जाए ' लज्जया, ' गारवेण ' गौरवेण=साधुत्वगौरवेण च पुण्डरीकं राजानमापृच्छति, आपृच्छय स्थविरैः सार्द्धं वहिर्जनपदविहारं विहरति ॥ सू० ३ ॥

मूलम्--तएणं से कंडरीए थेरोहिं सद्धिं किंचिकालं उगं उग्गेणं विहरइ । तओ पच्छा समणत्तणपरितंते समणत्तण-णिट्ठिणणे समणत्तणणिट्ठिभच्छिए समणगुणमुक्कजोगी, थेराणं अंतियाओ सणियं२ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्किता, जेणेव पुंडरिणिणी णयरी जेणेव पुंडरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता, असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयांसि णिसीयइ णिसीइत्ता, ओह्यमणसंकप्पे जाव झियायमाणे संचिट्ठइ । तएणं तस्स पोंडरीयस्स अम्म-धाई जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता कंडरीयं अणगारं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्ट-यांसि ओह्यमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासिता जेणेव पोंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पोंडरीयं रायं एवं-वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! तव पिउभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणियाए असोगवर-

वार जब उनसे पूर्वोक्त प्रकारसे कहा-तब उन्होंने ने नहीं इच्छा होने पर भी स्ववशानाका अभाव होनेके कारण लज्जावश होकर साधुत्रयके गौरवके ख्याल से-पुंडरीक राजा से विहार करनेकी बात पूछी-पूछकर फिर वे वहां से स्थविरोंके साथ बाहिरके जनपदों में विहार कर गये ॥सू० ३ ॥

पुंडरीके भील अने त्रील वार पणु न्यारे पडेक्षां सुत्रम न वात कही त्यारे तेमणे पोतानी छिछा नडि डोवा छतांमे दाचार थधने, ' दन्निजत थधने, साधुत्वना गौरवने लक्ष्यमां राभीने पुंडरीक राजने विहार करवानी वात पूछी. पूछीने तेमो त्यांथी स्थविरोनी साथे अडारना जनपदोमां विहार करी गया. सू ३

पायवस्स अहे पुढविसिलावट्टे ओहयमणसंकप्पे जाव झिया-
यइ । तएणं पोंडरीए अम्मधाईए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म
तहेव संभंते समाणे उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता, अतेउरपरियाल-
संपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जाव कंडरीयं तिक्खुत्तो
आयाहिणं पयाहिणं करेइ करित्ता, एवं वयासी-धणोसि णं
तुमं देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइए । अहणं अधणोइ जाव
नो पव्वइत्तए । तं धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव
जीवियफले । तएणं कंडरीए पुंडरीएणं एवं बुत्ते समाणे
तुसिणीए संचिट्ठइ, दोच्चंपि तच्चंपि जाव संचिट्ठइ । तएणं
पोंडरीए कंडरीयं एवं वयासी-अट्टो भंते ! भोगेहिं ? हंता
अट्टो तएणं से पोण्डरीए राया कोडुंविद्यपुरिसे सदावेइ,
सदावित्ता, एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! कंड-
रीयस्स महत्थं जाव रायाभिसेअं उवट्टवेह जाव रायाभिसे-
एणं अभिसिंचइ ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स कण्डरीकः स्थविरैः सार्धं
किञ्चित् कालम् ‘ उगं उगोणं ’ उग्रोग्रेण-अत्युग्रेण विहारेण विहरति । ततः
पश्चात् ‘ समणत्तणपरितंते ’ श्रमणत्तपरितान्तः=श्रमणधर्मपरिपालने खिन्नः पुनः

‘ तएणं से कंडरीए थेरेहिं सद्धिं ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कंडरीए) वे कंडरीक (थेरेहिं
सद्धिं) स्थविरों के साथ (किञ्चिकालं) कुछ काल पर्यन्त (उगं उगोणं)
अत्युग्रविहार करने में (विहरइ) लग गये (तओपच्छा समणत्तण

‘ तएणं से कंडरीए थेरेहिं सद्धिं ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपथी (से कंडरीए) ते कंडरीक (थेरेहिं सद्धिं)
स्थविराणी साथे (किञ्चिकालं) थोडा वधत सुधी ते (उगंउगोणं) अतीव
उग्र विहार करनेमें (विहरइ) प्रवृत्त तथा (तओ पच्छा समणत्तण परितंते)

‘समणत्तणनिव्विण्णे’ श्रमणत्वनिर्विण्णः=साधुभावे औदासीन्यं प्राप्तः ‘समणत्तणणिब्भच्छिण्ण’ श्रमणत्वनिर्मत्तिसतः=श्रमणत्वं निर्मत्तिसतं येन सः=साधुभावानादरपरायणः, अतएव ‘समणगुणमुक्कजोगी’ श्रमणगुणमुक्तयोगी=श्रमणगुणेभ्यो-मुक्तः=रहितो योगः योगः=मनोवाक्यारूपः, सोऽस्यास्तीतित्यक्तश्रमणगुणइत्यर्थः, स्थविराणामन्तिकात् शनैः शनैः प्रत्यवष्वस्कते=पश्चादागच्छति, प्रत्यवष्वस्वय, यत्रैव पुण्डरीकिणी नगरी यत्रैव पुण्डरीकस्य भवनं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अशोकवनिकायाः=अशोकवाटिकायाः अशोकवरपादपस्य अधः पृथ्वीशिलापट्टके निषीदति=उपविशति, निषद्य, ‘ओहयमणसंकप्पे’ अवहतमनः संकल्पः=अवहतो-मनः संकल्पः=मनोव्यापारो यस्य सः=अपागतमानसिकव्यापारः, ‘जाव झियाय-

परितंते) बाद में वे श्रमणधर्म के परिपालन करने में खिन्न चित्त बन गये (समणत्तणणिव्विण्णे समणत्तणणिब्भच्छिण्ण समणगुणमुक्कजोगी थेराणं अंतियाओ सणियं २ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव पुण्डरिणिणी णयरी जेणेव पुण्डरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ) साधुभाव के निर्वाह करने में उदासीनता को प्राप्त हो गये—साधुभाव के प्रति उनमें अनादर भाव आ गया अत एव वे श्रमण गुणों से मुक्त योगवाले बन गये—श्रमण के गुणों का उन्होंने परित्याग कर दिया। इस तरह वे धीरे २ स्थविरों के पास से खिसककर एक दिन जहाँ पुण्डरीकिणी नगरी थी और उसमें भी जहाँ पुण्डरीक राजा का भवन था वहाँ पर आ गये— (उवागच्छत्ता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिला पट्टयंसि णिसीयइ, णिसीइत्ता ओहयमणसंकप्पे जाव झियायमाणे

त्यारपथी तेओ श्रमणु धर्मा पात्तमां भिन्नचित्त-उदास णनी गया.

(समणत्तणणिव्विण्णे समणत्तणणिब्भच्छिण्ण समणगुणमुक्कजोगी थेराणं अंतियाओ सणियं २ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव पुण्डरिणिणी णयरी जेणेव पुण्डरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ)

तेओ साधुभावने नभाववामां उदास णनी गया. साधुभाव प्रथे तेभ-नामां अनादर भाव उत्पन्न थई गये, ओथी तेओ श्रमणु-शुबुथी मुक्त येगवाणा णनी गया ओटवे के श्रमणुना शुबुने तेमणे त्यल दीधा. आ प्रभाणे तेओ धीमे धीमे स्थविरानी पासैथी शुपय्याप नीकणीने ओकदिवस न्यां पुंडरिक्किणी नगरी इती अने तेमां पणु न्यां पुंडरीक रात्तुं लवन इत्तुं, त्यां आवी गया.

(उवागच्छत्ता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्ट-यंसि, णिसीयइ, णिसीइत्ता ओहयमणसंकप्पे जाव झियायमाणे संचिट्टइ, तएणं

माणे ' यावद्ध्यायन्=आर्त्तध्यानं कुर्वन् संतिष्ठते । ततः खलु तस्य पुण्डरीकस्य राज्ञोऽम्बधानी यत्रैव अशोकवनिका तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य कण्डरीकमन-
गारम् अशोकवरपादपस्य अधः पृथिवीशिलापट्टकेऽपहतमनःसंकल्पं यावद् ध्यायन्तं पश्यति, दृष्ट्वा, यत्रैव पुण्डरीको राजा तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पुण्डरीकं राजानमेवमवादीत्-एवं खलु देवानुप्रिय ! तव ' पिडभाउए ' प्रियभ्राता कण्ड-
रीकोऽनगारोऽशोकवनिकाया अशोकवरपादपस्य अधः पृथ्वीशिलापट्टके अवहतमनः संकल्पो यावद्ध्यायति । ततः खलु पुण्डरीकः अम्बधान्या एतमर्थं=कण्डरीकस्य

संचिद्वह, तएणं तस्स पोंडरीयस्स अम्मधाई जेणेव असोगवणिग्या तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं असोगवरपायस्स अहे पुढ-
विसिलावट्टयंसि ओह्यमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव पोंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोंडरीयं रायं एवं वयासी) वहां आकर वे अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे पृथिवीशिला पट्टक पर बैठ गये । बैठकर अपहत मानसिक व्यापारवाले होकर वे वहां आर्त्तध्यान करने लगे । इतने में पुंडरीक राजा की अम्ब-
धानी-धायमाना उस अशोक वाटिका में आई-वहां आकर उसने कंडरीक अनगार को अशोक पादप के नीचे पृथिवीशिला पट्टक पर चिन्तामग्न देखा-देखकर वह जहां पुंडरीक राजा थे वहां आई-वहां आकर उसने पुंडरीक राजा से इस प्रकार कहा- (एवं खलु देवानुप्रिय्या ! तव पिडभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणिग्याए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टे ओह्यमणसंकप्पे जाव झियायइ) हे देवानुप्रिय !

तस्स पोंडरीयस्स अम्मधाई जेणेव असोगवणिग्या तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टयंसि ओह्यमणसंक-
प्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव पोंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोंडरीयं रायं एवं वयासी)

त्यां आधीने तेज्जे अशोक वाटिकाभां अशोक वृक्षनी नीचे पृथिविशिला पट्टके उपर भेसी गया. त्यां भेसीने तेज्जे अपहत मानसिक व्यापारवाणा (उदात्त) यथने आर्त्तध्यान करवा लाग्या जेटेलाभां पुंडरीक राजानी अम्ब-
धानी-धायमाता-अशोक वाटिकाभां आवी. त्यां आवीने तेज्जे कंडरीक अनगारने अशोक वृक्षनी नीचे पृथिविशिला उपर आर्त्तध्यान करता जेया. जेधने ते ज्ज्यां पुंडरीक राजा उता त्यां आधीने तेज्जे पुंडरीक राजाने आ प्रभाण्णे कहुं के (एवं खलु देवानुप्रिय्या ! तव पिडभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणि-
ग्याए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टे ओह्यमणसंकप्पे जाव झियायइ)

अशोकवनिकामध्यगताशोकवृक्षाधः स्थितस्यातिध्यानरूपमर्थं श्रुत्वा निश्चयः=हृद्य-
वधार्य 'तद्देव' तथैव=यथास्थितस्तथैव 'संभंते समाणे' सम्भ्रान्तः सन्-
'कथं पुनरसौ समागत' इति शङ्कितः सन् उत्थाय उत्तिष्ठति=इदिति उत्तिष्ठती-
त्यर्थः, उत्थाय. अन्तः पुरपरिवारसंपरिवृतः यत्रैव अशोकवनिका यत्रैव कण्डरीको-
ऽनगरस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य 'तिक्खुत्तो' त्रि कृत्वः=वारत्रयम् आद-
क्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा एवमवादीत्-'धणोसि णं तुमं देवाणुप्पिया । जाव
पव्वइए' धन्योऽसि खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! यावत् प्रज्जितः । अहं खलु
'अधणो' ३ अधन्यः ३ यावत् नो शक्कोमि प्रज्जितुम् । 'तं' तस्मात्कारणात्
'धन्नेसि' धन्योऽसि खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! 'जाव जीवियफले' यावत्
जीवितफलम्=त्वया जन्मजीवितफलं सुलब्धम् इति भावः । ततः खलु कण्डरीकेण
एवं=पशंसापरवचनेरुक्तः सन् तूष्णीकः संतिष्ठते, 'दोच्चंपि तच्चंति' द्वितीय-
मपि तृतीयमपि चारं पूर्वप्रकारेण उक्तः सन् 'जाव संचिद्धइ' यावत् संतिष्ठते=
मौनमवलम्ब्य स्थित इति भावः । ततः खलु पुण्डरीकः कण्डरीकमेवमवादीत्-अट्टो-

सुनिये-तुम्हारे प्रिय भाई कंडरीक अनगर अशोक वाटिका में अशोक
वृक्षके नीचे पृथिवीशिलापट्टक पर अपहतमनःसंकल्प होकर यावत् चिन्ता
मग्न बैठे हुए हैं (तएणं पोंडरीए अम्मघाईए एयमइं सोच्चा णिसम्म
तद्देव संभंते समाणे उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता अंतेउरपरियालसपरिबुडे
जेणेव असोगवणिया जाव कंडरीयं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ,
करित्ता एवं वयासी धणोसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइए
अहणणं अधणो ३ जाव नो पव्वइत्तए तं धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया !
जाव जीवियफले-तएणं कंडरीए पुण्डरीएणं एवं खुत्ते समाणे तुसिणीए
संचिद्धइ, दोच्चंपि तच्चंपि जाव संचिद्धइ, तएणं पोंडरीए कंडरीयं एवं
वयासी अट्टो भंते ! भोगेहि ! हंता अट्टो ! तएणं से पोंडरीए राया कोडं-

हे देवानुप्रिय ! सांलणे, तमारा प्रिय लार्ड कंडरीक अनगर अशोक
वाटिकामें अशोक वृक्षनी नीचे पृथिवीशिला पट्टक उपर अपहतमन संकल्प
थधने यावत् चिन्तामग्न थधने जेसी रह्या छे.

(तएणं पोंडरीए अम्मघाईए एयमइं सोच्चा णिसम्म तद्देव संभंते समाणे
उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता अंतेउरपरियालसपरिबुडे जेणेव असोगवणिया जाव कंड-
रीयं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता एवं वयासी धणोसि णं तुमं
देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइए अहणणं अधणो २ जाव नो पव्वइत्तए तं धन्नेसि
तुमं देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले तएणं कंडरीए पुण्डरीएणं एवं खुत्ते समाणे
तुसिणीए संचिद्धइ, दोच्चंवि, तच्चंवि जाव संचिद्धइ, तएणं पोंडरीए कंडरीयं एवं
वयासी, अट्टो भंते ! भोगेहि ! हंता अट्टो ! तएणं से पोंडरीए राया कोडंवि

वियपुरिसे सद्वावेह, सद्वावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! कंडरीयस्स महत्थं जाव रायाभिसेअं उवट्टवेह, जाव रायाभिसेएणं अभिसिचइ) इस प्रकार अम्वाधाय के सुख से इस बात को सुनकर और उसे चित्त में जमाकर जैसे बैठे हुए थे उसी तरह संभ्रान्त होते हुए-ये क्यों आये है-इस प्रकार शंकित चित्त होते हुए-उत्थानशक्ति से उठे बहुत जल्दी सुनते ही प्रमाण-उठे और उठकर अन्तःपुर के परिवार को साथ लेकर जहां अशोक बनिका थी-वहां पर आये-वहां आकर कंडरीक अनगार के पास पहुँचे-वहां पहुँच कर उन्होंने ने उन्हें तीन चार आदक्षिण प्रदक्षिण किया बाद में वे कहने लगे-हे देवानुप्रिय ! तुम्हें धन्यवाद है-जो तुम राज्य एवं अन्तःपुर का परित्याग कर प्रव्रजित हो गये हो इत्यादि जिस प्रकार पहिले उनसे कहा था इसी प्रकार अब भी कहा मैं अधन्य हूँ-३-जो यावत् दीक्षित होने के लिये शक्तिशाली नहीं हो रहा हूँ। इसलिये हे देवानुप्रिय ! आपके लिये धन्यवाद है-आपने जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है। इस तरह प्रशंसा परक वचनों से पुंडरीक राजा द्वारा कहे गये वे कंडरीक अनगार कुछ भी नहीं बोले-किन्तु चुपचाप ही बैठे रहे-। जब पुंडरीक राजा ने उनकी इस प्रकार की स्थिति देखी-तब दुबारा तिबारा भी उन्होंने ने

पुरिसे सद्वावेह, सद्वावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! कंडरीयस्स महत्थं जाव रायाभिसेअं उवट्टवेह, जाव रायाभिसेएणं अभिसिचइ)

आ प्रभाणु अभाधायना भुपथी आ वात सांलणीने अने तेने मनमां धारणु करीने वेवी स्थितिमां तेओ भेडा इता तेवी अ स्थितिमां स्तपध थधने " तेओ केम आव्या छे " आ प्रभाणु शंकायुक्त थतां-उत्थान शक्ति वडे तेओ लीला थथा अने लीला थधने जल्दी रणुवासना परिवारने साथे लधने न्यां अशोक वाटिका इती त्यां अ व्या त्यां आवीने कंडरीक अनगारनी पासे पडेण्या. त्यां पडेण्यीने तेमणु तेमने त्रणुवार आदक्षिणु प्रदक्षिणु कर्या भाद कडेवा लाग्या के छे देवानुप्रिय ! तमने णरेभर धन्यवाद धरे छे के ओ तमे राज्य अने रणुवासनेा त्याग करीने प्रनल्लत थर्थ गया छे, वगेरे नेम पडेलां कहुं इतुं तेमअ ते वपते पणु कहुं. हुं तो अधन्य छुं-उ-वे यावत् दीक्षा अक्षणु करवानुं पणु सामर्थ्य धरावतो नथी. ओथी छे देवानुप्रिय ! तमने धन्य छे तमोओ णरेभर पेतानां जन्म अने लवनतुं क्षण सारी रीते प्राप्त करी वीधुं छे. आ प्रभाणु प्रशंसाजनक वचनोथी पुंडरीक राजा वडे समोहित करायेला ते कंडरीक अनगार क'धपणु भोल्या नहि, तेओ भूणा थधने भेसीअ

भंते ' भोगेहि ' अर्धो हे भदन्त ! भोगैः ?=किं भोगैः प्रयोजनमस्ति ? इति, कण्डरीकः प्राह—' हंता ! अहो '=हन्त । अर्थः=भोगमुपभोक्तुमानवोऽस्मीति-भाः । ततः खलु=कण्डरीकाभिप्रायज्ञानानन्तरमित्यर्थः, स पुण्डरीको राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति=आह्वयति, शब्दयित्वा, एवमवदत् - क्षिपयेव भो देवानुप्रियाः ! कण्डरीकस्य महार्थम्=अत्यर्थम् ' जाव रायाभिसेयं ' यावत् राजा-भिषेकम् ' उवद्वेइ ' उपस्थापयत्=परिकल्पयत्, ' जाव रायाभिसेएण अभिसि-चइ ' यावत् राज्याभिषेकेण अभिषिञ्चति स पुण्डरीको राजा कण्डरीकं राजपदे स्थापयति ॥ सू० ४ ॥

मूलम्—तएणं पुंडरीए सयमेव पंचमुट्टियं लोयं करेइ,

उनसे ऐसा ही कहा परन्तु फिर भी उन्होंने ने कुछ नहीं ध्यान दिया केवल मौन धारण कर ही बैठे रहे—तब पुनः पुंडरीकने उन कंडरीक अनगार से इस प्रकार कहा—हे भदन्त ! क्या आप को भोगों से तात्पर्य है ? तब कंडरीक ने कहा—हां—मेरा मन भोगों को उपभोग करने के लिये हो रहा है । इस तरह कंडरीक का अभिप्राय जानने के बाद पुंडरीक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे ऐसा कहा—भो देवानुप्रियो तुम लोग कंडरीक के लिये राज्याभिषेक योग्य सामग्री एकत्रित कर लेनाओ पुंडरीक राजा की इस आज्ञा के अनुसार, उनलोगों ने वैसा ही किया—जब राज्याभिषेक सामग्री उपस्थित हो चुकी—तब पुंडरीकने कंडरीक का राज्याभिषेक कर दिया—कंडरीक को राजपद में स्थापित कर दिया ॥ सूत्र ४ ॥

२६५. पुंडरीक राज्ञे तेमनी आवी स्थिति जेधने जील अने त्रील वणत पणु आ प्रभाणु ७ कहुं. पणु तेमणु तेनी कंठं दरकर करी नडि तेओ इक्षत भूंगा थधने जेसी ७ २६५. त्यारे करी पुंडरीके ते कंडरीक अनगारने आ प्रभाणु कहुं के डे लगवन् ! तमने शुं डल लोग उपभोगोनी धञ्छि छे ? त्यारे कंडरीके कहुं के डे, थरेपर भाइ मन लोग उपभोगमां प्रकृत थवा धनछे छे. आ प्रभाणु कंडरीकनी धञ्छा नालीने पुंडरीक राज्ञे कौटुम्बिक पुरुषोने जेलाव्या अने जेलावीने तेमने आ प्रभाणु कहुं के डे देवानुप्रियो ! तजे दोडे कंडरीक भाटे—राज्याभिषेक योग्य सामग्री लेगी करे. पुंडरीक राज्ञे आ प्रभाणु आज्ञा सांलणीने से दोडेअ तेमअ कहुं. न्यारे राज्या-भिषेकनी अधी वस्तुओ अेकत्रित थध गध त्यारे पुंडरीके कंडरीकने राज्याभिषेक करी जेधो. अेटले के कंडरीकने राज्यासने जेसाडी हीधो. ॥ सूत्र ४ ॥

करिन्ता, सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जिन्ता
कंडरीयस्स संतियं आचारभंडयं गेण्हइ, गेण्हिन्ता, इमं
एयारुवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ-कप्पइ मे थेरे वंदित्ता
णमंसित्ता थेराणं अंतिए चाउज्जामं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं
तओ पच्छा आहारं आहरित्तए त्तिकट्टु, इमं च एयारुवं
अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता णं पोंडरिगिणीए पडिणिक्खमइ,
पडिणिक्खमित्ता, पुठ्वाणुपुठ्ठिचरमाणे गामाणुगामं दूइज्ज-
माणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव पहारेत्थ गमणाए॥सू०५॥

टीका—‘तएणं पुंडरीए’ इत्यादि । ततः खलु पुण्डरीकः स्वयमेव पञ्च
मुष्टिकं लोचं करोति, तथा स्वयमेव ‘चाउज्जामं’ चातुर्यामं=चतुर्महाव्रतलक्षणं
धर्मं प्रतिपद्यते, प्रतिपद्य, ‘कंडरीयस्स संतियं’ कण्डरीकस्य सत्कम्=कण्डरीक
सम्बन्धि इत्यर्थः, ‘आचारभंडयं’ आचारभाण्डकं आचाराय=साधोः पञ्चविधा-
चारपरिपालनाय यद्भाण्डकं=त्रयपात्रसदोक्तमुखवस्त्रिकारजोहरणादिरूपम् तद्

‘तएणं पुंडरीए सयमेव पंचमुष्टियं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (पुंडरीए) पुंडरीक ने (सयमेव)
अपने आप (पंचमुष्टियं लोचं करेइ) अपना पंचमुष्टिक लोचं क्रिया-
(करिन्ता सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जिन्ता कंडरीयस्स
संतियं आचारभंडयं गेण्हइ) और लोचं करके स्वयं ही उन्हींने-चातु
र्याम-चतुर्महाव्रत रूप धर्म को धारण कर लिया। एवं कंडरीक के
अनगार अवस्था संबन्धी आचार भाण्डक को-वस्त्र, पात्र, सदोरक मुख-
वस्त्रिका, रजोहरण आदिरूप साधु चिह्नों को-ले लिया। (गेण्हित्ता
इमं एयारुवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, कप्पइ मे थेरे वंदित्ता णमंसित्ता

‘तएणं पुंडरीए सयमेव पंचमुष्टियं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (पुंडरीए) पुंडरीके (सयमेव) पोतानी
आते अ (पंचमुष्टियं लोचं करेइ) पोतानुं पंचमुष्टिकं लुचनं कथुं ।

(करिन्ता सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जिन्ता कंडरीयस्स
संतियं आचारभंडयं गेण्हइ)

अने लुचन करीने आते अ तेमणु चातुर्याम-चतुर्महाव्रत रूपधर्मने धारण
करी दीधा. अने कंडरीकनी अनगार अवस्था संबन्धी आचार लांडके-वस्त्र,
पात्र, सदोरक मुखवस्त्रिका, रजोहरण वगेरे साधु चिह्नोंने लक्ष् दीधां.

विषयासक्तेरतिजागरणया 'अहभोयणप्पसंगेण' अतिभोजनमसङ्गेन=प्रमाणाधिक-
भोजनेन स आहारो नो सम्यक् परिणमति=यथावदाहारस्य परिपाको न भवति ।
ततः खलु तस्य कण्ठीकस्य राज्ञः 'तंसि' आहारंसि 'तस्मिन्' आहारे 'अप-
रिणममाणंसि' अपरिणमति=परिपाकमगच्छति सति 'पुव्वरत्तावरत्तकालसम-
यंसि' पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=रात्रोर्मध्यभागे 'सरीरंसि' शरीरे वेदना प्रादु-
र्भूता, कोट्टशीवेदना ? उज्ज्वला=सुखलेशरहिता, विपुला=विशाला-सर्वशरीरव्याप्ता
'पगाढा' प्रगाढा 'जाव दुरहियासा' यावद् दुरधिसह्या=सोढुमशक्या, पुनः
स कण्ठीको राजा 'पित्तज्जरपरिगयसरीरे' पित्तज्वर परिगतशरीरः=पित्तज्वरेण
परिगतं=व्याप्तं शरीरं यस्य सः=पित्तज्वरपरिव्याप्तशरीरः 'दाहवक्कंतीए' दाह-
व्युत्क्रान्तिकः=दाहज्वरज्वालासमाक्रान्तः चापि विहरति=आस्ते । ततः खलु स
कण्ठीको राजा राज्ये च राष्ट्रे च अन्तःपुरे च 'जाव अज्जोवन्नने' यावत्

प्रसंग से कृत आहार का परिपाक ठीक २ नहीं होता रहा—(तएणं
तस्स कण्ठीयस्स रण्णो तंसि आहारंसि अपरिणममाणंसि पुव्वरत्तावर-
त्तकालसमयंसि सरीरंसि वेद्यणा पाउब्भुया उज्जला विवला पगाढा
जाव दुरहियासा पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरइ)
इसलिये एक दिन की बात है कि उन कण्ठीक राजा के जब वह कृत
सरस गरिष्ठ आहार अच्छी तरह नहीं पचा तब उनके शरीर में रात्रि
के मध्यभागमें वेदना प्रादुर्भूत हुई । जिस वजह से वह वेदना सुख
के लेश से वञ्चित थी उनके समस्त शरीर भर में व्याप्त हो रही थी
बहुत अधिक थी—यावत् वह उन्हें दुरधिसह्य हो रही थी । पित्तज्वर
से व्याप्त है शरीर जिन का ऐसे वे कण्ठीक राजा दाहज्वर की ज्वाला

पणु पधारे लोअन प्रसंगोभां करेवा आहारतुं पायन अराअर थतुं नडेत्तुं.

-(तएणं तस्स कण्ठीयस्स रण्णो तंसि आहारंसि अपरिणममाणंसि पुव्व-
रत्तावरत्तकालसमयंसि सरीरंसि वेद्यणा पाउब्भुया उज्जला विवला पगाढा जाव
दुरहियासा पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरइ)

अथी अेक दिवसनी वात छे के ते कण्ठीक राजने न्यारे लोअन रूपमां
दीघेवा ते सरस अने गरिष्ठ आहारतुं सारी रीते पायन थयु नडि त्यादे
रात्रिना मध्य लागयां तेमना शरीरमां वेदना थवा मांडी, तेथी तेअो भूअ अ
दुःखी थया. आ वेदनामां मात्र हाअ अ थतुं डतुं, ते वेदना तेमना संपूणुं
शरीरमां व्याप्त थथ रळी डती, प्रमाणुमां ते अडु अ पधारे डती. यावत् ते
तेमना माटे दुरधिसह्य (असह्य) थथ पडी डती पित्तज्वरथी व्याप्त थयेवा
शरीरवाणा ते कण्ठीक राज दाहज्वरनी न्याणाअथी सगगी डेथा.

अध्युपपन्नः—मूर्च्छितो शूद्रः ग्रथितः अध्युपपन्नः राज्यादिषु सर्वथासक्त इत्यर्थः, 'अट्टदुहृद्वसट्टे' आर्तदुःखार्तवशार्तः=तत्र=आर्तः=मनसा दुःखितः, दुःखार्तः=देहदुःखयुक्तः, वशार्तः=राज्यराष्ट्रान्तः पुराद्यासक्तेन्द्रियवशेन विषयसुखवियोग-सम्भाषनया पीडितः=आर्तध्यानोपगत इत्यर्थः । 'अकामए' अकामकः=अनिच्छकः=मरणवाञ्छारहितः, 'अवस्सवसे' अपस्ववशः=अपगतस्वातन्त्र्यः पराधीनः सन् कालमासे कालं कृत्वा 'अहे सत्तमाए' अधः सप्तम्यां पृथिव्याम् तमस्तमः प्रमाण्ये सप्तमे नरके 'उक्कोसकालद्धियंसि' उत्कृष्टकालस्थितिके नरके

से भी युक्त हो गये । (तएणं से कंडरीए राया रज्जे य रट्टे य अंतेउरे य जाव अज्जोववन्ने अट्टदुहृद्वसट्टे अकामए अवस्सवसे कालमासेकालं किच्चा अहे सत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालद्धियंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववण्णे) इस तरह दुःखित बने हुए वे कंडरीक राजा राज्य राष्ट्र, एवं अन्तपुर में अध्युपपन्न हो गये इस प्रकार राज्याधिकों में सर्वथा आसक्तिभाव से बंधे हुए वे राजा मन से दुःखित होकर, देह के दुःख से एकक्षण अर्तध्यान में पड़ गये । अन्त में वे, ये नहीं चाहते थे कि मेरी मृत्यु हो जावे-तौ भी सांसारिक स्थिति से बन्धे हुए होने के कारण या वेदनाओं से पीडित होने के कारण वे स्ववश नहीं थे परतंत्र थे, इसलिये काल अवसरकाल करके धर कर नीचे तमस्तम प्रभा नाम के सातवें नरक में कि जो उत्कृष्ट काल स्थिति प्रमाण है—अर्थात् ३३ सा-

(तएणं से कंडरीए राया रज्जे य रट्टे य अंतेउरे य जाव अज्जोववन्ने अट्टदुहृद्वसट्टे अकामए अवस्सवसे कालमासे कालं किच्चा अहे सत्तमाए पुढवीए, अक्कोसकालद्धियंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववण्णे)

आ प्रमाणे दुःमित्थेला ते कंडरीक राज्ञे राज्ये, राष्ट्रं अने रण्ये वासनां अध्युपपन्नं थर्थं गथा अट्टे के वधारे पडता आसकत्ता थर्थं गथा. आ प्रमाणे राज्ञे वगेरेमां संपूर्णपण्णे आसकत्ता भावथी भंधायेला ते राज्ञे मनथी दुःमित्थे थर्थे, शारीरिके कष्टथी अके क्षणं भाटे पण्णं सुकितं नद्धि थवाने कारणे विषयं सुणोना विधेगनी संभावना भदलं तेमज्जं राज्ञे, राष्ट्रं, रण्ये वास वगेरेमां आसकत्ता धम्मिणेना वशमां होवाने कारणे आतध्यानमां मज्जं थर्थं गथा छेवटे तेज्जे मृत्युने धम्मिणता न्होता छतांजे सांसारिके वातावरणमां भंधायेला होवाने कारणे अथवा वेदनाज्जेथी पीडितं होवाने कारणे तेज्जे स्ववशं हंता नद्धि, परवशं-परतंत्रं हंता, जेथी काणं अवसरे काणं करीने,— मृत्युं पामीने—नीचे तमस्तमप्रभा नामना सातमा नरकमां के वे उत्कृष्ट काल-

नैरयिकतया उपपन्नः। एतद् दृष्टान्तेन भगवान् महावीरः साधुनुपदिशति—एवमेव
=अने नैवप्रकारेण हे आयुष्मन्तः ! श्रमणाः यः कश्चिदस्माकं श्रमणो वा श्रमणी वा
आचार्योपाध्यायानामन्तिके यावत्प्रव्रजितः सन् पुनरपि मनुष्यकान् कामभोगान्
'आसाएइ' आस्वादयति । स 'जाव अणुपरियट्टिस्सइ' यावदनुपर्यट्टिष्यति—
यावत्—चातुरन्तसंसारकान्तारं परिभ्रमिष्यति । 'जहेव से कंडरीए राया' यथैव
स कण्डरीको राजा ॥ सू०६ ॥

मूलम्—तएणं से पोंडरीए अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ,
वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतिए दोच्छंपि चाउज्जामं धम्मं
पडिवज्जइ, छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं
करेइ, करित्ता जाव अडमाणे सीयल्लक्खं पाणभोयणं पडि-
गाहेइ, पडिगाहित्ता, अहापज्जत्तमिति कट्टु पडिणियत्तइ,

गर की जहां उत्कृष्ट स्थिति है—नारकी की पर्याय से उत्पन्न हो गये ।
इसी बात को दृष्टान्त से श्री भगवान् महावीर प्रभु साधुओं को सम-
झाते हैं—(एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे पुणरवि माणु-
स्सए कावभोगे आसाए जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा व से कंडरीए
राया) इसी तरह हे आयुष्मन्त श्रमणों ! जो कोई हमारा श्रमण अथवा
श्रमणीजन आचार्य उपाध्याय के पास में दीक्षित होकर के पुनः मनुष्य
भव संबन्धी कामभोगों को भोगना है वह कंडरीक राजा की तरह
यावत् इस चतुर्गति रूप संसार कान्तार में परिभ्रमण कयेगा ॥सूत्र६॥

स्थिति प्रमाणु छे—ओट्ठे के उउ सागरनी न्यां उत्कृष्ट स्थिति छे—नारकीनी
पर्यायथी ज्जेम पाभ्या, ज्जे व वातने श्री भगवान् महावीर प्रभु दृष्टांत रूपमां
साधुओंने समझवे छे के—

एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोगे
ओसांए जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा व से कंडरीए राया)

या प्रमाणु छे आयुष्मन्त श्रमणो ! जे कोछ थमारा श्रमणु अथवा
'श्रमणीजन आचार्य' के उपाध्यायनी पासि दीक्षित थधने इरी जे ते मनुष्य
भवना कामभोगोने लोगवे छे, ते कंडरीक राजनी जेम यावत् या चतुर्गति
रूप संसार कान्तारमां परिभ्रमणु करेथे. ॥ सूत्र ६ ॥

जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, भत्त-
पाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता, थेरेहिं भगवंतेहिं अब्भणुघ्णाए
समाणे अमुच्छिए अगिच्छे अगट्टिए अणञ्जुववणणे विल-
मिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तं फासुएसणिज्जं असणपा-
णखाइमसाइमं सरीरकोट्ठंगंसि पविखवइ । तएणं तस्स
पुंडरीयस्स अणगारस्स तं कालाइकंतं अरसं विसरं सीय-
लुक्खं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स पुठवरत्तावरत्तकाल-
समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स सेआहारे णो सम्मं
परिणमइ । तएणं तस्स पुंडरीस्स अणगारस्स सरीरगंसि
वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुराहियासा, पित्तज्जरप-
रिगयसरीरे दाहवक्कंतिए विहरइ । तएणं से पुंडरीए अण-
गारे अरथामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे करयल
जाव एवं वयासी-णमोऽस्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं
णमोऽस्थुणं थेराणं भगवंताणं मम धम्मायरियाणं धम्मोव-
एसयाणं पुर्विं पि य णं मए थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइ-
वाए पच्चक्खाए जाव मिच्छादंसणसुद्धे णं पच्चक्खाए जाव
आलोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वट्टसिद्धे उव-
वन्ने । तओ अणतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ
जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ । एवामेव समणाउसो ! जाव
पव्वइए समाणे माणुस्सएहिं कामभोगेहिं णो सज्जइ णो रज्जइ,
जाव विप्पडिघायमावज्जइ, से णं इहभवे चेव वड्ढूणं सावगाणं०

अच्छणिञ्जे वंदणिञ्जे पूयणिञ्जे सक्कारणिञ्जे सम्माणणिञ्जे
 क्रह्माणं मंगलं देवयं चेइयं पञ्जुवासणिञ्जेत्तिकट्टु परलोए
 वि य णं णो आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य मुंडणाणि य
 तज्जणाणि य ताडणाणि य जाव चाउरंतं संसारकंतारं
 जाव वीइवइस्सइ जहावसे पोंडरीए अणगारे । एवं खल्लु
 जंबू ! समणैणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं
 जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं एगूणवीसइमस्स
 नायज्झयणस्स अयमट्टे पन्नत्ते । एवं खल्लु जंबू ! समणैणं
 भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं
 छट्टस्स अंगरस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स अयमट्टे पण्णेत्ते
 त्तिबेमि ॥ सू० ७ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खल्लु स पुण्डरीकोऽनगारो यत्रैव
 स्थविराभगवन्तस्त्वत्रैव उपागच्छति, उपागत्य स्थविरान् भगवतो वन्दते नमस्यति,
 वन्दित्वा नमस्यित्वा स्थविराणामन्तिके ‘ दोच्चंपि ’ द्वितीयमपिवारम् चातुर्यामं=
 चतुर्भद्रावतरूपं धर्मं प्रतिपद्यते । तथा पष्ठक्षपणपारणायां संपाप्तायां प्रथमायां

‘ तएणं से पोंडरीए अणगारे’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(तएणं) इसके बाद (से पोंडरीए अणगारे) वे पुंडरीक
 अनगार (जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ) जहां स्थविर भग-
 वंन विराजमान थे वहां आ गये । (उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ,
 नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता थेराणं अंतिए दोरुच्चंपि चाउज्जामं धम्मं

(तएणं से पोंडरीए अणगारे) इत्यादि ।

टीकार्थः—(तएणं) त्थारथाए (से पोंडरीए अणगारे) ते पुंडरीक अन-
 गार (जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ) त्यां स्थविर भगवंत भिरा-
 नमानं उता त्यां गथा.

(उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता थेराणं
 अंतिए दोरुच्चंपि चाउज्जामं, धम्मं पडिक्कइइ, छट्टस्समणपारणांसि पढमाए

पौरुष्यां=प्रथमे प्रहरे स्वाध्यायं करोति, कृत्वा 'अहमाणे' यावत् अटन् उच्चनीच-
मध्यमकुलेषु भिक्षार्थं परिभ्राम्यन् 'सीयलुक्त्वं' शीतरूढं-शीतं=पर्युषितं, रुढं
घृतादिरहितं पानं भोजनं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्य 'अहापञ्जत्तमितिकट्टु' यथापर्या-
प्तमिति कृत्वा=उदरभरणपर्याप्तमिदमन्नमितिमनसि कृत्य 'पडिणियत्तइ' प्रति-

पडिवज्जइ, छट्टुक्खमणपारणगांसि पढमाए पोरिसीए सज्जायं करेइ
करित्ता जाव अहमाणे सीयलुक्त्वं पागभोयणं पडिगाहेइ, पडिगाहित्ता
अहापञ्जत्तमि त्ति कट्टु पडिणियत्तइ-जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता थेरेहिं भगवंतेहिं
अवमणुन्नाए समाणे अमुच्छिअ अगिद्धे अगदिअ अणज्जुववणणे विल-
मिव पणगभूएणं अप्पाणेणं तं फासुएसणिज्जं असणपाणखाइम
साइमं सरीरकोट्टुगांसि पक्खिवइ) वहाँ आकर के उन्होंने ने स्थविर भग-
वंतों को वंदना नमस्कार किया। वंदना नमस्कार करके बाद में उन्होंने
ने उनसे दुवाराचातुर्याम-चतुर्महाव्रतरूप धर्म को धारण किया। जब
षष्ठक्षपण की पारणा का समय आया उस समय वे प्रथम पौरुषी में
स्वाध्याय करते-और स्वाध्याय करके फिर वे उच्च नीच मध्यम कुलों
में भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते उस समय जो उन्हें शीत-पर्युषित,
रूढ-घृतादिरहित पान भोजन मिलता-वह वे ले लेते-और यह अन्न-
सामग्री उदरभरण के लिये पर्याप्त है ऐसा मन में विचार कर वहाँ से

पारिक्षीए सज्जायं करेइ करित्ता जाव अहमाणे सीयलुक्त्वं पाणभोयणं पडिगाहेइ
पडिगाहित्ता अहापञ्जत्तमि त्ति कट्टु पडिणियत्तइ-जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता थेरेहिं भगवंतेहिं,
अवमणुन्नाए समाणे अमुच्छिअ अगिद्धे अगदिअ अणज्जुववणणे विलमिव पणगभूएणं
अप्पाणेणं तं फासुएसणिज्जं असणपाणखाइमसाइमं सरीरकोट्टुगांसि पक्खिवइ)

त्यां आवीने तेभञ्जे स्थविर भगवतोने वंदना अने नमस्कार कर्थां.
वंदना अने नमस्कार करीने तेभञ्जे तेभनी पासिथी णीश्वर आतुर्याम-चतु-
र्महाव्रत इप धर्मने धारण कर्थां. न्यारे षष्ठ क्षपणुनी पारणुनेो वणत
आव्थो त्यारे तेओ प्रथम पौरुषीमां स्वाध्याय करता अने स्वाध्याय करीने
तेओ उच्च, नीच अने मध्यम कुलोमां भिक्षा भाटे परिभ्रमण करता ते
सभये तेभने शीत-पर्युषित, रुढ-धी वगरनेो, पान आहार भणनेो तो तेने
तेओ स्वीकारी देता अने 'आट्ठो आहार उदर-पोषणु भाटे पूरतो छे'
आवो मनमां विचार करीने त्यांथी पाछा करी जाता. पाछा आवीने भिक्षाभां

निवर्तते=प्रत्यागच्छति, प्रतिनिवृत्त्य यत्रैव स्थविराभगवंतस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, भक्तपानं प्रतिदर्शयति, प्रतिदर्श्य, स्थविरैर्भगवद्भिरभ्यनुज्ञातः सन् अमूर्च्छितः अगृह्यः अग्रथितः अनध्युपपन्नः=आसक्तिपरिवर्जित इति भावः, ' विलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं ' विलमिव पन्नगभूतेन आत्मना इव=यथा पन्नगभूतेन=पन्नगभवमागतेन आत्मना=जीवेन विलं प्रविष्यते, तथा तं ' फासुपसण्णिज्जं ' प्रासुकैषणीयं=द्वाचत्वारिंशद्दोषवर्जितम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं 'शरीरकोट्टगंसि' शरीरकोष्ठके=उदरे प्रक्षिपति, यथा भुजङ्गो विलस्य पार्श्वभागद्वयमसंस्पृशन् मध्यभागत एवात्मानं विले प्रवेशयति तथा स मुखस्य पार्श्वद्वयस्पर्शरहितमाहारं कण्ठनालामिमुखं प्रवेश्य आहारयतीति भावः । ततः खलु तस्य पुण्डरीकस्य अनगारस्य ' कालाङ्कतं ' कालातिक्रान्तं=कालमतिक्रम्य प्राप्तम्-बुभुक्षा-

वापिस आ जाते-वापिस आकर फिर प्राप्त भिक्षान्न को दिखाने के लिये वे जहाँ स्थविर भगवंत विराजमान होते वहाँ आते-वहाँ आकर प्राप्त भिक्षान्न को उन स्थविर भगवंतों को दिखलाते-दिखालकर जब वे उस आहार को खाने की आज्ञा देते-तब वे अमूर्च्छित भाव से अगृह्यचित्तवृत्ति से, एवं आसक्ति रहित परिणति से उस प्राशुक एषणीय-४२ दोषों से रहित अशन, पान, खाद्य, एवं स्वाद्यरूप-आहार को जिस तरह सर्प-बिल में प्रविष्ट होता है उसी तरह से शरीर कोष्ठक में-उदर में डाल देते थे । कारण इसका इस प्रकार है-जैसे भुजंग बिल के पार्श्वद्वय नहीं छूता हुआ सीधे मध्यभाग से अपने को बिल में प्रविष्ट कराता है उसी तरह वे मुनिराज मुख के पार्श्वद्वय के स्पर्श से रहित आहार को सीधे कण्ठनाल में धर कर आहार करते थे (तएणं तस्स पुण्डरीयस्स अणगारस्स तं कालाङ्कतं अरसविरसं सिगलुक्खं पाण-

प्राप्त आहारने भताववा भाटे न्यां ते स्थविर भगवंत विराजमान इता त्यां आवता. त्यां आवीने भेणवेदा आहारने ते स्थविर भगवंताने भतावता अने भतावीने न्यारे तेओ ते आहारने अहणु करवानी आज्ञा करता थारे तेओ अमूर्च्छित-सावथी, अगृह्य-चित्तवृत्तिथी अने आसक्ति रहित परिणुतिथी ते प्रासुक ऐषणीय-४२ दोषोथी रहित अशन, पान, आद्य अने स्वाद्यरूप आहारने नेम साप हरमां प्रवेशे छे तेमज्ज शरीर कोष्ठकमां-पेटमां नाभी देता इता. नेम साप हरना अने पार्श्वने स्पर्श न करतां सीधे वच्चे यधने पोतानी अतने हरमां प्रविष्ट करावी ले छे तेमज्ज ते मुनिराज पणु भुपना अने पार्श्वना स्पर्शथी रहित आहारने सीधे कण्ठनालमां मूडीने उहरथ्य करता इता.

(तएणं तस्स पुण्डरीयस्स अणगारस्स तं कालाङ्कतं अरसं विरसं द्विय

समयमुल्लङ्घ्य प्राप्तम्, असं विरसं शीतरूक्षं पान भोजनम् 'आहारियस्स' आहारितस्य सतः पूर्वरात्रापररात्रकालसमये 'धम्मजागरियं जागरमाणस्स' धर्मजागारिकां जाग्रतः=धर्मचिन्तनार्थं जागरणां कुर्वतः स आहारो नो सम्यक् परिणमति=नो परिपाकं गच्छति । ततः खलु तस्य पुण्डरीकस्य अनगारस्य शरीरे वेदना प्रादुर्भूता 'उज्जला जाव दुरहियासा' उज्जला यावत् दुरधिसहा, एषां व्याख्यापूर्ववत्, तथा स पुण्डरीकोऽनगारः पित्तज्वरपरिगतशरीरो दाहव्युत्क्रान्तिकः=दाहज्वरसमाकुलश्चापि विहरति । ततः खलु स पुण्डरीकोऽनगारः 'अस्थामे' अस्थामा=शक्तिरहितः, अवले=शारीरिकबलरहितः, 'अवीरिए' अवीर्यः=उत्साहरहितः, अपुरुषकारपराक्रमः=पुरुषार्थपराक्रमरहितः 'करयल जाव' करतल यावत्=करतलपरिवृष्टीर्तं दशनखं मस्तके अङ्गलिं कृत्वा एवमवादीत्-नमोऽस्तु खलु अर्हद्भ्यो यावत्तमाप्तेभ्यः=मोक्षं गतेभ्यः, नमोस्तु खलु स्थविरेभ्यो भगवद्भ्यो मम धर्माचार्येभ्यो धर्मोपदेशकेभ्यः, पूर्वमपि च खलु मया स्थविराणा-

भोग्येण आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स से आहारे णो सम्मं परिणमइ) इस तरह उन पुण्डरीक अनगार का कालातिक्रम से खाया हुआ वह अरस, विरस, शीत, रूक्ष, पानभोजन रात्रि के मध्यभाग में धर्मचिन्तन निमित्त जागरण करने के कारण अच्छी तरह से नहीं पचता था (तएणं तस्स पुण्डरीयस्स अणगारस्स सरीरगंसि वेयणा पाडवभूया उज्जला जाव दुरहियासा, पित्तज्वरपरिगतसरीरे दाहवक्कंतिए विहरइ, तएणं से पुण्डरीए अणगारे अस्थामे, अवले, अवीरिए अपुरिसक्कारपरिक्कमे करयल जाव, एवं वयासी-णमोत्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं णमोत्थुणं थेराणं भगवंताणं मम धम्मोचरियाणं धम्मोवपसयाणं पुट्ठिं पि य णं मए

लुक्खं पाणभोग्येण आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स से आहारे णो सम्मं परिणमइ)

आ प्रभाषे ते पुण्डरीक अनगारणे कालातिक्रमथी कइसे। ते अरस, विरस, शीत, रूक्ष पान आहारतुं रात्रिना मध्य भागमां धर्मचिन्तन भाटे कइसे। नगरयुने दीप्रे सारी रीते पाचन थनुं न हुंतुं ।

(तएणं तस्स पुण्डरीयस्स अणगारस्स सरीरगंसि वेयणा पाडवभूया उज्जला जाव दुरहियासा, पित्तज्वरपरिगतसरीरे दाहवक्कंतिए विहरइ, तएणं से पुण्डरीए अणगारे अस्थामे, अवले, अवीरिए अपुरिसक्कारपरिक्कमे करयल जाव, एवं वयासी-णमोत्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं थेराणं भगवंताणं मम धम्मोचरियाणं

मन्तिके सर्वः प्राणानिपातः प्रत्याख्यातः यावत् मिथ्यादर्शनशल्यं खलु प्रत्याख्यातम्—अष्टादशपापस्थानानि प्रत्याख्यातानि इति भावः, इदानीमपि तेषामेव

थेरार्णं अंति ए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव भिच्छादंसणसल्ले णं पच्चक्खाए जाव आलोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वद्दसिद्धे उववन्ने) इस कारण पुंडरीक अनगार के शरीर में वेदना प्रकट हो गई। जिसके कारण उन्हें क्षणभर भी शांता नहीं मिलती। धीरे २ यह समस्त शरीर में भी व्याप्त हो गई। यावत् यह उनके लिये सहन हो सके ऐसी नहीं रही—वे उसे बड़ी कठिनता से सहते। दाहज्वर ने भी इनके शरीर पर अपना प्रभाव जमा लिया। इस तरह ये दाहज्वर को ज्वाला से भी आकुल व्याकुल रहने लगे। धीरे २ इनका शरीर शक्ति रहित हो गया। शारीरिक बल भी इनका जाता रहा। उत्साह रहित एवं पुरुषार्थ पराक्रम से विहीन जब ये हो गये तब करतल परिगृहीत दशनखोंवाली अंजलि को इन्होंने अपने मस्तक पर रखकर इस प्रकार का पाठ बोलना प्रारंभ किया यावत् मुक्ति प्राप्त अर्हत भगवंतों के लिये मेरा नमस्कार हो, मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक स्थविर भगवंतों के लिये मेरा नमस्कार हो। मैंने पहिले भी स्थविर भगवंतों के निकट समस्त प्राणानिपात प्रत्याख्यान कर दिया है—यावत् मिथ्यादर्शन शल्य

धम्मोवएसयाणं पुत्तिं पि य णं मए थेराणं अंति ए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव भिच्छादंसणसल्लेणं पच्चक्खाए जाव आलोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वद्दसिद्धे उववन्ने)

ओथी ते पुंडरीक अनगारना शरीरमां वेदना प्रकट थरुं गछं तेथी तेमने ओक क्षणु माटे पणु शांता भजती नडोती. धीमे धीमे आ वेदना संपूर्ण शरीरमां प्रसरी गछं यावत् ते तेमना माटे असह्य थरुं गछं, लारे मुश्केदीथी तेओ तेने भमता हता. दाहज्वर पणु तेमना शरीर उपर पोताने प्रलाप जमावी दीधो हतो, ओथी तेओ दाहज्वरनी ज्वालाओथी पणु आकुण-व्याकुण रहेवा लाग्या. धीमे धीमे तेमनुं शरीर अशक्त थरुं गथुं, शारीरिक भज पणु तेमनुं नष्ट थरुं गथुं हंतुं. आ प्रमाणे ज्यारे तेओ उत्साह रहित अने पुरुषार्थ पराक्रम विहीन थरुं गया त्यारे करतल-परिगृहीत दश नजोवाणी अज्जिने तेमणे पोताना मस्तके मूझिने आ प्रमाणेनो पाठ जालवा लाग्या के यावत् मुक्ति प्राप्त अर्हत भगवतोने मारा नमस्कार छे, मारा धर्माचार्य, धर्मोपदेशक स्थविर भगवतोने मारा नमस्कार छे. मे' पहिलां पणु भगवतोनी पासे समस्त प्राणानिपात करी दीधुं छे. यावत् मिथ्यादर्शन शल्यनुं अहार

न्ति प्राणातिपातं यावत् मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि, एवं 'जाव आलो-
पडिक्ते' यावदालोचितप्रतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा सर्वार्थसिद्धये
पपन्नः । ततोऽनन्तरम्=तत्पश्चात् सर्वार्थसिद्धात् 'उच्चट्टिता' उच्चट्टय=सर्वार्थ-
वेर्निर्गत्य महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति । पुण्डरी-
नगारचरितं दृष्टान्तेनोपदर्श्य श्रमणानुपदिशति भगवान् महावीरः- 'एवामेव'
नै प्रकारे । हे आयुष्मन्तः श्रमणाः 'जाव पञ्चइए' यावत्प्रव्रजितः=योऽस्माकं
वा श्रमणी वा आचार्योपाध्यायानामन्तिके प्रव्रजितः सन् मानुष्यकेषु
कामभोगेषु नो सज्जते नो असक्तिमाश्रयते 'नो रज्जते' नो रज्यते=नो अनु-
रागवान् भवति, 'जाव नो विप्पडिघायमावज्जइ' यावत् नो विपतिघातमाप-
द्यते=संयमनाशं न प्राप्नोति, स खलु इह भवे एव बहूनां श्रमणानां बहूनां श्रम-
णीनां बहूनां श्रावकाणां बहूनां श्राविकाणाम् अर्चनीयो वन्दनीयः पूजनीयः
सत्कारणीयः सम्माननीयो भवति, तथा च-स सर्वेषां 'कल्लाणं' कल्याणं=
कल्याणरूपम् 'मंगलं' मङ्गलम्=मङ्गलरूपम्, 'देवयं' दैवतं=धर्मदेवरूपः,
'चेइयं' चैत्यम्=ज्ञानरूपः पर्युपासनीयश्च भवति 'त्तिकट्टु' इति कृत्वा इति

का अष्टादश पापस्थानों का, मैंने प्रत्याख्यान कर दिया है । और अब
भी उन्हीं के साक्षी से प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्या-
ख्यान करता हूँ । इस तरह आलोचित प्रतिक्रान्त होकर वे कालअवसर
कालकर सर्वार्थ सिद्ध नामके अनुत्तर विमान में उत्पन्न हो गये ।
(तओ अणंतरं उच्चट्टिता महाविदेहे वासे सिञ्जिहिइ, जाव सच्चदुक्खा
णमंतं काहिइ, एवामेव समणाउसो ! जाव पञ्चइए समाणे माणुस्स-
एहिं कामभोगेहिं णो सज्जइ, णो रज्जइ, जाव नो विप्पडिघायमावज्जइ
सेणं इह भवे चेव बहूणं साविचाणं अच्चणिज्जे, वंदणिज्जे, पूयणिज्जे,
सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवास्-

पापस्थानानुं मे प्रत्याख्यान करी छीधुं छे अने डवे तेमनी अ साक्षीभां
प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्यनु प्रत्याख्यान कर छुं. आ प्रमाणे
आलोचित प्रतिक्रान्त थधने तेओ काण अचसरे काण करीने सर्वाथसिद्ध नामना
अनुत्तर विमानभां उत्पन्न थधं गथा अने त्यां तेमनी उउ सागदोपमनी स्थिति छे.

(तओ अणंतरं उच्चट्टिता महाविदेहे वासे सिञ्जिहिइ, जाव सच्चदुक्खाण-
मंतं काहिइ, एवामेव समणाउसो ! जाव पञ्चइए समाणे माणुस्सएहिं काम
भोगेहिं णो सज्जइ, णो रज्जइ, जाव नो विप्पडिघायमावज्जइ सेणं इह भवे
चेव बहूणं साविचाणं अच्चणिज्जे, वंदणिज्जे, पूयणिज्जे, सक्कारणिज्जे, सम्माणणि-
ज्जे, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे त्ति कट्टु परलोए विय णं णो

हेतोः परलोकेऽपि च खलु सा नो आगच्छति= न प्राप्नोति बहूनि=बहुविधानि
दुण्डनानि च मुण्डनानि च तर्जनानि च ताडनानि च यावत् चतुरन्तं संसार-
कान्तरं 'वीह्वइस्सइ' व्यति व्रजिष्यति=उल्लङ्घयिष्यति, यथा स पुण्डरीकीसनगरः

णिज्जे त्ति कइहु परलोए वि य णं णो आगच्छइ, बहूणि दंडणाणि य
मुंडणाणि य तज्जणाणि य ताडणाणि य जाव चाउरंतसंसारकंतरं
जाव वीह्वइस्सइ) इसके बाद वे उस सर्वार्थ सिद्ध विमान से चव कर
महाविदेहक्षेत्र में जन्म धारण कर वहीं से सिद्धपद के भोक्ता बनेगे-
यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेंगे। इस तरह पुंडरीक अनगर के
चरित्र को दृष्टान्त रूप से कहकर भगवान् महावीर प्रभु श्रमणजनों को
उपदेश करते हैं कि इसी प्रकार से हे आयुष्मंत श्रमणो ! जो हमारा
श्रमण या श्रमणीजन आचार्य उपाध्याय के पास प्रव्रजित होकर मनु-
ष्यभवं संबंधी कामभोगों में आसक्त नहीं बनता है, रज्जित-अनुराग
भाव संपन्न-नहीं होना है, यावत् अपने संयम को नष्ट नहीं करता है,
वह इस भव में ही अनेक श्रमण श्रमणी, श्रावक एवं श्राविकाओं
द्वारा अर्चनीय वंदनीय पूजनीय सत्करणीय एवं सम्माननीय होता है।
तथा जगत के लिये कल्याणरूप, मंगलरूप, धर्म देवरूप, और ज्ञानरूप
बन जाता है। लोग उसकी उपासना करते हैं। वह परलोक में भी
अनेक प्रकार के दंडनरूप, दुःखों को, मुंडनों को तर्जनों को, ताडनाओं

आगच्छइ, बहूणि दंडणाणि य मुंडणाणिय तज्जणाणि य ताडणाणि य जाव
चाउरंतसंसारकंतरं जाव वीह्वइस्सइ)

त्यारपणी तेऽपि ते सर्वार्थसिद्ध विमानमार्थी श्रमणे महाविदेह क्षेत्रमां
जन्म धारण करिने त्यांथी न सिद्धपद भेगवशे, यावत् समस्त दुःखेना अंत
करशे, आ रीते पुंडरीक अनगरना श्रित्रने दृष्टांत रूपे कहीने महावीर प्रभु
श्रमणुजनेने उपदेश करतां कडे छे के आ प्रभाणु न डे आयुष्मंत श्रमणो !
ने अमारा श्रमणु के श्रमणुजनेने आचार्य उपाध्यायनी पासे प्रव्रजित श्रमणे
मनुष्य लवना कामलोगोमां आसक्त थता नथी, रज्जित-अनुरक्त थता नथी,
यावत् पौताना संयमने नष्ट करता नथी ते आ लवमां न घण्टा श्रमणु-
श्रमणी अने श्रावक-श्राविकांओ वडे अर्चनीय, वंदनीय, पूजनीय, सत्करणीय
अने सम्माननीय होय छे तेम न जगतना माटे कल्याणरूप, मंगलरूप, धर्म-
देवरूप अने ज्ञानरूप गनी लय छे, लोके तेनी उपासना करे छे, ते परलोकमां
पणु घण्टी लतना दंडन रूप, दुःखेने, मुंडनेने, तर्जनेने, ताडनांओने

सुधर्मास्वामी कथयति-एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण
दिकरेण तीर्थकरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन एकोनविंशतित-
य ज्ञाताध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः । ज्ञातश्रुतस्कन्धं समापयन् सुधर्मा पुनः
पयि-एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनाम-
स्थानं संप्राप्तेन पष्ठस्य अङ्गस्य=षष्ठ्याङ्गसम्बन्धिनः प्रथमस्य श्रुतस्कन्धस्य
यमर्थः=पूर्वोक्तरूपो भावः प्रज्ञप्तः=भगवता कथितः । 'त्ति वेमि' इति ब्रवीमि,
या पूर्ववत् ॥ सू०७ ॥

नहीं पाता है और चतुर्गतिवाले इस संसार कान्तार को पुंडरीक
र की तरह पार करनेवाला हो जाता है । (एवं खलु जंबू ! सम-
णं भगवत्या महावीरे णं आङ्गरेणं तित्थगरेणं जाव सिद्धं गइं नाम-
ज्जं ठाणं संपत्तेणं एगूणवीसइमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते,
खलु जंबू ! समणेणं भगवत्या महावीरे णं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं
संपत्ते णं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स अयमट्ठे पणत्ते
वेमि) अब श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे जंबू ! आंदिकर तीर्थ-
र यावत् सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त हुए श्रमण भगवान
महावीर ने १९ वे ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्ररूपित किया
। इस तरह हे जंबू ! श्रमण भगवान महावीर ने कि जो सिद्धिगति
नामक स्थान को अच्छी तरह प्राप्त कर चुके हैं, छठे अंग के प्रथम श्रुत-
स्कंध का यह पूर्वोक्त रूप से भाव प्रतिपादित किया है । ऐसा मैंने प्रश्न
के कहे अनुसार ही यह हे जंबू ! तुमसे निवेदित किया है ।

प्राप्त करता नहीं आने चतुर्गतिवाला आ संसार कान्तारने पुंडरीक अनगारनी
जेम पार करनार थई नथ छे.

(एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवत्या महावीरेणं आङ्गरेणं तित्थगरेणं जाव
सिद्धगइं नामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं एगूणवीस इमस्स नायज्झयणस्स ; अयमट्ठे
पणत्ते, एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवत्या महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं
ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स अयमट्ठे पणत्ते चिचेमि)

इवे श्री सुधर्मा स्वामी कहें छे डे डे डे ७०५ ! आंदिकर तीर्थंकर यावत्
सिद्धगति नामक स्थानने भेजनी चुकेला श्रमण भगवान महावीरे जोगखीसमा
ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वोक्त रीते अर्थ प्ररूपित करी छे. आ प्रभावे डे ७०५ !
श्रमण भगवान महावीरे डे ७०६ सिद्धगति नामक स्थानने सोरी रीते प्राप्त
करी. दीधुं छे-छट्ठा अंगना प्रथम श्रुत-स्कंधने आ पूर्वोक्त रूपभां भाव प्रति-
पादित करी छे. डे ७०५ ! आबु मे प्रश्नना कइल सुअथ ७ तमने कइ छे.

‘ तस्से ’ त्यादि, तस्य खलु प्रथमस्य श्रुतस्कन्धस्य एकोनविंशतिरध्ययनानि
‘ एगमरगाणि ’ एकस्वरकानि=प्रमानोच्चारणानि=अन्तराले उद्देशरहितानि एकोन-
विंशति दिवसेषु समाप्यते ॥ सू० ७ ५

मंगलं भगवान् वीरः मंगलं गौतमः प्रभुः ।

सुधर्मा मंगलं, जंबूजैनधर्मश्च मंगलम् ॥ १ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितकलितक-
लापालापक-मविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छ-
त्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त-‘ जैनशास्त्राचार्य ’ पदभूषित-कोल्हापुरराज-
गुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाठ-
व्रतिविरचितायां ‘ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ’ सूत्रस्यानगारधर्माद्युतव-
र्षिण्याख्यायां व्याख्यायां प्रथमश्रुतरकंधः समाप्तः ॥

इस कथन में मैंने अपनी तरफ से कोई भी कल्पना मिश्रित नहीं
की है किन्तु प्रभु के सुख से जैसा मैंने इसे सुना है वैसा ही यह तुम
से मैंने कहा है । “ तस्से ” त्यादि इस प्रथम श्रुतस्कंध के अन्तराल में
उद्देश रहित १९ अध्ययन हैं । ये अध्ययन १९ दिनोंमें समाप्त होते हैं ।

टीकार्थः—सांसारिक समस्त जीवों के लिये यदि मंगलकारी पदार्थ
है—तो ये हैं भगवान् महावीर प्रभु गौतमगणधर, सुधर्मास्वामी, जंबू-
स्वामी और जैनधर्म ।

इस तरह ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रके प्रथम श्रुतस्कंध संपूर्ण ।

आ कथनमां मे' भारा तरक्ष्धी कौधंपणु जतनी कडपना मिश्रित करी नथी,
पणु प्रलुना सुपथी जेवुं मे' सांसल्लुं छे तेवुं ज मे' कडुं छे. “ तस्से ” त्यदि
आ प्रथम श्रुत-स्कंधना अंतरालमां उद्देश रहित जोगणीस अद्ययने छे.
आ अध्ययने जोगणीस द्विपत्रोमां समाप्त छाय छे.

टीकार्थः—अथा सांसारिक लोकोना भाटे जे मंगलकारी पदार्थो छे तो
ते जेवुं छे—भगवान् महावीर प्रभु, गौतम गणधर, सुधर्मास्वामी, जंबू-
स्वामी अने जैन धर्म.

“ आ प्रमाळ्हे ज्ञाताधर्म कथांगेना ज्ञाता-नामे प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त थयो. ”

॥ अथ ज्ञातासूत्रे द्वितीयश्रुतस्कन्धविवरणम् ॥

मङ्गलाचरणम् - -

(वसन्ततिलकावृत्तम्)

आद्ये श्रुते भगवता रुचिरैरनेकै,-

ज्ञातैरदायि सकलार्त्तिहरः सुबोधः ।

स्कन्धे द्वितीयइह धर्मकथा च साक्षाद् ,

विज्ञापिता तमनिशं वरदं स्मरामि ॥ १ ॥

(मालिनीछन्दः)

गणधरगुणधारं, प्राप्तसंसारपारम् ,

भविजनहितकारं, दत्तसम्यक्त्वसारम् , ।

हृतसकलविकारं, भव्यचित्तैकहारं ,

शिवसुखपदधारं, नीमि चारित्रसारम्, ॥ २ ॥

-:द्वितीयश्रुतस्कंधप्रारंभ:-

आद्येश्रुते इत्यादि:- प्रथम श्रुतस्कंधमें भगवान् सूत्रकार ने अनेक सुन्दर दृष्टान्तों द्वारा सकल आर्त्ति (दुःख) हारक सुबोध प्रदान किया है अब वे इस द्वितीय श्रुतस्कंध में साक्षात् धर्मकथाएँ प्रकट करेंगे-अतः ऐसे भगवान को मैं कि जो भव्यजीवों को कल्याण करनेवाले होते हैं उनको निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

गणधरइत्यादि-जो गणधरों के गुणों को धारण करनेवाले हैं संसार को पार करनेवाले हैं, जो भव्यजनों को हितकारक हैं, सम्यक्त्वरूपी गुणके बोधक हैं-सकल विकारों से रहित है, इसलिये जो भव्यजीवों

द्वितीय श्रुतस्कंध प्रारंभ

आद्ये श्रुतेत्यादि-प्रथम श्रुतस्कंधमें भगवान् सूत्रकारे धरुण सुंदर दृष्टान्ते। वडे समस्त आर्त्ति (दुःख) हारक सुबोध प्रदान क्यो छे। इवे तेज्यो आ भील श्रुतस्कंधमां साक्षात् धर्मकथाज्यो प्रकट कर्यो ज्येटला माटे ज्येवा भगवानने-क ज्येज्यो भव्य ज्येवोनु कथ्याणु करनारा छे-हुं निरन्तर नमस्कार कर छुं' ।

गणधर इत्यादि-ज्येज्यो गणधरोना शुषुने धारणु करनारा छे, संसा- रने पार करनारा छे ज्येज्यो भव्यजनोना हितकारक छे, सम्यक्त्व इपी शुषुना बोधक छे, आ अधा विकारोधी रहित छे, ज्येटला माटे ज्ये ज्येज्यो भव्य ज्येवोना

વ્યાખ્યાતઃ પ્રથમો જ્ઞાતાચ્ચઃ શ્રુતસ્કંધઃ, અથ ધર્મકથાચ્ચૈવ દ્વિતીયઃ પ્રારમ્બ્યતે, અસ્ય પૂર્વેણ સહાયં સમ્બન્ધઃ—પૂર્વેસ્મિન્ શ્રુતસ્કંધે ઉદાહરણપ્રદર્શનપૂર્વકમાત્રોપાલમ્બાદિના ધર્મરૂપોઽર્થઃ પ્રતિપાદિતઃ, ઇહ તુ સ એવ સાક્ષાદ્ ધર્મકથાભિઃ પ્રતિપાદ્યતે, इत्येवं सम्बन्धेन समायातस्यास्येदमादिस्त्रयम्—‘ તેણં કાલેણં ’ इत्यादि ।

મૂલમ્—તેણં કાલેણં તેણં સમર્ણં રાયગિહે નામં નયરે હોત્થા, વળ્ણઓ, તસ્સ ણં રાયગિહસ્સ ણયરસ્સ બહિયા ઉચ્ચરપુરસ્થિમે દિસિમાણ્ તત્થ ણં ગુણસિલ્લણામં ચેદ્દણ્ હોત્થા વળ્ણઓ, તેણં કાલેણં તેણં સમર્ણં સમણસ્સ ભગવઓ મહાવીરસ્સ અંતેવાસી અજ્જસુહમ્મા ણામં થેરા ભગવંતો જાહ્સંપન્ના કુલસંપન્ના જાવ ચડ્દસપુઠ્ઠવી ચડ્ડણાણોવગયા પંચહિં અળગા-

કે ચિત્ત કો હરણ કરનેવાલે હૈં એસે હસ સમ્યક્ ચારિત્રરૂપો સાર કો ધારણ કરનેવાલે મોક્ષપદ કે ધારી હૈં હસકો મૈં નમસ્કાર કરતા હૈં ।

પ્રથમ જ્ઞાતા નામ કા શ્રુતસ્કંધ વ્યાખ્યાત હો ચુકા અબ ધર્મકથા નામ કા દ્વિતીય શ્રુતસ્કંધ પ્રારંભ ક્રિયા જાતા હૈ । હસ શ્રુતસ્કંધ કા પૂર્વ શ્રુતસ્કંધ કે સાથ હસ પ્રકાર સે સંબંધ હૈ કિ પૂર્વ શ્રુતસ્કંધ મૈં ઉદાહરણ પ્રદર્શન પૂર્વક આસ તીર્થકર કે ઉપાલંભ આદિ દ્વારા ધર્મ રૂપ અર્થ પ્રતિપાદિત ક્રિયા ગયા હૈ । અબ હસ દ્વિતીય શ્રુતસ્કંધ મૈં ધર્મ રૂપ અર્થ સાક્ષાત્ ધર્મકથાઓ દ્વારા નિરૂપિત ક્રિયા જાવેગા । હસ દ્વિતીય શ્રુતસ્કંધ કા યહ આદિ સૂત્ર હૈ । તેણં કાલેણં તેણં સમર્ણં इत्यादि ।

ચિત્તને આકર્ષનારા છે, એવા તે સમ્યક્-ચારિત્ર રૂપી સારને ધારણ કરનારા મોક્ષપદના ધારી છે, તેને હું નમસ્કાર કરું છું.

પ્રથમ જ્ઞાતા નામનો શ્રુતસ્કંધ વ્યાખ્યાત થઈ ચુક્યો છે હવે ધર્મકથા નામનો બીજો શ્રુતસ્કંધ શરૂ કરવામાં આવે છે. આ શ્રુતસ્કંધનો પહેલા શ્રુત સ્કંધની સાથે આ પ્રમાણે સંબંધ છે કે પૂર્વ શ્રુતસ્કંધમાં ઉદાહરણોની સાથે આમ તીર્થકરના ઉપાલંભ વગેરે દ્વારા ધર્મરૂપ અર્થનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. હવે આ બીજા શ્રુતસ્કંધમાં તે જ ધર્મરૂપ અર્થ સાક્ષાત્ ધર્મકથાઓ વડે નિરૂપવામાં આવશે. આ બીજા શ્રુતસ્કંધનું આ પ્રથમ સૂત્ર છે—

‘ તેણં કાલેણં તેણં સમર્ણં ’ इत्यादि—

रसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वाणुपुर्विं चरमाणा गामाणुगामं
दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव
गुणसिलए चेइए जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा
विहरंति, परिता निग्गया, धम्मो कहिओ, परिता जामेव दिसं
पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया, तेणं कालेणं तेणं समएणं
अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी अज्जजंबू णामं अणगारे
जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी-जइ णं भंते ! समणेणं जाव
संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स णायाणं अयमट्ठे
पन्नत्ते दोच्चस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स धम्मकहाणं समणेणं
जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?, एवं खल्लु जम्बू ! समणेणं जाव
संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता, तं जहा - चमरस्स
अग्गमहिस्सीणं पढमे वग्गे १ बलिस्स बइरोयणिंदस्स बइरोय-
णरत्तो अग्गमहिस्सीणं बीओ वग्गे २ असुरिंदवज्जियाणं दाहि-
णिच्छाणं भवणवासीणं इंदाणं अग्गमहिस्सीणं तइओ वग्गे ३
उत्तरिच्छाणं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं इंदाणं अग्गमहि-
स्सीणं चउत्थो वग्गे ४ दाहिणिच्छाणं वाणमंतराणं इंदाणं
अग्गमहिस्सीणं पंचमो वग्गे ५ उत्तरिच्छाणं वाणमंतराणं इंदाणं
अग्गमहिस्सीणं छट्ठो वग्गे ६ चंदस्स अग्गमहिस्सीणं सत्तमो वग्गे
७ सूरस्स अग्गमहिस्सीणं अट्ठमो वग्गे ८ सक्कस्स अग्गमहिस्सीणं
णंवमो वग्गे ९ ईसाणस्स अग्गमहिस्सीणं दसमो वग्गे १० ॥सू०१॥

टीका—तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरमासीत्, 'वण्णओ' वर्णकः—नगरवर्णनं सर्वमत्र विज्ञेयम् । तस्य खल्ल राजगृहस्य नगरस्य बहिरुत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे तत्र खल्ल गुणशिलकं नाम चैत्यमासीत्, 'वण्णओ' वर्णकः=चैत्यवर्णन-प्रकारः सर्वोऽत्र वाच्यः । तस्मिन् काले तस्मिन् समयेश्रमणस्य भगवतो महावीर-स्यान्तेवासिन आर्यसुधर्माणो नाम स्थविरा भगवन्तः 'जाइसंपन्ना' जातिस-संपन्नाः=सुविशुद्धमातृवंशाः, कुलसंपन्नाः=विशुद्धपितृवंशाः, 'जाव' यावत्-बल-रूप-विनय-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-लाघव-सम्पन्नाः, इत्यादि यावत्-चतुर्दशपूर्विणः 'चउणाणोवगया' चतुर्ज्ञानोपगताः=मतिश्रुतात्रधिमनः पर्यवज्ञानयुक्ताः पञ्चभिर-

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में (रायगिहे नामं नयरे होत्था) राजगृह नाम का नगर था। (वण्णओ) नगर का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित चंपा नगरी के समान जानना चाहिये। (तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए तत्थणं गुणसिलए णामं चेइए होत्था, वण्णओ) उस राज-गृह नगर के बाहिर उत्तर पौरस्त्यदिग्भाग की ओर (ईशानकोण में) एक गुणशिलक नाम का चैत्य-उद्यान-था। यहाँ पर भी सब चैत्यवर्णन औपपातिक सूत्र की तरह जानना चाहिये—(तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्ज सुहम्माणामं थेरा भग-वंतो जाइ संपन्ना कुल संपन्ना जाव चउइसपुव्वी चउणाणोवगया पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वानुपुव्वि चरमाणा गामाणुगामं दूइ-

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये (रायगिहे नामं नयरे होत्था) राजगृह नामे नगर इत्तुं. (वण्णओ) आ नगरत्तुं वण्णं औपपातिके सूत्रमां वण्णवामां आवेत्ता अंपा नगरीना वण्णनी जेम जे णत्थि वेवुं जेधंजे

(तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए तत्थणं गुणसिलए णामं चेइए होत्था, वण्णओ)

ते राजगृह नगरनी भंडार उत्तर पौरस्त्य दिग्-भागनी तरश् ओट्टे के ईशान कोणमां जेक सुवुशिलक नामे चैत्य-उद्यान-इतो. अर्द्धी चैत्य विषेत्तुं अधुं वण्णं औपपातिके सूत्रनी जेम णत्थुं जेधंजे.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्ज सुहम्माणामं थेरा भगवंतो जाइसंपन्ना कुलसंपन्ना जाव चउइस पुव्वी चउणाणो-वगया पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वानुपुव्वि चरमाणा गामाणुगामं दूइ-

नगरशतैः सार्द्धं संपरिचिताः ' पुष्पाणुपुर्वि ' पूर्वाभुपूर्वा=तीर्थङ्करपरम्परया ' चरमाणा ' चरन्तः=विहरन्तः ग्रामानुग्रामं एकग्रामादव्यवधानेनान्यं ग्रामम् ' द्द-
ज्जमाणा ' द्रवन्तः=रपशन्तः ' सुहं सुहेणं ' सुखं सुखेन=सुखपूर्वकं यथावसर-
मित्यर्थः विहरन्तो यत्रैव राजगृहं नगरं यत्रैव गुणशिलकं चैत्य यावत्-संयमेन
तपसा आत्मानं भावयन्तो विहरन्ति । अत्र आदरार्थं बहुवचनम् । परिपन्निर्गता ।
धर्मः कथितः । परिपद् यस्या एव दिशः पादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता ।
तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्यसुधर्मणोऽनवारस्यान्तेवासी आर्यं जम्बूनामान-

ज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसिलए
चेइए जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति) उस काल
और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के अंतेवासी आर्य सुधर्मा
नाम के स्थविर भगवंत कि जो विशुद्ध मातृवंशवाले थे विशुद्ध पितृ-
वंशवाले थे, यावत् बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं लाघव
संपन्न थे, चौदहपूर्व के पाठी थे-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं
मनःपर्यव ज्ञान इन चारों ज्ञानों के धारक थे-पांचसौ अनगारों के साथ
तीर्थंकर परंपरा के अनुसार विहार करते २ एक ग्राम से दूसरे ग्राम में
विना किसी व्यवधानके विचरण करते हुए सुख पूर्वक समय पर-जहां
राजगृह नगर और उस में भी जहां वह गुणशिलक चैत्य था आये ।
वहां वे संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए उतरे (परिसा
निग्गया धम्मो कहिओ परिसा जामेव दिसें पाउब्भूया तामेव दिसें
पडिगया, तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंते-

ज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसिलए चेइए
जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति)

ते काये अने ते समये श्रमणु भगवान महावीरना अंतेवासी आर्य
सुधर्मा नामना स्थविर भगवंत के अंतेवा विशुद्ध मातृवंशवाला हता-विशुद्ध
पितृवंशवाला हता, यावत् बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र अने
लाघव-संपन्न हता. चौदह पूर्वना पाठी हता, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान
अने मनःपर्यवज्ञान अने आरे ज्ञानेना धारक हता. पांचसौ अनगारोनी साथे
तीर्थंकर परंपरा अनुसार विहार करतां करतां अके गामथी भीरे गाम कोइपणु
नतना व्यवधान वगर सुपेथी यथा समथ न्यां राजगृहं नगर अने तेमां
पणु न्यां ते शुणुशिलक चैत्य हतुं त्यां आव्या त्यां तेओ सयम अने तप
कारा पोताना आत्माने भावित करतां रोकाया.

(परिसा निग्गया धम्मो कहिओ परिसा जामेव दिसें पाउब्भूया तामेव
दिसें पडिगया, तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी

गारः यावत्-‘पञ्जुवासमाणे’ पर्युपासीनः=सेवमानः एवमवदत्-यदि खलु
‘भंते’ भदन्त=हे भगवन् ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्-मोक्षं सम्प्राप्तेन
पठस्याङ्गस्य प्रथमस्य श्रुतस्कन्धस्य ‘णायाणं’ ज्ञातानाम्=उदाहरणानाम् अयमर्थः
प्रज्ञप्तः द्वितीयस्य खलु हे भदन्त ! श्रुतस्कन्धस्य धर्मकथानां श्रमणेन यावत्सम्प्रा-
प्तेन=मोक्षं गतेन भगवता कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?। सुधर्मास्वामीप्राह-एवं खलु हे जम्बू !

वासी अञ्ज जंबूणामं अणगारे जाव पञ्जुवासमाणे एवं वयासी-जड्णं
भंते समणेणं जाव संपत्तेणं छट्टस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स
णायाणं अयमट्ठे पन्नत्ते दोच्चस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स धम्मकहाणं
समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव
संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता) राजगृह नगर से परिषद
वंदन करने के लिये आई। सुधर्मास्वामी धर्म का उपदेश दिया। उपदेश
सुनकर परिषद अपने २ स्थान पर पीछे वहां से चली गई। उस काल में
और उस समय में आर्य सुधर्मास्वामी के अंतेवासी आर्य जंबू नामके
अनंगार ने यावत् उनकी पर्युपासना करते हुए उनसे इस प्रकार पूछा
हे भदंत ! यावत् मुक्तिको प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीरने छठे अंगके
ज्ञातासूत्र प्रथम श्रुतस्कंध के उदाहरणोंका यह पूर्वोक्तरूप से अर्थ निरू-
पित किया है-तो हे भदंत ! द्वितीय श्रुतस्कंधकी धर्मकथाओं का उन्हीं
श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो मुक्तिस्थान को प्राप्त हो चुके हैं क्या
अर्थ निरूपित किया है ? इस प्रकार जंबू के प्रश्न को सुनकर श्री सुधर्मा

अञ्जजंबू णामं अणगारे जाव पञ्जुवासमाणे एवं वयासी-जड्णं भंते समणेणं
जाव संपत्तेणं छट्टस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स णायाणं अयमट्ठे पन्नत्ते
दोच्चस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स धम्मकहाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे
पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता)

राजगृह नगरथी परिषद वंदन करवा भाटे त्यां आथी. सुधर्मा स्वामीजे
धर्मना उपदेश आथी. उपदेश सांलणीने परिषद पोलाना स्थाने पाछी जती
रही. ते अणे अने ते समथे अर्थ सुधर्मा स्वामीना अंतेवासी (शिष्य)
आर्थ जंबू नामना अनंगारे यावत् तेमनी पर्युपासना करतां तेमने आ
प्रभाण्णे पूछ्युं के हे भदन्त ! यावत् मुक्ति प्राप्त करेला श्रमण भगवान भडा-
वीरे छट्ठा अंगना प्रथम श्रुतस्कंधना उदाहरणुने आ पूर्वोक्त रूपे अर्थ
निरूपित कर्थे छे तो हे भदन्त ! ते श्रमण भगवान भडावीरे-के जेभण्णे
मुक्तिस्थानने भेणवी दीधुं छे-द्वितीय श्रुतस्कंधनी धर्मकथाओने शो अर्थ
निरूपित कर्थे छे. आ प्रभाण्णे जंबूना प्रश्नने सांलणीने श्री सुधर्मा स्वामीजे

श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन धर्मकथानां दशवर्गाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा तानेव दर्शयति—
 'चमरस्स' चमरस्स=चमरेन्द्रस्य दाक्षिणात्यासुरकुमारेन्द्रस्य अग्रमहिषीणां प्रथमो-
 वर्गः १ । 'वल्लिस्स' वल्लिनाम्नः 'वड्ढरोयणिंदस्स' वैरोचनेन्द्रस्य=वि=विविध-
 प्रकारैः रोचन्ते=दीप्यन्ते दाक्षिणात्यासुरकुमारेभ्यो विशिष्टदीप्तिमत्त्वात् इति विरो-
 चनाः, त एव वैरोचनाः=औदीच्यासुरकुमारास्तेषामिन्द्रः वैरोचनेन्द्रस्तस्य 'वड्ढरो-
 यणरन्नो' वैरोचनराजस्य=वैरोचनाधिपतेः अग्रमहिषीणां द्वितीयो वर्गः २ । असु-
 रेन्द्रवर्जितानां 'दाहिणिल्लाणं' दाक्षिणात्यानां=दक्षिणदिक्सम्बन्धिनां भवन-
 वासिनामिन्द्राणामग्रमहिषीणां तृतीयो वर्गः ३ । 'उत्तरिल्लाणं' उत्तरीयाणामसु-
 रेन्द्रवर्जितानां भवनवासिनामिन्द्राणामग्रमहिषीणां चतर्थो वर्गः ४ । दाक्षिणात्यानां
 वानव्यन्तराणामिन्द्राणामग्रमहिषीणां पञ्चमो वर्गः ५ । उत्तरीयाणां वानव्यन्तरा-
 णामिन्द्राणामग्रमहिषीणां षष्ठो वर्गः ६ । चन्द्रस्याग्रमहिषीणां सप्तमो वर्गः ७ ।

स्वामी ने उनसे कहा—हे जेजू ! सुनो—यावत् सुक्तिस्थान को प्राप्त हुए
 श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथाओं के दश वर्ग प्रज्ञप्त किये हैं—(तं
 जहा) वे इस प्रकार हैं—(चमरस्स अग्रमहिसीणं पढमेवग्गे ? वल्लिस्स
 वड्ढरोयणिंदस्स वड्ढरोयणरन्नो अग्रमहिसीणं वीओ वग्गो २ असुरिंद-
 वज्जियाणं दाहिणिल्लाणं भवणवासीणं इंदाणं अग्रमहिसीणं तड्ढओ
 वग्गो ३ उत्तरिल्लाणं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं इंदाणं अग्रम-
 हिसीणं चउत्थो वग्गो ४ दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं—इंदाणं अग्रमहि-
 सीणं पंचमो वग्गो, उत्तरिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्रमहिसीणं छट्ठो
 वग्गो ६, चंदस्स अग्रमहिसीणं सत्तमो वग्गो, सूरस्स अग्रमहिसीणं
 अट्ठमो वग्गो. सक्कस्स अग्रमहिसीणं णवमो वग्गो, ईसाणस्स अग्रम-
 हिसीणं दसमो वग्गो) चमरेन्द्र की—दाक्षिणात्य असुरकुमारेन्द्र की—

तेमने कहूं के छे ७'पू ! सांभयो, यावत् सुक्तिस्थानने प्राप्त करी युकेला
 श्रमणु लशवान मड्ढवीरे धर्मकथाञ्चोना दश वर्गो प्रज्ञप्त कर्यो छे (तंजहा)
 तेञ्चो आ प्रभाळु छे—

(चमरस्स अग्रमहिसीणं पढमेवग्गे वल्लिस्स वड्ढरोयणिंदस्स वड्ढरोयणरन्नो
 अग्रमहिसीणं वीओ वग्गो २ असुरिंदवज्जियाणं दाहिणिल्लाणं भवणवासीणं
 इंदाणं अग्रमहिसीणं तड्ढओ वग्गो ३, उत्तरिल्लाणं असुरिंदवज्जियाणं भवण-
 वासीणं इंदाणं अग्रमहिसीणं चउत्थो वग्गो ४ दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं—
 इंदाणं अग्रमहिसीणं पंचमो वग्गो, उत्तरिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्रमहि-
 सीणं छट्ठो वग्गो ६, चंदस्स अग्रमहिपीणं सत्तमो वग्गो, सूरस्स अग्रमहिसीणं अट्ठमो
 वग्गो, सक्कस्स अग्रमहिसीणं णवमो वग्गो, ईसाणस्स अग्रमहिसीणं दसमो वग्गो)

सुरस्स=सूर्यस्याग्रमहिषीणामष्टमो वर्गः ८ । शक्रस्याग्रमहिषीणां नवमो वर्गः ९ ।
ईशानस्याग्रमहिषीणां दशमो वर्गः १० ॥ सू० १ ॥

मूलम्—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं
दसवग्गा पणत्ता पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव
संपत्तेणं के अट्टे पन्नत्ते ?, एवं खल्लु जंबू ! समणेणं जाव संप-
त्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता तं जहा—काली

अग्रमहिषियों का—पट्टदेवियों का—प्रथम वर्ग, बलि नामक वैरोचनेन्द्र की
अग्रमहिषियोंका द्वितीय वर्ग, असुरेन्द्रको छोड़कर दक्षिण दिशा संबंधी
भवनवासियों के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का तृतीय वर्ग, उत्तर दिशा
संबंधी भवनवासियों के इन्द्रों की कि जिन में असुरेन्द्र छोड़ दिये गये
हैं अग्रमहिषों का ४ चतुर्थ वर्ग, दक्षिण दिशा संबंधी वानव्यन्तरो के
इन्द्रों की अग्रमहिषियोंका पंचम वर्ग, उत्तर दिशा संबंधी वानव्यन्तरोके
इन्द्रों की अग्रमहिषियोंका छद्दा वर्ग, चन्द्र की अग्रमहिषियों का ७ वां
वर्ग, सूर्यकी अग्रमहिषियोंका आठवां वर्ग, शक्र की अग्रमहिषियों का
नववां वर्ग, और ईशानकी अग्रमहिषियों का दशमां वर्ग । वैरोचन उत्तर-
दिशाके असुरकुमार हैं । ये दक्षिण दिशासंबंधी असुरकुमारोंकी अपेक्षा
विशिष्ट दीप्तिसंपन्न होते हैं इसलिये इन्हें वैरोचन कहा गया है। सू० १ ॥

अमरेन्द्रनी—दक्षिणना असुरकुमारेन्द्रनी—अग्रमहिषीओना—पट्टदेवीओना
पडेढो वर्ग, बलि नामे वैरोचनेन्द्रनी अग्रमहिषीओना भीले वर्ग, असुरेन्द्रने
आह करतां दक्षिण दिशाना भवनवासीओना इन्द्रोनी अग्रमहिषीओना त्रीले
वर्ग, उत्तर दिशा संबंधी भवनवासीओना इन्द्रोनी के ओओमांथी अमुरेन्द्रोने
आह करी दीधा छे. अग्रमहिषीओना ओथो वर्ग, दक्षिण दिशा संबंधी वान-
व्यन्तरोना इन्द्रोनी अग्रमहिषीओना पांचमो वर्ग, उत्तर दिशा संबंधी वान-
व्यन्तरोना इन्द्रोनी अग्रमहिषीओना सातमो वर्ग, सूर्यनी अग्रमहिषीओना
आठमो वर्ग, शक्रनी अग्रमहिषीओना नवमो वर्ग अने ईशाननी अग्रमहि-
षीओना दशमो वर्ग. वैरोचन उत्तर दिशाना असुरकुमार छे. ओ दक्षिण दिशा
संबंधी असुरकुमारे करतां विशिष्ट दीप्ति-संपन्न डाय छे ओथी न ओ
वैरोचन कडेवामां आव्या छे. ॥ सूत्र १ ॥

राईरयणी विज्जू मेहा, जइणं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं
 पढमस्स वउगस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं भंते!
 अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?, एवं खलु
 जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणासिलए
 चेइए सेणिए राया चेह्णणा देवी सामी समोसरिए परिसा
 णिग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं
 काली नामं देवी चमरचंचाए रायहाणोए कालवडिंसगभवणे
 कालंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं मह-
 त्तरियाहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं
 अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं
 बहुएहि य कालवडिंसयभवणवासीहिं असुरकुमारेहिं देवीहि
 य सद्धिं संपरिवुडा महया हय जाव विहरइ, इमं च णं केवल-
 कप्पं जंबुद्वीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणो२ पासइ,
 तत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे
 नगरे गुणासिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हत्ता संज-
 मेण तवस्ता अप्पाणं भावेमाणं पासइ पासित्ता हट्टुट्टुच्चित्तमा-
 णंदिया पीइमणा जाव हियया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भु-
 ट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ
 ओमुइत्ता तित्थगराभिमुहा सत्तट्टुपयाइं अणुगच्छइ अणुग-
 च्छित्ता वामं जाणुं अंचइ अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि
 निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ निवेसित्ता ईंसि

पच्चुण्णमंइ पच्चुण्णमित्ता कडयतुडियथंभियाओ भुयाओ
 साहरइ साहरित्ता करयल जाव कट्टु एवं वयासी-णमोऽत्थुणं
 अरहंताणं जाव संपत्ताणं नमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महा-
 वीरस्स जाव संपाविउकामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं
 इह गया पासउ मं भगवं तत्थ गए इह गयत्तिःइ वंदइ
 नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा निस-
 ण्णा, तएणं तीमे कालीएदेवीए इमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था
 -सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता जाव पज्जुवा-
 सित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ
 सद्दावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं
 महावीरे एवं जहा सूरियाभो तहेव आणत्तियं देइ जाव दिव्वं
 सुरवराभिगमणजोग्गं जाणविमाणं करेह करित्ता जाव पच्च-
 प्पिणह, तेवि तहेव करेत्ता जाव पच्चप्पिणंति, णवरं जोयण-
 सहस्सवित्थिणं जाणविमाणं सेसं तहेव, तहेव णामगोयं
 साहेइ तहेव नट्टविहिं उवदंसेइ जाव पडिगया ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ जइणं भंते ’ इत्यादि । जम्बूस्वामीपृच्छति—यदि खलु ‘ भंते ’
 भदन्त ! = हे भगवन् ! श्रमणेन यात्रत्संपाप्तेन धर्मकथानां दशवर्गाः प्रज्ञाः

—जइणं भंते ! इत्यादि ।

टीकार्थः—(जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा
 पणत्ता पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे
 पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स) जंबूवामी ओ

जइणं भंते ! इत्यादि—

(जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता पढमस्स
 णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! सम-
 णेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स०)

प्रथमस्य खलु हे भदन्त ! वर्गस्य श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? सुधर्मास्वामीप्राह—एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन प्रथमस्य वर्गस्य पञ्च अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—काली १, रात्रिः २, रजनी ३, विद्युत् ४, मेघा ५ । जम्बूस्वामी पृच्छति—यदि खलु हे भदन्त ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन प्रथमस्य वर्गस्य पञ्च अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तत्र प्रथमस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? । सुधर्मा स्वामी कथयति—

एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं गुणशिल्कं-चैत्यम्, श्रेणिकी राजा, चेल्लना देवी आसीत् । सामी=स्वामी श्रीमहावीरस्वामी

सुधर्मास्वामी से पूछते हैं कि (भंते) हे भदन्त ! (जहणं) यदि (समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पण्णात्ता) श्रमण भगवान् महावीर ने जो कि मुक्तिस्थान को प्राप्त हो चुके हैं धर्मकथा के दश वर्ग प्ररूपित किये हैं तो (णं भंते) हे भदन्त ! (समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स के अट्ठे पन्नत्ते) उन्हीं श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो मोक्ष में विराजमान हो चुके हैं प्रथम वर्ग का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है ? (एवं खलु जंबू समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णात्ता, तं जहा—काली राई रयणी विज्जू मेहा जहणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणापण्णात्ता पढमस्स णं भंते अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णात्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चैइए सेणिए राया चेल्लणादेवी) इस प्रकार जंबू स्वामी के प्रश्न को सुनकर सुधर्मास्वामी ने

जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे ई (भंते) हे भदन्त ! (जहणं) ने (समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पण्णात्ता) श्रमण भगवान् महावीर के नेमणे मुक्तिस्थान भेगवी दीधुं छे. धर्मकथाओना दश वर्गो प्ररूपित कर्था छे तो (णं भंते) हे भदन्त ! (समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स के अट्ठे पन्नत्ते) तेन श्रमण भगवान् महावीर के नेमो मोक्षमां विराजमान थप कृत्या छे—पडेइ वार्गना शेो अर्थं प्रज्ञप्त कर्था छे ?

(एवं खलु जंबू समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णात्ता, तं जहा—काली राई रयणी विज्जू मेहा जहणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णात्ता । पढमस्स णं भंते, अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णात्ते । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चैइए सेणिए राया चेल्लणा देवी)

‘समोसरिए’ समवसतः समागतवान् । ‘परिसा’-परिपत्=राजगृहनगर-वास्तव्यो जनसमूहः ‘णिग्गया’ निर्गता=भगवद्वन्दनार्थं स्व स्वस्थानान्निस्सृता, भगवता धर्मकथा कथिता यावद् परिषद् भगवन्तं ‘पञ्जुवासइ’ पर्युपास्ते=सेवते, तस्मिन् काले तस्मिन् समये काली नाम देवी चमरचञ्चायां राजधान्यां

उन्हें उत्तर देने के अभिप्राय से कहा कि (एवं खलु जंबू !) हे जंबू ! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है सुनो यावत् संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन प्रश्न किये हैं वे ये हैं—काली १, रात्रि २, रजनी ३, विद्युत् ४, और मेघा ५। अब पुनः जंबू स्वामी प्रश्न करते हैं कि हे भदंत ! यावत् सुक्तिस्थान को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन निरूपित किये हैं तो मैं आपसे पूछना हूँ कि भदंत यावत् मोक्ष को संप्राप्त उन्हीं श्रमण भगवान् महावीरने प्रथम अध्ययनका क्या अर्थ निरूपित किया है ? इसका उत्तर उन्हें सुधर्मास्वामी इस प्रकार देते हैं—हे जंबू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामकी नगरी थी—उस में गुणशिलक नाम का उद्यान था—नगरी के राजा का नाम श्रेणिक था । उसकी रानी का नाम चेल्लना था । (सामी समोसरिए परिसा णिग्गया जाव परिसा पञ्जुवासइ—तेणं कालेणं तेणं समएणं काली नामं देवी, चमरचञ्चाए रायहाणीए

आ प्रभाणु ज'णु स्वामी । प्रश्नने सांलणीने तेमने उत्तर आपवाना उदेश्थी श्री सुधर्मा स्वामीणे कळुं के (एवं खलु जंबू !) के ज'णु ! तमार प्रश्नने उत्तर आ प्रभाणु छे. सांलणी, यावत् संप्राप्त श्रमणु भगवान मडावीरे पडेला वर्गना पांच अध्ययने प्रश्न कयां छे. तेणे आ प्रभाणु छे— १ काली, २ रात्रि, ३ रजनी, ४ विद्युत्, अने ५ मेघा.

इहे इरी ज'णु स्वामी प्रश्न करे छे के के के लइन्त । यावत् सुक्तिस्थानने प्राप्त करी युकेला श्रमणु भगवान मडावीरे पडेला वर्गना पांच अध्ययने निरूपित कयां छे तो हुं तमने इरी पूछवा मायु छुं के के लइन्त । यावत् मोक्षने प्राप्त करी युकेला ते ज' श्रमणु भगवान मडावीरे पडेला अध्ययनने शो अर्थ निरूपित कयां छे ? श्री सुधर्मा स्वामी तेने उत्तर आपतां कडेवा लाग्या के ज'णु ! ते कणि अने ते वणते राजगृह नामे ओक नगरी इती. तेमां शुणुशिलक नामे उद्यान इतुं. नगरीना राजतुं नाम श्रेणिक इतुं. तेनी राणीनुं नाम चेल्लना इतुं.

(सामी समोसरिए परिसा णिग्गया जाव परिसा पञ्जुवासइ—तेणं कालेणं तेणं समएणं काली नामं देवी, चमर चञ्चाए रायहाणीए कालवडिसगभवणे

‘कालवर्डिसगभवणे’ कालावतंसकभवने काले=कालाख्ये सिंहासने चतसृभिः सामानिकसाहस्रीभिः, चतसृभिर्महचरिकाभिः, सपरिवाराभिस्तिसृभिः=त्राहाभ्यन्तरमध्यरूपाभिः ‘परिसाहिं’ परिपङ्क्तिः पारिवारिकदेवीरूपाभिः, सप्तभिः ‘अणिएहिं’ अनीकैः=हयभजरथपदातिवृषभगन्धर्वनाट्यरूपैः, अत्रायं विवेकः-

कालवर्डिसगभवणे कालंसि, सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महरियाहिं, सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं वहुएहिं कालवर्डिसगभवणवासिहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडा महयाहय जाव विहरइ) वहां पर श्री महावीर स्वामी का आगमन हुआ। लोगों को जब इनके आगमन की खबर लगी-तब समस्त राजगृह निवासी जन इन का वंदना करने के अभिप्राय से गुणशिलक उद्यान में आये। भगवान् ने धर्मकथा कही-यावत् परिपदने भगवान् की पर्युपासना की। उस काल में और उस समय में काली नाम की देवी चमरचंपा नाम की राजधानी में रहती थी। इसके भवन का नाम कालावतंसक था। जिस सिंहासन पर यह बैठती थी उसका नाम काल था। यह उस भवन में चार हजार सामानिकों की परिषदां के साथ, चार हजार महत्तरिकाओं के साथ, अपने २ परिवारवाली तीन हजार पारिवारिक देवियों के साथ, सान अनीकोंके-हय, गज, रथ, पदाति, वृषभ, गंधर्व एवं नाट्यरूपसैन्य के-

कालंसि, सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महरियाहिं, सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं वहुएहिं कालवर्डिसगभवणवासिहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडा महयाहय जाव विहरइ)

त्यां श्री महावीर स्वामीतुं आगमन थयुं. न्यारे लोकेने तेमना आगमननी न्दथु थधं त्त्यारे राजगृहना भधा लोके तेमने वंदन करयाना अलिप्रायथी शुलुशिलक उद्यानमां आन्या. भगवाने धर्मकथा कही संभजावी. यावत् परिषदे भगवाननी पर्युपासना करी. ते काणे अने ते समथे काणी नामनी देवी अमरयथा नामनी राजधानीमां रहेती छती. तेना भवनतुं नाम कालावतंसक छतुं जे सिंहासन उर ते भेसती छती तेतुं नाम काण छतुं. ते भवनमां ते चार छंजर सामानिकेनी परिषदानी साथे, चार छंजर महत्तरिकाओनी साथे, चार छंजर पारिवारिक देवीओनी साथे सात अनीके-होडा, डाधी, रथ, पायदण, वृषभ, गंधर्व अने नाट्य

आद्यपञ्चकानि सङ्ग्रामाय, गन्धर्वनाट्ये पुनरुपभोगायेति, सप्तभिरनीकाधिप-
तिभिः, षोडशभिः आत्मरक्षकदेवसाहस्रीभिः, अन्यैर्वहुभिश्च कालावतंसकभवनवासि-
भिरसुरकुमारैर्देवैर्देवीभिश्च साङ्गैः संपरिहृता 'महयाहय जाव विहार' महताऽहत्
यावद् विहरति—'महयाऽऽहयनदृगीयवाइयततीतलतालतुडियधणमुङ्गपडुप्पचाइयर-
वेणं' महताऽऽहतनाट्यगीतवादिता तन्त्रीतलताल त्रुडित घनमृदङ्गपडुप्रवादितारवेण,
तत्र—'महता' रवेणेति सम्बन्ध, आहतानि=अव्याहृतानि यानि नाट्यगीतानि,
तथा—वादितानि—तन्त्री=वीणा, तलाः=हस्ततालाः, तालाः=कांस्यतालाः, त्रुडि-
तानि=शेषाणि तूर्यादिवाद्यानि, तथा घन इव मृदङ्गः=घनध्वनिसादृश्याद् घनमृदङ्गः=
स चासौ पटु प्रवादितश्चेति घनमृदङ्गपटुप्रवादितः, तत्स्त्रिपदो द्वन्द्वः, तेषां यो
रवस्तेन—उपलभितान् दिव्यान् भोगभोगान् शब्दादीन् भुञ्जाना विहरति । 'इमं
च णं' अस्मिन्नवसरे खलु केवलरूपं=संपूर्णम् जम्बूद्वीपं नाम द्वीपं=मध्यजम्बूद्वीपं
विपुलेन 'ओहिणा' अथिना=अथिज्ञानेन 'अभोएमाणी २' अभोगयमाना २
पश्यन्ति पुनः पुनरुपयोगं ददती सती पश्यति । किं पश्यति ? इत्याह—'तत्थ' तत्र=
अथिज्ञानोपयोगे श्रमणं भगवन्तं महावीरं जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे राजशुहे-

साथ अनीकाधिपतियों के साथ, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के साथ,
तथा और भी बहुत से कालावतंसक भवन में निवास करनेवाले असुर-
कुमार देवों के एवं देवियों के साथ परिश्रुत होकर रहा करती थी।
अव्याहृत (सतत) नाट्यगीतों के एवं वादिन तन्त्री, हस्त, ताल, कांस्य ताल,
त्रुडित आदि तूर्यादिवाद्यों के एवं मेघ की ध्वनि जैसे अच्छी तरह
बजाये गये मृदङ्गों के सुन्दर २ शब्दों से उपलक्षित दिव्य भोगों को
भोगती हुई अपने समय को आनन्द के साथ व्यतीत किया करती थी।
(इमं च णं केवलरूपं जम्बूद्वीपं द्वीपं विउलेण ओहिणा अभोएमाणी २
पासइ, तत्थ समणं भगवं महावीरं जम्बू द्वीपे द्वीपे भारते वासे रायगिहे

इप सैन्यनी साथे अनीकाधिपतिओनी साथे, सोण डंजर आत्मरक्षक देवोनी
साथे तेमअ गीत पणु धणा कालावतंसक लउनेनामां निवास करनारा असुर-
कुमारदेवो अने देवीओनी साथे परिश्रुत थउने रडेती डती. ते अयाहृत
(सतत) नाट्य गीतो, वादित तन्त्री, हस्तताल, कांस्यताल, त्रुडित वगेरे त्थं वगेरे
वाधो, मेघना ध्वनिनी नेम सारी पेटे वगाडवामां आवेला मृदङ्गोना सुंर
शुभेथी उपलक्षित दिव्य लोओनो उपभोग करती योताना समयने सुणेशी
पसार करती रडेती डती.

(इमं च णं केवलरूपं जम्बूद्वीपं द्वीपं विउलेण ओहिणा अभोएमाणी २
पासइ, तत्थ समणं भगवं महावीरं जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वासे रायगिहे णयरे

नगरे गुणशिलके चैत्ये यथाप्रतिरूपं-यथाकल्पम् ' उग्राहं ' अवग्रहं=वसतेराज्ञाम्
' उगिगणित्ता ' अवग्रह संयमेन तपसा आत्मानं भावेयन्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्ट-
हृष्टचित्तानन्दिता ' पीडमणा ' प्रीतिमनाः=प्रसन्नमनस्काः ' जात्रहियया ' यात्र-
हर्षवशविसर्पदहदया=हर्षवशादुल्लसितह रया सिंहासनाद् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थायं

णयरे गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्राहं उगिगणित्ता संजमेणं
तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ, पासित्ता हृष्ट-हृष्ट चित्तमाणंदिया
पीडमणा जाव हियया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ
पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता तित्थगराभि-
मुही सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता
दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निहइत्तु च्चिक्खुत्तो मुद्धानं धरणियलंसि निवे-
सेइ, निवेसित्ता..... कइत्तु एवं वयासी) इस अवसर में उसने
केवल कल्प-सम्पूर्ण-जंबूद्वीप नामके द्वीपको-मध्यजंबूद्वीप को-विपुल
अवधिज्ञान के द्वारा वार २ उपयोग देकर देखा-। उस समय उसने
श्रमण भगवान् महावीर को जंबूद्वीपान्तर्गत भरत क्षेत्र में राजगृह
नगर में गुणशिलक चैत्य में यथाकल्प वसति की आज्ञा लेकर संयम
एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए स्थित देखा। देखकर वह बहुत
अधिक हृष्ट एवं तुष्ट हुई। उसका मन प्रीति से भर आया। हर्ष
के वश से हृदय उल्लसित हो उठा। वह उसी समय अपने सिंहासन

गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्राहं उगिगणित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे-
माणं पासइ, पासित्ता हृष्ट-हृष्ट चित्तमाणंदिया पीडमणा जाव हियया सीहा-
सणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ
ओमुयइ, ओमुइत्ता तित्थगराभिमुही सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता, वामं-
जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निहइत्तु च्चिक्खुत्तो मुद्धानं धरणिय-
लंसि निवेसेइ निवेसित्ता.....कइत्तु एवं वयासी)

ते समये तेष्से ङवलकल्प-संपूर्ण-जंबूद्वीप नामना द्वीपने मध्य जंबू
द्वीपने विपुल अवधिज्ञानना उपयोगथी वारवार जेथे. ते समये तेष्से श्रमण
भगवान् महावीरने जंबूद्वीपमां आवेला भरतक्षेत्रना राजगृह नगरना गुण-
शिलक चैत्यमां यथाकल्प वसतीनी आज्ञा लधने संयम अने तप द्वारा पोताना
आत्माने भावित करता रहता जेथे जेधने ते भूण ज हृष्ट अने तुष्ट थर्ष
गर्ष. तेतुं मन प्रेमथी तरणोण थर्ष गथुं हर्षातिरेकथी हृदय उल्लसित थर्ष
गथुं. ते ते ज वणते पोताना सिंहासन उपरथी उडी अने उडीने ते पादपीठ

पादपीठात् 'पञ्चोत्सृज' प्रत्यवरोहति=अवतरति, प्रत्यवसृज्य=अवतोर्य 'पाउयातो' पादुके 'ओमुयद्' अवसृज्यति=गरित्यजति, मुक्त्वा तीर्थकराभिमुखी सतीमत्पा-
 टपदानि 'अणुगच्छद्' अणुगच्छति=सम्मुखं गच्छति, अनुगम्य वामं जानुं
 'अंचेद्' अञ्चति=उर्ध्वीकरोति, अञ्चित्वा=उर्ध्वीकृत्य दक्षिणं जानुं धरणीतले
 'निहङ्कु' निहृत्य=स्थापयित्वा 'निकलुत्तो' त्रिः कृत्वः=त्रिवारम् 'मुद्राणं'
 मूर्धानं=मस्तकं धरणीतले निवेशयति=लगयति, निवेश्य 'ईसि पञ्चुणमह' ईप-
 त्यत्यवनमति=स्तोकं शिरोनामयति, प्रत्यवनम्य 'कडयतुडिययंभियाओ' कटक्रुटित
 स्तम्भिते कटके=करभूपणे तुत्रिते=बाहुभूपणे तैः स्तम्भिते=अवष्टब्धे 'भुयाओ'
 भुजे 'साहरद्' संहरति=एकत्रीकरोति, संहृत्य 'करयल जाव कडु' करतलपरि-
 गृहीतं शिर आवर्त्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्—'नमोत्थुणं' इत्यादि-
 नमोऽस्तु खलु अर्हद्भ्यः यावद् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं सम्पाप्तेभ्यः, नमोऽस्तु

से उठी-और उठकर वह पादपीठ से होकर नीचे आई-नीचे आकर
 उसने दोनों पादुकाओं को पैरों में से उतार दिया। उतार कर फिर वह
 तीर्थकराधिष्ठित दिशा की ओर सात आठ पद आगे गई। वहाँ आकर
 उसने अपने वाम जानु को ऊँचा किया-ऊँचा कर के फिर दक्षिण जानु
 को नीचे धरणीतल में रखा-रखकर फिर तीन चार अपने मस्तक को
 नीचे भूमिपर लगाया-लगाकर फिर वह कुछ झुकी-शिर को नीचे-
 नचाया। बाद में कटक और क्रुटित से भूपित भुजाओं को एकत्रित
 किया-एकत्रित करके फिर उसने उन दोनों हाथोंकी अंजलि बनाई-और
 उसे मस्तक पर आदक्षिण प्रदक्षिण कर इस प्रकार कहा (नमोत्थुणं
 अरहंताणं जाव संपत्ताणं नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

उपर थधने नीचे आवां. नीचे आनीने तेबे भने पादुकाओने पयोभांथी
 उतारी दीधी. उतारीने ते तीर्थकर ने दिशा तरक्ष विराजमान उता ते दिशा
 तरक्ष सात-आठ उगलां आगण गध त्यां ऋधने तेबे पोताना उग्या दीयथुने
 छाये थर्थो. छाये करीने पधी तेबे नमष्ठा दीयथुने नीचे पृथ्वी उपर टेकथो
 टेकनीने तेबे त्रथ पथत पोताना म तधने नीचे पृथ्वी उपर टेकथुं, टेकनीने
 ते थोडी नमी-मस्तकने नीचे नमाव्युं. त्थारपधी तेबे कटक अने क्रुटितथी
 विबुधित बुज्जओने लेगी करी, लेगी करीने तेबे तेओ अनेनी अंजलि
 बनावी अने तेने मस्तक उपर आदक्षिण प्रदक्षिण-पूर्वक द्वेरीने आ प्रभावे उद्धं

(नमोत्थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महा-
 वीरस्स जाव संपादिकामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं ह गया पासउ मं गगव

खलु श्रमणाय भगवते महावीराय यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तुकामाय, वन्दे खलु भगवन्तं 'तत्प्रगयं' तत्रगतं=जम्बूद्वीपे राजगृहनगरस्य गुणशिलको- धाने समवसतम् 'इहगया' इहगता=चमरवञ्चाराजधानी स्थिताऽहम्; पश्यतु मां भगवान् तत्रगत इहगतम्, 'त्ति ऋडु' इति कृत्वो=इत्युक्त्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा सिंहासनवरे 'पुरत्थाभिमुही' पौरस्त्याभिमुखी पूर्वदिशाभि- मुखी 'निसण्णा' निपण्णा=उपविष्टा । ततः खलु तस्याः काल्या देव्या अयमेतं-

जाव संपाविउकामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थ गयं इह गया पासउ मं भगवं तत्थ गए इह गयं त्ति ऋडु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासनवरंसि पुरत्थाभिमुही निसण्णा तएणं तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था) यावत् सिद्धिगति नामक स्थानं को प्राप्ते हुए अर्हत भगवन्तों के लिये मेरा नमस्कार हो। सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने की कामनावाले श्रमण भगवान् महावीर को मैं नमस्कार करती हूँ। जम्बूद्वीप में राजगृह नगर के गुणशिलक उद्यान में इस समय विराजमान उन भगवान् को मैं इस चमर वंषा नाम की राजधानी में रही हुई नमस्कार कर रही हूँ। वहाँ पर रहे हुए वे प्रभु मुझे यहाँ पर रही हुई देखे। इस प्रकार कहकर उसने उनको वंदना की -नमस्कार किया-वंदना नमस्कार करके फिर वह अपने उत्तम सिंहासन पर आकर पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठ गई। इसके बाद उस काली देवी के यह इस प्रकार का यावत् मनः संकल्प उत्पन्न हुआ- (सैयं खलु मे सम्पन्नं भगवं महावीरं वंदित्वा जाव पज्जुवासित्तए त्ति

तत्थ गए इह गयं त्ति ऋडु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता सीहासनवरंसि पुरत्थाभिमुही निसण्णा-तएणं तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था)

यावत् सिद्धिगति नामक स्थानने प्राप्त थयेत्ता अहं त भगवतोने भारा नमस्कार छे. सिद्धिगति नामक स्थानने जेणववानी कामनावाणा श्रमणु भगवान् भडावीरने हुं नमस्कार करे छुं. जम्बू द्वीपना राजगृह नगरना गुणशिलक उद्यानमां अत्थारे विराजमान ते भगवानने हुं आ अमरयंथा नामनी राजधानीमां रहेती नमस्कार करी रही छुं. त्यां विराजमान ते प्रभु अहीं रहेती भने लुब्धे. आ प्रमाळु कडीने तेळ्जे तेभने वंदन कथां अने नमस्कार कथां. वंदन अने नमस्कार करीने ते पोताना उत्तम सिंहासन उपरि आवीने पूर्व दिशा तरफ मुण्ण करीने जेसी गछ. त्थारपणी ते काली देवीने आ जेतने। यावत् मनः संकल्प उत्पन्न थयो के—

द्वेषः यावत् मनः-सङ्कल्पः समुदपद्यत-श्रेयः खलु मम श्रमणं भगवन्तं महावीरं
 वन्दित्वा यावत् 'पञ्चुवासिचण' पर्युपासितुम्-सेवितुम्, इति कृत्वा-इतिमन्त्रि-
 निवाय एवम्-उत्तरीत्या 'संपेहेइ' सम्प्रेक्षते-विचारयति. सम्प्रेक्ष्य-विचार्य
 'आभिओगिणदेवे' आभियोगिकात् देवान्-भृत्यदेवान् शब्दद्वयि-आह्वयति,
 शब्दयित्वा-आहूय एवमवदत्-एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! श्रमणो भगवान् महा-
 वीरः एवं यथा सूर्यामस्तयैव आज्ञापिकां ददाति यावत् दिव्यं सुरवराभिगमन-
 योग्यं 'जाणविमाणं' धानविमानं-यानाय गमनार्थविमानं कुन्त. कृत्वा यावत्-
 ममाज्ञां 'पच्चप्पिणह' प्रत्यर्पयत-मद्यं निवेदयत । तेषपिदेवाः तथैव कृत्वा यावत्

कइइ एवं संपेहेइ संपेहिता आभिओगिए देवे सद्भावेइ, सद्भावित्ता एवं
 वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे एवं जहा नूरि-
 याभो तद्देव आणत्तियं देइ जाव दिव्वं सुरवराभिगमणजोणं जाण-
 विमाणं करेह, करित्ता जाव पच्चप्पिणह) मुझे अब यही उचित-श्रेय-
 स्कर है-कि मैं श्रमण भगवान् महावीर को वंदना करके यावत् उनकी
 पर्युपासना कहूँ इस प्रकार उसने पूर्वाक्तरूप से विचार किया । विचार
 करके उसने उसी समय आभियोगिक देवों को बुलाया-और बुलाकर
 उससे इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियों ! श्रमण भगवान् महावीर राज-
 गृह नगर के गुणशिलक उद्यान में पधारे हुए हैं-मैं उनको वंदना करने
 के लिये जाना चाहती हूँ-अतः तुमलोग सेरे लिये दिव्य सुरवराभिग-
 मन योग्य एकयान-विमान तैयार करो इस प्रकार की उसने उन्हें
 सूर्याम देव की तरह आज्ञा दी । और स्थान में उनसे यह भी कह दिया

(सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्वा जाव पञ्चुवासिचण विकइइ एवं
 संपेहेइ, संपेहिता आभिओगिए देवे सद्भावेइ, सद्भावित्ता एवं वयासी एवं खलु
 देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे एवं जहा नूरियाभो तद्देव आणत्तियं देइ
 जाव दिव्वं सुरवराभिगमणजोणं जाणविमाणं करेह, करित्ता जाव पच्चप्पिणह)

। मारा माटे डुवे जे न वात थोअ्य छे के के हुं श्रमणु लभवन नडा-
 वीरने वडना करीने यावत् तेमनी पशुपासना करे, आ श्रमणु तेरे विचार
 करीने विचार करीने तेले तरत न आभियोगिक देवाने जे.ए.आ अने जे.ए.
 वीरे तेमने आ प्रभाहे कहुं के हे देवानुप्रियो ! श्रमणु लभवन नडावीरे
 राजगृह नगरना गुणशिलक उद्यानमा पधारेटा छे तेमने वंदन करवा माटे
 हुं त्या नया भिक्षुं छुं. जेथी तमे थधा मारा माटे दिव्य सुरवर.भिगमन
 थोअ्य जेक यान-विमान तैयार करे. आ प्रभाहे ते हो.डेने तेले नुपानदेवनी
 जेभ आज्ञा करी, अने माथे साथे तेजोने तेहे आ प्रभाहे कहुं के थ्यारे

प्रत्यर्पयन्ति=तदाज्ञानुसारेण कार्यं कृत्वा निवेदयन्ति । 'णवरं' नवरं=विशेष-
स्वयम्-यत्-सूर्याभस्य यानविमानं योजनशतसहस्रविस्तीर्णमस्ति, अस्यास्तु-
योजनसहस्रविस्तीर्णं यानविमानमस्ति, शेषं तथैव विज्ञेयम् । तथैव-सूर्याभदेवदेव
काली देवी स्वस्य नामगोत्रं साधयति=कथयति । तथैव=सूर्याभदेवदेव च नाट्य-
विधिम् उपदर्शयति, उपदर्श्य यावत् प्रतिगता=यत आगता तत्रैव प्रतिनिहृत्ता॥मू०२॥

शूलय-भंतेति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ
णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-कालिए णं भंते !
देवीए सा दिठ्वा देविट्ठीइ कर्हि गया० कूडागारसालादिट्ठतो,

कि जय वह विमान बनकर तैयार हो जावे-तब उसकी पीछे हमें खबर
कर देना। सो उन आभियोगिक देवों ने वैसा ही किया-और पीछे
इसकी खबर उसे कर दी। इसमें (जोयणसहस्रविस्थिणं जाणविमाणं
सेसं तहेव) विशेषता इतनी रही कि सूर्याभदेव का यान विमान एक
लाख योजन का विस्तारवाला था। तब कि इसका यह यान विमान १
हजार योजन का विस्तारवाला था। बाकी सब रचना इसकी उसी
सूर्याभ विमान की तरह जानना चाहिये। (तहेव णामगोयं साहेइ,
तहेव नाट्यविहिं उवदंसेइ जाव पडिगया) सूर्याभ देव की तरह काली
देवी ने अपने नाम गोत्र का कथन किया और सूर्याभ देव की तरह ही
नाट्यविधि को दिखलाया दिखलाकर फिर वह जहाँ से आई थी वहीं
पर पीछे गई सूत्र २ ॥

विमान तैयार थर्ध णय त्थारे तेनी भने णणु करवाभां आवे. त्थारपछी ते
आभियोगिक देवाये तेमज् कथुं. अने विमान तैयार थर्ध णवानी भणर
देवीनी पासे भोक्खवी द्वीधी आ विमानभां (जोयणसहस्रविस्थिणं जाण-
विमाणं सेसं तहेव) विशेषता आटली ज् इती के न्थारे सूर्याभदेवतुं यान-
विमान ओक दाण येअन अेटतुं विस्तारवाणुं इतुं त्थारे तेतुं आ यान-विमान
ओक इणर येअन अेटतुं विस्तारवाणुं इतुं भाडी रथना स'अ'धी तेनी भधी
विगत सूर्याभ-विमाननी जेम ज् णणुवी ओधये (तहेव णामगोयं साहेइ,
तहेव नाट्यविहिं उवदंसेइ जाव पडिगया) सूर्याभदेवनी जेम भाणी देवीये
येताना नाम-गोत्रतुं कथन कथुं अने सूर्याभदेवनी जेम ज् नाट्यविधि भतानी
अने भतानीने ते न्थाथी आवी इती त्थां ज् पाछी जती रही. ॥ सूत्र २ ॥

अहो णं भंते ! काली देवी महिद्धियाइ कालिए णं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविद्धीइ किण्णा लद्धा किण्णा पत्ता किण्णा अभि-
समण्णागया ?, एवं जहा सूरियाभस्स जाव एवं खलु गोयमा !
तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्वीवे दोवे भारहे वासे आम-
लकप्पा णाम णयरी होत्था वण्णओ अंबसालवणे चेइए जिय-
सत्तू राया तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए काले नामं गाहा-
वइ होत्था अड्डे जाव अपरिभूए, तस्स णं कालस्स गाहावइस्स
कालसिरी णामं भारिया होत्था, सुकुमाल जाव सुरूवा, तस्स
णं कालस्स गाहावइस्स धूया कालसिरीए भारियाए अत्तया काली
णामं दारिया होत्था, बुद्धा बुद्धकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडि-
यपुयत्थणी णिव्विन्नवरा वरपरिवज्जिया यावि होत्था, तेणं कालेणं
तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वद्धमा-
णसामी णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणताहस्सीहिं अट्टत्ती-
साए अज्जियासाहस्सीहिं सच्चिं संपरिवुडे जाव अंबसालवणे
सम्मोसडे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ, तएणं सा काली
दारिया इमीसे कहाए लद्धा समाणी हट्ट जाव हियया जेणेव
अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल जाव एवं
वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! पासे अरहा पुरिसादाणीए
आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं
अब्भणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पाय-
वंदिया गमित्तए ? अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करोहि;

तएणं सा कालिया दारिया अम्मापिईहिं अब्भणुत्ताया
समाणी हट्ट जाव हियया णहाया कयबलिकम्मा कायकोउय
मंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पवेसाइ मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिया
अप्पमहाग्घाभरणालंकियसरीरा चेडिया चक्कवालपरिकिण्णा साओ
गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव वाहिरिया उव-
ट्टाणसाला जेणेव धम्मिण्ण जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छित्ता धम्मियं जाणपवरं दूरुह्वा, तएणं सा काली दारिया
धम्मियं जाणपवरं एवं जहा दोवइ जाव पज्जुवासइ, तएणं
पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे थ सहइ-
महालयाए परिसाए धम्मं कहेइ, तएणं सा काली दारिया
पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिस-
म्म हट्ट जाव हियया पास अरहं पुरिसादाणीयं तिवखुत्तो
वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवंवयासी—सदहामि णं भंते !
णिग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भं वयह, जं णवरं देवाणु-
प्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तएणं अहं देवाणुप्पियाणं
अंतिए जाव पव्वयामि, अहासुहं देवाणुप्पिए !, तएणं सा
काली दारिया पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं एवंवुत्ता समाणी
हट्ट जाव हियया पासं अरहं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता
तमेव धम्मियं जाणपवरं दूरुहइ दूरुहित्ता पासस्स अरहओ पुरि-
सादाणीयस्स अंतियाओ अंबसालवणाओ चेइयाओ पडिनि-
क्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव आमलकप्पा नयरी तेणेव

उवागच्छइ उवागच्छित्ता आमलकप्पं णयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव
 वाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ध-
 म्मियं जाणपवरं ठवेइ ठवित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ
 पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मापियरा तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता करयल० एवं वयासी-एवं खल्लु अम्मयाओ !
 मए पासस्स अरहओ अंतिए धम्मं णिसंते सेऽवि य मे धम्मे
 इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए, तएणं अहं अम्मयाओ ! संसार
 भउविग्गा भीया जम्मणमरणाणं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भ-
 णुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ अंतिए मुंडा भवित्ता अगा-
 राओ अणगारियं पव्वइत्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडि-
 वंधं करेह, तएणं से काले गाहावई विपुलं असणं उवक्ख-
 डावेइ उवक्खडावित्ता मित्तणाइ णियगसयणसंबंधिपरियणं
 आमंतेइ आमंत्तित्ता तओ पच्छा पहाए जाव विपुलेणं पुप्फव-
 त्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेत्ता सक्काणेत्ता तस्सेव मित्तणाइणि-
 यगसयणसंबंधिपरियणस्स पुरओ कालियं दारियं सेयापीएहिं
 कलसेहिं पहावेइ पहावित्ता सव्वालंकारविभूत्तियं करेइ करित्ता
 पुरिससहस्सवाहिणियं सीयं दुरोहेइ दुरोहित्ता मित्तणाइणियग-
 सयणंसंबंधिपरियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सट्ठिव्वीए जाव रवेणं
 आमलकप्पं नयरिं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता
 जेणेव अंबसालवणे चेइए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 छत्ताइए तित्थगराइसए पासइ पासित्ता सीयं ठावेइ ठावित्ता

कालियं दारियं सीयाओ पञ्चोरुहइ तएणं तं कालियं दारियं अस्मा-
 पियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसा० तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-
 एवं खल्ल देवाणुप्पिया ! काली दारिया अम्हं धूया इट्ठा कंता
 जाव किमंग पुण पासणयाए ?, एसणं देवाणुप्पिया ! संसार-
 भउठ्विगा इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए सुंडा भदित्ता जाव
 पव्वइत्तए, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणिभिक्खं, दल-
 यामो पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं, अहासुहं
 देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह तएणं काली कुमारी पासं
 अरहं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं
 अवक्कमइ अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमह्वालंकारं ओभुयइ
 ओमुइत्ता सयमेव लोयं करेइ करित्ता जेणेव पासे अरहा पुरि-
 सादाणीए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पासं अरहं तिक्खुत्तो
 वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-आलित्ते णं
 भंते ! लोए एवं जाव सयमेव पठ्वाविया, तएणं पासे
 अरहा पुरिसादाणीए कार्लिं सयमेव पुप्फचूलाए अज्जाए
 सिस्सिणियत्ताए दलयइ, तएणं सा पुप्फचूला अज्जा कार्लिं
 दारियं सयमेव पठ्वावेइ, जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तएणं
 सा काली अज्जा जाया ईरियासमिया जाव गुत्तवंभयारिणी,
 तएणं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए अंतिए सामाइय-
 माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ वट्ठहिं चउत्तए जाव विहरइ ॥सू०३॥

टीका—कालीदेवीगमनानन्तरं गौतमः पृच्छति—‘ भंतेति ’ इत्यादि । ‘ भंतेति ’ हे भदन्त ! इति सम्बोध्य भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्वित्वा एवमवादीत्—काल्या खलु हे भदन्त । देव्यो सा=या साम्प्रतं दर्शिता सा दिव्या ‘ देविड्वी ’ देवर्द्धिः=विमानपरिवारादिरूपा, ‘ देवञ्जुई ’ देवद्युतिः=शरीराभरणादीनां दीप्तिरूपा ‘ देवणुभावे ’ देवानुभावः=शक्तिप्रभावादिरूपः, कुत्रगता ? कुत्र प्रविष्टा ? भगवानाह—शरीरं गता, शरीरमनु-

‘ भंते त्ति भगवं गोयमे ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—कालीदेवी के चले जाने के बाद (भगवं गोयमे) भगवान् गौतम ने (भंते त्ति) हे भदन्त ! इस प्रकार संबोधित कर (समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ) श्रमण भगवान् को वंदना की—नमस्कार किया (वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी) वंदना नमस्कार करके फिर वन्हों ने उनसे इस प्रकार पूछा—(कालिएणं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्वी ३ कहिं गया० कूडागारसालादिट्ठंनो, अहोणं भंते ! कालीदेवी महंङ्खिया ३, कालिएणं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्वि ३ किण्णा लद्धा, किण्णा पत्ता, किण्णा अभिसमण्णा गया ? एवं जहा सुरियाभस्स जाव) हे भदन्त ! कालीदेवी ने जो इस समय दिव्य विमान—परिवार आदिरूप ऋद्धि दिखलाई, शरीर, आभरण आदि की दीप्तिरूप जो देवद्युति एवं शक्ति प्रभाव आदिरूप जो देवानुभाव दिखलाया—चह सब कहाँ चला

‘ भंतेत्ति भगवं गोयमे ’ इत्यादि—

टीकार्थः—काली देवीना जता रह्या णाह (भगवं गोयमे) भगवान् गौतमे (भंतेत्ति) हे भदन्त ! या प्रभाञ्छे संबोधन करीने (समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ) श्रमणुं भगवान् महावीरने वंदन अने नमस्कार कर्था. (वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी) वंदना अने नमस्कार करीने तेमण्छे तेअश्रीने पूछथुं डे (कालिएणं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्वी ३ कहिं गया० कूडागारसालादिट्ठंनो, अहोणं भंते ! काली देवी महंङ्खिया ३, कालिएणं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्वि ३ किण्णा लद्धा, किण्णा पत्ता, किण्णा अभिसमण्णा गया ? एवं जहा सुरियाभस्स जाव)

हे भदन्त ! काली देवीअे अत्यारे के दिव्यविमान, परिवार वगेरैनी ऋद्धि अतापी, शरीर, आभरण वगेरैनी दीप्तिनी के देवद्युति. तेमअ शक्ति, प्रभाव वगेरैने के देवानुभाव अताअे ते अथो कथां अदश्य थळ गथे ? कथां प्रविष्ट थळ गथे ?

प्रविष्टा, 'कूडागारसालादिद्वंद्वो' अत्र कूटाकारशाला दृष्टान्तो बोद्धव्यः । 'अहो' आश्चर्यं खलु हे भदन्त ! कालीदेवी महर्द्धिका महाद्युतिका महानुभावा वर्तते काल्या खलु हे भदन्त ! देव्या सा दिव्या देवर्द्धिः ३ 'किष्णा' कथं=केन प्रकारेण 'लद्धा' लब्धा=अर्जिता, 'किष्णा' कथं=केन प्रकारेण 'पत्ता' प्राप्ता=स्वाधीनीकृता 'किष्णा' कथं=केन प्रकारेण 'अभिसमन्नागया' अभिसमन्वागता=उपभोगविषयतया समागता ? एवं 'जहासूरियाभस्स जाव' यथा-सूर्याभस्य यावत्=यथा सूर्याभदेवविषये गौतमस्वामिना प्रश्नः कृतस्तथैवात्रापि विज्ञेयः । अथ भगवान् कालीदेवीपूर्वभववृत्तान्तं वर्णयति- 'एवं खलु' इत्यादि । एवं खलु हे गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहेव=अस्मिन्नेव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आमलकल्या नाम नगरी आसीत् । 'वण्णओ' वर्णकः=नगरी-वर्णनग्रन्थऔपपातिसूत्रादवसेयः । तत्र आम्रशालवनं चैत्यं, जितशत्रू राजा

गया-? कहां प्रविष्ट हो गया ? इस प्रकार गौतम का प्रश्न सुनकर भगवान् ने उनसे कहा-शरीर में चला गया-शरीर में प्रविष्ट हो गया । इस विषय में कूटाकारशाला का दृष्टान्त जानना चाहिये । हे भदन्त ! काली-देवी महर्द्धिक, महाद्युतिक एवं महानुभाववाली है । इस कालीदेवी ने वह देवर्द्धि ३ किस प्रकार प्राप्त की अर्जित की किस प्रकार उसे अपने आधीन किया ? और किस प्रकार से उसने उसे अपने भोग की विषयभूत बनाई ? इस तरह गौतमस्वामी ने सूर्याभदेव के विषय में जिस तरह से प्रश्न किया उसी तरह से यहां पर भी जानना चाहिये-। अब भगवान् कालीदेवी के पूर्वभव के वृत्तान्त का वर्णन करते हैं-(एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं-इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पा णाम णयरी होत्था-वण्णओ-अंबसालवणे चेइए जियसत्तू

आ प्रभाषे गौतमने प्रश्न सांखणीने लगवाने तेमने कहुं के शरीरमां प्रविष्ट थध गयो-शरीरमां जतो रद्धो. आ विषे कूटाकार शालानुं दृष्टान्त लब्धुं लोद्धञ्जे. हे लहन्त ! काली देवी महर्द्धिक. महाद्युतिक अने महानुभाववाणी छे. आ काली देवीञ्जे ते देवर्द्धि ३ देवी रीते प्राप्त करी छे, अर्जित करी छे, देवी रीते स्वाधीन भनावी छे, अने तेञ्जे तेने देवी रीते पोताना उपलोगनी विषयभूता भनावी छे ? आ प्रभाषे गौतम स्वामीञ्जे स्योलहेवना विषे नेम प्रश्न करीं हतो तेमञ्ज अहीं पणु लब्धुंवे लोद्धञ्जे. लगवाने हुंवे काली देवीना पूर्वभवना वृत्तान्तनुं वर्णन करे छे-

(एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पा णाम णयरी होत्था-वण्णओ-अंबसालवणे चेइए जियसत्तू राया

वासीत् । तत्र खलु आमलकल्पायां कालो नाम गाथापतिरासीत् कीदृशः ? इत्याह-
 'अड्डे' आह्वयः=धनधान्यादि समृद्धि-समृद्धः, 'जाव' यावत् 'अपरिभूए'
 अपरिभूतः=बहुजनैरपि परामर्षितुमशक्यः । तस्य खलु कालस्य गाथापतेः काल-
 श्रीर्नाम भार्याऽऽसीत्, कीदृशीत्याह-सुकुमारपाणिपादा यावत् सुरूपा । तस्य
 खलु कालस्य गाथापतेर्दुहिता कालश्रियः भार्याया आत्मजा काली नाम
 दारिका=पुत्री आसीत् । सा कीदृशी ? त्याह-'बुड्ढा' वृद्धा=बहुवयस्कत्वात्,
 वृद्धकुमारी=अपरिणीतत्वात्, 'जुण्णा' जीर्णा=जीर्णशरीरत्वात्, 'जुण्णकुमारी'
 जीर्णकुमारी-अपरिणीतावस्थायामेव संजातजीर्णशरीरत्वात्, 'पडियपूयत्थणी'

राया तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए काले नामं गाहावई होत्था, अड्डे
 जाव अपरिभूए) वे कहते हैं-गौतम सुनो-तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर इस
 प्रकार है-उस काल और उस समय में इसी जंबूद्वीप नामके द्वीप में
 भारतवर्षमें आमलकल्पा नामकी नगरी थी । नगरीका वर्णन करनेवाला
 पाठ यहां पर औपपातिक सूत्र से योजित करनेना चाहिये । उस नगरी
 में उद्यान था जिसका नाम आम्रशालावन था । इस नगरी के राजा का
 नाम जितशत्रु था । इस आमलकल्पा नगरी में काल नाम का गाथापति
 रहता था । यह धन धान्यादिसे विशेष समृद्ध था और लोगोंमें भी इस
 की अच्छी प्रतिष्ठा थी । (तस्स णं कालस्स गाहावइस्स कालसिरी णामं
 भारिया होत्था, सुकुमाल जाव सुरूवा, तस्स णं कालस्स गाहावइस्स
 धूया कालसिरीए भारियाए अत्तया काली णामं दारिया होत्था बुड्ढा
 बुड्ढुकुमारी, जुण्णा जुण्णकुमारी, पडियपूयत्थणी णिविन्नवरा वरपरिव-

तत्थणं आमलकप्पाए नयरीए काले नामं गाहावई होत्था अड्डे जाव अपरिभूए)

तेज्जे कडे छे के डे गौतम ! सालणो, तमारो प्रश्नो उत्तर आ
 प्रमाणे छे-के ते काणे अने ते समये आ जंबूद्वीप नामना द्वीपमां भारत
 वर्षमां आमलकल्पा नामनी नगरी હતી. નગરીના વર્ણન વિષેનો પાઠ અહીં
 ઔપપાતિક સૂત્ર વડે બાણી દેવો બેધએ તે નગરીમાં એક ઉદ્યાન હતું.
 તેનું નામ આમ્રશાલ વન હતું. તે નગરીના રાજાનું નામ જિતશત્રુ હતું.
 તે આમલકલ્પા નગરીમાં કાલા નામે ગાથાપતિ રહેતો હતો. તે ધનધાન્ય
 વગેરેથી સવિશેષ સમૃદ્ધ હતો અને સમાજમાં તેની સારી એવી પ્રતિષ્ઠા હતી.

(તસ્સ ણં કાલસ્સ ગાહાવઇસ્સ કાલસિરીણામં ભારિયા હોત્થા, સુકુમાલ
 જાવ સુરુ વા, તસ્સ ણં કાલસ્સ ગાહાવઇસ્સ ધૂયા કાલસિરીએ ભારિયાએ અત્તયા
 કાલી ણામં દારિયા હોત્થા બુદ્ધા બુદ્ધકુમારી, જુણ્ણા જુણ્ણકુમારી, પડિયપૂયત્થણી

पतितपूतस्तनी-अवनतनितम्बस्तनी, ' णिविन्नवरा ' निर्विण्णवरा=वरवरणे विरक्ता, अतएव ' वरपरिवर्जिता ' वरपरिवर्जिता=पतिरहिता चाप्यासीत् । तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयः=पुरुषश्रेष्ठः आदिकरः यथा वर्द्धमानस्वामी तथैव पार्श्वमथुरपि ' णवरं ' नवरम्-अयं विशेषः-श्रीवर्द्धमानस्वामी सप्तहस्तोच्छ्रेयः, पार्श्वमथुः ' णवहत्थुस्सेहे ' नवहस्तोत्सेधः=नवहस्तपरिमितशरीरावगाहनः, स 'पोडशभिः श्रमणसाहस्रीभिः, अष्टत्रिंशता आर्यिका-

ज्जिया यावि होत्था) इस काल गाथापति की कालश्री नाम भार्या थी। इसके हाथ पैर आदि समस्त अंग उपांग विशेष सुकुमार थे। देखने में यह बड़ी सुन्दर थी काल गाथापति के इस काल श्री की कुक्षि से उत्पन्न हुई एक काली नाम की दारिका भी थी। जो बहुत बयस्का हो चुकी थी-इसका विवाह भी नहीं हुआ था। इसलिये कुमारी अवस्था में ही यह वृद्धा जैसी बहु उमरवाली हो गई थी। शरीर भी बहु अवस्था संपन्न होने के कारण इसका जीर्ण हो चुका था। अतः अपरिणीतावस्था में ही यह जीर्ण कुमारी बन गई थी। इसके नितम्ब और स्तन दोनों ही बिलकुल ढीले हो गये थे नीचे झुक आये थे। वरके वरण करने रूप कार्य से यह विरक्त बन चुकी थी अतः यह वरपरिवर्जित थी-पति से सर्वथा रहित थी। (तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वद्धमाणसामी णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्टत्तीसाए अज्जिया साहस्सीहिं

णिविन्नवरा, वरपरिवर्जिया यावि होत्था)

ते काल गाथापतिनी कालश्री नामे लाथां हन्ति. तेना हाथ-पग वगेरे अने भधा अंगे तेमअ उपांगे सविशेष सुकामण हतां. हेभावमां ते अहुं अ सुंदर हत्ती. काल गाथापतिनी आ कालश्रीना गलथी अन्म पावेदी अेक काली नामे दारिका (पुत्री) पणु हत्ती. ते मोठी उमरनी थधं अूरी हत्ती. तेनु वस पणु थयुं नहोतुं. अेथी कुमारिकानी अवस्थाभां अ ते डोशी अेवी अहुं उमरे पडोअेदी थधं गधं हत्ती. अहुं उमरे पडोअेदी डोवा अहल तेनुं शरीर पणु लणु थधं अूअुं हत्तुं. अेथी कुमारिकानी अवस्थाभां अ ते लणु कुमारिका अनी गधं हत्ती तेना नितंअ अने स्तने अने साव दीला थधं गथा हता, नीथे लटकवा लाग्या हता. वरने वरणु करवा रूप कार्यथी ते विरक्त अनी गधं हत्ती अेथी ते वर परिवर्जित हत्ती. ते अेइहम पति वगरनी हत्ती.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वद्धमाणसामी णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्टत्तीसाए अज्जिया

साहस्रीभिः सार्द्धं संपरिवृतः यावत् आम्रशालवने समवसृतः । परिषन्निर्गता यावत् पर्युपास्ते । ततः खलु सा काली दारिका अस्याः भगवत्पार्श्वप्रभुसमागमन-रूपायाः कथायाः=वार्त्तायाः ' लद्धडा ' लब्धार्था भगवानत्रसमवसृतः, इत्येवं-रूपार्थमाप्ता ' हृष्ट जाव हियया ' हृष्ट यावद्दहदया-हृष्टतुष्टचिन्तानन्दिता प्रीतमनस्का हर्षवशविसर्पद्दहदया सती यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य ' करयल जाव ' करतलपरिगृहीतं शिर आवर्तं दशनत्वं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्-एवं खलु हे अम्ब तातौ ! पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयः आदिकरोःयावत्-आम्रशाल-वने चैत्ये यथा-प्रतिरूपमवग्रहमवगृह्य संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति=आस्ते, तद्गच्छामि खलु हे अम्बतातौ ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती पार्श्वस्या-

सर्द्धिं संपरिवृडे जाव अंबलसालवणे समोसडे) उस काल में और उस समय में पुरुषादानीय पुरुषश्रेष्ठ-आदिकर पार्श्वनाथ अर्हन्त प्रभु जो श्री चर्द्धमान स्वामी जैसे थे-सोलह हजार श्रमणों के तथा ३८, हजार आर्थिकाओं के साथ तीर्थकर परंपरानुसार विहार करते हुए उस आम्रशालवन में आये। भगवान् महावीर और पार्श्वनाथ प्रभु की शरीरावगाहना में विशेषता केवल इतनी ही थी कि उनका शरीर सात हाथ ऊँचा था और पार्श्व प्रभु का शरीर ९ हाथ ऊँचा था। (परिसा णिग्गया, जाव पञ्जुवासइ, तएणं सा दारिया इमीसे कहाए लद्धडा समाणी हृष्ट जाव हियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुम्मेहिं

साहस्सीहिं सर्द्धिं संपरिवृडे जाव अंबलसालवणे समोसडे)

ते काणे अने ते समये पुरुषादानीय-पुरुष श्रेष्ठ-आदिकर पार्श्वनाथ-अर्हन्त प्रभु-श्रेयो श्री चर्द्धमान स्वामी जेवा उता-सोण उन्नर श्रमणे। तेमअ ३८ उन्नर आर्थिकाओनी साथे तीर्थकर परंपरा सुअण विहार करतां ते आम्रशाल वनमां आया। भगवान महावीर अने पार्श्वनाथ प्रभुनी शरीरावगाहनामां विशेषता इत्त आटली अ छे के तेमनुं शरीर सात हाथ जेटुं णियुं उतुं अने पार्श्व प्रभुनुं शरीर नव हाथ णियुं उतुं।

(परिसा णिग्गया, जाव पञ्जुवासइ, तएणं सा काली दारिया इमीसे कहाए लद्धडा समाणी हृष्ट जाव हियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुम्मेहिं अम्ब-

हंतः पुरुवादानीयस्य पादवन्दिका=पादवन्दनाशया गन्तुम् । अम्बापितरौ कथ-
यतः-हे देवानुमित्रे ! पुत्रि यथा सुखं तथा कुहं क्रिन्तु अस्मिन् शुभकार्ये प्रति-
बन्धं=पमादं मा कुरु । ततः खलु सा कालिका दारिका अम्बापितृभ्यामभ्यनु-
ज्ञाता सती हृष्टयावद्दहदया स्नाता कृतवलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलमायथित्ता शुद्ध-

अभ्यणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया-
गमित्तए ?) लोगों को ज्योंही पार्श्व प्रभु के आम्रशालवन में आने की
खबर लगी-त्योहीँ सब जनता प्रभु को वंदना के लिये अपने २ स्थान
से निकलकर उस आम्रशालवन में आने लगी। वहाँ आकर प्रभु का
धार्मिक उपदेश सुन वह प्रभु की पर्युपासना करने लगी। इसके अन-
न्तर जब यह समाचार काली दारिका को मिला तो वह बहुत अधिक
हर्षित एवं संतुष्ट चित्त हुई। बाद में वह जहाँ अपने माता पिता थे वहाँ
पहुँची वहाँ जाकर उसने माना पिता को दोनों हाथ जोड़कर चरण
वंदना की-और इस प्रकार कहा-हे माततात ! पुरुषश्रेष्ठ, आदिकर,
ऐसे पार्श्वनाथ अर्हंत प्रभु आम्रशालवन में पधारे हुए हैं-इसलिये मैं
आपसे आज्ञापित होकर उन पुरुषश्रेष्ठ अर्हंत प्रभु पार्श्वनाथ को वंदना
करने के लिये जाना चाहती हूँ। (अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं
करेहि, तएणं सा कालिया दारिया अम्मापिईहिं अब्भणुन्नाया समाणी
इद्धतुद्धं जाव हियया पहाया कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता

पुत्राया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए ?)

पार्श्व प्रभुना आम्रशालवनमां पधारवानी न्भल्लु यथा न भधा ढोके
प्रभुने वंदन करवा भाटे पोतपोताना स्थानेथी नीकणीने ते आम्रशाल वनमां
आववा लाग्या. त्यां आवीने प्रभुने धार्मिक उपदेश सांभणीने तेआ प्रभुनी
पर्युपासना करवा लाग्या. त्यारणाहं काली दारिकाने आ समाचारो मन्था त्यारे
ते भूषणं न हर्षित तेमं संतुष्ट चित्तवाणी थर्थ गच्छ. त्यारपणी ते न्यां तेना
माता-पिता हता त्यां पडोन्थी. त्यां नर्धने तेणु माता-पिताने अने डाथ
जेडीने अरुणु वंदना करी अने त्यारपणी आ प्रभाणु विनती करी के-डे माता
पिता ! पुरुष श्रेष्ठ, आदिकर जेवा पार्श्वनाथ अर्हंत प्रभु आम्रशाल वनमां
पधार्थो छे. ओटला भाटे हुं तमारी आसा भेणवीने ते पुरुष श्रेष्ठ अर्हंत
प्रभु पार्श्वनाथने वंदन करवा भाटे नवा धंभु छु.

(अहा सुहं, देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि, तएणं सा कालिया दारिया
अम्मापिईहिं अब्भणुन्नाया समाणी इद्धतुद्धं जाव हियया पहाया कयवलिकम्मा कय

प्रवेश्यानि माङ्गल्यानि वस्त्राणि पत्रपरिहिता अल्पमहाधीभरणाळकृतशरीरा चेदिका-
चक्रवालपरिकीर्णा स्वकाद् गृहाद् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या-
उपस्थानशाला यत्रैव धार्मिको यानपत्ररस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य धार्मिकं यान-
पत्रं दूरुढा=आरूढा । ततः खलु सा काली दारिका धार्मिकं यानपत्रम्, एवं
सुद्धप्पवेसाइं मंगलाइं वस्थाइं पत्रपरिहिया अप्पमहग्घाभरणालंक्रिय
सरीरा चेडिया चक्रवालपरिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ,
पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव धम्मिए जाण-
प्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा,
तएणं सा काली दारिया धम्मियं जाण पवरं जहा दोवई जाव पज्जुवासइ)
तव माता पिता ने उससे ऐसा कहा-हे देवानुप्रिये ! तुझे जिस प्रकार
सुख मिले उस प्रकार तू कर-इस शुभकार्य में प्रतिबंध-प्रसाद मत
कर । इस प्रकार माता पितासे अभ्यनुज्ञात हुई उस दारिका ने हृष्ट तुष्ट
चित्त होकर स्नान किया वायसादि के लिये अन्नका भागरूप-बलिर्कर्म
किया कौतुक, मंगल एवं प्रायश्चित्त करके शुद्ध प्रवेश योग्य, मंगलकारी
वस्त्रों को अच्छी तरह पहिरा, और अल्पभार बहुमूल्य आभरणों से
अलंकृत शरीर होकर वह चेदिका चक्रवाल से युक्त हो अपने घर से
निकली । निकलकर वह वहाँ गई-जहाँ बाह्य उपस्थान शाला थी-उसमें
जाकर वह जहाँ धार्मिक यानपत्र रक्खा था-वहाँ पहुँची-वहाँ जाकर

कोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पवेसाइं मंगल्लाइं वस्थाइं पत्रपरिहिया अप्पमहग्घा-
भरणालंक्रियसरीरा चेडियाचक्रवालपरिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ,
पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा तएणं सा काली
दारिया धम्मियं जाणप्पवरं एवं जहा दोवई जाव पज्जुवासइ)

त्यारे मातापिताये तेने आ प्रभाण्णे क्खुं के डे देवानुप्रिये ! तने जेम
सुभं भणे तेम तुं कर. आ शुभ कार्यंमां प्रतिबंध-प्रसाद कर नडि आ
प्रभाण्णे मातापिता वडे आसापित थयेदी ते दारिकाये ह्ण्ट-तुण्ट चित्त थधने
स्नान कथुं. कागडा वजेरेने अन्नभाग आपीने भदिकर्म कथुं. कौतुक, मंगल
अने प्रायश्चित्त करीने शुद्ध प्रवेश योग्य, मंगलकारी वस्त्रोने सारी रीते पहरेया
अने वजनमां डडका पणु किंमतमां षडु लारे जेवा आभरण्णोथी शरीरने
अलंकृत करीने दासीज्जोना समूहथी परिवेण्टित थधने पोताना घेरथी नीकणी.
नीकणीने ते त्यां पहोन्थी जयां बाह्य उपस्थान शाला छती. तेमां जधने ते
जयां धार्मिक यानपत्र ओखुं छतुं तेमां आइड थर्थ गध. आइड थधने ते

‘जहा दोवई जाव’ यथा द्रौपदी यावत्-द्रौपदीवत् छात्रादीन् तीर्थङ्करातिशयान् दृष्ट्वा धार्मिकाद् यानप्रवरोदवतरति, पञ्चाभिगमपूर्वकं भगवत्समीपे गत्वा वन्दित्वा नमस्यित्वा च भगवन्तं ‘पञ्जुवासइ’ पर्युपास्ते । ततः खलु पार्श्वोऽर्हन् पुरुषा-दानीयः काल्यै दारिकायै तस्यां च महातिमहालयायां पर्षदि धर्मं कथयति ततः खलु सा काली दारिका पार्श्वस्यार्हतः पुरुषादानीयस्यान्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्ट यावद् हृदया पार्श्वमर्हन्तं पुरुषादानीयं त्रिकृत्यो वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा

वह उस पर आरूढ हो गई । आरूढ होकर वह वहाँ से चली । ज्योंही उसने द्रौपदी की तरह तीर्थकरातिशयरूप छात्रादि विभूति को देखा तो वह देखकर उस धार्मिक यानप्रवर से नीचे उतरी । और पञ्च अभिगमन पूर्वक भगवान् के पास जाकर उसने उनको वंदना की, उन्हें नमस्कार किया-वंदना नमस्कार करके फिर उसने उनकी पर्युपासना की । (तएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे य महइमहालयाए परिसाए धम्मो कहिओ) पुरुषादानीय अर्हत प्रभु पार्श्वनाथने उस काली दारिकाको उस विशाल परिषदाके बीचमें धर्मकथा सुनाई । (तएणं सा काली दारिया पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म इट्ठ जाव हियया पासं अरहं पुरिसादाणीयं तिवखुत्तो वंदइ नमंसइ) पुरुषादानीय उन अर्हत पार्श्वनाथ प्रभु से धर्म को सुनकर और हृदय में अवधारण कर वह काली दारिका बहुत अधिक हर्षित

त्यांथी रवाना थधं द्रौपदीनी जेभ तेण्णे न्यारे तीर्थंकरातिशय इप छत्र वगेरे विभूतिने जेधं के जेतानीं साथे ज ते धार्मिक यान-प्रवरमांथी नीचे उतरि पडी. अने पंच अभिगमनपूर्वकं भगवाननी पासे जधने तेभने वंदना करी, तेभने नमस्कार कर्या. वंदना अने नमस्कार करीने तेण्णे तेभनी पयुपासना करी. त्यारपछी

(तएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे य महइमहा-लयाए परिसाए धम्मो कहिओ)

पुरुषादानीय अर्हत प्रभु पार्श्वनाथे ते काली दारिकाने ते विशाल परि-षदानीं साथे धर्मकथा संलणावी.

(तएणं सा काली दारिया पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म इट्ठ जाव हियया पासं अरहं पुरिसादाणीयं तिवखुत्तो वंदइ नमंसइ)

पुरुषादानीय ते अर्हत पार्श्वनाथ प्रभुनी पासेथी धर्मने सांलणीने अने तेने हृदयमां अवधारित करीने ते काली दारिका जहु ज वधारे हर्षित

नमस्यित्वा एवमवादीत्—श्रद्धामि खलु हे भदन्त ! निर्ग्रन्थं प्रवचनं यावत् तद् तथैतद् यूयं वदथ नवरं=विशेषोऽयम्—यत्—अहम् अम्बापितरौ आपृच्छामि, ततः= मातापितरौ पृष्ठा खलु अहं देवानुप्रियाणामन्तिके यावत् प्रव्रजामि । भगवानाह— यथामुखं हे देवानुप्रिये । ततः खलु सा काली दारिका पार्श्वेन अर्हता पुरुषा-

हृदयं हृई । उसने उन पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हंत प्रभु को तीन बार वंदना नमस्कार किया । बाद में (वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी सह-हामि णं भंते ! गिग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह, जं णवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तएणं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पब्बयामि, अहासुहं देवाणुप्पिए ! तएणं सा काली दारिया पासैणं अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी हट्ट जाव हियया पासं अरहं वंदह, नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणपवरं दुरुहह, दुरुहित्ता पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियाओ अंबसालवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमह, पडिनिक्खमित्ता जेणेव आमलकप्पा नयरी, तेणेव उवागच्छइ) वंदना नमस्कार करके उसने उन प्रभु से ऐसा कहा—हे भदंत ! मैं आपके द्वारा प्रतिपादित निर्ग्रन्थ प्रवचन को विशेष श्रद्धा की दृष्टि से देखती हूँ आपने जैसा यह प्रतिपादित किया है वह वस्तुतः वैसा ही है । यह मुझे बहुत रुचा है । अतः मैं माता पिता से पूछती हूँ । उनसे पूछकर फिर आप देवानुप्रिय के पास आकर

हृदयं शब्द. तेष्से ते पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हंत प्रभुने त्रय बार वंदना अने नमस्कार कर्था. त्थारमाह

(वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी सहहामिणं भंते ! गिग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह, जं णवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तएणं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पब्बयामि, अहा सुहं देवाणुप्पिए ! तएणं सा काली दारिया पासै णं अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी हट्ट जाव हियया पासं अरहं वंदह, नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणपवरं दुरुहह दुरुहित्ता पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अतियाओ अंबसालवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमह, पडिनिक्खमित्ता जेणेव आमलकप्पा नयरी तेणेव उवागच्छइ)

वंदना नमस्कार करीने तेष्से ते प्रभुने आ प्रभात्से कहुं डे डे लहन्त । तभारा वडे प्रतिपादित निर्ग्रन्थ प्रवचनने हुं विशेष श्रद्धा की दृष्टिसे लेई छुं. तमे लेवुं आ प्रतिपादित कथुं छे-परिभर ते तेवुं अ छे. भने आ पूष अ गमी गथुं छे. अथी हुं मातापिताने पूछी लई छुं. तेभने पूछीने

दानीयेन एवमुक्ता सती हृष्ट यावद् हृदया पार्श्वमर्हन्तं यन्त्रते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा तदेव धार्मिकं यानप्रवरं दूरोहति, दूरुह्य पार्श्वस्यार्हतः पुरुषादानीय-स्यान्तिकान्नात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव आमल-कल्पा नगरी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य आमलकल्पाया नगर्या मध्ये-मध्येन यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य धार्मिकं यानप्रवरं स्थाप-यति, स्थापयित्वा धार्मिकोद् यानप्रवरात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव अम्मा-पितरो तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य ' करतल० ' करतलपरिगृहीतं मस्तकेऽञ्जलि-

दीक्षित होना चाहती हूँ। काली दारिका के इस अभिप्राय को सुनकर प्रभुने उससे कहा देवानुप्रिये! यथासुखम्। इस प्रकार वह काली दारिका पुरुषादानीय उन अर्हत प्रभु पार्श्वनाथ से अनुमोदित होकर चित्त में बहुत अधिक प्रसन्न हुई। उसने अर्हन्त पार्श्वनाथ प्रभु को वंदना नमस्कार किया-और वंदना नमस्कार करके वहाँ से आकर वह उसी अपने धार्मिक यान पर चढ़ गई चढ़कर वह फिर पुरुषादानीय, अर्हत प्रभु पार्श्वनाथ के पास से और उस आम्रशालवन नामके उद्यान से बाहिर चली आई। बाहिर आकर वह जहाँ आमलकल्पा नगरी थी -वहाँ पर आ गई। (उवागच्छित्ता आमलकल्पं णयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणपवर ठवेइ, ठवित्ता धम्मियाओ जाणपवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कर-

आप देवानुप्रियेनी पासे आवीने दीक्षित थवा अ.हुं छुं. काली दारिकाना आ अलिप्राथने सालणीने प्रभुअे तेने कहुं के डे देवानुप्रिये। ' यथासुखम् ' आ प्रभाणे ते काली दारिका पुरुषादानीय ते अर्हंत प्रभु पार्श्वनाथ वडे अनुमो-दित थधने चित्तमां भूण न प्रसन्न थध. तेणे अर्हंत पार्श्वनाथ प्रभुने वंदना नमस्कार कयां अने वंदना नमस्कार करीने त्यांथी आवीने ते तेन पौताना धार्मिक यानमां जेसी गध अने जेसीने ते पुरुषादानीय अर्हंत प्रभु पार्श्व-नाथनी पासेथी अने ते आम्रशाल वन नामेना उद्यानथी अर्हारे आवी गध. अर्हारे आवीने ते त्यां आमलकल्पा नगरी इती त्यां आवी गध.

(उवागच्छित्ता आमलकल्पं णयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणपवरं ठवेइ, ठवित्ता धम्मि-याओ जाणपवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता, जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवाग-च्छइ, उवागच्छित्ता करतल० एवं वयासी-एवं खलु अम्मायाओ ! मए पासस्स

कृत्वा एवमवादीत्—एवं खलु हे अम्बतातौ ! मया पार्श्वस्यार्हतोऽन्तिके धर्मः
' गिसंते ' निशान्तः=श्रुतः, सोऽपि च धर्मः ' मे ' मम ' इच्छिण् ' इष्टः=
इच्छाविपयीभूतः, ' पडिच्छिण् ' प्रतीष्टः=पुनः पुनरभिलषितः ' अभिरुइण् '
अभिरुचितः=आस्वाद्यवस्तुवत्सर्वथाप्रियः, ततः=तस्मात् कारणात् खलु अहं हे
अम्बतातौ ! संसारमयोद्विग्ना भीता जन्ममरणेभ्योऽतः इच्छामि खलु युष्माभ्याम-

यल० एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ ! मए पासस्स अरहओ अंतिए
धम्मए गिसंते से वि.य मे धम्मए इच्छिण् पडिच्छिण् अभिरुइण्—तएणं
अहं, अम्मयाओ ! संसारमउच्चिग्गा भीया जम्मणमरणाणं—इच्छामि
णं तुव्मेहिं अब्भणुन्नाया समानी पासस्स अरहओ अंतिए सुंडा भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए) वहां आकर के वह आमलकल्प
नगरी के बीचों बीच से होकर जहाँ वह बाह्या उपस्थान शाला थी—वहाँ
आई—वहाँ आकर वह उस धार्मिक यानप्रवर से नीचे उतरी—नीचे
उतर कर फिर बाद में वह जहाँ अपने माता पिता थे—वहाँ गई—वहाँ
जाकर उसने अपने दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे मस्तक
पर रखकर उनसे इस प्रकार कहा—हे मात तात ! सुनो मैंने अर्हत प्रभु
पार्श्वनाथ के मुख से धर्म सुना है—वह धर्म मुझे बहुत अच्छा लगा है,
बार बार उस धर्म को सुनने की अभिलाषा हो रही है । जिस प्रकार
आस्वाद्य वस्तु प्रिय लगती है उसी प्रकार वह धर्म मेरे लिये सब
प्रकार से प्रिय लगा है । उसके सुनने से मैं हे मात तात ! इस संसार

अरहओ अंतिए धम्मए गिसंते से वि.य मे धम्मए इच्छिण् पडिच्छिण् अभिरुइण्—तएणं
अहं अम्मयाओ ! संसारमउच्चिग्गा भीया जम्मणमरणाणी—इच्छामि णं तुव्मेहिं
अब्भणुन्नाया समानी पासस्स अरहओ अंतिए सुंडा भवित्ता अगाराओ अणगा-
रियं पव्वइत्तए)

त्यां आवीने ते आमलकदद्या नगरीनी वच्चे थधने न्यां ते भाह्य उप-
स्थान शाला इती त्यां आवी. त्यां आवीने ते ते धार्मिक यान प्रवरमांथी
नीचे उतररी, नीचे उतररीने ते न्यां तेना मातापिता इतां त्यां गध. त्यां नधने
पोताना अने डाथीनी अब्भलि गनावीने अने तेने मस्तके भूक्षीने तेमने आ
प्रभाणु कथुं के डे मातापिता ! सांभणे, अर्डंत प्रभु पार्श्वनाथना सुपथी
मे धर्मं श्रवणु कथुं छे, ते मने गहुं न गभी गयुं छे. ते धर्मने वारवार
सांभणवानी धम्मि थध रही छे जेम आस्वाद्य वस्तु प्रिय लागे छे तेमने
ते धर्मं मारा भाटे पथी रीते प्रिय थध पडथे छे डे मातापिता ! तेना

भ्यजुज्ञातासती पार्श्वस्यार्हतोऽन्तिके मुण्डाभृत्वा आगाराद् अनगारितां प्रव्रजितुम्=स्वीकर्तुम् । मातापितरौ कथयतः—यथासुखं हे देवानुपिया ! =यथा रोचते तथा-
 कुरु किन्तु अस्मिन् कार्ये प्रतिबन्धं=पमादं मा कुरु । ततः=स्वपुत्र्या दीक्षानिश्चया-
 नन्तरं खलु स कालो गाथापतिर्विपुलम् अशनम् ४ अशनादि चतुर्विधमाहारम्
 उपस्कारयति, उपस्कार्य मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनम् आमन्त्रयति,
 आमन्त्र्य ततः पश्चात् स्नातः यावत् विपुलेन पुष्पवह्नगन्धमालयालङ्कारेण सत्कृत्य
 सम्मान्य तस्यैव मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनस्य पुरतः=अग्रे कालिकां
 दारिकां श्वेतपीतैः=रजतसुवर्णमयैः कलशैः स्नपयति, स्नपयित्वा सर्वालङ्कारविभू-
 षितां करोति, कृत्वा पुरुषसहस्रबाहिनिकां शिविकां दूरोहयति=भारोहयति, दूरोह्य
 मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनेन सार्द्धं संपरिवृतः सर्वद्वयं यावत्—वाध-

के भय से उद्विग्न होकर जन्ममरण से भयभीत हो चुकी हूँ—अतः मैं
 चाहती हूँ कि मैं आप से आज्ञा प्राप्त कर उन अर्हत पार्श्वनाथ प्रभु के
 समीप मुंडित होकर अगारावस्था से अनगारावस्था स्वीकार कर लूँ ।
 इस प्रकार अपनी काली दारिका की बात सुनकर माता पिता ने उससे
 कहा—(अहासुहं देवानुपिया । मा पडिवंधं करेह, तएणं से काले गाहा-
 वई विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ णियग
 सयणसंबंधिपरियणं आमंतेइ आमंतित्ता तओ पच्छा प्हाए जाव
 विडलेणं पुष्पवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव
 मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणस्स पुरओ कालियं दारियं सेया
 पीएहिं कलसेहिं प्हावेइ प्हावित्ता सन्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता
 पुरिससहस्सबाहिणीयं सीयं दुरोहेइ, दुरोहित्ता मित्तणाइणियगसयण

अपशुश्रीं हुं आ संसारना लयथी उद्विग्न थधने जन्म-मरणशुश्रीं भयभीत थर्ध
 गर्धं छुं, अथी भारी ध्वंछा छे के हुं तभारी आज्ञा भेगधीने ते अर्द्धंत
 पार्श्वनाथ प्रभुनी पासे मुंडित थधने अगारावस्था त्यलने अनगारावस्था
 स्वीकारी लउं. आ प्रभाणु पोतानी काली दारिकानी वात सांलगीने
 मातापिताअे तेने धधुं:—

(अहासुहं देवानुपिया । मा पडिवंधं करेह, तएणं से काले गाहावई
 विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरि-
 यणं आमंतेइ आमंतित्ता तओ पच्छा प्हाए जाव विपुलेणं पुष्पवत्थगंधमल्लालंकारेणं
 सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणस्स पुरओ कालियं
 दारियं सेयापीएहिं कलसेहिं प्हावेइ प्हावित्ता सन्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता

मानानेकविधवादित्ररवेण सह आमलकल्याया नगर्यां मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैवाग्रशालवनं चैत्यं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य छत्रादिकान् तीर्थकराति-

संबधिपरियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सन्विट्ठीए जाव रवेणं आमलकल्पं नयरिं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ) हे देवानुप्रिये ! तुझे जिस तरह अच्छा लगे वैसा तू कर-इस कार्य में प्रमाद न कर। इस तरह उस काल गाथापति ने अपनी पुत्री को दीक्षा ग्रहण करने से दृढ़ निश्चयवाली जानकर विपुल मात्रा में अशनादि रूप चतुर्विध आहार निष्पन्न करवाया-बाद में मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबन्धी परिजनों को आमंत्रित किया। आमंत्रित करके बाद में उसने स्नात होकर विपुल पुष्प, वस्त्र, गंध माल्य, एवं अलंकारों से सत्कार सन्मान करके उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबन्धी, परिजनों के साथ काली दारिका का भवेत पीत कलशों द्वारा अभिषेक किया-बाद में उसे समस्त अलंकारों से विभूषित किया-फिर पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर उसे चढवाया। चढवाकर फिर उन मित्र, ज्ञाति निजक, स्वजन संबन्धी परिजनों से घिरा हुआ होकर वह अपनी समस्त ऋद्धि के अनुसार, वाद्यमान अनेक विध बाजो की ध्वनि के साथ २ आमलकल्या नगरी के ठीक बीचों बीच से होकर निकला। (णिगच्छिस्ता जेजेघ अंवसालवणे चेइए

पुरिससहस्रवाहिणीयं सीयं दुरोहेइ, दुरोहिता मित्तणाइ, णियगसयणसंबधि परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सन्विट्ठीए जाव रवेणं आमलकल्पं नयरिं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ)

हे देवानुप्रिये ! तने जेम साइं दागे तेम कर आ काममां प्रमाद करीश नहि आ प्रमाळे ते कादगाथापतिअे पोतानी पुत्रीने दीक्षा अडणु करवानो मज्झम विचार जाणीने पुण्ण प्रमाळुमां अशर वणेरे थार नतना आडादे तैयार करावडाव्या। त्थारथाइ मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी परिजनोने आमंत्रित कथो। आमंत्रित करीने तेणु स्नान करीने पुण्ण पुष्प, वस्त्र, गंध, माल्य अने अलंकारो वडे सत्कार तेमज् सन्मान करीने ते मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी, परिजनोनी साथे काली दारिको सद्धि, अने पीणा कणशो वडे अभिषेक कथो त्थारथाइ तेने समस्त अलंकारो वडे विभूषित करी अने त्थारपथी पुरुष सहस्रवाहिनी पादपथी उपर तेने थढावी। थढावीने तेणु मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन संबंधी, परिजनोनी साथे परिवेणित थधने पोतानी समस्त ऋद्धिनी साथे, घण्ठां वाज्जोना ध्वनिनी साथे साथे आमलकल्या नगरीनी थराथर वच्चे थधने नीकथो।

शयान् पश्यति, दृष्ट्वा शिविकां स्थापयति, स्थापयित्वा कालिकां दारिकां शिविकातः प्रत्यवरोहयति । ततः खलु तां कालिकां दारिकाम् अम्बापितरौ पुरतः कृत्वा यत्रैव पार्श्वोर्द्ध्वं पुरुषादानीयस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य वन्देते नमस्यतः, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादिष्टाम्—एवं खलु हे देवानुप्रियाः । काली दारिका आवयोर्दुहिता इष्टा कान्ता यावत् उदुम्बरपुष्पमिव श्रवणायापि दुर्लभा किमङ्ग ! पुनः

तेजोव-उवागच्छह, उवागच्छित्ता छत्ताइए तित्यगराइसए पासइ) निकलकर वह वहां गया कि जहां वह आम्रशालवन नाम का उद्यान था । वहां जाकर उसने तीर्थकर प्रकृति के उदय से होनेवाले छत्रादिक अतिशयों को देखा । (पासित्ता सीयं ठावेइ, ठावित्ता कालियदारियं सीयाओ पच्चोरुहइ, तएणं तं कालीयं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसा० तेजेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी) देखकर उसने उस पुरुष सहस्रबाहिनी शिविका को खड़ी कर दिया । खड़ी करके उसमें से काली दारिका को नीचे उतारा बाद में वे माना पिता उस कालिक दारिका को आगे करके जहां पुरुषादानीय अर्द्धत प्रभु पार्श्वनाथ विराजमान थे वहां गये । वहां जाकर उन्होंने ने उनको वंदना की—नमस्कार किया । वंदना नमस्कार करके बाद में उन्होंने ने इस प्रकार प्रभु से कहा—(एवं खलु देवाणुप्पिया । काली दारिया अम्हं धूया इट्ठा कंता, जाव किमंगपुणपासणयाए ! एस

(णिगच्छित्ता जेणेव अंबसालवणे चेइए तेजेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताइए तित्यगराइसए पासइ)

नीकणीने ते त्यां गये हे ज्थां ते आम्रशाल वन नामे उद्यान छत्तुं त्यां ज्धने तेण्णे तीर्थंकर प्रकृतिना उदयथी अस्तित्वमां आपता छत्र वगेरे अतिशयेने जेया.

(पासित्ता सीयं ठावेइ, ठावित्ता कालियदारियं सीयाओ पच्चोरुहइ, तएणं तं कालियं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसा० तेजेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी)

जेधने तेण्णे ते पुरुष सहस्रबाहिनी पादपीने शैली. शैलीने तेमांथी कावी दारिकाने नीचे उतारी. त्थारपथी ते मत्तापिता ते कावीक दारिकाने आगण करीने ज्थां पुरुषदानीय अर्द्धत प्रभु पार्श्वनाथ विराजमान छत्ता त्यां गया. त्यां ज्धने तेमण्णे तेमने वंदना करे, नमस्कार कर्यां वंदना तेमज नमस्कार करीने तेमण्णे प्रभुने विनंती करतां आ प्रमाणे कथुं हे—

(एवं खलु देवाणुप्पिया ! कालीदारिया अम्हं धूया इट्ठा कंता, जाव किमंग-

‘पासणयाए’ दर्शनाय ? एषा खलु हे देवानुप्रियाः । संसारभयोद्विग्ना इच्छति देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डाभूत्वा यावत्प्रव्रजितुं, तद् एतां खलु देवानुप्रियाणां शिष्याभिक्षां ददाः, ‘पडिच्छंतु’ प्रतीच्छन्तु=स्वीकुर्वन्तु खलु हे देवानुप्रियाः । शिष्याभिक्षाम् । भगवानाह—यथासुखं हे देवानुप्रियो ! मा प्रतिवन्धं कुरुतम् । ततः खलु काली कुमारी पार्श्वमर्हन्तं कन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा उत्तरपौरस्यं

णं देवाणुप्पिया ! संसारभउद्विग्गा, इच्छइ, देवाणुप्पियाणं । अंतिए मुंडा भवित्ता जाव पव्वइत्तए, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणिमिक्खं दल्लयामो पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिमिक्खं) हे देवानुप्रिय ! यह हमारी काली दारिका नामकी पुत्री है । यह हमें बहुत अधिक इष्टा, कान्ता यावत् उदम्बर पुष्प के समान सुनने के लिये भी दुर्लभा है—तो फिर हे अंग ! इसके दर्शन की तो बात ही क्या कहना है । हे देवानुप्रिय । यह संसारभय से उद्विग्ना हो रही है अतः आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर यावत् संयम लेना चाहती है । इस लिये हम दोनों आपके लिये शिष्या की भिक्षा दे रहे हैं—आप देवानुप्रिय ! हमारी इस शिष्यारूप भिक्षा को स्वीकार करें (अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबधं करेह) इस प्रकार उन दोनों का कथन सुनकर प्रभु ने उनसे कहा हे देवानुप्रियो ! आप को जैसा सुख हो—वैसा आप करो—इसमें विलम्ब करने से लाभ नहीं है । (तएणं) इसके बाद (काली कुमारी पासं

पुण पासणयाए ? एसणं देवाणुप्पिया ! संसारभउद्विग्गा, इच्छइ, देवाणुप्पियाणं ! अंतिए मुंडा भवित्ता जाव पव्वइत्तए, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणिमिक्खं दल्लयामो पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिमिक्खं)

हे देवानुप्रिय ! आ आमारी काली दारिका नामे पुत्री छे. आमारा माटे आ अहु अ वधारे छंटा, कांता यावत् उदुम्बर पुष्पनी जेम नाम श्रवणुमां पणु दुर्लभा छे. तो पछी जेना दर्शननी तो वात अ शी करवी ? हे देवा नुप्रिय ! आ संसार लयथो उद्विग्न थछ रही छे. जेथी आप देवानुप्रिय पासैथी मुंडित थछने यावत् संयम अहणु करवा छंछे छे. जेथी अमे अने आपना माटे आशिष्यानी लीक्षा अर्पणु करीजे छीजे. आप देवानुप्रिय आमारी आ शिष्याइपी लिक्षाने स्वीकार करे. (अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबधं करेह) आ प्रभाणु तेजे अनेनुं कथन सांलणीने प्रभुजे तेभने कहुं के हे देवानुप्रियो ! तभने जेम सुअ प्राप्त थाय तेभ करे. आमां विलंब करवाथी लाभ नथी. (तएणं) त्यारपछी

दिग्भागम् अवक्रामति, अवक्राम्य स्वयमेव=स्वहस्तेनैव आभरणमाल्यालङ्कारम्
 अवमुञ्चति=अवतारयति, अवमुच्य स्वयमेव=स्वहस्तेनैव लोचं=केशलुञ्चनं करोति,
 कृत्वा यत्रैव पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पार्श्वमर्हन्तं त्रिः
 कृत्वो वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्-आदीप्तः खलु हे भद-
 न्त ! लोकः एवम्=अनेन प्रकारेण यावत्-एपाऽपि स्वयमेव पार्श्वप्रभुणा प्रव्राजिता ।

अरहं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता, उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं
 अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओसुयइ,
 ओमुइत्ता, सयमेव लोयं करेइ, करित्ता जेणेव पासे अरिहा पुरिसादा-
 णीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासं अरहं तिकखुत्तो वंदइ,
 नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी) काली कुमारी ने पार्श्वनाथ
 अरिहन्त प्रभु को वंदना एवं नमस्कार किया-। वंदना नमस्कार करके
 फिर वह उत्तर पौरस्त्य दिग्भाग ईशान कोण की ओर गई। वहां जाकर
 उसने अपने आप आभरण माल्य एवं अलंकारों को उतार दिया।
 उतार कर अपने हाथों से उसने वालों का लुंचन किया-लुंचन करके
 फिर वह जहां पुरुषादानीय पार्श्वनाथ प्रभु विराजमान थे वहां आई-
 वहां आकर उसने पार्श्वनाथ अर्हत को तीनवार वंदन एवं नमस्कार
 किया और वंदना नमस्कार कर फिर वह उनसे इस प्रकार कहने लगी
 -(आल्लित्तेणं भंते ! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव सयमेव पन्वाविया-

(काली कुमारी पासं अरहं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता, उत्तरपुरत्थिमं
 दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता, सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओसुयइ, ओमुइत्ता
 सयमेव लोयं करेइ, करित्ता जेणेव पासे अरिहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ,
 उवागच्छित्ता पासं अरहं तिकखुत्तो वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी)

काली कुमारीये पार्श्वनाथ अरिहंत प्रभुने वंदना अने नमस्कार कर्था.
 वंदना अने नमस्कार करीने ते उत्तर पौरस्त्य दिग्भाग ईशान के.षुनी तरइ
 गछ. त्यां न्छने तेण्णे पोतानी जेणे न् आबरण, मादथ अने अलंकारांने
 उतार्या. उतारीने पोताना डाथे वडे न् तेण्णे वाणोत्तं लुचन कथुं. लुचन करीने
 ते न्यां पुरुषादानीय पार्श्वनाथ प्रभु निराजमान छता त्यां आवी. त्यां आवीने
 तेण्णे पार्श्वनाथ अर्हंतने त्रणु वार वंदन अने नमस्कार कर्था. वंदना अने
 नमस्कार करीने ते तेभने आ प्रभाण्णे वितंती करवा दाणी के-

(आल्लित्तेणं भंते ! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव सयमेव पन्वाविया-तएणं

ततः खलु पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयः काली स्वयमेव पुष्पचूलायै आर्यायै शिष्यात्वेन ददाति । ततः खलु सा पुष्पचूला आर्या कालीं दारिकां स्वयमेव प्रव्राजयति यावत्-सा काली तदाज्ञाम् उपसम्पद्य खलु विहरति । ततः सा काली-आर्या जाता, कीदृशी ? त्याह-ईर्यासमिता यावत्-गुप्तब्रह्मचारिणी । ततः खलु सा काली अर्या पुष्पचूलाया आर्याया अन्तिके सामायिकादीनि एकादशाङ्गानि अधीते,

तएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुष्पचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयइ, तएणं सा पुष्पचूला अज्जा कालिं दारियं सयमेव पव्वावेइ-जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ) हे भदंत ! यह लोक आदीस हो रहा है-इस प्रकार से पार्श्वनाथ प्रभु के द्वारा स्वयं ही दीक्षित की गई। इसके बाद उन पुरुषादानीय पार्श्व प्रभु ने काली को दीक्षित करके पुष्पचूला आर्या को शिष्याणीरूप से प्रदान कर दिया। पुष्पचूला आर्या ने उसे काली को इस प्रकार दीक्षित करवा कर अपनी शिष्याणीरूप में उसे स्वीकार कर लिया-यावत् वह काली उस आर्या की आज्ञानुसार अपनी प्रवृत्ति करने लग गई। (तएणं सा काली अज्जा जाव) इस तरह वह काली अब आर्या हो गई। (ईरिया समिया जाव गुत्तवंभयारिणी तएणं सा काली अज्जा पुष्पचूलाए अज्जाए अंतिए

पासे अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुष्पचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयइ, तएणं सा पुष्पचूला अज्जा कालिं दारियं सयमेव पव्वावेइ-जाव उवसंप-ज्जित्ताणं विहरइ)

हे भदन्त ! आ लोक आदीस थर्ध रह्यो छे. आ प्रभाणु आ पणु पार्श्वनाथ प्रभु वडे जते ज दीक्षित करवाभां आवी. त्थारपणी ते पुरुषादानीय पार्श्व प्रभुअे कालीने दीक्षित करीने पुष्पचूला आर्याने शिष्यानां रूपमां आवी दीथी. पुष्पचूला आर्याअे ते कालीने आ प्रभाणु दीक्षित करवांने पोतानी शिष्यानां रूपमां तेना स्वीकर करी बांधि. यावत् ते काली ते आर्यानी आज्ञा सुज्जम पोतानी प्रवृत्ति करवा लागी (तएणं सा काली अज्जा जाव) आ रीते ते काली डवे आर्या थर्ध गथ.

(ईरिया समिया जाव गुत्तवंभयारिणी, तएणं सा काली अज्जा पुष्पचूलाए अज्जाए अंतिए समाइयमाइयाइं एक्कारसअंगांइ अदिज्जइ, वहुईं चउत्थ जाव विहरइ)

बहुभिः चतुर्थं यावत्-षष्ठाष्टमदशमद्वादशभिस्तपःकर्मभिरात्मानं भावयन्ती
विहरति ॥ सू० २ ॥

मूलम्-तएणं सा काली अज्जा अन्नया कयाइं सरीरबाउ-
सिया जाया यावि होत्था, अभिक्खणंर हत्थे धोवइ पाए धोवइ
सीसं धोवइ मुहं धोवइ थणंतराइं धोवइ कक्खं तराणि धोवइ
गुडंंतराइं धोवइ जत्थर वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा णिसी-
हियं वा चेइए तं पुठ्ठामेव अब्भुक्खेत्ता तओ पच्छा आसयइ
वा सयइ वा, णिसीहइ वा, तएणं सा पुप्फचूला अज्ज कालिं
अज्जं एवं वयासी-नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया ! समणीणं णिगं
थीणं सरीरबाउसियाणं होत्तए तुमं च णं देवाणुप्पिया ! सरी-
रबाउसिया जाया अभिक्खणंर हत्थे धोवसि जाव आसयाहि
वा सयाहि वा णिसीहियाहि वा तं तुमं देवाणुप्पिए ! एयस्स
ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छिच्चं पडिवज्जाहि, तएणं सा काली

सामाहयमाहयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जह, बहूहिं चउत्थ जाव विह-
रइ) उसका रहन शयन आदि सब व्यवहार नियमित एवं सीमित हो
गया। चलती तो वह ईर्ष्या समिति से मार्ग का संशोधन कर चलती।
यावत् वह शुभ ब्रह्मचरिणी बन गई। ९ नौ कोटी से ब्रह्मचर्यव्रत की
संरक्षिका हो गई। इसके बाद उस काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या के
पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया-और अनेक
चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम दशम, द्वादश, तपस्याओं की आराधना से अपने
आपको भावित किया ॥ सूत्र ३ ॥

तेजुं रडेवुं, सूहुं वगेरे अधुं काम नियमित अने सीमित थध गधुं.
यावती त्थारे ते धर्या-समित्थी मार्गंजुं संशोधन करीने यावती. यावत् ते
शुभ ब्रह्मचारिणी अनी गधं ९ कोटिथी ब्रह्मचर्यं व्रतनी ते संरक्षिका थध
गधं. त्थारपछी ते काली आर्याञ्चि पुष्पचूला आर्या.नी पासै सामायिक वगेरे
अगियार अंगोनुं अध्ययन कथुं अने धणुा अतुर्थं, षष्ठ, अष्टम, दशम,
द्वादश तपस्याञ्चोनी आराधनाथी पोतानी अतने भावित करी. ॥ सूत्र ३ ॥

अजा पुष्फचूलाए अज्जाए एयमट्टं नो आढाइ जाव तुसिणीया
संचिट्टुइ, तएणं ताओ पुष्फचूलाओ अज्जाओ कालिं भज्जं अभि-
क्खणं२ हीलेंति णिंदंति खिसंति गरिहंति अवमण्णंति अभि-
क्खणं२ एयमट्टं निवारेंति, तएणं तीसे कालीए अज्जाए सम-
णीहिं णिगंथीहिं अभिक्खणं२ हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्ज
माणिए इमेयारूवे अज्जात्थिए जाव समुप्पज्जिन्तथा जया
णं अहं अगारवासमज्जे वसित्था तथा णं अहं सयवसा जप्पि-
भिइं च णं अहं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारिखं पवइंया
तप्पभिइं च णं अहं परवसा जाया, तं सेयं खल्लु मम कल्लं
पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते पाडिक्का उवस्सयं उवसंप-
ज्जित्ताणं विहरित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते
पाडिक्कं उवस्सयं गिणहइ, तत्थ णं सा अणिवारिया अणोहट्टिया
सच्छंदमई अभिक्खणं२ हत्थे धोवइ जाव आसयइ वा सयइ वा,
णीसेहेइ वा, तएणं सा काली अज्जा पासत्था पासत्थविहारी
ओसण्णा ओसण्णविहारी कुसीला कुसीलविहारी अहाछंदा अहा-
छंदविहारी संसत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं
पाउणइ पाउणित्ता अद्धमसियाए संलेहणाए अत्ताणं झुसेइ झुसित्ता
तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ छेइत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय
अपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरचंपाए रायहाणीए कालव-
डिंसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुल-
स्स असंखेज्जइ भागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवित्तए उषवण्णा,

तएणं सा कालीदेवी आहुणोववण्णा समाणी पंचविहाए पज्जत्तीए जहा सूरियाभो जावं भासामण पज्जत्तीए० । तएणं सा काली-
देवी चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव अण्णोसिं च बहूणं काल-
वडेंसगभवणवासीणं असुरकुमारारणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं
जाव विहरइ, एवं खलु गोयमा ! कालीए देवीए सा दिव्वा
देविड्डीइ लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया, कालीए णं भंते ! देवीए
केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाईं
ठिई पन्नत्ता, काली णं भंते ! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं
उव्वट्ठित्ता कहिं गच्छिहिइ कहिं उव्वज्जिहिइ ?, गोयमा ! महा-
विदेहे वासे सिज्झिहिइ, एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं
पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते तिबेमि ।
धम्मकहाणं पढमज्झयणं समत्तं ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘तएणं सा’ इत्यादि—ततः खलु सा काली आर्या अन्यदा कदा-
चित् ‘सरीरवाउसिया’ शरीरा वाक्शिका=शरीरसंस्करणशीला जाता चाप्या-
सीत् । अथ सा किं करोती ? त्याह—अभीक्षणं २ वारंवारं हस्तौ धावति, पादौ धावति,

‘तएणं सा काली अज्जा अन्नया कयाइं,’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(तएणं) इसके बाद (सा काली अज्जा) वह काली
आर्या (अन्नया कयाइं) किसी एक समय (सरीरवाउसिया) शरीर को
संस्कारित करने के स्वभाववाली बन गई इसलिये वह (अभिक्खणं २

‘तएणं सा काली अज्जा अन्नया कयाइं’ इत्यादि—

टीकार्थः—(तएणं) त्पारपणी (सा काली अज्जा) ते काली आर्या
(अन्नया कयाइं) के।थं अेक वणते (सरीरवाउसिया) शरीरने संस्कारित
करवाना स्वभाववाणी अनी गधं, अेट्ठा माटे ते—

(अभिक्खणं २ हथे धोवइं, पाए धोवेइ सीसं धोवइं, मुह धोवइं, थणंतराइं धोवइं,

शीर्षं धावति, मुखं धावति स्तनान्तराणि धावति, कक्षान्तराणि धावति, गुह्यान्तराणि धावति, यत्र यत्रापि च खलु 'ठाणं वा' स्थानम्=उपवेशनस्थलम् 'सेज्जं वा' शय्यां=शयनभूमिम्, 'गिसीहियं वा' निषेधिकीं=स्वाध्यायभूमिम् 'चेएइ' चेतयते=करोति 'तं' तत्=स्थानादिकं 'पुव्वामेव' पूर्वमेव=उपवेशनादि क्रियायाः पूर्व 'आसयइ वा' आस्ते=उपविशति, 'सयइ वा' शेते=शयनं करोति, 'गिसीहइ वा' निषेधयति=स्वाध्यायं करोति वा । ततः खलु सा पुष्पचूलाऽऽर्या कालीमार्यामेवमवादीत्-नो खलु कल्पते हे देवाणुप्रिये । श्रमणीनां

हृत्थे धोवइ पाए धोवइ, सीसं धोवइ मुहं धोवइ धणंतराइं धोवइ, कक्खंतराणि धोवइ, गुज्झंतराइं धोवइ, जत्थर वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा गिसीहियं वा चेए-तं पुव्वामेव अब्भुक्खेत्ता तओपच्छा आसयइ, वा सयइ वा गिसीहइवा) बार २ हाथों को धोने लग गई, पैरों को धोने लग गई, शिर को धोने लग गई, मुँह को धोने लग गई, स्तनान्तरों को-स्तनों के मध्यभाग को-धोने लग गई, कक्षान्तरों को-काँखों के मध्यभाग को-धोने लग गई; गुह्यभागों को-गुहांगों को धोने लग गई । जहाँ २ वह बैठने का स्थान, शयन, स्थान, स्वाध्याय करने का स्थान नियत करती उसे पहिले से ही वह पानी से सिंचित कर देती-बाद में वह वहाँ बैठती शयन करती, स्वाध्याय करती, (तएणं सा पुष्पचूला अज्जा कालिं अज्जं एवं वयासी) उस काली आर्या की इस स्थिति को देखकर पुष्पचूला आर्या ने उसे इस प्रकार कहा-(नो खलु कप्पइ,

कक्खंतराणी धोवइ, गुज्झंतराइं धोवइ, जत्थर वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा गिसीहियं वा चेएइ तं पुव्वामेव अब्भुक्खेत्ता तओपच्छा आसयइ, वा सयइ वा गिसीहइ वा)

बार-बार हाथोने धोवा लागी, पगोने धोवा लागी, माथाने धोवा लागी, भुभने धोवा लागी, स्तनान्तरने-स्तनाना वरुथेना स्थानने धोवा लागी, कक्षांतरेने-अगडोना मध्य लागने धोवा लागी, शुह्य लागोने-शुहांगोने धोवा लागी. न्यां न्यां तेने भेसवानुं स्थान, शयनस्थान, स्वाध्याय करवानुं स्थान नच्छी करती तो तेने पडेद्वेथी न ते पाण्णीथी सिंचित करी देती, त्यारपछी ते त्यां भेसती, शयन करती, स्वाध्याय करती. (तएणं सा पुष्पचूला अज्जा कालिं अज्जं एवं वयासी) ते काली आर्यान्ती आवी स्थिति जेधने पुष्पचूला आर्याणे तेने आ प्रभाषे कळुं के-

निर्ग्रन्थीनां शरीरवाकुशिका जाताऽसि, यतस्त्वम्-अभीक्षणं २ हस्तौ धावसि यावत् ' आसयाहि वा ' आस्से=उपविशसि, ' सयाहि वा ' शेषे=अननं करोषि ' णीसीहियाहि वा ' निषेधयसि=स्वाध्यायं करोषि, ' तं ' तत्=तस्मात् कारणात् त्वं हे देवानुप्रिये ! एतत् स्थानम्-' आलोएहि ' आलोचय यावत् प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यस्व । मूले-सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । ततः खलु सा काली आर्या

देवाणुप्पिया ! समणी णं णिगंगथीणं सररीरवाउसियाणं होत्तए-तुमं च णं देवाणुप्पिया ! सररीरवाउसिया जाया-अभिकखणं २ ह्त्थे धोवसि, जाव आसयाहि वा सयाहि वा णिसीहियाहि वा तं तुमं देवाणुप्पियाए ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि) हे देवानुप्रिये ! निर्ग्रन्थ श्रमणियों को शरीरवकुश होना कल्पित नहीं है । परन्तु तुम तो हे देवानुप्रिये ! शरीरवकुश बन रही हो । बार २ हाथों को धोती हो यावत् जहाँ तुम्हें उठना बैठना होता है, शयन करना होता है, स्वाध्याय करना होता है उस स्थान को पहिले से ही सिंचित कर लेती हो तब जाकर वहाँ उठती बैठती हो, शयन करती हो, स्वाध्याय करती हो । इसलिये हे देवानुप्रिये ! तुम इस स्थान की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त ग्रहण करो । (तएणं सा काली अज्जाए पुप्फचूलाए अज्जाए एयमट्टं नो आढाह, जाव तुसिणीया संचिद्धह, तएणं ताओ पुप्फचूलाओ

(नो खलु कपइ, देवाणुप्पिया ! समणीणं णिगंगथीणं सररीरवाउसियाणं होत्तए-तुमं च णं देवाणुप्पिया ! सररीर वाउसिया जाया अभिकखणं २ ह्त्थे धोवसि, जाव आसयाहि वा सयाहि वा, णिसीहियाहि वा तं तुमं देवाणुप्पियाए । एयस्स ठाणस्स आलोए हि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि)

हे देवानुप्रिये ! निर्ग्रन्थ श्रमणीयोंने शरीरवकुश थलु कल्पित नहीं, परंतु तमे तो हे देवानुप्रिये ! शरीरवकुश थलु रही छे । बार-बार हाथेने धूओ छे यावत् क्यां तमादे उठवा येसवालुं डोय छे, सूवालुं डोय छे, स्वाध्याय करवा डोय छे ते स्थानने पडेलां तमे पाणीथी सिंचित करी वे छे, अने त्थारपणी तमे त्यां उठे-येसे छे, सूवे छे अने स्वाध्याय करे छे । अथी हे देवानुप्रिये ! तमे आ स्थाननी आलोचना करे यावत् प्रायश्चित्त ग्रहण करे ।

(तएणं सा काली अज्जाए पुप्फचूलाए अज्जाए एयमट्टं नो आढाह जाव तुसिणीया संचिद्धह, तएणं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ कालिं अज्जं अस्सि-

पुष्पचूलाया आर्याया एतमर्थे 'नो आढाइ' नो आद्रियते=न मन्यते यावत् 'तुसिणीया' तूष्णीका=समौना संतिष्ठते। ततः खलु ताः पुष्पचूला आर्याः कालीमार्याश्च 'अभिक्लृणं २' यमीक्ष्णं २=वारं वारं 'हीलेंति' हिलन्ति=जन्मकर्मोद्घाटनपूर्वकं निर्भर्त्सयन्ति 'गिंदंति' निन्दन्ति=कुत्सितशब्दपूर्वकं दोषोद्घाटनेन अनाद्रियन्ते, 'खिसंति' खिस्सन्ति=हस्तमुखादिविकारपूर्वकमवमन्यन्ते, अपमानं कुर्वन्तीत्यर्थः 'गरिहंति' गर्हन्ते=गुर्वादिसमक्षं दोषाविष्करणपूर्वकं तिरस्कुर्वन्ति, 'अवमण्णंति' अवमन्यन्ते=रूक्षवचनादिभिरपमानं कुर्वन्ति, तथा-अभीक्ष्णमभीक्ष्णम् वारंवारं एतमर्थं=शरीरसंस्करणरूपं निवारयन्ति। ततः खलु तस्याः काल्या आर्यायाः श्रम-अञ्जाओ कालिं अञ्जं अभिक्खणं २ हीलेंति, गिंदंति, खिसंति, गरिहंति अवमण्णंति, अभिक्खणं २ एयमहं निवारेंति, तएणं तीसे कालीए अञ्जाए समणीहिं णिगंथीहिं अभिक्खणं २ हीलिञ्जमाणीए जाव वारिञ्जमाणीए इमेयारूवे अञ्जत्थिए जाव समुप्पज्जितथा) उस काली आर्याने पुष्पचूला आर्याके इस कथन रूप अर्थको नहीं माना। केवल वह यावत् चुपचाप ही रही। उत्तरमें जब उसने उनसे कुछ नहीं कहा-तब उस पुष्पचूला आर्या 'हीलेंति' काली आर्याकी बार २ जन्मकर्म उद्घाटन पूर्वक भर्त्सना (तिरस्कार) करना प्रारंभ कर दिया। 'निंदंति' कुत्सित शब्दोच्चारण पूर्वक दोषोद्घाटन करते हुए वे उसकी बार २ निंदा करने लगीं। 'खिसंति' हस्त, मुख, आदि के विकार प्रदर्शन पूर्वक वे उसका अपमान करने लग गईं। 'गरिहंति' शुरु आदिजनों के समक्ष दोषों को प्रकट करके वे उसका तिरस्कार करने लगीं। तथा "अवमण्णंति" रूक्षवचन आदि बोल २ कर उसका अपमान भी करने लग गईं।

क्खणं २ हीलेंति गिंदंति, खिसंति, गरिहंति अवमण्णंति, अभिक्खणं २ एयमहं निवारेंति, तएणं तीसे कालीए अञ्जाए समणीहिं णिगंथीहिं अभिक्खणं २ हीलिञ्जमाणीए जाव वारिञ्जमाणीए इमेयारूवे अञ्जत्थिए जाव समुप्पज्जितथा)
 ते काली आर्याये पुष्पचूला आर्याना आ कथन इय अर्थना स्वीकार कथी नडि इडत ते भूगी थधने न भेसी रडी. न वाभभां न्यारे तेखे तेभने कर्ध न कळुं नडि त्यारे पुष्पचूला आर्याये काली आर्यानी वारंवार जन्म, कर्म, उद्घाटनपूर्वक भर्त्सना करवा मांडी. कुत्सित शब्दोच्चारणयुथी दोषोद्घाटन करती ते तेनी वारंवार निंदा करवा लागी. डाथ, सुभ वगेरेने विकृत करीने ते तेभनुं अपमान करवा लागी. शुइ वगेरेनी साथे दोषोने प्रकट करीने ते तेभने तिरस्कार करवा लागी. तेभन इक्ष वयने वगेरे भालीने तेनुं अपमान पणु करवा लागी अने साथे साथे ते आर्या तेने वारंवार शरीर-संस्कार करवानी भनार्ध पणु करती रडी. आ प्रभाखे निश्रंथ श्रमणुयो वडे वारंवार

पीभिः निर्घन्धीभिः अभीक्ष्णम्भीक्ष्णं हिल्यमानायाः यावत्-वार्यमाणाया अय-
मेतद्रूपः 'अञ्जत्थिष्' आध्यात्मिकाः=आत्मगतविचारः यावत्-मनोगतः संकल्पः
सञ्जुदपद्यत यदा खलु अहम् अगारवासमध्ये 'वसित्था' उपिता=न्ववसं तदा खलु
अहं 'सयवसा' स्वयंवशा=स्वतन्त्रा आसम्, 'यत्प्रभृति च खलु अहं मुण्डाभूत्वा
अगारात् अनगारितां प्रज्जिताऽभवं तत्प्रभृति च खलु अहं परवशा जाताऽस्मि
'तं' तत्=तस्मात् श्रेयः खलु मम कल्पे प्रादुप्रभातायां रजन्यां यावत् सूर्ये ज्व-
लति=सूर्योदये सति 'पाडिकं' प्रत्येकम्=एवमात्रं मिथमित्यर्थः, उपाभयमुपसं-
पद्य खलु विहरुम्, 'तिकट्टु' इति कृत्वा=इति मनसि निधाय एवं सम्प्रेक्षते,

साथ २ में वे आर्या उसे बार २ शरीर संस्कार करने से मना भी
करती रही। इस प्रकार उस काली आर्या के निर्घन्ध श्रमणियों द्वारा
बार २ भस्मित आदि होने पर तथा शरीर संस्कार करने से निषिद्ध होने
पर, उसे यह इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न
हुआ। (जया णं अहं अगारवासमज्जे वसित्था तथा णं अहं सयवसा,
जप्पिभिइं च णं अहं मुंडा भवित्ता अगाराओ, अणगारियं पव्वइया
तप्पभिइं च णं अहं परवसा जाया, तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए
रयणीए जाव जलंते पाडिककाउवस्सयं उवसंपज्जिसा णं विहरित्ताए
त्तिकट्टु एवं संपहेइ संपेहिच्चा कल्लं जाव जलंते पाडिएककं उवस्सयं
गिण्हइ) जब मैं अपने घर के बीच में रहती थी-उस समय मैं स्वतंत्र
थी। परन्तु जिस दिन से मुंडित होकर अगार अवस्था से इस अनगार
अवस्था में आई हूँ उस दिन से मैं परवशा-पराधीन बन चुकी हूँ। अतः
मुझे वही श्रेयस्कर है कि मैं दूसरे दिन प्रातः काल होते ही जब सूर्यो-

वासित्त वजरे धवथी तेभञ् शरीर संस्कारनी भनाथ डोवा अहल ते हाळी
आथीने आ भतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उद्भवथी के—

(जयाणं अहं अगारवासमज्जे वसित्था तथाणं अहं सयवसा जप्पभिइं-
च णं अहं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया तप्पभिइं च णं अहं
परवसा जाया तं सेयं खलु मम कल्लं पउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते पाडिका
उवस्सयं उवसंपज्जिसा णं विहरित्ताए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिच्चा कल्लं जाव
कल्लं पाडिएकं उवस्सयं गिण्हइ)

न्यारे हुं धरमां रडेती डती त्त्यारे हुं स्वतंत्र डती. परंतु न्यारथी मे
मुंडित यधने अगार अवस्थाने त्यलने अनगार.अवस्था स्वीकारी छे त्त्यारथी
हुं परवश-पराधीन यध गधं छुं. अथी मारा भाटे डवे अथी अथररर
अथुय छे के हुं पीने दिवसे सवार रतां अ न्यारे सूर्य उदय पामशे त्त्यारे

सम्प्रेक्ष्य कस्ये यावत् सूर्ये ज्वलति 'पाडिएकं' प्रत्येकम्-उपाश्रयं गृह्णाति । तत्र खलु सा 'अणिवारिया' अनिवारिता-निवारकाभावात्, 'अणोहृदिया' अन्वधट्टिका घट्टच्छा प्रवृत्तिप्रतिरोधकाभावात्, अतएव 'सच्छंदमई' स्वच्छन्दमतिः अभीक्षणमभीक्षणं हस्तौ धावति यावत्-आस्ते वा शैते वा निषेधयति वा । ततः खलु सा काली आर्या 'पासत्या' पार्श्वस्था-गाढकारणविना नित्यपिण्डभोक्त्री, अतएव पार्श्वस्थविहारिणि, 'ओसण्णा' अवसन्ना समाचारीपालनेऽवसी-

दय हो जावेगा-दूसरे उपाश्रय में चली जाऊँ । इस प्रकार का उसने अपने मन में विचार किया । विचार करके फिर वह दूसरे दिन प्रातः काल होते ही सूर्योदय होने पर दूसरे उपाश्रय में चली गई । (तत्पर्यं सा अणिवारिया अणोहृदिया सच्छंदमई अभिक्खणं २ हत्ये धोवेइ, जाव आसयइ वा सयइ वा णीसेहेइ वा-तएणं सा काली अज्जा पासत्या पासत्थविहारी ओसण्णा ओसण्णविहारी, कुसीला कुसीलविहारी, अहाळंदा अहाळंदविहारी, संसत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सा माणणपरियागं पाउणइ) वहाँ वह बिना रोक टोक, घट्टच्छा प्रवृत्ति करने लग गई । इच्छानुसार बार २ हाथ पैर आदि धोने लग गई । उठने बैठने एवं सोने के स्थान को तथा स्वाध्याय भूमि को पहिले से ही पानी से सिञ्चित कर वहाँ उठने बैठने एवं स्वाध्याय करने लगी । इस तरह की स्वच्छन्द प्रवृत्ति से वह काली आर्या पासत्या-गाढकारण के विना नित्य पिण्ड भोक्त्री-बन गई, पार्श्वस्थ विहारिणी हो गई । समाचारी

णीण उपाश्रयमां ञती रहुं. आ प्रभाणु तेणु मनमां विचार कर्यो. विचार करीने ते णीणे द्विसे सवार थतां ञ सूर्योदय थया आइ णीण उपाश्रयमां ञती रहुी

(तत्पर्यं सा अणिवारिया अणोहृदिया सच्छंदमई अभिक्खणं २ हत्ये धोवेइ, जाव आसयइ वा सयइ वा णीसेहेइ वा तएणं सा काली अज्जा पासत्या पासत्थविहारी ओसण्णा ओसण्णविहारी कुसीला कुसीलविहारी अहा'दा अहाळंद-विहारी संसत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ)

त्यां ते शैक-टोक विना स्वच्छंदं यथने प्रवृत्ति करवा लागी. धच्छा भुञ्ज वारंवार हाथ-पग धोवा लागी, उठवा-बैसवा अने सूवाना स्थानने तेमञ् स्वाध्याय भूमिने पहिलेथी ञ पाणी वडे सिञ्चित करीने त्यां उठवा बैसवा तेमञ् स्वाध्याय करवा लागी. आ नतनी स्वच्छन्दं प्रवृत्तिथी ते काली आर्या पासत्या-गाढ आरण्य वगर नित्य पिंड भोक्त्री-भनी गच्छ, पार्श्वस्थ

दन्ती, अतएव अवसन्नविहारिणी, 'कुशीला' कुशीला=उत्तरगुणसेवया संज्वलन-
कषायोदये प्रवृत्ता, अतएव कुशीलविहारिणी, 'अहाच्छन्दा' यथाच्छन्दा=
स्वाभिप्रायपूर्वकस्वमति कल्पितमार्गे प्रवृत्ता, अतएव यथा छन्दविहारिणी, 'संसक्ता'
संसक्ता गृहस्थादिप्रेमबन्धनेन शिथिलसामाचारीप्रवृत्ता सती बहूनि वर्षाणि श्रामण्य-
पर्यायं पालयति, पालयित्वा अर्द्धमासिकया संलेखनयाऽऽस्मानं 'झूसेइ' जोष-
यति=सेवते, झूसित्ता=जोपयित्वा त्रिसद्वृत्तानि 'अणसणाए' अनशनया 'छेएइ'
छिनत्ति, छित्त्वा तस्य स्थानस्य अनालोचिताऽ प्रतिक्रान्ता कालमासे
कालं कृत्वा चमरचञ्चायां राजधान्यां कालावतंसके भवने उपपातसमायां
देवशयनीये देवदृष्यान्तरिते = देवदृष्यवस्त्राच्छादिते अङ्गुलस्याऽसंख्येयमाग-
मात्रायामवगाहनायां कालीदेवीतया उपपन्ना । ततः खलु सा कालीदेवी अधुनो-

पालन करने में शिथिलता दिखलाने लगी—अवसन्न विहारिणी हो गई ।
कुशीला बन गई—संज्वलन कषाय के उदय होने से उत्तरगुणों की
विराधना करने लगी—कुशील विहारिणी हो गई और अपनी इच्छानु-
सार मार्ग की कल्पना कर उसमें प्रवृत्त रहने लग गई—इसलिये वह
यथाच्छन्द विहारिणी भी बन गई । गृहस्थ आदि जनों के अधिक परि-
चयजन्य प्रेमबंधन से अपने आचार पालन में शिथिल बनी हुई उसने
इस तरह होकर अनेक वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया—और
(पाडणित्ता) पालनकर (अर्द्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ,
झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, छेइत्ता, तस्स ठाणस्स अणा-
लोइय अपडिक्कत्ता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए
कालवडिंएस भवणे उववायस्सभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुल-

विहारिणी धर्ष गध सभाचारी पालन करवाभां शिथिलतावाणी गताववा लागी—
अवसन्न विहारिणी धर्ष गध. कुशीला धर्ष गध, संज्वलन कषायतो उदय
डोवाथी उत्तर गुणोनी विराधना करवा लागी, कुशील विहारिणी धर्ष गध
अने पोतानी धम्म सुज्ज भार्गनी कल्पना करीने तेभां प्रवृत्त थवा लागी.
अधी ते यथाच्छन्द विहारिणी पणु भनी गध. गृहस्थ वगेरे डोडोना वधारे
पठता परिचयजन्य प्रेमबंधनथी पोताना आचार पालनमा शिथिल धर्ष गध.
तेणे आ प्रभाणे धणुा वर्षो सुधी श्रामण्य-पर्यायतुं पालन कथुं अने
(पडणित्ता) पालन करीने

(अर्द्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए
छेएइ, छेइत्ता, तस्स ठाणस्स अणालोइयअपडिक्कत्ता कालमासे कालं किच्चा चमर-

पपन्ना=तत्कालसमुत्पन्नासती पञ्चविधयापर्याप्त्या यथासूर्याभः=सूर्याभदेववत् ,
 'जाव भासामणपञ्जत्तीए' भाषामन.पर्याप्त्या-यावत्-अह्वारपर्याप्त्या १,
 शरीरपर्याप्त्या २, इन्द्रियपर्याप्त्या ३, आनप्राणपर्याप्त्या ४, भाषामनः पर्याप्त्या
 ५, पर्याप्तिभावं गच्छति । पर्याप्तिबन्धकाले देवानामाहारशरीरादिपर्याप्तिसमाप्ति-
 कालान्तरापेक्षया भाषामनः पर्याप्त्योः स्तोत्रकालान्तरतया तयोरेकत्वेन विवक्ष-
 णात् पर्याप्तीनां पञ्चविधत्वम् । ततः खलु सा काली देवी चतसृणां सामानिकु-
 साहस्रीणां यावत्-अन्येषां च बहूनां कालावतंसकभवनवासिनामसुरकुमारणां

स्स असंखेज्जइ, भागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवीत्तए उववण्णा)
 अर्द्धमास की संलेखना से उसने अपनी आत्मा को युक्त किया । इस
 प्रकार उसने अनशनों द्वारा ३० भक्तोंका छेदन करने पर भी उस स्थानकी
 आलोचना नहीं की और न वह उन अतिचारों से पीछे ही हटी-अतः
 अनालोचित अप्रतिक्रान्त बनकर वह जब उस काल अवसर-काल कर
 चमरचंपा नाम की राजधानी में, कालावतंसक भवनमें, उपातातसभामें
 देवदूष्यवस्त्रसे आच्छादित देवशयनीय 'शय्या' ऊपर अंगुलके असंख्यातवे
 मात्र की अवगाहना से काली देवी के रूप में उत्पन्न हो गई (तएणं सा
 कालीदेवी अहुणोववण्णा समाणी पंचविहाए पज्जत्तीए जहा सूरियाभो
 जाव भासामणपञ्जत्तीए ०! तएणं सा कालीदेवी चउण्हं समाणि य
 साहस्सी णं अण्णेसिं च बहूणं कालवडेंसकभवनवासीणं असुरकुमाराणं

चंचाए रायहांणीए कालवडिंसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंघी देवदूसं-
 तरिए अंगुलस्स असंखेज्जइ, भागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवीत्तए उववण्णा)
 तेण्णे अर्द्धमासनी संदीप्पनाथी पोताना आत्माने युक्त कथी. आ प्रभाण्णे
 तेण्णे अनशने वडे उ० लक्ष्मीतुं छेदन करीने पणु ते स्थाननी आदीयन्ता करी
 नडि अने ते अतिथारोना आचरण्णथी पणु अट्टकी नडि. ज्जेथी अनादीयित
 अप्रतिकांत थधने ते न्यारे काण अवसरं काण करीने अभरयन्था नामनी
 राजधानीमां उपातंसक भवनमां, उपातात सभामां देवदूष्य वस्त्रथी आच्छादित
 देवशनीय उपर आंगणीयाना असंख्यातमा मात्रनी अवगाहनाथी काली देवीना
 रूपमां उत्पन्न थध गध.

(तएणं सा काली देवी अहुणोववण्णा समाणी पंचविहाए पज्जत्तीए
 जहा सूरियाभो जाव भासामणपञ्जत्तीए० । तएणं सा काली देवी चउण्हं समा-
 णिवसाहस्सीणं जाव अण्णेसिं च बहूणं कालवडेंसकभवनवासी णं असुरकुमा-
 राणं देवाण य देवीणय आदेवचं जाव विहरइ)

देवानां च देवीनां च ' आहेवचं ' आधिपत्यं=स्वामित्वं कुर्वन्तीपालयन्ती यावद् विहरति ।

एवम्=उक्तप्रकारेण खलु हे गौतम ! काल्या देव्या सा दिव्या देवर्द्धिः ३, लब्धा, प्राप्ता, अभिसमन्वागता ।

गौतमः पृच्छति—काल्या खलु हे भदन्त ! देव्यास्तत्र ' केवड्यं ' कियन्तं

देवाण य देवीण य आहेवचं जाव विहरइ) इस प्रकार वह काली देवी अभी अभी उत्पन्न होकर पांच प्रकार की पर्यासियों से पर्यास बनी है । पर्यासियां ६ होती हैं परन्तु यहां पर जो वे पांच की संख्या में निर्दिष्ट हुई हैं—उसका कारण यह है कि पर्यासि के बंधकाल में देवों के आहार, शरीर आदि पर्यासियों के समाप्तिकाल की अपेक्षा भाषा और मनः पर्यास का साथ साथ बंध होता है, इसलिये इन दोनों को एक रूप से यहां विवक्षित किया गया है । वे पर्यासियां इस प्रकार हैं—(१) आहारपर्यासि (२) शरीर पर्यासि (३) इन्द्रियपर्यासि (४) श्वासोच्छ्वासपर्यासि (५) भाषा एवं मनः पर्यासि । वह काली देवी चार हजार सामानिक देवोंका यावत् और दूसरे अनेक कालावतंसक भवनवासी असुरकुमार देवों का देवियों का आधिपत्य कर रही है । (एवं खलु गोयमा । कालीए देवीए सा दिव्वा देवड्डी ३ लद्धापत्ता अभिसमण्णा गया,

आ प्रभाणु ते काली देवी इभंषां ७ उत्पन्न थइने पांच प्रकारनी पर्यासिओथी पर्यासि जनी छे. पर्यासिओ छ डोय छे. पणु अर्द्धी ७ पांचनी संख्यामां ७ जताववामां आवी छे. तेतुं डारणु आ प्रभाणु छे डे पर्यासिना बंधकालमां देवेना आहार, शरीर वगेरे पर्यासिओना समाप्तिकालनी अपेक्षा भाषा अने मनः पर्यासितुं ओकी साथे बंध डोय छे ओथी आ जनेने अर्द्धी ओक इयमां ७ जताववामां आवी छे. ते पर्यासिओ आ प्रभाणु छे— (१) आहार पर्यासि, (२) शरीर पर्यासि, (३) इन्द्रिय पर्यासि, (४) श्वासोच्छ्वास पर्यासि, (५) भाषा अने मनः पर्यासि. ते काली देवी चार हजार सामानिक देवे उपर यावत् भील पणु धणु कालापतंसक भवनवासी असुर कुमार देवे, देवीओ उपर शासन करी रह्ठी छे.

(एवं खलु गोयमा ! कालीए देवीए सा दिव्वा देविड्डी ३ लद्धापत्ता अभिसमण्णागया, कालीए णं भंते ! देवीए केवड्यं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा अल्लद्धा इज्जाइं पल्लिओवसाइं ठिई पण्णत्ता)

कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? भगवान् प्राह—हे गौतम ! ' अद्वाइज्जाइं ' अर्द्धतृतीये=साद्धे द्वे पत्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

गौतमः पृच्छति—काली हे भदन्त ! देवी तस्माद्देवलोकाद् अनन्तरम्=आयु-
र्भवस्थितिक्षयानन्तरं ' उव्वट्टित्ता ' उद्भृत्य=निस्सृत्य कुत्र गमिष्यति कुत्र-
उत्पत्स्यते ? ।

भगवान् प्राह—हे गौतम ! सा काली देवी देवलोकाच्च्युत्वा महाविदेहे वर्षे
उत्पद्य सेत्स्यति, ।

कालीए णं भंते ! देवीए केवइयं कालं ठिईं पणत्ता ? गोयमा अद्वाइ-
ज्जाइं पलिओवमाईं ठिईं पणत्ता) इस तरह से हे गौतम ! काली देवी
ने वह दिव्य देवर्द्धि ३, अर्जित की है स्वाधीन की है और उसे अपने
उपभोग के योग्य बनाया है। अब गौतम पुनः प्रश्न से पूछते हैं—कि हे
भदन्त ! कालीदेवी की कितनी स्थिति है ? उत्तर में प्रश्न ने उनसे कहा—हे
गौतम ! कालीदेवी की स्थिति अर्द्धाईं पत्य की (प्रज्ञप्त हुई) है (काली
णं भंते ! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छहिइ, कहिं
उव्वज्जिहिइ, ? गोयमा ! महाविदेहेवासे सिज्जिहिइ एवं खलु जंबू !
समणेणं जाव संपत्तेणं पढमंस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते
त्तिवेमि, धम्मकहाणं पढमज्झयणं समत्तं) हे भदन्त ! कालीदेवी उस
देवलोक से आयु एवं भवस्थिति के क्षय के अनन्तर निकलकर कहाँ
जावेगी, कहाँ उत्पन्न होगी ? इस गौतम के प्रश्न का उत्तर प्रश्न ने उन्हें
इस प्रकार दिया—गौतम ! वह काली देवी देवलोक से चव कर महा-

आ प्रभाणुं डे गौतम ! काली देवीए ते दिव्य देवर्द्धि उ प्राप्त करी
छे. स्वाधीन भनावी छे अने तेने पोताने भाटे उपभोग योग्य भनावी छे.
डेवे गौतम करी प्रश्नने पूछे छे डे डे लदन्त ! काली देवीनी स्थिति डेट्ठी
व्वाअमां प्रश्नने तेभने कहुं डे डे गौतम ! काली देवीनी स्थिति अदी पत्यनी
(प्रज्ञप्त थर्) छे.

(कालीणं भंते ! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छि-
हिइ, कहिं उव्वज्जिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्जिहिइ, एवं खलु
जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमंस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते
त्ति वेमि, धम्मकहाणं पढमज्झयणं समत्तं)

डे लदन्त ! काली देवी ते देवलोकथी आयु अने भवस्थितिने पूरी
करिने कथां व्थे ? कथां उत्पन्न थथे ? आ प्रभाणुं गौतमवा प्रश्नने सांलणीने
प्रश्नने उत्तरमां तेने कहुं डे डे गौतम ! ते काली देवी देवलोकथी भवीने

श्रीसुधर्मास्वामी प्राह—एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन यावत्—मोक्षं सम्प्राप्तेन प्रथमस्य वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य अयमर्थः—पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः । त्रिवेमि' इति ब्रवीमि, व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ४ ॥

॥ धर्मकथानां प्रथमवर्गस्य प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ॥

विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगी और वहीं से सिद्ध होगी। अब सुधर्मा स्वामी श्री जंबू ! स्वामी से कहते हैं कि हे जंबू ! मुक्ति को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ प्रज्ञप्त किया है। ऐसा मैंने उन्हीं के मुख से सुनकर यह तुमसे कहा है ॥ सूत्र ४ ॥

—प्रथम वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्तः—

महाविदेह क्षेत्रमां उत्पन्न थशे अने त्यांथी न सिद्ध थशे. हवे सुधर्मा स्वामी श्री न'जू ! स्वामीने कडे छे डे डे न'जू ! मुक्तिप्राप्त श्रमणु भगवान् महावीर प्रथम वर्गना प्रथम अध्ययनने आ पूर्वोक्त इथे अर्थ प्रज्ञप्त कथे छे. आवु' हु' तेभना श्री सुधर्मा सांलणीने तमने कही गथे छु'. ॥ सूत्र ४. ॥

“ प्रथम वर्गं तुं प्रथम अध्ययन समाप्त. ”

अथ द्वितीयमध्ययनं प्रारभ्यते—

मूलम्—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अय-
मट्ठे पणत्ते बिइयस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं भग-
वया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के० अट्ठे पणत्ते !, एवं खलु
जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए
चेइए सामी समोसढे परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ, तेणं
कालेणं तेणं समएणं राई देवी चमरचंचाए रायहाणीए एवं
जहा काली तहेव आगया णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया
भंतेत्ति भगवं गोयमा ! पुब्बभवपुच्छा, एवं खलु गोयमा !
तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा णयरी अंबसालवणे
चेइए जियसत्तू राया राई गाहावई राईसिरी भारिया राई
दारिया पासंस्स समोसरणं राई दारिया जहेव काली तहेव
निक्खंता तहेव सरीरबाउसिया तं चेव सव्वं जाव अंतं
काहिति । एवं खलु जंबू ! बिइयज्झयणस्स निक्खेवओ ॥

॥ पढमवग्गस्स बीयज्झयणं समत्तं ॥ सू० ५ ॥

टीका—' जइणं भंते ' इत्यादि । जम्बूस्वामीपृच्छति—यदि खलु हे भदन्त ।

—द्वितीय अध्ययन प्रारंभः—

—जइणं भंते ! समणेणं इत्यादि ।

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मास्वामी से पूछते हैं कि (भंते) हे भदन्त ! (जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं

भीष्णु' अध्ययन प्रारंभः—

जइणं भंते ! समणेणं इत्यादि—

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मास्वामी से पूछे छे के (भंते) हे भदन्त !
(जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स

भ्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनाममधेयं स्थानं सम्प्राप्तेन धर्मकथानां प्रथमस्य वर्गस्व प्रथमाध्ययनस्यायमर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः, द्वितीयस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य भ्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् मोक्षं सम्प्राप्तेन कोऽर्थः=को भावः प्रज्ञप्तः ?

सुधर्मास्वामीप्राह—एवं खलु हे जम्बू ! तरिमन् काले तरिमन् समये राज-गृहं नगरम् । गुणशिलकं चैत्यम् । स्वामी भगवान् महावीरः समवसृतः । परिष-

पढमस्स वगस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते विइयस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुण-सिलए चेइए सामी समोसडे) यदि भ्रमण भगवान् महावीर ने जो कि सुक्ति स्थान को प्राप्त हो चुके हैं धर्मकथाके प्रथम वर्ग के प्रथम अध्य-यन का यह पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्ररूपित किया है—तो हे भदंत ! द्वितीय अध्ययन का उन्हीं भ्रमण भगवान् महावीर ने जो कि सुक्ति को प्राप्त कर चुके हैं क्या भाव अर्थ प्रतिपादिन किया है ? इस प्रकार जंबू स्वामी के पूछने पर सुधर्मा स्वामी उनसे कहते हैं कि हे जंबू ! सुनो—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था । उसमें गुणशिलक नाम का उद्यान था । उसमें महावीर स्वामी समवसरे ।—(परिषा निग्गया—जाव पज्जुवासइ,

भग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते विइयस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के० अट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ? तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सामी समोसडे)

जे भ्रमणु भगवान् महावीरे—के जेभणु सुक्तिस्थान भेणवी वीधुं छे. धर्मकथाना प्रथम वर्गना प्रथम अध्ययनना आ पूर्वोक्त रूपमां अर्थ प्ररूपित कथो छे तो हे भदन्त ! ते जे भ्रमणु भगवान् महावीरे—के जेभणु सुक्ति-स्थान भेणवी वीधुं छे. थीअ अध्ययनना शेो भाव—अर्थ प्रतिपादित कथो छे. आ प्रभाणु जे भू स्वामीना प्रश्नने सांभणोने श्री सुधर्मा स्वामी तेभने कडे छे के हे जे भू ! सांभणो, तभारा प्रश्नने उत्तर आ प्रभाणु छे के ते कथे अने ते समये राजगृह नामे नगर छंतुं तेभां गुणशिलक नामे उद्यान छंतुं तेभां महावीर स्वामी पधाय्तां.

(परिषा निग्गया—जाव पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं राई देवी

त्रिगता यावत् भगवन्तं पर्युपास्ते । तस्मिन् काले तस्मिन् समये ' राई ' रात्रिः-
रात्रिनाम्नी देवी चमरचञ्चायां राजधान्याम्, एवं यथा काली तथैव-आगता,
नाट्यविधिमुपदर्श्य प्रतिगता । ' भंते त्ति ' हे भदन्त ! इति सम्बोध्य भगवान्
गौतमः ' पुन्वभवपुच्छा ' पूर्वभवपुच्छा रात्रि देव्याः पूर्वभवं पृच्छति । भगवान्
प्राह-एवं खलु हे गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये आमलकण्या नगरी,
आम्रसालवनं चैत्यम्, जितशत्रू राजा, रात्रिर्गोथापतिः, रात्रिश्रीर्भायां, तयोः

तेणं कालेणं तेणं समएणं राई देवी चमरचंचाए रायहाणीए एवं जहा
काली-तहेव आ गया नट्टविहिं उवदंसेत्ता पड्डिगया) प्रभु का आगमन
सुनकर नगर निवासिनी समस्त जनता उन प्रभु के दर्शन करने और
उनसे धर्मोपदेश सुनने के लिये उस गुणशिलक उद्यान में आई।
प्रभु ने सब को धर्म का उपदेश दिया। सबने प्रभु की पर्युपासना
की। उस काल में और उस समय में रात्रिनाम की देवी चमर-
चंचाराजधानी में रहती थी-जैसे वहाँ काली देवी रहती थी। सो
वह भी प्रभु का आगमन सुनकर वहाँ आई। वहाँ आकर उसने नाट्य
विधि दिखलाई-और दिखलाकर फिर वह वहाँ से वापिस अपने स्थान
पर चली गई। (भंते त्ति भगवं गोयमा ! पुन्वभवपुच्छा-एवं खलु
गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकण्या णयरी अंबसाल-
वणे चेइए-जियसचू राया-राई गाहावई, रायसिरी भारिया, राई

चमरचंचाए रायहाणीए एवं जहा काली-तहेव आगया नट्टविहिं उवदंसेत्ता
पड्डिगया)

प्रभुनुं आगमन सांभणीने नगरना अधा नागरिकेणो ते प्रभुनां दर्शन
करवा भाटे तेमञ्ज तेमनी पासेथी धर्मोपदेश सांभणवा भाटे ते शुभुशिलक
उद्यानमां आ०था. प्रभुजे अधाने धर्मोना उपदेश आप्थे. णधाजे प्रभुनी
पर्युपासना करी ते काणे अने ते समये रात्रि नामे देवी चमरचंचा राज-
धानीमां काली देवीनी जेम रहेती હતી. ते प्रभुनुं आगमन सांभणीने त्यां
आवी. त्यां आवीने तेजे नाट्यविधि अतावी अने अतावीने ते त्यांथी
पाळी नती रही.

(भंते त्ति भगवं गोयमा ! पुन्वभवपुच्छा-एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं
तेणं समएणं आमलकण्या णयरी अंबसालवणे चेइए-जियसचूः राया-राई
गाहावई, रायसिरी भारिया, राई दारिया, पासस्स समोसरणं-राई दारिया

रात्रिदौरिकाऽऽसीत् । पार्श्वस्य = पार्श्वप्रभोः समवसरणम् । रात्रिदौरिका यथैव काली तथैव निष्कान्ता=तथैव शरीरवाकुशिका, तदेव सर्वं यावत्-सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति ।

दारिया पासस्स समोसरणं राई दारिया जहेव काली- तहैव निक्खंतां, तहेवसरीर बाउसिया तं चेव सव्वं जाव अंतं काहिह एवं खलु जंबू । विइयज्झयणस्स निक्खेवओ) उसके चले जाने के बाद श्रमण भगवान् महावीर से गौतम ने रात्रिदेवी का पूर्वभव पूछा-प्रभु ने उनसे इस प्रकार कहा-हे गौतम ! उसकाल और उस समयमें आमलकल्पा नामकी नगरी थी । उसमें आञ्जनालवन नामका उद्यान था । नगरीके राजा का नाम जितशत्रु था । वहाँ रात्रि नामका एक गाथापति रहता था । उस की भार्या का नाम रात्रिश्री था । इन दोनों के रात्रि नाम की एक पुत्री थी जिस प्रकार काली प्रभु का उपदेश सुनकर प्रतिबोध को प्राप्त हो गई थी ।-उसी प्रकार पार्श्वनाथ के वहाँ उद्यान में आने पर भी उनसे धर्मोपदेश सुनकर प्रतिबोध को प्राप्त हो गई । अतः वह माता पिता से आज्ञा लेकर काली की तरह बड़े टाठ बाट के साथ शिबिका में बैठकर प्रभु के समीप माता पिता ले गये । वहाँ वह दीक्षित हो गई । धीरे २ वह शरीर वाकुशिका बन गई । जिस प्रकार

जहेव काली-तहेव निक्खंता, तहेव सरीरबाउसिया तं चेव सव्वं जाव अंतं काहिह एवं खलु जंबू ! विइयज्झयणस्स निक्खेवओ)

तेना गया भाह श्रमणु भगवान् महावीरने गौतमे रात्रि देवीना पूर्व-
भवनी निगत पूछी. प्रभुणे तेमने आ प्रभाणु क्खं के डे गौतम ! ते कणे
अने ते समये आमलकल्पा नामे नगरी હતી તેમાં આજ્ઞશાલવન નામે
ઉદ્યાન હતું. નગરીના રાજાનું નામ જિતશત્રુ હતું. ત્યાં રાત્રિ નામે એક
ગાથાપતિ રહેતો હતો તેની પત્નીનું નામ રાત્રિશ્રી હતું. તેઓ બંનેને રાત્રિ
નામે એક પુત્રી હતી. જેમ કાલી પ્રભુને ઉપદેશ શ્રવણ કરીને પ્રતિબોધને
પ્રાપ્ત થઈ તેમજ ત્યાં ઉદ્યાનમાં પધારેલા પાર્શ્વનાથની પાસેથી ધર્મોપદેશ
સંભળીને તે પણ પ્રતિબોધિત થઈ ગઈ. એથી કાલીની જેમજ તેને પણ
પોતાના માતાપિતાની પાસેથી આજ્ઞા મેળવી અને ત્યારપછી તેના માતાપિતાએ
તેને પાલખીમાં બેસાડીને પ્રભુની પાસે લઈ ગયા, ત્યાં તે દીક્ષિત થઈ ગઈ.
ધીમે ધીમે તે પણ શરીર વાકુશિકા બની ગઈ. જેમ કાલી દારિકા પણ આર્યા
અને શરીર વાકુશિકા બની ગઈ હતી ત્યારપછી જેવી સ્થિતિ કાલી આર્યાની

‘ एवं खलु जम्बू ! ’ इत्यादि द्वितीयाध्ययनस्य निक्षेपकः=उपसंहारः= समाप्तवाक्यमबन्धोऽत्र बोध्यः ॥ सू०५ ॥

इति प्रथमवर्गस्य द्वितीयाध्ययनं समाप्तम् ॥-१-२ ॥

काली दारिका आर्या होकर शरीर वाकुशिका बन गई थी। इसके बाद जैसी स्थिति काली आर्या की हुई—वही सब स्थिति इस रात्रि दारिका की भी हुई—इस प्रकार सब संबन्ध यहां पर इसके विषय में लगा लेना चाहिये और वह संबन्ध “ महाविदेह में उत्पन्न होकर यह समस्त दुःखों का अन्त करेगी ” यहां तक जानना चाहिये। इस प्रकार हे जंबू ! यह प्रथमवर्ग के द्वितीय अध्ययन का उपसंहार है ॥ सू० ५ ॥

प्रथमवर्ग का द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

थर्ध तेवीञ् स्थिति ते रात्रिद्वारिकानी पञ्च थर्ध. अर्द्धी आ प्रभाञ्छे कालिदारिकानो भधा संभंध आना विधे समञ्छ देवे नोद्यञ्छे अने ते संभंध “ महाविदेहमां उत्पन्न थर्धने ते भधा दुःखेनो अंत करेशे ” अर्द्धी सुधी समञ्चो नोद्यञ्छे. आ प्रभाञ्छे छे जम्बू ! प्रथम वर्गना पीञ् अध्ययननो आ उपसंहार छे. सू. ५

“ प्रथम वर्गं तु भीष्मं अध्ययनं समाप्तम् ”

अथ तृतीयमध्ययनम्

मूलम्—जइ णं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए एवं जहेव राई तहेव रयणी वि, णवरं आमलकप्पा नयरी रयणी गाहावई रयणी-सिरी भारिया रयणी दारिया सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ ३ । एवं विज्जू वि आमलकप्पा नयरी विज्जुगाहावई विज्जु-सिरीभारिया विज्जुदारिया सेसं तहेव । ४ एवं मेहा वि आम-लकप्पाए नयरीए मेहेगाहावई मेहसिरी भारिया मेहा दारिया सेसं तहेव ५ । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्म-कहाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पणत्ते ॥ सू० ६ ॥

टीका—' जइणं भंते ' इत्यादि । यदि खलु भदन्त ! इत्यादि तृतीयाध्ययनस्य उल्लेखकः=जम्बूप्रश्नारिरूपः प्रारम्भवाक्यप्रबन्धोऽत्रवाच्यः । सुधर्मास्वामी कथ-

॥ तृतीय अध्ययन प्रारंभ ॥

(जइणं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ) इत्यादि ॥

टीकार्थः—(जइणं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ) अब जंबू स्वामी पुनः पूछते हैं कि हे भदन्त ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने द्वितीय अध्ययन का यह पूर्वोक्तरूप से अर्थ निरूपित किया है—तो तृतीय अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ? इस तरह से इस तृतीय अध्ययन का जंबू स्वामी का यह प्रश्न आदिरूप वाक्य प्रबन्ध उल्लेखक है—प्रारंभक है—इस प्रश्न का उत्तर श्री सुधर्मा स्वामी

श्रील्लु' अध्ययन प्रारंभः—

' जइणं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ ' इत्यादि—

टीकार्थः—(जइणं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ) ढवे ज'णू स्वामी श्री पूछे छे के-डे लदन्त ! जे श्रमणु लगवान महावीरै पील अध्ययनने आ पूरोक्त रूपे अर्थ निरूपित करी छे तो श्रील्लु अध्ययनने तेमणु शे अर्थ प्रतिपादित करी छे ? आ प्रभाणु आ श्रील्लु अध्ययनने ज'णू स्वामीने आ प्रश्न वगेरे रूप वाक्य प्रबन्ध उल्लेखक छे—प्रारंभ छे आ प्रश्नने उत्तर श्री सुधर्मास्वामी आ प्रभाणु आये छे केः—

यति-एवं खलु हे जम्बू ! राजगृहं नगरं, गुणशिलकं चैत्यम् । एवं यथैव रात्रि-
स्तथैवरजनी अपि, नवरम् आमलकृष्पा नगरी, रजनीगाथापतिः, रजनीश्रीभाष्यां,
रजनी दारिका । शेषं तथैव । यावत्-सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति ॥

॥ इति प्रथमवर्गस्य तृतीयाध्ययनम् ॥ १-३ ॥

इस प्रकार से देते हैं-(एवं खलु जंबू ! रायगिहे-णयरे गुणसिलए
चेइए एवं जहेव राई तहेव रयणी वि, णवरं आमलकृष्पा नगरी, रयणी
गाहावई रयणीसिरी भारिया रयणी दारिया सेसं तहेव जाव अंतं
काहिइ ३) जंबू ! सुनो-उस काल में और उस समय में राजगृह नाम
का नगर था । उसमें गुणशिलक नामका उद्यान था । जिस प्रकार रात्रि
प्रभु का आगमन सुनकर गुणशिलक उद्यान में गई थी उसी तरह
रजनी भी वहां गई उसने प्रभु के मुख से धर्म का उपदेश सुना । सुन-
कर संसार शरीर और भोगों से वह विरक्त हो गई । दीक्षा लेने का
अपना भाव उसने प्रभु से निवेदित किया । प्रभुने यथासुखं देवानुप्रि-
ये कहकर उसके भाव की सराहना करतेहुए 'शुभस्य शीघ्रं' करने की
अपनी अनुमति प्रकट की-तब यह घर आई और मातासे अपना
दीक्षा लेने का विचार प्रकट किया-इत्यादि सब संबन्ध काली दारिका
के कथानक अनुसार रजनी के साथ लगालेना चाहिये । जब रजनी
देवी प्रभु को वंदना करनेके लिये गुणशिलक उद्यान में आई और वहां

(एवं खलु जंबू ! रायगिहे-णयरे गुणसिलए चेइए एवं जहेव राई तहेव
रयणी वि णवरं आमलकृष्पा नगरी, रयणी-गाहावई रयणीसिरी भारिया रयणी
दारिया सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ ३)

हे जंबू ! सांलणो, ते काणे अने ते समये राजगृह नामे नगर હતું.
तेમાં शुભશિલક નામે ઉદ્યાન હતું. જેમ રાત્રિ પ્રભુનું આગમન સાંલણીને
શુભશિલક ઉદ્યાનમાં ગઈ હતી તેમજ રજની પણ ત્યાં ગઈ. તેણે પ્રભુના
સુખથી ધર્મનેા ઉપદેશ સાંલળ્યો. સાંલણીને તે સંસાર, શરીર અને લોગોથી
વિરક્ત થઈ ગઈ. તેણે પોતાનેા દીક્ષા ગ્રહણ કરવાનેા ભાવ પ્રભુની સામે
પ્રકટ કર્યો. પ્રભુએ 'યથાસુખમ્' દેવાનુપ્રિયે ! કહીને તેના ભાવની સરાહના
કરી અને શુભ કાર્યમાં વિલગ્ન કરે નહિ એવી પોતાની અનુમતી દર્શાવી.
ત્યારે તે પોતાને ઘર આવી અને માતાપિતાની સામે દીક્ષા ગ્રહણ કરવાનેા
વિચાર પ્રકટ કર્યો-વગેરે બધી વિગત કાલી દારિકાની જેમજ રજનીની સાથે
પણ સમજી લેવી જોઈએ. જ્યારે રજનીદેવી પ્રભુને વંદના કરવા માટે શુભ-
શિલક ઉદ્યાનમાં આવી અને ત્યાં તેણે નાટ્યવિધિનું પ્રદર્શન કર્યું. ત્યારબાદ

‘ एवं विज्जूवि ’ इत्यादि । एवं विद्युदपि । आमलकल्पा नगरी, विद्युद्
गाथापतिः, विद्युत् श्रीभार्या, विद्युदारिका । शेषं तथैव ।

इति प्रथमवर्गस्य चतुर्थाध्ययनम् ॥ १-४ ॥

उसने नाटयविधिका प्रदर्शन किया बाद में वह जब वहाँ से प्रभु की
पर्युपासना कर वापिस अपने स्थान पर चली गई—तब प्रभु से गौतम
गणधर ने उसके पूर्वभव पूछे तब प्रभु ने उनसे इस प्रकार कहा—उस
काल और उस समय में आमलक कल्पा नामकी नगरी थी—उसमें
रजनी नामका गाथापति रहता था । रजनी श्री उसकी भार्या का नाम
था । इन दोनों के एक पुत्री जिसका नाम रजनी था । इसके विषय का
अवशिष्ट कथानक “ समस्त दुःखो का यह अन्त करेगी ” यहाँ तक का
काली दारिका के जैसा ही जानना चाहिये ॥ सू० ६ ॥

॥ प्रथम वर्ग का तीसरा अध्याय समाप्त ॥

एवं विज्जूवि आमलकल्पा नगरी विज्जू गाहावई ॥

विज्जुसिरीभार्या विज्जुदारिया, सेसं तहेव ॥ ४ ॥

एवं मेहावि आमलकल्पाए नगरीए मेहे गाहावई ॥

मेहासिरी भारिया मेहा दारिया सेसं तहेव ॥ ५ ॥

(एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकराणं पढमस्स वग्ग-

प्रभुनी पर्युपासना करीने पाछी पोताना स्थाने जती रही त्यारे गौतम गण-
धरे प्रभुने तेना पूर्वभवो पूछया. त्यारे प्रभुणे तेने आ प्रभाणे कहुं के ते
काणे अने ते समथे आमलकल्पा नामे नगरी હતી, તેમાં રજની નામે
गाथापति रहेतो હતો, રજની શ્રી તેની પત્નીનું નામ હતું. તેણે અને તેને એક
पुत्री હતી—રજની નામ રજની હતું. એના વિષેની આકીની બધી વિગત
“ સમસ્ત દુઃખોનો તે અન્ત કરશે ” અહીં સુધીની કાલી દારિકાની જેમજ
સમજ લેવી જોઈએ. ॥ સૂત્ર ૬ ॥

“ પ્રથમ વર્ગનું ત્રીજું અધ્યાયન સમાપ્ત ॥

(एवं विज्जूवि आमलकल्पा नगरी विज्जू गाहावई ।

विज्जुसिरीभार्या विज्जुदारिया, सेसं तहेव ॥ ४ ॥

एवं मेहा वि आमलकल्पाए नगरीए मेहे गाहावई ।

मेहासिरी भारिया मेहा दारिया सेसं तहेव ॥ ५ ॥

(एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकराणं पढमस्स वग्गस्स अय-
महे पणत्ते ६)

‘ એવં મેઘાવિ ’ इत्यादि । एवं मेघाऽपि । आमलकल्पायां नगर्यां मेघो गाथापतिः, मेघश्रीभार्या, मेघा दारिका । शेषं तथैव ।

શ્રીસુધર્માસ્વામીપ્રાહ-एवं खलु हे जम्बूः ! श्रमणेन यावत् मोक्षं सम्पाप्तेन धर्मकथानां प्रथमस्य वर्गस्यायमर्थः प्रकृतः ॥ सू० ६ ॥

॥ इति प्रथमवर्गस्य पञ्चमाध्ययनम् ॥ १-५ ॥

અથ દ્વિતીયો વર્ગઃ પ્રારમ્ભયતે-‘ જડ્ડણં મંતે ’ इत्यादि ।

मूलम्-जड्ढणं मंते ! समणैणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्ग-
स्स उक्खेवओ, एवं खलुजंबू ! समणैणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स

સસ અઘમટ્ટે પળ્લણ્ણે ૬) इसी तरह का कथानक विद्युतके विषय में भी जानना चाहिये । आमलकल्पा नगरी विद्युत् गाथापति विद्युत् श्री भार्या इन दोनों के यहां विद्युत् दारिका । इस तरह नाम आदि में ही परिवर्तन हुआ है । अभिधेय विषय में कुछ अन्तर नहीं है । मेघ के विषय में भी यही बात जाननी चाहिये । आमलकल्प- नगरी, मेघ गाथापति, मेघ श्री भार्या, मेघा दारिका-इस प्रकार इस कथानक में इन नामों में परिवर्तन हुआ है-अभिधेय वक्तव्य-विषय में नहीं । इस प्रकार यहां तक प्रथम वर्ग के ५, अध्ययन समाप्त हो जाते हैं । विद्युद्दारिका का अध्ययन ४ चौथा, एवं मेघा दारिका का अध्ययन ५ पंचम है । इस तरह हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो मुक्ति स्थान के अधिपति बन चुके हैं धर्मकथा के प्रथमवर्ग का यह अर्थ प्ररूपित किया है !

આ પ્રમાણેનું જ કથાનક વિદ્યુતના વિષે પણ સમજ લેવું જોઈએ. આમલકલ્પા નગરી, વિદ્યુત ગાથાપતિ અને વિદ્યુત શ્રી ભાર્યા, આ બંનેને ત્યાં વિદ્યુત દારિકા. આ પ્રમાણે ક્ષત્ર નામ વગેરેમાં પરિવર્તન થયું છે. અભિધેય વિષયમાં કોઈ પણ ભાતનો તફાવત નથી. મેઘના વિષે પણ એ જ વાત સમજ લેવી જોઈએ. આમલકલ્પા નગરી, મેઘ ગાથાપતિ, મેઘ શ્રી ભાર્યા, મેઘ દારિકા. આ પ્રમાણે આ કથાનકમાં પણ નામોમાં જ પરિવર્તન થયું છે-અભિધેય વક્તવ્ય વિષયમાં નહિ. આ પ્રમાણે અહીં સુધી પ્રથમ વર્ગના પાંચ અધ્યયનો પૂરા થઈ ગયા છે. વિદ્યુદ્દારિકાનું અધ્યયન ચોથું, અને મેઘ દારિકાનું અધ્યયન પાંચમું છે. આ પ્રમાણે હે જંબૂ ! શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે-કે જેઓ મુક્તિ સ્થાનના અધિપતિ થઈ ચૂક્યા છે-ધર્મકથાના પ્રથમ વર્ગનો આ અર્થ પ્રરૂપિત કર્યો છે. ॥ ૬ ॥

वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—सुंभा निसुंभा रंभा
निरंभा मयणा, जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मक-
हाणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता, दोच्चस्स णं
भंते ! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्टे पणत्ते ?, एवं खलु
जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणासिलए चेइए
सामी समोसढे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ, तेणं कालेणं
तेणं समएणं सुंभादेवी बलिचंचाए रायहाणीए सुंभवडेंसए
भवणे सुभंसि सीहासणंसि कालीगमएणं जाव णट्टविहिं उव-
दंसेत्ता जाव पडिगया, पुट्टवभवपुच्छा, सावत्थी णयरी कोट्टए
चेइए जियसत्तू राया सुंभेगाहावई सुंभसिरी भारिया सुंभा
दारिया सेसं जहा कालीए णवरं अद्रधुट्टाइं पलिओवमाइं ठिई
एवं खलु जंबू ! निक्खेवओ अज्झयणस्स एवं सेसावि चत्तारि
अज्झयणा सावत्थीए नवरं साया पिया सरिसनामया, एवं
खलु जंबू ! निक्खेवओ विईयवग्गस्स२ ॥ सू० ७ ॥

॥ वीओ वग्गो समत्तो ॥

टीका—जम्बूस्वामीपृच्छति—यदि खलु हे भदन्त ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन
द्वितीयस्य वर्गस्य उत्क्षेपकः । सुधर्मास्वामीप्राह—एवं खलु हे जम्बूः श्रमणेन यावत्

—:द्वितीयवर्गप्रारंभः—

‘ जइणं भंते ! समणेणं ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि (भंते !
जइणं समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ—एवं खलु

णीन्ने वर्गं प्रारंभ—

‘ जइणं भंते ! समणेणं ’ इत्यादि—

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे है—

(भंते ! जइणं समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ—एवं खलु

मोक्षं सम्प्राप्तेन द्वितीयस्य वर्गस्य पञ्चाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—शुम्भा १, निशुम्भा २, रम्भा ३, निरम्भा ४, मदना ५, । यदि खलु हे भदन्त ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन द्वितीयस्य वर्गस्य पञ्च-अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, द्वितीयस्य खलु हे भदन्त । वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? । सुधर्मास्वामी प्राह—एवं

जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता) हे भदंत ! मुक्ति स्थान को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने द्वितीय वर्ग का उत्क्षेपक प्रारंभ किस रूप से प्ररूपित किया है—तव सुधर्मा स्वामी ने उनसे कहा—हे जंबू ! सुनो यावत् मुक्तिस्थान को प्राप्त हुए उन श्रमण भगवान् महावीर ने इस द्वितीय वर्ग के पांच अध्ययन प्ररूपित किये हैं—(तं जहा) वे इस प्रकार हैं—(सुंभा, निशुंभा, रंभा, निरंभा मयणा, जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्जयणा पणत्ता, दोच्चस्सणं भंते वग्गस्स पहमज्झयणस्संके अट्टे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए—सामी समोसडे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ) (१) शुम्भा, (२) निशुंभा (३) रम्भा, (४) निरंभा (५) मदना, । अब जंबू स्वामी पुनः सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि हे भदंत ! यदि यावत् मुक्ति स्थान को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीरने द्वितीयवर्ग

जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स पंचअज्झयणा पणत्ता)

हे भदन्त ! मुक्तिस्थानने प्राप्त करेला श्रमण भगवान् महावीरने भील वर्गना उत्क्षेपक-प्रारंभ-कथा इपथी प्ररूपित करीं छे ? त्थारे सुधर्मा स्वामीने तेभने कहुं के हे भ'णू ! सांलणे, यावत् मुक्तिस्थानने वरेला ते श्रमण भगवान् महावीरने आ भील वर्गना पांच अध्ययनो प्ररूपित करीं छे. (तंजहा) ते आ प्रभाणु छे—

(सुंभा, निशुंभा, रंभा, निरंभा, मयणा, जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता, दोच्चस्स णं भंते वग्गस्स पहमज्झयणस्स के अट्टे पणत्ते ! एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए—सामी समोसडे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ)

(१) शुंभा, (२) निशुंभा, (३) रंभा, (४) निरंभा, (५) मदना. इवे भ'णू स्वामी इरी सुधर्मा स्वामीने पूछे छे के हे भदन्त ! ने यावत् मुक्ति

खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरम् । गुणशिलकं चैत्यम् । स्वामी=वर्द्धमानस्वामी सन्नयस्यतः । परिपन्निगता यावत्पर्युपास्ते । तस्मिन् काले तस्मिन् समये शुम्भा देवी बलिचञ्चायां राजधान्यां शुम्भावतंसके भवने शुम्भे सिंहासने ' कालीगमरणं ' कालीगमेन=काली देवी सदृशपाठेन यावत्-नाट्यविधिमुपदर्श्य यावत्-प्रतिगता । ' पुन्वभवपुच्छा ' पूर्वभवपृच्छा=गौतम-स्वामी शुम्भा देव्याः पूर्वभवं पृच्छति । भगवान् कथयति—श्रावस्ती नगरी । कोष्ठकं चैत्यम् । जितशत्रू राजा । शुम्भो गाथापतिः । शुम्भश्रीभार्या । शुम्भा दारिका । शेषं यथा काल्याः=काली दारिकाया वर्णनं तथात्रापि विज्ञेयम् , नवरं=विशेस्त्व-के पांच अध्ययन प्ररूपित क्रिये हैं-तो हे भद्वन ! द्वितीयवर्ग के प्रथम अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ प्रतिपादिन किया हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये सुधर्मा स्वामी उनसे इस प्रकार कहते हैं कि-हे जंबू !-उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था-उसमें गुणशिलक नाम का उद्यान था-। उसमें वर्द्धमान स्वामी आये । प्रभु का आगमन सुनकर वहाँ की समस्त जनता उन्हें वंदन के लिये अपने २ स्थान से चल कर उस गुणशिलक उद्यान में आई । प्रभु ने सबको धर्म का उपदेश दिया परिषद् उपदेश सुनकर प्रभु की यावत् पर्युपासना की । (तेणं कालेणं तेणं समरणं) उसी काल और उसी समय में (सुंभादेवी बलिचंचाए राघहाणीए सुंभवडेंसए भवणे सुंभसि सीहासणंसि कालीगमरणं जाव नट्टविहि उवदंसेत्ता जाव पडिगया पुवभव पुच्छा, सावत्थी णयरी, कोट्टए चेइए जियसत्तू राया, सुंभे गाहावई सुंभ-

स्थानने प्राभ करेला श्रवणु भगवान भडावीरे षीज वर्गना पांच अध्ययने। प्ररूपित कथां छे, तो छे लहन्त । षीज वर्गना प्रथम अध्ययनने तेमणु शेो अर्थ प्रतिपादित कथां छे ?

आ प्रश्नना उत्तरमां श्री सुधर्मा स्वामी तेमने आ प्रभाणु कडे छे के छे जम्बू ! ते काले अने ते समये राजगृह नामे नगर छतुं तेमां गुणशिलक नामे उद्यान छतुं । तेमां वर्द्धमान स्वामी पध्यायां प्रभुनुं आगमन सांभणीने त्यांना भधा नागरिके तेमने वंदना करवा माटे पोतपोताने स्थानेथी नीकणीने ते गुणशिलक उद्यानमां आल्या. प्रभुजे भधाने धर्मांने उपदेश आये। परिषदे धर्मोपदेश सांभणीने प्रभुनी यावत् पर्युपासना करी. (तेणं कालेणं तेणं समरणं) ते काले अने ते समये

(सुंभा देवी बलिचंचाए राघहाणीए-सुंभवडेंसए भवणे सुंभसि सीहासणंसि कात्री गमरणं जाव नट्ट विहि उवदंसेत्ता जाव पडिगया, पुवभवपुच्छा सावत्थी णयरी, कोट्टए चेइए जियसत्तू राया, सुंभे गाहावई, सुंभसिरी भारिया, सुंभा-
द्वा १०३

यम्-अस्याः शुभमादेव्याः 'अद्भुद्गाइं' अर्द्धं चतुर्थानि-साद्धं त्रयाणि पर्योपमानि स्थितिरस्ति । सुधर्मास्वामीमाह-हे जम्बू !-निक्षेपकः=उपहारोऽध्ययनस्य वाच्यः ॥

॥ इति द्वितीयवर्गस्य प्रथमाध्ययनम् ॥

सिरी भारिया सुंभादारिया, सेसं जहा कालीए णवरं अद्भुद्गाइं पलिओव-
माई ठिई, एवं खल्लु जंबू ! निक्खेवओ अज्झयणस्स एवं सेसा वि चत्तारि-
अज्झयणा सावत्थीए नवरं मायापिया सरिसं नामया एवं खल्लु जंबू ।
निक्खेवओ विईयवग्गस्स वीओ वग्गो समत्तो) शुंभादेवी जो बलिचंचा
नामकी राजधानी में शुंभावतंसक नामके भवन में रहती थी-और
शुंभनाम के सिंहासन पर बैठती थी-वह काली देवी के प्रकरण में
वर्णित पाठ के अनुसार प्रभु के समीप उनको वंदना करने के लिये
आई । वहाँ उसने नाट्यविधिका प्रदर्शन किया बादमें फिर वह वहाँ से
पीछे अपने स्थान पर चली गई । उसके चले जाने के बाद गौतमस्वामी
ने प्रभु से उस शुंभादेवी के पूर्वभव की पृच्छा की-तब भगवान् ने
उन से इस प्रकार कहा-श्रावस्ती नामकी नगरी थी । उसमें कोष्ठक
नामका उद्यान था, नगरी के राजा का नाम जितशत्रु था उसमें गाथा
पति रहता था । जिसका नाम शुंभ था । इसकी शुंभ श्री नाम की
भार्या थी । दारिका का नाम शुंभा था । इसके बाद का इसका वर्णन

दारिया, सेसं जहा कालीए णवरं अद्भुद्गाइं, पलिओवमाई ठिई । एवं खल्लु जंबू !
निक्खेवओ अज्झयणस्स एवं सेसा वि चत्तारि अज्झयणस्स सावत्थीए नवरं माया-
पिया सरिसनामया, एवं खल्लु जंबू ! निक्खेवओ-विईयवग्गस्स पंच अज्झ-
यणा समत्ता वीओ वग्गो समत्तो)

शुंभा देवी-के जे अद्विचया नामे राजधानीमां शुंभावतंसक नामना
भवनामां रडेती इती अने शुंभ नामे सिंहासन उपर भेसनी इती-काली
देवीना प्रकरणुमां वणुंवेला पाठ सुब्बण प्रभुनी पासि तेमने वंदना करवा माटे
आवी. त्यां तेण्णे नाट्यविधित्तुं प्रदर्शनं कयुं. त्थारणाद ते त्यांथी पाणी पोताना
स्थाने जती रळी. तेमना जता रळ्या आद गौतम स्वामीजे प्रभुनी शुंभा
देवीना पूर्व भवनी पृच्छा करी. त्थारे भगवाने तेमने आ प्रभाण्णे कळुं के-
श्रावस्ती नामे नगरी इती, तेमां कोष्ठक नामे उद्यान इतुं. नगरीना राजत्तुं
नाम जितशत्रु इतुं. तेमां शुंभ नामे गाथापति रडेतेो इतेो. शुंभश्री नामे
तेनी पत्नी इती, तेनी पुत्रीत्तुं नाम शुंभा इतुं त्थारपणीत्तुं तेत्तुं शेष वणुंन
काली देवीनी जेमज्ज समञ्ज वेत्तुं जेधंजे. तेमां अने आमां तक्षवत अट-

‘ एवं सेसावि ’ इत्यादि-एवं शेषाण्यपि=निशुम्भा १-रम्भा २-निरम्भा ३-मदना ४ नामकानि चत्वारि अध्ययनानि श्रावस्त्या नगर्यां विज्ञेयानि, नव-रम्-एतावान् विशेषः-मातरः पितरः सदृशनामानः दारिकासदृशनामानः, तथाहि-निशुम्भाया माता निशुम्भश्रीः, पिता निशुम्भः । रम्भाया माता रम्भश्रीः, पिता रम्भः । निरम्भाया माता निरम्भश्रीः, पिता निरम्भः । मदनाया माता मदनश्रीः पिता मदनः । एते सर्वे गाथापतयः आसन् ।

एवं खलु हे जम्बू ! निक्षेपको द्वितीयवर्गस्य ॥ ७ ॥

॥ इति धर्मकथानां द्वितीयो वर्गः समाप्तः ॥ २ ॥

कालीदेवी का है वैसा ही जानना चाहिये । उसमें और इसमें केवल अन्तर इतना ही है कि कालीदेवी की स्थिति २॥ पल्य की थी और इस शुंभादेवी की ३॥, पल्य की थी । इस प्रकार हे जंबू ! इस द्वितीय-वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह निक्षेपक है । इसी तरह निशुंभा, रंभा निरंभा और मदना नाम के चार अध्ययन भी जानना चाहिये । इन में विशेषता केवल इतनी ही है कि यहाँ जो माता पिता हैं वे दारिका सदृश नामवाले हैं-जैसे निशुंभा के पिता का नाम निशुंभ, माता का नाम निशुंभ श्री, रंभाके पिता का नाम रम्भ, माताका नाम रम्भश्री, निरंभा के पिता नाम निरंभ माता का नाम निरंभश्री, मदना के पिता का नाम मदन, और माताका नाम मदनश्री । ये सब ही गाथा-पति हैं । इस तरह यह द्वितीयवर्ग का निक्षेपक-उपसंहार-है ।

॥ द्वितीयवर्ग समाप्त ॥

लो ७ छे डे काली देवीनी स्थिति २॥ पल्यनी छती अने आ शुंभा देवीनी स्थिति ३॥ पल्यनी छती. आ प्रभाछे डे ७'७ ! आ भील वर्गना प्रथम अध्ययनने आ निक्षेपक छे आ प्रभाछे ७ निशुंभा, रंभा, निरंभा अने मदना नामना आर अध्ययनने पणु लक्ष्मी देवां लोछे. अनेनामां विशेषता इकट्ठा छे छे अर्ही ७े मातापिता छे ते पुत्रीना देवा ७ नामवाणा छे. ७ेभके निशुंभाना पितातुं नाम निशुंभ, मातातुं नाम निशुंभश्री, रंभा ना पितातुं नाम रंभ, मातातुं नाम रंभश्री निरंभाना पितातुं नाम निरंभ, मातातुं नाम निरंभश्री, मदनाना पितातुं नाम मदन अने मातातुं नाम मदनश्री, आ यथा गाथापतिओ छे आ प्रभाछे भील वर्गने निक्षेपक उपसंहार छे.

॥ भीले वर्ग समाप्त ॥

अथ तृतीयो वर्गः प्रारभ्यते—‘उक्खेवओ तइयवग्गस्स’ इत्यादि

मूलम्—उक्खेवओ तइयवग्गस्स एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं तइयस्स वग्गस्स चउपण्णं अज्झयणा पन्नत्ता, तं जहा—पढमे अज्झयणे जाव चउपण्णइमे अज्झयणे, जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं तइयस्स वग्गस्स चउपन्नज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणासिलए चेइए सामी समोसढे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं अलादेवी धरणाए रायहाणीए अलावडंसए भवणे अलंसि सीहासुणांसि एवं कालीगमएणं जाव णट्ठविहिं उवदंसेत्ता पडिगया, पुव्वभवपुच्छा, वाणारसी णयरी काममहावणे चेइए अले गाहावई अलसिरी भारिया अलादारिया सेसं जहा कालीए णवरं धरणस्स अग्गमहिसित्ताए उववाओ साइरेगं अद्धपलिओवमंठिई सेसं तहेव, एवं खलु णिक्खेवओ पढमज्झयणस्स, एवं कमा सक्का सत्तेरा सोयामणी इंदा घणविज्जुयावि, सव्वाओ एयाओ धरणस्स अग्गमहिसीओ एवं, एते छ अज्झयणा वेणुदेवस्सवि अविसेसिया भाणियव्वा एवं जाव घोसस्सवि एए चेव छ अज्झयणा, एवमेते दाहिणिच्छाणं इंदाणं चउपण्णं अज्झयणा भवंति, सव्वाओवि वाणारसीए काममहावणे चेइए तइयवग्गस्स णिक्खेवओ॥सू०८॥

तइओ वग्गो सभत्तो ॥३॥

ટીકા—‘ ઉક્લેવઓ ’ ઉત્કેષકઃ=જમ્બૂમૃત્તારુપઃ પ્રારંભવાક્યપ્રવન્ધઃ તૃતીયવર્ગસ્યાત્રવોદ્યઃ । શ્રીસુધર્માસ્વામી પ્રાહ—એવં સ્વલ્લુ હે જમ્બુ! શ્રમણેન ભગવતા મહાવીરેણ યાવત્ મોક્ષં સમ્પાત્તેન તૃતીયસ્ય વર્ગસ્ય ‘ ચતુષ્પણ્ણ ’ ચતુષ્પણ્ણશ્ચ અઙ્ગાદીનિ અધ્યયનાનિ પ્રજ્ઞતાનિ, તદ્યથા—તાનિ યથા—પ્રથમમધ્યયનમ્ અલેતિ યાવત્—ચતુષ્પણ્ણશ્ચત્તમમધ્યયનમ્ । જમ્બુસ્વામી પૃચ્છતિ—યદિ સ્વલ્લુ હે

—તૃતીય વર્ગ પ્રારંભઃ—

‘ ઉક્લેવઓ તદ્વચવગ્ગસ્સ ’ इत्यादि ।

ટીકાર્થ—તૃતીયવર્ગ કા પ્રારંભવાક્ય પ્રવન્ધ ઇસ પ્રકાર હૈ—અર્થાત્ સુધર્માસ્વામી સે જંબૂ સ્વામી ને પ્રહન કિયા કિ મદંત । શ્રમણ ભગવાન મહાવીર ને કિ જો મુક્તિ કો પ્રાપ્ત કર ચુકે હૈં ઇસ તૃતીયવર્ગ કે કિતને અધ્યયન પ્રજ્ઞસ કિયે હૈં—તથ સુધર્મા સ્વામી ને ઉનસે ઇસ પ્રકાર કહા— (એવં સ્વલ્લુ જંબૂ! સમણેણં ભગવયા મહાવીરેણં જાવ સંપત્તેણં તદ્વચસ્સ વગ્ગસ્સ ચતુષ્પણ્ણ અઙ્ગયણા પન્નત્તા તં જહા પદમે અઙ્ગયણે જાવ ચતુષ્પણ્ણમે અઙ્ગયણે જહ્ણં મંતે ! સમણેણં જાવ સંપત્તેણં ધમ્મકહાણં તદ્વચસ્સ વગ્ગસ્સ ચતુષ્પણ્ણજ્ઞયણા પ્પણ્ણત્તા, પદમસ્સણં મંતે ! અઙ્ગયણસ્સ સમણેણં જાવ સંપત્તેણં કે અટ્ટે પ્પણ્ણત્તે ?) હે જંબૂ ! સુનો—ઉન મુક્તિ પ્રાપ્ત હુણ શ્રમણ ભગવાન મહાવીર ને તૃતીયવર્ગ કે અલાદિક ચૌપન ૫૪ અધ્યયન પ્રજ્ઞસ કિયે હૈં । જંબૂ સ્વામી પુનઃ પૂછતે હૈં—મદંત ।

ત્રીભે વર્ગ પ્રારંભ—

‘ ઉક્લેવઓ તદ્વચવગ્ગસ્સ ’ इत्यादि—

ટીકાર્થ—ત્રીભે વર્ગનું પ્રારંભ વાક્ય પ્રવન્ધ આ પ્રમાણે છે—એટલે કે સુધર્મા સ્વામીને જંબૂ સ્વામીએ પ્રશ્ન કર્યો કે હે ભદ્રન્ત ! શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે—કે જેમણે મુક્તિ મેળવી લીધી છે. આ ત્રીભે વર્ગના કેટલાં અધ્યયનો પ્રાપ્ત કર્યાં છે ? ત્યારે સુધર્મા સ્વામીએ તેમને આ પ્રમાણે કહ્યું—

(એવં સ્વલ્લુ જંબૂ ! સમણેણં ભગવયા મહાવીરેણં જાવ સંપત્તેણં તદ્વચસ્સ વગ્ગસ્સ ચતુષ્પણ્ણ અઙ્ગયણા પન્નત્તા—તં જહા પદમે અઙ્ગયણે જાવ ચતુષ્પણ્ણમે અઙ્ગયણે જહ્ણં મંતે ! સમણેણં જાવ સંપત્તેણં ધમ્મકહાણં તદ્વચસ્સ વગ્ગસ્સ ચતુષ્પણ્ણજ્ઞયણા પ્પણ્ણત્તા, પદમસ્સણં મંતે ! અઙ્ગયણસ્સ સમણેણં જાવ સંપત્તેણં કે અટ્ટે પ્પણ્ણત્તે ?)

હે જંબૂ ! સાંભળો, મુક્તિ પ્રાપ્ત કરેલા તે શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે ત્રીભે વર્ગના અલાદિક ૫૪ અધ્યયનો પ્રાપ્ત કર્યાં છે. જંબૂ સ્વામી ફરી પ્રશ્ન કરે

भदन्त ! श्रमणेन यावत् मोक्षं सम्प्राप्तेन धर्मकथानां तृतीयस्य वर्गस्य चतुष्पञ्चा-
शद् अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तेषु प्रथमस्य खलु हे भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन
यावत् मोक्षं सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? सुधर्मस्वामी कथयति—

एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरम्, गुण-
शिलकं चैत्यम्, स्वामी सपवसृतः, परिषन्निर्गता यावत्-भगवन्तं पशुपास्ते ।
तस्मिन् काले तस्मिन् समये अलादेवी=धरणेन्द्रस्याग्रमहिषी धरणायां राजधान्याम्
आलावतंसके भवणे अले सिंहासणे, एवं 'कालीगमणं' कालीगमेन=काली-
सदृशपाठेन यावत् नाट्यविधियुपदर्श्य प्रतिगता । 'पुण्यभवपुच्छा' पूर्वभवपुच्छा-
गौतमस्वामी अलादेव्याः पूर्वभवं पृच्छति, भगवान् कथयति-वाणारसी नगरी ।
काममहावनं चैत्यम् । 'अले' अलनामा गाथापतिः । अलश्रीभार्या । अला
दारिका । शेषं 'जहाकालीए' यथा काल्याः=कालीदेव्या वर्णनं तथैव अला-
देव्या वर्णनं विज्ञेयम्, नवरम्-धरणस्याग्रमहिषीतयाऽस्या उपपातः, सातिरेकं=

यावत् मुक्ति को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा के
तृतीयवर्ग के ५४ अध्ययन प्रज्ञप्त किये हैं तो उनमें से हे भदन्त !
उन्हीं यावत् मुक्ति प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम अध्ययन
का क्या अर्थ प्ररूपित किया है ? इस प्रश्न के समाधान निर्मित सुधर्मा
स्वामी उनसे कहते हैं कि—(एवं खलु जंबू !) हे जंबू ! तुम्हारे प्रश्न का
उत्तर इस प्रकार है (तेणं कालेणं तेणं समएणं अलादेवी धरणाए राय
हाणीए अलावडंसए भवणे अलंसि सीहासणंसि एवं कालीगमणं
जाव णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया, पुण्यभवपुच्छा, वाणारसी णयरी,
काममहावणे चेइए अलंगाहावई, अलासिरी भारिया, अलादारियासेसं
जहा कालीए णवरं धरणसस अगमहिंसित्ताए उववाओ, साइरेणं

छे डे डे लहन्त ! यावत् मुक्ति प्राप्त करेला श्रमणु भगवान् महावीर धर्मक-
थाना त्रीण वर्गना ५४ योपनअध्ययनो प्रज्ञप्त कथां छे, तो तेज्जाभांथी डे लहन्त !
ते व यावत् मुक्ति प्राप्त श्रमणु भगवान् महावीर पडेला अध्ययननो शे
अर्थ प्ररूपित कथो छे ? आ प्रश्नना समाधानभां श्री सुधर्मा स्वामी तेभने
कडे छे डे (एवं खलु जंबू !) डे व'यू ! तयारा प्रश्ननो उत्तर आ प्रमाणु छे डे

(तेणं कालेणं तेणं समएणं अलादेवी धरणाए रायहाणीए अलावडंसए
भवणे अलंसि सीहासणंसि एवं काली गमणं जाव णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया,
पुण्यभवपुच्छा, वाणारसी णयरी, काममहावणे चेइए, अलंगाहावई, अलासिरी
भारिया, अलादारिया सेसं जहा कालीए णवरं धरणसस अगमहिंसित्ताए उव-

अद्रपलिओवर्म टिई सेस तहेव, एव खलु गिक्खेवओ पढमज्झयणस्स) उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वहाँ गुण-शिलक नाम का उद्यान था। उसमें तीर्थकर परंपरातुसार विहार करते हुए अन्नण भगवान् महावीर आकर ठहरे हुए थे। नगर की परिषदा प्रसु को चंदना के लिये अपने २ घर से निकलकर उस उद्यान में आई प्रसु ने सबको घर्म का उपदेश दिया। सुनकर लोगों ने यावत् प्रसु की पर्युपासना की। उसी समय वहाँ पर धरणेन्द्र की अग्रमहिषी अलादेवी जो घरणा राजधानी में अलावतंसक इस नाम के भवन में रहनी थी- और जिसके बैठने के सिंहासन का नाम अला था प्रसु को चंदना आदि करने के निमित्त आई। वहाँ आकर उस ने नाटयविधि दिखलाई। दिखलाकर वह फिर वहाँ से पीछे अपने स्थान पर गई। उसके आते ही गौतम स्वामी ने अन्नण भगवान् महावीर से उसका पूर्वभव पूछा तब भगवान् ने उनसे इस प्रकार कहा बाणारसी नामकी नगरी थी-उसमें काम महावन नाम का उद्यान था। उसमें अलनाम का गाथापति रहता था। उसकी भार्या "अलश्री" इस नामकी थी। इस की एक पुत्री थी जिसका नाम अला था। इसका-अला का शेष कथानक, कालीदेवी का

वाओ, साइरेगं अद्रपलिओवर्म टिई सेसं तहेव, एवं खलु गिक्खेवओ पढमज्झयणस्स)

ते कजे अने ते सभे राजगृह नामे नगर हंतुं. तेमां शुष्शिक्षक नामे उद्यान हंतुं. तेमां तीर्थकर परंपरा शुष्ण गिहार करतां पधारीने अन्नण भगवान् महावीरे युक्काम कर्षे हंतो. नगरनी परिषद प्रसुने वंदन करवा माटे पोतपोताने घेरथी नीकणीने ते उद्यानमां आवी. प्रसुजे सौने धर्मने उपदेश आप्थो. उपदेश सांखणीने दोकैजे यावत् प्रसुणी पर्युपासना करी, ते वभते त्यां धरखेन्द्रनी अग्रमहिषी (पटराणी) अलादेवी के वे धरखु राजधानीमां अलावतंसक आ नामना भवनमां रहेती हंतो, अने जेने जेसवाना सिंहासनतुं नाम अला हंतुं-प्रसुने वंदना करवा माटे आवी. त्यां आवीने तेजे नाटयविधितुं प्रदर्शनं कथुं, प्रदर्शन करीने ते त्यांथी पाछी पोताना स्थाने जाती रह्ठी. तेना गथा पछी तरत व गौतम स्वामीजे अन्नण भगवान् महावीरने तेना पूर्वभव पूछथो त्यारे भगवाने तेमने आ प्रभाजे कथुं के वाणारसी नामे नगरी हनी, तेमां काममहावन नामे उद्यान हंतुं, तेमां अल नामे गाथापति रहेतो हंतो. तेनी भार्यातुं नाम अलश्री हंतुं. तेने जेक पुत्री हंतो तेसुं नाम अला हंतुं. अला निपेतुं शेष कथानक पछेवां

साधिकम् अर्द्धपल्योपमं स्थितिः । शेषं तथैव । एवं खलु निक्षेपकः प्रथमाध्ययनस्य । एवं क्रमात् शक्रा २, सतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युदपि ६ । सर्वा एता धरणस्य=धरणेन्द्रस्य अग्रमहिष्य एव । एतानि षड् अध्ययनानि वेणुदेवस्यापि । ' अविसेसिया ' अविशेषितानि=निर्विशेषानि सदृशानि भणितव्यानि ।

जैसा कथानक पीछे वर्णित किया जा चुका है वैसा ही जानना चाहिये । उसके वर्णन में और इसके वर्णन में केवल अन्तर इतना ही है कि यह धरणेन्द्र की अग्रमहिषी के रूप में उत्पन्न हुई और इसकी स्थिति १॥ पल्य से कुछ अधिक है । बाकी का इसका वृत्तान्त कालीदेवी के जैसा ही है । इस तरह यह द्वितीयवर्ग के प्रथम अध्ययन का निक्षेपक-उपसंहार-है ।—(एवं कमा सक्का, सतेरा, सोयामगी, इंदा, घणविज्जुया वि, सव्वओ एयाओ धरणस्स अगमहिसीओ, एवं, एते ६ अज्झयणा वेणुदेवस्स वि अविसेसिया भाणियव्वा, एवं जाव घोसस्स वि एए चेव ६ अज्झयणा, एवमेते दाहिणिल्लाणं इंदाणं-चउप्पणं अज्झयणा भवंति, सव्वओ वि वाणारसीए काममहावणे चेइए तइयवग्गस्स णिक्खेवओ ८ ॥

(तइओ वग्गो समत्तो) इसी क्रम से शक्रा २, सतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युत् ६, ये सब देवियां धरणेन्द्र की ही अग्रमहिषियां थीं । इस तरह के ६ अध्ययन वेणुदेव के भी हैं । और इनका

वर्णनकेला डाली हेवीना कथानकनी जेमज्ज समञ्ज लेवुं जेधये. तेना-अने आना वणुंनमां तक्षवत् इत्त ओटलो ज छे के आ धरखेन्द्रनी अग्रमहिषीना इपमां उत्पन्न थध अने आनी स्थिति १॥ पद्य करतां कंधक वधारे छे. आनुं आकीनुं वणुंन डाली हेवी जेवुं ज छे. आ प्रभावे आ णीज्ज वर्गना पडैला अध्ययनना निक्षेपक उपसंहार छे.

(एवं कमा सक्का सतेरा, सोयामगी, इंदा, घणविज्जुया वि, सव्वओ एयाओ धरणस्स, अगमहिसीओ एवं एते ६ अज्झयणा वेणुदेवस्स वि अविसेसिया भाणियव्वा, एवं जाव घोसस्स वि एए वेव ६ अज्झयणा, एवमेते दाहिणिल्लाणं इंदाणं-चउप्पणं अज्झयणा भवंति, सव्वओ वि वाणारसीए काम महावणे चेइए तइयवग्गस्स णिक्खेवओ ॥ ८ ॥ तइओ वग्गो समत्तो)

आ अनुकम प्रभावे ज शक्रा २, सतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युत् ६, आ मधी हेवीओ धरखेन्द्रनी ज अग्रमहिषीओ डनी. आ प्रभावे ज ६ अध्ययनो वेवु हेवीनां पणु छे अने अमनुं वणुंन धरखेन्द्रना

एवं यावत् घोषस्यापि=घोषेन्द्रस्यापि, एतान्येव षड् अध्ययनानि सन्ति । एवमे-
तानि दक्षिणात्यानामिन्द्राणां चतुष्पञ्चाशद् अध्ययनानि भवन्ति । सर्वा अपि पूर्वो-
क्तादेव्यः पूर्वभवे वाणारस्यां जाताः काममहावने चैत्ये भगवतः पार्श्वस्यार्हतः
समीपे प्रव्रजिताः, तृतीयवर्गस्य निक्षेपकः=समाप्तिवाक्यप्रबन्धो विज्ञेयः ॥ सू०८ ।

॥ इति धर्मकथानां तृतीयो वर्गः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः प्रारभ्यते—' चउत्थस्स ' इत्यादि ।

मूलम्—चउत्थस्स उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव
संपत्तेणं धम्मकहाणं चउत्थवग्गस्स चउत्पण्णं अज्झयणा
पण्णत्ता, तं जहा—पढमे अज्झयणे जाव चउत्पण्णइमे अज्झयणे
पढमस्स अज्झयणस्स उक्खेवओ एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं
तेणं सअएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं
कालेणं तेणं समएणं रूया देवी रूयाणंदा रायहाणी रूयगव-
वडिसए भवणे रूयगंसि सीहासणांसि जहा कालीए तहा नवरं
पुण्वभवे चंपाए पुण्णभवे चेइए रूयगे गाहावई रूयगसिरी
भारिया रूया दारिया सेसं तहेव, णवरं भूयाणंदअग्गमहिसि-

वर्णन भी धरणेन्द्र के वर्णन जैसा ही है । घोषेन्द्रके भी ये ही ६ अध्य-
यन इसी तरह के हैं । इस तरह दक्षिण दिशा संघन्धी इन्द्रों के ५४
अध्ययन हो जाते हैं । ये सब देवियां पूर्वभवमें वाणारसी में उत्पन्न हुईं
और काममहावन उद्यानमें भगवान् पार्श्वनाथ अर्हत प्रभुके समीप दीक्षित
हुईं । इस तरहसे धर्मकथाका यह "तृतीय वर्ग समाप्त हुआ है ।"

पणुं लोपुं ७ छे. घोषेन्द्रना पणु आ लतनां ७ ६ अध्ययनो छे. आ
प्रभाषे दक्षिण दिशा संघन्धी इन्द्रोना ५४ अध्ययनो थडं लथ छे. आ षधी
देवीओ पूर्वभवमां वाणारसीमां उत्पन्न थडं इती अने काममहावन उद्यानमां
भगवान पार्श्वनाथ अर्हत प्रभुनी पासि दीक्षित थडं. आ प्रभाषे धर्मकथानो
आ त्रीणे वर्गं पुरो थयो छे.

તાણ ઉવવાઓ દેસૂળં પાલિઓવમં ઠિઈ ણિક્કલેવઓ ઇવં સુરુ-
યાવિ રૂયંસાવિ રૂયગાવઈવિ રૂયકંતાવિ રૂયપ્પભાવિ, ઇયાઓ
લેવ ઉત્તરિહ્લાણં ઇંદાણં ભાણિયવ્વાઓ જાવ મહાઘોસસસ,
ણિક્કલેવઓ ચડત્થવગ્ગસસ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ ચડત્થો વગ્ગો સમત્તો ॥ ૪ ॥

ટીકા— ‘ચડત્થસસ-ચતુર્થવર્ગસ્ય’ ઉત્કલેવઓ = પ્રારંભવાક્ય-
પાઠોઽવવાચ્ચં । સુધર્મસ્વામી પ્રાહ-ઇવં સ્વલુ જંબુઃ ! શ્રમણેણ યાવત્તસમ્પા-
પ્તેન ધર્મકથાનાં ચતુર્થવર્ગસ્ય ચતુષ્પશ્ચાશત્ અધ્યયનાનિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ તદ્વથા પ્રથમ-
મધ્યયનં યાવત્-ચતુષ્પશ્ચાશત્તમમધ્યયનમ્ ! તેષુ પ્રથમસ્યાધ્યયનસ્ય ઉત્કલેવઓ ।
સુધર્મસ્વામીપ્રાહ-ઇવં સ્વલુ હે જંબુઃ ! તસ્મિન્ કાલે તસ્મિન્ સમયે રાજગૃહે સમ-

—:ચતુર્થ વર્ગ પ્રારંભ:—

‘ચડત્થસસ ઉવક્કલેવઓ’ ઇત્યાદિ ।

ટીકાર્થ:— (ચડત્થસસ ઉવક્કલેવઓ) ચતુર્થ વર્ગ કા પ્રારંભ કિસ
તરહ સે હુઆ હૈ-હસ પ્રકાર-જંબુસ્વામી કે પૂછને પર શ્રી સુધર્મસ્વામી
ઉનસે કહતે હૈં કિ (ઇવં સ્વલુ જંબુ) હે જંબુ ! સુનો-(સમણેણ જાવ
સંપત્તેણ ધમ્મકહાણં ચડત્થવગ્ગસસ ચડપ્પણ્ણં અજ્ઞયણા પળ્ણત્તા તં
જહા પદમે અજ્ઞયણે જાવ ચડપ્પણાહ મે અજ્ઞયણે) યાવત્ સુક્તિસ્થાન
કો પ્રાસ હુણ શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીર ને ધર્મકથા કે ચતુર્થ વર્ગ કે ૫૪
અધ્યયન પ્રજ્ઞસ કિયે હૈં-લે પ્રથમ અધ્યયન સે લેકર ૫૪ વેં અધ્યયન તક
હૈં-(પદમસસ અજ્ઞયણસસ ઉવક્કલેવઓ ઇવં સ્વલુ જંબુ ! તેણં કાલેણં તેણં

ચોથો વર્ગ પ્રારંભ.

‘ચડત્થસસ ઉવક્કલેવઓ’ ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ— (ચડત્થસસ ઉવક્કલેવઓ) ચોથો વર્ગની શરૂઆત કેવી રીતે
થઈ છે ? આ ભતનેા જંબુ સ્વામીએ પ્રશ્ન કર્યા બાદ શ્રી સુધર્મ સ્વામી
તેમને કહે છે કે (ઇવં સ્વલુ જંબુ) હે જંબુ ! સાંભળો,

(સમણેણ જાવ સંપત્તેણ ધમ્મકહાણં ચડત્થવગ્ગસસ ચડપ્પણ્ણં અજ્ઞયણા
પળ્ણત્તા તં જહા પદમે અજ્ઞયણે જાવ ચડપ્પણાહ મે અજ્ઞયણે)

યાવત્ સુક્તિસ્થાનને પાસેલા શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે ધર્મ કથાના ચોથા
વર્ગની ૫૪ અધ્યયનેા પ્રજ્ઞસ કર્યા છે. તેઓ પહેલા અધ્યયનથી માંડીને ૫૪
મા અધ્યયન સુધી છે.

रूपादेव्या अपि विज्ञेयम्, नवरं=विशेषोऽत्रायम्-पूर्वभवे चम्पार्यां नगर्यां पूर्ण-
भद्रं चैत्यम्, रूपको गाथापतिः, रूपश्रीभार्या, रूपादारिका, शेषं तथैव नवरं
भूतानन्दाग्रमहिषीतया तस्या उपपातः जन्म । देशोनं पल्योपमं स्थितिः । निक्षे-
पकाः=समाप्तिवाक्यरूपः प्रबन्धोऽत्र विज्ञेयः । एवं सुरूपाऽपि २, रूपांशाऽपि ३,
रूपकावत्यपि ४, रूपकान्तापि ५, रूपप्रभापि ६ । एताश्चैव उत्तरीयाणामिन्द्राणां

आई। इसके रहने के भवन का नाम रूपकावतंसक था। और जिस
सिंहासन पर यह बैठी थी उसका नाम रूपक था। पीछे जिस प्रकार
का वर्णन कालीदेवी का किया गया है—उसी प्रकार का इनका भी वर्णन
जानना चाहिये। उसके पूर्वभव का वर्णन इस प्रकार है—यह पूर्वभव में
चंपा नामकी नगरी में कि जिसमें पूर्णभद्र नाम का उद्यान था और
रूपक गाथापति जिस में रहता था उस गाथापति की यह रूपश्री भार्या
से “रूपा दारिका” इस नाम से पुत्री उत्पन्न हुई थी। बाद में प्रभु का
उपदेश सुनकर यह प्रतिबोध को प्राप्त हो गई और कालीदेवी की तरह
यह आर्या बन गई इसके आगे जिस तरह का काली देवी का वृत्तान्त
बना इसी तरह से इसका भी जानना चाहिये। जब यह काल अवसर
काल कर गई तब यह भूतानंद इन्द्र की अग्रमहिषीरूप से उत्पन्न हुई।
वहाँ इसकी कुछकम १, पल्य की स्थिति है। इस प्रकार रूपा देवी के
कथानक का यह निक्षेपक है। इसी तरह से (२) सुरूपा (३) रूपांशा
(४) रूपकावती (५) रूपकान्ता और ६ रूपप्रभा का भी वर्णन जानना

नाम रूपकावतंसक इतुं अने जे सिंहासन उपर ते जेसती इती तेतुं नाम
रूपक इतुं. जेभ पढेलां काली देवीतुं वर्णन करवाभां आळुं छे तेमज आतुं
वर्णन पणु समल देतुं जेधजे. तेना पूर्वलवतुं वर्णन आ प्रभाषे छे—
आ पूर्वलवमां चंपा नामनी नगरीमां-के जेमां पूषलद्रा नामे उद्यान इतुं
अने रूपक गाथापति जेमां रहेतो इतो. ते गाथापतिनी आ रूपश्री लार्थी
'रूपादारिका' आ नामथी पुत्री रूपे उत्पन्न थर्ध इती. त्यारपछी प्रभुने
उपदेश सांलणीने जे जोधने प्राप्त थर्ध अने काली देवीनी जेभ आर्या थर्ध
गध. जेना पछीनी विगत काली देवीनी इती तेवी जे जेनी पणु समल देवी
जेधजे. न्यारे तेजे काण अवसरे काण कुर्यो त्यारे आ भूतानंद इन्द्रनी
अग्रमहिषी (पटराणी) ना रूपमां उत्पन्न थर्ध. त्यां तेनी थोडी जोषी
जोषक पद्वनी स्थिति छे. आ प्रभाषे रूपादेवीना कथानकने आ निक्षेपक छे.
आ प्रभाषे जे (२) सुरूपा, (३) रूपांशा, (४) रूपकावती, (५) रूपकान्ता अने

भणितव्याः—अग्रमहिष्यो वक्तव्याः यावत् महाघोषस्य । महाघोषेन्द्रस्य । निक्षेप-
कश्चतुर्थवर्गस्य ॥ सू० ९ ॥

॥ इति धर्मकथानां चतुर्थो वर्गः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो वर्गः प्रारभ्यते—पंचमवर्गस्त ' इत्यादि ।

मूलम्—पंचमवर्गस्त उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! जाव
बत्तीसं अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—कमला? कमलप्पभार
चेव, उप्पला३ य सुदंसणा४ । रूववई५ बहुरूवा६, सुरूवा७
सुभगाविय८ ॥ १ ॥ पुण्णा९ बहुपुत्तिया१० चेव, उत्तमा११
तारयाविय१२ । पउमा१३ वसुमती१४ चेव, कणगा१५ कण-
गप्पभा१६ ॥२॥ वडेंसा१७ केउसई१८ चेव, वइरसेणा१९
रइप्पिया२० । रोहिणी२१ नवमिया२२ चेव, हिरीर३ पुप्फ-
वईइय २४ ॥३॥ सुयगा२५ सुयगवई२६ चेव, महाकच्छों-
ऽपराइया२८ । सुघोसा२९ विमला३० चेव, सुस्तरा३१ य सर-
सवई३२ ॥४॥ उक्खेवओ पढमज्झयणस्त, एवं खलु जंबू !
तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहेसमोसरणं जाव परिसा
पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं कमलादेवी कमलाए
रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणांसि सेसं
जहा कालीए तहेव णवरं पुव्वभवे नागपुरे नयरे सहसंव-

चाहिये । ये देवियां भूतानंद इन्द्र की तरह उत्तरीय इन्द्रों की भी अग्र-
महिषियां हैं । और ये ही महाघोषेन्द्र की भी हैं । इस प्रकार यह चतुर्थ
वर्ग का निक्षेपक (स्वरूप) है ।

॥ चतुर्थवर्ग समाप्त ॥

(६) इपप्रभाषुं वषुंन पणु समए लेवुं नेधजे. आ मधी देवीओ भूतानंद
धन्द्रनी जेम उत्तरीय धन्द्रोनी पणु अग्रमहिषीओ (पटराणीओ) छे. अने
महाघोषेन्द्रनी पणु तेओअ पटराणीओ छे. आ प्रभाषु आ योथा वर्गना
निक्षेपक छे.

योथो वर्ग समाप्त.

वणे उज्जाणे कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भारियाए
कमला दारिया पासस्स० अंतिए निक्खंता कालस्स पिसा-
यकुमारिंदस्स अग्गमहिंसी अद्धपलिओवमं ठिई, एवं सेसा
वि अज्झयणा दाहिणिह्लाणं वाणमंतररिंदाणं भाणियव्वाओ
सव्वाओ णागपुरे सहस्संबवणे उज्जाणे माया पिया धूया सरि-
सनामया, ठिई अद्धपलिओवमं ॥ सू० १० ॥

॥ पंचमो वर्गो समत्तो ॥ ५ ॥

टीका—‘पंचमवर्गस्स’ पञ्चमवर्गस्य उत्क्षेपकः । सुधर्मस्वामी प्राह—एवं
खलु जंबूः । इत्यादि, यावत् द्वात्रिंशद् अध्ययनानि कमलादि नामकानि प्र-
प्तानि, तद्यथा—तेषां नामानि गाथा चतुष्टयेन प्राह—

“कमला १ कमलप्रभा २ चैव, उत्पला ३ च सुदर्शना ४ ।

रूपवती ५ बहुरूपा ६, सुरूपा ७ सुभगा ८ ऽपि च ॥ १ ॥

—:पंचम वर्ग प्रारंभः—

‘पंचम वर्गस्स उक्खेवओ’ इत्यादि ।

टीका—(पंचमवर्गस्स उक्खेवओ) हे भदंत ! पांचवें वर्ग का
उत्क्षेपक प्रारंभ का स्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने किस प्रकार से
प्ररूपित किया है ? इस प्रकार जंबूस्वामी के पृच्छने पर सुधर्मास्वामी ने
उनसे इस प्रकार कहा—(एवं खलु जंबू !) हे जंबू ! सुनो—वह इस तरह
से है—(जाव वत्तीसं अज्झयणा पणत्ता—तं जहा (१) कमला (२) कम-
लप्पभा चैव, (३) उत्पला य (४) सुदर्शना । (५) रूपवई (६) बहुरूपा (७)
सुरूपा (८) सुभगाविय, । (९) पुण्णा (१०) बहुपुत्तिया चैव (११) उत्तमा
(१२) तारयाविय । (१३) पउमा (१४) वसुमती चैव (१५) कणगा (१६)
कणगप्पभा (१७) वड्डेसा (१८) केउमई चैव (१९) वइरसेणा (२०) रइ-

पांचमो वर्ग प्रारंभः.

‘पंचम वर्गस्स उक्खेवओ’ इत्यादि—

टीका—(पंचम वर्गस्स उक्खेवओ) हे भदन्त ! पांचमो वर्गना
उत्क्षेपक-प्रारंभ-तुं स्वरूप श्रमणु भगवान् महावीरे देवी शीते प्ररूपित कथुं
छे ? अये प्रभाणु जंभू स्वामीना प्रश्नं कथां णाह सुधर्मा स्वामीअे तेभने
आ प्रभाणु कथुं के—(एवं खलु जंबू !) हे जंबू ! सांभणे, ते आ प्रभाणु छे—

(जाव वत्तीसं अज्झयणा पणत्ता—तं जहा (१) कमला (२) कमलप्पभा
चैव, (३) उत्पला य, (४) सुदर्शना (५) रूपवई (६) बहुरूपा (७) सुरूपा (८)

पूर्णा ९ बहुपुत्रिका १० चैव, उत्तमा ११ तारका १२ ऽपि च ।
 पद्मा १३ वसुमती १४ चैव, कनका १५ कनकप्रभा १६ ॥ २ ॥
 अवतंसा १७ केतुमती १८ चैव, वज्रसेना १९ रतिप्रिया २० ।
 रोहिणी २१ नवमिका २२ चैव, ह्रीः २३ पुष्पवती २४ ति च ॥ ३ ॥
 भुजगा २५ भुजगवती २६ चैव, महाकच्छा २७ ऽपराजिता २८ ॥
 सुघोषा २९ विमला ३० चैव, सुस्वरा ३१ च सरस्वती ३२ ॥ ४ ॥

पिया । (२१) रोहिणी (२२) नवमिया चैव (२३) हिरी (२४) पुष्पवईइय ।
 (२५) भुयगा (२६) भुयगवई चैव (२७) महाकच्छा (२८) पराइया (२९)
 सुघोसा (३०) विमला चैव (३१) सुस्सरा (३२) सरसवई) इस पंचम
 वर्ग के अमण भगवान् महावीर ने कमलादि नामवाले ३२ अध्ययन
 प्रज्ञप्त किये हैं । इनके नाम सूत्रकार चार गाथाओं द्वारा इस तरह से
 प्रकट करते हैं । कमला १, कमलप्रभा २, उत्पला ३, सुदर्शना ४, रूप-
 वती ५, बहुरूपा, ६, सुरूपा ७, सुभगा ८, पूर्णा ९, बहुपुत्रिक १०,
 उत्तमा ११ तारका १२, पद्मा १३, वसुमती १४, कनका १५ कनकप्रभा
 १६, अवतंसा १७, केतुमती, १८, वज्रसेना १९, रतिप्रिया २०, रोहिणी
 २१, नवमिका २२, ह्री २३, पुष्पवती, २४, भुजगा, २५, भुजगवती २६,
 महाकच्छा २७, अपराजिता २८, सुघोषा २९, विमला ३०, । सुस्वरा

सुभगाविय, (९) पुण्णा (१०) बहुपुत्रिया चैव (११) उत्तमा (१२) तारयाविय,
 (१३) पडमा, (१४) वसुमती चैव (१५) कणगा, (१६) कणगप्पभा, (१७)
 वडेंसा, (१८) केउमइ चैव, (१९) वइससेणा, (२०) रइपिया, (२१) रोहिणी,
 (२२) नवमिया चैव (२३) हिरी (२४) पुष्पवईइय, (२५) भुयगा (२६) भुय-
 गवई चैव, (२७) महाकच्छा (२८) पराइया, (२९) सुघोसा (३०) विमला चैव
 (३१) सुस्सरा, (३२) य सरसवई)

अमणु भगवान् मंडावीरे आ पंच्यभा वर्गना कमला वगेरे नामोवाणा
 उर अकथने प्रज्ञप्त कथीं छे । ओमनां नामो सूत्रकार चार गाथाओ वडे ओ
 प्रभाओ प्रकट करे छे—कमला (१), कमलप्रभा (२), उत्पला (३), सुदर्शना
 (४), रूपवती (५), बहुरूपा (६), सुरूपा (७), सुभगा (८), पूर्णा (९), बहु-
 पुत्रिका (१०), उत्तमा (११), तारका (१२), पद्मा (१३), वसुमती (१४),
 कनका (१५), कनकप्रभा (१६), अवतंसा (१७), केतुमती (१८), वज्रसेना
 (१९), रतिप्रिया, (२०), रोहिणी (२१), नवमिका (२२), ह्री (२३), पुष्प-
 वती (२४) भुजगा (२५), भुजगवती (२६), महाकच्छा (२७), अपराजिता
 (२८), सुघोषा (२९), विमला (३०), सुस्वरा (३१), सरस्वती (३२) ।

उत्क्षेपकः प्रथमाध्ययनस्य । जम्बूस्वामिना पृष्टे सुधर्मास्वामीमाह—एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे 'समोसरणं' समवसरणं=भग-

३१, सरस्वती ३२, । (उक्खेवओ पढमज्झयणस्स एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं कमला देवीं, कमलाए रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहेव णवरं पुव्वभवे नागपुरे नयरे सहसंबवणे उज्जाणे कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भरियाए कमला दारिया पासस्स० अंतिए निक्खंता कालस्स पिसायकुमारिंदस्स अग्गमहिंसी अद्धपलिओवमं ठिई, एवं सेसा वि अज्झयणा दाहिणिल्लाणं वाणमंतरिंदाणं भाणियव्वाओ, सव्वओ णागपुरे सहसंबवणे उज्जाणे माया पिया धूया सरिसनामया, ठिई अद्धपलिओवमं) इसके बाद जंबूस्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी से पूछा कि इनमें से कमला नामका जो प्रथम अध्ययन है उसका उत्क्षेपक किस तरह से है—इस प्रकार जंबूस्वामी के पूछने पर उनसे सुधर्मास्वामी ने कहा—कि हे जंबू ! सुनो—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—उस काल में और उस समय में राजगृह नामका नगर था। उसमें भगवान् महावीर का आगमन हुआ। यावत् वहाँ की परिषद् प्रभु को वंदना करने के लिये आई।

(उक्खेवओ पढमज्झयणस्स, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसापज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं कमला-देवी कमलाए रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहेव णवरं पुव्वभवे नागपुरे नयरे सहसंबवणे उज्जाणे कमलस्स गाहा-वइस्स कमलसिरीए भरियाए कमला दारिया पासस्स० अंतिए निक्खंता कालस्स पिसाय कुमारिंदस्स अग्गमहिंसी अद्धपलिओवमं ठिई, एवं सेसा वि अज्झयणा दाहिणिल्लाणं वाणमंतरिंदाणं भाणियव्वाओ, सव्वओ णागपुरे सहसंबवणे उज्जाणे मायापिया धूया सरिसनामया, ठिई अद्धपलिओवमं)

त्यारपथी जंबू स्वामीञ्चि श्री सुधर्मा स्वामीने पूछथु के आ णधामां कमला नामे जे पडेंतुं अध्ययन छे तेना उत्क्षेपक केवी रीते छे ?

आ प्रभाञ्जे जंबू स्वामीञ्चि प्रश्न कथां णाड तेमने श्री सुधर्मा स्वामीञ्चि कडुं के छे जंबू ! सांलणो, तभारा प्रश्नो उत्तर आ प्रभाञ्जे छे के ते कण्णे अने ते समये राजगृह नामे नगर छंतुं, तेमां भगवान् महावीरंतुं आगमन थंतुं, यावत् नगरनी परिषद् तेमने वंदना करवा भाटे आवी, प्रभुञ्चि सीने

वन् महावीरस्वामी समागमनं संजातं, यावत् परिषद् भगवन्तं पर्युपास्ते। तस्मिन् काले तस्मिन् समये कमला देवी कमलायां राजधान्यां, कमलावतंसके भवने कमले सिंहासने, शेषं यथा—काल्याः=कालीदेव्या वर्णनं तथैवाऽस्या अपि, नवरं=विशेषोऽयम्—पूर्वभवे नागपुरं नगरं, सहस्राञ्जनमुद्यानम्, कमलस्य गाथापतेः कमलश्रियो भार्यायाः कमला दारिका पार्श्वस्यार्हतः पुरुषादानीयस्य अन्तिके 'निवृत्ता' निष्क्रान्ता=प्रव्रजिता, कालस्य पिशाचकुमारेन्द्रस्य अग्रमहिषी। अर्धपल्योपमं स्थितिः। एवं शेषाण्यपि कमलप्रभादिनामकान्यपि एकत्रिंशद् अध्य-

प्रभु ने सयको धर्म का उपदेश दिया। परिषद् ने प्रभु की पर्युपासना की। उस काल में और उस समय में कमला नाम की देवी, कमला राजधानी में कमलावतंसक भवन में रहती थी। उस के सिंहासन का नाम कमला था। इसके आगे का समस्त वर्णन कालीदेवी के वर्णन जैसा ही जानना चाहिये। परन्तु इसमें जो विशेषता है वह इस प्रकार है—जब गौतमस्वामी ने उसके—अर्थात् देवी के चले जाने के बाद उसके पूर्वभव का वृत्तान्त पूछा—तब प्रभु ने उनसे इस प्रकार कहा—पूर्वभव के इसके नगर का नाम नागपुर था—उसमें सहस्राञ्जन नाम का उद्यान था। उस नगर में कमल नामका गाथापति रहता था।—उसकी भार्या का नाम कमला थी था। इनके एक पुत्री थी जिस का नाम कमला था। वह काललब्धि के आनेपर पुरुषदानीय—पुरुष श्रेष्ठ—पार्श्वनाथ अर्हत प्रभु के समीप प्रव्रजित हो गई। बाद में मरने पर वह काल नाम के पिशाच कुमारेन्द्र की अग्रमहिषी बनी। वहाँ इसकी स्थिति अर्धपल्य की है।

धर्मोऽपि उपदेश आये। परिषदे प्रभुनी पर्युपासना करी। ते काले अने ते समये कमला नामनी देवी, कमला राजधानीमां कमलावतंसक भवनमां रहेती હતી। तेना सिंहासनं नाम कमला હતું. એના પછીતું અધું વર્ણન કાલી દેવીના વર્ણનની જેમ જ સમજ લેવું જોઈએ. પરંતુ આમાં જે કંઈ વિશેષતા છે તે એ પ્રમાણે છે—કે જ્યારે ગૌતમ સ્વામીએ દેવીના ગયા પછી તેના પૂર્વ ભવ વિષેની વિગત પૂછી ત્યારે પ્રભુએ તેમને આ પ્રમાણે કહ્યું—કે આના પૂર્વ ભવના નગરનું નામ નાગપુર હતું. તેમાં સહસ્રાઞ્જન નામે ઉદ્યાન હતું. તે નગરમાં કમલ નામે ગાથાપતિ રહેતો હતો. તેની પત્નીનું નામ કમલાશ્રી હતું. એમને એક દિકરી હતી તેનું નામ કમલા હતું, તે યોગ્ય કાળલબ્ધિના અવ સરે પુરુષાદાનીય—પુરુષ શ્રેષ્ઠ—પાર્શ્વનાથ અર્હત પ્રભુની પાસે પ્રવ્રજિત થઈ ગઈ. ત્યારપછી મૃત્યુ થયા બાદ તે કાલ નામના પિશાચ કુમારેન્દ્રની અગ્ર-

યનાનિ દાક્ષિણાત્યાનાં વાનઘ્યન્તરેન્દ્રાણામગ્રમહિષીણાં મળિતરુયાનિ । સર્વાશ્રીતાઃ
પૂર્વભવે નાગપુરે નગરે સંજાતાઃ, સહસ્રામ્રવને ઉદ્યાને મગવત્પાર્શ્વપ્રમોઃ સમીપે પ્રવ્ર-
જિતાઃ । માતાપિતા દુહિતા સદ્વશનામકઃ । આસાં સ્થિતિરર્ધપલ્યોપમમ્ ॥સૂ૦ ૧૦ ॥

॥ इति धर्मकथानां पञ्चमो वर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥

મૂલમ્—છટ્ટોવિ વગ્ગો પંચમવગ્ગસરિસો, ણવરં મહાકાલા-
દીણં ઉત્તરિહ્યાણં ઇંદાણં અગ્ગમહિસીઓ પુઠ્ઠવભવે સાગેય-
નયરે ઉત્તરહુરુ ઉજ્જાણે માયા પિયા ધૂયા સરિસણામયા
સેસં તં ચેવ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

॥ छट्टो वग्नो समतो ॥ ६ ॥

વાકી જો ૩૧, કમલપ્રભા નામકે અધ્યયન હૈં વે દક્ષિણ દિશા સંબન્ધી
વાનઘ્યન્તરેન્દ્રોં કી અગ્રમહિષિયોં કે હૈં એસા જાનના ચાહિયે । યે સવ
હી પૂર્વભવ મેં નાગપુર નગર મેં ઉત્પન્ન હુઈ-ઔર સહસ્રામ્રવન નામકે
ઉદ્યાન મેં મગવાન્ પાર્શ્વનાથ કે સમીપ પ્રવ્રજિત હુઈ । इन अध्ययनों में
माता पिता तथा पुत्री ये सब एक सरीखे नामवाली है । जैसे कमलप्रभा
नामक अध्ययन में माता का नाम कमलप्रभा श्री, पिता का नाम क-
मलप्रभ एवं पुत्री का नाम कमलप्रभा है-इसी तरह से और अध्ययनों में
भी जानना चाहिये । इन सब देवियों की स्थिति अर्धपल्य की है ॥सू० १०॥

-:પંચમવર્ગ સમાપ્ત:-

મહિષી (પટરાણી) બની. ત્યાં તેની સ્થિતિ અર્ધપલ્યની છે. શેષ જે ૩૧
કમલપ્રભા નામના અધ્યયનો છે તે દક્ષિણ દિશા સંબંધી વાનઘ્યન્તરેન્દ્રોની
અગ્રમહિષીઓ (પટરાણીઓ) નાં સમજવાં જોઈએ. આ બધી પૂર્વભવમાં
નાગપુર નગરમાં ઉત્પન્ન થઈ અને સહસ્રામ્રવન નામના ઉદ્યાનમાં ભગવાન
પાર્શ્વનાથની પાસે પ્રવ્રજિત થઈ ગઈ. આ બધાં અધ્યયનોમાં માતાપિતા તેમજ
પુત્રી આ સર્વેં એક સરખાં નામવાળાં છે. જેમકે કમલપ્રભા નામના અધ્યય-
નમાં માતાનું નામ કમલપ્રભાશ્રી, પિતાનું નામ કમલપ્રભ અને પુત્રીનું નામ
કમલપ્રભા છે એ પ્રમાણે બીજા અધ્યયનો વિષે પણ જાણી લેવું જોઈએ. આ
બધી દેવીઓની સ્થિતિ અર્ધપલ્યની છે. ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

પાંચમો વર્ગ સમાપ્ત.

टीका—' छट्टो वि ' इत्यादि पष्ठोऽपि वर्गः पञ्चमवर्गसदृशः । नवरस्य-एता-
वान् विशेषः—अत्र महाकालादीनाम् उत्तरीयाणामिन्द्राणामयमहिष्यः । एताः
सर्वाः पूर्वभवे साकेतनगरे उत्तरकुरुक्षाने पार्श्वप्रभुसमीपे प्रव्रजिताः मातरः पितरौ
दुहितरः सदृशनामकाः । शेषं तदेव सर्वं वाच्यम् ॥ सू० ११ ॥

इति धर्ककथानां पष्ठो वर्गः समाप्तः ॥ ६ ॥

—षष्ठवर्ग प्रारंभः—

' छट्टो वि वग्गो पंचमवग्गसरिसो ' इत्यादि ।

टीकार्थः—(छट्टो वि वग्गो पंचमवग्गसरिसो, णवरं महाकालादीणं
उत्तरिल्लाणं इंदाणं अग्गमहिसीओ पुण्वभवे सागेयनयरे उत्तरकुरु-
ज्जाणे माया पिया धूया सरिसणामया सेसं तं चव ११) छटा वर्ग भी
पंचमवर्ग के जैसे ही है । परन्तु इसमें जो उसकी अपेक्षा विशेषता है
—वह इस प्रकार है—इस अध्ययन में उत्तर दिशा के इन्द्र महाकाल
आदिकों की अग्रमहिषियों का वर्णन है । ये सब अग्रमहिषियां पूर्वभच
में साकेत नगर (अयोध्या) में उत्तर कुरु नामके उद्यान में पार्श्वप्रभु के
समीप प्रव्रजित हुई हैं । माता पिता एवं पुत्रियां ये सब एक जैसा
नामवाले हैं । बाकी का इनके विषय का समस्त कथन कालीदेवी के
वर्णन जैसा जानना चाहिये ।

—षष्ठवर्ग समाप्तः—

छट्टो वर्ग प्रारंभः—

' छट्टो वि वग्गो पंचम वग्गसरिसो ' इत्यादि—

(छट्टो विवग्गो पंचमवग्गसरिसो, णवरं महाकालादीणं उत्तरिल्लाणं इंदाणं
अग्गमहिसीओ पुण्वभवे सागेय नयरे उत्तरकुरु उज्जाणे मायापिया धूया सरिस
णामया सेसं तं चव ११)

छट्टो वर्ग पष्ठ पांचम वर्गना जेवो ज छे. परंतु आमां जे तेना
करतां विशेषता छे, ते ओ प्रभाजे छे के आ अध्ययनमां उत्तर दिशाना इन्द्र
महाकाल वगेरनी अग्रमहिषीओ (पटरा बुीओ) तुं वणुंन छे. आ अधी
अग्रमहिषीओ पूर्वभचमां साकेत नगरमां उत्तरकुरु नामना उद्यानमां पार्श्व
प्रभुनी पासे प्रव्रजित थछे. मातापिता अने पुत्रीओ अथां ओके सरमां
नामवाणां छे. ओमना विषेतुं 'भाकीतुं' अथुं कथन काली देवीना वणुंन जेबुं
जणुंनुं जेधजे.

छट्टो वर्ग समाप्त.

અથ સપ્તમો વર્ગઃ પ્રારભ્યતે—‘ સત્તમસ્સે ’ ત્યાદિ ।

મૂલ્ય—સત્તમસ્સ વગ્ગસ્સ ઉક્ખેવઓ, एवं खलु जंबू ।
 जाव चत्तारि अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—सूरप्पभा आयवा
 अच्चिमाली पभंकरा, पढमज्झयणस्स उक्खेवओ, एवं खलु
 जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव
 परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा देवी
 सूरंसि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए
 तहाणवरं पुव्वभवे अरक्खुरीए नयरीए सूरप्पभस्स गाहाव-
 इस्स सूरसिरीए भारियाए सुरप्पभा दारिया सूरस्स अग्ग-
 महिसी ठिई अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं
 सेसं जहा कालीए, एवं सेसाओवि सव्वाओ अरक्खुरीए
 णयरीए ॥ सू० १२ ॥ ॥ सत्तमो वग्गो समत्तो ॥ ७ ॥

टीका—‘ सत्तमस्से ’ ति—सप्तमस्य वर्गस्य उत्क्षेपकः । सुधर्मस्वामीकथ-
 यति—एव खलु हे जम्बू ! यावत् चत्वारि अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—तानि

—:सप्तमवर्ग प्रारंभः—

‘ सत्तमस्सवग्गस्स उक्खेवओ ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ एवं खलु जंबू ! जाव
 चत्तारि अज्झयणा पणत्ता) हे भदंत ! सातवें वर्ग का उत्क्षेपक किस
 प्रकार है ? इस जंबूस्वामी के प्रश्न करने पर गौतमस्वामी उनसे कहते
 हैं—कि हे जंबू ! सुनो, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—श्रमण

सातमो वर्ग प्रारंभ—

‘ सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ ’ इत्यादि—

टीकार્થ—(સત્તમસ્સ વગ્ગસ્સ ઉક્ખેવઓ एवं खलु जंबू ! जाव चत्तारि अज्झ-
 यणा पणत्ता) हे भदन्त ! सातमा वर्गने उत्क्षेपक केवी रीते छे ?

જા'બૂ સ્વામીના આ પ્રશ્નને સાંભળીને ગૌતમ સ્વામી તેમને કહે છે કે
 હે જા'બૂ ! સાંભળો, તમારા પ્રશ્નનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે કે શ્રમણુ ભગવાન
 મહાવીરે આ સાતમા વર્ગના ચાર અધ્યયનો પ્રકૃપિત કર્યો છે.

यथासूरप्रभा १, आतपा २, अर्चिर्भालिः ३, प्रभङ्गकरा ४ । प्रथमाध्ययनस्योत्क्षे-
पकः । सुधर्मस्वामीप्राह—एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राज-
गृहे समवसरणम्=भगवद्वर्धमानस्वामिसमागमनम् यावत् परिपत् पर्युपास्ते ।
तस्मिन् काले तस्मिन् समये सूरप्रभादेवी, सूरविमाने, सूरप्रभे सिंहासने, शेषं

भगवान महावीर ने इस सातवें वर्ग के चार अध्ययन प्ररूपित किये हैं
—(तं जहा—सूरप्पभा, आयवा, अच्चिमाली, पभंकरा, पढमज्झयणस्स,
उक्खेवओ एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसर-
रणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा देवी,
सूरसि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहा) वे
चार अध्ययन इस प्रकार हैं सूरप्रभा १, आतपा २, अर्चिमाली ३,
प्रभङ्गका ४, इनमें प्रथम अध्ययन का उत्क्षेपक हे जंबू ! इस प्रकार है—
उस काल और उस समय में राजगृह नाम के नगर में भगवान वर्ध-
मानस्वामी का आगमन हुआ था—प्रभु का आगमन सुनकर वहां की
परिषद् उनको वंदना करने के लिये उनके समीप गई—प्रभु ने सबको
धर्म का उपदेश दिया । उपदेश सुनकर सबने प्रभु की पर्युपासना की ।
उस काल और उस समय में सूरप्रभा नाम की एक देवी जो सूरविमान
में रहती थी—और सूरप्रभ सिंहासन पर बैठती थी प्रभु को वंदना करने
के लिये आई । इसके बाद का इसका वृत्तान्त जैसा पहिले कालीदेवी

(तं जहा—सूरप्पभा, आयवा, अच्चिमाली, पभंकरा, पढमज्झयणस्स,
उक्खेवओ एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव
परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभादेवी, सूरसि विमाणंसि
सूरप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहा)

ते चार अध्ययने आ प्रभाणु छे—सूरप्रभा १, आतपा २, अर्चिर्भाली
३, प्रभङ्गकरा ४, हे जंबू ! आ अध्यामां पडेवा अध्ययनने उक्क्षेपक आ
प्रभाणु छे के ते काले अने ते समये राजगृह नामना नगरमां भगवान
वर्धमान स्वामीनुं आगमन थयुं. प्रभुनुं आगमन सांलणीने त्यांनी परिषद
तेमने वंदना करवा भाटे तेमनी पास गध. प्रभुजे सौने धर्मने उपदेश
आये। उपदेश सांलणीने सौजे प्रभुनी पर्युपासना करी. ते काले अने ते
समये सूरप्रभा नामनी एक देवी—जे सूर विमानमां रहेती छती अने सूरप्रभ
सिंहासन उपर भेसती छती—प्रभुनी वंदना करवा भाटे आयी. अनेना यथीनुं

यथा काल्याः=काली देव्या वर्णनं तथा विज्ञेयम्, नवरम्=अयं विशेषः=पूर्वभवे अरक्षुर्यां नगर्यां सूरप्रभस्य गाथापतेः, सूरश्रियो भार्यायाः सूरप्रभा दारिका, सूरस्य अग्रमहिषी स्थितिरर्द्धपत्योपमं पञ्चभिर्वर्षशतैरभ्यधिकम् । शेषं यथा काल्याः । एवं शोपा अपि=आतपादिकाः देव्यो वाच्याः । सर्वाः पूर्वभवे अरक्षुर्यां नगर्यामासन् ॥ सू० १२ ॥

॥ इति धर्मकथानां सप्तमो वगः समाप्तः ॥ ७ ॥

का वृत्तान्त लिखा जा चुका है-वैसा ही हैं । उसमें कुछ अन्तर नहीं है (णवरं) परन्तु जिन बातों में अन्तर है-वह इस प्रकार है-(पुत्रभवे) यह पूर्वभवे में (अरक्षुरीए नयरीए सूरप्रभस्स गाहावइस्स सूरसिरीए भारियाए सूरप्रभा दारिया सूरस्स अगमहिसी ठिई अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहिंयं सेसं जहा कालीए एवं सेसाओ वि सच्चाओ अरक्षुरीए णयरीए १२) अरक्षुर नामकी नगरी में:निवास करनेवाले सूरप्रभा गाथापति की सूर श्री भार्या की कुक्षि से अचतरी थी । इसका नाम सूरप्रभा था । यह सूर की अग्रमहिषी हुई । इसकी वहाँ पांचसौ वर्ष से अधिक अर्द्धपत्य की स्थिति है । और इसका इस अवस्था का समस्त वर्णन काली समान ही है । इसी तरह का आतपाआदिक ३ देवियों का भी जीवन वृत्तान्त है । ये ३ तीनों ही देवियाँ अपने २पूर्व-भवे में अरक्षुर नगरी में जन्मी थीं ॥ सू० १२ ॥

-:सप्तमवर्ग समाप्त:-

आतुं वरुणं अली देवीना वरुणं जेवुं ज सभए लेवुं जेधं, तेमां क्खं पणु ज्जतने तक्षवत नथी. (णवरं) परंतु जे वातमां तक्षवत छे, ते आ भमाए छे. (पुत्रभवे) आ पूर्वभवमां

(अरक्षुरीए नयरीए सूरप्रभस्स गाहावइस्स सूरसिरीए भारियाए सूरप्रभा दारिया सूरस्स अगमहिसी ठिई अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहिंयं सेसं जहा कालीए, एवं सेसाओ वि सच्चाओ अरक्षुरीए णयरीए १२)

अरक्षुरी नामकी नगरीमां रहनेवाली सूरप्रभा गाथापतिनी सूरश्रीभार्यानां शर्लाथी जन्म पायी छती, तेनुं नाम सूरप्रभा छतुं. ते सूरनी अग्रमहिषी (पटशाणी) थई. तेनी त्यां पांचसो वर्षं करतां वधारे अर्द्धपत्यनी स्थिति छे. तेनुं आ अवस्था विषेतुं अधुं वरुणं अलीना जेवुं ज छे. जे प्रमाए ज आतपा वगेरे उ देवीओतुं पणु ज्जवनवृत्तांत छे. आ त्थे देवीओ पीत-पीतानां पूर्वभवमां अरक्षुर नगरमां जन्म पायी छती. ॥सू० १२॥

आतमां वर्ग समाप्त.

अथाष्टमो वर्गः प्रारभ्यते—' अट्टमरसे ' त्यादि ।

मूल्य—अट्टमस्स उक्खेवओ, एवं खलु जम्बू ! जाव चत्तारि अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चि-
माली पभंकरा, पढमस्स अज्झयणस्स उक्खेवओ, एवं
खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं
जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं चंद-
प्पभा देवी चंदप्पभंसि विमाणंसि चंदप्पभंसि सीहासणंसि
सेसं जहा कालीए, णवरं पुव्वभवे महुराए णयरीए भंडीर-
वडैसए उज्जाणे चंदप्पभे गाहावई चंदसिरी भारिया चंद-
प्पभा दारिया चंदस्स अग्गमहिस्सी ठिई अद्धपलिओवमं
पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं सेसं जहा कालीए,
एवं सेसाओवि महुराए णयरीए मायापियरोवि धूयासरि-
सणामा ॥ सू० १३ ॥ अट्टमो वग्गो समत्तो ॥ ८ ॥

टोका—' अट्टमस्से ति—अष्टमस्य उत्क्षेपकः । सुधर्मास्वामी प्राह—एवं खलु
हे जम्बू ! यावत् चत्वारि अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा=तानि यथा—चन्द्रप्रभा १,
ज्योत्स्नाभा २, अर्चिर्मालिः ३, प्रभङ्कुरा ४ । प्रथमस्याध्ययनस्योत्क्षेपकः । एवं

—:अष्टमवर्गं प्रारभ—:

' अट्टमस्स उक्खेवओ ' इत्यादि ।

टीकार्थ—:(अट्टमस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! जाव चत्तारि
अज्झयणा पणत्ता तं—जहा—चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा,

आठमो वर्ग प्रारंभ

' अट्टमस्स उक्खेवओ , इत्यादि—

(अट्टमस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! जाव चत्तारि अज्झयणा पणत्ता—तं
जहा—चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा, पढमस्स अज्झयणस्स उक्खे-

खलु हे जम्बूः ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे श्रीमहावीरस्वामिनः समव-
सरणं, यावत्-परिपत् पर्युपास्ते । तस्मिन् काले तस्मिन् समये चन्द्रप्रभा देवी
चन्द्रप्रभे विमाने चन्द्रप्रभे सिंहासने शेषं यथा काल्याः=कालीदेव्या वर्णनं तद्वद्

पहसस्स अज्झयणस्स उक्खेवओ-एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं
समएणं रायगिहे समोसरणं-जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं
समएणं चंदप्पभादेवी चंदप्पभंसि विमाणंसि सीहासणंसि सेसं जहा
कालीए, णवरं पुव्वभवे महुराए णयरीए भंडीरवडेंसए उज्जाणे चंद-
प्पभे गाहावई चंदसिरी भारिया चंदप्पभा दारिया) हे भदंत ! आठवें
वर्ग का उत्क्षेपक कैसा है ? इस प्रकार जंबूस्वामी के पूछने पर सुधर्मा-
स्वामी ने उनसे कहा-हे जंबू ! सुनो तुम्हाने प्रश्न का उत्तर इस प्रकार
है-श्रमण भगवान् महावीर ने इस वर्ग के चार अध्ययन प्रज्ञप्त किये हैं
-वे इस प्रकार से हैं-चंद्रप्रभा १, ज्योत्स्नाभा २, अर्चिमाली ३, प्रभं-
करा ४, । इनमें हे जंबू ! प्रथम चंद्रप्रभा अध्ययन का उत्क्षेपक इस प्रकार
से है-उस काल में और उस समय में राजगृह नामके नगर में श्री
महावीर स्वामी का आगमन हुआ था-। उनसे धर्म का उपदेश प्राप्त
करने के लिये वहां की समस्त धार्मिक जनता उनके पास आई थी प्रभु
ने सब के लिये धर्म का उपदेश सुनाया-सुनाकर सबों ने उनकी यावत्
पर्युपासना की । उस काल और उस समय में चंद्रप्रभा देवी जो कि

वओ-एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं-जाव
परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदप्पभादेवी चंदप्पभंसि विमाणंसि
चंदप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए, णवरं पुव्वभवे महुराए णयरीए
भंडीरवडेंसए उज्जाणे चंदप्पभे गाहावई चंदसिरी भारिया चंदप्पभा दारिया)

हे भदन्त ! आठमा वर्गना उत्क्षेपक केवे छे ?

आ प्रभाञ्जे ञ्णू स्वामीना प्रश्न कथां भाह सुधर्मा स्वामीञ्जे तेभने
कह्णुं के हे ञ्णू ! सांलणो, तमारा प्रश्नो उत्तर आ प्रभाञ्जे छे के श्रमण
लगवान मडावीरे आ वर्गनां यार अध्ययनो प्रज्ञप्त कथां छे, ते आ प्रभाञ्जे
छे-चंद्रप्रभा १, ज्योत्स्नाभा २, अर्चिमाली ३, प्रभंकरा ४. हे ञ्णू !
आ यारेमां पडेला चंद्रप्रभा नामे अध्ययननो उत्क्षेपक आ प्रभाञ्जे छे के ते
काणे अने समये राजगृह नामना नगरमां श्री मडावीर स्वामीतुं आगमन
थ्युं. तेमनी पासेथी धर्मकथा सांलणवा माटे त्यांनीं यधी धार्मिक जनता त्यां
आवी. प्रभुञ्जे धर्मनो उपदेश संलणाव्यो. सांलणीने लधाञ्जे तेमनी यावत्
पर्युपासना करी. ते काणे अने ते समये चंद्रप्रभा देवी-के वे चंद्रप्रभ

विज्ञेयम्, नवरं=विशेषस्वयम्-पूर्वभवे मथुरायां नगर्यां मण्डीरावतंसकमुद्यानम्, चन्द्रप्रभो गाथापतिः, चन्द्रश्रीमौरीया, चन्द्रप्रभा दारिका, चन्द्रस्याग्रमहिषी, स्थितिरर्द्धपत्योपमं पञ्चाशद्विर्षसदस्यैभ्यधिकम्। ज्ञेवं यथा काल्याः। एवं

चन्द्रप्रभ विमान में रहती थी और चन्द्रप्रभ सिंहासन पर बैठती थी-श्रवण भगवान् महावीर को वंदना करने एवं उनसे धर्म का उपदेश सुनने के लिये उनके निकट आई-। इसके बाद का इसका वृत्तान्त कालीदेवी के वृत्तान्त जैसा ही है। उसमें कोई अन्तर नहीं है। जहाँ अन्तर है-उसका खुलाशा इस प्रकार है-पूर्वभवे में यह मथुरा नगरी में जन्मी थी। वहाँ मंडीरावतंसक उद्यान था। उस नगरी में चन्द्रप्रभ नाम का गाथापति रहता था। उसकी भार्या थी जिसका नाम चन्द्रश्री था। उनके यहाँ यह चन्द्रप्रभा नामकी पुत्री थी। यह चन्द्र की अग्रमहिषी बनी। (ठिई अद्धपलिओवमं, पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्महिंयं सेसं जहा कालीए एवं सेसाओवि चंद्रस्स अग्गमहिंसी) पचास हजार वर्ष से अधिक इसकी स्थिति आद्येपत्य की है। इसके बाद का इसका जीवन वृत्तान्त काली दारिका के जीवन वृत्तान्त जैसा ही जानना चाहिये। इसी तरह ज्योत्स्नाभा आदिशेष ३ देवियों के संबन्ध को लेकर जो अध्ययन कहे गये हैं-वे जानना चाहिये वे सब ज्योत्स्नाभा

विमानमां रहेती इती अने चंद्रप्रभ विमानमां जेसती इती-श्रमण भगवान् महावीरनी वंदना करवा भाटे अने तेमनी पासेथी धर्मने उपदेश सांभणवा भाटे तेमनी पासे आनी. तेना पछीतुं तेतुं वृत्तांत काली देवीना वृत्तांत जेवुं न छे तेमां केछ पणु जतने तक्षवत नथी. ज्यां तक्षवत छे-तेतुं स्पष्टीकरणु आ प्रभाणु छे के पूर्वभवमां ते मथुरा नगरीमां जन्मी इती, त्यां मंडीरावतंसक उद्यान इतुं. ते नगरीमां चंद्रप्रभनामे गाथापति रहेतो इतो. चंद्रश्री तेनी भार्यातुं नाम इतुं. तेने चन्द्रप्रभा नामे पुत्री इती. आ चन्द्रनी अग्रमहिषी (पटराणी) थई.

(ठिई अद्धपलिओवमं, पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्महिंयं सेसं जहा कालीए एवं सेसाओवि चंद्रस्स अग्गमहिंसी)

पचास हजार वर्ष इतां आनी स्थिति अउधा पश्यनी छे. जेना पछीतुं आतुं एवन विषेणुं वणुंन काली इरिडाना एवन जेवुं न समणु, जेवुं जेधजे. आ प्रभाणु ज्योत्स्नाभा वगेरे भाडी तणु देवीज्योना संबधने लधने जे अध्ययने कहेवामां आन्यां छे तेमने पणु समणु जेवां जेधजे.

शेषाः=ज्योत्स्नाभादि देव्योऽपि विज्ञेयाः । सर्वाः पूर्वभवे मथुरायां नगर्यां
जाताः, पार्श्वप्रभुसमीपे च प्रव्रजिताः । मातापितरोऽपि दुहितृसदृशनामानः ॥ सू० १३ ॥

इति धर्मकथानामाष्टमो वर्गः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमो वर्गः प्रारभ्यते—' णवमस्त ' इत्यादि ।

मूलम्—णवमस्त उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! जाव अट्टु-
अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—पउमा सिवा सई अंजू रोहिणी
णवमिया, अचला अच्छरा, पढमंज्झयणस्त उक्खेवओ, एवं
खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं
जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं पउमावई
देवी सोहम्ममे कप्पे पउमवडेसए विमाणे सभाए सुहम्मए
पउमंसि सीहासणंसि जहा कालोए एवं अट्टुवि अज्झयणा
कालीगमएणं नायव्वा, णवरं सावत्थीए दो जणीओ हत्थिणा-
उरे दोजणीओ कंपिह्लपुरे दोजणीओ सागेयनयरे दोजणीओ
पउमे पियरो विजया मायराओ सव्वाओऽवि पासस्त अंतिए
पव्वइयाओ सक्कस्त अग्गमहिंसीओ ठिई सत्त पलिओवमाइं
महाविदेहे वासे सिज्झिंहिति जाव अंतं कांहिति ॥ सू० १४ ॥

॥ णवमो वर्गो समप्तो ॥ ९ ॥

आदि देवियां पूर्वभव में (मथुराए णयरीए) मथुरा नगरी में उत्पन्न
हुई और पार्श्वनाथ प्रभु के समीप दीक्षित हुई । (माया पियरो वि० धूया
सरिसणामा) इन पुत्रियों का नाम वैसा ही नाम इनके माता पिता का है ।

—: अष्टमवर्ग समाप्तः—

आ अधी ज्योत्स्नाभा वगेरे देवीओ पूर्वभवमां (मथुराए णयरीए) मथुरा
नगरीमां उत्पन्न थर्ध अने पार्श्वनाथ प्रभुनी पासधी दीक्षित थर्ध. (मायापियरो
वि० धूया सरिसणामा) आ पुत्रीओनां नामो जेवां ज तेमनां मातापिताओनां
नामो पणु छे.

आठमो वर्ग समाप्त.

टीका—‘णवमस्से’ ति—नवमस्य वर्गस्योत्क्षेपकः । एवं खलु हे जम्बूः । यावत्—अष्ट—अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—पद्मा १, शिवा २, शची ३ अञ्जू ४, रोहिणी ५, नवमिका ६, अचला ७, अप्सराः ८ । एष प्रथमाध्ययनस्योत्क्षे-

—:नवमवर्ग प्रारंभः—

णवमस्स उक्खेवओ इत्यादि ।

टीकार्थः—(णवमस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! जाव अट्ट अञ्जयणा पणत्ता—तं जहा—पडमा, सिवा, सई, अञ्जू, रोहिणी, णवमिया, अचला, अञ्जरा,—पढमञ्जयणस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं पडमावई, देवी सोहम्मि कप्पे पडमवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए पडमंसि—सीहासणंसि जहा कालीए एवं अट्टवि अञ्जयणा कालीगमएणं नायव्वा) हे भदंत ! नौवें वर्ग का उत्क्षेपक किस प्रकार से है ? इस प्रकार जंबू स्वामी के प्रश्न करने पर सुधर्मा स्वामी उनसे कहते हैं कि हे जंबू ! सुनो—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस तरह से है—श्रमण भगवान् महावीर ने इस वर्ग के यावत् आठ अध्ययन प्ररूपित किये—वे इस प्रकार से हैं—पद्मा १, शिवा, २, शची ३, अञ्जू ४, रोहिणी ५, नवमिका ६, अचला ७, और अप्सरा । इनमें हे जंबू ! प्रथम

नवमे वर्ग प्रारंभ.

(णवमस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! जाव अट्ट अञ्जयणा पणत्ता—तं जहा पडमा, सिवा, सई, अञ्जू, रोहिणी, णवमिया, अचला, अञ्जरा, पढमञ्जयणस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं पडमावई देवी सोहम्मि कप्पे पडमवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए पडमंसि—सीहासणंसि जहा कालिए एवं अट्ट वि अञ्जयणा काली गमएणं नायव्वा)

हे भदन्त ! नवमा वर्गने उत्क्षेपक केवी रीते छे ?

आ प्रभाण्णे ञ्जू स्वामीना प्रश्न कथां आट सुधर्मा स्वामी तेभने कडे छे के डे ञ्जू ! सांखयो, तभारा प्रश्नने उत्तर आ प्रभाण्णे छे—श्रमणु लगवान भडावीरे आ वर्गनां यावत् आठ अध्ययने अरूपित कथां छे, ते आ प्रभाण्णे छे:—पद्मा १, शिवा २, शची ३, अञ्जू ४, रोहिणी ५, नवमिका ६, अचला ७ अने अप्सरा ८.

पकः । एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे समवसरणम्= भगवतो महावीरस्य समागमनमभूत्, यावत्-परिषत् पर्युपास्ते । तस्मिन् काले तस्मिन् समये पद्मावती देवी, सौधर्मे कल्पे पद्मावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां पद्मे सिंहासने, यथा काल्याः । एवम् अष्टापि अध्ययनानि कालीगमकेन=काली-देवीसदृशपाठेन ज्ञातव्यानि, नवरं=विशेषस्वरयम्-पूर्वमेव श्रावस्त्यां नगर्यां 'दोज-

अध्ययन का उत्क्षेप न इस प्रकार से है-उस काल में और उस समय में राजगृह नगर में भगवान् महावीर का अगमन हुआ था । लोगों को जब इनके शुभागमन की खबर पड़ी तो वे सब के सब उनको वंदना करने के लिये और उनसे धर्मोपदेश का काम लेने के लिये उनके समीप पहुँचे । प्रभु ने आये हुए परिषद को श्रुतचारित्ररूप धर्म का उपदेश दिया । उपदेश सुनने के बाद उसने प्रभु की यावत् पर्युपासना की । उस काल में और उस समय में पद्मावती देवी जो कि सौधर्मकल्प में पद्मावतंसक विमान में, सुधर्मा सभामें रहती थी और जिसके सिंहासन का नाम पद्म था श्रमण भगवान् महावीर को वंदना करने और उनसे धर्म का उपदेश सुनने के लिये वहाँ आई । इसके बाद का सम्बन्ध कालीदेवी का जैसा वर्णन पहिले किया गया है वैसा ही जानना चाहिये । इसी तरह से अवशिष्ट सात अध्ययन भी जानना चाहिये । इन आठों ही अध्ययनों का पाठ जैसा कालीदेवी का पाठ है वैसा ही है । कोई अन्तर नहीं है (नवरं) परन्तु जहाँ अन्तर है वह-

हे जम्बू ! आमां पडेल्लो अध्ययनो उत्क्षेपक आ प्रमाणे छे-ते कोणे अने ते समये राजगृह नगरमां लगवान महावीरजुं आगमन थयुं । लोकोने तेमना शुभागमननी न्याये जणु थरुं त्थारे तेज्जे सवे तेमने वंदन करवा माटे अने तेमनी पासेथी धर्मोने उपदेश सांभणवा माटे तेमनी पासे गया । प्रभुज्जे आवेला सव लोकोने श्रुतचारित्र रूप धर्मोने उपदेश सांभणान्ये । उपदेश सांभणाने लोकोज्जे प्रभुनी यावत् पर्युपासना करी । ते कोणे अने ते समये पद्मावती देवी-के जे सौधर्म कल्पमां, पद्मावतंसक विमानमां सुधर्मा सभायां रडेती छती अने जेना सिंहासनजुं नाम पद्म छंतुं-श्रमणु लगवान महावीरने वंदन करवा अने तेमनी पासेथी धर्मोने उपदेश सांभणवा त्यां आवी । जेना पछीजुं वणुंन पडेल्लो करवामां आवेला काली देवीना वणुंननी जेस समल्ल देवुं जेधज्जे । आ प्रमाणे ज आठिनां सात अध्ययनो विधे पणु जणु देवुं जेधज्जे । जे आठे आठ अध्ययनोना पाठ काली देवीना जेवो ज

णीओ ' द्वे जन्यौ=पद्मा-शिवाभिधे द्वे दारिके संजाते । एवं हस्तिनापुरे द्वे जन्यौ श्रुतिः-अञ्जूः चेति, काम्पिल्यपुरे द्वे जन्यौ रोहिणीनवमिकानाम्ब्यौ, साकेतनगरे द्वे जन्यौ अचला-अप्सरा इति संजाते । सर्वेषाम् ' पउमे ' पद्मः पञ्चेति नामानः पितरः, विजया=विजयानाम्नो मातर आसन् । सर्वा अपि पार्श्वस्य=पार्श्वप्रभोरन्तिके प्रव्रजिताः, शक्रस्याग्रमहिष्यो जाताः । तासां स्थितिः सप्तपत्न्योपमानि । एताः सर्वा महाविदेहे वर्षे सेत्स्यन्ति यावत्सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति ॥सू० १४॥

॥ इति धर्मकथानां नवमो वर्गः समाप्तः ॥ ९ ॥

इस प्रकार से है—(सावत्थीए दोजणीओ) पद्मा और शिवा ये दो कन्याएँ पूर्व अवमें श्रावस्ती नगरी में उत्पन्न हुईं (हृत्थिणाउरे दोजणीओ, काम्पिल्लपुरे दो जणीओ सागेयनगरे दो जणीओ पउमे पियरो विजयाभायराओ सव्वाओवि पासस्स अंतिए पव्वइयाओ सक्कस्स अग्गमहिसीओ टिई सत्तपल्लिओवमाइं महाविदेहे वासे सिञ्जिहिति जाव अंतं कार्हिति '१४') श्रुति और अञ्जू ये दो हस्तिनापुरमें, रोहिणी, नवलिका ये दो काम्पिल्यपुरमें, अचला एवं अप्सरा ये दो साकेत नगर में, उत्पन्न हुईं । इन सब कन्याओंके पिता का नाम पद्म और माता का नाम विजया था । ये सब कन्याएँ पार्श्वनाथ प्रभु के पास प्रव्रजित हुईं हैं । शक्र की अग्रमहिषियां बनी हैं । इन की स्थिति सातपत्न्य थी । ये

छे तेम सभए देतुं लेधओ. तेमां केअ पणु ळतनेा तक्षावत नथी. (णवर') परंतु न्यां तक्षावत छे—ते आ प्रभाए छे (सावत्थीए दोजणीओ) पद्मावती अने शिवा आ णने कन्याओ। पूर्वखवमां श्रावस्ती नगरीमां उत्पन्न थध.

(हृत्थिणाउरे दो जणीओ, कंपिल्लपुरे दो जणीओ सागेय नगरे दो जणीओ पउमे पियरो विजया भायराओ सव्वाओवि पासस्स अंतिए पव्वइयाओ सक्कस्स अग्गमहिसीओ टिई, सत्त पल्लिओवमाइं महाविदेहे वासे सिञ्जिहिति जाव अंतं कार्हिति " १४ " ।)

श्रुति अने अञ्जू आ णने हस्तिनापुरमां, रोहिणी अने नवमिका आ णने काम्पिल्यपुरमां, अचला अने अप्सरा आ णने साकेत नगरमां उत्पन्न थध. आ णधी कन्याओना पितातुं नाम पद्म अने मातातुं नाम विजया छंतु. आ णधी कन्याओ पार्श्वनाथ प्रभुनी पासे प्रव्रजित थध छे अने शक्रनी अग्रमहिषीओ (पटराणीओ) णनी छे. ओमनी स्थिति सात पत्न्य नेटकी

अथ दशमो वर्गः प्रारभ्यते-दसमस्त ' इत्यादि ।

मूलम्-दसमस्त उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! जाव अट्ट
अज्झयणा पणत्ता, तं जहा-कण्हा य कण्हराई राभा तहराम-
रक्खिया वसू य । वसुगुत्ता वसुमित्ता वसुंधरा चेव ईसाणे ॥१॥
पढमज्झयणस्त उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं
समएणं कण्हादेवी ईसाणे कप्पे कण्हवडेंसए विमाणे सभाए
सुहम्मए कण्हंसि सीहासणंसिं सेसं जहा कालीए एवं अट्टवि
अज्झयणा कालीगमएणं-णैयुव्वा, णवरं पुव्वभवे वाणारसीए
नयरीए दो जणीओ रायगिहे नयरे दो जणीओ सावत्थीए
नयरीए दो जणीओ कोसंबीए नयरीए दो जणीओ, रामे
पिया धम्मा माया सव्वओऽवि पासस्त अरहओ अंतिए पव्व-
इयाओ पुक्कचूलाए अजाए सिस्सिणीयत्ताए ईसाणस्त अग्ग-
महिसीओ ठिई णव पलिओवमाइं महाविदेहे वासे सिज्झि-
हिति बुज्जिहिति मुच्चिहिति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति । एवं
खलु जंबू ! णिक्खेवओ दसमवग्गस्त ॥ सू० १५ ॥

॥ दसमो वर्गो समाप्तः ॥ १० ॥

टीका—' दसमस्ते ' ति दशमस्य उत्क्षेपकः । एवं खलु हे जंबू ! यावत्
अष्ट-अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा-तानि गाथया प्रदर्शयन्ते ' कण्हे ' त्यादि ।

सब महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध अवस्था प्राप्त करेगी-यावत् सर्व दुःखों
का अन्त करेगी ॥ सू० १४ ॥

॥ नवमवर्ग समाप्त ॥

छे. आ अधी महाविदेह क्षेत्रमांथी सिद्ध अवस्था प्राप्त करेथे यावत् सर्व
दुःखोना अंत करेथे. ॥ सू० १४ ॥

नवमो वर्ग समाप्त.

“ કૃષ્ણા ૧ ચ કૃષ્ણરાજિઃ ૨, રામા ૩ તથા રામરક્ષિકા ૪ વસુ ૫ વસુગુપ્તા ૬, વસુમિત્રા ૭, વસુન્ધરા ૮ ચૈવ ઈશાને ॥ ૧ ॥ ”

તત્ત્રામભિરધ્યયનાનિ પ્રસિદ્ધાનિ । તત્ર પ્રથમાધ્યયનસ્યોત્કેપકઃ । એવં સ્વલુ
હે જન્મ્બુઃ । તસ્મિન્ કાલે તસ્મિન્ સમયે રાજગૃહે નગરે ભગવતઃ શ્રીમહાવીર-

॥ દશમવર્ગ પ્રારંભ ॥

‘ દસમસ્સ ઉક્ષેવઓ ’ ઇત્યાદિ૦ “૧૫”

ટીકાર્થ—(દસમસ્સ ઉક્ષેવઓ—એવં સ્વલુ જંબૂ ! જાવ અટ્ટ અજ્ઞયણ-
યણા પળ્લતા—તં જહાં-કળ્હાય કળ્હરાઈ, રામા, તહ રામરક્ષિકા વસુ ય । વસુગુપ્તા વસુમિત્તા વસુન્ધરા ચેવ ઈસાણે “૧”-’પદમજ્ઞયણસ્સ ઉક્ષે-
વઓ—એવં સ્વલુ જંબૂ ।) હે ભદન્ત શ્રમણ ભગવાન મહાવીર ને દશવે
વર્ગકા ઉત્કેપક કિસ પ્રકાર સે કહા હૈ ? હસ તરહ કા જંબૂ ! સ્વામી
કે પ્રશ્ન કા સમાધાન કરને કે નિમિત્ત સુધર્મા સ્વામી ઉનસે કહતે હૈ
કિ હે જંબૂ ! સુનો તુમ્હારે પ્રશ્ન કા ઉત્તર હસ પ્રકાર હૈ—શ્રમણ ભગ-
વાન મહાવીરને હસ દશવે વર્ગ કે આઠ અધ્યયન પ્રજ્ઞસ કિયે હૈ—વે યે
હૈ—કૃષ્ણા ૧, કૃષ્ણરાજિ ૨, રામા ૩, રામરક્ષિકા ૪, વસુ ૫, વસુગુપ્તા
૬, વસુમિત્રા ૭, ઓર વસુન્ધરા । હન ૨ નામો દ્વારા હન ૨ નામ વાલે
અધ્યયન પ્રસિદ્ધ હુપ હૈ । હનમે પ્રથમ અધ્યયન કા હે જંબૂ ! ઉત્કેપક

દશમા વર્ગ પ્રારંભ—

‘ દસમસ્સ ઉક્ષેવઓ ’ ઇત્યાદિ—

(દસમસ્સ ઉક્ષેવઓ—એવં સ્વલુ જંબૂ ! જાવ અટ્ટ અજ્ઞયણા પળ્લતા—તં
જહા—કળ્હાય કળ્હરાઈ, રામા તહ રામરક્ષિકા વસુ ય । વસુગુપ્તા વસુમિત્તા
વસુન્ધરા ચેવ ઈસાણે ॥ ૧ ॥ પદમજ્ઞયણસ્સ ઉક્ષેવઓ—એવં સ્વલુ જંબૂ ।)

હે ભદન્ત ! શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે દશમા વર્ગને ઉત્કેપક
કેવી રીતે કહ્યો છે ?

આ પ્રમાણેના જંબૂ સ્વામીના પ્રશ્નને સાંભળીને તેના સમાધાન માટે
શ્રી સુધર્મા સ્વામી તેમને કહે છે કે હે જંબૂ ! સાંભળો, તમારા પ્રશ્નનો
ઉત્તર આ પ્રમાણે છે. શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે આ દશમા વર્ગના આઠ
અધ્યયનો પ્રજ્ઞસ કર્યા છે, તે આ પ્રમાણે છે—કૃષ્ણા ૧, કૃષ્ણારાજિ ૨, રામા
૩, રામરક્ષિકા ૪, વસુ ૫, વસુગુપ્તા ૬, વસુમિત્રા ૭ અને વસુન્ધરા ૮.

આ ઉક્ત બુદ્ધા બુદ્ધા નામો વડે એ જ નામનાં બુદ્ધાં બુદ્ધાં અધ્યયનો
પ્રસિદ્ધ થયાં છે. હે જંબૂ ! આ બધામાંથી પહેલા અધ્યયનનો ઉત્કેપક

स्वामिनः समवसरणं यावत् परिषत् पर्युपास्ते, तस्मिन् काले तस्मिन् समये कृष्णा-
देवीईशाने कल्पे कृष्णावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां, कृष्ण सिंहासने, शेष

इस तरह से हैं—(तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव
परिसा पज्जुवासइ) उस काल एवं उस समयमें राजगृह नगरमें भगवान्
महावीर का शुभागमन हुआ था। परिषद् उन को बंदना आदि करने
के लिये उनके समीप पहुँची। प्रभुने सबके लिये धर्म का उपदेश
सुनाया। लोगोंने उपदेश सुनकर प्रभु की पर्युपासना की (तेणं कालेणं
तेणं समएणं कण्हा देवी ईसाणे कप्पे कण्हेवडेंसए विभाणे सभाए
सुहम्माए कण्हंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालिए एवं अविट्ठाअञ्ज-
यणा कालीगमएणं जेयव्वा, णवरं पुव्वभवे वाणारसीए नयरीए दो
जणीओ रायगिहे नयरे दो जणीओ, सावत्थीए नयरीए दो जणीओ, को
संबीए नयरीए दो जणीओ रामे पिया धम्मा माया सव्वओऽवि पासस्स
अरहओ अंतिए पव्वइयाओ पुप्पाचूलाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए ईसा-
णस्स अगमहिंसीओ ठिई, णवपालिओवमाइं, महाविदेहे वासे सिज्झि-
हिंति, बुज्झिहिंति, मुच्चिहिंति, सव्वदुक्खाणं, अंतंकार्हिंति, एवं खलु
जंबू ! णिक्खेवओ दसमवग्गस्स) उसी काल और उसी समय वहाँ
कृष्णादेवी जो ईशान कल्प में कृष्णावतंसक विमान में रहती थीं—और

आ प्रभाषे छे. (तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं, जाव परिसा
पज्जुवासइ) ते काले अने ते समये राजगृह नगरमां भगवान् महावीरतुं
शुभागमन थयुं. तेभने बंदन करवा भाटे परिषद तेभनीं पासो पडोन्थी. औने
प्रभुओ धर्मोपदेश संलणायो. धर्मोपदेश संलणाने परिषदे प्रभुनी पर्युपासना करी.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं कण्हा देवी ईसाणे कप्पे कण्हेवडेंसए विभाणे
सभाए सुहम्माए कण्हंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालिए एवं अविट्ठा अञ्जयणा
कालीगमएणं जेयव्वा, णवरं पुव्वभवे वाणारसीए नयरीए दो जणीओ रायगिहे
नयरे दो जणीओ, सावत्थीए नयरीए दो जणीओ, कोसंबीए नयरीए दो जणीओ
रामे पिया धम्मा माया सव्वओऽवि पासस्स अरहओ अंतिए पव्वइयाओ पुप्फ
चूलाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए ईसाणस्स अगमहिंसीओ ठिई, णवपालि ओव-
माइं, महाविदेहे वासे सिज्झिहिंति बुज्झिहिंति, मुच्चिहिंति, सव्वदुक्खाणं, अंतं
कार्हिंति एवं खलु जंबू ! णिक्खेवओ दसमवग्गस्स)

ते काले अने ते समये त्यां कृष्णा देवी—के जे ईशान—कल्पमां कृष्णा-
वतंसक विमानमां रहती छती अने जेनी सलानुं नाम सुधर्मां तेभज्
सिंहासनतुं नाम कृष्णा छतुं—आवी जेना पथीने। पाठ काली देवीना

यथा काल्याः । एवमष्टा कृष्णराजिप्रभृतीनि अध्ययनानि कालीगमकेन=काली-
 देवीसदृशपाठेन ज्ञातव्यानि नवरं=विशेषः यत्-पूर्वभवे वाणारस्यां नगर्यां द्वे=
 कृष्ण-कृष्णराजिनाम्न्यौ जन्यौ=दारिके संजाते । एवं राजगृहे नगरे द्वे=वसु-
 वसुगुप्ता नाम्न्यौ जन्यौ, कौशाख्यां नगर्यां द्वे=वसुमित्रा-वसुन्धरा नाम्न्यौ
 जन्यौ=दारिके समुत्पन्ने । सर्वासां रामः=रामामिधः पिता, धर्मा=धर्माऽमिधा
 माता । सर्वा अपि पार्श्वर्याहृतोऽन्तिके प्रव्रजिताः, पुष्पचूलाया आर्यायाः शिष्या-
 त्वेन पार्श्वप्रसूणा स्वयं प्रदत्ताः । ईशानस्य=ईशानेन्द्रस्य अग्रमहिष्यो जाताः । तत्र
 तासां स्थितिर्नव पल्योपमानि वर्त्तते । ततश्च्युत्वा महाविदेहे वर्षे समुत्पद्य सेतस्यन्ति,
 जिसकी सभा का नाम सुधर्म तथा सिंहासन का नाम कृष्ण था आई ।
 इस के आगे का पाठ कालीदेवी के वर्णन में जैसा पाठ कहा गया है
 वैसा ही है । इसी तरह से कृष्णराजि प्रभृति अध्ययन भी-कालीदेवी
 वर्णन में पठित पाठ के सदृश ही जानना चाहिये । कालीदेवी के पाठ
 में और इन आठ अध्ययनोक्त पाठों में जो अन्तर है वह इस प्रकार
 से है-पूर्वभवे में वाणारसी नगरीमें कृष्णा और कृष्णराजि ये दो जनी
 -उत्पन्न हुईं, राजगृहनगर में रामा और रामरक्षिका श्रावस्ती नगरी में
 वसु, वसुगुप्ता और कौशांबी नगरी में वसुमित्रा एवं, वसुंधरा उत्पन्न
 हुईं । इन सब के पिता का नाम राम और माताओं का नाम धर्मा था ।
 ये सबकी सब पार्श्वनाथ प्रभु के पास प्रव्रजित हुईं । प्रभुने इन सब
 को दीक्षित करके पुष्पचूला आर्या की शिष्यारूप से दिया । ये सब
 इस ईशानेन्द्रकी अग्रमहिषी हुईं । वहां इनकी स्थिति नौ पल्योपम की
 है । वहां से चवकर ये महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगी और वहीं से

वर्षानाम् ७ प्रभाषु पाठ कडेवाये छे ते प्रभाषु ७ समल देवे
 लेधये. आ प्रभाषु ७ कृष्णराजि नगरे अध्ययने पषु काली देवीना
 पाठमां अने आ उक्त आठ अध्ययनाना पाठमां ७ क'र्ष तक्षवत छे ते
 आ प्रभाषु छे-पूर्वभवमां वाणारसी नगरीमां कृष्णा अने कृष्णराजि
 आ अने उत्पन्न थर्ष, राजगृह नगरमां रामा अने रामरक्षिका श्रावस्ती
 नगरीमां वसु, वसुगुप्ता अने कौशांबी नगरीमां वसुमित्रा अने वसुंधरा
 उत्पन्न थर्ष. अमना पितासुं नाम राम अने मातासुं नाम धर्मा इंतुं. अ
 अधीअे पार्श्वनाथ प्रभुनी पास प्रव्रज्या अडशु करी इती. प्रभुअे अवेने
 दीक्षित करीने पुष्पचूला आर्याने शिष्याअेना रूपमां सांपी इती. अ अधी
 ईशानेन्द्रनी अग्रमहिषीअे थर्ष. त्यां तेमनी स्थिति नव पल्योपमनी छे.
 त्यांथी अवीने अ अधी महाविदेह क्षेत्रमां उत्पन्न थये अने त्यांथी ७ सिद्ध-

भोक्तस्यन्ति, मोक्षयन्ति सर्वं दुःखानामन्तं करिष्यन्ति । एवं खलु हे जम्बू ! निक्षेपको दशमवर्गस्य ॥ सू० १५ ॥

॥ इति धर्मकथानां दशमो वर्गः समाप्तः ॥ १० ॥

मूलम्--एवं खलु जंबू समणेणं भगवया महावीरेणं आदिगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसोत्तमेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं अयमट्टे पणत्ते ॥

॥ धम्मकहासुयकखंधो समत्तो दसहिं वग्गेहिं ॥

॥ णायाधम्मकहाओ समत्ताओ ॥

टीका—सुधर्मास्वामी कथयति—‘ एवं खलु ’ इत्यादि । एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण आदिकरेण तीर्थकरेण स्वयं सम्बुद्धेन पुरुषोत्तमेन

सिद्ध पद की भोक्ता बनेंगी केवलज्ञानरूप आलोक से समस्त चराचर पदार्थों की ज्ञाता बनेंगी । द्रव्य एवं आवरूप समस्त कर्मों से छूटजावेगी इस तरह ये वहीं से समस्त दुःखों का अन्त करने वाली होगी । इस प्रकार हे जंबू ! यह दशवेवर्ग का निक्षेपक है ।

॥ दसमवर्ग समाप्त ॥

‘ एवं खलु जंबू ! ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आदिगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसोत्तमेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं अयमट्टे पणत्ते) अब जंबूस्वामी से श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं कि हे

पद भेजप्रशे ओ अधी केवलज्ञान रूप आलोकथी समस्त चर अने अचर पदार्थानुं ज्ञान भेजप्रशे. द्रव्य अने आवरूप अधा कर्माथी मुक्त थर्ध अथे. आ प्रभाणे ओ अधी त्याथी अ अधा दुःखोने अंत करनारी थथे. आ प्रभाणे डे अंभू ! आ दशमो वर्गोने निक्षेपक छे.

दशमो वर्ग समाप्त.

एवं खलु जंबू ! इत्यादि—

(एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आदिगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसोत्तमेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं अयमट्टे पणत्ते)

यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन धर्मकथानामयमर्थः प्रज्ञप्तः ॥

॥ धर्मकथानामको द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितक-
लापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छ-
त्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराज-
गुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री-घासीलाल-
व्रतिविरचितायां-ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रस्यानगारधर्माभृतवर्षि-
ण्याख्या व्याख्या समाप्ता ॥

जंबू। आदिकर, तीर्थङ्कर, स्वयं संबुद्ध पुरुषोत्तम, यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए ऐसे भ्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कंध का पूर्वोक्तरूप से अर्थ प्रज्ञप्त किया है। (धम्म-कहासुयक्खंधो समत्तो दसहिं वगोहिं) धर्मकथा नामका यह द्वितीय श्रुतस्कंध दशवर्गों में समाप्त हुआ है। इस तरह (णायाधम्मकहाओ समत्ताओ) यह ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र समाप्त हुआ।

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलालजी महाराज कृत "ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र" की अनगारधर्माभृतवर्षिणी व्याख्या समाप्त ॥

હવે જાંબૂ સ્વામીને શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે કે હે હે જાંબૂ ! આદિકર તીર્થંકર, 'સ્વયં' સંબુદ્ધ, પુરુષોત્તમ યાવત્ સિદ્ધગતિ નામના સ્થાનને પ્રાપ્ત કરી ચૂકેલા એવા શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે ધર્મકથા નામના બીજા શ્રુતસ્કંધને પૂર્વોક્ત રૂપે અર્થ પ્રજ્ઞપિત કર્યો છે. (ધમ્મકહા સુયક્કંધો સમત્તો દસહિં વગોહિં) ધર્મકથા નામનો આ બીજો શ્રુતસ્કંધ દશ વર્ગોમાં પૂરો થયો છે. આ પ્રમાણે (ણાયાધમ્મકહાઓ સમત્તાઓ) આ જ્ઞાતા ધર્મકથાંક સૂત્ર પૂરું થયું છે.

શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મ દિવાકર પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત "જ્ઞાતાધર્મકથાંકસૂત્ર" ની અનગારધર્માભૃતવર્ષિણી વ્યાખ્યા સમાપ્ત

—:शास्त्रप्रशस्ति:—

काठियावाडदेशेऽस्ति, राजकोटपुरे शुभे
कोठारीहरगोविन्द काकानाम प्रसिद्धिमान् ।

तस्यास्तिभार्यापरमा सुशीला, धर्मानुरक्तागृहकार्यदक्षा ।

शान्तिप्रिया दीनदयार्द्रभावा, नाम्ना प्रसिद्धा किलरुक्मिणीसा ॥ २ ॥

दिनेशचन्द्रस्तनयोऽस्ति यस्य, कुलस्य दीपः सरलस्वभावः ।

कन्या सुशीला सरला जितुश्च—सदा—प्रमोदाय चकास्तिपित्रोः ॥ ३ ॥

व्याख्यानभवने तस्य, ज्ञाताधर्मकथाङ्गके ।

घासीलाद्येन मुनिना कृता टीका सतां मुदे ॥ ४ ॥

द्विसहस्रचतुः संख्ये, विक्रमान्दे रवौ दिने ।

माघे शुक्ले च पञ्चम्यां, सम्पूर्णां धर्मवर्षिणी ॥ ५ ॥

काठियावाडदेश में राजकोट नामका अच्छा नगर है। उस में कोठारी हरगोविन्दकाका रहते हैं। इनका सुशीलभार्याका नाम रुक्मिणी हैं। यह गृहकार्य में बहुत चतुर है। धर्मात्मा है, शान्ति प्रिया है एवं दीन दुःखियों के ऊपर सदा दया भाव रखती है। काका का कुल दीपक एक दिनेशचन्द्र नाम का पुत्र और जितु नाम की—कन्या है। ये दोनों माता पिता के प्रमोद के स्थान भूत हैं।

सुश्रु घासीलाल मुनिराज ने उन्ही के व्याख्यान भवन में ठहर कर विक्रम संवत् २००४ दिन रविवार माघशुक्ला पंचमी के दिन ज्ञाता धर्मकथाङ्ग, सूत्र की यह टीका रचकर समाप्त की है।

काठियावाड प्रांतमां राजकोट नामे अेक सरस रम्य नगर छे. तेमां कोठारी हरगोविंद काका रहे छे. तेभनी सुशील 'पत्नीतु' नाम इकिभण्णी छे. तेअो गृहकार्यमां अहुं अ चतुर छे, धर्मात्मा तेभअ शांति प्रियापणु छे. तेअो गरीअ दुःभीअोना उपर हमेशां हयाभाव राखे छे. काकाने कुण्डीपक अेक दिनेशचन्द्र नामे पुत्र अने जितु नामे अेक कन्या छे. आ अने माता-पितानां प्रमोदनां आश्रयस्थाने छे.

अे घासीलाल मुनिराजे तेभना अ व्याख्यान भवनमां रहने विक्रम संवत् २००४ रविवार माघ शुक्ला पंचमीना दिवसे ज्ञाताधर्मकथांग सूत्रनी आ टीका रचने पूरी करी छे.

